Bharat BoudhIKS

खंड-1

भारतीय काल-दर्शन

समय और सृष्टि की अवधारणा

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

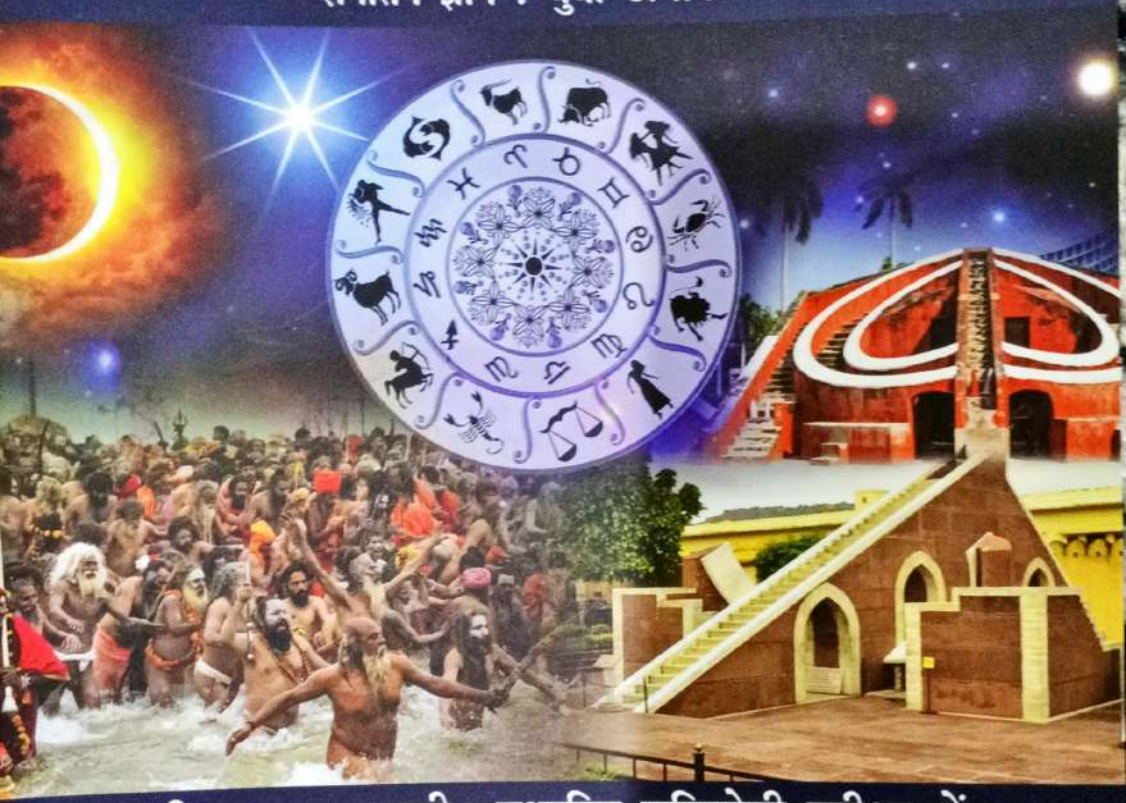

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- Dr. Meenakshi Sharma
  ACBR, University of Delhi
- Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary
  Rajdhani College, University of Delhi
- Dr. Shobhita Singal
  MLNC, University of Delhi
- Dr. Deepak Kumar
  DRC, University of Delhi
- Ms. Prakshi Soni
  University of Delhi
- Mr. Jitender Kumar
  University of Delhi
- Ms. Kajal Sharma
  University of Delhi
- Ms. Geeta Chaudhary
  University of Delhi
- Mr. Pradeep K. Pandey
  University of Delhi

भारतीय काल-दर्शनः
समय और सृष्टि की अवधारणा

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वतापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, ज्ञानवर्धक और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **भारतीय काल दर्शन : समय और सृष्टि की अवधारणा**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. शोभिता सिंघल

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-77-2

मूल्य : 250/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश



प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

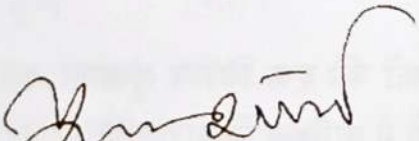

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1.	भूमिका: भारत का ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण	13
2.	भारतीय खगोलशास्त्र की विशेषताएँ और परिभाषित करने वाले तत्व	16
3.	भारतीय खगोल विज्ञान का विकास	18
4.	भारतीय खगोल विज्ञान: वैदिक दृष्टि से आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन तक	21
5.	दार्शनिक और ब्रह्माण्डीय एकीकरण: काल चक्र	24
6.	वैदिक कालमापन इकाइयाँ: संरचना और श्रेणीबद्धता	26
7.	खगोल विज्ञान में जैन एवं सिद्धान्त के योगदान	31
8.	इक्लिप्टिक एवं क्षैतिज समन्वय प्रणाली	32
9.	भारतीय खगोल विज्ञान में राशि चक्र और नक्षत्र	33
10.	भारतीय पंचांग प्रणाली के तत्व	37
11.	आर्यभटीय और सिद्धांतिक परंपरा	38
12.	पंचांग - भारतीय कैलेंडर प्रणाली	43
13.	भारतीय कृषि पंचांग: देसी महीने एवं उनका महत्व	45
14.	खगोलीय उपकरण (यंत्र)	49
15.	प्राचीन भारत की समुद्री महिमा : एक विस्मृत कथा	53
16.	राजा जय सिंह सवाई का जंतर मंतर	56
17.	निष्कर्ष	61
	अनुशंसित पठन सामग्री	63
	बहुविकल्पीय प्रश्न	65
	उत्तर-दर्शिका	84

The Indian systems of astronomy are by far the oldest and that from which the Egyptians, Greek, Romans and ---even the Jews derived from the Hindus their knowledge.

Source: The secret doctrine, Volume 3.
by Helena Petrovna Blavatsky

The motion of the stars calculated by the Indian before some 4500 years vary not even a single minute from the modern tables of Cassini and Meyer.

Source: World as Seen Under the Lens of a Scientist,
by B. Vithal Shetty, Dr Vithal B Shetty



Jean-Sylvain Bailly
(1901-1976)

Notable French astronomer, a renowned mathematician, freemason and an influential political leader. He was active in politics during the early part of the French Revolution and was executed by guillotine during the Reign of Terror, after refusing to testify against Marie Antoinette. Bailly served as the first Mayor of Paris from 1789 to 1791 and is noted for his computation of an orbit for Halley's Comet

प्रस्तावना



प्राचीन विश्व केवल मिथक और अनुष्ठान का केंद्र नहीं था, वह तर्क, दर्शन, और वैज्ञानिक अनुशीलन की एक महान प्रयोगशाला भी था। प्राचीन सभ्यताओं में, भारत एक ऐसी संस्कृति के रूप में उभरा है जिसने ब्रह्माण्ड की समझ में अद्वितीय योगदान दिया। यह पुस्तक प्राचीन भारतीय खगोलविद्या की उस समृद्ध बौद्धिक और आध्यात्मिक परंपरा को विनम्रता पूर्वक प्रस्तुत करने का प्रयास है, जिसने ब्रह्माण्ड को न केवल भौतिक वास्तविकता के रूप में, बल्कि समय और चेतना के एक जीवंत, लयबद्ध रूप में देखा।

ऋग्वेद के आरंभिक सूक्तों से लेकर सिद्धांतवादी खगोलशास्त्रियों की सूक्ष्मता से गणना की गई सारणियों तक, भारतीय मानस ने समय को खरबों वर्षों तक फैले विशाल चक्रों में और अंतरिक्ष को ईश्वरीय व्यवस्था के एक अंतर्संबंधित जाल के रूप में देखा। यह विश्वदृष्टि अकेले नहीं विकसित हुई। इसे ऋषियों, विद्वानों और गणितज्ञों की पीढ़ियों ने पोषित किया, जिन्होंने ग्रहों की गतियों को मापा, निर्देशांक प्रणालियाँ विकसित कीं, वेधशालाएँ बनाईं और अद्भुत कुशलता के उपकरण बनाए। नक्षत्र-मंडल (तारा परिपथ), युग, कल्प और पंचांग कैलेंडर जैसी अवधारणाएँ ब्रह्मांडीय व्यवस्था और लौकिक चक्रों के प्रति गहन जागरूकता प्रकट करती हैं।

इस पुस्तक के लेखन में शास्त्रीय सन्दर्भों, वैज्ञानिक तर्क और पुरातात्त्विक साक्ष्यों को समन्वित कर यह दिखाने का प्रयास किया है कि भारतीय खगोलशास्त्र कोई खंडित या उधार ली गई परंपरा नहीं थी, बल्कि यह एक मौलिक और समग्र परिपाटी थी, जो अवलोकन और तत्व-चिंतन दोनों में समान रूप से गहराई रखती थी। इसमें जैन विद्वानों के योगदान, आर्यभट की प्रतिभा, जंतर मंतर की स्थापत्य-कला, और सूर्यसिद्धान्त व सिद्धान्त-शिरोमणि जैसे ग्रंथों की महत्ता को समाहित किया गया है।

यह कृति केवल इतिहास या विज्ञान के छात्रों के लिए नहीं है, बल्कि उन जिज्ञासु पाठकों के लिए भी है जो यह समझना चाहते हैं कि प्राचीन भारत ने आकाश को कैसे देखा, समय को कैसे मापा, और अस्तित्व के रहस्यों पर कैसे विचार किया। यह यात्रा केवल वैज्ञानिक नहीं, एक ब्रह्माण्डीय एकता की ओर भी ले जाती है-जो आज भी अत्यंत प्रासंगिक है।

"What we shall find in Modern Physics is an exemplification, an encouragement, and a refinement of old Indian wisdom."

Source: The Tar of Physics-by Fritjof Capra

"The juxtaposition of Western civilization's most terrifying scientific achievement with the most dazzling description of the mystical experience given to us by the Bhagavad Gita, India's greatest literary monument."

Source: The Eye of Shiva Eastern Mysticism and Science by Amaury de Riencourt

* * *

While witnessing the first atomic bomb explosion at the Trinity Test in New Mexico on July 16, 1945 Oppenheimer emotionally exclaimed two couplets from the Bhagavad Gita: "If the radiance of a thousand suns were to burst at once into the sky, that would be of the splendor of the mighty one...", "Now I am become Deeth, the destroyer of worlds."



Julius R. Oppenheimer (1904-1967)

Held in high esteem as "The father of the Atomic Bomb", Oppenheimer was a great American theoretical physicist. His achievements include the Born-Oppenheimer Approximation, Electron-Positron Theory, the Oppenheimer-Phillips Process and the first prediction of Quantum Tunnelling. In addition, he contributed significantly to the modern theory of neutron stars and black holes, quantum mechanics, quantum field theory, and the interactions of cosmic rays.

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

भारतीय काल-दर्शन: समय और सृष्टि की अवधारणा

"भारतीय काल दर्शन: समय और ब्रह्मांड की एक दृष्टि" भारतीय सभ्यता की गहन दार्शनिक और कलात्मक अंतर्दृष्टि का अन्वेषण करता है, जहाँ समय (काल) और ब्रह्मांड (विश्व) केवल भौतिक वास्तविकताएँ नहीं हैं, बल्कि अस्तित्व की गहन रूप से परस्पर जुड़ी अभिव्यक्तियाँ हैं। प्राचीन ज्ञान में निहित, यह दृष्टिकोण समय और चेतना एवं व्यवस्था से ओतप्रोत ब्रह्मांड की एक चक्रीय, लयबद्ध समझ को प्रकट करता है। कला, वास्तुकला, संगीत और साहित्य की अपनी समृद्ध परंपराओं के माध्यम से, भारतीय कला दर्शन एक एकीकृत दृष्टि प्रस्तुत करता है जिसमें लौकिक और शाश्वत, सूक्ष्म जगत और स्थूल जगत, जीवन के ताने-बाने में सामंजस्यपूर्ण रूप से गुंथे हुए हैं।

1. भूमिका: भारत का ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण

"ऋतस्य शासने विश्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋतेन सूर्यस्तपति।" — ऋग्वेद 1.164.41

अनुवाद: "ऋत के शासन द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थित है; ऋत के द्वारा ही सूर्य तपता है।"

स्रोत: Griffith, R.T.H. (1896). *The Hymns of the Rigveda*. E.J. Lazarus & Co.)

विचार की भोर से ही आकाश मानव जाति के लिए आकर्षण का विषय रहा है। बचपन में हममें से कई लोगों ने आकाश के उस अनंत गुंबद की ओर निहारा है — तारों के बारे में सोचते हुए, सूर्य की आकाश में यात्रा को देखते हुए, चंद्रमा के कलाओं के परिवर्तन को, ऋतुओं के बदलाव को और दिन-रात्रि के गुप्त चक्रों को समझने का प्रयास करते हुए।

भारत के प्राचीन ऋषियों के लिए ऐसा आश्चर्य मात्र जिज्ञासा नहीं था — यह एक गहन विज्ञान का बीज था, जिसने अवलोकन, आध्यात्मिकता और गणित को एक सूत्र में पिरो दिया। प्राचीन यूनान या चीन में प्रचलित यांत्रिक ब्रह्मांडीय मॉडलों के विपरीत,

भारतीय ब्रह्मांड-चिंतन ने ब्रह्माण्ड को एक सचेत, स्व-संगठित तंत्र के रूप में देखा, जो 'ऋत' — उस शाश्वत, सार्वभौमिक नियम द्वारा संचालित है, जो सबसे छोटे परमाणु से लेकर सबसे दूरस्थ आकाशगंगा तक सबको स्थिर और व्यवस्थित रखता है।

यह महान दृष्टि हमें ऋग्वेद में मिलती है — संसार का प्राचीनतम सुरक्षित साहित्यिक ग्रंथ, जिसकी रचना 1500–1200 ईसा पूर्व के मध्य मानी जाती है। मानव इतिहास के सबसे रहस्यमय और दार्शनिक सूक्तों में से एक — नासदीय सूक्त (ऋग्वेद 10.129) — में वैदिक ऋषि स्वयं अस्तित्व की उत्पत्ति पर प्रश्न करते हैं:

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥"

— ऋग्वेद 10.129.1

अनुवाद: "तब न सत था, न असत; न उस समय वायु-प्रदेश था, न उसके ऊपर आकाश। कौन ढक रहा था उसे? वह कहाँ था? किसकी शरण में था वह? क्या वहाँ अथाह जल था?" (स्रोत: Griffith, R.T.H. (1896). *The Hymns of the Rigveda*. E.J. Lazarus & Co.)

ऐसी मुक्त, निडर जिज्ञासा यह दर्शाती है कि वैदिक विचारक किसी भी रूढ़ि के बंधक नहीं थे — वे विनम्रता और आश्चर्य के साथ ब्रह्माण्ड के रहस्य का अन्वेषण करते थे। यही बौद्धिक उदारता बाद के भारतीय खगोलशास्त्र की दार्शनिक नींव बनी, जहाँ आकाशीय पिंडों का निरीक्षण और दार्शनिक खोज एक-दूसरे से अविच्छिन्न रूप से जुड़े थे। (स्रोत: Kak, S. (2000). *The Astronomical Code of the Rigveda*. Munshiram Manoharlal.)

इसके अतिरिक्त, प्राचीन ऋषियों का यह विश्वास था कि मानव (पिण्ड) ब्रह्माण्ड (ब्रह्माण्ड) का सूक्ष्म प्रतिबिंब है। यह यजुर्वेद में सुंदर रूप से व्यक्त हुआ है:

"यथापिण्डे तथाब्रह्माण्डे।"

— यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण (6.1.1.6)

अनुवाद: "जैसा सूक्ष्म जगत (पिण्ड) है, वैसा ही है विराट ब्रह्माण्ड।" (स्रोत: शतपथ ब्राह्मण, यजुर्वेद)

इस सिद्धांत ने प्राकृतिक चक्रों के सूक्ष्म अध्ययन को प्रोत्साहित किया — केवल जिज्ञासा हेतु नहीं, अपितु आत्मा और ब्रह्माण्ड के संबंध को समझने के लिए। इसी के परिणामस्वरूप ग्रहों की गति का बारीकी से निरीक्षण, अयनांत (solstices) और विषुव

(equinoxes) की गणना, ग्रहणों (eclipses) की भविष्यवाणी और शुभ समय (मुहूर्त) की निर्धारण की परंपरा विकसित हुई — जिसने उस विज्ञान की नींव रखी जिसे हम आज ज्योतिष शास्त्र (Jyotiṣa Śāstra) कहते हैं।

यहाँ तक कि समय के विभाजन — क्षण, मिनट, घंटा — की अवधारणा भी ऐसे ही चिन्तन से उत्पन्न हुई:

"कालो हि अणुरेवैकः।"

— वैशेषिक सूत्र 2.2.6

अनुवाद: "काल स्वयं अत्यन्त सूक्ष्म और अविभाज्य इकाई है।" (स्रोत: वैशेषिक सूत्र)

यह वैज्ञानिक जिज्ञासा कभी भी आध्यात्मिकता से पृथक नहीं थी — इसने स्वीकार किया कि ब्रह्माण्डीय व्यवस्था और मानव जीवन की नियति एक ही ताने-बाने में बुनी हुई दो धागे हैं।

इस ग्रंथ के पृष्ठों के माध्यम से आप देखेंगे कि प्राचीन भारतीय ऋषियों ने गणितीय तर्क, खगोल-यंत्रों, मंदिर वास्तुकला और दार्शनिक चिन्तन को किस प्रकार एक विराट ब्रह्मांडीय दृष्टि में एकीकृत किया।

ऋग्वैदिक स्तुतियों से लेकर आर्यभट के सूक्ष्म ग्रह-मॉडलों तक, सूर्य सिद्धांत की गणनात्मक उत्कृष्टता से लेकर जंतर मंतर जैसे भव्य खगोल-वेधशालाओं तक — यह परंपरा भारत की चिरकालीन जिज्ञासा को दर्शाती है, जो तारों की भाषा को पढ़ने के लिए सदा प्रयत्नशील रही।



प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र

2. भारतीय खगोलशास्त्र की विशेषताएँ और परिभाषित करने वाले तत्व

भारतीय खगोलशास्त्र वैश्विक वैज्ञानिक विकास के इतिहास में एक अद्वितीय और अनुपम स्थान रखता है। यह मात्र एक तकनीकी या सैद्धांतिक विधा नहीं है, बल्कि एक गहराई से एकीकृत चिंतन प्रणाली है, जो ब्रह्माण्ड विज्ञान, दर्शन, धर्म, दैनिक जीवन और प्राकृतिक घटनाओं को एक सुसंगत सम्पूर्णता में पिरोती है। आधुनिक पाश्चात्य परंपरा के विपरीत, जहाँ आकाशीय पिंडों को दूरस्थ, जड़ वस्तुएँ माना जाता है जो यांत्रिक नियमों के अधीन हैं, प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र परंपराओं ने ब्रह्माण्ड को एक जीवंत, सचेत वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया, जो पृथ्वी पर जीवन के साथ निरंतर संवाद करता है।

2.1 ब्रह्मांडीय और पार्थिव लोकों का समग्र एकीकरण

भारतीय दृष्टिकोण में सूर्य (सूर्य), चन्द्रमा (चन्द्र), ग्रह (ग्रह) और नक्षत्र (नक्षत्र) जैसे आकाशीय पिंड निरपेक्ष भौतिक पिंड नहीं थे, बल्कि ऐसे दिव्य तत्व माने जाते थे जो पृथ्वी पर घटनाओं को प्रभावित करते हैं। मानव सभ्यता के प्राचीनतम ग्रंथों में से एक ऋग्वेद इस समग्र दृष्टि को संक्षेप में प्रस्तुत करता है:

"ऋतस्य शासने विश्वं प्रतिष्ठितम्। ऋतेन सूर्यस्तपति।"

"ऋत (ब्रह्मांडीय व्यवस्था) के आदेश से यह विश्व स्थित है; ऋत के द्वारा ही सूर्य तपता है।" **(ऋग्वेद 10.190.1)**

यह समग्र सिद्धांत यह दर्शाता है कि ब्रह्मांडीय सामंजस्य जीवन के सभी पहलुओं — ऋतुओं से लेकर मानव धर्म (कर्तव्यों) तक — को नियंत्रित करता है। इस प्रकार, खगोलशास्त्र को केवल आकाश को समझने का विज्ञान नहीं, बल्कि समाज और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने के लिए एक आवश्यक विज्ञान माना गया।

2.2 सांस्कृतिक मूल्य और व्यावहारिक प्रासंगिकता

भारत में खगोलशास्त्र विद्वानों या उच्च वर्गों तक सीमित नहीं था। किसान परंपरागत पंचांगों (**Panchangas**) से बोवाई और कटाई का समय निर्धारण करते थे। शिल्पकार वास्तु शास्त्र और शिल्प शास्त्र के अनुसार विशिष्ट नक्षत्रों के अनुरूप मंदिर संरचनाओं को संरेखित करते थे ताकि ब्रह्मांडीय ऊर्जा का लाभ उठाया जा सके। गृह प्रवेश

10. पौष (दिसंबर – जनवरी)

- **महत्व:** शिशिर ऋतु का चरम
- **मुख्य फसलें:** रबी फसलों की वृद्धि।
- **कृषि गतिविधियाँ:** सिंचाई, पाले से सुरक्षा।
- **सांस्कृतिक महत्व:** पौष पूर्णिमा – शीत जल स्नान से शुद्धि; बीज संग्रहण की योजना।

11. माघ (जनवरी – फरवरी)

- **महत्व:** शिशिर ऋतु का अंत
- **मुख्य फसलें:** रबी फसलों की परिपक्वता – सरसों, गेहूँ में फूल आना।
- **कृषि गतिविधियाँ:** सिंचाई, खाद डालना।
- **सांस्कृतिक महत्व:** मकर संक्रांति – सूर्य का उत्तरायण में प्रवेश; फसल वृद्धि हेतु महत्त्वपूर्ण; माघ मेला।

12. फाल्गुन (फरवरी – मार्च)

- **महत्व:** वसंत ऋतु का आरंभ
- **मुख्य फसलें:** गेहूँ, चना – कटाई के निकट।
- **कृषि गतिविधियाँ:** अंतिम खेत निरीक्षण, खरपतवार हटाना।
- **सांस्कृतिक महत्व:** होली – उर्वरता, नूतन आरंभ व समृद्ध फसल का उत्सव।

13.1 भारतीय महीने प्रणाली का कृषि महत्त्व

- **वर्षा पूर्वानुमान:** नक्षत्र व चंद्र स्थितियों के आधार पर वर्षा अनुमान (जैसे रोहिणी नक्षत्र से वर्षा भविष्यवाणी)।
- **बुवाई व कटाई अनुष्ठान:** त्यौहारों व तिथियों से जुड़े; विशिष्ट ग्रह स्थितियों पर बीज बोना (जैसे पुष्य नक्षत्र में बुवाई शुभ मानी जाती)।
- **कीट व रोग नियंत्रण:** टिड्डी व कीटों के निवारण हेतु विशेष मासों में अनुष्ठान (जैसे नाग पंचमी)।
- **पारिस्थितिकी संतुलन:** श्रावण जैसे पवित्र मासों में जल स्रोतों की पूजा, जल संरक्षण को प्रोत्साहन।

- **कृषि गतिविधियाँ:** निराई-गुड़ाई, कीट नियंत्रण, जल प्रबंधन।
- **सांस्कृतिक महत्व:** नाग पंचमी, रक्षाबंधन,शिवरात्रि, जल स्रोतों की पूजा।

6. **भाद्रपद (अगस्त – सितंबर)**
   - **महत्व:** शरद ऋतु का आरंभ
   - **मुख्य फसलें:** धान की वृद्धि, गन्ना, कपास।
   - **कृषि गतिविधियाँ:** खेतों का निरीक्षण, जल निकासी, रोग नियंत्रण।
   - **सांस्कृतिक महत्व:** गणेश चतुर्थी – समृद्धि और कृषि कार्यों में बाधाओं के निवारण का प्रतीक।
7. **आश्विन (सितंबर – अक्टूबर)**
   - **महत्व:** शरद ऋतु में फसल कटाई का प्रारंभ
   - **मुख्य फसलें:** कुछ क्षेत्रों में प्रारंभिक धान कटाई।
   - **कृषि गतिविधियाँ:** अल्पकालिक फसलों की कटाई; खेतों का सुखाना।
   - **सांस्कृतिक महत्व:** नवरात्रि, दशहरा – बुवाई की सफलता व मुख्य फसल की तैयारी का उत्सव।
8. **कार्तिक (अक्टूबर – नवंबर)**
   - **महत्व:** हेमंत ऋतु का प्रारंभ
   - **मुख्य फसलें:** धान, दलहन, सोयाबीन, मूंगफली कटाई।
   - **कृषि गतिविधियाँ:** मुख्य फसल की कटाई; मड़ाई व पछोड़ाई।
   - **सांस्कृतिक महत्व:** दीपावली – समृद्धि का पर्व, कटे हुए अनाज की खुशी से जुड़ा।
9. **मार्गशीर्ष (नवंबर – दिसंबर)**
   - **महत्व:** शीत ऋतु
   - **मुख्य फसलें:** रबी बुआई – गेहूँ, जौ, सरसों।
   - **कृषि गतिविधियाँ:** भूमि में खाद डालना, शीतकालीन फसलों की बुवाई।
   - **सांस्कृतिक महत्व:** अन्नकूट पूजा – देवताओं के प्रति आभार; तुलसी विवाह – कृषि व दिव्यता का संबंध।

1. **चैत्र (मार्च – अप्रैल)**
   - **महत्व:** हिन्दू कृषि वर्ष का प्रारंभ (वसंत ऋतु)
   - **मुख्य फसलें:** गेहूँ, जौ की कटाई (रबी फसलें)
   - **कृषि गतिविधियाँ:** कटाई, अनाज का भंडारण।
   - **सांस्कृतिक महत्व:** उगादी, गुड़ी पड़वा जैसे त्यौहार (भारत के कई हिस्सों में नववर्ष) नए जीवन और समृद्धि का प्रतीक।

2. **वैशाख (अप्रैल – मई)**
   - **महत्व:** ग्रीष्म ऋतु की ओर संक्रमण
   - **मुख्य फसलें:** ग्रीष्मकालीन सब्जियाँ, दलहन।
   - **कृषि गतिविधियाँ:** शुष्क भूमि की तैयारी; जुताई।
   - **सांस्कृतिक महत्व:** अक्षय तृतीया - बोवाई या निवेश आरंभ करने का शुभ समय; नदियों में स्नान अनुष्ठान जल संसाधनों के प्रति कृतज्ञता का प्रतीक।

3. **ज्येष्ठ (मई – जून)**
   - **महत्व:** ग्रीष्म ऋतु का चरम
   - **मुख्य फसलें:** लघु अनाज, कुछ क्षेत्रों में प्रारंभिक खरीफ फसलें।
   - **कृषि गतिविधियाँ:** मानसून पूर्व भूमि की जुताई, मेंड़ बनाना।
   - **सांस्कृतिक महत्व:** वर्षा के लिए प्रार्थनाएँ; वट सावित्री व्रत; जल संरक्षण अनुष्ठान।

4. **आषाढ़ (जून – जुलाई)**
   - **महत्व:** वर्षा ऋतु का आगमन
   - **मुख्य फसलें:** धान, मक्का, कपास, दलहन की बुआई।
   - **कृषि गतिविधियाँ:** पहली वर्षा के साथ प्रमुख बोवाई का समय।
   - **सांस्कृतिक महत्व:** देवशयनी एकादशी; कृषि देवताओं की पूजा।

5. **श्रावण (जुलाई – अगस्त)**
   - **महत्व:** पूर्ण वर्षा ऋतु
   - **मुख्य फसलें:** धान रोपाई, दलहन, मिलेट्स।

- **गतिशील प्रकृति:** पंचांग आकाशीय पिंडों की सापेक्ष गति का लेखा-जोखा रखता है, जो इसे उल्लेखनीय सटीकता के साथ दैनिक, मासिक और वार्षिक घटनाओं की भविष्यवाणी करने में सक्षम बनाता है।

4. व्यावहारिक उपयोग

- **त्यौहार की तिथियाँ:** दीवाली, होली और मकर संक्रांति जैसे त्योहार तिथि, नक्षत्र और सूर्य की स्थितियों के विशिष्ट संयोजनों के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं।
- **ज्योतिष:** पंचांग जन्म-कुंडली निर्माण और शुभ मुहूर्त चयन के लिए आधार प्रदान करता है।
- **कृषि चक्र:** किसान अनुकूल चंद्र और सूर्य चरणों के आधार पर बुवाई और कटाई की योजना बनाने के लिए पंचांग पर निर्भर करते हैं।

5. महत्व

पंचांग भारत में खगोल विज्ञान, गणित और सांस्कृतिक परंपराओं के एकीकरण का उदाहरण देता है। एक व्यावहारिक लेकिन गहन प्रतीकात्मक प्रणाली प्रदान करके, यह ब्रह्मांडीय गतिविधियों को मानवीय गतिविधियों से जोड़ता है, जिससे आधुनिक समय में इसकी प्रासंगिकता बनी रहती है।

13. भारतीय कृषि पंचांग: देसी महीने एवं उनका महत्व

भारतीय कृषि परंपरागत रूप से ग्रेगोरियन पंचांग पर आधारित नहीं रही है, बल्कि चंद्र-सौर भारतीय पंचांग पर आधारित रही है। वर्ष के बारह मास (मास) चन्द्र और सूर्य की गति से घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं और ये प्रत्यक्ष रूप से ऋतुओं के परिवर्तन, फसल चक्र और धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बद्ध हैं। ये माह केवल कृषि कार्यों के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि त्योहारों, वर्षा पूर्वानुमान और पारिस्थितिकी संतुलन के लिए भी अत्यंत आवश्यक हैं। भारतीय कृषि पंचांग प्रकृति के चक्रों, ब्रह्मांडीय लय और मानव कृषि क्रियाकलापों के मध्य एक अंतरंग, समय-परीक्षित सामंजस्य को प्रकट करता है। पश्चिमी ग्रेगोरियन प्रणाली से भिन्न, जो प्राकृतिक घटनाओं से कटि हुई है, भारत के माहिने की संरचना एक प्राचीन पारिस्थितिक सभ्यता की जीवंत साक्षी है जहाँ कृषि, ज्योतिष, संस्कृति और अध्यात्म अद्वितीय सामंजस्य में सह-अस्तित्व में रहे हैं।

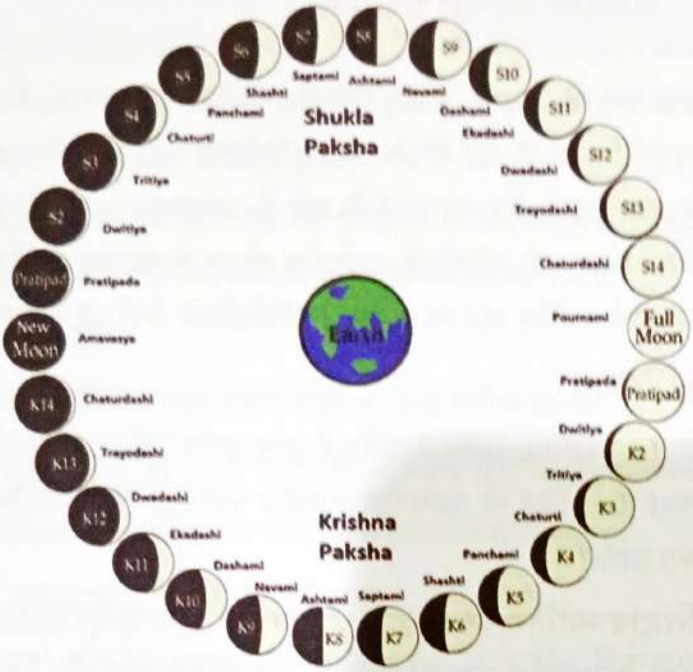

एक चंद्र मास जिसमें 30 तिथियाँ होती हैं।

वरा (सप्ताहांत)

सप्ताह का दिन, नग्न आंखों से दिखाई देने वाले सात खगोलीय पिंडों के नाम पर रखा गया है: सूर्य (रविवार), चंद्रमा (सोमवार), मंगल (मंगलवार), बुध (बुधवार), बृहस्पति (गुरुवार), शुक्र (शुक्रवार), और शनि (शनिवार)।

करण (अर्ध-तिथि): एक करण **अर्ध** तिथि (कोणीय पृथक्करण का 6°) का प्रतिनिधित्व करता है। "कुल 11 विशिष्ट करण होते हैं, जिनमें से 7 आवर्ती (नियमित) होते हैं और 4 केवल एक चंद्र मास में एक बार (अनावर्ती) घटित होते हैं।"

योग (खगोलीय संयोग): सूर्य और चंद्रमा के देशांतरों के योग के रूप में गणना की गई, जिसे 27 खंडों में विभाजित किया गया है **13°20′** प्रत्येक।

प्रत्येक योग विशिष्ट शुभ या अशुभ प्रभावों से जुड़ा होता है।

3. पंचांग गणनाओं का खगोलीय आधार

- **सूर्य और चंद्रमा के वास्तविक देशांतर**: पंचांग की गणनाएँ सूर्य और चंद्रमा की खगोलीय गोला पर उनकी सटीक खगोलीय स्थितियों और वास्तविक देशांतर पर आधारित होती हैं।"

12. पंचांग - भारतीय कैलेंडर प्रणाली

पंचांग (शाब्दिक रूप से, "पांच अंग") भारतीय कैलेंडर और ज्योतिषीय परंपराओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो दैनिक जीवन, त्योहारों और स्थानीय घटनाओं को प्रभावित करने वाली खगोलीय घटनाओं के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान करता है। यह पारंपरिक पंचांग, जो सदियों के खगोलीय शोधन के माध्यम से विकसित हुआ है, भारतीय समाज में धार्मिक और व्यावहारिक गतिविधियों दोनों का केंद्र बना हुआ है।

1. ऐतिहासिक विकास

1. **वेदांग ज्योतिष:** वेदांग ज्योतिष में पांच वर्षीय चक्रीय अवधियों को 'युग' कहा गया, जिन पर आधारित भारतीय पंचांगका सबसे प्रारंभिक संरचित रूप वर्णित है।
2. **सिद्धांत ज्योतिष:** सिद्धांत काल के आगमन के साथ, सूर्यसिद्धांत और अन्य ग्रंथों ने वैज्ञानिक, प्रणालीबद्ध गणनाओं की शुरुआत की, जिससे अधिक परिष्कृत और सटीक कैलेंडरिक प्रणालियाँ विकसित हुईं।
3. **आधुनिक क्षेत्रीय पंचांग:** समय के साथ, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप क्षेत्रीय अनुकूलन उभरे, जिनमें अक्सर गणेश दैवज्ञ के 'ग्रहलघव' और चंद्रशेखर समन्त के 'सिद्धांतदर्पण' जैसे ग्रंथों को शामिल किया गया।

2. पंचांग के घटक

पंचांग अपना नाम उसके द्वारा गणना किए जाने वाले पाँच मुख्य घटकों से प्राप्त करता है:

तिथि (चंद्र दिवस): सूर्य और चंद्रमा के बीच का कोणीय पृथक्करण, 30 बराबर भागों में विभाजित है, जिनमें से प्रत्येक एक तिथि का प्रतिनिधित्व करता है। एक चंद्र माह में 30 तिथियाँ होती हैं, जो चंद्रमा के बढ़ते (शुक्ल पक्ष) और घटते (कृष्ण पक्ष) चरणों का समावेश करती हैं।

नक्षत्र (तारामंडल)

- चंद्रमा की स्थिति 27 नक्षत्रों में से किसी एक के सापेक्ष, जो कि पृथ्वी के समानांतर कक्ष में स्थित होते हैं, के अनुसार होती है।
- प्रत्येक नक्षत्र आकाशीय गोलार्ध के $13°20'$ क्षेत्रफल में विस्तारित होता है।

- पूर्ववर्ती ग्रंथों के विपरीत, जो उप-युगों के लिए 4:3:2:1 अनुपात में समय की अवधि निर्धारित करते थे, आर्यभट ने सभी उप-युगों के लिए समान समय अवधि प्रस्तावित की, प्रत्येक की अवधि 1,080,000 वर्ष थी, जिससे एक महा-युग 4,320,000 वर्ष का बनता है।

आर्यभट्ट ने धारा के प्रारम्भ की गणना की कलियुग 18 फरवरी, 3102 ईसा पूर्व (जूलियन पंचांग), जो भारतीय परंपराओं के साथ निकटता से मेल खाता है।

3. खगोलीय गणना

आर्यभट्ट का खगोलीय मॉडल गणना करने के लिए सटीक तरीकों का वर्णन किया गया:

- सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की स्थिति गणितीय सूत्रों का उपयोग करना।
- उनका आकाशीय क्षेत्र में पथ और ग्रहण जैसी घटनाएं।
- एक महायुग में **ग्रहों की परिक्रमा**।

आर्यभट्ट द्वारा गणना के अनुसार, एक महा-युग में आकाशीय पिंडों द्वारा पूरी की गई क्रांतियों की संख्या आधुनिक मूल्यों से काफी मेल खाती है।

आकाशीय पिंड	परिक्रमा (आर्यभट्ट)
सूरज	4,320,000
चंद्रमा	57,753,336
बुध	17,937,000
शुक्र	7,022,376
मंगल	2,296,828
बृहस्पति	364,220
शनि	146,564

4. आर्यभट्ट के कार्य का महत्व

आर्यभट्ट के सिद्धांत, जैसे पृथ्वी का घूर्णन और ग्रहों की गति की उनकी प्रणालीबद्ध गणनाएँ, भारतीय खगोलशास्त्र की सिद्धांतिक परंपरा की नींव बनीं। उनकी सूझबूझ 5वीं सदी ईस्वी के लिए अत्यंत उन्नत थी और उन्होंने सदियों तक खगोलशास्त्र अध्ययन को प्रभावित किया।

1. पृथ्वी का घूर्णन

आर्यभट ने स्थिर पृथ्वी के प्रचलित विश्वास को चुनौती देते हुए यह प्रस्तावित किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूर्णन करती है।

आर्यभटीय का श्लोक: जिस प्रकार चलती नाव में एक व्यक्ति किनारे पर स्थिर वस्तुओं को पीछे की ओर बढ़ता हुआ देखता है, उसी प्रकार घूमती हुई पृथ्वी पर एक पर्यवेक्षक को स्थिर तारे पश्चिम की ओर बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं।

इस अवलोकन से पता चला कि आकाशीय पिंडों की दैनिक गति, पूर्व में उदय और पश्चिम में अस्त होना, पृथ्वी के घूर्णन के कारण थी, न कि तारों की गति के कारण।

2. आर्यभट का युगों का सिद्धांत

आर्यभट ने अपने महा-युग (महाकल) गणनाओं के माध्यम से भारतीय समय माप प्रणाली को भी परिष्कृत किया:

- एक महा-युग में 4 उप-युग होते हैं: कृत, त्रेता, द्वापर और कली ।

		DIVINE YEARS		HUMAN YEARS
Krita	Yuga	4000		1,440,000
	Sandhyá	400		144,000
	Sandyásana	400		144,000
	subtotal		4800	1,728,000
Treta	Yuga	3000		1,080,000
	Sandhyá	300		108,000
	Sandyásana	300		108,000
	subtotal		3600	1,296,000
Dwapara	Yuga	2000		720,000
	Sandhyá	200		72,000
	Sandyásana	200		72,000
	subtotal		2400	864,000
Kali	Yuga	1000		360,000
	Sandhyá	100		36,000
	Sandyásana	100		36,000
	subtotal		1200	432,000
	total		12,000	4,320,000

आर्यभट का युगों का सिद्धांत

- **कालक्रियापाद:** समय और ग्रहों की गति की गणना के तरीकों की व्याख्या करता है।
- **गोलापाड़ा:** आकाशीय क्षेत्र और ग्रहणों का वर्णन करता है।

गणितीय उपकरण

आर्यभट ने **ज्यार्ध** (अर्धज्या) की अवधारणा प्रस्तुत की, जो आधुनिक साइन फलन का पूर्वगामी है। इस नवाचार ने यूनानी ज्या विधि की तुलना में खगोलीय गणनाओं की सटीकता और सरलता को उल्लेखनीय रूप से सुधार दिया।

ग्रंथ में साइन का एक स्पष्ट तालिका और साइन मानों की गणना के लिए एक पुनरावृत्ति सूत्र शामिल है, जो त्रिकोणमितीय गणना की उन्नत समझ को प्रदर्शित करता है।

अनुप्रयोग:

आर्यभट ने निम्नलिखित प्रक्रियाएँ प्रदान कीं:

- सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की स्थितियों की गणना करना।
- दैनिक खगोलीय पथों और घटनाओं, जैसे ग्रहणों, का निर्धारण करना।
- खगोलीय समस्याओं को हल करने के लिए त्रिकोणमिति का उपयोग मुख्य गणितीय उपकरण के रूप में करना।

आर्यभट का ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण

आर्यभटीय में, आर्यभट ने अपने समय के लिए एक क्रांतिकारी ब्रह्मांडीय ढाँचा प्रस्तुत किया। उन्होंने पृथ्वी को एक गोला के रूप में वर्णित किया, जो आकाशीय ढाँचे के केंद्र में स्थित है। यह दृष्टिकोण, जबकि कुछ पूर्व भारतीय दार्शनिकताओं के अनुरूप था, पारंपरिक पृथ्वी-केंद्रित दृष्टिकोण से एक विचलन था, जिसमें आकाशीय पिंडों को स्थिर पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करते हुए माना जाता था।

11.3 आर्यभट का पृथ्वी का वर्णन

- पृथ्वी को गोलाकार बताया गया है, जो पारंपरिक तत्त्वों—जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु—से बनी है।
- आर्यभट ने इसके ग्रह मंडल में केंद्रीय स्थान की व्याख्या की है, जिसमें तारे और ग्रह परिधीय कक्षाओं में स्थित हैं।

- ग्रहों की स्थिति
  - ग्रहण
  - सूर्योदय और सूर्यास्त का समय
  - दिन की अवधि
  - सूर्य की छाया और दिन के समय के बीच का संबंध।

इस परंपरा ने भारत में आधुनिक गणितीय खगोल विज्ञान की नींव रखी।

11.1 सिद्धांतिक परंपरा की धरोहर

आर्यभट द्वारा नेतृत्व की गई सिद्धांतिक परंपरा ने भारत में 1200 वर्षों से अधिक खगोलीय अनुसंधान और सुधार के लिए मार्ग प्रशस्त किया। **आर्यभटीय** और अन्य सिद्धांतिक ग्रंथों पर टिप्पणियाँ ने रेखागणितीय तकनीकों, व्युत्पत्तियों और व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर विस्तार से चर्चा की। यह परंपरा न केवल भारतीय खगोलशास्त्र पर प्रभाव डालती थी, बल्कि वैश्विक गणितीय और खगोलीय विकास के साथ भी गूंजती थी। आर्यभट के नवाचार और संगठित विधियाँ विज्ञान के इतिहास में अग्रणी मील के पत्थर मानी जाती हैं, जो प्राचीन ज्ञान और आधुनिक गणितीय खगोलशास्त्र के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं।

11.2 आर्यभट: एक अग्रणी व्यक्तित्व

आर्यभट (476 ईस्वी) का कार्य सिद्धांतिक परंपरा में एक आधारभूत क्षण का प्रतिनिधित्व करता है। उनका ग्रंथ, **आर्यभटीय**, भारत में गणितीय खगोलशास्त्र पर उपलब्ध सबसे प्राचीन ग्रंथ है। यद्यपि पहले के सिद्धांत भी मौजूद थे, आर्यभट के योगदान अपनी नवाचारिता और संगठित दृष्टिकोण के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आर्यभटीय की प्रमुख विशेषताएँ

- **पाठ की संरचना:** आर्यभटीय 121 श्लोकों में विभाजित है, जो चार भागों में संगठित हैं:
- **गितिकापद:** समय इकाइयों और ब्रह्माण्ड संबंधी अवधारणाओं पर चर्चा करता है।
- **गणितपाद:** गणितीय तकनीकों पर ध्यान केंद्रित करता है।

- **यजुर्वेदीय समायोजन:** यजुर्वेद में 12 चंद्र मासों (वत्सर) का उल्लेख है, जिनकी कुल अवधि 354 दिन होती है, और शेष दिनों को सौर वर्ष के साथ सामंजस्य करने के लिए एकादशरात्र यज्ञ का सुझाव दिया गया है। इस ग्रंथ में हर पाँच वर्ष में एक अधिमास जोड़कर दोनों पंचांगों को समायोजित करने की भी चर्चा की गई है।

10.3 विसंगतियाँ और अंतर्वर्ती (Adhika Masa) समायोजन

चंद्र वर्ष (354 दिन) को सौर वर्ष (365.24 दिन) के साथ संतुलित करने के लिए लगभग प्रत्येक 32.5 महीनों के बाद एक अतिरिक्त माह — अधिकमास — जोड़ा जाता है।

(स्रोत: वेदांग ज्योतिष; Pingree, 1981) यह सुनिश्चित करता है कि ऋतु उत्सव सौर ऋतुओं के अनुरूप बने रहें। (स्रोत: Subbarayappa, 2008) सूर्य सिद्धांत इस समायोजन को गणितीय रूप से निर्दिष्ट करता है, (स्रोत: सूर्य सिद्धांत 1.66; Burgess, 1860) जो प्राचीन भारत की खगोलीय चक्रों की गहरी समझ को दर्शाता है। सौर वर्ष की अवधि 365.2564 दिनों की होती है, जबकि 12 चांद्र मास कुल 354.3671 दिनों के बराबर होते हैं, जिससे प्रति वर्ष लगभग 10.89 दिनों का अंतर रह जाता है। इस समन्वय को बनाए रखने के लिए भारतीय खगोलशास्त्रियों ने अधिमास की अवधारणा प्रस्तुत की:

यजुर्वेद (4.4.11) में उल्लेख किया गया है कि इस असमानता को दूर करने के लिए हर पाँच वर्षों में दो अधिमास जोड़े जाते थे।

- यह समायोजन सुनिश्चित करता है कि पाँच वर्षीय चक्र के बाद सूर्य और चंद्रमा तारा संरचना में लगभग उसी स्थिति में लौट आते हैं।

भारतीय पंचांग प्रणालियाँ उन्नत खगोलीय समझ को प्रतिबिंबित करती हैं, जो सौर और चंद्र चक्रों को सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं के साथ एकीकृत करती हैं। अधिमास जोड़ने की प्रथा समय के असमानताओं और समन्वय की आवश्यकता के प्रति गहरी जागरूकता को दर्शाती है, जो आज भी भारतीय पंचांगों की आधारशिला बनी हुई है।

11. आर्यभटीय और सिद्धांतिक परंपरा

भारतीय खगोलशास्त्र में सिद्धांतिक परंपरा ने प्रारंभिक वेदांग ज्योतिष से एक महत्वपूर्ण विकास को चिह्नित किया। इस उत्तरकालीन युग में विभिन्न खगोलीय समस्याओं को हल करने के लिए अत्यधिक परिष्कृत और व्यवस्थित विधियाँ प्रस्तुत की गईं, जिनमें निम्नलिखित गणनाएँ शामिल थीं:

10. भारतीय पंचांग प्रणाली के तत्व

पंचांग समय की गणना के लिए दिनों, महीनों और वर्षों जैसे क्रमिक चक्रीय अवधियों में संरचित विधि है। भारतीय खगोलशास्त्र ने सूर्य और चंद्रमा के अवलोकनों का उपयोग करते हुए पंचांग प्रणालियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन प्रणालियों की नींव प्राचीन वैदिक ग्रंथों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जबकि बाद के गणितज्ञों ने पंचांग की खगोलीय गणनाओं के तरीकों को औपचारिक रूप दिया।

10.1 एक वर्ष की धारणा

1. **सौर वर्ष:** एक सौर वर्ष को पृथ्वी द्वारा सूर्य के चारों ओर एक चक्कर पूरा करने में लगने वाले समय के रूप में परिभाषित किया गया है, जिससे सूर्य उसी तारे पर लौटता हुआ प्रतीत होता है। सौर पंचांग इस चक्र पर आधारित होते हैं और वर्ष के तिथियों के निर्धारण के लिए **त्रिपुरा, असम, बंगाल, ओडिशा, तमिलनाडु, केरल, पंजाब और हरियाणा** जैसे क्षेत्रों में प्रचलित हैं।
2. **चंद्र वर्ष:** एक चंद्र वर्ष में 12 चंद्र मास होते हैं, जिनमें से प्रत्येक की अवधि दो क्रमिक अमावस्याओं या पूर्णिमाओं के बीच की होती है। यह पंचांग, जो सौर वर्ष से छोटा होता है, मुख्य रूप से भारत में सामाजिक और धार्मिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है।
3. **चंद्र-सौर पंचांग:** भारतीय परंपरा मुख्य रूप से **चंद्र**-सौर पंचांग का अनुसरण करती है, जहाँ **चंद्र** मासों को सौर मासों के साथ समन्वित किया जाता है ताकि ऋतुओं के साथ सामंजस्य बना रहे। यह समायोजन **चंद्र** और सौर वर्षों के बीच के अंतर को पाटने के लिए समय-समय पर अधिमास (अतिरिक्त मास) जोड़कर किया जाता है।

10.2 चंद्र और सौर वर्ष का समन्वयन

- **वैदिक वर्ष:** प्राचीन भारतीय पंचांग, जिसका उल्लेख ऋग्वेद (1.164.11) में किया गया है, 12 महीनों के 30 दिनों (कुल 360 दिन) वाले वर्ष का वर्णन करता है, जिसे ऋतुओं के साथ समन्वयित करने के लिए 5 दिन जोड़कर समायोजित किया जाता था। बाद में, अधिक सटीकता के लिए 5.25 दिन जोड़े गए।
    - **ऋग्वेद मंत्र:** "बारह आरीयों (प्रहरों) वाला यह कालचक्र आकाश में बिना थके घूमता रहता है। हे अग्नि, इसमें 720 पुत्र (दिन और रात) स्थित हैं।"

नौवां नक्षत्र, **आश्लेषा**, नागों से जुड़ा है और बुध द्वारा शासित है, अंतर्ज्ञान, चालाक और परिवर्तन को दर्शाता है। पितरों (पूर्वजों) द्वारा शासित **मघा**, अधिकार, परंपरा और विरासत के प्रति सम्मान का प्रतिनिधित्व करता है। **पूर्वाफाल्गुनी** और **उत्तराफाल्गुनी**, जो क्रमशः शुक्र और सूर्य द्वारा शासित हैं, प्रेम, रचनात्मकता और स्थिरता का प्रतीक हैं, जो अक्सर वैवाहिक और पारिवारिक सद्भाव से जुड़े होते हैं।

हस्त, खुले हाथ का प्रतीक और चंद्रमा द्वारा शासित, निपुणता, कौशल और अभिव्यक्ति का प्रतीक है। दिव्य वास्तुकार त्वष्टा द्वारा शासित **चित्र**, सुंदरता, शिल्प कौशल और स्पष्टता का प्रतीक है। **स्वाति**, वायु द्वारा शासित, स्वतंत्रता, लचीलेपन और आध्यात्मिक प्रगति का प्रतिनिधित्व करती है। इंद्र और अग्नि से जुड़ी **विशाखा**, दृढ़ संकल्प, सफलता और उपलब्धि का प्रतीक है।

अनुराधा, मित्रा (मित्रता के देवता) द्वारा शासित, सहयोग, भक्ति और सद्भाव का प्रतीक है। इंद्र द्वारा शासित **ज्येष्ठा**, नेतृत्व, शक्ति और सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करती है। उन्नीसवां नक्षत्र, **मूल**, जिस पर निरति (विघटन की देवी) का शासन है, जड़ों, नींव और परिवर्तनकारी प्रक्रियाओं का प्रतीक है। पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा, क्रमशः अपाह (जल) और विश्वदेव द्वारा शासित, विजय, विकास और दृढ़ता का प्रतीक हैं।

विष्णु से जुड़ा **श्रवण**, सुनने, सीखने और ज्ञान फैलाने का प्रतिनिधित्व करता है। **धनिष्ठा**, जो एक ड्रम का प्रतीक है और वसुओं द्वारा शासित है, लय, धन और सामाजिक योगदान का प्रतिनिधित्व करता है। वरुण (ब्रह्मांडीय जल के देवता) द्वारा शासित **शतभिषा** , उपचार, रहस्य और अन्वेषण का प्रतीक है।

अंतिम जोड़ी, **पूर्वाभाद्रपद** और **उत्तराभाद्रपद**, क्रमशः अजा एकपाद और अहिर्बुध्न्य द्वारा शासित, संक्रमण, आत्मनिरीक्षण और आध्यात्मिक जागृति का प्रतीक है। अंत में, यात्रियों के रक्षक पूषन से जुड़ी **रेवती**, समृद्धि, सुरक्षा और मार्गदर्शन का प्रतीक है। साथ में, ये नक्षत्र एक व्यापक प्रणाली बनाते हैं जो मानव जीवन के साथ लौकिक प्रभावों को एकीकृत करता है, भारतीय खगोल विज्ञान और ज्योतिष के अनुसार व्यक्तियों को उनकी आध्यात्मिक, भावनात्मक और भौतिक गतिविधियों में मार्गदर्शन करता है।

ये नक्षत्र प्राचीन ग्रंथों जैसे तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में व्यापक रूप से वर्णित हैं। ये न केवल खगोलीय मानचित्रण में सहायक हैं, बल्कि भारतीय पंचांग और ज्योतिषीय प्रणाली का अभिन्न अंग भी हैं, जहाँ खगोलशास्त्र को सांस्कृतिक परंपराओं के साथ जोड़ा गया है।

प्रत्येक नक्षत्र आकाशीय क्रांतिवृत्त के एक विशिष्ट खंड का प्रतिनिधित्व करता है, जो 13 डिग्री और 20 मिनट को कवर करता है, और अद्वितीय विशेषताओं, देवताओं और प्रतीकात्मक अर्थों से जुड़ा हुआ है। नीचे इन नक्षत्रों का अवलोकन दिया गया है:

पहला नक्षत्र, **अश्विनी**, घोड़े के सिर का प्रतीक है और अश्विनी कुमारों द्वारा शासित होता है, जो दिव्य चिकित्सक हैं, जो तेजी और कायाकल्प का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके बाद **भरणी** है, जो मृत्यु के देवता यम से जुड़ी है, जो अनुशासन, संयम और परिवर्तन का प्रतीक है। अग्नि से जुड़ा तीसरा नक्षत्र, **कृत्तिका**, ऊर्जा, साहस और शुद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। ब्रह्मा द्वारा शासित **रोहिणी** उर्वरता, सुंदरता और सृजन का प्रतीक है, जो इसे नई शुरुआत के लिए एक शुभ नक्षत्र बनाता है।

मृगशिरा, जो हिरण के सिर का प्रतीक है और सोम (अमृत) से जुड़ा है, जिज्ञासा और सत्य की खोज का प्रतिनिधित्व करता है। छठा नक्षत्र, **आर्द्रा**, जो रुद्र (शिव का एक रूप) द्वारा शासित है, परिवर्तन और तीव्र भावनाओं का प्रतीक है। **पुनर्वसु**, देवताओं की माता अदिति से जुड़ा है, जो नवीकरण, पोषण और समृद्धि का प्रतीक है। **पुष्य**, गाय के थन द्वारा दर्शाया गया और बृहस्पति द्वारा शासित, पोषण, विकास और ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है।

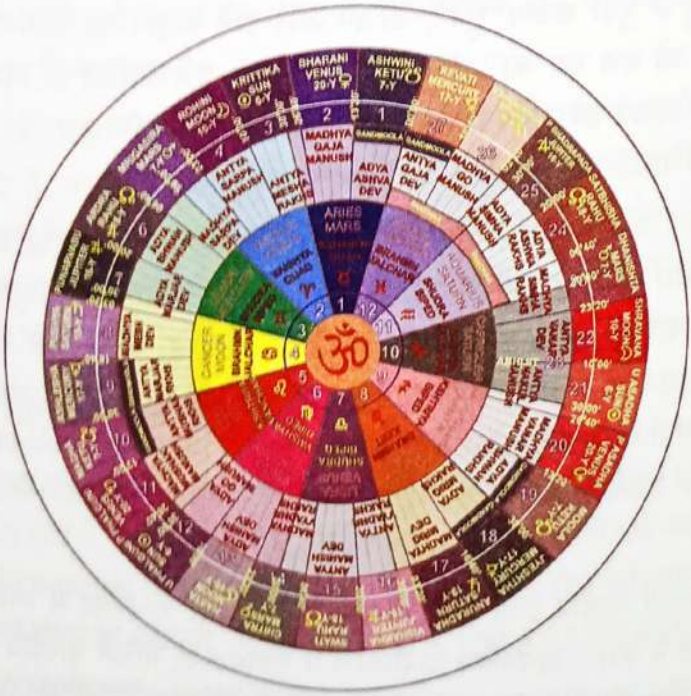

भारतीय खगोलशास्त्र में राशि और नक्षत्र

9.1 राशि चक्र

बारह राशियाँ क्रांतिवृत्त के विशिष्ट खंडों से संबंधित होती हैं और उनके नाम इस प्रकार हैं:

1.	मेष
2.	वृषभ
3.	मिथुन
4.	कैंसर
5.	सिंह
6.	कन्या
7.	तुला
8.	वृश्चिक
9.	धनु
10.	मकर
11.	कुंभ
12.	मीन



क्रांतिवृत्त का यह बारह-खंडीय विभाजन प्राचीन वेदांग ज्योतिष तक पुराना है।

9.2 नक्षत्र प्रणाली

चंद्रमा, जो पृथ्वी के चारों ओर क्रांतिवृत्त से थोड़े झुके हुए तल में परिक्रमा करता है, लगभग 27.32 दिनों में एक नक्षत्र चक्र (तारों के सापेक्ष एक परिक्रमण) पूरा करता है। चंद्रमा की गति को मापने के लिए भारतीय प्रणाली में ग्रहणपथ को 27 समान भागों में विभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक का माप 13° 20′ या 800 आर्क मिनट है। इन विभाजनों को नक्षत्र कहा जाता है, और इनका नामकरण प्रत्येक खंड में स्थित प्रमुख या परंपरागत रूप से महत्वपूर्ण तारों के आधार पर किया गया है।

प्रत्येक नक्षत्र चंद्रमा की ग्रहणपथ पर एक दिन की यात्रा का प्रतिनिधित्व करता है और इन्हें व्यापक रूप से 12 राशियों पर व्यवस्थित किया गया है। चूँकि 27 नक्षत्र और 12 राशियाँ हैं, प्रत्येक राशि लगभग 2 और 1/4 नक्षत्रों के बराबर होती है।

27 नक्षत्र, या चंद्र नक्षत्र, भारतीय खगोल विज्ञान और ज्योतिष में मूलभूत तत्व हैं, जो पारंपरिक कैलेंडर और विभिन्न ज्योतिषीय व्याख्याओं का आधार बनते हैं।

प्रणाली दो महत्वपूर्ण तत्वों का उपयोग करके आकाशीय स्थिति को मापती है:

- **दिगंश (Azimuth)**: क्षैतिज तल पर किसी खगोलीय वस्तु के प्रक्षेपण और संदर्भ दिशा (आमतौर पर उत्तर) के बीच का कोण।
- **ऊंचाई (Altitude)**: क्षितिज के ऊपर या नीचे किसी खगोलीय पिंड की कोणीय दूरी।

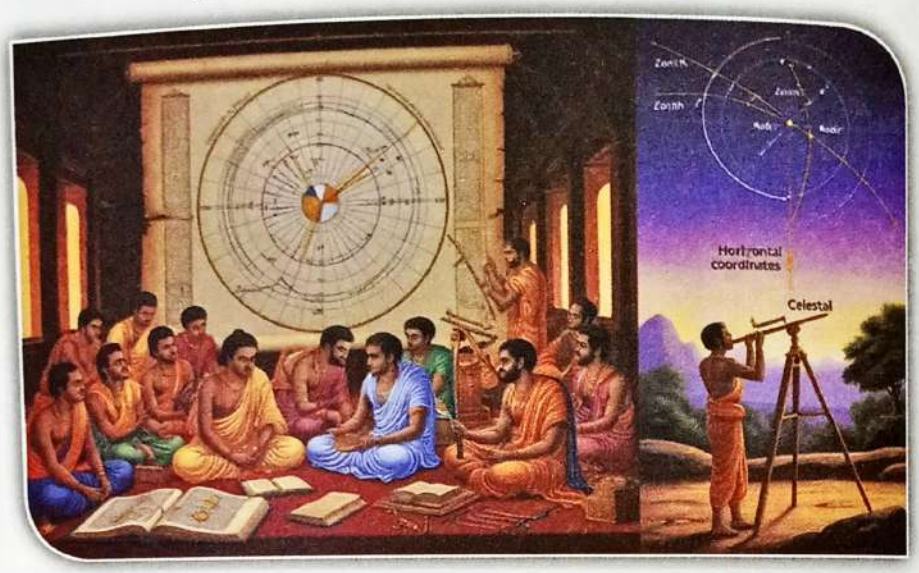

क्रांतिवृत्त और क्षैतिज निर्देशांक प्रणाली का एक उदाहरणात्मक प्रतिनिधित्व

यह चित्र दर्शाता है कि यह प्रणाली कैसे संचालित होती है, जिससे पर्यवेक्षकों को समय के साथ सितारों और ग्रहों जैसे खगोलीय पिंडों पर नज़र रखने में मदद मिलती है। इन प्रणालियों ने मिलकर प्राचीन भारत में सटीक अवलोकन संबंधी खगोल विज्ञान के लिए एक मजबूत ढांचा तैयार किया।)

9. भारतीय खगोल विज्ञान में राशि चक्र और नक्षत्र

क्रांतिवृत्त, जो सूर्य की तारों की पृष्ठभूमि के खिलाफ स्पष्ट मार्ग होता है, राशिचक्र (राशि मण्डल) का आधार बनता है। क्रांतिवृत्त के दोनों ओर 8° तक फैली यह बेल्ट चंद्रमा और अधिकांश ग्रहों का घर है। चंद्रमा जैसे आकाशीय पिंडों और तारों के सापेक्ष ग्रहों की गतिविधियों का पता लगाने के लिए राशि चक्र को 12 समान खंडों में विभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक 30° तक फैला हुआ है। इन 12 खंडों को कहा जाता है *राशियाँ* (राशि चिन्ह)।

प्रणाली दो महत्वपूर्ण तत्वों का उपयोग करके आकाशीय स्थिति को मापती है:

- **दिगंश (Azimuth)**: क्षैतिज तल पर किसी खगोलीय वस्तु के प्रक्षेपण और संदर्भ दिशा (आमतौर पर उत्तर) के बीच का कोण।
- **ऊंचाई (Altitude)**: क्षितिज के ऊपर या नीचे किसी खगोलीय पिंड की कोणीय दूरी।

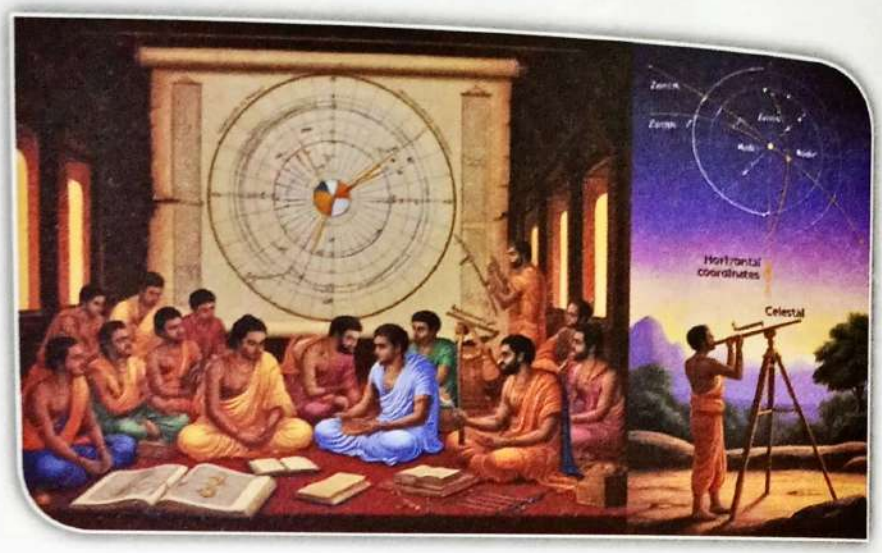

क्रांतिवृत्त और क्षैतिज निर्देशांक प्रणाली का एक उदाहरणात्मक प्रतिनिधित्व

यह चित्र दर्शाता है कि यह प्रणाली कैसे संचालित होती है, जिससे पर्यवेक्षकों को समय के साथ सितारों और ग्रहों जैसे खगोलीय पिंडों पर नज़र रखने में मदद मिलती है। इन प्रणालियों ने मिलकर प्राचीन भारत में सटीक अवलोकन संबंधी खगोल विज्ञान के लिए एक मजबूत ढांचा तैयार किया।)

9. भारतीय खगोल विज्ञान में राशि चक्र और नक्षत्र

क्रांतिवृत्त, जो सूर्य की तारों की पृष्ठभूमि के खिलाफ स्पष्ट मार्ग होता है, राशिचक्र (राशि मण्डल) का आधार बनता है। क्रांतिवृत्त के दोनों ओर 8° तक फैली यह बेल्ट चंद्रमा और अधिकांश ग्रहों का घर है। चंद्रमा जैसे आकाशीय पिंडों और तारों के सापेक्ष ग्रहों की गतिविधियों का पता लगाने के लिए राशि चक्र को 12 समान खंडों में विभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक 30° तक फैला हुआ है। इन 12 खंडों को कहा जाता है *राशियाँ* (राशि चिन्ह)।

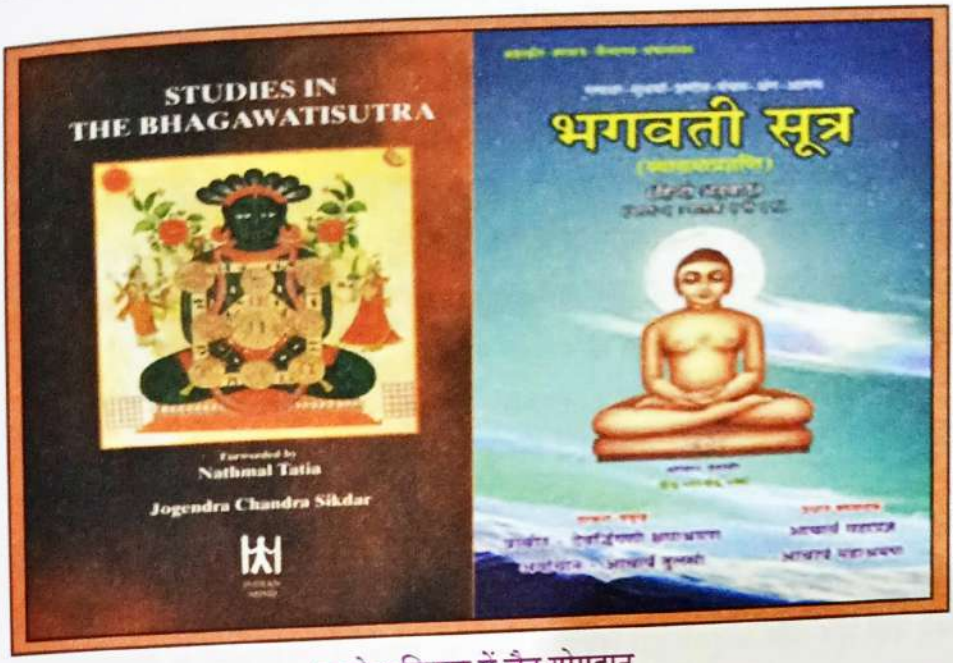

खगोल विज्ञान में जैन योगदान

भारतीय खगोलशास्त्र 5वीं शताब्दी ईस्वी के आसपास सिद्धांत ग्रंथों के उदय के साथ महत्वपूर्ण रूप से उन्नत हुआ। इन कार्यों ने अधिक परिष्कृत गणितीय दृष्टिकोण पेश किए, गणनाओं में ग्रहों की गतिविधियों को शामिल किया, और आकाशीय यांत्रिकी को समझने के लिए परिष्कृत समन्वय प्रणाली स्थापित की।

8. इक्लिप्टिक एवं क्षैतिज समन्वय प्रणाली (Ecliptic and Horizontal Coordinate System)

पृथ्वी से देखे गए सूर्य के स्पष्ट पथ का प्रतिनिधित्व करने वाली एक काल्पनिक रेखा, इक्लिप्टिक कहलाई गयी। पृथ्वी के झुकाव के कारण, सूर्य का पथ पृथ्वी के घूर्णन अक्ष के सापेक्ष झुका हुआ प्रतीत होता है। यह क्रांतिवृत्त तल क्रांतिवृत्त समन्वय प्रणाली की नींव बनाता है, जो सटीक खगोलीय गणना के लिए एक संदर्भ के रूप में कार्य करता है।

एक और महत्वपूर्ण प्रगति क्षैतिज समन्वय प्रणाली थी, जो पर्यवेक्षक के दृष्टिकोण से खगोलीय स्थितियों का वर्णन करती है। यह प्रणाली जेनिथ (दर्शक के ठीक ऊपर का बिंदु) और नादिर (जेनिथ के ठीक विपरीत, दर्शक के नीचे का बिंदु) का उपयोग करती है। यह पर्यवेक्षकों को एक निश्चित समय में आकाश में उनकी सापेक्ष स्थिति के आधार पर खगोलीय पिंडों का पता लगाने में सक्षम बनाता है।

इस प्रकार, प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र केवल आकाश निरीक्षण नहीं था, यह एक **पवित्र विज्ञान** था—जिसमें गणित, दर्शन और स्थापत्य का अद्वितीय समन्वय था। मंदिर केवल पूजा स्थल नहीं थे, बल्कि **जीवंत वेधशालाएँ, समय के संरक्षक,** और **ब्रह्माण्ड की सजीव प्रतिकृति** थे। ब्रह्मा–विष्णु–महेश की त्रिमूर्ति केवल धार्मिक अवधारणाएँ नहीं, बल्कि **आधुनिक भौतिकी के वैज्ञानिक रूपक** हैं। उनके माध्यम से, समय केवल गिना नहीं जाता था—उसे **अनुभव किया जाता था, संरक्षित किया जाता था,** और **पूजनीय माना जाता था।**

7. खगोल विज्ञान में जैन एवं सिद्धान्त के योगदान

जैन साहित्य ने गणित और खगोल विज्ञान में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विहित ग्रंथ जैसे स्थानांग और भगवती सूत्र जैसे काम करता है, खगोलीय अवधारणाओं को शामिल करें नंदी सूत्र और अनुयोगद्वार सूत्र एक भिक्षु की शिक्षा में इन विज्ञानों के महत्व पर जोर दें। उमास्वती का तत्त्वार्थधिगम सूत्र (185-219 ईस्वी) खगोलशास्त्र और ब्रह्मांडशास्त्र पर चर्चाएँ प्रस्तुत करता है, और बाद में जैन ग्रंथों जैसे फेरु के ज्योतिस्सार (14वीं शताब्दी ईस्वी) ने इस क्षेत्र को और समृद्ध किया। ये प्रगति प्राचीन भारतीय विचारों में खगोल विज्ञान, गणित और दर्शन के अंतर्संबंध को उजागर करती है, जिससे ब्रह्मांड को समझने के लिए एक समग्र और व्यवस्थित दृष्टिकोण को बढ़ावा मिलता है।

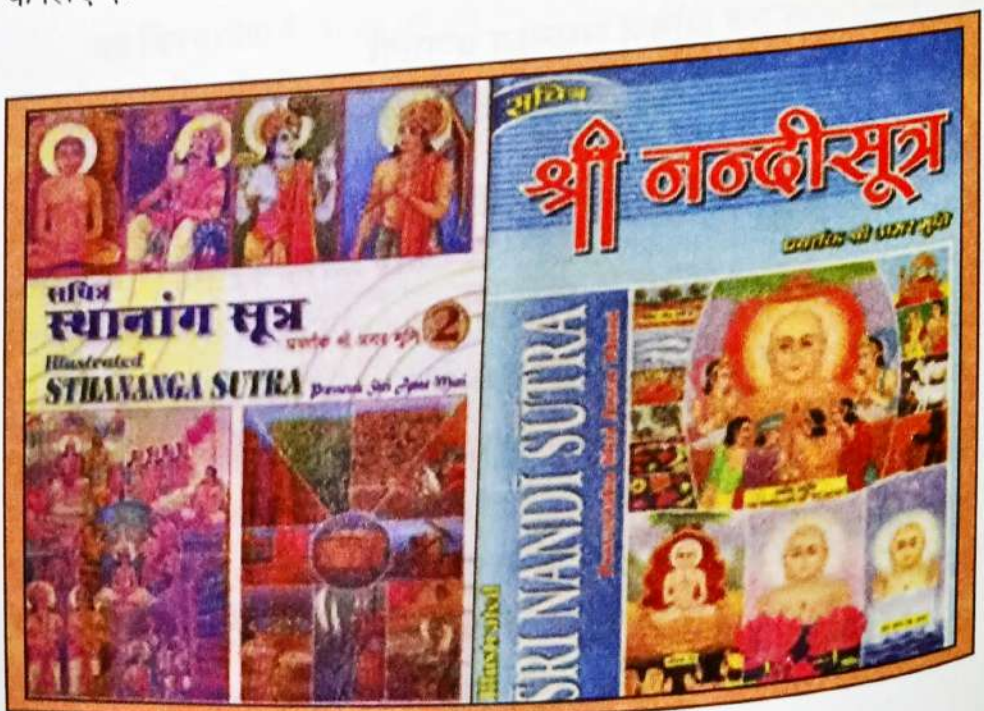

तालिका: प्राचीन भारतीय ग्रंथों में समय चक्र

समय इकाई	मानव वर्षों में अवधि	सांस्कृतिक संदर्भ	शास्त्रीय संदर्भ
1 महायुग	4,320,000 years	चार युगों का एक पूर्ण चक्र: सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, संपूर्ण समय की अवधारणा।	मनुस्मृति 1.69–70, लगधमुनि ज्योतिष 5–11, 32–36
1 कल्प	4.32 billion years	ब्रह्मा का एक दिन (सृष्टि का जीवनकाल), 1,000 महायुगों के बराबर।	सूर्य सिद्धान्त 1.16–18, लगधमुनि ज्योतिष 5–11, 33–34
ब्रह्मा की एक रात्रि	4.32 billion years	प्रत्येक कल्प के बाद का प्रलयंकर विश्रामी काल (अवधि), सृष्टि अव्यक्ति रूप में विलीन।	विष्णु पुराण 1.3, लगधमुनि ज्योतिष 5–11, 25
ब्रह्मा का दिन और रात्रि	8.64 billion years	सृष्टि और प्रलय का एक पूर्ण चक्र, ब्रह्मा के काल गणना से संबंधित।	लगधमुनि ज्योतिष 5–11, 36
1 ब्रह्मा वर्ष	1.55 trillion years	360 कल्प = 360 रात्रियाँ, जिनमें समय की एक विशाल ब्रह्मांडीय गणना।	लगधमुनि ज्योतिष 5–11, 35
ब्रह्मा का जीवनकाल	311.04 trillion years	100 ब्रह्म वर्ष, ब्रह्मा के संपूर्ण जीवन की अवधि, जिसके बाद सृष्टि पुनः से विलीन।	लगधमुनि ज्योतिष 5–11, 34–35; ब्रह्मांड पुराण
सबसे सूक्ष्म समय इकाई	1 परमाणु = 1/33,750 sec	परमाणु समय इकाई — प्रमेयमु (सूक्ष्म काल), जो एक करोड़ से अधिक इकाइयों को, जिसे सूक्ष्म समय की संज्ञा।	लगधमुनि ज्योतिष 5–11, 5–6

भारत से बाहर भी, इस खगोल गणित की झलक स्पष्ट है। **अनाक्सीमान्डर का ऐपेरॉन सीदर** (केओडिया) **सोल्सटाइस** और **इक्विनॉक्स** के अनुसार विभाजित है और एक **विशाल सौर कैलेंडर** की तरह कार्य करता है। 18वीं शताब्दी में सवाई जय सिंह द्वितीय द्वारा बनाए गए **जंतर मंतर** (जयपुर व दिल्ली) जैसे वेधशालाएँ इस परंपरा को आगे बढ़ाती हैं। **सम्राट यंत्र**, जो विश्व की सबसे बड़ी सूर्य घड़ी है, 2 सेकंड तक की सटीकता से समय बताता है, और **जयप्रकाश यंत्र** ब्रह्मांडीय गोले का प्रतिकृति प्रस्तुत करता है।

इन सांस्कृतिक चमत्कारों की जड़ें सूर्य सिद्धान्त, वेदांग ज्योतिष, ऋग्वेद (10.85), भागवत पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण, तथा शतपथ ब्राह्मण जैसे ग्रंथों में मिलती हैं। **आर्यभट** की **आर्यभटीय** में पृथ्वी की **धुरी पर घूर्णन** की बात की गई है, जो गैलीलियो से कई शताब्दियों पहले लिखा गया था। **वराहमिहिर** की **बृहत्संहिता** में **ग्रहों की गति, ग्रहण**, तथा **वर्षीय विषुवत** की चर्चा है।

इसने यज्ञों (sacrifices) के समय निर्धारण को नक्षत्र (चंद्र मंडल) की स्थिति से जोड़ दिया।

"येनाहं वेद यज्ञकालं तं कालविदं ब्रवीमि।"

(वेदांग ज्योतिष 1.3)

अनुवाद: "मैं उस कालविद (समय के ज्ञाता) का वर्णन करता हूँ जिसके द्वारा यज्ञ का समय जाना जाता है।" (स्रोत: Pingree, 1981)

वेदांग ज्योतिष ने प्रस्तुत किया:

- 5-वर्षीय युग प्रणाली
- पंचांग सुधार हेतु अधिकमास
- धार्मिक उत्सवों के लिए चंद्र एवं सौर गतिक्रिया

(स्रोत: Pingree, 1981; Kak, 2000)

भारत की समय मापन प्रणाली अपने कालखंड के लिए अद्भुत वैज्ञानिक सटीकता दर्शाती है। उप-सेकंड निमेष से लेकर अरबों वर्षों के कल्प तक, ये प्रणालियाँ धार्मिक आवश्यकता और ब्रह्माण्डीय चिंतन दोनों का प्रतिबिंब थीं। (स्रोत: Kak, 2000; Subbarayappa, 2008)

ये सिद्धांत केवल दर्शन नहीं थे—इन्हें **पत्थर में गढ़ा गया**। **भारतीय मंदिर** केवल पूजा स्थल नहीं थे, बल्कि **खगोलीय उपकरण**, **समय गणना केंद्र**, और **ब्रह्माण्ड की स्थापत्य अभिव्यक्ति** थे। उड़ीसा का **कोणार्क सूर्य मंदिर**, सूर्य रथ के रूप में निर्मित, 24 विशाल पहियों वाला एक **सूर्य घड़ी** (संडायल) है; प्रत्येक पहिया आठ मुख्य तीलियों के साथ तीन-तीन घंटे की गणना करता है। यह मंदिर **विषुवत् रेखा (equinox)** के समय सूर्य की पहली किरणों को ग्रहण करने के लिए संरेखित है। इसी प्रकार, **बृहदीश्वर मंदिर** (तंजावुर) को इस प्रकार बनाया गया है कि उसका 216 फीट ऊँचा **विमान दोपहर को कोई छाया नहीं डालता**, जो सौर गणना की एक अभूतपूर्व उपलब्धि है। **मीनाक्षी मंदिर** (मदुरै) में **नक्षत्र मंडपम** हैं—जिनकी संरचना चंद्र नक्षत्रों के अनुसार की गई है, जिससे सभी अनुष्ठान चंद्रमा की गति के अनुरूप होते हैं।

- 1 घटी = 24 मिनट।

यह विभाजन बिना यांत्रिक घड़ियों के भी यज्ञों और खगोलीय गणनाओं के सटीक समय निर्धारण में सहायक था।

(स्रोत: Pingree, D. (1981). *Jyotihśāstra: Astral and Mathematical Literature.* **Wiesbaden: Otto Harrassowitz)**

6.1 चंद्र और सौर दिवस

- **चंद्र दिवस (तिथि):** चंद्रमा द्वारा सूर्य से 12° कोणीय दूरी बढ़ाने में लगने वाला समय। (स्रोत: वेदांग ज्योतिष; Subbarayappa, 2008)
- **सौर दिवस (अहर्गण):** सूर्य के आभासी आकाशीय गमन पर आधारित; नागरिक गणना के लिए प्रयुक्त। (स्रोत: सूर्य सिद्धांत 1.65-66; Burgess, 1860)

चंद्र और सौर प्रणालियों के सह-अस्तित्व ने लूनीसोलर पंचांग और दोनों चक्रों को सामंजस्यपूर्ण बनाने हेतु अधिकमास की अवधारणा को जन्म दिया। (स्रोत: Pingree, 1981)

6.2 पुराण बनाम सिद्धांतिक परंपरा में समय

- **पुराणिक ब्रह्माण्ड विज्ञान**: समय को विशाल चक्रों के रूप में माना गया। एक चतुर्युग = 43.2 लाख वर्ष; 1 कल्प = 4.32 अरब वर्ष।

  (स्रोत: भागवत पुराण 3.11.19; महाभारत शांतिपर्व 231.12)
- **सिद्धांतिक खगोलशास्त्र**: व्यावहारिक ग्रह और पंचांग गणनाओं पर केंद्रित। सूर्य सिद्धांत (लगभग 4वीं सदी ई.) ने उष्णकटिबंधीय वर्ष (365.2588 दिन) का मान दिया जो आधुनिक मान (365.2422 दिन) के बहुत निकट था। (स्रोत: Burgess, 1860)

इस प्रकार, जहाँ पुराणों ने भव्य ब्रह्माण्डीय मानक प्रस्तुत किए, वहीं सिद्धांतिक ग्रंथों ने सटीक, प्रेक्षण आधारित गणनाएँ दीं। **(स्रोत: Pingree, 1981)**

6.3 ज्योतिष वेदांग से संबंध

वेदांग ज्योतिष (लगभग 1200 ई.पू.) भारत का प्रथम औपचारिक खगोलशास्त्रीय ग्रंथ था। **(स्रोत: Pingree, 1981)**

- **निमेष (Nimesha)**: एक पलक झपकने में लगने वाला समय, जिसे सबसे छोटी समय इकाई माना गया है। कुछ स्रोतों में इसे आधुनिक माप में 16/75 सेकंड बताया गया है। (स्रोत: Subbarayappa, 2008)
- **क्षण (Kshana)**: 18 निमेष मिलकर 1 क्षण बनाते हैं। सूर्य सिद्धांत के अनुसार क्षण की अवधि 1.6 सेकंड है। (स्रोत: सूर्य सिद्धांत 1.13-15; Burgess, 1860)
- **मुहूर्त (Muhurta)**: 30 क्षण मिलकर 1 मुहूर्त बनाते हैं; सम्पूर्ण दिन-रात्रि चक्र में 30 मुहूर्त होते हैं। (स्रोत: सूर्य सिद्धांत 1.13-15)
- **पक्ष (Paksha)**: चंद्र पखवाड़ा (शुक्ल या कृष्ण)। (स्रोत: वेदांग ज्योतिष, Pingree, 1981)
- **मास (Masa)**: एक चंद्र मास जिसमें दो पक्ष होते हैं; यह नागरिक और धार्मिक दोनों पंचांगों में प्रयुक्त होता है। (स्रोत: Pingree, 1981)
- **ऋतु (Ritu)**: दो चंद्र मासों की अवधि जो एक ऋतु बनाती है। (स्रोत: वेदांग ज्योतिष; Kak, 2000)
- **संवत्सर (Samvatsara)**: 12 चंद्र मासों से बना एक सौर वर्ष; जिसमें अधिकमास (अधिकार माह) द्वारा समायोजन किया जाता है। (स्रोत: वेदांग ज्योतिष, Pingree, 1981)
- **युग (Yuga)**: दीर्घ ब्रह्माण्डीय चक्र; एक चतुर्युग (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि) का कुल काल 43,20,000 वर्ष है। इसका अनुपात 4:3:2:1 होता है। (स्रोत: महाभारत, शांतिपर्व 231.12)
- **कल्प (Kalpa)**: ब्रह्मा के एक दिन के बराबर; 1,000 चतुर्युग = 4.32 अरब मानव वर्ष। (स्रोत: भागवत पुराण 3.11.19)
- **ब्रह्मा का दिन/रात्रि**: ब्रह्मा का एक दिन-रात्रि चक्र = 8.64 अरब मानव वर्ष। (स्रोत: भागवत पुराण 3.11.19)
- **विज्ञान 60 घटी = 1 दिवस के पीछे**: वैदिक दिवस को 60 घटियों में विभाजित किया गया था (दक्षिण भारत में इसे नाजिका भी कहते हैं)। प्रत्येक घटी आधुनिक माप में 24 मिनट की होती थी। (स्रोत: Kak, 2000; Subbarayappa, 2008)

  इस प्रकार:

  - 60 घटी = 24 घंटे (एक सौर दिवस)

5.2 प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र और समय की दर्शनशास्त्र

प्राचीन भारतीय चिंतन में समय एक सीधी रेखा नहीं, बल्कि एक अनंत चक्र है — **कालचक्र**, अर्थात् "समय का चक्र"। यह चक्रवात रूपी अवधारणा वेदों, पुराणों और *सूर्य सिद्धांत* जैसे ग्रंथों में स्पष्ट रूप से मिलती है, जहाँ युग, मन्वंतर और कल्प जैसे समयचक्र करोड़ों और अरबों वर्षों में फैले हुए हैं। यह दर्शन आधुनिक ब्रह्माण्ड विज्ञान के **चक्राकार ब्रह्माण्ड सिद्धांतों** से मेल खाता है, जैसे कि **बिग बैंग और बिग क्रंच**, या **बिग बाउंस**, जहाँ ब्रह्माण्ड फैलता है, सिमटता है और पुनर्जन्म लेता है। भारतीय समय की विस्मयकारी माप—**ब्रह्मा का एक दिन = 4.32 अरब वर्ष**, और उनकी आयु **311 खरब वर्षों** तक मानी गई है—आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक वैज्ञानिक गणनाओं के निकट है: पृथ्वी की आयु लगभग 4.5 अरब वर्ष और ब्रह्माण्ड की आयु लगभग 13.8 अरब वर्ष है। यह संयोग नहीं है; यह दर्शाता है कि हमारे पूर्वजों ने **ब्रह्माण्डीय विशालता** को दूरबीन से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और वैदिक गणनाओं से जाना था।

इस ब्रह्माण्डीय प्रणाली का मूल है **ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) की त्रिमूर्ति**—जो केवल देवता नहीं, बल्कि ब्रह्माण्डीय सिद्धांत हैं। ब्रह्मा, सृष्टिकर्ता, **बिग बैंग** का प्रतीक हैं—जहाँ समय और स्थान की उत्पत्ति होती है। विष्णु, पालक, **प्राकृतिक नियमों** और **डार्क एनर्जी** के तुल्य हैं—जो ब्रह्माण्डीय संतुलन को बनाए रखते हैं। महेश (शिव), संहारक, **एन्ट्रॉपी, ब्लैक होल्स**, और **ब्रह्माण्ड के अंत** का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह त्रैतीय लय—**सृजन, पालन और संहार**—आज के वैज्ञानिक मॉडल्स से भी मेल खाती है। *विष्णु पुराण* और *भागवत पुराण* में ब्रह्मा की उत्पत्ति विष्णु की नाभि से होने का उल्लेख है—जो यह दर्शाता है कि **सृष्टि की उत्पत्ति एक ब्रह्मांडीय क्षेत्र (स्पेसटाइम) से होती है**। शिव का **तांडव** नृत्य ब्रह्माण्डीय विनाश का प्रतीक है, जैसे सुपरनोवा या ऊष्मा मृत्यु।

6. वैदिक कालमापन इकाइयाँ: संरचना और श्रेणीबद्धता

प्राचीन भारतीय ब्रह्माण्ड विज्ञान ने समय को अत्यंत सुनियोजित और पारस्परिक रूप से संबंधित इकाइयों में विभाजित किया, जो सबसे सूक्ष्म क्षण से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जीवनकाल तक विस्तृत थीं।

(स्रोत: **Kak, S. (2000).** *The Astronomical Code of the Rigveda*. **New Delhi: Munshiram Manoharlal; Subbarayappa, B. V. (2008).** *Indian Astronomy: A Source Book*. **Mumbai: Nehru Centre)**

का एक दिन" (4.32 अरब वर्ष), जो पृथ्वी की वैज्ञानिक रूप से अनुमानित आयु (~4.5 अरब वर्ष) के अत्यंत निकट है।

(स्रोत: Feuerstein, G., Kak, S., & Frawley, D. (1995). *In Search of the Cradle of Civilization*. Quest Books)

पश्चिमी तुलना: जहाँ पश्चिमी मॉडल रैखिक समय पर बल देते थे, भारतीय ब्रह्माण्ड विज्ञान ने अनंत चक्रीय दृष्टि को अपनाया, जो अब सैद्धांतिक भौतिकी में भी ध्यान आकर्षित कर रही है।

5.1 ग्रहों की गति और ब्रह्मांड विज्ञान

ग्रहों की गति को समझने में महत्वपूर्ण प्रगति नीलकंठ सोमयाजी जैसे भारतीय खगोलविदों द्वारा की गई थी, जिन्होंने 1500 ईस्वी में एक संशोधित मॉडल प्रस्तावित किया था जो आधुनिक गणितीय ग्रह मॉडल के करीब है। प्राचीन ग्रंथ जैसे ऋग्वेद (नासदीय सूक्त, आरवी 10.129) ब्रह्मांड की उत्पत्ति पर विचार करते हुए ब्रह्माण्डs संबंधी अटकलों में गहराई से उतरें। इसी प्रकार, यजुर्वेद और अथर्ववेद कृत्तिका से प्रारंभ करके 27 तारों की विस्तृत सूची प्रदान करें, जो आकाशीय क्षेत्र की उन्नत समझ को दर्शाता है।

इतिहास (रामायण और महाभारत) गहरे अवलोकन संबंधी खगोल विज्ञान को दर्शाते हुए, तारों की स्थिति, ग्रहों के संरेखण और उनकी गतिविधियों की एक परिष्कृत समझ को प्रकट करते हैं।

पश्चिमी तुलना: यूरोप का वैज्ञानिक क्रांति काल न्यूटोनियन भौतिकी (Newtonian Physics) के साथ चरम पर था, किंतु औपनिवेशिक भारत में उसकी देशज वैज्ञानिक प्रणालियों का दमन और उपेक्षा हुई।

4.6 आधुनिक काल (1947 ई. – वर्तमान): अंतरिक्ष युग में भारत

स्वतंत्रता के बाद भारत ने अपने ब्रह्माण्ड संबंधी जिज्ञासा को पुनः प्राप्त किया:

- **ISRO (1969):** भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने खगोलीय अन्वेषण का नया अध्याय प्रारंभ किया।
- **प्रमुख मिशन:**
  - **चंद्रयान-1 और 2:** चंद्र अन्वेषण (2008, 2019)।
  - **मंगलयान:** मंगल ऑर्बिटर मिशन (2013), जिसने भारत को अपनी पहली ही कोशिश में मंगल की कक्षा में पहुँचने वाला एशिया का पहला देश बनाया।
  - **चंद्रयान-3 (2023):** चंद्र दक्षिण ध्रुव पर सफल सॉफ्ट लैंडिंग।
  - **आदित्य-L1 (2023):** भारत का पहला सौर वेधशाला मिशन।
- **अंतरराष्ट्रीय सहयोग:** वैश्विक वेधशालाओं और खगोल भौतिकी अनुसंधान (LIGO, SKA आदि) में भागीदारी भारत के ब्रह्माण्डीय संवाद की निरंतरता को दर्शाती है।
- **प्राचीन ज्ञान की पुनर्खोज:** अंतर्विषयक अध्ययन सूर्य सिद्धांत के स्थिरांकों की पुनः समीक्षा कर रहे हैं, जो आधुनिक ग्रहीय मानों के अद्भुत सामीप्य को प्रकट करते हैं।

(स्रोत: Subbarayappa, B.V. (1989). *Indian Astronomy: A Source Book.* **Nehru Centre)**

5. दार्शनिक और ब्रह्माण्डीय एकीकरण: काल चक्र

भारतीय खगोलशास्त्र ने सदैव मात्र मापन से परे जाकर काल के दार्शनिक गहराइयों का अन्वेषण किया। पुराणों की युग, कल्प और ब्रह्माण्ड चक्र की अवधारणाएँ आधुनिक ब्रह्माण्ड विज्ञान के चक्रीय ब्रह्माण्ड मॉडल के समानांतर हैं। विशेष उल्लेखनीय है "ब्रह्मा

विधियाँ और चंद्र गति सिद्धांत प्रस्तुत किए जो आधुनिक भविष्यवाणियों से मेल खाते हैं।

- **पश्चिमी तुलना:** यूनानी खगोलशास्त्र (प्टोलमी का अल्माजेस्ट) ने मॉडल विकसित किए थे, किंतु वे पृथ्वी-केंद्रित (geocentric) थे और भारत में दिखने वाली त्रिकोणमितीय परिष्कृति से रहित थे।

4.4 मध्यकालीन काल (1200 ई. – 1800 ई.): संश्लेषण और नवाचार

भारतीय खगोलशास्त्र इस्लामी और मुगल प्रभावों के बीच भी विकसित हुआ:

- **सूर्य सिद्धांत** का संशोधन हुआ, जिसमें संस्कृत, फ़ारसी और अरबी ज्ञान प्रणालियों का संयोजन हुआ।
- **नीलकंठ सोमयाजी** (लगभग 1500 ई.) ने तंत्रसंग्रह में बुध और शुक्र के लिए लगभग-सौरकेंद्रित मॉडल का प्रस्ताव रखा, जो टाइको ब्राहे और कोपरनिकस से पूर्व था, तथा ग्रहों के सूर्य के चारों ओर और सूर्य के पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करने का सुझाव दिया।
- **महाराजा जय सिंह द्वितीय** के जंतर-मंतर (18वीं शताब्दी) ने उस समय कहीं भी अद्वितीय विशाल उपकरणों द्वारा सटीक खगोलीय अवलोकन प्रदर्शित किया।

पश्चिमी तुलना: यूरोप में कोपरनिकस (1543), गैलीलियो (1610) और केपलर (1609) हुए, किंतु नीलकंठ का लगभग-सौरकेंद्रित मॉडल ऐतिहासिक मौलिकता के लिए वैश्विक रूप से कम सराहा गया। (स्रोत: Sarma, K.V. (1997). *A History of the Kerala School of Hindu Astronomy*. Vishveshvaranand Institute)

4.5 औपनिवेशिक काल (1800 ई. – 1947 ई.): पुनर्खोज का युग

ब्रिटिश विद्वानों जैसे विलियम जोन्स और एच.टी. कोलब्रुक ने संस्कृत खगोलशास्त्रीय ग्रंथों का अनुवाद किया, जिससे भारत का वैज्ञानिक अतीत पश्चिम के सामने आया।

बंगाल के शौकिया खगोलशास्त्री राधा गोबिंद चंद्र ने धूमकेतु और परिवर्ती तारों पर आँकड़े रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी को भेजे, जो स्वदेशी आकाश अवलोकन की निरंतरता को दर्शाता है।

4.2 उत्तरवैदिक और शुल्ब सूत्र काल (500 ई.पू. – 200 ई.पू.): पवित्र ब्रह्माण्ड का ज्यामिति

श्रौत परंपरा के विकास के साथ, यज्ञ वेदी निर्माण सटीकता से ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की अभिव्यक्ति बन गया। बौधायन, आपस्तम्ब और कात्यायन द्वारा लिखित शुल्ब सूत्रों ने न केवल पायथागोरस प्रमेय को प्रकट किया, बल्कि पवित्र वेदियों के लिए आवश्यक खगोलीय संरेखण की समझ को भी उजागर किया, जो आकाश की ज्यामिति की गहरी समझ का संकेत देती है।

पश्चिमी तुलना: यूनानी खगोलविद्या (पूर्व-सॉक्रेटिक चिंतक) अभी भी पौराणिक अवस्था में थी और शुल्ब सूत्रों में दिखने वाली व्यावहारिक ब्रह्माण्ड विद्या से रहित थी।

4.3 शास्त्रीय सिद्धांत काल (200 ई. – 1200 ई.): भारतीय खगोलशास्त्र का स्वर्ण युग

यह काल गणितीय सटीकता और ग्रहीय मॉडलिंग के युग का अग्रदूत था। सिद्धांतों ने गोल खगोलशास्त्र, अपकेंद्रवृत्त (epicycles) और त्रिकोणमितीय तकनीकों की शुरुआत की, जो यूरोप से कई शताब्दियाँ पूर्व थी।

- **आर्यभट प्रथम (499 ई.)** ने अपनी आर्यभटीय में पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन का प्रस्ताव किया, π ($\pi \approx 3.1416$) की गणना की, तथा साइन फलनों की शुरुआत की। ये विचार कोपरनिकस (1543 ई.) से लगभग एक सहस्राब्दी पूर्व के हैं।

  (स्रोत: Pingree, D. (1970). *The Āryabhaṭīya of Āryabhaṭa.* **University of Chicago Press)**

- **वराहमिहिर (6वीं शताब्दी ई.)** ने बृहत्संहिता और पञ्चसिद्धान्तिका में पाँच सिद्धांतों का समन्वय किया तथा ग्रहीय, ग्रहण और मौसम संबंधी घटनाओं का दस्तावेजीकरण किया।

- **ब्रह्मगुप्त (598 ई.)** ने नकारात्मक संख्याओं, शून्य और उन्नत ग्रहीय गणनाओं का विकास ब्रह्मस्फुटसिद्धांत में किया, जो अरब और लैटिन जगत द्वारा अपनाने से कई शताब्दियाँ पूर्व था।

- **भास्कर प्रथम एवं द्वितीय** ने इन अंतर्दृष्टियों को और आगे बढ़ाया, जिनमें भास्कर द्वितीय के सिद्धांत शिरोमणि ने ग्रहीय समस्याओं के समाधान की

4. भारतीय खगोल विज्ञान: वैदिक दृष्टि से आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन तक

भारतीय खगोलशास्त्र का इतिहास ब्रह्माण्ड के प्रति मानव जिज्ञासा का एक गहरा साक्ष्य है, जो वेदों के आध्यात्मिक मंत्रों से लेकर भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) की वैज्ञानिक उपलब्धियों तक फैला हुआ है। यह अबाध परंपरा — जो विश्व इतिहास में अद्वितीय है — विज्ञान, दर्शन, गणित और ब्रह्माण्ड विज्ञान को एक भव्य कथा में इस प्रकार पिरोती है कि वह दार्शनिक गहराई और वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि में अनेक समकालीन परंपराओं से आगे निकल जाती है।

4.1 वैदिक काल (लगभग 1500 ई.पू. – 500 ई.पू.): ऋत का ब्रह्माण्डीय नियम

भारत में खगोलीय चेतना के सबसे प्रारंभिक चिन्ह वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) में गहराई से अंतर्निहित हैं। ये पवित्र ग्रंथ वैज्ञानिक पुस्तकों के रूप में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उद्घाटन के रूप में रचे गए थे, जिनमें ऋत (ब्रह्माण्डीय व्यवस्था) के सिद्धांत द्वारा शासित ब्रह्माण्ड की सटीक छवियाँ निहित हैं।

एक मूलभूत विशेषता नक्षत्र प्रणाली थी, जो आकाश को 27 (या 28) खण्डों में विभाजित करती थी और जो वैदिक समाज के कृषि, अनुष्ठान और सामाजिक जीवन का संचालन करती थी। यह प्रणाली बाद में बेबीलोनियन राशि चक्र प्रणाली से पहले बनी और उसे प्रभावित भी किया।

(स्रोत: Kak, S. (2000). *The Astronomical Code of the Rgveda.* **Munshiram Manoharlal)**

वेदांग ज्योतिष (लगभग 1200 ई.पू.), जो लगध को समर्पित है, पहला ग्रंथ है जो पूर्णत: खगोलशास्त्र को समर्पित है। इसने अधिक मास (अधिक मास) के प्रयोग, सौर और चंद्र वर्षों की रूपरेखा तथा विषुव (Viṣuvant) और अयनांत (solstices) का वर्णन किया, जो वैदिक यज्ञों के समय निर्धारण के लिए अनिवार्य थे।

(स्रोत: Shukla, K.S. (1979). *Vedānga Jyotiṣa of Lagadha.* **Indian National Science Academy)**

पश्चिमी तुलना: इस काल में मेसोपोटामिया और मिस्र की खगोलविद्या मुख्यतः शकुन-प्रथाओं और पंचांग गणना पर केंद्रित थी, किंतु वे वेदांग ज्योतिष में परिलक्षित प्रणालीगत गणितीय सूत्रों से रहित थीं।

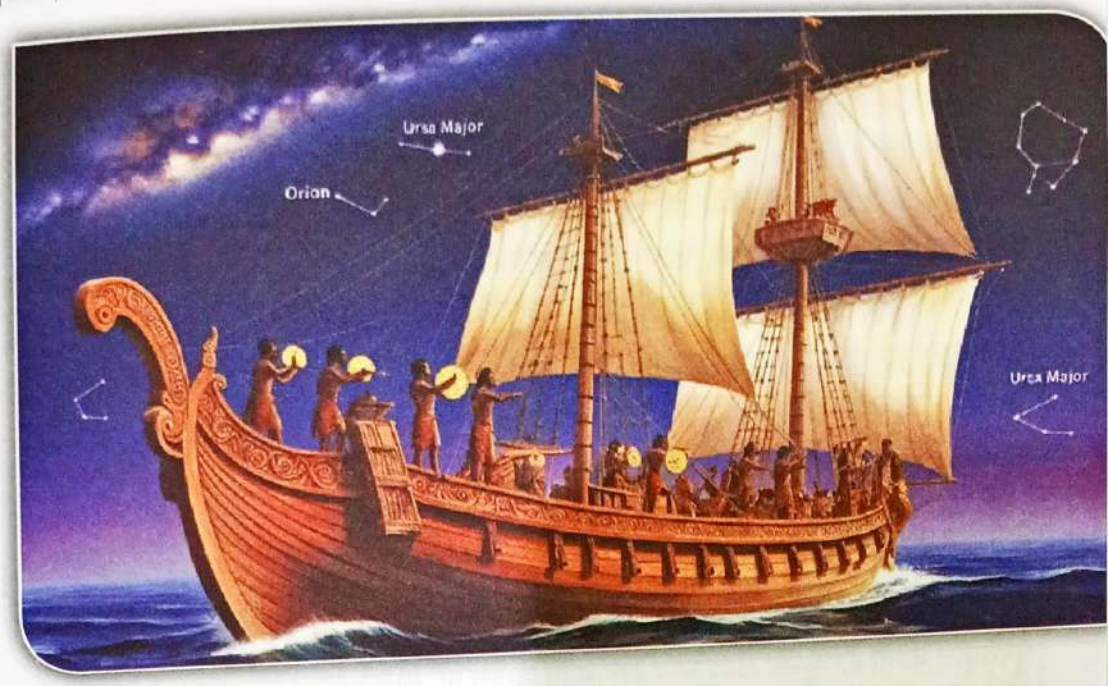

समुद्री व्यापार और नौपरिवहन

समयपालन: पंचांग एक जटिल कैलेंडर प्रणाली, उन्नत खगोलीय समझ को दर्शाते हुए, समय की गणना और घटना योजना की सुविधा प्रदान करती है।

भारतीय खगोल विज्ञान की जड़ें वैदिक काल तक फैली हुई हैं, जैसे प्रारंभिक ग्रंथ अथर्ववेद तारों, ग्रहों और धूमकेतुओं का उल्लेख। पराशर तंत्र, दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में, बृहस्पति और शनि की नक्षत्र अवधि जैसे ग्रहों की गतिविधियों की टिप्पणियों का दस्तावेजीकरण किया गया। ये प्रारंभिक योगदान प्राचीन भारत में खगोलीय अध्ययन की गहराई और परिष्कार को उजागर करते हैं, जिसने इसके निरंतर विकास और वैश्विक प्रभाव के लिए आधार तैयार किया।

भारतीय खगोल विज्ञान और ब्रह्मांड विज्ञान का एक समृद्ध इतिहास है, जिसमें कई प्रगति प्राचीन ग्रंथों और परंपराओं में निहित हैं। सौर और चंद्र कैलेंडर का समन्वय एक उल्लेखनीय उदाहरण है, जो अंतराल महीनों की अवधारणा के माध्यम से हासिल किया गया है। वेदांग ज्योतिष पांच साल का चक्र शुरू किया (युग) सौर वर्षों को चंद्र चरणों के साथ संरेखित करना। उन्नत सिमुलेशन सॉफ़्टवेयर का उपयोग करने वाले हाल के अध्ययनों ने जैसे ग्रंथों से खगोलीय घटनाओं के विवरणों को मान्य किया है शतपथ ब्राह्मण और ऋग्वेद, इनमें से कुछ अवलोकनों का समय लगभग 3000 ईसा पूर्व का है।

कुम्भ मेले का खगोलशास्त्रीय आधार

कुम्भ मेला पृथ्वी पर होने वाले सबसे बड़े धार्मिक समागमों में से एक है और इसका आधार प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्रीय ज्ञान में गहराई से निहित है। कुम्भ मेले के आयोजन का समय गुरु (बृहस्पति) की विभिन्न राशियों में स्थिति तथा सूर्य और चन्द्रमा की अवस्थिति के आधार पर निर्धारित होता है। यह आयोजन चार पवित्र स्थलों — प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक — के मध्य चक्रीय रूप से होता है, जो विशिष्ट ग्रह संयोजनों पर आधारित हैं:

- प्रयागराज (इलाहाबाद): जब बृहस्पति वृषभ राशि में और सूर्य मकर राशि में होता है।
- हरिद्वार: जब बृहस्पति कुम्भ राशि में और सूर्य मेष राशि में होता है।
- उज्जैन: जब बृहस्पति सिंह राशि में और सूर्य मेष राशि में होता है।
- नासिक: जब बृहस्पति और सूर्य दोनों सिंह राशि में होते हैं।

ऐसा माना जाता है कि ये ग्रह स्थितियाँ पुराणों में वर्णित देवताओं और असुरों के बीच अमृत (अमरत्व का अमृत) के लिए हुए दिव्य संग्राम के समय विद्यमान ब्रह्मांडीय परिस्थितियों की पुनरावृत्ति करती हैं। 'कुम्भ' शब्द स्वयं उस अमृत कलश को सूचित करता है।

"कुम्भस्थे च बृहस्पतौ तुलाराशौ रवौ तदा।
मकरस्थे च सूर्ये च कुम्भयोगः प्रजायते॥"

"जब बृहस्पति कुम्भ राशि में और सूर्य मकर राशि में होता है, तब शुभ कुम्भ योग उत्पन्न होता है।" (ज्योतिर्विदाभरण, श्लोक 15)

कुम्भ मेला 2025: एक अध्ययन

कुम्भ मेला 2025 के लिए प्रयागराज को चुना गया है। उस समय की खगोलीय स्थिति इस प्रकार है:

- बृहस्पति (बृहस्पति): वृषभ राशि (वृषभ राशि) में स्थित।
- सूर्य (सूर्य): पर्व के दौरान मकर राशि (मकर राशि) में संचार करते हुए।

यह ग्रह स्थिति परंपरागत रूप से आध्यात्मिक शुद्धि और दिव्य ऊर्जाओं के पृथ्वी के क्षेत्र में अवतरण से जुड़ी मानी जाती है, जिससे प्रयागराज में पवित्र स्नान (स्नान) अत्यंत प्रभावकारी होता है और यह कर्मजन्य अशुद्धियों की शुद्धि के लिए श्रेष्ठ माना जाता है।

इन तिथियों की गणना अत्यंत सावधानीपूर्वक पंचांग (हिन्दू पंचांग) का उपयोग कर की जाती है तथा विशेषज्ञ ज्योतिषियों (ज्योतिषी) द्वारा क्रॉस-जाँची जाती है, जिससे वैदिक काल से चली आ रही खगोलशास्त्रीय शुद्धता की परंपरा बनी रहती है।

(स्रोत: Kumbha Mela History & Religion Astronomy Cosmobiology Subas Rai,kumbhamela-historyreligionastronomycosmobiologysubasrai 202003 575 y; Kumbh Mela's Connection

2.4 अनुष्ठानिक और आध्यात्मिक महत्त्व

मकर संक्रांति (शीत अयनांत) और महाशिवरात्रि (चन्द्र संयोग) जैसे प्रमुख हिन्दू त्योहारों का समय निर्धारण खगोलीय सिद्धांतों के आधार पर होता था। यहाँ तक कि विश्व प्रसिद्ध कुम्भ मेला — जिसमें करोड़ों लोग भाग लेते हैं — भी विशिष्ट ग्रह संयोजनों के समय आयोजित होता है।

बौद्ध और जैन परंपराएँ भी खगोलशास्त्र पर आधारित थीं। जैन ब्रह्माण्ड विज्ञान में मेरु पर्वत का वर्णन केंद्रीय ब्रह्मांडीय धुरी के रूप में किया गया है, तथा खगोलीय क्षेत्रों की गति का चित्रण भी सूक्ष्म खगोलीय अवलोकनों के अनुरूप है।

(स्रोत: Dundas, P. (2002). *The Jains (2nd ed.)*. London: Routledge.)

इस प्रकार भारतीय खगोलशास्त्र एक पृथक सैद्धांतिक विज्ञान न होकर एक व्यावहारिक, सांस्कृतिक रूप से एकीकृत अनुशासन था, जो आध्यात्मिक उन्नयन से लेकर भौतिक जीवन की आवश्यकताओं तक, जीवन के हर क्षेत्र के लिए आवश्यक था। इसका ब्रह्मांडीय सामंजस्य, गणितीय शुद्धता और सांस्कृतिक प्रासंगिकता पर बल देना इसे मानव इतिहास की सबसे समग्र वैज्ञानिक परंपराओं में से एक बनाता है।

3. भारतीय खगोल विज्ञान का विकास

भारतीय खगोल विज्ञान व्यावहारिक आवश्यकताओं, आध्यात्मिक परंपराओं और बौद्धिक जिज्ञासा से विकसित हुआ है।

वैदिक योगदान: प्रारंभिक वैदिक प्रथाओं में शुभ समय निर्धारित करने और अनुष्ठानों के लिए मुख्य दिशा-निर्देश निर्धारित करने के लिए आकाशीय गतिविधियों के सटीक ज्ञान की आवश्यकता होती थी।

कृषि महत्व: मौसमी बदलावों और मौसम के पैटर्न की सटीक भविष्यवाणी खेती और आर्थिक स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण थी।

समुद्री व्यापार और नौपरिवहन: नौपरिवहन दिशा निर्धारित करने के लिए तारकीय स्थितियों पर निर्भर करता था, जिसके लिए अक्षांश, देशांतर और अन्य खगोलीय अवधारणाओं में विशेषज्ञता की आवश्यकता होती थी।

(**Gṛhapraveśa**), नामकरण (**Nāmakaraṇa**), विवाह जैसे घरेलू संस्कार भी खगोलीय गणनाओं से प्राप्त शुभ समय के आधार पर तय किए जाते थे।

एक अद्वितीय सांस्कृतिक उदाहरण है विवाह संस्कार में वर-वधू को सप्तर्षि मण्डल (**Ursa Major**) में वशिष्ठ और अरुन्धती के जुड़वाँ तारों को दिखाने की परंपरा। यह एक आदर्श वैवाहिक संबंध का प्रतीक है जिसमें परस्पर सम्मान और आध्यात्मिक संगति होती है। ये तारे अविभाज्य होते हुए भी अलग हैं — एक काव्यात्मक रूपक जो दंपतियों को प्रेरित करने हेतु प्रयुक्त होता है।

यहाँ तक कि स्नान, उपवास (**Upavāsa**), तीर्थयात्रा जैसी दैनिक गतिविधियाँ भी चन्द्र तिथियों और सूर्य संक्रांतियों (**Saṅkrānti**) जैसे विशिष्ट खगोलीय चरणों से जुड़ी होती थीं। यह दर्शाता है कि किस प्रकार खगोलीय ज्ञान जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहज रूप से व्याप्त था।

2.3 गणितीय सटीकता और वैज्ञानिक उन्नति

भारतीय खगोलशास्त्रियों ने गणितीय खगोलशास्त्र की एक अत्यंत उन्नत प्रणाली विकसित की। आर्यभट (**499** ई.), वराहमिहिर (**550** ई.) और भास्कर द्वितीय (**1150** ई.) जैसे विद्वानों ने अंकगणित, बीजगणित, समतलीय एवं गोल त्रिकोणमिति तथा कलन शास्त्र (**calculus**) जैसे प्रारंभिक सिद्धांतों की नींव रखी।

(**स्रोत: Joseph, G. G. (2000).** ***The Crest of the Peacock: Non-European Roots of Mathematics.*** **Princeton University Press.)**

उदाहरण के लिए, आर्यभट ने अपनी आर्यभटीय (**Āryabhaṭīya**) में पृथ्वी के घूर्णन (**rotation**) का प्रस्ताव रखा — जो उस समय के लिए क्रांतिकारी विचार था:

"स्वयमेव भ्रमत् भूमिः।"

"पृथ्वी स्वयं ही घूमती है।"

(Āryabhaṭīya, Golapāda 10)

ग्रहणों (**eclipses**), ग्रह संयोगों (**Yoga**), अयनांत (**solstices**) और विषुव (**equinoxes**) की गणनाएँ अद्भुत सटीकता के साथ की जाती थीं, जैसा कि सूर्य सिद्धांत (**Sūrya Siddhānta**) और पञ्चसिद्धान्तिका (**Pañcasiddhāntikā**) जैसे ग्रंथों में देखा जाता है।

कृषि उत्सव: अधिकतर भारतीय मास कृषि-आधारित त्योहारों से चिह्नित; इससे सामूहिकता व खेतों में सामूहिक श्रम का पोषण।

4. खगोलीय उपकरण (यंत्र)

ाचीन भारतीय खगोल विज्ञान अवलोकन और गणना पर बहुत अधिक निर्भर था। ाकाशीय पिंडों की स्थिति और गतिविधियों का सटीक निरीक्षण करने और समय को ापने के लिए विभिन्न सरल उपकरणों (यंत्रों के रूप में ज्ञात) विकसित किए गए। इन पकरणों ने न केवल सटीक माप की सुविधा प्रदान की बल्कि अवलोकनों के आधार पर सिद्धांतों को परिष्कृत करने में भी मदद की।

नीचे प्राचीन भारत में प्रयुक्त प्रमुख खगोलीय उपकरणों का विवरण दिया गया है:

. ग्नोमन (शांकु)

विवरण: सूक्ति, या शंकु, एक नुकीली नोक वाली एक साधारण खड़ी छड़ी है। इसकी कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए इसे अक्सर रस्सी के साथ प्रयोग किया जाता था।

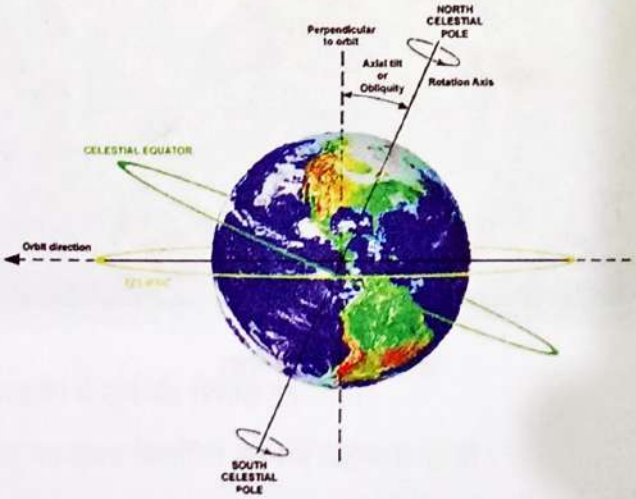

ग्नोमन (शांकु)

अनुप्रयोग:

- **मुख्य दिशाएँ:** सूक्ति की छाया ने उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की स्थापना में मदद की।

- **समयनिर्धारक:** सबसे छोटी छाया दोपहर का संकेत देती है, जबकि सुबह या दोपहर की छाया की लंबाई और दिशा समय का संकेत देती है।
- **अक्षांश मापन:** छाया के कोण को देखकर किसी स्थान के अक्षांश की गणना की जा सकती है।
- **सूर्य का देशांतर:** पृथ्वी के सापेक्ष सूर्य की स्थिति का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

2. जल घड़ी (घाटी-यंत्र)

विवरण: एक साधारण उपकरण जिसमें समय को मापने के लिए पानी पर रखे एक छोटे छेद वाले कटोरे का उपयोग किया जाता था क्योंकि कटोरा धीरे-धीरे भर जाता था और डूब जाता था।



जल घड़ी (घाटी-यंत्र)

अनुप्रयोग:

- सूर्योदय से सटीक समय मापन।
- खगोलीय प्रेक्षणों और अनुष्ठानों के समय निर्धारण के लिए आवश्यक।

3. क्रॉस-स्टाफ़ (यष्टि-यंत्र)

विवरण: क्रॉस-टुकड़ों वाली एक छड़, जिसका उपयोग आकाशीय पिंडों के बीच के कोण को मापने के लिए किया जाता है।

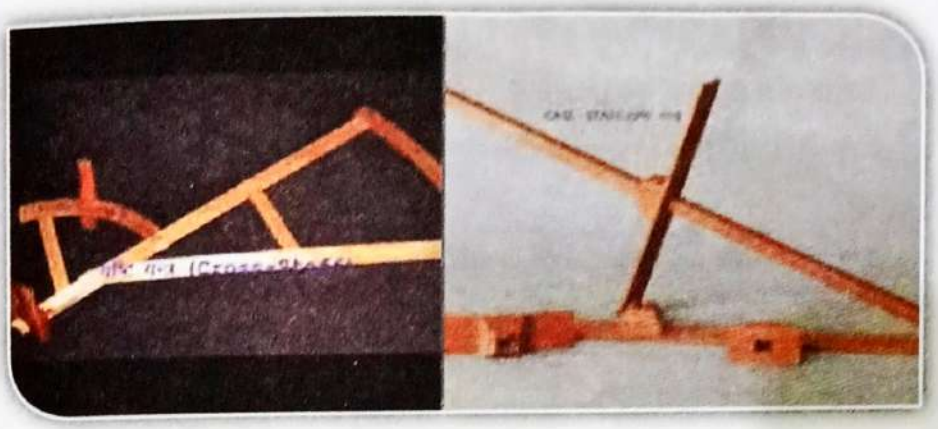

क्रॉस-स्टाफ़ (यष्टि-यंत्र)

4. आर्मिलरी गोला (गोल-यंत्र)

विवरण: यह एक वृत्ताकार रचनात्मक ढांचा होता है, जो खगोलीय गोला का प्रतिनिधित्व करता है और खगोलीय पिंडों की स्थितियों का मॉडल तैयार करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

अनुप्रयोग:

- तारों और ग्रहों की गति की कल्पना करना।
- आकाशीय निर्देशांक की अवधारणा का प्रदर्शन।

5. सूर्य की ऊँचाई मापने के लिए पट्टा (फलक-यंत्र)

विवरण: यह एक समतल पट्टा होता है, जिसे एक दृष्टि तंत्र के साथ प्रयोग कर सूर्य की ऊँचाई मापी जाती है।

अनुप्रयोग:

- आकाश में सूर्य की स्थिति की गणना.
- दिन का समय निर्धारित करने में सहायता करना।

6. सूर्यघड़ी (कपाल-यंत्र)

विवरण: यह एक अर्धगोलाकार कटोरा होता है, जिसमें चिह्न होते हैं और एक केंद्रीय ग्नोमोन (साँचा) होता है जो समय दर्शाने के लिए छायाएँ डालता है।

अनुप्रयोग:

- दिन के दौरान समय को ट्रैक करना।

- सूर्य की स्पष्ट गति का अवलोकन करना।

7. चक्र-यंत्र (पहिया यंत्र)

संरचना: एक लकड़ी या धातु का पहिया जिसकी धुरी एक छेद में लगी होती है।

उपयोग:

- आकाशीय पिंडों के देशांतर और अक्षांशों को मापना।
- राशियों के उदय और अस्त का समय निर्धारित करना।

8. 3. कैपा-यंत्र (चतुर्भुज)

विवरण: चक्र-यंत्र का आधा संरचना।

उद्देश्य:

- इसमें आकाशीय पिंडों की चरम दूरी निर्धारित करने के लिए एक छड़ी शामिल है।
- तारों और ग्रहों की कोणीय ऊंचाई या ऊंचाई का अवलोकन करने के लिए उपयोग किया जाता है।

9. धी-यंत्र (सरल छड़ी यंत्र)

विवरण: ऊर्ध्वाधर संरेखण सुनिश्चित करने के लिए प्लंब-लाइन जैसी डिवाइस के साथ संवर्धित एक छड़ी।

अनुप्रयोग:

- वस्तुओं की ऊँचाई और दूरियाँ मापता है।
- आकाशीय प्रेक्षणों के लिए झुकाव या उन्नयन कोण निर्धारित करता है।
-

14.1 यंत्रों का महत्व

अवलोकन संबंधी खगोल विज्ञान की नींव: इन उपकरणों ने प्राचीन भारत में व्यवस्थित खगोलीय प्रेक्षणों के लिए आधार तैयार किया।

- **बहुमुखी प्रतिभा:** अपनी सरलता के बावजूद, ये उपकरण अत्यधिक बहुमुखी थे और इन्हें विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए अनुकूलित किया जा सकता था।
- **वैज्ञानिक उन्नति:** इन उपकरणों से प्राप्त अंतर्दृष्टि ने भारतीय खगोलीय सिद्धांतों और तकनीकों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इन उपकरणों की सरलता प्राचीन भारतीय विज्ञान की परिष्कार और अवलोकन संबंधी खगोल विज्ञान पर इसके स्थायी प्रभाव को उजागर करती है।



यंत्र-सम्राट, ध्रुव-प्रोत-चक्र-यंत्र (चक्र-यंत्र), विषुवत्-यंत्र (नाड़ीवलय-यंत्र)

15. प्राचीन भारत की समुद्री महिमा : एक विस्मृत कथा

प्राचीन भारत का समुद्री इतिहास विश्व इतिहास का एक अद्भुत किंतु प्रायः उपेक्षित अध्याय है। भारत को प्रायः एक स्थलीय, पृथक सभ्यता के रूप में चित्रित किया जाता है, किन्तु ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक प्रमाण दर्शाते हैं कि भारत ने हजारों वर्षों तक दूरस्थ देशों के साथ निरंतर समुद्री सम्बन्ध बनाए रखे। यह दीर्घकालिक समुद्री परंपरा न केवल व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान में सहायक रही, बल्कि भारत की उन्नत पोत निर्माण और समुद्री नौवहन की समझ का भी सशक्त प्रमाण है।

'नेविगेशन' (Navigation) शब्द की उत्पत्ति भी संस्कृत से हुई है। 'Navigation' शब्द संस्कृत के 'नवगतिः' (Navgatih) से निकला है, जिसका अर्थ है 'जल के माध्यम से गमन', और इसी प्रकार 'Navy' शब्द भी संस्कृत मूल 'नौ' (Nou) से आया है, जिसका अर्थ है 'जहाज' या 'पोत' (Source: Mookerji, R. K. (1912). *Indian Shipping: A history of the sea-borne trade and maritime activity of the Indians from the earliest times.* Bombay: Longmans, Green & Co.)। यह भाषाई संबंध स्पष्ट रूप से इस बात का संकेत देता है कि भारत में गहन नौसैनिक परंपरा विद्यमान थी, जिसने पश्चिमी समुद्री शब्दावली को भी प्रभावित किया।

प्राचीन संस्कृत साहित्य दर्शाता है कि भारतवासियों ने पोतों के विभिन्न भागों का वर्णन करने हेतु विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली विकसित कर ली थी, जो उनकी समुद्री

दक्षता का द्योतक है। लंगर, जो जलधारा के प्रतिकूल पोत को स्थिर रखने का उपकरण है, 'नव-बन्धन-कीलः' (Nava-Bandhan-Kilaha) कहलाता था, जिसका अर्थ है 'जहाज को बाँधने की कील'। पाल को 'वात वस्त्र' (Vata Vastra) कहा जाता था - अर्थात् 'वायु का वस्त्र'। पोत का मुख्य ढाँचा 'स्थूल भागः' (Stula Bhaga) कहा जाता था, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'विस्तृत भाग', जो उसके चौड़े आकार को इंगित करता है। दिशा-निर्देशन हेतु प्रयुक्त पतवार को 'केणि-पट्ट' (Keni-Pata) या 'कर्णः' (Karna) कहा जाता था - अर्थात् 'ब्लेड' या 'कर्ण', जो उसकी मुड़ी हुई ब्लेड जैसी आकृति को दर्शाता है। पोत की रीढ़ की हड्डी अर्थात् कील 'नव-तल' (Nava-Tala) कहलाती थी - 'जहाज की भूमि', तथा पाल को थामने वाला स्तम्भ 'कुपदण्ड' (Kupadanda) - 'जहाज का दण्ड' कहा जाता था (Mookerji, 1912)। इतनी सटीक शब्दावली इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारत में पोत निर्माण केवल शिल्प-कला नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित अनुशासन था।

भारतीय नाविकों ने संभवतः ऐसे नौवहन उपकरणों का प्रयोग किया था जो विश्व के अन्य भागों में सामान्य होने से बहुत पहले से प्रचलित थे। आश्चर्यजनक रूप से, प्राचीन भारतीय समुद्र यात्रियों को 'मच्छ यन्त्र' (Maccha Yantra) नामक एक चुंबकीय कंपास का ज्ञान था - जो तेल से भरे पात्र में तैरती हुई लोहे की मछली थी, जो सदा उत्तर दिशा की ओर संकेत करती थी। इस अद्भुत विवरण का उल्लेख किसी भारतीय उत्साही ने नहीं, बल्कि ब्रिटिश नौसेना वास्तुविद् श्री जे. एल. रीड ने किया था, जो इंग्लैण्ड में नौसेना वास्तुविदों के संस्थान से सम्बद्ध थे। बॉम्बे गजेटियर (Vol. XIII, Part II, Appendix A) में रीड ने उल्लेख किया कि प्राचीन हिन्दू ज्योतिषाचार्य इस चुंबकीय मछली का उपयोग निर्माण अनुष्ठानों तथा नौवहन में करते थे (Reid, as cited in Mookerji, 1912)। 'मच्छ यन्त्र' नामक संस्कृत पद ही इस उपकरण के दिशादर्शक उपयोग को स्पष्ट करता है, जिससे प्रतीत होता है कि समुद्री कंपास की अवधारणा संभवतः भारत में उत्पन्न हुई और बाद में अरब माध्यम से पश्चिम में पहुँची। इसके अतिरिक्त, 'वृत्तशङ्ग-भाग' नामक एक उपकरण का भी उल्लेख है, जो तारे की कोणीय स्थिति मापने हेतु सेक्टेण्ट के रूप में प्रयुक्त होता था।

भारत के पोत निर्माण ज्ञान की व्यापकता का सर्वोत्तम उदाहरण 'युक्ति कल्पतरु' (Yukti Kalpa Taru) नामक प्राचीन ग्रंथ में मिलता है, जिसे परंपरागत रूप से भोज नृपति को समर्पित किया जाता है। इस विशद कृति का अनुवाद प्रो. आउफ्रेच्ट ने अपनी *Catalogue of Sanskrit Manuscripts* में किया तथा डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने अपनी

कालजयी पुस्तक *Bhartiya Shipping* (1912) में इसका गहन अध्ययन किया। युक्ति कल्पतरु पोत निर्माण विज्ञान पर एक तकनीकी ग्रंथ है, जिसमें विभिन्न प्रकार के जहाजों, उनके आकार-प्रकार तथा निर्माण सामग्रियों का सूक्ष्म वर्णन है। इसमें समुद्री एवं नदीय पोतों के लिए उपयुक्त विभिन्न लकड़ियों के गुणों का विवेचन भी मिलता है। जहाजों को सामान्य - समुद्री यात्राओं हेतु तथा विशेष - युद्ध या शाही यात्रा हेतु विशेष कार्यों के लिए वर्गीकृत किया गया था। समुद्री जहाजों में दीर्घ प्रकार के जहाज होते थे, जिनका लम्बा और संकरा ढाँचा गति हेतु उपयुक्त था, तथा उन्नत प्रकार के पोत होते थे, जिनका ऊँचा ढाँचा समुद्री तूफानों का सामना करने के लिए बनाया जाता था।

यहाँ तक कि कक्षों की व्यवस्था भी वैज्ञानिक रूप से की जाती थी। जिन पोतों में एक छोर से दूसरे छोर तक केबिन होते थे, वे 'सर्वमन्दिर' कहलाते थे, जो शाही खजाना या घोड़ों के परिवहन हेतु उपयुक्त थे। जिनमें मध्य भाग में केबिन होते थे (मध्यममन्दिर), वे शाही आनंद यात्राओं के लिए बनाए जाते थे, जबकि अग्र भाग में केबिन वाले पोत (अग्र मन्दिर) मुख्यतः युद्ध हेतु निर्मित होते थे। ये विवरण न केवल सुविधा और सौंदर्य के प्रति संवेदनशीलता को दर्शाते हैं, बल्कि प्राचीन भारतीय नौसेना वास्तुविदों की तकनीकी प्रवीणता को भी प्रकट करते हैं (Source: Mookerji, 1912)।

लोथल के सिंधु घाटी सभ्यता के डॉकयार्ड जैसी पुरातात्त्विक खोजें भारत की प्राचीन समुद्री परंपरा की पुष्टि करती हैं। ये अवशेष और साहित्यिक साक्ष्य मिलकर इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारत प्राचीन विश्व के व्यापारिक नेटवर्क का केंद्र था। भारतीय व्यापारी फोनीशियनों, यहूदियों, असीरियों, यूनानियों, रोमनों, मिस्रवासियों तथा मध्यकाल और आधुनिक काल में तुर्कों, वेनिसियों, पुर्तगालियों, डचों और अंग्रेजों के साथ सजीव व्यापारिक सम्बन्ध बनाए रखते थे (Source: Mahajan, 2016)। हिन्दू और बौद्ध शास्त्रों में समुद्री व्यापार और दूरस्थ यात्राओं का बारम्बार उल्लेख मिलता है, जो इस बात का प्रमाण है कि भारत का समुद्री व्यापार अत्यन्त व्यापक और प्राचीन था।

पश्चिमी विद्वानों ने भी इस समृद्ध समुद्री अतीत को स्वीकार किया है। फ्रांसीसी इतिहासकार जॉर्ज कोडेस ने दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत के अल्पज्ञात प्रभाव का उल्लेख किया है और संकेत दिया है कि यदि गहन शोध किया जाए तो भारतीय सांस्कृतिक और आर्थिक प्रभाव की सीमा इससे कहीं अधिक व्यापक सिद्ध होगी (Source: Mahajan, 2016)। इसी प्रकार सिल्वेन लेवी ने दर्शाया है कि *रामायण*, *महाभारत*, *महानीद्देश* तथा *बृहद्कथा* जैसी कृतियों में प्रथम शताब्दी ईस्वी तक भारत के व्यापारी बर्मा, मलय प्रायद्वीप तथा जावा-सुमात्रा जैसे द्वीपों से परिचित थे (Source: Mahajan, 2016)। ये

तथ्य दर्शाते हैं कि भारतीय व्यापारी केवल लाभ हेतु नहीं, बल्कि अदम्य संकल्प और साहस के साथ समुद्री संकटों का सामना करते थे।

भारत की अन्वेषण और यात्रा की भावना का सटीक द्योतक है यह संस्कृत मंत्र:

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।"

(ऋग्वेद 1.89.1)

"सर्व दिशाओं से हमारे पास शुभ विचार आयें।"

प्राचीन ग्रंथों, पुरातत्व और विदेशी टिप्पणियों से यह स्पष्ट होता है कि भारत एक समय में एक महान समुद्री शक्ति था, जिसकी पोत निर्माण और नौवहन परंपरा कई शताब्दियों तक अतुलनीय रही। यह समृद्ध विरासत दुर्भाग्यवश आधुनिक ऐतिहासिक कथाओं में गौण हो गई है, किन्तु इसे वैश्विक समुद्री इतिहास में उसके यथोचित स्थान पर पुनर्स्थापित किया जाना चाहिए।

16. राजा जय सिंह सवाई का जंतर मंतर

जयपुर के शासक, राजा सवाई जय सिंह द्वितीय (1686-1743 ई.) खगोल विज्ञान में अपने योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं, विशेषकर जंतर मंतर वेधशालाओं की स्थापना के माध्यम से। ये वेधशालाएँ भारतीय खगोल विज्ञान के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर थीं और भारतीय, अरबी और यूरोपीय खगोलीय प्रथाओं के मिश्रण का प्रतिनिधित्व करती थीं। जय सिंह एक स्व-सिखाया गया खगोलशास्त्री थे, जिन्होंने विभिन्न परंपराओं के अपने ज्ञान को संयोजित किया और ऐसे उपकरण बनाने का लक्ष्य रखा जो उस समय उपलब्ध उपकरणों की तुलना में अधिक सटीक थे।

16.1 राजा जय सिंह के प्रमुख योगदान

- **वैज्ञानिक दृष्टिकोण:** जय सिंह को भारतीय खगोल विज्ञान में प्रशिक्षित किया गया था, लेकिन उन्होंने मौजूदा खगोलीय डेटा, विशेष रूप से पहले के मॉडल में उपयोग किए जाने वाले पुराने स्थिरांक की अपर्याप्तता को पहचाना। इसने उन्हें अधिक सटीक खगोलीय अवलोकनों के लिए बड़े पैमाने के उपकरणों को डिजाइन और निर्माण करने के लिए प्रेरित किया।
- **नवोन्मेषी उपकरण:** जय सिंह ने कई खगोलीय उपकरणों का आविष्कार और उपयोग किया जो उनके यूरोपीय समकक्षों की तुलना में बड़े, मजबूत और

अधिक सटीक थे। इन उपकरणों को टूट-फूट के साथ-साथ मौसम की बदलती परिस्थितियों से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए डिज़ाइन किया गया था।

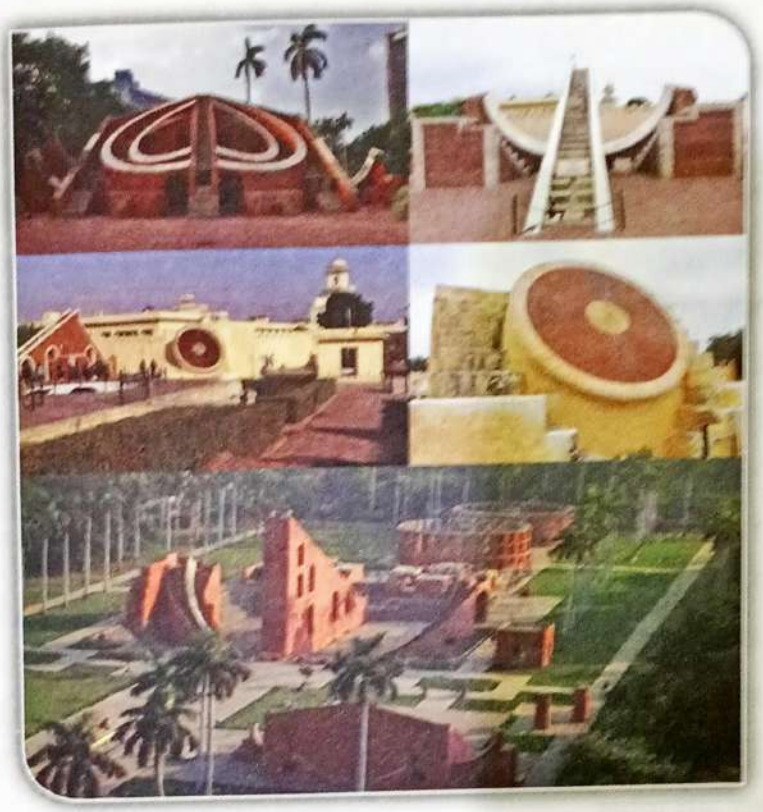

जंतर मंतर, नई दिल्ली और जयपुर, एक खगोलीय वेधशाला है।

- **जंतर मंतर वेधशालाएँ:** जय सिंह ने भारत में पाँच जंतर मंतर वेधशालाएँ स्थापित कीं: दिल्ली, जयपुर, वाराणसी, उज्जैन और मथुरा में। इन वेधशालाओं में विभिन्न प्रकार के उपकरण रखे गए थे, जिनमें से कुछ नवीन डिजाइन वाले थे और अन्य जो पारंपरिक भारतीय तरीकों पर आधारित थे, जैसे कि यंत्र चक्र, नदीवलया, और कपाल यंत्र.

16.2 राजा जयसिंह का सम्राट यंत्र (सर्वोच्च यंत्र)

जंतर मंतर वेधशालाओं में निर्मित सबसे महत्वपूर्ण उपकरणों में से एक था सम्राट यंत्र. यह यंत्र एक विशाल धूपघड़ी है, जिसमें एक ऊर्ध्वाधर सूक्ति दीवार ठीक उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थापित है। यहां इसकी प्रमुख विशेषताएं और माप हैं:

- **निर्माण:** सम्राट यंत्र चूने-ईंट पत्थरों से बनाया गया है, जो इसे मजबूत और टिकाऊ बनाता है। इसकी मोटाई 3 हस्त (लगभग 54 इंच) है, और इसकी लंबाई 24 हस्त (लगभग 432 इंच) है। उपकरण को एक तिरछे ऊपरी हिस्से के साथ डिज़ाइन किया गया है, जो सीधे नॉर्थ स्टार, पोलारिस की ओर इशारा करता है।

1. रचना और कार्यक्षमता

- **ग्नोमन दीवार:** सम्राट यंत्र की दीवार यंत्र के छाया-निर्धारण भाग के रूप में कार्य करती है। इसे उत्तर-दक्षिण संरेखण में बनाया गया है, जो यह सुनिश्चित करता है कि दीवार से पड़ने वाली छाया पूरे दिन सूर्य की स्थिति के अनुसार चलती है।
- **चतुर्भाग:** यहां दो बड़े पथरीले चाप हैं, एक पूर्वी तरफ और एक पश्चिमी तरफ। प्रत्येक चाप की त्रिज्या 6 है जल्दी (लगभग 108 इंच) और आकार में एक चतुर्थांश से भी अधिक है। ये चाप समय और खगोलीय स्थिति को मापने में मदद करते हैं।
- **ग्रेजुएशन:** धनुषों को 15 समान घटियों में विभाजित किया गया है, और प्रत्येक विभाजन को छह छोटे इकाइयों में और विभाजित किया गया है, जिससे अत्यधिक सटीक माप लेना संभव होता है।
- **लोहे के छल्ले:** आगे की माप में मदद के लिए ग्नोमन दीवार के किनारों पर छोटे लोहे के छल्ले लगाए जाते हैं, जो आर्क के केंद्रों के साथ संरेखित होते हैं।

2. उद्देश्य और महत्व

- **सम्राट यंत्र** यह न केवल एक प्रभावशाली वास्तुशिल्प उपलब्धि है बल्कि एक सटीक खगोलीय उपकरण भी है। इसका उपयोग सूक्ति द्वारा डाली गई छाया को मापकर दिन के समय को ट्रैक करने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त, यह सौर स्थितियों और खगोलीय घटनाओं, जैसे संक्रांति और विषुव के समय को निर्धारित करने के लिए मूल्यवान डेटा प्रदान करता है।
- **जय सिंह के वेधशालाएँ**, विशेष रूप से दिल्ली और जयपुर में स्थित **जंतर मंतर**, प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र के महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में आज भी कार्यरत हैं। यंत्र डिज़ाइन में उनकी नवाचार और विभिन्न परंपराओं से खगोलशास्त्रीय तकनीकों का उपयोग करने से समय-निर्धारण और आकाशीय मापों की सटीकता में सुधार हुआ, जो भारत में वैज्ञानिक यंत्रों के विकास में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है।

3. सम्राट यंत्र से समय मापन

सम्राट यंत्र अपने सूक्ति द्वारा डाली गई छाया का उपयोग करके सटीक समय माप के लिए डिज़ाइन किया गया है। यह ऐसे काम करता है:

- **पढ़ने का समय:** ग्नोमोन का छाया यंत्र पर आर्क के माध्यम से गति करती है, और समय को **घटियों** में पढ़ा जा सकता है, जो भारतीय खगोलशास्त्र में प्रयुक्त एक पारंपरिक समय इकाई है।
  - जब छाया **पश्चिमी दिशा** में गिरती है, तो यह **मध्याह्न** तक शेष समय को सूचित करती है। इसके विपरीत, यदि छाया **पूर्वी दिशा** में गिरती है, तो यह मध्याह्न के बाद का समय दर्शाती है।

सटीकता संबंधी विचार

कदम पर्यवेक्षक को छाया के करीब जाने में मदद करने के लिए उपकरण के साथ रखा जाता है, जिससे समय पढ़ने में सटीकता में सुधार होता है।

चापों के वजन के कारण, वे पूरी तरह से संरेखित नहीं हो सकते हैं, खासकर उनके पास **अंतक** किनारे, जो इन बिंदुओं से ली गई समय रीडिंग की सटीकता को थोड़ा प्रभावित कर सकता है।

सीमाएँ:

- डाली गई छाया शंकु से देखने पर अधिक स्पष्ट होता है सूरज, लेकिन के लिए चंद्रमा, छाया बहुत कम स्पष्ट है।
- ग्रह और तारे दृश्यमान छाया नहीं डालते हैं, जिससे इस उपकरण के साथ उनकी स्थिति को ट्रैक करना अधिक कठिन हो जाता है। हालाँकि, यह निर्धारित करना अभी भी संभव है घंटा कोण सम्राट यंत्र के साथ संयोजन में अन्य तरीकों या गणनाओं का उपयोग करके ग्रहों और सितारों की।

4. अन्य पुरातत्वीय खगोलीय स्थल

जंतर-मंतर वेधशालाओं के अलावा, भारत कई अन्य महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलों का घर है। कुछ उल्लेखनीय उदाहरणों में शामिल हैं:

बुर्जहोम कश्मीर

श्रीनगर से लगभग 10 किमी उत्तर पूर्व में स्थित, बुर्जहोम एक नवपाषाण स्थल है जिसमें प्रारंभिक खगोलीय प्रथाओं के प्रमाण मिलते हैं। साइट लगभग दिनांकित है 3000-

1500 ईसा पूर्व, पत्थर की पटिया साइट पर पाया गया, जिसकी माप 48 सेमी × 27 सेमी है, आकाश में दो चमकदार वस्तुओं को दर्शाया गया है, जो संभवतः शिकार के दृश्य के साथ-साथ आकाशीय पिंडों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह खगोलीय घटनाओं के प्रारंभिक मानव अवलोकन का सुझाव देता है।



बुरजहाम बस्ती जम्मू और कश्मीर में खोजी गई पहली नवपाषाण स्थल है और यह भारत का सबसे उत्तरी खुदाई किया गया नवपाषाण स्थल भी है।

ब्रह्मगिरि, कर्नाटक

श्रीनगर से लगभग 10 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में स्थित, बुरज़होम एक नवपाषाण कालीन स्थल है जहां प्रारंभिक खगोलीय प्रथाओं के साक्ष्य मिलते हैं। यह स्थल लगभग 3000-1500 ईसा पूर्व का माना जाता है। साइट के अध्ययन से पता चलता है कि पत्थर के घेरे का उपयोग आकाशीय सरेखण या खगोलीय अवलोकनों के लिए किया गया होगा, जैसे कि संक्रांति या अन्य महत्वपूर्ण खगोलीय घटनाओं को चिह्नित करना।

हनमसागर (कर्नाटक)

कर्नाटक में एक और महापाषाण स्थल, मुर्गे की कहानियाँ पुरातत्व-खगोल विज्ञान में भी इसका महत्व है। यह क्षेत्र में मेगालिथिक पत्थर के निर्माण की एक व्यापक परंपरा का हिस्सा है, जिनमें से कई में खगोलीय सरेखण हैं जिनका उपयोग समय और खगोलीय घटनाओं को ट्रैक करने के लिए किया गया होगा।

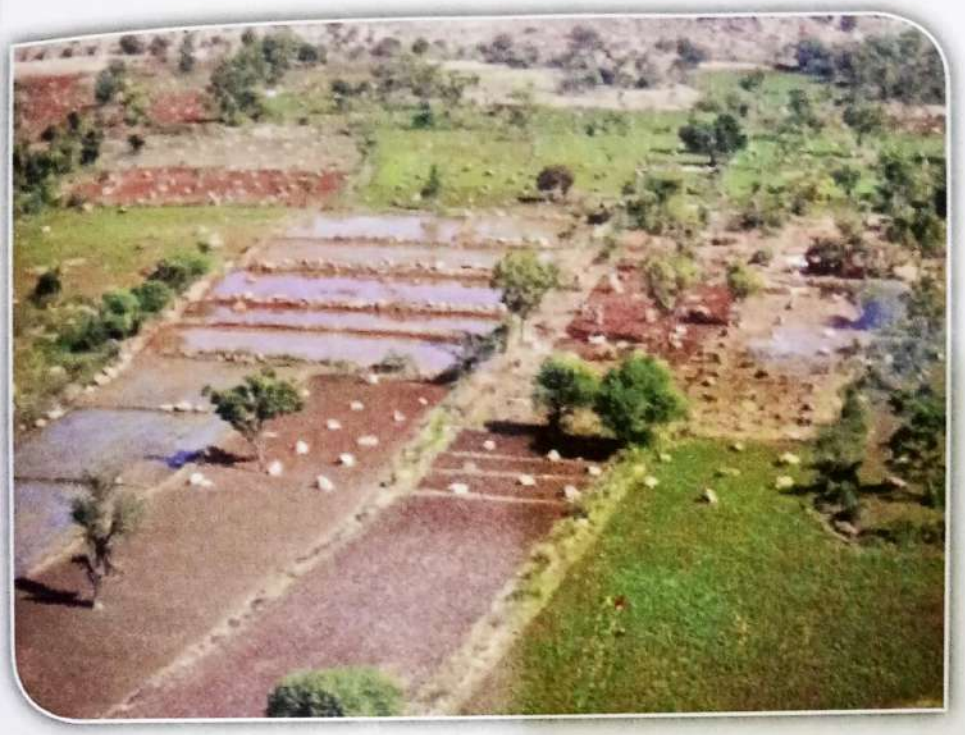

हनमसागर में सर्वेक्षण का एक दृश्य

जंतर-मंतर वेधशालाओं के साथ ये स्थल, भारत में खगोलीय अवलोकन और टाइमकीपिंग के लंबे इतिहास को प्रदर्शित करते हैं, जो प्राचीन भारतीय सभ्यताओं द्वारा ब्रह्मांड की उन्नत समझ को प्रदर्शित करते हैं। राजा जय सिंह द्वारा निर्मित सम्राट यंत्र और अन्य उपकरण वैज्ञानिक नवाचार के साथ पारंपरिक भारतीय ज्ञान के संलयन के प्रमाण के रूप में काम करते हैं।

17. निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय खगोलविद्या का अध्ययन इस बात का सशक्त प्रमाण है कि भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता बौद्धिक और वैज्ञानिक रूप से अत्यंत परिपक्व थी। समय को एक चक्रीय और ब्रह्माण्डीय शक्ति के रूप में देखना—जो परमाणु के अणु-पल से लेकर ब्रह्मा के अरबों वर्षों तक फैला हो—अपने आप में एक अद्वितीय दृष्टिकोण है। भारतीय ऋषियों ने न केवल सिद्धांत विकसित किए, बल्कि व्यावहारिक यंत्रों जैसे कि घड़ी-स्तंभ (gnomons), जल-घड़ियाँ, और जटिल यंत्रों का निर्माण किया जिनसे खगोलीय अवलोकन और पंचांग की गणना की जाती थी।

आर्यभटीय और सिद्धान्त-शिरोमणि जैसे ग्रंथों में ग्रहों की गति का सटीक विवरण, जंतर मंतर जैसे वेधशालाएं, और खगोलीय रूप से संरेखित पुरातात्त्विक स्थल—ये सभी एक गहन वैज्ञानिक परंपरा के जीवंत प्रमाण हैं। यह परंपरा केवल अनुष्ठान तक सीमित नहीं थी, बल्कि ब्रह्माण्ड को समझने की एक तर्कसंगत और दार्शनिक दृष्टि से प्रेरित थी।

आज आवश्यकता है कि आधुनिक विद्वत्ता इस समृद्ध धरोहर को उचित मान्यता दे—उसके पैमाने, सटीकता और आध्यात्मिक दृष्टि को। प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र की यह परंपरा न केवल अतीत की विरासत है, बल्कि भविष्य की प्रेरणा भी है।

1. **The Astronomical Code of the Ṛgveda**, Subhash Kak, Aditya Prakashan, ISBN: 9788186471274 - Vedic cosmology, early astronomical symbolism.
2. **Astronomy in India: A Perspective**, S. Balachandra Rao, Indian Institute of Astrophysics, ISBN: 9788173716253 - Overview of Indian astronomy from Vedic to modern times.
3. **Indian Astronomy: A Sourcebook**, B. V. Subbarayappa and K. V. Sarma, Nehru Centre, ISBN: 9788190138053 - Historical sources and documents on Indian astronomy.
4. **Time in Indian Philosophy: A Collection of Essays**, edited by B. K. Matilal, Clarendon Press, ISBN: 9780198239763 - Indian conceptions of time in philosophy and cosmology.
5. **Cosmos, Chaos, and the World to Come: The Ancient Roots of Apocalyptic Faith**, Norman Cohn, Yale University Press, ISBN: 9780300055986 - Comparative temporal cosmologies, including Indian traditions.
6. **Time and Temporality in the Ancient World**, edited by Ralph M. Rosen, University of Pennsylvania Press, ISBN: 9781931707671 - Comparative ancient time concepts, includes Bhāratīya perspectives.
7. **Āryabhaṭīya of Āryabhaṭa**, translated by K. S. Shukla and K. V. Sarma, Indian National Science Academy, ISBN: 9788174800746 - Classical treatise on planetary motion, trigonometry, and cosmology.
8. **Siddhānta-Śiromaṇi of Bhāskarācārya**, edited by K. S. Shukla, Indian National Science Academy, ISBN: 9788174800739 - Astronomy, planetary science, and calculation techniques.
9. **Līlāvatī of Bhāskarācārya**, translated by T. A. Sarasvati Amma, Indian National Science Academy, ISBN: 9788120814202 - Mathematical foundation supporting astronomy.
10. **Pañcāṅga and Indian Calendrical Systems**, R. N. Iyengar, *Indian Journal of History of Science*, DOI: 10.16943/ijhs/2017/v52i4/49216 - Panchāṅga, solar-lunar coordination, astronomical basis.

11. **The Zodiac in Indian Astronomy and Culture**, David Pingree, *Journal of the American Oriental Society*, DOI: 10.2307/598267 - Evolution of Nakṣatras and zodiac in Indian astronomy.

12. **Ecliptic and Equatorial Coordinate Systems in Ancient India**, S. Balachandra Rao, *Indian Journal of History of Science*, DOI: 10.16943/ijhs/1980/v15i1/121639 - Ancient mathematical astronomy.

13. **A Descriptive Catalogue of Indian Astronomical Instruments**, S. R. Sarma, Tredition, ISBN: 9783748227823 - Yantras used in classical astronomy.

14. **Jantar Mantar: Observatories of Jai Singh II**, R. V. Vaidya, National Council of Science Museums, ISBN: 9788186841459 - Architecture and function of Indian observatories.

15. **Instruments of the Siddhānta-Śiromaṇi**, B. V. Subbarayappa, *Indian Journal of History of Science*, DOI: 10.16943/ijhs/1982/v17i1/119279 - Instrumentation in classical treatises.

16. **Jaina Astronomy**, A. N. Singh, *Indian Journal of History of Science*, DOI: 10.16943/ijhs/1930/v1i1/100001 - Time cycles, cosmology, and astronomy in Jain tradition.

17. **Jain Cosmology**, Kristi L. Wiley, Motilal Banarsidass, ISBN: 9788120809789 - Structure of universe and time in Jain philosophy.

18. **Archaeoastronomy in India**, B. V. Subbarayappa, Oxford University Press (India), ISBN: 9780195646526 - Astronomical alignments in Indian temples and sites.

19. **Sacred Geometry and Temple Architecture in India**, Adam Hardy, Indira Gandhi National Centre for the Arts, ISBN: 9788173053099 - Cosmological principles embedded in temple design.

20. **Astronomical Alignments of Harappan Sites**, V. N. Misra, *Purātattva*, ISSN: 0970-2104 - Archaeoastronomical evidence from the Indus Valley.

21. **The Tradition of Astronomy in India**, edited by N. Kameswara Rao, Indian National Science Academy, ISBN: 9788174800692 - Modern essays on ancient and classical Indian astronomy.

22. **Science and Civilization in India (Vol. २: Astronomy)**, D. M. Bose, S. N. Sen, B. V. Subbarayappa, National Institute of Science Communication, ISBN: 9788175253602 - Scientific development in Indian history.

बहुविकल्पीय प्रश्न

निम्नलिखित में से कौन सा खगोल विज्ञान में खगोलीय पिंडों के बारे में भारतीय दृष्टिकोण का सबसे अच्छा वर्णन करता है?

क) आकाशीय पिंडों को निष्क्रिय वस्तुओं के रूप में देखा जाता है।

ख) आकाशीय पिंड पृथ्वी पर जीवन के एकीकृत और परस्पर जुड़े हुए पहलू हैं।

ग) आकाशीय पिंडों का अध्ययन मुख्य रूप से उनके वैज्ञानिक गुणों के लिए किया जाता है।

घ) आकाशीय पिंड केवल कृषि योजना के लिए महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय परंपरा में सूर्य को इस रूप में देखा जाता है:

क) एक अक्रिय वस्तु जो ऊर्जा उत्सर्जित करती है।

ख) एक देवता या जीवित इकाई।

ग) बिना किसी सांस्कृतिक महत्व के एक दूर की वस्तु।

घ) समय मापने का एक मात्र उपकरण।

प्राचीन भारतीयों के जीवन में खगोल विज्ञान की क्या भूमिका थी?

क) इसका अध्ययन केवल विद्वानों और खगोलविदों द्वारा किया गया था।

ख) यह किसानों, कारीगरों और परिवारों के लिए दैनिक गतिविधियों के लिए प्रासंगिक था।

ग) इसे सांस्कृतिक और धार्मिक प्रथाओं से अलग कर दिया गया था।

घ) इसका उपयोग मुख्य रूप से ऐतिहासिक घटनाओं की गणना के लिए किया जाता था।

4. निम्नलिखित में से कौन भारतीय खगोल विज्ञान की एक परिभाषित विशेषता थी?

क) केवल गणितीय समीकरणों पर ध्यान केंद्रित करना।

ख) सौर मंडल के हेलियोसेंट्रिक मॉडल पर निर्भरता।

ग) पृथ्वी पर जीवन के साथ आकाशीय पिंडों का समग्र एकीकरण।

घ) आकाशीय यांत्रिकी पर विशेष ध्यान।

5. निम्नलिखित में से कौन सा प्राचीन भारतीय ग्रंथ ग्रहों की गतिविधियों के दस्तावेज़ीकरण से संबंधित है?

क) भगवद्गीता

ख) पराशर तंत्र

ग) यजुर्वेद

घ) रामायण

6. प्राचीन भारत में खगोल विज्ञान का प्राथमिक कृषि महत्व क्या था?

क) ग्रहों की गति की भविष्यवाणी करने के लिए।

ख) मंदिरों के निर्माण का मार्गदर्शन करना।

ग) मौसमी परिवर्तनों और मौसम के पैटर्न की भविष्यवाणी करना।

घ) सूर्य की सटीक स्थिति स्थापित करना।

7. पंचांग, पारंपरिक भारतीय कैलेंडर प्रणाली, मुख्य रूप से उपयोग की जाती थी:

क) कृषि योजना।

ख) अंतराल महीनों की गणना।

ग) समय की गणना और घटना की योजना।

घ) तारों की स्थिति का मानचित्रण।

8. निम्नलिखित में से किस खगोलशास्त्री ने एक ग्रहीय मॉडल प्रस्तावित किया जो आधुनिक समझ से काफी मिलता-जुलता है?

क) आर्यभट

ख) नीलकंठ सोमयाजी

ग) भास्कर प्रथम

घ) वराहमिहिर

9. अंतरवर्ती मासों का संकल्पना, जो भारतीय खगोलशास्त्र में सूर्य और चंद्र कैलेंडरों को समकालिक करने के लिए उपयोग की जाती है, किस ग्रंथ में वर्णित है?

क) ऋग्वेद

ख) वेदांग ज्योतिष

ग) महाभारत

घ) अथर्ववेद

10. किस प्राचीन भारतीय ग्रंथ में कृत्तिका से शुरू होने वाले 27 सितारों की सूची है?

क) रामायण

ख) ऋग्वेद

ग) यजुर्वेद

घ) अथर्ववेद

11. खगोल विज्ञान में जैन योगदान किस विहित पाठ में पाए जाते हैं?

क) भगवद्गीता

ख) स्थानंगा

ग) रामायण

घ) मनुस्मृति

12. ग्रहों की स्थिति देखने की प्रथा किस भारतीय महाकाव्य में विस्तृत है?

क) रामायण

ख) महाभारत

ग) भगवद्गीता

घ) उपनिषद

13. भारतीय खगोल विज्ञान में "युग" की अवधारणा का तात्पर्य है:

क) एक खगोलीय घटना।

ख) सौर वर्षों को चंद्र चरणों के साथ संरेखित करने वाला पांच साल का चक्र।

ग) पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी।

घ) नए चंद्र वर्ष का प्रतीक एक त्योहार।

14. जैन धर्म के दर्शन और प्रथाओं में खगोल विज्ञान के संबंध में निम्नलिखित में से क्या शामिल है?

क) वे आकाशीय पिंडों के अध्ययन से बचते थे।

ख) उन्होंने टाइमकीपिंग और नेविगेशन के लिए खगोलीय ज्ञान का उपयोग किया।

ग) उन्होंने केवल ज्योतिष पर ध्यान केंद्रित किया, खगोल विज्ञान पर नहीं।

घ) उन्होंने तारों और ग्रहों के किसी भी महत्व से इनकार किया।

15. ऋग्वेद में पाया जाने वाला नासदीय सूक्त इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि:

क) खगोलीय दृष्टिकोण से ब्रह्मांड के निर्माण का वर्णन करता है।

ख) विस्तृत खगोलीय चार्ट प्रदान करता है।

ग) पृथ्वी के संबंध में ग्रहों की गति का वर्णन करता है।

घ) स्टार स्थितियों के आधार पर कृषि योजना के लिए दिशानिर्देश प्रदान करता है।

16. सिद्धांत ग्रंथों के उद्भव के साथ भारतीय खगोल विज्ञान में प्राथमिक प्रगति थी:

क) ग्रहों की गति का अवलोकन।

ख) सौरमंडल का सूर्यकेन्द्रित मॉडल।

ग) परिष्कृत गणितीय दृष्टिकोण और ग्रहों की गति की गणना।

घ) केवल ज्योतिषीय प्रथाओं पर ध्यान दें।

17. क्रांतिवृत्त समन्वय प्रणाली आधारित है:

क) चंद्रमा की कक्षा।

ख) पृथ्वी से देखा गया सूर्य का स्पष्ट पथ।

ग) पृथ्वी की घूर्णन धुरी।

घ) आकाशीय ध्रुव।

18. क्षैतिज समन्वय प्रणाली पर्यवेक्षकों को मापकर खगोलीय पिंडों का पता लगाने में मदद करती है:

क) पृथ्वी से आकाशीय पिंड की दूरी।

ख) झुकाव और दाहिना आरोहण।

ग) अज़ीमुथ और ऊंचाई।

घ) क्रांतिवृत्त देशांतर और अक्षांश।

भारतीय खगोल विज्ञान में 12 राशियाँ निम्न विभाजन पर आधारित हैं:

क) आकाशीय गोले को बराबर भागों में बाँटना।

ख) क्रांतिवृत्त को 12 बराबर खंडों में बाँटना।

ग) पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा की कक्षा।

घ) आकाश में स्थिर तारे।

भारतीय खगोल विज्ञान में नक्षत्र प्रणाली के बारे में निम्नलिखित में से कौन सा सत्य है?

क) यह क्रांतिवृत्त को 12 बराबर भागों में विभाजित करता है।

ख) प्रत्येक नक्षत्र चंद्र वर्ष के एक महीने से मेल खाता है।

ग) 27 नक्षत्र हैं, प्रत्येक क्रांतिवृत्त के 13° 20' खंड का प्रतिनिधित्व करता है।

घ) नक्षत्र प्रणाली पूरी तरह से सूर्य की स्थिति पर आधारित है।

पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा की परिक्रमा के एक पूर्ण चक्र में कितने नक्षत्र मौजूद होते हैं?

क) 12 ख) 24

ग) 27 घ) 30

चंद्रमा लगभग एक नक्षत्र चक्र पूरा करता है:

क) 365 दिन।

ख) 12 महीने।

ग) 27.32 दिन।

घ) 30 दिन।

23. 12 राशियाँ संबंधित हैं:

क) केवल तारों की स्थिति।

ख) चंद्रमा के चरण।

ग) क्रांतिवृत्त के विभाजन, प्रत्येक 30° तक फैला हुआ।

घ) सूर्य की स्पष्ट गति।

24. निम्नलिखित में से किस ग्रंथ में नक्षत्र प्रणाली का व्यापक उल्लेख है?

क) महाभारत

ख) अथर्ववेद

ग) भगवद्गीता

घ) मनुस्मृति

25. क्षैतिज समन्वय प्रणाली में, जेनिथ का तात्पर्य है:

क) प्रेक्षक के ठीक नीचे का बिंदु।

ख) प्रेक्षक के ठीक ऊपर का बिंदु।

ग) आकाशीय भूमध्य रेखा और क्रांतिवृत्त का प्रतिच्छेदन।

घ) नॉर्थ स्टार का स्थान।

26. नक्षत्रों के नाम इस प्रकार हैं:

क) सौरमंडल के प्रसिद्ध ग्रह।

ख) प्रमुख या पारंपरिक रूप से महत्वपूर्ण सितारे।

ग) भारतीय पौराणिक कथाओं में देवता और देवता।

घ) ग्रहण जैसी खगोलीय घटनाएँ।

27. वह प्रणाली जो अज़ीमुथ और ऊंचाई का उपयोग करके आकाशीय स्थिति का वर्णन करती है, कहलाती है:

क) एक्लिप्टिक समन्वय प्रणाली।

ख) क्षैतिज समन्वय प्रणाली।

ग) भूमध्यरेखीय समन्वय प्रणाली।

घ) गैलेक्टिक समन्वय प्रणाली।

28. भारतीय खगोल विज्ञान में क्रांतिवृत्त की अवधारणा का तात्पर्य है:

क) पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा की कक्षा।

ख) पृथ्वी से देखे गए अनुसार आकाश के माध्यम से सूर्य का स्पष्ट पथ।

ग) सूर्य के चारों ओर ग्रहों की कक्षा।

घ) पृथ्वी के घूमने का मार्ग।

9. निम्नलिखित में से कौन भारतीय खगोल विज्ञान में क्रांतिवृत्त के विभाजनों में से एक का प्रतिनिधित्व करता है?

क) राशि

ख) नक्षत्र

ग) युग

घ) तिथि

0. भारतीय खगोल विज्ञान में 27 नक्षत्र प्रत्येक से संबंधित हैं:

क) एक विशिष्ट ग्रह।

ख) एक तारा या तारों का समूह।

ग) एक राशि चिन्ह।

घ) एक चंद्र चरण।

1. भारतीय चंद्र-सौर कैलेंडर प्रणाली की प्राथमिक विशेषता क्या थी?

क) यह केवल चंद्र मास का पालन करता है।

ख) यह चंद्र महीनों को सौर महीनों के साथ सिंक्रनाइज़ करता है।

ग) यह केवल सौर महीनों का उपयोग करता है।

घ) यह पूर्णतः सौर वर्ष पर आधारित है।

2. प्रारंभिक वैदिक कैलेंडर में, मूल रूप से एक वर्ष में कितने दिन माने जाते थे?

क) 360 दिन

ख) 365 दिन

ग) 354 दिन

घ) 370 दिन

3. भारतीय कैलेंडर प्रणाली में अंतराल महीनों की क्या भूमिका थी?

क) इनका उपयोग धार्मिक आयोजनों को चिह्नित करने के लिए किया जाता था।

ख) उन्होंने चंद्र वर्ष को सौर वर्ष के साथ जोड़ दिया।

ग) उन्होंने चंद्रमा की स्थिति को समायोजित किया।

घ) इनका उपयोग केवल कृषि में टाइमकीपिंग के लिए किया जाता था।

34. आर्यभट्ट के अनुसार, पृथ्वी का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

क) एक सपाट, स्थिर वस्तु।

ख) ब्रह्मांड के केंद्र में एक गोला।

ग) ब्रह्मांड में एक घन।

घ) सूर्य के चारों ओर घूमने वाली एक गोलाकार वस्तु।

35. आर्यभट्ट ने प्रस्तावित किया कि तारों की स्पष्ट गति निम्न के कारण होती है:

क) पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना।

ख) पृथ्वी के चारों ओर तारों की गति।

ग) सूर्य आकाश में घूम रहा है।

घ) पृथ्वी पर चंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण खिंचाव।

36. आर्यभट्ट ने त्रिकोणमिति में कौन सा प्रमुख आविष्कार किया?

क) साइन और कोसाइन फ़ंक्शन का उपयोग।

ख) ज्यार्धा (आधा-राग) की अवधारणा, साइन का अग्रदूत।

ग) कैलकुलस का विकास।

घ) खगोलीय गणना के लिए स्पर्शरेखा का उपयोग।

37. आर्यभट्ट के अनुसार एक महायुग में कितने वर्ष होते हैं?

क) 4,320 वर्ष

ख) 43,200 वर्ष

ग) 432,000 वर्ष

घ) 4,320,000 वर्ष

38. आर्यभट्ट ने वर्तमान कलियुग की शुरुआत की गणना इस प्रकार की:

क) 1000 ईसा पूर्व

ख) 3102 ईसा पूर्व

ग) 1500 ईसा पूर्व

घ) 400 ईसा पूर्व

39. आर्यभटीय में पृथ्वी के घूर्णन को किस प्रकार समझाया गया है?

क) पृथ्वी घूमती नहीं है, तारे घूमते हैं।

ख) पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिससे तारे पश्चिम की ओर बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं।

ग) पृथ्वी चंद्रमा के चारों ओर घूमती है।

घ) पृथ्वी स्थिर है, और तारे इसके चारों ओर घूमते हैं।

40. आर्यभट्ट ने अपने कार्य में किस खगोलीय घटना की गणना के तरीके प्रदान किए?

क) सनस्पॉट चक्र

ख) ग्रहों की स्थिति और ग्रहण

ग) चंद्र चरण

घ) पृथ्वी और तारों के बीच की दूरी

41. ग्रहों की परिक्रमा की गणना करने की आर्यभट्ट की प्रणाली किस पर आधारित थी?

क) पृथ्वी की घूर्णन गति।

ख) आकाश में सूर्य की स्थिति।

ग) महायुग में आकाशीय पिंडों की गति।

घ) सितारों और चंद्रमा के बीच संबंध।

42. भारतीय कैलेंडर में अंतराल महीनों की अवधारणा पेश की गई थी:

क) चंद्र और सौर वर्षों को सरेखित करें।

ख) चंद्र वर्ष की लंबाई समायोजित करें।

ग) धार्मिक त्योहारों को चिह्नित करें।

घ) ग्रहों की गतिविधियों को अधिक सटीकता से ट्रैक करें।

43. आर्यभट्ट द्वारा प्रवर्तित "ज्यार्धा" का क्या महत्व है?

क) इसका उपयोग चंद्र कैलेंडर में समय अंतराल को मापने के लिए किया जाता था।

ख) यह ग्रहों की स्थिति की गणना के लिए एक गणितीय उपकरण था।

ग) यह कोसाइन फ़ंक्शन का प्रारंभिक संस्करण था।

घ) यह चंद्रमा की कलाओं को मापने के लिए उपयोग की जाने वाली इकाई थी।

44. आर्यभट्ट की ग्रहों की क्रांतियों की गणना आधुनिक मूल्यों से कैसे तुलना की गई?

क) उनकी गणनाएँ बेहद ग़लत थीं।

ख) उनके मूल्य आधुनिक गणनाओं से काफी मेल खाते हैं।

ग) उनकी गणनाएँ अतिरंजित थीं।

घ) उनके मूल्य आधुनिक मापों से बहुत छोटे थे।

45. आर्यभट्ट के ग्रंथ "आर्यभटीय" का प्राथमिक उद्देश्य क्या था?

क) धार्मिक अनुष्ठानों का दस्तावेजीकरण करना।

ख) ग्रहों की गति और ग्रहण का वर्णन करना।

ग) भारतीय खगोल विज्ञान के इतिहास के बारे में विस्तार से बताना।

घ) समय निर्धारण के लिए चंद्र कैलेंडर का उपयोग सिखाना।

46. आर्यभट्ट ने एक महायुग में नागरिक दिनों की कुल संख्या की गणना की:

क) 1,577,917,000

ख) 1,577,917,500

ग) 1,577,000,000

घ) 1,579,917,500

47. कौन सी खगोलीय अवधारणा आर्यभट्ट द्वारा प्रस्तुत की गई और भारतीय खगोल विज्ञान की नींव बन गई?

क) सूर्य केंद्रित सौर मंडल की अवधारणा।

ख) पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना।

ग) राशि चक्र के माध्यम से सूर्य की गति।

घ) पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी।

48. पंचांग प्रणाली का मुख्य रूप से उपयोग किया जाता है:

क) पृथ्वी के घूर्णन को मापना।

ख) सूर्य और चंद्र ग्रहण की भविष्यवाणी करना।

ग) शुभ समय और खगोलीय घटनाओं का निर्धारण।

घ) ग्रहों की स्थिति और दूरियों की गणना।

49. निम्नलिखित में से कौन सा पंचांग के पांच घटकों में से एक नहीं है?

क) तिथि

ख) नक्षत्र

ग) कृष्ण पक्ष

घ) योग

50. पंचांग के संदर्भ में "तिथि" क्या है?

क) एक विशिष्ट तारा तारामंडल जिसमें चंद्रमा है।

ख) एक चंद्र दिवस जो सूर्य और चंद्रमा के बीच कोणीय पृथक्करण द्वारा निर्धारित होता है।

ग) पृथ्वी के घूर्णन को मापने के लिए उपयोग की जाने वाली एक समय इकाई।

घ) आकाशीय पिंडों पर आधारित एक विशेष कार्यदिवस।

51. पंचांग में नक्षत्र प्रणाली का तात्पर्य है:

क) चंद्रमा के चरण।

ख) सूर्य और चंद्रमा का कोणीय पृथक्करण।

ग) क्रांतिवृत्त के साथ 27 चंद्र नक्षत्र।

घ) पृथ्वी के सापेक्ष ग्रहों की स्थिति।

52. पंचांग "करण" शब्द का प्रयोग निम्न के लिए करता है:

क) दो ग्रहणों के बीच की अवधि।

ख) तिथि का आधा भाग (कोणीय पृथक्करण का 6°)।

ग) एक विशिष्ट राशि चक्र में सूर्य और चंद्रमा का संरेखण।

घ) सौर कैलेंडर में समय की एक इकाई।

53. पंचांग की गणना का आधार निम्नलिखित में से कौन सा है?

क) पृथ्वी और चंद्रमा के बीच की दूरी।

ख) सूर्य और चंद्रमा के वास्तविक देशांतर।

ग) स्थिर तारों की स्थिति।

घ) एक सौर वर्ष की औसत लंबाई।

64. गोलाकार ढांचे का उपयोग करके आकाशीय पिंडों की स्थिति को मॉडल करने के लिए किस उपकरण का उपयोग किया गया था?

क) घटी-यंत्र

ख) गोला-यंत्र

ग) यष्टि-यंत्र

घ) फलक-यंत्र

65. फलक-यंत्र का उपयोग किया जाता था:

क) चंद्रमा की गति को ट्रैक करें

ख) आकाशीय पिंडों की आंचल दूरी मापें

ग) ग्रहों के बीच कोणीय दूरी का निरीक्षण करें

घ) दिन के दौरान समय को मापें

66. धूपघड़ी (कपाल-यंत्र) का मुख्य रूप से उपयोग किया जाता था:

क) तारों की ऊंचाई मापना

ख) सूर्य की छाया के आधार पर दिन का समय निर्धारित करना

ग) चंद्रमा की स्थिति का निर्धारण

घ) ग्रहों की गति पर नज़र रखना

67. सिद्धांत-शिरोमणि के किस उपकरण का उपयोग आकाशीय मंडलों का प्रतिनिधित्व करने वाले छल्लों का उपयोग करके आकाशीय पिंडों की स्थिति निर्धारित करने के लिए किया जाता है?

क) चक्र-यंत्र

ख) गोला-यंत्र

ग) कैपा-यंत्र

घ) घटी-यंत्र

68. चक्र-यन्त्र का उपयोग किसके लिए किया जाता था:

क) पानी के प्रवाह के आधार पर समय मापना

ख) राशि चक्रों के उदय और अस्त का समय निर्धारित करना

ग) तारों के बीच की दूरी मापना

घ) आकाशीय पिंडों की आंचल दूरी का अवलोकन करना

कैपा-यंत्र (चतुर्थांश) को डिज़ाइन किया गया था:

क) आकाशीय पिंडों की चरम दूरी मापना

ख) आकाशीय क्षेत्र की मॉडलिंग

ग) सूर्य की गति पर नज़र रखना

घ) सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की गणना करना

घटी-यंत्र (जल घड़ी) का उपयोग किया जाता था:

क) आकाशीय पिंडों की स्थिति को मापें

ख) पानी के प्रवाह के आधार पर समय अंतराल मापें

ग) सूर्य की ऊंचाई निर्धारित करें

घ) ग्रहों के उन्नयन कोण को ट्रैक करें

. नाली या शकु वाद्य का उपयोग किया जाता था:

क) सूर्य की ऊंचाई की गणना करें

ख) सूर्य की छाया की लंबाई मापें

ग) दिन का समय निर्धारित करें

घ) आकाशीय प्रेक्षणों के लिए छाया की दिशा और लंबाई मापें

2. धि-यंत्र का मुख्य रूप से उपयोग किया जाता था:

क) ग्रहों की स्थिति को मापें

ख) आकाशीय पिंडों के उन्नयन कोण को ट्रैक करें

ग) सूर्य की स्थिति के आधार पर समय मापें

घ) वस्तुओं की ऊंचाई और दूरी मापें

73. फलक-यंत्र का प्राथमिक उद्देश्य था:

क) सूर्य की ऊंचाई मापें

ख) तारों की गति को ट्रैक करें

ग) आकाशीय पिंडों की आंचल दूरी मापें

घ) ग्रहों की स्थिति निर्धारित करें

74. सिद्धांत-शिरोमणि में वर्णित अनुसार, आकाशीय पिंडों के देशांतर और अक्षांश को मापने के लिए किस उपकरण का उपयोग किया गया था?

क) गोला-यंत्र

ख) चक्र-यंत्र

ग) यष्टि-यंत्र

घ) घटी-यंत्र

75. गोला-यंत्र (आर्मिलरी स्फेयर) का उपयोग किसके लिए किया गया था:

क) दिन का समय मापना

ख) आकाशीय पिंडों की गति का अनुकरण करना

ग) क्रॉस-स्टाफ़ का उपयोग करके तारों की स्थिति निर्धारित करना

घ) आकाशीय पिंडों की ऊंचाई पर नज़र रखना

76. राजा सवाई जय सिंह द्वितीय को निम्नलिखित में से किस वेधशाला की स्थापना के लिए जाना जाता है?

क) महरौली वेधशाला

ख) जंतर मंतर वेधशालाएँ

ग) विक्रमशिला वेधशाला

घ) आर्यभट्ट वेधशाला

77. जंतर मंतर वेधशालाओं में निर्मित सम्राट यंत्र का प्राथमिक उद्देश्य क्या था?

क) तारों और ग्रहों की स्थिति को ट्रैक करने के लिए

ख) सूक्ति द्वारा डाली गई छाया का उपयोग करके समय को मापना

ग) आकाशीय पिंडों के अक्षांश और देशांतर को मापने के लिए

घ) संक्रान्ति के दौरान सूर्य की स्थिति की गणना करना

78. सम्राट यंत्र के निर्माण की एक महत्वपूर्ण विशेषता क्या थी?

क) पूरी तरह से संगमरमर से बना है

ख) बड़ी सूक्ति दीवार ठीक उत्तर-दक्षिण दिशा में स्थापित है

ग) एक चल क्रॉस-स्टाफ़ से सुसज्जित

घ) आकाशीय गोले का प्रतिनिधित्व करने वाले छल्लों का गोलाकार ढाँचा

54. पंचांग का उपयोग तिथि निर्धारित करने के लिए किया जाता है:

क) केवल सूर्य और चंद्र ग्रहण।

ख) त्यौहार, राशिफल और कृषि चक्र।

ग) ग्रहों की क्रांतियाँ।

घ) पृथ्वी का अक्षीय झुकाव।

55. कृषि में पंचांग के व्यावहारिक उपयोग में मुख्य रूप से शामिल हैं:

क) बुआई और कटाई के लिए सर्वोत्तम समय की योजना बनाना।

ख) कृषि वर्ष की लंबाई की गणना करना।

ग) फसल की उपज की भविष्यवाणी के लिए ग्रहों की युति का अवलोकन करना।

घ) फसलों पर ग्रहण के प्रभाव का अध्ययन।

56. पंचांग गतिशील है क्योंकि यह इसका हिसाब रखता है:

क) आकाश में सूर्य की गति।

ख) आकाशीय पिंडों की सापेक्ष गति।

ग) चंद्र ग्रहण हर वर्ष पड़ता है।

घ) पृथ्वी पर बदलते मौसम।

57. पंचांग प्रणाली निम्नलिखित में से किस अभ्यास के लिए भी महत्वपूर्ण है?

क) ग्रहों की क्रांतियों की गणना।

ख) मौसम के मिजाज की भविष्यवाणी करना।

ग) कुंडली तैयार करना और शुभ समय (मुहूर्त) का चयन करना।

घ) आकाशगंगा में पृथ्वी की स्थिति का निर्धारण।

58. पंचांग प्रणाली के घटक "योग" की गणना इस प्रकार की जाती है:

क) सूर्य और चंद्रमा के देशांतर को 12 भागों में विभाजित करना।

ख) सूर्य और चंद्रमा के देशांतरों को जोड़कर 27 खंडों में विभाजित करना।

ग) चंद्र चक्र में दिनों की गिनती।

घ) पृथ्वी का दैनिक घूर्णन और तारों पर इसका प्रभाव।

9. सम्राट यंत्र समय कैसे मापता है?

क) आकाश में सूर्य की स्थिति को ट्रैक करके

ख) सटीक अंतराल के लिए जल घड़ी का उपयोग करके

ग) चापों पर सूक्ति द्वारा डाली गई छाया का अवलोकन करके

घ) तारों की स्थिति को ट्रैक करने के लिए धूपघड़ी का उपयोग करना

10. सम्राट यंत्र में समय मापने के लिए प्रयुक्त समय की पारंपरिक इकाई क्या है?

क) होरा

ख) घटी

ग) प्राण

घ) मात्रा

11. सम्राट यंत्र की चापों को 15 समान इकाइयों में विभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक को और छोटे खंडों में विभाजित किया गया है। इन विभाजनों का मुख्य उद्देश्य क्या है?

क) सूर्य की ऊंचाई की गणना करने के लिए

ख) आकाशीय संरेखण को मापने के लिए

ग) समय और सौर स्थिति की सटीक रीडिंग प्रदान करने के लिए

घ) ग्रहों की गति को ट्रैक करने के लिए

12. सम्राट यंत्र मुख्य रूप से ट्रैक करने के लिए डिज़ाइन किया गया है:

क) चंद्र चक्र

ख) ग्रहों की स्थिति

ग) सौर स्थिति और दिन का समय

घ) सूर्य ग्रहण

13. निम्नलिखित में से कौन खगोलीय अवलोकन में सम्राट यंत्र की एक सीमा है?

क) यह रात के दौरान समय नहीं माप सकता

ख) यह ग्रहों की स्थिति को सटीक रूप से ट्रैक नहीं कर सकता है

ग) यह केवल चंद्रमा की स्थिति को ट्रैक करता है, सूर्य की नहीं

घ) यह उच्च ऊंचाई पर कम सटीक माप प्रदान करता है

84. सम्राट यंत्र का सूक्ति किस खगोलीय पिंड से जुड़ा है?

क) चंद्रमा

ख) शुक्र

ग) द नॉर्थ स्टार (पोलारिस)

घ) सूर्य

85. सम्राट यंत्र के निर्माण में किस सामग्री का उपयोग किया गया था?

क) सोना और चांदी

ख) लकड़ी और पीतल

ग) चूना-ईंट पत्थर

घ) लोहा और तांबा

86. राजा जयसिंह द्वितीय ने यह कैसे सुनिश्चित किया कि उनके खगोलीय उपकरण उनके समय के उपकरणों से अधिक सटीक थे?

क) यूरोपीय प्रौद्योगिकी का उपयोग करके

ख) भारतीय, अरबी और यूरोपीय खगोलीय ज्ञान को मिलाकर

ग) ग्रहों की गति के बारे में नए सिद्धांत विकसित करके

घ) पूरी तरह से भारतीय गणितीय तरीकों पर भरोसा करके

87. जंतर मंतर वेधशालाओं की प्रमुख विशेषताओं में से एक क्या है?

क) इन्हें आकाशीय ट्रैकिंग के लिए स्वचालित तंत्र के साथ बनाया गया था

ख) उन्होंने पारंपरिक भारतीय और यूरोपीय खगोलीय तकनीकों दोनों को संयोजित किया

ग) वे विशेष रूप से भारत के दक्षिणी भाग में स्थित हैं

घ) वे आकाशीय पिंडों के प्रत्यक्ष अवलोकन के लिए दूरबीनों से सुसज्जित हैं

88. निम्नलिखित में से कौन-सा स्थान राजा जय सिंह द्वितीय द्वारा निर्मित जंतर मंतर वेधशाला नहीं है?

क) दिल्ली

ख) जयपुर

ग) उज्जैन

घ) उदयपुर

89. सम्राट यंत्र के सटीक माप का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया गया था:

क) चंद्र ग्रहण और ग्रह पारगमन

ख) संक्रांति, विषुव और दिन का समय

ग) तारा तारामंडल और उनकी चाल

घ) आकाशीय पिंडों का अक्षांश और देशांतर

90. सम्राट यंत्र की ग्नोमोन दीवार पर लोहे के छल्लों की उपस्थिति ने इसमें सहायता की:

क) तेज हवाओं के दौरान उपकरण को स्थिर करना

ख) छाया मापनों की सटीकता बढ़ाने में सहायता की

ग) सौर ऊर्जा बनाना

घ) चापों को समान समयांतरालों में विभाजित करने में सहायता की

उत्तर-दर्शिका

प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प
1	ख	24	ख	47	ख	70	ख
2	ख	25	ख	48	ग	71	घ
3	ख	26	ख	49	ग	72	घ
4	ग	27	ख	50	ख	73	ग
5	ख	28	ख	51	ग	74	ख
6	ग	29	क	52	ख	75	ख
7	ग	30	ख	53	ख	76	ख
8	ख	31	ख	54	ख	77	ख
9	ख	32	क	55	क	78	ख
10	ग	33	ख	56	ख	79	ग
11	ख	34	ख	57	ग	80	ख
12	ख	35	क	58	ख	81	ग
13	ख	36	ख	59	क	82	ग
14	ख	37	घ	60	ख	83	ख
15	क	38	ख	61	ख	84	ग
16	ग	39	ख	62	ख	85	ग
17	ख	40	ख	63	ग	86	ख
18	ग	41	ग	64	ख	87	ख
19	ख	42	क	65	ख	88	घ
20	ग	43	ख	66	ख	89	ख
21	ग	44	ख	67	ख	90	ख
22	ग	45	ख	68	ख		
23	ग	46	ख	69	क		

पुस्तक के विषय में

भारतीय काल-दर्शन: समय और सृष्टि की एक अवधारणा यह पुस्तक प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र और उसके दार्शनिक आयामों का एक व्यापक और गहन अध्ययन प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक भारत की खगोलविद्या की विशिष्टताओं और विकास की यात्रा को दर्शाता है। प्रारंभिक ब्रह्मांडीय अवधारणाओं, ग्रहों की गतियों, और वेदों व जैन ग्रंथों में समय के दार्शनिक दृष्टिकोण को भी समझाया गया है। इसमें सिद्धांत परंपरा, पंचांग प्रणाली, तथा आर्यभट जैसे वैज्ञानिकों की महत्वपूर्ण उपलब्धियों को विस्तार से समझाया गया है, जैसे पृथ्वी की घूर्णन गति और खगोलीय गणनाएँ। पुस्तक में दिशा निर्देश प्रणाली, नक्षत्रमाला, और राशियों की व्याख्या की गई है, जो प्राचीन समय और खगोलीय चक्रों की गणना को स्पष्ट करती है। खगोलीय यंत्रों, सिद्धांत-शिरोमणि के उपकरणों, और जंतर मंतर जैसे स्थापत्य स्थलों पर आधारित चर्चाएँ भारत की उन्नत खगोल विज्ञान परंपरा को उजागर करती हैं। यह पुस्तक समय, अंतरिक्ष और ब्रह्मांड के भारतीय दृष्टिकोण को समझने के इच्छुक पाठकों के लिए एक मूल्यवान स्रोत है।

सहयोग से :



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-77-2

Bharat BoudhIKS

खंड-2

तत्व से ब्रह्मांड तक

भारत का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

कणाद से कलाम तक

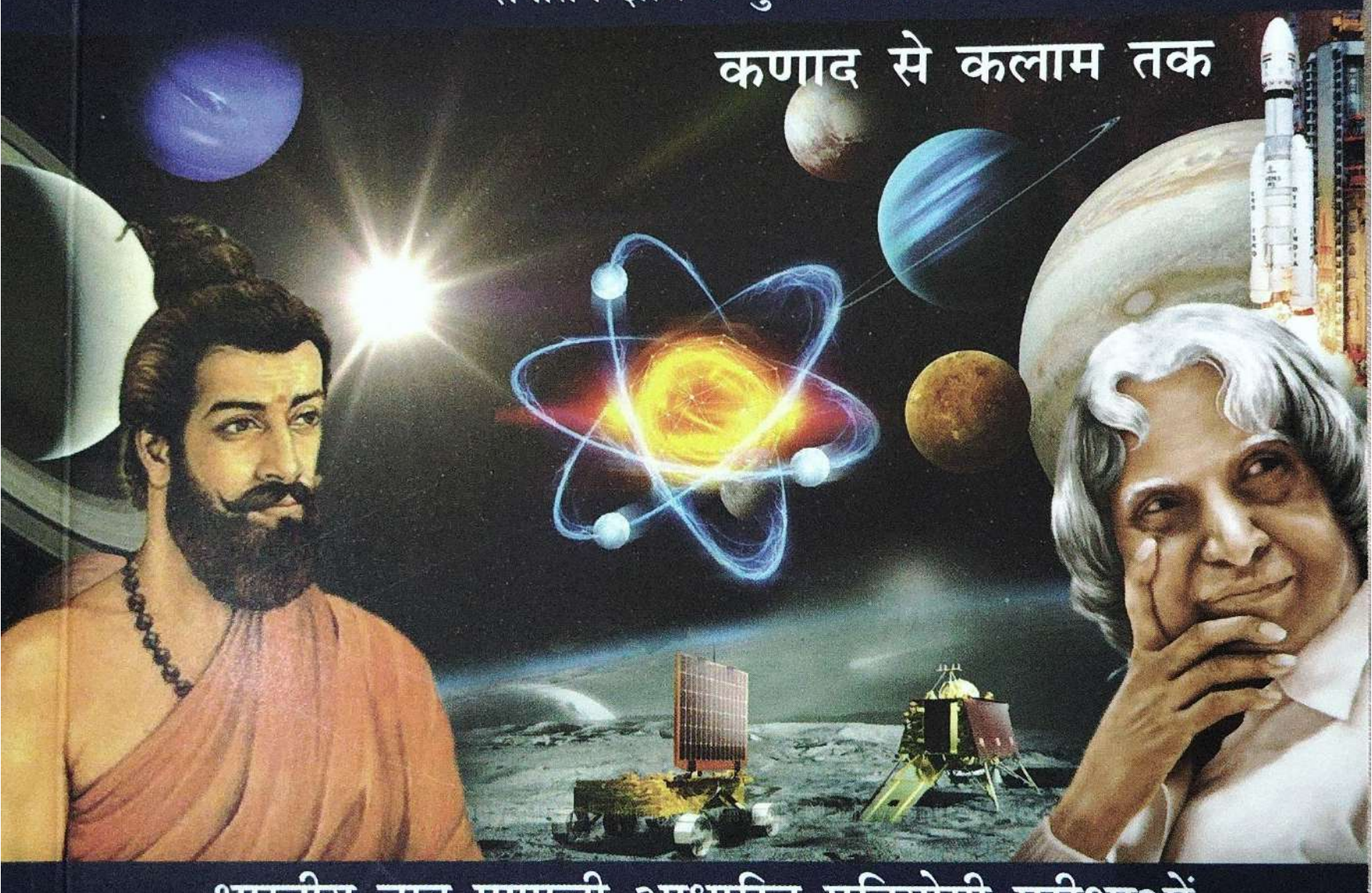

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

तत्व से ब्रह्मांड तक
भारत का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वतापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक / ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **तत्व से ब्रह्मांड तक: भारत का वैज्ञानिक दृष्टिकोण**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, जितेन्द्र कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-14-7

मूल्य : 350/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश



प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

अनुक्रमणिका

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1.	भूमिका	13
2.	खगोल-विज्ञान : वैदिक दृष्टिकोण और ब्रह्मांड की सनातन खोज	16
3.	ब्रह्मांड: आकर्षण शक्ति और गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त	22
4.	गति और कर्म के प्रकार	28
5.	विमानन का इतिहास	36
6.	इंद्रधनुष और उल्कापात का प्राचीन वैज्ञानिक विवेचन	44
7.	प्राचीन भारत में समुद्री व्यापार और नौकाशास्त्र: एक समृद्ध विरासत	48
8.	प्राचीन भारतीय नगरीय योजना और धातुकर्म	55
9.	प्राचीन भारत में खनन और अयस्क निष्कर्षण	57
10.	धातुकर्म प्रौद्योगिकी	60
11.	प्राचीन भारत में लोहा और इस्पात	68
12.	वूट्ज़ स्टील: भारत का प्राचीन धातु विज्ञान	69
13.	धातु विज्ञान तकनीक और भट्टी का डिज़ाइन	73
14.	मोम ढलाई : एक खोई हुई भारतीय परंपरा	74
15.	धातु निष्कर्षण और रसायन प्रक्रियाओं के लिए प्राचीन भारतीय उपकरण	76
16.	प्राचीन भारत में इत्र बनाना: तकनीक और प्रक्रियाएँ	79
	सुझावात्मक पठनीय सामग्री	83
	बहुविकल्पीय प्रश्न	85
	उत्तर-दर्शिका	114

The atomic structure of matter is mentioned in the Indian treatises Vaisesika and Nyaya. The Vasishta there are vast worlds within the hollows of each atom, multifarious as the specks in a sunbeam which we have assumed now as true.

*

The sacred writings of ancient India contain descriptions of weapons which resembled atomic bombs. The Mausola Parva of Mahabharata speaks of a thunderbolt - 'a gigantic messenger of deaths' which reduced to ashes whole armies and caused the hair and nails of the survivors to fall out. Pottery broke without any cause and the birds turned white. After a few hours all foodstuffs were poisoned. The ghastly picture of Hiroshima comes to mind when one reads this ancient text from India.

Source: We Are Not The First: Riddles of Ancient Science by Andrew Tomas



Andrew Tomas

The famous UFO researcher was born in St. Petersburg, Russia, and later became an Australian citizen. He was fascinated by the and wisdom of the ancient civilizations and wrote numerous books on those themes. His works have been translated into more than 60 different languages. He was also a Freemason, which is a widespread, high-ranking men's movement, encouraging its members to think independently and benevolently.

प्रस्तावना

यह पुस्तक भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता में निहित गहरी बुद्धिमत्ता का अन्वेषण करती है। वेदों, उपनिषदों और अन्य पूजनीय शास्त्रों की शाश्वत शिक्षाओं में निहित, यह उन विचारों को प्रस्तुत करती है जिन्होंने हजारों वर्षों से भारत में जनसाधारण एवं समुदायों के जीवन को आकार दिया है। भारतीय संस्कृति, वास्तविकता में, केवल अनुष्ठानों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक समग्र प्रणाली है जो व्यक्तियों को व्यक्तिगत विकास, आध्यात्मिक उन्नति और मोक्ष (मुक्ति) के अंतिम लक्ष्य की ओर मार्गदर्शन करती है।

प्राचीन भारत लंबे समय से रहस्य और आश्चर्य की भूमि रही है, जिसे दर्शन और गणित से लेकर कला और वास्तुकला तक मानवता के लिए विशाल योगदानों के लिए जाना जाता है। फिर भी, शायद इसको सबसे कम सराहा गया धरोहर इसकी अद्भुत उपलब्धियाँ हैं जो इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी रही हैं। आश्चर्यजनक संरचनाओं से लेकर अद्वितीय आविष्कारों तक, प्राचीन भारतीय मस्तिष्क नवाचार और रचनात्मकता का एक मिश्रण था, जिसने कई आधुनिक विकासों का मार्ग प्रशस्त किया।

यह पुस्तक इन प्राचीन ज्ञान के रत्नों को उजागर करने का प्रयास करती है, जो ऐतिहासिक ग्रंथों, पुरातात्त्विक खोजों और वैज्ञानिक विश्लेषण से प्राप्त है। उद्देश्य केवल प्राचीन संरचनाओं की भव्यता की सराहना करना नहीं है, बल्कि उस मानसिकता को पहचानना है जिसने उन्हें जन्म दिया– गहरे आध्यात्मिक दृष्टिकोण, प्रकृति के प्रति श्रद्धा और प्रगति की निरंतर प्रवृत्ति का सम्मिलन।

यह पुस्तक आपको खुले मन से उस सभ्यता की धरोहर का अन्वेषण करने के लिए आमंत्रित करती है, जो अपने समय में न केवल दूरदर्शी थी बल्कि भविष्य के लिए प्रेरणा का एक प्रकाश स्तंभ बनी हुई है। आगे के पन्नों में, हम भारत की तकनीकी धरोहर की गहराई को उजागर करेंगे और उन समृद्ध ज्ञान का उत्सव मनाएंगे जिन्होंने अपनी रचनात्मकता और बुद्धिमत्ता के माध्यम से आज की दुनिया को आकार दिया।

I go into the
Upanishads
to ask questions.

Source: The Upanishads: A New Translation - by Vernon Katz and Thomas Egenes



Niels Bohr

One of the greatest Danish Physicists and Philosophers of all time. He was born in Copenhagen and studied physics at the University of Copenhagen. Bohr made groundbreaking contributions to the fundamental understanding of Physics; most noted being the 'Bohr Model of the atom'. He received the Nobel Prize in Physics in 1922 for his contributions to understanding the atomic structure and suantum theory. His othercontributions include Sommerfeld-Bohr theory, Ohr van Leeuwen theorem, Bohr-Kramers-Slater theory.

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित, मूल्य-आधारित एवं समग्र शिक्षा प्रणाली के संवर्धन हेतु समर्पित एक प्रतिष्ठित शिक्षण संस्था है। "सा विद्या या विमुक्तये" - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है। इसके पूर्व छात्र विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं, जो विद्या भारती की शिक्षा-नीति की प्रभावशीलता को सुदृढ़ करते हैं।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान

से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

तत्व से ब्रह्मांड तक: भारत का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्राचीन भारत की विशाल और बहुपहली तकनीकी, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक उन्नति, जो मानव ज्ञान में इसके गहरे योगदान को उजागर करती है। भारत की वैज्ञानिक, तकनीकी और सांस्कृतिक उपलब्धियों की उस समृद्ध परंपरा का उद्घाटन करता है, जहाँ ज्ञान-विज्ञान केवल धार्मिक या आध्यात्मिक विचारों तक सीमित न होकर गहन तर्क, सूक्ष्म निरीक्षण और व्यवस्थित प्रयोगों पर आधारित था। पाठक इसमें यह जान सकेंगे कि कैसे ब्रह्मांड की उत्पत्ति, ग्रहों की गति, पंचमहाभूतों की सिद्धियाँ, और धातुओं की शुद्धि जैसे विषयों पर भारतीय मनीषियों ने समय से पहले ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कार्य किया।

यह पुस्तक न्याय और वैशेषिक दर्शन में वर्णित गति के सिद्धांतों के माध्यम से यह भी स्पष्ट करता है कि भारत में गति और भौतिकी के गहरे विश्लेषण मौजूद थे, जो आधुनिक भौतिक विज्ञान की अवधारणाओं से कहीं पहले प्रस्तुत किए गए थे। शहरी योजना और धातुकर्म में नवाचार से लेकर रसायनशास्त्र, चिकित्सा और इत्र निर्माण में अभिनव खोजों तक, प्राचीन भारत की उपलब्धियाँ अपने समय से आगे थीं और गहरे रूप से इसके आध्यात्मिक और दार्शनिक विश्वासों से जुड़ी हुई थीं। वूट्ज़ स्टील, जटिल यंत्रों, और पवित्र अनुष्ठानों जैसी अभूतपूर्व खोजों की अन्वेषण के माध्यम से, यह श्रृंखला एक ऐसी सभ्यता में प्रवेश करती है जहाँ कला, विज्ञान और आध्यात्मिकता सामंजस्यपूर्ण रूप से सहअस्तित्व में थे। यह पुस्तक न केवल अतीत की उपलब्धियों को रेखांकित करता है, बल्कि यह भी बताता है कि आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इन पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को पुनः समझना, उनका वैज्ञानिक पुनर्पाठ करना और उन्हें वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु पुनर्प्रयोग करना कितना आवश्यक है।

भूमिका

क्या आपने कभी सोचा है कि हजारों वर्ष पहले, जब आधुनिक प्रयोगशालाएँ, माइक्रोस्कोप, या कंप्यूटर नहीं थे - तब भी ऋषि-मुनि ब्रह्मांड, परमाणु, विद्युत, औषधि और अंतरिक्ष जैसे जटिल विषयों को इतनी सूक्ष्मता से कैसे जान पाए? हम अक्सर यह

मान लेते हैं कि विज्ञान की शुरुआत आधुनिक युग में हुई, लेकिन जब हम भारत के वैदिक और शास्त्रीय ग्रंथों को पढ़ते हैं, तो यह धारणा बदल जाती है। इन ग्रंथों में न केवल गहन तात्त्विक चिंतन है, बल्कि उनमें वैज्ञानिक जिज्ञासा, अवलोकन और प्रयोग की स्पष्ट झलक मिलती है।

आइए, एक बार सोचकर देखें–

किसी तपस्वी ने हिमालय की किसी कुटी में बैठकर यह कैसे जाना कि पदार्थ अणु और परमाणु से बने हैं? या किसी ऋषि ने बिना टेलीस्कोप के ग्रहों की गति की सटीक गणना कैसे की?

इन प्रश्नों के उत्तर हमें हमारे ही ज्ञान-वृक्ष की जड़ों में मिलते हैं - उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण में, जो भारत के ऋषियों ने सहस्रों वर्षों पहले अपनाया।

भारतवर्ष में वैदिक काल से ही ऋषियों ने प्रकृति और सृष्टि के रहस्यों को समझने हेतु वैज्ञानिक नजरिया अपनाया। उन्होंने मूल तत्त्वों और उनके स्वभाव की गहराई से विवेचना की। महर्षि भृगु, वशिष्ठ, भरद्वाज, अत्रि, गर्ग, अगस्त्य, विश्वामित्र, और पराशर जैसे महान मनीषियों ने न केवल दार्शनिक ज्ञान दिया, बल्कि सूक्ष्मद्रव्यविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन, जीवविज्ञान, आयुर्विज्ञान, विमानशास्त्र, नौकायन और कृषिविज्ञान जैसे क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण कार्य किए।

सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि प्राचीन भारत का विज्ञान केवल विचारधारा पर आधारित था। परंतु जब हम शास्त्रों का गहराई से अध्ययन करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि भारत के ऋषियों ने अनुभव और प्रयोग (experimentation) को ही ज्ञान की कसौटी माना।

महर्षि कणाद अपने वैशेषिक दर्शन के दशम अध्याय में लिखते हैं:

"दृष्टानां दृष्ट प्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय।" वैशेषिक सूत्र 10.2.1

अर्थात्: "जो वस्तुएँ प्रत्यक्ष रूप से देखी गई हों और जिनका कोई उद्देश्य हो, उनके न दिखाई देने पर भी प्रयोग करना उन्नति का मार्ग है।"

इसी प्रकार रसप्रकाश सुधाकर में यह स्पष्ट कहा गया है कि केवल सुनी-सुनाई बातों को मान लेना उचित नहीं है, जब तक उसे स्वयं प्रयोग कर सिद्ध न किया जाए। ग्रंथ में लिखा गया है:

"स्वहस्तेन कृतं सम्यक् जारणं न श्रुतं मया।
स्वहस्तेन भवयोगेन कृतं सम्यक् श्रुतेन हि।
धातुबन्धस्तृतीयोऽसौ स्वहस्तेन कृतो मया॥" (रसप्रकाश सुधाकर, प्रथम परिच्छेद)

भावार्थ: "जो ज्ञान मुझे शास्त्रों या आचार्यों से मिला, उसे मैंने स्वयं प्रयोग कर प्रमाणित किया। जो प्रयोग द्वारा सिद्ध नहीं हो सका, उसे मैंने मान्यता नहीं दी।"

यह प्राचीन भारत की वैज्ञानिक परंपरा का प्रमाण है, जिसमें जिज्ञासा, परीक्षण और स्वाचार की गहरी संस्कृति थी।

भारत के वैज्ञानिक इतिहास में अग्नि जैसे तेजस्वी नाम हैं: अगस्त्य, भरद्वाज, कपिल, कणाद, बौधायन, विश्वरुचि, सुलोहित, सुश्रुत, चरक, आर्यभट्ट प्रथम और द्वितीय, नागार्जुन, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, माधवाचार्य, वाग्भट्ट और रामानुज। वे सभी केवल विचारक नहीं, प्रयोगधर्मी भी थे। उन्होंने विज्ञान को केवल समझने का विषय नहीं, बल्कि जीने और उपयोग में लाने योग्य विद्या माना।

उदाहरण के लिए, महर्षि सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया था। उनके ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' में शल्य चिकित्सा से संबंधित कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं, जो आज भी मान्य हैं।

महर्षि अगस्त्य ने विद्युत उत्पादन से संबंधित सूत्रों का उल्लेख किया था, जो आधुनिक विज्ञान के लिए आश्चर्यजनक हैं। उनके ग्रंथ 'अगस्त्य संहिता' में विद्युत और इलेक्ट्रोप्लेटिंग से संबंधित विधियाँ वर्णित हैं, जो प्राचीन भारत की वैज्ञानिक समझ को दर्शाती हैं। इसके अलावा, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य जैसे गणितज्ञों और खगोलज्ञों ने गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। उनके ग्रंथों में ग्रहों की गति, सूर्य ग्रहण, और अन्य खगोलीय घटनाओं की गणना की विधियाँ मिलती हैं, जो उनकी वैज्ञानिक दृष्टि को प्रदर्शित करती हैं।

वैज्ञानिकाश्च कपिलः कणादः सुश्रुतस्तथा।
चरको भास्कराचार्यो वराहमिहिरः सुधी।
नागार्जुनो भरद्वाज आर्यभट्टो वसुर्बुधः।
ध्येयो विश्वरुचिसुलोहितो रामानुजादयः॥ (स्वरचित श्लोक)

हालाँकि आज की अधिकांश तकनीकी प्रगति का श्रेय पश्चिमी दुनिया को दिया जाता है, यह केवल एक पक्ष है। भारत, ज्ञान और रचनात्मकता की गहरी परंपरा के साथ, लंबे समय से वैज्ञानिक और तकनीकी नवाचार का वैश्विक केंद्र रहा है। प्राचीन भारत में, वसुधैव कुटुंबकम (विश्व एक परिवार है) के दर्शन से प्रेरित विज्ञान, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण खोजें और आविष्कार हुए थे, जो आज भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। इन वैज्ञानिक उपलब्धियों को समझना और स्वीकार करना हमारे लिए गर्व की बात है, जो हमारी समृद्ध वैज्ञानिक परंपरा को उजागर करता है। विभिन्न

भारतीय स्थलों पर की गई पुरातात्विक खोजें विज्ञान और प्रौद्योगिकी की समृद्ध परंपरा को प्रदर्शित करती हैं। राजस्थान और गुजरात जैसे क्षेत्रों में किए गए उत्खनन इन क्षेत्रों की गहरी विशेषज्ञता का ठोस प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इस संदर्भ में, हम इस समृद्ध ज्ञान की गहराई पर प्रकाश डालेंगे और उसे अन्वेषित करेंगे।

(भाग I)

खगोल-विज्ञान : वैदिक दृष्टिकोण और ब्रह्मांड की सनातन खोज

कल्पना कीजिए, आप एक निःशब्द रात में खुले आकाश के नीचे खड़े हैं-असंख्य तारे, टिमटिमाती आकाशगंगाएँ, चंद्रमा की सौम्य चाँदनी, और एक ऐसा गहन मौन जो अनंतता का आभास कराता है। यह दृश्य हमारे मन में सहज ही कुछ मूलभूत प्रश्नों को जन्म देता है: यह सृष्टि कहाँ से आई? इसका आरंभ कैसे हुआ? हम कौन हैं? और इस विस्तृत ब्रह्मांड में हमारी क्या भूमिका है?

इन्हीं प्रश्नों ने वैदिक ऋषियों को सहस्रों वर्ष पहले उद्वेलित किया। यह महज कल्पना नहीं, बल्कि गहन चिंतन और अनुभवजन्य दर्शन का विषय रहा। "**कोऽहं कस्मात् कुत आयातः?**" – अर्थात् "मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ?" – यह आत्म-अन्वेषण ही वैदिक ज्ञान परंपरा की जड़ है। ऋग्वेद में सृष्टि के आरंभ को लेकर एक अत्यंत रहस्यपूर्ण लेकिन गूढ़ सूक्त मिलता है, जिसे **'नासदीय सूक्त'** कहते हैं:

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

(ऋग्वेद 10.129.1)

इसका अर्थ है: "उस समय न तो सत (अस्तित्व) था और न असत (अनस्तित्व); न आकाश था और न कोई परे का स्थान; न मृत्यु थी न अमरता, न दिन था न रात्रि; केवल एक अव्यक्त सत्ता थी जो अपनी शक्ति से प्रकट हो रही थी।"

यह चिंतन स्पष्ट करता है कि वैदिक मनीषियों ने सृष्टि को किसी भौतिक पदार्थ से उत्पन्न नहीं माना, बल्कि उसे चेतन-अचेतन तत्वों के सामंजस्य का परिणाम माना। यह सिद्धांत आधुनिक Big Bang Theory की बौद्धिक प्रतिध्वनि जैसा प्रतीत होता है, जिसमें माना गया है कि ब्रह्मांड अत्यधिक सघन और उष्ण बिंदु से उत्पन्न हुआ। ऋषियों

के चिंतन का अगला महत्वपूर्ण स्तंभ था-ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ। भारतीय दर्शन विशेषतः सांख्य दर्शन में ज्ञान के तीन प्रमुख साधनों (प्रमाणों) में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द को मान्यता दी गई है। अनुमान के उदाहरण स्वरूप एक श्लोक में कहा गया है:

धूमात् अग्निनो अनुमानम्।

(सांख्य सूत्र 1.60)

अर्थात्: "जहाँ धुआँ है, वहाँ अग्नि की उपस्थिति अनुमान की जा सकती है।"

यह सिद्धांत आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से तुलनीय है, जिसमें किसी वस्तु का प्रत्यक्ष प्रमाण न होने पर उसके प्रभावों से उसकी उपस्थिति को जाना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में दर्शन और विज्ञान के बीच स्पष्ट विभाजन नहीं था, बल्कि दोनों साथ-साथ चलते थे-तर्क एवं प्रयोग पर आधारित।

वास्तव में, प्रयोगों का महत्व भारतीय वैज्ञानिक परंपरा में भलीभाँति स्वीकार किया गया है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद ने अपने ग्रंथ में प्रयोग के उद्देश्य को स्पष्ट किया है।

भारत में विज्ञान केवल वैचारिक विमर्श नहीं था, बल्कि प्रयोग, परीक्षण और सतत अध्ययन का परिणाम था। उदाहरण के लिए, आर्यभट्ट ने 499 ई. में आर्यभटीयम् ग्रंथ में स्पष्ट रूप से कहा:

लङ्कासममेरुमध्ये भूपृष्ठं स्फुटगोचरं चक्रं। (गोलपाद, श्लोक 10)

अर्थात्: "पृथ्वी गोल है और मेरु (ध्रुव) इसके मध्य में स्थित है, तथा यह अपने अक्ष पर घूमती है।" यह उस समय की बात है जब पश्चिमी जगत पृथ्वी को स्थिर मानता था। आर्यभट्ट की गणनाएँ चंद्रग्रहण, सौरग्रहण और ग्रहों की गतियों की वैज्ञानिक व्याख्या के रूप में भी प्रमाणित होती हैं।

सृष्टि-रहस्य का हल ढूँढ़ने की जिज्ञासा में ऋषियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों द्वारा किए गए इस तरह के प्रयासों से जन्मी विधा है-खगोल विज्ञान या ब्रह्मांडिकी (Cosmology)। आधुनिक विज्ञान जहाँ परीक्षण और प्रेक्षण के द्वारा ब्रह्मांड के स्थूल स्वरूप तक पहुँचता है, वहीं वैदिक शास्त्रों में वर्णित ज्ञान इंद्रियातीत सत्य तक पहुँचने का माध्यम है।

वैदिक विज्ञान केवल विश्वास या मिथक पर आधारित नहीं था। यह तर्क, गहन चिंतन, अनुभव, और प्रयोग का संगम था, जिसमें विश्व को केवल भौतिक दृष्टि से नहीं, बल्कि चेतनात्मक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया गया। वैदिक मनीषियों ने ब्रह्मांड

की संरचना और उसके रहस्यों को अनुभव और तर्क के आधार पर जाना, जो आज के वैज्ञानिक तरीकों से मेल खाता है। यह समग्र दृष्टिकोण आधुनिक विज्ञान के साथ एक गहरा संवाद स्थापित करता है और यह समझने में सहायता करता है कि विज्ञान और अध्यात्म विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं।

जब हम रात के आकाश की ओर देखते हैं तो अनगिनत तारों और प्रकाशमान पिंडों को निहारते हैं–कुछ स्वयं प्रकाशमान, कुछ परावर्तित प्रकाश से प्रकाशित, कुछ गतिशील और कुछ स्थिर। ये सभी खगोलीय पिंड एक रहस्यमयी और अत्यंत विस्तृत ब्रह्मांड के संकेतक हैं। यह दृश्य हमारे भीतर सहज ही उस जिज्ञासा को जन्म देता है, जिसने वैदिक ऋषियों को भी आंदोलित किया था–यह सब क्या है? कितने लोक हैं? कितने सूर्य और पृथ्वियाँ इस ब्रह्मांड में समाहित हैं?

ऋग्वेद (8.70.5) में इस विशालता को दर्शाते हुए कहा गया है–

यद्द्यावे इन्दते शतं शतं भूमिरुतस्युः।

न त्वां व्रजिन्तु सहस्रं सूर्याः॥

अर्थात्, "जिस प्रकार आकाश में सैकड़ों और हजारों सूर्य विद्यमान हैं, वैसे ही पृथ्वी भी असंख्य हैं। वे सब तेरे सामर्थ्य को नहीं लांघ सकते।" यह श्लोक स्पष्ट करता है कि वैदिक ऋषियों की दृष्टि में आकाशगंगाएँ और सूर्य जैसे पिंड असंख्य थे–एक ऐसी समझ जो आधुनिक खगोल-विज्ञान की गैलेक्सी थ्योरी से मेल खाती है।

अथर्ववेद (8.9.1) में बहुपृथ्वियों की परिकल्पना करते हुए कहा गया है:

अन्याः पृथिव्यः, परा अपराः।

अर्थात् – "कई पृथ्वियाँ हैं, कुछ निकट हैं और कुछ अत्यंत दूर।" यह विचार ब्रह्मांड में मल्टी-प्लेनेट हैबिटेबिलिटी (Multi-planetary habitability) के आधुनिक सिद्धांत जैसा प्रतीत होता है, जो बताता है कि पृथ्वी के अलावा भी जीवन की संभावनाएँ अन्य ग्रहों पर हो सकती हैं।

इन श्लोकों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक खगोलशास्त्र केवल आस्थाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि अनुभव, गहन अवलोकन और दार्शनिक विज्ञान का एक अद्वितीय संगम था। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने जिन तत्वों पर मंथन किया था, वही आज के वैज्ञानिक अन्वेषणों का केंद्र बनते जा रहे हैं। यह न केवल भारत के वैज्ञानिक चिंतन की गहराई से परिचित कराता है, बल्कि यह भी सिखाता है कि ज्ञान का स्वरूप सार्वकालिक और सर्वमान्य हो सकता है–चाहे वह वैदिक चिंतन में हो या आधुनिक प्रयोगशाला में।

वर्तमान खगोल विज्ञान के अनुसार हमारी आकाशगंगा की प्रत्येक भुजा में लगभग **300 अरब तारे** हैं, जिनकी आपसी दूरी लगभग **4–5 प्रकाशवर्ष** है। ब्रह्मांड में इस प्रकार की **9 खरब से अधिक आकाशगंगाएँ** हैं। ये आकाशगंगाएँ लगभग **210 से 240 किमी/सेकंड** की गति से अपनी धुरी पर घूम रही हैं–जिसका उल्लेख अथर्ववेद (19/53/1) में ***"चुक्रा भुवनानि विश्वा"*** के रूप में मिलता है।

पृथ्वी की गति और झुकाव का भी स्पष्ट वर्णन वेदों में मिलता है– ***"अक्षणेव चक्रिय परिणहं पृथिव्याः"*** तथा ***"प्राचीं ककुभं पृथिव्याः"***। पृथ्वी अपने अक्ष पर **23.44° झुकी हुई** है और पश्चिम से पूर्व दिशा में घूमती है। सूर्य सिद्धांत में भी पृथ्वी की गोलाकार आकृति का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ में पृथ्वी को एक गोलाकार पिंड के रूप में वर्णित किया गया है, जो अंतरिक्ष में स्थित है। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र में पृथ्वी की आकृति के बारे में सटीक ज्ञान था। वेदों में पृथ्वी की धुरी पर पश्चिम से पूरब की ओर झुकी हुई गति को भी वर्णित किया गया है– ***"दाधर्थ प्राचीं कुकुर्भं पृथिव्याः"*** (ऋग्वेद 7/99/2), जो आधुनिक विज्ञान के अनुसार पृथ्वी की 23.44 अंश की झुकावयुक्त धुरी और 'प्रिसिशन पीरियड' की अवधारणा से मेल खाता है। भास्कराचार्य ने इसे ***"भचक्र गति"*** कहा है।

सूर्य सिद्धांत, जो प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, में खगोलीय पिंडों की गति, कक्षाएँ, और उनके परिमाणों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ के अध्याय 12 में चंद्रमा की कक्षा की परिधि को 324,000 योजन बताया गया है। यदि एक योजन को लगभग 5 मील (या 8 किलोमीटर) माना जाए, तो चंद्रमा की कक्षा की परिधि लगभग 1,620,000 मील (या 2,592,000 किलोमीटर) होती है।

सूर्य सिद्धांत में ग्रहों की कक्षाओं की परिधियों के बारे में भी जानकारी दी गई है। अध्याय 12 के श्लोक 85 से 90 में विभिन्न ग्रहों की कक्षाओं की परिधियों को योजन में वर्णित किया गया है। इनमें से कुछ परिधियाँ निम्नलिखित हैं:

- बुध, शुक्र, और सूर्य की कक्षा की परिधि: 1,577,917,500 योजन
- मंगल की कक्षा की परिधि: 2,089,093,100 योजन
- बृहस्पति की कक्षा की परिधि: 3,238,828,775 योजन
- शनि की कक्षा की परिधि: 4,345,497,600 योजन

सूर्य सिद्धांत प्राचीन भारत की खगोलीय परंपरा का ऐसा ग्रंथ है, जिसमें उल्लेखित अनेक तथ्य आज के आधुनिक विज्ञान से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाते हैं। यह केवल

ज्योतिष या धार्मिक मान्यताओं का ग्रंथ नहीं है, बल्कि गणित, भौतिकी और खगोल विज्ञान की ठोस आधारशिला भी प्रस्तुत करता है। इसके अनेक श्लोक न केवल खगोलीय घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं, बल्कि आधुनिक गणनाओं के बहुत निकट भी हैं। इसके कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं:

1. पृथ्वी का आकार (Shape of the Earth)

श्लोक (अध्याय 1, श्लोक 12):

"दृश्यते भूमिरत्रैव नान्यत्रैव च दृश्यते।
तस्मात् स्फेराकृतिर्भूमिर्न तु पृष्ठवदन्यथा॥"

अर्थ: "पृथ्वी केवल यहाँ दिखती है, अन्यत्र नहीं। इसलिए यह समतल न होकर गोलाकार है।"

यह विवरण आधुनिक विज्ञान की उस मान्यता से पूरी तरह मेल खाता है, जिसके अनुसार पृथ्वी का आकार 'oblate spheroid' अर्थात ध्रुवों पर चपटी तथा भूमध्य रेखा पर उभरी हुई है। (स्रोत:https://meda.foundation/surya-siddhanta-legacy-innovations-and-modern-relevance/)

2. पृथ्वी का व्यास (Diameter of the Earth)

सूर्य सिद्धांत में पृथ्वी के व्यास का उल्लेख लगभग 1,050 योजन किया गया है। यदि। योजन को 7.6 मील मानें तो इसका मान लगभग 7,980 मील बनता है।

इसके विपरीत, आधुनिक वैज्ञानिक गणनाओं के अनुसार पृथ्वी का व्यास लगभग 7,917.5 मील है। इस प्रकार सूर्य सिद्धांत द्वारा दिया गया मान आधुनिक मान से 1% से भी कम अंतर रखता है, जो कि प्राचीन काल के लिए एक अद्भुत उपलब्धि मानी जाती है। (स्रोत:https://en.wikipedia.org/wiki/Surya_Siddhanta)

3. सौर वर्ष की अवधि (Length of the Sidereal Year)

श्लोक (अध्याय 1, श्लोक 65):

"सवितुर्दिनमानं स्यात् त्रिंशदधिकषट् त्रिशतं च।
षड्विंशतिसंख्यं च दिनानि सौरवर्षे स्यात्॥"

अर्थ: "सौर वर्ष में 365 दिन, 6 घंटे, 12 मिनट और 36 सेकंड होते हैं।"

सूर्य सिद्धांत के अनुसार सौर वर्ष की गणना 365.2563627 दिन की गई है, जबकि आधुनिक खगोलशास्त्र इसे 365.256363004 दिन मानता है। दोनों के बीच का

अंतर सेकंड के अंश तक है, जो इस प्राचीन गणना पद्धति की सूक्ष्मता और सटीकता को सिद्ध करता है।

(स्रोत:https://www.sanskritimagazine.com/surya-siddhanta-the-oldest-book-known-to-man-on-astronomy/)

4. ग्रहण की गणना (Prediction of Eclipses)

श्लोक (अध्याय 6, श्लोक 1):

"छायाग्रहणमित्युक्तं चन्द्रसूर्ययोरपि।
यदा राहुस्थितौ तौ स्यातां तदा ग्रहणं भवेत्॥"

अर्थ: "जब चंद्रमा और सूर्य राहु या केतु के समीप होते हैं, तब ग्रहण होता है।"

सूर्य सिद्धांत में यह स्पष्ट किया गया है कि जब सूर्य और चंद्रमा राहु और केतु (लूनर नोड्स) के पास आते हैं, तब सूर्य या चंद्र ग्रहण की स्थिति बनती है। यह विवरण आधुनिक खगोलशास्त्र में ग्रहण की व्याख्या के साथ पूर्णतः मेल खाता है, जहाँ ग्रहण की घटना तभी होती है जब सूर्य, पृथ्वी और चंद्रमा नोड्स के पास एक सीध में आ जाते हैं।

स्रोत:https://hinduinfopedia.com/solar-eclipse-insights-from-hindu-texts/

अत: सूर्य सिद्धांत केवल एक ज्योतिषीय ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह भारत की प्राचीन वैज्ञानिक धरोहर का प्रमाण भी है। इसके अनेक खगोलीय निष्कर्ष आधुनिक विज्ञान से काफी सटीकता से मेल खाते हैं कि यह मानना कठिन हो जाता है कि ये गणनाएँ हजारों वर्ष पूर्व बिना आधुनिक यंत्रों के की गई थीं। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय भारत में पर्यवेक्षण आधारित विज्ञान, गणित और खगोलशास्त्र अपने अत्यंत विकसित स्वरूप में विद्यमान था।

सूर्य सिद्धांत (12/81) के अनुसार, एक कल्प में चंद्र-भ्रमण संख्या **57753336000** और चंद्रकक्षा की परिधि **324000 योजन** मानी गई है, जिससे आकाश की परिधि **18,71,20,80,86,40,00,000 योजन** होती है। यह मान आधुनिक वैज्ञानिक गणनाओं–जैसे हबल स्केल (1.4×10^2 हेलामीटर)–से तुलनीय है, जो बताता है कि ब्रह्मांड निरंतर फैल रहा है।

भारतीय ज्योतिष में ब्रह्मांड की सबसे ऊपरी कक्षा को **नक्षत्र कक्षा** कहा गया है। नक्षत्र शब्द न केवल विशिष्ट तारों के लिए, बल्कि समस्त तारागणों के लिए प्रयुक्त होता है, जैसा *ऋग्वेद (1.50.2)* और *ऋग्वेद (10.68.11)* में उल्लेखित है। इनमें ***सप्तर्षि मण्डल*** विशेष रूप से प्रसिद्ध है, जिसमें क्रमशः **मरीचि, वशिष्ठ, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह** और **क्रतु** नामक तारे हैं। वशिष्ठ के समीप अरुन्धती तारा स्थित है।

आधुनिक खगोलशास्त्र में इन्हें **Ursa Major (Big Dipper)** और **Ursa Minor** कहा जाता है। इसी समूह का एक तारा ध्रुव तारा कहलाता है, जो स्थिर प्रतीत होता है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता *(13.4)* में लिखा है कि **"एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं चरन्ति वर्षाणाम्"**, यानी सप्तर्षि हर नक्षत्र पर 100 वर्ष रहते हैं। इसी आधार पर महाभारत काल की तिथि **ईसा पूर्व 3138** निर्धारित की गई है।

प्राचीन भारतीय खगोल-विज्ञान न केवल ब्रह्मांड की संरचना और गति को समझने में सक्षम था, बल्कि उसने आधुनिक विज्ञान के कई सिद्धांतों की पूर्ववाणी भी की थी। वेदों, उपनिषदों और ज्योतिष ग्रंथों में वर्णित ज्ञान आज भी वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए प्रेरणा का स्रोत है। प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र और वेदों में ब्रह्मांड, पृथ्वी की आकृति, उसकी गति और गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांतों का गहन वर्णन मिलता है।

ब्रह्मांड: आकर्षण शक्ति और गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त

जिस ज्ञान को आधुनिक विज्ञान ने हाल ही में खोजा है, उसकी गूँज भारतीय वेदों और शास्त्रों में प्राचीन काल से ही सुनाई देती है। पंद्रहवीं शताब्दी तक पश्चिमी जगत् पृथ्वी को चपटी और स्थिर मानता था, जबकि ऋग्वेद (1/33/8) में पृथ्वी को गोल तथा अपने अक्ष पर घूमने वाली कहा गया है–

"चुक्राणासः परीणहं पृथिव्या"

ऋग्वेद (5/85/5) पृथ्वी के सूर्य से उत्पत्ति की पुष्टि करता है–

"वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण"

ऋक् (10/189/1) और सामवेद (6/30) में पृथ्वी की सूर्य के चारों ओर परिक्रमा का उल्लेख है। जिस गुरुत्वाकर्षण और आकर्षण शक्ति के कारण पृथ्वी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है और अपनी धुरी पर घूमती है, उस ज्ञान को पश्चिम ने हाल ही में समझा है, जबकि यह ज्ञान हमारे वेदों में पहले से ही विद्यमान था, जो दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान ब्रह्मांड विज्ञान में कितना उन्नत था। ऋग्वेद (10.149.1) से प्रेरित श्लोक में कहा गया है–

"सविता यथापूर्वं अभवत्सव्याचसः।
यः पृथिव्या अनुक्रमं यन्त्रैः धारयति प्रभुः॥"

अर्थात्, "सृष्टि का प्रभु (सविता/सूर्य) सदा की भाँति, प्रत्येक नियम और यंत्रों से (ग्रह-नक्षत्र, भौतिक नियमों आदि द्वारा) संपूर्ण पृथ्वी का पालन-पोषण एवं व्यवस्थापन करते हैं।" यह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का संकेत देता है।

ग्रंथ	लेखक	काल	प्रमुख शिक्षाएँ	वैज्ञानिक योगदान	उल्लेखनीय खोज
सूर्य सिद्धांत (Sūrya Siddhānta)	अज्ञात (संस्करण संकलित ~400–600 CE)	गुप्त काल (~4th–6th c. CE)	ग्रहों की गति, कक्षाएँ, त्रिकोणमिति, ग्रहण गणना	सौर वर्ष की लंबाई, ग्रहों की परिधियाँ, त्रिकोणमितीय सारणी	सौर वर्ष = 365.2563627 दिन (आधुनिक मान से लगभग समान)
आर्यभटीय (Āryabhaṭīya)	आर्यभट (Aryabhata)	499 CE	पृथ्वी की घूर्णन गति, ग्रहण सिद्धांत, गणितीय खगोलशास्त्र	π का मान, त्रिकोणमिति, चंद्र-सूर्य ग्रहण की वैज्ञानिक व्याख्या	पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है – 1000 साल पहले गैलीलियो से
पंचसिद्धांतिका (Pañcasiddhāntikā)	वराहमिहिर	~6th c. CE	पाँच प्रमुख खगोलशास्त्रीय परंपराओं का तुलनात्मक अध्ययन	भारतीय, यूनानी, बाबिलोनियन खगोलशास्त्र का समन्वय	खगोलशास्त्र का पहला तुलनात्मक ग्रंथ
ब्रह्मस्फुटसिद्धांत (Brahmasphuṭasiddhānta)	ब्रह्मगुप्त	628 CE	गुरुत्वाकर्षण, ग्रहों की गति, ऋणात्मक संख्याएँ	गुरुत्व बल की अवधारणा, बीजगणितीय विधियाँ	"गुरुत्ववाकर्षण" का वर्णन – न्यूटन से 1000 वर्ष पूर्व
वेदांग ज्योतिष (Vedāṅga Jyotiṣa)	लगध (Lagadha)	~1200–600 BCE	नक्षत्रों पर आधारित पंचांग, यज्ञीय समय निर्धारण	वर्ष की लंबाई, तिथि, नक्षत्र, ऋतु चक्र	360-दिन वर्ष, 12 महीने, 27 नक्षत्रों की प्रणाली
बृहत्संहिता (Bṛhat Saṃhitā)	वराहमिहिर	~6th c. CE	खगोल, ज्योतिष, मौसम विज्ञान, भूगोल	धूमकेतु, ग्रहों की युति, वर्षा पूर्वानुमान	धूमकेतु (Ketu) का वैज्ञानिक वर्णन
शुल्ब सूत्र (Śulba Sūtras)	विभिन्न वैदिक ऋषि	~800 BCE	यज्ञ वेदियों की ज्यामिति, गणितीय अनुप्रयोग	$\sqrt{2}$ का सन्निकट मान, पायथागोरस प्रमेय	$\sqrt{2} \approx 1.4142$ आधुनिक मान से अत्यंत निकट
भागवत पुराण (स्कंध 5)	वेदव्यास	~1st millennium CE	ब्रह्मांडीय संरचना, भू-मंडल, ग्रहों की परिक्रमा	प्रतीकात्मक खगोलशास्त्र, मंडल सिद्धांत	जम्बूद्वीप और भू-मंडल की परिकल्पना

भारतीय गणितज्ञ और खगोलशास्त्री भास्कराचार्य ने 12वीं शताब्दी में अपने ग्रंथ **'सिद्धांत शिरोमणि'** में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का वर्णन किया था। उन्होंने लिखा था कि पृथ्वी में एक आकर्षण शक्ति है, जिसके कारण वस्तुएं उस पर गिरती हैं, और यही शक्ति ग्रहों को उनकी कक्षाओं में बनाए रखती है। यह उल्लेखनीय है कि भास्कराचार्य का यह कार्य न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत से लगभग 500 वर्ष पूर्व का है, जो भारतीय खगोलशास्त्र और गणित की प्राचीनता और उन्नति को दर्शाता है।

भारतीय ऋषियों और वैज्ञानिकों ने गुरुत्वाकर्षण और आकर्षण शक्ति के सिद्धांतों को सहस्राब्दियों पूर्व ही समझ लिया था। फिर भी, आधुनिक विज्ञान में इन योगदानों को उचित मान्यता नहीं मिली है। यह आवश्यक है कि हम अपने प्राचीन ग्रंथों और वैज्ञानिक उपलब्धियों का पुनः मूल्यांकन करें और उन्हें वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करें, ताकि भारतीय विज्ञान और संस्कृति को उसका उचित स्थान मिल सके। आधुनिक भौतिकी में न्यूटन द्वारा प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत भारत के वैदिक ऋषियों द्वारा सहस्राब्दियों पूर्व ही समझ लिया गया था।

ऋग्वेद (8.12.28) में कहा गया है कि सूर्य और समस्त लोकों के बीच आकर्षण संबंध है–

"यदा ते हर्य्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे ।
आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ।" **(ऋ. 8.12.28)**

अर्थात् "सूर्य के साथ सभी लोकों का गुरुत्वाकर्षण के माध्यम से संबंध है, जिससे वे अपनी-अपनी कक्षाओं में स्थिर रहते हैं और विचलन नहीं होता।"

ऋग्वेद (10.149.1) में यह और स्पष्ट किया गया है–

"(सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामवृंहत्।)"

अर्थात् "सविता ने अपने यंत्रों (प्राकृतिक नियमों) से पृथ्वी को गति प्रदान की, और उसी सविता ने द्युलोक (स्वर्ग/आकाश) को संतुलित व धारण किया।"

इसी क्रम में ऋग्वेद (1.52.14) में उल्लेख है कि हर पदार्थ में आकर्षण शक्ति होती है और वे आपस में आकर्षित होते हैं–

"एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्"।

प्रश्नोपनिषद् (3/8) में ऋषि पैप्पलाद बताते हैं कि पृथ्वी में स्थित देवता (आकर्षण शक्ति) मनुष्य के शरीर की 'अपान' शक्ति के रूप में कार्य करती है।**(पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानम्)।**

प्राचीन भारतीय दार्शनिक ऋषि कणाद ने अपने वैशेषिक सूत्र में गुरुत्व के नियमों को स्पष्ट किया है। सूत्र **"अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम्" (5/2/3)** यह प्रतिपादित करता है कि जब कोई अन्य बल न हो, तो वस्तु केवल गुरुत्व के कारण नीचे गिरती है। उन्होंने यह भी कहा– **"संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम्" (5/1/18)**, यानी कि किसी बाहरी बल के अभाव में गुरुत्व ही वस्तु के पतन का कारण है।

बृहज्जाबाल उपनिषद (2/8) और महर्षि पतंजलि के महाभाष्य (1/1/49) में भी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति को आधारशक्ति के रूप में चिन्हित किया गया है। पतंजलि कहते हैं कि जब कोई वस्तु ऊपर फेंकी जाती है, तो वह पृथ्वी पर ही लौटती है क्योंकि वह पृथ्वी का विकार है–

"लोष्टः क्षिप्तो बाहुवेगं गत्वा नैव तिर्यक् गच्छति नोर्ध्वमारोहति ।
पृथिवीविकारः पृथिवीमेव गच्छति आन्तर्यतः ।।"

(महाभाष्य, स्थानेन्तरतमः 1/1/49 सूत्र पर)

महान खगोलशास्त्री भास्कराचार्य ने अपने ग्रंथ **सिद्धान्त शिरोमणि** (सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय-भुवनकोश-16), आचार्य श्रीपति ने भी अपने ग्रंथ सिद्धांतशेखर (15/21-22) में इस विषय पर गूढ़ व्याख्या की है। वे लिखते हैं:

"आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं, गुरुस्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत् पततीव भाति, समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे॥"

अर्थात् पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से आकाश में स्थित वस्तुएँ जैसे उसकी ओर खिंचती हैं और गिरती प्रतीत होती हैं, लेकिन जब चारों दिशाओं से समान बल लगते हैं, तब वे अंतरिक्ष में संतुलन में रहती हैं और कहीं नहीं गिरतीं। यही कारण है कि ग्रह और उपग्रह अंतरिक्ष में स्थित रहते हुए संतुलित रहते हैं।

आचार्य श्रीपति ने भी सिद्धांतशेखर (15/21-22) में इन तथ्यों की पुष्टि की है। इस प्रकार, यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत आधुनिक युग में आने से सहस्त्रों वर्ष पूर्व ही भारतीय वैदिक परंपरा और दर्शन में न केवल प्रकट हुआ था, बल्कि वैज्ञानिक स्तर पर समझा भी गया था। वेदों और शास्त्रों के यह प्राचीन विचार आज के वैज्ञानिक सिद्धांतों के मूल आधार की तरह दिखाई देते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा, विशेष रूप से वेदों, उपनिषदों और अन्य प्राचीन शास्त्रों में निहित वैज्ञानिक ज्ञान, केवल ब्रह्मांड या विशाल स्तर (macroscopic level) की ही बात नहीं करता, बल्कि सूक्ष्मतम कणों – अर्थात् अणु और परमाणु – तक की गहराई से चर्चा करता है, जिन्हें आज की आधुनिक विज्ञान में **"एटम"** कहा जाता है।

दुर्भाग्यवश, आज के शैक्षिक पाठ्यक्रमों में भारतीय वैज्ञानिक सोच और योगदान को उचित महत्व नहीं दिया जाता। स्कूलों में विज्ञान की पुस्तकों में यह विषय केवल 15–20 पंक्तियों में सीमित कर दिया जाता है। आप स्वयं सोचिए, यदि किसी छात्र से यह पूछा जाए कि प्राचीन भारत के कितने महान वैज्ञानिकों और ऋषियों के नाम उन्हें ज्ञात हैं, तो यह संख्या मुश्किल से 5–7 तक ही सीमित रह जाती है। यह स्थिति न केवल चिंताजनक है, बल्कि हमारे लिए एक प्रकार की बौद्धिक और सांस्कृतिक शर्म का विषय भी है।

प्राचीन भारत में ब्रह्मांड के रहस्यों से लेकर परमाणु की संरचना, गति के नियम, पदार्थ की विभिन्न अवस्थाएँ, विद्युत चुम्बकीय तरंगें, प्रकाश की गति, विद्युत सिद्धांत, गति के नियम – यहाँ तक कि विमान निर्माण और वायुगतिकी जैसे विषयों पर भी गहन मंथन और लेखन हुआ है।

अब समय आ गया है कि हम इन विषयों पर क्रमशः चर्चा करें और भारतीय वैज्ञानिक धरोहर की उस गौरवशाली परंपरा को फिर से उजागर करें जो सहस्राब्दियों से हमारे भीतर विद्यमान रही है।

1. परमाणु का वैदिक व दार्शनिक दृष्टिकोण: वैशेषिक दर्शन की वैज्ञानिक सूझ

परमाणु (Atom) की अवधारणा, जिसे आधुनिक विज्ञान में ब्रिटिश भौतिकविद *जॉन डाल्टन* ने प्रतिपादित किया, उससे सहस्त्रों वर्ष पूर्व भारतीय दर्शन में *महर्षि कणाद* द्वारा विकसित की जा चुकी थी। *वैशेषिक दर्शन* के संस्थापक कणाद ने अपने ग्रंथ *वैशेषिक सूत्र* में परमाणु के स्वरूप और उसके गुणों का गहन वर्णन किया है। सूत्र *"नित्यं परिमण्डलम्"* (वै.सू. 7.1.20) में परमाणु को शाश्वत और गोलाकार बताया गया है। **'परिमण्डल'** शब्द से यह संकेत मिलता है कि परमाणु में कोण उत्पन्न नहीं किया जा सकता क्योंकि वह निरवयव (indivisible) होता है; अतः वह स्वभावतः गोल होता है।

कणाद परमाणु को नित्य (शाश्वत) मानते हैं क्योंकि इसका कोई विनाशक नहीं होता– *"नित्येष्वाकाशादिषु परमाणुषु च यत् परिमाणं तन्नित्यं विनाशकाभावात्"*। यही कारण है कि परमाणु को वे ईश्वर का ही स्वरूप या शरीर मानते हैं, क्योंकि निर्माण करने वाली शक्ति कभी विनाशक नहीं हो सकती। इसी भाव में वे परमाणु को सृष्टि का मूल कारण मानते हैं।

विशेष रूप से कणाद मन को भी परमाणु के तुल्य मानते हैं– *"तदभावादणु मनः"* (वै.सू. 7.1.23)। यह अणु रूप मन ही संकल्प, विचार और दिशा का निर्धारण करता है।

दर्शन में यह भी बताया गया है कि किसी वस्तु का जब निरंतर विभाजन किया जाता है, तब अंततः एक सूक्ष्मतम इकाई प्राप्त होती है, जिसे *परमाणु* कहते हैं– *"यतो नाल्पीयः स परमाणुः"* (वै.सू. 2.1.12)। यदि पदार्थों का विभाजन अनंत मान लिया जाए, तो सरसों के दाने और सुमेरु पर्वत में कोई भेद नहीं रह जाएगा, इस आपत्ति को दूर करने के लिए कणाद परमाणु को विभाजन की अंतिम सीमा मानते हैं– *"तस्मान्निरवयवं द्रव्यमवधिः स एव परमाणुः"* (वै.सू. 4.1.2)।

प्राचीन आचार्यों ने परमाणु को *अणु* और *रेणु* नाम से भी जाना है।इसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, परंतु अनुमान के आधार पर इसकी सत्ता स्वीकार की गई है। उदाहरणतः, जब दिन में सूर्य की किरणें खिड़की से घर में प्रवेश करती हैं, तब उसमें उड़ते हुए सूक्ष्म कण– जिन्हें त्रसरेणु कहते हैं– देखे जा सकते हैं। एक त्रसरेणु तीन सरेणुओं से बना होता है, और एक सरेणु दो परमाणुओं के मिलने से बनता है। इस प्रकार, एक त्रसरेणु में छह परमाणु होते हैं।

इस पारंपरिक अवधारणा को एक प्राचीन श्लोक में भी संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है–

जालान्तर्गते भानी यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
तस्य षष्ठतमो भागः परमाणुः स उच्यते॥

अर्थात् खिड़की से छनकर आती सूर्य किरणों में जो सूक्ष्म कण दिखाई देते हैं, उनका षष्ठांश (छठा भाग) ही परमाणु कहलाता है।

इस प्रकार, भारतीय दर्शन का परमाणु सिद्धांत केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि पूर्णतः तार्किक, वैज्ञानिक और यथार्थपरक है। यह दर्शन पदार्थ के सूक्ष्मतम रूप तक पहुँचकर न केवल सृष्टि के मूल कारण की खोज करता है, बल्कि ईश्वर और चेतना के साथ भी इसे जोड़ता है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा की विलक्षणता को सिद्ध करता है।

2. द्रव्य (Matter) और गति : वैशेषिक दृष्टिकोण

प्राचीन भारतीय दर्शन में महर्षि कणाद द्वारा रचित *वैशेषिक सूत्र* न केवल पदार्थ और तत्वों की प्रकृति को समझाने का प्रयास करता है, बल्कि गति और उसके कारणों का विश्लेषण भी अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करता है। उन्होंने द्रव्य की व्यापक व्याख्या करते हुए *पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन और आत्मा (जीवात्मा)* को द्रव्य की श्रेणी में रखा है (वै.सू. 1/1/5)। जहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु भौतिक द्रव्य हैं, वहीं आकाश, काल और ऊर्जा को भी द्रव्य माना गया है–जो आधुनिक भौतिकी में

आइंस्टीन के सापेक्षता सिद्धांत में सामने आया विचार है। कणाद के अनुसार, ब्रह्मांड की सभी गतियाँ आकाश के प्रभाव क्षेत्र के कारण संभव हैं, और द्रव्य की स्थिति का अणवीय (atomic) होती है, चाहे वह दृश्य हो या सूक्ष्म, भौतिक हो या आध्यात्मिक।

• गति और कर्म के प्रकार

महर्षि कणाद ने गति को "कर्म" कहा और उसे पाँच प्रकारों में बाँटा:

1. **उत्क्षेपणम्** (ऊपर की ओर गति),
2. **अवक्षेपणम्** (नीचे की ओर),
3. **आकुञ्चनम्** (संकुचन या सिकुड़ना),
4. **प्रसारणम्** (विस्तार),
5. **गमनम्** (सामान्य गति) – *वै.सू. 7/1/1*

इन गतियों के पाँच कारण बताए गए हैं–

संयोग (यानी वस्तुओं का मिलन), **नोदन** (बाह्य प्रेरणा), **प्रयत्न** (आंतरिक प्रयास), **द्रवत्व** (तरलता), और **गुरुत्व** (गुरुत्वाकर्षण)। इन आधारों पर कणाद निष्कर्ष निकालते हैं कि संयोग, विभाग और वेग सभी गति के कारण हैं:

"संयोगविभागवेगानां कर्म समानम्।" (वै.सू. 1/1/20)

• गति के नियम और निष्कर्ष

1. **नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वं न तिर्यग्गमनम्** – यदि विशेष प्रेरणा न हो तो वस्तु में कोई गति संभव नहीं।
2. **प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः** – प्रयास की विशेषता से प्रेरणा उत्पन्न होती है।
3. **नोदनविशेषादुदसनविशेषः** – विशेष प्रेरणा से ही विशेष गति या उछाल उत्पन्न होती है।
4. **कार्यविरोधि कर्म** – हर क्रिया का एक विरोधी कार्य होता है।

आचार्य प्रशस्तपाद ने इन सूक्ष्म दार्शनिक विचारों को तीन स्पष्ट गति नियमों में बाँटा:

1. **वेगः मूर्तिमत्सु पंचसु द्रव्येषु विशेषापेक्षात् कर्मणो जायते** – गति विशेष कारण (बल) से उत्पन्न होती है, अन्यथा द्रव्य स्थिर रहता है।
2. **वेगः विशेषापेक्षात् कर्मणो जायते नियतदिक् क्रियाप्रबंधहेतुः** – गति हमेशा निश्चित दिशा में होती है और बल-वेग में समन्वय होता है।
3. **वेगः संयोगविशेषाविरोधी** – गति संयोग विशेष से न तो बाधित होती है और न विरोध करती है, बल्कि उसी से उत्पन्न होती है।

इन नियमों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि गति के सिद्धांतों का मूल आधार भारत के ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व रख दिया था। न्यूटन ने अपने ग्रंथ *"Philosophiæ Naturalis Principia Mathematica"* (1687) में जो गति के तीन नियम प्रस्तुत किए, वे महर्षि कणाद के सिद्धांतों से अत्यंत मेल खाते हैं। यह वैशेषिक दर्शन की वैज्ञानिक गहराई का प्रमाण है कि वह पदार्थ, बल और गति की परस्पर क्रिया को उस समय समझा रहा था जब पश्चिमी विज्ञान अभी प्रारंभिक अवस्था में था।

"Philosophiæ Naturalis Principia Mathematica", जिसे संक्षेप में "Principia" कहा जाता है, सर आइज़ैक न्यूटन द्वारा रचित एक मौलिक वैज्ञानिक पुस्तक है, जो सर्वप्रथम 1687 में प्रकाशित हुआ था। यह पुस्तक लैटिन भाषा में लिखी गई है और इसके शीर्षक का अर्थ है - "प्राकृतिक दर्शन के गणितीय सिद्धांत"।

यह पुस्तक विज्ञान के इतिहास में सबसे प्रभावशाली कृतियों में से एक माना जाता है। इसमें न्यूटन ने शास्त्रीय यांत्रिकी (classical mechanics) की आधारशिला रखी और भौतिक ब्रह्मांड की मानव समझ को पूरी तरह से परिवर्तित कर दिया। इस पुस्तक में गुरुत्वाकर्षण के नियम, गति के नियम और खगोलीय पिंडों की गति का गणितीय विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिससे आधुनिक भौतिकी की नींव पड़ी।

3. प्रकाश की गति: वैदिक दृष्टिकोण और आधुनिक वैज्ञानिक तुलनाएँ

प्रकाश की गति को लेकर आधुनिक विज्ञान मानता है कि यह लगभग 3 लाख किलोमीटर प्रति सेकंड (या 1.86 लाख मील प्रति सेकंड) है। सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी लगभग 149.6 मिलियन किलोमीटर है, जिसके अनुसार सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचने में लगभग 8 मिनट 19 सेकंड का समय लेता है। इस वैज्ञानिक तथ्य की वैदिक पुष्टि ऋग्वेद (3.53.8) में मिलती है जहाँ कहा गया है:

"त्रिर्यद् दिवि: परि मुहूर्तमागात् स्वैः"

इसका अर्थ है–

"दिन के तीन चक्र (चक्र = मुहूर्त) स्व की गति से ही आने-जाने वाले हैं।"

जिसका अर्थ है–प्रत्येक मुहूर्त (48 मिनट) में सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर तीन बार आता-जाता है। यदि एक मुहूर्त को छह भागों में बाँटा जाए (तीन आवागमन), तो प्रत्येक भाग की अवधि 8 मिनट के लगभग होती है–जो आधुनिक गणना से मेल खाता है।

ऋग्वेद (1.50.4) के एक अन्य मंत्र में सूर्य को "विश्वदर्शी" (सर्वत्र प्रकाशित

"तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमा भासि रोचनम्।।"

अर्थ: "हे सूर्य! तेजस्वी और सर्वत्र-दर्शी, तू प्रकाश का निर्माता है, सब जगत को अपने ज्योति से आलोकित करता है।"

सायणाचार्य ने इस पर भाष्य करते हुए एक प्रसिद्ध श्लोक प्रस्तुत किया-

"तथा च स्मर्यते योजनानां सहस्रं द्वे द्वे शते द्वे च योजने।
एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तुते।।" - (सायण ऋग्वेद भाष्य 1.50.4

अर्थात्, "[हे सूर्य!] नमस्ते, तू आधे निमिष (दमक क्षण) में 2202 योजन की दूरी तय करता है।"

इसका आशय है कि आधे निमेष (लगभग 0.213 सेकंड) में प्रकाश 2202 योजन की दूरी तय करता है। यदि एक योजन को लगभग 9 मील (14.5 किमी) मान लिया जाए, तो यह गणना भी आधुनिक प्रकाशगति के काफी निकट आती है।

1 योजन ≈ 9 मील (14.5 किमी) (अर्थशास्त्र एवं पुराणों के अनुसार)।
1 निमिष = 16/75 सेकंड ≈ 0.213 सेकंड,
तब आधा निमिष = ~0.106 सेकंड
तो गणना:
2202 × 9 मील = 19,818 मील
19,818 मील / 0.106 सेकंड ≈ 1,86,827 मील/सेकंड ≈ आधुनिक प्रकाश गति 1,86,282 मील/सेकंड के बहुत करीब।

प्रकाश के वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) का उल्लेख भी वैदिक और उत्तरवर्ती ग्रंथों में मिलता है। शालिकानाथ के *ज्योतिर्विज्ञानभास्कर* में" वर्णित है कि ऋषि भरद्वाज ने यंत्रसर्वस्व में 13 प्रकार के प्रकाशमापक यंत्रों का वर्णन किया, जिनसे वर्णक्रम नापा जाता था। वेंकटानन्द द्वारा व्याख्यायित अंशुबोधिनी के अनुसार तम (अंधकार) तीन प्रकार का होता है गूढ़तम (पराबैंगनी), तम (दृश्य), और अंधतम (अवरक्त)। ये विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम के ही तीन खंड हैं।

यजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता 1.7.1) में सात रंगों आरोग (लाल), भ्राज (नारंगी),

स्वर्ण (पीला), पतंग (हरा), पटर (नीला), ज्योतिष्मान (जामुनी), और विभाष (बैंगनी)- का वर्णन मिलता है, जो इन्द्रधनुष के सात रंगों के अनुरूप हैं। ऋग्वेद (8.72.16) सूर्य की "सप्त रश्मियाँ" बताता है और तैत्तिरीय संहिता (1.4.24) में इन रश्मियों को लाभकारी बताया गया है।

सायण भाष्य में उल्लेखित है:

"हे सवितः अहिंसकैः पालकैः मङ्गलैः अनुग्रहविशेषैः
नोऽस्माकं गृहम् सर्वतो रक्ष।"

सूर्य के विकिरणों-"हिरण्यजिह्वा" (स्वर्ण जिह्वा) और "हिरण्यपाणि" (स्वर्ण हस्त)-का उल्लेख तैत्तिरीय संहिता (1.4.24-25) में मिलता है, जिन्हें वैज्ञानिक विक्टर हेस ने क्रमशः पराबैंगनी और अवरक्त किरणों के रूप में 1912 में पहचाना और इसके लिए उन्हें 1936 में नोबेल पुरस्कार मिला।

छांदोग्य उपनिषद (3.1) सूर्य की रश्मियों को मधुमक्खी के छत्ते की संरचना के रूप में वर्णित करता है-जहाँ सूर्य के भीतर से मधु-सदृश किरणें अंतरिक्ष में प्रवाहित होती हैं। इसी दृश्य की आधुनिक पुष्टि अमेरिकी वैज्ञानिक **जेफ कुन** द्वारा **डेनियल के. इनोवे सोलर टेलिस्कोप** के माध्यम से की गई, जिसमें सूर्य की सतह पर मधुमक्खी छत्ते जैसे सेल और शक्तिशाली ऊर्जा फव्वारों को देखा गया, जो हर 14 सेकंड में उथल-पुथल मचाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैदिक ऋषियों का प्रकाश, उसकी गति और वर्णक्रम को लेकर ज्ञान न केवल गहन था, बल्कि आधुनिक विज्ञान के समकक्ष भी ठहरता है।

4. वैदिक विज्ञान में विद्युत: विद्युत-चुंबकीय विकिरण की अवधारणा

- **विद्युत-चुंबकीय विकिरण : प्रकृति और वैज्ञानिक दृष्टिकोण**

विद्युत-चुंबकीय विकिरण (Electromagnetic radiation) वह ऊर्जा है, जो अंतरिक्ष में स्वयं प्रसारित होने वाली तरंगों के रूप में विद्यमान होती है। यह ऊर्जा प्रकाश के रूप में जानी जाती है, परंतु दृश्य प्रकाश इसका केवल एक छोटा-सा भाग है। एक्स-किरणें, गामा किरणें, रेडियो तरंगें, आदि भी इसी विद्युत-चुंबकीय श्रेणी में आते हैं। इन तरंगों में ऊर्जा और संवेग दोनों होते हैं, जो पदार्थों से क्रिया करके उनके अणुओं को प्रभावित करते हैं। मनुष्य की आँखें केवल उस सीमित भाग के प्रति संवेदनशील होती हैं, जिसे **दृश्य प्रकाश** कहा जाता है।

- **वैदिक ग्रंथों में विद्युत-चुंबकीय सिद्धांत**

ऋग्वेद में विद्युत विकिरण और चेतना के समन्वय का गूढ़ वर्णन मिलता है। ऋग्वेद (7.33.10) में कहा गया है कि जब *मित्र* और *वरुण* समान रूप से अपने अंशों का परित्याग करते हैं, तब *वशिष्ठ* का अस्थायी अस्तित्व प्रकट होता है। यह वशिष्ठ अगस्त्य के संपर्क में आकर स्थायित्व प्राप्त करता है– (स्रोत: *Rigveda (H. H. Wilson's translation, 1866) तथा Wisdom Library*)।

"विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुण यदपश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मेतैर्के वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश अंजभारे॥"

(स्रोत: https://theveda.org.in/rigveda/07/033/10)

यह रूपक आधुनिक विज्ञान में प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन की संयोग प्रक्रिया से उत्पन्न न्यूट्रॉन के अस्थायी स्वरूप और उसकी स्थायित्व प्राप्ति की वैज्ञानिक व्याख्या से मेल खाता है। **नील्स बोर** के ***क्वांटम मैकेनिक्स*** और **श्रोडिंगर** की ***वेव (wave) मैकेनिक्स*** सिद्धांत के अनुसार, समस्त प्रकृति तरंगमय है और कण मात्र चेतना की प्रतिच्छाया हैं। वेदों में प्रयुक्त संज्ञाएँ जैसे *मित्र*, *वरुण*, *वशिष्ठ*, *अगस्त्य* आदि, चेतना के विभिन्न गुणधर्मों को दर्शाती हैं।

- **फोटॉन का वैदिक उल्लेख: विवस्वान और यम-यमी**

ऋग्वेद (10.10) में *विवस्वान* को एक तेजस्वी प्रकाश-ऊर्जा का अधिष्ठाता माना गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह *फोटॉन* की अवधारणा से संबंधित है। विवस्वान से उत्पन्न यम और *यमी* वस्तुतः कण और प्रतिकण का प्रतीक हैं। ये आपस में मिलकर विनष्ट हो जाते हैं और पुनः फोटॉन में परिवर्तित हो जाते हैं, जिससे सृष्टि-क्रम का संतुलन बना रहता है। इसीलिए यम और यमी के आपसी संयोग को वेदों में वर्जित बताया गया है।

"यमी विवस्वतः पत्नी भ्राता यमश्च संविदत्।
समाने यम्या पदे यमं हुवे पुरूवसुः॥" -ऋग्वेद 10.10

5. ऋषि अगस्त्य: वैदिक विद्युत विज्ञान के अग्रदूत

- **प्राचीन बैटरी का निर्माण: अगस्त्य संहिता में वर्णन**

अगस्त्य संहिता में विद्युत उत्पादन की एक अत्यंत वैज्ञानिक विधि का उल्लेख मिलता है, जो आज की बैटरी तकनीक से मेल खाती है–

"संस्थाप्य मृण्मये पात्रे ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम्।
छादयेच्छिखिग्रीवेन चार्दभिः काष्ठपांसुभिः॥
दस्तालोष्टी निधातव्यः पारदाच्छादितस्ततः।
संयोगाज्जायते तेजो मित्रावरुणसंज्ञितम्॥"

इस विधि में एक मिट्टी के पात्र में ताम्र पट्टिका (कॉपर प्लेट) तथा शिखीग्रिवा (कॉपर सल्फेट) का घोल डाला जाता है, फिर लकड़ी का गीला बुरादा, पारा और जस्ता रखकर दो तारों से जोड़ने पर विद्युत उत्पन्न होती है, जिसे ***मित्रावरुण शक्ति*** कहा गया है। कुछ रिपोर्टों के अनुसार, विद्युत अपघट्य कोष (Electrolytic Cell) 7 अगस्त 1990 को नागपुर स्थित स्वदेशी विज्ञान अनुसंधान संस्थान में प्रदर्शित किया गया था। तब यह स्पष्ट हुआ कि इसका वर्णन विद्युत अपघट्य कोष से संबंधित है।

इस कोष के निर्माण में मिट्टी के पात्र का चयन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया गया था। आज के प्लास्टिक पात्रों की तुलना में, मिट्टी का पात्र बेहतर शीतलन प्रदान करता है, जिससे कोष के तापमान को नियंत्रित रखा जा सकता है। हालाँकि लकड़ी के पात्र भी बनाए जा सकते थे, परंतु मिट्टी के पात्र की शीतलन क्षमता अधिक प्रभावी थी। इसके अतिरिक्त, आरा की बुरादे (saw dust) का उपयोग एक गीले पृथक्कारक (wet separator) के रूप में किया गया था।

यह संयोजन आधुनिक बैटरी के सिद्धांत से मेल खाता है, जैसा कि वोल्टा द्वारा आविष्कृत बैटरी में देखा गया है। इस विधि के सफल प्रयोग से **1.38 वोल्ट** की विद्युत और 23 मिलीएंपियर करंट प्राप्त हुआ। (स्रोत: *A. Shukla, T.P. Kumar, Electrochemistry: Retrospect and Prospects, Isr. J. Chem. 151-120 ,61 ,2021.*)

बगदाद बैटरी एक प्राचीन विद्युत रासायनिक कोष है, जिसे 1936 में बगदाद के निकट खुजुत राबु नामक गाँव में खोजा गया था। यह एक सिरेमिक पात्र में तांबे की नली और लोहे की छड़ का संयोजन था, जो अगस्त्य बैटरी के वर्णन से मिलता-जुलता है। यहाँ जिंक के स्थान पर लोहे का उपयोग किया गया था। तांबे की नली और लोहे की छड़ को डामर (अस्फाल्ट) द्वारा पृथक किया गया था, जो एक इंसुलेटर का कार्य करता था। जब इस पात्र को एक विद्युत अपघट्य (इलेक्ट्रोलाइट) से भरा गया, तो यह संभावित अंतर (वोल्टेज) उत्पन्न करता था। बाद में, 1948 में, एक GE इंजीनियर ने इस संयोजन को सिरके को इलेक्ट्रोलाइट के रूप में उपयोग करके पुनः निर्मित किया और आश्चर्यजनक रूप से लगभग 2 वोल्ट का आउटपुट प्राप्त किया। पुरातात्विक जांचों से यह पता चला

है कि ये कलाकृतियाँ लगभग 2000 वर्ष पुरानी हैं, जो स्पष्ट रूप से संकेत देती हैं कि इस प्रकार के संयोजन वोल्टा से बहुत पहले उपयोग में लाए जाते थे और उस समय तुलनात्मक विभिन्न रेडॉक्स संभावनाओं वाले दो धातुओं को एक विद्युत अपघट्य घोल में डुबो कर उपयोग करने का ज्ञान था।

(स्रोत: *Journal of Near Eastern Studies*, vol. 32, no. 2, pp. 98-81, April 1973. *Includes images of the artifact and similar objects.*; *The Baghdad Battery* - and Ancient *Electricity*", *Michigan State University students website*, October 2010, 12. Archived *from the original on November 2013*, 9. Retrieved March 2015, 9.; J. H. Lienhard, A. *1972: Baghdad Batteries*, *The Engines of Our Ingenuity*, 1972.)

- **जल अपघटन (Water Electrolysis)**

ऋषि अगस्त्य के अनुसार, यदि ऐसे सौ कुंभों (सेलों) की शक्ति का जल पर प्रयोग किया जाए, तो जल प्राण और उदान वायु में परिवर्तित हो सकता है:

"अनेन जलभङ्गोऽस्ति प्राणो दानेषु वायुषु।
एवं शतानां कुम्भानां संयोगः कार्यकृत् स्मृतः॥"

भावार्थ: "इस विधि द्वारा जल टूटता (जल का विश्लेषण होता) है, और इसमें प्राण वायु (हाइड्रोजन) तथा उदान वायु (ऑक्सीजन/ऊर्जा) उत्पन्न होती है। इस प्रकार सौ (100) कुम्भ, यानि सेल, संयुक्त (series/parallel में) करने पर इच्छित कार्य (ऊर्जा, ऊर्जा उत्पादन) संपन्न हो सकता है।"

कुंभ (बैटरी) में **मित्रावरुण (विद्युत)** शक्ति के उत्पादनकर्ता होने के कारण ऋषि अगस्त्य को कुंभज के नाम से भी जाना जाता है।

यह *वैमानिक ऊर्जा* के उत्पादन का वैदिक आधार प्रस्तुत करता है। यदि इस उदान वायु को वायुबन्धक वस्त्रों से रोका जाए, तो यह आकाश-यान को चलाने की शक्ति बन सकती है–

"वायुबन्धकवस्त्रेण निबद्धो यानमस्तके।
उदानः स्वलघुत्वे विमर्त्याकाश यानकम्॥"

- (अगस्त्य संहिता / शिल्पशास्त्र)

इस श्लोक का अर्थ है: "वायुबन्धक (air-tight, gas-proof) वस्त्र से (गैस को) रोकना अगर उसे यान के शीर्ष (ऊपर/सिर) में रखा जाए, तो वह (गैस) अपनी हल्काई के कारण यान (आकाशयान / विमान) को ऊपर की ओर उठाने में समर्थ हो जाता है।"

- उदान: यहाँ हल्की तप्त वायु (हाइड्रोजन/हीलियम या अन्य गैसीय शक्ति) को दर्शाता है।
- वायुबन्धक वस्त्र: यानि गैस-टाइट थैली या गुब्बारा (balloon फॉर्म), जो प्राचीन विज्ञान और आधुनिक हॉट-एयर बलून/डिरिजिबल (airship) का मूल है।

- **इलेक्ट्रोप्लेटिंग की वैदिक विधि**

अगस्त्य संहिता में *इलेक्ट्रोप्लेटिंग* की विधि का भी वर्णन मिलता है:

"यवक्षारमयोधानी सुशक्तजलसन्निधौ,
आच्छादयति तत् ताम्रं स्वर्णेन रजतेन वा।
सुवर्णलिप्तं तत् ताम्रं शातकुम्भमिति स्मृतम्॥" - (अगस्त्य संहिता 5)

अर्थात् लोहे के पात्र में सुशक्त जल (तेजाब) का घोल, यवाक्षार (सोने या चाँदी का नाइट्रेट) का सान्निध्य पाते ही ताँबे को स्वर्ण या रजत से ढँक लेता है। स्वर्ण से लिप्त उस ताम्र को **शातकुंभ** कहा गया है। इस प्रक्रिया के लिए प्राचीन भारतीय रसायनशास्त्र में "सत्कृति" शब्द भी उपयोग हुआ है, जिसका अर्थ है– कृत्रिम स्वर्ण या चांदी का लेप (coating) लगाना, जिससे तांबा स्वर्ण या चाँदी जैसा दिखने लगता है। (**कृत्रिमः स्वर्णरजतलेपः सत्कृतिरुच्यते**)।

शुक्रनीति में सत्कृति को उच्च मान्यता दी गई है और इसे रासायनिक सजावट और धातु रक्षा की वैदिक कला माना गया है।

- **विद्युत के वैदिक प्रकार**

अगस्त्य संहिता में विद्युत के छह भेदों का वर्णन किया गया है:

1. **तड़ित** – रेशमी वस्त्रों के घर्षण से उत्पन्न विद्युत
2. **सौदामिनी** – रत्नों के आपसी घर्षण से उत्पन्न
3. **विद्युत** – मेघों के संघर्ष से उत्पन्न
4. **शतकुंभी** – सेलों (बैटरियों) से उत्पन्न
5. **हृदनि** – संरक्षित या संचित विद्युत
6. **अशनी** – चुम्बकीय दण्ड से उत्पन्न

भारतीय ऋषियों, विशेषतः ऋषि अगस्त्य, ने न केवल विद्युत-उत्पादन की वैज्ञानिक विधियाँ विकसित की थीं, बल्कि उसे व्यावहारिक प्रयोगों के स्तर पर सिद्ध भी

किया था। आधुनिक काल में **माइकल फैराडे** को विद्युत का जनक कहा जाता है, कि वैदिक ग्रंथों के प्रमाण यह दर्शाते हैं कि इस ज्ञान का उद्गम भारत की प्राचीन वैदिक परं में था। दक्षिण भारत में ऋषि अगस्त्य को ***अगतियम*** या ***अगन्तियांगर*** के नाम से जा जाता है, जो उनके वैज्ञानिक योगदान का सम्मानसूचक प्रतीक है।

विमानन का इतिहास

आज हम जब आधुनिक युग में विमानों, हवाई जहाजों, रॉकेटों और अंतरिक्ष यानों के ब में पढ़ते हैं, तो मन में यह प्रश्न उठता है कि इसकी शुरुआत किसने की होगी? इस वि की खोज करते हुए हम पाते हैं कि विमानन का इतिहास लगभग दो हजार वर्षों में अधिक पुराना है, और इसके प्रमाण विभिन्न ग्रंथों, कथाओं और दस्तावेजों में मिलते

उदाहरण के लिए, चीन में ईसा पूर्व 5वीं शताब्दी में पतंगों का आविष्क हुआ, जिन्हें मानव द्वारा निर्मित पहली उड़ान का उदाहरण माना जाता है। (स्रोत: *"Kite Aeronautics, History & Benefits". www.britannica.com. Retrieved 5 December 2024.*) इसके बाद 15वीं शताब्दी में लियोनार्डो दा विंची ने उड़ने वाली मशीनों के डिजाइ तैयार किए, हालांकि उस समय की सीमित वैज्ञानिक समझ के कारण वे कार्यान्वय योग्य नहीं थे। (स्रोत: *Botelho Parra, Rogerio (14 September 2018). "Leonardo da Vinci Interdisciplinarity" (PDF). 31st Congress of the International Council of the Aeronautical Sciences. 1 (1):10 – via ICAS.*)

18वीं शताब्दी के अंत में मोंटगोल्फियर भाइयों ने गर्म हवा के गुब्बारे क आविष्कार किया, जिससे मानव की पहली उड़ान संभव हो सकी। (स्रोत: *Crouch, Tom (2004). Wings: A History of Aviation from Kites to the Space Age. New York, New York: W.W. Norton & Co. ISBN 0-393-32620-9.*)

इसके बाद, इंजन तकनीक और एयरोडायनामिक्स में हुई प्रगति ने 20वीं शताब्दी की शुरुआत में मानव द्वारा संचालित, नियंत्रित और भारी-से-हवा वाले विमान की उड़ान को संभव बनाया। 1903 में, राइट बंधुओं ने दुनिया का पहला हवाई जहाज बनाया और सफलतापूर्वक उड़ाया।

अब तक हमने जो कुछ भी पढ़ा, उसमें भारत या भारतीय विमानिकी का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इससे यह भ्रांति उत्पन्न होती है कि हमारे पौराणिक इतिहास-वेद, पुराण, रामायण, महाभारत–में वर्णित विमान मात्र कल्पना हैं। किंतु यह केवल एक पक्ष है; वास्तविकता यह है कि भारत का विमान विज्ञान अत्यंत प्राचीन और समृद्ध रहा है।

भारतीय परंपरा में विमानन का उल्लेख प्राचीन काल से मिलता है। ऋषि भरद्वाज द्वारा रचित 'वैमानिक शास्त्र' में विमानों के निर्माण, संचालन और प्रकारों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ में विभिन्न प्रकार के विमानों, उनके उड़ान सिद्धांतों और तकनीकी विवरणों का उल्लेख है, जो प्राचीन भारत में विमानन विज्ञान की उन्नत स्थिति को दर्शाता है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों जैसे **'रामायण', 'महाभारत', 'यजुर्वेद'** और **'सामरांगण सूत्रधार'** में भी विमानों का उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों में वर्णित 'विमान' न केवल पृथ्वी पर, बल्कि अंतरिक्ष में भी यात्रा करने में सक्षम थे। इन विमानों के संचालन में पारे (mercury) जैसे तत्वों का उपयोग किया जाता था, जो उनकी उन्नत तकनीक को दर्शाता है।

आधुनिक काल में, भारत में विमानन की शुरुआत 18 फरवरी 1911 को हुई, जब इलाहाबाद से नैनी तक पहली आधिकारिक हवाई डाक सेवा शुरू हुई। इसके बाद, 15 अक्टूबर 1932 को जे.आर.डी. टाटा ने कराची से मुंबई तक पहली वाणिज्यिक उड़ान भरी, जिससे भारत में नागरिक विमानन की नींव रखी गई।

6. वैमानिक शास्त्र: भारत की प्राचीन उड्डयन परंपरा

- **ऋषि भरद्वाज और यंत्र सर्वस्वम्**

ऋषि भरद्वाज द्वारा रचित ग्रंथ ***"यंत्र सर्वस्वम्"*** और उसमें समाहित ***वैमानिक शास्त्र*** का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रंथ भारत के प्राचीन विमान विज्ञान की गहनतम झलक देता है, जिस पर महान गणितज्ञ **बोधायन** ने विस्तृत टीका लिखी है। *वैमानिक शास्त्र* में 25 प्राचीन वैज्ञानिक ग्रंथों की सूची मिलती है, जिनमें *नारद कृत- वैश्वानरतंत्र, अगस्त्य मुनि का शक्तिसूत्र, ईश्वर कृत- सौदामिनी कला, शाकटायन का वायुतत्त्व प्रकरण, भरद्वाज कृत- अंशुबोधिनी, आकाशतंत्र तथा यंत्र सर्वस्व* आदि सम्मिलित हैं।

इन ग्रंथों में विमानों के प्रकार, उनके कलपुर्जे, निर्माण में प्रयुक्त धातुएँ, चालक-परिचालकों के वस्त्र व प्रशिक्षण, ऋतु अनुसार भोजन व्यवस्था, विविध ईंधन, आकाश मार्ग की बाधाएँ एवं समाधान, दिशा निर्धारण की विधियाँ आदि का सूक्ष्म विवरण दिया गया है। विमान को परिभाषित करते हुए कहा गया है –

देशाद् देशान्तरं तद्वद् द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा।
लोकात् लोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुमर्हति।

स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविशारदैः॥

अर्थात्, जो साधन देश, द्वीप या लोक के एक छोर से दूसरे तक आकाश मार्ग से जाने में सक्षम हो, उसे *विमान* कहा गया है।

महर्षि शौनक द्वारा *आकाश मार्ग* को पाँच पथों में विभाजित किया गया। *रेखापथ, मण्डलपथ, कक्षापथ, शक्तिपथ* और *केन्द्रपथ*, जिन्हें ऊँचाई के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। इनके साथ *शक्त्यावर्त, वातावर्त, किरणावर्त, शैत्यावर्त* और *घर्षणावर्त* जैसे आकाशीय भंवरों का वर्णन है, जो दो शक्तियों के संघर्ष से उत्पन्न होते हैं और विमानों के लिए संकट उत्पन्न करते हैं। (आकाशीय आवर्त (भंवर) दो शक्तियों के संघर्ष से उत्पन्न होते हैं, इनसे विमानों के नष्ट होने का भय रहता है।)

"यंत्र सर्वस्वम्" के *"विमानाधिकरण"* के प्रथम सूत्र *"शक्त्युद्गमोदयधृ"* के अनुसार ऋषि भरद्वाज ने आठ प्रकार की ऊर्जा-आधारित विमानों की चर्चा की है, जिनकी व्याख्या बोधायन ने की है:

1. **शक्त्युद्गम वर्ग** – विद्युत शक्ति से संचालित विमान।
2. **भूतवाहः वर्ग** – अग्नि, जल, वायु जैसे महाभूतों से प्रेरित विमान।
3. **धूमयानः वर्ग** – धुएँ या वाष्प से चलने वाले विमान।
4. **शिखोद्गः वर्ग** – विशेष वनस्पतियों के तेल से संचालित विमान।
5. **अंशुवाहः वर्ग** – सूर्य की किरणों से शक्ति ग्रहण करने वाले विमान।
6. **तारामुखः वर्ग** – नक्षत्रीय रसायनों से संचालित विमान।
7. **मणिवाहः वर्ग** – मणियों से उत्पन्न उष्ण-विद्युत शक्ति से संचालित विमान।
8. **मरुत्सखा वर्ग** – वायु में उपस्थित शीतोष्ण तत्वों की घर्षण-ऊर्जा से चलने वाले विमान।

विमानों को सौर ऊर्जा से चालित करने हेतु *"शक्त्याकर्षण पंजर"* लगाया जाता था, जो सूर्यकांत मणियों द्वारा सूर्य की ऊर्जा को खींचता था। बिजली गिरने से विमान की रक्षा हेतु *"शिर कीलक यंत्र"* लगाया जाता था। *शकुन विमान* जैसे विमानों के 28 अंग होते थे–इंजन, भट्टी, विद्युत उपकरण, वात-यंत्र, दिशा दर्शक यंत्र आदि।

विमानों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है–

1. **मांत्रिक विमान** – मंत्र शक्ति से संचालित (जैसे पुष्पक, शंकर, भीष्म), जो सतयुग व त्रेतायुग तक प्रचलित रहे।
2. **तांत्रिक विमान** – तंत्र शक्ति से संचालित (जैसे सौभ, नंदन), द्वापर युग तक प्रचलित।
3. **कृतक विमान** – यांत्रिक प्रक्रिया से निर्मित (जैसे शकुन, हंस, पवक आदि)।

यह न केवल भारत की प्राचीन विज्ञान-परंपरा की उच्चता को दर्शाता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि वैमानिकी का गहन ज्ञान भारत में वैदिक काल से मौजूद था, जिसे ऋषियों ने तप, प्रयोग और सिद्धांतों के माध्यम से संरक्षित और विकसित किया।

भारतीय विमानन के वैदिक प्रयासों का एक प्रेरक प्रसंग

यह विशेष प्रसंग उस समय का है जब पश्चिमी जगत में विमानन का स्वरूप भी स्पष्ट नहीं था। सन् 1895 में मुंबई के चौपाटी समुद्र तट पर शिवकर बापूजी तलपड़े नामक एक विद्वान और आविष्कारक ने अपने गुरु सुब्बाराय शास्त्री के मार्गदर्शन में 'मरुत्सखा' नामक एक मानवरहित विमान का सफलतापूर्वक परीक्षण किया। यह प्रयोग बृहद् वैमानिक शास्त्र, विमान चंद्रिका और समरांगण सूत्रधार जैसे संस्कृत ग्रंथों के सिद्धांतों पर आधारित था, जिनमें प्राचीन भारतीय वैमानिकी का उल्लेख मिलता है। यह प्रयास राइट बंधुओं की 1903 की उड़ान से आठ वर्ष पहले किया गया था, जो भारत की पारंपरिक वैज्ञानिक समझ और जिज्ञासा का प्रमाण है। इस प्रयोग में दावा है कि विमान लगभग 1,500 फुट तक उड़ान भर सका। वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार यह विमान संभवतः एक ग्लाइडर था, जिसका ढांचा बाँस से निर्मित था और इसमें तरल पारे का उपयोग 'Solar-Mercury ion-engine' के रूप में किया गया–जहाँ सूर्य की किरणों से पारा आयनित होकर हल्के गैसों का निर्माण करता था, जिससे विमान क्षितिजीय रूप से उठता दिखा।

हालाँकि आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य से देखें तो इस विमान की तकनीकी विशेषताएँ–जैसे पारे से चालित ऊर्जा-स्रोत और उड़ान-प्रणाली–पूरी तरह प्रमाणित नहीं मानी जातीं, फिर भी यह प्रयास निस्संदेह उद्यम, नवाचार और वैदिक विज्ञान के प्रयोगात्मक पक्ष का प्रतीक है। 1974 में भारतीय विज्ञान संस्थान (IISc), बेंगलुरु द्वारा किए गए एक विश्लेषणात्मक अध्ययन में बृहद वैमानिक शास्त्र के तकनीकी पहलुओं को आधुनिक डिजाइनों की तुलना में अव्यावहारिक माना गया। परन्तु इससे इस ऐतिहासिक प्रयोग की प्रेरक भावना और स्वदेशी विज्ञान के प्रति उत्साह को कम करके नहीं आंका जा सकता।

Kesari और Deccan Herald जैसे समकालीन प्रकाशनों ने इस प्रयोग का उल्लेख किया है, और हिंदुस्तान एरोनॉटिक्स लिमिटेड (HAL) के संग्रहालय में आज भी 'मरुत्सखा' का एक मॉडल दर्शकों को प्राचीन भारतीय नवाचार की याद दिलाता है। इस विमान की उड़ान भले ही सीमित रही हो, लेकिन यह भारत में वैज्ञानिक चेतना की जड़ों और ज्ञान परंपरा के जीवित प्रयोग का प्रमाण अवश्य है।

यह प्रयास हमें यह समझने में सहायता करता है कि भारत की वैज्ञानिक सोच केवल पाश्चात्य प्रभाव से उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि हमारी सभ्यता में भी जिज्ञासा, प्रयोग और नवाचार की लहरें हमेशा प्रवाहित होती रही हैं।

7. वैदिक काल का मौसम विज्ञान: वृष्टि विज्ञान

- **वर्षा का महत्व और वैदिक दृष्टिकोण**

वर्षा का विज्ञान मानव जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। कृषि, जल आपूर्ति और पारिस्थितिकी तंत्र इसके बिना अस्थिर हो जाते हैं। यही कारण है कि वेदों में वर्षा के विज्ञान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। ऋग्वेद में बताया गया है कि वर्षा का संबंध *लोक* (धरती), *अंतरिक्ष* और *समुद्र* से है। सूर्य की किरणें समुद्र के जल को भाप के रूप में वाष्पित करती हैं, जो अंतरिक्ष में जाकर *मेघों* का निर्माण करती है। विद्युत (इंद्र) और मरुत (सूक्ष्म जीव/वायु) मिलकर इन मेघों को वर्षा योग्य बनाते हैं:

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तेः शवसो नपातः ॥

– ऋग्वेद 1/161/14

भावार्थ: वर्षा की प्रक्रिया अनेक देवशक्तियों – जैसे अग्नि (ऊर्जा), मरुत (वायु), वरुण (जल), और वायु (वात) – के सम्मिलित कार्य से संचालित होती है।

यह प्रकृति का चक्र है जहाँ:

- सूर्य की गर्मी (अग्नि) समुद्र से जल वाष्प बनाती है
- वायु (मरुत और वात) उस वाष्प को आकाश में ले जाती है
- और फिर जल देवता (वरुण) उसे वर्षा के रूप में लौटाते हैं

- **मेघ निर्माण की प्रक्रिया**

सूर्य की ऊष्मा से जल वाष्प बनकर ऊपर उठता है। यह वाष्प धूलिकणों और ठंडी वायु के संपर्क में आकर घनीभूत होता है और मेघों का निर्माण होता है। एक मेघ को वर्षा योग्य बनने में लगभग 195 दिन (छह माह) का समय लगता है:

"सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि"

– ऋ. 1/164/36)

भावार्थ: इस मंत्र में मेघों की उत्पत्ति और उनके परिपक्व होने की अवधि का उल्लेख है।

- सूर्य की किरणों से जो जलवाष्प बनता है, वह लगभग 7.5 महीनों तक आकाश में अपने गर्भ (घनत्व / संचित अवस्था) को धारण करता है।
- ये जल कण विभिन्न दिशाओं में फैले रहते हैं और फिर समय आने पर वर्षा करते हैं।

यह मंत्र जलचक्र के "आकाशीय गर्भावस्था / संघनन काल" जैसी अवधि का संकेत देता है, जो विज्ञान में condensation cycle की maturation अवधि से मेल खाता है।

- **वराहमिहिर की जलवायु पहचान**

वराहमिहिर की *बृहत्संहिता* में वर्षा की भविष्यवाणी हेतु ग्रह-नक्षत्रों, आकाश की स्थिति, वायु की गति, सूर्य-चंद्रमा की आभा, पेड़-पौधों की दशा और जीवों की गतिविधियों का गहन विश्लेषण किया गया है। यदि गर्भकाल में आकाश साफ, वायु कोमल हो, और सूर्य-चंद्रमा की आभा प्रखर हो, तो प्रसवकाल में अच्छी वर्षा होती है।

* **अतिवृष्टि के संकेत:** यदि वर्षा के गर्भकाल में बादल मोती या चाँदी जैसे चमकीले हों, साथ ही हल्की धूप और मंद हवा हो, तो भविष्य में **अतिवृष्टि** की संभावना होती है।
* **गर्भपात के लक्षण:** प्रकृति में असंतुलन जैसे – लाल बादलों की लपटें, धूल भरी आँधी, गरजती हवा, बिजली गिरना, उल्कापात, धूमकेतु, भूकंप या सूर्यग्रहण – यह सब वर्षा के *गर्भपात* के लक्षण माने गए हैं।
* **मेघगर्भ और प्रसव का वैदिक समय निर्धारण:** *महर्षि पराशर* के अनुसार, यदि मेघ *शुक्ल पक्ष* में गर्भ धारण करें तो वे *कृष्ण पक्ष* में वर्षा करते हैं, और यदि गर्भ *कृष्ण पक्ष* में हो, तो प्रसव *शुक्ल पक्ष* में होता है। इसके अतिरिक्त, दिन में बने मेघ रात में और रात में बने मेघ दिन में वर्षा करते हैं।

"अथ माघेन, श्रावणं फाल्गुनेन भाद्रपदं चैत्रेणाश्वपुज वैशाखेन तु कार्तिकं शुक्लेन कृष्णं कृष्णोन शुक्लं दिवसेन रात्रिं रात्र्या दिवसे गर्भा: प्रवर्षन्ति।"

वराहमिहिर ने मेघगर्भ और प्रसव की स्पष्ट सारणी दी है–

गर्भस्थापन (मास/पक्ष)	प्रसव (मास/पक्ष)
श्रावण शुक्ल	पौष कृष्ण
श्रावण कृष्ण	माघ शुक्ल
भाद्रपद शुक्ल	माघ कृष्ण
भाद्रपद कृष्ण	फाल्गुन शुक्ल
अश्विन शुक्ल	फाल्गुन कृष्ण
अश्विन कृष्ण	चैत्र शुक्ल
कार्तिक शुक्ल	चैत्र कृष्ण

- **मेघों के प्रकार**

ऋग्वेद के मंत्र *"य: सप्तरश्मि:..."* की व्याख्या करते हुए *आचार्य सायण* ने तैत्तिरीय *आरण्यक* का हवाला देते हुए **सात प्रकार के मेघों** का वर्णन किया है:

1. वराहु
2. स्वतपस्
3. विद्युन्महस्
4. धूपि
5. श्रापि
6. गृहमेध
7. अशिमिविद्विष्

"वराहव:, स्वतपस:, विद्युन्महस:, धूपय:, श्रापय:, गृहमेधा:, अशिमिविद्विष: पर्जन्या: सप्त"

–(तैत्तिरीय आरण्यक 1.1.4-5)

का वर्गीकरण वर्षा की मात्रा, तीव्रता, बिजली की उपस्थिति आदि के आधार पर किया ा है।

ऋषि पराशर द्वारा वर्णित चार मेघ रूप

पराशर ग्रंथ के अनुसार चार प्रकार के मेघ होते हैं:

1. **आवरत मेघ** – एक निश्चित स्थान पर वर्षा करते हैं

2. **सम्रत मेघ** – समान रूप से वर्षा करते हैं
3. **पुष्कर मेघ** – बहुत कम वर्षा करते हैं
4. **द्रोण मेघ**– भरपूर वर्षा करते हैं

- **यज्ञ द्वारा कृत्रिम वर्षा**

ऋग्वेद के *वृष्टिकामा सूक्त* (मंडल 10, सूक्त 98) के 12 मंत्रों में **कृत्रिम वर्षा** लाने की विधियाँ बताई गई हैं। *सायणाचार्य* ने ऋग्वेद (मंडल 7, सूक्त 101) की व्याख्या करते हुए उल्लेख किया है कि यज्ञ की अग्नि, घृताहुति और मंत्रोच्चारण द्वारा वर्षा कराई जा सकती है।

ऋग्वेद 10.98.1: **"इन्द्रं वृष्टिं महते वृष्टिकामो हविषा हुवे यजमान: ।"**

हिन्दी अर्थ: यजमान वृष्टि की इच्छा से इन्द्र को हवि (आहुति) द्वारा बुलाता है।

सायणाचार्य, जो ऋग्वेद के सबसे प्रमुख भाष्यकारों में से एक हैं, उन्होंने ऋग्वेद मंडल 7, सूक्त 101 की व्याख्या में स्पष्ट लिखा है कि–

"यज्ञ में अग्नि को प्रज्वलित कर, उसमें घृत, तिल और अन्य औषधीय द्रव्यों की आहुति देने से उस ऊष्मा और धुएँ का प्रभाव वातावरण में आर्द्रता उत्पन्न करता है, जिससे मेघ संचित होकर वर्षा करते हैं।"

- **आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण**

  * यज्ञ में जलने वाले पदार्थ (घी, तिल, नीम, चंदन, औषधियाँ) जब अग्नि में डाले जाते हैं, तो वे वाष्प, धुआँ, और एयरोसोल कण उत्पन्न करते हैं।
  * ये कण क्लाउड कंडेन्सेशन न्यूक्लिअस (CCN) का कार्य करते हैं – जो जलवाष्प को संघनित कर वर्षा योग्य मेघ बनाते हैं।
  * ताप, धुआँ और स्पंदन (साउंड वाइब्रेशन) बादलों को प्रेरित करते हैं।

इस वैज्ञानिक प्रक्रिया का उपयोग आज भी किया जाता है – जिसे "क्लाउड सीडिंग" कहते हैं, जिसमें सिल्वर आयोडाइड, सूखा बर्फ या नमक के कण आकाश में छोड़े जाते हैं। वेदों में यह वर्णित है कि मंत्रों की ध्वनि तरंगें वातावरण में विशेष प्रकार की स्पंदन ऊर्जा (vibrational energy) उत्पन्न करती हैं, जिससे वातावरण में आकाशीय विद्युत (electric charge) की स्थिति बदलती है, जिससे मेघगर्जन, द्रव्यमान संचलन और अंततः वर्षा होती है।

इंद्रधनुष और उल्कापात का प्राचीन वैज्ञानिक विवेचन

- **इंद्रधनुष की रचना: प्रकाश और वायु का संयोग**

प्राचीन भारतीय खगोलविद और मौसम वैज्ञानिक वराहमिहिर ने इंद्रधनुष की उत्पत्ति का वैज्ञानिक विवरण अपने ग्रंथ *बृहत्संहिता* में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, जब सूर्य की बहुरंगी किरणें मेघों से युक्त आकाश में वायु से टकराती हैं, तब वे कणों में परावर्तित और अपवर्तित होकर आकाश में एक धनुषाकार आकृति का निर्माण करती हैं, जिसे इंद्रधनुष कहा जाता है। यह प्रकृति का सौंदर्य और प्रकाश-विज्ञान का जीवंत उदाहरण है।

"सूर्यस्त विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे।
वियति धनुः संस्थाना ये दृश्यते तद्रिन्द्रधनुः॥

– बृहत्संहिता 35.1

वराहमिहिर इंद्रधनुष के दो रूपों का उल्लेख करते हैं: यदि इंद्रधनुष आकाश में आड़ा-तिरछा और खंडित रूप में हो तो उसे **'रोहित'** कहते हैं, जबकि यदि वह सीधा, लंबा और संपूर्ण हो तो उसे **'ऐरावत'** कहा जाता है।

"रोहिताः खण्डतः धनुः। ऐरावतं तु दीर्घं स्यात्।"

– बृहत्संहिता 47.2

- **उल्कापातः आकाशीय अग्नि की विविधताएँ**

बृहत्संहिता में वराहमिहिर ने आकाश से गिरने वाली **उल्काओं (meteors)** के पाँच प्रकारों का वर्णन किया है, जिनकी आकृति, ध्वनि और गति पृथक-पृथक होती है:

1. **अशनि** – यह उल्का चक्र की तरह घूमती हुई तेज आवाज के साथ वृक्ष या अन्य वस्तुओं पर गिरती है।
2. **विद्युत्** – अत्यंत तेज, विशाल और टेढ़ी-मेढ़ी आकृति की होती है, जो सीधे आकाश से धरती पर गिरती है।
3. **घिष्ण्या** – यह जलती हुई मशाल जैसी दिखती है, जिसकी आकृति पतली होती है और उसमें एक छोटी पूँछ होती है।
4. **तारा** – अत्यंत सूक्ष्म होती है और कमल के रेशे (तंतु) के समान तिरछी गति से गिरती है।
5. **उल्का** – यह सबसे विशाल रूप होती है; इसकी लंबाई लगभग साढ़े तीन हाथ तक हो सकती है और इसका सिर अग्निशिखा के समान बड़ा होता है।

इन्द्रधुना की रचना



सूर्यस्त विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे।
वियति धनुः संस्थाना ये दृश्यते तद्रिन्द्रधनुः ॥
(बृहत्. 35.1)

उल्कापात के प्रकार



अशनि **विद्युत्** **घिष्ण्या** **तारा** **उल्का**

प्राचीन मान्यताओं और अनुभवजन्य ज्ञान के अनुसार, **आषाढ़ मास** में उल्कापात और बिजली गिरने की घटनाएँ सबसे अधिक देखी जाती हैं, जो उस समय के मौसमी परिवर्तनों की गवाही देती हैं।

8. वनस्पति विज्ञान और भ्रूणविज्ञान: वैदिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का संगम

वैदिक युग में वनस्पतियों को मात्र जैविक संसाधन नहीं, अपितु जीवंत, चेतन, और पंचमहाभूतों से युक्त प्राणी के रूप में देखा गया। अथर्ववेद में वनस्पतियों को उनके गुणधर्म और स्वरूप के अनुसार सात श्रेणियों में विभाजित किया गया है–वृक्ष, तृण, औषधि, गुल्म, लता, अवतान और वनस्पति। इनका केवल प्राणवायु (ऑक्सीजन) का स्रोत होना ही नहीं, बल्कि भरण-पोषण, रोगनाश, और पर्यावरणीय शुद्धता में भी महत्त्वपूर्ण योगदान माना गया है। वृक्ष के पाँच प्रमुख अंग–मूल, स्कन्ध, पत्र, पुष्प और फल–इनकी जीवन शक्ति और कार्यात्मक विविधता को दर्शाते हैं। इन्हें 'पादप' इसलिए कहा गया क्योंकि ये अपने पाद (जड़) से जल व रस ग्रहण करते हैं।

महर्षि पराशर रचित **"वृक्ष आयुर्वेद"** इस विषय पर अद्वितीय ग्रंथ है, जिसमें वनस्पति विकास, बीजोत्पत्ति से लेकर चिकित्सा तक का विस्तृत विवरण मिलता है। इसके बीजोत्पत्ति काण्ड में कहा गया है–

"आपोऽहि कललं भूत्वा यत् पिण्डस्थानुकं भवेत्।
तदेवं व्यूहतानत्वात् बीजत्वमधि गच्छति।।"

अर्थात् जल के संपर्क से जीवनद्रव्य उत्पन्न होता है, जो बीज बनकर पृथ्वी से ऊर्जा प्राप्त कर वृक्ष का रूप लेता है। इस प्रक्रिया में बीज पहले कलल (जेली-सदृश पदार्थ) के रूप में विकसित होता है और फिर ऊष्मा तथा पोषक तत्वों की सहायता से वृक्ष रूपी सजीव इकाई बन जाता है।

"वृक्ष आयुर्वेद" में वृक्षों की शारीरिक क्रिया विज्ञान का भी उल्लेख है। उदाहरणतः, वृक्ष की पत्तियाँ वात (CO_2), आतप (सूर्यप्रकाश) और रंजक (पर्णहरित) के सहयोग से प्रकाश-संश्लेषण कर भोजन निर्माण करती हैं–

"पत्राणि तु वातातपरञ्जकनि अभिगृह्णन्ति।"

महर्षि चरक और वैदिक स्रोतों के अनुसार वृक्षों में चेतना होती है। इस बात को आधुनिक विज्ञान में जगदीश चंद्र बसु ने यंत्रों द्वारा प्रमाणित किया कि वनस्पतियाँ संवेदनशील होती हैं और बाह्य उद्दीपनों पर प्रतिक्रिया करती हैं।

अथर्ववेद (10.8.31) में वर्णित "अवितत्त्व" को वृक्षों की हरियाली का कारण बताया गया है, जो आधुनिक विज्ञान में क्लोरोफिल (Chlorophyll) के समकक्ष है। यह तत्व कोशिका-झिल्ली से घिरा रहता है और वृक्षों को हरितिमा प्रदान करता है–

"अविवै नाम देवता ऋतेनास्ते परिवृता,
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः।"

वनस्पति विज्ञान के साथ-साथ वैदिक ग्रंथों में भ्रूणविज्ञान (Embryology) की गहन व्याख्या मिलती है। महाभारत के शांति पर्व और श्रीमद्भागवत में गर्भस्थ शिशु के विभिन्न विकास-चरणों का विवरण मिलता है।

"बिंदुन्यासादयोऽवस्थाः शुक्रशोणितसम्भवाः।
यासामेव निपातेन कललं नाम जायते।।
कललाद् बुद्बुदोत्पत्तिः पेशी च बुद्बुदात् स्मृता।
पेश्यास्त्वङ्गाभिनिर्वृत्तिर्नखरोमाणि चाङ्गतः॥"

इस श्लोक में भ्रूण की उत्पत्ति को क्रमबद्ध रूप से बताया गया है–शुक्र और शोणित (अंडाणु) से 'कलल' नामक द्रव्य की उत्पत्ति, फिर उससे 'बुब्बुल' (बुदबुद), फिर मांसपेशियाँ, अंग, और अंततः नख-रोम आदि का निर्माण। आधुनिक विज्ञान इसे ज़ायगोट से भ्रूण की स्थिति तक का विकास कहता है। दसवें महीने में भ्रूण के नीचे खिसकने और प्रसव के लिए तैयार होने तक की प्रक्रिया का उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि सातवें महीने में मस्तिष्क का कार्य आरंभ हो जाता है, जो अब वैज्ञानिक रूप से भी सिद्ध हो चुका है।

तमिलनाडु के अनेक चोलकालीन प्राचीन मंदिरों-विशेष रूप से वरमूर्थीश्वरर मंदिर (अरियाथुरई) और श्री गर्भरक्षाकांबिका समेता श्री मुलैवननाथर मंदिर (थिरुकरुगवूर)-में शिलाखंडों एवं मंदिर की दीवारों पर गर्भस्थ शिशु के विकास, निषेचन (fertilization), तथा भ्रूण-चक्र (embryonic cycle) का अत्यंत सूक्ष्म और प्रतीकात्मक चित्रण प्राप्त होता है। इन शिल्पों में मछली, सर्प, कलश, अंकुर (sprout) आदि रूपकों का उपयोग किया गया है, जो प्राचीन भारतीय जैव-विज्ञान की समृद्ध परंपरा को दर्शाते हैं। ये सभी प्रतीक शारीरिक और जैविक प्रक्रियाओं-जैसे गर्भ का निर्माण, कोशिका विभाजन, जीवन की उत्पत्ति-का सांकेतिक रूप में दार्शनिक व वैज्ञानिक बोध कराते हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि ये शिल्प-प्रतिमाएं 10वीं–11वीं शताब्दी में निर्मित की गई थीं-जो कि माइक्रोस्कोप अथवा अल्ट्रासाउंड जैसे आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के आविष्कार से सैकड़ों वर्ष पहले की बात है। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारतीयों के पास जैव-विकास और गर्भ विज्ञान के विषय में अत्यंत परिष्कृत और वैज्ञानिक दृष्टि उपलब्ध थी, जिसे उन्होंने धार्मिक और सांस्कृतिक कला में उत्कृष्ट रूप से अभिव्यक्त किया।

(स्रोत : **Ramakrishna, S., & Subramanian, K. (2020). Embryology and Fetal Development Depicted in Chola Temple Sculptures: An Ancient Indian Perspective on Prenatal Science. Odisha Review, (December 2020), 45-52.*

**Narayanan, V. (2018). Ancient Indian Science and Art: Evidence from Chola Temples. My India My Glory Journal, 10(3), 112-120.*

प्राचीन भारतीय विज्ञान न केवल दर्शन और अध्यात्म में अग्रणी था, बल्कि जैवविज्ञान और वनस्पति-विज्ञान में भी उसकी गहराई अद्वितीय रही है। वैदिक ज्ञान, आज के विज्ञान से प्रतिस्पर्धा नहीं करता, बल्कि उसे पूरक रूप में समृद्ध करता है।

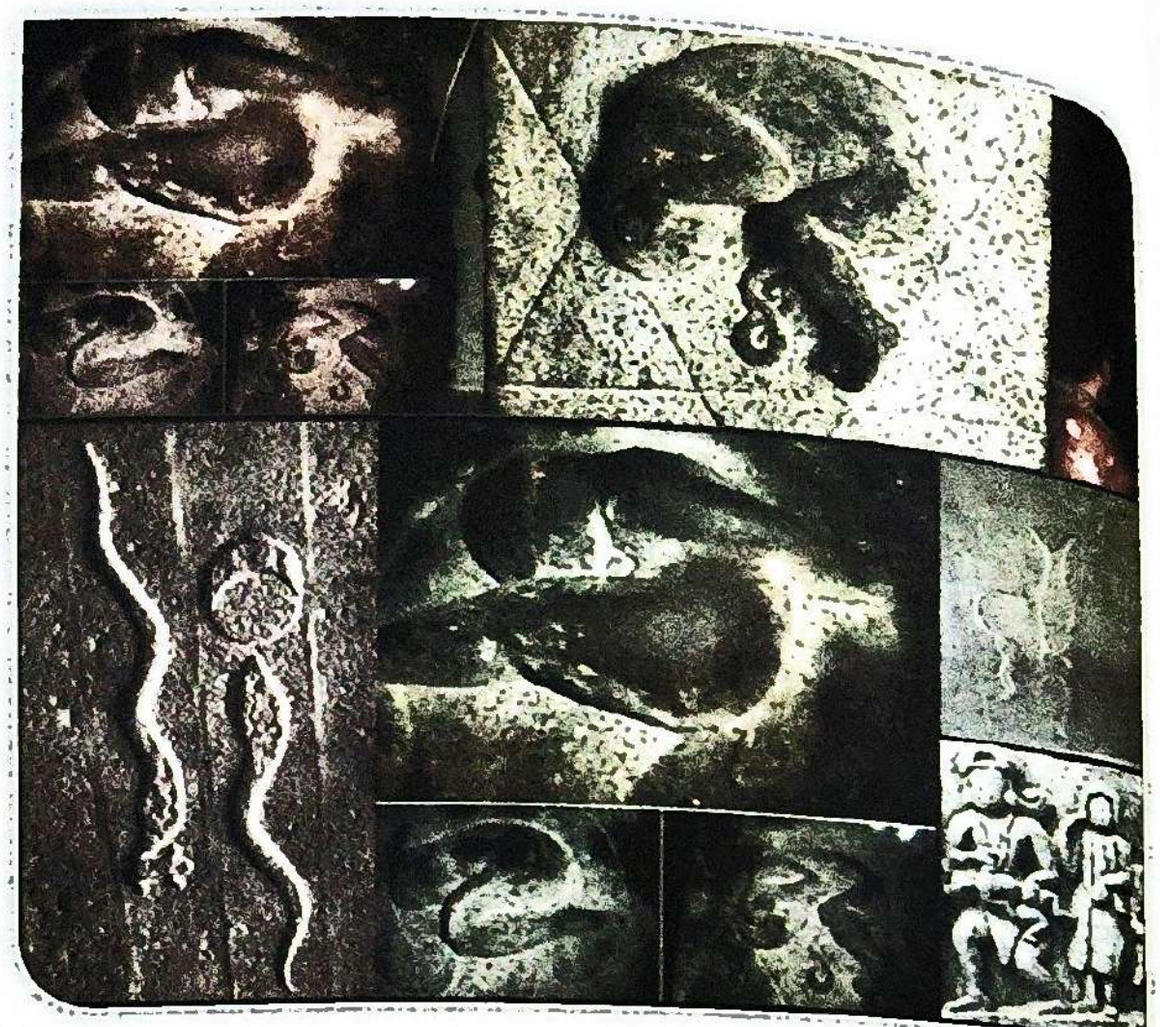

(प्राचीन चोल युगीन मंदिरों में भ्रूण-विज्ञान का प्रतीकात्मक शिल्प-चित्रण)

(भाग 2)

प्राचीन भारत में समुद्री व्यापार और नौकाशास्त्र: एक समृद्ध विरासत

समुद्री व्यापार और नौकाशास्त्र

वैदिक काल से ही भारत में धातुकर्म, रसायन विज्ञान और आयुर्वेद का एक समृद्ध, प्रमाणित और लिखित इतिहास रहा है। यह ज्ञान न केवल प्राचीन भारत में, बल्कि मध्यकालीन युग में भी विद्यमान था, जिसके प्रमाण पुरातात्विक विभाग द्वारा की गई खुदाईयों में प्राप्त हुए हैं। इन क्षेत्रों में अनेक उदाहरण और साक्ष्य उपलब्ध हैं, जिन्हें नकारा नहीं जा सकता।

आयुर्वेद स्वयं में एक विशिष्ट चिकित्सा विज्ञान है, जिसे सम्पूर्ण विश्व ने मान्यता दी है। यह विज्ञान केवल रोगों के उपचार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवनशैली,

आहार, निद्रा और मानसिक संतुलन जैसे पहलुओं पर भी बल देता है। आयुर्वेद का उद्देश्य है– **"स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं, आतुरस्य विकार प्रशमनं"**, अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी के विकारों का शमन करना।

इसी तरह धातुकर्म की उन्नत तकनीकों और नौका निर्माण की ज्ञान के कारण भारत प्राचीन काल में व्यापार का एक प्रमुख केंद्र भी रहा है। यह सब इसलिए संभव हुआ क्योंकि हमारा रसायन विज्ञान और ज्ञान अत्यंत समृद्ध था। धातुकर्म, रसायनशास्त्र, आयुर्वेद और नौवहन के क्षेत्रों में भारत की प्राचीन उपलब्धियाँ न केवल देश की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं, बल्कि वे विश्व इतिहास में भारत के महत्वपूर्ण योगदान को भी रेखांकित करती हैं। प्राचीन भारत ने विविध कारणों से विश्व अर्थव्यवस्था में एक विशिष्ट और प्रभावशाली भूमिका निभाई थी। उस काल में भारत न केवल कृषि, उद्योग, और व्यापार में अग्रणी था, बल्कि धातुकर्म, रसायन विज्ञान, और आयुर्वेद जैसे क्षेत्रों में भी उसकी गहन विशेषज्ञता थी। इन क्षेत्रों में भारत की प्रगति ने उसे वैश्विक व्यापार का एक प्रमुख केंद्र बना दिया था।

अर्थव्यवस्था के इतिहासकार अंगस मेडिसन की पुस्तकें "The World Economy: A Millennial Perspective" और "Contours of the World Economy, 1-2030 AD" भारत की आर्थिक भूमिका को अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में गहराई से स्पष्ट करती हैं। इनके अनुसार प्राचीन काल से लेकर लेकर 1700 ईस्वी तक भारत विश्व अर्थव्यवस्था का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग रहा है। उस समय भारत का वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में हिस्सा लगभग 24% से 32% के बीच था, जो उस समय की विश्व अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण हिस्सेदारी थी।। यह योगदान कृषि, व्यापार, हस्तशिल्प उद्योग और नगर आर्थिक गतिविधियों की व्यापकता पर आधारित था। मेडिसन की ये समीक्षाएँ बताती हैं कि औद्योगिक क्रांति और उपनिवेशीकरण से पूर्व भारत का आर्थिक प्रभाव विश्व में गहरा और व्यापक था, जो इतिहास में उसकी प्रमुख आर्थिक शक्ति को दर्शाता है। (स्रोत: अंगस मेडिसन, *The World Economy: A Millennial Perspective (OECD, 2001); Contours of the World Economy, 1-2030 AD (Oxford University Press, 2007)*

इन सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए, धातुकर्म की विद्या को समझना आवश्यक है, जो हमारे उन्नत इतिहास का प्रमाण है। भारत के विभिन्न पुरातात्विक स्थलों पर की गई खुदाई से यह प्रमाणित हुआ है कि प्राचीन भारत में समुद्रमार्ग से व्यापार की समृद्ध परंपरा रही थी और भारतीयों के पास नाव निर्माण एवं समुद्री नेविगेशन का गहरा ज्ञान था। प्राचीन भारतीय ग्रंथों, विशेषकर जातक कथाओं में, समुद्री यात्राओं

और व्यापारिक गतिविधियों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इसी तरह भारतीय शास्त्र के अनुसार कौडिन्य का समुद्र पार कर दक्षिण पूर्व एशिया पहुँचने का संदर्भ मिलता है। इसी प्रकार मैक्सिको के यूक्तान प्रांत के जवातुको नामक स्थान पर प्राप्त सूर्य मंदिर के शिलालेख में महानाविक वसु का शक संवत् 885 में भारत से वहाँ पहुँचने का उल्लेख मिलता है। आज भी यह भ्रांति प्रचलित है कि वास्को डि गामा ने समुद्र मार्ग से भारत की खोज की थी, परंतु यह धारणा तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है। वास्तव में, जब वास्को डि गामा 1498 में अफ्रीका के मालिंदी बंदरगाह पहुंचे, तो उन्होंने वहां एक विशाल जहाज देखा, जो उनके अपने जहाज से तीन गुना बड़ा था। उस जहाज के मालिक से मिलने पर पता चला कि वह गुजराती व्यापारी कांजी मालम थे, जो नियमित रूप से अफ्रीका और भारत के बीच समुद्री मार्ग से व्यापार करते थे। (स्रोत: *Report times of India: "Gujarati showed Vasco 'da' way". TNN/Oct 2010 ,3 ; Kanji Malam - A Merchant & Vasco Da Gam,16 December 2014,https://gloriousihat.blogspot.com/12/2014/kanji-malam-merchant-vasco-da-gama.html*)

दूसरे दिन उसी के जहाज के पीछे-पीछे चलकर वास्कोडिगामा भारत पहुँचा था। यह घटना दर्शाती है कि भारतीय व्यापारी पहले से ही समुद्री मार्ग से व्यापार में संलग्न थे। तेरहवीं शताब्दी में भारत आए मार्कोपोलो ने भी इसे स्वीकारा कि भारत के जहाजों में दोहरे तख्तों की जुड़ाई होती थी और इनमें रहने के लिए बहुत ही आरामदायक कोठरियां बनी होती थी। इन जहाजों के पेदें में तीन से छः पटरों की तह लगाई जाती थी। 15वीं शताब्दी में भारत आए निकोलो कांटी नामक यात्री ने अपने संस्मरण में लिखा कि भारतीय जहाज यूरोपीय जहाजों से काफी बड़े हुआ करते थे तथा भयानक समुद्री तूफानों का सामना करने में सक्षम हुआ करते थे। बर्थमा नामक एक अन्य समुद्री यात्री के अनुसार भारतीय जहाजों में लकड़ी के तख्तों की ऐसी जुड़ाई होती थी कि उनमें से एक बूँद भी पानी भीतर नहीं आ पाता था। उसके अनुसार कुछ जहाजो का निर्माण इस प्रकार से किया जाता था कि उसके एक हिस्से के बेकार हो जाने पर बाकी बचे हिस्से में सुरक्षित यात्रा जारी रखी जा सकती थी। इस प्रकार, प्राचीन भारत में नौकाशास्त्र की विद्या अत्यंत विकसित और समृद्ध थी, जिसका प्रमाण हमारे वेदों और अन्य ग्रंथों में मिलता है।

- **नौका शास्त्र**

भारत की प्राचीन समुद्री परंपरा केवल सांस्कृतिक गौरव नहीं, अपितु उसकी तकनीकी, आर्थिक तथा आध्यात्मिक क्षमता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। भारतीय नौसेना का ध्येय वाक्य

"शं नो वरुणः" – अर्थात् जलदेवता वरुण हम पर कृपा करें – भारत की प्राचीन समुद्री परंपरा का प्रतीक है। (ऋग्वेद 1.24.6)। वेदों में समुद्र में चलने वाली विशाल नौकाओं का उल्लेख मिलता है, जिनमें सैकड़ों पतवारें और यंत्र लगे होते थे। ऋग्वेद में ऐसे पोतों का वर्णन है जो लगातार तीन दिन और रात समुद्र में चल सकते थे, और जिनमें जल को काटने वाले यंत्र भी होते थे। **शतपद्भिः** से ज्ञात होता है कि उनमें पानी काटने के लिए सौ पहिए के तुल्य कोई मशीन भी होती थी

"तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतद्गैः।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः॥"

ऋग्वेद (मंडल 1, सूक्त 116, मंत्र 3)

इस मंत्र में स्पष्ट है कि उस काल में ऐसे जहाज थे जिनमें सैकड़ों पतवारें (या यंत्र) लगे थे, जो तीन दिन-रात समुद्र यात्रा कर सकते थे। **शतपथ ब्राह्मण** (11.5.4.10) में **"महानौ"** (विशाल नौका) का उल्लेख है, जिससे बड़े जलपोतों के निर्माण और प्रयोग की पुष्टि होती है।

अथर्ववेद (8.8.9) में समुद्र यात्रा के लिए नौकाओं का उल्लेख मिलता है:

"यथा सिन्धुं नवा यथा नव्यम् सिन्धुपातम्।"

("जैसे कोई नाव सिन्धु नदी (समुद्र) में तैरती है...")

नौका से पार करने योग्य नदियों के लिए नाव्या शब्द है **(नाव्यानाम्। ऋग्. 1.33.11, नाव्याः। अथर्व 8.5.9)**। मनु द्वारा जलप्रलय के समय नौका का उपयोग, महर्षि अगस्त्य का समुद्री मार्गों का प्रयोग, और उनके पुत्र द्रघस्यु तथा ऋषि कम्बु द्वारा समुद्र यात्रा की परंपरा को आगे बढ़ाना, भारतीय समुद्री ज्ञान की समृद्धि को दर्शाते हैं। ऋषि कम्बु के नाम पर ही कंबोज (वर्तमान कंबोडिया) राज्य की स्थापना हुई। वेदों, ब्राह्मणों और पुराणों में जलयान यात्रा का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो भारत की प्राचीन नौसैनिक परंपरा का प्रमाण है। महाभारत के सभापर्व में सहदेव द्वारा समुद्र पार कर दक्षिण भारत, श्रीलंका और सुदूर द्वीपों तक के विजय अभियानों का वर्णन है **(महाभारत, सभापर्व 31.70)**।

- **ऐतिहासिक प्रमाण : भारत की नौसैनिक शक्ति**

प्राचीन भारत के बंदरगाह नगर जैसे **लोथल (गुजरात), द्वारका और तमलिप्ति (पश्चिम**

बंगाल) में योजनाबद्ध जहाज घाट और जलाशय मिले हैं। लोथल की खुदाई से
का संभवतः सबसे पुराना कृत्रिम ज्वारीय गोदी (डॉकयार्ड) मिला, जो उस काल (ल
2400 से 1600 ईसा पूर्व) की जल-तकनीक की उन्नति का प्रमाण है। (स्रोत: *Marsha*
(1931). Mohenjo-Daro and the Indus Civilization).

भारतीय व्यापारी जहाज अफ्रीका, मिस्र, यूनान और रोम तक जाते थे। "**पेरि**
ऑफ द एरिथ्रियन सी" तथा रोमन विवरणों में भारतीय जहाजों का उल्लेख मिलता
तमिलनाडु और केरल में प्राप्त रोमन सिक्के इस व्यापारिक संपर्क के प्रमाण हैं। (Sour
Periplus of the Erythraean Sea, 1st century CE)। चीन के ह्वेनसांग
फाह्यान ने भी भारत के तटीय नगरों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का वर्णन किया है (
Faxian, A Record of the Buddhist Kingdoms; Xuanzang, Great Tang Records on
Western Regions)।

मौर्यकाल (चौथी शताब्दी ई.पू.) में **कौटिल्य के अर्थशास्त्र** में "नवाध्य
(नौसेना प्रमुख) का पद वर्णित है, जिसमें नौकानिर्माण और जलमार्गों से संबंधित नि
का विस्तृत विवरण है।

- **प्रसिद्ध कथाएँ : प्राचीन भारत की समुद्री यात्रा**

1. मनु और जलप्रलय की कथा

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, जलप्रलय के समय मनु ने विष्णु (मत्स्य अवतार) के आदे
से विशाल नौका बनाई, जिसमें समस्त जीवों व बीजों को रखकर वह प्रलय से
(**मत्स्यपुराण**)। यह कथा विश्वभर की बाढ़-गाथाओं से मेल खाती है, और भारत
विशाल जलयान के ज्ञान को दर्शाती है।

2. ऋषि अगस्त्य और समुद्री मार्ग

ऋषि अगस्त्य ने समुद्र पार कर दक्षिण भारत में वेदों का प्रचार किया (**रामाय**
अरण्यकाण्ड)। उनके पुत्र द्रघायु तथा **ऋषि कंबु** समुद्र पार कर दक्षिण-पूर्व एशिया पहुं
और वहीं बस गए। ऐसा माना जाता है कि उन्हीं के नाम पर **कंबोज (वर्तमान कंबोडिय**
राज्य का नाम पड़ा।

3. चोल वंश की समुद्री विजय (11वीं सदी ई.)

राजेंद्र चोल प्रथम के नेतृत्व में चोल साम्राज्य ने एक विशाल नौसेना बनाई और श्रीलंक
सुमात्रा, जावा तथा मलय प्रायद्वीप तक समुद्री अभियान चलाए। दक्षिण-पूर्व एशिया

अनेक स्थानों पर आज भी भारतीय संस्कृति के अवशेष मिलते हैं – विशेषतः **बाली** और **कंबोडिया** में।

- **नौकानिर्माण की भारतीय परंपरा**

जातक कथाएँ दर्शाती हैं कि भारत में जहाज बनाने वाले कारीगरों की विशिष्ट श्रेणियाँ थीं। वे बहु-डेक (Multi-deck) वाले मजबूत जहाज बनाते थे। सागवान (Teak), साल (Sal) जैसे श्रेष्ठ लकड़ी तथा प्राकृतिक रेजिन से जहाजों को टिकाऊ बनाया जाता था।

यह गौरवशाली समुद्री परंपरा केवल व्यापार ही नहीं, अपितु साहस, तकनीकी नवाचार और वैदिक विज्ञान का प्रतीक थी। प्राचीन **ऋग्वैदिक जहाजों** से लेकर **चोल साम्राज्य की नौसेना** तक भारत समुद्री शक्ति के शिखर पर रहा। आज के **"सागरमाला"** परियोजना व भारतीय नौसेना की **"Blue Water Navy"** दृष्टि इसी गौरवपूर्ण अतीत से प्रेरणा पाते हैं।

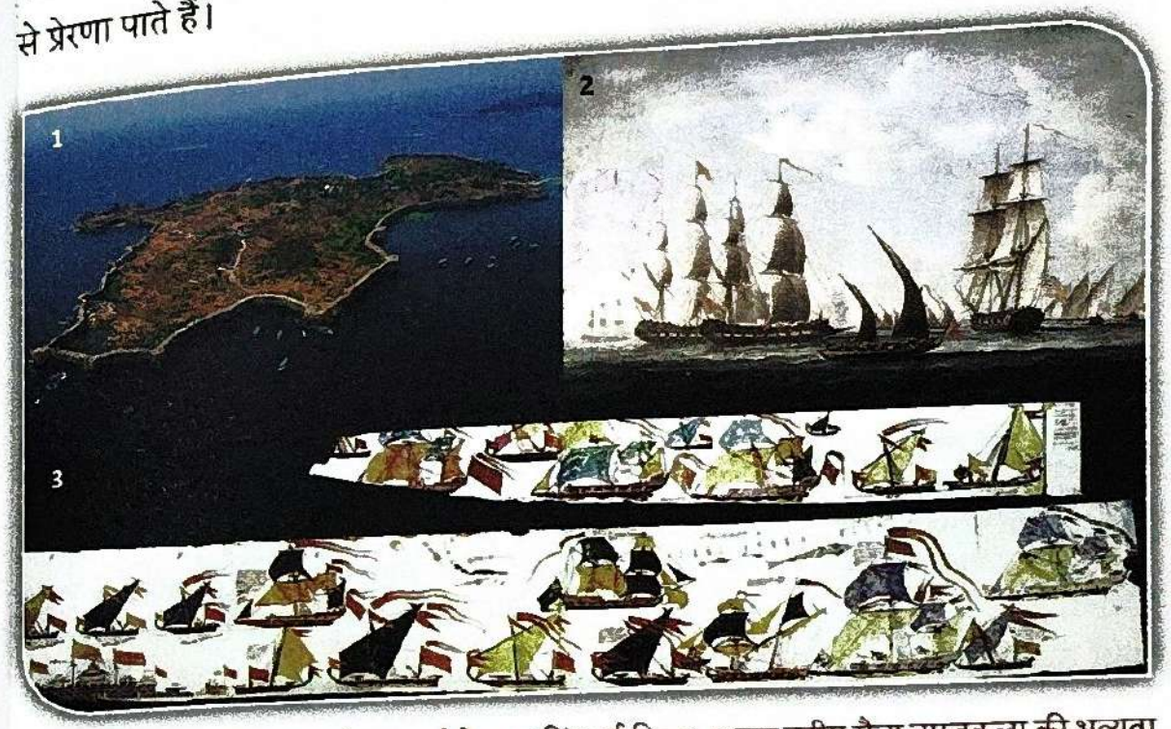

1. "मालवन समुद्र तट के निकट द्वीप पर गर्व से खड़ा सिंधुदुर्ग किला, मराठा तटीय सैन्य वास्तुकला की भव्यता को दर्शाता है।", 2. "मराठा 'गुराब' और 'गैलिवट' युद्धपोतों द्वारा ब्रिटिश 'Aurora' स्लूप (बॉम्बे मरीन) पर हुए प्रचंड हमले का ऐतिहासिक चित्रण; अग्रभाग में प्रमुख रूप से दिखाई दे रही है गैलिवट।", 3. "एक जीवंत चित्रित स्क्रॉल जिसमें विभिन्न मराठा नौसैनिक पोतों - गुराब, गैलिवट, और कब्जाए गए अंग्रेजी जहाजों - को दर्शाया गया है, जो मराठा नौसेना की शक्ति और विविधता को उजागर करता है।"

(स्रोत: *https://en.wikipedia.org/wiki/Gallivat?*)

छत्रपति शिवाजी महाराज और मराठा नौसेना

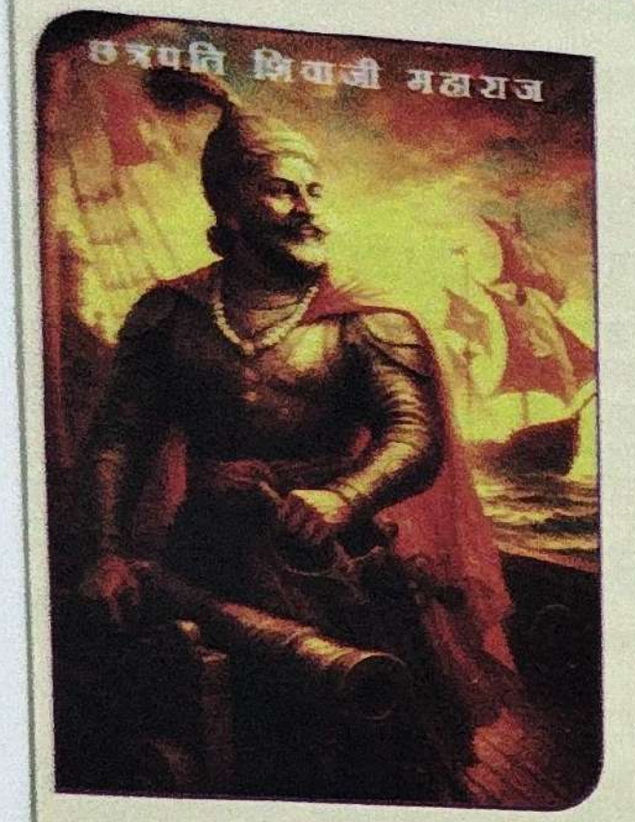

छत्रपति शिवाजी महाराज को आधुनिक भारतीय नौसेना का पितामह माना जाता है, क्योंकि उन्होंने पहली बार किसी मध्यकालीन भारतीय राजा द्वारा समुद्री सामरिक ताकत को पहचाना और उसे व्यवस्थित रूप से विकसित किया *(स्रोत: Sarkar, J. (1920). Shivaji and His Times. Longmans Green.)*। उन्होंने कोंकण तट की सुरक्षा हेतु एक सामर्थ्यशाली **मराठा नौसेना** का निर्माण किया, जिससे विदेशी आक्रमणों-विशेषकर पुर्तगाली, जंजीरा के सिद्दी और बाद में ब्रिटिशों-से प्रभावी रक्षा संभव हुई।

समुद्री रक्षा के लिए शिवाजी ने महत्वपूर्ण **समुद्री दुर्ग** का निर्माण करवाया। इनमें प्रमुख हैं: **सिंधुदुर्ग दुर्ग (1664)**, मालवन तट के पास द्वीप पर स्थित और समुद्र से अपराजेय माना जाने वाला किला; **विजयदुर्ग** और **कुलाबा दुर्ग**, जो रणनीतिक और सैन्य दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। *(स्रोत: Apte, B.K. (1973). Maratha Navy and Merchantships. Bombay: State Board for Literature.)*

उन्होंने स्थानीय शिपयार्डों पर विभिन्न प्रकार की **संरक्षित युद्धपोत** तैयार करवाए जैसे **"गुराब"**, **"गालिवाट"** और **"पाल"**-विशेष रूप से समुद्री गुरिल्ला साज़िशों के लिए उपयुक्त छोटे, तेज युद्धपोत *(स्रोत: Mookerji, R.K. (1912). Indian Shipping: A History of the Sea-Borne Trade and Maritime Activity of the Indians from the Earliest Times. London: Longmans Green.)*। ये गैलिवट (Gallivat) आपूर्ति, टोइंग में भी सहायक होती थीं ।

शिवाजी ने **कुशल नौसेना कमांडरों** की नियुक्ति की-यहां सबसे विशिष्ट नाम है **कन्होजी आंग्रे**, जिन्हें 'समुद्र का शिवाजी' कहा गया, जिन्होंने अपने समय में ही मराठा नौसेना की प्रतिष्ठा को काफ़ी मजबूत किया *(स्रोत: Malgonkar, M. (1995). Kanhoji Angre: The Grand Admiral of the Maratha Navy. New Delhi: India Book House)*। इसके साथ ही उन्होंने **प्रमुख बंदरगाहों** जैसे मुंबई, कल्याण, भिवंडी और दाभोल पर नियंत्रण स्थापित किया, जिससे व्यापार गतिविधियों को नियंत्रित कर विदेशी जहाजों पर कस्टम शुल्क लागू करने एवं राजस्व वृद्धि की संभावना बनी *(स्रोत: Sardesai, G.S. (1946). Shivaji the Great. Bombay: Phoenix Publications.)*। यह आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व की नींव थी।

आज भी **INS शिवाजी**, जो लोनावला में स्थित है, इस महान महाराज की गौरवशाली विरासत का प्रतीक है। इसके अलावा, हर **5 फरवरी** को पश्चिमी नौसेना कमान द्वारा **"भारतीय नौसेना दिवस"** मनाया जाता है, जो शिवाजी महाराज की समुद्री उपलब्धियों को श्रद्धांजलि देता है।

एक रोचक ऐतिहासिक संदर्भ है-यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियाँ-पुर्तगाली और ब्रिटिश-शिवाजी के समुद्री मजबूत दुर्ग निर्माण से आश्चर्यचकित थीं। विशेष रूप से, **हिरोजी इन्दुलकर** की अगुवाई में सिंधुदुर्ग दुर्ग की समुद्री रक्षा व्यवस्था बना कर शिवाजी ने समुद्र रक्षा स्थापत्य में अद्वितीय नुवाचार किया-जब तक यूरोपीय यह मानते थे कि भारतीय समुद्री अभियंता इतने बड़े किले नहीं बना सकते।

शिवाजी महाराज ने केवल नौसेना नहीं, बल्कि **"जलशक्ति (Sea Power)"** की एक राजनीति स्थापित की, जो सामरिक सोच, स्वदेशी संसाधन, नवाचारी जहाज निर्माण, और दूरदर्शिता का समन्वय था। यह दृष्टि कई सदियों पहले उत्कीर्ण हुई थी और आधुनिक भारतीय नौसेना की नींव आज भी इस गौरव को कायम रखती है।

प्राचीन भारतीय नगरीय योजना और धातुकर्म

- **नगरीय योजना**

सिंधु घाटी सभ्यता, हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, मिस्र, फारस और चीन की प्राचीन सभ्यताएँ जल स्रोतों–विशेषतः नदियों–के समीप विकसित हुईं। इन नदियों ने न केवल कृषि और जल आपूर्ति का आधार प्रदान किया, बल्कि व्यापार, परिवहन और सामाजिक संरचना के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उदाहरणस्वरूप, सिंधु घाटी सभ्यता सिंधु और घग्गर-हकरा नदियों के किनारे फली-फूली, जहाँ हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल और धौलावीरा जैसे नगर विकसित हुए। इसी प्रकार, मिस्र की सभ्यता नील नदी के किनारे, मेसोपोटामिया की सभ्यता टिगरिस और यूफ्रेटीस नदियों के मध्य, और चीन की सभ्यता ह्वांग हो नदी के तट पर विकसित हुई। इन नदियों के किनारे बसे नगरों में योजनाबद्ध नगरीय संरचना, जल निकासी प्रणाली, अन्नागार, बंदरगाह और व्यापारिक केंद्र स्थापित हुए, जो उस समय की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति का प्रतीक हैं।

कालीबंगन (राजस्थान) और लोथल (गुजरात) जैसे स्थलों की खुदाई से प्राप्त भारत में परिष्कृत शहरी नियोजन और धातुकर्म प्रथाओं का प्रमाण मिलता है। ये स्थल सुनियोजित कस्बों को दर्शाते हैं, जिनमें मानकीकृत पकी हुई ईंटों से बने घर, टोह वाले फर्श, एक विकसित जल निकासी प्रणाली और सजाए गए मिट्टी के बर्तन शामि हैं। इसके अतिरिक्त, प्रारंभिक कृषि, नौका निर्माण और धातुकर्म के भी पुख्ता सबू हैं।उदाहरण के लिए, लोथल (गुजरात) में हुई खुदाई से यह सिद्ध होता है कि लगभ 2450 ईसा पूर्व में यहां से मिस्र (इजिप्ट) के साथ सीधा समुद्री व्यापार होता था। इसके अलावा, लोहे, स्टील, तांबे और जस्ता से बने उपकरण, आभूषण और सैन्य उपकर प्राचीन भारतीय सभ्यताओं के उन्नत धातुकर्म कौशल को प्रदर्शित करते हैं। लोथल अपनी विशाल गोदी के साथ, धातुकर्म और व्यापार में भारत की प्रारंभिक उपलब्धियो का प्रमाण है।

इन उपलब्धियों को हेरोडोटस, ह्वेन त्सांग, केटेसियास और प्लिनी जैसे विदेशी यात्रियों ने अच्छी तरह से पहचाना, जिन्होंने भारतीय धातुकर्मियों की दक्षता के बारे में लिखा था। सजावटी वस्तुएं, उपकरण और सिक्के बनाने में भारतीय कारीगरों का कौशल धातु विज्ञान में उनके उन्नत ज्ञान को उजागर करता है।

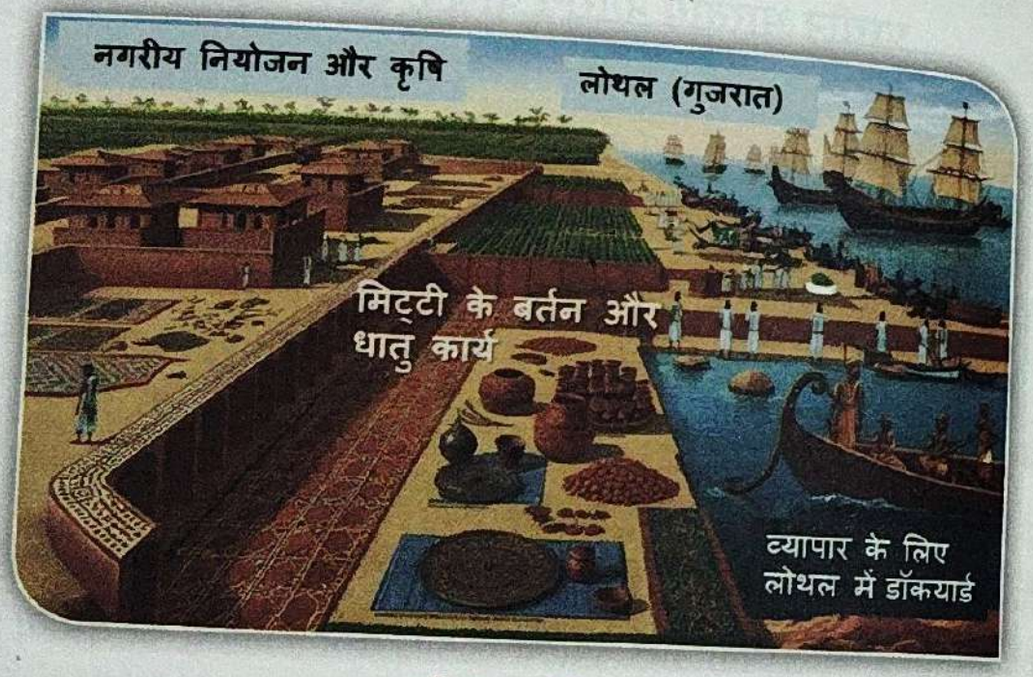

प्रतिकात्मक चित्र

• वेदों में रसायन विज्ञान और धातुकर्म की परंपरा

भारतीय वेदों में रसायन विज्ञान (Chemistry) की नींव अत्यंत प्राचीन है, जहाँ पदार्थों की सूक्ष्म संरचना, परमाणुओं की प्रकृति और उनके पारस्परिक बंधनों का गूढ़ ज्ञान

प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद (10/90/8) में परमाणुओं को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है–**वायव्यान्**, जो अंतरिक्ष में गतिशील रहते हैं; **आरण्यान्**, जो एकाकी और क्रियाशीलता से विमुख होते हैं; तथा **ग्राम्यान्**, जो युगल या समूह में परस्पर संक्रियाशील रहकर पदार्थ निर्माण में सहायक होते हैं। अगले मंत्रों में पंचमहाभूतों की उत्पत्ति इन परमाणुओं के संयोजन से होने की व्याख्या की गई है–अग्नि (अज), जल (अवि), वायु (अश्व) आदि।

"तस्मात् अश्वाः अजायन्त ये के च उभयादतः,
गावः ह जज्ञिरे तस्मात् तस्मात् जाताः अजाव्यः"

-(ऋ. 10/90/10)

वैशेषिक दर्शन में पदार्थ की सतत गतिशीलता और द्रव्य संरक्षण (Conservation of Matter) की अवधारणा आधुनिक विज्ञान से साम्य रखती है। परमाणुओं के इन गूढ़ सूत्रों के अलावा धातुओं, धातुकर्मी व रसायनिक क्रियाओं का सूत्र हमें वैदिक काल से ही मिलने लगता है। यजुर्वेद के मंत्र में उल्लेख है कि-

अश्मा॑ च मे मृत्तिका च मे गि॒रय॑श्च मे पर्व॒ताश्च मे सिक॒ताश्च
मे॒ वन॒स्पत॑यश्च मे हिर॑ण्यञ्च मे॒ऽय॑श्च मे श्या॒मञ्च॑ मे लौह॒ञ्च॑
मे सीस॑ञ्च मे त्रपु॑ च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम्।

- यजुर्वेद (शुक्ल यजु. 18/13)

अर्थात् यजुर्वेद (शुक्ल यजु. 18/13) में विभिन्न धातुओं और खनिजों का उल्लेख जैसे सुवर्ण, लोहा, ताम्र, त्रपु, सीसा, मिट्टी, पत्थर और वनस्पति मिलता है, जिनका प्रयोग यज्ञीय, औषधीय और औद्योगिक क्रियाओं में होता था। रामायण, महाभारत, पुराण एवं उपनिषदों में भी धातु-शास्त्र की विस्तृत चर्चा है। धातुओं से संबंधित कार्यों में संलग्न व्यक्तियों के लिए विशेष नाम थे–कर्मरा (धातु गलाने वाला), हिरण्यक (स्वर्णकार/स्वर्ण गलाने वाला), खनक (खनिज खोदने वाला), धमल (भट्ठी में अग्नि तेज करने वाला)।

प्राचीन भारत में खनन और अयस्क निष्कर्षण

भारत का धातुकर्म में योगदान खनन और अयस्क निष्कर्षण की उन्नत समझ पर आधारित था। प्रमुख प्राचीन खनन स्थलों जैसे राजपुरा दरीबा, रामपुरा-अगुचा, खेरी और चमबा ने भारतीय खनन संचालन में गहरी समझ को प्रदर्शित किया है। उदाहरण के लिए, राजस्थान के खेरी तांबा खदानों में, श्रमिकों ने 500 फीट गहरे भूमिगत सुरंगों का निर्माण किया, जिनमें वेंटिलेशन सुधारने के लिए प्रणालियाँ शामिल थीं। साक्ष्य बताते हैं कि उन्होंने अयस्कों से द्रव धातुओं को निकालने के लिए तकनीकें विकसित की थीं, जिसमें

पानी ले जाने के लिए मिट्टी के घड़े और अयस्क परिवहन के लिए लकड़ी की ट्रॉलियाँ शामिल थीं।

हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड (HZL) और ब्रिटिश संग्रहालय के बीच सहयोग से ज़ावर जैसे स्थानों पर जस्ता आसवन भट्टियाँ और रेटॉर्ट्स की खोज हुई है, जो यह संकेत देती हैं कि भारत जस्ता उत्पादन में अग्रणी था। ये तकनीकें ईसा से 13वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक की हैं, जिससे प्राचीन खनन और धातुकर्म प्रथाओं का लंबा इतिहास सामने आता है। सूरत जिले की तापती घाटी के पास धात्वा में एक प्राचीन लौह गलाने की साइट की खुदाई से भारत के उन्नत धातुकर्म अतीत के बारे में आकर्षक जानकारी मिली है। खुदाई में लौह कलाएँ, बड़ी मात्रा में धातुकर्म स्लैग, और विभिन्न परतों में वितरित लौह अयस्क के टुकड़े पाए गए, जो लौह उत्पादन की प्रक्रिया के समय के साथ प्रगति और विस्तार को दर्शाते हैं।

उत्खनन स्थल से प्राप्त खनन लकड़ी और चारकोल की रेडियोकार्बन डेटिंग से संकेत मिलता है कि बड़े पैमाने पर खनन गतिविधियाँ कांस्ययुग और भारत में प्रारंभिक लौहयुग के बीच लगभग 1800 वर्ष पहले हुई थीं, जो सदियों तक लौह धातुकर्म में निरंतर और उन्नत संलग्नता को दर्शाती हैं।

हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड द्वारा प्रदान की गई अतिरिक्त जानकारी से प्रमुख स्थलों जैसे ज़ावर, राजपुरा-दरीबा और रामपुरा-अगुचा में प्राचीन खनन और गलाने की प्रथाओं के बारे में मूल्यवान जानकारी मिली है। ज़ावर में विशेष रूप से, कई प्राचीन खनन तकनीकों के भौतिक अवशेष संरक्षित हैं। रेडियोकर्बन डेटिंग से पुष्टि होती है कि क्षेत्र में जस्ता-सीसा खनन ईसा से 500 वर्ष पूर्व हुआ था। इसके अलावा, खनन संचालन से प्राप्त लकड़ी के नमूने, रस्सियाँ, और बांस की टोकरी से संकेत मिलता है कि ये स्थल लगभग 3,000 वर्ष पहले उपयोग में थे।

एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण खोज एक स्लैग ढेर से प्राप्त सीसा धातु का एक टुकड़ा था। प्रयोगशाला विश्लेषण से पता चला कि इसमें 97.5% शुद्ध सीसा और 150 भाग प्रति मिलियन (ppm) चांदी थी। यह संरचना सीसा निष्कर्षण को प्रदर्शित करती है और चांदी की वसूली का संकेत देती है, जो प्राचीन भारत में गलाने की प्रौद्योगिकी की उल्लेखनीय जटिलता को उजागर करती है।

ये खोजें मिलकर यह दर्शाती हैं कि प्राचीन भारतीय धातुकर्मियों ने खनन और धातु निष्कर्षण के लिए अत्यंत उन्नत तकनीकें विकसित की थीं, जो अपने समय से कहीं

आगे थीं। ऐसी खोजें हमारे भारत की तकनीकी और औद्योगिक धरोहर की समझ को फिर से आकार देती हैं।

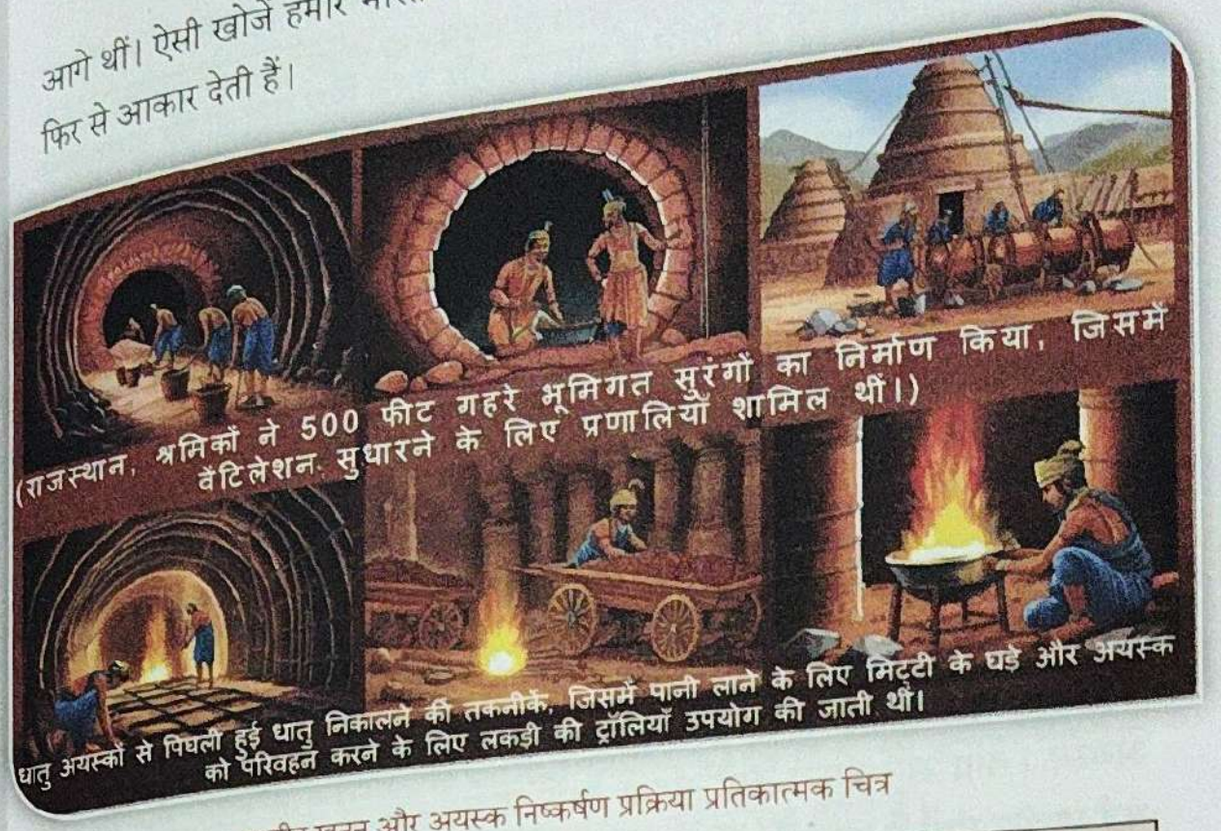

प्राचीन खनन और अयस्क निष्कर्षण प्रक्रिया प्रतिकात्मक चित्र

भारत के बारे में आश्चर्यजनक तथ्य: वह स्टील जिसने सिकंदर को प्रभावित किया

भारत का वूट्ज़ स्टील प्राचीन काल में अपनी उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध था, जिसे लेकर कई ऐतिहासिक कथाएँ प्रचलित हैं। एक प्रसिद्ध कथा के अनुसार, 336 ईसा पूर्व में, जब सिकंदर केवल 25 वर्ष के थे, उन्होंने विशाल फारसी साम्राज्य को जीतने के लिए अभियान प्रारंभ किया था। अपने इस अभियान में उन्होंने कई राज्यों पर विजय प्राप्त की, जिससे उन्हें 'महान' उपाधि मिली। इस यात्रा के दौरान, वह भारत के सिंधु नदी के तट तक पहुंचे। यात्रा की समाप्ति पर, उन्होंने न केवल धन या भूमि, बल्कि भारतीय ज्ञान और कारीगरी के रत्न भी प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की।

उनकी इच्छाओं में एक विशेष वस्तु थी: भारतीय स्टील। जब विश्व का अधिकांश भाग उन्नत धातुकर्म तकनीकों में पीछे था, भारत ने उच्च गुणवत्ता वाले स्टील का उत्पादन पहले ही शुरू कर दिया था। यह स्टील अपनी असाधारण मजबूती और धार के लिए जाना जाता था, और सिकंदर इसे अपने साथ ले जाना चाहते थे।

सिकंदर ने राजा पोरस से उपहारस्वरूप भारतीय स्टील के सौ टैलेंट (भार की इकाई) की मांग की। राजा पोरस ने मित्रता का परिचय देते हुए यह अनुरोध स्वीकार किया और सिकंदर को स्टील उपहार में दिया।

यह घटना दर्शाती है कि भारत की धातुकर्म विशेषज्ञता, विशेष रूप से उच्च गुणवत्ता वाले स्टील के उत्पादन में, प्राचीन काल में भी विश्वभर में प्रसिद्ध थी। यह भारतीय विज्ञान, प्रौद्योगिकी और कारीगरी की समृद्ध विरासत का एक उदाहरण है। (Source:https://www.artofliving.org/inen/culture/amazing-india/the-true-story-of-wootz-*steel?)*

धातुकर्म प्रौद्योगिकी

प्राचीन भारतीय धातुविदों को विभिन्न धातुओं और उनके मिश्र धातुओं की असाधारण समझ थी, जैसा कि मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और दक्षिण भारत के कई स्थलों से मिले औजारों, सिक्कों, आभूषणों और मूर्तियों से पता चलता है। मोहनजोदड़ो की एक नाचती हुई लड़की की प्रसिद्ध कांस्य प्रतिमा उस समय की बेहतरीन शिल्प कौशल का उदाहरण है, जो खोई-मोम प्रक्रिया जैसी ड्रिलिंग और कास्टिंग तकनीकों का प्रदर्शन करती है। भारतीय धातुकर्मी भट्ठी के डिजाइन, तापमान नियंत्रण और आग रोक सामग्री के उपयोग में कुशल थे, और वे दुनिया को जस्ता पेश करने वाले पहले व्यक्ति थे।

1. सोने का निष्कर्षण तकनीक

भारतीय संस्कृति में सोने का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जैसा कि वेदों जैसे धार्मिक ग्रंथों और रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में परिलक्षित होता है। प्राचीन भारत ने कई प्रकार के सोने के भंडार को मान्यता दी: जलोढ़ प्लेसर जमा, शिरा जमा और तरल अयस्क। गंगा और यमुना जैसी नदियाँ अपने जलोढ़ सोने के लिए जानी जाती थीं, और कई प्राचीन ग्रंथों में इन नदी की रेत से सोना निकालने का उल्लेख है।

[स्रोत: *India's Contribution to the Mining, Extraction and Refining of Gold: Some Observations Related to the Pre-Christian Era; R.K Dube, January 2001*]

कर्नाटक में कोलार के सोने के क्षेत्रों से मिले पुरातात्विक साक्ष्यों से पता चलता है कि गुप्त काल में ही सोने का खनन किया गया था। चैंपियन रीफ, सबसे गहरी प्राचीन सोने की खदानों में से एक, 50 मीटर की गहराई तक पहुँचती थी, और कुछ प्राचीन खदानें, जैसे कि बेलारा में, 640 फीट तक गहरी थीं, जो उन्हें अपने समय की सबसे गहरी खदानें बनाती थीं। [स्रोत: *Ancient gold mining activities in India-An overview; January 13-1:(1)2015,7; Ashok Kumar Grover, Manoj K Pandit*]

सोने की निष्कर्षण प्रक्रियाओं के ऐतिहासिक विवरण - जैसे कि गोलाकार रेत को पैन करना और मिश्रण के लिए पारे का उपयोग करना - प्राचीन भारतीय धातुविदों की परिष्कार को प्रदर्शित करता है।

भारत में प्राचीन स्वर्ण निष्कर्षण की प्रक्रिया पर भारत गोल्ड माइन लिमिटेड (BGML) द्वारा अध्ययन और दस्तावेजीकरण किया गया है, जिससे धातु विज्ञान की विधियों की एक आश्चर्यजनक रूप से उन्नत समझ का पता चलता है। ऐतिहासिक अभिलेखों के अनुसार, एक पारंपरिक तकनीक में पारा को काले बालू और स्वर्ण अयस्क

के मिश्रण में मिलाया जाता था। थोड़ी सी सामान्य नमक भी डाली जाती थी, और मिश्रण को जोर से रगड़ा जाता था। समय के साथ, पारा स्वर्ण के साथ मिलकर अमलगम (संयुग्म) बना लेता था। अमलगम को शेष सामग्री से अलग करने के लिए पानी डाला जाता था और मिश्रण को हिलाया जाता था। भारी अमलगम नीचे बैठ जाता था, जिससे इसे एकत्र करना आसान हो जाता था। फिर अमलगम को एक गीले कपड़े में रखा जाता था और अतिरिक्त पारे को निकालने के लिए निचोड़ा जाता था। बची हुई सामग्री को अंततः आग में गर्म किया जाता था, जिससे पारा वाष्पित हो जाता था और शुद्ध स्वर्ण बच जाता था।

यदि निष्कर्षित स्वर्ण में चांदी या अन्य धातु मिश्रित होती थी, तो प्राचीन शिल्पकार एक और उन्नत विधि का उपयोग करते थे। स्वर्ण को पहले पत्थरों के बीच पतली चादर में ठोककर फैलाया जाता था। यह चादर फिर दो-स्तरीय गोवर्धन गोबर के सांचे में रखी जाती थी और जलायी जाती थी। गोवर्धन गोबर ने आधार धातुओं को अवशोषित किया, जिससे स्वर्ण की शुद्धता बढ़ी। ये कदम पारे के अमलगमेशन और यहां तक कि सोने की परत चढ़ाने की तकनीकों के प्रारंभिक उपयोग को दर्शाते हैं, जो प्राचीन भारत के शिल्पकारों की धातु विज्ञान में उच्च स्तर की दक्षता को सूचित करते हैं।

पारा (Hg) और पारा सल्फाइड (HgS) न केवल धातु निष्कर्षण में उपयोग किए जाते थे, बल्कि आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी इनका व्यापक उपयोग था, जो उस समय के वैज्ञानिक और औषधीय प्रथाओं में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है। अमलगमेशन प्रक्रिया का उपयोग चांदी निष्कर्षण में भी किया जाता था, जो पारंपरिक धातु विज्ञान में इसकी बहुमुखी प्रतिभा और मूल्य को दर्शाता है।

पारे-आधारित तकनीकों के अलावा, गुरुत्वाकर्षण पृथक्करण–जिसे सामान्यतः सोने की छानबीन कहा जाता है–स्वर्ण को बालू और क्वार्ट्ज चट्टान से पृथक करने के लिए सबसे व्यापक रूप से उपयोग की जाने वाली विधि थी। इस प्रक्रिया में, क्वार्ट्ज युक्त चट्टानों को पहले बारीक पीसा जाता था। फिर, पिसी हुई सामग्री को पानी के साथ मिलाकर एक उथले पैन में डाला जाता था। जब पानी में हिलाया जाता था, तो भारी स्वर्ण कण नीचे बैठ जाते थे, जबकि हल्की बालू और मिट्टी बहकर चली जाती थी। बड़े पैमाने पर संचालन के लिए, बड़े पैनों को नदी के पानी में झूलों के माध्यम से निलंबित किया जाता था, जिससे निरंतर गति और प्रभावी पृथक्करण संभव होता था। प्राचीन भारत में स्वर्ण निष्कर्षण का मुख्य उद्देश्य आभूषण बनाना और सिक्के ढालना था, जो भारतीय समाज में स्वर्ण के आर्थिक और सांस्कृतिक महत्व को दर्शाता है।

2. चाँदी के शोधन की पारंपरिक विधियाँ

प्राचीन भारतीय रसायनशास्त्र में धातुओं के शोधन की अद्भुत विधियाँ वर्णित हैं, जिनमें चाँदी (रजत) का शुद्धिकरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नागार्जुन द्वारा रचित रस रत्नाकर में रजत के धातुकर्म का विस्मयकारी वर्णन मिलता है। इसमें बताया गया है कि अशुद्ध रजत (नेटिव सिल्वर) को विशिष्ट अनुपात में सीसा और भस्म के साथ मिलाकर लोहे की कुंडी में उच्च ताप पर पिघलाने से शुद्ध चाँदी प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया को निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से स्पष्ट किया गया है–

"नागेन क्षारराजेन ध्मापितं शुद्धिमृच्छति।
तारं त्रिवारनिक्षिप्तं पिशाची-तैल-मध्यम्॥" (अ.1.13, वै.वि. पृष्ठ 160)

अर्थात्– रजत को नाग (सीसा) और क्षारराज (क्षारीय पदार्थों) के साथ ध्मापित करने पर वह शुद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त, जब इसे तीन बार 'पिशाची तैल' (विशेष प्रकार के औषधीय तेल) के माध्यम में डुबोया जाता है, तब उसकी अशुद्धियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं।

इसी क्रम में गैलेना नामक अयस्क, जो स्वयं रजत और सीसे का मिश्र धातु (एलॉय) होता है, को बिना किसी बाह्य सीसे की आवश्यकता के केवल गर्म करके ही शुद्ध रजत प्राप्त करने की विधि भी वर्णित है। यह इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारतीय रसायनज्ञ न केवल धातुओं की प्रकृति को भली-भाँति जानते थे, बल्कि उनके रासायनिक गुणों का व्यवहारिक प्रयोग भी बखूबी करते थे। यह समग्र प्रक्रिया न केवल धातु शुद्धिकरण की उच्च तकनीकी समझ को दर्शाती है, बल्कि वैदिक परंपरा में वैज्ञानिक चेतना की परिपक्वता को भी रेखांकित करती है।

3. प्राचीन भारत में जस्ता (जिंक) उत्पादन

जिंक, लोहे और तांबे के साथ, मानव इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण धातुओं में से एक है। हालांकि, इसके अद्वितीय गुणों के कारण, इसके अयस्कों से जिंक निकालना चुनौतीपूर्ण था: यह लगभग 420°C पर पिघलता है और लगभग 900°C पर वाष्पित हो जाता है। यदि 400°C से नीचे तरल जिंक को पकड़ने के उपाय नहीं किए जाते, तो यह वाष्पित हो जाता, जिससे पारंपरिक स्मेल्टिंग विधियाँ अप्रभावी हो जातीं।

इस समस्या को भारत के तेलुगु क्षेत्रों के धातुशास्त्रियों ने कुशलता से हल किया। उन्होंने हजारों वर्षों तक **'अधःपातन यन्त्र'** का विकास किया, जो एक अभिनव उल्टे भट्टी डिजाइन था। इस व्यवस्था में, ऊपरी हिस्से में हीटिंग होती थी, जबकि निचला

हिस्सा शीतलन कक्ष के रूप में कार्य करता था। जब जिंक अयस्क तीव्र गर्मी में पिघलता, तो तरल जिंक नीचे की ओर बहता और शीतलन कक्ष में संक्षिप्त होकर ठोस रूप में एकत्रित हो जाता, इससे वाष्पीकरण से बचाव होता।

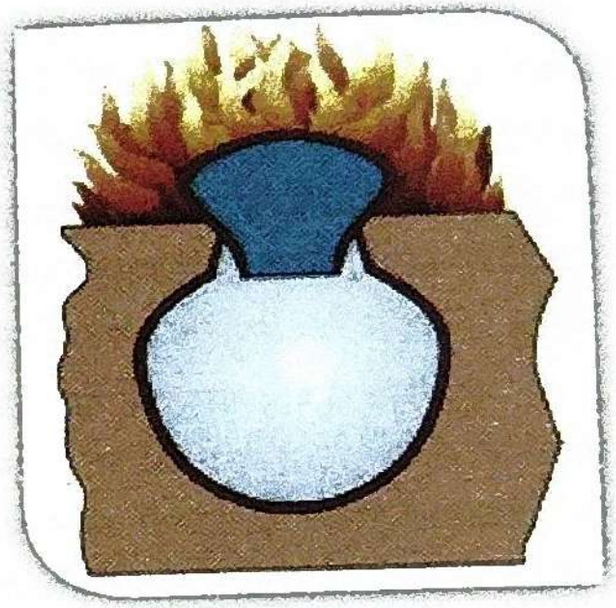
'अधःपातन यन्त्र'

यह तकनीक सदियों तक इन समुदायों में संरक्षित रही, जिससे भारत को विश्वभर में हजारों टन जिंक निर्यात करने और इसके उत्पादन पर एकाधिकार बनाए रखने में सहायता मिली। इस विधि का प्रभाव तेलुगु क्षेत्रों से परे भी था; भारत के अन्य हिस्सों, जैसे तमिलनाडु और राजस्थान में भी जिंक उत्पादन होता था। विशेष रूप से, राजस्थान के ज़ावर में 13वीं शताब्दी ईस्वी में जिंक का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था, जो चीन में स्थानीय उत्पादन की शुरुआत से कम से कम तीन शताब्दियाँ पूर्व था।

जिंक स्मेल्टिंग का ज्ञान अंततः 1552 ईस्वी में चीन पहुँचा, जब एक चीनी व्यापारी ने भारत में यह तकनीक सीखी। उसने इसे चीन में पेश किया, जहाँ इसे **'तुत्तानाग'** कहा गया–जो तेलुगु 'तुत्तिनागामु' से मेल खाता है। 17वीं शताब्दी में, चीन ने यूरोप को जिंक निर्यात करना शुरू किया। 1730 में, ब्रिस्टल के विलियम चैंपियन ने चीन की यात्रा की, स्मेल्टिंग प्रक्रिया सीखी, और इंग्लैंड में सफलतापूर्वक जिंक का उत्पादन किया, जिसे **'टुट्टी'** कहा। यह शब्द, चीनी **'तुत्तानाग'** और तेलुगु **'तुत्तिनागामु'** से व्युत्पन्न होकर, अंग्रेजी में 'टुट्टी' में बदल गया। जर्मन शब्द **'जिंक'** भी इसी अवधि में आया।

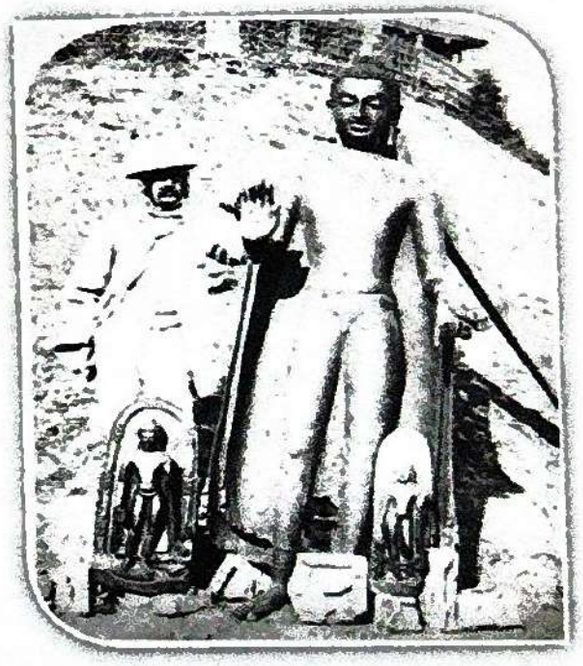
(सुलतानगंज बुद्ध (जिन्हें 1861 में खुदाई में प्राप्त किया गया) के साथ ई. बी. हैरिस।)

(स्रोत :https://www.artofliving.org/in-en/culture/amazing-india/the-true-story-of-wootz-steel?; www.bharathgyan.com by Dr. DK Hari and Dr. Hema Hari)

सदियों तक, भारत के पास धात्विक जिंक उत्पादन का विशेष ज्ञान था, जो भारतीय उपमहाद्वीप से चीन, फिर इंग्लैंड, और अंततः विश्वभर में फैला।

ऐसा माना जाता है कि भारत बड़े पैमाने पर जस्ता का उत्पादन करने वाली पहली सभ्यता थी, संभवतः 600 ईसा पूर्व में। राजस्थान का ज़ावर क्षेत्र, जो अपनी बड़ी जस्ता खदानों के लिए जाना जाता है, में जस्ता आसवन तकनीक के प्रमाण मिले हैं। भारतीय धातुविदों ने मिट्टी के रिटॉर्ट्स और भट्टियों का उपयोग करके, नीचे की ओर आसवन की प्रक्रिया के माध्यम से जस्ता निकालने की एक विधि विकसित की है। जस्ता निष्कर्षण की यह प्राचीन विधि आधुनिक तकनीकों की अग्रदूत थी।

अध्ययनों से पता चलता है कि प्राचीन भारतीय धातुविदों के पास भी आसवन का उन्नत ज्ञान था, जैसा कि तक्षशिला में पाए गए आसवन उपकरण से प्रमाणित होता है। पानी, शराब और पारा जैसे पदार्थों का आसवन प्राचीन भारत में एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अभ्यास था, जो भारतीय इंजीनियरों और धातुविदों की सरलता को प्रदर्शित करता था।

4. तांबा और पीतल धातुकर्म

भारत में तांबे का उपयोग ताम्रपाषाण काल (लगभग 3000 ईसा पूर्व) से किया जाता रहा है। वर्तमान पाकिस्तान में मेहरगढ़ और मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के हड़प्पा शहरों जैसे पुरातत्व स्थलों से पता चलता है कि तांबे का उपयोग उपकरण, आभूषण और धार्मिक कलाकृतियों को बनाने के लिए किया जाता था। भारत तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में पीतल - तांबे और जस्ता का एक मिश्र धातु - के उत्पादन के लिए भी जाना जाता था। तांबे और पीतल के उत्पादन की कला मूर्तियों, सिक्कों और उपकरणों के निर्माण में उच्च स्तर पर पहुंच गई। सुल्तानगंज में खोजी गई बुद्ध की एक विशाल तांबे की मूर्ति, प्राचीन भारतीय धातुविदों द्वारा नियोजित उन्नत कास्टिंग तकनीकों का एक उदाहरण है।

(स्रोत : Beal, S. (1884). Si-Yu-Ki: Buddhist Records of the Western World. Translated from the Chinese of Hiuen Tsang. London: Trübner & Co.; Ray, P.C. (1903). History of Hindu Chemistry, Vol. II. Calcutta: The Bengal Chemical and Pharmaceutical Works.)

- ह्वेन त्सांग, सातवीं सदी के चीनी यात्री, ने यह दर्ज किया था कि भारतीय तांबे और कैलामाइन को मिलाकर पीतल बनाने की कला जानते थे।
- 'रसरत्नसमुच्चय', एक संस्कृत ग्रंथ, में तांबे के निष्कर्षण और आयुर्वेदिक औषधियों में इसके उपयोग का विस्तृत विवरण मिलता है।

इसी प्रकार, चीनी यात्री ह्वेन त्सांग द्वारा बताई गई नालंदा के पास एक बड़ी पीतल की मूर्ति तांबे की मिश्र धातुओं के साथ काम करने में भारतीय कारीगरों की विशेषज्ञता को दर्शाती है। सोहगौरा, गोरखपुर जिले के एक गाँव में, मौर्य काल (320-230 ईसा पूर्व) की ब्राह्मी लिपि में खुदाई गई एक कांस्य पट्टिका मिली थी। कनिष्क के सु विहार और तक्षशिला की खुदाई भी उत्तर भारत में मिली सबसे प्राचीन कांस्य पट्टिकाओं में शामिल हैं।

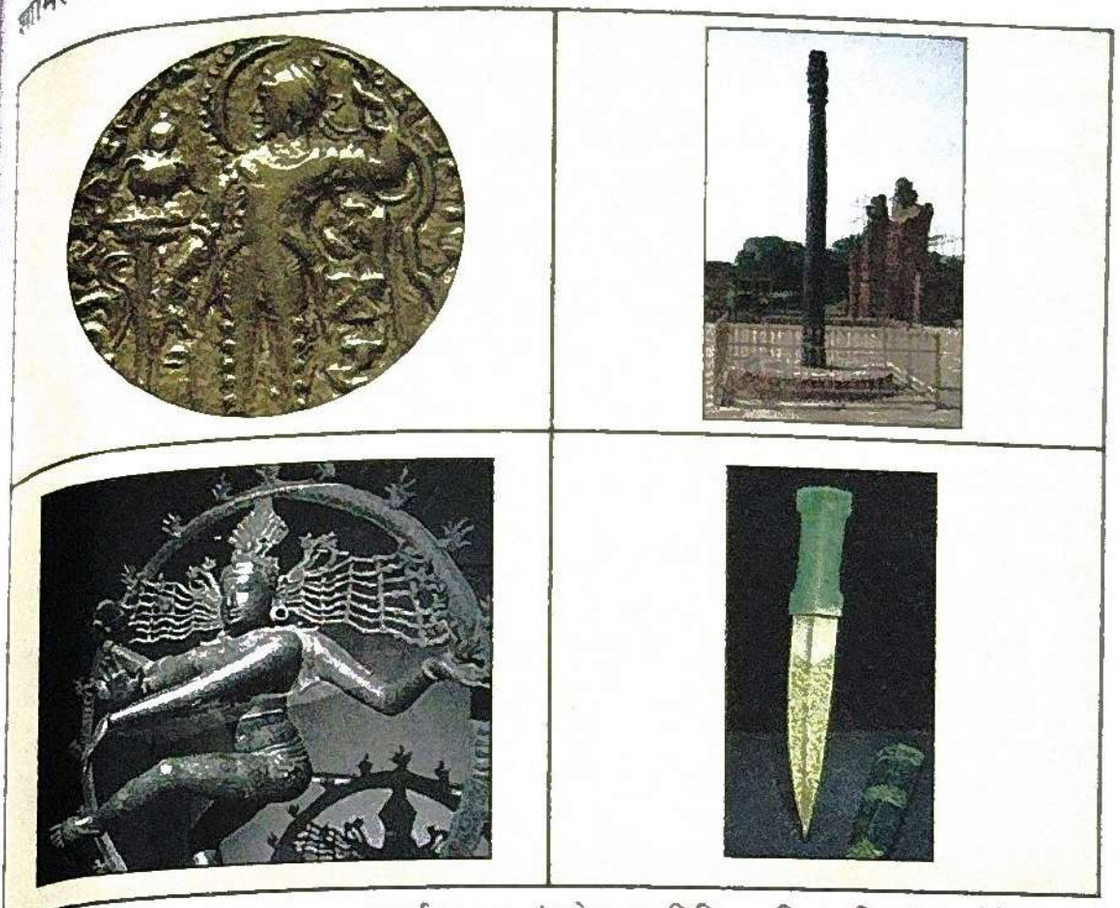

समुद्रगुप्त का सिक्का (लगभग 350-375 ई.) गरुड़ स्तंभ के साथ, ब्रिटिश म्यूज़ियम, दिल्ली का लोहे का स्तंभ (375-413 ई.), मेट्रोपोलिटन म्यूज़ियम ऑफ आर्ट, न्यूयॉर्क सिटी में चोल काल का कांस्य नटराज प्रतिमा, भारत, 17वीं-18वीं सदी का कृपाण और उसका म्यान, ब्लेड: दमिश्क स्टील जिसमें सोने की जड़ाई; मूठ: जेड; म्यान: स्टील पर खुदाई, चेसिंग और सुनहली सजावट।)

(स्रोत:*https://en.wikipedia.org/wiki/History_of_metallurgy_in_the_Indian_subcontinent*)

5. प्राचीन भारतीय रसायनशास्त्र और धातुकर्म में पारा

पारा, जिसे संस्कृत में पारद के रूप में जाना जाता है, ने प्राचीन भारतीय कीमिया और धातु विज्ञान में एक विशेष स्थान रखता था। पारे का उपयोग वैदिक काल से है, जहां अथर्ववेद जैसे ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है। अलकेमिकल परंपराएं, विशेष रूप से रसशास्त्र

(पारा का विज्ञान), 8 वीं और 12 वीं शताब्दी CE के बीच फला-फूला, हालांकि इन प्रथाओं की नींव का पता बहुत पहले के समय में लगाया जा सकता है। आयुर्वेद व रसायन शास्त्र के प्राचीन ग्रंथों– जैसे रस रत्नाकर (नागार्जुन), अष्टांगहृदय (वाग्भट्ट), रसहृदयतंत्र (गोविंद भगवतपाद), रसेंद्रसारसंग्रह, रसप्रदीप, रसार्णव, रसप्रकाशसुधाकर आदि– में पारद (पारा) व धातुओं के शोधन, योग, भस्मीकरण तथा औषधीय उपयोग के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। विशेषतः नागार्जुन ने पारद के 18 शुद्धिकरण संस्कारों को प्रस्तुत किया, जिनमें वनस्पति रसों, क्षारों, अभ्रक, गंधक आदि के साथ विशेष प्रक्रियाएँ शामिल थीं। इन विधियों से पारे को औषधीय गुणों से युक्त कर कायाकल्प और दीर्घायु का माध्यम माना गया। पारद और गंधक के संयोग से उत्पन्न द्रव्य रससिन्दूर को अमृततुल्य माना गया है।



नागार्जुन: भारत के प्राचीन धातु विज्ञान के जनक

प्राचीन भारत में, पारा न केवल धातुकर्म प्रक्रियाओं के लिए बल्कि औषधीय और आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए भी महत्वपूर्ण था। आयुर्वेद में पारा आधारित यौगिकों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता था, जहां पारा (II) सल्फाइड (HgS), जिसे रस-सिंदूर भी कहा जाता है, औषधीय तैयारी में एक प्रमुख घटक था। प्राचीन रसायनशास्त्रियों की प्रयोगशालाओं में 32 प्रकार के उपकरण प्रयुक्त होते थे, जिनसे आसवन (Distillation), संघनन (Condensation), द्रवण (Melting) आदि क्रियाएं संपन्न होती थीं। बोगचिंतामणि ग्रंथ में पारद भस्म निर्माण की विधि दी गई है, जिसमें पारद और गंधक को धीमी अग्नि में पकाया जाता है। पारा को विभिन्न औषधीय रसों,

क्षार, पंचलवण और त्रिकटुक (सोंठ, मिर्च, पिप्पली) से मर्दन करके उसे आठों धातुओं के साथ जमाने (fixation) की विधि दी गई है–

"जम्बीरजेन नवसारघमाम्लवर्गैः
क्षाराणि पञ्चलवणानि कटुत्रयं च।"



पारद की शुद्धि प्रक्रिया - [अष्ट-संस्कार]

पारे और उसके यौगिकों को शुद्ध करने की रासायनिक खोज को आध्यात्मिक और भौतिक परिवर्तन प्राप्त करने के लक्ष्य के साथ जोड़ा गया था, जो प्राचीन भारतीय प्रथाओं में विज्ञान और रहस्यवाद के अद्वितीय संलयन को प्रदर्शित करता था।

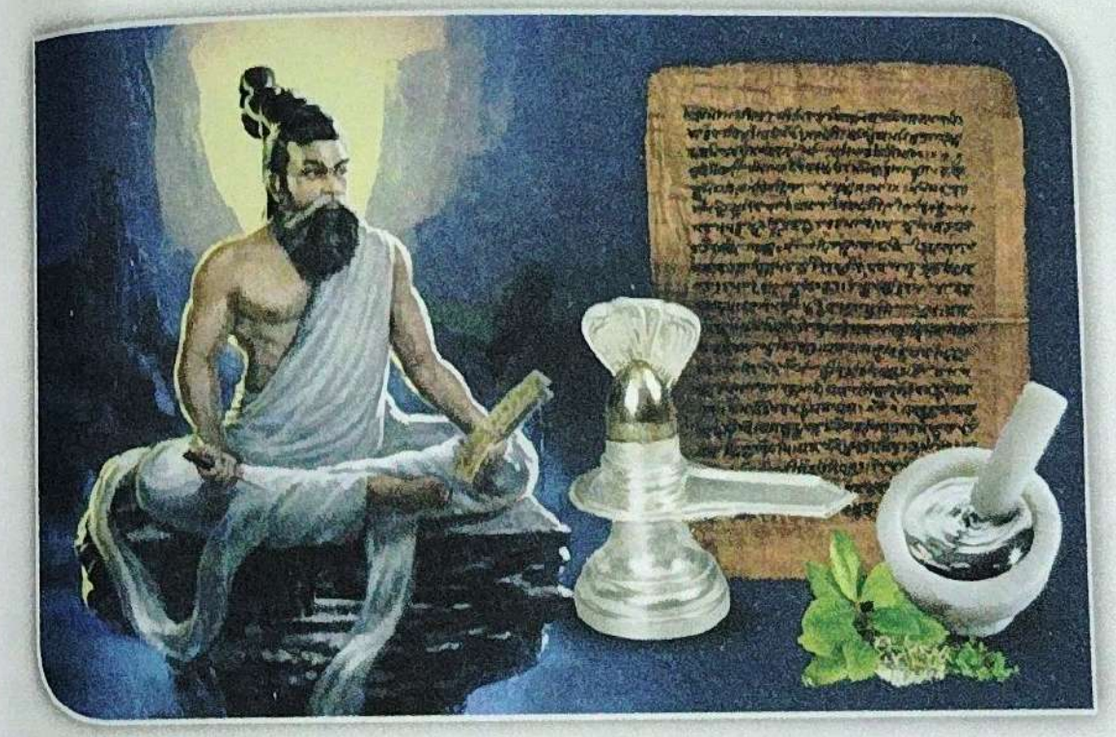

(पारद का प्राचीन शास्त्रों में उल्लेख: सिद्ध पारद को शिव धातु या भगवान शिव की धातु के नाम से भी जाना जाता है, और माना जाता है कि इसमें अलौकिक रहस्यमय और चिकित्सा शक्तियाँ होती हैं।)

प्राचीन भारत में लोहा और इस्पात

भारत में लौह उत्पादन का एक समृद्ध इतिहास है, देश भर में पुरातात्विक खुदाई में कई लौह कलाकृतियाँ खोजी गई हैं। प्राचीन भारतीय बड़ी और उन्नत लोहे की वस्तुओं के निर्माण के लिए जाने जाते थे, जिनमें से कुछ अपने समय से आगे की थीं। सबसे प्रसिद्ध उदाहरणों में से एक दिल्ली में कुतुब मीनार का लौह स्तंभ है, जिसका वजन लगभग 6,000 किलोग्राम है और अपनी उम्र के बावजूद उल्लेखनीय रूप से संक्षारण/जंग प्रतिरोधी है।

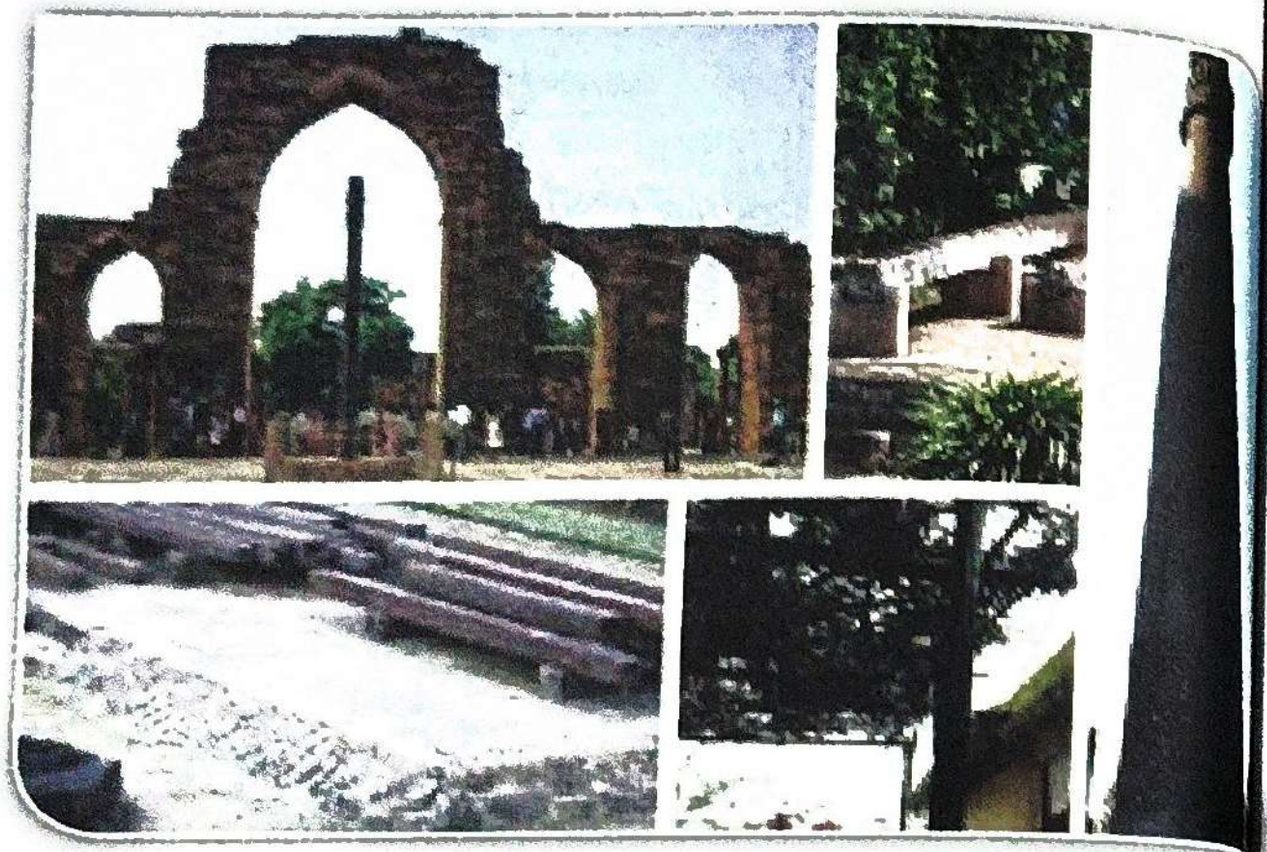

धार में लौह स्तंभ अब एक खंडित लौह स्तंभ है जो मध्य प्रदेश, भारत के धार शहर में स्थित है।

अन्य उल्लेखनीय उदाहरणों में धार में विशाल लोहे का स्तंभ शामिल है, जिसका वजन लगभग 7,000 किलोग्राम है - कुतुब मीनार स्तंभ के आकार का लगभग दोगुना - और ओडिशा के कोणार्क मंदिर में खोजे गए लोहे के बीम।

ये बीम, जो सदियों से समुद्री रेत में दबी हुई थीं, प्राचीन भारतीय धातुविदों की उन्नत लौह तकनीक का माण हैं। वास्तव में, पुरी और भुवनेश्वर में पुरातात्विक स्थलों ने कई लोहे के बीमों का पता लगाया है, पुरी मंदिर में पाए गए 239 टुकड़ों के साथ, वास्तुशिल्प और धार्मिक संरचनाओं में लोहे के व्यापक उपयोग का प्रदर्शन होता है।

अक्वारेजिया (Aqua Regia) जैसे योगों की संरचना की व्याख्या भी प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध है, जहाँ कसीस (Green Vitriol), सैन्धव(Rock-salt) माक्षिक(Pyrites), सौवीर (Stibnite) आदि खनिजों को अम्लीय रसों के साथ संयोजित कर तीव्र अम्ल उत्पन्न किया जाता था जो सोने जैसी दृढ़ धातुओं को भी गलाने में सक्षम होते थे–

"कासीसं सैन्धवं माक्षी सौवीरं व्योषगंधकम्,
सौवर्चलं व्योषका च मालती-रससंभवः।
शिग्रुमूलरसैः रिक्तो विडोऽयं सर्वजारणः।" (रसार्णव 1.2.3)"

प्राचीन ग्रंथों में धातु निष्कर्षण, शुद्धिकरण और निर्माण की विधियाँ संकलित हैं– रसप्रकाशसुधाकर, रसकल्प, रसेंद्रकल्पद्रुम आदि। बृहत्संहिता में लोहे के कार्बनीकरण की विधि तथा रसहृदयतंत्र में पारे को सीसा और बंग से पृथक् करने की प्रक्रिया भी दी गई है। दिलचस्प तथ्य यह है कि आज भी केरल के पतनम तिट्टा जिले के आरनमुडा गांव में पारंपरिक धातु दर्पण निर्माण की विधियाँ जीवित हैं, जो सदियों से विदेशों में प्रसिद्ध रही हैं। यह सब इस बात का प्रमाण है कि भारत में रसायन विज्ञान का स्तर न केवल गूढ़ था, बल्कि व्यावहारिक, चिकित्सा-संबंधी और उद्योग-उपयुक्त भी था।

इन लोहे की वस्तुओं का संक्षारण प्रतिरोध विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय लौहकारों ने जंग-रोधी और धातु संरक्षण की तकनीकों में महारत हासिल कर ली थी। खुदाई में प्राप्त विभिन्न लोहे की कलाकृतियों में तलवारें, खंजर, त्रिशूल, भाले, आभूषण, कुदाल, लैंप और तिपाई शामिल हैं, जो प्राचीन भारत में लोहे के काम की विविधता और परिष्कार को प्रदर्शित करते हैं।

वूट्ज़ स्टील: भारत का प्राचीन धातु विज्ञान

वूट्ज़ स्टील भारत के धातुकर्म जगत की एक महत्वपूर्ण देन है। लगभग 700 ईसा पूर्व में विकसित, यह उन्नत स्टील बनाने की तकनीक असाधारण ताकत, तीखापन और लचीलापन प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध थी। विशेष रूप से उच्च गुणवत्ता की तलवारें बनाने के लिए मूल्यवान, वूट्ज़ स्टील ने पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में, जहाँ ऐसा स्टील उपलब्ध नहीं था, अपनी मांग बनाई। भारतीय वूट्ज़ स्टील प्राचीन यूरोप और अरब जगत में पहुंची, और मध्य पूर्व में, विशेष रूप से प्रसिद्ध दमिश्क़ तलवारों के निर्माण में, यह किंवदंती बन गई।

ये तलवारें न केवल अपनी धार और मजबूती के लिए जानी जाती थीं, बल्कि उनकी सतह पर एक विशिष्ट पैटर्न भी था जो उन्हें अलग बनाता था। "वूट्ज़" नाम के बारे में माना जाता है कि यह "वूक" से आया है, जबकि तमिल में इस मिश्रधातु को "उरुक्कु" कहा जाता है। दिलचस्प बात यह है कि अन्य द्रविड़ भाषाओं, जैसे कन्नड़ और तेलुगु में, स्टील को "उक्कू" कहा जाता है, जो दक्षिण भारत में एक साझा भाषाई और धातुकर्म विरासत को दर्शाता है।

12वीं शताब्दी में, अरब भूगोलवेत्ता और विद्वान एड्रीसी ने भारतीय धातुकर्म कौशल को मान्यता दी। उन्होंने उल्लेख किया कि भारतीय स्टील की गुणवत्ता बेजोड़ थी, विशेष रूप से उसकी धार की तीखापन में। अरब व्यापारी वूट्ज़ स्टील की सलाखों को दमिश्क़ ले गए, जहाँ इस आयातित सामग्री के चारों ओर एक समृद्ध शस्त्र उद्योग विकसित हुआ। 17वीं शताब्दी के अंत तक, उत्पादन का पैमाना काफी बढ़ गया था। कोरोमंडल तट से प्रति वर्ष वूट्ज़ की हजारों सलाखें फारस को निर्यात की जाती थीं, जो यूरोपीय औद्योगिक क्रांति से बहुत पहले भारत की विशाल धातुकर्म क्षमता को प्रदर्शित करती थीं।

19वीं शताब्दी तक, भारतीय कारीगर वूट्ज़ स्टील से तलवारें और छुरे प्रमुख केंद्रों जैसे लाहौर, अमृतसर, आगरा, जयपुर, ग्वालियर, तंजौर, मैसूर और गोलकोंडा में बनाते रहे। दुर्भाग्य से, आज तक इनमें से कोई भी उत्पादन केंद्र जीवित नहीं बचा है, और पारंपरिक ज्ञान का अधिकांश हिस्सा खो गया है।

वूट्ज़ बनाने की प्रक्रिया की सीमित दस्तावेजीकरण का एक कारण भारत की मजबूत मौखिक परंपरा है। इसके परिणामस्वरूप, हमारे पास यूरोपीय यात्रियों और पर्यवेक्षकों जैसे फ्रांसिस बुकानन (1807), बेंजामिन हेने (1818), एच.डब्ल्यू. वोयसे (1832) और जोसिया मार्शल हीथ (1840) के लेखन से जानकारी मिली, जिन्होंने अपनी यात्राओं के दौरान प्रक्रिया का विस्तृत विवरण दर्ज किया। ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के दौरान, इस रहस्यमय स्टील के प्रति यूरोपीय वैज्ञानिकों की जिज्ञासा बढ़ी, जिससे और अधिक वैज्ञानिक जांच हुई।

वूट्ज़ स्टील में रुचि रखने वाले सबसे प्रमुख व्यक्तियों में से एक ब्रिटिश वैज्ञानिक माइकल फैराडे थे, जो अपनी विद्युत संबंधी कार्यों के लिए प्रसिद्ध थे। जेम्स स्टोडार्ट के साथ, फैराडे ने दमिश्क़ स्टील के रहस्यों को उजागर करने की कोशिश की। 1820 में, उन्होंने एक अध्ययन प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने इस स्टील की असाधारण गुणों को एल्यूमिनियम ऑक्साइड और सिलिका की उपस्थिति से गलत तरीके से जोड़ा। हालांकि

फैराडे वूट्ज़ स्टील को फिर से बनाने में सक्षम नहीं थे, उनके प्रयासों ने मिश्रधातु स्टील के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम चिह्नित किया, और आज उन्हें सामग्री विज्ञान के प्रारंभिक इतिहास में एक प्रमुख व्यक्तित्व के रूप में याद किया जाता है।

अंततः, इंग्लैंड, फ्रांस, रूस और स्वीडन में शोधकर्ताओं ने वूट्ज़ स्टील की संरचना और आंतरिक संरचना को समझने में सफलता प्राप्त की। इन निष्कर्षों ने आधुनिक धातुकर्म की नींव रखी। आज भी, वैज्ञानिक वूट्ज़ स्टील का अध्ययन करते हैं, इसकी ताकत, लचीलापन और धार क्षमता से मोहित होकर। हालिया खोजों से पता चला है कि यह उच्च-कार्बन स्टील सुपर-प्लास्टिसिटी प्रदर्शित करता है–एक गुण जो इसे बिना टूटे काफी हद तक बदलने की अनुमति देता है। ऐसी विशेषताएं वूट्ज़ स्टील की प्राचीन दुनिया की एक चमत्कार के रूप में स्थिति की पुष्टि करती हैं, बल्कि एक ऐसे सामग्री के रूप में जो आधुनिक अनुप्रयोगों में प्रासंगिकता रखती है। (स्रोत: *Ranganathan, S. and Srinivasan, S. (2006). "A Tale of Wootz Steel," Resonance, June 2006, pp. 77-67; Prakash, B. (1977). "Metals and Metallurgy," in History of Technology in India, Vol. I, A.K. Bag (Ed.), Indian National Science Academy, New Delhi, pp. 174-80.*)

दुर्भाग्य से, ब्रिटिश शासन के दौरान वूट्ज़ स्टील की विरासत को नुकसान पहुंचा। उपनिवेशी नीतियों, जैसे उत्पादन कर और खनन पर प्रतिबंध, ने पारंपरिक प्रथाओं में व्यवधान डाला। समय के साथ, इस हस्तक्षेप ने भारत में स्वदेशी स्टील बनाने की तकनीकों के पतन में योगदान दिया, और प्राचीन ज्ञान का अधिकांश हिस्सा खो गया।



तंजावुर तोप की लंबाई मुँह से लेकर अंत तक 751.5 सेंटीमीटर है, जिसमें तोप के बैरल के अंत में 31.5 सेंटीमीटर का प्रक्षिप्त भाग शामिल है। तोप के बैरल का बाहरी व्यास 93 सेंटीमीटर और आंतरिक व्यास 63 सेंटीमीटर है।

भारत की धातुकर्म में उपलब्धियां वूट्ज़ स्टील से परे हैं। भारतीय लोहारों ने तो तोपों सहित बड़े लौह वस्तुओं को बनाने की कला में भी महारत हासिल की थी। नुरवार, मुर्शिदाबाद, ढाका और तंजावुर जैसे क्षेत्रों में फोर्ज-वेल्डेड लौह तोपों के उल्लेखनीय उदाहरण पाए गए हैं। तंजावुर में पाई गई तोप को दुनिया की सबसे बड़ी फोर्ज-वेल्डेड लौह तोपों में से एक माना जाता है।

- **चिकित्सा में लोहा और इस्पात**

लोहे और इस्पात का उपयोग सैन्य और निर्माण उद्देश्यों तक ही सीमित नहीं था; इसका विस्तार चिकित्सा तक भी हुआ। प्रसिद्ध भारतीय चिकित्सक सुश्रुत (छठी शताब्दी ईसा पूर्व) को 100 से अधिक विभिन्न सर्जिकल उपकरण बनाने के लिए लोहे का उपयोग करने का श्रेय दिया जाता है, जिनमें से कई लौह-कार्बन मिश्र धातुओं से बनाए गए थे। इन उपकरणों का उपयोग विभिन्न चिकित्सा प्रक्रियाओं के लिए किया गया था, जो चिकित्सा प्रौद्योगिकी में धातु विज्ञान की भारत की उन्नत समझ को प्रदर्शित करता था।



रसशाला, प्राचीन भारतीय रासायनिक प्रयोगशाला

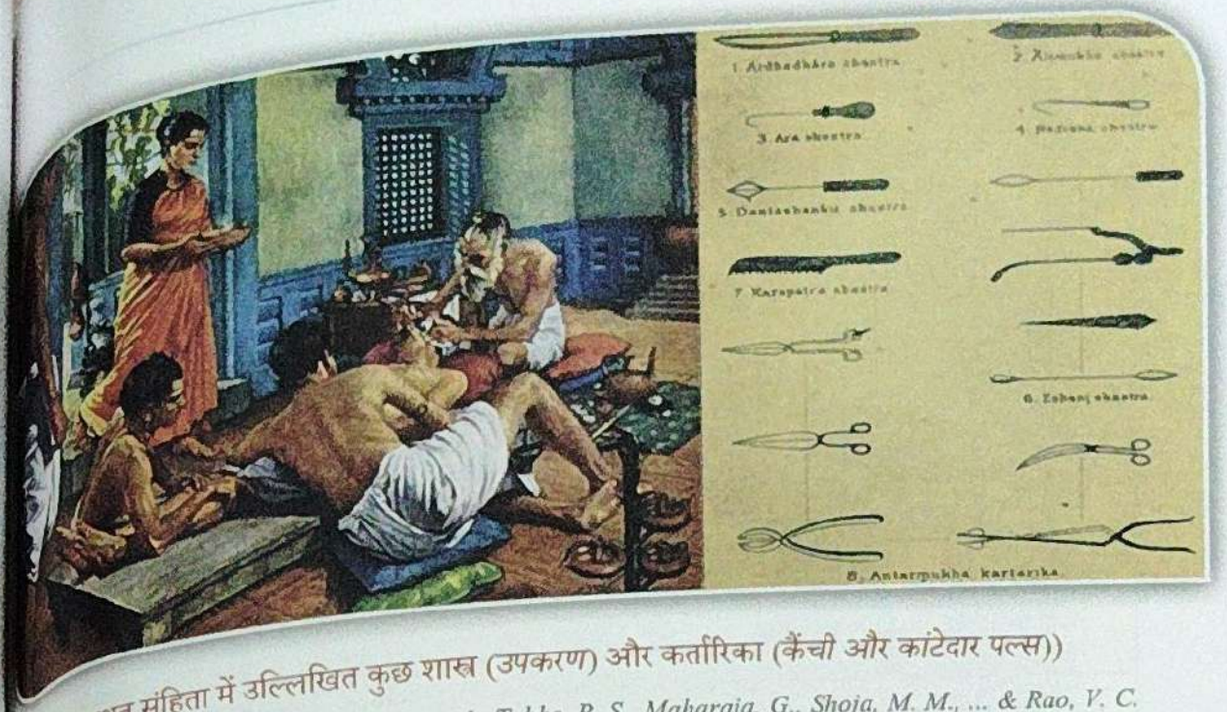

(सुश्रुत संहिता में उल्लिखित कुछ शास्त्र (उपकरण) और कर्तारिका (कैंची और कांटेदार पल्स))

(क्रेडिट: Loukas, M., Lanteri, A., Ferrauiola, J., Tubbs, R. S., Maharaja, G., Shoja, M. M., ... & Rao, V. C. (2010). Anatomy in ancient India: a focus on the Susruta Samhita. Journal of anatomy, 650-646 ,(6)217)

धातु विज्ञान तकनीक और भट्टी का डिज़ाइन

लौह और इस्पात उत्पादन में भारत की विशेषज्ञता को उन्नत भट्टी प्रौद्योगिकियों द्वारा सुगम बनाया गया। पश्चिमी भट्टियों के विपरीत, जो आम तौर पर पृथ्वी में छेद खोदकर और उपयोग के बाद छोड़ दिए गए पत्थरों को व्यवस्थित करके बनाई जाती थीं, प्राचीन भारतीय भट्टियां मिट्टी के ब्लॉकों से पूर्वनिर्मित होती थीं, जो कई उपयोगों की अनुमति देती थीं। इस पद्धति ने न केवल भारतीय इंजीनियरों की प्रतिभा को दर्शाया बल्कि धातु प्रक्रियाओं की दक्षता में भी योगदान दिया।

प्राचीन भारत में स्टील के उत्पादन के लिए दो प्राथमिक तरीके थे: पहली विधि में कच्चा लोहा से कार्बन को हटाकर इसे लोहे में परिवर्तित करना शामिल था, जबकि दूसरी विधि, जिसे सीमेंटेशन के रूप में जाना जाता है, में कार्बन सामग्री को बढ़ाने और इसे स्टील में परिवर्तित करने के लिए लोहे को कार्बराइज़ करना शामिल था। 11 वीं शताब्दी CE का युक्तिकल्पतरु, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादित विभिन्न लौह-कार्बन मिश्र धातुओं के गुणों का विस्तृत विवरण प्रदान करता है, जो प्राचीन भारतीयों को धातुकर्म प्रक्रियाओं के बारे में समझने की गहराई का प्रदर्शन करता है।

क्र. सं.	भट्टी का प्रकार	आकार (मिमी)	गोबर के उपलों की संख्या	अनुमानित वजन (किग्रा.)	तापमान सीमा और संचालन समय
1	महापुटा / पुता	11,250 × 11,250 × 11,250	2,000	45	700°C तक, 240 मिनट तक
2	गजपुता	5,625 × 5,625 × 5,625	1,000	22	700°C तक, 280 मिनट तक
3	वराहपुता		800	18	700°C तक, 130 मिनट तक
4	अर्धगजपुता	2,812 × 2,812 × 2,812	500	11	निर्दिष्ट नहीं
5	कुकुटपुता	निर्दिष्ट नहीं	32-40	4	निर्दिष्ट नहीं
6	कपोतपुता	निर्दिष्ट नहीं	8	1	650°C तक, 100 मिनट तक

(पारंपरिक 'पुता/पुटा' भट्टियों में सूखे गोबर के उपलों को ईंधन के रूप में उपयोग करने की जानकारी सारणी में प्रस्तुत की गई है।)

(स्रोत: https://www.easyayurveda.com/2022/09/30/puta-rasashastra/; Journal of Drug Research in Ayurvedic Sciences 6(1):p 3-11, Jan–Mar 2021. | DOI: 10.4103/jdras.jdras_4_21)

मोम ढलाई : एक खोई हुई भारतीय परंपरा

लॉस्ट वैक्स कास्टिंग तकनीक, जिसे प्राचीन भारतीय ग्रंथों में मधुचिस्ता विधानम के रूप में भी जाना जाता है, धातु की मूर्तियों और मूर्तियों को बनाने के लिए उपयोग की जाने वाली एक अत्यधिक परिष्कृत विधि है। इस प्रक्रिया में कई चरण शामिल हैं, जिसकी शुरुआत मोम का उपयोग करके वांछित आकार या पैटर्न के निर्माण से होती है। एक बार मोम का मॉडल बन जाने के बाद, इसे मिट्टी के घोल से लेपित किया जाता है, जिसे सूखने दिया जाता है। सांचे के सख्त हो जाने के बाद सांचे को गर्म करके मोम को हटा दिया जाता है, जिससे मोम पिघल जाता है और बाहर निकल जाता है। यह मिट्टी के खोल के अंदर एक खोखली गुहा छोड़ देता है, जिसे बाद में अंतिम मूर्ति या प्रतिमा बनाने के लिए पिघली हुई धातु से भर दिया जाता है।

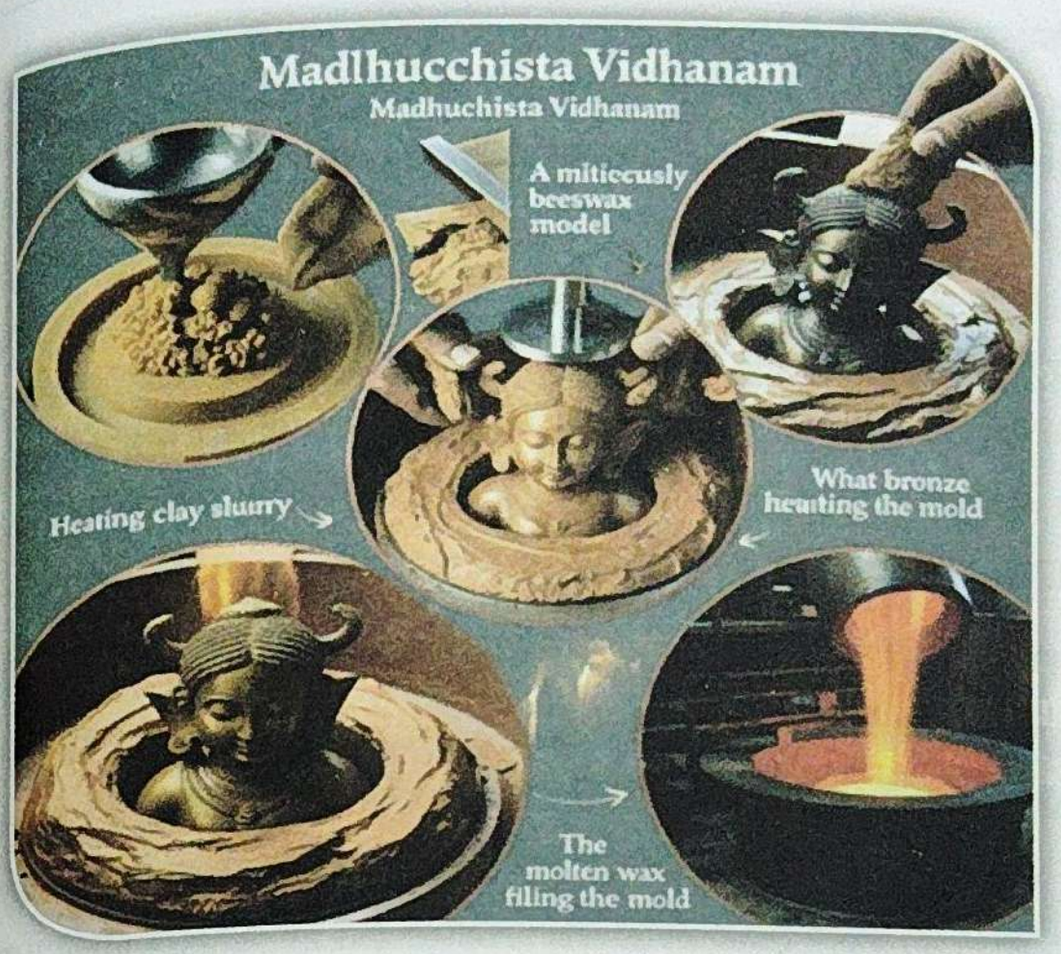

मोम ढालने की प्रक्रिया

प्रक्रिया अवलोकन

1. **मोम मॉडल निर्माण:** पहला कदम मोम से वांछित पैटर्न या आकार बनाना है।
2. **साँचे का निर्माण:** फिर मोम के मॉडल को मिट्टी के घोल से लेपित किया जाता है। यह घोल कठोर हो जाता है, जिससे मोम के चारों ओर एक सुरक्षात्मक साँचा बन जाता है।
3. **मोम हटाना:** सांचे को भट्ठी में पकाया जाता है, जिससे मोम पिघल जाता है और सांचे से बाहर निकल जाता है। यह चरण एक गुहा छोड़ देता है जिसका उपयोग ढलाई के लिए किया जाएगा।
4. **धातु कास्टिंग:** अंतिम मूर्ति या मूर्ति बनाने के लिए पिघली हुई धातु को गुहा में डाला जाता है।

पंचलोहा मूर्तियाँ

भारत में, लॉस्ट वैक्स कास्टिंग तकनीक का उपयोग पंचलोहा मूर्तियों को बनाने के लिए प्रसिद्ध रूप से किया जाता है, जो पांच धातुओं के संयोजन का उपयोग करके बनाई जाती

हैं: सोना, चांदी, तांबा, सीसा और जस्ता। ये मूर्तियाँ हिंदू धार्मिक प्रथाओं में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि माना जाता है कि इनमें आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्य हैं। ऐसा माना जाता है कि ढलाई प्रक्रिया में कई धातुओं का उपयोग मूर्तियों की गुणवत्ता और स्थायित्व को बढ़ाता है।

इस कास्टिंग तकनीक का सबसे पुराना ज्ञात उदाहरण 6,000 साल से अधिक पुराना सिंधु-सरस्वती सभ्यता का है, जो प्राचीन भारतीयों के उन्नत धातुकर्म कौशल को उजागर करता है। इस पद्धति का उपयोग करके तैयार की गई कई प्राचीन पंचलोहा मूर्तियां समय के साथ खो गईं या देश से बाहर तस्करी कर लाई गईं, जो उनके सांस्कृतिक और कलात्मक महत्व को और रेखांकित करती हैं।

- **लॉस्ट वैक्स कास्टिंग का ऐतिहासिक संदर्भ**

कई प्राचीन भारतीय ग्रंथों में **लॉस्ट वैक्स** कास्टिंग तकनीक का विस्तार से वर्णन किया गया है, जो धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाओं में इसके महत्व को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, *विष्णु-संहिता*, का एक भाग विष्णु पुराण, धातु प्रतिकृति बनाने से पहले एक मोम मॉडल बनाने की आवश्यकता का उल्लेख करता है। इसी प्रकार, जैसे *मानसोलासा* और *अभिलासितार्थ-चिन्तामणि* जैसे ग्रन्थों में इस प्रक्रिया का संपूर्ण विवरण है, जिसमें मोम पैटर्न की तैयारी और मिट्टी के घोल के साथ मॉडल की कोटिंग शामिल है।

ये ग्रंथ धातु विज्ञान और मूर्तिकला के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय कारीगरों के गहन ज्ञान और शिल्प कौशल पर प्रकाश डालते हैं। **लॉस्ट वैक्स** विधि न केवल एक तकनीकी उपलब्धि थी, बल्कि एक आध्यात्मिक अभ्यास भी थी, क्योंकि ऐसा माना जाता था कि इन मूर्तियों को तैयार करने की प्रक्रिया उन्हें दिव्य ऊर्जा से भर देती है।

धातु निष्कर्षण और रसायन प्रक्रियाओं के लिए प्राचीन भारतीय उपकरण

भारतीय कीमिया की शुरुआती शताब्दियों में धातुओं, आसवन और अन्य रासायनिक कार्यों के निष्कर्षण के लिए उपयोग किए जाने वाले उपकरणों और उपकरणों, या यंत्रों की एक आकर्षक सरणी का पता चलता है। ये उपकरण अक्सर डिज़ाइन में सरल होते थे, मिट्टी की सामग्री से बने होते थे, और गाय के गोबर या लकड़ी जैसे प्राकृतिक ताप स्रोतों से संचालित होते थे। हालाँकि इन सामग्रियों द्वारा प्राप्त तापमान असाधारण रूप से अधिक नहीं था, फिर भी वे धातुओं के निष्कर्षण और परिवर्तन के लिए पर्याप्त थे।

रस रत्न समुच्चय (आरआरएस), जो आयुर्वेदिक और रसायन परंपराओं में एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, रासायनिक प्रक्रियाओं में उपयोग किए जाने वाले यंत्रों एवं मूषाओं के निर्माण का विस्तृत विवरण प्रदान करता है। इनके निर्माण में प्रायः प्राकृतिक पदार्थों का मिश्रण इस्तेमाल किया जाता था, जिसमें मिट्टी (पृथ्वी), चावल की भूसी, लोहे की धूल, और मानव बाल शामिल होते थे। इन सबको बकरी के दूध के साथ मिलाकर एक चिकनी, आटे जैसी मिश्रित सामग्री तैयार की जाती थी, जिसे यंत्रों और मूषाओं के आकार में ढालकर, टिकाऊपन के लिए धूप में सुखाया जाता था। ऐसा करने से ये उपकरण मजबूत और दीर्घकालिक उपयोग के योग्य होते थे।।

यहाँ प्राचीन भारतीय कीमिया में प्रयुक्त कुछ प्रमुख यंत्रों का अवलोकन दिया गया है–

1. डोला यंत्र (निलंबन / झूला विधि उपकरण)

डोला यंत्र को एक कपड़े की थैली में पदार्थों को निलंबित/लटकाने करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, जिसे बाद में तरल से भरे बर्तन में डुबोया जाता है। बर्तन को बाहर से गर्म किया जाता है, और कपड़े के अंदर के पदार्थ को गर्म तरल के माध्यम से उपचारित / गरम किया जाता है। इस तंत्र का उपयोग उन प्रक्रियाओं के लिए किया जाता है जिनके लिए धीमी गर्मी, नरम उपचार और नियंत्रित ऊष्मा संचार की आवश्यकता होती है। चूंकि पदार्थ सीधे तरल के संपर्क में नहीं आता, जिससे अधिक नियंत्रित प्रसंस्करण सुनिश्चित होता है।

2. स्वेधनी यंत्र (भाप उपकरण)

स्वेधनी यंत्र पदार्थों को भाप देने के लिए उपयोग किया जाता है। इसमें पानी से भरा एक बर्तन होता है, जिसका मुंह कपड़े से ढका होता है। भाप में पकाए जाने वाले पदार्थ को कपड़े पर रखा जाता है और बर्तन को दूसरे बड़े बर्तन से ढक दिया जाता है। निचले बर्तन में पानी गर्म होता है, जिससे भाप उत्पन्न होती है, जो फिर कपड़े से होकर गुजरती है और उसके ऊपर रखे पदार्थ को भाप देती है। यह यंत्र विशेष रूप से नाजुक सामग्रियों को भाप देने के लिए उपयोगी है जिन्हें सीधे तीव्र गर्मी के संपर्क में नहीं लाया जा सकता है।

3. पतन/पटन यंत्र (ऊर्ध्वपातन या आसवन उपकरण)

पतन यंत्र उर्ध्वपातन या आसवन प्रक्रियाओं के लिए एक आवश्यक उपकरण है। इसमें दो अच्छी तरह से पके हुए बर्तन होते हैं, एक पानी से भरा छोटा बर्तन और दूसरा उसके

ऊपर रखा हुआ बड़ा बर्तन। दोनों बर्तनों की गर्दन को चूने, कच्ची चीनी और भैंस के दूध के मिश्रण से सील कर दिया जाता है। आसुत किये जाने वाले पदार्थ को ऊपरी बर्तन में रखा जाता है। जैसे ही गोबर के उपले जलाकर बर्तन को गर्म किया जाता है, ऊपरी बर्तन का पदार्थ वाष्पीकृत होकर संघनित हो जाता है और निचले बर्तन के पानी में एकत्रित हो जाता है। इस उपकरण के कुछ रूपों में, निचले बर्तन को गर्म किया जा सकता है, जबकि ऊपरी बर्तन को गीले कपड़े का उपयोग करके ठंडा रखा जाता है, जिससे उर्ध्वपातन प्रक्रिया को बढ़ावा मिलता है।

4. ढेकी यंत्र (पारा आसवन उपकरण)

ढेकी यंत्र विशेष रूप से पारा के आसवन के लिए डिज़ाइन किया गया था, जो कई रसायन विज्ञान प्रथाओं में एक महत्वपूर्ण तत्व है। यंत्र में गर्दन से थोड़ा नीचे एक छेद वाला एक बर्तन होता है, जिसमें एक बांस की नली डाली जाती है। ट्यूब का दूसरा सिरा पानी से भरे पीतल के बर्तन से जुड़ा होता है। पारा, अन्य पदार्थों के साथ, बर्तन में गरम किया जाता है, और पारा वाष्प बांस की नली के माध्यम से पीतल के बर्तन में गुजरता है, जहां यह संघनित होता है और एकत्र किया जा सकता है। यह उपकरण पारे को निकालने और शुद्ध करने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग था, जिसे भारतीय कीमिया में अत्यधिक महत्व दिया जाता था।



पारद आसवन यंत्र

3. वालुका यंत्र (रेत स्नान उपकरण)

वालुका यंत्र रेत स्नान के रूप में कार्य करता है, जो लंबे समय तक पदार्थों को एक समान ताप प्रदान करता है। इस उपकरण में एक लंबी गर्दन वाली बोतल में गर्म करने वाला पदार्थ मिट्टी के बर्तन के अंदर रेत में दबा दिया जाता है। फिर बर्तन को गर्म किया जाता है, जिससे अंदर का पदार्थ आसपास की रेत द्वारा धीरे-धीरे और समान रूप से गर्म हो जाता है। कभी-कभी विभिन्न ताप गुणों को प्राप्त करने के लिए रेत के स्थान पर नमक का उपयोग किया जाता था। यह धीमी और नियंत्रित हीटिंग प्रक्रिया उन पदार्थों के लिए महत्वपूर्ण थी जिन्हें गर्मी के लिए हल्के लेकिन लंबे समय तक संपर्क की आवश्यकता होती थी।

4. धूप यंत्र (धूमन उपकरण)

धूप यंत्र इसका उपयोग धूमन के लिए किया जाता था, एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें सल्फर या आर्सेनिक जैसे पदार्थों को वाष्पीकृत किया जाता था और उनके धुएं का उपयोग धातुओं के शुद्धिकरण या परिवर्तन सहित विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता था। यंत्र में दो बर्तन होते हैं: एक तिरछी लोहे की पट्टियों वाला होता है जिस पर सोने या चांदी की पत्तियां रखी जाती हैं, और दूसरे में आर्सेनिक या सल्फर युक्त पदार्थ होते हैं। ऊपरी बर्तन का उपयोग निचले बर्तन को ढकने के लिए किया जाता है, और जैसे ही निचले बर्तन में पदार्थ गर्म होते हैं, वे धुएं छोड़ते हैं जो सोने और चांदी की पत्तियों से होकर गुजरते हैं। ऐसा माना जाता है कि धूमन प्रक्रिया के दौरान धुआं विशिष्ट रासायनिक परिवर्तन करता है।

प्राचीन भारत में इत्र बनाना: तकनीक और प्रक्रियाएँ

इत्र बनाने की कला की जड़ें प्राचीन भारतीय संस्कृति में गहरी हैं, और इत्र की तैयारी और उपयोग के संदर्भ विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों में पाए जा सकते हैं। प्राचीन धर्मग्रंथ और ग्रंथ अक्सर शाही या औपचारिक उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार के इत्र, सुगंधित तेल और धूप बनाने के लिए अपनाई गई विधियों का विस्तृत विवरण प्रदान करते हैं। एक उल्लेखनीय पाठ, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, साथ ही वराहमिहिर की बृहत् संहिता, विशेष रूप से 64 वें अध्याय (गंध-युक्ती) में, इत्र बनाने की जटिल प्रक्रियाओं में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं, जो दैनिक जीवन और कर्मकांड दोनों प्रथाओं के अभिन्न अंग थे।

इत्र बनाने की प्रक्रिया, जैसा कि इन ग्रंथों में उल्लिखित है, एक चरण-दर-चरण विधि में वर्णित है जिसे कर्मस्तकम के रूप में जाना जाता है।यह शब्द एक उत्तम सुगंध

तैयार करने में शामिल आठ आवश्यक चरणों (या "कर्म") को संदर्भित करता है। नीचे इन चरणों का विवरण दिया गया है–

1. शोधनम (शुद्धिकरण)

इत्र बनाने में पहला कदम शामिल है शुद्धि सामग्री का. यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि सभी कच्चे माल - जैसे फूल, जड़ी-बूटियाँ और रेजिन - अशुद्धियों से मुक्त हों और संसाधित होने के लिए तैयार हों। शुद्धिकरण विधियों में किसी भी संदूषक को हटाने और सामग्री के प्राकृतिक गुणों को बढ़ाने के लिए धोना, भिगोना या अन्य पारंपरिक तकनीकें शामिल हो सकती हैं।

2. वासनाम (फूलों से सुगंध)

एक बार जब सामग्री शुद्ध हो जाए, तो अगला कदम है फूलों की खुशबू से महकना. इसमें मूल सामग्रियों को फूलों की सुगंध में डुबोना या उनमें फूलों के आवश्यक तेल मिलाना शामिल है। फूलों की पंखुड़ियाँ, विशेष रूप से चमेली, गुलाब और चंदन जैसे सुगंधित फूलों की पंखुड़ियाँ, आमतौर पर इस प्रक्रिया में उपयोग की जाती हैं। विचार यह है कि कच्चे माल को इन फूलों के सार को अवशोषित करने की अनुमति दी जाए, जो इत्र की खुशबू का केंद्र बनेगा।

3. विरेचनम (शुद्धिकरण प्रक्रिया)

इस चरण में, सामग्री एक से गुजरती है सफाई प्रक्रिया, जिसमें पिछले चरणों से अतिरिक्त तेल या अवशेषों को हटाने के लिए फ़िल्टर करना या धोना शामिल हो सकता है। यह सुनिश्चित करता है कि केवल शुद्धतम सुगंध ही बरकरार रहे और कोई भी अवांछित अशुद्धियाँ अंतिम सुगंध में हस्तक्षेप न करें।

4. भावना (द्रव के साथ संतृप्ति)

अगले चरण, जिसे भावना के रूप में जाना जाता है, में एक तरल में पाउडर या सामग्री को संतृप्त करना शामिल है। यह कदम पाउडर सामग्री, जैसे जड़ी-बूटियों या मसालों, को इत्र बनाने में उपयोग किए जाने वाले वाष्पशील तेल या तरल पदार्थ को अवशोषित करके खुशबू बढ़ाने में मदद करता है। अक्सर, इन तरल पदार्थों में फूलों या सुगंध वाले अन्य प्राकृतिक तत्वों से युक्त पानी शामिल हो सकता है।

5. पाक (पकाना या काढ़ा बनाना)

पाक चरण में, सामग्री को पकने से गुजरने दिया जाता है, अक्सर उबालने या उबालने के माध्यम से। यह अनिवार्य रूप से काढ़ा तैयार करने की एक प्रक्रिया है, जहां आधार

सामग्री को सार निकालने और सुगंध की शक्ति को बढ़ाने के लिए विशिष्ट जड़ी-बूटियों, तेलों या अन्य तरल पदार्थों के साथ पकाया जाता है। गंध की गहराई विकसित करने के लिए यह चरण महत्वपूर्ण है।

6. बोधनम (सुगंधों का पुनरुद्धार)

सामग्री तैयार होने के बाद, अगला चरण कुछ सुगंध जाग्रत करने वाले पदार्थों का उपयोग करके सुगंध को पुनर्जीवित करना है। इन पदार्थों में कस्तूरी या अन्य सुगंधित यौगिक जैसे पदार्थ शामिल हो सकते हैं जो सुगंध को फिर से जीवंत करने में मदद करते हैं, जिससे यह अधिक तीव्र या लंबे समय तक चलने वाला बन जाता है। इस चरण में सुगंध को ताज़ा करने या बढ़ाने के लिए मिश्रण में नई सामग्री जोड़ना शामिल हो सकता है।

7. धूपनम (सुगंधित वाष्प के साथ धूनी)

धूपनम सुगंधित वाष्पों के साथ सामग्री को धूमन करने की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। इस कदम में सामग्रियों के ऊपर धूप या रेजिन जलाना शामिल हो सकता है ताकि उनमें सुगंध फैलाने वाला धुआं भर जाए। वाष्प सुगंध को गहरा करने और इत्र को अधिक सुगंधित बनाने में मदद करते हैं, जिससे अंतिम उत्पाद में सूक्ष्म जटिलता जुड़ जाती है।

8. वेधनम् (पुनरुद्धार)

अंतिम चरण, वेधनम्, की एक और प्रक्रिया है पुनः प्रवर्तन, जहां सुगंध को बढ़ाने या अंतिम रूप देने के लिए इत्र को धूमन (Fumigation) या अतिरिक्त सुगंध जैसे विशिष्ट तरीकों से दोबारा उजागर किया जाता है। यह कदम यह सुनिश्चित करता है कि परफ्यूम अपनी इष्टतम सुगंध शक्ति तक पहुंच जाए, जिससे वह लंबे समय तक अपनी शक्ति बनाए रख सके।

• प्राचीन भारत में इत्र की भूमिका

प्राचीन भारत में इत्र केवल कॉस्मेटिक उत्पाद नहीं थे; उनका गहरा आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महत्व था। सुगंध का उपयोग पवित्रता, विलासिता और दैवीय आशीर्वाद से जुड़ा था। रॉयल्टी और धार्मिक अनुष्ठानों में अक्सर जटिल इत्र, सुगंधित तेल और धूप के उपयोग की मांग की जाती थी, जिनके बारे में माना जाता था कि ये शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों तरह के कल्याण को बढ़ाते हैं।

इत्र बनाना एक अत्यधिक विशिष्ट कला थी, जिसमें विभिन्न उद्देश्यों के लिए विभिन्न प्रकार की सुगंधें बनाई जाती थीं। उदाहरण के लिए, शरीर को शुद्ध करने के लिए

स्नान अनुष्ठानों में सुगंधित तेलों का उपयोग किया जाता था, जबकि पवित्रता और भक्ति का माहौल बनाने के लिए मंदिरों में अक्सर धूप जलाई जाती थी।

ग्रंथ न केवल इत्र बनाने की विधियों का वर्णन करते हैं बल्कि विभिन्न सुगंधों के आध्यात्मिक और औषधीय गुणों पर भी प्रकाश डालते हैं। चंदन, गुलाब और चमेली जैसी सुगंधों को शुद्ध करने वाला माना जाता था और इनका उपयोग मंदिर के प्रसाद या व्यक्तिगत अभिषेक में किया जाता था। इत्र बनाने और उपयोग करने के कार्य को आध्यात्मिक अभ्यास के विस्तार के रूप में देखा गया, जो दिव्य उपस्थिति का प्रतीक है और भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों के बीच एक पुल के रूप में कार्य करता है।

सारांश

प्राचीन भारत की वैज्ञानिक, तकनीकी और सांस्कृतिक उपलब्धियाँ इस तथ्य का साक्ष्य प्रमाण हैं कि यहाँ का ज्ञान-विज्ञान केवल आध्यात्मिक या धार्मिक कल्पनाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि वह गहन तर्क, सूक्ष्म निरीक्षण और व्यवस्थित प्रयोगों पर आधारित एक समृद्ध परंपरा थी। चाहे ब्रह्मांड की उत्पत्ति का दार्शनिक विवेचन हो, ग्रहों की गति की गणना हो, पंचमहाभूतों की सिद्धियाँ हों, अथवा पारंपरिक रसशालाओं में धातुओं की शुद्धि की विधियाँ–हर क्षेत्र में भारतीय मनीषा ने समय से बहुत आगे जाकर सोचने, समझने और विकसित करने का कार्य किया।

गति के सिद्धांतों पर न्याय और वैशेषिक दर्शन में किया गया विश्लेषण इस बात का परिचायक है कि भारत में वैज्ञानिक अवधारणाओं को शास्त्रीय ढाँचे में समाहित कर गहराई से समझा गया था। यह ज्ञान केवल सैद्धांतिक नहीं था, बल्कि चिकित्सा, खगोल, धातुकर्म, स्थापत्य और इत्र निर्माण जैसी व्यावहारिक प्रणालियों में सफलतापूर्वक लागू भी किया गया। आज जबकि आधुनिक विश्व पुनः पारंपरिक ज्ञान की ओर उन्मुख हो रहा है, भारत के लिए यह एक स्वर्ण अवसर है कि वह अपनी जड़ों की ओर लौटे–न केवल गौरव के लिए, बल्कि एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनके मूल्यांकन, पुनर्पाठ और पुनर्प्रयोग के लिए। यदि हम प्राचीन ज्ञान को वर्तमान की समस्याओं के समाधान में एक सेतु की तरह प्रयोग कर सकें, तो हम न केवल अपनी सांस्कृतिक विरासत को जीवित रखेंगे, बल्कि एक आत्मनिर्भर, टिकाऊ और सशक्त भारत का निर्माण भी कर सकेंगे। इस प्रकार, प्राचीन भारत का ज्ञान-विज्ञान केवल अतीत की उपलब्धि नहीं है–वह भविष्य की दिशा भी है।

सुझावात्मक पठनीय सामग्री

Joseph, G. G. (1991). *The Crest of the Peacock: Non-European Roots of Mathematics*. Princeton University Press. ISBN: 978-0691135267.

Mahadevan, B., Bhat, V.R., & Pavana, N. (2022). *Introduction to Indian Knowledge System: Concepts and Applications*. New Delhi: PHI Learning Pvt. Ltd. ISBN: 978-93-91818-20-3.

Pandey, O. P. (2023). *Bharat Vaibhav* (1st ed.). New Delhi: National Book Trust, India. ISBN: 978-81-237-9377-1.

Tirtha, B. K. (1992). *Vedic Mathematics*. Motilal Banarsidass Publishers. ISBN: 978-8120801639.

Joseph, G.G. (2009). *A Passage to Infinity: Medieval Indian Mathematics from Kerala and Its Impact*. SAGE Publications India. ISBN: 978-8132101680.

Ray, P. C. (1902–1909). A History of Hindu Chemistry: From the Earliest Times to the Middle of the Sixteenth Century A.D. Williams and Norgate.

Sharma, P. V. (Ed. & Trans.). *Charaka Samhita*. Chaukhambha Orientalia. ISBN: 978-8170800720.

Bhishagratna, K. K. (Ed. & Trans.). *Sushruta Samhita*. Chowkhamba Sanskrit Series Office. ISBN: 978-8120802100.

Hardy, A. (2007). *The Temple Architecture of India*. Wiley. ISBN: 978-0470028278.

Malik, S. C. (1990). *The Hindu Science of Perfumery and Essential Oils*. Cosmo Publications. ISBN: 978-8170200162.

Soni, S. (2021). *India's Glorious Scientific Tradition*. Prabhat Prakashan. ISBN: 978-8184305388.

Basham, A. L. (1954). The Wonder That Was India: A Survey of the Culture of the Indian Sub-Continent Before the Coming of the Muslims. Sidgwick & Jackson. ISBN: 978-9395624329.

History of Chemistry in Ancient and Medieval India, Prafulla Chandra Ray, Oriental Book Company, ISBN: 9788121801547.

Steel Making Before Bessemer: Vol. 1 Blister Steel – *The Birth of an Industry*, Kenneth C. Barraclough, The Metals Society, ISBN: 9780904357532.

Ancient Indian Metallurgy: Extractive Metallurgy, Mining, and Metal Techniques, R. Balasubramaniam, Indian Journal of History of Science, Vol. 37, 2002, pp. 1–15.

16. *The Crest of the Peacock: Non-European Roots of Mathematics*, George Gheverghese Joseph, Princeton University Press, ISBN: 9780691135267.
17. *Science in Ancient India*, Dilip K. Chakrabarti, Munshiram Manoharlal Publishers, ISBN: 9788121505650.
18. *The Wonder that was India*, A.L. Basham, Picador, ISBN: 9780330439091.
19. *Indian Science and Technology in the Eighteenth Century*, Dharampal, Other India Press, ISBN: 9788185569378.
20. *Scientific Achievements of Ancient India*, Roddam Narasimha, Current Science, Vol. 61, No. 10, 1991, pp. 595–601.
21. Ancient Indian Knowledge Systems in Metallurgy, R. Balasubra- maniam, *Journal of Metals*, Vol. 54, No. 2, 2002, pp. 50–55, DOI: 10.1007/s11837-002-0039-4.
22. *Gandhasara Tantra, Gangadhara*, Indira Gandhi National Centre for the Arts, ISBN: 9788100001189.
23. *Indian Alchemy: Soma in the Veda*, David Gordon White, Motilal Banarsidass, ISBN: 9788120817747.
24. *Traditional Distillation Techniques of India*, Ananda K. Coomara- swamy, IGNCA, ISBN: 9788173051852.
25. *Nauka-Vijnana: Ancient Indian Shipbuilding*, Dr. D.K. Hari & Dr. D.K. Hema Hari, Sri Sri Publications Trust, ISBN: 9789380592742.
26. *Vymanika Shastra, Pandit Subbaraya Shastry*, G.R. Josyer, Coronation Press, Mysore, 1973.
27. *Maritime Heritage of India*, K.S. Behera, Aryan Books International, ISBN: 9788173051654.

बहुविकल्पीय प्रश्न

निम्नलिखित में से कौन सा प्राचीन भारतीय स्थल परिष्कृत शहरी नियोजन और धातुकर्म के साक्ष्य के लिए जाना जाता है?

A. राजपुरा दरीबा
B. कालीबंगन
C. ज़ावर
D. तक्षशिला

प्राचीन भारत में, विशेषकर ज़ावर क्षेत्र में, जस्ता निष्कर्षण के लिए उपयोग की जाने वाली प्राथमिक विधि क्या थी?

A. खुले गड्ढे में खनन
B. मिट्टी के रिटॉर्ट्स में अधोमुखी आसवन
C. हाइड्रोमेटालर्जी
D. कोयले से गलाना

कौन सी प्राचीन भारतीय सोने की खदान 640 फीट तक की गहराई तक पहुंचने के लिए जानी जाती है?

A. कोलार
B. राजपुरा दरीबा
C. बेलारा
D. चंबा

निम्नलिखित में से कौन सा प्राचीन भारतीय धातुविद् पारे के विज्ञान (रसशास्त्र) से सम्बंधित है?

A. नागार्जुन
B. केटेसियास
C. आर्यभट्ट
D. चरक

5. राजस्थान में खेतड़ी तांबे की खदानें महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें कौन सी उन्नत खनन तकनीक शामिल है?
   A. पानी के पहियों का उपयोग
   B. वेंटिलेशन सिस्टम के साथ भूमिगत सुरंगें
   C. हाइड्रोलिक खनन
   D. बड़े उत्खननकर्ताओं के साथ सतही खनन

6. कुतुब मीनार और धार के लौह स्तंभों में संक्षारण प्रतिरोध का मुख्य वैज्ञानिक कारण क्या है?
   A. उच्च फॉस्फोरस युक्त लोहे का प्रयोग
   B. रासायनिक कोटिंग्स
   C. पारंपरिक तेल लेपन
   D. शुष्क वातावरण

7. कौन सा भारतीय स्थल विशेष रूप से वीं शताब्दी ईसा पूर्व की प्रारंभिक जस्ता आसवन भट्टियों के साक्ष्य के लिए जाना जाता है?
   A. ज़ावर
   B. कालीबंगन
   C. लोथल
   D. राजपुरा दरीबा

8. पुरी और भुवनेश्वर जैसे प्राचीन भारतीय स्थलों में खोजी गई लोहे की वस्तुओं की प्रमुख विशेषता निम्नलिखित में से कौन सी है?
   A. वे मुख्य रूप से सजावटी वस्तुएं थीं।
   B. वे जंग / संक्षारण से प्रतिरक्षित थे।
   C. इनका उपयोग केवल धार्मिक समारोहों में किया जाता था।
   D. इनका उत्पादन लोहे के बजाय कांस्य का उपयोग करके किया गया था।

9. राजस्थान का ज़ावर क्षेत्र किस धातु के उत्पादन के लिए ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है?
   A. तांबा
   B. जिंक
   C. लोहा
   D. सोना

10. भारत से आयातित वुट्ज़ स्टील का उपयोग करके किस प्रसिद्ध प्रकार का ब्लेड बनाया गया था?
   A. वाइकिंग तलवारें
   B. दमिश्क ब्लेड
   C. समुराई कटाना
   D. रोमन तलवार

11. कौन सा भारतीय शहर दुनिया की सबसे बड़ी फोर्ज-वेल्डेड लौह तोपों में से एक की खोज के लिए जाना जाता है?
   A. तंजावुर
   B. ढका
   C. नूरवर
   D. मुर्शीराबाद

12. प्राचीन भारत में 100 से अधिक विभिन्न सर्जिकल उपकरण बनाने के लिए लोहे का उपयोग करने का श्रेय किसे दिया जाता है?
   A. चरक
   B. आर्यभट्ट
   C. सुश्रुत
   D. वाग्भट्ट

13. प्राचीन भारत में लोहे को कार्बराइज़ करके उच्च गुणवत्ता वाला स्टील बनाने की कौन सी विधि का उपयोग किया जाता था?
   A. सीमेंटीकरण प्रक्रिया
   B. गढ़ा लोहे की फोर्जिंग
   C. ब्लास्ट फर्नेस में कमी
   D. बेसेमर प्रक्रिया

14. निम्नलिखित में से कौन सी धातु मूर्तियों के लिए मोम की ढलाई में प्रयुक्त पंचलोहा मिश्र धातु का हिस्सा नहीं है?
   A. सोना
   B. चांदी
   C. तांबा
   D. लोहा

15. भारत में लुप्त हो चुकी मोम ढलाई तकनीक का उपयोग किस प्रकार की मूर्तियां बनाने के लिए किया जाता था?
A. पीतल की मूर्तियाँ
B. पंचलोहा मूर्तियाँ
C. टेराकोटा मूर्तियाँ
D. कांस्य की मूर्तियाँ

16. प्राचीन भारतीय रसायन विद्या में पारे के आसवन के लिए कौन सा उपकरण विशेष रूप से डिज़ाइन किया गया था?
A. ढेकी यंत्र
B. पटन यंत्र / पतन यंत्र
C. वालुका यंत्र
D. धूप यंत्र

17. निम्नलिखित में से किस यंत्र का उपयोग पदार्थों के उर्ध्वपातन या आसवन के लिए किया जाता है?
A. पतन मशीन
B. डोला यंत्र
C. वालुका यंत्र
D. ढेकी यंत्र

18. धातुओं के शुद्धिकरण या परिवर्तन के लिए धुएं को छोड़ने के लिए किस रसायन यंत्र का उपयोग किया जाता था?
A. स्व-निर्मित मशीन
B. धूपा यंत्र
C. पतन मशीन
D. ढेकी यंत्र

19. इत्र बनाने की प्राचीन भारतीय प्रक्रिया में, किस चरण में फूलों और जड़ी-बूटियों जैसे कच्चे माल की सफाई शामिल होती है?
A. विरेचनम्
B. सोधनम्
C. भावना
D. वेधनम्

20. रसायन प्रक्रियाओं के लिए भाप उत्पन्न करने के लिए "स्वेधनी यंत्र" में मुख्य रूप से किस सामग्री का उपयोग किया जाता है?
A. सल्फर
B. गाय के गोबर के उपले
C. पानी
D. पारा

21. हड़प्पा सभ्यता के किस पहलू से यह सिद्ध होता है कि वे उन्नत धातुकर्म तकनीक में दक्ष थे?
A. पक्की ईंटों का प्रयोग
B. सुनियोजित जल निकासी प्रणाली
C. कांस्य और तांबे की मूर्तियाँ एवं औज़ार
D. अनाज संग्रहण के लिए बड़े भंडारगृह

22. प्राचीन भारतीय संस्कृति में ज्ञान और रचनात्मकता की गहरी जड़ें जमा चुकी परंपरा के पीछे का दर्शन क्या है?
A. कर्म योग
B. वसुधैव कुटुंबकम
C. अहिंसा
D. सत्य

23. कौन सा प्राचीन भारतीय स्थल अपने बड़े गोदीघर (Dockyard) और उन्नत धातुकर्म कौशल के लिए पहचाना जाता है?
A. हड़प्पा
B. कालीबंगन
C. लोथल
D. धोलावीरा

24. किस धातु का उत्पादन सबसे पहले बड़े पैमाने पर प्राचीन भारत में, संभवतः 600 ईसा पूर्व में हुआ था?
A. तांबा
B. सोना
C. जिंक
D. लोहा

25. प्राचीन भारतीय धातुविज्ञानी जस्ता निकालने के लिए किस उन्नत तकनीक का उपयोग करते थे?
A. खुले गड्ढे में खनन
B. क्ले रिटॉर्ट्स के माध्यम से आसवन
C. इलेक्ट्रोप्लेटिंग
D. ब्लास्ट फर्नेस में गलाना

26. प्राचीन भारत में ताम्रपाषाण काल के आरंभ में उपकरण, आभूषण और धार्मिक कलाकृतियाँ बनाने के लिए निम्नलिखित में से किस धातु का उपयोग किया जाता था?
A. जिंक
B. लोहा
C. तांबा
D. चाँदी

27. प्राचीन भारत में रसायन विज्ञान परंपरा का क्या नाम था जिसमें पारे का उपयोग शामिल था?
A. कीमिया-वेद
B. रसशास्त्र
C. आयुर्वेद
D. स्वर्णवेद

28. नदी की रेत से सोना निकालने की प्राचीन भारतीय प्रथा किस नदी प्रणाली में हुई मानी जाती है?
A. नर्मदा और ताप्ती
B. गंगा और यमुना
C. गोदावरी और कृष्णा
D. सिंधु और सरस्वती

29. प्राचीन भारतीय धातुकर्म की दृष्टि से राजस्थान के ज़ावर क्षेत्र का क्या महत्व है?
A. यह सोने के उत्पादन का एक प्रमुख केंद्र था।
B. यह उन्नत जहाज निर्माण तकनीकों के लिए जाना जाता था।
C. यह प्रारंभिक जस्ता आसवन का स्थल था।
D. यह तांबे के अयस्क खनन का उद्गम स्थल था।

30. लॉस्ट-वैक्स कास्टिंग की प्राचीन भारतीय तकनीक में उपयोग की जाने वाली प्रमुख सामग्रियों में से एक क्या थी?
A. पारा
B. मिट्टी
C. जिंक
D. सोना

31. प्राचीन भारतीय लोहे के काम का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण क्या है जो संक्षारण प्रतिरोधी है?
A. कोणार्क मंदिर में लोहे की छड़
B. कुतुब मीनार में लौह स्तंभ
C. मोहनजोदड़ो से प्राप्त लोहे की तलवारें
D. पुरी मंदिर में लोहे की छड़

32. प्राचीन भारत में किस धातु से बनी नटराज की मूर्तियाँ उच्च स्तर की धातुकला (metal casting) का उदाहरण मानी जाती हैं?
A. लोहा
B. तांबा
C. पंचधातु
D. पीतल

33. प्राचीन भारतीय धातुविदों द्वारा विकसित वुट्ज़ स्टील की मुख्य विशेषता क्या थी?
A. संक्षारण के प्रति उच्च प्रतिरोध
B. कम कार्बन सामग्री
C. कठोरता और तेज धार पकड़ने की क्षमता
D. उच्च तापमान झेलने की क्षमता

34. वुट्ज़ स्टील की किस विशेषता ने इसे तलवार निर्माण के लिए आदर्श सामग्री बनाया?
A. इसका चमकदार रंग
B. इसमें उच्च नाइट्रोजन की मात्रा
C. इसकी सूक्ष्म क्रिस्टलीय संरचना और असाधारण कठोरता
D. इसमें मिलाया गया सोना और चांदी

ोन भारतीय धातुविज्ञानी जस्ता निकालने के लिए किस उन्नत तकनीक का
ोग करते थे?

खुले गड्ढे में खनन
क्ले रिटॉर्ट्स के माध्यम से आसवन
इलेक्ट्रोप्लेटिंग
ब्लास्ट फर्नेस में गलाना

ीन भारत में ताम्रपाषाण काल के आरंभ में उपकरण, आभूषण और धार्मिक
ाकृतियाँ बनाने के लिए निम्नलिखित में से किस धातु का उपयोग किया
ता था?

जिंक
लोहा
तांबा
चाँदी

ाचीन भारत में रसायन विज्ञान परंपरा का क्या नाम था जिसमें पारे का उपयोग
ामिल था?

कीमिया-वेद
रसशास्त्र
आयुर्वेद
स्वर्णवेद

दी की रेत से सोना निकालने की प्राचीन भारतीय प्रथा किस नदी प्रणाली में हुई
ानी जाती है?

A. नर्मदा और ताप्ती
B. गंगा और यमुना
C. गोदावरी और कृष्णा
D. सिंधु और सरस्वती

प्राचीन भारतीय धातुकर्म की दृष्टि से राजस्थान के ज़ावर क्षेत्र का क्या महत्व है?

A. यह सोने के उत्पादन का एक प्रमुख केंद्र था।
B. यह उन्नत जहाज निर्माण तकनीकों के लिए जाना जाता था।
C. यह प्रारंभिक जस्ता आसवन का स्थल था।
D. यह तांबे के अयस्क खनन का उद्गम स्थल था।

30. लॉस्ट-वैक्स कास्टिंग की प्राचीन भारतीय तकनीक में उपयोग की जाने वाली प्रमुख सामग्रियों में से एक क्या थी?

A. पारा
B. मिट्टी
C. जिंक
D. सोना

31. प्राचीन भारतीय लोहे के काम का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण क्या है जो संक्षारण प्रतिरोधी है?

A. कोणार्क मंदिर में लोहे की छड़
B. कुतुब मीनार में लौह स्तंभ
C. मोहनजोदड़ो से प्राप्त लोहे की तलवारें
D. पुरी मंदिर में लोहे की छड़

32. प्राचीन भारत में किस धातु से बनी नटराज की मूर्तियाँ उच्च स्तर की धातुकला (metal casting) का उदाहरण मानी जाती हैं?

A. लोहा
B. तांबा
C. पंचधातु
D. पीतल

33. प्राचीन भारतीय धातुविदों द्वारा विकसित वुट्ज़ स्टील की मुख्य विशेषता क्या थी?

A. संक्षारण के प्रति उच्च प्रतिरोध
B. कम कार्बन सामग्री
C. कठोरता और तेज धार पकड़ने की क्षमता
D. उच्च तापमान झेलने की क्षमता

34. वुट्ज़ स्टील की किस विशेषता ने इसे तलवार निर्माण के लिए आदर्श सामग्री बनाया?

A. इसका चमकदार रंग
B. इसमें उच्च नाइट्रोजन की मात्रा
C. इसकी सूक्ष्म क्रिस्टलीय संरचना और असाधारण कठोरता
D. इसमें मिलाया गया सोना और चांदी

25. प्राचीन भारतीय धातुविज्ञानी जस्ता निकालने के लिए किस उन्नत तकनीक का उपयोग करते थे?
   A. खुले गड्ढे में खनन
   B. क्ले रिटॉर्ट्स के माध्यम से आसवन
   C. इलेक्ट्रोप्लेटिंग
   D. ब्लास्ट फर्नेस में गलाना

26. प्राचीन भारत में ताम्रपाषाण काल के आरंभ में उपकरण, आभूषण और धार्मिक कलाकृतियाँ बनाने के लिए निम्नलिखित में से किस धातु का उपयोग किया जाता था?
   A. जिंक
   B. लोहा
   C. तांबा
   D. चाँदी

27. प्राचीन भारत में रसायन विज्ञान परंपरा का क्या नाम था जिसमें पारे का उपयोग शामिल था?
   A. कीमिया-वेद
   B. रसशास्त्र
   C. आयुर्वेद
   D. स्वर्णवेद

28. नदी की रेत से सोना निकालने की प्राचीन भारतीय प्रथा किस नदी प्रणाली में हुई मानी जाती है?
   A. नर्मदा और ताप्ती
   B. गंगा और यमुना
   C. गोदावरी और कृष्णा
   D. सिंधु और सरस्वती

29. प्राचीन भारतीय धातुकर्म की दृष्टि से राजस्थान के ज़ावर क्षेत्र का क्या महत्व है?
   A. यह सोने के उत्पादन का एक प्रमुख केंद्र था।
   B. यह उन्नत जहाज निर्माण तकनीकों के लिए जाना जाता था।
   C. यह प्रारंभिक जस्ता आसवन का स्थल था।
   D. यह तांबे के अयस्क खनन का उद्गम स्थल था।

30. लॉस्ट-वैक्स कास्टिंग की प्राचीन भारतीय तकनीक में उपयोग की जाने वाली प्रमुख सामग्रियों में से एक क्या थी?
   A. पारा
   B. मिट्टी
   C. जिंक
   D. सोना

31. प्राचीन भारतीय लोहे के काम का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण क्या है जो संक्षारण प्रतिरोधी है?
   A. कोणार्क मंदिर में लोहे की छड़
   B. कुतुब मीनार में लौह स्तंभ
   C. मोहनजोदड़ो से प्राप्त लोहे की तलवारें
   D. पुरी मंदिर में लोहे की छड़

32. प्राचीन भारत में किस धातु से बनी नटराज की मूर्तियाँ उच्च स्तर की धातुकला (metal casting) का उदाहरण मानी जाती हैं?
   A. लोहा
   B. तांबा
   C. पंचधातु
   D. पीतल

33. प्राचीन भारतीय धातुविदों द्वारा विकसित वुट्ज़ स्टील की मुख्य विशेषता क्या थी?
   A. संक्षारण के प्रति उच्च प्रतिरोध
   B. कम कार्बन सामग्री
   C. कठोरता और तेज धार पकड़ने की क्षमता
   D. उच्च तापमान झेलने की क्षमता

34. वुट्ज़ स्टील की किस विशेषता ने इसे तलवार निर्माण के लिए आदर्श सामग्री बनाया?
   A. इसका चमकदार रंग
   B. इसमें उच्च नाइट्रोजन की मात्रा
   C. इसकी सूक्ष्म क्रिस्टलीय संरचना और असाधारण कठोरता
   D. इसमें मिलाया गया सोना और चांदी

35. सैन्य क्षेत्र में भारत की धातुकर्म विशेषज्ञता का एक महत्वपूर्ण योगदान क्या था?
A. परमाणु हथियारों का विकास
B. बड़े, फोर्ज-वेल्डेड लौह तोपों का निर्माण
C. बारूद का आविष्कार
D. नौसैनिक युद्ध में लोहे का उपयोग

36. किस प्राचीन भारतीय चिकित्सक को लोहे का उपयोग करके से अधिक विभिन्न शल्य चिकित्सा उपकरण बनाने का श्रेय दिया जाता है?
A. चरक
B. सुश्रुत
C. धन्वंतरि
D. भास्कराचार्य

37. कौन सा ग्रंथ शल्य चिकित्सा उपकरणों में लोहे के उपयोग का वर्णन करता है और प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में इसके महत्व पर जोर देता है?
A. चरक संहिता
B. सुश्रुत संहिता
C. आयुर्वेद
D. योग सूत्र

38. प्राचीन भारतीय भट्टियाँ धातुकर्म में पश्चिमी भट्टियों से किस प्रकार भिन्न थीं?
A. वे मिट्टी के बजाय लोहे से बनाए गए थे।
B. उन्होंने धातुओं को गलाने के लिए उच्च तापमान का उपयोग किया।
C. इन्हें कई उपयोगों के लिए मिट्टी के ब्लॉकों से पूर्वनिर्मित किया गया था।
D. उन्होंने विद्युत शक्ति का उपयोग किया।

39. प्राचीन भारत में इस्पात उत्पादन की पहली विधि क्या थी?
A. कच्चा लोहा कार्बराइजिंग
B. गढ़ा लोहा बनाने के लिए कच्चे लोहे से कार्बन निकालना
C. लौह अयस्क का इलेक्ट्रोलिसिस
D. तांबा और जस्ता का मिश्रण

40. कौन सा प्राचीन भारतीय ग्रंथ विभिन्न लौह-कार्बन मिश्र धातुओं और धातुकर्म प्रक्रियाओं का विस्तृत विवरण प्रदान करता है?
A. अर्थशास्त्र
B. युक्तिकल्पतरु
C. ऋग्वेद
D. महाभारत

41. लॉस्ट वैक्स कास्टिंग तकनीक में मॉडल बनाने के लिए उपयोग की जाने वाली प्राथमिक सामग्री क्या है?
A. मिट्टी
B. मोम
C. तांबा
D. चाँदी

42. खोई हुई मोम ढलाई प्रक्रिया में मिट्टी के घोल का क्या उद्देश्य है?
A. पिघली हुई धातु को ठंडा करने के लिए
B. मोम मॉडल के चारों ओर एक सुरक्षात्मक सांचा बनाना
C. मोम मॉडल को संरक्षित करने के लिए
D. कास्टिंग की गति बढ़ाने के लिए

43. लॉस्ट वैक्स कास्टिंग प्रक्रिया के किस चरण में मोम को हटाने के लिए मोल्ड को गर्म करना शामिल है?
A. साँचे का निर्माण
B. मोम हटाना
C. धातु ढलाई
D. मोम मॉडल निर्माण

44. लॉस्ट वैक्स कास्टिंग तकनीक का अंतिम चरण क्या है?
A. मधुमक्खी के मोम के मॉडल को तराशना
B. भट्ठी में सांचे को पकाना
C. पिघली हुई धातु को गुहा में डालना
D. मॉडल को मिट्टी के घोल से लेप करना

45. पंचलोहा मिश्रधातु का पारंपरिक अनुपात किस प्रकार की मूर्तियों के निर्माण में उपयोग होता है?
   A. धार्मिक और मंदिर मूर्तियाँ
   B. औद्योगिक मशीनरी
   C. युद्ध सामग्री
   D. घरेलू बर्तन

46. प्राचीन शिल्पशास्त्रों के अनुसार पंचलोहा से बनी मूर्तियाँ किस कारण से शुभ मानी जाती हैं?
   क) वे भौतिक रूप से भारी होती हैं
   ख) पंच धातुएँ ऊर्जा संतुलन और आध्यात्मिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं
   ग) उनमें रत्न जड़े होते हैं
   घ) उन्हें केवल राजाओं के लिए बनाया जाता था

47. कौन सी प्राचीन भारतीय सभ्यता लुप्त मोम कास्टिंग तकनीक के सबसे पहले ज्ञात उपयोग से जुड़ी है?
   A. मौर्य सभ्यता
   B. गुप्त साम्राज्य
   C. सिंधु-सरस्वती सभ्यता
   D. मंगोल सभ्यता

48. किस प्राचीन भारतीय ग्रंथ में धातु की प्रतिकृति बनाने से पहले मोम का मॉडल बनाने की आवश्यकता का उल्लेख है?
   A. रामायण
   B. विष्णु-संहिता
   C. मनुस्मृति
   D. महाभारत

49. पंचलोहा मूर्तियां निर्माण में प्रयुक्त सामग्री के संदर्भ में क्या अद्वितीय बनाता है?
   A. ये एक ही प्रकार की धातु से बने होते हैं।
   B. वे पांच अलग-अलग धातुओं का उपयोग करते हैं, जिनमें सोना, चांदी, तांबा, सीसा और जस्ता शामिल हैं।
   C. वे केवल तांबे से बने होते हैं।
   D. वे मिट्टी और मोम से तैयार किए गए हैं।

लुप्त हो चुकी मोम ढलाई तकनीक के विकास में प्राचीन भारतीय कारीगरों की क्या भूमिका थी?
   A. उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों के जवाब में तकनीक का आविष्कार किया।
   B. वे धातु विज्ञान और आध्यात्मिक अभ्यास दोनों में कुशल थे, ऐसी मूर्तियाँ बनाते थे जिनके बारे में माना जाता था कि उनमें दिव्य ऊर्जा होती है।
   C. वे मंदिरों के लिए मूर्तियों के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए जिम्मेदार थे।
   D. उन्होंने इस तकनीक को विदेशी भूमि पर पेश किया।

51. प्राचीन भारतीय रसायन विद्या में डोला यंत्र का प्राथमिक कार्य क्या है?
   A. पारे को आसवित करने के लिए
   B. नियंत्रित तापन के लिए किसी तरल पदार्थ में पदार्थों को निलंबित करना
   C. पदार्थों को सीधे आग से गर्म करना
   D. उच्च दबाव वाले पदार्थों को भाप देना

52. प्राचीन भारतीय रसायन विद्या में पारे के आसवन के लिए कौन सा यंत्र विशेष रूप से डिज़ाइन किया गया था?
   A. स्व-निर्मित मशीन
   B. पटना मशीन
   C. ढेकी यंत्र
   D. वालुका यंत्र

53. निम्नलिखित में से किस यंत्र का उपयोग विस्तारित अवधि में पदार्थों को एक समान ताप प्रदान करने के लिए किया जाता था?
   A. डोला यंत्र
   B. धूपा यंत्र
   C. वालुका यंत्र
   D. स्वेधनी यंत्र

54. पतन यंत्र में आसवन प्रक्रिया के दौरान ऊपरी बर्तन में कौन सा पदार्थ रखा जाता है?
   A. पानी
   B. बुध
   C. आसवित किया जाने वाला पदार्थ
   D. सल्फर

प्राचीन भारतीय रसायन विद्या में भाप लेने की प्रक्रिया के लिए किस यंत्र का उपयोग किया जाता है?

A. पटना मशीन
B. ढेकी यंत्र
C. स्व-निर्मित मशीन
D. धूप यंत्र

. ढेकी यंत्र में पारा वाष्प एकत्र करने के लिए उपयोग किया जाने वाला प्रमुख घटक क्या है?

A. तांबे का बर्तन
B. बांस ट्यूब
C. पानी से भरा पीतल का बर्तन
D. कपड़े का थैला

7. प्राचीन भारत में यंत्रों के निर्माण के लिए आटे जैसी सामग्री बनाने के लिए अक्सर किन सामग्रियों को मिलाया जाता था?

A. लोहे का जंग और गोबर
B. चावल की भूसी, एंथिल की मिट्टी और बकरी का दूध
C. तांबा और पारा
D. नमक और चूना

8. रसायन प्रक्रिया के दौरान सल्फर या आर्सेनिक जैसे पदार्थों को वाष्पीकृत करने के लिए किस यंत्र का उपयोग किया जाता था?

A. डोला यंत्र
B. वालुका यंत्र
C. पटना मशीन
D. धूप यंत्र

9. रसायन विज्ञान प्रक्रियाओं के लिए प्राचीन यंत्रों के निर्माण में आमतौर पर उपयोग किया जाने वाला ताप स्रोत क्या है?

A. इलेक्ट्रिक हीटर
B. गाय का गोबर या लकड़ी
C. कोयला और प्राकृतिक गैस
D. सौर ऊर्जा

रस रत्न समुच्चय (आरआरएस) एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो किस अभ्यास में यंत्रों के उपयोग का वर्णन करता है?

A. चिकित्सा पद्धतियाँ
B. धातुकर्म प्रक्रियाएं
C. आयुर्वेदिक और रसायन परंपराएँ
D. कृषि तकनीकें

कर्माष्टकम के अनुसार इत्र निर्माण प्रक्रिया में पहला चरण क्या है?

A. वासनाम (फूलों से सुगंध)
B. शोधनम (शुद्धिकरण)
C. पका (पकाना या काढ़ा बनाना)
D. वेदनाम (आगे पुनरुद्धार)

इत्र बनाने की प्रक्रिया में, किस चरण में खुशबू बढ़ाने के लिए पाउडर को तरल पदार्थ से संतृप्त करना शामिल होता है?

A. धूपनम (सुगंधित वाष्प के साथ धूनी)
B. भावना (द्रव के साथ संतृप्ति)
C. वासनाम (फूलों से सुगंध)
D. पाक (पकाना या काढ़ा बनाना)

63. इत्र निर्माण में वासनाम चरण का मुख्य उद्देश्य क्या है?

A. सामग्री को शुद्ध करने के लिए
B. अतिरिक्त तेल की सामग्री को साफ करने के लिए
C. सामग्री को फूलों की सुगंध में डुबाना
D. इत्र के लिए एक स्थायी आधार बनाना

64. इत्र बनाने की प्रक्रिया के किस चरण में सामग्री को उबालकर उसका सार निकालना शामिल है?

A. विरेचनम् (सफाई)
B. पाक (पकाना या काढ़ा बनाना)
C. बोधनम (सुगंधों का पुनरुद्धार)
D. वेदनाम (आगे पुनरुद्धार)

55. इत्र बनाने की प्रक्रिया में धूपनम कदम की क्या भूमिका है?

A. खुशबू बढ़ाने के लिए सुगंधित वाष्प के साथ सामग्री को धूनी देना
B. कच्चे माल को शुद्ध करना
C. तेल निकालने के लिए सामग्री को उबालना
D. मिश्रण में फूलों की सुगंध मिलाना

56. प्राचीन भारत में किस सुगंध को शुद्ध करने वाला माना जाता था और अक्सर मंदिर के प्रसाद में इसका उपयोग किया जाता था?

A. लैवेंडर
B. चमेली
C. गुलाब
D. पाइन

67. इत्र बनाने में वेधनम का कदम किस पर केंद्रित है?

A. इत्र का पुष्प आधार बनाना
B. दीर्घायु सुनिश्चित करने के लिए सुगंध को पुनर्जीवित करना और बढ़ाना
C. कच्ची सामग्रियों को उबालना
D. अतिरिक्त तेल की सामग्री को साफ करना

68. प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुसार शुद्धिकरण के लिए स्नान अनुष्ठान में किस प्रकार की सुगंध का उपयोग किया जाता था?

A. गुलाब
B. चंदन
C. चमेली
D. उपरोक्त सभी

69. कौन सा ग्रंथ प्राचीन भारत में इत्र बनाने की प्रक्रियाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है?

A. महाभारत
B. रामायण
C. विष्णु धर्मोत्तर पुराण
D. वेद

प्राचीन भारत में इत्र के प्रयोग का आध्यात्मिक महत्व क्या था?

A. ऐसा माना जाता था कि वे शारीरिक शक्ति बढ़ाते हैं
B. उनका उपयोग केवल व्यक्तिगत विलासिता के लिए किया जाता था
C. वे दैवीय उपस्थिति का प्रतीक थे और भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों को जोड़ते थे
D. इनका उपयोग बुरी आत्माओं को दूर रखने के लिए किया जाता था

भारत में परमाणु सिद्धांत की प्रारंभिक अवधारणाओं से कौन से ऋषि जुड़े हैं?

A. सुश्रुत
B. भास्कराचार्य
C. महर्षि कणाद
D. नागार्जुन

वैशेषिक दर्शन का मुख्य विषय क्या है?

A. आध्यात्मिक मुक्ति
B. गुरुत्वाकर्षण और गति
C. प्रायोगिक पद्धति
D. नगर नियोजन

सूर्य सिद्धांत के अनुसार, एक कल्प में चंद्रमा कितनी परिक्रमाएं करता है?

A. 57,753,336
B. 324,000
C. 57,753,336,000
D. 1.4×10^{27}

प्राचीन भारतीय ऋषियों में से कौन शल्य चिकित्सा में योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं?

A. चरक
B. सुश्रुत
C. आर्यभट्ट
D. अगस्त्य

75. सांख्य दर्शन में तर्कजन्य ज्ञान के सिद्धांत की तुलना किससे की गई है?
   A. प्रत्यक्ष प्रमाण
   B. स्वप्न से निष्कर्ष
   C. धुएं से अग्नि की उपस्थिति
   D. मंत्रों से श्रवण

76. प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुसार पृथ्वी का आकार कैसा है?
   A. समतल और अनंत
   B. बेलनाकार
   C. गोल और घूमती हुई
   D. गुंबदाकार

77. कौन सा वैदिक ग्रंथ पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा करते हुए वर्णित करता है?
   A. सामवेद, ऋग्वेद
   B. उपनिषद
   C. अथर्ववेद
   D. पुरुष सूक्त

78. ऋग्वेद (के अनुसार, प्रत्येक आकाशगंगा में क्या होता है?
   A. एक सूर्य
   B. अरबों चंद्रमा
   C. असंख्य सूर्य
   D. केवल एक ग्रह प्रणाली

79. "सविता यंत्रैः पृथिवीमरमणादस्कम्भने" वाक्य का क्या संकेत है?
   A. पृथ्वी समतल है
   B. सूर्य गुरुत्वाकर्षण द्वारा पृथ्वी की गति को नियंत्रित करता है
   C. चंद्रमा ज्वारों को प्रभावित करता है
   D. तारे स्थिर होते हैं

भास्कराचार्य ने 'सिद्धांत शिरोमणि' में कौन-सा महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांत समझाया?
   A. सापेक्षता
   B. परमाणु विखंडन
   C. गुरुत्वाकर्षण
   D. प्रकाश संश्लेषण

निम्नलिखित में से कौन प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक के रूप में उल्लेखित नहीं हैं?
   A. वसुबंधु
   B. वराहमिहिर
   C. भारद्वाज
   D. रामानुज

प्राचीन भारत में जस्ता (Zinc) को सबसे पहले धातु के रूप में निकालने की तकनीक किस स्थान से जुड़ी है?
   A) तक्षशिला
   B) सिंधुनगर
   C) ज़ावर (राजस्थान)
   D) ब्रह्मपुर

83. प्राचीन भारतीय 'लॉस्ट वैक्स कास्टिंग' तकनीक का नाम क्या था?
   A. रसायशाला
   B. युक्तिकल्पतरु
   C. मधुच्छिष्ट विधानम्
   D. धूपनम्

84. इस अध्याय के अनुसार महर्षि अगस्त्य किस क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं?
   A. डीएनए अनुक्रमण
   B. विद्युत और विद्युतलेपन
   C. हर्बल चिकित्सा
   D. खगोलशास्त्र

85. पुस्तक के अंतिम भाग में किस मुख्य विषय पर बल दिया गया है?
A. प्राचीन विज्ञान का खंडन
B. पौराणिक कथाओं पर बल
C. प्राचीन ज्ञान को आधुनिक उपयोग के लिए पुनः व्याख्यायित करना
D. ज्योतिष को कालीबंगन के रूप में प्रस्तुत करना

86. वैशेषिक सूत्र (5/2/3) में "अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम्" का क्या अर्थ है?
A. जल अणु चुम्बकत्व के कारण गिरते हैं
B. वस्तुएं जल के प्रवाह के कारण गिरती हैं
C. जल के संपर्क के अभाव में वस्तुएं गुरुत्व से गिरती हैं
D. अन्य किसी बल के अभाव में वस्तुएं गुरुत्व से गिरती हैं

87. पतंजलि के महाभाष्य के अनुसार, फेंकी गई वस्तु पृथ्वी पर क्यों लौटती है?
A. जड़त्व के कारण
B. पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के कारण
C. क्योंकि वह पृथ्वी का ही रूपांतरण है
D. वायु प्रतिरोध के कारण

88. किस प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्री ने 'सिद्धांत शिरोमणि' में पृथ्वी के आकर्षण बल का उल्लेख किया है?
A. आर्यभट्ट
B. भास्कराचार्य
C. वराहमिहिर
D. श्रीपति

89. "आकृष्टशक्तिश्च मही..." यह श्लोक किस आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांत को दर्शाता है?
A. क्वांटम एंटैंगलमेंट
B. विद्युत चुंबकीय विकिरण
C. गुरुत्वाकर्षण
D. नाभिकीय विखंडन

90. आचार्य श्रीपति के अनुसार, जब किसी वस्तु पर सभी दिशाओं से समान आकर्षण बल कार्य करता है तो क्या होता है?
A. वह गति प्राप्त करती है
B. उसका आकार बदल जाता है
C. वह स्थिर रहती है
D. वह गोलाकार कक्षा में घूमती है

91. भारतीय दर्शन में सबसे पहले किसने परमाणु को अविभाज्य, शाश्वत और गोल बताया?
A. आर्यभट्ट
B. पतंजलि
C. महर्षि कणाद
D. चरक

92. 'लॉस्ट वैक्स कास्टिंग' प्रक्रिया का पहला चरण क्या है?
A. धातु ढलाई
B. मोम हटाना
C. साँचे का निर्माण
D. मोम की आकृति बनाना

93. वैशेषिक सूत्र 2.1.12 के अनुसार, जब कोई पदार्थ और विभाजित नहीं किया जा सकता, तो उसे क्या कहा जाता है?
A. अणु (Molecule)
B. कण (Particle)
C. परमाणु (Atom)
D. द्रव्य (Substance)

94. प्राचीन भारतीय परमाणु सिद्धांत के अनुसार 'त्रसरेणु' किससे बना होता है?
A. तीन इलेक्ट्रॉन
B. छह परमाणु
C. दो परमाणु
D. नौ अणु

95. कौन सा श्लोक यह परिभाषित करता है कि परमाणु धूप में दिखाई देने वाली धूल के एक-छठे भाग जितना होता है?

A. "तस्य षष्ठमो भागः परमाणुः स उच्यते"

B. "तदभावादनुमानः"

C. "संयोग-विभाग-वेगानां कर्म समानम्"

D. "यतो नाल्पीयः स परमाणुः"

96. निम्न में से कौन वैशेषिक द्वारा परिभाषित पाँच प्रकार की गति में शामिल नहीं है?

A. आकुंचन (सिकुड़ना)

B. प्रसारण (फैलना)

C. परिवर्तन (घूर्णन)

D. उत्क्षेपण (ऊपर की ओर गति)

97. महर्षि कणाद ने गति के क्या कारण बताए हैं?

A. तापमान और दाब

B. गुरुत्व और जड़त्व

C. संयोग, प्रेरणा, प्रयास, तरलता, गुरुत्व

D. वायु प्रतिरोध और चुम्बकत्व

98. वैशेषिक दर्शन का कौन सा नियम न्यूटन के तृतीय नियम (प्रत्येक क्रिया की समान और विपरीत प्रतिक्रिया होती है) से मेल खाता है?

A. प्रयत्न-विशेषान् नोदन-विशेषः

B. कार्य-विरोधी कर्म

C. नोदन-विशेषाद् उदसन-विशेषः

D. संयोग-विभाग-वेगानां कर्म समानम्

99. आचार्य प्रशस्तपाद के अनुसार, गति के विषय में कौन सा कथन सही है?

A. केवल जल में होती है

B. किसी बाहरी कारण की आवश्यकता नहीं होती

C. विशेष दिशा और कारण की आवश्यकता होती है

D. यह सभी पदार्थों में स्वयं उत्पन्न होती है

100. पंचधातु की मूर्तियाँ कितनी धातुओं के मिश्रण से बनाई जाती हैं?

A. तीन

B. चार

C. पाँच

D. छह

101. सयणाचार्य के अनुसार, सूर्य की किरणों में कौन-कौन से गुण होते हैं?

A. अग्निमय और विनाशकारी

B. हानिकारक और ऊर्जावान

C. अहानिकर, रक्षक और शुभ

D. अदृश्य और आध्यात्मिक

102. विक्टर हेसे ने "हिरण्यजिह्वा" और "हिरण्यपाणि" किन प्रकार की किरणों के रूप में पहचाना?

A. एक्स-रे और गामा किरणें

B. इन्फ्रारेड और अल्ट्रावायलेट किरणें

C. दृश्य और रेडियो तरंगें

D. कॉस्मिक और माइक्रोवेव किरणें

103. छांदोग्य उपनिषद सूर्य की किरणों की संरचना की तुलना किससे करता है?

A. एक घूमते हुए चक्र से

B. साँप की चाल से

C. मधुकोष से

D. तरंग से

104. निम्न में से कौन सी प्राचीन सभ्यता वर्ष पहले 'लॉस्ट वैक्स' तकनीक का उपयोग करती थी?

A. मौर्य

B. गुप्त

C. सिन्धु-सरस्वती

D. कुषाण

105. ऋग्वेद के सन्दर्भ में वर्णित तरंग-कण द्वैत सिद्धांत का श्रेय आधुनिक विज्ञान में किसे जाता है?
A. बोहर और श्रोडिंगर
B. न्यूटन और फैराडे
C. मैक्सवेल और फाइनमैन
D. टेस्ला और प्लांक

106. ऋग्वेद में विवस्वान किसका प्रतीक है?
A. गुरुत्वाकर्षण
B. फोटॉन
C. न्यूट्रॉन
D. चुम्बकत्व

107. अगस्त्य संहिता में किस तकनीक का वर्णन है जो आधुनिक बैटरी जैसी प्रतीत होती है?
A. मैग्नेटिक कोर ट्रांसफार्मर
B. विद्युत-रासायनिक सैल
C. सौर पैनल
D. परमाणु रिएक्टर

108. अगस्त्य द्वारा वर्णित प्राचीन बैटरी में विभाजक (separator) के रूप में क्या उपयोग किया गया था?
A. प्लास्टिक फिल्म
B. गीली आरी की भूसी
C. वृक्ष की राल
D. कपड़े का तंतु

109. अगस्त्य संहिता में "मित्र-वरुण" शब्द किनका उल्लेख करता है?
A. गर्जन के देवता
B. वायु और जल के तत्व
C. विद्युत का प्रकार
D. जादुई मंत्र

110. इराक में मिला प्राचीन विद्युत-रासायनिक उपकरण किस नाम से जाना जाता है?
A. काहिरा संधारित्र
B. बैगदाद बैटरी
C. असीरियाई प्रवर्धक
D. पार्थियन जनरेटर

111. अगस्त्य के अनुसार, जल में विद्युत प्रवाहित करने पर क्या उत्पन्न होता है?
A. राख और धुआं
B. अग्नि और धातु
C. प्राण और जीवन वायु
D. ऊष्मा और ओज़ोन

112. वैदिक ग्रंथों में सीमित वायु पर आधारित विमान प्रणोदन को क्या कहा गया है?
A. वायूयान
B. विमानवायु
C. उदान प्रणोदन
D. अग्नि-वायु थ्रस्ट

113. अगस्त्य संहिता में "शतकुंभम्" किसे कहा गया है?
A. संग्रहण बैटरी
B. स्वर्ण लेपित ताँबा
C. दिव्य पात्र
D. स्वर्ण जड़ित रत्न

114. रेशमी वस्त्रों की रगड़ से उत्पन्न विद्युत को क्या कहा गया है?
A. तडित्
B. सौदामिनी
C. अशनी
D. विद्युत

115. भारत में विद्युत विज्ञान के अग्रदूत ऋषि कौन माने जाते हैं?
A. भारद्वाज
B. वशिष्ठ
C. अगस्त्य
D. पराशर

6. किसे 1895 में मानव रहित विमान 'मरुतसखा' उड़ाने का श्रेय दिया जाता है?
   A. विक्टर हेसे
   B. शिवकर बापूजी तलपड़े
   C. जे.आर.डीटाटा
   D. जेफ कूहन

7. वैमानिक शास्त्र के अनुसार, कौन से विमान सूर्य की किरणों से गति प्राप्त करते हैं?
   A. शिखोद्य
   B. तारमुख
   C. अंशुवाह
   D. मणिवाह

8. मंत्रिक विमानों में किस ऊर्जा स्रोत का उपयोग होता है?
   A. सौर ऊर्जा
   B. भाप और अग्नि
   C. मंत्र ऊर्जा
   D. रत्न-आधारित विद्युत

9. तैत्तिरीय आरण्यक में कितने प्रकार के बादलों का वर्णन है?
   A. 4
   B. 5
   C. 6
   D. 7

10. वराहमिहिर ने लंबे, सीधे इन्द्रधनुष को किस नाम से संबोधित किया है?
   A. रोहित
   B. इंद्रधनुष
   C. मेघवर्ण
   D. ऐरावत

11. कौन से प्राचीन भारतीय ग्रंथ में समुद्री यात्राओं और समुद्री व्यापार का विस्तृत वर्णन मिलता है?
   A. अर्थशास्त्र
   B. रामायण
   C. जातक कथाएँ
   D. भगवद गीता

122. वास्को-दा-गामा को अफ्रीका से भारत तक समुद्री मार्ग से किसने मार्गदर्शन दिया था?
   A. राजा राजा चोल
   B. मार्को पोलो
   C. कान्जी मलाम
   D. कौण्डिन्य

123. मार्को पोलो के अनुसार, भारतीय जहाजों की एक विशेष संरचनात्मक विशेषता क्या थी?
   A. काँच की खिड़कियाँ
   B. लोहे का ढाँचा
   C. दोहरी परत वाले पतवार और आरामदायक केबिन
   D. इंजन से चलने वाले पाल

124. ऋग्वेद में प्रयुक्त शब्द "शतपद्भिः" से प्राचीन भारतीय जहाजों के बारे में क्या संकेत मिलता है?
   A. उनमें 100 पतवारें थीं
   B. वे 100 चक्कों जैसे यंत्रों से चलाए जाते थे
   C. 100 ऋषियों द्वारा निर्देशित थे
   D. उनमें 100 सैनिक सवार होते थे

125. भारतीय नौसेना का वह आदर्श वाक्य क्या है जो उसकी प्राचीन समुद्री परंपरा को दर्शाता है?
   A. "सत्यमेव जयते"
   B. "शं नो वरुणः"
   C. "जय जवान जय किसान"
   D. "धर्मो रक्षति रक्षितः"

126. लोथल में कौन सा प्रमाण प्राचीन भारत की समुद्री क्षमताओं को दर्शाता है
   A. बौद्ध स्तूप
   B. विदेशी व्यापार के लिए गोदी संरचना
   C. जहाजों की गुफा चित्रकारी
   D. मिस्र शैली के पिरामिड

127. निम्नलिखित में से कौन सा प्राचीन स्थल उन्नत जल निकासी प्रणाली और पकी हुई ईंटों के मकानों के लिए जाना जाता है?
A. तक्षशिला
B. उज्जैन
C. मोहनजोदड़ो
D. कालीबंगन

128. मानसोल्लास और अभिलषितार्थ-चिंतामणि जैसे ग्रंथों के अनुसार, धातु डालने से पहले मोम की आकृति पर क्या लगाया जाता है?
A. चावल की भूसी
B. बकरी का दूध
C. चिकनी मिट्टी का लेप
D. कोयले की धूल

129. गुजरात के किस प्रारंभिक धातुकर्म स्थल पर लौह अयस्क और स्लैग की परतें पाई गईं, जो सतत धातु गलाने को दर्शाती हैं?
A. धोलावीरा
B. लोथल
C. धात्वा (ताप्ती घाटी)
D. सोमनाथ

130. राजस्थान के ज़ावर नामक प्राचीन स्थल पर किस प्रमुख धातुकर्म विकास की खोज हुई?
A. मुद्रा के रूप में सोने का उपयोग
B. ब्लास्ट फर्नेस का पहला प्रयोग
C. जिंक आसवन भट्टियाँ
D. कोयला आधारित गलन

131. प्राचीन भारत में किस स्थान पर सोने की खुदाई और निष्कर्षण (Gold Mining and Extraction) के सबसे पुराने प्रमाण मिले हैं?
A. कोलार (कर्नाटक)
B. धौलावीरा (गुजरात)
C. झाँसी (उत्तर प्रदेश)
D. बैतूल (मध्य प्रदेश)

132. कर्नाटक के किस स्वर्ण क्षेत्र में गुप्त काल के दौरान खनन के प्रमाण मिलते हैं?
A. हुट्टी गोल्ड माइंस
B. कोलार गोल्ड फील्ड्स
C. बेल्लारा माइंस
D. रामगिरी गोल्ड माइंस

133. प्राचीन भारत में सोने के अमलगम से अतिरिक्त पारे को निकालने के लिए किस वस्तु का उपयोग होता था?
A. रेशमी कपड़ा
B. केले का पत्ता
C. नम कपड़ा
D. जूट की बोरी

134. प्राचीन भारतीय सोना शोधन प्रक्रिया में गोबर से बने साँचे का क्या कार्य था?
A. गलनांक बढ़ाना
B. सोने के आभूषण बनाना
C. ताप के दौरान अधातु को सोख लेना
D. सोने का रंग बढ़ाना

135. नागार्जुन द्वारा लिखित किस ग्रंथ में चाँदी की शुद्धिकरण विधियों का वर्णन है?
A. रसरत्नाकर
B. चरक संहिता
C. आयुर्वेद सौरभ
D. रस तरंगिणी

136. प्राचीन भारत में जिंक उत्पादन के लिए किस भट्टी डिज़ाइन का प्रयोग होता थ
A. वास्तु यंत्र
B. अध पटान यंत्र
C. शत भांड
D. यंत्र मंडल

137. तेलुगु मूल का वह शब्द कौन सा है जिससे "Wootz" शब्द विकसित हुआ?
   A. तामस
   B. तुतिनगमु
   C. रसवेद
   D. ज़िनकारा

138. किस प्राचीन स्थल पर वीं शताब्दी ईके ज़िंक आसवन के प्रमाण मिले हैं?
   A. नालंदा
   B. सुल्तानगंज
   C. ज़ावर
   D. सोहगौरा

139. सुल्तानगंज में स्थित किस प्राचीन मूर्ति से भारत की तांबे पर धातुकर्म दक्षता का उदाहरण मिलता है?
   A. देवगढ़ का विष्णु
   B. सारनाथ का बुद्ध
   C. मोहनजोदड़ो की नर्तकी
   D. सुल्तानगंज का बुद्ध

140. कुतुब मीनार के पास स्थित दिल्ली के लौह स्तंभ की विशेषता क्या है?
   A. इसमें हीरे जड़े हैं
   B. इसमें फारसी लेख हैं
   C. यह अपनी आयु के बावजूद जंग नहीं लगाता
   D. यह पूरी तरह पिघले लोहे से बना है

141. मध्य पूर्व में वूट्ज़ इस्पात का सबसे प्रमुख उपयोग किस कार्य के लिए होता था?
   A. सिक्का ढलाई
   B. जहाज निर्माण
   C. दमिश्क तलवार बनाना
   D. कृषि उपकरण

142. 1820 में वूट्ज़ इस्पात के गुणों की जाँच के लिए किस वैज्ञानिक ने जेम्स स्टॉडार्ट के साथ सहयोग किया?
   A. जोसेफ प्रीस्टली
   B. माइकल फैराडे
   C. रॉबर्ट हूक
   D. आइज़ैक न्यूटन

143. "Wootz" शब्द की उत्पत्ति किस भाषा से मानी जाती है?
   A. संस्कृत
   B. पाली
   C. फ़ारसी
   D. तमिल

144. वूट्ज़ इस्पात की कौन-सी विशेष धातुकर्मीय विशेषता ने आधुनिक वैज्ञानिकों को आकर्षित किया?
   A. जंग प्रतिरोध
   B. रेडियोधर्मिता
   C. अत्यधिक लचीलापन
   D. उच्च गलनांक

145. किस प्राचीन भारतीय ग्रंथ में लोहे-कार्बन मिश्रधातुओं और भट्टी डिज़ाइन का विस्तृत वर्णन मिलता है?
   A. सुश्रुत संहिता
   B. रसरत्नाकर
   C. युक्तिकल्पतरु
   D. अर्थशास्त्र

146. प्राचीन भारत में पारंपरिक पुट भट्टियों में धातुकर्म प्रक्रियाओं के लिए प्रमुख ऊष्मा स्रोत क्या था?
   A. लकड़ी का कोयला
   B. उपले
   C. प्राकृतिक गैस
   D. सौर दर्पण

147. प्राचीन भारतीय धातुकर्म ग्रंथों में 'लॉस्ट वैक्स कास्टिंग' तकनीक को किस नाम से जाना जाता है?

A. कर्माष्टकं
B. राससिंदूर
C. मधुच्छिष्ट विधानम्
D. स्वेधनी यंत्र

148. निम्न में से कौन सा यंत्र विशेष रूप से पारे के आसवन के लिए प्रयोग किया जाता था?

A. पतन यंत्र
B. ढेकी यंत्र
C. डोला यंत्र
D. धूप यंत्र

149. पंचधातु की मूर्तियों में धातुओं का कौन सा संयोजन प्रयोग होता है?

A. लोहा, तांबा, जस्ता, पारा, टिन
B. सोना, चाँदी, तांबा, सीसा, जस्ता
C. चाँदी, तांबा, टिन, एल्युमीनियम, निकेल
D. सोना, लोहा, पीतल, जस्ता, पारा

150. प्राचीन भारतीय धातुकर्म में वालुका यंत्र का उद्देश्य क्या था?

A. अयस्क पीसना
B. औषधियाँ कूटना
C. रेत के माध्यम से समान ऊष्मा देना
D. पारे की वाष्प इकट्ठा करना

उत्तर-दर्शिका

Question No.	Correct option	Question No.	Correct option	Question No.	Correct option
1	B	26	C	51	B
2	B	27	B	52	C
3	C	28	B	53	C
4	A	29	C	54	C
5	B	30	B	55	C
6	A	31	B	56	C
7	A	32	C	57	B
8	B	33	C	58	D
9	B	34	C	59	B
10	B	35	B	60	C
11	A	36	B	61	B
12	C	37	B	62	B
13	A	38	C	63	C
14	D	39	B	64	B
15	B	40	B	65	A
16	B	41	B	66	B
17	A	42	B	67	B
18	B	43	B	68	D
19	B	44	C	69	C
20	C	45	A	70	C
21	C	46	B	71	C
22	B	47	C	72	C
23	C	48	B	73	C
24	C	49	B	74	B
25	B	50	B	75	C

Question No.	Correct option	Question No.	Correct option	Question No.	Correct option
76	C	101	C	126	B
77	A	102	B	127	C
78	C	103	C	128	C
79	B	104	C	129	C
80	C	105	A	130	C
81	A	106	B	131	A
82	C	107	B	132	B
83	C	108	B	133	C
84	B	109	C	134	C
85	C	110	B	135	A
86	D	111	C	136	B
87	C	112	C	137	B
88	B	113	B	138	C
89	C	114	A	139	D
90	C	115	C	140	C
91	C	116	B	141	C
92	D	117	C	142	B
93	C	118	C	143	D
94	B	119	D	144	C
95	A	120	D	145	C
96	C	121	C	146	B
97	C	122	C	147	C
98	B	123	C	148	B
99	C	124	B	149	B
100	C	125	B	150	C

Bharat BoudhIKS

खंड-3

संख्या और मान

भारतीय विमर्श

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

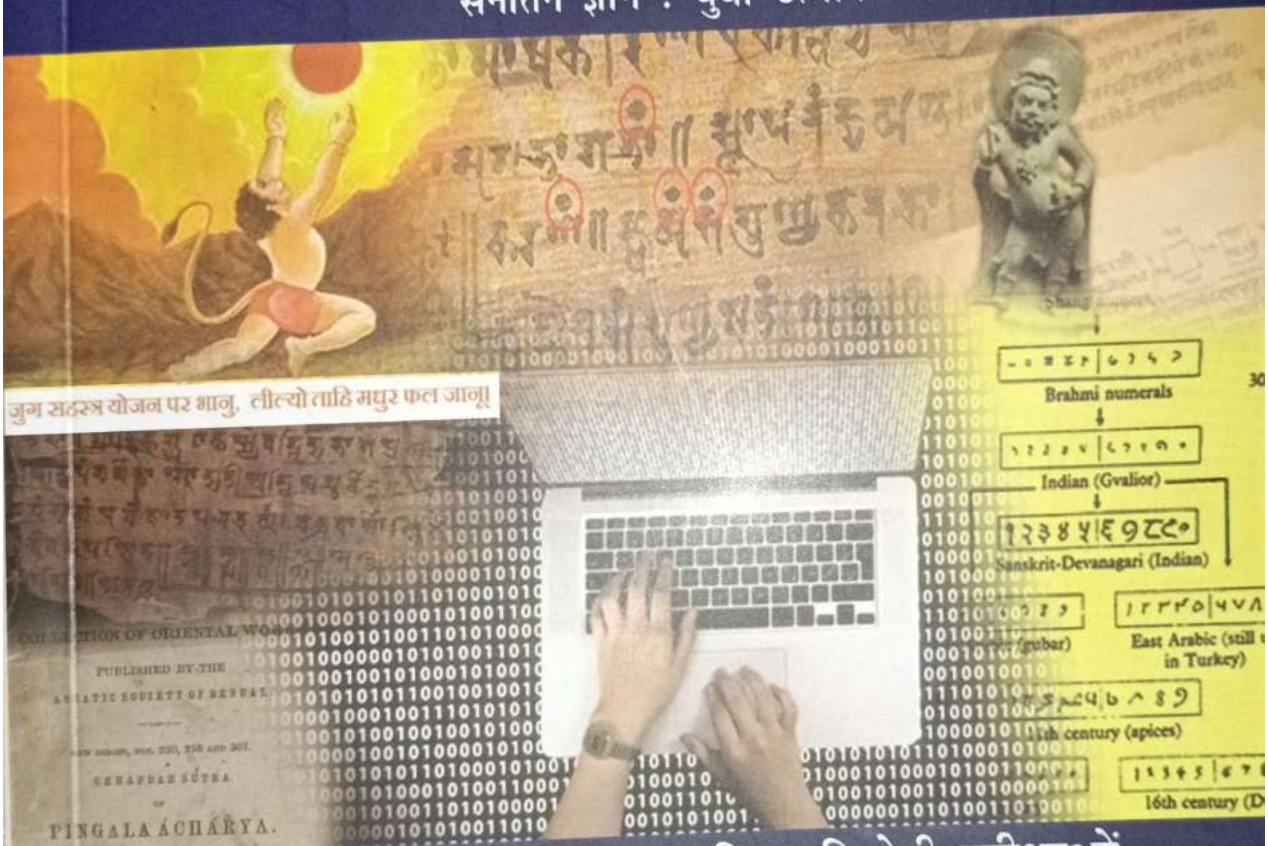

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

Scanner by Droid-Veda

संख्या और मान

भारतीय विमर्श

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : संख्या और मान: भारतीय विमर्श

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. दीपक कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-21-5

मूल्य : 190/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

Scanner by Droid-Veda

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

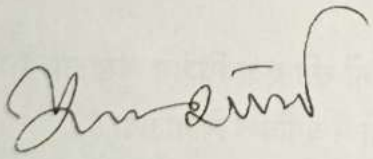

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

Scanner by Droid-Veda

विषय सूची

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1.	संख्यात्मक प्रणाली	13
	• भारत में संख्यात्मक प्रणाली का ऐतिहासिक प्रमाण	17
	• संख्यात्मक प्रणाली के प्रमाण	17
	• भारतीय संख्यात्मक प्रणाली के प्रमुख लक्षण	17
2.	शून्य का सिद्धांत और महत्व	18
	• बड़े अंकों का प्रतिनिधित्व	22
3.	प्राचीन भारतीय गणित में संख्याओं का स्थानीय मान	23
4.	दशमलव प्रणाली	24
5.	प्राचीन भारतीय गणित में संख्या का प्रतिनिधित्व	25
	• भूत-संख्या प्रणाली	25
	• कटपयादि प्रणाली: संख्याओं का प्रतिनिधित्व करने की एक अनूठी विधि	26
6.	प्राचीन भारतीय मापन प्रणाली	30
7.	प्राचीन भारतीय शास्त्रों में विज्ञान: मापन की दृष्टि से	31
8.	व्यापार, वाणिज्य और विज्ञान पर प्रभाव	35
9.	पिंगल के छन्दःशास्त्र और उनके गणितीय योगदान	35
	• गणितीय सिद्धांत और पिंगल का प्रभाव	36
	• पिंगल की धरोहर और आधुनिक गणित पर प्रभाव	37
10.	निष्कर्ष	37
	अनुशंसित पठन सामग्री	39
	बहुविकल्पीय प्रश्न	42
	उत्तरदर्शिका	63

It is India that gave us the ingenious method of expressing all numbers by ten symbols, each receiving a value of position as well as an absolute value, a profound and important idea which appears so simple to us now that we ignore its true merit. But its very simplicity, the great ease which it has lent to all computations, puts our arithmetic in the first rank of useful inventions, and we shall appreciate the grandeur of this achievement the more when we remember that it escaped the genius of Archimedes and Appollnius, two of the greatest men produced by antiquity.

Source: India and South Asus-by James H.K. Norton

******



Pierre Simon de Laplace

The greatest French mathematician, philosopher, astronomer and physicist whose works contributed to the development of mathematics, statistics, physics, and astronomy. He formulated the Laplace's Equation and pioneered the Laplace Transform which is fundamental in mathematical physics. The Laplacian Differential Operator, which is widely used in mathematics is also named after him; he was one of the firsts to postulate the ideas of Black Holes and Gravitational collapse. Known as Newton of France, Laplace is celebrated as one of the greatest scientists of all time.

Scanner by Droid-Veda

प्रस्तावना

गणित, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सार्वभौमिक भाषा, प्राचीन सभ्यताओं में गहराई से जड़ें जमाए हुए है। इनमें से, भारत ने विशेष रूप से संख्या प्रणाली और मापन इकाइयों के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया है, जिसने आधुनिक वैज्ञानिक सोच को महत्वपूर्ण रूप से आकार दिया है। यह पुस्तक संख्यात्मक प्रणालियों की रोचक यात्रा, शून्य की उत्पत्ति, और प्राचीन भारत में विकसित परिष्कृत मापन तकनीकों की पड़ताल करती है, जिससे उनके ऐतिहासिक महत्व और समकालीन गणित तथा संबंधित विषयों पर उनके गहरे प्रभाव को उजागर किया जा सके।

संख्या प्रणाली, जो भारत की सबसे महत्वपूर्ण बौद्धिक देनों में से एक है, सामान्य युग (Common Era) से बहुत पहले विकसित की गई थी। इसका प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप से आगे बढ़कर 8वीं शताब्दी ईस्वी में अरब विद्वानों तक पहुँचा और फिर 11वीं शताब्दी ईस्वी तक पश्चिमी देशों में फैल गया। दशमलव प्रणाली, स्थानीय मान (place value) की अवधारणा, और गणितीय इकाई के रूप में शून्य का आविष्कार भारत के क्रांतिकारी योगदानों में से हैं, जिन्होंने अंकगणित और बीजगणित को एक नया रूप दिया। यह पुस्तक इन उन्नतियों की गहन खोज करती है, जिसे ऐतिहासिक प्रमाणों, शिलालेखों और प्राचीन पांडुलिपियों के माध्यम से समर्थित किया गया है।

भास्कर द्वितीय और ब्रह्मगुप्त जैसे महान गणितज्ञों के कार्यों का अध्ययन किया गया है, ताकि यह समझा जा सके कि उनकी खोजों ने आधुनिक संगणनात्मक (computational) विधियों की नींव कैसे रखी। यह ग्रंथ यह भी दर्शाता है कि इन गणितीय सिद्धांतों को खगोलशास्त्र, वास्तुकला और व्यापार सहित विभिन्न क्षेत्रों में कैसे लागू किया गया। इसके अतिरिक्त, यह पुस्तक प्राचीन भारत में विकसित संख्यात्मक अभिव्यक्ति की विलक्षण विधियों जैसे कि भूतसंख्या और कटपयादि प्रणाली को प्रस्तुत करती है, जो संख्याओं को भाषायी और काव्यात्मक अभिव्यक्तियों से जोड़ती हैं। ऐसे बहु-विषयक दृष्टिकोण (interdisciplinary approach) गणित और संस्कृति के बीच

Scanner by Droid-Veda

की बौद्धिक समन्वयता को दर्शाते हैं, जिससे भारतीय विद्वानों की सृजनात्मकता और बहुमुखी प्रतिभा का पता चलता है। संख्याओं से आगे बढ़कर, यह पुस्तक समय, दूरी और भार की प्राचीन भारतीय मापन प्रणालियों की भी पड़ताल करती है। यह व्यापार, अभियांत्रिकी (engineering) और वैज्ञानिक गणनाओं में उनकी भूमिका पर चर्चा करती है, जिससे यह पता चलता है कि प्रारंभिक भारतीय सभ्यताओं ने कितनी सटीकता और मानकीकरण (standardization) प्राप्त किया था।

इस ग्रंथ में पिंगल के संख्यात्मक गणित (combinatorial mathematics) और द्विआधारी प्रणाली (binary system) में योगदान पर भी चर्चा की गई है, जो यह दर्शाते हैं कि प्राचीन गणितीय विचारधारा आधुनिक कंप्यूटिंग और सूचना सिद्धांत (information theory) को आज भी कैसे प्रभावित करती है। इन ऐतिहासिक उपलब्धियों की जाँच करके, यह पुस्तक अतीत और वर्तमान के बीच एक सेतु स्थापित करने का प्रयास करती है, यह दर्शाते हुए कि प्राचीन भारतीय गणितीय सिद्धांत आज के तकनीकी परिदृश्य में कितने प्रासंगिक हैं।

हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक उन सभी के लिए एक मूल्यवान संसाधन सिद्ध होगी, जो गणितीय विचारधारा के विकास और इसके विभिन्न वैज्ञानिक क्षेत्रों पर गहरे प्रभाव को समझने में रुचि रखते हैं। इन मौलिक अवधारणाओं को समझकर, पाठक उन बौद्धिक परंपराओं की गहरी सराहना कर सकते हैं, जिन्होंने आधुनिक गणित को आकार दिया है और हमारे विश्व की समझ को निरंतर प्रभावित कर रहे हैं।

Scanner by Droid-Veda

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

Scanner by Droid-Veda

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

Scanner by Droid-Veda

संख्या और मान : भारतीय विमर्श



भूमिका

यह ग्रन्थ भारत के अंक प्रणाली एवं मापन इकाइयों की विलक्षण यात्रा को प्रस्तुत करता है-प्राचीन वैदिक कालीन अभिलेखों और शिलालेखों से लेकर विशेष प्रणालियाँ जैसे भूतसंख्या और कटपयादि तक। आप जानेंगे कि कैसे भारत के प्राचीन विद्वानों ने दशमलव स्थानमूल्य प्रणाली विकसित की, "शून्य" की उत्पत्ति की, और अथाह बड़े संख्याओं का प्रतिनिधित्व किया-जिनका सबूत यजुर्वेद, वेदांग ज्योतिष, एवं लगभग 600 ईस्वी पूर्व की शिलालेखों में मिलता है । इन मौलिक विचारों को पिङ्गलाचार्य (छन्दशास्त्र व द्विआधारी संकेतों के श्रेष्ठ प्रवर्तक), आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त आदि ने आगे बढ़ाया-बौद्धिक सटीकता को सांस्कृतिक गहराई से जोड़ा। इन्होंने केवल प्राचीन भारत में ही नहीं, बल्कि एशिया, अरब और अंततः यूरोप में व्यापार, खगोल और विज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव किए। यह पुस्तक आपको इन प्रणालियों से परिचित कराती है-यह एक सहज, मानवतावादी भाषा में प्रस्तुति है-ताकि आप भारत की गणितीय दृष्टि की जीवंत विरासत से जुड़ सकें।

1. संख्यात्मक प्रणाली

वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति संख्यात्मक प्रणाली से बहुत लाभान्वित हुई है, जो भारत का दुनिया को दिया गया एक महत्वपूर्ण योगदान है। यह प्रणाली भारत में सामान्य युग (CE) से पहले विकसित की गई थी, जिसे 8वीं शताब्दी में अरबी विद्वानों ने अपनाया और अंततः 11वीं शताब्दी में पश्चिमी देशों में पेश किया गया।

Scanner by Droid-Veda

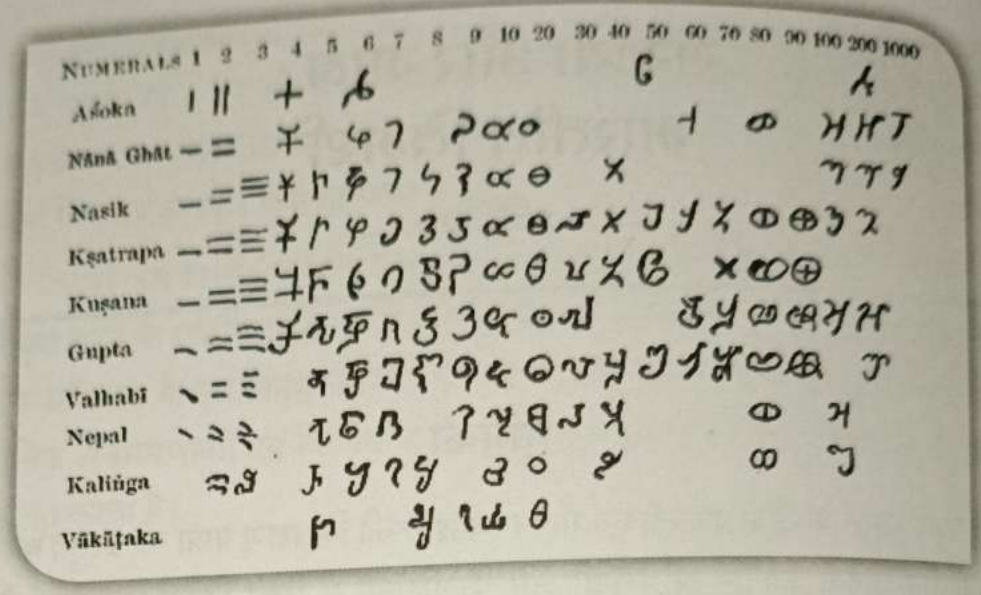

अशोक काल से ब्राह्मी अंकों का विकास

Source: The Hindu-Arabic numerals (published 1911), Author-Smith, David Eugene, 1860-1944)

संख्याएँ मानव सभ्यता की आधारशिला हैं। उनकी अभिव्यक्ति के लिए विकसित अंक-लिपियाँ न केवल गणितीय प्रगति का प्रतीक हैं, बल्कि सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास की कहानी भी कहती हैं। इस पुस्तक में हम भारतीय उपमहाद्वीप में अंक-लिपियों के विकास की यात्रा का विस्तृत अध्ययन करेंगे, जिसमें ब्राह्मी अंकों से लेकर आधुनिक हिंदू-अरबी अंकों तक की क्रमिक प्रगति शामिल है।

• ब्राह्मी अंक-लिपि: प्रारंभिक स्वरूप

ब्राह्मी अंक-लिपि भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे प्राचीन ज्ञात संख्यात्मक प्रणाली है, जिसका उपयोग मौर्य काल (ईसा पूर्व 3वीं शताब्दी) में हुआ था। यह प्रणाली दशमलव आधारित थी, लेकिन इसमें "शून्य" और स्थानिक मान (place value) की अवधारणा नहीं थी। ब्राह्मी अंकों के कुछ उदाहरण–

संख्या	ब्राह्मी अंक	संख्या	ब्राह्मी अंक
1	𑀁	6	𑀖
2	𑀂	7	𑀗
3	𑀃	8	𑀘
4	𑀄	9	𑀙
5	𑀅	10	𑀚

इन अंकों का उपयोग विभिन्न शिलालेखों और मुद्राओं में पाया गया है, जैसे अशोक के शिलालेखों में।

शून्य की अवधारणा

• भास्कर प्रथम का योगदान

भास्कर प्रथम (600–680 ई.) ने 7वीं शताब्दी में "Āryabhaṭīyabhāṣya" नामक ग्रंथ में अंकों की स्थानिक मान प्रणाली का उपयोग किया। उन्होंने अंकों को उनके स्थान के अनुसार मान देने की विधि अपनाई, जो आधुनिक दशमलव प्रणाली का आधार है। भास्कर प्रथम ने शून्य को एक वृत्त के रूप में दर्शाया, जो आधुनिक शून्य के प्रतीक का प्रारंभिक रूप माना जाता है।

• ब्रह्मगुप्त और शून्य

ब्रह्मगुप्त (598–668 ई.) ने "ब्रह्मस्फुटसिद्धांत" (628 ई.) में शून्य को एक संख्या के रूप में परिभाषित किया और इसके साथ गणनाओं के नियम स्थापित किए। उन्होंने शून्य को एक बिंदु (·) या छोटे वृत्त के रूप में दर्शाया।

• हिंदू-अरबी अंक प्रणाली का विकास और वैश्विक प्रसार

- **अरब जगत में प्रवेश :** 8वीं शताब्दी में भारतीय गणितीय ग्रंथों का अनुवाद बगदाद के "हाउस ऑफ़ विज़डम" में हुआ। अल-ख्वारिज़्मी (c. 850–780 ई.) ने "किताब अल-हिसाब अल-हिंदी" में भारतीय अंकों और गणितीय विधियों को प्रस्तुत किया। उनके नाम से ही "एल्गोरिदम" शब्द उत्पन्न हुआ।
- **यूरोप में प्रवेश:** 13वीं शताब्दी में फिबोनाच्ची (1250–1170 ई.) ने "लिबर अबाकी" के माध्यम से हिंदू-अरबी अंकों को यूरोप में लोकप्रिय बनाया। इस प्रणाली की सरलता और प्रभावशीलता ने इसे वैश्विक स्तर पर स्वीकार्य बना दिया।

• आधुनिक हिंदू-अरबी अंक प्रणाली

आज उपयोग में आने वाली "हिंदू-अरबी अंक प्रणाली" (0 से 9 तक) भारतीय ब्राह्मी अंकों से विकसित हुई है। इस प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ हैं:

- **स्थानिक मान प्रणाली:** अंकों का मान उनके स्थान पर निर्भर करता है।

Scanner by Droid-Veda

- **शून्य का उपयोग:** गणनाओं को सरल और सटीक बनाता है।
- **दशमलव प्रणाली:** गणितीय और वैज्ञानिक गणनाओं के लिए आधार।

यह प्रणाली आज संपूर्ण विश्व में मानक बन चुकी है और गणित, विज्ञान, वाणिज्य और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में इसकी केंद्रीय भूमिका है। अंक-लिपियों का यह विकास न केवल गणितीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह भारतीय सभ्यता की बौद्धिक उपलब्धियों का प्रतीक भी है। शून्य की अवधारणा और स्थानिक मान प्रणाली जैसे नवाचारों ने वैश्विक गणितीय सोच को नया आयाम दिया।

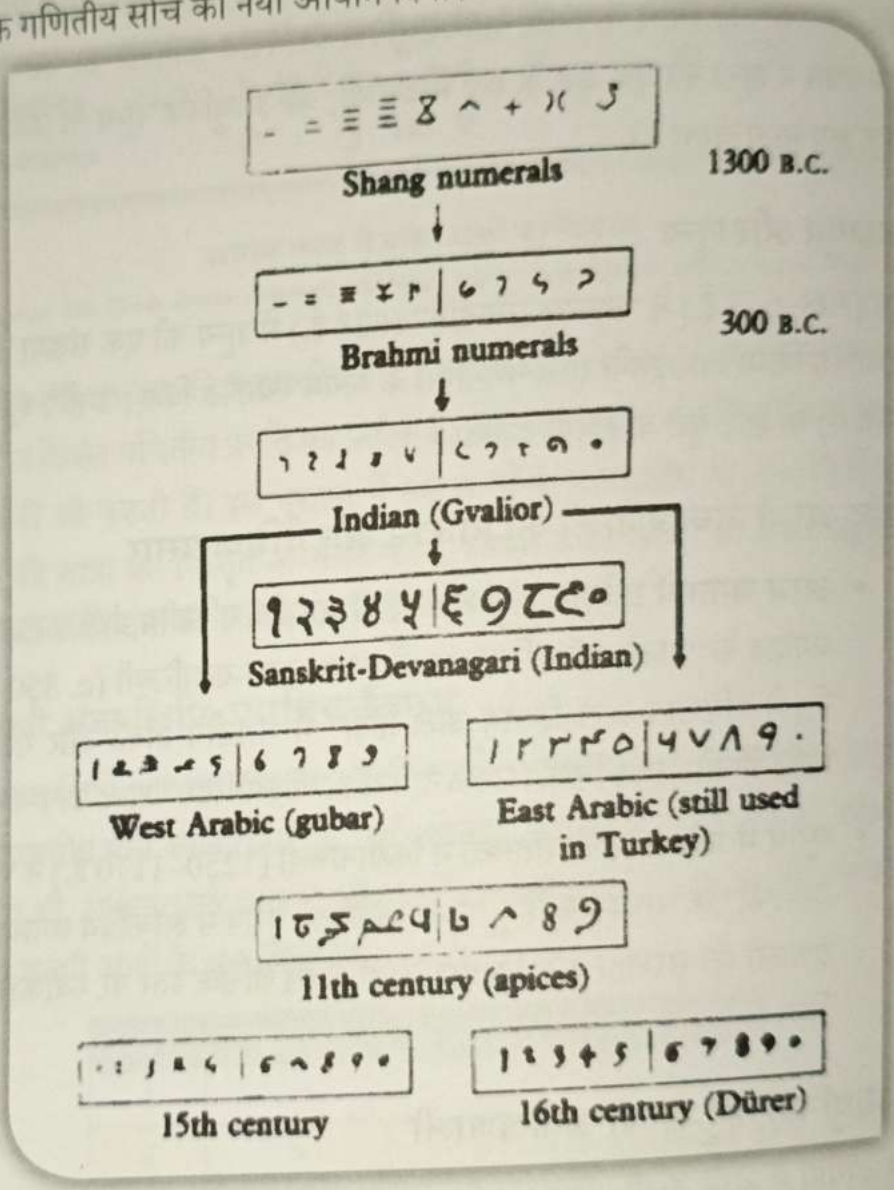

हिंदू-अरबी अंकों के क्रमिक विकास को दर्शाने वाला चित्र

Source: Karl Menninger (1934) Zahlwort und Ziffer, p. 233, later translated into English (1969) as Number Words and Number Symbols, p. 418. Modified by Frank Swetz (1984) in "The Evolution of Mathematics in Ancient China", in Campbell & Higgins, eds., Mathematics: People, Problems, Results, p. 31)

1.1 भारत में संख्यात्मक प्रणाली का ऐतिहासिक प्रमाण

इफ़राह द्वारा किए गए शोध से दोनों अरबी और यूरोपीय स्रोतों से मजबूत प्रमाण मिले हैं, जो यह पुष्टि करते हैं कि आधुनिक संख्यात्मक प्रणाली भारत में उत्पन्न हुई। इफ़राह ने 810 CE से 1814 CE तक के संदर्भों का उपयोग करते हुए भारतीय गणित पर पहले के विद्वानों की टिप्पणियों को उजागर किया। उदाहरण के लिए, लैपलास ने भारतीय अंक प्रणाली की सराहना की, जिसमें "दस प्रतीकों का उपयोग करके हर संभव संख्या को व्यक्त करने की कुशल विधि" का उल्लेख किया, जिनमें से प्रत्येक के पास पूर्णांक और स्थान मूल्य दोनों होते थे। उन्होंने यह भी कहा कि इस प्रणाली की सरलता ने अंकगणित को सबसे उपयोगी आविष्कारों में से एक बना दिया। इसी तरह, अल-बीरूनी ने 1030 CE में भारत पर अपने काम में यह उल्लेख किया कि जबकि अरबी गणनाओं में संख्यात्मक मान के आधार पर अक्षरों का उपयोग करते थे, भारतीयों ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने यह भी देखा कि जैसे-जैसे लिखे गए अक्षरों के रूपों में क्षेत्रीय भिन्नताएँ होती हैं, वैसे ही भारतीयों द्वारा उपयोग किए गए संख्यात्मक प्रतीक भी क्षेत्रीय रूप से भिन्न होते थे।

1.2 संख्यात्मक प्रणाली के प्रमाण

प्राचीन भारतीय सभ्यता में खगोलशास्त्र और गणित के क्षेत्र में भारत का गहरा योगदान स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है। इसका प्रमाण निम्न प्रकार से मिलता है:

- कालीबंगन (राजस्थान) में की गई खुदाई में सड़कों की चौड़ाई1.8- मीटर, 3.6 मीटर, 5.4 मीटर और 7.2 मीटर-पाई गई, जो क्रमशः 3 ,2 ,1 और 4 धनुष की मानक माप के अनुसार थी।
- इसी प्रकार, हड़प्पा, मोहनजो-दरो, ढोलवीरा तथा लोथल जैसे स्थलों पर की गई खुदाई में यह पाया गया कि निर्माण कार्य में आग में पकी हुई ईंटों का उपयोग किया गया था, जिनका अनुपात विशिष्ट रूप से लंबाई : चौड़ाई : ऊँचाई = 1 : 2 : 4 था।

इस प्रकार, ये ऐतिहासिक तथ्य दर्शाते हैं कि प्राचीन भारत में खगोलशास्त्र और गणित की गहरी समझ थी, जिसका प्रयोग नगर नियोजन और वास्तुकला में किया गया था।

1.3 भारतीय संख्यात्मक प्रणाली के प्रमुख लक्षण

भारतीय संख्यात्मक प्रणाली की उत्पत्ति वेदकाल में हुई, जहां संस्कृत में संख्याओं के लिए विशिष्ट नाम थे–

Scanner by Droid-Veda

- पहले नौ अंकों के नाम थे: एकम्, द्वे, त्रिणि, चत्वारि, पञ्च, षट्, सप्त, अष्ट, नव।
- 10 से 100 तक के अंकों के नाम थे: दश, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अष्टि, नवति, शत।

2. शून्य का सिद्धांत और महत्व

शून्य का सिद्धांत लगभग 500-300 BCE के आस-पास उत्पन्न हुआ और 600 CE तक भारत में पूरी तरह से विकसित हुआ। संस्कृत शब्द "जीरो" (Zero) को दर्शाता था, और इसे केवल एक स्थानधारी के रूप में नहीं, बल्कि एक पूर्णांक के रूप में गणना में इस्तेमाल किया गया, जिसका गणित पर गहरा प्रभाव पड़ा। शून्य ने जटिल गणनाओं जैसे कैलकुलस को संभव बनाया और यह आधुनिक कंप्यूटरों में उपयोग किए गए द्विआधारी अंकगणित के विकास में महत्वपूर्ण था।

	1	2	3	4	5	6	7	8	9
10^0	—	=	≡	𑁧	𑁨	𑁩	𑁪	𑁫	𑁬
10^1	𑁭	𑁮	𑁯	𑁰	𑁱	𑁲	𑁳	𑁴	𑁵
10^2	𑁶	𑁷	𑁸	𑁹	𑁺				
10^3	𑁻	𑁼	𑁽	𑁾	𑁿				

ब्राह्मी अंकों के चिह्न – दूसरी शताब्दी ईस्वी

Source: Stephen Chrisomalis (Q59611138), Numerical notation: A Comparative History, Cambridge [et al.]: Cambridge University Press, 2010, ISBN 978-0-521-87818-0, p. 189, and Richard Salomon, Indian Epigraphy, New York/Oxford: Oxford University Press, 1998, ISBN 0-19-509984-2, p. 58))

प्राचीन भारतीय ऋषियों ने शून्य के विचार के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे इसे केवल एक स्थानापन्न से लेकर एक ऐसा संख्या बना दिया गया, जिसकी अपनी विशिष्ट विशेषताएँ हैं। नीचे हम इस बारे में गहरे से विचार करेंगे कि कैसे शून्य का विचार भारत में उभरा, इसके दार्शनिक आधार और गणित और विज्ञान पर इसके दीर्घकालिक प्रभाव के बारे में।

Scanner by Droid-Veda

• प्राचीन भारतीय विचार में शून्य

संस्कृत में **शून्य** शब्द का अर्थ मूल रूप से "रिक्तता" या "मात्रा की अनुपस्थिति" था, लेकिन समय के साथ इसका अर्थ शून्य एक संख्या के रूप में विकसित हुआ। शून्य का सबसे पहला उल्लेख **पिंगला**, प्राचीन भारतीय विद्वान द्वारा, उनके कार्य छंदशास्त्र (2nd सदी ई.पू.) में मिलता है। पिंगला ने **शून्य** शब्द का उपयोग संस्कृत काव्य में "लय" की अनुपस्थिति को व्यक्त करने के लिए किया था, जहाँ प्रत्येक वर्ण "लघु" या "दीर्घ" हो सकता था। जब कोई वर्ण नहीं था, तो पिंगला ने उसे शून्य कहा, जो गणित में शून्य के सफर की शुरुआत को चिह्नित करता है।

"शून्यं तु निस्तरङ्गं हृदयाद्विजिनः प्रवृत्तम्।"

• ब्रह्मगुप्त के कार्य में शून्य

शून्य का सिद्धांत पूरी तरह से **628 ई. में** गणितज्ञ **ब्रह्मगुप्त** द्वारा उनके प्रसिद्ध ग्रंथ **ब्रह्मस्फुटसिद्धांत** में औपचारिक रूप से परिभाषित किया गया। ब्रह्मगुप्त पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शून्य को एक संख्या और प्रतीक के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने इसे *"किसी संख्या को स्वयं से घटाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली संख्या"* के रूप में वर्णित किया और इसके अंकगणितीय उपयोग के लिए नियम प्रदान किए।

"रुणं रुणसंख्याया, कंचित् स्वाधिकया स्वात् समानाय च शून्यं।"

ब्रह्मगुप्त के कार्य में शून्य के लिए निम्नलिखित नियम स्थापित किए गए–

- शून्य में किसी संख्या को जोड़ने पर वही संख्या प्राप्त होती है (अर्थात् $0 + a = a$)।
- शून्य में किसी संख्या को घटाने पर उस संख्या का नकारात्मक रूप प्राप्त होता है (अर्थात् $0 - a = -a$)।
- किसी संख्या से शून्य को घटाने पर वही संख्या प्राप्त होती है (अर्थात् $a - 0 = a$)।
- शून्य को किसी संख्या से गुणा करने पर शून्य प्राप्त होता है (अर्थात् $0 \times a = 0$)।
- शून्य से भाग देने को अपरिभाषित माना गया, जिससे इसके विरोधाभासी स्वभाव की पहचान की गई (अर्थात् $a \div 0 =$ अपरिभाषित)।

Scanner by Droid-Veda

ब्रह्मगुप्त के ये नियम महत्वपूर्ण थे, क्योंकि इनसे शून्य को एक वास्तविक गणितीय संख्या के रूप में स्थापित किया और आधुनिक अंकगणितीय संचालन के लिए आधार प्रदान किया।

• शून्य और दशमलव प्रणाली

शून्य का पूरी तरह से महत्व तब सामने आया जब इसे **दशमलव प्रणाली** के साथ जोड़ा गया। स्थान मान प्रणाली में, एक अंक का मूल्य उसके स्थान पर निर्भर करता है, और शून्य इस प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, उदाहरण के लिए, 205 और 25 में अंतर स्पष्ट करने के लिए। इस प्रणाली ने बड़ी संख्याओं और गणनाओं का प्रतिनिधित्व करना संभव किया और गणितीय और खगोलशास्त्रीय विश्लेषण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण प्रदान किया। यह प्रणाली बाद में **आर्यभट्ट** जैसे गणितज्ञों के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिन्होंने इसका उपयोग अपने खगोलशास्त्रीय गणनाओं में किया। भारतीय दशमलव प्रणाली को बाद में इस्लामिक दुनिया में और फिर यूरोप में ग्रहण किया गया, जिसने आधुनिक संख्या प्रणाली का आधार तैयार किया।

दशमलव प्रणाली में शून्य के पहले ज्ञात उपयोग का उदाहरण **ग्वालियर शिलालेख** (लगभग 876 ई.) में मिलता है, जहां शून्य प्रतीक (एक छोटा बिंदु) स्पष्ट रूप से एक संख्या में दिखाई देता है। यह शून्य के स्थान मान के रूप में पहली निश्चित उपस्थिति को दर्शाता है।

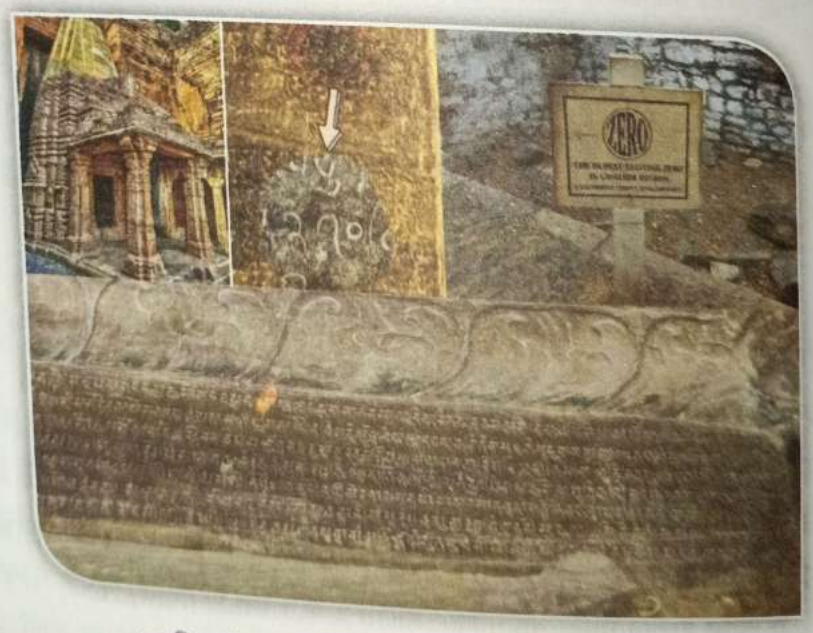

ग्वालियर के चतुर्भुज मंदिर में दुनिया का सबसे प्राचीन शून्य

• बीजगणित और भास्कर द्वितीय के योगदान

एक और महत्वपूर्ण भारतीय गणितज्ञ **भास्कर द्वितीय** (12वीं सदी ई.) ने अपने कार्य *बीजगणित* (अल्जेब्रा का ग्रंथ) में शून्य और बीजगणितीय समीकरणों के सिद्धांत पर गहरा विचार किया। भास्कर द्वितीय ने शून्य के उपयोग का विश्लेषण करते हुए इसे **अपरिभाषित समीकरणों** (जिनमें कोई समाधान नहीं होता या कई समाधान होते हैं) और **भिन्नों** में उपयोग किया।

उनके कार्य में शून्य के बारे में कई महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रस्तुत किए गए, जैसे:

- शून्य को **जोड़ात्मक पहचान** के रूप में परिभाषित करना (अर्थात् $a + 0 = a$)।
- शून्य को **गुणात्मक पहचान** के रूप में परिभाषित करना (अर्थात् $0 \times a = 0$)।
- नकारात्मक संख्याओं के साथ गणना, जो अक्सर बीजगणितीय अभिव्यक्तियों में शून्य से जुड़े होते थे।

भास्कर द्वितीय का एक प्रसिद्ध योगदान **त्रिकोणमिति और अवकलन** में शून्य के उपयोग था, विशेषकर सीमाओं और अपरिमेय संख्याओं में।

• शून्य के दार्शनिक और आध्यात्मिक आयाम

शून्य का सिद्धांत न केवल गणित पर, बल्कि **भारतीय दर्शन** पर भी गहरा प्रभाव डालता है। **हिंदू धर्म** में शून्य को **अखिल ब्रह्म** के रूप में देखा गया, जो वह खाली स्थान है, जिससे सृष्टि उत्पन्न होती है। **उपनिषदों** में यह विचार किया गया है कि वास्तविकता का मूल **शून्य** है, और शून्य अस्तित्व की एकता को दर्शाता है। इसी तरह, **बौद्ध धर्म** में **शून्यता** (रिक्तता या अभाव) का सिद्धांत इस बात को व्यक्त करता है कि सभी घटनाएँ स्वाभाविक अस्तित्व से रहित हैं और सभी चीजें आपस में परनिर्भर हैं। इस दार्शनिक संदर्भ में, शून्य **स्वाभाविक अस्तित्व की अनुपस्थिति** और वास्तविकता की अस्थिर प्रकृति को व्यक्त करता है।

• शून्य और आधुनिक युग

भारतीय गणितज्ञों द्वारा, विशेष रूप से ब्रह्मगुप्त और भास्कर द्वितीय द्वारा किए गए योगदानों ने आधुनिक गणित के विकास के लिए आधार तैयार किया। आज के गणित

Scanner by Droid-Veda

और विज्ञान में शून्य विभिन्न क्षेत्रों में अत्यंत महत्वपूर्ण है, जैसे **अल्जेब्रा**, **कैलकुलस**, और **संगणना** में।

आज के **कंप्यूटर विज्ञान** में, उदाहरण के लिए, बाइनरी संख्यात्मक प्रणाली, जो आधुनिक डिजिटल प्रौद्योगिकी की नींव है, पूरी तरह से शून्य और एक के सिद्धांत पर आधारित है। हर गणना, हर एल्गोरिदम, और कंप्यूटरों में डेटा के भंडारण को प्राचीन भारतीय शून्य के समझने से जोड़ा जा सकता है।

- **शून्य के लिए श्लोक और ग्रंथों में संदर्भ**

शून्य का विकास भारतीय ग्रंथों में गहरे रूप से निहित है, जो आध्यात्मिक और दार्शनिक शिक्षा का हिस्सा है। उदाहरण के लिए:

- **भगवद गीता** में भगवान श्री कृष्ण आत्मा के शाश्वत स्वरूप के बारे में कहते हैं, "आत्मा न जन्मती है, न मरती है" (भगवद् गीता 2.20)। इस निराकारता का विचार शून्य के सिद्धांत से दार्शनिक रूप से जुड़ा हुआ है।
- **पिंगला के छंदशास्त्र** में शून्य का संदर्भ एक लय की अनुपस्थिति के रूप में है, जो गणित में बाद में परिभाषित शून्य के अनुपस्थिति के विचार की नींव डालता है।
- **ब्रह्मस्फुटसिद्धांत (ब्रह्मगुप्त, 628 ई.)**

  "शून्यं प्रतिशून्यं च संज्ञायाम्।"

  ब्रह्मगुप्त ने शून्य को एक संख्या के रूप में परिभाषित किया और इसके अंकगणितीय संचालन के नियम प्रदान किए।

शून्य न केवल एक गणितीय उपकरण है, बल्कि यह एक गहरा दार्शनिक प्रतीक भी है, जो अनुपस्थिति और सृष्टि की संभावनाओं दोनों को दर्शाता है, एक द्वैतता जो ज्ञान के कई क्षेत्रों में विचार को प्रेरित करती है।

2.1 बड़े अंकों का प्रतिनिधित्व

प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ने बड़े अंकों को सही तरीके से संभालने में विशेषज्ञता प्राप्त की थी, जैसा कि छांदोग्य उपनिषद में अनंत अंकों के विचार का उल्लेख है। ऋग्वेद में बड़े अंकों के लिए नाम हैं, जिनमें से कई दस के गुणांक नहीं हैं। तैत्तिरीय संहिता और बृहदारण्यक उपनिषद में 10^{13} जैसे अंकों का उल्लेख है, और अन्य ग्रंथों में 10^{14} तक के

Scanner by Droid-Veda

अंकों का उल्लेख है।

संस्कृत में बड़े संख्याओं के नामकरण का तरीका प्रणालीबद्ध था और तीन मुख्य सिद्धांतों का पालन करता था:

1. 0 से 9 तक की संख्याओं के लिए **विशिष्ट नाम** दिए गए थे (जैसे, शून्य, एकं, द्वे, आदि)।
2. 11 से 99 तक की संख्याओं के लिए **योगात्मक सिद्धांतों** का उपयोग किया गया था। उदाहरण स्वरूप, 12 को द्वे-दश (2 + 10) और 84 को चतस्र्-अशिटि (4 + 80) कहा गया। एक घटक सिद्धांत (वियोगात्मक) भी लागू किया गया था, जैसे 29 को एकोऽन-त्रिंशत (30 - 1) कहा गया।
3. 10 की उच्च शक्तियों के लिए **गुणात्मक सिद्धांतों** का उपयोग किया गया। उदाहरण के लिए, 7000 को **सप्त-सहस्रम** (7 × 1000) और 80,000 को **अष्ट-अयुत** (8 × 10,000) कहा गया।

संक्षेप में, शून्य और स्थानीय मान संकेतन के उन्नत प्रयोग के साथ भारतीय संख्यात्मक प्रणाली ने आधुनिक गणित और गणना को दिशा दी। बड़े संख्याओं के नामकरण और प्रबंधन के लिए प्रणालीबद्ध दृष्टिकोण ने प्राचीन भारतीय गणित की उत्कृष्टता को और भी स्पष्ट किया, जो आज भी वैज्ञानिक प्रगति को प्रभावित कर रहा है।

3. प्राचीन भारतीय गणित में संख्याओं का स्थानीय मान

संख्याओं में स्थानीय मान का सिद्धांत, जो आधुनिक अंकगणित का एक मौलिक तत्व है, प्राचीन भारत में पूरी तरह से विकसित हुआ था। अग्नि पुराण इस सिद्धांत को इस प्रकार स्पष्ट करता है: "...एकाई स्थान से लेकर अगले स्थान तक, प्रत्येक स्थान का मान पिछले स्थान के दशगुण होता है..." यह स्थानीय मान प्रणाली को स्पष्ट रूप से दर्शाता है, जहाँ अंकों का मूल्य उनके स्थान के आधार पर बदलता है।

इसी प्रकार, वायु पुराण में इस प्रणाली का एक और संदर्भ है: "...संख्या के प्रत्येक स्थान का मान दस के गुणज के समान होता है।..." यह न केवल स्थानीय मान प्रणाली की दशमलव प्रकृति को रेखांकित करता है, बल्कि अत्यधिक बड़ी संख्याओं की कल्पना करने की ओर भी संकेत करता है, जिससे यह प्रणाली कम से कम 18 स्थानों तक विस्तारित होती है।

Scanner by Droid-Veda

श्री शंकराचार्य द्वारा लिखित शारीरक-भाष्य में स्थानीय मान की समझ के लिए एक अद्भुत उदाहरण दिया गया है। वहाँ कहा गया है कि जैसे एक व्यक्ति "देवदत्त" को अलग-अलग सामाजिक-परिवारिक संदर्भों जैसे पिता, पुत्र, साला, भ्राता, पोता, बालक, युवक आदि नामों से पुकारा जाता है, वैसे ही एक अंक का मान भी उसके स्थानानुसार- जैसे इकाई, दस, सौ, हजार आदि–परिवर्तनशील होता है। यह तुलना प्रभावी रूप से स्थान के आधार पर मूल्य में परिवर्तन को दर्शाती है, जैसे किसी नाम के विभिन्न संदर्भों में विभिन्न भूमिकाएँ हो सकती हैं।

पतंजलि के योगसूत्र में भी स्थानीय मान का एक समान व्याख्यान मिलता है, जो प्राचीन भारतीय विचारधारा में इसकी महत्ता को और अधिक उजागर करता है। इसके अतिरिक्त, महावीराचार्य ने लगभग 850 ईस्वी में लिखा गया **गणितसारसंग्रह** में स्थानमूल्य प्रणाली की व्याख्या कई संख्यात्मक उदाहरणों के माध्यम से की है। संख्या 12345654321 वास्तव में 111111 का वर्ग (square) है, और इस संख्या का उदाहरण स्थानमूल्य सिद्धांत को स्पष्ट रूप से समझाने में सहायता करता है। यह दिखाता है कि कैसे संख्याओं के अंकों का मान उनके स्थान के आधार पर बदलता है। यह उदाहरण न केवल स्थानीय मान सिद्धांत को स्पष्ट करता है, बल्कि प्राचीन भारतीय विद्वानों की गणितीय रचनात्मकता को भी दर्शाता है। इन संदर्भों से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारत में स्थानीय मान और संख्यात्मक संचालन की समझ कितनी उन्नत थी, जिसने आधुनिक संख्यात्मक प्रणाली की नींव रखी।

4. दशमलव प्रणाली

लीलावती के उद्धाटन श्लोकों में, प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ भास्कराचार्य (भास्कर I) इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके पूर्वजों ने दस के गुणांक पर आधारित एक स्थानीय मान प्रणाली विकसित की थी, जो मूल रूप से दशमलव प्रणाली है। भारत में दशमलव प्रणाली का प्रारंभिक उपयोग पश्चिमी दुनिया में इसके अपनाने से कई शताब्दियाँ पहले हुआ था। दशमलव संख्या प्रणाली, जो कि बेस-10 संरचना पर आधारित है, पूरी तरह से भारत में परिकल्पित और उपयोग की गई थी, इससे पहले कि यह अन्य संस्कृतियों में फैले।

इस प्रणाली की स्थानीय मान प्रकृति, जहाँ किसी अंक का मूल्य उस अंक के स्थान (एकाइयाँ, दहाई, सैंकड़े, आदि) पर निर्भर करता है, इसे पहले के अंक प्रणालियों से कहीं अधिक कुशल बना देती है। भारत में इस स्थानीय मान प्रणाली का विकास

Scanner by Droid-Veda

आधुनिक अंकगणित की नींव रखता है, जिसे हम आज उपयोग करते हैं, और यह प्राचीन भारतीय गणितज्ञों की उन्नत गणितीय सोच को प्रदर्शित करता है।

5. प्राचीन भारतीय गणित में संख्या का प्रतिनिधित्व

प्राचीन भारतीय गणित में संख्याओं को व्यक्त करने के लिए दो प्रमुख प्रणालियाँ थीं–

1. **भूत-संख्या प्रणाली**
2. **कटपयादि प्रणाली**

(Source: Datta, B., & Singh, A.N. (1935). History of Hindu Mathematics (Vol. 1 & 2). Calcutta University Press.)

5.1 भूत-संख्या प्रणाली

इस प्रणाली में संख्या को शब्दों के माध्यम से व्यक्त किया जाता था, जो दैनिक जीवन, पौराणिक कथाओं या प्रकृति से जुड़ी वस्तुओं या अवधारणाओं का प्रतिनिधित्व करते थे। उदाहरण के लिए, "चन्द्र" (चाँद) शब्द संख्या **एक** का प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि एक ही चंद्रमा होता है। यह प्रणाली लचीली थी और सांस्कृतिक और दार्शनिक विचारों से जुड़ी थी। *(Source: Filliozat, J. (2004). The Classical Doctrine of Indian Medicine: Its Origins and Its Greek Parallels. Munshiram Manoharlal Publishers)।*

यहां तक कि गणितीय संचालन में शून्य का उपयोग और संख्याओं का स्थानीय मान प्रणाली के आधार पर गणना करना प्राचीन भारत में अत्यधिक विकसित था, जो आज के आधुनिक अंकगणित का आधार बना।

(Source: Katz, V. J. (2007). A History of Mathematics: An Introduction (3rd ed.). Pearson)।

- **भूत-संख्या प्रणाली में शब्दों के सामान्य स्रोत**

भूत-संख्या प्रणाली कई श्रेणियों के शब्दों से प्रेरित होती है:

1. **संख्यात्मक शब्द:** जैसे - शून्य (0), एकम् (1), द्वे (2), त्रिणि (3), चत्वारि (4), पञ्च (5), षट् (6), सप्त (7), अष्ट (8), नव (9)।

(Source: Hayashi, T. (2003). Indian Mathematics. In Helaine Selin (Ed.), Encyclopaedia of the History of Science, Technology, and Medicine in Non-Western Cultures. Springer.)

2. **प्राकृतिक/भौतिक तत्व:** पृथ्वी (1), चन्द्र (1), तारे (अनेक = ∞), अग्नि (1), दिशाएं (4 या 10), सप्तपर्वत (7), आकाश (1) जैसे शब्दों का उपयोग संख्याओं के प्रतीक के रूप में होता था। *(Source: Katz, V. J. (2007))*

Scanner by Droid-Veda

3. **पशु:** हाथी (8 – आठ दंत), नाग (5 या 7 फनों के आधार पर), घोड़ा (4 पैरों वाला) जैसे पशुओं के प्रतीकों को भी संख्याओं के निरूपण में प्रयोग किया गया है। *(Source: Pingree, D. (2003). The Logic of Non-Western Science: Mathematical Traditions of South Asia. ISHM.)*

4. **शरीर के अंग:** नेत्र (2), कर (2), नासिका (2), सप्त धातुएँ (7) जैसे शारीरिक अंग भी भूत-संख्या में प्रयुक्त होते थे। *(Source: Joseph, G. G. (2011). The Crest of the Peacock: Non-European Roots of Mathematics (3rd ed.). Princeton University Press.)*

5. **देवता:** ब्रह्मा (1), त्रिमूर्ति – ब्रह्मा, विष्णु, महेश (3), पञ्चदेव – गणेश, विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य (5), द्वादश आदित्य (12) इत्यादि देवताओं का उपयोग संख्यात्मक अर्थ देने हेतु होता था। *(Source: Hayashi, T. (2003))*

6. **प्राकृतिक एवं कालिक अवधारणाएं:** ऋतुएं (6), महीने (12), सप्ताह के दिन (7), पंचमहाभूत – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश (5) जैसे कालिक और प्राकृतिक घटकों का प्रयोग भी इस प्रणाली में होता था।

(Source: Datta, B., & Singh, A. N. (1935).

- **लचीलापन और सौंदर्यात्मक एकीकरण**

भूत-संख्या प्रणाली खुले तरीके से प्रतिनिधित्व के कई रूपों की पेशकश करती है। यह कठोर नियमों द्वारा नियंत्रित नहीं होती, बल्कि उपयोगकर्ता की रचनात्मकता और ज्ञान द्वारा आकारित होती है। इससे गणितज्ञों, कवियों और विद्वानों को संख्यात्मक प्रतिनिधित्व को भाषा की सौंदर्यात्मक सुंदरता के साथ जोड़ने का अवसर मिलता है, जिससे गणित का एक काव्यात्मक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण सामने आता है। यह प्रणाली इस बात का उदाहरण है कि कैसे प्राचीन भारतीय गणित केवल एक तकनीकी क्षेत्र नहीं था, बल्कि एक कला रूप भी था, जहां गणित, साहित्य और दर्शन के बीच सीमाएं लचीली थीं, जिससे संख्याएं न केवल गणना के उपकरण बल्कि अर्थ, सुंदरता और संस्कृति के वाहक बन गईं।

5.2 कटपयादि प्रणाली: संख्याओं का प्रतिनिधित्व करने की एक अनूठी विधि

कटपयादि प्रणाली एक और अद्भुत दृष्टिकोण है जिसे प्राचीन भारत में संख्याओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए वर्णमाला का उपयोग करके विकसित किया गया था। कटपयादि प्रणाली का सबसे प्राचीन ज्ञात प्रयोग 7वीं शताब्दी ईस्वी (AD) में केरल

Scanner by Droid-Veda

के गणितज्ञों जैसे वररुचि (Vararuchi) और बाद में केरल स्कूल के ज्योतिषियों द्वारा किया हुआ पाया जाता है। संख्याओं को शब्दों में एन्कोड करने का एक चतुर तरीका प्रदान करती है। भूत-संख्या प्रणाली के विपरीत, जो सामान्य तत्वों और रूपकों का उपयोग करती है, कटपयादि प्रणाली प्रत्येक संस्कृत वर्णमाला के व्यंजन को एक विशिष्ट अंक प्रदान करती है ताकि वेद, खगोलशास्त्र और काव्य में संख्यायें याद की जा सकें परिणामस्वरूप यह प्रणाली भाषा की संरचना और संख्यात्मक प्रतिनिधित्व का संयोजन करती है।

- **कटपयादि प्रणाली कैसे काम करती है**

इस प्रणाली में प्रत्येक व्यंजन को 0 से 9 तक एक संख्या दी जाती है। स्वर का सीधे संख्यात्मक मान नहीं होता और वे आमतौर पर स्थान धारकों के रूप में या संख्याओं को अलग करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। व्यंजनों को जोड़कर, कोई शब्द बना सकता है और इन शब्दों को अक्षर दर अक्षर डिकोड करके संबंधित संख्या को प्रकट किया जा सकता है।

कटपयादि प्रणाली के कुछ प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं:

1. **स्वर शून्य को सूचित करते हैं**: इस प्रणाली में, जो स्वर अकेले खड़ा होता है, वह संख्या शून्य को सूचित करता है। यह नियम संख्याओं और गैर-संख्यात्मक शब्दों में अंतर करने में मदद करता है और डिकोडिंग प्रक्रिया में स्पष्टता बनाए रखता है।
2. **व्यंजन संख्याओं का प्रतिनिधित्व करते हैं**: प्रत्येक व्यंजन को 0 और 9 के बीच एक विशिष्ट संख्या से जोड़ा जाता है। प्रणाली में कुछ लचीलापन होता है, जिसमें प्रत्येक संख्या के लिए कई व्यंजन निर्धारित होते हैं। कुछ सामान्य नियुक्तियाँ इस प्रकार हैं–

कटपयादि संख्यात्मक प्रणाली तालिका

अंक	अक्षर (देवनागरी)
1	क (ka), ट (ṭa), प (pa), य (ya)
2	ख (kha), ठ (ṭha), फ (pha), र (ra)
3	ग (ga), ड (ḍa), ब (ba), ल (la)
4	घ (gha), ढ (ḍha), भ (bha), व (va)

अंक	अक्षर (देवनागरी)
5	ङ (ṅa), ण (ṇa), म (ma), श (śa)
6	च (ca), त (ta),ष (ṣa)
7	छ (cha), थ (tha),स (sa)
8	ज (ja), द (da),ह (ha)
9	झ (jha), ध (dha)
0	ञ (ña), न (na)

महत्वपूर्ण बातें

केवल **व्यंजन** अक्षरों को ही संख्याएँ दी जाती हैं; **स्वर** (अ, आ, इ, ई आदि) का कोई मान नहीं होता - वे केवल उच्चारण के लिए होते हैं।

कई व्यंजन एक ही अंक के अंतर्गत आते हैं।

शब्दों से संख्या निकालने के लिए **अक्षरों को दाईं से बाईं ओर** पढ़ा जाता है।

उदाहरण:

"नग": ग = 3, न = 0 → संख्या = **03**

"कपि": प = 1, क = 1 → संख्या = **11**

1. **अंतिम व्यंजन**: जब व्यंजन एक-दूसरे के साथ उपयोग किए जाते हैं, तो अंतिम व्यंजन (जो स्वर से पहले होता है) संबंधित संख्या को पहचानने के लिए मुख्य अक्षर माना जाता है। यह नियम यह सुनिश्चित करता है कि शब्द का मूल्य उस अंतिम व्यंजन से प्राप्त किया जाए जो स्वर से पहले आता है, जिससे डिकोडिंग प्रक्रिया सरल हो जाती है।
2. **स्वतंत्र व्यंजन**: यदि कोई व्यंजन स्वर के बिना आता है, तो वह संख्यात्मक मूल्य में योगदान नहीं करता है। इसलिए, ऐसे व्यंजन संख्या-डिकोडिंग प्रक्रिया में नजरअंदाज कर दिए जाते हैं।
3. **संख्याओं को पढ़ना**: भूत-संख्या प्रणाली की तरह, कटपयादि प्रणाली में एन्कोड की गई संख्याओं को सामान्य स्थानीय मान क्रम में पढ़ा जाता है, जैसे इकाई, दहाई, सैंकड़ा आदि। उदाहरण के लिए, यदि एक संख्या का शब्द 6 (च) के लिए सैंकड़ों स्थान पर, 5 (म) के लिए दसों स्थान पर, और

Scanner by Droid-Veda

8 (द) के लिए इकाइयों के स्थान पर बनाया गया है, तो प्रदर्शित संख्या 658 होगी।

- **उपयोग**

कटपयादि प्रणाली का व्यापक उपयोग संस्कृत साहित्य में हुआ था, विशेष रूप से काव्य और स्मृति संदर्भों में। इसने विद्वानों को बड़ी संख्याओं या जटिल गणितीय अवधारणाओं को साहित्यिक कृतियों में एन्कोड करने का अवसर दिया, जिससे उन्हें याद रखना आसान हो गया या गुप्त रूप से छिपाना आसान हो गया। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध ग्रंथ "छंदशास्त्र" जिसमें संस्कृत काव्य की संरचना पर चर्चा की गई है, कटपयादि प्रणाली का उपयोग करके कुछ बड़ी संख्याओं और गणितीय सूत्रों को व्यक्त करता है।

इस प्रणाली की क्षमता संख्याओं को वर्णों के साथ जोड़ने के कारण, यह उन ग्रंथों को बनाने का आदर्श उपकरण बन गई, जहाँ भाषाई और गणितीय तत्वों दोनों को संरक्षित या याद रखना जरूरी था। ऐसे ग्रंथों में, विद्वान जटिल गणितीय या खगोलशास्त्रीय गणनाओं को स्मृति श्लोकों के रूप में एन्कोड कर सकते थे।

- **कटपयादि प्रणाली का उदाहरण**

इस प्रणाली को स्पष्ट करने के लिए, चलिए एक शब्द को कटपयादि नियमों का उपयोग करके डिकोड करते हैं। मान लीजिए हमारे पास **"राम"** शब्द है:

- व्यंजन र 2 से मेल खाता है।
- स्वर आ एक स्थानधारक को सूचित करता है, इसलिए यह संख्या पर प्रभाव नहीं डालता।
- व्यंजन म 5 से मेल खाता है।
- स्वर आ फिर से एक स्थानधारक है। इस प्रकार, "राम" शब्द द्वारा प्रतिनिधित्व की गई संख्या 52 होगी।

- **लाभ और लचीलापन**

कटपयादि प्रणाली का एक प्रमुख लाभ यह है कि यह बड़ी संख्याओं या यहां तक कि अधिक जटिल गणनाओं को एन्कोड करने में लचीलापन प्रदान करती है। इसने भाषा और संख्याओं को इस तरह से संयोजित किया जो आसानी से याद किया जा सकता था और जो प्राचीन भारत की सांस्कृतिक संदर्भ में गहरे रूप से एकीकृत था। इसके अलावा, यह प्रणाली केवल गणितीय ग्रंथों तक सीमित नहीं थी, बल्कि साहित्य में भी इसका

Scanner by Droid-Veda

उपयोग हुआ, जहाँ यह एक कोड और एक कलात्मक उपकरण दोनों के रूप में कार्य कर सकती थी। कटपयादि प्रणाली, भूत-संख्या प्रणाली के साथ मिलकर, प्राचीन भारतीय विद्वानों के उन्नत गणितीय विचार और रचनात्मक बुद्धिमत्ता का उदाहरण प्रस्तुत करती है, यह दर्शाती है कि गणित कैसे भाषा और संस्कृति के साथ सहज रूप से एकीकृत था। ये प्रणालियाँ भारत के गणितीय विचारों और विधियों के विकास में सांस्कृतिक और बौद्धिक योगदान को उजागर करती हैं, जिनका विश्व पर स्थायी प्रभाव पड़ा है।

6. प्राचीन भारतीय मापन प्रणाली

प्राचीन भारत में समय, दूरी और भार के मापन के लिए एक अत्यंत विकसित और संगठित प्रणाली विकसित की गई थी। यह प्रणाली न केवल वैज्ञानिक और गणितीय दृष्टि से समृद्ध थी, बल्कि व्यापार, वाणिज्य, आयुर्वेद और दैनंदिन जीवन में भी गहराई से जुड़ी हुई थी। विभिन्न प्राचीन ग्रंथों में इन मापों का उल्लेख मिलता है, जिनसे तत्कालीन भारतीय समाज की गहन वैज्ञानिक दृष्टि का बोध होता है।

1. भौतिक मापन में प्रयुक्त इकाइयाँ

प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य (भास्कर I) ने अपने ग्रंथ लीलावती में लंबाई, समय और द्रव्यमान के मापन की विविध इकाइयों का उल्लेख किया है। इन इकाइयों का प्रयोग व्यापार, वाणिज्य और खगोलशास्त्र सहित अनेक क्षेत्रों में होता था। उदाहरणस्वरूप, लीलावती में छोटी से छोटी इकाई जैसे "त्रसरेणु" (तीन परमाणुओं से बनी एक सूक्ष्म इकाई) का वर्णन मिलता है, जो यह दर्शाता है कि उस समय के मनीषियों ने अणु और सूक्ष्मतम मापन की अवधारणा विकसित कर ली थी।

2. अर्थशास्त्र में माप और मान

कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा रचित अर्थशास्त्र के द्वितीय पुस्तक के अध्याय 19 और 20 में मौर्यकालीन मापन प्रणाली का विशद विवरण मिलता है। इसमें लंबाई, समय और भार की मानकीकृत इकाइयाँ दी गई हैं, जिन्हें व्यापार और कर निर्धारण में प्रयुक्त किया जाता था। उदाहरण के लिए, 'दण्ड' (लगभग 6 फीट) एक लंबाई की इकाई थी, और 'पल' व 'तोला' जैसी इकाइयाँ भार मापन में प्रचलित थीं।

3. आयुर्वेद में माप की भूमिका

प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों में औषधियों के निर्माण में सामग्री की मात्रा का अत्यंत सूक्ष्मता

Scanner by Droid-Veda

से वर्णन किया गया है। जैसे - चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में द्रव और ठोस औषधियों के मापन हेतु इकाइयाँ जैसे 'रस', 'प्रस्थ', 'माना', 'कर्ष' (लगभग 12 ग्राम), और 'रत्ति' (लगभग 0.12 ग्राम) का प्रयोग मिलता है। यहाँ परमाणु की अवधारणा भी महत्वपूर्ण थी, जिससे सूक्ष्म मापन संभव होता था और औषधियों की शुद्धता सुनिश्चित की जाती थी।

4. विज्ञान और दैनिक जीवन में मापन का महत्व

प्राचीन मापन प्रणालियाँ केवल वैज्ञानिक ज्ञान तक सीमित नहीं थीं, बल्कि इनका प्रयोग दैनिक जीवन में भी होता था। समय मापन के लिए घटिका, पल, निमेष आदि इकाइयाँ थीं, जो खगोलीय गणनाओं और पंचांग निर्माण में उपयोग होती थीं। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में व्यावहारिक विज्ञान और सामाजिक जीवन में एक गहरा सामंजस्य था।

7. प्राचीन भारतीय शास्त्रों में विज्ञान: मापन की दृष्टि से

- **समय मापन (Time Measurements)**

प्राचीन भारत में समय को केवल व्यावहारिक नहीं बल्कि **दार्शनिक और ब्रह्माण्डीय** रूप से भी समझा गया था। समय की गणना पल भर से लेकर अरबों वर्षों तक की जाती थी।

1. कल्प (Kalpa) - ब्रह्मा का एक दिन

- **कल्प** ब्रह्मा के एक दिन के बराबर होता है, जिसकी अवधि **4.32 अरब वर्ष** (billion years) मानी जाती है।
- **संदर्भ**: *महाभारत*, शांति पर्व 358.56:

"सप्तपदं महात्मनं कालं ब्रह्मा स्वयम्भुवा।"

भावार्थ: यह श्लोक ब्रह्मा के दिन (कल्प) को दर्शाता है, जो सृष्टि और प्रलय के चक्र का आधार है।

(Source:Srinivasan, S. (1979). Mensuration in Ancient India. Delhi: Ajanta Publications.)

2. मुहूर्त (Muhurta)

- एक दिन का 30वां भाग - लगभग **48 मिनट**।
- इसका उपयोग विशेष पूजा और यज्ञ आदि के लिए **शुभ मुहूर्त** तय करने में होता था।

Scanner by Droid-Veda

- **संदर्भ**: ऋग्वेद, 10.191.4:

"मूर्तिः प्रीतिः सुतं व्रजेयुः मुहूर्ते संप्रजापते।"

भावार्थ: यह श्लोक दर्शाता है कि **मुहूर्त** को पवित्र कर्मों के लिए कितना महत्व दिया गया था।

3. आर्यभट्ट द्वारा खगोलीय समय मापन

- **आर्यभट्ट** ने सौर वर्ष, नाक्षत्र दिवस, और ग्रहों की गति को मापने की गणनाएँ कीं।
- **संदर्भ**: *आर्यभटीय*, अध्याय 2, श्लोक 6:

"अर्धमासो दशगुणं तु यत्र सूर्येण समं यमः।"

भावार्थ: आर्यभट्ट यहां सूर्य की गति और समय के बीच के संबंध को दर्शाते हैं। यह **खगोलशास्त्र** की उन्नत सोच का प्रमाण है।

प्रमुख समय इकाइयों का क्रम

क्रम	इकाई	व्याख्या
1	त्रुटि (Truti)	सबसे सूक्ष्म समय इकाई — लगभग 1/33750 सेकंड
2	वेधा (Vedha)	100 त्रुटि = 1 वेधा
3	लव (Lava)	3 वेधा = 1 लव
4	निमेष (Nimeṣa)	3 लव = 1 निमेष
5	क्षण (Kṣaṇa)	5 निमेष = 1 क्षण
6	1 कला	= 1/30 मुहूर्त (96 सेकंड)
7	1 नाड़ी	≈ 24 मिनट (अर्थात 60 नाड़ी × 24 मिनट = 1440 मिनट = 24 घंटे)
8	मुहूर्त	लगभग 48 मिनट = 1 मुहूर्त

संदर्भ: (विष्णु पुराण, सूर्य सिद्धांत, ब्रह्माण्ड पुराण, मनुस्मृति, Kim Plofker – Mathematics in India, Time Measurement in Ancient India – Balagangadhara Rao)

• लंबाई, आयतन और भार मापन

लंबाई मापन (Length Measurements)

1. अंगुल (Angula)

- एक **अंगुल** का अर्थ होता है - एक उंगली की चौड़ाई (लगभग 1.9 से 2 से.मी.)

Scanner by Droid-Veda

- इसका उपयोग वास्तु, मूर्तिकला और शिल्पकला में किया जाता था।
- **संदर्भ**: विश्वकर्मा संहिता:

"अङ्गुलं रूपं जपेत्।"

भावार्थ: अंगुल को रूपरेखा निर्धारण के लिए एक मापक के रूप में उपयोग किया गया है।

2. हस्त (Hasta)

- **हस्त** = कुहनी से मध्यमा (middle finger) तक की दूरी (~ 18 इंच या 45 से.मी.)
- **संदर्भ**: *वास्तु शास्त्र*:

"हस्तस्य एकं यथार्थं चत्वारि"

भावार्थ: निर्माण कार्यों में अनुपात मापने के लिए हस्त को मुख्य इकाई माना गया।

3. योजन (Yojana)

- एक योजन = लगभग 12.8 से 15 किमी तक (माना जाता है)
- इसका उपयोग लंबी दूरी जैसे नगरों, राज्यों, या खगोलीय दूरी को मापने में किया गया।
- **संदर्भ**: *हनुमान चालीसा*, चौपाई:

"जुग सहस्त्र योजन पर भानु।
लील्यो ताहि मधुर फल जानू।।"

भावार्थ: हनुमानजी सूर्य को 12000 × 1000 योजन दूर से एक फल समझकर निगलने को दौड़े।

गणना करें: 12000 × 1000 × 12.8 किमी = **15.36 करोड़ किमी**,

जो आज के वैज्ञानिक अनुमान (149.6 मिलियन किमी) से **बहुत नज़दीक** है।

- **भार मापन (Weight Measurements)**

1. रत्ती (Ratti)

- रत्ती का उपयोग रत्नों और औषधियों के मापन में होता था।
- **1 रत्ती ≈ 0.11-0.18 ग्राम**

2. माष (Masha) और पल (Pala)

- 1 माष ≈ 8 रत्ती
- पल, यव, गुंजाबीज आदि भी भर मापन में इस्तेमाल किए जाते थे
- **संदर्भ:** अर्थशास्त्र, 2.16:

"पालं पद्धतिमूलं च।"

भावार्थ: व्यापार और कर निर्धारण में मापन की **मानकीकृत इकाइयाँ** (standard units) प्रयोग की जाती थीं।

- **आयतन मापन (Volume Measurements)**
  - **कूप (Kupa)** ≈ 4.5 लीटर (तरल या अन्न के लिए)
  - **घटि (Ghati)** ≈ 0.9 लीटर (सूखे पदार्थों के लिए)
  - **प्रस्थ (Prasth)** ≈ 4 कुडव

- **वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण**

श्लोक/पद	वैज्ञानिक संकेत
कल्प (महाभारत)	अरबों वर्षों की अवधारणा → आधुनिक ब्रह्माण्डीय समय से मेल
मुहूर्त (ऋग्वेद)	48 मिनट की सटीक समय इकाई → अनुष्ठानों का गणितीय निर्धारण
आर्यभटीय	पृथ्वी और सूर्य की गति की गणना → खगोलीय सटीकता
हनुमान चालीसा	पृथ्वी-सूर्य दूरी का वर्णन → 15 करोड़ किमी के करीब
अर्थशास्त्र	मानकीकृत वजन माप → आर्थिक संगठन और व्यापार की उन्नति

प्राचीन भारत की मापन प्रणालियाँ न केवल व्यापार और वास्तु के लिए थीं, बल्कि उनका गहरा संबंध **खगोलशास्त्र**, **दर्शन**, और **धार्मिक जीवन** से था। ग्रंथ जैसे *महाभारत*, *ऋग्वेद*, *अर्थशास्त्र*, *हनुमान चालीसा*, और *आर्यभटीय* इन प्रणालियों की **गंभीर वैज्ञानिक समझ** को दर्शाते हैं।

ये प्रणालियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन भारतीय ऋषि और गणितज्ञ **भौतिक और ब्रह्मांडीय दोनों स्तरों पर** जगत की गहराई से गणना कर सकते थे।

Scanner by Droid-Veda

8. व्यापार, वाणिज्य और विज्ञान पर प्रभाव

समय, लंबाई और वजन के मापों का मानकीकरण प्राचीन भारतीय समाज के संचालन के लिए महत्वपूर्ण था, विशेष रूप से व्यापार और वाणिज्य में। इस प्रणाली ने एकरूपता सुनिश्चित की, जिससे विशाल दूरी में वाणिज्यिक लेन-देन करना आसान हुआ। इसके अतिरिक्त, समय, दूरी और वजन के सटीक माप ने खगोलशास्त्र, चिकित्सा और धातु विज्ञान जैसे वैज्ञानिक प्रयासों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अंत में, प्राचीन भारतीय माप प्रणालियाँ, विशेष रूप से परमाणु के सिद्धांत, प्राचीन विद्वानों के पास उपलब्ध गणितीय और वैज्ञानिक ज्ञान को उजागर करती हैं। ये प्रणालियाँ विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यक थीं, जैसे व्यापार, वाणिज्य, आयुर्वेद और खगोलशास्त्र, जो भारत की बौद्धिक धरोहर की गहराई को दर्शाती हैं।

9. पिंगल के छन्द:शास्त्र और उनके गणितीय योगदान

1. छन्दशास्त्र और मात्राओं का वर्गीकरण

पिंगल का छन्द:शास्त्र संस्कृत छन्दशास्त्र पर सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है, जिसने काव्य में छंदबद्धता के नियमों का उद्भव किया। इस ग्रंथ में उन्होंने मात्राओं को दो मुख्य प्रकारों में वर्गीकृत किया:

- **लघु (Short Syllable):** कोई भी मात्रास्पद अक्षर जिसमें ह्रस्व स्वर हो, जैसे "क" जिसमें "अ" स्वर लघु होता है, उसे लघु माना गया।
- **गुरु (Long Syllable):** गुरु मात्राएँ निम्न परिस्थितियों में होती हैं:
  - » दीर्घ स्वर के साथ मात्रापद, जैसे "का" (जहां "आ" दीर्घ स्वर है)।
  - » लघु मात्रापद के बाद संयुक्त व्यंजन आने पर, जैसे "क्र", "स्क"।
  - » लघु मात्रापद के बाद अनुस्वार (ं) या विसर्ग (:) आने पर।
  - » छंद के अंतिम पद के हिसाब से कुछ विशिष्ट मामलों में अंतिम मात्रापद गुरु माना जाता है।

लघु और गुरु मात्राएँ ध्वनि की अवधि के आधार पर छन्द के निर्माण में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और ये संस्कृत काव्य के छंदों को परिभाषित करती हैं।

2. पिंगल द्वारा प्रस्तुत गणितीय विचार

(a) छन्दों की सम्भावित मात्राओं का सम्पूर्ण संयोजन (Combinatorics)

पिंगल ने निश्चित संख्या (n) के मात्राओं के संयोजनों की सूची बनाने के लिए नियम

विकसित किए। उन्होंने गणित की उस क्षेत्र-संयोजन गणित (Combinatorics)-में गुणात्मक योगदान दिया, जहां सभी संभव लघु और गुरु मात्राओं के संयोजन (जैसे छंद के लिए सम्भावित ताल) की व्याख्या होती है।

उदाहरण स्वरूप, n = 3 के लिए सभी समभावित संयोजन हैं:

ग-ग-ग, ग-ग-ल, ग-ल-ग, ल-ग-ग, ग-ल-ल, ल-ग-ल, ल-ल-ग, ल-ल-ल।

(b) प्रारंभिक बाइनरी प्रणाली (Binary System) का रूपांतरण

पिंगल के मात्राक्रम संयोजन और उनके विस्तार की प्रक्रिया को आधुनिक भाष में एक प्रारंभिक बाइनरी व्यवस्था के रूप में देखा जाता है, जहां लघु और गुरु मात्राएँ (0 और 1 के समान) संख्याओं के प्रतिनिधित्व में काम आती हैं।

- पिंगल की प्रणाली में स्थानमूल्य दाएं से बाएं बढ़ता है, जो आधुनिक बाइनरी संख्या प्रणाली से विपरीत है।
- उन्होंने 0 और 1 के स्पष्ट अंक अर्थ नहीं दिए, पर उनके उपयोग से बाइनरी संयोजन की समझ स्पष्ट है।

(c) अन्य गणितीय तत्व

- **द्विपद गुणांक (Binomial Coefficients) और पास्कल त्रिभुज (Pascal's Triangle):** पिंगल का प्रकारों का विस्तार गणितीय रूप में द्विपद गुणांक की संरचना जैसा कार्य करता है, जो बाद में पास्कल त्रिभुज के नाम से प्रसिद्ध हुआ।
- **फिबोनाच्ची श्रंखला (Fibonacci Sequence):** पिंगल के मात्रामेरु में कुछ गणनाओं में फिबोनाच्ची संख्याओं के समान क्रम उभरता है।

9.1 गणितीय सिद्धांत और पिंगल का प्रभाव

पिंगल को द्वैतीयक संख्याओं (बाइनरी नंबर सिस्टम) का पहला ज्ञात उपयोगकर्ता माना जाता है, क्योंकि उन्होंने छन्दःशास्त्र में लघु और गुरु मात्राओं के संयोजनों को संख्यात्मक रूप में परिवर्तित करने का प्रारंभिक तरीका प्रस्तुत किया। इन मात्राओं के संयोजन को आधुनिक बाइनरी प्रणाली (0 और 1) से संरचनात्मक रूप से जोड़ा जा सकता है, हालांकि पिंगल ने स्वयं 0 और 1 के अंक का प्रत्यक्ष उपयोग नहीं किया। उनके द्वैतीयक संयोजन के अध्ययन ने संयोजनात्मक गणित और permutations के सिद्धांतों की नींव रखी, जो गणित की एक प्रमुख शाखा है।

Scanner by Droid-Veda

9.2 पिंगल की धरोहर और आधुनिक गणित पर प्रभाव

पिंगल का कार्य न केवल संस्कृत छन्दशास्त्र में क्रांतिकारी था, बल्कि उनके गणितीय विचारों ने गणित के महत्वपूर्ण क्षेत्रों, जैसे संयोजनात्मक गणित, शून्य के औपचारिककरण और द्वैतीयक प्रणाली के विकास में भी गहरा प्रभाव डाला। उनकी प्रणाली और सिद्धांतों ने आधुनिक कंप्यूटिंग, सूचना सिद्धांत और गणित के अन्य शाखाओं के विकास में बुनियादी मार्ग प्रशस्त किया। संक्षेप में, पिंगल का कार्य गणित और साहित्य का एक प्रारंभिक सम्मिलन था, जिसमें उनके द्वैतीयक संख्या सिद्धांत और संयोजनात्मक गणित ने दोनों ही क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी इस विरासत से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में गणितीय सोच अत्यंत उन्नत थी, जिसने आधुनिक विज्ञान और तकनीकी प्रगति को अझभूत रूप से प्रभावित किया।

10. निष्कर्ष

गणित, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सार्वभौमिक भाषा, प्राचीन सभ्यताओं में गहराई से निहित है। इनमें, भारत ने संख्या प्रणाली और मापन इकाइयों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसने आधुनिक वैज्ञानिक सोच को गहराई से प्रभावित किया है। यह पुस्तक संख्यात्मक प्रणालियों की रोचक यात्रा, शून्य की उत्पत्ति और प्राचीन भारत में विकसित परिष्कृत मापन तकनीकों पर प्रकाश डालती है, जो उनके ऐतिहासिक महत्व और समकालीन गणित तथा संबद्ध विषयों पर उनके गहरे प्रभाव को दर्शाती है।

संख्या प्रणाली, जो भारत की सबसे उल्लेखनीय बौद्धिक देनों में से एक है, सामान्य युग (Common Era) से बहुत पहले ही विकसित हो चुकी थी। इसका प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप से आगे बढ़कर 8वीं शताब्दी ईस्वी में अरब विद्वानों तक पहुँचा और फिर 11वीं शताब्दी ईस्वी तक पश्चिमी देशों में फैल गया। दाशमिक (दशमलव) प्रणाली, स्थानीय मान (प्लेस वैल्यू) की अवधारणा और गणितीय तत्व के रूप में शून्य का आविष्कार, भारत की महत्त्वपूर्ण देन हैं, जिन्होंने अंकगणित और बीजगणित में जटिल गणनाओं को संभव बनाया। यह पुस्तक इन प्रगतियों का गहन अन्वेषण प्रस्तुत करती है, जिसे ऐतिहासिक प्रमाणों, अभिलेखों और प्राचीन पांडुलिपियों के समर्थन से समझाया गया है।

भास्कर द्वितीय और ब्रह्मगुप्त जैसे महान गणितज्ञों के कार्यों का विश्लेषण करके यह पुस्तक यह दर्शाती है कि उनकी नवाचारपूर्ण खोजों ने आधुनिक संख्यात्मक विधियों

Scanner by Droid-Veda

की नींव कैसे रखी। यह ग्रंथ इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि इन गणितीय सिद्धांतों को खगोल विज्ञान, वास्तुकला और वाणिज्य जैसे विविध क्षेत्रों में कैसे लागू किया गया। इसके अतिरिक्त, यह पुस्तक प्राचीन भारत में विकसित संख्यात्मक निरूपण की अनूठी विधियों को प्रस्तुत करती है, जैसे भूतसंख्या और कटपयादि प्रणाली, जिनमें संख्याओं को भाषाई और काव्यात्मक अभिव्यक्तियों के साथ जोड़ा गया था। ऐसे बहु-विषयक दृष्टिकोण गणित और संस्कृति के बीच बौद्धिक समन्वय को दर्शाते हैं, जिससे भारतीय विद्वानों की बहुआयामी सोच और सृजनात्मकता झलकती है।

संख्याओं से परे, यह पुस्तक प्राचीन भारतीय मापन प्रणालियों को भी विस्तृत रूप से समझाती है, जो समय, दूरी और भार के लिए उपयोग की जाती थीं। यह व्यापार, अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) और वैज्ञानिक गणनाओं में इन प्रणालियों की भूमिका को दर्शाती है, जिससे प्राचीन भारतीय सभ्यताओं द्वारा प्राप्त सटीकता और मानकीकरण (स्टैंडर्डाइज़ेशन) उजागर होता है।

इसके अतिरिक्त, पुस्तक पिंगलाचार्य के संयोजनात्मक गणित (कम्बिनेटोरियल मैथमैटिक्स) और द्विआधारी प्रणाली (बाइनरी सिस्टम) में योगदान की भी व्याख्या करती है, यह दर्शाते हुए कि प्राचीन गणितीय चिंतन आज भी आधुनिक संगणना (कंप्यूटिंग) और सूचना सिद्धांत (इन्फॉर्मेशन थ्योरी) को प्रभावित कर रहा है। इन ऐतिहासिक प्रगतियों का विश्लेषण करके, यह पुस्तक अतीत और वर्तमान के बीच एक सेतु का निर्माण करती है, यह दर्शाते हुए कि प्राचीन भारतीय गणितीय सिद्धांत आज के तकनीकी परिदृश्य में कितने प्रासंगिक हैं। यह विद्वानों, छात्रों और गणित-प्रेमियों को भारत की गणितीय विरासत की गहराई और उसके वैज्ञानिक जगत में स्थायी प्रभाव को सराहने के लिए प्रेरित करने का प्रयास करती है।

हमें आशा है कि यह पुस्तक गणितीय चिंतन के विकास और उसके विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर गहरे प्रभाव को समझने के इच्छुक पाठकों के लिए एक मूल्यवान संसाधन सिद्ध होगी। इन मौलिक अवधारणाओं को समझकर, पाठक उन बौद्धिक परंपराओं की अधिक सराहना कर सकते हैं, जिन्होंने आधुनिक गणित को आकार दिया है और आज भी हमारे ज्ञान को प्रभावित कर रही हैं।

Scanner by Droid-Veda

अनुशंसित पठन सामग्री

1. Rao, Ganti Prasada. *The Indian Number System: At the Center of the Mathematical World*. BS Publications, 2023. ISBN: 9789395038416.
2. Singh, Bal Ram, et al. *Science and Technology in Ancient Indian Texts*. D.K. Printworld (P) Ltd., 2012. ISBN: 9788124606322.
3. Bhanu Murthy, T.S. *Modern Introduction to Ancient Indian Mathematics*. New Age International, 2009. ISBN: 9788122426007.
4. Dahiya, Poonam Dalal. *Ancient and Medieval India*. McGraw Hill Education, 2017. ISBN: 9789352603459.
5. Van Nooten, B. "Binary Numbers in Indian Antiquity." *Journal of Indian Philosophy*, vol. 21, 1993, pp. 31–50. DOI: 10.1007/BF01092744.
6. Chaubey, Pratiksha, Dwivedi, Astha, and Roy, Rajni. "Ancient Indian Time Counting: An Analytical Study." *International Journal for Research in Applied Science and Engineering Technology (IJRASET)*, 2025. ISSN: 2321-9653. DOI: 10.22214/ijraset.2025.67185.
7. Prinsep, James. "British Indian Weights and Measures." In *Essays on Indian Antiquities*, Cambridge University Press, 2013. DOI: 10.1017/CBO9781139507257.011.
8. Gupta, S.V. *Units of Measurement: Past, Present and Future*. Springer, 2012. ISBN: 9783642261534.
9. Desai, D.N. *Indian Mathematics: An Introduction*. Tata McGraw-Hill Education, 2017. ISBN: 9780071329769.
10. Sarma, K.K. *Mathematics in Ancient India*. Springer, 2010. ISBN: 9783642104595.
11. Gupta, M.K. *History of Indian Mathematics*. Cosmo Publications, 2005. ISBN: 9788177555102.

Scanner by Droid-Veda

12. Kapoor, S. and R.S. *Mathematical Concepts in Ancient Indian Texts*. Shree Publishers, 2009. ISBN: 9789380027104.

13. Dhavalikar, M.K. "Measurement Systems in Ancient India." *Studies in Ancient Indian Science and Technology*, vol. 12, 1995, pp. 134–140. ISSN: 0970-0857.

14. Katiyar, M. "Exploring the Bhūta-saṃkhyā System in Ancient Indian Mathematics." *Indian Journal of Historical Studies*, vol. 14, no. 2, 2012, pp. 45-62. DOI: 10.1080/21585399.2012.730004.

15. Varma, S. and Shukla, K. *Historical and Conceptual Development of Zero in Indian Mathematics*. Springer, 2018. ISBN: 9789811070586.

16. Sivaramakrishnan, N. *The Concept of Paramāṇu in Vedic Texts and Its Relevance to Modern Physics*. Motilal Banarsidass Publishers, 2010. ISBN: 9788120814103.

17. Narayan, V. *The Scientific Thought of Ancient Indian Mathematicians*. Aryan Books International, 2009. ISBN: 9788187586671.

18. Biswas, S. "Piṅgala's Influence on Binary Code: An Analytical Approach." *International Journal of Modern Mathematical Physics*, vol. 6, no. 4, 2021, pp. 251-263. DOI: 10.1142/S1793962321500299.

19. Sharma, R. *The Mathematical Legacy of Piṅgala and Its Impact on Computer Science*. CRC Press, 2015. ISBN: 9781482250341.

20. Mookerjee, A. *Chandaḥ-śāstra and Its Mathematical Contributions*. Asian Studies Centre, 1996. ISBN: 9780951809302.

21. Agrawal, N. and Patel, M. *Mathematical Insights from Ancient Indian Astronomy*. Springer, 2020. ISBN: 9783030303149.

22. Goswami, K. "Piṅgala's Chandaḥ-śāstra and Binary Numbers." *Mathematics of the Vedas*, vol. 12, no. 1, 2019, pp. 55–72. DOI: 10.1007/s41159-019-00032-2.

23. Jha, R.P. *Time and Measurement in Vedic Literature*. Asian Research Publishing, 2018. ISBN: 9788189671303.

24. Reddy, S. "Piṅgala and the Binary System: Revisiting Ancient Indian Mathematical Thought." *Proceedings of the International Conference on Mathematics*, 2017, pp. 125–136. DOI: 10.1109/ICMATH.2017.174.

Scanner by Droid-Veda

25. Bhattacharya, A. *The Mathematical Roots of Ancient Indian Algorithms*. Springer, 2012. ISBN: 9783642262432.

26. Patnaik, A. *Science and Spirituality in the Ancient Indian Texts*. Oxford University Press, 2011. ISBN: 9780195696160.

27. Sharma, P. *The Legacy of Piṅgala: Binary Numbers in Ancient Indian Context*. Cambridge University Press, 2019. ISBN: 9781108471204.

28. Patel, R. "Exploring the Kaṭapayādi System and Its Applications." *Indian Journal of Mathematical History*, vol. 9, no. 4, 2014, pp. 28–39. DOI: 10.1080/21585929.2014.917625.

Scanner by Droid-Veda

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारतीय गणित प्रणाली किस पर आधारित थी ?

   A) रोमन प्रणाली

   B) द्वैध प्रणाली

   C) स्थान मान प्रणाली

   D) ग्रीक प्रणाली

2. 'शून्य' की खोज किसने की थी ?

   A) वराहमिहिर

   B) आर्यभट

   C) ब्रह्मगुप्त

   D) भास्कराचार्य

3. 'लीलावती' किसने लिखी थी ?

   A) आर्यभट

   B) नागार्जुन

   C) भास्कराचार्य

   D) वराहमिहिर

4. किसने 'सिद्धांत शिरोमणि' की रचना की थी ?

   A) आर्यभट

   B) पिंगल

   C) ब्रह्मगुप्त

   D) भास्कराचार्य-II

Scanner by Droid-Veda

5. "शून्य' के साथ जोड़ने और गुणा करने के गणितीय नियम सर्वप्रथम किस ग्रंथ में वर्णित हैं?

A) सिद्धांत शिरोमणि
B) ब्रह्मस्फुटसिद्धांत
C) आर्यभटीय
D) लीलावती

6. निम्न में से कौन सी इकाई लंबाई की पारंपरिक इकाई नहीं है?

A) हस्त
B) यव
C) अंगुल
D) कोस

7. "रत्ती" इकाई किसका माप है?

A) समय
B) लंबाई
C) क्षेत्रफल
D) भार

8. भारत में प्राचीन समय मापन प्रणाली में निम्न में से कौन शामिल था?

A) निमेष
B) क्षण
C) मुहूर्त
D) उपरोक्त सभी

9. 'प्रस्थ' किस प्रकार की मापन इकाई है?

A) लंबाई
B) आयतन
C) समय
D) क्षेत्रफल

10. निम्न में से कौन दशमलव प्रणाली का एक उदाहरण है?

A) 1.25

B) 3/4

C) 100/8

D) 2x

11. "तोला" किससे संबंधित है?

A) क्षेत्रफल

B) भार

C) समय

D) लंबाई

12. भारत में समय मापन की सबसे छोटी इकाई क्या मानी जाती थी?

A) निमेष

B) यव

C) त्रुटि

D) मुहूर्त

13. एक "दंड" में लगभग कितने "अंगुल" होते थे?

A) 8

B) 12

C) 96

D) 108

14. "हस्त" और "दंड" किस प्रकार की मापन इकाइयाँ हैं?

A) आयतन

B) भार

C) लंबाई

D) समय

15. 1 मुहूर्त लगभग कितने मिनट का होता है?

A) 30

B) 48

C) 60

D) 24

16. "गुंजा" किसके लिए उपयोग होती थी?

A) बीज आधारित भार मापन

B) क्षेत्रफल मापन

C) समय मापन

D) लंबाई मापन

17. "नाड़ी" किसका मापन करती थी?

A) वजन

B) लय

C) समय

D) आयतन

18. भारतीय गणित में "त्रुटि" किसका संकेत करती है?

A) त्रुटिपूर्ण उत्तर

B) समय की एक सूक्ष्म इकाई

C) भार में अशुद्धि

D) क्षेत्र की भिन्नता

19. "प्रमाण" किस सन्दर्भ में प्रयोग होता था?

A) प्रमाणिकता

B) तर्क

C) आयतन

D) लंबाई

20. "यव" किस प्रकार की मापन इकाई है?

A) लंबाई

B) समय

C) भार

D) क्षेत्रफल

21. "श्रद्धा सूत्र" किस विषय से संबंधित हैं?

A) खगोल

B) यज्ञ विधि

C) व्याकरण

D) संगीत

22. निम्न में से कौन वैदिक यज्ञों में प्रयुक्त मापन इकाई नहीं है?

A) अंगुल

B) हस्त

C) दंड

D) लीटर

23. "शतमान" शब्द किससे संबंधित है?

A) समय

B) भार

C) मुद्रा

D) क्षेत्रफल

24. किस ग्रंथ में लंबाई मापन की चर्चा है?

A) पाणिनि सूत्र

B) चरक संहिता

C) योगसूत्र

D) शुल्ब सूत्र

Scanner by Droid-Veda

25. एक "हस्त" में कितने अंगुल होते हैं?

A) 24

B) 12

C) 18

D) 16

26. प्राचीन गणना प्रणाली में "त्रैराशिक" नियम था:

A) केवल वैदिक यज्ञ के लिए

B) व्यापारी प्रयोजनों हेतु

C) अनुपात समाधान के लिए

D) काल गणना हेतु

27. वैदिक समय मापन के अनुसार, एक दिन में कितने "नाड़ी" होते थे?

A) 15

B) 30

C) 60

D) 24

28. "कोश" से क्या मापा जाता था?

A) दूरी

B) आयतन

C) भार

D) समय

29. "दण्ड" किससे संबंधित है?

A) वेद

B) मंत्र

C) समय

D) लंबाई

30. भारतीय प्रणाली में "कला" से क्या मापा जाता था?

A) क्षेत्रफल

B) आयतन

C) समय

D) भार

31. किस मापन इकाई का उपयोग कालगणना में नहीं होता था?

A) निमेष

B) प्रस्थ

C) क्षण

D) कला

32. "शर" शब्द का प्रयोग किस क्षेत्र में होता था?

A) कृषि

B) ज्यामिति

C) अर्थशास्त्र

D) भूगोल

33. "दंड" और "योजन" में संबंध है:

A) दूरी

B) समय

C) भार

D) क्षेत्रफल

34. "योजन" का परंपरागत मान है लगभग:

A) 2-4 किमी

B) 8-12 किमी

C) 18 किमी

D) 100 किमी

Scanner by Droid-Veda

35. "अंगुल" की तुलना किसमें होती थी ?

A) समय

B) शक्ति

C) लंबाई

D) सूक्ष्मता

36. "त्रुटि" की गणना होती थी:

A) दूरी के रूप में

B) भार के रूप में

C) समय के रूप में

D) कोई नहीं

37. "क्षेत्रफल" मापने में प्रयुक्त प्राचीन इकाई:

A) कोस

B) तोला

C) बीघा

D) हस्त

38. किस भारतीय ग्रंथ में आयतन मापन वर्णित है ?

A) योग सूत्र

B) शुल्ब सूत्र

C) अर्थशास्त्र

D) नाट्य शास्त्र

39. "अनुपात" संबंधित है:

A) त्रैराशिक

B) त्रिकोणमिति

C) कलन

D) रेखा

40. "श्रुति" और "स्मृति" किससे संबंधित हैं?

A) मापन

B) ज्यामिति

C) वेदिक ग्रंथ

D) गणना

41. "यव" की तुलना होती थी:

A) रत्ती

B) गुंजा

C) पल

D) माषा

42. "प्रमाण" का एक और अर्थ होता है:

A) संख्या

B) प्रमाणिकता

C) मापन

D) शक्ति

43. "काल" की गणना होती थी:

A) त्रुटियों में

B) दूरी में

C) बीघा में

D) कोई नहीं

44. "वृष" शब्द किस प्रकार की इकाई है?

A) गति

B) द्रव्यमान

C) भार

D) आयतन

45. "नाड़ी" की एक इकाई कितने मिनट की होती है?

A) 2 मिनट

B) 4 मिनट

C) 24 मिनट

D) 48 मिनट

46. "दंड" किससे मापा जाता था?

A) ऋतुओं से

B) शरीर के हिस्सों से

C) आकाशीय दूरी से

D) कंठ से

47. किस काल गणना प्रणाली में "नाड़ी", "विघटि" और "विकल्प" आते हैं?

A) यूनानी

B) वैदिक

C) मिश्र

D) आधुनिक

48. एक दिन में कितने "विघटि" होते थे?

A) 144

B) 360

C) 900

D) 60

49. प्राचीन भारतीय मापन में "यव" का मान किससे संबंधित था?

A) सिक्के से

B) बीज से

C) गंध से

D) पानी से

50. "अंगुल" से बड़ी इकाई है:

A) यव

B) गुंजा

C) हस्त

D) तोला

51. "पल" की अवधि कितनी होती है?

A) 4 सेकंड

B) 24 सेकंड

C) 1 मिनट

D) 2 मिनट

52. प्राचीन भारत में क्षेत्रफल मापन की पारंपरिक इकाई क्या थी?

A) कोस

B) बीघा

C) रत्ती

D) नाड़ी

53. "अंगुल" और "हस्त" के बीच क्या संबंध है?

A) 1 हस्त = 8 अंगुल

B) 1 हस्त = 16 अंगुल

C) 1 हस्त = 24 अंगुल

D) 1 हस्त = 12 अंगुल

54. एक "योजन" कितनी दूरी के बराबर होता है?

A) लगभग 4 किमी

B) लगभग 12 किमी

C) लगभग 16 किमी

D) लगभग 18 किमी

Scanner by Droid-Veda

55. "प्रमाण" शब्द का उपयोग प्राचीन भारत में किस सन्दर्भ में होता था?

A) आयतन नापने के लिए

B) वाद-विवाद के लिए

C) लंबाई मापन के लिए

D) समय गणना के लिए

56. "गुंजा" किसका मापन करती थी?

A) समय

B) आयतन

C) भार

D) दूरी

57. निम्न में से कौन सी भार की इकाई नहीं है?

A) माषा

B) तोला

C) यव

D) दंड

58. "नाड़ी" किस गणना प्रणाली से संबंधित है?

A) वैदिक

B) यूनानी

C) मिश्र

D) आधुनिक

59. "त्रैराशिक" नियम से क्या हल किया जाता है?

A) रेखाएं

B) अनुपात

C) त्रिकोण

D) गति

60. "बीघा" से क्या मापा जाता है?

A) वजन

B) समय

C) दूरी

D) भूमि क्षेत्र

61. वैदिक गणना में "कला" का क्या अर्थ है?

A) समय की इकाई

B) ज्यामिति की संज्ञा

C) लंबाई की इकाई

D) क्षेत्रफल

62. "प्रस्थ" किसका मापन है?

A) समय

B) वजन

C) आयतन

D) दूरी

63. एक दिन में कुल कितने "मुहूर्त" होते हैं?

A) 15

B) 30

C) 45

D) 60

64. "अवस्थापन" शब्द किससे संबंधित है?

A) आयाम

B) ज्यामिति

C) समय

D) खगोल

Scanner by Droid-Veda

65. "शतमान" किसका प्रतीक है?

A) मुद्रा

B) आयतन

C) समय

D) लंबाई

66. "यव" का एक अन्य नाम क्या था?

A) रत्ती

B) गुंजा

C) पल

D) माषा

67. "नाड़ी" कितने "विघटि" में विभाजित होती है?

A) 60

B) 30

C) 24

D) 15

68. "दण्ड" और "हस्त" का अनुपात क्या है?

A) 1 दंड = 4 हस्त

B) 1 दंड = 6 हस्त

C) 1 दंड = 8 हस्त

D) 1 दंड = 2 हस्त

69. "तोला" में कितने रत्ती होते हैं?

A) 8

B) 10

C) 12

D) 96

70. "कोश" की दूरी लगभग कितनी थी?

A) 1.5 किमी

B) 2.25 किमी

C) 3.5 किमी

D) 8 किमी

71. "त्रुटि" और "निमेष" किससे संबंधित हैं?

A) भार

B) समय

C) क्षेत्रफल

D) मुद्रा

72. "शुल्ब सूत्र" किस विषय पर हैं?

A) भूगोल

B) खगोल

C) ज्यामिति

D) समय

73. "माषा" किसका मापन है?

A) समय

B) दूरी

C) भार

D) क्षेत्र

74. "रत्ती" बीज का उपयोग किस माप के लिए किया जाता था?

A) आयतन

B) क्षेत्रफल

C) भार

D) लंबाई

Scanner by Droid-Veda

75. "तोला" का पारंपरिक मान लगभग कितना होता है?

A) 11.66 ग्राम

B) 9.32 ग्राम

C) 10 ग्राम

D) 12 ग्राम

76. प्राचीन भारतीय अंक प्रणाली थी:

A) वर्ण आधारित

B) स्थान मान आधारित

C) रोमन जैसी

D) द्वैध

77. "भुजा" और "कोटि" शब्दों का उपयोग होता है:

A) तर्कशास्त्र में

B) बीजगणित में

C) त्रिकोणमिति में

D) व्याकरण में

78. "शून्यवाद" या शून्य का दार्शनिक आधार किसने दिया?

A) आर्यभट

B) नागार्जुन

C) पाणिनि

D) आपस्तम्ब

79. प्राचीन भारत में मापन प्रणाली का विकास हुआ:

A) प्रयोगात्मक तरीकों से

B) ग्रीक प्रभाव से

C) अनुष्ठानिक और व्यावहारिक आवश्यकताओं से

D) यादृच्छिक तरीकों से

80. संस्कृत शब्द "पाद:" किसका माप था ?

A) भार

B) आयतन

C) लंबाई

D) समय

81. भारतीय गणित में "भाग" का अर्थ होता है:

A) औसत

B) अंश / फ्रैक्शन

C) गुणनफल

D) शेष

82. "हस्त" इकाई आधारित थी:

A) हथेली की चौड़ाई पर

B) बांह की लंबाई पर

C) उंगली की गाँठ पर

D) कदम की लंबाई पर

83. वैदिक यज्ञों में मापन का उद्देश्य था:

A) समय निर्धारण

B) मंत्रों की लय

C) वेदी निर्माण

D) मुंडन

84. "पल" को छोटे भागों में बाँटा गया:

A) हस्त

B) तोला

C) अंगुल

D) यव

Scanner by Droid-Veda

85. "अंगुल" आगे विभाजित होता था:

A) गुंजा

B) यव

C) व्रीहि

D) त्रुटि

86. किस प्राचीन ग्रंथ में क्षेत्रफल व आयतन के उदाहरण दिए गए हैं?

A) चरक संहिता

B) शुल्ब सूत्र

C) योग वशिष्ठ

D) अर्थशास्त्र

87. "त्रिराशि" नियम किससे संबंधित है?

A) बीजगणित

B) अनुपात

C) ज्यामिति

D) कलन

88. "निमेष" का अर्थ था:

A) पलक झपकने का समय

B) आधा सेकंड

C) एक सेकंड

D) 10 सेकंड

89. भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान में समय मापा जाता था:

A) दिनों में

B) वर्षों में

C) महायुगों में

D) सेकंड में

Scanner by Droid-Veda

90. प्राचीन खगोलज्ञों ने दिन को विभाजित किया:

A) 10 मुहुर्त में

B) 15 मुहुर्त में

C) 30 मुहुर्त में

D) 60 मुहुर्त में

91. वेदी निर्माण में ज्यामिति आधारित थी:

A) प्रयोग

B) शुल्ब सूत्रों से निर्धारित नियम

C) मिस्री मॉडल

D) अनुमान

92. एक "प्रस्थ" में कितने "कुडव" होते हैं?

A) 2

B) 4

C) 6

D) 8

93. इनमें से कौन भार माप नहीं है?

A) रत्ती

B) यव

C) हस्त

D) तोला

94. "लीलावती" किसकी रचना है?

A) आर्यभट

B) भास्कर द्वितीय

C) ब्रह्मगुप्त

D) वराहमिहिर

Scanner by Droid-Veda

95. "कोस" किसका माप है?

A) लंबाई

B) समय

C) क्षेत्रफल

D) भार

96. "व्यास" संबंधित है:

A) ज्यामिति और व्यास से

B) ध्वनि

C) श्वास

D) कदम

97. "बीघा" नामक क्षेत्रफल इकाई किस आधार पर बदलती थी?

A) लिपि

B) शासक

C) क्षेत्र

D) धर्म

98. वैदिक ब्रह्मांड विज्ञान में "कल्प" होता है:

A) देवताओं का दिन

B) एक महीना

C) एक जीवन चक्र

D) आधा युग

99. श्वास या समय की प्राचीन इकाई है:

A) निमेष

B) प्राण

C) त्रुटि

D) यव

100. भारत में दशमलव प्रणाली ने सरल किया:

A) कविता लेखन

B) मुद्रा विनिमय

C) लम्बी गणनाएं

D) वास्तुकला

Scanner by Droid-Veda

उत्तरदर्शिका

Q.	Ans.	Q.	Ans.	Q.	Ans.	Q.	Ans.
1	C	26	C	51	B	76	B
2	C	27	C	52	B	77	C
3	C	28	A	53	C	78	B
4	D	29	D	54	B	79	C
5	B	30	C	55	A	80	C
6	B	31	B	56	C	81	B
7	D	32	B	57	D	82	B
8	D	33	A	58	A	83	C
9	B	34	B	59	B	84	D
10	A	35	C	60	D	85	B
11	B	36	C	61	A	86	B
12	C	37	C	62	C	87	B
13	C	38	B	63	B	88	A
14	C	39	A	64	D	89	C
15	B	40	C	65	A	90	C
16	A	41	A	66	A	91	B
17	C	42	C	67	B	92	B
18	B	43	A	68	A	93	C
19	C	44	C	69	D	94	B
20	C	45	C	70	C	95	A
21	B	46	B	71	B	96	A
22	D	47	B	72	C	97	C
23	C	48	C	73	C	98	A
24	D	49	B	74	C	99	B
25	A	50	C	75	A	100	C

It is clear how much we owe to this brilliant civilization, and not only in the field of arithmetic; by opening the way to the generalization of the concept of the number, the Indian scholars enabled the rapid development of mathematics and exact sciences. The discoveries of these men doubtless required much time and imagination, and above all a great ability for abstract thinking. These major discoveries took place within an environment which was at once mystical, philosophical, religious, cosmological, mythological and metaphysical.

Source: The Universal History of Numbers - by Georges Ifrah

* * * * * *



Georges Ifrah

Eminent French author and historian of mathematics. He was a mathematics teacher In his early days and had undertaken in-depth studied and researches. His world-accamiled book 'From One to Zero: A Universal History of Numbers' have been translated into many languages and became International bestsellers. This landmark book has also been incorporated in American Scientist's list of 100 or so books that shaped a century of science.

पुस्तक के विषय में

"*संख्या और मान: भारतीय विमर्श*" यह पुस्तक प्राचीन भारत की गणित और मापन की बौद्धिक परंपरा की एक गहन यात्रा को प्रस्तुत करती है। इसमें भारतीय अंक प्रणाली के विकास, शून्य की अवधारणा, स्थानीय मान प्रणाली, तथा दशमलव पद्धति पर विस्तार से चर्चा की गई है। भूत-संख्या प्रणाली और कटपयादी पद्धति जैसे विशिष्ट भारतीय तरीकों को उनकी भाषिक रचनात्मकता और व्यावहारिक उपयोगिता के साथ समझाया गया है। साथ ही, यह पुस्तक समय, दूरी, भार और आयतन के प्राचीन मापन मानकों, परमाणु की अवधारणा, और आयुर्वेदिक ग्रंथों में वर्णित मापन प्रणालियों को भी उजागर करता है। पिंगल के छंदशास्त्र, बाइनरी प्रणाली, और De Bruijn अनुक्रम जैसे विषयों के माध्यम से यह पुस्तक प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच एक सेतु का कार्य करती है। यह विद्यार्थियों, शिक्षकों, और शोधकर्ताओं के लिए भारत की गणितीय और मापन संबंधी धरोहर को समझने का एक मूल्यवान स्रोत है।

सहयोग से :



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-21-5
9 789349 531215

Bharat BoudhIKS

खंड-4

भारतीय आरोग्य ज्ञान

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान



भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे काममरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251
E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg
http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

Scanner by Droid-Veda

भारतीय आरोग्य ज्ञान

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक मंच से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वतापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूद स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **भारतीय आरोग्य ज्ञान**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. मीनाक्षी शर्मा

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-06-2

मूल्य : 210/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,

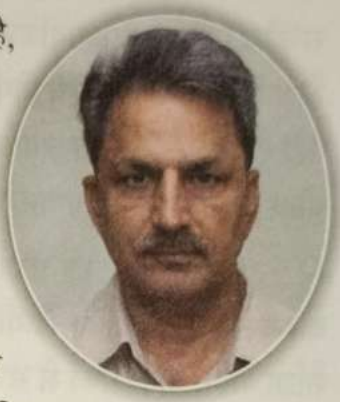

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

Scanner by Droid-Veda

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

Scanner by Droid-Veda

विषय सूची

प्रस्तावना	9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1. भूमिका	11
2. मानव प्रयत्नों का मूलाधार – स्वास्थ्य	13
3. वैयक्तिक स्वास्थ्य की अवधारणा – कालातीत बौद्धिक दृष्टि	14
4. आयुर्वेद की शाश्वत प्रासंगिकता	15
5. आयुर्वेद की उत्पत्ति और ग्रंथ परंपरा	16
6. आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा	18
7. स्वास्थ्य के लिए व्यक्तिगत दृष्टिकोण	19
8. रोग : आंतरिक समरसता का विघटन	19
9. आयुर्वेद और आधुनिक दृष्टिकोण	20
10. स्वास्थ्य के शारीरिक पहलू	20
11. अग्नि की भूमिका	22
12. सात धातु	26
13. स्वास्थ्य एवं त्रिदोषों की गति-विधि	28
14. वात की भूमिका	31
15. रोग-निदान एवं चिकित्सा की आयुर्वेदिक दृष्टि	33
16. स्वास्थ्य में नींद और आहार का महत्व	35
17. आयुर्वेद में रोग प्रबंधन	37
18. पारंपरिक आयुर्वेदिक आरोग्य विधियाँ	39
19. योग: स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के लिए एक जीवनशैली	40
20. निष्कर्ष	44
सुझावात्मक पठनीय सामग्री	46
बहुविकल्पीय प्रश्न	48
उत्तर दर्शिका	67

"Indian philosophy shows the relationship between mind and matter. Mind as seen in Indian philosophy enables one to describe subjective reality or the process of decision making as a wave function in terms of quantum physics"

(Source: Vedanta, Dharma, and Science by Pandharinatha Prabhu)

* * * *



Brian David Josephson

(January 4, 1940)

Born in Wales, Josephson is a theoretical physicist and professor Emeritus of physics at the University of Cambridge. He was awarded the Nobel Prize in physics in 1973 for his prediction of the Josephson Effect. His pioneering work on Superconductivity and Quantum Tunnelling gave him widespread recognition. In the early 1970's he took up transcendental meditation, developed by Maharishi Mahesh Yogi and started exploring the relationship between Quantum Mechanics and Consciousness.

प्रस्तावना

सुख और समग्र कल्याण की खोज मानव जीवन का अभिन्न अंग रही है। प्राचीन भारतीय दर्शन ने इस यात्रा को पुरुषार्थों – धर्म (धार्मिकता), अर्थ (समृद्धि), काम (सुख), और मोक्ष (मोक्ष) के माध्यम से संरचित किया है, जहाँ उत्तम स्वास्थ्य इन लक्ष्यों की प्राप्ति में मूलभूत भूमिका निभाता है। आयुर्वेद, जो भारत की पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली है, स्वास्थ्य को समग्र दृष्टिकोण से देखता है, व्यक्ति की विशिष्टता को स्वीकार करता है तथा शरीर, मन और आत्मा के मध्य संतुलन को प्रोत्साहित करता है।

चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे शास्त्रों की प्राचीन ज्ञान-परंपरा में निहित, आयुर्वेद स्वास्थ्य को जैविक ऊर्जाओं (दोषों), जठराग्नि (अग्नि), शारीरिक धातुओं (धातु) तथा मानसिक संतुलन के सम्यक सामंजस्य के रूप में परिभाषित करता है। वैशेषिक और सांख्य दर्शनों से प्रभावित होकर, यह मानव शरीर-विज्ञान और चेतना के व्यापक परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करता है।

यह पुस्तक आयुर्वेद के प्रमुख सिद्धांतों का गहन अन्वेषण करता है, जिसमें वात, पित्त और कफ – तीनों दोषों की व्याख्या तथा इनके जीवन-ऊर्जा पर प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। साथ ही, मानसिक स्वास्थ्य के प्रति आयुर्वेद के समग्र दृष्टिकोण को भी उजागर किया गया है, जो आधुनिक समग्र स्वास्थ्य-चिंतन से प्रतिध्वनित होता है। प्राचीन ज्ञान और समकालीन चिकित्सीय अंतर्दृष्टियों को आपस में जोड़ते हुए, यह पुस्तक पाठकों को स्थायी कल्याण की प्राप्ति में आयुर्वेद की भूमिका की गहरी समझ प्रदान करने का प्रयास करती है।

Scanner by Droid-Veda

"In Indian spiritualism, in our everyday meditation, we try to realize God's cosmic manifestation and thus free our soul from the bondage of the limitedness of the immediate; but for us he is also an individual for the individual, working out through our evolution in time, our ultimate destiny."

* * * *



Rabindranath Tagore
(1861-1941)

Great philosopher, writer, poet and artist; received the Nobel prize in literature in 1913. Highly inspired by Upanishads and works of the greatest Sanskrit poet, Kalidas. His philosophical writings inspired Albert Einstein, Werner Heisenberg, W. Butler Yeats, Ezra Pound, Robert Bridges, Ernest Rhys, Thomas Sturge Moore. He also penned down the National anthems of two countries - India and Bangladesh.

Scanner by Droid-Veda

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

Scanner by Droid-Veda

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

Scanner by Droid-Veda

भारतीय आरोग्य ज्ञान

1. भूमिका

यह पुस्तक आयुर्वेद और योग के समन्वय को एक पूरक मार्ग के रूप में प्रस्तुत करती है, जो स्वास्थ्य और कल्याण प्राप्त करने के लिए प्राचीन भारतीय दर्शन की दृष्टि से आधुनिक स्वास्थ्य चुनौतियों का समग्र समाधान प्रदान करता है। पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की अवधारणा में निहित यह दृष्टिकोण शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक कल्याण के गहरे संबंध को महत्व देता है। आयुर्वेद के अनुसार स्वास्थ्य केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं, अपितु जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक अनिवार्य तत्व है। आयुर्वेद में त्रिदोष (वात, पित्त, कफ), जठराग्नि तथा सप्त धातुओं के संतुलन को मानव शरीर की एक गतिशील एवं परस्पर-निर्भर प्रणाली के रूप में समझाया गया है। यह दृष्टिकोण आधुनिक चिकित्सा की एकरूप विधियों के विपरीत, प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति (प्रकृति) तथा बाह्य परिस्थितियों के अनुसार व्यक्तिगत स्वास्थ्य पद्धतियाँ प्रदान करता है। त्रिदोष शरीर की क्रियाओं एवं मानसिक अवस्थाओं को नियंत्रित करते हैं, तथा इनमें असंतुलन के कारण शारीरिक लक्षणों के साथ-साथ मानसिक विकार भी उत्पन्न हो सकते हैं। आहार, दिनचर्या एवं उपचारों को किसी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार ढालकर, आयुर्वेद एक ऐसा उपचार-पथ प्रदान करता है जो प्राकृतिक लय के अनुकूल होता है।

आयुर्वेद में प्राकृतिक वेगों के नियमन – जैसे निद्रा, आहार, एवं संयम – को स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक माना गया है। रात्रि की निद्रा को उत्तम और पुनर्योजनकारी माना गया है, जबकि दिन में केवल ग्रीष्मकाल में ही विश्राम (दिवा-निद्रा) वात दोष के संतुलन हेतु अनुशंसित है। अधिक निद्रा कफ और पित्त दोष को बढ़ा सकती है। निद्रा विकारों जैसे अनिद्रा हेतु आयुर्वेद में तैलमर्दन, शांतिप्रद भोजन एवं शांति-युक्त वातावरण को लाभकारी बताया गया है, जबकि अधिक अथवा अनुचित समय की निद्रा के लिए उपवास, व्यायाम एवं सतर्क जीवन-शैली अपनाने की सलाह दी

Scanner by Droid-Veda

जाती है। आयुर्वेद में रोग-निदान एवं उपचार एक सामूहिक प्रक्रिया है जिसमें चिकित्सक, औषधि, रोगी तथा परिचारक की सहभागिता आवश्यक मानी गई है। नाड़ी-परीक्षण, मूत्र और मल-परीक्षण जैसे निदान पद्धतियाँ केवल लक्षणों को नहीं, बल्कि रोग के मूल कारण को जानने में सहायक होती हैं। आयुर्वेद इस बात पर विशेष बल देता है कि आहार, निद्रा एवं जीवन-शैली, व्यक्ति की प्रकृति एवं वर्तमान दोषों के असंतुलन के अनुसार विन्यस्त हों, जिससे समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव हो सके।

आयुर्वेद में उपचार की विधियाँ अनेक प्रकार की होती हैं, जिनमें औषधीय वनस्पतियों का प्रयोग, पंचकर्म जैसे विषहरण (डिटॉक्स) प्रक्रियाएँ, तथा मर्म बिंदुओं की मालिश जैसी शारीरिक चिकित्साएँ सम्मिलित हैं। पंचकर्म एक व्यापक विषहरण पद्धति है, जिसमें पूर्व-उपचार, शुद्धिकरण तथा पुनर्स्थापन की चरणबद्ध प्रक्रिया के माध्यम से शरीर से दोषों का निष्कासन कर संतुलन स्थापित किया जाता है। स्वास्थ्य बनाए रखने हेतु शुद्ध जल का सेवन, ताजा भोजन का प्रयोग, और उचित पाचन की महत्ता को भी विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। ये सभी विधियाँ इस बात को दर्शाती हैं कि आयुर्वेद केवल लक्षणों के उपचार तक सीमित न रहकर रोगों के मूल कारणों को समाप्त करने में विश्वास करता है। आयुर्वेद के साथ-साथ यह अध्याय योग को भी संतुलन प्राप्त करने की एक अनिवार्य साधना के रूप में प्रस्तुत करता है। योग, केवल शारीरिक आसनों तक सीमित नहीं है, अपितु मानसिक और आध्यात्मिक अनुशासन को भी समाहित करता है, जिससे यह एक समग्र जीवन-दृष्टि बन जाता है। पतञ्जलि के योगसूत्र नैतिक आचरण, मानसिक नियंत्रण तथा आत्मबोध की दिशा में मार्गदर्शन देते हैं, जिसे अष्टाङ्ग योग के आठ अंगों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। आसन (शारीरिक मुद्राएँ), प्राणायाम (श्वास नियंत्रण) तथा ध्यान जैसी क्रियाएँ न केवल शरीर को स्वस्थ बनाती हैं, बल्कि मानसिक तनाव को कम करने, भावनात्मक संतुलन को विकसित करने, तथा मानसिक स्पष्टता को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होती हैं। योग जीवन के तनावों की जड़ों को स्पर्श कर आत्मचिंतन व आत्मबल को विकसित करता है। आधुनिक जीवन की तीव्र गति एवं तनावपूर्ण परिवेश में योग, भावनात्मक दृढ़ता, शारीरिक ऊर्जा और आध्यात्मिक उन्नति का एक रूपांतरणकारी साधन प्रदान करता है। सजगता (माइंडफुलनेस) एवं आत्म-जागरूकता की योगिक विधियाँ व्यक्ति को तनाव को बेहतर ढंग से सँभालने में समर्थ बनाती हैं, जिससे योग एक समग्र और प्रभावशाली स्वास्थ्य उपकरण बन जाता है। योग की समग्र दृष्टि – शरीर, मन और आत्मा की एकता – आयुर्वेद के सिद्धांतों को पूरक बनाती है, जिससे व्यक्ति संतुलन, उद्देश्य और संतुष्टि के साथ जीवन जी सकता है।

Scanner by Droid-Veda

अंततः, यह अध्याय आयुर्वेद और योग को आपस में जुड़े हुए ऐसे पद्धति-समुच्चय के रूप में प्रस्तुत करता है, जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक – सभी स्तरों पर स्वास्थ्य की पूर्णता को लक्ष्य बनाते हैं। आयुर्वेद की ज्ञानसंपदा और योग की रूपांतरणकारी साधनाओं को एकीकृत कर, व्यक्ति एक ऐसा जीवन जी सकता है जो संतुलित, आनन्दमय और कल्याणकारी हो। आज जब जीवनशैली में असंतुलन, तनाव और अव्यवस्था सामान्य हो गए हैं, तब ये प्राचीन शिक्षाएँ आधुनिक स्वास्थ्य प्रणाली को दिशा देने वाली अमूल्य प्रेरणा बन सकती हैं। यह समग्र दृष्टिकोण हमें यह स्मरण कराता है कि स्वास्थ्य केवल शरीर तक सीमित नहीं है, अपितु मन और आत्मा को भी समाहित करता है, और हमें एक अधिक सामंजस्यपूर्ण एवं पूर्ण जीवन की ओर अग्रसर करता है।

2. मानव प्रयत्नों का मूलाधार – स्वास्थ्य

भारतीय दर्शन की महान परंपरा में आनन्द – अर्थात् सुख और पूर्णता की प्राप्ति – को कभी भी स्वास्थ्य से पृथक नहीं माना गया। प्रारंभिक वैदिक ऋचाओं से लेकर आयुर्वेद के ग्रंथों तक, भारत के ऋषियों ने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि एक स्वस्थ शरीर और मन ही सभी मानवीय प्रयत्नों की अनिवार्य नींव हैं। पुरुषार्थों – अर्थात् जीवन के चार प्रमुख प्रयोजन – का सिद्धांत इस समरसता को भलीभांति दर्शाता है:

- धर्म (नैतिक आचरण, कर्तव्य और धर्माचरण)
- अर्थ (धन, समृद्धि और आर्थिक कल्याण)
- काम (इच्छाओं की पूर्ति एवं भावनात्मक संतोष)
- मोक्ष (सांसारिक बंधनों से मुक्ति)

यदि शरीर और मन स्वस्थ न हो (आरोग्य न हो), तो इनमें से कोई भी प्रयोजन पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता। जैसा कि महान आयुर्वेदाचार्य चरक ने चरक संहिता (सूत्रस्थान 1.15) में कहा है–

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।"

(धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन सभी का सर्वोत्तम मूलाधार आरोग्य है।)

यह सनातन सत्य इस बात को रेखांकित करता है कि स्वास्थ्य केवल रोगों की अनुपस्थिति नहीं, अपितु एक ऐसा संतुलित एवं समरस अस्तित्व है, जो जीवन के प्रत्येक पक्ष की पूर्ति के लिए आवश्यक है।

Scanner by Droid-Veda

3. वैयक्तिक स्वास्थ्य की अवधारणा – कालातीत बौद्धिक दृष्टि

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, विशेषतः ऐलोपैथी, में स्वास्थ्य को प्रायः कुछ औसत भौतिक मापदण्डों द्वारा परिभाषित किया जाता है – जैसे सामान्य रक्तचाप, आदर्श वजन, नाड़ीगति, कोलेस्ट्रॉल इत्यादि। ये मानक उपयोगी अवश्य हैं, किंतु वे उस मूल सत्य की उपेक्षा करते हैं जिसे प्राचीन भारतीय मनीषियों ने गहराई से जाना था – कि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है।

आयुर्वेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की एक विशिष्ट प्रकृति होती है, जो तीन मूलभूत जैविक शक्तियों – वात, पित्त और कफ – के समन्वय से निर्मित होती है। यह व्यक्तिगत स्वास्थ्य-दृष्टिकोण चरक संहिता (सूत्रस्थान 1.57) के निम्नलिखित श्लोक में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है:

"वायुपित्तकफाः दोषाः शरीरस्थाः प्रधारिणः।"

(वायु, पित्त और कफ – ये तीन दोष शरीर में विद्यमान मुख्य नियंत्रक तत्व हैं।)

यह सिद्धांत इस बात को प्रतिपादित करता है कि वास्तविक स्वास्थ्य वह है जो व्यक्ति की प्रकृति के अनुरूप संतुलन में स्थित हो – और यही आयुर्वेद की कालातीत और विशिष्ट बौद्धिक देन है।

इसका तात्पर्य यह है कि जो एक व्यक्ति के लिए हितकारी है, वही दूसरे के लिए हानिकारक भी हो सकता है – यह दर्शन आज की आधुनिक व्यक्तिगत और जीनोमिक्स की अवधारणाओं से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय मनीषा में विद्यमान था।

> व्यक्तिगत चिकित्सा के बारे में विश्व की सर्वप्रथम लिखित अवधारणायें पश्चिम से नहीं, अपितु भारत के आयुर्वेदिक ग्रंथों से प्राप्त होती हैं, जो लगभग 1000 ईसा पूर्व रचित हुए थे। हिप्पोक्रेटीस ने काफी बाद में इस विषय पर प्राचीन यूनान में अपने विचार प्रस्तुत किए।

भारतीय ज्ञान परंपरा ने सदा से शरीर और मन (मनस्) को अविभाज्य माना है। यजुर्वेद में कहा गया है:

"मनसि शुद्धे सुकृतं भवति।"

(जब मन शुद्ध होता है, तभी शुभ कर्म संभव होता है।) – यजुर्वेद 34.1

Scanner by Droid-Veda

इस प्रकार, मानसिक कल्याण को दोषों के संतुलन और समग्र स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य माना गया है।

चिंता, शोक और भय जैसे मानसिक विकारों को रोग के प्रमुख कारणों में गिना गया है, जैसा कि चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में विस्तारपूर्वक वर्णित है।

तालिका: आधुनिक भ्रांतियाँ बनाम प्राचीन दृष्टि : मात्राओं से परे स्वास्थ्य की संकल्पना

पहलू	आधुनिक (एलोपैथिक) दृष्टिकोण	प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण
स्वास्थ्य की परिभाषा	रोग की अनुपस्थिति, सामान्य मापदण्ड (बी.पी., बी.एम.आई.)	शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक संतुलन की सकारात्मक अवस्था
व्यक्तिगत भिन्नता	न्यून ध्यान	मूलभूत सिद्धांत (प्रकृति-आधारित निदान)
शरीर-मन का संबंध	उभरती हुई अवधारणा	रोग एवं स्वास्थ्य की समझ का केंद्रीय आधार
रोग-निवारक दृष्टिकोण	द्वितीयक (टीकाकरण, जाँच आदि)	प्राथमिक (दिनचर्या, आहार, योग, ध्यान)
अंतिम लक्ष्य	जीवनरक्षा एवं दीर्घायु	शुद्धि, सामंजस्य एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष

4. आयुर्वेद की शाश्वत प्रासंगिकता

"समग्र स्वास्थ्य" या **"व्यक्तिगत चिकित्सा"** जैसे शब्द प्रचलन में आने से हजारों वर्ष पूर्व, भारत के ऋषियों – चरक, सुश्रुत, तथा वेदों के प्रणेताओं – ने पहले ही एक ऐसी व्यापक स्वास्थ्य-दृष्टि को प्रतिपादित कर दिया था, जो प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्टता और शरीर, मन तथा आत्मा की अभिन्न एकता पर आधारित थी।

"स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं, आतुरस्य विकार प्रशमनं च।"

(स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगी के विकारों का शमन करना ही आयुर्वेद का उद्देश्य है।)

– सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 1.16

Scanner by Droid-Veda

यह मूल सिद्धांत प्राचीन काल की भाँति आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है, जितना तब था।



पुरुषार्थों का सिद्धांत-जीवन के चार मौलिक उद्देश्य

5. आयुर्वेद की उत्पत्ति और ग्रंथ परंपरा

आयुर्वेद की जड़ें चारों वेदों में निहित हैं, और इसके सिद्धांतों को विस्तारपूर्वक जिन प्रमुख ग्रंथों में प्रतिपादित किया गया है, वे हैं – चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, एवं अष्टाङ्ग हृदयम्। इन मूल ग्रंथों के पूरक रूप में समयान्तर में माधव निदान, शार्ङ्गधर संहिता, तथा भावप्रकाश निघण्टु जैसे ग्रंथों की रचना हुई, जिन्हें सामूहिक रूप से "लघु त्रयी" कहा जाता है।

ये सभी ग्रंथ स्वास्थ्य, रोग-निदान, शरीर-रचना (शरीर-शास्त्र), शरीर क्रिया (स्वस्थवृत्त), तथा औषधीय वनस्पतियों आदि पर विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करते हैं, और इस प्रकार स्वास्थ्य की रक्षा एवं रोगों के उपचार के लिए एक समग्र दिशासूचक की भूमिका निभाते हैं।

Scanner by Droid-Veda

तालिका: बृहत् त्रयी एवं अन्य आयुर्वेदिक प्राचीन ग्रंथ

ग्रंथ	प्रणेता	मुख्य क्षेत्र	प्रमुख विषयवस्तु	विशिष्टताएँ / तथ्य
चरक संहिता	महर्षि चरक (दृढबल द्वारा परिष्कृत)	कायचिकित्सा (आन्तरिक चिकित्सा)	रोगों के कारण, लक्षण, निदान एवं चिकित्सा सिद्धांत	रोग-निवारण, चिकित्सक के आचार और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रथम विस्तृत विवेचन
सुश्रुत संहिता	महर्षि सुश्रुत	शल्यतंत्र (शल्य चिकित्सा)	300 से अधिक शल्य क्रियाएँ, 120 शल्य उपकरण, विस्तृत शल्यविधियाँ	विश्व का प्राचीनतम शल्य-ग्रंथ; पाश्चात्य शल्यचिकित्सा से सहस्राब्दियों पूर्व की रचना
अष्टाङ्ग हृदयम्	वाग्भट	चरक व सुश्रुत का समन्वित ग्रंथ	आयुर्वेद के आठ अंग – कायचिकित्सा, शल्य, बालरोग, रसायन आदि	संक्षिप्त एवं व्यावहारिक रूप में चरक व सुश्रुत की शिक्षाओं का संश्लेष
माधव निदान	माधवकर	रोग निदान (रोगनिदान तंत्र)	रोगों के कारण, लक्षण एवं विभेदात्मक निदान	मध्यकालीन महत्वपूर्ण निदान-ग्रंथ; रोगों की पहचान में व्यापक रूप से प्रयुक्त
भेल संहिता	महर्षि भेल	सामान्य आयुर्वेद	चरक संहिता से समान चर्चाएँ; कुछ विशिष्ट उपचार सिद्धांत	संभवतः चरक संहिता से भी प्राचीन; दक्षिण भारत में खंडित पाण्डुलिपियाँ प्राप्त
कश्यप संहिता	महर्षि कश्यप	कौमारभृत्य (बालरोग) एवं स्त्रीरोग	बाल-पालन, प्रसूति, मातृ स्वास्थ्य, दुग्धपान, शिशु रोग	बाल व स्त्री स्वास्थ्य पर केंद्रित विशिष्ट प्राचीन ग्रंथ

Scanner by Droid-Veda

5.1 दार्शनिक आधार

आयुर्वेद की बौद्धिक नींव प्राचीन भारतीय दर्शन की दो प्रमुख दर्शनों – वैशेषिक एवं सांख्य – पर आधारित है। सांख्य दर्शन के अनुसार, 24 तत्त्वों की प्रणाली द्वारा मानव शरीर तथा मन की संरचना को समझा जाता है, जो शरीर रचना (शरीरशास्त्र) और मनोविज्ञान की आयुर्वेदिक अवधारणाओं का मूल आधार प्रदान करता है। दूसरी ओर, वैशेषिक दर्शन संपूर्ण जगत को छह या नौ पदार्थों (पदार्थों) की श्रेणियों में वर्गीकृत करता है, जिनमें चेतन (चेतन द्रव्य) एवं अचेतन (अचेतन द्रव्य) दोनों प्रकार के तत्त्व सम्मिलित हैं। ये दार्शनिक सिद्धांत आयुर्वेदाचार्यों को प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट प्रकृति के अनुसार रोगों के निदान एवं उपचार की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, जिससे चिकित्सा एक समग्र, व्यक्तिनिष्ठ और संतुलित स्वरूप ग्रहण करती है।

6. आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा

आयुर्वेद स्वास्थ्य की एक समग्र एवं व्यापक परिभाषा प्रस्तुत करता है। प्राचीन आचार्य सुश्रुत के अनुसार–

समदोषः समाग्निश्च समधातु-मलक्रियाः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 15.41)

"पूर्ण स्वास्थ्य वह स्थिति है, जहाँ दोष (वात, पित्त, कफ), जठराग्नि, धातु एवं मल की क्रियाएँ संतुलित हों, तथा आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न अवस्था में स्थित हों।"

इस परिभाषा में स्वास्थ्य के दो प्रमुख पहलू वर्णित हैं–

1. **शारीरिक संतुलन:** स्वास्थ्य तब प्राप्त होता है जब तीन जैविक द्रव्य (दोष), पाचन अग्नि, शरीर की ऊतक (धातु), और मल (वेस्ट उत्पाद) संतुलन में होते हैं।

2. **मानसिक और आत्मिक सामंजस्य:** वास्तविक स्वास्थ्य के लिए मन (मानस), इंद्रियों (इंद्रिय) में स्पष्टता, और आत्मा (आत्मन) से संबंध में संतोष की स्थिति भी आवश्यक है।

यह दृष्टिकोण शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक कल्याण के एकीकरण पर बल देता है, जिससे यह पश्चिमी स्वास्थ्य की प्रारंभिक परिभाषाओं से कहीं अधिक व्यापक है, जो केवल शरीर की कार्यक्षमता पर केंद्रित थीं।

Scanner by Droid-Veda

7. स्वास्थ्य के लिए व्यक्तिगत दृष्टिकोण

आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों में जहाँ रक्तचाप, नाड़ी गति आदि सामान्य मापदण्डों पर स्वास्थ्य का मूल्यांकन किया जाता है, वहीं आयुर्वेद प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य को एक विशिष्ट एवं व्यक्तिगत अवस्था के रूप में देखता है। यह प्राचीन विज्ञान व्यक्ति की जन्मजात प्रकृति, दैनिक आचार-व्यवहार, आहार, एवं पर्यावरणीय परिस्थितियों को स्वास्थ्य निर्धारण में अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है। इस वैयक्तिक दृष्टिकोण का मूल आधार है त्रिदोष सिद्धांत, जिसमें तीन दोष – वात (वायु व आकाश से सम्बद्ध), पित्त (अग्नि व जल से सम्बद्ध), एवं कफ (जल व पृथ्वी से सम्बद्ध) – शरीर की संरचना एवं उसकी कार्यप्रणाली को नियंत्रित करते हैं। जब इन दोषों में असंतुलन या विकृति उत्पन्न होती है, तभी रोग उत्पन्न होता है। अतः आयुर्वेद में उपचार का लक्ष्य इन दोषों के संतुलन की पुनः स्थापना होता है, जो ऐसे गुणों वाले पदार्थों या चिकित्सा-पद्धतियों द्वारा किया जाता है, जो असंतुलन उत्पन्न करने वाले दोष के विपरीत गुणधर्म वाले हों। उदाहरणस्वरूप, यदि वात दोष की अधिकता हो जाती है – जिससे शरीर में रूक्षता (शुष्कता) और शीतलता बढ़ जाती है – तो उपचार में स्निग्ध (तेलयुक्त) एवं उष्ण (गर्म) गुणों वाले उपाय अपनाए जाते हैं, ताकि दोष का संतुलन स्थापित हो सके।

जैसा कि चरक संहिता में कहा गया है:

"वायुपित्तकफाः दोषाः शरीरस्थाः प्रधारणाः।"

(वायु, पित्त और कफ – ये दोष शरीर की संरचना और क्रियाशीलता के मूल आधार हैं।)

– चरक संहिता, सूत्रस्थान 1.57

[स्रोत: शर्मा, आर. के., एवं डैश, बी. (2003). चरक संहिता (खंड 1–4), वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत सीरीज़.]

8. रोग : आंतरिक समरसता का विघटन

आयुर्वेद के अनुसार, रोग (विकार) शरीर पर बाहरी आक्रमण की भाँति अचानक नहीं होता, बल्कि यह शरीर में विद्यमान त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) के बीच विद्यमान प्राकृतिक साम्य (संतुलन) के बिगड़ने का परिणाम होता है। जब यह संतुलन अयुक्त आहार (अनुचित भोजन), विहार (जीवनशैली), मानसिक भावनाएँ (मनःस्थिति), अथवा काल (पर्यावरणीय परिवर्तन) के कारण नष्ट हो जाता है, तब रोग उत्पन्न होते हैं।

Scanner by Droid-Veda

उदाहरणस्वरूप, वात दोष की वृद्धि, जो स्वाभाविक रूप से रूक्ष (शुष्क) और शीतल गुणों से युक्त होता है, संधियों में पीड़ा, कब्ज़, अथवा चिंता जैसे विकार उत्पन्न कर सकता है। आयुर्वेद ऐसे दोषों को विपरीत गुणों (प्रतिलोम गुण) द्वारा संतुलित करने की पद्धति अपनाता है। जैसे – उष्ण (गर्म), स्निग्ध (तेलयुक्त), तथा स्थिरता देने वाले उपचार, जैसे तिल के तेल से अभ्यंग (मालिश), गर्म सूप आदि का प्रयोग किया जाता है।

[स्रोत: : Lad, V. (2002). Textbook of Ayurveda: Fundamental Principles (Vol. I). Albuquerque: The Ayurvedic Press].

9. आयुर्वेद और आधुनिक दृष्टिकोण

पश्चिमी चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य की परिभाषा परंपरागत रूप से शरीर की कार्यक्षमता पर केंद्रित रही है, तथा रोग की स्थिति में केवल शारीरिक सामान्यता की पुनः स्थापना को ही प्रमुख उद्देश्य माना गया। किन्तु वर्ष 1948 में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने स्वास्थ्य की परिभाषा को विस्तृत करते हुए इसमें मानसिक कल्याण को भी सम्मिलित किया, जो कि आयुर्वेद की सदियों पुरानी समग्र (समाहित) स्वास्थ्य-दृष्टि के अधिक समीप है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने आयुर्वेद को औपचारिक रूप से पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली के रूप में मान्यता दी है, और इसे राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों में सम्मिलित करने हेतु प्रोत्साहित किया है। इसके लिए WHO का वैश्विक पारंपरिक चिकित्सा केन्द्र वर्ष 2022 में भारत के जामनगर (गुजरात) में स्थापित किया गया।

WHO का कथन है–

"आयुर्वेद समग्र रूप से निवारक एवं चिकित्सीय उपाय प्रदान करता है, जो शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण को संबोधित करता है।"

10. स्वास्थ्य के शारीरिक पहलू

आयुर्वेद में मानव शरीर को केवल मांस और हड्डियों का संयोजन नहीं माना गया है, बल्कि उसे एक ऐसा जीवंत तंत्र माना गया है जो तीन मूल स्तंभों द्वारा संचालित होता है – धातु (उत्तक), दोष (जैविक ऊर्जा), एवं मल (अपशिष्ट पदार्थ)। इन तीनों का समुचित संतुलन शरीर की कार्यक्षमता और स्वास्थ्य को बनाए रखने में अत्यंत आवश्यक होता है। त्रिदोष – वात, पित्त और कफ, समस्त शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

Scanner by Droid-Veda



WHO Traditional Medicine Strategy 2014–2023

WHO पारंपरिक चिकित्सा हेतु वैश्विक केंद्र: वैश्विक स्वास्थ्य का एक नया अध्याय

अप्रैल 2022 में, विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने भारत सरकार के सहयोग से गुजरात के जामनगर में पारंपरिक चिकित्सा हेतु वैश्विक केंद्र की स्थापना की — जो पारंपरिक चिकित्सा विज्ञानों, विशेषतः आयुर्वेद की वैश्विक स्वीकृति की दिशा में एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। इस अद्वितीय केंद्र की आधारशिला भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी तथा WHO के महानिदेशक डॉ. टेड्रॉस अधानोम घेब्रेयेसुस द्वारा संयुक्त रूप से रखी गई। डॉ. टेड्रॉस ने आयुर्वेद एवं अन्य पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों की व्यापक संभावनाओं को स्वीकार किया, विशेषतः समग्र एवं सतत् स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र में बढ़ती वैश्विक माँग के संदर्भ में।

यह केंद्र पारंपरिक चिकित्सा अनुसंधान, नीतिनिर्माण एवं मानकीकरण हेतु एक अंतरराष्ट्रीय केंद्र के रूप में कार्य करेगा। इसका उद्देश्य प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच की दूरी को पाटना है। इसके अतिरिक्त, यह केंद्र वैश्विक नेतृत्व, नियामक ढाँचों का विकास, सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों में पारंपरिक चिकित्सा को एकीकृत करना, तथा पारंपरिक चिकित्सा ज्ञान के डिजिटल भंडार का निर्माण भी करेगा। जामनगर का चयन प्रतीकात्मक है, क्योंकि यह प्रतिष्ठित आयुर्वेद शिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (ITRA) का गृहस्थान है, जिससे यह और अधिक स्पष्ट होता है कि भारत इस अमूल्य विज्ञान का वैश्विक संरक्षक है।

स्रोत: विश्व स्वास्थ्य संगठन (2022)। भारत में WHO पारंपरिक चिकित्सा वैश्विक केंद्र का उद्घाटन। https://www.who.int
प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार (2022)। प्रधानमंत्री ने WHO-GCTM की आधारशिला रखी। https://pib.gov.in
आयुष मंत्रालय, भारत सरकार (2022)। WHO GCTM के बारे में। https://gctm.nhp.gov.in

Scanner by Droid-Veda

सप्त धातुएँ – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र, शरीर की संरचना को आधार प्रदान करती हैं और पोषण करती हैं। त्रिमल – मूत्र, पुरिष (विष्ठा), और स्वेद (पसीना) – इनका उचित निष्कासन आंतरिक शुद्धता बनाए रखने के लिए अनिवार्य माना गया है। इस प्रकार, आयुर्वेद शरीर को एक संतुलित, जीवंत एवं समग्र प्रणाली के रूप में देखता है, न कि केवल भौतिक घटकों के जोड़ के रूप में।

11. अग्नि की भूमिका

यद्यपि अग्नि को रूपक रूप में "अग्नि" अर्थात् ज्वाला कहा गया है, किंतु यह शरीर में कोई वास्तविक लौ नहीं है, बल्कि एक तरल स्वरूप में विद्यमान जैविक अग्नि है, जो विशेष रूप से पित्त दोष से संबंधित होती है। इसका मुख्य कार्य अन्न को पचाकर उसे जीवनोपयोगी तत्वों में रूपांतरित करना है। यदि आहार अल्प, असमय अथवा अशुद्ध हो, तो यह अग्नि दोषों (वात, पित्त, कफ), धातुओं (रस, रक्त आदि), एवं अंततः शरीर की प्राणशक्ति को ही भस्म करने लगती है, जिससे शरीर में असंतुलन उत्पन्न होता है और रोग जन्म लेते हैं। अतः, अग्नि का संतुलित रहना समग्र स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। आयुर्वेद शास्त्र में अग्नि को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। केवल भोजन पचाने के कार्य तक सीमित न रहकर, अग्नि शरीर में होने वाले सभी रूपांतरण प्रक्रियाओं – जैसे भोजन का पाचन, पोषक तत्त्वों का अवशोषण, यहाँ तक कि ज्ञान की आत्मसात प्रक्रिया तक – की मुख्य प्रेरक शक्ति है।



मानव शरीर की संरचना

चरक संहिता (सूत्रस्थान 28.4) में स्पष्ट रूप से कहा गया है –

"शरीरस्य मनसश्च रोगः स्वास्थ्यं च अग्निप्रवृत्तौ स्थितम्।"

अर्थात् – शरीर और मन के स्वास्थ्य अथवा रोग की स्थिति पूर्णतः अग्नि की अवस्था पर निर्भर करती है।

वेदान्त साहित्य, जैसे ब्रह्मसूत्र, में अग्नि को केवल पाचनशक्ति नहीं, बल्कि जीवन का प्रतीक माना गया है। जब तक शरीर में अग्नि विद्यमान है, तब तक जीवन चलता है; अग्नि के शांत होते ही प्राण भी समाप्त हो जाते हैं। यह गूढ़ अवधारणा शब्दकल्पद्रुम और वेदान्त सूत्रों जैसे प्राचीन ग्रंथों में अत्यंत सुंदर रूप से व्याख्यायित की गई है, जहाँ आदि शंकराचार्य अग्नि को एक जीवनदायिनी, सर्वव्यापी शक्ति के रूप में वर्णित करते हैं, जो विकास, चेतना और जीवन ऊर्जा को संचालित करती है। इस प्रकार, आयुर्वेद में अग्नि केवल पाचन का नहीं, बल्कि जीवन के समस्त स्तरों पर संतुलन और जागरूकता का आधार है।

11.1 अग्नि –यास्क एवं शंकराचार्य द्वारा व्युत्पत्ति

प्राचीन वैदिक व्याकरणाचार्य यास्क ने "अग्नि" शब्द की अत्यंत सुंदर व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है, जिसमें इसके मूल धात्वार्थों के आधार पर अग्नि के गुणों को स्पष्ट किया गया है –

- 'अ' – धातु "इ" (गमन) से निकला है, जिसका अर्थ है चलना या गमनशीलता।
- 'ग्' – धातु "अञ्ज्" (प्रकाश करना) या "दह्" (जलाना) से, जिसका आशय है प्रकाश और ऊष्मा।
- 'नि' – धातु "नी" से, जिसका अर्थ है ले जाना, गति देना या प्रवृत्त करना।

इन तीनों को मिलाकर "अग्नि" का अर्थ बनता है –

"वह जो चलता है, प्रकाशित करता है, जलाता है, रूपांतरित करता है और जीवन को आगे बढ़ाता है।" अतः अग्नि कोई स्थिर तत्व नहीं है, अपितु यह एक सक्रिय, गतिशील, रूपांतरकारी शक्ति है। यह शरीर में प्रवाहित होती है, ऊर्जा के रूप में प्रकाशमान होती है, आहार और विचारों का पाचन करती है, तथा विकास एवं चेतना की ओर मार्गदर्शन करती है।

(स्रोत: Shabdakalpadruma, Radhakantdev R, editors. Amar Publication, Varanasi: Chaukhamba Samskrit Series. 1967:8.)

Scanner by Droid-Veda

11.2 अग्नि के प्रकार एवं उनके कार्य

आयुर्वेद में अग्नि को उसके स्थान और कर्तव्यों के आधार पर 13 प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है –

1. जाठराग्नि (Jaṭharāgni):

यह अग्नि अमाशय एवं ग्रहणी (छोटी आँत) में स्थित होती है। यही मुख्य पाचन अग्नि है, जो भोजन को पचाकर उसे पोषक तत्त्वों और अपशिष्टों में परिवर्तित करती है। जब जाठराग्नि बलवान होती है, तब पाचन ठीक प्रकार से होता है। इसके दुर्बल या विकृत होने पर रोग उत्पन्न होते हैं।

2. भूताग्नि (Bhūtāgni) – पाँच प्रकार

ये अग्नियाँ भोजन में विद्यमान पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) को पचाती हैं तथा उन्हें शरीर की धातुओं में सम्यक् रूप से आत्मसात् कराती हैं।

3. धात्वग्नि (Dhātvagni) – सात प्रकार

प्रत्येक धातु – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र – की अपनी विशेष अग्नि होती है, जो भोजन से प्राप्त पोषण को उस धातु में रूपांतरित करने का कार्य करती है। यह प्रक्रिया उचित पोषण एवं विकास सुनिश्चित करती है।

स्रोत: Agrawal AK, Yadav CR, Meena MS. Physiological aspects of Agni. Ayu. 2010 Jul;31(3):395–398.

11.3 अग्नि के मूलभूत कार्य

1. **पाचन एवं चयापचय (Āhāra Pāka):** अग्नि भोजन को पचाकर उपयोगी पोषक तत्त्वों एवं अपशिष्ट पदार्थों में विभाजित करती है। यह प्रक्रिया जीवन एवं ऊर्जा की निरंतरता के लिए अनिवार्य है।

2. **धातु पोषण (Dhātu Pāka):** अग्नि की सम्यक् क्रिया यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक धातु को उचित पोषण प्राप्त हो तथा वह क्रमशः अगले धातु में सम्यक् रूप से परिवर्तित हो।

3. **ओजस निर्माण (Ojas Production):** सशक्त अग्नि से ओजस की उत्पत्ति

Scanner by Droid-Veda

होती है, जो शरीर की प्रतिरक्षा, बल एवं जीवनशक्ति का सार है। यह रोगों से शरीर की रक्षा करता है।

4. **मानसिक स्पष्टता एवं अनुभव (Manas Pāka):** अग्नि इंद्रियों के बोध, विचारों एवं अनुभूतियों के पाचन की भी जिम्मेदार होती है, जिससे मन की स्पष्टता, बुद्धि एवं धारणा शक्ति विकसित होती है।

5. **आम का निवारण (Āma Prevention):** यदि अग्नि दुर्बल हो जाए, तो अपचित एवं विषाक्त पदार्थ जिसे "आम" कहते हैं, उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद के अनुसार अनेक रोगों की जड़ यही आम होता है। इस प्रकार, अग्नि न केवल शारीरिक पाचन, बल्कि जीवन रक्षा, मानसिक संतुलन, रोग प्रतिरोध और स्वस्थ जीवन का मूल आधार है।

तत्र रोगाः अपि सर्वे अपि मन्देऽग्नौ जायन्ते।"

(चरक संहिता, चिकित्सास्थान 15.3)

अर्थात् – "समस्त रोगों की उत्पत्ति अग्नि के मन्द हो जाने पर होती है।"

यह वचन इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि अग्नि का क्षय या विकृति ही प्रायः प्रत्येक रोग का मूल कारण है। अतः आयुर्वेद में अग्नि की रक्षा एवं उसका संतुलन बनाए रखना स्वास्थ्य-रक्षण का मूल सिद्धांत माना गया है।

आयुर्वेद के अनुसार, केवल शारीरिक रोग ही नहीं, बल्कि मानसिक विकार – जैसे अवसाद , चिंता आदि – भी विकृत अग्नि से उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि अपचित विषद्रव्य (आम) मन को प्रभावित करते हैं। यह विचार आज के वैज्ञानिक "गट-ब्रेन अक्ष" सिद्धांत से मेल खाता है।

1.4 जब अग्नि सम (समाग्नि) हो

- पाचन एवं पोषण प्रक्रिया उत्तम होती है।
- शरीर का भार संतुलित रहता है।
- मन निर्मल एवं स्थिर रहता है।
- रोग-प्रतिरोधक क्षमता प्रबल होती है।
- त्वचा तेजस्वी एवं कांति से युक्त होती है।

Scanner by Droid-Veda

- आयु एवं जीवनी शक्ति बढ़ती है।

11.5 जब अग्नि विकृत हो

- मन्द अग्नि: पाचन धीमा, भारीपन, आलस्य और जड़ता
- तीक्ष्ण अग्नि: अति पाचन, अम्लपित्त (एसिडिटी), जलन एवं दाह
- विषम अग्नि: गैस, अफारा, अनियमित भूख
- सम अग्नि: आदर्श स्थिति, पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति

निष्कर्षतः, अग्नि का संतुलन ही आयुर्वेद में दीर्घायु, मानसिक स्पष्टता, एवं रोगों से मुक्ति का आधार है।

12. सात धातु

आयुर्वेदिक दर्शन में आहार को शरीर की संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाइयों – जिन्हें सप्त धातु कहा जाता है – के पोषण एवं निर्माण का मूलभूत स्रोत माना गया है। शरीर इन सात मूल धातुओं से निर्मित होता है, और प्रत्येक धातु शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखने में एक विशिष्ट भूमिका निभाती है।

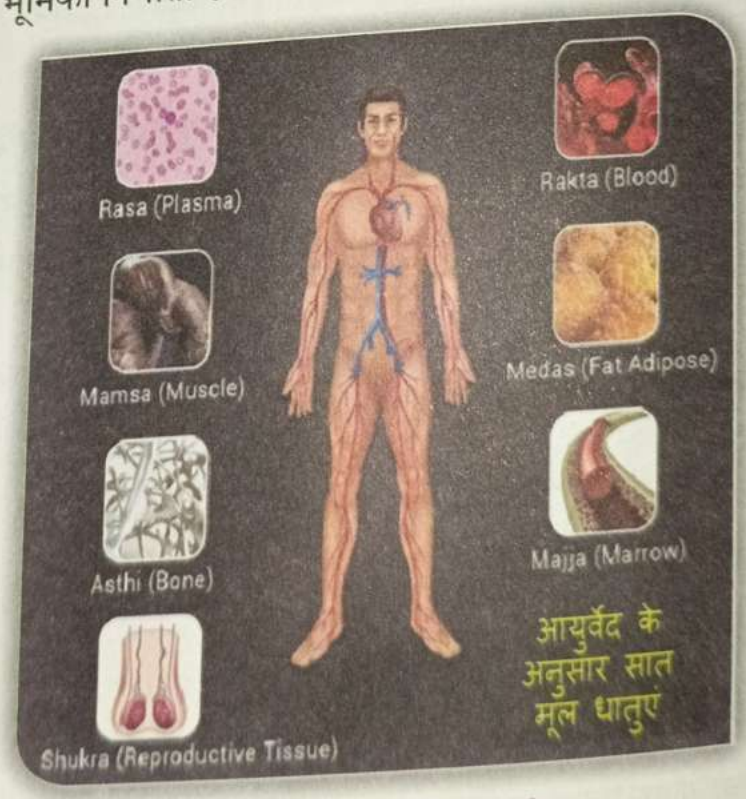

सात मूलभूत ऊतकों (धातुओं)

- **रसा (प्लाज्मा):** शरीर को पोषण और जल प्रदान करता है।
- **रक्त:** जीवन शक्ति का समर्थन करता है और ऊतकों को ऑक्सीजन प्रदान करता है।
- **मांस (मांसपेशियाँ):** संरचना और शक्ति प्रदान करता है।
- **मेदा (वसा):** ऊर्जा का भंडारण और इन्सुलेशन का कार्य करता है।
- **अस्थि (हड्डियाँ):** संरचनात्मक समर्थन और सुरक्षा प्रदान करती हैं।
- **मज्जा (हड्डी मज्जा):** रक्त कोशिकाओं का उत्पादन करती है और तंत्रिका तंत्र के कार्य को बनाए रखती है।
- **शुक्र (वीर्य):** प्रजनन सार और जीवन शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

आहार इन धातुओं के निर्माण का प्राथमिक स्रोत होता है। यह पहले प्लाज्मा में परिवर्तित होता है और फिर रक्त, मांस, वसा, हड्डी, हड्डी मज्जा, और अंत में शुक्र में परिवर्तित होता है। ध्यान और आध्यात्मिक अभ्यास के माध्यम से, यह सार ओजस में परिणत हो सकता है –जो जीवन शक्ति या ऊर्जा है जो रोगों से रक्षा करती है, दीर्घायु को बढ़ावा देती है, और प्रतिरक्षा को मजबूत करती है। किसी भी धातु में असंतुलन इस प्रवाह को बाधित करता है और स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न करता है।

तालिका: असंतुलित धातुओं के प्रभाव

धातु	वृद्धि या विकास	क्षय या हानि
रसा	कफ असंतुलन के समान प्रभाव	खुरदरापन, कमजोरी, सूखापन, थकान, और ध्वनियों को सहन न कर पाना
रक्त	विसर्प, प्लीहा, विद्रध, कुष्ठ, उपकुष्ठ, अंगों का नुकसान, आदि	रक्त वाहिकाओं की लचीलापन की कमी, खुरदरापन
मांस	गंड, अर्बुद, ग्रंथि, गोइट्र, मम्प्स, आदि	थकान, गालों का सूखापन, जोड़ दर्द
मेदा	कमजोरी, सांस लेने में कठिनाई	स्पर्श संवेदनाओं का नुकसान, शरीर का पतलापन
अस्थि	अतिरिक्त हड्डियाँ और दांत	हड्डियों में दर्द, दांतों का गिरना
मज्जा	आँखों और शरीर में भारीपन, जोड़ दर्द	हड्डियों में छेद, चक्कर आना, अंधेरा छाना
शुक्र	अत्यधिक यौन इच्छा, वीर्य में पत्थर	शीघ्र स्खलन, अंडकोष में दर्द, और रक्त का नुकसान

Scanner by Droid-Veda

12.1 धातु असंतुलन का सारांश

धातुओं में असंतुलन शरीर में विभिन्न रूपों में प्रकट होता है, जो शारीरिक और मेटाबोलिक कार्यों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए–

- **असंतुलित रसा:** इससे निर्जलीकरण या अत्यधिक द्रव प्रतिधारण हो सकता है।
- **असंतुलित रक्त:** यह एनीमिया या रक्त विकारों का कारण बन सकता है।
- **असंतुलित मांस:** इससे मांसपेशियों की कमजोरी या अत्यधिक वृद्धि हो सकती है।
- **असंतुलित मेदा:** यह मोटापे या ऊर्जा की कमी का कारण बन सकता है। धातुओं, दोषों, अग्नि के संतुलन को बनाए रखते हुए और मल का सही तरीके से निष्कासन सुनिश्चित करके, व्यक्ति अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है और कुल मिलाकर जीवन शक्ति को बढ़ा सकता है।

13. स्वास्थ्य एवं त्रिदोषों की गति-विधि

आयुर्वेद के अनुसार, स्वास्थ्य का मूल आधार तीन मूलभूत ऊर्जाओं अथवा जैव-नियामक सिद्धांतों – जिन्हें "दोष" कहा जाता है – के साम्य में निहित है: वात, पित्त और कफ। ये दोष शरीर की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को नियंत्रित करने वाली गतिशील शक्तियाँ हैं। 'दोष' शब्द का शाब्दिक अर्थ है – "वह जो विकृति उत्पन्न कर सकता है अथवा असंतुलित हो सकता है।" यह इस बात को इंगित करता है कि जब ये दोष असंतुलित हो जाते हैं, तब वे शरीर की स्वाभाविक अवस्था को भंग कर देते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं।

प्रत्येक दोष का गठन पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – के विशिष्ट सम्मिश्रण से हुआ है। यह सिद्धांत भारतीय दर्शन की वैशेषिक दर्शन-परंपरा में आधारित है। उदाहरणस्वरूप, पित्त दोष का निर्माण अग्नि और जल तत्त्वों के संयोग से होता है।

13.1 त्रि-दोषों की प्रकृति और कार्य

प्रत्येक दोष का एक विशिष्ट कार्य होता है–

Scanner by Droid-Veda

- **कफ:** शरीर की ठोस, संरचनात्मक नींव का प्रतिनिधित्व करता है।
- **पित्त:** रासायनिक गतिविधियों, पाचन और मेटाबोलिज्म को नियंत्रित करता है।
- **वात:** गति और ऊर्जा प्रवाह को नियंत्रित करता है।



त्रिदोषोपदेश: में तीन मूलभूत द्रव्यों – वात, पित्त और कफ – की मात्राओं एवं गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

हालाँकि इनके गुण और कार्य भिन्न होते हैं, संतुलन में होने पर ये दोष सामंजस्यपूर्ण रूप से काम करते हैं। दोषों में असंतुलन बीमारी का कारण बनता है, इसलिए उनका नियंत्रण स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

प्रत्येक दोष की विशेषताएँ

- **वात:** हल्का, ठंडा, सूखा, गतिशील, सूक्ष्म, और खुरदरा।
- **पित्त:** तैलीय, तीव्र, गर्म, हल्का, तरल, और तीखा।
- **कफ:** ठंडा, नम, स्थिर, भारी, धीमा, और चिकना।

आहार और दोषों के बीच संबंध

आहार दोषों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। विशिष्ट दोष के समान गुण वाले खाद्य पदार्थ उसे बढ़ा सकते हैं। उदाहरण के लिए, भिंडी, जो कफ बढ़ाने वाली है, जब अधिक मात्रा में सेवन की जाती है, तो कफ स्तर को असंतुलित कर सकती है।

Scanner by Droid-Veda

स्वाद आधारित संबंध

- **वात:** मीठे, खट्टे, और नम स्वादों से कम किया जाता है; तीखे, कड़वे, और कसैले स्वादों से बढ़ता है।
- **पित्त:** कसैले, कड़वे और मीठे स्वादों से कम किया जाता है; खट्टे, नम, और तीखे स्वादों से बढ़ता है।
- **कफ:** तीखे, कड़वे और कसैले स्वादों से कम किया जाता है; मीठे, खट्टे और नम स्वादों से बढ़ता है।

संतुलित आहार में सभी छह स्वादों को उचित अनुपात में शामिल किया जाना चाहिए, जो व्यक्ति की प्रकृति और वर्तमान स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

दोषों और शरीर में उनके स्थान

प्रत्येक दोष शरीर के विशिष्ट क्षेत्र में प्रकट होता है–

- **कफ:** ऊपरी शरीर, जिसमें सिर और छाती शामिल हैं।
- **पित्त:** छाती और नाभि के बीच।
- **वात:** नाभि के नीचे।

हालांकि ये क्षेत्र उनके प्राथमिक स्थानों को दर्शाते हैं, दोष शरीर के हर हिस्से में उपस्थित होते हैं और किसी भी भाग को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, कफ असंतुलन आमतौर पर सर्दी या खांसी के रूप में प्रकट होता है, पित्त असंतुलन अम्लता का कारण बन सकता है, और वात असंतुलन कब्ज या गठिया का कारण बन सकता है।

13.2 दोष और जीवन के चरण

प्रत्येक दोष का प्रभुत्व आयु, दिन के समय और रात के चरणों के अनुसार बदलता है:

- **बाल्यकाल:** कफ प्रबल होता है, जिससे बच्चों को सर्दी और श्वसन संबंधी समस्याओं का अधिक सामना होता है।
- **मध्यम आयु:** पित्त प्रबल होता है, जिससे गर्मी संबंधित बीमारियों का खतरा बढ़ता है।
- **वृद्धावस्था:** वात प्रबल होता है, जिससे जोड़ दर्द और पाचन समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

Scanner by Droid-Veda

साथ ही, दोषों का प्रभाव विशिष्ट समयों के दौरान स्वास्थ्य पर पड़ता है:

- **कफ:** प्रातः और रात्रि के प्रारंभिक घंटे।
- **पित्त:** दोपहर और मध्यरात्रि।
- **वात:** संध्याकाल और रात के अंतिम भाग में।

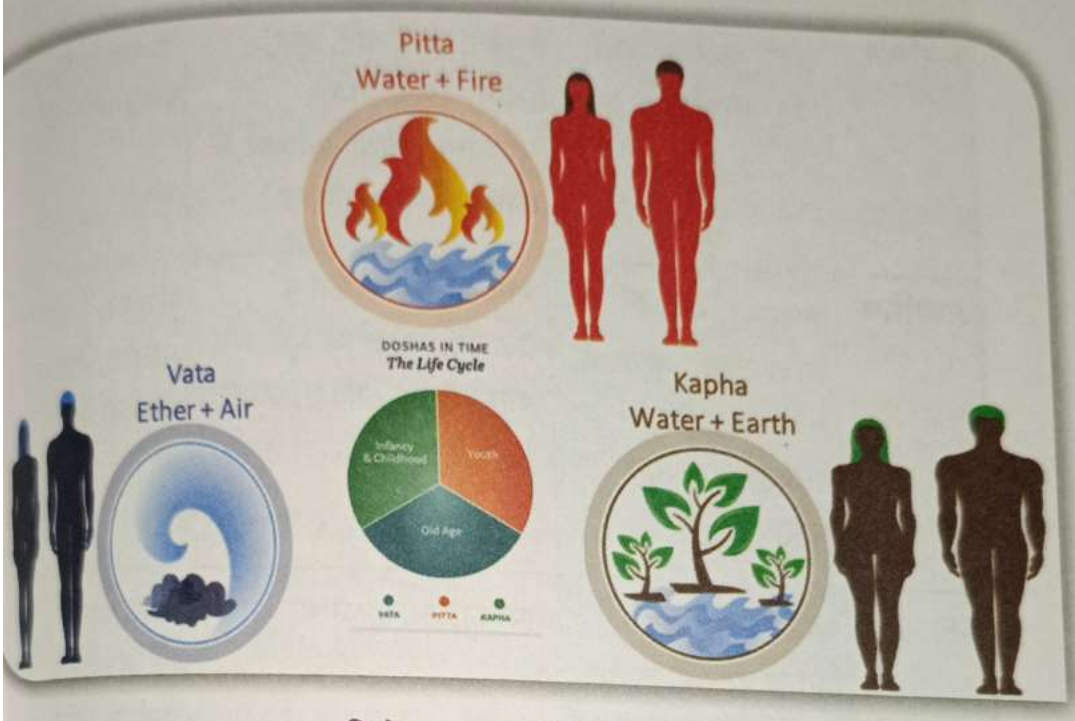

त्रिदोष: स्वास्थ्य से संबंध

14. वात की भूमिका

दोषों में, वात को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसका कार्य गति और नियंत्रण में है। यह नियंत्रित करता है:

- रक्त का परिसंचरण।
- पोषक तत्वों का परिवहन।
- श्वसन और फेफड़ों का कार्य।
- स्वैच्छिक और अनैच्छिक आंदोलनों।
- प्राकृतिक आवेगों का आरंभ, जैसे की छींकना, पेशाब, और जम्हाई लेना।
- मानसिक और संवेदी गतिविधियाँ, जैसे की भाषण।

Scanner by Droid-Veda

वात में असंतुलन इन आवश्यक कार्यों में विघटन कर सकता है, जिससे विभिन्न विकार उत्पन्न हो सकते हैं।

तालिका: दोषों का संतुलन एवं उनका शरीर पर प्रभाव

स्थिति	वात	पित्त	कफ
संतुलित	ऊर्जा, संतुलित श्वास, गति, स्वाभाविक आवेग	पाचन, गर्मी, दृष्टि, भूख, प्यास, स्वाद, आभा, बुद्धिमत्ता, वीरता/नायकत्व, कोमलता, मुलायमियत	स्थिरता, नमी, अच्छे जोड़, धैर्य
अत्यधिक	पतलापन, गर्मी की आवश्यकता, कंपकंपी, कब्ज, कमजोरी, बड़बड़ाना, चक्कर आना	आंखों और उत्सर्जनों में पीलापन, अत्यधिक भूख और प्यास, जलन, अनिद्रा, अम्लता	अपाचन, मितली, आलस्य, भारीपन, शीतलता, ढीले अंग
कम	अंगों की थकावट, विषैला बोलना, चक्कर आना	अपाचन, ठंडक, आभा की कमी	चक्कर आना, कफ के स्थान में खालीपन, ढीले जोड़

14.1 प्राकृतिक और मानसिक प्रवृत्तियों का दमन

आयुर्वेद में प्राकृतिक प्रवृत्तियों का दमन शारीरिक रोगों के प्रमुख कारण के रूप में पहचाना जाता है। उदाहरण के लिए, छींकने या मूत्र त्यागने को रोकने से शारीरिक गड़बड़ियाँ हो सकती हैं।

इसके विपरीत, कुछ मानसिक प्रवृत्तियों –जैसे लालच, क्रोध, ईर्ष्या, या अत्यधिक जोश –का दमन मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। इन क्षेत्रों में आत्म-नियंत्रण को बढ़ावा देने से मानसिक संतुलन प्राप्त होता है, जो अंततः समग्र स्वास्थ्य का समर्थन करता है।

Scanner by Droid-Veda

दोषों की प्रकृति और उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव को समझकर, व्यक्ति संतुलन बनाए रखने और रोगों को रोकने के लिए समझदारी से आहार और जीवनशैली के चुनाव कर सकता है।

15. रोग-निदान एवं चिकित्सा की आयुर्वेदिक दृष्टि

आयुर्वेद में रोग-प्रबंधन की सफलता चार आवश्यक तत्वों पर आधारित होती है, जिनका वर्णन चरकसंहिता में किया गया है–

1. **चिकित्सक (भिषक):** चिकित्सक को रोगों का सही निदान और उपचार करने के लिए उचित प्रशिक्षण, ज्ञान और अनुभव होना चाहिए।
2. **उपचार (औषध):** उपचार सरल, सुरक्षित और प्रभावी होना चाहिए।
3. **रोगी (रोगी):** रोगी को अपनी स्थिति के बारे में पूरी जानकारी देनी चाहिए और निर्धारित उपचार का पालन करना चाहिए।
4. **सेवक (परिचारक):** सेवक को रोगी देखभाल में निपुण होना चाहिए और स्वच्छता बनाए रखनी चाहिए।

चिकित्सा के लिए आयुर्वेदिक प्रणाली में तीन मूलभूत चरण सम्मिलित होते हैं –

1. **लक्षण (लिंग):** रोग के स्पष्ट संकेतों की पहचान करना।
2. **कारण (हेतु):** लक्षणों के निहित कारणों की जांच करना।
3. **उपचार (औषध):** संतुलन बहाल करने के लिए उपयुक्त उपचार करना।

आयुर्वेद का रोगों का निदान करने का तरीका लक्षणों के बजाय उनके मूल कारणों की पहचान पर केंद्रित है, जो इसे आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों से अलग बनाता है।

15.1 रोगनिदान की विधियाँ

आयुर्वेद में समय पर एवं सटीक रोगनिदान को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। इसके लिए विविध निदानात्मक, पूर्वानुमानात्मक तथा चिकित्सात्मक विधियों का उपयोग किया जाता है। इन सभी विधियों का विस्तृत वर्णन चरक संहिता के विमानस्थान के आठवें अध्याय में उपलब्ध है।

Scanner by Droid-Veda

परीक्षण विधियाँ

1. **रोगी का परीक्षण:** यह पद्धति रोगी की प्रकृति (स्वाभाविक संरचना), शारीरिक बल तथा जीवनीशक्ति (ओज) को समझने पर केंद्रित होती है, जिसके लिए दश विधानों (दस परिमाणों) का उपयोग किया जाता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है दोष-प्रकृति विश्लेषण, जिसके माध्यम से व्यक्ति को वात, पित्त, कफ या इनके संयोगात्मक प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है। यह विश्लेषण रोगी की शारीरिक, जैविक एवं मानसिक अवस्थाओं की गहन समझ प्रदान करता है।
   - शरीर के अनुपात का आकलन करने के लिए अंगुली के आकार (अंगुली प्रमाण) जैसे माप का उपयोग किया जाता है।
2. **रोग का परीक्षण:** यह विशिष्ट विधियाँ रोग की प्रकृति और प्रगति को समझने के लिए की जाती हैं।

मुख्य निदान विधियाँ

- **दर्शन-परीक्षा:** रोगी की उपस्थिति का दृश्य निरीक्षण, जिसमें रंग, आभा, प्रभावित क्षेत्रों का आकार और रूप शामिल है।
- **स्पर्श-परीक्षा:** स्पर्श द्वारा शारीरिक परीक्षा, जिसमें तापमान, नाड़ी, और बनावट का आकलन किया जाता है।
- **प्रश्न-परीक्षा:** रोगी या उनके देखभाल करने वालों से लक्षणों और रोगी के इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए पूछे जाते हैं।
- **नाड़ी-परीक्षा:** नाड़ी निदान, जो मध्यकाल में प्रस्तुत किया गया था, नाड़ी के पैटर्न के माध्यम से स्वास्थ्य का आकलन करता है।
- **मूत्र-परीक्षा:** मूत्र का विश्लेषण, जिसमें तेल-बिंदु परीक्षण भी शामिल है, जो मूत्र की भौतिक और रासायनिक गुणों का मूल्यांकन करता है।
- **मल-परीक्षा:** मल का परीक्षण, जिसमें इसके पानी में व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है, जो पाचन और चयापचय स्वास्थ्य का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है।

Scanner by Droid-Veda

तालिका: आयुर्वेदिक ग्रंथों में वर्णित निदान तकनीकें

परीक्षण का पक्ष	तकनीक अथवा ध्यान का केंद्र	विवरण या विधि
रोगी का परीक्षण		
प्रकृति (स्वभाविक संरचना)	दर्शन-परीक्षा	दृश्य अवलोकन (निरिक्षण द्वारा)
सार (धातु की दृढ़ता)	स्पर्शन-परीक्षा	स्पर्श द्वारा परीक्षण
संहनन (अवयवों की स्थिति)	प्रश्न-परीक्षा	प्रश्न पूछकर जानकारी प्राप्त करना
प्रमाण (शरीर की माप)	नाड़ी-परीक्षा	नाड़ी के माध्यम से परीक्षण
सात्म्य (अनुकूलता)	मूत्र-परीक्षा	मूत्र का परीक्षण
सत्त्व (मानसिक स्थिति)	मल-परीक्षा	मल का परीक्षण
व्यायाम-शक्ति (शारीरिक क्षमता)	आहार-शक्ति	आहार की मात्रा एवं पाचन क्षमता का मूल्यांकन
वय (आयु)	–	रोगी की आयु का निर्धारण
रोग का परीक्षण		
विकृति (दोषजन्य विकार)	स्पर्शन-परीक्षा	स्पर्श एवं अनुभव के माध्यम से विकृति का विश्लेषण

16. स्वास्थ्य में नींद और आहार का महत्व

आयुर्वेद में आहार एवं जीवनशैली सम्बन्धी अनुशासन उपचार की मूल धारा माने जाते हैं। इन सुझावों को व्यक्ति की प्रकृति तथा विकृत दोषों के आधार पर विशेष रूप से अनुरूपित किया जाता है। स्वास्थ्य की रक्षा हेतु आयुर्वेद दैनिक (दिनचर्या) एवं ऋतु के अनुसार (ऋतुचर्या) नियमों का विधान करता है।

16.1 स्वास्थ्य के तीन स्तंभ

चरक के अनुसार, स्वास्थ्य के स्तंभ हैं:

- **आहार:** अपने दोष संविधान के अनुसार आहार।

- **नींद:** शरीर और मस्तिष्क को पुनर्जीवित करने के लिए उचित विश्राम।
- **ब्रह्मचर्य:** इन्द्रियों के भोग में संयम।

16.2 नींद की प्रकृति

नींद तब आती है जब मस्तिष्क और इन्द्रियाँ थकावट के कारण खींचती हैं। अत्यधिक तामस (जड़ता) या कफ का संचय भी नींद को प्रेरित कर सकता है। उचित नींद आवश्यक है–

- शारीरिक जीवनशक्ति के लिए।
- मानसिक स्थिरता के लिए।
- संज्ञानात्मक स्पष्टता के लिए।

नींद के छह प्रकार

1. **तामो-भाव:** मानसिक आलस्य से प्रेरित, जैसे भारी भोजन के बाद; नकारात्मक परिणामों से जुड़ा हुआ।
2. **श्लेष्म-समुद्भव:** कफ के कारण, बच्चों की लंबी नींद की अवधि को समझाता है।
3. **मनो-शरीर-श्रम-समुद्भव:** मानसिक और शारीरिक थकावट से उत्पन्न।
4. **आगंतुक:** बाहरी तत्वों जैसे खुशबू, औषधियाँ या मालिश से प्रेरित।
5. **व्याधि-अनुवर्तिनी:** रोगों से संबंधित, जैसे कफ से उत्पन्न बुखार।
6. **रात्रि-स्वभाव-प्रभावा:** प्राकृतिक रात की नींद, जिसे सबसे अच्छा और सबसे पुनरुत्थानकारी माना जाता है।

स्वस्थ नींद के लिए सुझाव

- रात्रि में निद्रा को श्रेष्ठ माना गया है, जबकि दिवा-निद्रा केवल ग्रीष्म ऋतु में ही अनुशंसित है, ताकि अल्प रात्रि एवं वातदोष की वृद्धि को संतुलित किया जा सके।
- अत्यधिक दिन में सोना कफ तथा पित्त दोषों को प्रकोपित कर सकता है।

नींद विकारों का प्रबंधन

1. **अनिद्रा:** सामान्य कारणों में तनाव तथा जीवनशैली संबंधी दोष प्रमुख हैं। आयुर्वेद इनमें राहत हेतु निम्नलिखित उपाय सुझाता है –

Scanner by Droid-Veda

- तेल की मालिश।
- स्नान।
- शांति देने वाले खाद्य पदार्थ जैसे शाली चावल और दही।
- हल्की शरीर की मालिश।
- सुखद सुगंध और मुलायम बिस्तर से शांतिपूर्ण सोने का वातावरण बनाना।

अत्यधिक/अनुचित नींद: यह अक्सर कफ और पित्त असंतुलन से जुड़ा होता है। उपचारों में शामिल हैं:

- मल निकासी उपचार।
- उपवासी रहना।
- शारीरिक गतिविधि।
- तामस को कम करने के लिए सचेतन अभ्यास।

आहार और जीवनशैली दोनों का ध्यान रखते हुए, आयुर्वेद रोग प्रबंधन और समग्र कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है।

17. आयुर्वेद में रोग प्रबंधन

आयुर्वेद स्वास्थ्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के संतुलन पर जोर देता है। इसके उपचार की नींव चार प्रमुख घटकों पर आधारित है: चिकित्सक, उपचार, रोगी और सेवक। चिकित्सक को प्रशिक्षित और अनुभवी होना चाहिए, जबकि उपचार प्रभावी, सुरक्षित और आसानी से उपलब्ध होने चाहिए। रोगी की भूमिका सटीक जानकारी प्रदान करना और निर्धारित उपचारों का पालन करना है, और सेवक रोगी की आराम और स्वच्छता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन तत्वों के संयोजन से एक समग्र और व्यक्तिगत उपचार प्रक्रिया सुनिश्चित होती है।

आयुर्वेद में निदान प्रक्रिया सूक्ष्म और बहुआयामी होती है, जिसमें रोगी और रोग दोनों का गहन परीक्षण शामिल होता है। रोगी की अद्वितीय प्रकृति (त्रिदोष) को उनकी व्यक्तित्व और जीवनशक्ति के माध्यम से समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है। निदान में दृश्य परीक्षण (दर्शन-परीक्षा), शारीरिक परीक्षण (स्पर्श-परीक्षा), और पूछना (प्रश्न-परीक्षा) शामिल हैं। पारंपरिक विधियाँ जैसे नाड़ी परीक्षण, मूत्र परीक्षण, और मल परीक्षण आंतरिक असंतुलनों की जानकारी प्रदान करती हैं। यह विस्तृत निदान प्रक्रिया

Scanner by Droid-Veda

चिकित्सकों को केवल लक्षणों को ही नहीं, बल्कि रोग के मूल कारणों को पहचानने में सक्षम बनाती है, जो आयुर्वेद के लक्षणों के बजाय मूल कारणों के उपचार के सिद्धांत के अनुरूप है।

आयुर्वेद में निद्रा और आहार को स्वास्थ्य के स्तंभ माना गया है। निद्रा, जो तमस और कफ दोष से प्रभावित होती है, शारीरिक और मानसिक पुनरुत्थान के लिए महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद में निद्रा के छह प्रकार बताए गए हैं, जिनमें स्वाभाविक रात्रि निद्रा (रात्रि-स्वभाव-प्रभाव) को सबसे लाभकारी माना गया है। अनिद्रा के उपायों में तेल मालिश, विशिष्ट आहार का सेवन, और सुखद नींद वातावरण बनाए रखना शामिल है। दिन के समय सोना सामान्यतः हतोत्साहित किया गया है, लेकिन गर्मियों में या बच्चों और बुजुर्गों जैसे विशेष समूहों के लिए इसे अनुमति दी गई है। अनुचित निद्रा आदतें, चाहे वह अत्यधिक हों या अपर्याप्त, कफ और पित्त दोषों के असंतुलन से जुड़ी हुई हैं।

आहार को भी स्वास्थ्य का एक प्रमुख आधार माना गया है, जिसमें इसके गुण, मात्रा और समय पर विशेष ध्यान दिया जाता है। खाद्य पदार्थों को गुरु (भारी) और लघु (हल्के) के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जहाँ गुरु भोजन पचने में कठिन लेकिन बलवर्धक होता है, जबकि लघु भोजन आसानी से पचने योग्य और स्वास्थ्य पुनःस्थापन में सहायक होता है। भोजन के बीच 3-6 घंटे का अंतराल आवश्यक बताया गया है ताकि पाचन प्रक्रिया सुचारू हो सके। ताज़ा पकाया हुआ भोजन प्राथमिकता में है, क्योंकि तीन घंटे से अधिक पुराना भोजन तामसिक माना जाता है, जो जीवनशक्ति को कम करता है और आलस्य को बढ़ावा देता है। जल को भी जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। इसका प्रकार और मात्रा व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। आयुर्वेद में वर्षाजल (आंतरिक्ष) और भूमिगत जल (भौम) के बीच अंतर किया गया है, यह कहते हुए कि जल के गुण उसके स्रोत और ऋतु पर निर्भर करते हैं। जल केवल प्यास बुझाने का साधन नहीं है, बल्कि थकान से लेकर गुर्दे की पथरी तक कई रोगों का उपचार भी है।

1970 के दशक में, भारत सरकार ने आयुर्वेदिक ग्रंथों में दिए गए सूत्रों का मूल्यांकन करने के लिए आयुर्वेदिक विशेषज्ञों का एक पैनल नियुक्त किया। इस कार्य का परिणाम "आयुर्वेदिक फॉर्मुलरी ऑफ इंडिया" के संकलन के रूप में हुआ, जिसमें 560 से अधिक मूल्यांकित सूत्र, 22 भस्म और 55 रस शामिल हैं।

Scanner by Droid-Veda

18. पारंपरिक आयुर्वेदिक आरोग्य विधियाँ

आयुर्वेद का चिकित्सीय आयाम हर्बल योग, भस्म (धातु और खनिज से बने योग), और औषधीय तेल एवं घृत का समावेश करता है। उपचारों को प्रायः विभिन्न जड़ी-बूटियों के साथ मिश्रित किया जाता है ताकि उनके अवशोषण को बढ़ाया जा सके और उनकी विषाक्तता को कम किया जा सके। रसायन, जो आधुनिक आहार पूरकों के समान हैं, पोषण, प्रतिरोधक क्षमता, और पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता को बढ़ाने के लिए तैयार किए जाते हैं। भस्म, जो धातुओं और खनिजों के शुद्ध किए गए रूप हैं, आयुर्वेदिक ग्रंथों में वर्णित जटिल प्रक्रियाओं के माध्यम से तैयार किए जाते हैं, जिससे वे चिकित्सा उपयोग के लिए सुरक्षित और प्रभावी बनते हैं।

आयुर्वेद की एक अनोखी विशेषता है इसका विषहरण उपचार, जिसे पंचकर्म कहते हैं। इस प्रक्रिया की शुरुआत पूर्व-उपचार विधियों से होती है, जैसे तेल मालिश, स्वेदन (पसीना लाना), और चयापचय को बढ़ाने वाली जड़ी-बूटियाँ। दूसरी अवस्था में शोधन पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं, जैसे वमन (उल्टी), विरेचन, बस्ती (एनीमा), और रक्तमोक्षण (रक्तस्राव) द्वारा शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालना। अंतिम चरण पुनःस्थापन पर केंद्रित होता है, जिसमें संतुलन बनाए रखने और पुनः रोग होने से बचने के लिए आहार और जीवनशैली में परिवर्तन की सलाह दी जाती है।

शारीरिक चिकित्सा, विशेष रूप से मालिश, आयुर्वेद में एक विशेष स्थान रखती है। शरीर के महत्वपूर्ण बिंदु, जिन्हें मर्म बिंदु कहा जाता है, जहाँ मांसपेशियाँ, हड्डियाँ और नसें मिलती हैं, ऊर्जा केंद्र माने जाते हैं। इन बिंदुओं की औषधीय तेलों से मालिश, जो व्यक्ति के दोषों और स्थिति के अनुसार तैयार की जाती है, रोगों के उपचार और शरीर को सशक्त बनाने में सहायक होती है। यह उपचारात्मक स्पर्श न केवल शारीरिक असुविधा को दूर करता है बल्कि आंतरिक संतुलन को भी बहाल करता है।

आयुर्वेद का व्यापक स्वास्थ्य दृष्टिकोण व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समझने और उपचार को प्राकृतिक लय के साथ समायोजित करने पर बल देता है, जिससे एक संतुलित और समग्र स्वास्थ्य यात्रा सुनिश्चित होती है।

Scanner by Droid-Veda

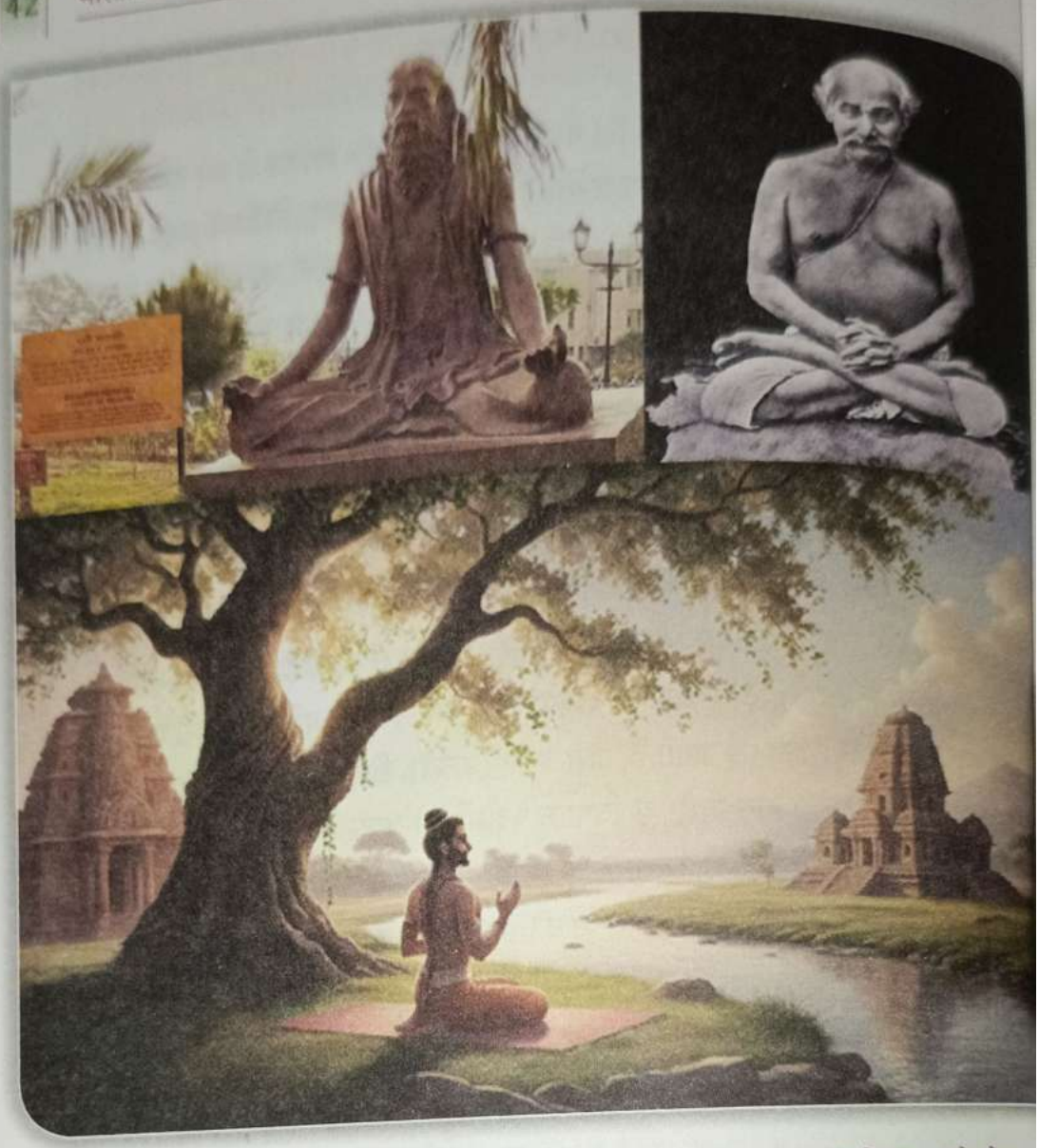

पतंजलि की एक मूर्ति (जिन्होंने योग सूत्र लिखा है), ध्यान का अभ्यास करते हुए – जो योग के आठ अंगों में से एक है जिसे उन्होंने परिभाषित किया; लाहिरी महाशय पद्मासन में, जो एक प्राचीन बैठने वाली ध्यान मुद्रा है।

19. योग: स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के लिए एक जीवनशैली

आधुनिक जीवन की आपाधापी में संतुलन प्राप्त करना एक कठिन और क्षीण होती हुई आशा बन गई है। जो कभी केवल एक विशेष सुविधा मानी जाती थी – कार्य और जीवन का संतुलन, अब शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य हेतु एक अनिवार्यता बन गया है। फिर

Scanner by Droid-Veda

की, संसारभर में कर्मचारी स्वयं को अंतहीन कार्यघंटों, बढ़ते तनाव, और दैनिक जीवन की अर्थहीनता के चक्रव्यूह में उलझा हुआ पाते हैं। यह तनाव केवल कार्यक्षेत्र तक सीमित नहीं रहता, बल्कि धीरे-धीरे व्यक्तिगत जीवन, संबंधों, स्वास्थ्य, और समग्र सुख-शांति को भी प्रभावित करता है। इस असंतुलन का समाधान खोजने हेतु आज अनेक लोग प्राचीन भारतीय परंपराओं की ओर लौट रहे हैं, जो आंतरिक शांति और शारीरिक स्वास्थ्य दोनों का पोषण करती हैं।

योग, जो कि एक प्राचीन भारतीय साधना पद्धति है, इन आधुनिक समस्याओं का कालातीत समाधान प्रस्तुत करता है। यह केवल एक शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि एक जीवनशैली है, जो मन, शरीर और आत्मा की अंतर्संबद्धता को स्वीकार करती है। योग के सिद्धांतों को अपनाकर व्यक्ति न केवल जीवन में संतुलन प्राप्त कर सकता है, अपितु तनाव को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर, गहन कल्याण की अनुभूति भी कर सकता है।



योग: स्वास्थ्य और कल्याण के लिए एक जीवन शैली

19.1 आधुनिक समस्या: तनाव और इसके परिणाम

तनाव आज के समय की एक मौन महामारी बन चुका है, जो न केवल उच्च रक्तचाप, मधुमेह, और हृदय रोगों जैसे शारीरिक विकारों में प्रकट होता है, बल्कि चिंता, मानसिक थकान, एवं उदासी जैसी मानसिक समस्याओं में भी परिलक्षित होता है। अनेक लोगों के लिए कार्यक्षेत्र ही इस तनाव का मुख्य कारण है, जहाँ दीर्घ कार्य-घंटे और लगातार अपेक्षाएँ व्यक्ति को थकान, चिड़चिड़ाहट, तथा अकुशलता की भावना से भर देती हैं।

यह दीर्घकालिक तनाव न केवल कार्यक्षमता को घटाता है, बल्कि व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों पर भी गहरा प्रभाव डालता है। परिवार इस तनाव का सबसे अधिक

Scanner by Droid-Veda

भार वहन करते हैं, और इसका आर्थिक, भावनात्मक व सामाजिक मूल्य अत्यंत बड़ा होता है। चिकित्सक प्रायः ऐसी स्थितियों में केवल औषधि नहीं, बल्कि जीवनशैली में परिवर्तन की भी सलाह देते हैं। और यहीं पर योग का सौंदर्य निहित है – एक ऐसी सम्पूर्ण जीवनपद्धति, जो इन चुनौतियों का समग्र समाधान प्रस्तुत करती है।

योग: तंदुरुस्ती के लिए एक समग्र दृष्टिकोण

योग केवल शारीरिक आसनों का अभ्यास नहीं है; यह एक समग्र विज्ञान है जो जीवन के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आयामों को एकीकृत करता है। भारतीय दर्शन में निहित, योग सदियों से एक मार्गदर्शक प्रकाश रहा है, जो संतुलित जीवन जीने के लिए व्यावहारिक उपकरण प्रदान करता है।

योग की विशिष्टता इसके एकीकृत दृष्टिकोण में है। जबकि आसन (मुद्राएँ) शरीर को लचीला और मजबूत बनाए रखते हैं, प्राणायाम (श्वास तकनीकें) ऊर्जा के प्रवाह को नियंत्रित करती हैं, और ध्यान मन को शांति प्रदान करता है। मिलकर, ये अभ्यास तनाव को प्रबंधित करने, स्वास्थ्य सुधारने, और आंतरिक शांति को बढ़ावा देने का एक समग्र तरीका प्रदान करते हैं।

योग का दर्शन

योग का मूल उद्देश्य स्वयं और संसार, विचारों और क्रियाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करना है। पतंजलि के योग सूत्र, जो योग के मौलिक ग्रंथों में से एक हैं, इस सामंजस्य को प्राप्त करने के लिए अष्टांग योग का एक आठ-फोल्ड मार्ग प्रस्तुत करते हैं। यह मार्ग नैतिक आचरण, मानसिक अनुशासन और आध्यात्मिक ज्ञान को विकसित करने के लिए एक चरणबद्ध मार्गदर्शन प्रदान करता है।

यात्रा बाहरी अभ्यासों जैसे यम और नियम से शुरू होती है, जो नैतिक आचरण और व्यक्तिगत अनुशासन पर केंद्रित होते हैं, और फिर यह आंतरिक अभ्यासों जैसे धारणा (संकेंद्रण) और ध्यान की ओर बढ़ती है, जो अंततः समाधि, आत्मज्ञान और शांति की अवस्था तक पहुंचती है।

योग के माध्यम से तनाव प्रबंधन

योग तनाव को एक अद्वितीय और गहरे तरीके से संबोधित करता है। अस्थायी समाधान के विपरीत, योग तनाव के जड़ों में गहराई से प्रवेश करता है, जिससे व्यक्ति अपनी अवचेतन आदतों और पैटर्न को अधिक जागरूकता से समझ पाते हैं।

Scanner by Droid-Veda



(योग के आठ अंग)

आसन और प्राणायाम का अभ्यास करके, शरीर और मन, जीवन की चुनौतियों को अनुकूलता के साथ संभालने के लिए तैयार हो जाते हैं। ये अभ्यास स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करते हैं, जिससे सहानुभूतिपूर्ण (तनाव प्रतिक्रिया) और पैरासिम्पेथेटिक (विश्राम प्रतिक्रिया) तंत्रों के बीच संतुलन पुनर्स्थापित होता है। ध्यान, इस बीच, आत्म-जागरूकता को बढ़ाता है, जिससे व्यक्ति तनावपूर्ण स्थितियों का सामना शांतिपूर्णता और स्पष्टता से कर पाते हैं।

19.2 परिवर्तन की ओर एक मार्ग

योग जीवनशैली रूपांतरकारी है, जो किसी के अस्तित्व के हर पहलू को संबोधित करती है-

- **शारीरिक तंदुरुस्ती:** आसनों का नियमित अभ्यास लचीलापन, शक्ति और जीवनशक्ति को बढ़ाता है।
- **मानसिक स्पष्टता:** ध्यान और जागरूकता के अभ्यास भावनात्मक स्थिरता और लचीलापन को बढ़ावा देते हैं।
- **आध्यात्मिक विकास:** आत्म-अनुशासन और आत्मनिरीक्षण के माध्यम से, योग एक व्यक्ति के लक्ष्यों और दृष्टिकोण को पुनः संरेखित करने में मदद करता है, जिससे उद्देश्य और संतोष की भावना उत्पन्न होती है।

Scanner by Droid-Veda

योग का अष्टांग मार्ग जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करता है। यम और नियम नैतिक जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन करते हैं, जबकि आसन और प्राणायाम शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का निर्माण करते हैं। प्रत्याहार (इंद्रिय निषेध) और धारणा जैसे अभ्यास मस्तिष्क को केंद्रित करने के लिए प्रशिक्षित करते हैं, जो गहरे ध्यान की स्थिति की नींव तैयार करता है।

19.3 दैनिक जीवन में योग

योग को दैनिक जीवन में अपनाने के लिए बड़े बदलावों की आवश्यकता नहीं होती। कुछ सरल अभ्यास जैसे दिन की शुरुआत कुछ क्षणों के ध्यान से करना, श्वास पर ध्यान देने के लिए विश्राम लेना, या आसनों के लिए समय निर्धारित करना, महत्वपूर्ण बदलाव ला सकते हैं। ये अभ्यास धीरे-धीरे अधिक आत्म-संवेदनशीलता की ओर मार्गदर्शन करते हैं, जो व्यक्तियों को जीवन में शांति और संतुलन के साथ जीने में सहायक होते हैं।

कर्म योग, या निःस्वार्थ क्रिया का मार्ग, हमें हमारे कर्तव्यों को ध्यान और समर्पण के साथ, बिना परिणामों से जुड़ी उम्मीदों के निभाने की शिक्षा देता है। यह मानसिकता तनाव को कम करती है, क्योंकि यह बाहरी प्रशंसा से अधिक आंतरिक संतोष पर ध्यान केंद्रित करती है।

20. निष्कर्ष

इस ग्रंथ में आयुर्वेद एवं योग – भारत की दो महानतम और कालजयी जीवन-परंपराओं – का गहन अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। त्रिदोष सिद्धांत, प्रकृति-आधारित उपचार प्रणाली, अग्नि की भूमिका, सप्त धातुओं का कार्य, दैनिक एवं ऋतुचर्या, तथा स्वास्थ्य की दर्शनात्मक नींवों के विस्तार से यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद एवं योग केवल रोगों के उपचार नहीं, अपितु संतुलित, उद्देश्यपूर्ण और पूर्ण जीवन जीने की एक सम्पूर्ण जीवन-पद्धति प्रदान करते हैं।

आज के युग में, जहाँ तनाव, विकृत जीवनशैली और मानसिक तनाव व्याप्त हैं, वहाँ आयुर्वेद और योग की शिक्षाएँ केवल रोग निवारण का माध्यम नहीं, अपितु रोगों की रोकथाम, आत्मचिंतन, भावनात्मक दृढ़ता और आध्यात्मिक उत्कर्ष का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं। शरीर, मन और आत्मा की एकता पर आधारित यह दृष्टिकोण आधुनिक चिकित्सा की खंडित प्रवृत्तियों के विपरीत, प्राकृतिक लय, स्व-अनुशासन, और सजग जीवन को प्रोत्साहित करता है।

Scanner by Droid-Veda

वेदों, संहिताओं और योगग्रंथों में निहित इन प्राचीन साधनाओं को पुनः जाग्रत कर यह ग्रंथ पाठकों को उनकी स्वाभाविक आरोग्यता, संतुलन एवं आंतरिक आनन्द को पुनः प्राप्त करने हेतु प्रेरित करता है। अतः आयुर्वेद और योग केवल अतीत की धरोहर नहीं अपितु जीवित एवं युगानुकूल विज्ञान हैं, जो आज के जीवन में और भी अधिक आवश्यक हो चले हैं।

यह ज्ञान केवल पृष्ठों में सीमित न रहे, अपितु इसे प्रतिदिन, जागरूकता एवं श्रद्धा के साथ जीवन में उतारें। क्योंकि ऐसा करने से हम केवल एक परंपरा की रक्षा नहीं करते, बल्कि उस जीवन-पद्धति का पुनर्जागरण करते हैं, जो शरीर, मन और आत्मा – तीनों का सुसंगत पोषण करती है।

Scanner by Droid-Veda

सुझावात्मक पठनीय सामग्री

1. Sharma, P.V. (Ed.). *Charaka Samhita*. Chaukhambha Orientalia, 1981. ISBN: 978-8120800199.
2. Bhishagratna, K.L. (Trans.). *Sushruta Samhita*. Chaukhambha Visvabharati, 1999. ISBN: 978-8185790589.
3. Mahadevan, B., Bhat, V. R., & Pavana, N. (2022). *Introduction to Indian Knowledge System: Concepts and Applications*. New Delhi: PHI Learning Pvt. Ltd. ISBN: 978-93-91818-20-3.
4. Sreekumar, T. (Trans.). *Ashtanga Hridayam*. Chaukhambha Orientalia, 2005. ISBN: 978-8185790329.
5. Lad, Vasant. *The Textbook of Ayurveda: Fundamental Principles* (Vols. 1–3). The Ayurvedic Press, 2002. ISBN: 978-1883725053.
6. Green, Anne. *Principles of Ayurveda*. Lotus Press, 1996. ISBN: 978-0914955818.
7. Lad, Vasant. *Ayurveda: The Science of Self-Healing*. Lotus Press, 1992. ISBN: 978-0914955009.
8. Frawley, David. *Yoga and Ayurveda: Self-Healing and Self-Realization*. Lotus Press, 1999. ISBN: 978-0914955818.
9. Frawley, David. *Ayurveda and the Mind: The Healing of Consciousness*. The Ayurvedic Press, 2000. ISBN: 978-1883725046.
10. Sharma, H. "*Ayurveda: The Science of Life*." AYU, vol. 37, no. 2, 2016, pp. 87–91. DOI: 10.4103/ayu.AYU_220_16.
11. Sharma, H. "*Concept of Agni in Ayurveda*." AYU, vol. 30, no. 2, 2009, pp. 88–105. DOI: 10.4103/0974-8520.58268.
12. Singh, R.H., and Tripathi, J.S. "The Role of Tridosha in Human Physiology." *Journal of Ayurveda and Integrative Medicine*, vol. 1, no. 3, 2010, pp. 150–155. DOI: 10.4103/0975-9476.72170.
13. Sharma, H. "*Importance of Sleep in Ayurveda*." AYU, vol. 36, no. 4, 2015, pp. 233–237. DOI: 10.4103/0974-8520.182756.

Scanner by Droid-Veda

16. Sharma, S., and Sharma, R. "Yoga for Stress Management and Health Promotion." *Indian Journal of Psychiatry*, vol. 55, no. 2, 2013, pp. 121–126. DOI: 10.4103/0019-5545.111451.

17. Pandey, O. P. (2023). *Bharat Vaibhav* (1st ed.). New Delhi: National Book Trust, India. ISBN: 978-81-237-9377-1.

18. Adhia, H., Nagendra, H.R. and Mahadevan, B. (2010). "*Impact of Adoption of Yoga Way of Life on the Reduction of Job Burnout of Managers*", Vikalpa. 35(2), pp. 21-33.

17. Adhia, H., Nagendra, H.R. and Mahadevan, B. (2010). "Impact of Adoption of Yoga Way of Life on the Emotional Intelligence of Managers". *IIMB Management Review*. 22, pp. 32-41.

18. Dalal, A.K. and Misra, G. (2010). "The Core and Context of Indian Psychology", *Psychology and Developing Societies*, 22(1), pp. 121-155.

19. Dominik, W. (2001). "*The Roots of Ayurveda*", Penguin Classics, Haryana, India. ISBN: 9780140436808.

20. Mishra, L.C. (2004). *Scientific Basis for Ayurvedic Therapies*, CRC Press LLC, Washington D.C.

21. Pandey, J. (1988). *Psychology in India: The State-of-the-art*, Vols. 1, 2, 3, Sage Publications, New Delhi.

22. Thakker, J., Chaudhari, S. and Sarkar, P.S. (2011). "Ritucharya: Answers to the Lifestyle Disorders" An International Quarterly Journal of Research in Ayurveda, Official Publication of Institute for Post Graduate Teaching & Research in Ayurveda, Jamnagar, Oct-Dec; 32(4): pp. 466-471. Doi:10.4103/0974-8520.96117. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3361919/#ref5.

Scanner by Droid-Veda

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. कार्यस्थल पर थकावट का मुख्य कारण क्या है?
   - क) अपर्याप्त वेतन
   - ख) लंबे कार्य घंटे और तनाव
   - ग) प्रशिक्षण की कमी
   - घ) खराब अवसंरचना

2. कौन सी चिकित्सा स्थितियाँ अक्सर तनाव के कारण उत्पन्न होती हैं?
   - क) सामान्य सर्दी और बुखार
   - ख) उच्च रक्तचाप और मधुमेह
   - ग) अस्थमा और एलर्जी
   - घ) कैंसर और माइग्रेन

3. योग जीवनशैली का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   - क) केवल शारीरिक स्वास्थ्य
   - ख) केवल मानसिक विश्राम
   - ग) शारीरिक और मानसिक दोनों तंदुरुस्ती
   - घ) केवल आध्यात्मिक प्रबोधन

4. पतंजलि के योगसूत्रों का अंतिम उद्देश्य क्या है?
   - क) संपत्ति का संग्रह
   - ख) शारीरिक शक्ति में महारत हासिल करना
   - ग) मन के विकारों को शांत करना
   - घ) अंतरवैयक्तिक रिश्तों को मजबूत करना

Scanner by Droid-Veda

योग में प्रत्याहार क्या है?

क) एक प्रकार का शारीरिक व्यायाम

ख) इंद्रिय जानकारी का नियमन

ग) गहरी ध्यान साधना

घ) श्वास पर नियंत्रण

योग का कौन सा चरण ध्यान द्वारा मन को शांत करने से संबंधित है?

क) प्राणायाम

ख) धारणा

ग) आसन

घ) समाधि

योग में यम और नियम किस पर ध्यान केंद्रित करते हैं?

क) आहार संबंधी आदतें

ख) आचरण और मानसिक संतुलन

ग) शारीरिक फिटनेस

घ) आध्यात्मिक अनुष्ठान

योग में कौन सा अभ्यास सूक्ष्म ऊर्जा के प्रवाह को नियंत्रित करने में मदद करता है?

क) आसन

ख) प्राणायाम

ग) समाधि

घ) प्रत्याहार

"कर्म-योग" का क्या मतलब है?

क) परिणामों से वियोग

ख) संपत्ति का संग्रह

ग) पारिवारिक संबंधों को मजबूत करना

घ) शैक्षिक उत्कृष्टता प्राप्त करना

10. निम्नलिखित में से कौन सा कफ के अत्यधिक होने का लक्षण नहीं है?

क) आलस्य
ख) जलन का अहसास
ग) भारीपन
घ) उल्टी

11. वात असंतुलन आमतौर पर किसका परिणाम होता है?

क) कब्ज और चक्कर आना
ख) जलन और अत्यधिक प्यास
ग) चक्कर आना और ठंडक
घ) अपच और उल्टी

12. आयुर्वेद में 'दर्शन-परीक्षा' का क्या महत्व है?

क) नाड़ी परीक्षा
ख) दृश्य निरीक्षण
ग) स्पर्श परीक्षा
घ) पूछने पर आधारित परीक्षण

13. आयुर्वेद में मल की जांच से संबंधित कौन सा परीक्षण है?

क) मल-परीक्षा
ख) नाड़ी-परीक्षा
ग) मूत्र-परीक्षा
घ) प्रश्न-परीक्षा

14. किस दोष असंतुलन के कारण आंखों और मल में पीलापन होता है?

क) वात
ख) पित्त
ग) कफ
घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

Scanner by Droid-Veda

संतुलित पित्त का परिणाम क्या है?

क) ऊर्जा और संतुलित श्वास

ख) पाचन, गर्मी, और बुद्धिमत्ता

ग) स्थिरता और अच्छे जोड़ों

घ) स्पष्ट दृष्टि और धैर्य

16. कफ में कमी होने का सामान्य परिणाम क्या है?

क) अपच

ख) ढीले जोड़

ग) जलन का अहसास

घ) चक्कर आना

17. कौन सा धातु असंतुलन शुक्राणु में पत्थर होने का कारण बनता है?

क) रसा

ख) रक्त

ग) शुक्र

घ) मांसा

18. जब रक्त धातु अत्यधिक बढ़ जाती है, तो क्या होता है?

क) प्लीहा का बढ़ना

ख) गालों का सूखा होना

ग) स्पर्श संवेदी हानि

घ) हड्डियों में कमजोरी

19. योग का कौन सा चरण शारीरिक शरीर पर अधिकार प्राप्त करने में मदद करता है?

क) आसन

ख) धारणा

ग) प्रत्याहार

घ) समाधि

20. मेदास धातु में वृद्धि से सामान्यत: क्या परिणाम होता है?

क) हड्डियों में कमजोरी

ख) आंखों में भारीपन

ग) कमजोरी और सांस लेने में कठिनाई

घ) जोड़ों में दर्द

21. प्राणायाम का उद्देश्य क्या है?

क) शारीरिक सहनशक्ति बढ़ाना

ख) इंद्रिय जानकारी को शांत करना

ग) श्वास और ऊर्जा का नियमन करना

घ) मन को केंद्रित करना

22. सार परीक्षण पर ध्यान केंद्रित करता है?

क) ऊतक तत्व

ख) आहार सेवन

ग) मानसिक स्थिति

घ) समानता

23. कौन सी आयुर्वेदिक तकनीक नाड़ी परीक्षण करती है?

क) प्रमाण-परीक्षा

ख) नाड़ी-परीक्षा

ग) प्रश्न-परीक्षा

घ) दर्शन-परीक्षा

24. विक्रति परीक्षण क्या निदान करता है?

क) संविधान

ख) रोगजनक स्थिति

ग) शारीरिक स्वास्थ्य

घ) शारीरिक माप

Scanner by Droid-Veda

योग का कौन सा चरण अवचेतन मन को संबोधित करता है?

क) यम

ख) धारणा

ग) प्रत्याहार

घ) नियम

कौन सी धातु जोड़ों में दर्द और गालों की सूखापन का कारण बनती है जब वह क्षतित होती है?

क) रक्त

ख) मांसा

ग) मेदास

घ) अस्थि

27. भारतीय दर्शन में चार पुरुषार्थ क्या हैं?

क) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

ख) स्वास्थ्य, संपत्ति, सुख, मुक्ति

ग) धर्म, धन, सुख, मुक्ति

घ) शरीर, मन, आत्मा, भावना

28. किसने स्वास्थ्य को पुरुषार्थों की पूर्ति के लिए नींव के रूप में प्रमुखता दी?

क) सुश्रुत

ख) चरक

ग) माधव

घ) भावप्रकाश

29. आधुनिक चिकित्सा सामान्यतः स्वास्थ्य को कैसे परिभाषित करती है?

क) मानसिक स्थिरता और सामंजस्य

ख) मानकीकृत मानदंड जैसे नाड़ी दर और रक्तचाप

ग) दोषों और अग्नि का संतुलन

घ) पोषण और आध्यात्मिक भलाई

Scanner by Droid-Veda

30. आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   क) केवल रोगों का उपचार
   ख) मन और पर्यावरण का संतुलन
   ग) समग्र स्वास्थ्य और सामंजस्य बनाए रखना
   घ) शारीरिक शक्ति बढ़ाना

31. आयुर्वेद में 'आयुस' का क्या अर्थ है?
   क) विज्ञान
   ख) जीवन
   ग) संतुलन
   घ) स्वास्थ्य

32. चरक के अनुसार 'आयुस' का कौन सा वर्णन नहीं है?
   क) धारी (जीवन का समर्थन करने वाला)
   ख) अनुपंढ़ (जोड़ने वाली शक्ति)
   ग) गति
   घ) जीवितं (सचेतना का प्रवाह)

33. आयुर्वेद की जड़ें किस ग्रंथ में पाई जाती हैं?
   क) भगवद गीता
   ख) चार वेद
   ग) रामायण
   घ) उपनिषद

34. आयुर्वेद में सांख्य दर्शन का मुख्य योगदान क्या है?
   क) दोषों का सिद्धांत
   ख) पदार्थों का वर्गीकरण
   ग) 24 मौलिक तत्वों की समझ
   घ) रोग निदान की विधियाँ

Scanner by Droid-Veda

आयुर्वेद में वैशेषिक दर्शन का केंद्रीय ध्यान किस पर है?

क) रोग रोगी की जांच

ख) पदार्थों (पदार्थ) का वर्गीकरण

ग) पाचन और चयापचय की जांच

घ) शरीर के ऊतकों की परिभाषा

सुश्रुत के अनुसार, शारीरिक स्वास्थ्य का एक घटक कौन सा नहीं है?

क) संतुलित दोष

ख) पाचन अग्नि (अग्नि)

ग) परिपूर्ण प्रतिरक्षा (ओजस)

घ) मानसिक संतोष (मनस)

आयुर्वेद में तीन जैविक द्रव्य कौन से हैं?

क) रसा, रक्त, मांसा

ख) वात, पित्त, कफ

ग) अग्नि, मल, धातु

घ) रसा, मेदास, अस्थि

वात असंतुलन किस लक्षणों का कारण बनता है?

क) जलन का अहसास और अनिद्रा

ख) सूखापन और ठंडक

ग) आलस्य और भारीपन

घ) अत्यधिक भूख और प्यास

आयुर्वेद में अग्नि क्या है?

क) पाचन एंजाइम का रूप

ख) पाचन के लिए उत्तरदायी रूपक अग्नि

ग) द्रव्य असंतुलन का नियामक

घ) एक आध्यात्मिक शक्ति

Scanner by Droid-Veda

40. आयुर्वेद में 'धातु' का क्या अर्थ है?

क) अपशिष्ट उत्पाद

ख) शरीर के मौलिक ऊतक

ग) मानसिक अवस्थाएँ

घ) रोग

41. संतुलित धातुओं का अंतिम उत्पाद क्या है?

क) प्लाज्मा

ख) ऊर्जा

ग) ओजस्

घ) मेदास

42. कौन सी धातु जीवन शक्ति और ऑक्सीजन के लिए जिम्मेदार है?

क) मांस

ख) रक्त

ग) मेदास

घ) अस्थि

43. मेदास में असंतुलन किस स्थिति की ओर ले जाता है?

क) मांसपेशियों की थकावट

ख) मोटापा या ऊर्जा की कमी

ग) एनीमिया

घ) जोड़ में दर्द

44. धातुओं के निर्माण का प्राथमिक स्रोत क्या है?

क) व्यायाम

ख) भोजन

ग) अग्नि

घ) ध्यान

Scanner by Droid-Veda

45. कौन सा ग्रंथ शरीर, इन्द्रियों, मन और आत्मा के संबंध को महत्व देता है?

क) सुश्रुत संहिता

ख) चरक संहिता

ग) अष्टांग हृदय

घ) माधव निदान

46. आयुर्वेद में स्वास्थ्य बनाए रखने का अंतिम उद्देश्य क्या है?

क) शारीरिक ताकत में वृद्धि

ख) मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त करना

ग) दोषों का संतुलन

घ) जीवनकाल में वृद्धि

47. पित्त के निर्माण में कौन सा तत्व संयोजन उत्तरदायी है?

क) पृथ्वी और जल

ख) अग्नि और जल

ग) वायु और आकाश

घ) जल और वायु

48. आयुर्वेद में 'दोष' का क्या अर्थ है?

क) शरीर में संतुलन

ख) जो तत्व संतुलन को बिगाड़ते हैं

ग) संरचनात्मक आधार

घ) पाचन क्षमता

49. कौन सा दोष गति और ऊर्जा के प्रवाह के लिए जिम्मेदार है?

क) कफ

ख) पित्त

ग) वायु

घ) इनमें से कोई नहीं

50. वायु से संबंधित कौन सा गुण नहीं है?

क) हल्का
ख) चिकना
ग) गतिशील
घ) शुष्क

51. पित्त को कौन सी स्वाद घटक कम करती है?

क) मीठा, खट्टा और नमकीन
ख) कसैला, कड़वा और मीठा
ग) कड़वा, तीव्र और कसैला
घ) खट्टा, नमकीन और तीव्र

52. कफ को किस प्रकार के खाद्य पदार्थ बढ़ाते हैं?

क) तीव्र और तीखा भोजन
ख) मीठा, खट्टा और नमकीन भोजन
ग) कड़वा और कसैला भोजन
घ) इनमें से कोई नहीं

53. बचपन में कौन सा दोष प्रमुख होता है?

क) वायु
ख) पित्त
ग) कफ
घ) इनमें से कोई नहीं

54. पित्त का मुख्य कार्य क्या है?

क) गति को नियंत्रित करना
ख) संरचनात्मक अखंडता को बनाए रखना
ग) रासायनिक गतिविधियों को नियंत्रित करना
घ) स्थिरता बनाए रखना

Scanner by Droid-Veda

55. आयुर्वेद में निदान की 'दर्शन परीक्षा' किस प्रकार की जांच होती है?
   क) रोगी का दृश्य निरीक्षण
   ख) नाड़ी स्पर्श द्वारा जांच
   ग) मूत्र का विश्लेषण
   घ) शारीरिक स्पर्श द्वारा परीक्षण

56. कौन सा दोष शाम के समय प्रमुख होता है?
   क) कफ
   ख) पित्त
   ग) वायु
   घ) इनमें से कोई नहीं

57. जब वायु कम हो जाती है, तो किस स्थिति का कारण बनती है?
   क) वायु
   ख) पित्त
   ग) कफ
   घ) सभी उपरोक्त

58. आयुर्वेद में किस प्राकृतिक प्रवृत्ति को दबाना प्रोत्साहित नहीं किया जाता है?
   क) छींकना
   ख) मूत्र विसर्जन
   ग) लालच
   घ) क्रोध

59. वृद्धावस्था में प्रमुख दोष कौन सा होता है?
   क) वायु
   ख) पित्त
   ग) कफ
   घ) इनमें से कोई नहीं

Scanner by Droid-Veda

60. दिन के किस समय पित्त प्रमुख होता है?

क) सुबह

ख) मध्याह्न

ग) शाम

घ) देर रात

61. आयुर्वेद में चिकित्सक की भूमिका को निम्नलिखित में से किस रूप में वर्णित किया गया है?

क) सहायक

ख) औषधि प्रदाता

ग) निदान विशेषज्ञ

घ) भीषक

62. आयुर्वेद में कौन सी विधि स्पर्श परीक्षण से संबंधित है?

क) नाड़ी-परीक्षा

ख) स्पर्श-परीक्षा

ग) मूत्र-परीक्षा

घ) मल-परीक्षा

63. कफ का मुख्य कार्य क्या है?

क) गति नियंत्रण

ख) संरचनात्मक स्थिरता

ग) पाचन क्रिया

घ) ऊर्जा प्रवाह

64. कफ असंतुलन से आमतौर पर कौन सी स्थिति उत्पन्न होती है?

क) अम्लता

ख) जोड़ में दर्द

ग) सर्दी या खांसी

घ) चक्कर आना

Scanner by Droid-Veda

65. किस जीवनकाल में पित्त प्रमुख होता है ?

क) बचपन

ख) मध्य आयु

ग) वृद्धावस्था

घ) शैशवावस्था

66. कफ का कौन सा गुण नहीं है ?

क) धीमा

ख) गर्म

ग) नम

घ) स्थिर

67. आयुर्वेद की 'प्रश्न-परीक्षा' विधि में क्या सम्मिलित होता है?

क) दृश्य निरीक्षण

ख) रोगी से प्रश्न पूछना

ग) शारीरिक स्पर्श द्वारा परीक्षण

घ) मूत्र का विश्लेषण

68. कौन सा स्वाद वायु दोष को बढ़ाता है ?

क) मीठा

ख) नमकीन

ग) कड़वा

घ) खट्टा

69. कौन सी निदान तकनीक में तेल-बूँद परीक्षण शामिल है ?

क) मूत्र-परीक्षा

ख) नाड़ी-परीक्षा

ग) मल-परीक्षा

घ) स्पर्श-परीक्षा

Scanner by Droid-Veda

70. चरक के अनुसार स्वास्थ्य के तीन स्तंभों में से कौन सा निम्नलिखित नहीं है?

क) आहार

ख) निद्रा

ग) व्यायाम

घ) ब्रह्मचर्य (इंद्रियों का नियंत्रण)

71. "तमोभाव" प्रकार की नींद से कौन सा दोष जुड़ा हुआ है?

क) वायु

ख) पित्त

ग) कफ

घ) तमस्

72. आयुर्वेद में किस प्रकार की नींद को सबसे अच्छा और पुनरुत्थानकारी माना जाता है?

क) तमोभाव

ख) श्लेष्म-संमुद्भव

ग) मनः-शरीर-श्रम-संमुद्भव

घ) रात्रि-स्वभाव-प्रभाव

73. आयुर्वेद के अनुसार अनिद्रा (नींद की कमी) का उपचार क्या है?

क) उपवासी रहना

ख) तेल मालिश

ग) शारीरिक गतिविधि

घ) अत्यधिक दिन का सोना

74. अत्यधिक दिन का सोना किस दोष को बढ़ाता है?

क) वायु और पित्त

ख) कफ और पित्त

ग) वायु और कफ

घ) वायु और तमस्

Scanner by Droid-Veda

75. आयुर्वेद में अत्यधिक या असमय नींद के लिए निम्नलिखित में से कौन सा उपचार नहीं है?

क) मल निष्कासन चिकित्सा

ख) स्मरणशील अभ्यासों के माध्यम से तमस को नष्ट करना

ग) तेल मालिश

घ) उपवास

76. आयुर्वेद में आहार का प्राथमिक कार्य क्या है?

क) यह नींद के पैटर्न को नियंत्रित करने में मदद करता है।

ख) यह किसी के दोष संविधान से मेल खाता है।

ग) यह शारीरिक गतिविधि उत्पन्न करता है।

घ) यह मानसिक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करता है।

77. आयुर्वेद में किसे तमसिक आहार माना जाता है?

क) ताजे पकाए गए भोजन

ख) ऐसे भोजन जो भारी और पचने में कठिन होते हैं

ग) तीन घंटे से अधिक पुराना भोजन

घ) हल्का और आसानी से पचने वाला भोजन

78. आयुर्वेद में किस प्रकार के पानी को उपचारात्मक गुणकारी माना जाता है?

क) नल का पानी

ख) वर्षा का पानी (अंतरिक्ष)

ग) आसुत पानी

घ) बोतल का पानी

79. आयुर्वेद में गुरु (भारी) भोजन का क्या प्रभाव होता है?

क) ये पचने में आसान होते हैं लेकिन पोषण प्रदान नहीं करते।

ख) ये शरीर को मजबूत करते हैं लेकिन पचने में कठिन होते हैं।

ग) ये सभी दोषों के लिए संतुलनकारी होते हैं।

घ) ये त्वरित पाचन और ऊर्जा उत्पन्न करते हैं।

Scanner by Droid-Veda

80. निम्नलिखित में से कौन सा उपचार आयुर्वेद में विषहरण प्रक्रिया का हिस्सा है?

क) रसायन

ख) भस्म

ग) पंचकर्म

घ) प्राणायाम

81. पंचकर्म चिकित्सा का पहला चरण क्या है?

क) शुद्धिकरण

ख) पुनर्वास

ग) तेल अनुप्रयोग जैसे प्रारंभिक प्रक्रियाएँ

घ) ध्यान और प्राणायाम

82. आयुर्वेद में किसे एक चिकित्सीय मालिश तकनीक माना जाता है?

क) स्वेदन (पसीना आना)

ख) अभ्यंग (तेल मालिश)

ग) आसन (मुद्राएँ)

घ) वस्ती (एनीमा)

83. आयुर्वेद में कौन से शरीर के बिंदुओं की मालिश की जाती है ताकि सामंजस्य पुनर्स्थापित किया जा सके और रोगों का उपचार किया जा सके?

क) चक्र बिंदु

ख) मर्म बिंदु

ग) प्राण बिंदु

घ) नाड़ी बिंदु

84. आयुर्वेद में एक रोगी की प्रकृति को समझने की कुंजी क्या है?

क) नाड़ी विश्लेषण

ख) दोष असंतुलन

ग) उनके आहार पसंद

घ) उनकी व्यक्तित्व और जीवन शक्ति

Scanner by Droid-Veda

85. आयुर्वेद में रोगी की उपस्थिति के आधार पर की जाने वाली दृश्य जांच को क्या कहा जाता है?

क) प्रश्न-परीक्षा
ख) नाड़ी-परीक्षा
ग) दर्शन-परीक्षा
घ) मूत्र-परीक्षा

86. आयुर्वेद में "मूत्र-परीक्षा" क्या है?

क) नाड़ी की आकृति का विश्लेषण
ख) मूत्र का विश्लेषण
ग) मल का विश्लेषण
घ) त्वचा की दृश्य जांच

87. निम्नलिखित में से कौन सा रोग प्रबंधन के लिए आयुर्वेदिक उपचार का एक प्रमुख घटक है?

क) आनुवंशिक परीक्षण
ख) केवल लक्षणों के आधार पर दवाइयाँ
ग) समग्र निदान और उपचार
घ) त्वरित सर्जरी

88. तनाव प्रबंधन के लिए योग का कौन सा अभ्यास एक परिवर्तनकारी घटक माना जाता है ?

क) प्राणायाम (श्वास तकनीकें)
ख) सर्जरी
ग) सामाजिक बातचीत
घ) दौड़ना

89. निम्नलिखित में से कौन सा योग के आठ अंगों के मार्ग (अष्टांग योग) क हिस्सा नहीं है?

क) यम (नैतिक व्यवहार)
ख) प्राणायाम (श्वास नियंत्रण)
ग) समाधि (आत्म-ज्ञान)
घ) कर्म (कार्य)

Scanner by Droid-Veda

90. योग में यम का अभ्यास किस पर केंद्रित है?

क) मानसिक अनुशासन

ख) नैतिक व्यवहार और आत्म-नियंत्रण

ग) शारीरिक मुद्राएँ

घ) श्वास नियंत्रण

91. कौन सा योग अभ्यास शारीरिक शक्ति और लचीलापन बनाने के लिए किया जाता है?

क) प्राणायाम

ख) धारणा

ग) आसन (मुद्राएँ)

घ) ध्यान

92. योग तनाव प्रबंधन में कैसे मदद करता है?

क) यह मानसिक तनाव बढ़ाता है

ख) यह शारीरिक गतिविधि बढ़ाता है

ग) यह स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करने में मदद करता है

घ) यह अधिक तनाव प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करता है

93. निम्नलिखित में से कौन सा योग अभ्यास मन को शांत करने के लिए किया जाता है?

क) आसन (मुद्राएँ)

ख) प्राणायाम (श्वास नियंत्रण)

ग) ध्यान

घ) कर्म योग

94. कर्म योग जीवन के किस पहलु पर केंद्रित होता है?

क) नैतिक व्यवहार

ख) शारीरिक शक्ति

ग) निःस्वार्थ क्रियाएँ

घ) मानसिक स्पष्टता

Scanner by Droid-Veda

उत्तर दर्शिका

1. (ख)
2. (ख)
3. (ग)
4. (ग)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ख)
8. (ख)
9. (क)
10. (ख)
11. (क)
12. (ख)
13. (क)
14. (ख)
15. (ख)
16. (ख)
17. (ग)
18. (क)
19. (क)
20. (ग)
21. (ग)
22. (क)
23. (ख)
24. (ख)
25. (ख)
26. (ख)
27. (क)
28. (ख)
29. (ख)
30. (ग)
31. (ख)
32. (ग)
33. (ख)
34. (ग)
35. (ख)
36. (घ)
37. (ख)
38. (ख)
39. (ख)
40. (ख)
41. (ग)
42. (ख)
43. (ख)
44. (ख)
45. (ख)
46. (ख)
47. (ख)
48. (ख)
49. (ग)
50. (ख)
51. (ख)
52. (ख)
53. (ग)
54. (ग)
55. (क)
56. (ग)
57. (क)
58. (ख)
59. (क)
60. (ख)
61. (घ)
62. (क)
63. (ख)
64. (ग)
65. (ख)
66. (ख)
67. (ख)
68. (ग)
69. (क)
70. (ग)
71. (ग)
72. (घ)
73. (ख)
74. (ख)
75. (ग)
76. (ख)

Scanner by Droid-Veda

77. (ग)
78. (ख)
79. (ख)
80. (ग)
81. (ग)
82. (ख)
83. (ख)
84. (घ)
85. (ग)
86. (ख)
87. (ग)
88. (क)
89. (घ)
90. (ख)

पुस्तक के विषय में

'भारतीय आरोग्य ज्ञान' पुस्तक, प्राचीन भारतीय ज्ञान और आधुनिक दृष्टिकोण को एक साथ प्रस्तुत करती है, जिससे सम्पूर्ण जीवनशैली का संतुलित मार्ग प्रशस्त होता है। यह पुस्तक आयुर्वेद और योग के सिद्धांतों पर आधारित है और स्वास्थ्य की परिभाषा, त्रिदोष, अग्नि, धातु, आहार और निद्रा की महत्ता जैसे विषयों को सरल रूप में समझाती है। इसमें व्यक्तिगत स्वास्थ्य की अवधारणा, रोग निदान की विधियाँ, और आयुर्वेद के अनुसार रोग प्रबंधन का विस्तृत वर्णन है। साथ ही यह योग के माध्यम से तनाव प्रबंधन, मानसिक संतुलन और जीवन में रूपांतरण के उपाय प्रस्तुत करती है। आधुनिक जीवन की चुनौतियों के लिए प्राचीन समाधान प्रदान करती यह पुस्तक, पाठकों को स्वस्थ, संतुलित और सुखद जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है।

Supported by :



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-06-2

Bharat BoudhIKS

खंड-5

प्रकृति और चेतना

प्राचीन भारत का पर्यावरणीय ज्ञान

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान



भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251
E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg
http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

प्रकृति और चेतना:
प्राचीन भारत का पर्यावरणीय ज्ञान

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वतापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **प्रकृति और चेतना: प्राचीन भारत का पर्यावरणीय ज्ञान**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. मीनाक्षी शर्मा

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-28-4

मूल्य : 230/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश



प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह



प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

प्रस्तावना	9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1. प्राकृतिक संसाधनों का आदर्श उपयोग	14
1.1 पर्यावरण की वैदिक अवधारणा	14
2. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और मनुष्य का कर्तव्य	16
2.1 वृक्षों का संरक्षण	16
2.2 नदियों का महत्व	18
2.3 वनों का संरक्षण	18
3. प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग	18
3.1 जल प्रबंधन	19
3.2 आधुनिक औषधियों की जड़ें	19
4. धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण	19
5. प्राचीन भारत में पंचतत्त्व	20
5.1 पंचतत्त्व का उत्थान और परिचय	21
5.2 पंचतत्त्व की व्याख्या	22
5.3 पंचतत्त्व का संतुलन और जीवन पर प्रभाव	35
5.4 मानसिक संतुलन	36
6. प्राचीन भारत में औषधीय पौधों का महत्व	37
6.1 आयुर्वेद और औषधीय पौधे	38
6.2 आयुर्वेदिक ग्रंथों में औषधीय पौधों का उल्लेख	38
6.3 प्रमुख औषधीय पौधों का विवरण	38
6.4 औषधीय पौधों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व	40
6.5 औषधीय पौधों का संरक्षण	41
7. निष्कर्ष	41
अनुशंसित पठन सामग्री	42
बहु विकल्पीय प्रश्न	44
उत्तरदर्शिका	75

"The Vedas haunt me. In them I have found eternal compensation, unfathomable power, unbroken peace."

(Source: The Commemorative Sanskrit Souvenir 2013 Bhartiya Vidya Bhavan)

* * * *

"I owed a magnificent day to the Bhagavad Gita. It was as if an empire spoke to us, nothing small or unworthy, but large, serene, consistent, the voice of an old intelligence which in another age and climate had pondered and thus disposed of the same questions which exercise us."

(Source: Sacred Jewels of Yingt-by Dave DeLuca)



Ralph Waldo Emerson

American essayist, lecturer, poet and Unitarian Minister who led the transcendentalist movement in the mid-nineteenth century. He was a persistent critic of pressures of society and disseminated his views through lectures and essays. His well-known works are Self-Reliance, The Over Soul, Circles, The Poet and Experience, which inspired intellectuals like Thoreau, Nietzsche, James, Armand, Goldman, Proust and Bloom.

प्रस्तावना

पर्यावरण संरक्षण आधुनिक समय में एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय रहा है, क्योंकि जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और जैव विविधता की हानि गंभीर खतरे पैदा कर रहे हैं। हालांकि, भारत में पर्यावरण संरक्षण हजारों वर्षों से गहराई से जुड़ा रहा है। प्राचीन भारतीय ग्रंथ जैसे वेद, उपनिषद और पुराण मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध पर जोर देते हैं और सतत जीवन शैली की वकालत करते हैं। पंचमहाभूत (पांच तत्व-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) को जीवन के लिए मूलभूत माना गया है, और इनका संतुलन कल्याण के लिए आवश्यक है।

प्राचीन भारतीय समाज पर्यावरण संरक्षण को नैतिक और आध्यात्मिक कर्तव्य के रूप में मानता है। गंगा जैसी जलधाराओं को पवित्र माना जाता है, जंगलों को पूजनीय माना जाता है, और वृक्षों को देवताओं के रूप में पूजा जाता है। ऋग्वेद जैसे ग्रंथ प्राकृतिक संसाधनों की शुद्धता को रेखांकित करते हैं, जबकि मनुस्मृति जैसे शास्त्र वनों की कटाई के खिलाफ चेतावनी देते हैं। आयुर्वेद और सिद्ध चिकित्सा परंपराएं औषधीय पौधों के जिम्मेदार उपयोग को बढ़ावा देती हैं, जिससे प्राकृतिक संसाधनों की निरंतरता सुनिश्चित होती है।

इसी तरह, भारतीय चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद समग्र उपचार के लिए औषधीय पौधों को अत्यधिक महत्व देती है। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे ग्रंथ तुलसी, नीम, आंवला, अश्वगंधा और हल्दी जैसे पौधों के चिकित्सीय लाभों का विस्तार से वर्णन करते हैं, जो रोगों के उपचार और प्रतिरक्षा को मजबूत करने में सहायक होते हैं। औषधीय उपयोग के अलावा, इन पौधों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व भी है, जो स्थिरता और प्रकृति के प्रति सम्मान की भावना को बढ़ावा देता है।

प्राचीन भारतीय प्रथाएं, जैसे वर्षा जल संचयन और जैविक खेती, पारिस्थितिक संरक्षण में महत्वपूर्ण शिक्षाएं देती हैं। भारतीय महापुरुषों की दर्शन "सादा जीवन, उच्च विचार" का सिद्धांत संसाधनों की जिम्मेदार खपत को बढ़ावा देकर सतत जीवनशैली को

प्रोत्साहित करता है। इन सदियों पुराने सिद्धांतों को अपनाकर, हम पर्यावरण संतुलन को बहाल करने की दिशा में कार्य कर सकते हैं। आज, जब दुनिया पारिस्थितिक चुनौतियों का समाधान खोज रही है, तब प्राचीन भारतीय ज्ञान को फिर से अपनाकर एक स्वस्थ और अधिक सामंजस्यपूर्ण ग्रह के लिए स्थायी रणनीतियाँ विकसित की जा सकती हैं।

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है। इसके पूर्व छात्र विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं, जो विद्या भारती की शिक्षा-नीति की प्रभावशीलता को सुदृढ़ करते हैं।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

प्रकृति और चेतना: प्राचीन भारत का पर्यावरणीय ज्ञान

भूमिका

आजकल की सबसे बड़ी चिंताओं में से एक है पर्यावरण का संरक्षण। जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, वनस्पतियों और जीवों की विलुप्ति, और अन्य पर्यावरणीय संकटों ने मानवता के सामने एक गंभीर चुनौती खड़ी कर दी है। भारतीय समाज और संस्कृति में पर्यावरण को हमेशा से महत्वपूर्ण माना गया है, और इसके संरक्षण के लिए अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक सिद्धांत भी रहे हैं। भारत का पर्यावरण और उसके संरक्षण के प्रति दृष्टिकोण न केवल प्रकृति के प्रति सम्मान को दर्शाता है, बल्कि यह जीवन के साथ प्रकृति के संबंध को भी पुनः स्थापित करता है।



प्राकृतिक संसाधनों के प्रति आदर्श दृष्टिकोण, संतुलन और सामंजस्य की भावना प्राचीन भारतीय सभ्यता का अभिन्न हिस्सा रही है। भारत के प्राचीन ग्रंथों, धर्मशास्त्रों, और जीवन दर्शन में पर्यावरण और प्रकृति के प्रति गहरी श्रद्धा और सम्मान व्यक्त किया गया है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को देवता के रूप में पूजा जाता था, और मनुष्य का कर्तव्य था कि वह प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करे और उनका उचित उपयोग करे। इस पुस्तक में हम प्राचीन भारत में पर्यावरणीय जागरूकता के विभिन्न पहलुओं को समझेंगेऔर देखेंगे कि हमारे पूर्वजों ने कैसे पर्यावरण का संरक्षण किया।

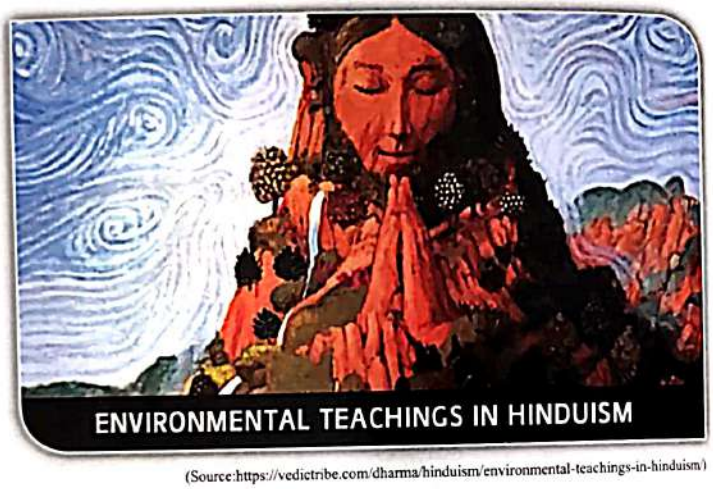

(Source:https://vedictribe.com/dharma/hinduism/environmental-teachings-in-hinduism/)

1. प्राकृतिक संसाधनों का आदर्श उपयोग

प्राचीन भारत में पर्यावरण के प्रति जागरूकता और समझ का परिचय हमें उनके जीवनशैली, धार्मिक विश्वासों, और सामाजिक व्यवहारों में मिलता है। भारतीय समाज ने हमेशा अपने चारों ओर के प्राकृतिक संसाधनों जैसे पानी, वायु, पृथ्वी, और वनस्पतियों का सम्मान किया। यह विचार कि प्रकृति का संरक्षण मानवता की भलाई के लिए आवश्यक है, वेदों, उपनिषदों, पुराणों और महाकाव्यों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

1.1 पर्यावरण की वैदिक अवधारणा

भारतीय वैदिक दृष्टिकोण के अनुसार सृष्टि की रचना दो शक्तियों के आधार पर मानी गई है-दैवी (सकारात्मक) और आसुरी (नकारात्मक)। श्रीमद्भगवद्गीता (16/06) में इन दोनों

प्रवृत्तियों का उल्लेख मिलता है। नकारात्मक तत्वों से जीवन और सृष्टि की रक्षा करने के लिए जो सुरक्षा-कवच आवश्यक होता है, उसे ही ‹पर्यावरण› कहा गया है। संस्कृत में इसे इस रूप में परिभाषित किया गया है:

"परितः आव्रियते येन तत् पर्यावरणम्"

अर्थात् वह जो चारों ओर से आच्छादित करता है। (जिससे चारों ओर घेरा जाता है, वह पर्यावरण है।)

वेदों में पर्यावरण के लिए परिधि, आवरण, परिभू, परिवृत और उल्ब जैसे विभिन्न शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह दर्शाता है कि पर्यावरण का विचार अत्यंत प्राचीन और गहराई से जुड़ा हुआ है।



"नासदीय सूक्त," जिसे अक्सर "सृष्टि का स्तोत्र" कहा जाता है, इन रहस्यों की खोज करने का प्रयास करता है। यह ऋग्वेद के 10वें मंडल का 129वां सूक्त है। यह सूक्त ब्रह्मांड की उत्पत्ति और संरचना के अध्ययन - ब्रह्मांड विज्ञान - से गहराई से जुड़ा हुआ है।

ब्रह्मांड एक खुला स्थान है, जिसकी कोई सीमायें नहीं हैं, कोई अंत नहीं है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई और गहराई अनंत हैं। पर इसकी रचना कैसे और क्यों हुई? नासदीय सूक्तः जो की सृष्टि की रचना के मंत्र के रूप में भी जाना जाता है, ऋग्वेद के 10वें मंडल का 129वां सूक्त है। इसका संबंध ब्रह्मांड विज्ञान और ब्रह्मांड की उत्पत्ति के साथ है। नासदीय सूक्त में कुल 7 मन्त्र हैं।

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्यौमा परो यत्।
किमावरीवः कुहु कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्। ऋग्वेद (10.129.1)

ऋग्वेद में सृष्टि के आरंभ से पहले की स्थिति का चित्रण है, जहाँ न दिन था, न रात, न आकाश था और न ही कोई स्थूल अस्तित्व – सिर्फ एक निराकार परम सत्ता विद्यमान थी। उस एकमेव परमात्मा की इच्छा और तप से ही सृष्टि की प्रक्रिया आरंभ हुई। उपनिषदों में इस सृजन-क्रम को क्रमशः बताया गया है – सबसे पहले आकाश की उत्पत्ति हुई, फिर वायु का निर्माण हुआ। वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की रचना हुई। पृथ्वी से वनस्पति और अन्न का जन्म हुआ और अंततः प्राणी (जीव) की उत्पत्ति हुई। यह पूरी प्रक्रिया ही पर्यावरण की नींव रखती है – जो सृष्टि के हर स्तर को एक-दूसरे से जोड़ती है और जीवन के संतुलन को बनाए रखती है।वेदों, जो भारतीय संस्कृति के सबसे प्राचीन धार्मिक ग्रंथ हैं, में भी प्रकृति के प्रति गहरी श्रद्धा और सम्मान की भावना देखने को मिलती है। ऋग्वेद के श्लोकों में यह कहा गया है:

आपो हि शुद्धयन्ति वस्त्रं, तं नमो भगवते रुद्राय,
महादेवाय, अत्यंत शुद्धां भूमिं शरणं व्रज।

इस श्लोक में जल, पृथ्वी, और आकाश के शुद्धता और पवित्रता का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि ये तत्व परमात्मा से जुड़े हुए हैं। जल, पृथ्वी और आकाश को शुद्ध बनाए रखने का कर्तव्य मानवता का है, क्योंकि इनकी पवित्रता से ही जीवन का संतुलन और अस्तित्व बना रहता है।

2. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और मनुष्य का कर्तव्य

प्राचीन भारतीय समाज ने यह माना था कि मनुष्य का कर्तव्य है कि वह प्रकृति और पर्यावरण के साथ सामंजस्यपूर्ण तरीके से रहे। इसे वे **"धर्म"** के रूप में मानते थे, जो जीवन के सभी पहलुओं में संतुलन बनाए रखने की शिक्षा देता था। इस दृष्टिकोण से पर्यावरणीय संरक्षण कोई बाहरी कार्य नहीं था, बल्कि यह जीवन का अभिन्न हिस्सा था। उदाहरण के तौर पर:

2.1 वृक्षों का संरक्षण

भारत में प्राचीन काल से वृक्षों को अत्यधिक सम्मानित किया गया है। वृक्षों को जीवन का एक अभिन्न हिस्सा माना जाता था, और उन्हें देवता के रूप में पूजा जाता था। हरे-भरे वृक्षों के साथ-साथ वनस्पतियों और जड़ी-बूटियों के महत्व को भी प्राचीन ग्रंथों में बताया गया है।



वृक्षों का महत्व

उपनिषदों में यह कहा गया है कि वृक्षों से पृथ्वी की शुद्धि होती है और उनके बिना जीवन का कोई अस्तित्व नहीं है। जैसे कि एक श्लोक में कहा गया:

"वृक्षस्य जीवनं प्रियतमा, येन प्राणिं प्रसन्नं करणीयं।"

यह श्लोक बताता है कि वृक्षों का जीवन में अत्यधिक महत्व है, क्योंकि यह हमें शुद्ध हवा, फल, और औषधियां प्रदान करते हैं।



भारत में नदियों के महत्व का चित्रात्मक वर्णन

2.2 नदियों का महत्व

प्राचीन भारत में नदियाँ पवित्र और दिव्य मानी जाती हैं। गंगा, यमुना, सिंधु, और सरस्वती जैसी नदियाँ देवियों के रूप में पूजी जाती हैं। इन नदियों का संरक्षण समाज का धार्मिक कर्तव्य समझा जाता है। वेदों और पुराणों में नदियों को जीवनदायिनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, और यह विश्वास किया जाता है कि नदियाँ समाज की शुद्धि और समृद्धि का कारण बनती हैं।

गंगा नदी को विशेष रूप से पवित्र माना जाता है, और इसे साफ रखने की आवश्यकता प्राचीन ग्रंथों में उल्लेखित है। गंगा के तटों पर स्थित धार्मिक स्थल इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत में नदी से गहरा संबंध और सम्मान कैसे रखा जाता था। यह नदियों के प्रति श्रद्धा दिखाता है और इस बात को साबित करता है कि प्रकृति और आध्यात्मिकता का आपस में कितना गहरा संबंध है, साथ ही इन प्राकृतिक संसाधनों की पवित्रता बनाए रखना कितना महत्वपूर्ण है।

2.3 वनों का संरक्षण

प्राचीन भारतीय समाज ने यह समझा था कि वन पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो न केवल जीवन के लिए आवश्यक संसाधन प्रदान करते हैं, बल्कि वे जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र का भी संतुलन बनाए रखते हैं। भारतीय धर्मग्रंथों में यह कहा गया है कि जंगलों में रहने वाले जीवों और वृक्षों का संरक्षण आवश्यक है।

महाभारत और **रामायण** में वनवास की कथा के माध्यम से यह संदेश दिया गया कि वनों में निवास करने वाले प्राणियों के अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, **मनु स्मृति** में भी यह बताया गया है कि जब किसी क्षेत्र में वृक्षों का अत्यधिक कटाव होता है तो पर्यावरणीय संकट उत्पन्न होता है।

3. प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग

प्राचीन भारत में प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण नहीं किया जाता था, बल्कि उनका विवेकपूर्ण और सीमित उपयोग किया जाता था। कृषि, जल प्रबंधन, और औषधियों के निर्माण में प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित और विचारशील उपयोग किया जाता था। उदाहरण के तौर पर–

3.1 जल प्रबंधन

प्राचीन भारत में जल प्रबंधन की अत्यधिक समझ थी। मौर्य काल में जलाशयों, तालाबों और नहरों का निर्माण किया गया था ताकि पानी का भंडारण किया जा सके और सूखे के दौरान जल की कमी न हो। कृष्णराज और चोल साम्राज्य के समय में भी जल प्रबंधन के कई नायाब उदाहरण मिले हैं। जल को जीवन का स्रोत माना जाता था, और इसे हर स्थिति में शुद्ध और सुरक्षित रखना आवश्यक था।

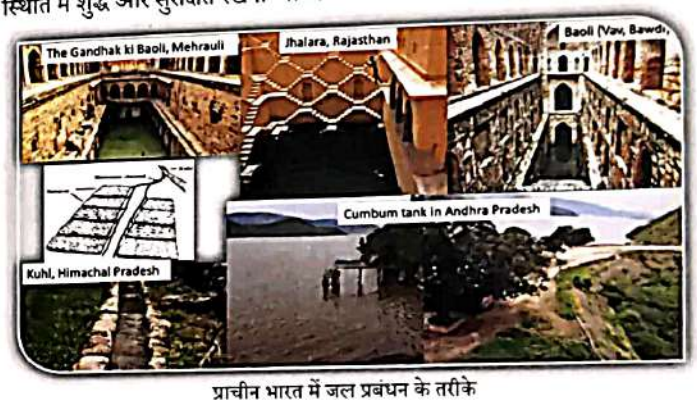

प्राचीन भारत में जल प्रबंधन के तरीके

3.2 आधुनिक औषधियों की जड़ें

प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धतियों जैसे आयुर्वेद और सिद्ध चिकित्सा में भी प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण महत्वपूर्ण था। औषधीय पौधों, जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों का उचित उपयोग किया जाता था। इन औषधियों का उत्पादन और उपयोग ऐसे तरीके से किया जाता था कि पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े।

4. धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण

प्राचीन भारत में, विशेष रूप से हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, और जैन धर्म में पर्यावरण के संरक्षण को अत्यधिक महत्व दिया गया था। इन धर्मों में प्रकृति को देवता के रूप में पूजा जाता था और यह विश्वास था कि प्रकृति का सम्मान करना एक धार्मिक कर्तव्य है।

- **हिंदू धर्म** में पर्यावरण को साकार रूप में देवी-देवताओं के रूप में पूजा जाता है, जैसे पृथ्वी देवी, गंगा, यमुनाजी, वनस्पति देवता, आदि।

- बौद्ध धर्म में भी पर्यावरण का संरक्षण महत्वपूर्ण था, और बौद्ध भिक्षु वृक्षों, पौधों, और वन्य जीवों को सम्मान देते थे।
- जैन धर्म में भी जीवों और वनस्पतियों के प्रति अहिंसा और संरक्षण का संदेश दिया गया है।



पर्यावरण का संरक्षण

प्राचीन भारत में पर्यावरणीय जागरूकता एक समग्र और संतुलित दृष्टिकोण थी, जो न केवल जीवन के भौतिक पहलुओं से जुड़ी थी, बल्कि आध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टिकोण से भी जुड़ी थी। यहाँ के लोग प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करते थे, और उनका संरक्षण उनके धार्मिक और सांस्कृतिक कर्तव्यों का हिस्सा था। आज के आधुनिक समय में जब पर्यावरणीय संकट गहरा हो गया है, तब हमें प्राचीन भारत की इन शिक्षाओं से प्रेरणा लेकर अपनी जीवनशैली में बदलाव लाने की आवश्यकता है। हमें पर्यावरण के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के लिए पुराने सिद्धांतों का पालन करना चाहिए, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ एक स्वच्छ और समृद्ध पर्यावरण में जीवन जी सकें।

5. प्राचीन भारत में पंचतत्त्व

प्राचीन भारतीय दर्शन में पंचतत्त्व का बहुत गहरा और महत्वपूर्ण स्थान है। पंचतत्व के रूप में पृथ्वी , जल , अग्नि, वायु और आकाश का उल्लेख किया गया है, जिन्हें ब्रह्मांड की मूलभूत संरचनाएँ माना गया है। ये पांच तत्त्व न केवल भौतिक रूप से ब्रह्मांड की रचना करते हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति, धर्म, और योग की परंपराओं में इनका आध्यात्मिक और दार्शनिक अर्थ भी है। प्राचीन भारत में पंचतत्त्व का विचार केवल भौतिक जगत के रूप में नहीं देखा गया था, बल्कि इन तत्वों का गहरा संबंध आत्मा, प्रकृति और ब्रह्मा से

जोड़ा गया था। इन तत्वों की संपूर्णता में जीवन की स्थिरता और अस्तित्व के सिद्धांत निहित थे। भारतीय विचारधारा के अनुसार, इन पांच तत्वों का सामंजस्यपूर्ण संतुलन ही जीवन के संपूर्ण चक्र को आकार देता है। यह तत्त्व मानव शरीर से लेकर पूरे ब्रह्मांड तक सभी स्तरों पर व्याप्त हैं।

5.1 पंचतत्त्व का उत्थान और परिचय

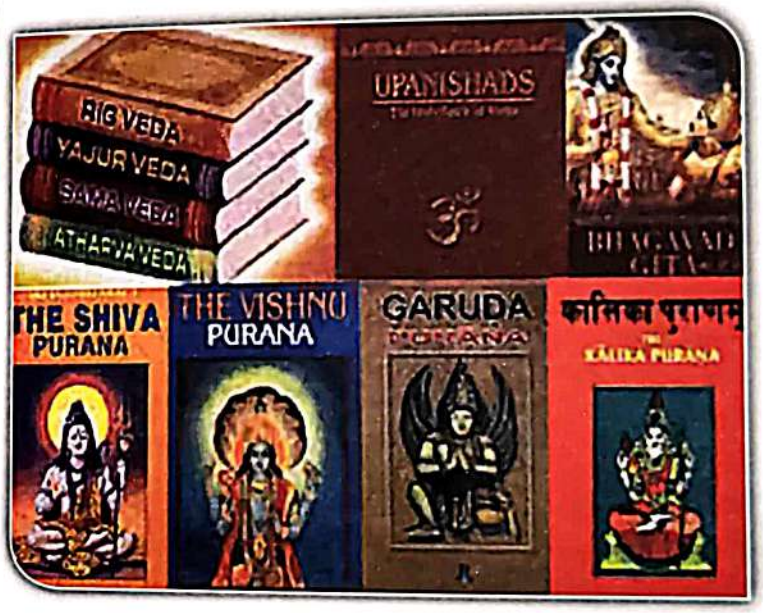

पंचतत्त्व का विचार भारतीय दर्शन की प्राचीनतम पुस्तकों, जैसे वेदों, उपनिषदों, और पुराणों में मिलता है। वेदों में इन तत्वों के बीच के संबंध और उनके अस्तित्व के सिद्धांत का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है। विशेष रूप से ऋग्वेद में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के बारे में चर्चा की गई है, और इन तत्वों को ब्रह्मांड की रचना के लिए आवश्यक माना गया है।

वेदों और उपनिषदों के माध्यम से यह समझा गया कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का अंतरसंबंध ब्रह्मांड के संचालन और जीवन की उत्पत्ति के लिए आवश्यक है। प्रत्येक तत्त्व अपने आप में महत्वपूर्ण था और एक दूसरे के साथ मिलकर जीवन और ब्रह्मांड का संतुलन बनाए रखता था। भारतीय दर्शन में इसे एक समग्र दृष्टिकोण से देखा

गया, जिसमें प्रत्येक तत्त्व को एक जीवित इकाई के रूप में माना गया, जो ब्रह्मांडीय सत्ता से जुड़ा हुआ है।

5.2 पंचतत्त्व की व्याख्या

5.2.1 पृथ्वी (Earth)



(Source: https://isha.sadhguru.org/en/wisdom/article/five-elements-pancha-bhutas)

पंचतत्त्व में पहला तत्त्व है **पृथ्वी**, जो भौतिक और स्थायी रूप से जीवन का आधार है। पृथ्वी को जीवन का संजीवक और पालनहार माना गया है। यह तत्व स्थिरता, दृढ़ता और संजीवता का प्रतीक है। पृथ्वी से जुड़े तत्त्व को मजबूत आधार देने के कारण यह सभी जीवों के लिए अनिवार्य है। भारतीय परंपरा में पृथ्वी को माँ के रूप में पूजा जाता है, क्योंकि वह सभी जीवों को जीवन देने वाली है। पृथ्वी से हमें भोजन, पानी, और आश्रय मिलता है। इसे **मूलाधार चक्र** (Root Chakra) से भी जोड़ा जाता है, जो शारीरिक और मानसिक संतुलन बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। पृथ्वी तत्व हमारे अस्तित्व की जड़ और संरचना है, और इसका सम्मान करना जीवन के संरक्षण और स्थायित्व के लिए आवश्यक माना जाता है।

पृथ्वी जीवन का मूल आधार है। समस्त जीवों का अस्तित्व इसी पर टिका हुआ है। सभी जीव इसी से उत्पन्न होते हैं और इसी पर विचरण करते हैं। पृथ्वी ही समस्त सृष्टि का पोषण करती है, इसलिए उसे 'पृथिवी विश्व की धारिणी' कहा गया है (मुण्डक उपनिषद 2/1/3)। इसका नाम ‹पृथ्वी› इसलिए पड़ा क्योंकि यह सभी जीवों को विस्तार और स्थान प्रदान करती है। यह समस्त प्राणियों के लिए जीवनदायिनी रस के समान है और सभी जीव भी इसके सार रूप हैं, जैसा कि बृहदारण्यक उपनिषद (2/5/1) में कहा गया है – "पृथ्वी समस्त जीवों के लिए मधु है और समस्त जीव पृथ्वी के लिए मधु हैं"।

त्वज्जातास्त्वयं चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपव्स्त्वं चतुंष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योर्तिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ (अथर्व० 12/1/15)

दो पांव वाले या चार पांव वाले, सभी प्रकार के जीव पृथ्वी पर ही आश्रित हैं। यही भूमि पंचमनुष्यों को भी आश्रय देती है, और इसी पर विद्यमान जीवन के लिए सूर्य अपनी किरणें बिखेरता है।

जनं बिभ्रती बहुधा विर्वाचसं नानधिमीणं पृथिवी येथौक्सम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।- (अथर्व. 2/1/44-45)

अर्थ यह है कि धरती पर ही सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यही भूमि सांस्कृतिक विविधताओं की जननी है। यह अपने गर्भ में कीमती रत्नों, धातुओं और खनिजों को संजोए रहती है, और साथ ही यह अनगिनत वनस्पतियों, विभिन्न भाषाओं के बोलने वालों तथा भिन्न-भिन्न विश्वासों को मानने वाले लोगों को भी एक परिवार की तरह अपनाए हुए है। यह धरती न केवल सभी को आश्रय देती है, बल्कि उन्हें अन्न-धन से भरपूर भी रखती है।

वर्तमान में तीव्र औद्योगिक विकास की दौड़ ने हमारी धरती माता को असहनीय पीड़ा दी है। मिट्टी की उपजाऊ शक्ति लगातार क्षीण होती जा रही है। हरित आच्छादन खत्म हो रहा है, नदियाँ सूखने की कगार पर हैं और भूमिगत जलस्रोतों का क्षरण हो रहा है। पृथ्वी के गर्भ में संचित मूल्यवान खनिज और रत्न तेज़ी से समाप्त हो रहे हैं। उसके ऊपर कंक्रीट के निर्माणों का भारी दबाव बढ़ता जा रहा है, और सुंदर पहाड़ियों को काटकर समतल किया जा रहा है। इस तथाकथित विकास के नाम पर हो रहे अंधाधुंध उत्खनन और दोहन से न केवल पर्यावरण संकट में है, बल्कि पारिस्थितिक संतुलन भी बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। अथर्ववेद (12/1/35) में भी यह बताया गया है कि आवश्यक खनन के पश्चात पृथ्वी से क्षमा याचना करते हुए उसका पुनर्वास किया जाना चाहिए।

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदर्षि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पितम् ।।

अर्थात्, हे धरती! मैं जो खनन कार्य कर रहा हूँ, वह शीघ्र ही पुनः भर जाए, इससे तुम्हें कोई गहरी क्षति न पहुँचे, न ही तुम्हारा अंतःकरण आहत हो। सबसे अधिक चिंताजनक बात यह है कि इसके साथ-साथ वनस्पतियों और जैव विविधताओं का भी विनाश हो रहा है – जो कि प्रकृति की ओर से पृथ्वी को मिला एक अनमोल उपहार है। यह स्थिति पृथ्वी के संतुलन के लिए अत्यंत गंभीर खतरा बनती जा रही है। इसलिए इस अनुपम धरा की रक्षा करना अब अत्यावश्यक हो गया है।

अगर हम श्रद्धा और विवेक के साथ धरती के संसाधनों का उपयोग करें, तो पर्यावरणीय संकटों से बचा जा सकता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि इस सच्चाई से भली-भाँति परिचित थे, और उन्होंने पृथ्वी के प्रति गहरा सम्मान दर्शाया है। हमारी पारंपरिक दिनचर्या में यह सिखाया गया है कि प्रातः उठकर धरती पर पैर रखने से पहले उससे क्षमा माँगनी चाहिए। यह भावना उन शब्दों में प्रकट होती है जिनमें धरती को समुद्र के वस्त्र पहनने वाली, पर्वतों को अपने अंगों में समेटने वाली, और जीवों का पालन-पोषण करने वाली विष्णुपत्नी के रूप में नमन किया जाता है। व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि वह उनके ऊपर पैर रखने जा रहा है और इसके लिए क्षमा चाहता है।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।

पृथ्वी की रक्षा का सबसे प्रभावी तरीका यही है कि हम इसे इसके स्वाभाविक स्वरूप में बने रहने दें। हमें प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना होगा, न कि उसे जबरन अपने हिसाब से ढालने की कोशिश करनी चाहिए। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई, नदियों के प्रवाह को मोड़ना, विशाल बांधों का निर्माण, पहाड़ी क्षेत्रों में अत्यधिक पर्यटन और मानवीय गतिविधियाँ – ये सभी धरती को असंतुलित कर रहे हैं। साथ ही, विनाशकारी हथियारों का उपयोग पृथ्वी को आक्रोशित करने जैसा है। इस असंतुलन और दोहन का दुष्परिणाम अब सम्पूर्ण मानव जाति को भुगतना पड़ रहा है।

5.2.2 जल (Water)

दूसरा तत्त्व है जल, जो जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जल को शुद्धता, समृद्धि और संतुलन का प्रतीक माना जाता है। भारतीय संस्कृति में जल को दिव्य माना जाता है, और

नदियाँ, जैसे गंगा, यमुना, और सरस्वती को माँ के रूप में पूजा जाता है। जल जीवन का स्रोत है, और इसके बिना कोई भी जीवित प्राणी अस्तित्व में नहीं रह सकता।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरह मामवन्तु । (ऋ. 7/49/2)

जल सबसे पहला स्थूल भौतिक तत्व है, जिसमें हम देखने और छूने – दोनों इंद्रियों के माध्यम से अनुभव कर सकते हैं। इसी कारण इसे सृष्टिकर्ता की प्रारंभिक रचना भी माना गया है-"अप एव ससजीवी"। जब सृष्टि प्रलय की स्थिति में थी, तब सब कुछ जल में विलीन था। उस समय समूचा अस्तित्व एक अज्ञात, जलमय अंधकार में समाया हुआ था-जैसा कि ऋग्वेद (10/129/3) में कहा गया है: "तर्म आसीत् तमसा गुह्महमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं।"

प्राचीन मान्यताओं के अनुसार, पृथ्वी का आरंभ भी जल से ही हुआ था। ऋग्वेद में जल को एक देवता के रूप में पूजा गया है और उसकी महिमा का वर्णन अत्यंत भावपूर्ण ढंग से किया गया है। इनमें जल के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन मिलता है-जैसे ***दिव्य***, ***स्रवंती***, ***खनित्रिमा*** और ***स्वयंजा***, जो अत्यंत सुंदर उपमाओं के साथ प्रस्तुत किए गए हैं।

दिव्य जल वह है जो आकाश से वर्षा के रूप में प्राप्त होता है। **स्रवंती जल** नदियों और जलधाराओं में प्रवाहित होने वाला जल है, जिसकी तुलना उस गाय से की गई है जो अपने बछड़े से मिलने के लिए दौड़ती है- **"वश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमजग्मुः"** (ऋग्वेद 1/32/02)। **खनित्रिमाप** वह जल है जिसे मनुष्य धरती से कुएँ आदि के माध्यम से निकालता है। **स्वयंजा** वे जल स्रोत हैं जो प्राकृतिक रूप से तालाबों, झीलों आदि के रूप में उपलब्ध होते हैं।

इसके अलावा वेदों और संहिताओं में जल के अन्य प्रकारों का भी उल्लेख है:

- रेगिस्तानी क्षेत्रों से मिलने वाला जल – *धन्वन्य*
- हिमनदों से प्राप्त जल – *हैमवत*
- प्राकृतिक जलस्रोतों का जल – *स्वयंजा*
- बावड़ी का जल – *वैशन्त*
- नदियों का जल – *मधुश्चुतः*
- नहरों का जल – *कुल्य*

- कुओं का जल – *कूप्य*
- बड़ी झीलों का जल – *हूलह*
- तालाब का जल – *स्रुत्य*
- वनस्पतियों में मौजूद जल – *वनं*

(संदर्भ: यजुर्वेद 16/37-38, तैत्तिरीय संहिता 4.5.7.1-2/7.4.13)

इन सभी जल स्वरूपों में *समुद्र* को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, जिसे "समुद्रज्येष्ठाः" कहा गया है (ऋ. 7/49/1), क्योंकि वह जल का सबसे बड़ा भंडार है। जल के अधिपति देवता *वरुण* माने गए हैं। इस जल में *सोम* अर्थात अमृत का वास है। देवताओं को शक्ति और ऊर्जा इसी जल से प्राप्त होती है, और *वैश्वानर अग्नि* का भी निवास इसी में माना गया है।

यासु राजा वरुणो यासु सोयो विश्वेदेवा यासूर्जं मर्दन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु। (ऋ० 7/49/4)

जल को जीवन का मूल स्रोत माना गया है। जीवन की उत्पत्ति भी जल से ही हुई है – प्रारंभिक एककोशिकीय जीव सबसे पहले उथले जल में विकसित हुए थे। जीवन का अस्तित्व जल के बिना असंभव है। आज वैज्ञानिक विभिन्न ग्रहों और उपग्रहों पर जल की खोज में लगे हुए हैं, किंतु अब तक उन्हें सफलता नहीं मिल सकी है। यह हमारी पृथ्वी की विशेषता है कि यहाँ जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। जल की उपस्थिति के कारण ही पृथ्वी पर हरियाली है, और आकाश का प्रतिबिंब जल में पड़ने के कारण ही यह ग्रह दूर से नीले रंग का प्रतीत होता है।

भारतीय परंपरा में जल को न केवल जीवनदायी माना गया है, बल्कि उसे पवित्रता और शुद्धता का प्रतीक भी माना जाता है। विशेष रूप से नदियों के जल को तो अति विशिष्ट स्थान प्राप्त है – जैसा कि *उत्तररामचरित* (1/13) में कहा गया है: "तीर्थों का जल ही बाह्य और आंतरिक शुद्धि का एकमात्र साधन है।" हमारे धार्मिक अनुष्ठानों में जल का प्रयोग अनिवार्य होता है – पवित्रीकरण, प्रौक्षण (शुद्धिकरण), और आचमन जल के माध्यम से ही आरंभ होते हैं। किसी भी संकल्प या पूजन में जल को हाथ में लेकर ही उसका आरंभ किया जाता है।

देवताओं की पूजा में जल की विविध भूमिकाएँ हैं: उनके चरण धोने के लिए *पाद्य*, हाथ धोने के लिए *अर्घ्य*, मुख शुद्धि के लिए *आचमनीय* और स्नान के लिए *स्नानीय* जल आवश्यक होता है। ये सभी प्रक्रियाएँ जल की शुद्धता और उसकी महत्ता को दर्शाती हैं। हमारे पूर्वजों ने जल स्रोतों की शुद्धता बनाए रखने के लिए जो मार्ग दिखाया, उसे अपनाना आज और भी जरूरी हो गया है। नदियों, तालाबों और कुओं को स्वच्छ रखने की जिम्मेदारी हमारी है। प्राचीन काल में नदियों में तांबे के सिक्के डालने की परंपरा केवल धार्मिक आस्था नहीं थी, बल्कि उसके पीछे वैज्ञानिक सोच भी थी – तांबा एक प्रभावशाली जलशोधक धातु है।

अथर्ववेद (1/33/2) में यह निर्देश दिया गया है कि राजा को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जल की शुद्धता बनाए रखने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति हो, और जनसामान्य केवल उस जल का उपयोग करें जो उबाला गया हो, सूर्य की किरणों या स्वर्ण जैसे धातुओं द्वारा शुद्ध किया गया हो। यह बात आज के संदर्भ में भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी प्राचीन समय में थी।

यासा राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम।
या अग्निं गर्भ दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।। (अथर्व. 1/33/2)

जीवनदायिनी जल संपदा की रक्षा हेतु हमारे प्राचीन ऋषियों ने कई प्रभावशाली उपाय विकसित किए थे। उन्होंने वर्षा जल के संरक्षण के लिए तालाब, कुएँ, बावड़ियाँ, आहर, और पइन जैसी पारंपरिक जल संरचनाओं का निर्माण करवाया, ताकि जल को सहेजा जा सके और आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग किया जा सके। राजस्थान जैसे कम वर्षा और खारे जल वाले क्षेत्रों में भी जल स्रोतों की रक्षा और उनके उचित उपयोग के लिए विशेष व्यवस्थाएँ बनाई गई थीं। यहाँ तक कि कई पारंपरिक त्योहारों का उद्देश्य भी वर्षा ऋतु से पूर्व जल-संग्रह की तैयारियों को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से प्रोत्साहित करना था।

यदि आज के परिप्रेक्ष्य में देखें, तो पृथ्वी पर उपलब्ध समग्र जल का लगभग 97.5% भाग समुद्र का खारा जल है, जो प्रत्यक्ष उपयोग के योग्य नहीं है। शेष 2.5% मीठे जल में से भी लगभग 68.6% भाग हिमखंडों के रूप में जमे हुए है और 30% भूमिगत जल के रूप में है। केवल 1.2% जल ही नदियों, झीलों, झरनों आदि में प्रवाहित होता है, जो मानव उपयोग के लिए सीधे उपलब्ध है। यदि हम इस सीमित मीठे जल की उपेक्षा करेंगे और इसे प्रदूषित करते रहेंगे, तो जल संकट निकट भविष्य में गंभीर रूप ले सकता है। दुर्भाग्यवश, यह अमूल्य जल संसाधन आज मानवजनित प्रदूषण के कारण संकट में है। उद्योगों से निकलने वाला अपशिष्ट, नगरीय मल-जल, घरेलू रसायन और कृषि में

प्रयुक्त रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक जैसे तत्व जल स्रोतों को बुरी तरह प्रदूषित कर रहे हैं। इससे जलचक्र बाधित हो रहा है और जल का स्वाभाविक शुद्धीकरण भी कठिन होता जा रहा है।

इसके अतिरिक्त, भूमिगत जल का अत्यधिक और अनियंत्रित दोहन भी गंभीर परिणाम ला रहा है – एक ओर यह अनेक रोगों और पारिस्थितिक असंतुलन का कारण बन रहा है, तो दूसरी ओर पेयजल की भारी कमी सामने आ रही है। तटीय क्षेत्रों में समुद्री जल के भूमिगत जल में मिल जाने से कृषि योग्य भूमि खारी और अनुपजाऊ होती जा रही है, जो भविष्य में एक बड़ी पर्यावरणीय आपदा का रूप ले सकती है। इस गहराते संकट से उबरने के लिए हमें अपनी प्राचीन संस्कृति और पारंपरिक जल संरक्षण प्रणालियों की ओर लौटना होगा-जहाँ जल को केवल एक संसाधन नहीं, बल्कि पूजनीय तत्व मानकर संरक्षित किया जाता था।

5.2.3 अग्नि (Fire)

तीसरा तत्त्व है **अग्नि**, जिसे भारतीय संस्कृति में अत्यधिक महत्व दिया गया है। अग्नि को ज्ञान, शक्ति और ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है। यह तत्त्व जीवन की ऊर्जा, आंतरिक शक्ति और प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है। अग्नि तत्त्व को देवताओं की शक्तियों से जोड़कर देखा जाता है, और यज्ञों और हवनों में अग्नि का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठानों का अभिन्न हिस्सा है। भारतीय वैदिक परंपरा में अग्नि को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त है। वह न केवल यज्ञ का देवता है, बल्कि पुरोहित, ऋत्विज, होता और यजमान की भूमिका भी स्वयं निभाता है।

ऋग्वेद का आरंभ यहीं से है-

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम्॥

(ऋ० 1/1/1)

अग्नि को प्रकाश का स्वरूप माना गया है – "ज्योतिर्मय अग्नि" (बृहदारण्यक उपनिषद् 1/5/11)। सूर्य, चंद्र और नक्षत्रों का तेज भी उसी अग्नि का ही प्रतिबिंब है। यही कारण है कि अग्नि को सृष्टि का प्राण कहा गया है – "अग्निह वै प्राणः" (जाबाल उपनिषद् 4)। भारतीय संस्कृति का मूलस्वर ही आग्नेय है। हमारे यहां अग्नि सर्वत्र विद्यमान है – पृथ्वी पर *वैश्वानर अग्नि*, स्वर्ग में *नाचिकेता अग्नि*, शरीर में *जठराग्नि*, वन में *दावाग्नि* और समुद्र में *बड़वाग्नि* के रूप में। जब हम भोजन करते हैं, तब उसे अग्नि को अर्पित करने जैसा माना जाता है – "आमयेऽग्नौ जुहोति" (मैत्रायणीय उपनिषद् 6/26)। अग्नि

जल में भी सूक्ष्म रूप में स्थित है – "स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः" (श्वेताश्वतर उपनिषद् 6/15)। बादलों में जो बिजली चमकती है, वह भी अग्नि का ही रूप है – "अग्नौ विद्युति विभाति" (मैत्रा. 6/24) ।

गृहस्थ आश्रम के पंचमहायज्ञों में अग्नि केंद्रीय साधन है और वैदिक यज्ञों में आहुतियाँ अग्नि के माध्यम से देवताओं तक पहुँचती हैं। वैदिक ऋषियों ने अग्नि को देवताओं का मुख कहा है – "अग्निर्वै देवानां मुखम्"। ऋग्वेद (1/1/4) में वर्णन है कि अग्नि ही यज्ञ को सम्पूर्ण दिशा में व्याप्त होकर देवताओं तक पहुँचाता है:

"अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति।"

इस प्रकार, अग्नि न केवल भौतिक स्तर पर, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीवन में भी एक सर्वव्यापक, पूजनीय तत्त्व है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ (श्वेताश्वतर 6/14)

अग्नि का एक विशेष रूप विद्युत् है, जो आज के जीवन में अत्यंत आवश्यक और सर्वव्यापी तत्त्व बन चुका है। हालांकि, विद्युत का उपयोग कोई आधुनिक खोज नहीं है – प्राचीन भारतीय ग्रंथ *अगस्त्य संहिता* में भी तड़ित, सौदामिनी, विद्युत, शतकुंभी, हृदिनी और अशनि जैसे विद्युत के छह स्वरूपों का उल्लेख मिलता है। उस समय विद्युत उत्पादन की जो विधियाँ अपनाई जाती थीं, वे पूर्णतः पर्यावरण-सहिष्णु थीं। जैविक शक्ति, रासायनिक ऊर्जा, सौर ऊर्जा, जल ऊर्जा और पवन ऊर्जा जैसे स्रोतों से ऊर्जा प्राप्त की जाती थी, जो प्रकृति को क्षति पहुँचाए बिना काम करती थीं।

वर्तमान समय में, ऊर्जा के लिए जिन स्रोतों पर निर्भरता बढ़ी है – जैसे कोयला, बड़े-बड़े जल बाँध और परमाणु ईंधन – उन्होंने कई पर्यावरणीय संकटों को जन्म दिया है। कोयले के अत्यधिक खनन से भूमि का क्षरण और प्रदूषण फैल रहा है, वहीं बाँधों ने नदियों के प्राकृतिक प्रवाह को बाधित कर उनके अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है। परमाणु ऊर्जा के संभावित खतरे और अतीत में हुए दुर्घटनाओं के उदाहरणों से इसकी विनाशकारी शक्ति का अनुमान पहले ही लग चुका है।

ऐसे परिदृश्य में, यह आवश्यक हो गया है कि हम अपने प्राचीन ज्ञान को युगानुकूल संशोधित रूप में अपनाएं। आज सौर ऊर्जा जैसे विकल्पों की ओर बढ़ता हुआ ध्यान वास्तव में भारतीय परंपरा की ओर लौटने का संकेत है। जिन्हें आज "वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत" कहा जा रहा है, वे वास्तव में अक्षय और स्वाभाविक ऊर्जा के स्रोत हैं। इसके

विपरीत, जो ऊर्जा स्रोत आज मुख्य माने जाते हैं – जैसे कोयला और नाभिकीय ईंधन – भारतीय शास्त्रों में उन्हें *पुरीष अग्नि* कहा गया है, अर्थात् पृथ्वी का अपशिष्ट, जिसे धरती में ही दबा रहना चाहिए। इसलिए, यह विचार करना आवश्यक है कि वास्तव में मुख्य और वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत कौन-से हैं। यदि हम शुद्ध और स्थायी ऊर्जा के प्रति दृष्टिकोण नहीं बदलते, तो प्रदूषण और पर्यावरणीय संकटों का समाधान संभव नहीं होगा। ऊर्जा नीति की इस पुनर्व्याख्या और पुनर्विचार की आज नितांत आवश्यकता है।

5.2.4 वायु (Air)

चौथा तत्त्व है **वायु**, जो जीवन के संचालन में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वायु को गति, स्वच्छता और स्वतंत्रता का प्रतीक माना जाता है। यह तत्त्व हमारे शरीर में श्वास के रूप में प्रवेश करता है और जीवन को सक्रिय रखता है। वायु पर्यावरण का अभिन्न अंग है और इसे प्राणवायु के रूप में भी जाना जाता है। इसके कारण ही पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व संभव है। वायु के माध्यम से हमारी श्वासों का संचलन होता है और यह हमारे शरीर के अंदर और बाहर निरंतर प्रवाहित होती रहती है। वायुमंडल की उपस्थिति ही पृथ्वी के जीवित रहने का कारण है। इसमें विभिन्न गैसों का संतुलित मिश्रण होता है, और यदि इनमें असंतुलन उत्पन्न हो जाए, तो यह सृष्टि के लिए विनाशकारी हो सकता है। भारतीय ऋषियों ने इस महत्वपूर्ण तत्त्व को पहचानते हुए वायु को देवत्व का स्वरूप दिया है। ऋग्वेद में वायु, वात और मरुत् के नामों से इसकी स्तुति की गई है। उपनिषदों में इसका विस्तृत रूप और ब्रह्म के समान व्यापकता का वर्णन किया गया है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठः 2/2/10)

'वायुः प्राणः' (मु.उप. 2/1/4) का अर्थ है कि वायु ही जीवन का प्राण है। इसे परमेश्वर का पैर भी माना गया है, जो उनकी सर्वव्यापीता का प्रतीक है – 'वायुः पादः'। वायु जीवन का मूल आधार है। ऋग्वेद में सृष्टि के सृजन के दौरान पहले उपभोग्य पदार्थों के निर्माण के बाद वायवीय जीवों की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है:

तस्मा॑द्य॒ज्ञात् स॑र्व॒हुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
प॒शूस्ताँश्च॑क्रे वाय॒व्या॑नारण्यान् ग्राम्याश्च॒ ये।। (ऋ. 10/90/8)

वायवीय (वायु में रहने वाले जीव) जीव जैसे कीट-पतंगे, पक्षी, आदि अत्यधिक संख्या में होते हैं और इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। वायु का अभ्यास ही जीवन का अभ्यास है, और इसके माध्यम से हमारे 'वातरशना' मुनिगण बिना आहार के लंबे समय तक जीवन यापन

करते रहे हैं। भारतीय तत्त्वज्ञों ने वायु के विभिन्न प्रकारों का भी वर्णन किया है। दर्शन ग्रंथों में पञ्चवायु – प्राण, अपान, समान, उदान, और व्यान – का उल्लेख मिलता है।

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिदेशगः।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः।।

पाँच प्रमुख पवन भेदों – प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान – के अतिरिक्त *नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त* और *धनञ्जय* नामक अन्य पाँच प्रकार की वायु का भी उल्लेख किया गया है। ये सभी शरीर के भीतर विशिष्ट कार्यों को नियंत्रित करते हैं और सामूहिक रूप से शारीरिक संतुलन बनाए रखते हैं। इनका कोई भी असंतुलन शरीर की संपूर्ण कार्यप्रणाली को प्रभावित कर सकता है। इसलिए, वायु की शुद्धता और संतुलन को बनाए रखना, जीवन की स्थिरता और स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है।

आज के युग में हम प्रकृति के स्वाभाविक ढाँचे को कृत्रिम औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के माध्यम से विकृत कर रहे हैं। विशाल कल-कारखानों, रासायनिक उत्सर्जनों और ओजोन परत के क्षरण जैसी मानवीय गतिविधियों ने पृथ्वी के पर्यावरणीय संतुलन को संकट में डाल दिया है। इन प्रक्रियाओं के कारण वायुमंडलीय विषाक्तता बढ़ गई है और ऑक्सीजन की उपलब्धता लगातार घट रही है, जबकि कार्बन डाईऑक्साइड और अन्य जहरीली गैसों की मात्रा खतरनाक स्तर तक पहुँच चुकी है। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि वर्तमान प्रवृत्तियाँ जारी रहीं, तो आने वाली कुछ ही पीढ़ियों में पृथ्वी पर जीवन कठिन हो जाएगा।

इस भयावह स्थिति से बचाव का एकमात्र उपाय यह है कि हम पर्यावरण संरक्षण के लिए तत्काल कदम उठाएँ और प्राचीन भारतीय जीवनशैली के उन उपायों को अपनाएँ, जो प्रकृति के साथ सामंजस्य की भावना पर आधारित थे। वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक, व्यापक वृक्षारोपण, शहरी क्षेत्रों में छतों पर हरियाली का विकास, और समय-समय पर यज्ञ आदि का आयोजन वायुप्रदूषण को नियंत्रित करने के प्रभावी उपाय हैं।

प्राचीन मनीषियों ने प्रकृति और जीव-जंतुओं के बीच संतुलन बनाए रखने का मार्ग *यज्ञ* के माध्यम से बताया। यज्ञ केवल अग्निहोत्र नहीं, बल्कि वह हर कर्म है जो परस्पर कल्याण की भावना से किया जाए। *भगवद्गीता* (3/10) में उल्लेख है कि प्रजापति ने सृष्टि के साथ-साथ यज्ञ की भी रचना की: **"सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः"**। यज्ञ के माध्यम से यह सृष्टि निरंतर ऊर्जा पाकर गतिशील बनी रहती है। यजुर्वेद (23/62) में इसे सृष्टि-चक्र का आधार बताया गया है – "अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः"। यज्ञ का

प्रभाव केवल वायुमंडल को शुद्ध करने तक सीमित नहीं है; यह भूमि, जल, और ध्वनि प्रदूषण को भी कम करने में सहायक होता है। साथ ही यह मानसिक और आत्मिक शुद्धि का माध्यम भी है, जिससे मनुष्य के भीतर के विकार शांत होते हैं और आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।



ऋग्वेद (2/14/3) में एक उल्लेखनीय प्रसंग के माध्यम से यह बताया गया है कि ज सोमरस द्वारा इंद्र को आच्छादित किया गया, तो यह संकेत मिलता है कि पृथ्वी क ऊपरी आवरण घने बादलों के समान होना चाहिए, जिसमें किसी प्रकार की दरार या छि नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इसी आवरण के संरक्षण से पृथ्वी पर वनस्पतियाँ, औषधि और अन्न जैसे जीवनोपयोगी तत्व उत्पन्न होते हैं। यदि यह रक्षा कवच भंग हो जा तो नाशकारी तत्व सक्रिय होकर जीवन को संकट में डाल सकते हैं। वर्तमान वैज्ञानि दृष्टिकोण से देखें तो यह वर्णन *ओजोन परत* के महत्व को रेखांकित करता है। ओजो परत सूर्य से आने वाली हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों को रोकने का कार्य करती है किन्तु आज तकनीकी विकास की दौड़ में मनुष्य द्वारा छोड़ी जा रही क्लोरोफ्लोरोकार्ब (CFCs), मोनोऑक्साइड, हाइड्रोफ्लोरोकार्बन और नाइट्रस ऑक्साइड जैसी जहरी गैसों के कारण इस परत में छिद्र हो गया है। इस दरार के चलते ब्रह्मांडीय विकिरणें पृ के वातावरण में प्रवेश कर रही हैं, जिससे अनेक घातक और नई बीमारियाँ – जैसे जॉ *वायरस, इबोला, निपाह, बर्ड फ्लू, स्वाइन फ्लू, डेंगू और चिकनगुनिया* – देजी ले रही हैं।

ऐसे में वेदों का यह सन्देश और भी प्रासंगिक हो जाता है कि हमें वनों का संरक्षण और विस्तार करना चाहिए, क्योंकि यही पृथ्वी के फेफड़े हैं। ये न केवल हवा को शुद्ध करते हैं बल्कि तापमान को संतुलित और वातावरण को जीवनोपयोगी बनाए रखते हैं। *अथर्ववेद* (12/1/11) में स्पष्ट कहा गया है – **"अरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु"**, अर्थात् जंगल पृथ्वी के लिए कल्याणकारी बनें। यही वनों का महत्व है, क्योंकि इनके बिना वायुमंडल को शुद्ध और संतुलित बनाए रखना संभव नहीं। प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राकृतिक आपदाओं जैसे आँधी, तूफान आदि का उल्लेख तो मिलता है, किंतु कृत्रिम वायु प्रदूषण का कोई संदर्भ नहीं मिलता – और यह आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि हमारे पूर्वज प्रकृति को देवता के रूप में पूजते थे। उनके लिए प्रकृति का दोहन नहीं, संरक्षण ही धर्म था।

शुद्ध वायु की अवधारणा का एक अत्यंत मनोहारी चित्रण *महाकवि कालिदास* ने *"अभिज्ञानशाकुन्तलम्"* के चौथे अंक में प्रस्तुत किया है, जब शकुन्तला अपने ससुराल की ओर प्रस्थान करती है। आशीर्वादस्वरूप यह कामना की जाती है कि उसका मार्ग सरोवरों की हरियाली, वृक्षों की छाया, कमल पुष्पों की सुगंध और शीतल समीर से सुशोभित हो –

रम्यान्तरः कमलिनी हरितैः सरोभिः
छायादुमैर्नियमितार्कमरीचितापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः॥ (अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/11)

यह दृश्य न केवल प्राकृतिक संतुलन की सुंदरतम कल्पना है, बल्कि यह दर्शाता है कि शुद्ध और संतुलित वायुमंडल ही जीवन के लिए सर्वोत्तम वातावरण प्रदान करता है।

5.2.5 आकाश (Ether)

पंचतत्त्व में पांचवां और अंतिम तत्त्व है **आकाश**, जिसे स्पेस या इथर भी कहा जाता है। आकाश तत्त्व को ब्रह्मांडीय अवकाश, अपार स्थान और अनंतता का प्रतीक माना जाता है। यह तत्त्व जीवन के विस्तार, निरंतरता और ब्रह्मांडीय ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है। आकाश वह तत्त्व है जिसमें सभी अन्य तत्त्व समाहित होते हैं और इससे जीवन की हर गतिविधि जुड़ी रहती है। आकाश तत्त्व के माध्यम से हम मानसिक और आध्यात्मिक स्पष्टता प्राप्त करते हैं। परमात्मा से उत्पन्न प्रथम पर्यावरणीय तत्व ‹आकाश› है, जो समस्त सृष्टि का व्यापकतम आवरण है। यह न केवल ब्रह्मांड की संरचना का आधार

है, बल्कि सृजन और संचरण के लिए आवश्यक अवकाश भी प्रदान करता है। इसी कारण, आकाश को भारतीय दर्शनों और ग्रंथों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। *अमरकोश* में भी आकाश के लिए पाँच पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया गया है (अमरकोश 1/2/167-172)।

उपनिषदों में आकाश को ब्रह्म की एक अभिव्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया है। इसी में सूर्य, चंद्रमा तथा अन्य खगोलीय पिंड स्थित हैं। इसकी सर्वव्यापकता इसे सबसे महान तत्व बनाती है। आकाश की सबसे विशिष्ट विशेषता यह है कि शब्द इसी में उत्पन्न होता है, इसी में प्रवाहित होता है, और इसी के माध्यम से ग्रहण किया जाता है। अतः कहा गया है: *"शब्दगुणकम् आकाशम्"* – अर्थात् शब्द आकाश का गुण है।

जब हम बोलते हैं या सुनते हैं, तो यह क्रिया आकाशीय माध्यम से ही संभव होती है। ध्वनि तरंगें, कानों द्वारा ग्रहण की जाती हैं, और यह तभी संभव होता है जब आकाश के भीतर और हमारे श्रवणेंद्रिय में सामंजस्य हो। *वर्तमान विज्ञान* के अनुसार, सामान्य मनुष्य की श्रवण सीमा 20 से 30 डेसिबल के मध्य होती है। इससे अधिक ध्वनि का स्तर ध्वनि प्रदूषण कहलाता है, जो न केवल कानों के लिए हानिकारक है, बल्कि सम्पूर्ण मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। आज के यंत्रप्रधान युग में कल-कारखानों, यातायात के साधनों, निर्माण कार्यों और डीजे आदि से उत्पन्न अत्यधिक शोर ने मानव जीवन को तनावग्रस्त बना दिया है। इसका प्रभाव रक्तचाप, अनिद्रा, सुनने की क्षमता में कमी, सिरदर्द और मानसिक थकान के रूप में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, मोबाइल, टेलीविजन, कंप्यूटर जैसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से निकलने वाली विकिरणें और परमाणु परीक्षणों के परिणामस्वरूप उत्पन्न रेडियोधर्मी प्रदूषण भी आकाशीय संतुलन को बिगाड़ रहे हैं।

भारतीय मनीषा ने ध्वनि के दुरुपयोग की बजाय उसके कलात्मक और सृजनात्मक उपयोग पर बल दिया। यहाँ ध्वनि को शुद्धता और सौम्यता से जोड़ा गया – जिससे *स्वर-विज्ञान, संगीत*, और *ऋचाओं* का जन्म हुआ। ऋषियों ने रचनात्मक ध्वनियों की संरचना इस प्रकार की कि वे ऋतु, समय और भाव के अनुरूप वातावरण को अनुकूल बना सकें। यह दृष्टिकोण न केवल ध्वनि प्रदूषण से मुक्ति देता है, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए भी सहायक है। वेदों में वर्णित छंद – जैसे गायत्री, त्रिष्टुप, जगती, अनुष्टुप आदि – न केवल वाणी की शक्ति को दिशा देते हैं, बल्कि *दिशाओं को संतुलित करते हुए जीवन के दोषों को भी शांत करने का कार्य करते हैं।*

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पा सह।
बृहत्युष्णिहर्हा कुकुप्सुचीभिः शम्यतु त्वा।। (यजुर्वेद 23/33)

यह मंत्र ध्वनि की संतुलनकारी शक्ति को उजागर करता है, जो सम्पूर्ण सृष्टि को स्थिरता और शांति प्रदान करने में समर्थ है। भारतीय स्वर विज्ञान और संगीत की अवधारणाओं पर आधारित आज के प्रमुख चिकित्सा विशेषज्ञों ने साउंड थेरेपी (ध्वनि चिकित्सा) की खोज की है और इसे असाध्य रोगों के उपचार में प्रभावी पाया है।

आकाश, जो इस सृष्टि का विशालतम हिस्सा है, उसमें सूक्ष्मतम आणविक कणों से लेकर विशालतम खगोलीय पिंड तक समाहित हैं। इन सभी कणों और पिंडों से बनती हुई अनगिनत आकाशगंगाएँ एक लयबद्ध तरीके से नृत्य करती हुई एक व्यापक पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करती हैं। ये सभी आकाशीय तत्व आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, एक दूसरे को सहारा देते हैं और परस्पर पूरक हैं। पूरी सृष्टि का प्रत्येक कण इसके संगीत से गूंज रहा है, जिसका गमन एक प्रकार का नृत्य है, और इस नृत्य से उत्पन्न होने वाली ध्वनि उसका गीत है। यही नटराज के नृत्य का सौम्य रूप, यानि लास्य, है। इसी लास्य के माध्यम से आकाश का संरक्षण संभव हो पाता है, क्योंकि अत्यधिक ध्वनि तीव्रता तांडव रूप में सृष्टि की महाप्रलय की स्थिति उत्पन्न कर सकती है। इस नटराज के लास्य और नृत्य की अनुभूति को भौतिकविज्ञानी फ्रिट्जोफ काप्रा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *"ताओ ऑफ फिजिक्स"* की भूमिका में भी उल्लेख किया है।

5.3 पंचतत्त्व का संतुलन और जीवन पर प्रभाव

प्राचीन भारतीय दर्शन में यह माना गया है कि पंचतत्त्वों का संतुलन जीवन के लिए आवश्यक है। जब इन तत्वों में संतुलन होता है, तो जीवन में शांति, संतुलन और स्वास्थ्य रहता है। लेकिन अगर इनमें से कोई भी तत्व असंतुलित हो जाए, तो यह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक समस्याओं को जन्म देता है।

शरीर और पंचतत्त्व

भारतीय चिकित्सा पद्धतियों, जैसे आयुर्वेद और योग, में पंचतत्त्वों का गहरा संबंध शरीर से है। आयुर्वेद में शरीर को तीन दोषों (वात, पित्त, कफ) से जोड़ा गया है, जो पंचतत्त्वों के असंतुलन के कारण उत्पन्न होते हैं। वात दोष वायु तत्व से संबंधित है, पित्त दोष अग्नि से संबंधित है, और कफ दोष पृथ्वी और जल से संबंधित है। आयुर्वेद में इन तीन दोषों के संतुलन को बनाए रखने के लिए पंचतत्त्वों के सही उपयोग की सिफारिश की जाती है।



5.4 मानसिक संतुलन

मानसिक शांति और संतुलन के लिए भी पंचतत्त्वों का महत्वपूर्ण योगदान है। जब मनुष्य के भीतर इन तत्वों का संतुलन होता है, तो वह आंतरिक शांति, ध्यान, और मानसिक स्पष्टता प्राप्त करता है। योग के माध्यम से भी इन पंचतत्त्वों को संतुलित किया जाता है। विशेष रूप से प्राणायाम, ध्यान, और आसन के अभ्यास के द्वारा इन तत्वों को संतुलित किया जाता है।



मानसिक शांति और संतुलन के लिए पंचतत्त्वों का योगदान

प्राचीन भारत में पंचतत्त्व का विचार केवल एक भौतिक सिद्धांत नहीं था, बल्कि यह जीवन के आध्यात्मिक और मानसिक पहलुओं को भी समझने का एक तरीका था। इन पांच तत्त्वों के संतुलन से ही जीवन की समृद्धि, शांति और ऊर्जा का प्रवाह संभव होता है। पंचतत्त्वों का संतुलन और सम्मान न केवल हमारे भौतिक अस्तित्व के लिए आवश्यक है, बल्कि यह हमारे मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास के लिए भी अनिवार्य है। पंचतत्त्वों का यह ज्ञान भारतीय दर्शन का एक अनमोल रत्न है, जो न केवल प्राचीन समय में, बल्कि आज भी हमारे जीवन को सही दिशा और उद्देश्य प्रदान करने में सहायक है। इन तत्त्वों की महत्ता को समझते हुए हमें अपनी दिनचर्या में संतुलन बनाए रखना चाहिए और पर्यावरण का सम्मान करना चाहिए।

6. प्राचीन भारत में औषधीय पौधों का महत्व

प्राचीन भारत में चिकित्सा और औषधि विज्ञान का बहुत पुराना इतिहास रहा है। भारतीय चिकित्सा पद्धतियाँ, विशेष रूप से आयुर्वेद, प्राकृतिक उपचारों और औषधीय पौधों पर आधारित थीं। आयुर्वेद के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक संरचना, मानसिक स्थिति और आत्मिक संतुलन को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक उपायों का उपयोग किया जाता था। पृथ्वी पर पर्यावरण की सबसे मनोहारी विशेषता यहाँ पाई जाने वाली औषधियों और वनस्पतियों के कारण है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने इन वनस्पतियों में जीवन और प्राणशक्ति की उपस्थिति स्वीकार की है। "ओषः धारयन्तीति ओषधयः" – अर्थात् जो प्राणों का पोषण करती हैं, वे औषधियाँ कहलाती हैं। जो पौधे फल और फूल देने के बाद समाप्त हो जाते हैं, उन्हें औषधि कहा गया है, जबकि जिन पर फूल नहीं आते, वे केवल वनस्पति माने गए हैं। अमरकोश में इस अंतर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है:

वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैर पुष्पाद्वनस्पतिः।
ओषध्यः फलपाकान्ताः स्युः।

अथर्ववेद में औषधियों को पाँच प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया है – सोम, दभ्र, भंग, यव और सहस। इनका प्रयोग न केवल उपचार के लिए, बल्कि पाप और प्रदूषण से मुक्ति की कामना के लिए भी किया गया है:

पञ्चे राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः।
वृभो भङ्गो यवः सहुस्ते नौ मुञ्चन्त्वंहसः। (अथर्व 11/6/15)

यजुर्वेद में वृक्षों और वनस्पतियों को रुद्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। सोलहवें

अध्याय में जब रुद्र की स्तुति की जाती है, तब उन्हें ‹वृक्षपति› और ‹औषधिपति› कहकर संबोधित किया गया है:

वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनाम्पतये नमः।
औषधीनाम्पतये नमः। (यजु. 16/17-19)

स्कंदपुराण में उल्लेख है कि जो व्यक्ति पीपल, नीम, वट, इमली, बिल्व, आंवला और आम जैसे वृक्षों का रोपण कर उनकी देखभाल करता है, वह रोगों या कष्टों से बचा रहता है। इसका कारण यह है कि ये वृक्ष पर्यावरण में उपस्थित प्रदूषित वायु को अवशोषित करके शुद्ध प्राणवायु उत्पन्न करने की अत्यधिक क्षमता रखते हैं।

6.1 आयुर्वेद और औषधीय पौधे

आयुर्वेद, जो प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति है, में औषधीय पौधों का उपयोग अत्यधिक महत्वपूर्ण था। आयुर्वेद का उद्देश्य न केवल रोगों का उपचार करना है, बल्कि शरीर और मन के संतुलन को बनाए रखना है। आयुर्वेद में औषधीय पौधों का वर्गीकरण किया गया है और प्रत्येक पौधे की चिकित्सीय गुणों के आधार पर उसका उपयोग बताया गया है। आयुर्वेद में औषधियों के निर्माण के लिए पौधों, खनिजों, और अन्य प्राकृतिक तत्वों का मिश्रण किया जाता था।

6.2 आयुर्वेदिक ग्रंथों में औषधीय पौधों का उल्लेख

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में औषधीय पौधों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। **चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, और अष्टांग हृदय** जैसे आयुर्वेदिक ग्रंथों में औषधीय पौधों के गुण, उनके प्रयोग, और उनके लाभों के बारे में बताया गया है। इन ग्रंथों में कुल मिलाकर सैकड़ों औषधीय पौधों का उल्लेख किया गया है, जो विभिन्न प्रकार की बीमारियों के उपचार के लिए उपयोगी थे।

6.3 प्रमुख औषधीय पौधों का विवरण

प्राचीन भारत में कई ऐसे पौधे थे, जिनका उपयोग चिकित्सा में प्रमुखता से किया जाता था। नीचे कुछ प्रमुख औषधीय पौधों के बारे में बताया गया है:

1. तुलसी (Ocimum sanctum)

तुलसी को भारतीय संस्कृति में बहुत पवित्र माना जाता है और इसे **"हर्बल क्वीन"** कहा जाता है। यह पौधा न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि औषधीय दृष्टिकोण

से भी अत्यंत उपयोगी है। तुलसी के पत्तों का सेवन विभिन्न प्रकार की बीमारियों जैसे ज्वर, सर्दी, खांसी, और अस्थमा के उपचार में किया जाता है। तुलसी में एंटीऑक्सिडेंट, एंटीबैक्टीरियल, और एंटीइंफ्लेमेटरी गुण होते हैं, जो शरीर को संक्रमण से बचाते हैं।

2. नीम (Azadirachta indica)

नीम का पेड़ भारतीय पारंपरिक चिकित्सा में एक अमूल्य योगदान देता है। नीम के पत्ते, छाल, और तेल का उपयोग त्वचा रोगों, बुखार, और अन्य संक्रमणों के उपचार में किया जाता है। नीम का प्रभावी एंटीबैक्टीरियल और एंटीफंगल गुण इसे एक शक्तिशाली औषधि बनाते हैं। नीम का उपयोग रक्त साफ करने, पाचन संबंधी समस्याओं और रक्तदाब के उपचार में भी किया जाता है।

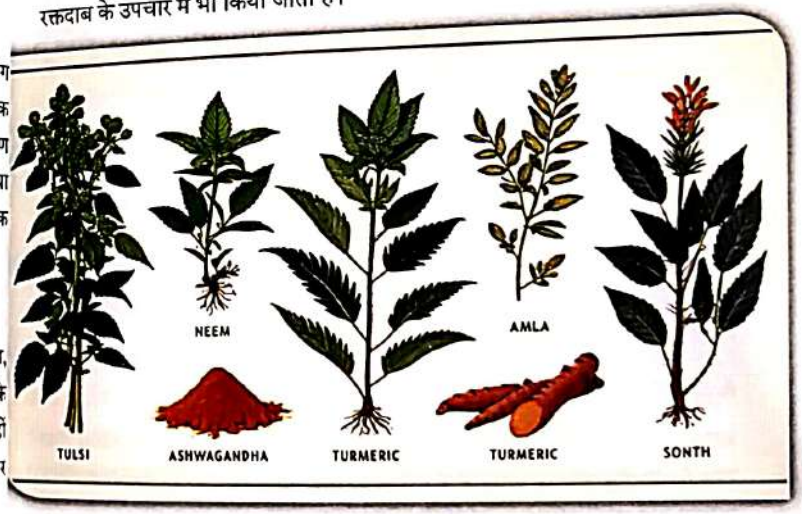

औषधीय पौधों का चिकित्सा में उपयोग

3. आंवला (Phyllanthus emblica)

आंवला भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में अत्यधिक उपयोगी औषधीय पौधा है। इसे **"भारतीय गूजबेरी"** कहा जाता है और यह विटामिन C का बहुत अच्छा स्रोत होता है। आंवला का उपयोग पाचन, प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने, और त्वचा की समस्याओं के इलाज में किया जाता है। आंवला का रस बालों को मजबूत करने और

आंखों की रोशनी बढ़ाने में भी सहायक है।

4. अश्वगंधा (Withania somnifera)

अश्वगंधा को भारतीय आयुर्वेद में एक शक्तिशाली औषधि के रूप में जाना जाता है। इसे **"Indian ginseng"** भी कहा जाता है। यह शरीर की ऊर्जा को बढ़ाने, तनाव कम करने, और मानसिक शांति बनाए रखने में मदद करता है। अश्वगंधा का सेवन आमतौर पर तनाव, चिंता, और अवसाद के उपचार में किया जाता है। यह शरीर को सहनशीलता और शक्ति प्रदान करता है, और शरीर को बेहतर तरीके से कार्य करने में सक्षम बनाता है।

5. हल्दी (Curcuma longa)

हल्दी भारतीय रसोई का अहम हिस्सा है, और इसे आयुर्वेद में एक महत्वपूर्ण औषधि के रूप में माना जाता है। हल्दी में **कुर्कुमिन** नामक पदार्थ पाया जाता है, जो शक्तिशाली एंटीऑक्सिडेंट, एंटीइंफ्लेमेटरी और एंटीबैक्टीरियल गुणों से भरपूर होता है। हल्दी का उपयोग चोटों, सूजन, त्वचा के रोगों, और पाचन समस्याओं के उपचार में किया जाता है।

6. सोंठ (Zingiber officinale)

सोंठ यानी सूखा अदरक एक और महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है, जो पाचन संबंधी समस्याओं, सर्दी-खांसी, और दर्द में राहत देने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह रक्त परिसंचरण को बढ़ाने, गैस्ट्रिक समस्याओं को हल करने और शरीर के तापमान को नियंत्रित करने में मदद करता है।

6.4 औषधीय पौधों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व

भारत में औषधीय पौधों को धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्व दिया गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में यह विश्वास था कि औषधीय पौधे केवल शारीरिक उपचार नहीं करते, बल्कि ये मानसिक और आध्यात्मिक शांति भी प्रदान करते हैं।

- **तुलसी** का पौधा घर के आंगन में लगाया जाता था, क्योंकि यह न केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता था, बल्कि इसे **विष्णु** की प्रिय और शुद्धता का प्रतीक भी माना जाता था।
- **नीम** को पवित्र माना जाता था और इसका उपयोग न केवल चिकित्सा में, बल्कि शुद्धता और पवित्रता के रूप में भी किया जाता था। घरों में नीम की शाखाएं लगाने की परंपरा थी।

- **आंवला** को भी एक धार्मिक महत्व प्राप्त है, और इसे विशेष रूप से **त्रेतायुग** में **सूर्य देवता** से जुड़ा हुआ माना जाता है।

6.5 औषधीय पौधों का संरक्षण

प्राचीन भारत में औषधीय पौधों का संरक्षण भी एक महत्वपूर्ण कार्य था। आयुर्वेदिक चिकित्सक और जड़ी-बूटी विशेषज्ञ इन पौधों का निरंतर अध्ययन करते थे और उनके उपयोग के तरीकों को संरक्षित करते थे। इसके अलावा, विभिन्न पौधों के बीजों और कलमों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने और उनके नष्ट होने से बचाने की व्यवस्था की जाती थी।

7. निष्कर्ष

प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण और समग्र कल्याण की दृष्टि उसकी धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक परंपराओं में गहराई से निहित थी। प्रकृति के प्रति आदरभाव, जो वेदों, उपनिषदों और पुराणों में परिलक्षित होता है, पारिस्थितिक संतुलन और स्थिरता की गहरी समझ को दर्शाता है। पंचमहाभूत-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश-को ब्रह्मांड और मानव जीवन दोनों को संचालित करने वाले मौलिक तत्वों के रूप में देखा जाता था। इनका संतुलन स्वास्थ्य, आध्यात्मिक विकास और पर्यावरणीय समरसता के लिए आवश्यक माना जाता था।

सतत जीवनशैली के सिद्धांत, वनों और नदियों का संरक्षण, तथा प्राकृतिक संसाधनों के जिम्मेदार उपयोग को प्राचीन भारतीय सभ्यता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वर्षा जल संचयन, जैविक खेती और वनीकरण जैसी प्रथाएं पारिस्थितिक संतुलन सुनिश्चित करती थीं। यहां तक कि तुलसी, नीम और आंवला जैसे औषधीय पौधों को केवल उनके उपचारात्मक गुणों के लिए ही नहीं, बल्कि उनके आध्यात्मिक महत्व के कारण भी पूजनीय माना जाता था। आयुर्वेद का समग्र स्वास्थ्य दृष्टिकोण मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य पर जोर देता था, जो प्राकृतिक उपचारों के माध्यम से कल्याण को बढ़ावा देता था।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. *Environmental Awareness in Ancient India*, Ms. Rajani Rao U, International Journal of Life Sciences Research, ISSN: 2348-3148 (Online), 2348-313X (Print), Volume: 2, Issue: 2, Pages: 1–7, April-June 2014.
2. Pandey, O. P. (2023). *Bharat Vaibhav* (1st ed.). New Delhi: National Book Trust, India. ISBN: 978-81-237-9377-1.
3. Prime, Ranchor. *Vedic Ecology: Practical Wisdom for Surviving the 21st Century*. Mandala Publishing, 2002. ISBN: 9781886069653.
4. Pandey, Vijay Kumar. *Science and Environment in Vedic Sanatan Religion*. Independently published, 2024. ISBN: 9789358465035.
5. *Environmental Philosophy in the Vedas: The Vedic Perspective on Nature, Ecology and the Environment*, Sadhana Sansar.
6. Mahadevan, B., Bhat, V. R., & Pavana, N. (2022). *Introduction to Indian Knowledge System: Concepts and Applications*. New Delhi PHI Learning Pvt. Ltd. ISBN: 978-93-91818-20-3.
7. "*Origin of Environmental Science from Vedas*." Sanskrit Vimarsha vol. 2, 2010.
8. Arora, Sunita; Bhatia, Jugnu Khatter; Rishi, Sakshi Vermani. *From Vedas to Visionary India: Unfolding Knowledge Legacy for a Sustainable Future*. Redshine Publication, 2024. ISBN: 9789141001251. DOI 10.25215/9141001257.
9. Environment Conservation in Ancient India, *IOSR Journal of Humanities and Social Science*, Volume: 21, Issue: 9, Version 11 Pages: 1–4, September 2016.
10. *Hydrology and Water Resources Management in Ancient India* Mujumdar, Hydrology and Earth System Sciences, Volume: 24 Pages: 4691–4702, 2020.
11. Bajpai, *S.P. Sustainable Development and Environmental Issues* Discovery Publishing, 2019. ISBN: 9789386841780.
12. *Indian Cultural-Religious Traditions and Environmental Conservation*, Samvardhan Trust.
13. Sharma, K.N. "*Unique Ideas on Water in Ancient Indian Scriptures and Culture.*" Presented at the XII World Congress of International Water Resources Association (IWRA), New Delhi, 2005.
14. *Concept of Five Elements – An Ancient Indian Approach*, Moumita Bhattacharya
15. *19 Miraculous Medicinal Plants from Ancient India*, Pallavi Thakur, December 9, 2014
16. *The Vedic Texts on Sustainable Development in Ancient South Asia*, GeoJournal, DOI: 10.1007/s10708-024-11092-9.
17. *Vedic Environmental Perspective: A Study of Vedas*, Dr. Shivangi Chanyal, Research Journal of English Language and Literature (RJELAL), Volume: 10, Issue: 1, Pages: 303–307, 2022.
18. *India's Ancient Afforestation Practices: Timeless Lessons for a Greener Future*, Catch Foundation.
19. *Ancient Water Management Planning, Tradition and Techniques of India*, Ummani and Mansi, 2024.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. प्राचीन भारत में, पर्यावरणीय जागरूकता किस धार्मिक ग्रंथों में पाई जाती थी?
   a) वेद, उपनिषद, पुराण
   b) महाभारत और रामायण
   c) केवल महाभारत
   d) उपनिषद और भगवद गीता
2. प्राचीन भारतीय समाज का वृक्षों के प्रति क्या दृष्टिकोण था?
   a) वृक्षों का शोषण
   b) वृक्षों को देवताओं के रूप में पूजा जाता था
   c) वृक्षों का कोई महत्व नहीं था
   d) वृक्षों का उपयोग केवल औद्योगिक उद्देश्यों के लिए किया जाता था
3. भारतीय परंपरा में तुलसी का कौन सा दोहरा आध्यात्मिक और औषधीय महत्व है?
   a) सूर्य पूजा करने वाली औषधि
   b) बलिदान अनुष्ठानों के लिए प्रयुक्त
   c) पवित्रता और रोग प्रतिरोधक शक्ति का प्रतीक
   d) युद्ध विजयों से संबंधित
4. ऋग्वेद में पानी, पृथ्वी और आकाश की पवित्रता के बारे में क्या कहा गया है?
   a) इन तत्वों को जीवन का स्रोत माना जाता है
   b) यह मानवता का कर्तव्य है कि इन तत्वों को शुद्ध रखा जाए
   c) इन तत्वों का कोई महत्व नहीं है
   d) केवल पानी को पवित्र माना जाता है
5. प्राचीन भारत में जल प्रबंधन के लिए जलाशय, तालाब और नहरें किस काल में बनाई गई?
   a) मौर्य काल
   b) गुप्त काल
   c) चोल साम्राज्य
   d) कृष्ण राज साम्राज्य
6. प्राचीन भारतीय समाज में नदियों को किस रूप में पूजा जाता था?
   a) देवताओं के रूप में
   b) केवल जल स्रोतों के रूप में
   c) केवल व्यापार मार्गों के रूप में
   d) कृषि के स्रोत के रूप में
7. प्राचीन भारत में वृक्षों के संरक्षण के बारे में क्या कहा गया था?
   a) वृक्ष पृथ्वी को शुद्ध करते हैं
   b) वृक्षों का कोई महत्व नहीं था
   c) वृक्षों की अत्यधिक कटाई की जाती थी
   d) वृक्षों को केवल धार्मिक उद्देश्यों के लिए पूजा जाता था
8. प्राचीन भारतीय धर्मों का पर्यावरण के प्रति क्या दृष्टिकोण था?
   a) पर्यावरण को नष्ट करना
   b) पर्यावरण का सम्मान करना और उसे संरक्षित करना
   c) केवल नदियों का संरक्षण करना
   d) केवल वृक्षों की पूजा करना
9. महाभारत और रामायण की वनवास की कहानी से क्या संदेश मिलता है?
   a) जंगलों में रहने वाले जीवों के अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए
   b) जंगलों को नष्ट कर दिया जाना चाहिए
   c) जंगलों का उपयोग केवल धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया जाना चाहिए
   d) जंगलों का संरक्षण आवश्यक नहीं था

10. प्राचीन भारत में पौधों और जड़ी-बूटियों के संरक्षण के बारे में क्या विश्वास था?
    a) उनका संरक्षण एक धार्मिक कर्तव्य था
    b) संरक्षण आवश्यक नहीं था
    c) उनका उपयोग केवल व्यापार के लिए किया जाता था
    d) उनका संरक्षण केवल सांस्कृतिक विश्वास था
11. प्राचीन भारतीय दर्शन में पांच तत्वों (पंचतत्व) का क्या महत्व था?
    a) वे केवल भौतिक तत्व थे
    b) वे आत्मा, प्रकृति और ब्रह्म से संबंधित थे
    c) वे केवल धार्मिक अनुष्ठानों में उपयोग होते थे
    d) उनका कोई महत्व नहीं था
12. पांच तत्वों में से कौन सा तत्व स्थिरता और दृढ़ता का प्रतीक माना जाता है?
    a) पानी
    b) अग्नि
    c) पृथ्वी
    d) वायु
13. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण की भावना को किस दृष्टिकोण से प्रस्तु किया गया है?
    a) केवल कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु
    b) प्रकृति को दैवीय रूप में पूज्य मानकर
    c) शिकार और वन-संपत्ति दोहन को बढ़ावा देने हेतु
    d) नगर निर्माण के लिए वनों की कटाई को आवश्यक मानकर
14. कौन सा चक्र जल तत्व से संबंधित है?
    a) मूलाधार चक्र
    b) स्वाधिष्ठान चक्र
    c) मणिपुर चक्र
    d) विशुद्धि चक्र

15. कौन सा चक्र अग्नि तत्व से संबंधित है?
    a) स्वाधिष्ठान चक्र
    b) मणिपुर चक्र
    c) विषुद्धि चक्र
    d) आज्ञा चक्र
16. पांच तत्वों में से कौन सा तत्व मानसिक शांति और संतुलन का प्रतीक है?
    a) पानी
    b) अग्नि
    c) आकाश (Ether)
    d) वायु
17. वेदों में, पांच तत्वों से किसका संबंध बताया गया है?
    a) देवता
    b) ऋषि (संत)
    c) तंत्र
    d) यंत्र
18. यजुर्वेद 36.2 के अनुसार, जीवन प्रक्रियाओं के अस्तित्व के लिए कौन सा तत्व आवश्यक है?
    a) पानी
    b) अग्नि
    c) वायु
    d) पृथ्वी
19. पांच तत्वों का उल्लेख विशेष रूप से किस वेद में ध्वनियों और मंत्रों के माध्यम से किया गया है?
    a) ऋग्वेद
    b) यजुर्वेद
    c) सामवेद
    d) अथर्ववेद

20. किस वेद में कहा गया है कि पांच तत्वों का संतुलन शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है?
    a) ऋग्वेद
    b) यजुर्वेद
    c) अथर्ववेद
    d) सामवेद

21. प्राचीन भारतीय दर्शन के अनुसार, कौन से तत्व पंचमहाभूत (पाँच महान तत्व) माने जाते हैं?
    a) पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, आकाश
    b) पृथ्वी, पानी, आकाश, वायु, मन
    c) अग्नि, पानी, पृथ्वी, वायु, सूर्य
    d) पृथ्वी, पानी, आकाश, वायु, आत्मा

22. आयुर्वेद में "पृथ्वी" तत्व का शरीर से क्या संबंध है?
    a) यह मानसिक शांति से संबंधित है
    b) यह शारीरिक संरचना और स्थिरता से संबंधित है
    c) यह श्वसन प्रणाली को नियंत्रित करता है
    d) यह शरीर की ऊर्जा का स्रोत है

23. किस भारतीय ग्रंथ में पांच तत्वों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है?
    a) महाभारत
    b) उपनिषद
    c) भगवद गीता
    d) वेद

24. "वायु" तत्व का मुख्य कार्य मानव जीवन में क्या है?
    a) यह शरीर का तापमान नियंत्रित करता है
    b) यह मानसिक स्पष्टता और संचार से संबंधित है
    c) यह शारीरिक शक्ति और ऊर्जा को नियंत्रित करता है
    d) यह शरीर के जल संतुलन को नियंत्रित करता है

25. आयुर्वेद में कौन सा पौधा शक्तिशाली एंटीबैक्टीरियल और एंटीफंगल गुणों के लिए जाना जाता है?
    a) तुलसी
    b) नीम
    c) अश्वगंधा
    d) आंवला

26. आयुर्वेद में "वात" दोष किस तत्व से संबंधित है?
    a) पृथ्वी
    b) अग्नि
    c) पानी
    d) वायु

27. आयुर्वेद में औषधीय पौधों का उपयोग किस उद्देश्य के लिए किया जाता है?
    a) केवल शारीरिक उपचार के लिए
    b) शारीरिक, मानसिक और आत्मिक संतुलन बनाए रखने के लिए
    c) केवल मानसिक शांति के लिए
    d) केवल आहार के रूप में

28. आयुर्वेद में श्वसन समस्याओं के लिए कौन सा पौधा उपयोग किया जाता है?
    a) तुलसी
    b) नीम
    c) अश्वगंधा
    d) हल्दी

29. भारतीय दर्शन के अनुसार, "अग्नि" (आग) तत्व किस चक्र से संबंधित है?
    a) विशुद्धि (गला चक्र)
    b) मणिपुर (सौर मंडल चक्र)
    c) सहस्रार (क्राउन चक्र)
    d) अनाहत (हृदय चक्र)

30. "आकाश" (Ether) तत्व पांच तत्वों में से क्या प्रतीक है?
    a) गति और तीव्र परिवर्तन
    b) आकाश, विशालता और अनंतता
    c) अग्नि और रूपांतरण
    d) पानी और पवित्रता

31. किस पौधे को "भारतीय जिन्सेंग" कहा जाता है?
    a) तुलसी
    b) अश्वगंधा
    c) नीम
    d) आंवला

32. आयुर्वेद और भारतीय दर्शन में "पानी" तत्व का क्या महत्व है?
    a) यह जीवन शक्ति और ऊर्जा का स्रोत है
    b) यह शारीरिक संतुलन और पवित्रता से संबंधित है
    c) यह शारीरिक शक्ति को नियंत्रित करता है
    d) यह मानसिक स्पष्टता को बढ़ाता है

33. किस भारतीय ग्रंथ में औषधीय पौधों का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है?
    a) भगवद गीता
    b) चरक संहिता
    c) रामायण
    d) उपनिषद

34. आयुर्वेद में "पित्त" दोष किस तत्व से संबंधित है?
    a) पृथ्वी
    b) पानी
    c) अग्नि
    d) वायु

35. किस पौधे को भारतीय संस्कृति में पवित्रता का प्रतीक माना जाता है और जो भगवान विष्णु को प्रिय है?
    a) अश्वगंधा
    b) तुलसी
    c) आंवला
    d) नीम

36. आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य क्या है, रोगों के उपचार के अलावा?
    a) केवल शारीरिक उपचार
    b) वजन घटाना
    c) शरीर, मन और आत्मा का संतुलन
    d) सर्जरी

37. किस पौधे को "जड़ी-बूटियों की रानी" कहा जाता है?
    a) नीम
    b) आंवला
    c) तुलसी
    d) अश्वगंधा

38. आंवला किस विटामिन में विशेष रूप से समृद्ध होता है?
    a) विटामिन A
    b) विटामिन C
    c) विटामिन D
    d) विटामिन E

39. आयुर्वेद में कौन सा पौधा त्वचा की समस्याओं और संक्रमणों के इलाज के लिए प्रसिद्ध है?
    a) अश्वगंधा
    b) नीम
    c) हल्दी
    d) सोनठ

40. हल्दी में कौन सा यौगिक इसके औषधीय गुणों के लिए जिम्मेदार है?
    a) मेंथॉल
    b) कर्क्यूमिन
    c) जिंजरोल
    d) थाइमोल

41. निम्नलिखित में से कौन सा क्लासिक ग्रंथ आमतौर पर आयुर्वेदिक साहित्य के मौलिक ग्रंथों में नहीं माना जाता है?
    a) चरक संहिता
    b) सुश्रुत संहिता
    c) अष्टांग हृदय
    d) भगवद गीता

42. आयुर्वेद में अश्वगंधा का मुख्य उपयोग क्या है?
    a) पाचन सुधारना
    b) बुखार का इलाज करना
    c) तनाव और चिंता का प्रबंधन करना
    d) दृष्टि में सुधार करना

43. सोनठ (सूखी अदरक) का मुख्य लाभ क्या है?
    a) हड्डी के फ्रैक्चर का इलाज
    b) नींद के पैटर्न को नियंत्रित करना
    c) पाचन में सुधार और सर्दी के लक्षणों को दूर करना
    d) कैल्शियम के स्तर को बढ़ाना

44. किस पौधे को भारतीय संस्कृति में भगवान विष्णु से जोड़ा जाता है?
    a) नीम
    b) तुलसी
    c) आंवला
    d) हल्दी

45. हिंदू पुराणों के अनुसार, आंवला किस देवता से जुड़ा हुआ है?
    a) शिव
    b) विष्णु
    c) सूर्य देव
    d) इंद्र

46. आयुर्वेदिक जड़ी-बूटी जो अक्सर "भारतीय जिन्सेंग" के रूप में जानी जाती है, वह कौन सी है?
    a) नीम
    b) तुलसी
    c) अश्वगंधा
    d) आंवला

47. निम्नलिखित में से कौन सी जड़ी-बूटी सूजन को कम करने में मदद करती है और घाव भरने में उपयोगी है?
    a) अश्वगंधा
    b) हल्दी
    c) सोनठ
    d) आंवला

48. नीम को संक्रमणों के इलाज में विशेष रूप से प्रभावी क्यों माना जाता है?
    a) उच्च कैल्शियम सामग्री
    b) एंटीबैक्टीरियल और एंटिफंगल गुण
    c) आयरन में समृद्ध
    d) वजन बढ़ाने में मदद करता है

49. प्राचीन भारत में औषधीय पौधों का संरक्षण कैसे किया जाता था?
    a) ठंडा करके और फ्रिजिंग से
    b) आधुनिक सिंचाई द्वारा
    c) बीज और कटिंग्स को परिवहन करके
    d) सोने के कंटेनरों में संग्रहित करके

50. किस पौधे को पारंपरिक रूप से आंगन में धार्मिक और स्वास्थ्य कारणों से रख जाता है?

a) हल्दी
b) तुलसी
c) आंवला
d) नीम

51. आयुर्वेदिक सूत्रों में हर्ब्स और खनिजों को मिलाने का क्या उद्देश्य होता है?

a) दवा का स्वाद बेहतर बनाना
b) लागत बढ़ाना
c) समग्र और शक्तिशाली उपचार तैयार करना
d) केवल दुष्प्रभावों को कम करना

52. आयुर्वेदिक ग्रंथों के अनुसार, औषधीय पौधों का उपयोग करने का मुख्य उद्देश्य क्या है?

a) भूख बढ़ाना
b) केवल याददाश्त बढ़ाना
c) स्वास्थ्य और संतुलन बहाल करना
d) धार्मिक अनुष्ठान करना

53. कौन सा आयुर्वेदिक ग्रंथ शल्य चिकित्सा तकनीकों और औषधीय पौधों के उपयोग का विस्तृत विवरण प्रदान करता है?

a) चरक संहिता
b) अष्टांग हृदय
c) सुश्रुत संहिता
d) अर्थशास्त्र

54. कौन सा पौधा रक्त को शुद्ध करने से सबसे अधिक जुड़ा हुआ है?

a) अश्वगंधा
b) तुलसी
c) नीम
d) आंवला

55. भारतीय संस्कृति में तुलसी का क्या महत्व है, जो उसे एक साथ धार्मिक श्रद्धा और आयुर्वेदिक औषधि के रूप में प्रतिष्ठित करता है?

a) केवल गृह-सजावट में प्रयुक्त होने वाला पौधा
b) पवित्रता का प्रतीक और रोगों से रक्षा करने वाली औषधि
c) यज्ञ में अग्नि के विकल्प के रूप में प्रयुक्त
d) केवल विष्णु मंदिरों में शोभा हेतु लगाया जाने वाला पौधा

56. भारतीय दर्शन में "पंचतत्व" का क्या अर्थ है?

a) पांच इंद्रियां
b) जीवन के पांच चरण
c) पांच पवित्र अनुष्ठान
d) प्रकृति के पांच तत्व

57. वायु (हवा) तत्व से कौन सा दोष जुड़ा हुआ है?

a) पित्त
b) कफ
c) वात
d) अग्नि

58. संस्कृत वाक्य "ओषः धारयन्तीति औषधयः" का क्या अर्थ है?

a) पौधे सूर्य के प्रकाश में बढ़ते हैं
b) जो जीवन को धारण और पोषण करते हैं, उन्हें 'औषधि' कहा जाता है
c) सभी पौधे दिव्य होते हैं
d) पेड़ हवा को अवशोषित करते हैं

59. कौन सा पवित्र वृक्ष पर्यावरण को शुद्ध करने से जुड़ा हुआ है?

a) नारियल
b) पीपल
c) शीशम
d) ताड़

60. योग के अनुसार पंचतत्वों को संतुलित करने के लिए कौन सा अभ्यास विशेष रूप से उपयोगी है?
   a) केवल मंत्रों का उच्चारण
   b) उपवास
   c) प्राणायाम और ध्यान
   d) शास्त्रों का पाठ

61. जब किसी व्यक्ति में पंचतत्वों का असंतुलन होता है तो क्या होता है?
   a) आध्यात्मिक ज्ञान
   b) ताकत में वृद्धि
   c) शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक समस्याएं
   d) कुछ नहीं होता

62. आयुर्वेद के अनुसार, दोषों का असंतुलन किस कारण से होता है?
   a) अनुचित ध्यान
   b) शारीरिक गतिविधि की कमी
   c) पंचतत्वों का असंतुलन
   d) खराब दृष्टि

63. कफ दोष से कौन से तत्व जुड़े होते हैं?
   a) अग्नि और वायु
   b) पृथ्वी और पानी
   c) वायु और अग्नि
   d) पानी और आकाश

64. अथर्ववेद में कितनी मुख्य श्रेणियों में औषधीय पौधों का उल्लेख किया गया है
   a) तीन
   b) पांच
   c) सात
   d) दस

65. कौन सा पौधा स्कंद पुराण में अपने उपचारात्मक और पारिस्थितिकीय लाभों के लिए पवित्र माना गया है?
   a) बांस
   b) कमल
   c) नीम
   d) ट्यूलिप

66. यजुर्वेद के अनुसार, कौन पेड़ और पौधों का स्वामी कहलाता है?
   a) इंद्र
   b) विष्णु
   c) रुद्र
   d) अग्नि

67. प्राचीन भारतीय दर्शन के अनुसार पंचतत्वों को संतुलित करने का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   a) धन संचय करना
   b) बौद्धिकता में सुधार करना
   c) शांतिपूर्ण और स्वस्थ जीवन जीना
   d) सभी शास्त्रों को जानना

68. अमरकोश के अनुसार, वह कौन सा पौधा है जो फल देने के बाद मर जाता है?
   a) वनस्पति
   b) वात
   c) औषधि
   d) बिल्व

69. यजुर्वेद के सूत्र में हरे बालों वाले वृक्षों का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?
   a) युवा
   b) ऊर्जा
   c) दिव्यता
   d) कृषि

70. कौन सा शास्त्र पांच शाही औषधियों का वर्णन करता है, जिसमें सोम और भंग शामिल हैं?
   a) यजुर्वेद
   b) स्कंद पुराण
   c) अथर्ववेद
   d) ऋग्वेद

71. आयुर्वेद के अनुसार, प्राकृतिक उपचारों का उपयोग करने का उद्देश्य क्या है?
   a) प्राचीन विधियों के साथ प्रयोग करना
   b) व्यक्ति के स्वभाव, मन और आत्मा का संतुलन करना
   c) आधुनिक चिकित्सा से प्रतिस्पर्धा करना
   d) केवल मौसमी बीमारियों को रोकना

72. स्कंद पुराण में पवित्र वृक्षों को लगाने का क्या महत्व बताया गया है?
   a) भूमि का मूल्य बढ़ाना
   b) वर्षा कम करना
   c) रोगों से बचाव करना और पर्यावरण को शुद्ध करना
   d) धार्मिक वेदी को सजाना

73. योग पंचतत्वों को संतुलित करने में कैसे मदद करता है?
   a) केवल शारीरिक आसन द्वारा
   b) अनुष्ठानों और अर्पणों के माध्यम से
   c) प्राणायाम, ध्यान और आसनों के द्वारा
   d) केवल उपवास द्वारा

74. अथर्ववेद में पांच शाही औषधियाँ शारीरिक उपचार के अलावा क्या भूमिका निभाती हैं?
   a) धन बढ़ाना
   b) ज्योतिष सिखाना
   c) शरीर और आत्मा को शुद्ध करना
   d) मौसम का पूर्वानुमान करना

75. पंचतत्व दर्शन के अनुसार मानसिक और शारीरिक भलाई में कौन सा तत्व सामान्य है?
   a) अग्नि
   b) पृथ्वी
   c) सभी पांच तत्व मिलकर
   d) आकाश

76. किस उपनिषद में पृथ्वी को "सभी जीवों के लिए अमृत" के रूप में वर्णित किया गया है?
   a) मुण्डक 1/1/3
   b) बृहदारण्यक 2/5/1
   c) तैत्तिरीय 1/2
   d) जबाल 4

77. अथर्ववेद के "त्वजातास्त्वरियाश्चरन्ति मर्त्यास्..." श्लोक में पृथ्वी के बारे में कौन सा पहलू बताया गया है?
   a) उसकी आग्नेय ऊर्जा
   b) उसका आकाश से संबंध
   c) सभी जीवों के लिए उसका समर्थन
   d) उसका औषधीय मूल्य

78. वह वेदिक सिद्धांत क्या है, जो ध्वनि को आकाश के माध्यम से यात्रा करने की अनुमति देता है?
   a) शब्धगुणकम
   b) ज्योतिरमय
   c) वायुर प्राणः
   d) स्वरविज्ञान

79. कौन सा तत्व मूलाधार चक्र से जुड़ा है?
   a) पानी
   b) आग
   c) पृथ्वी
   d) आकाश

80. श्वेताश्वतार उपनिषद (6/14) के अनुसार, सभी प्रकाश का अंतिम स्रोत क्या है?
   a) आग
   b) सूर्य
   c) ब्रह्म
   d) चंद्रमा

81. अग्नि को "ज्योतिरमय" के रूप में किस उपनिषद में वर्णित किया गया है?
   a) मुण्डक
   b) मैत्रायणी
   c) बृहदारण्यक
   d) जबाला

82. पंचवायु प्रणाली से कौन सा तत्व शरीर से जुड़ा हुआ है?
   a) अग्नि
   b) वायु
   c) आकाश
   d) पृथ्वी

83. वेदों में "देवों का मुँह" किसे कहा गया है?
   a) अग्नि
   b) वायु
   c) सोम
   d) इंद्र

84. निम्नलिखित में से कौन सा जल प्रकार ग्लेशियर से आता है?
   a) मधुश्रुतः
   b) वैशंत
   c) हैमावत
   d) कुल्याह

85. वह वेदिक श्लोक कौन सा है, जो पृथ्वी खनन के बाद क्षमा करने की सलाह देता है?
   a) अथर्व 2/1/15
   b) अथर्व 12/1/35
   c) मुण्डक 2/1/3
   d) यजुर्वेद 16/37

86. कौन सा उपनिषद अग्नि को पाचन से जोड़ता है?
   a) मैत्रायणी
   b) बृहदारण्यक
   c) श्वेताश्वतार
   d) जबाला

87. पंचतत्व में कौन सा तत्व ब्रह्मांडीय ऊर्जा और विस्तार का प्रतिनिधित्व करता है?
   a) पानी
   b) वायु
   c) आकाश
   d) पृथ्वी

88. कौन सा वेद ध्वनि चिकित्सा के लिए काव्य मीटर के माध्यम से प्रमुख है?
   a) ऋग्वेद
   b) यजुर्वेद 23/33
   c) अथर्ववेद 12/1
   d) सामवेद

89. "समुद्र ज्येष्ठः" कौन से जल स्रोत को सर्वोच्च के रूप में इंगीत करता है?
   a) नदियाँ
   b) झीलें
   c) महासागर
   d) कुएँ

90. आयुर्वेद में शारीरिक कार्य के लिए पंचवायु की कौन सी पांच प्रकार की सूची दी गई है?
   a) नाग, कूर्म, क्रीकला, देवदत्त, धनंजय
   b) प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान
   c) जल, अग्नि, वायु, आकाश, भूमि
   d) उपरोक्त में से कोई नहीं

91. वेदों में जल के देवता कौन हैं?
   a) सोम
   b) अग्नि
   c) वरुण
   d) इंद्र

92. किस तत्व का ध्वनि प्रसारण में मुख्य योगदान है?
   a) वायु
   b) आकाश
   c) अग्नि
   d) पानी

93. वह वेदिक श्लोक कौन सा है, जो अग्नि को यज्ञ के पुरोहित के रूप में संबोधित करता है?
   a) ऋग्वेद 1/1/1
   b) अथर्ववेद 12/1/11
   c) यजुर्वेद 23/62
   d) मैत्रायणी 6/24

94. नटराज के सौम्य रूप में जो आकाश को बनाए रखने का नृत्य किया जाता है, उसे क्या कहा जाता है?
   a) तांडव
   b) लास्य
   c) स्वर
   d) प्रलय

95. कौन सा उपनिषद हवा को सर्वोच्च भगवान के पैर के रूप में वर्णित करता है?
   a) जबाला
   b) मुण्डक
   c) कथा
   d) श्वेताश्वतार

96. प्राचीन अनुष्ठानों में सभी तत्वों को शुद्ध करने के लिए कौन सा अभ्यास सबसे अच्छा है?
   a) योग
   b) ध्यान
   c) यज्ञ
   d) संकल्प

97. मानसिक और आध्यात्मिक स्पष्टता के लिए कौन सा तत्व मुख्य रूप से जिम्मेदार है?
   a) अग्नि
   b) जल
   c) आकाश
   d) पृथ्वी

98. "अग्ने यम् यज्ञमध्वरम्..." श्लोक में अग्नि की भूमिका क्या है?
   a) पानी की शुद्धता
   b) अर्पणों का संप्रेषण
   c) वायु का नियंत्रण
   d) पृथ्वी को पोषण

99. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में, ऊर्जा स्रोतों को किस नाम से जाना जाता है?
   a) पुरिष अग्नि
   b) ज्योतिर अग्नि
   c) वैष्वानर अग्नि
   d) नवीनीकरण अग्नि

100. कौन सा उत्सव जल संरक्षण को सामाजिक रूप से बढ़ावा देने के लिए किए जाता है?

a) दीवाली
b) होली
c) प्री-मॉनसून अनुष्ठान
d) गंगा दशहरा

101. समुंदर के अंदर अग्नि किस रूप में मानी जाती है?

a) जठर अग्नि
b) नचिकेता अग्नि
c) बाड्वाग्नि
d) सोम अग्नि

102. ऋग्वेद 10/90/8 में सबसे पहले किस जीवन रूप के सृजन का वर्णन किया गया है?

a) जानवर
b) वायु-आधारित जीव
c) मनुष्य
d) मछलियाँ

103. कौन सा पंचतत्त्व 'ध्वनि' को अपनी विशेषता के रूप में नियंत्रित करता है?

a) वायु
b) अग्नि
c) आकाश
d) जल

104. "वायुः पादः" वाक्य का आध्यात्मिक संदर्भ में क्या अर्थ है?

a) वायु सर्वव्यापी है
b) वायु ध्वनि का आधार है
c) वायु दिव्य का पांव है
d) वायु शरीर को नियंत्रित करता है

105. किसने चेतावनी दी कि वन न होने पर वातावरण की शुद्धता असंभव है?

a) कालिदास
b) अथर्ववेद
c) तैत्तिरीय संहिता
d) यजुर्वेद

106. कौन सा उपनिषद आत्मा की सर्वव्यापकता की तुलना वायु से करता है?

a) बृहतारण्यक
b) कठा
c) मुण्डक
d) जबाला

107. भारतीय परंपरा में जल तत्व से कौन सा प्रमुख भाव जुड़ा है?

a) डर
b) पवित्रता
c) क्रोध
d) ज्ञान

108. कौन सी ऊर्जा खतरनाक मानी जाती थी और उसे दफन किया जाना चाहिए था?

a) सौर
b) चंद्र
c) परमाणु
d) वायु

109. योग में कौन सा तत्व भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों को जोड़ता है?

a) अग्नि
b) पृथ्वी
c) आकाश
d) वायु

110. आयुर्वेद के अनुसार, जठराग्नि कहाँ स्थित है?
   a) हृदय
   b) मस्तिष्क
   c) पेट
   d) यकृत

111. कौन सी प्रक्रिया आकाश को सबसे प्रभावी रूप से शुद्ध करती है?
   a) मंत्रोच्चारण
   b) अग्निहोत्र
   c) योग
   d) ध्यान

112. किस प्रकार की अग्नि मलत्याग से संबंधित है?
   a) भूताग्नि
   b) धात्वाग्नि
   c) वैश्वानर
   d) पुरिष अग्नि

113. कौन सा उपनिषद कहता है कि सभी तत्व ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं?
   a) छांदोग्य
   b) तैत्तिरीय
   c) मुण्डक
   d) बृहतारण्यक

114. पृथ्वी तत्व की विशेषता (गुण) क्या है?
   a) रस
   b) गंध
   c) स्पर्श
   d) रूप

115. अग्नि से जुड़ा कौन सा चक्र है?
   a) मूलाधार
   b) मणिपुर
   c) अनाहत
   d) विशुद्ध

116. पंचतत्त्व में कितने तत्व होते हैं?
   a) 3
   b) 4
   c) 5
   d) 6

117. संस्कृत में "भूमि" किस तत्व को कहा जाता है?
   a) जल
   b) पृथ्वी
   c) वायु
   d) अग्नि

118. जल के लिए संस्कृत शब्द क्या है?
   a) अग्नि
   b) जल
   c) वायु
   d) आकाश

119. किस तत्व से गंध का संबंध है?
   a) अग्नि
   b) वायु
   c) पृथ्वी
   d) जल

120. कौन सा तत्व ऊष्मा और रूपांतरण के लिए जिम्मेदार है?
   a) जल
   b) पृथ्वी
   c) वायु
   d) अग्नि

121. पंचतत्त्व में ध्वनि का तत्व कौन सा है?
   a) जल
   b) आकाश
   c) वायु
   d) पृथ्वी

122. जल से जुड़ा कौन सा चक्र है?
   a) आज्ञा
   b) सहस्रार
   c) स्वाधिष्ठान
   d) मणिपुर

123. वायु के लिए संस्कृत नाम क्या है?
   a) वायु
   b) आकाश
   c) अग्नि
   d) सोम

124. किस तत्व में स्पर्श (sparsha) गुण होता है?
   a) पृथ्वी
   b) जल
   c) अग्नि
   d) वायु

125. अग्नि का प्राथमिक अर्थ क्या है?
   a) आकाश
   b) पृथ्वी
   c) अग्नि
   d) वायु

126. भगवद्गीता के अनुसार, कौन-से गुणों से युक्त व्यक्ति 'स्थितप्रज्ञ' कहा जाता है?
   a) जो हर परिस्थिति में तटस्थ और निस्पृह रहता है
   b) जो केवल ध्यान योग में लीन रहता है
   c) जो सभी कर्मों को त्याग कर वन चला जाता है
   d) जो केवल वेदों का पाठ करता है

127. ऋग्वेद 10.129.1 (नसादीय सूक्त) में "क्या सबको ढक लिया?" इस पंक्ति में कौन सा सिद्धांत प्रश्नित किया गया है?
   a) वायु का योगदान
   b) अग्नि का स्रोत
   c) ब्रह्मांडीय आश्रय और पर्यावरण
   d) तारों की गति

128. वेदिक साहित्य में "उल्बा" शब्द का रूपक रूप में क्या वर्णन किया जाता है?
   a) जन्म और मृत्यु
   b) आध्यात्मिक जागरण
   c) पर्यावरण की संकुचित प्रकृति
   d) अग्नि की शुद्धता

129. उपनिषदों के अनुसार, तत्वों का ब्रह्म से किस क्रम में विकास हुआ?
   a) अग्नि → वायु → आकाश → जल → पृथ्वी
   b) आकाश → वायु → अग्नि → जल → पृथ्वी
   c) पृथ्वी → जल → अग्नि → वायु → आकाश
   d) आकाश → अग्नि → पृथ्वी → जल → वायु

130. कौन सा शास्त्र "आपो हि शुद्धयन्ति वस्त्रं..." श्लोक में पर्यावरण की पवित्रता पर बल देता है?

a) मुण्डक उपनिषद
b) ऋग्वेद
c) अथर्ववेद
d) तैत्तिरीय उपनिषद

131. कौन सा प्राचीन भारतीय ग्रंथ अत्यधिक वनों की कटाई के कारण पर्यावरण संकटों की चेतावनी देता है?

a) महाभारत
b) रामायण
c) मनुस्मृति
d) योगसूत्र

132. नसादीय सूक्त सृजन के विचार को कैसे प्रस्तुत करता है?

a) यह एक निश्चित उत्तर प्रदान करता है
b) यह सृजन को नकारता है
c) यह दार्शनिक प्रश्न पूछता है
d) यह पुरानी कथाएँ प्रस्तुत करता है

133. उपनिषदों में "वृक्षस्य जीवनं प्रियतमं..." श्लोक का क्या अर्थ है?

a) पेड़ पर्यावरण के लिए हानिकारक हैं
b) पेड़ों की पूजा केवल अनुष्ठानों में की जाती है
c) पेड़ जीवन के लिए आवश्यक हैं और उन्हें संजोना चाहिए
d) केवल फल देने वाले पेड़ ही मूल्यवान होते हैं

134. प्राचीन भारतीय ब्रह्माण्ड विज्ञान में "पंचतत्त्व" का क्या अर्थ है?

a) पाँच मानवीय इंद्रियाँ
b) वेदों के पाँच देवता
c) ब्रह्माण्ड को बनाने वाले पाँच तत्व
d) ब्रह्म के पाँच रूप

135. "तब न अस्ति न अस्ति" से कौन सा ब्रह्माण्डीय अर्थ निकलता है?

a) ब्रह्माण्ड सदा से अस्तित्व में था
b) समय चक्रीय था
c) सृजन अज्ञेय शून्य से उत्पन्न हुआ
d) देवताओं ने अस्तित्व का सृजन किया

136. "जो सभी ओर से घेरता है" संस्कृत शब्द का क्या अर्थ है?

a) आवरण
b) परिभू
c) परिवृत
d) पर्यावरण

137. प्राचीन भारत में पर्यावरण संरक्षण का दार्शनिक मूल क्या था?

a) अवज्ञा पर दंड
b) कर्म
c) धर्म
d) मोक्ष

138. इनमें से कौन सा देवता पर्यावरणीय तत्वों से सीधे जुड़ा हुआ नहीं है?

a) पृथ्वी
b) वनस्पतिदेव
c) अग्नि
d) सरस्वती

139. प्राचीन भारत में गंगा और यमुनाओं को क्यों पवित्र माना जाता था?

a) वे पार करना कठिन थीं
b) उनके जल का उपयोग अनुष्ठानों में होता था
c) वे दिव्य प्रतीक थीं और जीवनदायिनी थीं
d) उनके पास उर्वर मृदा थी

140. आयुर्वेद में औषधीय पौधों के सतत उपयोग का कौन सा सिद्धांत है?
   a) सामूहिक उत्पादन
   b) अत्यधिक उपयोग
   c) जिम्मेदार संरक्षण
   d) चयनात्मक सेवन

141. रामायण और महाभारत में वनवास का अनुभव किन मूल्यों को दर्शाता है?
   a) केवल त्याग और कष्ट
   b) राज्य की साज़िशों से बचाव
   c) प्रकृति के साथ एकात्मता और आत्मविकास
   d) वन्य जीवों से संघर्ष

142. प्राचीन भारत की किस नगरीय सभ्यता में उन्नत जल निकासी और जल प्रबंधन प्रणाली के प्रमाण मिलते हैं?
   a) वैदिक सभ्यता
   b) हड़प्पा सभ्यता
   c) महाजनपद कालीन नगर
   d) चोल साम्राज्य

143. जैन दर्शन में पर्यावरणवाद को कैसे दर्शाया गया है?
   a) पेड़ों की पूजा
   b) अहिंसा और सभी जीवन का संरक्षण
   c) अनुष्ठानिक शुद्धता
   d) मंदिर भेंट

144. प्राचीन भारत में सूखा पड़ने पर किस प्राकृतिक संसाधन का विशेष रूप से प्रबंधन किया जाता था?
   a) वन
   b) जल
   c) मिट्टी
   d) खनिज

145. ब्रह्मा के ध्यान से सृजन की दार्शनिक विचारधारा क्या सुझाव देती है?
   a) वैज्ञानिक कारण
   b) हिंसक सृजन
   c) सृजन का सचेत, ध्यानपूर्ण रूपांतरण
   d) संयोग

146. "पंचतत्व" शब्द का क्या अर्थ है?
   a) धर्म के पाँच सिद्धांत
   b) पाँच इंद्रियाँ
   c) पाँच तत्व
   d) पाँच ऋतु

147. इनमें से कौन सा पंचतत्व नहीं है?
   a) पृथ्वी
   b) जल
   c) वायु
   d) धातु

148. भारतीय परंपरा में कौन सा नदी सबसे पवित्र मानी जाती है?
   a) यमुनाजी
   b) सरस्वती
   c) गंगा
   d) गोदावरी

149. कौन सा धर्म अहिंसा को पर्यावरणीय सिद्धांत के रूप में महत्वपूर्ण मानता है?
   a) इस्लाम
   b) जैन धर्म
   c) ईसाई धर्म
   d) ज़ोरोस्ट्रियन धर्म

150. उपनिषदिक दृष्टिकोण में पेड़ों का प्राथमिक उद्देश्य क्या है?
   a) सजावट
   b) मनोरंजन
   c) जीवन और पवित्रता प्रदान करना
   d) लकड़ी का स्रोत

151. उपनिषदों के अनुसार, ब्रह्माण्डीय सृजन के क्रम में कौन सा तत्व पहले आता है?
   a) पृथ्वी
   b) जल
   c) आकाश
   d) अग्नि

152. वातावरण से संबंधित वैदिक संस्कृत शब्द "ऋत" (Ṛta) का पर्यावरणीय संदर्भ में क्या अभिप्राय है?
   a) केवल धार्मिक अनुष्ठान
   b) प्रकृति के अनियंत्रित परिवर्तन
   c) ब्रह्मांड का नैतिक और प्राकृतिक संतुलन
   d) सूर्य और चंद्रमा की गति

153. प्राचीन भारतीय ब्रह्माण्ड विज्ञान में जीवन की नींव के रूप में क्या वर्णित है?
   a) धन
   b) पर्यावरण
   c) शहर
   d) अनुष्ठान

154. ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड की संरचना और उसकी अनादि-अनंत प्रकृति को किस सूक्त में प्रश्नवाचक रूप से प्रस्तुत किया गया है?
   a) पुरुष सूक्त
   b) नासदीय सूक्त
   c) हिरण्यगर्भ सूक्त
   d) भू-सूक्त

155. प्राचीन भारतीय समाज में धर्म के रूप में क्या देखा जाता था?
   a) युद्ध
   b) मनोरंजन
   c) पर्यावरण संरक्षण
   d) व्यापार

उत्तरदर्शिका

Ques.	Answer	Ques.	Answer	Ques.	Answer
1	a	26	d	51	c
2	b	27	b	52	c
3	c	28	a	53	c
4	b	29	c	54	c
5	a	30	b	55	b
6	a	31	b	56	d
7	a	32	b	57	c
8	b	33	b	58	b
9	a	34	c	59	b
10	a	35	b	60	c
11	b	36	c	61	c
12	c	37	c	62	c
13	b	38	b	63	b
14	b	39	b	64	b
15	b	40	b	65	c
16	a	41	d	66	c
17	a	42	c	67	c
18	b	43	c	68	c
19	c	44	b	69	c
20	c	45	b	70	c
21	a	46	c	71	b
22	b	47	b	72	c
23	d	48	b	73	c
24	b	49	c	74	c
25	b	50	b	75	c

Ques.	Answer	Ques.	Answer	Ques.	Answer
76	b	103	c	130	b
77	c	104	c	131	c
78	a	105	b	132	c
79	c	106	b	133	c
80	c	107	b	134	c
81	c	108	c	135	c
82	b	109	d	136	d
83	a	110	c	137	c
84	c	111	a	138	b
85	b	112	d	139	c
86	a	113	b	140	c
87	c	114	b	141	c
88	b	115	b	142	b
89	c	116	c	143	b
90	b	117	b	144	b
91	c	118	b	145	c
92	b	119	c	146	c
93	a	120	d	147	d
94	b	121	b	148	c
95	b	122	c	149	b
96	b	123	a	150	c
97	c	124	d	151	c
98	b	125	c	152	c
99	c	126	a	153	b
100	c	127	c	154	b
101	c	128	c	155	c
102	b	129	b		

पुस्तक के विषय में

'प्रकृति और चेतना : प्राचीन भारत का पर्यावरणीय ज्ञान' पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान पर आधारित, प्राकृतिक संसाधनों के सतत और आदर्श उपयोग की एक गहन झलक प्रस्तुत करती है। वैदिक दृष्टिकोण से प्रेरित यह पुस्तक बताती है कि भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परंपराओं में प्रकृति के साथ कैसा गहरा संबंध रहा है-जहाँ वृक्षों, नदियों और वनों के प्रति मानव का कर्तव्य प्रमुख रूप से माना गया है। इसमें पंचतत्त्व की विस्तृत व्याख्या की गई है-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश-जो जीवन और मानसिक संतुलन को प्रभावित करते हैं। साथ ही इसमें पारंपरिक जल प्रबंधन, आयुर्वेद में औषधियों की जड़ें और औषधीय पौधों का धार्मिक-सांस्कृतिक महत्व भी वर्णित है। धार्मिक, वैज्ञानिक और पारिस्थितिक दृष्टिकोणों के माध्यम से यह पुस्तक प्रकृति के साथ संतुलित संबंध की प्रेरणा देती है। यह उन पाठकों के लिए एक मार्गदर्शक सिद्ध होगी जो पर्यावरण चेतना के शाश्वत भारतीय दृष्टिकोण को समझना चाहते हैं।



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : *www.kitabwale.com*
ईमेल : *kitabwale@gmail.com*

ISBN 978-93-49531-28-4

Bharat BoudhIKS

खंड-6

वैदिक गणित

गणना का भारतीय मंत्र

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

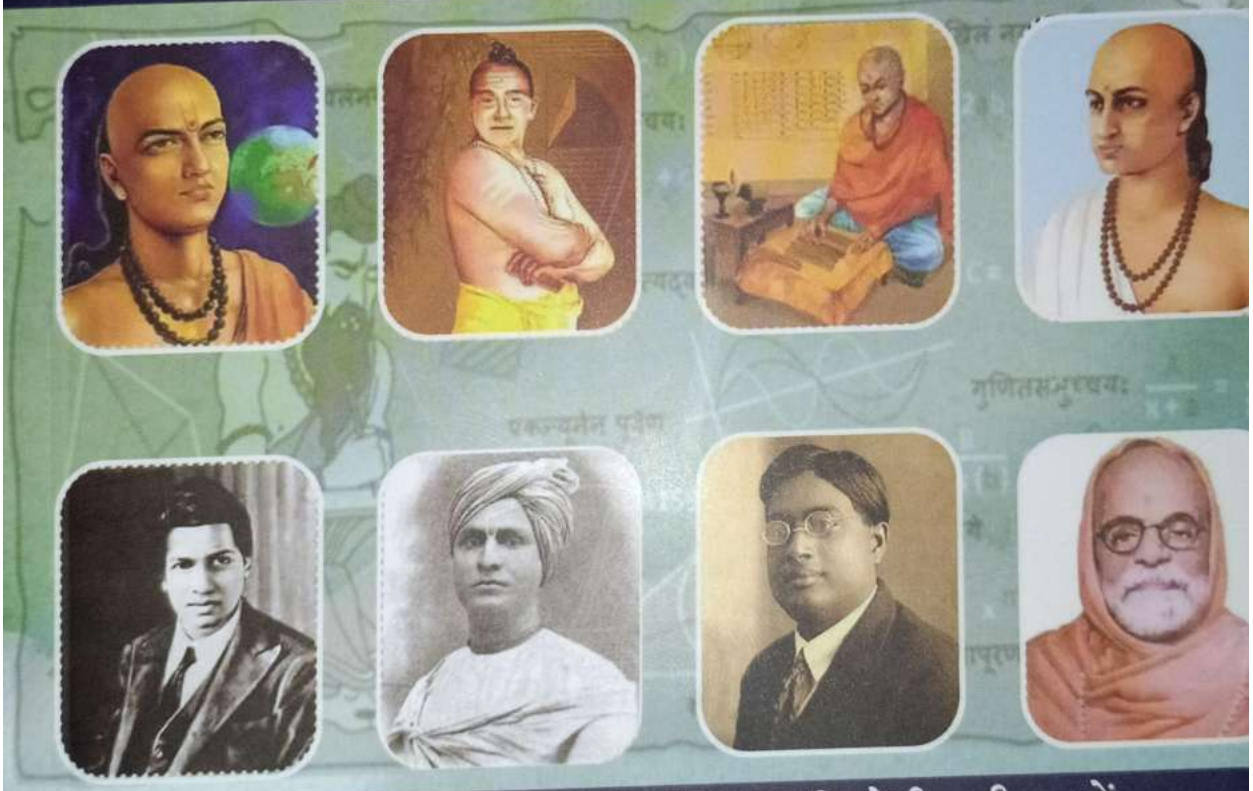

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251
E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg
http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

वैदिक गणित : गणना का भारतीय मंत्र

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वतापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रस्तुति में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और तौलनिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौलिक स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक / ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : वैदिक गणित : गणना का भारतीय मंत्र

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, जितेन्द्र कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-86-4

मूल्य : 190/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष 'भारत बौद्धिक्स' परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई 21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला, इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. कला एवं मानविकी: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

Scanner by Droid-Veda

3. समाजशास्त्र एवं अर्थनीति: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम 23 जनवरी 2026, नेताजी सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती के अवसर पर, एक राष्ट्रीय परीक्षा का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और भारतीय कला एवं समाज भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। भारत बौद्धिक्स मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

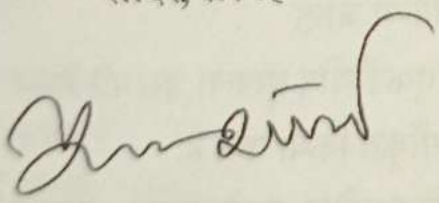

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

Scanner by Droid-Veda

विषय सूची

शुभकामना संदेश	5
प्रस्तावना	9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
भूमिका	13
अध्याय 1 : डुप्लेक्स विधि: संख्याओं का वर्ग निकालने की एक सामान्य विधि	19
अध्याय 2 : 5 पर समाप्त होने वाली संख्याओं का वर्ग	22
अध्याय 3 : 1 पर समाप्त होने वाली संख्याओं का वर्ग	25
अध्याय 4 : ऊर्ध्व तिर्यग्भ्याम विधि द्वारा गुणा	33
अध्याय 5 : गुणा की बेस विधि	37
अध्याय 6 : सब-बेस विधि द्वारा गुणा	41
अध्याय 7 : यावदूनम् विधि द्वारा वर्ग निकालना	45
अध्याय 8 : पूर्णांक वर्गमूल	49
अध्याय 9 : पूर्ण घनों के सटीक घनमूल	52
अध्याय 10 : विभाज्यता	55
अध्याय 11 : केवल 9 से बनी संख्याओं से गुणा करना	59
अध्याय 12 : वेदिक पद्धति से घटाना	61

Scanner by Droid-Veda

प्रस्तावना



वेदिक गणित, भारत की प्राचीन गणितीय परंपरा का एक समृद्ध एवं विशिष्ट अंग है, जो गणना की प्रक्रियाओं को सरल, त्वरित तथा बौद्धिक रूप से सुदृढ़ बनाने में सहायक है। वैदिक विधियाँ न केवल गणना के पारंपरिक दृष्टिकोण को चुनौती देती हैं, बल्कि गणित के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करने में भी सहायक सिद्ध होती हैं। यह पुस्तक इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई है - ताकि पाठकों को वेदिक गणित की मूलभूत तकनीकों का व्यवस्थित एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सके।

पुस्तक का प्रत्येक अध्याय एक विशेष तकनीक को समर्पित है, जो संख्यात्मक दक्षता को बढ़ाने के साथ-साथ तार्किक एवं विश्लेषणात्मक चिंतन को भी प्रोत्साहित करता है:

अध्याय 1 से 3 तक विभिन्न प्रकार की संख्याओं का वर्ग निकालने की विधियों पर केंद्रित हैं, जिनमें *डुप्लेक्स विधि*, 5 पर तथा 1 पर समाप्त होने वाली संख्याओं के वर्ग निकालने की व्यावहारिक युक्तियाँ सम्मिलित हैं। ये विधियाँ विशेष रूप से मानसिक गणना को सशक्त बनाती हैं।

- अध्याय 4 से 6 में गुणा की वेदिक पद्धतियाँ -*ऊर्ध्व तिर्यग्भ्याम*, *बेस विधि* एवं *सब-बेस विधि* - सरलता, तीव्रता एवं सटीकता के गुणों के साथ प्रस्तुत की गई हैं, जो विशेष रूप से प्रतियोगी परीक्षाओं एवं अकादमिक स्तर पर उपयोगी हैं।
- अध्याय 7 में *यावदूनम् विधि* के माध्यम से संख्याओं के घन की गणना की एक सहज प्रक्रिया प्रस्तुत की गई है, जो विद्यार्थियों को जटिल घनगणनाओं को सरलतापूर्वक समझने में सहायता प्रदान करती है।
- अध्याय 8 एवं 9 पूर्णांकों के वर्गमूल तथा घनमूल से संबंधित हैं, जिनमें क्रमशः पूर्णांक संख्याओं का वर्गमूल एवं पूर्ण घनों के घनमूल निकालने की सटीक एवं प्रभावी विधियाँ दी गई हैं।
- अध्याय 10 में *विभाज्यता* के सिद्धांतों को वेदिक दृष्टिकोण से स्पष्ट किया गया है, जो गणनात्मक दक्षता को नई दिशा प्रदान करता है।
- अध्याय 11 वेदिक पद्धति द्वारा *घटाव* की एक विशिष्ट तकनीक को प्रस्तुत करता है, जो विशेष रूप से समय-संवेदी परीक्षाओं में अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती है।

सरल भाषा, चरणबद्ध उदाहरणों तथा अभ्यास-पत्रों के माध्यम से पुस्तक को इस प्रकार संरचित किया गया है कि किसी भी स्तर का पाठक इन विधियों को आत्मसात कर सके।

हमें आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों को वेदिक गणित की उपयोगिता, सुगमता एवं वैज्ञानिकता से परिचित कराते हुए उनकी गणनात्मक क्षमता को एक नई ऊँचाई प्रदान करेगी।

Scanner by Droid-Veda

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

Scanner by Droid-Veda

भूमिका



भारतीय गणित की चिरंतन प्रतिभा की यात्रा

भारत में गणित केवल संख्याओं या समीकरणों का लेखा-जोखा नहीं रहा - यह एक **जीवित परंपरा** है, जो **पाँच हज़ार वर्षों** से अधिक समय से चली आ रही है। सिंधु घाटी की ईंटों से लेकर केरल के अनंत श्रेणी (infinite series) तक, भारत ने गणित की सबसे गहन और सतत परंपरा का पोषण किया है।

1. सिंधु सभ्यता में गणित की शुरुआत (3500–1500 ईसा पूर्व): लिपियों से पहले की ज्यामिति

लिपियों के विकसित होने से भी पहले, **सिंधु घाटी सभ्यता** के लोग गणितीय सिद्धांतों का व्यावहारिक उपयोग कर रहे थे। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से मिली वस्तुएँ, जैसे 0.005 इंच तक सटीक **"इंडस इंच"** रूलर, 4:2:1 अनुपात की ईंटें, और योजनाबद्ध नगरीय निर्माण, इस बात का प्रमाण हैं कि वे **ज्यामिति, मापतौल और अनुपात** को अच्छी तरह समझते थे।

2. वैदिक युग और शुल्ब सूत्र (1500–500 ईसा पूर्व): यज्ञ और ज्यामिति का संगम

भारत के **प्रथम लिखित गणितीय ग्रंथ** वैदिक काल में आए, जिन्हें **शुल्ब सूत्र** कहा जाता है। ये सूत्र, वेदों के कल्पवेदांग के अंग हैं और यज्ञ वेदियों के निर्माण हेतु ज्यामितीय नियमों का वर्णन करते हैं। **बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन**, और **मानव** के शुल्ब सूत्रों में दर्ज हैं:

- पाइथागोरस प्रमेय का सबसे पहला उल्लेख
- $\sqrt{2}$ का पाँच दशमलव स्थान तक सटीक मान
- वर्ग को वृत्त में और वृत्त को वर्ग में बदलने की विधियाँ
- त्रिकोणों और त्रिकों की गणनाएँ
- अपरिमेय संख्याओं का प्रारंभिक उपयोग

3. वैदिक गणित और वेदांग: ज्ञान की सेवा में गणित

भारतीय परंपरा में गणित को अलग नहीं, बल्कि **हर ज्ञान की रीढ़** माना गया। **छः वेदांगों** में, **कल्प, ज्योतिष** और **छंद** में गणित का व्यापक उपयोग हुआ। **वेदांग ज्योतिष**, जिसे **लघध** द्वारा रचित माना जाता है, कहता है:

> "**गणित** (मथेमेटिक्स) सभी वेदांगों का शिरोमणि है - जैसे मोर का सिर, या नाग के फन पर रत्न।"

Scanner by Droid-Veda

4. जैन गणित (400 ईसा पूर्व – 400 ईस्वी): अमूर्त विचार और अनंत की धारणा

जैन गणितज्ञों ने गणित को ध्यान और तर्क का विषय बनाया। उनके योगदानों में शामिल हैं:

- "शून्य" शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग
- अनंतता के पाँच भेद
- बहुत बड़ी संख्याओं और गुणनखंडों के साथ कार्य
- गणित को साधना और मानसिक अभ्यास के रूप में अपनाना

ग्रंथ जैसे - *सूर्य प्रज्ञप्ति*, *स्थानांग सूत्र* - जैन गणित की गहराई को दर्शाते हैं।

5. शास्त्रीय काल (400–1200 ईस्वी): स्वर्ण युग

शास्त्रीय काल, भारतीय गणित के औपचारिक, संरचित ग्रंथों के रूप में विकसित होने का महत्वपूर्ण युग है। इस काल में गणित का स्वरूप **व्यवस्थित और ग्रंथबद्ध** हुआ। इस काल के दो सबसे प्रमुख महान भारतीय गणितज्ञ हैं:

- **आर्यभट प्रथम (476–550 ई.),** जिनकी रचना "आर्यभटीय" में प्रस्तुत हैं:
  - दशमलव पद्धति जिसमें शून्य को स्थानधारी के रूप में उपयोग किया गया,
  - त्रिकोणमितीय फलनों जैसे साइन (ज्या) और कोसाइन (कोटिज्या) का प्रयोग,
  - π (पाई) का सटीक मान 3.1416 तक की गणना,
  - बीजगणितीय विधियाँ एवं ग्रहों की गति की गणना।
- **ब्रह्मगुप्त (598–668 ई.), जिनकी कृति "ब्रह्मस्फुटसिद्धांत" में वर्णित हैं:**
  - शून्य के साथ गणनात्मक नियमों का स्पष्टीकरण,
  - ऋणात्मक संख्याओं का गणितीय विश्लेषण,
  - द्विघात समीकरणों के हल की विधियाँ,
  - वृतीय चतुर्भुजों (cyclic quadrilaterals) की ज्यामिति,
  - अत्यंत सटीक खगोलीय गणनाएँ।

इनकी रचनाएँ संस्कृत के पद्य और गद्य में रचित थीं और न केवल भारतवर्ष में, बल्कि इस्लामी जगत और आगे चलकर पश्चिमी गणित को भी गहरे स्तर पर प्रभावित किया।

6. बाख़्शाली पांडुलिपि (700–1100 ईस्वी): छिपा हुआ खजाना

1881 में उत्तर भारत में खोजी गई यह **भोजपत्र पर लिखी पांडुलिपि** गणितीय इतिहास की अमूल्य धरोहर है। इसमें वर्णित हैं:

- भिन्न, वर्गमूल और प्रगति पर गणनाएँ
- रेखीय और द्विघात समीकरण
- शून्य के प्रतीक के रूप में बिंदु का प्रयोग

Scanner by Droid-Veda

यह प्राचीन भारतीय विद्यालयों में गणित की शिक्षा-प्रणाली और अभ्यास के बारे में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

7. केरल स्कूल (14वीं–16वीं शताब्दी): न्यूटन से पहले कलन (Calculus)

केरल के मंदिर नगरों में, सङ्गमग्राम के माधव से प्रारंभ होकर दूरदर्शी विद्वानों के एक समूह ने उस गणितीय ज्ञान की नींव रखी जिसे आज कई लोग पूर्व-कैल्कुलस (Proto-Calculus) के रूप में पहचानते हैं:

- ज्या (साइन), कोटिज्या (कोसाइन) और आर्क-टैन्जन्ट के लिए अनंत श्रेणियाँ, पाई (π) की गणना के लिए कई श्रेणी अनुमान (multiple series approximations), घात श्रेणी प्रसारण विधियाँ (power series expansion techniques), ज्येष्ठदेव द्वारा रचित अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ युक्तिभाषा, जिसे प्रायः प्रथम कलन शास्त्र (Calculus) की पाठ्यपुस्तक माना जाता है।

इन विद्वानों ने न्यूटन और लाइबनिज़ की विधियों को कई शताब्दियों पूर्व ही समझ लिया था, हालांकि उनका कार्य सीमित प्रसार के कारण विश्व स्तर पर अधिक प्रसिद्ध नहीं हो सका।

8. विश्व में प्रसार: भारत का गणितीय उपहार

भारतीय गणितीय ग्रंथों और अवधारणाओं का प्रसार पश्चिम की ओर इस प्रकार हुआ: **आर्यभटीय** और **सिद्धांत** जैसे ग्रंथों के **अरबी अनुवाद**, **नालंदा से बगदाद** तक व्यापारिक मार्गों और विद्वानों के आदान-प्रदान द्वारा, **हिंदू-अरबी संख्यात्मक प्रणाली** को अपनाया गया, जिसमें **शून्य की क्रांतिकारी अवधारणा** और **स्थानिक दशमलव पद्धति** शामिल थी।

इस प्रकार का प्रसारण **आधुनिक वैश्विक गणित** की नींव बना।

9. वैदिक गणित का पुनरुद्धार (20वीं शताब्दी)

बीसवीं सदी की शुरुआत में, **जगद्गुरु श्री भारती कृष्ण तीर्थ**, जो पुरी के शंकराचार्य और एक प्रतिष्ठित विद्वान थे, उन्होंने अथर्ववेद और उसके परिशिष्टों का गहन ध्यान एवं मनन किया।

सन् 1911 से 1918 के बीच उन्होंने यह दावा किया कि उन्होंने 16 गणितीय सूत्र और 13 उपसूत्र "पुनः खोजे" हैं - जो अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और कलन शास्त्र में उपयोग किए जा सकते हैं।

हालाँकि ये सूत्र वेदों में सीधे नहीं मिलते, लेकिन 1965 में इनके मरणोपरांत प्रकाशित होने के बाद ये सूत्र उस प्रणाली का आधार बने जिसे आज हम **वैदिक गणित** कहते हैं। यह एक ऐसी **मानसिक गणना पद्धति** है जो **सरल**, **तेज़** और **सुंदर** है, और जो **ढाँचे या रूपरेखा की पहचान** पर आधारित होती है।

Scanner by Droid-Veda

10. "वैदिक" शब्द का अर्थ क्या है?

इन सूत्रों की **ऐतिहासिक प्रामाणिकता** को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। यद्यपि ये सूत्र वेदों की मूल पांडुलिपियों में नहीं पाए जाते, फिर भी कई लोग मानते हैं कि ये सूत्र प्राचीन भारतीय गणितीय परंपरा से प्रेरित हैं, जिसमें **मानसिक क्षमता, पैटर्न आधारित विधियाँ**, और **संक्षिप्त सूत्रात्मक अभिव्यक्तियाँ** प्रमुख थीं।

इसलिए, **वैदिक गणित** को वेदों की प्रत्यक्ष परंपरा नहीं, बल्कि बीसवीं सदी में एक **संवेदनशील, आध्यात्मिक और बौद्धिक रूप में पुनर्निर्मित प्रणाली** माना जा सकता है, जो भारत की प्राचीन गणितीय विरासत को सम्मान अर्पित करती है।

11. भारतीय गणित: तर्क और सौंदर्य का संगम

भारतीय परंपरा में गणित केवल समीकरण हल करने का माध्यम नहीं था, बल्कि यह **ब्रह्मांड को समझने, काव्य छंदों की रचना, पवित्र स्थलों की योजना**, और **अनंत के चिंतन** का मार्ग था।

वैदिक मंत्रों की लय, जैन मनीषियों की तर्कशक्ति, आर्यभट के ग्रहों की कक्षाएँ, और **केरल के गणितज्ञों की श्रेणियाँ** - सब मिलकर गणित को **सौंदर्य, संगति**, और **सत्य** की खोज का माध्यम बनाते हैं।

भारतीय गणित की परंपरा केवल संख्याओं की गणना नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय चेतना को समझने की एक सूक्ष्म और दिव्य साधना रही है - शून्य की मौनता से लेकर अनंत के विस्तार तक, यज्ञ वेदी की रेखाओं से लेकर अंतरिक्ष में ग्रहों की गति तक। यह परंपरा निरंतरता और नवाचार की अद्भुत यात्रा है, जिसमें गणना ज्ञान का साधन नहीं, स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार बन जाती है।

जैसा प्राचीन गणित ग्रंथों में कहा गया है:

"गणितं मूर्धनि स्थितं, शास्त्राणां गणकं स्मृतम्।"

- लीलावती (भास्कराचार्य, प्राकट्य श्लोक)

("गणित शास्त्रों के शिखर पर स्थित है; यह सभी विद्याओं की गणना का आधार है।")

"सर्वं गणितमेवात्र, नास्ति किंचित् गणनं विना।"

-सिद्धांतशिरोमणि, भास्कराचार्य

("इस संपूर्ण सृष्टि में सब कुछ गणना से जुड़ा है; गणना के बिना कुछ भी नहीं।")

"यत्र यत्र गणितं तत्र तत्र ज्योतिर्मयं जगत्।"

-तत्त्वसंग्रह

("जहाँ-जहाँ गणित है, वहाँ-वहाँ ब्रह्मांडीय प्रकाश फैला हुआ है।")

Scanner by Droid-Veda

इसलिए, जब हम भारतीय गणित की इस ज्ञानयात्रा में प्रवेश करते हैं, तो हमें केवल सूत्रों और संख्याओं को नहीं, बल्कि उन ऋषियों के चिंतन, उनकी दृष्टि, और उनके उस साक्षात्कार को समझना होता है जो उन्होंने "संख्या" के माध्यम से "सत्य" के रूप में देखा था।

आइए, इस यात्रा के हर अध्याय में उस वैदिक भावना को स्मरण रखें -

"गणितं शास्त्रस्य शिरः"

गणित ही समस्त शास्त्रों का मुकुटमणि है।

अध्याय 1

डुप्लेक्स विधि: संख्याओं का वर्ग निकालने की एक सामान्य विधि



डुप्लेक्स विधि एक तकनीक है जिसका उपयोग किसी संख्या का वर्ग निकालने के लिए किया जाता है। डुप्लेक्स विधि का पहला कदम संख्या का डुप्लेक्स निकालना होता है। डुप्लेक्स (D) वह संख्या होती है, जो किसी संख्या से जुड़ी होती है, और इसे नीचे दिए गए तरीके से निकाला जाता है। किसी संख्या के डुप्लेक्स की गणना विधि, उस संख्या के अंकों की संख्या के आधार पर बदलती है।

1. **एकल अंकीय संख्या (a) के लिए**, डुप्लेक्स सीधे उसका वर्ग होता है:
$$D(a) = a^2$$
2. **दो अंकीय संख्या (ab) के लिए**, डुप्लेक्स इस प्रकार से निकाला जाता है:
$$D(ab) = 2 \times a \times b$$
3. **तीन अंकीय संख्या (abc) के लिए**, डुप्लेक्स इस प्रकार होता है:
$$D(abc) = 2 \times a \times c + b^2$$
4. **चार अंकीय संख्या (abcd) के लिए**, डुप्लेक्स इस प्रकार होता है:
$$D(abcd) = 2 \times a \times d + 2 \times b \times c$$
5. **पाँच अंकीय संख्या (abcde) के लिए**, डुप्लेक्स इस प्रकार होता है:
$$D(abcde) = 2 \times a \times e + 2 \times b \times d + c^2$$
6. यह प्रक्रिया बड़ी संख्याओं के लिए भी जारी रहती है, जहाँ हम सममित गुणनफल (symmetrical products) और यदि संभव हो तो मध्य पद का वर्ग भी सम्मिलित करते हैं।

अब हम उदाहरणों की मदद से समझाते हैं कि डुप्लेक्स विधि का उपयोग करके संख्याओं का वर्ग कैसे निकाला जाता है।

उदाहरण 1: 23 का वर्ग निकालना

हम डुप्लेक्स की गणना करते हैं:

$$D(2) = 2^2 = 4$$
$$D(23) = 2 \times 2 \times 3 = 12$$
$$D(3) = 3^2 = 9$$

इन डुप्लेक्सों को क्रम में लगाते हैं:

$$D(2) / D(23) / D(3) = 4 / 12 / 9$$

Scanner by Droid-Veda

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अब, कैरी को समायोजित करते हैं:

$$4 + 1 / 2 / 9 \Rightarrow \mathbf{529}$$

उदाहरण 2: 89 का वर्ग निकालना

चरण 1: डुप्लेक्स की गणना करें

$$D(8) = 8^2 = 64$$
$$D(89) = 2 \times 8 \times 9 = 144$$
$$D(9) = 9^2 = 81$$

चरण 2: डुप्लेक्स मानों को क्रमबद्ध करें:

$$64 / 144 / 81$$

चरण 3: कैरी को समायोजित करें:

$$64 / 144 + 8 / 1 = 64 + 15 / 2 / 1 = \mathbf{7921}$$

उदाहरण 3: 314 का वर्ग निकालना

चरण 1: डुप्लेक्स की गणना करें

$$D(3) = 9$$
$$D(31) = 2 \times 3 \times 1 = 6$$
$$D(314) = 2 \times 3 \times 4 + 1^2 = 24 + 1 = 25$$
$$D(14) = 2 \times 1 \times 4 = 8$$
$$D(4) = 16$$

चरण 2: डुप्लेक्स मानों का क्रम:

$$9 / 6 / 25 / 8 / 16$$

चरण 3: दाएँ से बाएँ कैरी को समायोजित करें:

$$9 / (6 + 2) / 5 / (8 + 1) / 6 = \mathbf{98596}$$

उदाहरण 4: 1468 का वर्ग निकालना

चरण 1: सभी आवश्यक डुप्लेक्सों की गणना करें

$$D(1) = 1$$
$$D(14) = 2 \times 1 \times 4 = 8$$
$$D(146) = 2 \times 1 \times 6 + 4^2 = 12 + 16 = 28$$
$$D(1468) = 2 \times 1 \times 8 + 2 \times 4 \times 6 = 16 + 48 = 64$$
$$D(468) = 2 \times 4 \times 8 + 62 = 64 + 36 = 100$$

Scanner by Droid-Veda

$$D(68) = 2 \times 6 \times 8 = 96$$
$$D(8) = 64$$

चरण 2: मानों का क्रम:

$$1 / 8 / 28 / 64 / 100 / 96 / 64$$

चरण 3: कैरी को चरण दर चरण समायोजित करें:

सबसे दाएँ: $64 \Rightarrow 4$, कैरी 6

$96 + 6 = 102 \Rightarrow 2$, कैरी 10

$100 + 10 = 110 \Rightarrow 0$, कैरी 11

$64 + 11 = 75 \Rightarrow 5$, कैरी 7

$28 + 7 = 35 \Rightarrow 5$, कैरी 3

$8 + 3 = 11 \Rightarrow 1$, कैरी 1

$1 + 1 = 2$

अंतिम परिणाम: 2155024

अभ्यास प्रश्न

डुप्लेक्स विधि का उपयोग करके निम्नलिखित संख्याओं का वर्ग निकालने का प्रयास करें:

1. 56
2. 67
3. 78
4. 135
5. 246
6. 357
7. 489
8. 5689
9. 1234
10. 357

डुप्लेक्स विधि का उपयोग क्यों करें?

डुप्लेक्स विधि विशेष रूप से बहु-अंकीय संख्याओं के साथ काम करते समय सहायक होती है। यह एक बड़ी संख्या के वर्ग को छोटे, समान गुणात्मक गणनाओं की एक श्रंखला में बदल देती है, जिससे गणना की जटिलता कम हो जाती है और मानसिक गणना कौशल में सुधार होता है। नियमित अभ्यास के साथ, यह विधि किसी भी आकार की संख्याओं के वर्ग निकालने के लिए एक तेज़ और विश्वसनीय तकनीक बन जाती है।

अध्याय 2

5 पर समाप्त होने वाली संख्याओं का वर्ग



वैदिक गणित 5 पर समाप्त होने वाली संख्याओं का वर्ग निकालने के लिए एक अत्यंत प्रभावी और सरल विधि प्रदान करता है। यह तकनीक उस स्थिति को सरल बना देती है जहाँ सामान्यतः लंबी गुणा प्रक्रिया की आवश्यकता होती है, और मानसिक गणना के लिए यह विधि विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होती है।

सामान्य विधि

5 पर समाप्त होने वाली किसी भी संख्या का वर्ग निकालने के लिए निम्नलिखित चरणों का पालन करें:

1. अंतिम अंक 5 को हटा दें। शेष बची संख्या को **a** मान लें।
2. a और a + 1 का गुणनफल निकालें।
3. चरण 2 से प्राप्त संख्या के साथ '25' को अंतिम दो अंकों के रूप में जोड़ दें।

जो अंतिम संख्या प्राप्त होती है, वही दी गई संख्या का वर्ग होता है। आइए इस विधि को उदाहरणों के माध्यम से समझते हैं।

उदाहरण 1: 75^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 5 हटाएँ,

$a = 7$

चरण 2: a और a + 1 का गुणनफल निकालें,

$$a \times (a + 1) = 7 \times 8 = 56$$

चरण 3: अंत में "25" जोड़ें,

$$\Rightarrow 75^2 = 5625$$

निष्कर्ष: 75 का वर्ग 5625 है।

उदाहरण 2: 115^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 5 हटाएँ,

$a = 11$

चरण 2: a और a + 1 का गुणनफल निकालें,

$$11 \times 12 = 132$$

चरण 3: अंत में "25" जोड़ें, $\Rightarrow 115^2 = 13225$

निष्कर्ष: 115 का वर्ग 13225 है।

उदाहरण 3: 1255^2 ज्ञात करें

यह एक बड़ी संख्या है, लेकिन विधि वही रहती है। यहाँ एक अतिरिक्त चरण की आवश्यकता होती है।

चरण 1: अंतिम अंक 5 हटाएँ,

$a = 125$

चरण 2 : अब हमें 125×126 निकालना है, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$125 \times 126 = 125^2 + 125$$

अब, क्योंकि 125 भी 5 पर समाप्त होती है, हम 125^2 ज्ञात करने के लिए उपर्युक्त तकनीक का पुनः उपयोग करते हैं।

चरण 1' : अंतिम अंक 5 हटाएँ,

$a = 12$

चरण 2' : a और a + 1 का गुणनफल निकालें,

$$12 \times 13 = 156$$

चरण 3' : अंत में "25" जोड़ें, $\Rightarrow 125^2 = 15625$

अब, $125 \times 126 = 15625 + 125 = 15750$

अंत में "25" जोड़ें, $\Rightarrow 1255^2 = 1575025$

निष्कर्ष: 1255 का वर्ग 1575025 है।

उदाहरण 4: 1555^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 5 हटाएँ,

$a = 155$

चरण 2 : अब हमें 155×156 निकालना है, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$155 \times 156 = 155^2 + 155$$

अब, क्योंकि 155 भी 5 पर समाप्त होती है, हम 155^2 ज्ञात करने के लिए उपर्युक्त तकनीक का पुनः उपयोग करते हैं।

चरण 1' : अंतिम अंक 5 हटाएँ,

$a = 15$

चरण 2' :

$$15 \times 16 = 240$$

चरण 3' : "25" जोड़ें, $\Rightarrow 155^2 = 24025$

अब, $155 \times 156 = 24025 + 155 = 24180$

अंत में "25" जोड़ें, $\Rightarrow 1555^2 = 2418025$

निष्कर्ष: 1555 का वर्ग 2418025 है।

Scanner by Droid-Veda

उदाहरण 5: 3255^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 5 हटाएँ,

$a = 325$

चरण 2 : अब हमें 325×326 निकालना है, जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$325 \times 326 = 325^2 + 325$$

अब, क्योंकि 325 भी 5 पर समाप्त होती है, हम 325^2 ज्ञात करने के लिए उपर्युक्त तकनीक का पुनः उपयोग करते हैं:

चरण 1' : 5 हटाएँ,

$a = 32$

चरण 2' : a और a + 1 का गुणनफल निकालें,

$$32 \times 33 = 1056$$

चरण 3' : "25" जोड़ें, $\Rightarrow 325^2 = 105625$

अब, $325 \times 326 = 105625 + 325 = 105950$

अंत में "25" जोड़ें, $\Rightarrow 3255^2 = 10595025$

निष्कर्ष: 3255 का वर्ग 10595025 है।

यह विधि क्यों कार्य करती है?

यह तकनीक निम्नलिखित बीजीय सूत्र (algebraic identity) पर आधारित है:

$$(10a + 5)^2 = 100a(a + 1) + 25$$

यहाँ, **a(a + 1)** उस संख्या के पहले के अंक बनाता है, और अंतिम में "25" सदैव आता है क्योंकि यह 5^2 का परिणाम है। इस विधि की **प्रभावशीलता और सुंदरता** इसी में है कि यह बड़ी गणना को सरल और छोटे भागों में बाँटकर हल करने योग्य बना देती है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित संख्याओं का वर्ग निकालिए, डि गई विधि का उपयोग करते हुए:

1. 15
2. 95
3. 65
4. 205
5. 165
6. 145
7. 105
8. 1055
9. 7555
10. 1155

Scanner by Droid-Veda

अध्याय 3

1 पर समाप्त होने वाली संख्याओं का वर्ग



वैदिक गणित 1 पर समाप्त होने वाली संख्याओं का वर्ग निकालने के लिए एक अत्यंत सुंदर और तेज़ विधि प्रदान करता है। यह विधि संपूर्ण प्रक्रिया को छोटे-छोटे भागों में बाँट देती है, जिससे मानसिक गणना में सुविधा होती है और संख्यात्मक समझ भी विकसित होती है।

सामान्य विधि

1 पर समाप्त होने वाली किसी भी संख्या का वर्ग निकालने के लिए निम्नलिखित चरणों का पालन करें:

1. अंतिम अंक 1 को हटा दें। शेष संख्या को **a** मानें।
2. **2 × a** की गणना करें।
3. **a^2** की गणना करें।
4. प्राप्त तीन मानों को इस क्रम में व्यवस्थित करें:

$$a^2 / (2 \times a) / 1$$

5. अब दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को समायोजित करें।

यह प्रक्रिया प्रारंभ में कुछ असामान्य लग सकती है, लेकिन अभ्यास के साथ यह एक तेज़ और विश्वसनीय मानसिक विधि बन जाती है।

उदाहरण 1: 61^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 1 को हटा दें:

$$a = 6$$

चरण 2: $2 \times a$ का मान निकालें:

$$2 \times 6 = 12$$

चरण 3: a^2 का मान निकालें:

$$6^2 = 36$$

चरण 4: इन मानों को इस प्रकार क्रम में रखें:

$$36 / 12 / 1$$

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: 1

अगला: 12 + कैरी = 12 → (2 लिखें, 1 कैरी आगे बढ़ाएँ)

Scanner by Droid-Veda

अब: $36 + 1 = 37$

अंतिम उत्तर: 3721

उदाहरण 2: 91^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 1 को हटा दें:

$$a = 9$$

चरण 2: $2 \times a$ का मान निकालें:

$$2 \times 9 = 18$$

चरण 3: a^2 का मान निकालें:

$$9^2 = 81$$

चरण 4: इन मानों को इस क्रम में लिखें:

$$81 / 18 / 1$$

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ का अंक: **1**

अगला: **18 + कैरी = 18** → (8 लिखें, 1 कैरी आगे बढ़ाएँ)

अब: **81 + 1 = 82**

अंतिम उत्तर : 8281

उदाहरण 3: 121^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 12$$

चरण 2: $2 \times a$ का मान निकालें:

$$2 \times 12 = 24$$

चरण 3: a^2 का मान निकालें:

$$12^2 = 144$$

चरण 4: इन मानों को इस क्रम में रखें:

$$144 / 24 / 1$$

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: **24 + कैरी = 24** → (4 लिखें, 2 कैरी आगे बढ़ाएँ)

अब: **144 + 2 = 146**

अंतिम उत्तर : 14641

Scanner by Droid-Veda

उदाहरण 4: 211^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 21$$

चरण 2: $2 \times a$ का मान निकालें:

$$2 \times 21 = 42$$

चरण 3: a^2 का मान निकालें:

$$21^2 = 441$$

चरण 4: इन मानों को इस क्रम में संयोजित करें:

$$441 / 42 / 1$$

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: **42 + कैरी = 42** → (2 लिखें, 4 कैरी आगे बढ़ाएँ)

अब: **441 + 4 = 445**

अंतिम उत्तर : 44521

उदाहरण 5: 1511^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 151$$

चरण 2: $2 \times a$ का मान निकालें

$$2 \times a = 2 \times 151 = 302$$

चरण 3: a^2 का मान निकालें

$$a^2 = 151^2$$

अब, क्योंकि 151 भी 1 पर समाप्त होती है, हम 151^2 ज्ञात करने के लिए उपर्युक्त तकनीक का पुनः उपयोग करते हैं:

अंदरूनी चरण (151^2 ज्ञात करने हेतु)

चरण 1' : अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 15$$

चरण 2' :

$$2 \times a = 30$$

चरण 3' :

$$a^2 = 15^2 = 225$$

चरण 4' : संयोजन करें:

225 / 30 / 1

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: **30 + कैरी = 30** → (0 लिखें, 3 कैरी)

अब: **225 + 3 = 228**

इसलिए, $151^2 = 22801$

अब वापस से मूल गणना पर आते हैं: **चरण 4:** इनको संयोजित करें: 22801 / 302 / 1

अब,दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: **302 + कैरी = 302** → (2 लिखें, 30 कैरी)

अब: **22801 + 30 = 22831**

अंतिम उत्तर : 2283121

उदाहरण 6: 4511^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 451$$

चरण 2: $2 \times a$ का मान निकालें

$$2 \times a = 2 \times 451 = 902$$

चरण 3: a^2 का मान निकालें

$$a^2 = 451^2$$

अब, क्योंकि 451 भी 1 पर समाप्त होती है, हम 451^2 ज्ञात करने के लिए उपर्युक्त तकनीक का पुनः उपयोग करते हैं :

अंदरूनी चरण (451^2 ज्ञात करने हेतु)

चरण 1' : अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 45$$

चरण 2' : $2 \times a$ का मान निकालें

$$2 \times a = 90$$

चरण 3' : a^2 का मान निकालें

$$a^2 = 45^2 = 2025$$

चरण 4 : संयोजन करें: 2025 / 90 / 1

अब,दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

Scanner by Droid-Veda

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: **90 + कैरी = 90** → (0 लिखें, 9 कैरी आगे बढ़ाएँ)

अब: **2025 + 9 = 2034**

इसलिए, $451^2 = 203401$

अब वापस से मूल गणना पर आते हैं:

चरण 4: संयोजन करें: 203401 / 902 / 1

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: **902 + कैरी = 902** → (2 लिखें, 90 कैरी आगे बढ़ाएँ)

अब: **203401 + 90 = 203491**

अंतिम उत्तर : $4511^2 = 20349121$

उदाहरण 7: 12511^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 1251$$

चरण 2: $2 \times a$ का मान निकालें

$$2 \times a = 2 \times 1251 = 2502$$

चरण 3: a^2 का मान निकालें

$$a^2 = 1251^2$$

अब, क्योंकि **1251** भी 1 पर समाप्त होता है, हम उसी तकनीक का पुनः उपयोग करेंगे:

अंदरूनी चरण (1251^2 ज्ञात करने हेतु)

चरण 1' : अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 125$$

चरण 2' : $2 \times a$ का मान निकालें

$$2 \times a = 250$$

चरण 3' : a^2 का मान निकालें

$$a^2 = 125^2$$

अब, क्योंकि **125** का अंतिम अंक 5 है, हम "5 पर समाप्त होने वाली संख्या के वर्ग" की ट्रिक का उपयोग करते हैं:

Scanner by Droid-Veda

उप-अंदरूनी चरण (125^2 ज्ञात करने हेतु)

चरण 1'' : अंतिम अंक 5 को हटाएँ:

$$a = 12$$

चरण 2'' : a और a + 1 का गुणनफल निकालें, $12 \times 13 = 156$

चरण 3'' : अंत में "25" जोड़ें: $125^2 = 15625$

अब वापस $\mathbf{1251^2}$ की गणना पर आते हैं:

चरण 4' : संयोजन करें: 15625 / 250 / 1

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: **250 + कैरी = 250** → (0 लिखें, **25 कैरी**)

अब: **15625 + 25 = 15650**

इसलिए, $1251^2 = 1565001$

अब वापस मूल प्रश्न $\mathbf{12511^2}$ पर आते हैं:

चरण 4: संयोजन करें: 1565001 / 2502 / 1

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: **2502 + कैरी = 2502** → (2 लिखें, **250 कैरी**)

अब: **1565001 + 250 = 1565251**

अंतिम उत्तर : $12511^2 = 156525121$

उदाहरण 8: 1651511^2 ज्ञात करें

चरण 1: अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 165151$$

चरण 2: $2 \times a$ का मान निकालें:

$$2 \times a = 2 \times 165151 = 330302$$

चरण 3: a^2 का मान निकालें:

$$a^2 = 165151^2$$

अब, क्योंकि **165151** भी 1 पर समाप्त होता है, हम उसी तकनीक का पुनः उपयोग करते हैं:

अंदरूनी चरण (165151^2 ज्ञात करने हेतु)

चरण 1' : अंतिम अंक 1 को हटाएँ:

$$a = 16515$$

Scanner by Droid-Veda

चरण 2' : $2 \times a$ का मान निकालें:

$$2 \times a = 33030$$

चरण 3' : : a^2 का मान निकालें:

$$a^2 = 16515^2$$

अब, क्योंकि **16515** का अंतिम अंक 5 है, हम "5 पर समाप्त होने वाली संख्या के वर्ग" की ट्रिक का उपयोग करते हैं।

उप-अंदरूनी चरण (16515^2 ज्ञात करने हेतु)

चरण 1'' : अंतिम अंक 5 को हटाएँ:

$$a = 1651$$

अब हमें 1651×1652 ज्ञात करना है।

इस हेतु हमें पहले 1651^2 ज्ञात करना होगा, और फिर उसमें **1651** जोड़ना होगा।

उप-उप-अंदरूनी चरण (1651^2 ज्ञात करने हेतु)

चरण 1''' : अंतिम अंक 1 को हटाएँ: $a = 165$

चरण 2''' : $2 \times a$ का मान निकालें: $2 \times a = 330$

चरण 3''' : : a^2 का मान निकालें: $a^2 = 165^2$

अब, क्योंकि 165 का अंतिम अंक 5 है, हम "5" वाली विधि अपनाते हैं:

अत्यंत अंदरूनी चरण (165^2 ज्ञात करने हेतु)

चरण 1^4 : अंतिम अंक 5 को हटाएँ: $a = 16$

चरण 2^4 : उत्तराधिकारी से गुणा करें: $16 \times 17 = 272$

चरण 3^4 : a और $a + 1$ का गुणनफल निकालें,

$$165^2 = 27225$$

अब लौटें 1651^2 पर:

चरण 4''' : संयोजन करें:

$$27225 / 330 / 1$$

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: 330 + कैरी = 330 → (0 लिखें, 33 कैरी)

अब : 27225 + 33 = 27258

इसलिए, $1651^2 = 2725801$

अब,

$1651 \times 1652 = 1651^2 + 1651 = 2725801 + 1651 = 2727452$

इसलिए, $16515^2 = 272745225$

अब लौटें 165151^2 की ओर:

चरण 4' : संयोजन करें:

272745225 / 33030 / 1

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: **1**

अगला: 33030 + कैरी = 33030 → (0 लिखें, 3303 कैरी)

अब: 272745225 + 3303 = 272748528,

इसलिए, $165151^2 = 27274852801$

अब लौटें मूल संख्या 1651511^2 की ओर:

चरण 4: संयोजन करें:

27274852801 / 330302 / 1

अब, दाएँ से बाएँ एक-एक अंक रखते हुए कैरी को बाईं ओर जोड़ते चलें:

सबसे दाएँ अंक: 1

अगला: 330302 + कैरी = 330302 → (2 लिखें, 33030 कैरी)

अब: 27274852801 + 33030 = 27274885831

अंतिम उत्तर :

$1651511^2 = 2727488583121$

निष्कर्ष

यह विधि दर्शाती है कि जटिल गुणा को किस प्रकार से सरल बीजगणितीय विधियों और चरणबद्ध कैरी समायोजन द्वारा सरल किया जा सकता है। इसकी कुशलता इसी में है कि यह संख्या को तोड़कर चरणों में व्यवस्थित करती है।

खुद प्रयास करें!

निम्नलिखित संख्याओं के वर्ग निकालने का प्रयास करें, ऊपर दी गई विधि का उपयोग करके:

1. 31
2. 41
3. 81
4. 101
5. 131
6. 1351
7. 711
8. 715
9. 7151
10. 12155
11. 1751151

Scanner by Droid-Veda

अध्याय 4

ऊर्ध्व तिर्यग्भ्याम विधि द्वारा गुणा



ऊर्ध्व तिर्यग्भ्याम एक वैदिक गणित सूत्र है जिसका उपयोग गुणा करने के लिए किया जाता है। इसका अर्थ होता है "ऊपर से और क्रॉसवाइज़" और यह संख्याओं को कुशलतापूर्वक गुणा करने की एक प्रणालीबद्ध विधि प्रदान करता है।

दो अंकों की संख्याओं के गुणा की विधि

1. इकाई स्थान के अंकों का लंबवत गुणा करें, मान लीजिए a।
2. क्रॉसवाइज़ गुणा करें और जोड़ें, मान लीजिए b।
3. दूसरे स्थान के अंकों का लंबवत गुणा करें, मान लीजिए c।
4. आवश्यक गुणा का उत्तर दाएँ से बाएँ कैरी को समायोजित करके प्राप्त किया जाता है, अभिव्यक्ति c / b / a में प्रत्येक अंक को उसकी जगह पर रखते हुए।

अब हम कुछ उदाहरणों की सहायता से उपरोक्त विधि को स्पष्ट करते हैं।

उदाहरण 1: 76 × 42 का गुणा

- इकाई अंकों का गुणा : $6 \times 2 = 12$
- क्रॉसवाइज़ गुणा और योग : $(7 \times 2) + (6 \times 4) = 14 + 24 = 38$
- दसवें स्थान के अंकों का गुणा: $7 \times 4 = 28$
- तो 76 × 42 को कैरी को समायोजित करके अभिव्यक्ति 28/ 38 /12 में से प्राप्त किया जाता है।

तो अंतिम उत्तर है, $76 \times 42 = 3192$

उदाहरण 2: 58 × 34 का गुणा

- इकाई अंकों का गुणा : $8 \times 4 = 32$
- क्रॉसवाइज़ गुणा और योग : $(5 \times 4) + (8 \times 3) = 20 + 24 = 44$
- दसवें स्थान के अंकों का गुणा : $5 \times 3 = 15$
- तो 58 × 34 को कैरी समायोजन के बाद अभिव्यक्ति 15/ 44 /32 से प्राप्त किया जाता है।

तो, $58 \times 34 = 1972$

Scanner by Droid-Veda

उदाहरण 3: 76 × 32 का गुणा

- इकाई अंकों का गुणा: $6 \times 2 = 12$
- क्रॉसवाइज़ गुणा और योग : $(7 \times 2) + (6 \times 3) = 14 + 18 = 32$
- दसवें स्थान के अंकों का गुणा: $7 \times 3 = 21$
- तो 76×32 को कैरी समायोजन द्वारा अभिव्यक्ति 21/ 32 /12 से प्राप्त किया जाता है।

  दाएँ से प्रारंभ करें: 12 (2 लिखें, कैरी 1)

  $32 + 1 = 33$ (3 लिखें, कैरी 3)

  $21 + 3 = 24$

  तो अंतिम उत्तर है: 2432

  अतः, $76 \times 32 = 2432$

तीन अंकों की संख्याओं के गुणा की विधि

वही ऊर्ध्व और क्रॉसवाइज़ विधि को तीन अंकों की संख्याओं तक बढ़ाया जा सकता है। इस प्रक्रिया में शामिल हैं:

1. सबसे दाएँ के अंकों का गुणा करें, मान लीजिए परिणाम a।
2. अंतिम दो अंकों के लिए क्रॉसवाइज़ गुणा करें और परिणामों का योग लें, मान लीजिए योग b।
3. सभी तीन अंकों के लिए क्रॉसवाइज़ गुणा करें और योग लें, मान लीजिए योग c।
4. पहले दो अंकों के लिए क्रॉसवाइज़ गुणा करें और योग लें, मान लीजिए योग d।
5. सबसे बाएँ अंकों का गुणा करें, मान लीजिए परिणाम e।
6. आवश्यक गुणा का उत्तर दाएँ से बाएँ कैरी को समायोजित करके प्राप्त किया जाता है, अभिव्यक्ति e / d / c / b / a में प्रत्येक अंक को उसकी जगह पर रखते हुए।

उदाहरण 4: 566 × 281 का गुणा

- इकाई अंकों का गुणा: $6 \times 1 = 6$
- अंतिम दो अंकों का क्रॉस गुणा और योग: $(6 \times 8) + (6 \times 1) = 48 + 6 = 54$
- तीन अंकों का क्रॉस गुणा और योग : $(5 \times 1) + (6 \times 8) + (6 \times 2) = 5 + 48 + 12 = 65$
- पहले दो अंकों का क्रॉस गुणा और योग : $(5 \times 8) + (6 \times 2) = 40 + 12 = 52$
- सबसे बाएँ अंकों का गुणा: $5 \times 2 = 10$
- तो 566×281 को कैरी समायोजन के बाद अभिव्यक्ति 10 /52 /65 / 54 / 6 से प्राप्त किया जाता है।

  तो, $566 \times 281 = 159046$

Scanner by Droid-Veda

उदाहरण 5: 472 × 342 का गुणा

- इकाई अंकों का गुणा: $2 \times 2 = 4$
- अंतिम दो अंकों का क्रॉस गुणा और योग: $(7 \times 2) + (2 \times 4) = 14 + 8 = 22$
- तीन अंकों का क्रॉस गुणा और योग : $(4 \times 2) + (7 \times 4) + (2 \times 3) = 8 + 28 + 6 = 42$
- पहले दो अंकों का क्रॉस गुणा और योग : $(4 \times 4) + (7 \times 3) = 16 + 21 = 37$
- सबसे बाएँ अंकों का गुणा: $4 \times 3 = 12$
- तो 472 × 342 को कैरी समायोजन के साथ अभिव्यक्ति 12 / 37 / 42 / 22 / 4 से प्राप्त किया जाता है:

दाएँ से प्रारंभ करें: 4 (4 लिखें)

22 (2 लिखें, कैरी 2)

42 + 2 = 44 (4 लिखें, कैरी 4)

37 + 4 = 41 (1 लिखें, कैरी 4)

12 + 4 = 16

तो अंतिम उत्तर है: 161424

अतः, 472 × 342 = 161424

उदाहरण 6: 711 × 582 का गुणा

इकाई अंकों का गुणा: $1 \times 2 = 2$

अंतिम दो अंकों का क्रॉस गुणा और योग: $(1 \times 2) + (1 \times 8) = 2 + 8 = 10$

तीन अंकों का क्रॉस गुणा और योग : $(7 \times 2) + (1 \times 8) + (1 \times 5) = 14 + 8 + 5 = 27$

पहले दो अंकों का क्रॉस गुणा और योग : $(7 \times 8) + (1 \times 5) = 56 + 5 = 61$

सबसे बाएँ अंकों का गुणा: $7 \times 5 = 35$

तो 711 × 582 को कैरी समायोजन के साथ अभिव्यक्ति 35 / 61 / 27 / 10 / 2 से प्राप्त किया जाता है:

दाएँ से प्रारंभ करें: 2 (2 लिखें)

10 (0 लिखें, कैरी 1)

27 + 1 = 28 (8 लिखें, कैरी 2)

61 + 2 = 63 (3 लिखें, कैरी 6)

35 + 6 = 41

तो अंतिम उत्तर है: 413802

अतः, 711 × 582 = 413802

Scanner by Droid-Veda

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित को ऊर्ध्व तिर्यग्भ्याम विधि द्वारा हल करें:

1. 47×36
2. 89×27
3. 123×45
4. 77×88
5. 92×63
6. 53×105
7. 314×206
8. 113×104
9. 525×413
10. 678×345

अध्याय 5

गुणा की बेस विधि



बेस विधि (जिसे वैदिक गणित में **निकिलम सूत्र** के नाम से भी जाना जाता है) मानसिक गणित में एक उपयोगी तकनीक है जब संख्याएँ किसी बेस के पास होती हैं। नीचे दिए गए चरणों का पालन करें:

बेस विधि द्वारा गुणा के चरण

1. दोनों संख्याओं के निकट एक बेस चुनें (10, 100, 1000 आदि)। बेस 10 की कोई शक्ति होनी चाहिए।
2. प्रत्येक संख्या से बेस घटाएँ और विचलन (positive या negative) निकालें।
3. दोनों विचलनों का गुणा करें।
4. एक संख्या में दूसरी संख्या का विचलन जोड़ें (या इसके विपरीत)।
5. अंतिम उत्तर दो भागों में होगा।

बायाँ भाग क्रॉस ऐडिशन (चरण 4) का परिणाम है।

दायाँ भाग विचलन गुणा (चरण 3) का परिणाम है।

- दाएँ भाग में अंकों की संख्या बेस में शून्यों की संख्या के बराबर होनी चाहिए।
- यदि आवश्यक हो तो कैरी-ओवर या उधार लेकर समायोजन करें।

बेस विधि को कुशलता से प्रयोग करने की कुंजी है कैरी समायोजन को समझना। ये समायोजन सुनिश्चित करते हैं कि अंतिम उत्तर बेस के अनुसार सही रूप में हो।

कैरी समायोजन के नियम

- अंतिम उत्तर का दायाँ भाग उतने ही अंकों में होना चाहिए जितने शून्य बेस में हैं।
- यदि दायाँ भाग बेस से अधिक है, तो अतिरिक्त भाग को बाएँ भाग में कैरी के रूप में जोड़ें। एक कैरी का मान बेस के बराबर होगा।
- यदि दायाँ भाग नकारात्मक है, तो बाएँ भाग से कैरी उधार लें। एक कैरी का मान बेस के बराबर होगा।

अब हम बेस विधि के कुछ उदाहरणों द्वारा इसे समझाते हैं

उदाहरण 1: 102 × 103 का गुणा करें

चरण 1: बेस चुनें। बेस B = 100

चरण 2: विचलन निकालें।

$$102 - 100 = +2,\ 103 - 100 = +3$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$2 \times 3 = 6$$

चरण 4: क्रॉस ऐड करें।

$$102 + 3 = 105$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। चूंकि बेस 100 है, दाएँ भाग में 2 अंक होने चाहिए। इसलिए विचलन गुणा को 06 (शून्य जोड़कर) लिखें।

$$105 \mid 06 = 10506$$

अतः, $102 \times 103 = 10506$

उदाहरण 2: 89 × 91 का गुणा करें

चरण 1: बेस चुनें। बेस B = 100

चरण 2: विचलन निकालें।

$$89 - 100 = -11,\ 91 - 100 = -9$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$(-11) \times (-9) = 99$$

चरण 4: क्रॉस ऐड करें।

$$89 - 9 = 80$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। बेस 100 है, इसलिए दाएँ भाग में 2 अंक होने चाहिए। चूंकि 99 पहले से ही 2 अंकों में है, तो लिखें:

$$80 \mid 99 = 8099$$

अतः, $89 \times 91 = 8099$

उदाहरण 3: 85 × 107 का गुणा करें

चरण 1: बेस चुनें। बेस B = 100

चरण 2: विचलन निकालें।

$$85 - 100 = -15,\ 107 - 100 = +7$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$(-15) \times 7 = -105$$

चरण 4: क्रॉस ऐड करें।

$$85 + 7 = 92$$

Scanner by Droid-Veda

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। बेस 100 है, इसलिए दाएँ भाग में 2 अंक होने चाहिए। हमें 2 कैरी (अर्थात 200) उधार लेने होंगे:

$$92 - 2 = 90, -105 + 200 = 95 \Rightarrow 90 \mid 95 = 9095$$

अतः, $85 \times 107 = 9095$

उदाहरण 4: 1020 × 991 का गुणा करें

चरण 1: बेस चुनें। बेस B = 1000

चरण 2: विचलन निकालें।

$$1020 - 1000 = +20, 991 - 1000 = -9$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$20 \times (-9) = -180$$

चरण 4: क्रॉस ऐड करें।

$$991 + 20 = 1011$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। बेस 1000 है, इसलिए दाएँ भाग में 3 अंक होने चाहिए। हमें 1 कैरी (1000) उधार लेना होगा:

$$1011 - 1 = 1010, -180 + 1000 = 820 \Rightarrow 1010 \mid 820 = 1010820$$

अतः, $1020 \times 991 = 1010820$

उदाहरण 5: 1023 × 1011 का गुणा करें

चरण 1: बेस चुनें। बेस B = 1000

चरण 2: विचलन निकालें।

$$1023 - 1000 = +23, 1011 - 1000 = +11$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$23 \times 11 = 253$$

चरण 4: क्रॉस ऐड करें।

$$1023 + 11 = 1034$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। बेस 1000 है, इसलिए दाएँ भाग में 3 अंक होने चाहिए। कोई समायोजन आवश्यक नहीं, क्योंकि 253 पहले से ही 3 अंकों में है:

$$1034 \mid 253 = 1034253$$

उदाहरण 6: 1019 × 989 का गुणा करें

चरण 1: बेस चुनें। बेस B = 1000

चरण 2: विचलन निकालें।

$$1019 - 1000 = +19,\ 989 - 1000 = -11$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$19 \times (-11) = -209$$

चरण 4: क्रॉस ऐड करें।

$$989 + 19 = 1008$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। बेस 1000 है, इसलिए दाएँ भाग में 3 अंक होने चाहिए। हमें 1 कैरी (1000) उधार लेना होगा:

$$1008 - 1 = 1007,\ -209 + 1000 = 791 \Rightarrow 1007 \mid 791 = 1007791$$

अभ्यास प्रश्न

बेस विधि का उपयोग करके निम्नलिखित का हल करें:

1. 96×94
2. 105×108
3. 999×997
4. 115×112
5. 87×93
6. 95×78
7. 101×92
8. 1001×988
9. 1011×988
10. 985×978

सुझाव: एक उपयुक्त बेस चुनें, विचलन निकालें, उनका गुणा करें, क्रॉस ऐड करें, और आवश्यकतानुसार परिणाम समायोजित करें।

Scanner by Droid-Veda

अध्याय 6

सब-बेस विधि द्वारा गुणा



सब-बेस विधि, जिसे वैदिक गणित में **निकिलम सूत्र** के नाम से भी जाना जाता है, मानसिक गणित में एक उपयोगी तकनीक है जब संख्याएँ बेस के एक गुणज (जैसे 10, 100, 1000 आदि) के पास होती हैं। यह मानक बेस विधि पर आधारित होती है और सब-बेस के प्रयोग से इसकी उपयोगिता और बढ़ जाती है।

सब-बेस विधि द्वारा गुणा के चरण

1. ऐसा बेस B चुनें कि दोनों संख्याएँ किसी उप-गुणज $S \times B$ के पास हों। यह गुणज S उप-बेस कहलाता है।
2. दोनों संख्याओं का उप-बेस से विचलन निकालें: विचलन = संख्या − $(S \times B)$
3. दोनों विचलनों का गुणा करें।
4. एक संख्या में दूसरी का विचलन जोड़ें (या इसके विपरीत), फिर इस योग को उप-बेस S से गुणा करें।
5. अंतिम उत्तर दो भागों में होगा:
   - बायाँ भाग चरण 4 का परिणाम होगा।
   - दायाँ भाग चरण 3 में प्राप्त विचलनों का गुणनफल होगा।
6. दाएँ भाग को बेस के अंकों की संख्या के अनुसार समायोजित करें, आवश्यकता अनुसार कैरी या उधार लें।

बेस विधि को कुशलता से प्रयोग करने की कुंजी है कैरी समायोजन को समझना। ये समायोजन यह सुनिश्चित करते हैं कि अंतिम उत्तर बेस के अनुसार सही रूप में हो।

कैरी समायोजन के नियम

- अंतिम उत्तर का दायाँ भाग उतने ही अंकों में होना चाहिए जितने शून्य बेस में हैं।
- यदि दायाँ भाग बेस से अधिक है, तो अतिरिक्त भाग को बाएँ भाग में कैरी के रूप में जोड़ें। एक कैरी का मान बेस के बराबर होगा।
- यदि दायाँ भाग ऋणात्मक है, तो बाएँ भाग से कैरी उधार लें। एक कैरी का मान फिर से बेस के बराबर होगा।

अब हम बेस विधि के कुछ उदाहरणों द्वारा इसे समझाते हैं

Scanner by Droid-Veda

उदाहरण 1: 32 × 37 का गुणा

चरण 1: बेस और सब-बेस चुनें। बेस B = 10, उप-बेस S = 3।

चरण 2: विचलन निकालें।

$$32 - (3 \times 10) = 2,\ 37 - (3 \times 10) = 7$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$2 \times 7 = 14$$

चरण 4: एक विचलन को दूसरी संख्या में जोड़कर उप-बेस से गुणा करें।

$$(32 + 7) \times 3 = 117$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। चूंकि बेस 10 है, दाएँ भाग में 1 अंक होना चाहिए। 14 से 1 कैरी बाएँ भाग में जोड़ते हैं।

$$117 \mid 14 = 1184$$

अंतिम उत्तर: 1184

उदाहरण 2: 78 × 67 का गुणा

चरण 1: बेस और उप-बेस चुनें। बेस B = 10, उप-बेस S = 7।

चरण 2: विचलन निकालें।

$$78 - (7 \times 10) = 8,\ 67 - (7 \times 10) = -3$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$8 \times (-3) = -24$$

चरण 4: एक विचलन को दूसरी संख्या में जोड़कर उप-बेस से गुणा करें।

$$(78 - 3) \times 7 = 525$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। हम 3 कैरी (अर्थात 30) बाएँ भाग से उधार लेते हैं।

$$525 \mid -24 = 5226$$

अंतिम उत्तर: 5226

उदाहरण 3: 311 × 296 का गुणा

चरण 1: बेस और उप-बेस चुनें। बेस B = 100, उप-बेस S = 3।

चरण 2: विचलन निकालें।

$$311 - (3 \times 100) = 11,\ 296 - (3 \times 100) = -4$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$11 \times (-4) = -44$$

Scanner by Droid-Veda

चरण 4: एक विचलन को दूसरी संख्या में जोड़कर उप-बेस से गुणा करें।

$$(311 - 4) \times 3 = 921$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। हम बाएँ भाग से 1 कैरी (अर्थात 100) उधार लेते हैं।

$$921 \mid -44 = 92056$$

अंतिम उत्तर: 92056

उदाहरण 4: 4017 × 3979 का गुणा

चरण 1: बेस और उप-बेस चुनें। बेस B = 1000, उप-बेस S = 4।

चरण 2: विचलन निकालें।

$$4017 - (4 \times 1000) = 17,\ 3979 - (4 \times 1000) = -21$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$17 \times (-21) = -357$$

चरण 4: एक विचलन को दूसरी संख्या में जोड़कर उप-बेस से गुणा करें।

$$(4017 - 21) \times 4 = 15984$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। हम बाएँ भाग से 1 कैरी (अर्थात 1000) उधार लेते हैं।

$$15984 \mid -357 = 15983643$$

अंतिम उत्तर: 15983643

उदाहरण 5: 589 × 617 का गुणा

चरण 1: बेस और उप-बेस चुनें। बेस B = 100, उप-बेस S = 6।

चरण 2: विचलन निकालें।

$$589 - (6 \times 100) = -11,\ 617 - (6 \times 100) = 17$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$(-11) \times 17 = -187$$

चरण 4: एक विचलन को दूसरी संख्या में जोड़कर उप-बेस से गुणा करें।

$$(589 + 17) \times 6 = 606 \times 6 = 3636$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। हम बाएँ भाग से 2 कैरी (अर्थात 200) उधार लेते हैं।

$$3636 \mid -187 = 363413$$

अंतिम उत्तर: 363413

उदाहरण 6: 9019 × 8989 का गुणा

चरण 1: बेस और उप-बेस चुनें। बेस $B = 1000$, उप-बेस $S = 9$।

चरण 2: विचलन निकालें।

$$9019 - (9 \times 1000) = 19,\ 8989 - (9 \times 1000) = -11$$

चरण 3: विचलनों का गुणा करें।

$$19 \times (-11) = -209$$

चरण 4: एक विचलन को दूसरी संख्या में जोड़कर उप-बेस से गुणा करें।

$$(9019 - 11) \times 9 = 9008 \times 9 = 81072$$

चरण 5: परिणाम संयोजित करें। हम बाएँ भाग से 1 कैरी (अर्थात 1000) उधार लेते हैं।

$$81072 \mid -209 = 81071791$$

अंतिम उत्तर: 81071791

अभ्यास

निम्नलिखित गुणा को सब-बेस विधि द्वारा हल करें:

1. 196×194
2. 67×51
3. 1999×1997
4. 215×212
5. 205×192
6. 125×123
7. 815×792
8. 2015×1992
9. 871×923
10. 315×307

Scanner by Droid-Veda

अध्याय 7

यावदूनम् विधि द्वारा वर्ग निकालना



यावदूनम् विधि मानसिक गणित में एक उपयोगी तकनीक है जो उन संख्याओं के घन निकालने के लिए प्रयुक्त होती है जो किसी आधार (जैसे 10, 100, 1000 आदि) के गुणज के निकट होती हैं। इसके चरण निम्नलिखित हैं:

आधार विधि से गुणा करने के चरण

1. मान लीजिए N वह संख्या है जिसका घन ज्ञात करना है।
2. B को आधार मानते हैं (जैसे 10, 100, 1000 आदि)। ऐसा आधार चुना जाता है जो N के निकटतम गुणज हो।
3. S को उप-आधार कहते हैं, यह B का गुणज है जो N के सबसे निकट है।
4. विचलन D की गणना करें: $D=N-(S\times B)$
5. अंतिम उत्तर तीन भागों में होगा:

$$(N+2D)\times S^2 \,/\, 3D^2S \,/\, D^3$$

अंतिम उत्तर प्राप्त करते समय बीच वाले भाग (मध्य भाग) और दाएँ भाग में अंकों की संख्या आधार में शून्यों की संख्या के बराबर होनी चाहिए। आवश्यकता अनुसार कैरी समायोजन करके अंतिम उत्तर प्राप्त करें।

कैरी समायोजन के नियम

- अंतिम उत्तर के दाएँ भाग और मध्य भाग में आधार में मौजूद शून्यों की संख्या के बराबर अंक होने चाहिए।
- यदि दाएँ या मध्य भाग का मान आधार से अधिक हो जाए, तो अतिरिक्त मान को बाएँ भाग में जोड़ें। एक कैरी की मान = आधार।
- यदि अंतिम उत्तर का दायाँ भाग ऋणात्मक हो, तो मध्य भाग से कैरी उधार लें। एक कैरी = आधार।

उदाहरण:

उदाहरण 1: 23 का घन ज्ञात करें

$23 \approx 20$,

अतः संख्या 23, 20 के करीब है, तो $23 \approx 20$।

Scanner by Droid-Veda

$23 = 2 \times 10 + 3$

यहाँ $S = 2, B = 10, D = 3$

गणना

- बायाँ भाग

$$(N + 2D) \times S^2 = (23 + 2 \times 3) \times 2^2 = 29 \times 4 = 116$$

- मध्य भाग

$$3D^2S = 3 \times 3^2 \times 2 = 3 \times 9 \times 2 = 54$$

- दायाँ भाग:

$$D^3 = 3^3 = 27$$

कैरी समायोजन (आधार 10)

- दायाँ भाग: $27 \rightarrow$ 7 रखें, 2 कैरी मध्य में
- **मध्य भाग:** $54 + 2 = 56 \rightarrow$ 6 रखें, 5 कैरी बाएँ
- **बायाँ भाग:** $116 + 5 = 121$

अंतिम उत्तर :

$$23^3 = 12167$$

उदाहरण 2: 191 का घन ज्ञात करें

$191 \approx 200$,

अतः $191 = [\, 2 \times 100 - 9 \,]$

यहाँ $S=2, B=100, D=-9$

गणना

- **बायाँ भाग**

$$(N+2D) \times S^2 = (191+2 \times (-9)) \times 2^2 = (191-18) \times 4 = 173 \times 4 = 692$$

- **मध्य भाग:**

$$3D^2S = 3 \times (-9)^2 \times 2 = 3 \times 81 \times 2 = 486$$

- **दायाँ भाग**

$$D^3 = (-9)^3 = -729$$

कैरी समायोजन (आधार 100)

- **दायाँ भाग:** $-729 \rightarrow +800$ करके 71, कैरी -8
- **मध्य भाग:** $486 - 8 = 478$, Keep 78 and shift 4 as carry to left part.
- **बायाँ भाग:** $692 + 4 = 696$

अंतिम उत्तर

$191^3 = 6967871$

उदाहरण 3: 83 का घन ज्ञात करें

$83 \approx 80$, अतः

$83 = 8 \times 10 + 3$

$S=8, B=10, D=3$

गणना

- बायाँ भाग:

$$(N+2D) \times S^2 = (83+2\times3) \times 8^2 = 89 \times 64 = 5696$$

- मध्य भाग:

$$3D^2S = 3 \times 3^2 \times 8 = 3 \times 9 \times 8 = 216$$

- दायाँ भाग:

$$D^3 = 3^3 = 27$$

कैरी समायोजन (आधार 10)

- दायाँ भाग: 27 → 7 रखें, कैरी 2
- मध्य भाग: 216+2 = 218 → 8 रखें, कैरी 21
- बायाँ भाग: 5696+21 = 5717

अंतिम उत्तर

$$83^3 = 571787$$

उदाहरण 4: 719 का घन ज्ञात करें

$719 = 7 \times 100 + 19$

$S=7, B=100, D=19$

गणना

- बायाँ भाग:

$$(N+2D) \times S^2 = (719+2\times19) \times 7^2 = 757 \times 49 = 37093$$

- मध्य भाग:

$$3D^2S = 3 \times 19^2 \times 7 = 3 \times 361 \times 7 = 7581$$

- दायाँ भाग:

$$D^3 = 19^3 = 6859$$

कैरी समायोजन (आधार 100)

- दायाँ भाग: 6859 → 59 रखें, कैरी 68

- **मध्य भाग:** $7581+68 = 7649 \rightarrow$ 49 रखें, कैरी 76
- **बायाँ भाग:** $37093+76 = 37169$

अंतिम उत्तर:

$719^3=371694959$

उदाहरण 5: 591 का घन ज्ञात करें

$591=6\times100-9$

$B = 100, D = -9, S=6,$

गणना:

- **बायाँ भाग:**

$$(N+2D)\times S^2 = (591+2\times(-9))\times6^2=(591-18)\times36=573\times36=20628$$

- **मध्य भाग:**

$$3D^2S= 3\times(-9)^2\times6=3\times81\times6=1458$$

- **दायाँ भाग:**

$$D^3 = (-9)^3 = -729$$

कैरी समायोजन (आधार 100)

- **दायाँ भाग:** $-729 \rightarrow +800 = 71$, कैरी -8
- **मध्य भाग:** $1458-8 = 1450 \rightarrow$ 50 रखें, कैरी 14
- **बायाँ भाग:** $20628+14 = 20642$

अंतिम उत्तर:

$$591^3 = 206425071$$

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित संख्याओं के घन यावदूनम् विधि से निकालें:

1. 196
2. 51
3. 199
4. 212
5. 192
6. 123
7. 815
8. 201
9. 923
10. 307
11. 2011

अध्याय 8

पूर्णांक वर्गमूल

सटीक वर्गों के वर्गमूल ज्ञात करने के लिए, सबसे पहले यह निर्धारित करना आवश्यक है कि दी गई संख्या एक पूर्णांक वर्ग है या नहीं। हम निम्नलिखित मूलभूत नियमों का उपयोग करके इसे सत्यापित कर सकते हैं:

1. एक पूर्णांक वर्ग 0, 1, 4, 5, 6, या 9 में समाप्त होता है।
2. एक संख्या पूर्णांक वर्ग नहीं होती यदि वह 2, 3, 7, या 8 में समाप्त होती है।
3. संख्या में शून्य की एक सम संख्या होनी चाहिए।
4. यदि संख्या 6 में समाप्त होती है, तो इसकी दूसरी अंतिम अंक विषम होना चाहिए।
5. यदि संख्या 6 में समाप्त नहीं होती, तो इसकी दूसरी अंतिम अंक सम होना चाहिए।
6. यदि संख्या सम है, तो इसके अंतिम दो अंक 4 से विभाज्य होने चाहिए।
7. यदि दी गई संख्या में n अंक हैं:
   - यदि n सम है, तो इसके वर्गमूल में n/2 अंक होंगे।
   - यदि n विषम है, तो इसके वर्गमूल में (n + 1)/2 अंक होंगे।

प्रथम 10 प्राकृतिक संख्याओं के वर्ग

संख्या	वर्ग	वर्ग का अंतिम अंक
1	1	1
2	4	4
3	9	9
4	16	6
5	25	5
6	36	6
7	49	9
8	64	4
9	81	1
10	100	0

Scanner by Droid-Veda

निष्कर्ष

1. यदि वर्ग 1 में समाप्त होता है, तो इसके वर्गमूल का अंतिम अंक 1 या 9 में से कोई होगा।
2. यदि वर्ग 4 में समाप्त होता है, तो इसके वर्गमूल का अंतिम अंक 2 या 8 में से कोई होगा।
3. यदि वर्ग 5 में समाप्त होता है, तो इसके वर्गमूल का अंतिम अंक 5 होगा।
4. यदि वर्ग 6 में समाप्त होता है, तो इसके वर्गमूल का अंतिम अंक 4 या 6 में से कोई होगा।
5. यदि वर्ग 9 में समाप्त होता है, तो इसके वर्गमूल का अंतिम अंक 3 या 7 में से कोई होगा।

वर्गमूल ज्ञात करने के नियम

1. संख्या को दाएं से बाएं दो अंकों के समूहों में विभाजित करें।
2. दी गई संख्या के अंतिम अंक को देखकर वर्गमूल का अंतिम अंक निर्धारित करें।
3. पहले समूह के अंकों का विश्लेषण करके वर्गमूल का पहला अंक निर्धारित करें।
4. यदि संख्या 5 में समाप्त होती है, तो "एकाधिकेन पूर्वेण" सूत्र का उपयोग करके हमारे दो संभावित उत्तरों के बीच का वर्ग ज्ञात करें।
5. यदि दी गई संख्या इस वर्ग से बड़ी या छोटी है, तो हम दोनों विकल्पों में से सही उत्तर चुन सकते हैं।

यह विधि तब काम करती है जब दी गई संख्या एक पूर्णांक वर्ग हो। यदि वर्ग में पांच से अधिक अंक हैं, तो यह विधि कम उपयुक्त होती है। आइए इसे कुछ उदाहरणों से समझते हैं। इन उदाहरणों में प्रयुक्त संख्याएँ पूर्णांक वर्ग हैं।

उदाहरण 1: $\sqrt{1024}$ ज्ञात करें

चरण 1: हम संख्या को दाएं से बाएं दो अंकों के समूहों में विभाजित करते हैं। संख्या 1024 है, तो हमारे पास 2 समूह हैं: (10, 24)।

चरण 2: चूंकि वर्ग 4 में समाप्त होता है, वर्गमूल का अंतिम अंक 2 या 8 में से कोई होगा (वर्गों की तालिका देखकर)। अतः हमारे पास उत्तर के यूनिट अंक के लिए दो संभावनाएँ हैं।

चरण 3: बाएं समूह (10) का अवलोकन करते हैं: चूंकि $3^2 = 9$ और $4^2 = 16$, संख्या 10 इन दोनों वर्गों के बीच स्थित है। अतः हमारे वर्गमूल का पहला अंक 3 होगा। हम 4 नहीं ले सकते क्योंकि $40^2 = 1600$, जो 1024 से बड़ा है। इसलिए, हम 3 को उत्तर के पहले अंक के रूप में लेते हैं। अब, हमारे पास 32 और 38 के विकल्प हैं।

चरण 4: "एकाधिकेन पूर्वेण" सूत्र का उपयोग करते हैं:

$$35^2 = 1225$$

अतः 32^2 1024

चूंकि 1024 एक पूर्णांक वर्ग है और 1024 कम है, 1225, है, इसलिए वर्गमूल 32 है।

Scanner by Droid-Veda

उदाहरण 2: $\sqrt{2116}$ ज्ञात करें

चरण 1: हम संख्या को दाएं से बाएं दो अंकों के समूहों में विभाजित करते हैं। संख्या 2116 है, तो हमारे पास 2 समूह हैं: (21, 16)।

चरण 2: चूंकि वर्ग 6 में समाप्त होता है, वर्गमूल का अंतिम अंक 4 या 6 में से कोई होगा।

चरण 3: बाएं समूह (21) का अवलोकन करते हैं: चूंकि $4^2 = 16$ और $5^2 = 25$, संख्या 21 इन दोनों वर्गों के बीच स्थित है। अतः हमारे वर्गमूल का पहला अंक 4 होगा। हम 5 नहीं ले सकते क्योंकि $5^2 = 25$, जो 21 से बड़ा है। इसलिए, हम 4 को उत्तर के पहले अंक के रूप में लेते हैं। अब, हमारे पास 44 और 46 के विकल्प हैं।

चरण 4: "एकाधिकेन पूर्वेण" सूत्र का उपयोग करते हैं:

$$\text{अतः } 45^2 = 1936$$

चूंकि $2116 > 2025$ और 2116 एक पूर्णांक वर्ग है, इसलिए वर्गमूल 46 है।

अभ्यास समस्याएँ

निम्नलिखित पूर्णांक वर्गों के वर्गमूल ज्ञात करें:

1. $\sqrt{529}$
2. $\sqrt{1089}$
3. $\sqrt{2401}$
4. $\sqrt{6724}$
5. $\sqrt{3969}$
6. $\sqrt{9025}$
7. $\sqrt{12321}$
8. $\sqrt{12544}$
9. $\sqrt{17161}$
10. $\sqrt{11881}$

Scanner by Droid-Veda

अध्याय 9

पूर्ण घनों के सटीक घनमूल



सटीक घनों के घनमूलों को एक पैटर्न का उपयोग करके निकाला जा सकता है जो वर्गमूल के समान है। आइए पहले पहले दस प्राकृतिक संख्याओं के घनों का अध्ययन करें ताकि हम घन के अंतिम अंक का निर्धारण कर सकें।

तालिका: पहले दस प्राकृतिक संख्याओं के घन		
संख्या	*घन*	*घन में अंतिम अंक*
1	1	1
2	8	8
3	27	7
4	64	4
5	125	5
6	216	6
7	343	3
8	512	2
9	729	9
10	1000	0

- यदि घन का अंतिम अंक 1 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 1 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 8 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 2 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 7 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 3 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 4 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 4 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 5 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 5 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 6 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 6 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 3 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 7 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 2 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 8 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 9 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 9 होगा।
- यदि घन का अंतिम अंक 0 है, तो घनमूल का अंतिम अंक 0 होगा।

हम देखते हैं कि पहले दस प्राकृतिक संख्याओं के घनों में अंकों का कोई ओवरलैप नहीं है, जैसा कि वर्गों के मामले में होता है।

Scanner by Droid-Veda

घनमूल निकालने के नियम

1. संख्या में दाएं से बाएं की ओर दो अंकों के समूह बनाएं।
2. दिए गए संख्या के अंतिम अंक को देखकर घनमूल का अंतिम अंक निर्धारित करें।
3. पहले समूह के अंकों का विश्लेषण करके घनमूल का पहला अंक निर्धारित करें।
4. यदि हमारी दी गई संख्या इस वर्ग से बड़ी या छोटी है, तो हम दोनों विकल्पों में से सही उत्तर चुन सकते हैं।

नोट: यह विधि तब सबसे प्रभावी होती है जब:

- दी गई संख्या एक पूर्ण घन है।
- संख्या में अधिकतम चार या पांच अंक हैं।

यदि घन में पांच से अधिक अंक हैं, तो यह विधि कम उपयुक्त होती है। आइए इसे कुछ उदाहरणों से समझें। इन उदाहरणों में विचार की गई संख्याएं पूर्ण घन हैं।

उदाहरण 1: 1728 का घनमूल निकालें।

चरण 1: अंकों को समूहित करें। हम संख्या को दाएं से बाएं तीन अंकों के समूहों में विभाजित करते हैं: (1, 728)। यहां दो समूह हैं, इसलिए घनमूल में दो अंक होंगे।

चरण 2: अंतिम अंक का विश्लेषण करें। संख्या का अंतिम अंक 8 है। हम देखते हैं:

$$2^3 = 8$$

इसलिए, घनमूल का अंतिम अंक 2 है।

चरण 3: पहले अंक का अनुमान लगाएं। पहला समूह 1 है। हम पाते हैं:

$$1^3 = 1 \text{ और } 2^3 = 8$$

चूंकि 1, 1 और 8 के बीच आता है, इसलिए दहाई अंक 2 है।

अंतिम उत्तर: 1728 का घनमूल 12 है।

उदाहरण 2: 13824 का घनमूल निकालें।

चरण 1: अंकों को समूहित करें। हम संख्या को दाएं से बाएं तीन अंकों के समूहों में विभाजित करते हैं: (13, 824)। यहां दो समूह हैं, इसलिए घनमूल में दो अंक होंगे।

चरण 2: अंतिम अंक का विश्लेषण करें। संख्या का अंतिम अंक 4 है। हम याद करते हैं:

$$4^3 = 64$$

इसलिए, घनमूल का अंतिम अंक 4 है।

चरण 3: पहले अंक का निर्धारण करें। बाएं समूह 13 है। हम देखते हैं:

$$2^3 = 8 \text{ और } 3^3 = 27$$

चूंकि 13 8 और 27 के बीच आता है, इसलिए पहले अंक 2 है।

अंतिम उत्तर: 13824 का घनमूल 24 है।

उदाहरण 3: 175616 का घनमूल निकालें।

चरण 1: अंकों को समूहित करें। हम संख्या को दाएं से बाएं तीन अंकों के समूहों में विभाजित करते हैं: (175, 616)।

चरण 2: अंतिम अंक का विश्लेषण करें। संख्या का अंतिम अंक 6 है। हम देखते हैं:

$$6^3 = 216$$

इसलिए, घनमूल का अंतिम अंक 6 है।

चरण 3: पहले अंक का निर्धारण करें। हम 175 पर विचार करते हैं:

$$5^3 = 125 \text{ और } 6^3 = 216$$

चूंकि 175 इन दोनों के बीच आता है, इसलिए पहले अंक 5 है।

अंतिम उत्तर: 175616 का घनमूल 56 है।

उदाहरण 4: 681472 का घनमूल निकालें।

चरण 1: अंकों को समूहित करें। हम संख्या को दाएं से बाएं तीन अंकों के समूहों में विभाजित करते हैं: (681, 472)।

चरण 2: अंतिम अंक का विश्लेषण करें। संख्या का अंतिम अंक 2 है। हम देखते हैं:

$$8^3 = 512$$

इसलिए, घनमूल का अंतिम अंक 8 है।

चरण 3: पहले अंक का अनुमान लगाएं। हम 681 पर विचार करते हैं:

$$8^3 = 512 \text{ और } 9^3 = 729$$

चूंकि 681 इन दोनों के बीच आता है, इसलिए पहले अंक 8 है।

अंतिम उत्तर: 681472 का घनमूल 88 है।

ये विधियां सावधानीपूर्वक अंक समूहण, घन मानों में पैटर्न पहचान और मानसिक अनुमान पर निर्भर करती हैं। ये मानसिक गणना के लिए प्रभावी हैं और प्राचीन भारतीय और शास्त्रीय गणितीय दृष्टिकोणों में संख्याओं के गुणों की गहरी समझ विकसित करने के लिए उपयोगी हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित सटीक घनों के घनमूल ज्ञात करें:

1. $\sqrt[3]{4913}$
2. $\sqrt[3]{74088}$
3. $\sqrt[3]{456533}$
4. $\sqrt[3]{3176523}$
5. $\sqrt[3]{1030301}$
6. $\sqrt[3]{195112}$
7. $\sqrt[3]{1092727}$

अभ्यासों के उत्तर

- $\sqrt[3]{4913} = 17$
- $\sqrt[3]{74088} = 42$
- $\sqrt[3]{456533} = 77$
- $\sqrt[3]{3176523} = 147$
- $\sqrt[3]{1030301} = 101$
- $\sqrt[3]{195112} = 58$
- $\sqrt[3]{1092727} = 103$

Scanner by Droid-Veda

अध्याय 10

विभाज्यता



सभी संख्याएँ किसी न किसी संख्या से विभाज्य होती हैं। 1 किसी भी संख्या से विभाज्य नहीं है, इसलिए यह अविभाज्य है। जो संख्याएँ केवल स्वयं और 1 से विभाज्य होती हैं, उन्हें अभ्यस्त संख्याएँ कहते हैं। अन्य सभी संख्याएँ संयोगिक संख्याएँ कहलाती हैं। अब हम कुछ संख्याओं की विभाज्यता को समझने की कोशिश करेंगे।

2 से विभाज्यता

सभी सम संख्याएँ, जो 2, 4, 6, 8, 0 से समाप्त होती हैं, 2 से विभाज्य होती हैं।

उदाहरण: 3756, 275648, 93766854, ये सभी सम संख्याएँ हैं और 2 से भी विभाज्य हैं।

5 से विभाज्यता

सभी संख्याएँ जो 5 या 0 पर समाप्त होती हैं, 5 से विभाज्य होती हैं।

उदाहरण: 45, 92630, 756595, 8394725 ये सभी संख्याएँ 5 से विभाज्य हैं, क्योंकि सभी 5 या 0 पर समाप्त होती हैं।

10 से विभाज्यता

सभी संख्याएँ जो 0 पर समाप्त होती हैं, 10 से विभाज्य होती हैं।

उदाहरण: 193750, 343500, 456000 ये सभी संख्याएँ 10 से विभाज्य हैं।

3 से विभाज्यता

यह जानने के लिए कि कोई संख्या 3 से विभाज्य है या नहीं, हम सभी अंकों का योग करते हैं और यदि योग 3 से विभाज्य है, तो संख्या 3 से विभाज्य होती है।

उदाहरण: क्या 67495, 3 से विभाज्य है?

ध्यान दें $31 = 6 + 7 + 4 + 9 + 5$, 31, 3 से विभाज्य नहीं है।

तो, 67495, 3 से विभाज्य नहीं है।

Scanner by Droid-Veda

9 से विभाज्यता

कोई भी संख्या 9 से विभाज्य होती है यदि उसके अंकों का योग 9 से विभाज्य है। हम संख्या के सभी अंकों का योग करते हैं, और यदि योग 9 से विभाज्य है, तो संख्या 9 से विभाज्य होती है।

इसे निकालने का एक सरल तरीका है, 9 को काट देना (जैसा कि पिछले अध्याय में सीखा था)। हम संख्या में सभी 9 को और जिन अंकों का योग 9 है, उन्हें काट देते हैं। फिर, बाकी अंकों का योग करते हैं और हम तब तक ऐसा करते रहते हैं जब तक हमें एक अंक नहीं मिल जाता। यदि वह अंक 0 या 9 होता है, तो संख्या 9 से विभाज्य होती है।

उदाहरण: क्या 9456512, 9 से विभाज्य है? हम सभी 9 को और उन अंकों को काट देते हैं जो 9 का योग करते हैं, अर्थात 9, (4,5), (1, 2, 6) अब हमारे पास केवल 5 बचता है, तो संख्या 9 से विभाज्य नहीं है।

4 से विभाज्यता

यदि संख्या के अंतिम दो अंक 4 से विभाज्य हैं, तो वह संख्या 4 से विभाज्य होती है। वैकल्पिक रूप से, यदि अंतिम अंक और द्वितीय अंतिम अंक का गुणांक 4 से विभाज्य है, तो संख्या 4 से विभाज्य होती है।

उदाहरण: क्या 476543, 4 से विभाज्य है? अंतिम अंक और द्वितीय अंतिम अंक का गुणांक है: $3 + 2 \times 4 = 11$ चूंकि 11, 4 से विभाज्य नहीं है, संख्या 476543, 4 से विभाज्य नहीं है।

8 से विभाज्यता

यदि संख्या के अंतिम तीन अंक 8 से विभाज्य हैं, तो वह संख्या 8 से विभाज्य होती है। वैकल्पिक रूप से, यदि अंतिम अंक, द्वितीय अंतिम अंक का दुगना, और तृतीय अंतिम अंक का चार गुना का योग 8 से विभाज्य है, तो संख्या 8 से विभाज्य होती है।

उदाहरण: क्या 83546, 8 से विभाज्य है?

ध्यान दें $6 + (2 \times 4) + (4 \times 5) = 34$

चूंकि 34, 8 से विभाज्य नहीं है, संख्या 83546, 8 से विभाज्य नहीं है।

11 से विभाज्यता

यदि समान स्थानों पर रखे गए अंकों का योग और विषम स्थानों पर रखे गए अंकों का योग का अंतर 0, 11, या 11 का कोई गुणांक होता है, तो संख्या 11 से विभाज्य होती है। उदाहरण: क्या 7834531, 11 से विभाज्य है?

ध्यान दें, समान स्थानों पर रखे गए अंक: 8, 4, 3

$8 + 4 + 3 = 15$

विषम स्थानों पर रखे गए अंक: 7, 3, 5, 1

$7 + 3 + 5 + 1 = 16$

Scanner by Droid-Veda

तो, समान स्थानों पर रखे गए अंकों और विषम स्थानों पर रखे अंकों का अंतर है,

$16 - 15 = 1$

चूंकि 1, 11 का गुणांक नहीं है, संख्या 7834531, 11 से विभाज्य नहीं है।

प्राइम संख्याओं से विभाज्यता

किसी दिए गए संख्या को कोई प्राइम संख्या से विभाज्य है या नहीं, यह जानने के लिए हम उसकी एकादिका को उपयोग करते हैं। हम संख्या के अंतिम अंक को उसकी एकादिका से गुणा करते हैं और उसे अंतिम अंक से पहले के अंकों में जोड़ते हैं। हम यह प्रक्रिया तब तक करते हैं जब तक हमें ऐसा अंक नहीं मिल जाता, जिसे हम पहले से जानते हैं कि वह दिए गए प्राइम संख्या से विभाज्य है।

एकादिका निकालने की विधि

किसी भी प्राइम संख्या की एकादिका की गणना इस प्रकार की जाती है, उसे किसी संख्या से गुणा करें, जिससे 9 का अंक मिले। फिर हम उस परिणाम के पिछले अंक से एक जोड़कर एकादिका प्राप्त करते हैं।

7 की एकादिका = $7 \times 7 = 49, 4 + 1 = 5$

13 की एकादिका = $13 \times 3 = 39, 3 + 1 = 4$

19 की एकादिका = $19 \times 1 = 19, 1 + 1 = 2$

7 से विभाज्यता

अब हम 7 से विभाज्यता जांचने के लिए एकादिका का उपयोग करते हैं। 7 की एकादिका 5 है। हम संख्या के अंतिम अंक को उसकी एकादिका से गुणा करते हैं और उसे अंतिम अंक से पहले के अंकों में जोड़ते हैं। हम यह प्रक्रिया तब तक करते हैं जब तक हमें ऐसा अंक नहीं मिल जाता, जिसे हम पहले से जानते हैं कि वह 7 से विभाज्य है। उदाहरण: क्या 743693, 7 से विभाज्य है?

ध्यान दें, 7 की एकादिका 5 है।

अंतिम अंक = $3, 3 \times 5 = 15, 74369 + 15 = 74384$

अंतिम अंक = $4, 4 \times 5 = 20, 7438 + 20 = 7458$

अंतिम अंक = $8, 8 \times 5 = 40, 745 + 40 = 785$

अंतिम अंक = $5, 5 \times 5 = 25, 78 + 25 = 103$

अंतिम अंक = $3, 3 \times 5 = 15, 10 + 15 = 25$

चूंकि 25, 7 से विभाज्य नहीं है, संख्या 743693, 7 से विभाज्य नहीं है।

13 से विभाज्यता

उदाहरण: क्या 126594, 13 से विभाज्य है?

ध्यान दें, 13 की एकादिका की गणना इस प्रकार की जाती है: $13 \times 3 = 39, 3 + 1 = 4$ अंतिम अंक = $4, 4 \times 4 = 16, 12659 + 16 = 12675$ अंतिम अंक = $5, 5 \times 4 = 20, 1267 + 20 =$

Scanner by Droid-Veda

1287 अंतिम अंक = 7, 7 × 4 = 28, 128 + 28 = 156 अंतिम अंक = 6, 6 × 4 = 24, 15 + 24 = 39 चूंकि 39, 13 से विभाज्य है, संख्या 126594, 13 से विभाज्य है।

संयोजन संख्याओं से विभाज्यता संयोजन (गैर-प्राइम) संख्याओं से विभाज्यता की जांच करने के लिए हम उनके गुणकों के विभाज्यता नियमों को जोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, 6 के गुणक 2 और 3 हैं, इसलिए किसी संख्या के 6 से विभाज्य होने के लिए, उसे 2 और 3 दोनों से विभाज्य होना चाहिए।

कुछ नियम

1. कोई संख्या 6 से विभाज्य होती है यदि वह 2 और 3 दोनों से विभाज्य हो।
2. कोई संख्या 12 से विभाज्य होती है यदि वह 3 और 4 दोनों से विभाज्य हो।
3. कोई संख्या 15 से विभाज्य होती है यदि वह 3 और 5 दोनों से विभाज्य हो।
4. कोई संख्या 18 से विभाज्य होती है यदि वह 2 और 9 दोनों से विभाज्य हो।
5. कोई संख्या 24 से विभाज्य होती है यदि वह 3 और 8 दोनों से विभाज्य हो।
6. कोई संख्या 30 से विभाज्य होती है यदि वह 3 और 10 दोनों से विभाज्य हो।
7. कोई संख्या 20 से विभाज्य होती है यदि वह शून्य पर समाप्त हो और दूसरा अंतिम अंक सम हो।

उदाहरण: क्या 1379112, 24 से विभाज्य है? यदि कोई संख्या 3 और 8 दोनों से विभाज्य हो, तो वह 24 से विभाज्य होती है। हम 3 से विभाज्य होने के लिए अंकों का योग करते हैं: 1 + 3 + 7 + 9 + 1 + 1 + 2 = 24, 2 + 4 = 6 चूंकि 6, 3 से विभाज्य है, संख्या 1379112, 3 से विभाज्य है। हम 8 से विभाज्य होने के लिए जोड़ते हैं: (अंतिम अंक) + 2 × (द्वितीय अंतिम अंक) + 4 × (तृतीय अंतिम अंक) 8 से विभाज्य होने के लिए हम अंतिम अंक, द्वितीय अंतिम अंक का दुगना, और तृतीय अंतिम अंक का चार गुना जोड़ते हैं: 2 + (2 × 1) + (4 × 1) = 8 तो 1379112, 8 से विभाज्य है। चूंकि 1379112, 3 और 8 दोनों से विभाज्य है, यह 24 से विभाज्य है।

अभ्यास

निम्नलिखित में से कौन सी संख्याएँ दिए गए अंक से विभाज्य हैं?

1. 4321, 7865, 6745, 63963 द्वारा 3
2. 536, 8765, 48654, 4864 द्वारा 5
3. 540, 5642, 78546, 64678 द्वारा 6
4. 5436, 79492, 78654, 65846 द्वारा 7
5. 3246, 5368, 2178, 87321 द्वारा 8
6. 76539, 95346, 476325, 7643254 द्वारा 9
7. 675334, 56487, 39765, 648768 द्वारा 11
8. 9870, 12345, 6545, 987080 द्वारा 15
9. 876, 187632, 756432, 76546 द्वारा 18
10. 4624, 875432, 841128, 78698 द्वारा 24

Scanner by Droid-Veda

अध्याय 11

केवल 9 से बनी संख्याओं से गुणा करना



यह विधि इस तथ्य का लाभ उठाती है कि ऐसे गुणक वास्तव में 10 की किसी घात से ठीक एक कम होते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि गुणक में n अंक हैं (और सभी 9 हैं), तो उसे लिखा जा सकता है: $10^n - 1$ के रूप में। यह विधि तब लागू होती है जब गुणा की जाने वाली संख्या (गुणेय) के अंकों की संख्या n या उससे कम हो।

केवल 9 वाली संख्या से गुणा करने के चरण

मान लीजिए गुणेय संख्या N है और गुणक 10^n-1 है। तब परिणाम दो भागों में विभाजित किया जाएगा:

1. बाएँ भाग (LHS):
   गुणेय संख्या में से 1 घटाएँ: $LHS = N - 1$
2. दाएँ भाग (RHS):
   गुणेय संख्या को आधार 10n से घटाएँ:
   $RHS = 10^n - N = (10^n - 1) - (N - 1)$

नोट: एक बार बायाँ भाग N−1 लिख लेने के बाद, दायाँ भाग ऐसे अंक बनाकर लिखा जा सकता है जिनका योग संबंधित अंकों के साथ मिलाकर 9 बनता हो।

अंतिम गुणनफल बाएँ भाग और उसके बाद दाएँ भाग को साथ लिखकर प्राप्त किया जाता है।

उदाहरण 1: 15×99

यहाँ, गुणेय संख्या N=15, गुणक =99

1. बायाँ भाग: 15−1=14
2. दायाँ भाग: 85 (क्योंकि 1+8 = 9 और 4+5 = 9)

उत्तर : 15×99=1485

उदाहरण 2: 587×999

यहाँ,

N=587, गुणक = 999 (3 अंकों का)

1. बायाँ भाग: 587−1=586
2. दायाँ भाग: 413 (क्योंकि 5+4 = 9, 8+1 = 9, 6+3 = 9)

उत्तर: 587×999=586413

Scanner by Droid-Veda

उदाहरण 3: 123×9999

यहाँ, N=0123, गुणक = 9999 (4 अंकों का)

1. बायाँ भाग: 0123−1=0122
2. दायाँ भाग: 9877 (Since 0+9 = 9, 1+8 = 9, 2+7 = 9, 2+7 = 9)

उत्तर: 123×9999=1229877

उदाहरण 4: 1406×999999

यहाँ, N=001406, गुणक = 999999 (6 अंकों का)

1. बायाँ भाग: 001406−1=001405
2. दायाँ भाग: 998594 (Since 0+9 = 9, 0+9 = 9, 1+8 = 9, 4+5 = 9, 0+9 = 9, 6+3 = 9)

उत्तर: 1406×999999=1405998594

उदाहरण 5: 6719001×9999999

यहाँ, N=6719001, गुणक = 9999999 (7 अंकों का)

1. बायाँ भाग: 6719001−1=6719000
2. दायाँ भाग: 3280999

(Since 6+3 = 9, 7+2 = 9, 1+8 = 9, 9+0 = 9, 0+9 = 9, 0+9 = 9, 1+8 = 9)

उत्तर:

6719001×9999999= 67190003280999

अभ्यास प्रश्न

नीचे दी गई संख्याओं को ऊपर बताई गई विधि द्वारा गुणा करें:

1. 47×99
2. 206×999
3. 1503×9999
4. 89×99
5. 712×999
6. 5301×9999
7. 84×99
8. 999×999
9. 67005×99999
10. 891002×999999

सुझाव

प्रत्येक प्रश्न के लिए:

1. गुणेय में से 1 घटाकर बायाँ भाग निकालें।
2. फिर, गुणक में से बायाँ भाग घटाकर दायाँ भाग निकालें या इस तरह अंक चुनें कि प्रत्येक संबंधित अंकों का योग 9 हो।

अध्याय 12

वेदिक पद्धति से घटाना



वेदिक गणित एक प्राचीन गणना प्रणाली है जो वेदों से आती है—भारत की प्राचीन और पवित्र पुस्तकें। वेदिक गणित में एक सबसे दिलचस्प और उपयोगी तरीका है घटाने का, जिसे 'पूरक का उपयोग' कहा जाता है। लंबी और कठिन उधारी करने के बजाय, हम इस पद्धति का उपयोग करके संख्याओं को जल्दी घटा सकते हैं, जिसे कहा जाता है:

"निखिलं नवतश्चरमं दशत: ।"

(नौ से सब कुछ और दस से आखिरी।)

यह नियम हमें संख्याओं को एक बहुत आसान तरीके से घटाने में मदद करता है, जिससे घटाना जोड़ने में बदल जाता है। यह बहुत उपयोगी है, विशेष रूप से बड़ी संख्याओं के लिए और मानसिक गणना करने के लिए।

कैसे काम करता है

मान लीजिए हमें दो संख्याओं को घटाना है:

- A सबसे बड़ी संख्या (घटाने वाला संख्या) और
- B सबसे छोटी संख्या (घटाई जाने वाली संख्या)।

हम निम्नलिखित कदमों का पालन करते हैं:

1. **आधार चुनें:** 10, 100, 1000 आदि में से कोई आधार चुनें—ऐसा आधार चुनें जो B से बड़ा हो और 10 की सबसे छोटी शक्ति हो।
2. **B का पूरक निकालें:**
   - प्रत्येक अंक को 9 से घटाएं, सिवाय अंतिम अंक के।
   - अंतिम अंक को 10 से घटाएं।
3. पूरक को A में जोड़ें।
4. परिणाम में से आधार घटाएं।

   यह हमें अंतिम उत्तर देता है।

उदाहरण 1: 8325 में से 4678 घटाएं

हमें निकालना है: 8325 − 4678

चरण 1: आधार

चूंकि 4678, 4 अंकों की संख्या है, हम आधार 10000 चुनते हैं।

चरण 2:

4678 का पूरक निकालें

नियम "नौ से सब कुछ और दस से आखिरी" का उपयोग करते हुए:

$9 - 4 = 5$

$9 - 6 = 3$

$9 - 7 = 2$

$10 - 8 = 2$

तो पूरक है: 5322

चरण 3: पूरक को 8325 में जोड़ें

$8325 + 5322 = 13647$

चरण 4: आधार घटाएं

$13647 - 10000 = 3647$

इसलिए,

$8325 - 4678 = 3647$

उदाहरण 2: 7250 में से 3891 घटाएं

अब हम घटाते हैं:

$7250 - 3891$

चरण 1: आधार

आधार 10000 चुनें।

चरण 2: 3891 का पूरक निकालें

$9 - 3 = 6$

$9 - 8 = 1$

$9 - 9 = 0$

$10 - 1 = 9$

पूरक = 6109

चरण 3: घटाने वाली संख्या में जोड़ें

$7250 + 6109 = 13359$

चरण 4: आधार घटाएं

$13359 - 10000 = 3359$

तो,

$7250 - 3891 = 3359$

Scanner by Droid-Veda

निष्कर्ष

यह पद्धति त्वरित, आसान है और इसका उपयोग करना मजेदार है। यह छात्रों को बिना उधारी के भ्रमित हुए जल्दी घटाना करने में मदद करता है। अभ्यास से, इसे मानसिक गणना के रूप में भी किया जा सकता है।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. Tirthaji, B. K. (1965). Vedic Mathematics. Delhi: Motilal Banarsidass Publishers. ISBN: 9788120801644
2. Glover, J. T. (2002). Vedic Mathematics for Schools (Books 1–3). New Delhi: Motilal Banarsidass Publishers.
    1. Book 1 ISBN: 9788120832693
    2. Book 2 ISBN: 9788120832709
    3. Book 3 ISBN: 9788120832716
3. Sastry, S. S. (2008). Vedic Mathematics: An Introduction. New Delhi: Rupa Publications. ISBN: 9788129114677
4. Arish, S., & Sharma, R. K. (2019). An efficient floating point multiplier design for high-speed applications using Karatsuba algorithm and Urdhva-Tiryagbhyam algorithm. arXiv preprint. https://doi.org/10.48550/arXiv.1910.00976
5. Dwivedi, S. P. (2013). An efficient multiplication algorithm using Nikhilam method. arXiv preprint. https://doi.org/10.48550/arXiv.1307.2735
6. Kak, S. (2009). Early record of divisibility and primality. arXiv preprint. https://doi.org/10.48550/arXiv.0904.1154
7. Raman, A., Kumar, A., & Sarin, R. K. (2010). High-speed reconfigurable FFT design by Vedic Mathematics. arXiv preprint. https://doi.org/10.48550/arXiv.1006.2811
8. Chaudhary, R. (2011). A digital multiplier architecture using Urdhva Tiryakbhyam Sutra of Vedic Mathematics. International Journal of Scientific & Engineering Research, 2(5). Retrieved from https://www.academia.edu/2349528
9. Kumar, S., & Joshith, V. K. (2014). Ancient Indian Vedic Mathematics based 32-bit multiplier design for high speed and low power processors. International

Scanner by Droid-Veda

Journal of Engineering Research and Technology, 3(1). Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/271156937

10. Jaikumar, R., Karpagam, M., & Raju, L. (2017). A novel approach to implement high-speed squaring circuit using ancient Vedic Mathematics techniques. International Journal of Applied Engineering Research, 12(20), 5976–5980. Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/316646077
11. Melewar, R. (2013). Multiplication with the Vedic method. Journal of Education and Practice, 4(15), 141–148. Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/251712959
12. Harsha, R. (2018). Design of Vedic multiplier using Urdhva Tiryagbhyam Sutra. International Journal of Advance Research, Ideas and Innovations in Technology, 4(3). Retrieved from https://www.ijariit.com/manuscript/design-of-vedic-multiplier-using-urdhva-tiryagbhyam-sutra/
13. Patel, B., & Shah, M. (2014). High-speed system using Vedic Mathematics – A survey. International Journal of Advanced Research in Computer Science and Software Engineering, 4(1). Retrieved from https://www.academia.edu/13275539

Scanner by Droid-Veda

पुस्तक के विषय में

'वैदिक गणित : गणना का भारतीय मंत्र' एक संक्षिप्त लेकिन प्रभावशाली पुस्तक है, जो प्राचीन भारतीय गणित की सहज और कुशल विधियों को प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक पारंपरिक वैदिक सूत्रों पर आधारित है और पाठकों को जटिल गणितीय समस्याओं को तेजी से हल करने के सरल उपाय सिखाती है। इसमें डुप्लेक्स विधि से वर्ग निकालना, 5 और 1 पर समाप्त होने वाले अंकों का वर्ग, ऊर्ध्व-तिर्यक विधि से गुणा, मूल एवं उप-मूल विधियाँ, यावदूनम् से घन निकालना, सटीक वर्ग और घनों की मूल निकालने की विधियाँ, भागज्यता की पहचान, तथा 9 से बने अंकों के साथ गुणा और वैदिक पद्धति से घटाव जैसे उपयोगी सूत्रों को सम्मिलित किया गया है। यह पुस्तक विद्यार्थियों, प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे छात्रों और गणित में रुचि रखने वालों के लिए गणित को तेज, सरल और रुचिकर बना देती है।

सहयोग से :



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-86-4

Bharat BoudhIKS

खंड-7

भारतीय चिकित्सा और शल्य चिकित्सा

एक अमूल्य धरोहर

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान



भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

	प्रस्तावना	5
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	7
1.	**आयुर्वेद की खोज**	**14**
	1.1. आयुर्वेद की गाथा- हर्बल ज्ञान की एक प्राचीन कहानी	15
	1.2. मौलिक आयुर्वेदिक अवधारणाएँ और सिद्धांत	17
2.	**सुश्रुत: शल्य चिकित्सा के जनक**	**23**
	2.1. सुश्रुत संहिता; आयुर्वेद का प्राथमिक विद्यालय	25
3.	**चरक: चिकित्सा के जनक**	**37**
	3.1. चिकित्सा में चरक की नीति	41
	3.2. चरक संहिता	45
	3.3. चरक का भारतीय चिकित्सा में योगदान	49
4.	**आयुर्वेद की समग्र चिकित्सा प्रणाली**	**50**
5.	**पारंपरिक भारतीय चिकित्सा से परिप्रेक्ष्य**	**52**
6.	**निष्कर्ष**	**53**
	संदर्भ सूची	54
	अनुशंसित पठन सामग्री	55
	बहुविकल्पीय प्रश्न	56
	उत्तर-दर्शिका	90

Some blood transfusion from the East to the West is a must to save Western science from spiritual anemia.

Source: Long Walk to Enlightenment by Dr. Thillayvel Naidoo

In all world there is no kind of framework within which we can find consciousness in the plural; this is simply something we construct because of the temporal plurality of individuals, but it is a false construction.... The only solution to this conflict in so far as any is available to us at all lies in the ancient wisdom of the Upanishads.

Source: My View of the World - by Erwin Schrödinger



Erwin Schrödinger
(1887-1961)

One of the greatest physicists of the twentieth century, and a Nobel laureate, who developed many fundamental results on the basis of Wave Mechanics. The philosophical aspects of science interested him, and he wrote on philosophy and theoretical biology as well. He is well known for his Schrodinger's Cat thought-experiment. His Schrodinger Equation has been regarded1887-1961as one of the most important 1887-1961 achievements of the twentieth century. He also wrote about The basic View of Vedanta' by expounding Sankara's version of 'Advaita' and 'Non-Dualism'.

प्रस्तावना

आयुर्वेद, जो दुनिया की सबसे प्राचीन चिकित्सा प्रणालियों में से एक है, स्वास्थ्य, कल्याण और दीर्घायु के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह प्राचीन भारतीय ज्ञान पर आधारित है, जो शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन बनाए रखने पर जोर देता है। इस पुस्तक में हम आयुर्वेद के दो महान आचार्यों, चरक और सुश्रुत, की शिक्षाओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे, जो आयुर्वेद के प्रमुख स्तंभ हैं।

चरक संहिता, जिसे आचार्य चरक ने लिखा था, यह मानव शरीर, रोगों और उपचारों को समझने के लिए एक व्यापक मार्गदर्शिका है। इसमें नाड़ी परीक्षण जैसी निदान विधियों, पंचकर्म, रसायन और वाजीकरण जैसे उपचारों का विस्तृत वर्णन है, जो पुनर्नवीकरण, शुद्धिकरण और समग्र स्वास्थ्य को बढ़ावा देते हैं। चरक के सिद्धांत के अनुसार, उपचार योजना को व्यक्ति की प्रकृति (प्रकृति) और त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) के संतुलन पर आधारित किया जाना चाहिए।

साथ ही, सुश्रुत संहिता भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिसे आचार्य सुश्रुत ने लिखा था। सुश्रुत को "सर्जरी के पिता" के रूप में जाना जाता है, और उनकी संहिता में शल्य चिकित्सा, शरीर रचना और चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। सुश्रुत ने सर्जिकल प्रक्रियाओं, उपकरणों और एनेस्थीसिया के बारे में सबसे पहले लिखा था। उनके योगदान ने न केवल आयुर्वेद को प्रभावित किया, बल्कि आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों को भी मार्गदर्शन प्रदान किया।

चरक और सुश्रुत दोनों ही आचार्य ने इंद्रियों के माध्यम से रोगों के लक्षणों की पहचान और उपचार की दिशा को निर्धारित करने पर विशेष ध्यान दिया। उनके कार्यों में रोगों के पूर्वानुमान और उपचार के लिए सटीक अवलोकन की आवश्यकता पर जोर दिया गया है।

यह पुस्तक आयुर्वेद के इस प्राचीन ज्ञान को समकालीन चिकित्सा पद्धतियों से जोड़ते हुए पाठकों को आयुर्वेद की चिकित्सा और शल्य चिकित्सा के लाभों से अवगत

कराती है। इसके माध्यम से हम यह समझाने का प्रयास करते हैं कि आयुर्वेद के सिद्धांतों और उपचार विधियों को समकालीन विज्ञान के साथ मिलाकर हम स्वास्थ्य, रोग निवारण और जीवन में संतुलन बनाए रखने के लिए प्रभावी समाधान प्रदान कर सकते हैं।

इस पुस्तक के माध्यम से हम पाठकों को आयुर्वेद के अति प्राचीन और अमूल्य ज्ञान से परिचित कराना चाहते हैं और यह बताना चाहते हैं कि यह ज्ञान आज के विज्ञान और चिकित्सा पद्धतियों के साथ किस प्रकार समृद्ध और उपयोगी हो सकता है।

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित, मूल्य-आधारित एवं समग्र शिक्षा प्रणाली के संवर्धन हेतु समर्पित एक प्रतिष्ठित शिक्षण संस्था है। "सा विद्या या विमुक्तये" - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है। इसके पूर्व छात्र विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं, जो विद्या भारती की शिक्षा-नीति की प्रभावशीलता को सुदृढ़ करते हैं।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शाखों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

भारतीय चिकित्सा और शल्य चिकित्सा: एक अमूल्य धरोहर

प्राचीन भारतीय चिकित्सा और शल्य चिकित्सा के अतीत की ओर अग्रसर; सुश्रुत संहिता और चरक संहिता में उत्कृष्टता और अंतर्दृष्टि की विरासत

प्राचीन भारतीय स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की प्रस्तावना

स्वास्थ्य और कल्याण का विकास प्राचीन भारत में विकसित चिकित्सा पद्धतियों से गहरे रूप से प्रभावित हुआ है, विशेषकर चिकित्सा और सर्जरी के क्षेत्र में। प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली ने स्वास्थ्य और रोग की गहरी समझ को प्रदर्शित किया, जिसका श्रेय प्रमुख हस्तियों जैसे सुश्रुत और चरक को जाता है। इन व्यक्तियों ने चिकित्सा ज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, और उनके योगदान को प्रमुख ग्रंथों—सुश्रुत संहिता और चरक संहिता—में विस्तार से लिखा गया है।



सुश्रुत (600 ईसा पूर्व) की एक मूर्ति, जो सुश्रुत संहिता के लेखक और शल्य चिकित्सा के जनक माने जाते हैं, रॉयल ऑस्ट्रेलेशियन कॉलेज ऑफ सर्जन्स में स्थित है।

सुश्रुत संहिता सर्जरी में अपनी विस्तृत दृष्टिकोण और तकनीकों के लिए प्रसिद्ध है, जो आज भी प्रासंगिक हैं। सुश्रुत, जिन्हें "सर्जरी के जनक" के रूप में जाना जाता है, ने सौ से अधिक सर्जिकल प्रक्रियाओं का वर्णन किया, जिनमें राइनोप्लास्टी (नाक की सर्जरी)

जैसे जटिल ऑपरेशन शामिल थे। उन्होंने सर्जिकल उपकरणों के उपयोग और ऑपरेशन के दौरान स्वच्छता बनाए रखने के महत्व पर भी जोर दिया।

चरक संहिता ने रोगों की पहचान और उनका उपचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका ध्यान आंतरिक चिकित्सा और समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा पर था। चरक ने स्वास्थ्य को बनाए रखने और रोगों के इलाज में आहार, जीवनशैली, और हर्बल उपचार के महत्व को रेखांकित किया। शारीरिक संतुलन और मानसिक स्वास्थ्य पर उनके विचार आधुनिक समग्र चिकित्सा पद्धतियों से मेल खाते हैं और आज भी प्रासंगिक हैं।

इस कार्य का उद्देश्य इन प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों, रोगों के कारणों और चिकित्सीय सिद्धांतों को उजागर करना है। आयुर्वेद के सिद्धांत, जो इन ग्रंथों से उत्पन्न हुए हैं, तनाव संतुलन, प्राकृतिक उपचार, और व्यक्तिगत इलाज पर आधारित हैं। वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान ने इन प्राचीन पद्धतियों की प्रभावशीलता को मान्यता दी है, जो विभिन्न स्थितियों के उपचार में मददगार साबित हो रही हैं। यह वैज्ञानिक समर्थन प्राचीन ज्ञान की प्रासंगिकता को बढ़ाता है और पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों को आधुनिक चिकित्सा के साथ मिलाने की आवश्यकता को बल देता है। इस तरह, इन प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों का महत्व वर्तमान स्वास्थ्य देखभाल में भी बना हुआ है, और इन्हें संरक्षित करना आवश्यक है।

1. आयुर्वेद की खोज

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥

(च.सू. १/४१)

(जो जीवन के लिए हित और अहित, सुख और दुःख, जीवन की प्रकृति तथा उसकी माप के उपायों का वर्णन करता है— उसे आयुर्वेद कहा जाता है।)

स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा के मानकों को बनाए रखने के लिए, भारत सरकार ने 1971 में भारतीय चिकित्सा परिषद की स्थापना की। इसका उद्देश्य भारतीय चिकित्सा पद्धतियों की साख को मान्यता देना और आयुर्वेद, सिद्ध, और यूनानी जैसी पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों को स्वीकार करना था। इस परिषद के माध्यम से, पश्चिमी चिकित्सा को पारंपरिक भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है।

भारत में लगभग 500 मिलियन लोग आयुर्वेदिक चिकित्सकों से स्वास्थ्य सेवाएँ प्राप्त करते हैं, जिनमें से अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत हैं। इस प्रकार, आयुर्वेद

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, और भारत सरकार आयुर्वेदिक चिकित्सकों के प्रशिक्षण और तैनाती पर विशेष ध्यान देती है।

आयुर्वेद में, जैसे वैज्ञानिक चिकित्सा में चिकित्सीय और निवारक दोनों उपाय होते हैं, वैसे ही आयुर्वेद में भी यह दोनों पहलु मौजूद हैं। निवारक उपायों में सामाजिक और व्यक्तिगत स्वच्छता के कड़े नियमों का पालन करने पर जोर दिया जाता है, जो पर्यावरण, जलवायु और व्यक्तिगत आवश्यकताओं के आधार पर परिवर्तित होते हैं। पुनर्स्थापनात्मक उपायों में योग, हर्बल उपचार और शारीरिक गतिविधियाँ शामिल हैं। हर्बल उपचार, बाहरी उपचार, फिजियोथेरेपी और आहार भी आयुर्वेद के उपचार विधियों का हिस्सा हैं।

आयुर्वेद का सिद्धांत यह है कि चिकित्सीय और निवारक क्रियाएं प्रत्येक रोगी की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार होनी चाहिए। आयुर्वेद का एक लंबा इतिहास है, और इसकी उत्पत्ति भारत में लगभग 3,000 साल पहले हुई मानी जाती है। आज भी कई पूर्वी देशों में, विशेष रूप से भारत में, जहाँ की बड़ी जनसंख्या पूरी तरह से या आधुनिक चिकित्सा के साथ मिलाकर आयुर्वेद का उपयोग करती है, यह स्वास्थ्य देखभाल का एक प्रमुख तरीका बना हुआ है।

1.1. आयुर्वेद की गाथा- हर्बल ज्ञान की एक प्राचीन कहानी

आयुर्वेद चिकित्सा की एक पारंपरिक प्रणाली है, जिसकी जड़ें प्राचीन भारत में हैं। यह पद्धति 5,000 वर्ष से भी अधिक पुरानी है और विभिन्न सांस्कृतिक और ऐतिहासिक कालखंडों के माध्यम से विकसित हुई है। **"आयुर्वेद"** नाम दो संस्कृत शब्दों से लिया गया है: **"आयुर,"** जिसका अर्थ है जीवन, और **"वेद,"** जिसका अर्थ है ज्ञान या विज्ञान। दोनों शब्दों का मिलाकर अनुवाद "जीवन का विज्ञान" होता है।

आयुर्वेद की उत्पत्ति का पता हमें वैदिक ग्रंथों, विशेष रूप से अथर्ववेद से मिलता है, जिसमें स्वास्थ्य और उपचार की कुछ प्रारंभिक पद्धतियों का उल्लेख किया गया है। इन ग्रंथों ने शरीर, मन और आत्मा को समग्र कल्याण के लिए आवश्यक और परस्पर जुड़े तत्वों के रूप में समझने की नींव रखी। सदियों से, आयुर्वेद ने ग्रीक, फ़ारसी और चीनी चिकित्सा सहित अन्य संस्कृतियों के प्रभावों को अवशोषित किया है। इस संपर्क ने इसके सिद्धांतों और प्रथाओं को समृद्ध किया, जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य के प्रति एक अधिक व्यापक दृष्टिकोण तैयार हुआ। विद्वानों और चिकित्सकों ने अपने निष्कर्षों को चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे विभिन्न ग्रंथों में दस्तावेज़ित किया है। ये ग्रंथ

निदान, उपचार और शल्य चिकित्सा की तकनीकों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं, जिनका आज भी संदर्भ लिया जाता है।

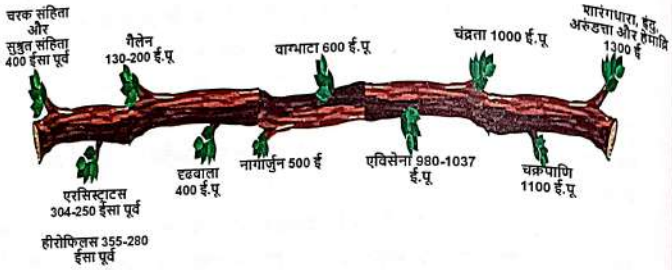

चित्र 1: आयुर्वेद के इतिहास की एक संक्षिप्त समयरेखा

चरक-संहिता और सुश्रुत-संहिता के नाम से प्रसिद्ध चिकित्सा ग्रंथों की रचना, जिनका श्रेय क्रमशः चिकित्सक चरक और सर्जन सुश्रुत को दिया जाता है, ने भारतीय चिकित्सा की समृद्धि की ऊंचाई को चिह्नित किया, जो लगभग 800 ईसा पूर्व से लेकर 1000 ईस्वी तक फैली रही। हालांकि पहले भी इन ग्रंथों की पुनरावृत्तियाँ थीं, माना जाता है कि चरक-संहिता की उत्पत्ति पहली शताब्दी ईसा पूर्व में हुई थी। सातवीं शताब्दी ईस्वी तक, सुश्रुत-संहिता अपने वर्तमान स्वरूप में पूरी तरह से स्थापित हो चुकी थी, और इसकी शुरुआत संभवतः पिछली शताब्दी ईसा पूर्व में हुई थी। वाग्भट्ट से संबंधित ग्रंथों को कुछ हद तक कम महत्व प्राप्त है।

ये ग्रंथ, जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के साथ-साथ शरीर में तीन शारीरिक दोषों (वात, पित्त और कफ) के संदर्भ में मानव शरीर की जांच करते हैं, ने भारतीय चिकित्सा पर बाद के सभी लेखनों की नींव रखी। मध्यकाल में, आयुर्वेद को विदेशी आक्रमणों और आधुनिक चिकित्सा के उदय से चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इन बाधाओं के बावजूद, यह परंपरा जीवित रही और समय के साथ अनुकूलित भी हुई।

19वीं और 20वीं शताब्दी में, भारत और विश्व स्तर पर आयुर्वेद में पुनः रुचि का उभार हुआ। यह पुनरुद्धार स्वास्थ्य के लिए वैकल्पिक और समग्र दृष्टिकोण की बढ़ती सराहना के साथ हुआ।

आज, आयुर्वेद को केवल हर्बल चिकित्सा के रूप में ही नहीं बल्कि एक संपूर्ण स्वास्थ्य प्रणाली के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह आहार, जीवनशैली और मानसिक कल्याण के महत्व पर जोर देता है। चिकित्सक किसी व्यक्ति की शारीरिक संरचना और विशिष्ट स्वास्थ्य आवश्यकताओं को निर्धारित करने के लिए व्यक्तिगत मूल्यांकन का उपयोग करते हैं। उपचार में हर्बल उपचार, आहार समायोजन, योग और ध्यान शामिल हो सकते हैं। आयुर्वेद में वैश्विक रुचि के कारण दुनिया भर में कल्याण प्रथाओं में इसका एकीकरण हुआ है। बहुत से लोग अपने स्वास्थ्य को बेहतर बनाने या अपने जीवन में संतुलन पाने के लिए आयुर्वेदिक ज्ञान की तलाश करते हैं। परिणामस्वरूप, आयुर्वेद अपने प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करते हुए आधुनिक संदर्भ में अपनी प्रासंगिकता बनाए रखते हुए फल-फूल रहा है।

1.2. मौलिक आयुर्वेदिक अवधारणाएँ और सिद्धांत

आयुर्वेद के अनुसार, वायु (वात), जल (जल), आकाश (अंतरिक्ष या ईथर), पृथ्वी (पृथ्वी) और तेज (अग्नि) पांच तत्व हैं जो पूरे ब्रह्मांड का निर्माण करते हैं। इन पांच तत्वों को **पंच महाभूत** कहा जाता है और ये विभिन्न संयोजनों में मानव शरीर के तीन मौलिक दोषों का निर्माण करते हैं। आयुर्वेद में इन तीन दोषों को पित्त, कफ और वात दोष कहा जाता है, और इन्हें **"त्रिदोष"** कहा जाता है। ये दोष शरीर की मूलभूत शारीरिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं (चित्र 2)। प्रत्येक के पाँच उप-दोष होते हैं।

आयुर्वेद में यह माना जाता है कि सूखापन वात दोष के प्रभाव को बढ़ाता है, जो सेलुलर परिवहन, इलेक्ट्रोलाइट संतुलन और अपशिष्ट उत्पादों के निपटान को बनाए रखता है। पित्त दोष भूख, प्यास, शरीर के तापमान और ऑप्टिक तंत्रिका समन्वय को नियंत्रित करता है। गर्म तापमान पित्त दोष को बढ़ाता है। मीठे और वसायुक्त खाद्य पदार्थ कफ दोष को बढ़ाते हैं, जो जोड़ों को चिकनाई देने के लिए जिम्मेदार होता है और इसके माध्यम से शरीर के इष्टतम संचालन को सुनिश्चित करता है।

आयुर्वेद में यह भी माना जाता है कि वात दोष शरीर के अपचय (Catabolism) को नियंत्रित करता है, पित्त दोष चयापचय (Metabolism) को नियंत्रित करता है, और कफ दोष उपचय (Anabolism बॉडी मॉइश्चराइजेशन) को नियंत्रित करता है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए तीनों दोषों और अन्य तत्वों के बीच संतुलन बनाए रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। त्रिदोषों के बीच किसी भी असंतुलन से बीमारी या रोग की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

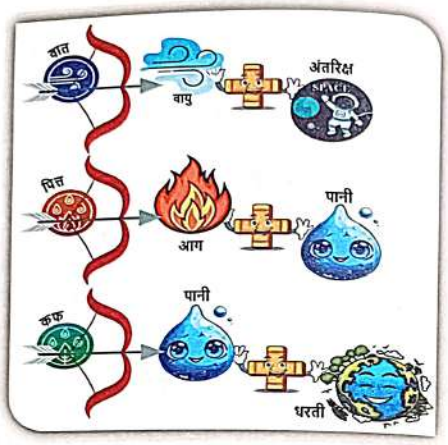

चित्र 2: आयुर्वेद में त्रिदोष

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

Sushruta Samhita, Sutrasthana 15.38

जब तीनों दोष (वात, पित्त, कफ) संतुलित होते हैं, पाचन (अग्नि) सही होता है, शारीरिक ऊतक (धातु) और मल (मल) सामान्य रूप से कार्य करते हैं, और आत्मा, मन, और इंद्रियाँ आनंद की स्थिति में होती हैं, तब व्यक्ति को स्वस्थ माना जाता है।

शल्योपहृतमेतच्च धर्मार्थकाममोक्षाणामायत्तमायुरेव तु॥

Sushruta Samhita, Sutrasthana 1.2

जीवन के चार उद्देश्य—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष—स्वयं जीवन पर निर्भर होते हैं, और शल्य चिकित्सा (शल्य) जीवन के संरक्षण में सहायक होती है।

सुश्रुत शल्य चिकित्सा को एक आध्यात्मिक और नैतिक कार्य के रूप में ऊंचा मानते हैं, यह दर्शाते हुए कि चिकित्सा धर्म और मोक्ष आधारित जीवन से गहरे रूप से जुड़ी हुई थी, जो वैदिक काल के बाद भारतीय विचारधारा की विशेषता है।

आयुर्वेद के अनुसार, शरीर सात विभिन्न प्रकार के ऊतकों या "सप्त धातुओं" से बना है। मानव शरीर को शारीरिक रूप से कार्य करने के लिए, इन सात ऊतकों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करना आवश्यक है। इन धातुओं में प्रत्येक का विशिष्ट कार्य होता है:

1. **रक्त धातु:** यह रक्त कोशिका परिसंचरण और शरीर में रक्त घटकों की आपूर्ति को नियंत्रित करती है, ठीक वैसे जैसे रक्त का कार्य होता है।
2. **मेद धातु:** यह वसा से संबंधित है और शरीर की ऊर्जा को संचयित करती है।
3. **ममसा धातु:** यह मांसपेशियों के ऊतक से संबंधित है, जो शरीर की संरचना और गति के लिए आवश्यक होते हैं।
4. **अस्थि धातु:** यह हड्डियों को बनाती है और शरीर की स्थिरता प्रदान करती है।
5. **मज्जा धातु:** यह अस्थि मज्जा और हड्डियों के तेल, और शरीर के सही संचालन के लिए आवश्यक अन्य पदार्थों का निर्माण करती है।
6. **शुक्र धातु:** यह शरीर के प्रजनन अंगों से संबंधित है और प्रजनन प्रक्रिया को नियंत्रित करती है।

इसके अतिरिक्त, आयुर्वेद में त्रि माला और त्रयो दोष भी महत्वपूर्ण तत्व हैं। त्रि माला का मतलब है शरीर के तीन प्रकार के अपशिष्ट उत्पाद - स्वेद (पसीना), पुरीसा (मल), और मूत्र (मूत्र)। ये सभी शरीर की पाचन और चयापचय प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार, यदि त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) के बीच संतुलन बनाए नहीं रखा जाता, तो शरीर के अपशिष्ट उत्पादों का उचित निष्कासन नहीं हो पाता, जिससे विभिन्न स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। इनमें संधिशोथ, अस्थमा, कब्ज, दस्त और अन्य समस्याएं शामिल हो सकती हैं। इसलिए, त्रिदोषों और शरीर की धातुओं के बीच संतुलन बनाए रखना स्वस्थ जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

आयुर्वेदिक शिक्षाओं के अनुसार, "अग्नि" शरीर की जैविक अग्नि के लिए शब्द है, जो सभी चयापचय प्रक्रियाओं को शक्ति प्रदान करती है। मानव शरीर में पाए जाने वाले तेरह प्रकार की अग्नि में सबसे महत्वपूर्ण जठराग्नि है, जो पाचन अग्नि की जिम्मेदार होती है। पित्त और, अंततः, शरीर का वात जठराग्नि से संबंधित हैं। जब शरीर में बढ़ी हुई अम्लता के कारण जठराग्नि का स्तर बढ़ता है, तो बढ़े हुए पित्त के स्तर और संबंधित लक्षण देखे जाते हैं।

स्वस्थ पाचन प्रक्रियाओं को बनाए रखने, प्राकृतिक माइक्रोबायोटा को विनियमित करने और पूरे शरीर को ऊर्जा की आपूर्ति करने के लिए, पाचन अग्नि का सही संतुलन आवश्यक है। कोई भी असंतुलन जठरांत्र संबंधी मार्ग में असुविधा का कारण बन सकता है और दस्त, अल्सर, कब्ज जैसी रोग संबंधी समस्याओं का निर्माण कर सकता है।

आयुर्वेद लोगों के कल्याण को बढ़ाने के लिए उनकी शारीरिक संरचना, चिकित्सा इतिहास, दोष लक्षण, जीवनशैली और दैनिक आधार पर परिवेश को ध्यान में रखते हुए, विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों का पालन करता है। आयुर्वेद अपने उपचार में "पंच कर्म" तकनीक का उपयोग करता है, जो दीर्घायु, शरीर को शुद्ध करने और इसे फिर से जीवंत करने के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं का उपयोग करता है। पंच कर्म बनाने वाले पांच कर्म (क्रियाओं) के माध्यम से शरीर के ऊतकों से विषाक्त पदार्थों को समाप्त किया जाता है (चित्र 3)। ये पांच कर्म हैं–

1. **विरेचन:** पाउडर, पेस्ट या काढ़े का उपयोग करके शुद्धिकरण।
2. **वमन:** कुछ दवाओं के उपयोग से जबरन चिकित्सीय उल्टी।
3. **वस्ति:** औषधीय तेलों से तैयार एनीमा का उपयोग।
4. **रक्तमोक्षण:** रक्त का विषहरण।
5. **नस्य:** नासिका मार्ग से काढ़ा, तेल और धुंआ जैसी औषधियां प्रशासन करना।

इन क्रियाओं के माध्यम से शरीर के भीतर जमा विषाक्त पदार्थों को बाहर निकाला जाता है और शरीर को फिर से संतुलित किया जाता है, जिससे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होता है।



चित्र 3: "पंच कर्म" में शामिल चरण

पंच कर्म मुख्य रूप से तीन चरणों से बना होता है–

1. **पूर्व कर्म:** यह चरण शरीर को चिकित्सा के लिए तैयार करता है। इसमें शरीर को शुद्ध करने और उपचार की प्रक्रिया के लिए तैयार करने के उपाय शामिल होते हैं।
2. **प्रधान कर्म:** यह प्रमुख चिकित्सा प्रक्रिया है, जिसमें शरीर के भीतर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने के लिए विशिष्ट उपचार विधियाँ अपनाई जाती हैं। यह पंचकर्म का केंद्रीय चरण है, जिसमें शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकाला जाता है।
3. **पश्चात्कर्म:** यह चरण शरीर की पाचन और अन्य अवशोषण प्रक्रियाओं को सामान्य करने के लिए नियमों का पालन करता है। इसमें उपचार के बाद के देखभाल और सही आहार व जीवनशैली के सुझाव दिए जाते हैं, ताकि शरीर की कार्यप्रणाली को संतुलित किया जा सके।

तेल लगाने की प्रक्रिया में औषधीय तेलों और स्पष्ट मक्खन का उपयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया में शरीर के कुछ हिस्सों पर भाप के संपर्क में आने से पसीना उत्पन्न होता है, जिससे उपचार प्रभावी होता है।

वमन (जबरन उल्टी) के लिए दही और चावल का सेवन किया जाता है, जिसके बाद मुलेठी और शहद के काढ़े का सेवन कराया जाता है। यह उल्टी को बढ़ाता है और शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने में मदद करता है।

विरेचन चिकित्सा के तहत सेन्ना, गाय का दूध, साइलियम बीज और अरंडी के तेल का उपयोग किया जाता है। ये सभी जड़ी-बूटियाँ और तरल पदार्थ शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने के लिए काम करती हैं।

पंच कर्म में **एनीमा** (वस्ति) बनाने के लिए औषधीय तेल या हर्बल काढ़े जैसे तिल या सौंफ का उपयोग किया जा सकता है।

अष्टांग आयुर्वेद आठ प्रमुख विषयों को संदर्भित करता है जिनमें आयुर्वेद का अभ्यास किया जाता है। ये विषय हैं:

- **शल्य (सर्जिकल उपचार):** यह आयुर्वेद का वह भाग है जो शल्य चिकित्सा से संबंधित है, जिसमें शारीरिक समस्याओं का उपचार और शल्य क्रियाएँ शामिल हैं।

- **शालाक्य (नेत्र, कान, नाक, गला, आदि का उपचार):** यह विषय ओटोलरींगोलॉजिकल (ईएनटी) और नेत्र रोगों के उपचार से संबंधित है। इसमें आंख, कान, नाक, गला, और दांतों से जुड़ी समस्याओं का उपचार किया जाता है।
- **कौमार भृत्य (बाल चिकित्सा):** यह बालकों और शिशुओं के उपचार से संबंधित है। इसमें शिशु स्वास्थ्य, उनकी विकासात्मक समस्याएँ, और बच्चों से संबंधित चिकित्सा देखभाल शामिल है।
- **वाजीकरण (कामोत्तेजक और यूजीनिक्स):** यह प्रजनन स्वास्थ्य और कामोत्तेजक चिकित्सा से संबंधित है। इसमें पुरुषों और महिलाओं के यौन स्वास्थ्य और प्रजनन क्षमता को बढ़ाने के उपाय किए जाते हैं।
- **कायाचिकित्सा (आंतरिक चिकित्सा):** यह शरीर के आंतरिक अंगों और उनके उपचार से संबंधित है। इसमें रोगों के निदान, उपचार और शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारने की विधियाँ शामिल हैं।
- **ग्रहचिकित्सा/भूतविद्या (मनोविकार और मानसिक स्वास्थ्य):** यह मानसिक और मानसिक विकारों का उपचार करता है, जैसे कि मानसिक तनाव, चिंता, अवसाद आदि। इसमें मनोविज्ञान और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित चिकित्सा पद्धतियाँ आती हैं।
- **अगाडा तंत्र (विषाक्त विज्ञान और औषधि विज्ञान):** यह विषाक्त पदार्थों से संबंधित चिकित्सा विज्ञान है। इसमें विषाक्तता का इलाज, जड़ी-बूटियाँ, और औषधियों के प्रभावों का अध्ययन शामिल है।
- **रसायन (दीर्घायु और जीवन शक्ति के उपाय):** यह शरीर के समग्र स्वास्थ्य को बनाए रखने और जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने के उपायों से संबंधित है। इसमें उम्र बढ़ाने, शक्ति बढ़ाने और स्वास्थ्य को बनाए रखने के उपचार शामिल होते हैं।

ये आठ विषय आयुर्वेद के विभिन्न पहलुओं को शामिल करते हैं और स्वास्थ्य को बनाए रखने, रोगों का उपचार, और समग्र कल्याण में सहायता प्रदान करते हैं।[3]

उपर्युक्त अवधारणा और जड़ी-बूटियों, खनिजों और पशु-आधारित वस्तुओं के बारे में प्रचुर ज्ञान की मदद से, आयुर्वेद ने दुनिया भर में बहुत लोकप्रियता हासिल की है।

2. सुश्रुत: शल्य चिकित्सा के जनक

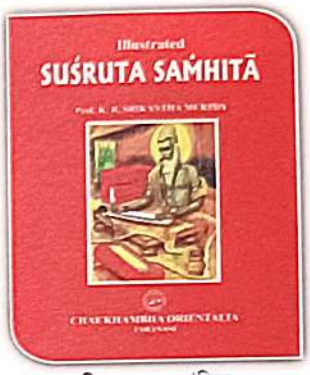

चित्र 4: सुश्रुत संहिता

ऐसा कहा जाता है कि सुश्रुत का जन्म पूर्वी भारत, विशेष रूप से बिहार के निकट हुआ था। उन्हें भारतीय सर्जरी का संस्थापक माना जाता है और वे पहली बार राइनोप्लास्टी (नाक की सर्जरी) करने वाले व्यक्ति थे (चित्र 4)। सुश्रुत का जीवनकाल चिकित्सा इतिहासकारों के बीच लंबे समय से एक विवाद का विषय रहा है। उनकी प्रसिद्ध रचना **सुश्रुत संहिता** आज पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है और यह केवल प्रतियों और परिवर्तनों में ही मौजूद है (रूथको, 1961)। यह माना जाता है कि सुश्रुत **वैदिक युग के उत्तरार्ध** में जीवित रहे होंगे, और उनके योगदान को ध्यान में रखते हुए, उन्हें लगभग **1000 ईसा पूर्व** के आसपास का माना जाता है, जैसा कि उत्तर वैदिक भजनों में उल्लेखित है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में, **सुश्रुत** प्राचीन भारतीय चिकित्सा के एक अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। उनके क्षेत्र में किए गए योगदानों के कारण उन्हें व्यापक रूप से "सर्जरी का जनक" माना जाता है। उनका अत्यंत प्रभावशाली कार्य, सुश्रुत संहिता, शल्य चिकित्सा पद्धतियों पर केंद्रित सबसे पुराना और विस्तृत ग्रंथों में से एक है। यह ग्रंथ प्रारंभिक चिकित्सा तकनीकों को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में कार्य करता है। **सुश्रुत संहिता** महर्षि सुश्रुत द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें शल्य चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें 186 अध्याय हैं, जिन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है: पूर्वतंत्र और उत्तरतंत्र। **सुश्रुत संहिता** का अरबी भाषा में अनुवाद 'किताब-ए-सुश्रुत' के रूप में हुआ था, जिससे यह मध्य पूर्व और यूरोप में भी प्रसिद्ध हुआ। अरब के प्रसिद्ध चिकित्सक **राजी** ने अपने ग्रंथों में सुश्रुत का उल्लेख करते हुए उन्हें शल्य-विज्ञान का आचार्य माना है।

सुश्रुत ने **मानव शरीर रचना विज्ञान** और **शल्य चिकित्सा तकनीकों** की गहन समझ प्रदर्शित करते हुए विभिन्न शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं का वर्णन किया। इनमें

से कई प्रक्रियाएं आज भी प्रासंगिक हैं। सुश्रुत ने **मोतियाबिंद सर्जरी** जैसे प्रमुख क्षेत्रों में अग्रणी कार्य किया, जिसमें धुंधले लेंस को हटाकर दृष्टि को बहाल करने का तरीका बताया गया। (चित्र 5)

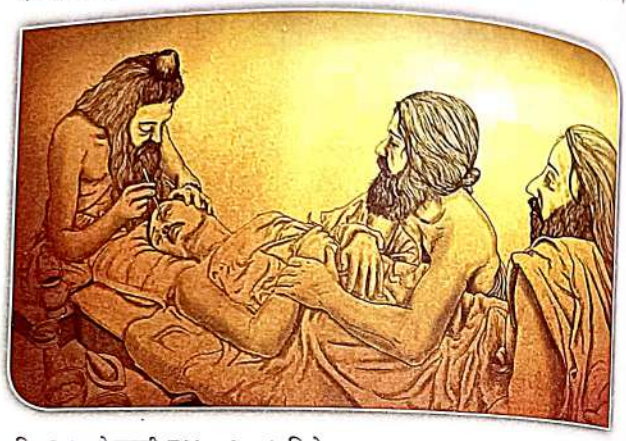

चित्र 5: (राइनोप्लास्टी (Rhinoplasty), जिसे सामान्यतः "नाक की सर्जरी" या "नाक का आकार बदलने की सर्जरी" कहा जाता है, एक प्लास्टिक सर्जिकल प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य नाक के आकार, संरचना या कार्य में सुधार करना है।)

उन्होंने **राइनोप्लास्टी** (नाक की सर्जरी) के क्षेत्र में भी नवाचार किया, जो नाक के पुनर्निर्माण के उद्देश्य से की जाती है और आज भी प्रचलित है।

इसके अलावा, सुश्रुत ने **सिजेरियन सेक्शन** (सी-सेक्शन) के लिए भी दिशानिर्देश प्रदान किए, जो मातृत्व देखभाल के प्रति उनके दूरदर्शी दृष्टिकोण को दर्शाता है। उनका योगदान न केवल शल्य चिकित्सा, बल्कि चिकित्सा के अन्य क्षेत्रों में भी अत्यंत महत्वपूर्ण था, और उनके कार्यों का प्रभाव आज तक महसूस किया जाता है।

रुडोल्फ होर्नले, एक प्रारंभिक विद्वान, ने यह सुझाव दिया था कि शतपथ-ब्राह्मण, जिसे उन्होंने 600 ईसा पूर्व का माना है, में सुश्रुत-संहिता के कुछ विचार मौजूद थे। हालांकि, भारतीय चिकित्सा साहित्य के इतिहास पर किए गए शोध में पिछली शताब्दी में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, और अब इस बात के ठोस प्रमाण हैं कि सुश्रुत-संहिता कई ऐतिहासिक युगों का उत्पाद है। यह माना जाता है कि सुश्रुत-संहिता की रचना कई

सदियों पहले, ईसा पूर्व में शुरू हुई होगी, और इसे अपने वर्तमान स्वरूप में लाने के लिए किसी अन्य लेखक ने लंबे "उत्तरतंत्र" अध्याय को जोड़ा और पहले के पांच अध्यायों में संशोधन किया। विद्वान दृढबाला, जिन्होंने चौथी और पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के दौरान लिखा और चरक संहिता में योगदान दिया था, संभवतः सुश्रुत-संहिता से अवगत थे। इस प्रकार, सुश्रुत-संहिता का विकास और विस्तार समय के साथ हुआ और यह विभिन्न युगों के चिकित्सीय ज्ञान का मिश्रण बन गई।

सुश्रुत का योगदान केवल **शल्य चिकित्सा** तकनीकों तक सीमित नहीं था। उन्होंने **सर्जिकल उपकरणों** के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो इस अनुशासन के लिए मौलिक माने जाते हैं। सुश्रुत ने विभिन्न प्रकार के उपकरण डिजाइन किए, जैसे कि **संदंश** (ऊतकों को पकड़ने के लिए), **स्केलपेल** (सटीक कटौती करने के लिए) और **सुई** (घावों को सिलने के लिए)। इन उपकरणों ने सर्जनों को अपने कार्यों को अधिक **दक्षता** और **सटीकता** के साथ करने में सहायता प्रदान की।

सुश्रुत का **व्यापक ज्ञान** और **प्रथाओं** ने **आधुनिक सर्जरी** की प्रगति के लिए एक ठोस आधार तैयार किया। उनके कार्यों ने **सर्जनों** और **चिकित्सा चिकित्सकों** की कई पीढ़ियों को प्रभावित किया। उनके द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत और तकनीकें **सदियों** से गूंजती रही हैं, और इनका प्रभाव आज के **चिकित्सा क्षेत्र** में उपयोग की जाने वाली शल्य चिकित्सा पद्धतियों के विकास को आकार देने में महत्वपूर्ण रहा है।

2.1. सुश्रुत संहिता; आयुर्वेद का प्राथमिक विद्यालय

सुश्रुत संहिता, जिसे "सुश्रुत का संग्रह" (संस्कृत: सुश्रुतसलिता, आईएएसटी: सुश्रुतसंहिता) के नाम से भी जाना जाता है, प्राचीन चिकित्सा ग्रंथों में से एक है जो आज भी जीवित है। यह चरक-संहिता, भेला-संहिता और बोवर पांडुलिपि के चिकित्सा अनुभागों के साथ मिलकर आयुर्वेद (भारतीय पारंपरिक चिकित्सा) की प्रमुख पुस्तकों में शामिल है। यह चिकित्सा के बारे में सबसे पुराने और प्रमुख हिंदू ग्रंथों में से एक है जो प्राचीन भारत से अस्तित्व में हैं।

सुश्रुत संहिता ऐतिहासिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें सर्जिकल प्रशिक्षण, उपकरण और विधियों पर अद्वितीय अध्याय शामिल हैं। यह चिकित्सा क्षेत्र में प्राचीन समय की महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। नेपाल में कैसर लाइब्रेरी में सुश्रुत संहिता की सबसे पुरानी ताड़ के पत्ते की पांडुलिपियों में से एक संरक्षित है। (चित्र 6)

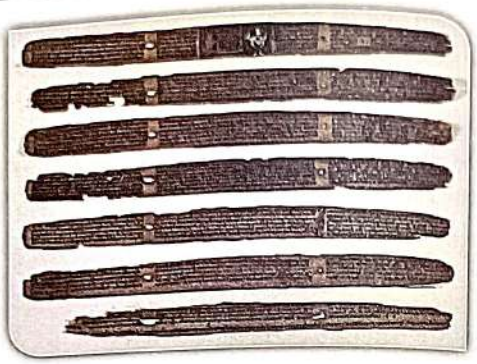

चित्र 6: नेपाल से प्राप्त सुश्रुत संहिता या सहोत्तार-तंत्र के ताड़पत्र लॉस एंजिल्स कंट्री म्यूजियम ऑफ आर्ट में संग्रहीत हैं। पाठ 13-12वीं शताब्दी का है, जबकि कलाकृति 19-18वीं शताब्दी की है।

सुश्रुत संहिता की तिथि का सबसे गहन विश्लेषण म्यूलेनबेल्ड के हिस्ट्री ऑफ इंडियन मेडिकल लिटरेचर (1999-2002) में किया गया है। म्यूलेनबेल्ड के अनुसार, सुश्रुत संहिता संभवतः एक ऐसा कार्य है जो कई ऐतिहासिक परतों का परिणाम है, और इसका विकास विभिन्न समयों में हुआ होगा।

इसकी रचना ईसा पूर्व पिछली कुछ शताब्दियों में हुई होगी, और किसी अन्य लेखक ने लंबे, अंतिम खंड, जिसे "उत्तरतंत्र" के नाम से जाना जाता है, को जोड़कर और पहले पांच खंडों को संशोधित करके इसे इसके वर्तमान स्वरूप में समाप्त किया। विद्वान दृढबाला (सी. 300-500 ई.पू.) शायद सुश्रुत-संहिता के बारे में जानते थे, जो उस कार्य के संस्करण के लिए नवीनतम तारीख प्रदान करता है जो आधुनिक समय तक कायम है। सुश्रुत संहिता के वर्तमान संस्करण में 186 अध्याय शामिल हैं जिनमें 1,120 बीमारियों, 700 चिकित्सीय पौधों, 64 खनिज-आधारित दवाओं और 57 पशु-आधारित उपचारों का वर्णन है। (source:https://iresa.yogfront.ooo/MaharishiSushurata) **सुश्रुत संहिता** को दो खंडों में विभाजित किया गया है: **"बाद का खंड"** (संस्कृत: उत्तरतंत्र), जिसे लेखक **नागार्जुन** ने जोड़ा था, और **प्रारंभिक खंड** (संस्कृत: स्थान), जिसमें पहली पांच पुस्तकें शामिल हैं, जिन्हें साहित्य का सबसे प्रारंभिक भाग माना जाता है। यह पाठ पहली बार **आठवीं शताब्दी** के अंत में संस्कृत से अरबी में अनुवादित किया गया था, और इसके बाद इसे **अंग्रेजी**, **जर्मन** और **लैटिन** भाषाओं में भी अनुवादित किया

गया। **कविराज भिशाग्रतन** का **1910** का अंग्रेजी अनुवाद, सुश्रुत संहिता का नवीनतम अनुवाद है, और 1963 में एक और संस्करण प्रकाशित किया गया था।

सुश्रुत संहिता के दो प्रमुख खंड हैं: **पूर्व-तंत्र** और **उत्तर-तंत्र**। पूर्व-तंत्र में पाँच खंड होते हैं: **सूत्रस्थान**, **निदान**, **शरीरस्थान**, **चिकित्सास्थानम**, और **कल्पस्थम**। इन पाँच खंडों में कुल 120 अध्याय होते हैं।

इन खंडों का विवरण इस प्रकार है:

1. **सूत्रस्थान:** इसमें बुनियादी चिकित्सा विज्ञान और औषध विज्ञान शामिल हैं।
2. **निदान:** इसमें बीमारी की प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया गया है।
3. **शरीरस्थान:** इसमें मानव शरीर के रचनात्मक पहलुओं का विवरण है।
4. **चिकित्सास्थानम:** इसमें शल्य चिकित्सा के तरीकों और ऑपरेशन के बाद की देखभाल पर चर्चा की गई है, जो कुल 34 अध्यायों में वितरित है।
5. **कल्पस्थम:** इसमें विषाक्तता और उसके उपचार के बारे में आठ अध्यायों में जानकारी दी गई है।

सुश्रुत संहिता के समय में, चिकित्सक की विभिन्न श्रेणियाँ थीं, जिनमें **रोगहार** (चिकित्सक), **शैल्याहर** (सर्जन), **विषहर** (जहर चिकित्सक), **कृत्याहर** (शैतान चिकित्सक), और **भिसागथरवन** (जादुई चिकित्सक) शामिल थे। ये सभी उपचार कला की पांच श्रेणियों का हिस्सा थे, जो चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं को कवर करते थे।

2.1.1. सुश्रुत संहिता का अर्थ

सुश्रुत का मानना था कि एक कुशल और जानकार सर्जन बनने के लिए शरीर रचना विज्ञान का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि बिना शरीर रचना विज्ञान के सही ज्ञान के, कोई भी व्यक्ति शरीर के विभिन्न हिस्सों या सदस्यों की सटीक व्याख्या नहीं कर सकता। उनके अनुसार, शरीर रचना विज्ञान में गहरी समझ रखने वाला सर्जन ही सही ढंग से शल्य चिकित्सा कर सकता है।

सुश्रुत संहिता के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति शरीर रचना विज्ञान को पूरी तरह से समझना चाहता है, तो उसे एक मृत शरीर तैयार करना चाहिए। मृत शरीर के विभिन्न घटकों का सावधानीपूर्वक निरीक्षण, विच्छेदन और विश्लेषण करना चाहिए। इस प्रक्रिया

से एक सर्जन मानव शरीर के संरचनात्मक पहलुओं को समझ सकता है और इसके प्रत्येक अंग, तंतु, और प्रणाली के कार्यों को सही तरीके से जान सकता है।

इस दृष्टिकोण ने चिकित्सा के अध्ययन में प्रैक्टिकल और अनुभवजन्य दृष्टिकोण की महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर किया, जिससे सर्जन के कार्य में अधिक सटीकता और दक्षता आ सके।

1. **अवगन्तव्या ह्ययमेकदेशदृष्ट्या सर्वावयवसंस्थानव्यक्त्यर्थं।**
   शवविच्छेदनं सम्यक् कर्तव्यम्॥
2. **शवमादाय सुसम्पन्नं स्थूललक्षणलक्षणं सम्यग्विसुतशोणितं**
   नातितरुणं नातिवृद्धं तिलतण्डुलरजःस्थग्धं निस्त्वक्चर्मनखकेशं
   स्निग्धोदकान्तर्निमग्नं सप्ताहमुदृत्य सम्यग्विचिन्त्याभ्यसेत्॥

Sushruta Samhita, Sharira Sthana 5.46-47

सभी शारीरिक अंगों की संरचना को सही प्रकार से समझने के लिए, व्यक्ति को सतही ज्ञान से परे जाना चाहिए। इसके लिए मृत शरीर का विस्तृत विच्छेदन करना आवश्यक है। एक अच्छी तरह से संरक्षित शव—जो न तो बहुत युवा हो और न ही बहुत वृद्ध, जिसमें रक्त बह चुका हो और बाल, नाखून और त्वचा हटा दी गई हो—को तैलीय मिश्रित प्रवाहमान पानी में डुबोकर एक सप्ताह के लिए भूसी और अनाज से ढक देना चाहिए। इसके बाद, छात्र को शव का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना चाहिए और इसके सभी अंगों का विच्छेदन के माध्यम से अध्ययन करना चाहिए।

तस्मात् निःसंशयं ज्ञानं हार्त्त सल्यस्य वाञ्छता।
शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टव्यः अङ्गविनिश्चयः॥
प्रत्यक्षतः हि यत् दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यत् भवेत्।
समासतः तत् उभयं भूयः ज्ञानविवर्धनम्॥

Sushruta Samhita, Sharira Sthana, Chattopadhyaya, 1933

इसलिए शल्य चिकित्सा (सल्यस्य) से संबंधित संदेह (निःसंशय) को दूर करने के लिए निश्चित ज्ञान (ज्ञानं) प्राप्त करना आवश्यक है।

शरीर (मृतं) को शुद्ध करके (शोधयित्वा), अंगों की संरचना (अङ्गविनिश्चय) को सही तरीके से देखा जाना चाहिए। यह विच्छेदन के लिए एक सटीक दृष्टिकोण का संकेत करता है। जो कुछ भी प्रत्यक्ष रूप से देखा जाता है (प्रत्यक्षतः), और जो कुछ शास्त्रों में वर्णित है (शास्त्रदृष्टं), यह दोनों (उभयं) मिलकर (समासतः) ज्ञान के विकास (ज्ञानविवर्धनम्) का कारण बनते हैं। (चित्र 7)



चित्र 7: रोगी की जांच करते हुए सुश्रुत की एक छवि। रेडियल पल्स के स्पर्शन पर ध्यान दें

- **विच्छेदन की तैयारी**

हालाँकि मनुष्यों के विच्छेदन की प्रथा उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के खिलाफ थी, सुश्रुत ने इसे मानव शरीर रचना विज्ञान की गहन समझ प्राप्त करने के लिए एक आवश्यक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि एक सर्जन को शरीर के आंतरिक संरचनाओं और अंगों का सही ज्ञान होना चाहिए, ताकि वह शल्य चिकित्सा की प्रक्रिया में दक्षता और सटीकता प्राप्त कर सके। सुश्रुत ने विच्छेदन की प्रक्रिया के लिए विशेष निर्देश दिए थे, जो धार्मिक प्रतिबंधों और कानूनों के भीतर काम करने की अनुमति देते थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि विच्छेदन के लिए चुने गए शव को कुछ विशेष गुणों वाला होना चाहिए। उदाहरण के लिए, शव को ऐसे व्यक्ति का होना चाहिए जिसने किसी पुरानी बीमारी से पीड़ित न हो और जो जहर से न मरा हो। इसके अलावा, शव को 100 वर्ष की आयु तक नहीं पहुंचना चाहिए और इसे उचित रूप से तैयार किया जाना चाहिए।

विच्छेदन के लिए शव को पानी में डुबोकर धीरे-धीरे सड़ने के लिए छोड़ा जाता था, और शव को पिंजरे में बंद करके रखा जाता था, ताकि सड़ने की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखा जा सके। सात दिनों तक सड़ने के बाद, शव को बाहर निकाला जाता था, और फिर शरीर के अंगों और संरचनाओं का निरीक्षण और विच्छेदन किया जाता था। सुश्रुत ने

यह सुनिश्चित किया कि शव का विच्छेदन करते समय त्वचा, अंग, आंतरिक घटकों और उनके उपविभागों का सावधानी से निरीक्षण किया जाए, ताकि शरीर की रचना का सही ज्ञान प्राप्त हो सके।

इस प्रकार, यह प्रक्रिया सुश्रुत द्वारा निर्धारित नियमों और विधियों के अनुसार पूरी की जाती थी, जो शल्य चिकित्सा में एक गहरी समझ और विधिपूर्वक ज्ञान को बढ़ावा देती थी।

सुश्रुत संहिता में चिकित्सा शिक्षा और सर्जरी के अभ्यास पर महत्वपूर्ण ध्यान दिया गया है। सुश्रुत ने स्पष्ट रूप से यह बताया कि **किसी भी छात्र के लिए, जो अच्छी तरह से पढ़ा-लिखा है, यह केवल पुस्तक ज्ञान से अधिक होता है।** सर्जरी और चिकित्सा के अभ्यास में दक्षता प्राप्त करने के लिए छात्रों को **व्यवहारिक अनुभव और प्रशिक्षण** की आवश्यकता होती है। उनका मानना था कि अगर एक छात्र को वास्तविक शल्य चिकित्सा का अभ्यास करने से पहले **विच्छेदन की प्रक्रिया और शल्य चिकित्सा के सिद्धांतों पर गहन अध्ययन और प्रशिक्षण** प्राप्त नहीं हुआ, तो वह **बीमारी का सही उपचार और शल्य चिकित्सा प्रक्रिया** हाथ में लेने के योग्य नहीं हो सकता।

सुश्रुत संहिता में यह भी उल्लेख किया गया है कि **शरीर रचना और शल्य चिकित्सा में कौशल प्राप्त करने के लिए** छात्रों को मानव शवों के विच्छेदन से पहले **कुछ साधारण और सुरक्षित अभ्यास** करने चाहिए। इसके अंतर्गत **पुष्पफला (लौकी का एक प्रकार), अलाबु (लौकी) और इरवारुका (ककड़ी)** जैसे सॉफ्ट फल या सब्जियों के शरीर में चीरे लगाना शामिल था। ये अभ्यास छात्रों को **शरीर के विभिन्न अंगों की संरचना और उनके बीच के रिश्ते को समझने में मदद** करते थे, जिससे उन्हें सर्जरी की असली प्रक्रिया में अधिक आत्मविश्वास और कौशल मिलता था।

इस प्रकार, सुश्रुत ने चिकित्सा शिक्षा की विधि में **सिद्धांत और अभ्यास** के बीच **संतुलन बनाए रखने** पर जोर दिया, ताकि एक छात्र शल्य चिकित्सा में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर सके और इसके लिए आवश्यक मूलभूत तकनीकों को ठीक से समझ सके।

सूत्रस्थान (48–5.46), प्रशिक्षण और शवविच्छेदन

"श्रवणदर्शनपरिक्षेपप्रश्नैः परीक्षणं कृत्वा
तदुपलब्धशरीरं मृतशरीरे विचिन्त्याभ्यस्येत्"

("श्रवण, दर्शन, परिकल्पना और प्रश्नों द्वारा परीक्षण करने के बाद, उस प्रकार देखे गए शरीर का अध्ययन और अभ्यास मृत शरीर के विच्छेदन द्वारा करना चाहिए।")

सूत्रस्थान (5.46–48) का यह अंश चिकित्सा शिक्षा के लिए एक व्यवस्थित और अनुभवजन्य दृष्टिकोण को महत्व देता है। यह श्रवण (सुनने), दर्शन (देखने), परिकल्पना (तर्क/अनुमान) और प्रश्न (संदेह समाधान) के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की महत्ता को रेखांकित करता है। इसमें व्यावहारिक शरीर रचना (एनाटॉमी) की समझ के लिए मृत शरीर के विच्छेदन (डिसेक्शन) की स्पष्ट रूप से अनुशंसा की गई है।

यह पद्धति सुश्रुत की प्रगतिशील और वैज्ञानिक सोच को दर्शाती है, जो उस समय के अधिकांश समाजों द्वारा शवविच्छेदन को निषिद्ध मानने के बावजूद उन्होंने अपनाई थी। यह श्लोक इस बात की ओर भी संकेत करता है कि यह चिकित्सा उन्नति का युग संभवतः पूर्व-बौद्ध या प्रारंभिक बौद्ध काल का रहा होगा।

सुश्रुत ने निम्नलिखित तकनीक विकसित की, जिससे वे उन सामाजिक और धार्मिक नियमों की सीमाओं के भीतर रहकर शवविच्छेदन कर सके।

सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थानम्, अध्यायः ५, श्लोकाः ४६–४८

श्लोक ४६ **अविषकृम्यजारोगममृतं शतवार्षिकम्।**
सर्वाङ्गप्रत्यङ्गवन्तं शवमादाय यत्नतः॥

(एक शव को सावधानीपूर्वक प्राप्त करना चाहिए, जो विष, कीड़े, रोगों और सड़न से मुक्त हो, जिसकी आयु सौ वर्ष से अधिक न हो, और जिसके सभी अंग और भाग intact हों।)

श्लोक ४७ **तस्यान्त्रशुद्धिं कृत्वा तं कोशे निधाय चावृतम्।**
कषायकुशमुञ्जाद्यैस्तं संवेष्ट्य विनिक्षिपेत्॥

(उस शव के आंतों को शुद्ध करने के बाद, उसे एक पात्र में रखा जाना चाहिए और ढका जाना चाहिए। फिर उसे कषाय (आस्रिंजनक जड़ी-बूटियाँ), कुशा घास, मुंझा घास आदि से लपेटा जाना चाहिए और सुरक्षित स्थान पर रखा जाना चाहिए।)

श्लोक ४८ **अनूपदेशे तमसे नद्यास्तीरेऽनिलोपगे।**
सप्ताहात्सप्तरात्रेण संश्रित्यावाप्य लाघवात्।
बालवज्जतुकर्षाभ्यां तण्डुलैरथवा कुशैः॥

(ऐसी जगह जो दलदल और अंधेरे हो, नदी के किनारे जहां हवा न पहुँचती हो, सात रातों (यानी सात दिन और रात) तक शव को पानी में डुबोकर रखकर उसके सड़ने में आसानी हो, फिर उसे धीरे-धीरे ब्रश से खुरचकर निकाला जाए, जिसमें घास, चिउड़े के भूसी, या कुशा घास से बने ब्रश का उपयोग किया जाए।)

उपरोक्त श्लोकों का सारांश:

इसलिए, ऐसे शव का चयन विच्छेदन (डिसेक्शन) के लिए किया जाना चाहिए, जिसमें शरीर के सभी अंग पूर्ण रूप से विद्यमान हों, जिसकी मृत्यु विष सेवन से न हुई हो, जिसे मृत्यु से पूर्व कोई पुरानी बीमारी न रही हो, जिसकी आयु सौ वर्ष से कम हो, और जिसकी आंतों की मल सामग्री पहले से ही निकाल दी गई हो।

ऐसे शव को, जो पूरी तरह से किसी पिंजरे या ढाँचे में रखा गया हो और जिसे वृक्ष की छाल, कुशा घास, सन या मुंजा (एक प्रकार की झाड़ी या घास) से ढका गया हो, किसी धीरे बहने वाली नदी में रख देना चाहिए और किसी अंधेरी जगह पर सड़ने के लिए छोड़ देना चाहिए।

जब शव सात रातों तक पर्याप्त रूप से विघटित (डिकम्पोज़) हो जाए, तो उसे पिंजरे से निकालकर धीरे-धीरे बाल, बाँस, बालवज (खुरदरी घास) या उशीर (सुगंधित पौधों की जड़ें) से बने ब्रशों की सहायता से साफ करते हुए विच्छेदन किया जाना चाहिए।

इस प्रकार, त्वचा आदि और सभी आंतरिक व बाह्य अवयवों को, उनके उपविभाजनों सहित, दृष्टिगोचर निरीक्षण द्वारा समझा जाना चाहिए, जैसा कि पूर्व में बताया गया है।

शास्त्रवित् शल्यशास्त्रप्रत्यक्षदर्शिवद्भवति न तु कर्मसु कुशलः।
अतोऽनुपाश्रयाचारं प्रत्यक्शिक्षितकर्माणं भिषजं शल्यकर्मणि प्रवर्तयेत्॥

Sushruta Samhita, Sutrasthana, Chapter 1, Verse 10

("एक छात्र, जो अन्यथा अच्छी तरह से पढ़ा-लिखा हो, लेकिन अभ्यास में न प्रशिक्षित हो, वह रोगों का चिकित्सा और शल्य चिकित्सा करने में सक्षम नहीं है," सुश्रुत संहिता कहती है, जो शल्यकर्म में छात्र की भूमिका को उजागर करती है।)

पुष्पफलेष्व् आलवुषु एर्वारुकेषु च छेद्यभेद्यादीन् अभ्यासं कुर्यात्।

Sushruta Samhita - Instructions on Dissection Practice

सुश्रुत संहिता कहती है कि मानव शवों का विच्छेदन करने से पहले, चिकित्सा छात्रों को पुष्पफल (एक प्रकार की लौकी), आलवु (सदानीरा), या एर्वारुका (खीरा) के शरीर में चीरे करने की कला का अभ्यास करना चाहिए।

- **सिर और गर्दन सर्जरी**

सुश्रुत संहिता में **शल्य चिकित्सा के विविध पहलुओं** का विवरण किया गया है, जिसमें न केवल सामान्य सर्जरी बल्कि **पुनर्निर्माण सर्जरी** के क्षेत्रों में भी उनकी गहरी समझ का

पता चलता है। विशेष रूप से, **मानव चेहरे की संरचना** और **शरीर के विभिन्न अंगों** के पुनर्निर्माण के लिए सुश्रुत ने जो विधियां दीं, वे आज की आधुनिक सर्जिकल तकनीकों के लिए अग्रणी थीं। (चित्र 8)



चित्र 8: सुश्रुत द्वारा एक ओटोप्लास्टिक प्रक्रिया को अंजाम देते हुए देखा गया है।

(शराब के नशे में, पीड़ित को दोस्तों और परिवार का समर्थन मिलता है क्योंकि प्रसिद्ध सर्जन एक कृत्रिम कान का लोब बनाता है। वह रोगी के गाल से मांस का एक टुकड़ा काटता था, उसे कटे हुए अंग के स्टंप से जोड़ता था, उस पर होमियोस्टैटिक पाउडर लगाता था और फिर उस पर पट्टी बांध देता था।)

1. **नाक का पुनर्निर्माण:** मनु के हिंदू कानूनों के अनुसार, **व्यभिचार** के लिए अपराधी की सजा के तौर पर नाक को काट दिया जाता था। इस सजा से उत्पन्न **नाक की हानि** को ठीक करने के लिए **सुश्रुत संहिता** में एक सर्जिकल तकनीक का वर्णन किया गया है, जो **मुक्त फ्लैप** तकनीक के समान है, जिसे आजकल आधुनिक **पुनर्निर्माण सर्जरी** में प्रयोग किया जाता है। इस तकनीक में, त्वचा के फ्लैप को **नए स्थान पर** स्थानांतरित करके नाक के पुनर्निर्माण के लिए इस्तेमाल किया जाता था।

2. **कान के छेद का बढ़ाना:** प्राचीन भारत में, कान के छेद को बढ़ाने का प्रचलन था, जिसका उद्देश्य **बुराई से बचने** और सौंदर्य के रूप में था। हालांकि, यह प्रक्रिया **कान की झिल्ली** को फाड़ सकती थी, जिससे कान में गंभीर चोटें हो सकती थीं। इस प्रकार की स्थिति में, सुश्रुत ने **पेडिकल फ्लैप** नामक तकनीक का सुझाव दिया, जिसमें एक त्वचा ग्राफ्ट को **संवहनी आपूर्ति के साथ** हटा कर **फटे हुए कान की झिल्ली** की मरम्मत के लिए उपयोग किया जाता था। इस प्रक्रिया में त्वचा के **संवहनी नेटवर्क** को बनाए रखते हुए उसे उस स्थान पर घुमाया जाता था, जहां मरम्मत की आवश्यकता होती थी।

इन दोनों सर्जिकल विधियों से यह स्पष्ट होता है कि सुश्रुत के पास **मानव शरीर की संरचना** और **सर्जिकल तकनीकों** का गहरा ज्ञान था, और उन्होंने इसे शल्य चिकित्सा में उपयोग किया, जिससे कई प्रकार की **सौंदर्य और शारीरिक चोटों** का इलाज संभव हुआ। उनके कार्यों ने **पुनर्निर्माण सर्जरी** के लिए एक मजबूत आधार प्रदान किया, जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के लिए महत्वपूर्ण साबित हुआ।

सुश्रुत का योगदान **नेत्र विज्ञान (ऑप्थल्मोलॉजी)** में अत्यधिक महत्वपूर्ण था, और उन्होंने आँखों से संबंधित विभिन्न बीमारियों, जैसे कि **मोतियाबिंद** और अन्य नेत्र रोगों का इलाज करने के लिए कई तकनीकों का वर्णन किया। उनके दृष्टिकोण में **पाँच महाभूतों (पंचतत्व)** का उपयोग किया गया, जो उनके लिए न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को समझने का तरीका था, बल्कि यह उनकी चिकित्सा पद्धतियों का आधार भी था।

सुश्रुत ने **आंख की संरचना** को और उसकी कार्यप्रणाली को समझने के लिए गहरी जानकारी प्रदान की, जिसमें उन्होंने पाँच महाभूतों का उल्लेख किया:

- **शून्य (आकाश)** - यह तत्व नेत्र की **अंतरिक्ष** की भावना का प्रतिनिधित्व करता है, जो आँख के अंदर के खाली स्थान को दर्शाता है।
- **अग्नि/ताप (अग्नि)** - यह तत्व **नेत्र के रक्त प्रवाह** और गर्मी को दर्शाता है, जो नेत्रों में रक्त के माध्यम से गर्मी का संचालन करता है और आंखों की ऊर्जा को नियंत्रित करता है।
- **वायु (वायु)** - यह तत्व **पुतली** और **परितारिका (कंजंक्टिवा)** के निर्माण में योगदान करता है, जो आँख के विभिन्न हिस्सों को नियंत्रित करते हैं और उनका संतुलन बनाए रखते हैं।

- **द्रव (जला)** - यह तत्व आंख के **कांच के भाग (कॉर्निया)** के निर्माण के लिए जिम्मेदार है, जो आँख में आर्द्रता और संतुलन बनाए रखता है।
- **पृथ्वी (भू)** - यह तत्व आंख के बाह्य **मांसपेशियों (कॉन्जेक्टिव मसल्स)** द्वारा संरक्षित होता है, जो आँख की स्थिरता और सही दिशा में गतिशीलता को सुनिश्चित करता है।

सुश्रुत ने इन पांच तत्वों के माध्यम से नेत्र विज्ञान में न केवल एक **संचालित सिद्धांत** प्रस्तुत किया, बल्कि उन्होंने इन तत्वों के अनुसार **आंख की बीमारियों के इलाज के लिए उपयुक्त उपायों** और तकनीकों को भी पहचाना। इसके अलावा, उन्होंने **मोतियाबिंद** और **नेत्र सर्जरी** जैसी जटिल प्रक्रियाओं के लिए उपचार विधियाँ भी विकसित कीं।

सुश्रुत का **नेत्र विज्ञान** में योगदान, उनके चिकित्सा सिद्धांतों के साथ मिलकर, आज भी **आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों** में महत्वपूर्ण रूप से शामिल है।

- **श्रोणि और मूलाधार**

सुश्रुत संहिता का योगदान हिंदू धर्म और आयुर्वेद में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ग्रंथ न केवल शल्य चिकित्सा और शरीर विज्ञान में अद्वितीय है, बल्कि यौन ऊर्जा और प्रजनन के महत्व को भी अच्छी तरह से उजागर करता है, जो कि प्राचीन भारतीय चिकित्सा का एक अभिन्न हिस्सा था। सुश्रुत संहिता में पुरुषों की मूत्रजननांगी समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया गया है, जो उस समय की चिकित्सा पद्धतियों में एक अग्रणी पहलू था। उन्होंने मूत्रमार्ग और प्रजनन तंत्र की चिकित्सा के लिए कई उपकरणों का आविष्कार किया, जैसे सिंचाई सीरिंज, कैथेटर, और डाइलेटर, जो सर्जरी और चिकित्सा उपचार में अत्यधिक उपयोगी थे।

- **महिलाओं के स्वास्थ्य पर ध्यान**

सुश्रुत ने महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी ध्यान दिया, खासकर प्रजनन स्वास्थ्य और यौन स्वास्थ्य के संदर्भ में। उन्होंने महिलाओं की समस्याओं, जैसे कि गर्भावस्था, प्रसव, और गर्भाशय संबंधित रोगों के उपचार के लिए विशिष्ट चिकित्सा पद्धतियों और विधियों का वर्णन किया। उनका यह दृष्टिकोण आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतियों में महिला स्वास्थ्य के महत्व को दर्शाता है।

- **आयुर्वेद में यौन ऊर्जा का स्थान**

आयुर्वेद में यौन ऊर्जा और प्रजनन क्षमता को जीवन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में देखा जाता है। इसके तहत न केवल शारीरिक, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन को

भी महत्वपूर्ण माना जाता है। यह संतुलन जीवन की संतुलित प्रक्रिया का हिस्सा माना जाता है और इसके लिए समग्र स्वास्थ्य की आवश्यकता होती है।

सुश्रुत की चिकित्सा पद्धतियाँ प्राचीन भारतीय समाज में चिकित्सा ज्ञान के महत्वपूर्ण स्तंभों के रूप में स्थापित हुईं। उनके कार्य ने न केवल सर्जरी और शारीरिक उपचार को नया दिशा दी, बल्कि यौन और प्रजनन स्वास्थ्य पर एक गहरी समझ भी प्रदान की। सुश्रुत संहिता आज भी आयुर्वेद और शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक धरोहर के रूप में सम्मानित है, और इससे प्राप्त ज्ञान से समकालीन चिकित्सा पद्धतियाँ प्रभावित होती हैं।

2.1.2. आधुनिक चिकित्सा में सुश्रुत संहिता के अनुप्रयोग[7]

- **प्लास्टिक सर्जरी में प्रगति**

सुश्रुत प्लास्टिक सर्जरी के क्षेत्र में अग्रणी थे, विशेष रूप से अपने पुनर्निर्माण कौशल के लिए प्रसिद्ध थे। राइनोप्लास्टी (नाक की सर्जरी), इयरलोब, होंठ और चेहरे की विकृतियों को ठीक करने के लिए उन्होंने जटिल प्रक्रियाएँ विकसित कीं। उनके द्वारा प्रयोग की गई ग्राफ्टिंग तकनीक, जिसमें शरीर के एक हिस्से से ऊतक का प्रत्यारोपण किया जाता था, ने कार्य और रूप दोनों को बहाल किया। सुश्रुत के इन सिद्धांतों ने भविष्य में सर्जनों को मार्गदर्शन किया और आज भी उनके योगदान से आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी में प्रगति जारी है।

- **एनेस्थेटिक्स (दर्दनिवारक उपाय)**

सुश्रुत ने सर्जरी में एनेस्थीसिया के महत्व को पहचाना और दर्द निवारण के लिए अफ़ीम, भांग और शराब जैसे पदार्थों का उपयोग किया। इसके अलावा, उन्होंने इनहेलेशन एनेस्थीसिया की विधि विकसित की, जिसमें सुगंधित जड़ी-बूटियों और हर्बल धूमन का उपयोग किया गया। यह तकनीक सर्जिकल प्रक्रियाओं के दौरान मरीजों को बिना दर्द के इलाज करवाने में सहायक थी। सुश्रुत की यह क्रांतिकारी खोज आधुनिक एनेस्थीसिया के विकास का आधार बनी।

- **रोग वर्गीकरण**

सुश्रुत ने बीमारियों को समझने और उनका उपचार करने के लिए एक व्यवस्थित वर्गीकरण प्रणाली विकसित की। उन्होंने बीमारियों को उनकी उत्पत्ति, लक्षणों और संभावित परिणामों के आधार पर वर्गीकृत किया। इस प्रणाली ने चिकित्सकों को सटीक निदान

करने में मदद की, जिससे प्रभावी उपचार की प्रक्रिया को सरल और व्यवस्थित किया गया। सुश्रुत का यह व्यवस्थित दृष्टिकोण आधुनिक चिकित्सा में वैज्ञानिक पद्धतियों की नींव रखता है, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

व्यापक चिकित्साशास्त्र – सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 1.15

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसामुपहर्तारः॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों का श्रेष्ठ मूल आधार आरोग्य (स्वास्थ्य) है। रोग इस स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले होते हैं और इस प्रकार ये जीवन के श्रेष्ठ लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधक बनते हैं। यह श्लोक दर्शाता है कि आयुर्वेद केवल रोगों की चिकित्सा का विज्ञान नहीं है, बल्कि यह जीवन के चार मुख्य उद्देश्यों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—की प्राप्ति का आधारस्वरूप है। सुश्रुत के समय का आयुर्वेद वैदिक दृष्टिकोण में गहराई से रचा-बसा था, फिर भी इसकी व्यावहारिकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण इसे विशिष्ट बनाते हैं।

3. चरक: चिकित्सा के जनक

आचार्य चरक, जिनका जन्म लगभग 300 ईसा पूर्व हुआ, ने आयुर्वेद को एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति के रूप में स्थापित किया (चित्र 9)। उनका महत्वपूर्ण योगदान चरक संहिता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो आयुर्वेद का एक प्रमुख ग्रंथ है। यह ग्रंथ 150-200 ईस्वी और 100 ईसा पूर्व के बीच संपादित हुआ था और आयुर्वेद की व्यापक समझ को प्रस्तुत करता है।चरक का मानना था कि स्वास्थ्य और बीमारी पूर्वनिर्धारित नहीं होते, और जीवनशैली में सुधार के द्वारा दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने आयुर्वेद को केवल चिकित्सा नहीं बल्कि एक समग्र स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली के रूप में देखा, जो न केवल उपचार बल्कि रोग की रोकथाम पर भी जोर देती थी। उनका आदर्श था कि "रोकथाम इलाज से बेहतर है", और यह विचार उन्होंने अपने काम के दौरान प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया। चरक ने यह भी माना कि एक डॉक्टर को उपचार देने से पहले रोगी के शरीर, पर्यावरण, और अन्य कारकों का गहन विश्लेषण करना चाहिए। उन्होंने यह कहा कि एक चिकित्सक कभी भी एक रोगी का सही इलाज नहीं कर सकता यदि वह शरीर के भीतर ज्ञान और समझ का दीपक लेकर प्रवेश नहीं करता है।

चरक संहिता के अनुसार, जो एक प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथ है, मानव शरीर में 360 हड्डियाँ होती हैं, जिन्हें 30 प्रकारों में श्रेणीबद्ध किया गया है। यह संख्या आधुनिक शारीरिक रचनाविज्ञान से भिन्न है, जिसमें 206 हड्डियाँ पहचानी जाती हैं, और यह अंतर इसलिए है क्योंकि चरक ने दांतों, उपास्थि (कार्टिलेज), और शायद अन्य संरचनाओं को भी शामिल किया है जो आधुनिक कंकाल रचनाविज्ञान में नहीं हैं।



चित्र 9: आचार्य चरक

आचार्य चरक ने तीन दोषों का सिद्धांत प्रस्तुत किया: वात (गति), पित्त (परिवर्तन), और कफ (स्नेहन और स्थिरता), जो शरीर के कार्यों को नियंत्रित करते हैं। इन दोषों के असंतुलन के कारण शरीर में बीमारी उत्पन्न होती है। शरीर में इन दोषों का सही संतुलन बनाए रखना आवश्यक होता है, और जब यह संतुलन बिगड़ता है, तो रोग उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, उन्होंने परजीवी कृमियों का भी वर्णन किया और उनका उपचार बताया

चरक ने मानव शरीर की संरचना पर भी महत्वपूर्ण शोध किया। उन्होंने बताया कि मानव शरीर में कुल 360 हड्डियाँ होती हैं, जिनमें दांत भी शामिल हैं। उनके अनुसार, हृदय शरीर का "नियंत्रण केंद्र" है, और यह शरीर के अन्य हिस्सों से तेरह प्रमुख चैनलों द्वारा जुड़ा हुआ है। इन चैनलों के माध्यम से शरीर में पोषण और अपशिष्ट पदार्थों का प्रवाह होता है। चरक के विचारों ने चिकित्सा में एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की नींव रखी, जो आज भी आयुर्वेद और समग्र स्वास्थ्य देखभाल में प्रासंगिक है।

"स्रोतांसि सर्ववयस्यः शरीरस्य स्थूलसूक्ष्मविषयाणि च।
यथा च रक्तवहिन्यं हृदयं कण्ठं च, यत्र द्विरेफे निहितं च।।"

चरक संहिता, सूत्रस्थान 1.16

"शरीर में ऐसे मार्ग (स्रोत) होते हैं जो हर अंग को जोड़ते हैं, चाहे वे स्थूल हों या सूक्ष्म, और ये मार्ग पोषक तत्वों और मल का संचलन नियंत्रित करते हैं। हृदय, रक्त वाहिनियों सहित, इन मार्गों को नियंत्रित करने और मार्गदर्शन करने का केंद्रीय केंद्र होता है। जब ये मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, तो रोग और शारीरिक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। "

चरक, अपनी महत्वपूर्ण कृति चरक *संहिता* में, मानव शरीर की संरचना का विस्तृत और गहन वर्णन प्रस्तुत करते हैं। वह मानव शरीर में 360 हड्डियों का उल्लेख करते हैं, जिनमें दांत भी शामिल हैं, जो उनके हड्डी तंत्र के प्रति गहरी समझ को दर्शाता है। चरक

शरीर के प्रमुख अंगों जैसे हाथ, पैर, सिर और धड़ की पहचान करते हैं और शारीरिक क्रियाओं में उनके आपसी संबंध को महत्वपूर्ण मानते हैं। वह 13 प्रमुख नलिकाओं (स्रोत) का भी वर्णन करते हैं, जो हृदय को विभिन्न अंगों से जोड़ती हैं और आवश्यक पदार्थों जैसे पोषक तत्वों और अपशिष्टों के प्रवाह को नियंत्रित करती हैं। चरक का दृष्टिकोण मानव शरीर के गहन अध्ययन का प्रतीक है, जिसमें शरीर के अंगों, नलिकाओं और उनके कार्यों के बीच संतुलन स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। उनका यह विश्वास कि इन नलिकाओं में अवरोध होने से रोग उत्पन्न होते हैं, चिकित्सा के समग्र और निवारक दृष्टिकोण की नींव रखता है।

"सर्वे ह्येते शरीरस्य अंगानि, त्र्यदशं हड्डयः, सर्वशरीरविन्यासाः।
तीन दश गात्राणि, स्रवति नालं सन्तोषः।"

(चरक संहिता, सूत्रस्थान 16.4)

"मानव शरीर में ये सभी अंग होते हैं, जिनमें 36 हड्डियाँ शामिल हैं, और शरीर की पूरी संरचना का निर्धारण करती हैं। कुल 30 अंग मिलकर शरीर की सही कार्यप्रणाली सुनिश्चित करते हैं।"

हड्डियों, अंगों और नलिकाओं के विवरण के अतिरिक्त, चरक शरीर के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं का भी विस्तृत अध्ययन करते हैं, जिससे उसकी संरचना और कार्यों की समग्र समझ प्राप्त होती है। उनके समग्र दृष्टिकोण को उनके अन्य शरीर भागों, उनके कार्यों और शरीर प्रणालियों के आपसी जुड़ाव पर विस्तृत चर्चा में देखा जा सकता है। चरक *संहिता* में वर्णित शरीर के कुछ प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं:

- **अंग और उनके कार्य**

चरक महत्वपूर्ण अंगों जैसे हृदय, यकृत, फेफड़े, गुर्दे, प्लीहा और पेट की भूमिका को रेखांकित करते हैं और इनके समग्र स्वास्थ्य को बनाए रखने में उनके कार्यों का विवरण देते हैं।

» **हृदय (हृदय):** हृदय को शरीर का केंद्रीय अंग माना गया है, जो परिसंचरण को नियंत्रित करता है और यह जीवन और ऊर्जा का केंद्र है। चरक इसे शरीर के "नियंत्रण केंद्र" के रूप में मानते हैं।

» **यकृत और प्लीहा:** यह अंग शरीर के द्रवों का निर्माण और पाचन के लिए जिम्मेदार होते हैं, जो जैविक प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

» **पेट:** पेट को पाचन का स्थल माना गया है और यह पोषण और आहार प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो भोजन को जीवनदायिनी ऊर्जा में बदलता है।

» **नलिकाएँ (स्रोत):** चरक 13 प्रमुख स्रोतों का उल्लेख करते हैं, जो हृदय को अन्य अंगों से जोड़ते हैं। ये नलिकाएँ रक्त, पोषक तत्व और अपशिष्ट उत्पादों के संचलन को नियंत्रित करती हैं। वे उन अनेकों छोटे स्रोतों की भूमिका पर भी जोर देते हैं, जो पोषण आपूर्ति करने और अपशिष्ट को निकालने में सहायता करती हैं।

चरक के अनुसार, इन प्रमुख नलिकाओं में कोई भी अवरोध रोग या शारीरिक असामान्यताओं का कारण बन सकता है।

- **ऊतक (धातु)**

चरक शरीर की शारीरिक संरचना बनाने वाले सात प्रमुख ऊतकों (धातुओं) की पहचान करते हैं:

- **रसा (प्लाज्मा)**
- **रक्त (रक्त)**
- **मांस (मांसपेशियाँ)**
- **मेद (वसा)**
- **अस्थि (हड्डी)**
- **मज्जा (हड्डी का गूदा)**
- **शुक्र (प्रजनन द्रव)**

ये ऊतक मिलकर शरीर की कार्यप्रणाली का समर्थन करते हैं और शरीर के अंदर संतुलन बनाए रखते हैं। चरक की ऊतक परिवर्तन (एक धातु से दूसरी धातु में) की समझ आयुर्वेदिक उपचार रणनीतियों का आधार बनाती है।

- **जोड़ और अंग (संधि और अंग)**

चरक शरीर के जोड़ (संधि) और अंग (अंग) का वर्णन करते हैं, और उनके आंदोलन और कार्य में उनकी भूमिका को रेखांकित करते हैं। वह शरीर में हड्डियों और अंगों की संख्या का उल्लेख करते हैं, जो मिलकर स्थिरता, ताकत और गतिशीलता प्रदान करते हैं।

- **तंत्रिका प्रणाली (इन्द्रियाँ)**

चरक इन्द्रियों (सेंस) की भूमिका को भी स्वीकारते हैं, जो शरीर के बाहरी वातावरण की जागरूकता और अनुभूति बनाए रखने में मदद करती हैं। इनमें दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, स्वाद और गंध की इन्द्रियाँ शामिल हैं, जो मस्तिष्क से जुड़ी होती हैं और समग्र कल्याण में योगदान करती हैं।

- **मस्तिष्क (मन)**

मन, या मानसिक स्थिति, शरीर की कार्यप्रणाली का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। चरक का कहना है कि मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य के साथ गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन समग्र स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। चरक का मानव शरीर के प्रति ज्ञान विस्तृत और समग्र है। उन्होंने न केवल शरीर के प्रत्येक अंग की संरचना और कार्यों का वर्णन किया, बल्कि अंगों, ऊतकों और नलिकाओं के आपसी जुड़ाव को भी रेखांकित किया। चरक के लिए, इन अंगों और उनके कार्यों का संतुलन बनाए रखना स्वास्थ्य सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है, जबकि कोई भी विकार या असंतुलन रोग उत्पन्न कर सकता है। उनका कार्य शरीर रचना और कार्यविज्ञान को समझने की नींव रखता है, जो केवल संरचना से परे, कार्य और आपसी संबंध पर केंद्रित है।

3.1. चिकित्सा में चरक की नीति

3.1.1. चिकित्सक के गुण

"वैद्यः सदा समाहितः शान्तो दीनो दृढव्रतः।
ज्ञानी कृत्वा परोक्षं शीलसम्पन्नो निराकुलः॥"

(चरक संहिता, सूत्रस्थान 1.24)

एक चिकित्सक को करुणामय, अहंकार से मुक्त, अत्यधिक ज्ञानी और हमेशा विनम्रता से कार्य करने वाला होना चाहिए। उसे रोगियों का इलाज लालच से नहीं, बल्कि उनके दुखों को दूर करने की सच्ची भावना से करना चाहिए।

यह श्लोक उस गुण को संदर्भित करता है, जिसे चिकित्सक को हमेशा शांत, विनम्र, करुणामय और दृढ़ निश्चयी होना चाहिए। उसे ज्ञान और सूझबूझ रखनी चाहिए और नैतिक चरित्र के साथ कार्य करना चाहिए। उसे अहंकार या लालच से प्रेरित नहीं होना चाहिए, बल्कि रोगियों का उपचार सच्चे मन से दुख दूर करने के उद्देश्य से करना चाहिए।

3.1.2. रोगियों का उपचार करते समय नैतिकता

"दुःखार्तस्य सुखदः कृच्छ्रं सर्वं हान्यवस्थितिः।
मानसं शारीरिकं च व्याधिमद्वारि रोगेण कर्मैः॥"

(चरक संहिता, सूत्रस्थान 1.25)

"एक चिकित्सक को न केवल रोग का इलाज करना चाहिए, बल्कि रोगी के मानसिक कल्याण की भी चिंता करनी चाहिए। उसे रोगी की मानसिक स्थिति को समझते हुए, उसकी शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील और सचेत रहना चाहिए, क्योंकि मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य से अविभाज्य है।"

एक चिकित्सक को दुखी रोगियों को शांति और सांत्वना प्रदान करनी चाहिए, रोग के शारीरिक और मानसिक पहलुओं दोनों को पहचानते हुए। उसे रोगी की मानसिक स्थिति के प्रति जागरूक रहकर व्यक्ति का उपचार समग्र रूप से करना चाहिए, न कि केवल शारीरिक बीमारी का।

3.1.3. चिकित्सक का कर्तव्य और ईमानदारी

"सत्यं हि दायित्वे वृत्त्यां न कदाचिद्विनाशयेत्।
अर्थोपार्जनं हर्षं तं न मर्त्यं तु मन्येत्॥"

(चरक संहिता, सूत्रस्थान 1.27)

"चिकित्सक को सत्यवादी, परिश्रमी और अपने अभ्यास में ईमानदारी बनाए रखनी चाहिए। उसे कभी भी व्यक्तिगत लाभ के लिए रोगी को धोखा नहीं देना चाहिए। उसका मुख्य कर्तव्य रोगी के दुख को सच्चे मन से दूर करना है, बिना किसी धोखाधड़ी या दुर्भावना के।"

चिकित्सक को हमेशा अपने अभ्यास में सत्य बोलना चाहिए और कभी भी व्यक्तिगत लाभ के लिए धोखा नहीं देना चाहिए। उसका मुख्य ध्यान रोगी के दुख को दूर करना होना चाहिए, पूरी ईमानदारी और नैतिक आचरण के साथ।

3.1.4. जीवन के प्रति सम्मान और करुणा

"जीवितं परमं सम्मान्यं तदा हि कायवर्जिते।
तत्क्षेत्रे विचरतां यश्चापि हृदयमपुष्कलम्।"

(चरक संहिता, सूत्रस्थान 1.18)

"चिकित्सक को मानव जीवन का गहरा सम्मान करना चाहिए। उसे सभी रोगियों के साथ दयालुता, समझदारी और गहरी जिम्मेदारी का भाव रखते हुए इलाज करना चाहिए, यह समझते हुए कि जीवन सभी प्राणियों के लिए मूल्यवान है।"

चिकित्सक को जीवन का सर्वोत्तम सम्मान करना चाहिए और सभी जीवों के प्रति करुणा दिखानी चाहिए। उसे प्रत्येक मामले को अत्यधिक देखभाल और जिम्मेदारी के

साथ देखना चाहिए, यह जानते हुए कि जीवन एक उपहार है जिसे सम्मानित और पोषित किया जाना चाहिए।

प्राचीन भारतीय चिकित्सा और समाज में, आचार्य चरक एक अत्यधिक सम्मानित और आदर्श चिकित्सक के रूप में प्रतिष्ठित थे। उन्होंने नैतिक सिद्धांतों और पेशेवर व्यवहार को बनाए रखा, जिनका पालन आज भी महत्वपूर्ण है। कुछ प्रमुख नैतिक उपदेश निम्नलिखित हैं:

- नशे में धुत्त होने, बुरे कार्य करने और गलत संगत में समय बिताने से बचें।
- रोगी की भलाई सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास करें।
- मैत्रीपूर्ण और सौम्य तरीके से बोलें, और ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में लगे रहें।
- भले ही इसके लिए अपनी जान जोखिम में डालनी पड़े, कभी भी अपने मरीज़ों के साथ विश्वासघात न करें।
- रोगी की बीमारी को व्यक्तिगत रूप से रखें और इसे किसी अन्य व्यक्ति से साझा न करें, जिससे उनके या दूसरों को नुकसान हो सकता हो।
- जब आप रोगी के घर जाएं, तो उनकी देखभाल और उनके स्वास्थ्य पर पूरी तरह ध्यान केंद्रित करें।

इन नैतिक उपदेशों ने चिकित्सा पद्धतियों को न केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बल्कि मानवीय दृष्टिकोण से भी प्रभावित किया। ये सिद्धांत आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने प्राचीन काल में थे, और चिकित्सा क्षेत्र में उच्चतम मानकों को बनाए रखने की प्रेरणा देते हैं।

नैतिक सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से लागू होते हैं और जैसे प्राचीन काल में प्रासंगिक थे, वैसे ही आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं।

सर्वात्मना चातुराणामारोग्याय प्रयतितव्यं,
जीवितहेतोरपि चातुरेभ्यो नाभिद्रोग्धव्यं,
मनसाऽपि च परस्त्रियो नाभिगमनीयास्तथा सर्वमेव परस्वं,
निभृतवेशपरिच्छदेन भवितव्यम्, अशौण्डेनापापेनापापसहायेन च,
श्लक्ष्णशुक्लधर्म्यशर्म्यधन्यसत्यहितमितवचसा देशकालविचारिणा
स्मृतिमता ज्ञानोत्थानोपकरणसम्पत्सु नित्यं यत्नवता च;

चरक संहिता, सूत्रस्थान 1.24

अनुवाद: अपने समस्त मन, वचन और शरीर से रोगियों के स्वास्थ्य की ओर समर्पित रहो। यदि आवश्यक हो, तो अपने प्राणों की आहुति देकर भी रोगियों की सेवा करो। कभी भी परस्त्री के प्रति आकर्षण या दूसरों की संपत्ति की लालसा न करो। अपने आचार-विचार और पहनावे में संयमित रहो, मद्यपान, पाप और पापियों के साथ मेलजोल से दूर रहो। सदैव कोमल, शुद्ध, धर्मयुक्त, सुखदायक, सत्यवादी, हितकारी और संतुलित वचन बोलो। समय और स्थान का विचार करते हुए, स्मृति और अनुभव से परिपूर्ण होकर, ज्ञानार्जन और आवश्यक उपकरणों के संग्रह में निरंतर प्रयासरत रहो।

यह श्लोक चरक संहिता के सूत्रस्थान 1.24 से लिया गया है, जो चिकित्सा के नैतिक और व्यावसायिक दायित्वों का वर्णन करता है। यह शपथ चिकित्सा छात्रों को उनके अध्ययन की शुरुआत में दी जाती है, जिसमें उनके आचार-व्यवहार, रोगियों के प्रति दायित्व और नैतिकता की दिशा-निर्देशित की जाती है।

नैतिक दिशानिर्देश

उपरोक्त श्लोक में वर्णित नैतिक सिद्धांतों में शामिल हैं:

- रोगियों के स्वास्थ्य के लिए समर्पण।
- स्वार्थ और लालसा से मुक्त रहना।
- संयमित आचार और पहनावा।
- पाप और पापियों से दूर रहना।
- सत्यवादी और हितकारी वचन बोलना।
- समय और स्थान का विचार करते हुए कार्य करना।
- निरंतर ज्ञानार्जन और आवश्यक उपकरणों के संग्रह में प्रयासरत रहना।

चरक संहिता का यह श्लोक चिकित्सा के नैतिक और व्यावसायिक दायित्वों का स्पष्ट निर्देश देता है। यह न केवल प्राचीन काल में, बल्कि आज के समय में भी चिकित्सा पेशेवरों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। इसमें वर्णित सिद्धांतों का पालन करके, चिकित्सक अपने पेशेवर जीवन में उच्च नैतिक मानकों को स्थापित कर सकते हैं।

भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा आयोग (NMC) ने नए चिकित्सा छात्रों के **श्वेत कोट समारोह** के दौरान हिप्पोक्रेटिक शपथ के स्थान पर **संशोधित चरक शपथ** अपनाने की सिफारिश की है। इसे भारत के पारंपरिक ज्ञान तंत्र में चिकित्सकीय नैतिकता की जड़ों को स्थापित करने का एक प्रयास माना गया है।

संशोधित चरक शपथ

- "मैं अपने लिए नहीं, न ही किसी सांसारिक इच्छा या लाभ की पूर्ति के लिए, बल्कि केवल पीड़ित मानवता के कल्याण के लिए अपने चिकित्सकीय पेशे का अभ्यास करूँगा।
- मैं गर्भधारण के क्षण से ही मानव जीवन के प्रति अत्यंत सम्मान बनाए रखूँगा।
- मैं धर्म, राष्ट्रीयता, जाति, राजनैतिक विचारधारा या सामाजिक स्थिति जैसे किसी भी कारण को अपने रोगी के प्रति कर्तव्य में बाधा नहीं बनने दूँगा।
- मैं ऐसा कोई उपचार या शल्यक्रिया न सुझाऊँगा और न ही करूँगा, जिसके लिए मैं सक्षम नहीं हूँ; ऐसे मामलों को मैं किसी उपयुक्त सहकर्मी को सौंप दूँगा।
- मैं अपने रोगियों की गोपनीयता बनाए रखूँगा और उनकी कोई भी जानकारी या रहस्य किसी को नहीं बताऊँगा, जब तक कि कानून की आवश्यकता न हो या रोगी अथवा किसी अन्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक न हो।
- मैं अपने जीवन की शुद्धता बनाए रखूँगा, और सदैव विनम्र, संयमी व धैर्यशील रहूँगा।
- मैं नम्रता और ईमानदारी के साथ मानवता की सेवा में स्वयं को समर्पित करूँगा।
- गुरुजनों का सम्मान मैं माता-पिता के समान करूँगा। मैं उन्हें श्रद्धा से मान दूँगा और उनकी शिक्षाओं का पालन करूँगा।
- जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं यह प्रयास करता रहूँगा कि अपने ज्ञान का लाभ संपूर्ण मानव जाति को दूँ और सच्ची निष्ठा व समर्पण के साथ मानवता की सेवा करता रहूँ।"

3.2. चरक संहिता

चरक संहिता एक प्रमुख आयुर्वेदिक ग्रंथ है, जो संस्कृत में लिखा गया और आयुर्वेद की नींव रखने वाले दो प्रमुख ग्रंथों में से एक है। यह दो हजार वर्षों से प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों का प्रमुख संदर्भ है और अरबी व लैटिन सहित कई भाषाओं में अनुवादित किया गया। विद्वानों के अनुसार, इसका वर्तमान रूप पहली शताब्दी ईस्वी में विकसित हुआ था। यह न केवल चिकित्सा ज्ञान, बल्कि प्राचीन भारत के समाज, पर्यावरण और जीवनशैली की भी गहरी समझ प्रदान करता है।

यह विभिन्न चिकित्सीय स्थितियों, उपचार तकनीकों और स्वास्थ्य बनाए रखने के सिद्धांतों को संबोधित करता है (चित्र 11)। इसकी शिक्षाएं आधुनिक आयुर्वेद और समग्र स्वास्थ्य प्रथाओं को प्रभावित करती रहती हैं, जो इसके ज्ञान की कालातीत प्रकृति को प्रदर्शित करती हैं। संक्षेप में, चरक संहिता सिर्फ एक चिकित्सा मैनुअल से कहीं अधिक है। यह एक व्यापक संसाधन है जो आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिए आधारशिला के रूप में कार्य करते हुए प्राचीन भारत की संस्कृति और जीवनशैली को दर्शाता है। इसकी स्थायी विरासत आज इसकी शिक्षाओं की गहराई और प्रासंगिकता को बयां करती है।

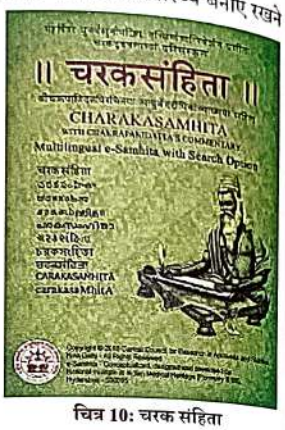

चित्र 10: चरक संहिता

चरक संहिता में आठ स्थान (विभाग) हैं। आयुर्वेद के क्षेत्र में, इन आठ स्थानों में से प्रत्येक का एक अलग महत्व है। इंद्रियस्थान चरक संहिता का एक महत्वपूर्ण प्रभाग है जो रोगियों और बीमारियों के इलाज के दौरान "अरिष्ट लक्षण (महत्वपूर्ण लक्षण)" से संबंधित है।

यह निर्धारित करने के लिए कि क्या स्थिति इलाज योग्य है या लाइलाज है, इंद्रियस्थान का महत्व है। इंद्रियस्थान में कुल बारह अध्याय हैं। इनमें से प्रत्येक अध्याय में अरिष्ट लक्षणा पर अनूठी जानकारी है, जो यह समझने में मदद करती है कि हमें कितने समय तक रोगियों का इलाज करना है और जब किसी रोगी में अचानक यह स्थिति उत्पन्न हो जाए तो क्या करना चाहिए। चरक संहिता इंद्रियस्थान में वर्णित अरिष्ट लक्षण को समझकर कोई भी रोग का निदान विकसित कर सकता है और रोगी के उपचार में सहायता कर सकता है। इंद्रस्थान में सभी अरिष्ट लक्षण को कई शीर्षकों के तहत समझाया गया है, जैसे स्वर (आवाज), वर्ण (रंग), गंध, गंध, दृष्टि, पूर्वरूप लक्षण, शारीरिक स्थिति, पुतली की स्थिति, आंखों का



चित्र 11

रंग, चमक, छाया, तेजी के संकेत मृत्यु, शरीर की गर्मी कम होना, सिर में गोबर के पाउडर जैसे पदार्थ का दिखना आदि।

चरक संहिता के मूल संस्कृत संस्करण में केवल एक खंड है। हालाँकि, वर्तमान में जो चरक संहिता (विभिन्न लेखकों की टीका) उपलब्ध है, वह पूर्वार्ध और उत्तरार्ध जैसे दो खंडों में विभाजित है। पूर्वार्ध में पांच खंड (स्थान) हैं, जिनमें 1) सूत्रस्थान 3) विमानस्थान 4) शरीरस्थान 2) निदानस्थान 5) इंद्रियस्थान और उत्तरार्द्ध के भाग इस प्रकार हैं: 1) चिकित्सास्थान 2) कल्पस्थान 3) सिद्धिस्थान। ये दोनों खण्ड वस्तुतः चरक संहिता की हिन्दी टीका हैं; हालाँकि, विभिन्न भाषाओं, जैसे अंग्रेजी, गुजराती, अरबी, फ़ारसी और अन्य में अन्य टिप्पणियाँ हैं, जो विभिन्न आचार्यों और विद्वान वैद्यों द्वारा लिखी गई थीं।

सूत्रस्थान के रूप में जाना जाने वाला भाग वह है जहां विभिन्न संदर्भों से संबंधित कई महत्वपूर्ण सूत्र (आयुर्वेदिक सूत्र) या श्लोक समझाए जाते हैं; इसी कारण इसे श्लोकस्थान भी कहा जाता है। इस श्लोक में बावन सूत्रों सहित तीस अध्याय, सात चतुस्क और एक संग्रहाध्याय शामिल हैं। चतुस्का एक ऐसे प्रभाग को संदर्भित करता है जिसमें चार अध्याय होते हैं जो सभी एक ही विषय से संबंधित होते हैं। पहला चतुस्का औषध चतुस्का है, जिसमें अध्याय 1 से 4 शामिल हैं और कई दवाओं के साथ-साथ मौलिक आयुर्वेदिक अवधारणाओं का विवरण प्रदान करता है। इसी प्रकार, दूसरा चतुस्का स्वस्थवृत्त चतुस्का है, जिसमें अध्याय 5 से 8 शामिल हैं और इसमें स्वास्थ्य संबंधी कई सिफारिशें शामिल हैं जो स्वस्थ लोगों को अच्छी तरह से रखने के लिए आवश्यक हैं। इसके समान, निर्देश चतुस्का का तीसरा चतुस्का, जिसमें अध्याय 9 से 12 शामिल हैं, एक है आयुर्वेद से संबंधित महत्वपूर्ण ज्ञान और निर्देशों का खजाना। चौथा चतुस्का कल्पना चतुस्का है, जिसमें अध्याय 13 से 16 शामिल हैं और आयुर्वेदिक दवाओं या अन्य उपचारों के लिए कई तैयारी निर्देश प्रदान करता है। पांचवां चतुस्का रोग चतुस्का है, जिसमें अध्याय 17 से 20 शामिल हैं जो विभिन्न प्रकार और बीमारियों की संख्या पर चर्चा करते हैं।

निदानस्थान वह खंड है जिसमें 247 सूत्र और 8 अध्याय शामिल हैं जो 8 महाव्याधियों (बीमारियों) के विभिन्न निदान (इटियोलॉजी), संप्राप्ति (रोगजनन), पूर्वरूप (प्रोड्रोमल संकेत और लक्षण), और रूपा (नैदानिक विशेषताएं और लक्षण) का विस्तृत विवरण प्रदान करते हैं।), जैसे ज्वरा (बुखार), रक्तपित्त (हेमोप्टाइसिस या), गुल्म

(असामान्य वृद्धि), प्रमेहा (मधुमेह), कुष्ठ (कुष्ठ), शोसा (तपेदिक), उन्माद (पागलपन), और अपस्मार (मिर्गी)।

विमानस्थान के नाम से जाने जाने वाले अनुभाग में 354 सूत्र और 8 अध्याय शामिल हैं जो दोष (रोग), रोग, भेषज (ड्रग्स), देश, कला, बाला, शरीरा, आहार, सत्व के संबंध में विशिष्ट ज्ञान (मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों) का विस्तृत विवरण प्रदान करते हैं। , सत्यम्या, और अन्य विषय। इस खंड में स्रोत, अमाशय, कृमि रोग, विभिन्न प्रमाण, दसविधा रोगी परीक्षा (दस रोगी जांच), 44 प्रकार के वाद (वाद-विवाद), अध्ययन और शिक्षण विधियों, अनुसंधान विधियों, सेमिनार और संगोष्ठी विवरण, और जनपदध्वंसा (महामारी विज्ञान) के बारे में विस्तृत जानकारी शामिल है।).

शरीरस्थान खंड में 382 सूत्र और 8 अध्याय हैं जो शरीरा (शरीर), गर्भा (गर्भावस्था (महीनों के अनुसार संकेत और लक्षण), भ्रूण के मासिक विकास और पोषण, की शारीरिक रचना और शरीर विज्ञान का विस्तृत विवरण प्रदान करते हैं। भ्रूण की मृत्यु के कारण और उपचार), प्रसाद (प्रसव, प्रसव पूर्व, प्रसव और प्रसवोत्तर देखभाल, सुतिका रोग और इसके उपचार की लाइन), आदि।

इंद्रियस्थान वह खंड है जिसमें 12 अध्याय और 378 सूत्र हैं। यह स्वर (आवाज), गंध (गंध), रस (स्वाद), स्पर्श (स्पर्श), स्वप्न (सपने), छाया (छाया), प्रतिछाया (प्रतिबिंबित छाया), प्रभा (चमक) और सद्योमरन के 26 अलग-अलग विवरणों पर आधारित है। (शीघ्र मृत्यु), और अष्टमहागदा (8 भयानक रोग)।

चिकित्सास्थान वह खंड है जिसमें 30 अध्याय और 4904 सूत्र शामिल हैं जिनमें कई बीमारियों और उनके उपचार दर्शन के विस्तृत विवरण, साथ ही रसायन और वाजीकरण की व्याख्याएं शामिल हैं। इस मामले में, पहला अध्याय रसायन के बारे में है, और दूसरा वाजीकरण के बारे में है। चार पाद, जो एक अध्याय के एक-चौथाई भाग को इंगित करते हैं, दोनों अध्यायों को चित्रित करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। अत: चार पाद मिलकर एक अध्याय बनाते हैं।

कल्पस्थान वह खंड है जिसमें 12 अध्याय और 378 सूत्र शामिल हैं। इन अध्यायों में वामन औषधियों (वमन औषधियों) जैसे मदनफला, जिमुतक, इक्ष्वाकु, धमर्गव, वत्सक (कुटज), कृतवेधन, और विरेचन औषधियों (विरेचक) की विभिन्न कल्पना (चूर्ण, कालका, क्वाथ, स्वरस आदि) का वर्णन किया गया है। श्यामा त्रिवृत, चतुरंगुल (अरगवध), तिलवक (लोधरा), सुधा (स्नुही), दोष/रोग और रोगी के चरण

के अनुसार सप्तला-शंखिनी, और दंती-द्रवंती का वर्णन किया गया है, साथ ही उनकी औषधीय कार्रवाई, खुराक, संकेत और मतभेद भी बताए गए हैं।

> "त्रिदोषविशेषज्ञो षड्विधविकारदर्शी।
> सर्वकारणविज्ञानेन व्याधिं न प्रणश्यति ॥"
>
> जो वैद्य त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) के विशेष ज्ञान से युक्त है, जो रोगों के षड्विध (छह प्रकार के) स्वरूप को समझता है, और जो सभी कारणों का भलीभांति ज्ञान रखता है — वह रोग को नष्ट करने में असफल नहीं होता।
>
> यह श्लोक एक कुशल चिकित्सक की विशेषताओं को दर्शाता है। ऐसा चिकित्सक जो त्रिदोषों का ज्ञान रखता है, रोग के छह भेदों (उद्भव, स्थान, वृत्ति, लक्षण, उपशय, संप्राप्ति) को जानता है, और रोग के सभी कारणों को समझता है, वह रोग का निवारण करने में सक्षम होता है।

सिद्धिस्थान में बारह अध्याय और सात सौ सूत्र हैं, जहां पंचकर्म चिकित्सा की विस्तृत व्याख्या पाई जा सकती है। यह खंड विभिन्न कर्मों, जैसे स्नेहन, स्वेदन, वामन, विरेचन, अस्थापन बस्ती, अनुवासन बस्ती, उत्तरबस्ती, शिरोविरेचन, आदि की एक अच्छी और विस्तृत व्याख्या प्रदान करता है, साथ ही उनकी विस्तृत प्रक्रियाओं, संकेतों और मतभेदों, लाभ और कमियों के बारे में भी बताता है। विभिन्न उपचारों का महत्व, 36 प्रकार की तंत्रयुक्ति, रोग मुत्रघात और शिरोरोग, और चरक संहिता का महत्व।

3.3. चरक का भारतीय चिकित्सा में योगदान

- **नाड़ी निदान:** चरक ने नाड़ी निदान की "नाड़ी परीक्षा" पद्धति को लोकप्रिय बनाया। वह नाड़ी का बारीकी से अध्ययन करके सटीक निदान करने और शरीर में किसी भी असामान्यता की पहचान करने में सक्षम था। अब भी, नाड़ी निदान आयुर्वेदिक उपचार का एक महत्वपूर्ण घटक है।
- **औषधीय पौधों का वर्गीकरण:** चरक ने औषधीय पौधों को उनकी विशेषताओं, क्रिया के तरीकों और चिकित्सीय अनुप्रयोगों के अनुसार सावधानीपूर्वक वर्गीकृत किया है। इस संपूर्ण वर्गीकरण प्रणाली द्वारा हर्बल उपचारों का सावधानीपूर्वक चयन और निर्माण संभव हुआ।

- **फार्माकोलॉजी में योगदान:** चरक ने क्षेत्र की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सुरक्षित और कुशल उपचार की गारंटी के लिए, उन्होंने स्वाद, शक्ति और अनुकूलता जैसी चिकित्सा दवाओं की विशेषताओं को पहचानने और समझने के महत्व को रेखांकित किया।
- **बीमारी के मनोवैज्ञानिक पहलू:** चरक ने स्वास्थ्य और बीमारी दोनों पर मनोवैज्ञानिक पहलुओं के प्रभाव को स्वीकार किया। उन्होंने भावनात्मक स्थिति और शारीरिक बीमारियों के बीच संबंध और सामान्य स्वास्थ्य को बनाए रखने में मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को रेखांकित किया।

4. आयुर्वेद की समग्र चिकित्सा प्रणाली

आयुर्वेद के नाम से जाना जाने वाला व्यापक दृष्टिकोण, जिसका उपयोग आज भी किया जाता है, प्राचीन भारतीय चिकित्सा में शामिल है। आयुर्वेद के अनुसार, सर्वोत्तम स्वास्थ्य के लिए शरीर, मन और आत्मा के बीच सामंजस्य महत्वपूर्ण है। भलाई को बढ़ाने के लिए, यह सर्वव्यापी विधि विभिन्न उपचारों का उपयोग करती है, जैसे हर्बल दवा, आहार परिवर्तन, योग और ध्यान। पारंपरिक और समकालीन दोनों चिकित्सा तकनीकों को आयुर्वेद के समग्र दृष्टिकोण से बहुत फायदा हुआ है, जिसे विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं के इलाज में प्रभावी दिखाया गया है।

- **दोष संतुलन:** आयुर्वेद के अनुसार, शरीर तीन दोषों द्वारा शासित होता है: वात, पित्त और कफ। स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए इन दोषों को संतुलित करना आवश्यक है। अधिकांश लोगों के लिए अज्ञात, आयुर्वेद इष्टतम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए विभिन्न अंगों और ऊतकों में पाए जाने वाले उप-दोषों और यहां तक कि सूक्ष्म दोषों को संतुलित करने के महत्व पर भी जोर देता है।

"वातपित्तकफानां सम्यक् स्थितिः स्वास्थ्यं।"

- **अनुकूलित पद्धति:** आयुर्वेद चिकित्सा उपचार को बहुत ही अनुकूलित तरीके से करता है। यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक व्यक्ति के प्रमुख दोष उनके व्यक्तिगत संविधान, या प्रकृति का निर्धारण करते हैं। किसी की प्रकृति को जानने से प्रत्येक व्यक्ति की जरूरतों को पूरा करने के लिए पोषण, जीवनशैली और उपचार सलाह को अनुकूलित करना आसान हो जाता है। आयुर्वेदिक अभ्यास की नींव यह व्यक्तिगत दृष्टिकोण है। **चरक संहिता, विमानस्थान ८/९५ के अनुसार–**

त्रिविधं पुनः प्रकृतिभेदं प्रवक्ष्यामि—
शारीरं मानसिकं दैविकं चेति॥

(अब मैं प्रकृति के तीन भेदों का वर्णन करूँगा—शारीरिक, मानसिक और दैविक।)

यह श्लोक प्रकृति की समग्रता को दर्शाता है, जिसमें शारीरिक संरचना (Sharirika), मानसिक प्रवृत्ति (Manasika), और आध्यात्मिक या दैविक प्रवृत्तियाँ (Daivika) सम्मिलित हैं।

आयुर्वेद में इन तीनों पहलुओं को ध्यान में रखकर प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत उपचार योजना बनाई जाती है। यह दृष्टिकोण आयुर्वेद को एक समग्र और वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति के रूप में प्रस्तुत करता है।

- **पंचकर्म:** यह पुनर्जनन और शुद्धिकरण के लिए एक विशिष्ट आयुर्वेदिक उपचार है। यद्यपि यह अपने शुद्धिकरण गुणों के लिए प्रसिद्ध है, लेकिन इसमें शरीर में गहरे बैठे जहर (अमा) को साफ करने, संतुलन स्थापित करने और सामान्य स्वास्थ्य में सुधार करने जैसे निवारक लाभ भी हैं। हर्बल मालिश, चिकित्सीय उल्टी (वामन), और नाक की सफाई (नस्य) पंचकर्म चिकित्सा में उपयोग की जाने वाली कुछ विधियाँ हैं।

वमनं विरेचनं चैव नस्यं निःस्रवणं तथा।
बस्तिर्नित्यं प्रशस्तं च पञ्चकर्माणि तानि च॥

- **मौसमी विचार:** आयुर्वेद प्रकृति के साथ समन्वय और मौसम के बदलाव के अनुसार रहने की आदतों को संशोधित करने के महत्व पर जोर देता है। इसमें दैनिक अभ्यास (दिनचर्या), आहार परिवर्तन और यहां तक कि विशेष उपचार भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए, वात और कफ ऊर्जा को संतुलित करने के लिए, आयुर्वेद सर्दियों में गर्म खाद्य पदार्थों और मसालों का उपयोग करने का सुझाव देता है।
- रसायन: रसायन आयुर्वेद की एक विशेष शाखा है जो जीवन काल और नवीकरण पर जोर देती है। रसायन उपचार में कुछ खाद्य आहार, हर्बल उपचार और जीवनशैली में संशोधन शामिल हैं। सेलुलर स्तर पर, वे जीवन शक्ति में सुधार करना, उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा करना और सामान्य कल्याण को आगे बढ़ाना चाहते हैं।

- मर्म बिंदु: आयुर्वेद के अनुसार, शरीर में मर्म बिंदु होते हैं, जो आवश्यक ऊर्जा बिंदु हैं। इन स्थानों द्वारा कुछ अंगों, ऊतकों और ऊर्जावान मार्गों का प्रतिनिधित्व किया जाता है। उपचार को सुविधाजनक बनाने और ऊर्जावान संतुलन को बढ़ावा देकर, हल्के दबाव या मालिश के साथ मर्म बिंदुओं को सक्रिय और नियंत्रित किया जा सकता है।
- आयुर्वेदिक मनोविज्ञान: आयुर्वेद शारीरिक और मानसिक कल्याण के बीच घनिष्ठ संबंध को पहचानता है। यह सामान्य भलाई पर विचारों, भावनाओं और मनोवैज्ञानिक तत्वों के प्रभाव को स्वीकार करता है। मानसिक और भावनात्मक संतुलन को बढ़ावा देने के लिए, आयुर्वेदिक मनोविज्ञान मन-शरीर लिंक की जांच करता है और प्राणायाम और ध्यान जैसी तकनीकें प्रदान करता है।

5. पारंपरिक भारतीय चिकित्सा से परिप्रेक्ष्य

प्राचीन भारतीय चिकित्सा विशेषज्ञता के दिलचस्प विचार समकालीन स्वास्थ्य देखभाल प्रक्रियाओं को प्रेरित और प्रोत्साहित करते रहते हैं:

- **एनेस्थीसिया का उपयोग:** पश्चिम में एनेस्थीसिया का आविष्कार होने से सदियों पहले प्राचीन भारतीय सर्जन सर्जरी के दौरान दर्द को कम करने के लिए अफीम, भांग और शराब जैसी दवाओं का इस्तेमाल करते थे। दर्द प्रबंधन के उनके ज्ञान के कारण अधिक आरामदायक सर्जिकल अनुभव प्राप्त हुआ।
- **एंटीबायोटिक्स का उपयोग:** बीमारियों के इलाज के लिए, प्राचीन भारतीय डॉक्टर लहसुन, हल्दी और नीम जैसी जीवाणुरोधी गुणों वाली विभिन्न जड़ी-बूटियों का उपयोग करते थे। पश्चिमी चिकित्सा में खोजे जाने से पहले, इन प्राकृतिक उपचारों का उपयोग एंटीबायोटिक दवाओं के रूप में किया जाता था।
- **सर्जिकल उपकरण:** पश्चिमी चिकित्सा में संदंश, स्केलपेल और सुइयों के विकसित होने से बहुत पहले, प्राचीन भारतीय सर्जन उन्हें सर्जिकल प्रक्रियाओं में नियोजित करने वाले पहले व्यक्ति थे। उनके आविष्कारी उपकरणों द्वारा सर्जिकल सटीकता और प्रभावकारिता में सुधार संभव हुआ।
- **मानव शरीर का ज्ञान:** प्राचीन भारत में चिकित्सकों को मानव शरीर रचना विज्ञान, शरीर विज्ञान और विकृति विज्ञान की गहन समझ थी। इस ज्ञान ने मानव शरीर की जटिलताओं के बारे में उनकी असाधारण समझ का प्रदर्शन किया और विभिन्न प्रकार की बीमारियों के लिए कुशल उपचार के निर्माण का द्वार खोल दिया।

- **रोकथाम पर जोर:** प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रक्रियाओं में निवारक उपायों के महत्व पर प्रकाश डाला गया था। योग, ध्यान और आहार परिवर्तन जैसी तकनीकों को शामिल करके, उन्हें एहसास हुआ कि सामान्य स्वास्थ्य को बनाए रखना और बीमारियों को शुरू होने से पहले ही रोकना कितना महत्वपूर्ण है।

6. निष्कर्ष

चिकित्सा के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय शल्य चिकित्सा एवं चिकित्सा को श्रेष्ठ एवं ज्ञानवर्धक माना जाता है। आयुर्वेद के स्थायी प्रभाव और सुश्रुत और चरक जैसे व्यक्तियों के योगदान का समकालीन चिकित्सा की प्रगति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। आयुर्वेद के समग्र सिद्धांतों से प्रेरित होकर, उनका अभूतपूर्व कार्य आज भी स्वास्थ्य देखभाल प्रक्रियाओं को प्रभावित और ढाल रहा है। आधुनिक काल में पुरानी भारतीय परंपराओं की प्रभावशीलता वैज्ञानिक प्रमाणों द्वारा भी समर्थित है। इसके अलावा, आधुनिक स्वास्थ्य देखभाल पद्धतियां अभी भी प्राचीन चिकित्सा ज्ञान द्वारा प्रदान की गई गहन अंतर्दृष्टि से प्रेरित और समर्थित हैं, जैसे कि रोकथाम, समग्र उपचार और प्राकृतिक उपचार के उपयोग पर जोर। हम आयुर्वेद के समग्र दृष्टिकोण, व्यक्तिगत देखभाल और मन-शरीर के संबंध की गहन समझ को अपनाकर अपने जीवन में समग्र कल्याण और सामंजस्यपूर्ण संतुलन विकसित कर सकते हैं। इस अर्थ में, पारंपरिक भारतीय चिकित्सा और सर्जरी अतीत और वर्तमान के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करने के अलावा एक स्वस्थ भविष्य का मार्ग भी प्रदान करती है। हम संपूर्ण और समग्र देखभाल देने का प्रयास कर सकते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकताओं को संबोधित करती है और पारंपरिक ज्ञान को समकालीन चिकित्सा के साथ जोड़कर शारीरिक और मानसिक कल्याण को बढ़ावा देती है। चूँकि हम अपने और भावी पीढ़ियों के लिए सर्वोत्तम संभव स्वास्थ्य और कल्याण प्राप्त करने के लिए काम करते हैं, आइए अतीत के ज्ञान का सम्मान करें और उससे सीखें।

संदर्भ सूची

1. https://www.slideshare.net/slideshow/benefits-of-ayurveda-for-womens-health-by-drnutan-pakhare/179983385
2. https://www.britannica.com/science/Ayurveda
3. Jaiswal, Y. S., & Williams, L. L. (2017). A glimpse of Ayurveda-The forgotten history and principles of Indian traditional medicine. *Journal of traditional and complementary medicine*, 7(1), 50-53.
4. Ruthkow, I. M. (1961). *Great ideas in the history of surgery*. Baltimore: William & Wilkins Co.
5. Hoernle, A. F. R. (1907). Studies in the Medicine of Ancient India: Part I. *Osteology, or The Bones of the Human Body*. Clarendon Press.
6. Loukas, M., Lanteri, A., Ferrauiola, J., Tubbs, R. S., Maharaja, G., Shoja, M. M., ... & Rao, V. C. (2010). Anatomy in ancient India: a focus on the Susruta Samhita. *Journal of anatomy*, 217(6), 646-650.
7. https://www.linkedin.com/pulse/ancient-indian-medicine-surgery-legacy-excellence-insight-prasad-kvsn/
8. https://testbook.com/articles/charaka
9. Banjar, D., Nimbalkar, M., Bhatkar, A., Bagde, A., & Fulkar, S. (2023). Compilation Study on Qualities of Vaidya (Physician) According To Charak Samhita.
10. https://www.britannica.com/topic/Charaka-samhita
11. https://en.wikipedia.org/wiki/Charaka_Samhita
12. Dass, R. K. (2013). Charak Samhita-A Critical Review. *Journal of Ayurveda and Holistic Medicine* (JAHM), 1(5).

अनुशंसित पठन सामग्री

1. Sushruta Samhita: An English Translation, Sushruta,Translated by Kaviraj Kunja Lal Bhishagratna, Alpha Edition, 2020, ISBN: 978-9354031571.
2. Caraka Samhita: Text with English Translation (4 Volume Set), Charaka, Translated by P.V. Sharma, Chaukhambha Orientalia, 2005, ISBN: 978-8176370127.
3. Ayurveda: The Science of Self-Healing, Vasant Lad, Lotus Press, 1984, ISBN: 978-0914955009.
4. Illustrated Susruta Samhita (3 Volumes), Sushruta, Translated by K.R. Srikantha Murthy, Chaukhambha Orientalia, 2010, ISBN: 978-8176370677.
5. "Sushruta: The First Plastic Surgeon in 600 B.C.", S. Saraf & R. Parihar, The Internet Journal of Plastic Surgery, 2006, Volume: 4, Issue: 2, DOI: 10.5580/1c7.
6. Mahadevan, B., Bhat, V. R., & Pavana, N. (2022). Introduction to Indian Knowledge System: Concepts and Applications. New Delhi: PHI Learning Pvt. Ltd. ISBN: 978-93-91818-20-3.
7. Pandey, O. P. (2023). Bharat Vaibhav (1st ed.). New Delhi: National Book Trust, India. ISBN: 978-81-237-9377-1.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय शल्य चिकित्सा के विकास में एक प्रमुख व्यक्ति किसे माना जाता है ?
   क) चरक
   ख) सुश्रुत
   ग) हिप्पोक्रेट्स
   घ) एविसेना

2. वे दो मूलभूत ग्रंथ कौन से हैं जो प्राचीन भारत की चिकित्सा पद्धतियों का दस्तावेजीकरण करते हैं?
   क) आयुर्वेद और सिद्ध
   ख) सुश्रुत संहिता और चरक संहिता
   ग) वेद और उपनिषद
   घ) योग सूत्र और भगवद गीता

3. कौन सा प्राचीन भारतीय चिकित्सक मुख्य रूप से आंतरिक चिकित्सा के क्षेत्र से जुड़ा है?
   क) सुश्रुत
   ख) चरक
   ग) नागार्जुन
   घ) पतंजलि

4. प्राचीन भारत में स्वास्थ्य देखभाल पद्धतियों में प्रगति काफी हद तक निम्नलिखित में से किससे प्रभावित थी?
   क) धार्मिक मान्यताएँ
   ख) राजनीतिक शक्ति
   ग) प्रमुख चिकित्सा हस्तियाँ और उनके लेखन
   घ) आधुनिक तकनीक

5. सुश्रुत संहिता मुख्य रूप से चिकित्सा के किस पहलू पर केंद्रित है?
   क) निवारक दवा
   ख) सर्जरी
   ग) हर्बल उपचार
   घ) पोषण विज्ञान

6. चिकित्सा के क्षेत्र में चरक का निम्नलिखित में से कौन सा महत्वपूर्ण योगदान है?
   क) सर्जिकल तकनीकों का विकास
   ख) शल्य चिकित्सा उपकरणों का संकलन
   ग) निदान और उपचार के लिए व्यवस्थित दृष्टिकोण
   घ) एनेस्थीसिया का परिचय

7. प्राचीन भारतीय चिकित्सा में स्वास्थ्य और बीमारी की समझ की विशेषता थी:
   क) एक विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिकोण
   ख) अनुभवजन्य साक्ष्य की कमी
   ग) दार्शनिक और वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि का संयोजन
   घ) केवल हर्बल उपचार पर निर्भरता

8. किसे अक्सर "सर्जरी का जनक" कहा जाता है?
   क) चरक
   ख) हिप्पोक्रेट्स
   ग) सुश्रुत
   घ) गैलेन

9. सुश्रुत संहिता में किस प्रमुख शल्य प्रक्रिया का वर्णन है?
   क) एपेंडेक्टोमी
   ख) राइनोप्लास्टी
   ग) सिजेरियन सेक्शन
   घ) हृदय प्रत्यारोपण

10. सुश्रुत ने अपनी शल्य चिकित्सा पद्धतियों में निम्नलिखित में से किस पर जोर दिया था?
    क) हर्बल उपचारों का उपयोग
    ख) स्वच्छ वातावरण का महत्व
    ग) मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान दें
    घ) भौतिक चिकित्सा

11. चरक संहिता मुख्य रूप से चिकित्सा के किस क्षेत्र पर केंद्रित है?
    क) सर्जरी
    ख) बाल चिकित्सा
    ग) आंतरिक चिकित्सा
    घ) आपातकालीन चिकित्सा

12. चरक ने स्वास्थ्य और निम्नलिखित में से किसके बीच संबंध पर जोर दिया?
    क) सर्जिकल तकनीक
    ख) आहार और जीवनशैली
    ग) उन्नत चिकित्सा प्रौद्योगिकियाँ
    घ) आनुवंशिक प्रवृत्ति

13. सुश्रुत ने अपने कार्य में कितनी शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं का वर्णन किया है?
    क) पचास से अधिक
    ख) सौ से अधिक
    ग) दो सौ से अधिक
    घ) तीन सौ से अधिक

14. चरक ने कौन सी अवधारणा प्रस्तुत की जो आज भी प्रासंगिक है?
    क) सर्जिकल उपकरण
    ख) निवारक दवा
    ग) संज्ञाहरण
    घ) सर्जिकल नैतिकता

15. चरक द्वारा मानसिक स्वास्थ्य पर किए गए अवलोकन किस आधुनिक दृष्टिकोण से संबंधित हैं?
    क) एलोपैथिक दवा
    ख) समग्र अभ्यास
    ग) मनोचिकित्सा
    घ) फार्माकोलॉजी

16. चरक संहिता में उल्लिखित स्वास्थ्य बनाए रखने की कुंजी क्या है?
    क) नियमित व्यायाम
    ख) हर्बल उपचार
    ग) सर्जिकल हस्तक्षेप
    घ) टीकाकरण

17. सुश्रुत ने अपने लेखन में शल्य चिकित्सा के किस पहलू पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया?
    क) सैद्धांतिक ज्ञान
    ख) रोगी की रिकवरी
    ग) सर्जिकल उपकरण
    घ) चिकित्सा नैतिकता

18. वर्णित कला कार्य का मुख्य फोकस क्या है?
    क) प्राचीन भारतीय कला के सौंदर्य संबंधी गुण
    ख) प्राचीन भारतीय चिकित्सा और शल्य चिकित्सा की नवीन तकनीकें और मान्यताएँ
    ग) भारतीय सभ्यता की ऐतिहासिक समयरेखा
    घ) भारतीय पद्धतियों पर पश्चिमी चिकित्सा का प्रभाव

19. कार्य में किस प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली पर प्रकाश डाला गया है?
    क) सिद्ध
    ख) यूनानी
    ग) आयुर्वेद
    घ) होम्योपैथी

20. आयुर्वेद के सिद्धांत किस पर जोर देते हैं?
   क) आक्रामक उपचार
   ख) संतुलन, प्राकृतिक उपचार और व्यक्तिगत उपचार
   ग) सभी रोगियों के लिए मानकीकृत प्रोटोकॉल
   घ) केवल हर्बल उपचार का उपयोग

21. समसामयिक वैज्ञानिक अनुसंधान ने प्राचीन भारतीय चिकित्सा की समझ में कैसे योगदान दिया है?
   क) प्राचीन प्रथाओं को पूरी तरह से बदनाम करके
   ख) प्राचीन शिक्षाओं में निहित कई प्रथाओं को मान्य करके
   ग) आयुर्वेद से असंबद्ध नई प्रथाओं का निर्माण करके
   घ) केवल सर्जिकल तकनीकों पर ध्यान केंद्रित करके

22. प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों के वैज्ञानिक समर्थन का क्या महत्व है?
   क) यह पारंपरिक तरीकों के मूल्य को कम करता है
   ख) यह प्राचीन ज्ञान को वैधता प्रदान करता है
   ग) यह इन प्रथाओं को त्यागने की ओर ले जाता है
   घ) यह पूरी तरह से फार्मास्युटिकल कंपनियों को फायदा पहुंचाता है

23. प्राचीन तकनीकों से संबंधित कार्य में किस चल रही प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है?
   क) वे पुराने हो चुके हैं और शायद ही कभी उपयोग किए जाते हैं
   ख) आधुनिक स्वास्थ्य देखभाल में उनका निरंतर एकीकरण
   ग) भारत के कुछ क्षेत्रों के लिए उनकी विशिष्टता
   घ) आधुनिक तरीकों से उनका पूर्ण प्रतिस्थापन

24. निम्नलिखित में से कौन सा परिच्छेद के अनुसार प्राचीन भारतीय चिकित्सा के योगदान का सबसे अच्छा वर्णन करता है?
   क) वे आधुनिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए अप्रासंगिक हैं
   ख) वे अमूल्य और संरक्षण योग्य हैं
   ग) वे केवल ऐतिहासिक अध्ययनों पर लागू होते हैं
   घ) वे मुख्य रूप से सैद्धांतिक हैं जिनका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है

25. आयुर्वेद रोग के किस पहलू पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित करता है?
   क) आनुवंशिक कारक
   ख) पर्यावरणीय प्रभाव
   ग) शरीर के भीतर संतुलन और सामंजस्य
   घ) स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारक

26. आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों के साथ पारंपरिक तरीकों के एकीकरण के बारे में निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य है?
   क) अधिकांश स्वास्थ्य देखभाल पेशेवरों द्वारा इसे हतोत्साहित किया जाता है
   ख) इसे वैज्ञानिक चिकित्सा के लिए खतरे के रूप में देखा जाता है
   ग) प्राचीन तकनीकों की सिद्ध प्रभावशीलता के कारण इसे प्रोत्साहित किया जाता है
   घ) यह केवल भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लागू है

27. कला का कार्य अंततः प्राचीन भारतीय चिकित्सा के बारे में क्या रेखांकित करता है?
   क) अतीत के प्रति इसकी विशिष्टता
   ख) भविष्य की चिकित्सा प्रगति के लिए इसकी क्षमता
   ग) इसकी पूर्ण निर्भरता आधुनिक तकनीक पर है
   घ) वैश्विक स्वास्थ्य में इसका सीमित अनुप्रयोग

28. भारतीय चिकित्सा परिषद् की स्थापना किस वर्ष हुई?
   क) 1965
   ख) 1971
   ग) 1980
   घ) 1990

29. भारतीय चिकित्सा परिषद द्वारा किन पारंपरिक प्रथाओं को मान्यता दी गई है?
   क) सिद्ध, आयुर्वेद और यूनानी
   ख) योग, रेकी और एक्यूपंक्चर
   ग) होम्योपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा, और एलोपैथी
   घ) ताई ची, क्यूगोंग, और अरोमाथेरेपी

30. भारत में कितने लोगों को आयुर्वेदिक चिकित्सकों से स्वास्थ्य देखभाल प्राप्त होने का अनुमान है?
   क) 250 मिलियन
   ख) 500 मिलियन
   ग) 750 मिलियन
   घ) 1 बिलियन

31. आयुर्वेद में निवारक देखभाल के प्रमुख घटक के रूप में क्या रेखांकित किया गया है?
   क) सर्जिकल हस्तक्षेप
   ख) सामाजिक और व्यक्तिगत स्वच्छता की कठोर संहिता का पालन करना
   ग) फार्मास्युटिकल दवाओं का उपयोग
   घ) नियमित स्वास्थ्य जांच

32. आयुर्वेद में शामिल कुछ पुनर्स्थापनात्मक उपाय क्या हैं?
   क) ध्यान, एक्यूपंक्चर, और सर्जरी
   ख) हर्बल उपचार, योग और शारीरिक गतिविधियाँ
   ग) रक्त आधान और टीकाकरण
   घ) शामक और संवेदनाहारी

33. आयुर्वेद चिकित्सीय और निवारक क्रियाओं के बारे में क्या मानता है?
   क) वे सभी रोगियों के लिए एक समान होने चाहिए
   ख) उन्हें प्रत्येक रोगी की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाना चाहिए
   ग) वे मुख्य रूप से हर्बल चिकित्सा पर केंद्रित हैं
   घ) इन्हें केवल अस्पताल सेटिंग में ही लागू किया जाना चाहिए

34. ऐतिहासिक अनुमान के अनुसार, आयुर्वेद का अभ्यास कब से किया जा रहा है?
   क) 1,000 वर्ष
   ख) 2,000 वर्ष
   ग) 3,000 वर्ष
   घ) 4,000 वर्ष

35. आयुर्वेद का कौन सा पहलू पर्यावरण और व्यक्तिगत आवश्यकताओं के महत्व पर जोर देता है?
   क) चिकित्सीय उपाय
   ख) निवारक देखभाल
   ग) सर्जिकल प्रक्रियाएं
   घ) हर्बल उपचार

36. पारंपरिक प्रथाओं के अलावा, भारत सरकार ने आयुर्वेद के साथ क्या संयोजन करना चाहा है?
   क) होम्योपैथी
   ख) पश्चिमी उपचार
   ग) यूनानी चिकित्सा
   घ) सिद्ध अभ्यास

37. आयुर्वेद को मुख्य रूप से स्वास्थ्य देखभाल की पसंदीदा पद्धति के रूप में कहाँ उपयोग किया जाता है?
   क) पश्चिमी देश
   ख) पूर्वी देश, विशेषकर भारत
   ग) अफ्रीकी राष्ट्र
   घ) मध्य पूर्वी देश

38. 'आयुर्वेद' शब्द का क्या अर्थ है?
   क) उपचार की कला
   ख) प्राचीन चिकित्सा
   ग) जड़ी-बूटियों का ज्ञान
   घ) जीवन का विज्ञान

39. आयुर्वेद की उत्पत्ति किस प्राचीन ग्रंथ से पता चलती है?
   क) यजुर्वेद
   ख) अथर्ववेद
   ग) ऋग्वेद
   घ) सामवेद

40. आयुर्वेद की उत्पत्ति लगभग कितने वर्ष पूर्व हुई?
   क) 2,000 वर्ष
   ख) 4,000 वर्ष
   ग) 5,000 वर्ष
   घ) 3,000 वर्ष

41. कौन से दो संस्कृत शब्द 'आयुर्वेद' से मिलकर बने हैं?
   क) आयुर और वैदिक
   ख) आयुर और वेदांत
   ग) अयुर और वेद
   घ) आयुर और वेद

42. आयुर्वेद समग्र कल्याण के लिए किन तत्वों को आवश्यक मानता है?
   क) शरीर, मन और पोषण
   ख) शरीर, मन और आत्मा
   ग) शरीर, मन और पर्यावरण
   घ) केवल शरीर और मन

43. आयुर्वेद विभिन्न माध्यमों से विकसित हुआ है:
   क) धार्मिक आंदोलन
   ख) भौगोलिक क्षेत्र
   ग) सांस्कृतिक और ऐतिहासिक काल
   घ) राजनीतिक व्यवस्थाएँ

44. निम्नलिखित में से कौन आयुर्वेद का सबसे अच्छा वर्णन करता है?
   क) एक आधुनिक चिकित्सा पद्धति
   ख) एक प्रकार का योग
   ग) चिकित्सा की एक पारंपरिक प्रणाली
   घ) पारंपरिक मार्शल आर्ट की एक प्रणाली

45. आयुर्वेद में शरीर, मन और आत्मा के बीच क्या संबंध है?
   क) केवल शरीर और मन जुड़े हुए हैं
   ख) केवल मन और आत्मा जुड़े हुए हैं
   ग) वे आपस में जुड़े हुए हैं
   घ) वे स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं

46. अथर्ववेद में आयुर्वेद के संबंध में क्या कहा गया है?
   क) स्वास्थ्य और उपचार पद्धतियों के प्रारंभिक संदर्भ
   ख) विस्तृत चिकित्सा प्रक्रियाएँ
   ग) दार्शनिक शिक्षाएँ
   घ) हर्बल औषधि पर निर्देश

47. आयुर्वेद की जड़ें मुख्य रूप से किस देश में हैं?
   क) ग्रीस
   ख) चीन
   ग) भारत
   घ) मिस्र

48. वह कौन सी समयावधि है जिसके दौरान भारतीय चिकित्सा, विशेष रूप से चरक-संहिता और सुश्रुत-संहिता द्वारा प्रस्तुत, अपने चरम पर पहुंच गई?
   क) 1000 ईसा पूर्व से 800 ई.पू
   ख) 800 ईसा पूर्व से 1000 ई.पू
   ग) 500 ई. से 1200 ई
   घ) 300 ईसा पूर्व से 700 ई.पू

49. चरक-संहिता के संबंध में निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य है?
   क) इसे सातवीं शताब्दी ईस्वी में अंतिम रूप दिया गया था।
   ख) ऐसा माना जाता है कि इसकी उत्पत्ति पहली शताब्दी ईस्वी में हुई थी।
   ग) यह सुश्रुत-संहिता से कम महत्वपूर्ण है।
   घ) यह वाग्भट्ट द्वारा लिखा गया था।

50. सुश्रुत-संहिता का आरंभ किस काल में हुआ माना जाता है?
   क) पहली शताब्दी ई.पू
   ख) पिछली शताब्दी ईसा पूर्व
   ग) सातवीं शताब्दी ई.पू
   घ) आठवीं शताब्दी ई.पू

51. मध्यकाल में आयुर्वेद को किन प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ा?
   क) वैश्विक आर्थिक मंदी
   ख) विदेशी आक्रमण और आधुनिक चिकित्सा का उदय
   ग) वैज्ञानिक मान्यता का अभाव
   घ) पश्चिमी चिकित्सा की लोकप्रियता में वृद्धि

52. 19वीं और 20वीं शताब्दी में आयुर्वेद में रुचि का पुनरुत्थान किस व्यापक प्रवृत्ति से जुड़ा था?
   क) वैकल्पिक चिकित्सा का पतन
   ख) स्वास्थ्य के लिए वैकल्पिक और समग्र दृष्टिकोण के लिए बढ़ती सराहना
   ग) सिंथेटिक फार्मास्यूटिकल्स की शुरूआत
   घ) भारत में पश्चिमी चिकित्सा पद्धतियों की स्थापना

53. आयुर्वेद में ब्रह्मांड का निर्माण करने वाले पांच तत्वों को क्या कहा जाता है?
   क) पृथ्वी, अग्नि, जल, आकाश, वायु
   ख) वायु, जल, आकाश, पृथ्वी, तेज
   ग) आकाश, तेज, पृथ्वी, क्षिति, वायु
   घ) जल, तेज, अग्नि, वायु, पृथ्वी

54. निम्नलिखित में से कौन आयुर्वेद में मानव शरीर के तीन मौलिक गुणों की सही पहचान करता है?
   क) वात, पित्त और कफ
   ख) पृथ्वी, तेजा और जाला
   ग) रस, ममसा और मज्जा
   घ) पुरीशा, मुत्र और स्वेदा

55. आयुर्वेद के अनुसार मानव शरीर द्वारा उत्पादित अपशिष्ट उत्पादों को संदर्भित करने के लिए किस शब्द का प्रयोग किया जाता है?
   क) त्रिदोष
   ख) सप्तधातु
   ग) माला
   घ) पंच महाभूत

56. भूख और शरीर के तापमान को नियंत्रित करने के लिए कौन सा दोष मुख्य रूप से जिम्मेदार है?
   क) वात
   ख) कफ
   ग) पित्त
   घ) रस

57. आयुर्वेदिक सिद्धांतों के अनुसार, त्रिदोषों के बीच असंतुलन का परिणाम क्या होता है?
   क) उन्नत चयापचय
   ख) इष्टतम स्वास्थ्य
   ग) बीमारी या बीमारी
   घ) ऊर्जा स्तर में वृद्धि

58. माना जाता है कि कितने विभिन्न प्रकार के ऊतक, या "सप्त धातु" मानव शरीर का निर्माण करते हैं?
   क) पांच
   ख) सात
   ग) नौ
   घ) ग्यारह

59. कौन सी धातु शरीर में रक्त कोशिका परिसंचरण को नियंत्रित करने के लि जिम्मेदार है?

क) मेदा धातु
ख) ममसा धातु
ग) रक्त धातु
घ) शुक्र धातु

60. शरीर में मेद धातु की क्या भूमिका है?

क) कंकाल की मांसपेशियों को सहारा देने के लिए
ख) रक्त कोशिकाओं का निर्माण करना
ग) प्रजनन कोशिकाओं को संग्रहित करना
घ) हड्डी की संरचना को बनाए रखने के लिए

61. कौन सी धातु शरीर के प्रजनन अंगों से संबंधित है?

क) मज्जा धातु
ख) शुक्र धातु
ग) अस्थि धातु
घ) रक्त धातु

62. आयुर्वेदिक शिक्षाओं के अनुसार शरीर द्वारा उत्पादित तीन प्रकार के अपशिष्ट उत्पाद कौन से हैं?

क) स्वेद, पित्त और मूत्र
ख) पुरिसा, मुत्रा, और स्वेदा
ग) स्वेदा, अग्नि और पुरीसा
घ) पुरिसा, वत्ता और शुक्र

63. आयुर्वेदिक शिक्षाओं में "अग्नि" का क्या अर्थ है?

क) एक प्रकार की धातु
ख) शरीर की जैविक अग्नि
ग) पाचन का एक अंग
घ) एक अपशिष्ट उत्पाद

64. मानव शरीर में किस प्रकार की अग्नि को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है?

क) भूताग्नि
ख) जठराग्नि
ग) धत्वाग्नि
घ) प्राणाग्नि

65. यदि त्रिदोष के बीच संतुलन नहीं रखा गया तो क्या होगा?

क) पाचन में वृद्धि
ख) उचित अपशिष्ट निष्कासन
ग) ऊर्जा स्तर में वृद्धि
घ) विभिन्न स्वास्थ्य मुद्दे

66. किस दोष का बढ़ा हुआ स्तर पाचन अग्नि के बढ़ने से जुड़ा है?

क) वट्टा
ख) कफ
ग) पित्त
घ) शुक्र

67. पाचन अग्नि में असंतुलन से कौन से रोग संबंधी मुद्दे उत्पन्न हो सकते हैं?

क) ऊर्जा और जीवन शक्ति में वृद्धि
ख) दस्त, अल्सर और कब्ज
ग) बढ़ी हुई प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया
घ) चयापचय प्रक्रियाओं में सुधार

68. आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धतियों का मुख्य उद्देश्य क्या है?

क) शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए
ख) लोगों की भलाई बढ़ाने के लिए
ग) बिना उपचार के जीवनकाल बढ़ाने के लिए
घ) आहार संबंधी प्रतिबंधों को बढ़ावा देना

59. कौन सी धातु शरीर में रक्त कोशिका परिसंचरण को नियंत्रित करने के लि जिम्मेदार है?

क) मेदा धातु
ख) ममसा धातु
ग) रक्त धातु
घ) शुक्र धातु

60. शरीर में मेद धातु की क्या भूमिका है?

क) कंकाल की मांसपेशियों को सहारा देने के लिए
ख) रक्त कोशिकाओं का निर्माण करना
ग) प्रजनन कोशिकाओं को संग्रहित करना
घ) हड्डी की संरचना को बनाए रखने के लिए

61. कौन सी धातु शरीर के प्रजनन अंगों से संबंधित है?

क) मज्जा धातु
ख) शुक्र धातु
ग) अस्थि धातु
घ) रक्त धातु

62. आयुर्वेदिक शिक्षाओं के अनुसार शरीर द्वारा उत्पादित तीन प्रकार के अपशिष्ट उत्पाद कौन से हैं?

क) स्वेद, पित्त और मूत्र
ख) पुरिसा, मुत्रा, और स्वेदा
ग) स्वेदा, अग्नि और पुरीसा
घ) पुरिसा, वत्ता और शुक्र

63. आयुर्वेदिक शिक्षाओं में "अग्नि" का क्या अर्थ है?

क) एक प्रकार की धातु
ख) शरीर की जैविक अग्नि
ग) पाचन का एक अंग
घ) एक अपशिष्ट उत्पाद

64. मानव शरीर में किस प्रकार की अग्नि को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है?

क) भूताग्नि
ख) जठराग्नि
ग) धत्वाग्नि
घ) प्राणाग्नि

65. यदि त्रिदोष के बीच संतुलन नहीं रखा गया तो क्या होगा?

क) पाचन में वृद्धि
ख) उचित अपशिष्ट निष्कासन
ग) ऊर्जा स्तर में वृद्धि
घ) विभिन्न स्वास्थ्य मुद्दे

66. किस दोष का बढ़ा हुआ स्तर पाचन अग्नि के बढ़ने से जुड़ा है?

क) वट्टा
ख) कफ
ग) पित्त
घ) शुक्र

67. पाचन अग्नि में असंतुलन से कौन से रोग संबंधी मुद्दे उत्पन्न हो सकते हैं?

क) ऊर्जा और जीवन शक्ति में वृद्धि
ख) दस्त, अल्सर और कब्ज
ग) बढ़ी हुई प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया
घ) चयापचय प्रक्रियाओं में सुधार

68. आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धतियों का मुख्य उद्देश्य क्या है?

क) शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए
ख) लोगों की भलाई बढ़ाने के लिए
ग) बिना उपचार के जीवनकाल बढ़ाने के लिए
घ) आहार संबंधी प्रतिबंधों को बढ़ावा देना

59. कौन सी धातु शरीर में रक्त कोशिका परिसंचरण को नियंत्रित करने के लिए जिम्मेदार है?

क) मेदा धातु
ख) ममसा धातु
ग) रक्त धातु
घ) शुक्र धातु

60. शरीर में मेद धातु की क्या भूमिका है?

क) कंकाल की मांसपेशियों को सहारा देने के लिए
ख) रक्त कोशिकाओं का निर्माण करना
ग) प्रजनन कोशिकाओं को संग्रहित करना
घ) हड्डी की संरचना को बनाए रखने के लिए

61. कौन सी धातु शरीर के प्रजनन अंगों से संबंधित है?

क) मज्जा धातु
ख) शुक्र धातु
ग) अस्थि धातु
घ) रक्त धातु

62. आयुर्वेदिक शिक्षाओं के अनुसार शरीर द्वारा उत्पादित तीन प्रकार के अपशिष्ट उत्पाद कौन से हैं?

क) स्वेद, पित्त और मूत्र
ख) पुरिसा, मुत्रा, और स्वेदा
ग) स्वेदा, अग्नि और पुरीसा
घ) पुरिसा, वत्ता और शुक्र

63. आयुर्वेदिक शिक्षाओं में "अग्नि" का क्या अर्थ है?

क) एक प्रकार की धातु
ख) शरीर की जैविक अग्नि
ग) पाचन का एक अंग
घ) एक अपशिष्ट उत्पाद

64. मानव शरीर में किस प्रकार की अग्नि को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है?

क) भूताग्नि
ख) जठराग्नि
ग) धत्वाग्नि
घ) प्राणाग्नि

65. यदि त्रिदोष के बीच संतुलन नहीं रखा गया तो क्या होगा?

क) पाचन में वृद्धि
ख) उचित अपशिष्ट निष्कासन
ग) ऊर्जा स्तर में वृद्धि
घ) विभिन्न स्वास्थ्य मुद्दे

66. किस दोष का बढ़ा हुआ स्तर पाचन अग्नि के बढ़ने से जुड़ा है?

क) वट्टा
ख) कफ
ग) पित्त
घ) शुक्र

67. पाचन अग्नि में असंतुलन से कौन से रोग संबंधी मुद्दे उत्पन्न हो सकते हैं?

क) ऊर्जा और जीवन शक्ति में वृद्धि
ख) दस्त, अल्सर और कब्ज
ग) बढ़ी हुई प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया
घ) चयापचय प्रक्रियाओं में सुधार

68. आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धतियों का मुख्य उद्देश्य क्या है?

क) शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए
ख) लोगों की भलाई बढ़ाने के लिए
ग) बिना उपचार के जीवनकाल बढ़ाने के लिए
घ) आहार संबंधी प्रतिबंधों को बढ़ावा देना

69. निम्नलिखित में से कौन सा पंच कर्म तकनीक में पाँच कर्मों में से एक नहीं है?
   क) विरेचन
   ख) वामन
   ग) शल्य
   घ) नास्या

70. पंच कर्म का पहला चरण, जिसे पूर्व कर्म के नाम से जाना जाता है, मुख्य रूप से किस पहलू पर केंद्रित है?
   क) रक्त का विषहरण
   ख) शरीर को चिकित्सा के लिए तैयार करना
   ग) एनीमा का प्रबंध करना
   घ) आहार परिवर्तन लागू करना

71. पंच कर्म में तेल लगाने की प्रक्रिया का उद्देश्य क्या है?
   क) उल्टी प्रेरित करने के लिए
   ख) खून साफ करने के लिए
   ग) उपचार के लिए औषधीय तेलों और घी का उपयोग करना
   घ) हर्बल काढ़ा तैयार करना

72. किस विधि में जबरन चिकित्सीय वमन शामिल है?
   क) बस्ती
   ख) वामन
   ग) नास्या
   घ) विरेचन

73. पंच कर्म चिकित्सा में, विरेचन उपचार में आमतौर पर किस पदार्थ का उपयोग किया जाता है?
   क) शहद
   ख) गाय का दूध
   ग) तिल का तेल
   घ) दही

74. निम्नलिखित में से कौन सा आयुर्वेद के आठ विषयों में से एक है जिसे "अष्टांग आयुर्वेद" के नाम से जाना जाता है?
   क) कायाचिकित्सा
   ख) पोषण चिकित्सा
   ग) हर्बल औषधि
   घ) फिजियोथेरेपी

75. पंच कर्म में प्रधान कर्म का प्राथमिक कार्य क्या है?
   क) शरीर को शुद्ध करने के लिए
   ख) शरीर को चिकित्सा के लिए तैयार करना
   ग) दवाएँ देना
   घ) मुख्य चिकित्सा प्रक्रिया के रूप में कार्य करना

76. अष्टांग आयुर्वेद के संदर्भ में वाजीकरण किस प्रकार के उपचार में विशेषज्ञ है?
   क) सर्जिकल उपचार
   ख) बाल चिकित्सा उपचार
   ग) कामोत्तेजक और युजनिक्स के माध्यम से उपचार
   घ) मनोवैज्ञानिक विकारों का उपचार

77. निम्नलिखित में से कौन पंच कर्म प्रक्रिया में पाश्चात् कर्म की भूमिका का सबसे अच्छा वर्णन करता है?
   क) यह रक्त को विषमुक्त करता है।
   ख) इसमें उपचार के बाद शारीरिक कार्यों को सामान्य करने के नियम शामिल हैं।
   ग) यह शरीर को उपचार के लिए तैयार करता है।
   घ) यह विभिन्न हर्बल औषधियों का प्रबंधन करता है।

78. ऐसा माना जाता है कि सुश्रुत का जन्म कहाँ हुआ था?
   क) उत्तरी भारत
   ख) पश्चिमी भारत
   ग) बिहार के करीब
   घ) दक्षिणी भारत

79. सुश्रुत को भारत में पहली बार कौन सी शल्य प्रक्रिया करने का श्रेय दिया जाता है?

क) मोतियाबिंद सर्जरी
ख) राइनोप्लास्टी
ग) एपेंडेक्टोमी
घ) सिजेरियन सेक्शन

80. सुश्रुत का विकास किस काल में हुआ माना जाता है?

क) प्रारंभिक वैदिक युग
ख) मध्य वैदिक युग
ग) वैदिक युग का उत्तरार्ध
घ) उत्तर-वैदिक युग

81. निम्नलिखित में से कौन सा ग्रंथ सुश्रुत से संबंधित है?

क) चरक संहिता
ख) सुश्रुत संहिता
ग) आयुर्वेद संहिता
घ) वैदिक संहिता

82. सुश्रुत ने अपने कार्य में कितनी विभिन्न शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं का वर्णन किया है?

क) 100 से अधिक
ख) 200 से अधिक
ग) 300 से अधिक
घ) 400 से अधिक

83. किस सर्जरी का विशेष उल्लेख सुश्रुत द्वारा किया गया था?

क) हृदय शल्य चिकित्सा
ख) मोतियाबिंद सर्जरी
ग) अंग प्रत्यारोपण
घ) प्लास्टिक सर्जरी

84. सुश्रुत ने मातृत्व देखभाल के संबंध में क्या महत्वपूर्ण योगदान दिया?

क) प्रसवपूर्व विटामिन का विकास
ख) सिजेरियन सेक्शन के लिए दिशानिर्देश
ग) बर्थिंग कुर्सियों का आविष्कार
घ) प्रसवोत्तर देखभाल प्रथाओं का निर्माण

85. किसने सुझाव दिया कि शतपथ-ब्राह्मण में सुश्रुत-संहिता के विचार शामिल हैं?

क) दृढ़बाला
ख) रूथको
ग) रुडोल्फ होर्नले
घ) चरक

86. शोध के अनुसार सुश्रुत-संहिता की रचना कितने ऐतिहासिक युगों तक फैली हुई है?

क) एक
ख) दो
ग) एकाधिक
घ) कोई नहीं

87. माना जाता है कि विद्वान दृढ़बाला किस शताब्दी में हुए थे?

क) दूसरी और तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व
ख) चौथी और पांचवीं शताब्दी सीई
ग) छठी और सातवीं शताब्दी ई.पू
घ) 8वीं और 9वीं शताब्दी ई.पू

88. सर्जिकल तकनीकों से परे सुश्रुत ने क्या महत्वपूर्ण योगदान दिया?

क) उन्होंने रोग का एक सिद्धांत विकसित किया
ख) उन्होंने विभिन्न प्रकार के सर्जिकल उपकरण बनाए।
ग) उन्होंने प्राचीन भारत में अस्पतालों की स्थापना की।
घ) उन्होंने चिकित्सा के बारे में कविता लिखी।

89. निम्नलिखित में से कौन सा उपकरण सुश्रुत ने डिज़ाइन नहीं किया था?

क) संदंश
ख) स्केलपे
ग) थर्मामीटर
घ) सुई

90. सुश्रुत संहिता मुख्य रूप से चिकित्सा के किस पारंपरिक क्षेत्र से संबंधित है?

क) यूनानी
ख) आयुर्वेद
ग) होम्योपैथी
घ) एक्यूपंक्चर

91. ऐतिहासिक विश्लेषण के अनुसार सुश्रुत संहिता की रचना संभवतः कब हुई थी?

क) पहली शताब्दी ई.पू
ख) पिछली कुछ शताब्दी ईसा पूर्व
ग) आठवीं शताब्दी ई.पू
घ) दूसरी शताब्दी ई.पू

92. माना जाता है कि सुश्रुत संहिता में लंबा अंतिम खंड, "उत्तरतंत्र" किसने जोड़ा था?

क) सुश्रुत स्वयं
ख) चरक
ग) नागार्जुन
घ) दृढ़बाला

93. सुश्रुत संहिता के वर्तमान संस्करण में कितने अध्याय हैं?

क) 150
ख) 186
ग) 200
घ) 250

94. सुश्रुत संहिता में बीमारियों, चिकित्सीय पौधों, खनिज-आधारित दवाओं और पशु-आधारित उपचारों का वर्णन है। इसमें कितनी बीमारियों का वर्णन है?

क) 700
ख) 1,120
ग) 64
घ) 57

95. सुश्रुत संहिता के संबंध में कैसर लाइब्रेरी का क्या महत्व है?

क) यहीं पर मूल पांडुलिपि लिखी गई थी।
ख) इसमें पाठ की सबसे प्रारंभिक ताड़-पत्ते की पांडुलिपियों में से एक है।
ग) इसमें पाठ का पहला अंग्रेजी अनुवाद शामिल है।
घ) यह सुश्रुत की सर्जरी से संबंधित कलाकृतियों का घर है।

96. किस विद्वान ने सुश्रुत संहिता की ऐतिहासिक परतों का व्यापक विश्लेषण प्रदान किया?

क) कविराज भिषघरातन
ख) म्यूलेनबेल्ड
ग) दृढ़बाला
घ) नागार्जुन

97. आठवीं शताब्दी के अंत में सुश्रुत संहिता का अनुवाद किन भाषाओं में किया गया था?

क) फ्रेंच और स्पेनिश
ख) अरबी
ग) चीनी और जापानी
घ) ग्रीक और लैटिन

98. पूर्व-तंत्र कितने खंडों से बना है?

क) तीन
ख) पांच
ग) सात
घ) दस

99. पूर्व-तंत्र का कौन सा खंड शल्य चिकित्सा पद्धतियों और शल्य चिकित्सा के बाद की देखभाल को कवर करता है?

क) सूत्रस्थान
ख) निडाना
ग) चिकितास्थानम
घ) सरिरस्थान

100. सरिरस्थान का प्राथमिक फोकस क्या है?

क) रोग प्रक्रियाएं
ख) बुनियादी चिकित्सा विज्ञान
ग) मानव शरीर रचना
घ) विषाक्तता

101. सुश्रुत संहिता के अनुसार, किस श्रेणी के उपचारक को विशेष रूप से विष उपचारक के रूप में पहचाना जाता है?

क) रोगहारस
ख) शैलीहारस
ग) विषाहार
घ) कृत्याहार

102. सुश्रुत ने धार्मिक नियमों का पालन करते हुए शव का विच्छेदन करने के लिए कौन सी विधि सुझाई?

क) किसी जीवित विषय का उपयोग करना
ख) एक स्वस्थ, जहर रहित शव चुनना
ग) पूर्व अवलोकन के बिना विच्छेदन
घ) आधुनिक शल्य चिकित्सा उपकरणों का उपयोग

103. सुश्रुत के अनुसार शव को विच्छेदन से पहले कितने समय तक सड़ने के लिए छोड़ा जाना चाहिए?

क) तीन रातें
ख) पांच रातें
ग) सात रातें
घ) दस रातें

104. जैसा कि सुश्रुत संहिता में कहा गया है, एक छात्र के लिए चिकित्सा या शल्य चिकित्सा का अभ्यास करने की पूर्व शर्त क्या है?

क) शरीर रचना विज्ञान में अच्छी तरह से पढ़ा हुआ होना
ख) पूर्व सर्जिकल अनुभव होना
ग) पुष्पफला का विच्छेदन पूरा करना
घ) अस्पतालों में सर्जरी का अवलोकन करना

105. विघटन के दौरान शव के लिए उपयुक्त आवरण के रूप में निम्नलिखित में से किस सामग्री का उल्लेख नहीं किया गया है?

क) भौंकना
ख) कुसा
ग) सन
घ) कपास

106. उपचार कला की किस श्रेणी में जादू का उपयोग शामिल नहीं है?

क) रोगहारस
ख) भिसागथरवन
ग) शैलीहारस
घ) कृत्याहार

107. मेडिकल छात्रों को मानव शवों का विच्छेदन करने की अनुमति देने से पहले क्या काटना सीखना चाहिए?

क) एक मृत शरीर
ख) एक पुष्पफला (एक प्रकार की लौकी)
ग) एक जीवित जानवर
घ) एक सब्जी

108. मनु के हिंदू कानूनों के अनुसार, प्राचीन भारत में व्यभिचार के लिए क्या सजा थी?

क) निर्वासन
ख) अपराधी की नाक काट देना
ग) कारावास
घ) जुर्माना

109. कौन सा प्राचीन ग्रंथ आधुनिक पुनर्निर्माण सर्जरी के समान चेहरे की क्षति की मरम्मत के लिए एक विधि का वर्णन करता है?

क) अर्थशास्त्र
ख) चरक संहिता
ग) सुश्रुत संहिता
घ) ऋग्वेद

110. सुश्रुत ने फटे हुए कानों की मरम्मत के लिए किस पुनर्निर्माण तकनीक की सिफारिश की?

क) त्वचा ग्राफ्टिंग
ख) सीधी सिलाई
ग) पेडिकल फ्लैप
घ) फ्री फ्लैप

111. सुश्रुत की समझ में कौन सा तत्व आँख की पुतली और पुतली से मेल खाता है?

क) खपृथ्वी (भू)
ख) आग/गर्मी (अग्नि)
ग) वायु (वायु)
घ) शून्य (अकासा)

112. सुश्रुत ने आँख के वर्णन में कितने मूलभूत तत्वों की पहचान की?

क) तीन
ख) चार
ग) पांच
घ) छह

113. सुश्रुत ने आँख के किन संरचनात्मक विभागों को वर्गीकृत किया?

क) रेटिना, ऑप्टिक तंत्रिका, लेंस, कॉर्निया और श्वेतपटल
ख) पलकें, पलकें, श्वेतपटल, रंजित, और पुतली
ग) आइरिस, पुतली, कांच का शरीर, रेटिना और लेंस
घ) कॉर्निया, कंजंक्टिवा, श्वेतपटल, जलीय हास्य, और कांच का हास्य

114. सुश्रुत ने अपने चिकित्सा ग्रंथों में किन स्वास्थ्य मुद्दों पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया?

क) गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल विकार
ख) हृदय संबंधी रोग
ग) पुरुष मूत्रजनन संबंधी समस्याएं
घ) श्वसन संबंधी बीमारियाँ

115. सुश्रुत ने महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों के लिए किन चिकित्सा उपकरणों को बढ़ावा दिया?

क) स्केलपेल और संदंश
ख) स्टेथोस्कोप और थर्मामीटर
ग) सीरिंज, कैथेटर और डाइलेटर्स से सिंचाई करना
घ) एक्स-रे मशीन और एमआरआई स्कैनर

116. आयुर्वेदिक परंपरा के संदर्भ में सुश्रुत संहिता का क्या महत्व है?

क) यह हर्बल चिकित्सा पर चर्चा करने वाला पहला पाठ था।
ख) इसने आज भी उपयोग में आने वाली आयुर्वेदिक पद्धतियों की नींव रखी।
ग) यह पूरी तरह से सर्जिकल तकनीकों पर केंद्रित था।
घ) यह एक चिकित्सा ग्रंथ के बजाय एक धार्मिक ग्रंथ था।

117. सुश्रुत संहिता जैसे प्राचीन ग्रंथों का परीक्षण हमें क्या समझने में मदद करता है?

क) प्राचीन सभ्यताओं की सांस्कृतिक प्रथाएँ
ख) शारीरिक ज्ञान का विकास
ग) प्राचीन लोगों की आहार संबंधी आदतें
घ) प्राचीन समाज की धार्मिक मान्यताएँ

118. चिकित्सा के क्षेत्र में सुश्रुत मुख्य रूप से किस लिए जाने जाते हैं?

क) सामान्य सर्जरी
ख) प्लास्टिक सर्जरी
ग) आर्थोपेडिक सर्जरी
घ) कार्डियक सर्जरी

119. सुश्रुत की विशेषज्ञता के हिस्से के रूप में निम्नलिखित में से किस प्रक्रिया का उल्लेख नहीं किया गया था?

क) राइनोप्लास्टी
ख) ईयरलोब की मरम्मत
ग) होंठ पुनर्निर्माण
घ) हृदय प्रत्यारोपण

120. सुश्रुत की विधियों में कौन सी नवीन तकनीक शामिल थी जिसमें ऊतक प्रत्यारोपण शामिल था?

क) टांके लगाना
ख) ग्राफ्टिंग
ग) क्लैंपिंग
घ) पट्टी बांधना

121. एनेस्थीसिया के क्षेत्र में सुश्रुत का प्रमुख योगदान क्या था?

क) शल्य चिकित्सा उपकरणों का विकास
ख) हर्बल धूमन तकनीकों का उपयोग
ग) पहली संवेदनाहारी मशीन का निर्माण
घ) सामान्य संज्ञाहरण का परिचय

122. शल्य चिकित्सा प्रक्रियाओं के दौरान दर्द को रोकने के लिए सुश्रुत ने किन पदार्थों का उपयोग किया?

क) मॉर्फिन और कोडीन
ख) अफीम, भांग, और शराब
ग) नोवोकेन और लिडोकेन
घ) ईथर और क्लोरोफॉर्म

123. रोगों के लिए सुश्रुत की वर्गीकरण प्रणाली किन प्रमुख कारकों पर आधारित थी?

क) गंभीरता, उपचार और ठीक होने का समय
ख) उत्पत्ति, लक्षण विज्ञान, और पूर्वानुमान
ग) आयु, लिंग और भौगोलिक स्थिति
घ) उपचार का प्रकार, चरण और प्रतिक्रिया

124. सुश्रुत की विरासत का कौन सा तत्व आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी को प्रभावित करता है?

क) उनके सर्जिकल उपकरण
ख) मानव शरीर रचना विज्ञान की उनकी समझ
ग) उनका ध्यान पूरी तरह से सौंदर्य प्रक्रियाओं पर है
घ) उसका एनेस्थीसिया का उपयोग

125. सौंदर्य संबंधी चिंताओं को संबोधित करने के अलावा, सुश्रुत की प्रक्रियाओं का उद्देश्य किस अन्य मुद्दे को हल करना था?

क) मनोवैज्ञानिक चिंताएँ
ख) चोटों या जन्मजात विकारों से कार्यात्मक मुद्दे
ग) सर्जरी से संबंधित वित्तीय चिंताएं
घ) रोगियों की सामाजिक स्वीकृति

126. सुश्रुत द्वारा इनहेलेशन एनेस्थीसिया की खोज का महत्वपूर्ण परिणाम क्या था?

क) सर्जिकल जोखिम में वृद्धि
ख) बेहतर रोगी परिणाम
ग) जटिल पुनर्प्राप्ति प्रक्रियाएं
घ) अप्रभावी दर्द प्रबंधन

127. सुश्रुत के कार्य ने भविष्य के सर्जनों के लिए सिद्धांत कैसे स्थापित किए?

क) केवल सर्जिकल सौंदर्यशास्त्र पर ध्यान केंद्रित करके
ख) सभी रोगों की व्यापक समझ विकसित करके
ग) अपनी नवीन तकनीकों और रोगी-केंद्रित दृष्टिकोण के माध्यम से
घ) सभी के लिए एक मानकीकृत शल्य चिकित्सा प्रक्रिया बनाकर

128. रोगों के लिए सुश्रुत की वर्गीकरण प्रणाली का प्राथमिक उद्देश्य क्या था?

क) चिकित्सा शब्दावली को सरल बनाना
ख) एक मानकीकृत उपचार प्रोटोकॉल बनाना
ग) प्रत्येक बीमारी की अधिक गहन समझ के लिए
घ) पारंपरिक उपचारों को ख़त्म करना

129. पाठ के अनुसार स्वास्थ्य देखभाल में सटीक निदान को क्यों आवश्यक माना जाता है?

क) यह रोगी के फॉलो-अप की आवश्यकता को कम करता है
ख) यह सबसे उपयुक्त हस्तक्षेप निर्धारित करने में मदद करता है
ग) यह रोगी को तेजी से डिस्चार्ज करने की सुविधा प्रदान करता है
घ) यह नैदानिक उपकरणों के उपयोग को कम करता है

130. वर्गीकरण के प्रति सुश्रुत के व्यवस्थित दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण परिणाम क्या था?

क) सर्जिकल हस्तक्षेपों पर बढ़ती निर्भरता
ख) स्वास्थ्य समस्याओं के समाधान का एक अधिक संगठित और प्रभावी तरीका
ग) समग्र उपचारों पर अधिक जोर
घ) आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों की प्रासंगिकता में गिरावट

131. सुश्रुत के कार्य ने आधुनिक चिकित्सा को किस प्रकार प्रभावित किया?

क) इसने हर्बल उपचारों का उपयोग स्थापित किया
ख) इसने एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पेश किया जो आज भी प्रासंगिक बना हुआ है
ग) यह पूरी तरह से सर्जिकल तकनीकों पर केंद्रित था
घ) इसने अनुभवजन्य साक्ष्य के उपयोग को खारिज कर दिया

132. सुश्रुत द्वारा विकसित वर्गीकरण प्रणाली किस प्रकार के मूल्यांकन पर आधारित थी?

क) रोगों का यादृच्छिक चयन
ख) प्रत्येक बीमारी का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन
ग) चिकित्सा पद्धतियों का ऐतिहासिक विवरण
घ) रोगी प्रशंसापत्र और अनुभव

133. सुश्रुत के ढांचे में किसी बीमारी की उत्पत्ति और लक्षणों को समझने की क्या भूमिका थी?

क) यह इलाज के लिए अनावश्यक था
ख) इससे मरीज़ की ज़रूरतों के अनुरूप उपचार करने में मदद मिली
ग) इसने निदान प्रक्रिया को जटिल बना दिया
घ) यह केवल दुर्लभ बीमारियों पर लागू होता है

134. रोगी देखभाल पर सुश्रुत के प्रभाव के बारे में निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य है?

क) इसने स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं के बीच भ्रम पैदा किया
ख) इसने संगठित तरीकों के माध्यम से रोगी देखभाल में सुधार किया
ग) इसने निदान के प्रयोग को हतोत्साहित किया
घ) यह मुख्य रूप से केवल सर्जिकल रोगियों पर केंद्रित था

135. पाठ समकालीन समय में सुश्रुत के काम की प्रासंगिकता का वर्णन कैसे करता है?

क) पुराना और अप्रासंगिक
ख) चिकित्सा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण की नींव के रूप में
ग) बिना किसी व्यावहारिक अनुप्रयोग के विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक
घ) मुख्य रूप से पारंपरिक प्रथाओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है

136. सुश्रुत की वर्गीकरण प्रणाली की प्रकृति के बारे में क्या निहित है?

क) यह मनमाना था और इसमें वैज्ञानिक आधार का अभाव था
ख) यह व्यवस्थित और व्यवस्थित था
ग) यह वास्तविक साक्ष्यों पर आधारित था
घ) यह सांस्कृतिक मान्यताओं से प्रभावित था

137. चरक संहिता क्या है?

क) एक महत्वपूर्ण आयुर्वेदिक ग्रंथ
ख) एक प्राचीन संस्कृत काव्य संकलन
ग) हिंदू धार्मिक भजनों का संग्रह
घ) भारतीय शास्त्रीय संगीत पर एक मैनुअल

138. चरक संहिता मूलतः किस भाषा में रचित है?

क) अरबी
ख) लैटिन
ग) संस्कृत
घ) हिंदी

139. चरक संहिता का वर्तमान स्वरूप किस शताब्दी के आसपास बना?

क) दसवीं शताब्दी ई.पू
ख) पांचवीं शताब्दी ई.पू
ग) तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व
घ) प्रथम शताब्दी ई.पू

140. चरक संहिता में कितने स्थान (विभाग) हैं?

क) पांच
ख) आठ
ग) बारह
घ) दस

140. चरक संहिता का इंद्रियस्थान विभाग मुख्य रूप से किससे संबंधित है?

क) अरिष्ट लक्षण (महत्वपूर्ण लक्षण)
ख) सामाजिक और आर्थिक ढाँचे
ग) योग और ध्यान अभ्यास
घ) आयुर्वेदिक दवाएं

141. इन्द्रियस्थान में कितने अध्याय हैं?

क) तीस
ख) पांच
ग) बारह
घ) बीस

142. किस चतुस्का में अध्याय 1 से 4 तक शामिल है और दवाओं का विवरण प्रदान करता है?

क) निर्देश चतुस्का
ख) कल्पना चतुस्का
ग) औषध चतुस्का
घ) स्वस्थवृत्त चतुस्का

143. चरक संहिता के संदर्भ में चतुस्क क्या हैं?

क) आयुर्वेदिक औषधियों के प्रकार
ख) अनुष्ठानों में प्रयुक्त मंत्र
ग) आहार प्रथाओं पर अनुभाग
घ) प्रभागों में से प्रत्येक में चार अध्याय हैं

144. वर्तमान में उपलब्ध चरक संहिता भाष्य को किस प्रकार विभाजित किया गया है?

क) चतुस्का और संग्रहाध्याय
ख) पूर्वार्ध और उत्तरार्ध
ग) सूत्रस्थान और शरीरस्थान
घ) इंद्रियस्थान और निदानस्थान

145. कौन सा चतुस्का स्वस्थ लोगों को स्वस्थ रखने के लिए स्वास्थ्य संबंधी अनुशंसाओं से संबंधित है?

क) निर्देश चतुस्का
ख) औषध चतुस्का
ग) कल्पना चतुस्का
घ) स्वस्थवृत्त चतुस्का

146. निदानस्थान खंड में कितने सूत्र हैं?

क) 382
ख) 247
ग) 354
घ) 378

147. निम्नलिखित में से कौन सा रोग निदानस्थान अनुभाग में शामिल नहीं है?
   क) अस्थमा
   ख) कुस्ता (कुष्ठ रोग)
   ग) प्रमेह (मधुमेह)
   घ) ज्वरा (बुखार)

148. विमानस्थान खंड का प्राथमिक फोकस क्या है?
   क) दोष, रोग और भेषज के संबंध में विशिष्ट ज्ञान
   ख) पल्स डायग्नोस्टिक्स
   ग) रोगों का रोगजनन
   घ) शरीर की शारीरिक रचना और शरीर विज्ञान

149. शरीरस्थान खंड में कितने सूत्र विस्तृत हैं?
   क) 378
   ख) 354
   ग) 382
   घ) 247

150. चरक संहिता के किस खंड में गर्भावस्था और भ्रूण के विकास का विस्तृत विवरण शामिल है?
   क) निदानस्थान
   ख) विमानस्थान
   ग) इंद्रियस्थान
   घ) शरीरस्थान

151. चरक ने नाड़ी निदान अनुभाग में किस निदान पद्धति को लोकप्रिय बनाया?
   क) एक्स-रे
   ख) नाड़ी परीक्षा
   ग) टैटू
   घ) रक्त परीक्षण

152. इन्द्रियस्थान खण्ड में कितने अध्याय हैं?
   क) 30
   ख) 8
   ग) 12
   घ) 44

153. चरक संहिता का कौन सा भाग उपचार दर्शन और रसायन से संबंधित है?
   क) कल्पस्थान
   ख) चिकित्सस्थान
   ग) निदानस्थान
   घ) विमानस्थान

154. चिकित्सास्थान के पहले दो अध्यायों में कौन से दो मुख्य विषय शामिल हैं?
   क) स्रोत और अमाशय
   ख) दोष और रोग
   ग) रसायन और वाजीकरण
   घ) एनाटॉमी और फिजियोलॉजी

155. कौन सा अनुभाग पंचकर्म चिकित्सा की विस्तृत व्याख्या प्रदान करता है?
   क) इंद्रियस्थान
   ख) सिद्धिस्थान
   ग) कल्पस्थान
   घ) शरीरस्थान

156. आयुर्वेद में शरीर को नियंत्रित करने वाले तीन प्राथमिक दोष कौन से हैं?
   क) वात, पित्त और कफ
   ख) सोम, तेज और रक्त
   ग) अग्नि, प्राण और निद्रा
   घ) चिंता, अवसाद और तनाव

157. कौन सा आयुर्वेदिक उपचार विशेष रूप से पुनर्जनन और शुद्धिकरण के उद्देश्य से है?
   क) पंचकर्म
   ख) आयुर्वेदिक मनोविज्ञान
   ग) रसायन
   घ) मर्म चिकित्सा

158. आयुर्वेद में 'प्रकृति' का तात्पर्य क्या है?
   क) मौसमी चक्र
   ख) एक प्रकार की हर्बल दवा
   ग) व्यक्ति के प्रमुख दोष
   घ) एक विशिष्ट ध्यान तकनीक

159. निम्नलिखित में से कौन सी पंचकर्म चिकित्सा में प्रयुक्त विधि नहीं है?
   क) नाक की सफाई (नास्य)
   ख) चिकित्सीय उल्टी (वामन)
   ग) एक्यूपंक्चर
   घ) हर्बल मालिश

160. आयुर्वेद सर्दियों के दौरान वात और कफ ऊर्जा को संतुलित करने का सुझाव कैसे देता है?
   क) शारीरिक गतिविधि बढ़ाना
   ख) गर्म करने वाले खाद्य पदार्थों और मसालों को शामिल करना
   ग) ठंडे खाद्य पदार्थों और मसालों का उपयोग करना
   घ) नियमित रूप से उपवास करना

161. आयुर्वेद में रसायन का केन्द्र बिन्दु क्या है?
   क) मानसिक स्वास्थ्य और ध्यान
   ख) नींद का पैटर्न और आराम
   ग) जीवन काल और नवीकरण
   घ) पाचन और चयापचय

162. आयुर्वेद में मर्म बिन्दु सम्बंधित हैं:
   क) आहार संबंधी आदतें
   ख) आवश्यक ऊर्जा बिंदु
   ग) मौसमी परिवर्तन
   घ) हर्बल उपचार

163. सामान्य स्वास्थ्य को बनाए रखने और बीमारियों की रोकथाम के लिए आयुर्वेद में किस प्राचीन पद्धति पर जोर दिया गया है?
   क) योग और ध्यान जैसे निवारक उपाय
   ख) सर्जिकल परिशुद्धता
   ग) एनेस्थीसिया का विकास
   घ) एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग

164. पश्चिम में एनेस्थीसिया के आविष्कार से पहले प्राचीन भारतीय सर्जन सर्जरी के दौरान दर्द का प्रबंधन कैसे करते थे?
   क) संगीत से मरीज़ों का ध्यान भटकाना
   ख) अफ़ीम और भांग जैसी हर्बल दर्द निवारक दवाओं का उपयोग करना
   ग) दर्द का समाधान किए बिना सर्जरी करना
   घ) कोल्ड कंप्रेस का उपयोग करना

165. आयुर्वेदिक मनोविज्ञान में, मानसिक और भावनात्मक संतुलन को बढ़ावा देने के लिए किन तकनीकों का उपयोग किया जाता है?
   क) संदंश और स्केलपेल
   ख) चिकित्सीय उल्टी और नाक की सफाई
   ग) हर्बल मालिश और आहार परिवर्तन
   घ) प्राणायाम और ध्यान

उत्तर दर्शिका

प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प
1	(ख)	23	(ख)	45	(ग)
2	(ख)	24	(ख)	46	(क)
3	(ख)	25	(ग)	47	(ग)
4	(ग)	26	(ग)	48	(घ)
5	(ख)	27	(ख)	49	(ख)
6	(ग)	28	(ख)	50	(ख)
7	(ग)	29	(क)	51	(ख)
8	(ग)	30	(ख)	52	(ख)
9	(ख)	31	(ख)	53	(ख)
10	(ख)	32	(ख)	54	(क)
11	(ग)	33	(ख)	55	(ग)
12	(ख)	34	(ग)	56	(ग)
13	(ख)	35	(ख)	57	(ग)
14	(ख)	36	(ख)	58	(ख)
15	(ख)	37	(ख)	59	(ग)
16	(ख)	38	(घ)	60	(क)
17	(ग)	39	(ख)	61	(ख)
18	(ख)	40	(ग)	62	(ख)
19	(ग)	41	(घ)	63	(ख)
20	(ख)	42	(ख)	64	(ख)
21	(ख)	43	(ग)	65	(घ)
22	(ख)	44	(ग)	66	(ग)

प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प
67	(ख)	92	(ग)	117	(ख)
68	(ख)	93	(ख)	118	(ख)
69	(ख)	94	(ख)	119	(घ)
70	(ख)	95	(ख)	120	(ख)
71	(ख)	96	(ख)	121	(ख)
72	(ख)	97	(ख)	122	(ख)
73	(ख)	98	(ख)	123	(ख)
74	(क)	99	(ग)	124	(ख)
75	(घ)	100	(ग)	125	(ख)
76	(ग)	101	(ग)	126	(ख)
77	(ख)	102	(ख)	127	(ग)
78	(ग)	103	(ग)	128	(ग)
79	(ख)	104	(ग)	129	ख)
80	(ग)	105	(घ)	130	(ख)
81	(ख)	106	(क)	131	(ख)
82	(ग)	107	(ख)	132	(ख)
83	(ख)	108	(ख)	133	(ख)
84	(ख)	109	(ग)	134	(ख)
85	(ग)	110	(ग)	135	(ख)
86	(ग)	111	(ग)	136	(ख)
87	(ख)	112	(ग)	137	(क)
88	(ख)	113	(ख)	138	(ग)
89	(ग)	114	(ग)	139	(ग)
90	(ख)	115	(ग)	140	(ख)
91	(ख)	116	(ख)	141	(क)

प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प
142	(ग)	151	(घ)	160	(ग)
143	(ग)	152	(ख)	161	(ख)
144	(घ)	153	(ग)	162	(ग)
145	(ख)	154	(ख)	163	(ख)
146	(घ)	155	(ग)	164	(क)
147	(ख)	156	(ख)	165	(ख)
148	(क)	157	(क)	166	(घ)
149	(क)	158	(क)		
150	(ग)	159	(ग)		

Bharat Boudhiks

खंड-8

अन्न और उद्योग

प्राचीन भारत की उत्पादक शक्ति

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान



भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251
E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg
http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

अन्न और उद्योग
प्राचीन भारत की उत्पादक शक्ति

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अन्न और उद्योग
प्राचीन भारत की उत्पादक शक्ति

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **अन्न और उद्योग : प्राचीन भारत की उत्पादक शक्ति**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, जितेन्द्र कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-52-9

मूल्य : 220/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

प्रस्तावना	9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1. भूमिका	13
2. प्राचीन भारत में कृषि की शुरुआत के विभिन्न पुरातात्त्विक प्रमाण	15
3. महाभारत और वेदों में कृषि का उल्लेख	16
4. वेदों में कृषि का महत्व	17
5. वैदिक कृषि तकनीक: एक विस्तृत अध्ययन	19
6. फसल चक्र और फसल प्रबंधन: वैदिक कृषि पद्धतियों का सूक्ष्म विश्लेषण	26
7. कृषि में सहजीवी पद्धतियाँ	28
8. कृषि से संबंधित धार्मिक अनुष्ठान	28
9. सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण	33
10. प्राचीन भारत में खाद्य प्रसंस्करण	33
11. प्राचीन भारत में कृषि आधारित उद्योग	37
12. कृषि और व्यापार का आपस में जुड़ाव	42
13. निष्कर्ष	43
अनुशंसित पठन सामग्री	44
बहुविकल्पीय प्रश्न	46
उत्तरदर्शिका	69

"India is the land of dreams. India had always dreamt - more of the Bliss that is man's final goal. And this has helped India to be more creative in history than any other nation. Hence the effervescence of myths and legends, religions, and philosophies, music, and dances and the different styles of architecture."

(Source: A Survey of Hinduism by - Klaus K. Klostermaier, Page-25)

* * * * *



Friedrich Hegel

(1770-1831)

One of the greatest German philosophers, and an important figure of German Idealism. His major achievement is a distinctive articulation of Idealism. His Historicist and Idealist account of the total reality as a whole revolutionized European philosophy. His philosophical works provided the theoretical frameworks and conceptual blueprints which were influential in the creation and formation of government structures. Hegel influenced many thinkers and writers, such as Theodor W. Adorno, Karl Barth, Bauer, Karl Marx, Bosanquet, Bradley Simone de Beauvoir, Judith Butler, Benedetto Croce, Jacques Derrida, Friedrich Engels, Ludwig Feuerbach, Paul Charles Aymard Sartre, Giovanni Gentile, Søren Aabye Kierkegaard Herbert Marcuse et al.

प्रस्तावना



कृषि भारतीय सभ्यता की नींव रही है तथा इससे भारत की अर्थव्यवस्था, संस्कृति एवं उद्योगों को आकार मिला है। वैदिक परंपराओं में निहित, भारतीय कृषि ने स्थिरता, नवाचार और प्रकृति के साथ सामंजस्य पर जोर दिया।

भारतीय परंपरा में कृषि केवल भोजन उत्पन्न करने का माध्यम नहीं, बल्कि यह एक पुण्य कर्म और सांस्कृतिक आस्था का प्रतीक रही है। यहाँ हल चलाना केवल श्रम नहीं, बल्कि धरती माता की पूजा के समान समझा गया। कृषि से जुड़े पर्व, जैसे मकर संक्रांति, लोहड़ी और पोंगल, केवल ऋतु परिवर्तन नहीं दर्शाते, बल्कि समाज की सामूहिक चेतना और आपसी सहयोग का उत्सव हैं।

प्राचीन ग्रंथों में उन्नत कृषि तकनीकों, बीज चयन, सिंचाई और जैविक उर्वरकों का विस्तृत विवरण दिया गया है, जो गहन कृषि ज्ञान को प्रदर्शित करता है। प्राचीन भारत में खाद्य प्रसंस्करण भी उतना ही महत्वपूर्ण था, जिसमें मिलिंग, अचार बनाने और डेयरी प्रसंस्करण जैसी तकनीकों के माध्यम से पोषण को संरक्षित करना और स्वाद को बढ़ाना शामिल था। आयुर्वेद ने भोजन तैयार करने को प्रभावित किया, जिससे स्वास्थ्य लाभ और दीर्घायु सुनिश्चित हुई।

कपड़ा, पशुपालन, धातु शोधन और सुगंधित उत्पादों सहित कृषि-आधारित उद्योगों ने व्यापार और आत्मनिर्भरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय वस्त्र, मसाले और धातुक्रम विश्व स्तर पर प्रसिद्ध थे, जिससे भारत का आर्थिक प्रभाव मजबूत हुआ। कृषि और उद्योग की यह समृद्ध परंपरा भारत की सरलता, स्थिरता और प्रकृति के साथ गहरे संबंध को दर्शाती है - ऐसे सिद्धांत जो आज भी प्रासंगिक हैं।

"In the Indian ancient scriptures, the idea of man is quite illimitable and sublime. He is at length lost in the Supreme Entity himself."

Source: The Writings of Henry D. Thoreau - Walden

* * * * *



Henry David Thoreau

(1817-1862)

Great American essayist, poet, philosopher, and historian. He met Ralph Waldo Emerson and followed Transcendentalism advocated by him. Thoreau was also a devout abolitionist, who constantly attacked the Fugitive Slave Law. He wrote volumes of books, articles, essays, journals and poetry; and is remembered for his writings on natural history and philosophy. His philosophy of Civil disobedience had an impact on the political ideologies and actions of successive generations of great icons, such as, Leo Tolstoy, William Butler Yeats, Bernard Shaw, Ernest Hemingway, Walt Whitman, Mahatma Gandhi, Martin Luther King, John Kennedy.

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

अन्न
प्राचीन भारत

1. भूमिका

मनुष्य जीवन की अनंत यात्रा में
से प्रभावित किया है, तो वह है
रही है, अपितु अस्तित्व, संस्कृ
मानव समाज की कल्पना भी
पहचाना और बीज बोने, अंकु
उसकी जिजीविषा ने एक नय
बसाए, समाज रचे, और संस

इतिहासकारों की स
सभ्यता की पहली ईंट रखी
बसते, न साम्राज्य उठते, न
गगन चूमतीं। कृषि से जुड़
के सांस्कृतिक और नैतिक

आधुनिक विद्वान
कर जीवनयापन करता थ
की। उनके अनुसार अ
और दुग्ध पर निर्भर था
को अमृततुल्य बताया
न होकर जीवन के नैति
था। ऋग्वेद, अथर्ववेद
थी कि बिना जुताई के

अन्न और उद्योग:
प्राचीन भारत की उत्पादक शक्ति



1. भूमिका

मनुष्य जीवन की अनंत यात्रा में यदि किसी पड़ाव ने उसकी नियति को सर्वाधिक गहराई से प्रभावित किया है, तो वह है–कृषि। भोजन न केवल उसकी शारीरिक आवश्यकता रही है, अपितु अस्तित्व, संस्कृति और सभ्यता की वह पहली सीढ़ी भी है, जिसके बिना मानव समाज की कल्पना भी असंभव थी। जिस क्षण मानव ने पृथ्वी की उर्वरता को पहचाना और बीज बोने, अंकुरण, सिंचन और फसल कटाई की कला सीखी-उसी क्षण उसकी जिजीविषा ने एक नयी दिशा पाई। तभी उसने खानाबदोश जीवन त्यागकर गाँव बसाए, समाज रचे, और संस्कृति का नव निर्माण किया।

इतिहासकारों की सम्मिलित मान्यता है कि कृषि ही वह आदिकला है, जिससे सभ्यता की पहली ईंट रखी गई। यदि मानव ने खेतों में हल न चलाया होता, तो न नगर बसते, न साम्राज्य उठते, न शास्त्र-साहित्य की रचना होती और न ही मंदिरों की ऊँचाइयाँ गगन चूमतीं। कृषि से जुड़ी यह यात्रा मात्र उदर पूर्ति की नहीं थी, यह थी सम्पूर्ण मानवता के सांस्कृतिक और नैतिक विकास की आधारभूमि।

आधुनिक विद्वानों का मत है कि आदिम मानव प्रारंभ में मांसाहारी था-शिकार कर जीवनयापन करता था। परंतु हमारे प्राचीन भारतीय ऋषियों ने इससे भिन्न दृष्टि प्रस्तुत की। उनके अनुसार आदि मानव मांसाहार नहीं, बल्कि प्रकृति प्रदत्त फल, फूल, मूल और दुग्ध पर निर्भर था। यही कारण है कि हमारे वैदिक ग्रंथों में **"अन्न"** और **"क्षीर"** को अमृततुल्य बताया गया है, न कि माँस को। यह दृष्टिकोण केवल पोषण तक सीमित न होकर जीवन के नैतिक आदर्शों तक विस्तृत है–**"अहिंसा परमो धर्मः"** का यही मूल था। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों से हमें संकेत मिलते हैं कि पृथ्वी तब इतनी उर्वरा थी कि बिना जुताई के भी धान्य, फल, औषधियाँ स्वतः उत्पन्न होती थीं। यही कारण है

कि वैदिक साहित्य ने धरती को **"अकृष्टपच्या"** (बिना जोती हुई भी अन्न प्रदान करने वाली) तथा **"उर्वी"** (उर्वरा भूमि) जैसे विशेषणों से विभूषित किया। महाभारत के द्रोण पर्व (69/4) में तो ऐसे भूमि खण्डों को **"कामधुक्"** कहा गया है-यानी वह भूमि जो इच्छानुसार फल प्रदान करती है, ठीक वैसी ही जैसे कामधेनु गौ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (1/6/1/11) में वर्णन आता है कि इस **अकृष्टपच्या** भूमि पर उत्पन्न होने वाले अन्न, फल और वनस्पतियाँ **'सोम'** कही गई हैं। सोम अर्थात वह पवित्र द्रव्य जो न केवल शरीर, अपितु आत्मा को भी पुष्ट करता है। यह प्रमाणित करता है कि ऋषियों की दृष्टि में भूमि केवल भौतिक उत्पादन की साधिका न थी, बल्कि जीवन-ऊर्जा की स्रोतस्विनी थी-एक दिव्य शक्ति, जो अपने अंक से अनायास जीवन रस उत्पन्न करती थी।

"सोमो वा अकृष्टपच्यस्य राजा सोमो औषधिः।"

कल्पना कीजिए उस प्राचीन काल की-जहाँ धरती पर हल का पहला रेख खिंचने से पहले ही, वृक्षों से लद कर फल गिरते थे, लताओं पर औषधियाँ सुलभ थीं, और घास में अन्न के दाने छिपे थे। यह प्रकृति का स्वर्णयुग था, जब मानव और पृथ्वी के मध्य किसी कृत्रिम साधन की आवश्यकता नहीं थी। यह यथार्थ हमारे शास्त्रों की कालजयी वाणी में आज भी जीवित है।इस प्रकार कृषि भारतीय संस्कृति में केवल उदर पूर्ति का साधन नहीं रही, अपितु वह वह सेतु रही जिसने मानव को प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, सह-क्रिया और सौन्दर्यबोध के अद्भुत बन्धन में बाँधा। इस कृषि-संस्कृति ने ही भारत को **'अन्नदाता'** कहा, **'भूमिपुत्र'** कहा, और **"कृषक"** शब्द को गौरव का पर्याय बना दिया।

वायुपुराण (61/172) के अनुसार, चाक्षुष मन्वंतर के अंत तक पृथ्वी की यह नैसर्गिक उर्वरता बनी रही, जब तक न कृषिकार्य, न पशुपालन और न व्यापार जैसी गतिविधियाँ आरंभ हुई थीं–

"न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः,
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमेतदासीत् पुरा किल।"

समय के साथ जब पृथ्वी की स्वाभाविक उर्वरता क्षीण होने लगी, तब मनुष्य ने कृषि की विधियों को विकसित किया और भूमि के कर्षण की आवश्यकता अनुभव की। वैवस्वत मन्वंतर से आरंभ होकर यह कृषि परंपरा आज भी मानव समाज का आधार बनी हुई है। भारतवर्ष में कृषि न केवल एक आजीविका का साधन रही, बल्कि वैदिक चिंतन में इसे एक दिव्य कर्तव्य और विज्ञान की तरह प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद में कृषि की विधियाँ विस्तार से वर्णित हैं और इसे एक आनंदमय कार्य के रूप में करने की प्रेरणा दी गई है-

"शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रमुर्विङ्गया।" (ऋ. 4/57/4)।

खेतों को बार-बार जोतने और कृषि को ऋतुचक्र के अनुसार संयोजित करने की बात भी की गई है–

"उतो स महामिन्दुभिः षड्युक्तों अनुसेर्पियत्।
गोभिर्यवं न चर्कृषत्।" (ऋ. 1/23/15)

इसी वेदसम्मत परंपरा को आगे बढ़ाते हुए वेनपुत्र राजा पृथु ने पृथ्वी को समतल कर उसका कृषि योग्य रूप में परिष्कार किया। उन्होंने पृथ्वी को जनकल्याण के लिए सजाया और इसी कारण पृथ्वी को "पृथ्वी" कहा जाने लगा। ऋग्वेद में यह भी निर्देश मिलता है कि इंद्र, पूषा, पर्जन्य जैसे देवताओं से प्रार्थना की जाए कि वे कृषि कार्य को सफल बनाएं-

"इंद्रः सीतां नि गृहातु तां पूषानु यच्छतु।
शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमि शुन कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।"

(ऋ. 4/57/7–8)

इस प्रकार कृषि केवल भौतिक जीविका का साधन न होकर भारतीय दृष्टिकोण में एक सांस्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपरा का अंग भी रही है, जिसकी गूंज वेदों से लेकर पुराणों और महाकाव्यों तक सुनाई देती है।

2. प्राचीन भारत में कृषि की शुरुआत के विभिन्न पुरातात्त्विक प्रमाण

प्राचीन भारत में कृषि की शुरुआत के प्रमाण विभिन्न पुरातात्त्विक स्थलों से प्राप्त होते हैं, जो यह दर्शाते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि का इतिहास अत्यंत प्राचीन है।

- **कोल्डीहवा (Koldihwa)**

उत्तर प्रदेश के कोल्डीहवा में किए गए उत्खनन से लगभग 7000 ईसा पूर्व के चावल की खेती के प्रमाण मिले हैं। यह स्थल बेलन नदी के किनारे स्थित है और यहां से प्राप्त चावल के अवशेष यह संकेत करते हैं कि इस क्षेत्र में चावल की खेती प्राचीन काल से की जाती रही है। यह स्थल निओलिथिक, चाल्कोलिथिक और प्रारंभिक लौह युग के अवशेषों के लिए प्रसिद्ध है।

(Source: Ancient Agriculture in the Indian Subcontinent: The Archaeobotanical Evidence September 2020, DOI: 10.1002/9781118970959.ch28)

- **महागढ़ा (Mahagara)**

उत्तर प्रदेश के महागढ़ा में भी चावल की खेती के प्रमाण मिले हैं, जो लगभग 2000 ईसा पूर्व के हैं। यह स्थल मध्य गंगा घाटी में स्थित है और यहां से प्राप्त चावल के अवशेष यह दर्शाते हैं कि इस क्षेत्र में कृषि का विकास प्राचीन काल में हुआ था। महागढ़ा में किए गए उत्खनन से चावल के अवशेषों के साथ-साथ बकरियों, घोड़ों, हिरणों और जंगली सुअरों की हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जो पशुपालन की ओर संकेत करती हैं।

- **लाहुरादेवा (Lahuradewa)**

उत्तर प्रदेश के संत कबीर नगर जिले में स्थित लाहुरादेवा में किए गए उत्खनन से लगभग 6000-5000 ईसा पूर्व के चावल की खेती के प्रमाण मिले हैं। यह स्थल गंगा के मैदानी क्षेत्र में स्थित है और यहां से प्राप्त कार्बनयुक्त सामग्री में चावल के दाने और उनके छिलके के निशान पाए गए हैं, जो इस क्षेत्र में प्राचीन काल में चावल की खेती की पुष्टि करते हैं।

(Source: J. Bates et al. Approaching rice domestication in South Asia: new evidence from Indus settlements in northern India. Journal of Archaeological Science, published online November 21, 2016; doi: 10.1016/j.jas.2016.04.018.;

(Source: C.A. Petrie et al. Feeding ancient cities in South Asia: dating the adoption of rice, millet and tropical pulses in the Indus civilisation. Antiquity 90 (354): 1489-1504; doi: 10.15184/aqy.2016.210)

3. महाभारत और वेदों में कृषि का उल्लेख

प्राचीन भारतीय साहित्य में भी कृषि का विस्तृत वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में कृषि से संबंधित कई श्लोक हैं, जो कृषि की विधियों और कृषि कर्म के महत्व को दर्शाते हैं। उदाहरण स्वरूप:

"शुनं वाहाः शुनं नईः शुनं कृपतु लाङ्गलम्।"

ऋग्वेद 4.57.4

अर्थात्, बैल अच्छे हों, हल अच्छा हो, और हल चलाने वाला व्यक्ति भी अच्छा हो।

"उतो स महामिन्दुभिः षड्युक्तों अनुसेर्पियत्।"

ऋग्वेद 1.23.15

अर्थात्, खेतों को बार-बार जोता जाए और कृषि कार्य ऋतु के अनुसार किया जाए।

इन श्लोकों से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में कृषि को एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता था और इसके लिए विशेष विधियों का पालन किया जाता था। इसके

अतिरिक्त कृषि ज्ञान में **भूमि की उर्वरता** और **कृषि की विधियों** का विस्तृत वर्णन मिलता है। **'भूमिवर्ग'** नामक संस्कृत ग्रंथ में कृषि योग्य भूमि की 12 श्रेणियाँ बताई गई हैं: **उर्वर, उशारा, मरू, अप्रहता, शद्वल, पंकिकला, जलप्राय, कच्छहा, शर्करा, शर्करावती, नदीमात्रका** और **देवमात्रका**। यह ग्रंथ भूमि की उर्वरता और कृषि की विविधता को समझने में सहायक है।

भारत में कृषि की शुरुआत और विकास के प्रमाण विभिन्न पुरातात्त्विक स्थलों और ग्रंथों में मिलते हैं, जो यह दर्शाते हैं कि भारतीय समाज ने कृषि को अपनी सभ्यता और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा माना है।



कृषि मानव सभ्यता की नींव

4. वेदों में कृषि का महत्व

वेदों में कृषि को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि यह मानव जीवन के आधारभूत तत्वों में से एक है। वेदों में न केवल कृषि कार्यों का उल्लेख किया गया है, बल्कि यह भी बताया गया है कि किस प्रकार कृषि और कृषि कर्म जीवन के निर्वाह और समृद्धि के लिए आवश्यक हैं।

4.1 ऋग्वेद में कृषि

ऋग्वेद में कृषि की महत्ता को बार-बार दर्शाया गया है। इसमें कृषि से संबंधित कई मंत्र और उपदेश हैं, जो यह बताते हैं कि अन्न की उत्पत्ति पृथ्वी से होती है और यह मनुष्य के जीवन का आधार है। वेद में यह भी कहा गया है कि कृषि कार्य के बिना मानव जीवन संभव नहीं है। उदाहरण स्वरूप, ऋग्वेद 10.34.13 में कहा गया है:

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥

अर्थ: "हे जुआ खेलने वाले! तुम जुए के खेल में मत लगो। कृषि करो, खेती करो, धन्य रहो और प्रसन्न रहो। वहाँ गायें सुरक्षित हैं, वहाँ पत्नी सुखी है, वहाँ सूर्य देवता मेरी भलाई के लिए दृष्टि डालते हैं।"

इस श्लोक में ऋग्वेद ने स्पष्ट रूप से बताया है कि कृषि कार्य न केवल भौतिक समृद्धि का कारण है, बल्कि यह पारिवारिक सुख और सामाजिक स्थिरता का भी स्रोत है।

4.2 कृषि और समृद्धि

वेदों में कृषि को समृद्धि और समग्र जीवन के संतुलन से जोड़ा गया है। वेदों के अनुसार, यदि कृषि सही तरीके से की जाए तो इससे समाज की समृद्धि, आहार की उपलब्धता, और जीवन के अन्य पहलुओं का विकास होता है। कृषि से ही अन्न की प्राप्ति होती है, और अन्न मानव जीवन का मुख्य पोषक तत्व है।

4.3 ऋषि पराशर का दृष्टिकोण

ऋषि पराशर ने भी कृषि को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार, कृषि कार्य को सर्वोत्तम माना गया है, क्योंकि यह न केवल जीवन की आवश्यकताएं पूरी करता है, बल्कि समाज के समग्र विकास में भी योगदान देता है। पराशर ने यह भी बताया कि कृषि से जुड़े कार्यों को ठीक से किया जाना चाहिए, और उन्होंने किसानों को कृषि में पूरी निष्ठा से काम करने की सलाह दी।

4.4 कृषि और धर्म

वेदों में कृषि को धार्मिक कार्यों से भी जोड़ा गया है। कृषि से जुड़े कई अनुष्ठान और यज्ञों का उल्लेख मिलता है, जिनका उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना और पृथ्वी से

अन्न की उपज को बढ़ाना था। वेदों में यह भी कहा गया है कि कृषि कार्य को भगवान के प्रति एक श्रद्धा के रूप में देखा जाए।

वेदों में कृषि केवल एक व्यवसाय नहीं, बल्कि यह जीवन के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह मानव जीवन के पोषण, समृद्धि और धर्म से जुड़ा हुआ कार्य है, जो समाज के हर स्तर पर आवश्यक है। वेदों में कृषि को समग्र जीवन की आधारशिला माना गया है, और इसके माध्यम से प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रेरणा दी गई है।

5. वैदिक कृषि तकनीक: एक विस्तृत अध्ययन

वैदिक काल के साहित्य में कृषि को न केवल एक जीविका का साधन, बल्कि एक सशक्त और समृद्ध समाज की नींव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय सभ्यता का यह समय कृषि विज्ञान के अद्वितीय ज्ञान से परिपूर्ण था, जिसे हम आज भी आधुनिक कृषि पद्धतियों से जोड़ सकते हैं। इस अध्याय में हम वैदिक कृषि तकनीकों के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन करेंगे, जिसमें भूमि चयन, मिट्टी का परीक्षण, बीज का चयन, कृषि उपकरणों का उपयोग, जल प्रबंधन और कृषि कर्मों के धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

5.1 कृषि की वैदिक अवधारणा और शब्दावली

वेदों में कृषि की महत्ता को गहराई से समझा गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद में कृषि से संबंधित अनेक मंत्र और श्लोक हैं, जो इसके महत्व को स्पष्ट करते हैं। विशेष रूप से ऋग्वेद में **"कृषन्तः"**, **"लुनन्तः"**, **"वपन्तः"**, **"मृणन्तः"** जैसे शब्दों का उल्लेख किया गया है, जो विभिन्न कृषि कार्यों को व्यक्त करने के लिए प्रयोग में लाए गए थे। इन शब्दों से यह प्रतीत होता है कि वैदिक काल में कृषि को व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप से समझा जाता था। उदाहरण स्वरूप, ऋग्वेद 10/34/13 में यह कहा गया है:

"अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व"

इस श्लोक का अर्थ है कि कृषि कार्यों को सर्वोत्तम प्राथमिकता दी जानी चाहिए और मनुष्य को अपने जीवन के लिए आवश्यक कृषि कार्यों में संलग्न होना चाहिए। यह वेदों में कृषि के प्रति न केवल सम्मान, बल्कि इसके कर्तव्यों के प्रति भी एक गहरी समझ को दर्शाता है।

5.2 भूमि चयन और मिट्टी के गुण

वैदिक काल में भूमि का चयन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया थी। विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में विभिन्न प्रकार की फसलें उत्पन्न होती थीं, और इन विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का वर्गीकरण वेदों में किया गया था। यजुर्वेद 16/33/42-43 और तैत्तिरीय संहिता में भूमि के वर्गीकरण का उल्लेख मिलता है, जिसमें मिट्टी को **उर्वरा (उपजाऊ), शष्याय (घास के योग्य),** और **इरिण्याय (ऊषर)** के रूप में विभाजित किया गया था। इसके अतिरिक्त, बृहत्संहिता में मृदु (चिकनी) मिट्टी का विशेष उल्लेख किया गया है, जो हर प्रकार की खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती थी। इसे **"मृद्धी सर्ववृक्षाणां हिता:"** कहा गया है, जिसका अर्थ है कि मृदु मिट्टी सभी प्रकार के वृक्षों और फसलों के लिए लाभकारी होती है। इस प्रकार, वैदिक काल में मिट्टी की उपजाऊता की पहचान के लिए गहरे शोध किए जाते थे।

5.3 मिट्टी परीक्षण और कृषि विधियां

मिट्टी की उपजाऊता का परीक्षण भी वैदिक काल में एक अनिवार्य प्रक्रिया थी। बृहत्संहिता में उल्लेख मिलता है कि भूमि का परीक्षण तिलों के द्वारा किया जाता था। यदि तिल की फसल अच्छे से उगती थी, तो इसे भूमि की उपजाऊ क्षमता के संकेत के रूप में देखा जाता था।

"तस्यां तिलान् वपेत्। पुष्पितांस्तांश्च मृनीयात्कर्मेतत् प्रथमं भुव:"

(बृहत्संहिता 55/2) के अनुसार, तिल के समृद्ध उत्पादन से यह अनुमान लगाया जाता था कि भूमि पर अन्य फसलें भी अच्छे से उग सकती हैं। इस प्रकार, मिट्टी के परीक्षण के माध्यम से कृषि कार्यों के लिए उपयुक्त भूमि का चयन किया जाता था।

5.4 बीज का चयन और बुवाई की पद्धतियां

वैदिक काल में बीज के चयन को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। ऋग्वेद में बीजों के महत्व पर विशेष ध्यान दिया गया है, और यह कहा गया है कि उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का चयन अच्छे उत्पादन की संभावना को बढ़ाता है। बुवाई के समय मौसम की स्थिति, भूमि की उपजाऊता, और बीज की गुणवत्ता पर गहरी सोच विचार की जाती थी। वैदिक काल में बीजों का चयन न केवल उनकी गुणवत्ता पर निर्भर करता था, बल्कि यह भी ध्यान रखा जाता था कि बीज किस प्रकार की मिट्टी और जलवायु में अच्छे से उगते हैं।

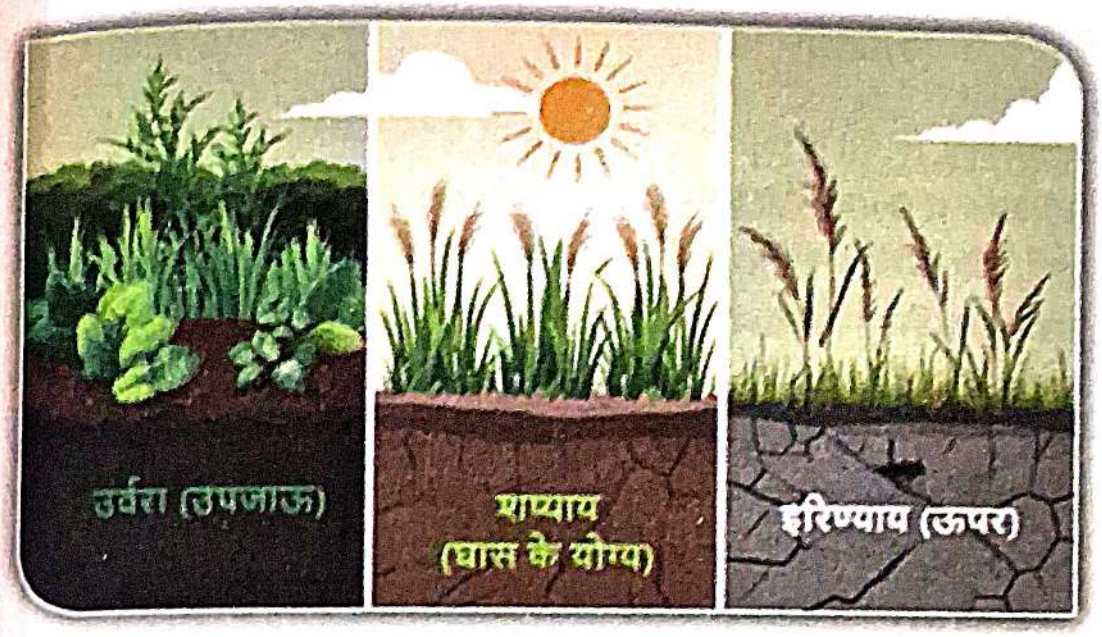

वैदिक कृषि पद्धतियों द्वारा मिट्टी का परीक्षण

5.5 कृषि उपकरण और उनकी भूमिका

वैदिक काल में कृषि कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणों का उपयोग किया जाता था। इनमें प्रमुख रूप से हल (यंत्र), नांगर, फावड़ा और कुदाल जैसे उपकरण शामिल थे। हल का उपयोग भूमि की जुताई के लिए किया जाता था, जिसे बैल या बैल के जोड़ द्वारा खींचा जाता था। नांगर का प्रयोग भूमि को समतल करने और मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए किया जाता था। फावड़ा और कुदाल का उपयोग मिट्टी की खुदाई और बीज बोने के लिए किया जाता था। इन उपकरणों का प्रभावी उपयोग कृषि कार्यों की दक्षता को बढ़ाता था और वैदिक कृषि पद्धतियों के उच्च स्तर को दर्शाता था।

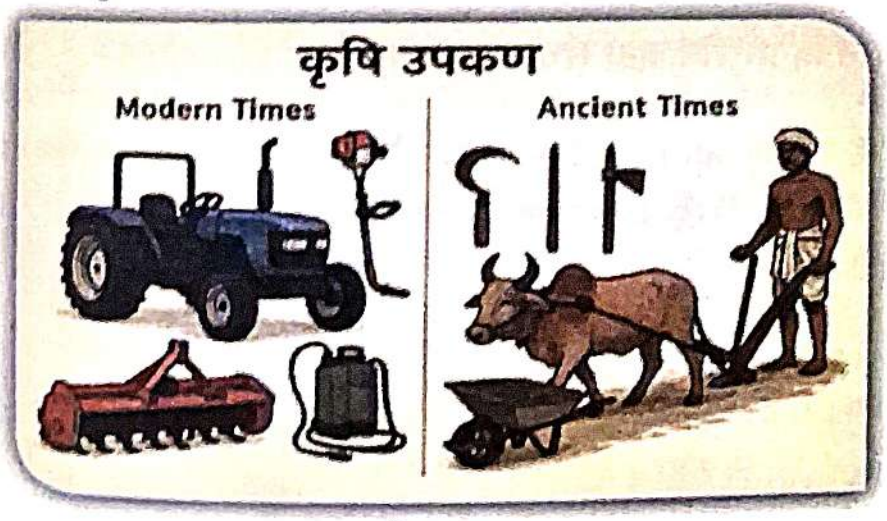

कृषि उपकरण

5.6 जल प्रबंधन और सिंचाई प्रणाली

जल प्रबंधन भी वैदिक काल की कृषि पद्धतियों में एक महत्वपूर्ण पहलू था। जल के महत्व को समझते हुए, वैदिक समाज ने जल संचयन के लिए कई उपाय किए थे। नदियों, नहरों, और कुओं से पानी लाकर सिंचाई की जाती थी। इसके अलावा, जलाशयों और तालाबों का निर्माण किया जाता था, जो जल संचयन का एक प्रभावी उपाय थे। विशेष रूप से, सिंचाई के लिए जल को नहरों और नदियों से खेतों तक लाने की व्यवस्था की जाती थी, ताकि खेती के लिए आवश्यक जल की निरंतर उपलब्धता बनी रहे। वैदिक साहित्य में जल के महत्व को **"अप: प्राणिनां"** के रूप में व्यक्त किया गया है, जो यह संकेत करता है कि जल जीवन का मूल आधार है और इसकी सही प्रबंधन के बिना कृषि संभव नहीं है।



जल प्रबंधन

5.7 भारत के प्राचीन जल संचयन संरचनाएँ

नीचे दी गई तालिका भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों का सार प्रस्तुत करती है, जो प्राचीन भारतीय सभ्यता की बुद्धिमत्ता और पर्यावरणीय जागरूकता का प्रमाण हैं।

जल प्रणाली	क्षेत्र	विवरण एवं विशेषताएँ	सांस्कृतिक / पर्यावरणीय महत्त्व
बावड़ी (वाव, बावली)	राजस्थान, दिल्ली, गुजरात, कर्नाटक	कई मंज़िला सीढ़ीनुमा कुएँ, नक्काशीदार मेहराबें, कक्ष और गहरे जलकूप	समुदायिक मिलनस्थल; शुष्क क्षेत्रों में जीवनरेखा के रूप में उपयोग। (स्रोत 1)
झालारा	राजस्थान	झीलों के रिसाव जल को एकत्र करने वाला आयताकार सीढ़ीनुमा कुंड	मंदिरों और महलों में धार्मिक व दैनिक उपयोग हेतु जल स्रोत। (स्रोत 2)
तालाब / बांधी	सभी क्षेत्र	मध्यम से बड़े जलाशय, प्राकृतिक या कृत्रिम	बाढ़ नियंत्रण, वर्षा जल का वार्षिक उपयोग हेतु भंडारण। (स्रोत 3)
टांका	थार मरुस्थल, राजस्थान	छत से बहने वाले जल को एकत्र करने वाला पक्का भूमिगत जलकुंड	परिवार-आधारित जल स्रोत; रेगिस्तानी जीवन के अनुकूल तकनीक। (स्रोत 3)
आहर-पाइन	दक्षिण बिहार	पाइन (नहर) से बाढ़ का पानी आहर (टंकी) में एकत्रित	धान की खेती के लिए स्थायी बाढ़ जल संचयन प्रणाली। (स्रोत 2)
जोहड़	राजस्थान, हरियाणा	मिट्टी के बांध और प्राकृतिक जलग्रहण क्षेत्र	भूजल पुनर्भरण, मिट्टी में नमी बनाए रखने हेतु उपयोगी। (स्रोत 4)
पनम केनी	वायनाड, केरल	ताड़ी के पेड़ की छाल से बना पवित्र बेलनाकार कुआँ	जनजातीय पारिस्थितिक बुद्धिमत्ता; आध्यात्मिकता व स्वच्छता पर बल। (स्रोत 4)
खडिन (धोरा)	जैसलमेर, राजस्थान	लंबे मिट्टी के बांध जो बहाव जल को खेतों में रोकते हैं	शुष्क कृषि के लिए प्रभावी; मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि। (स्रोत 2)
कुंड	गुजरात, राजस्थान	चक्राकार भूमिगत जलकुंड, तश्तरी जैसी जलग्रहण संरचना	चूना और राख की परत से रिसाव रोकना सुनिश्चित किया गया। (स्रोत 1)
जिंग	लद्दाख	दोपहर में उपयोग हेतु ग्लेशियर के पिघले जल का टंकी में संग्रहण	शीत मरुस्थलों में विकसित अद्भुत पर्वतीय तकनीक। (स्रोत 4)

जल प्रणाली	क्षेत्र	विवरण एवं विशेषताएँ	सांस्कृतिक / पर्यावरणीय महत्व
कूल	हिमाचल प्रदेश	मानव निर्मित नहरें जो ग्लेशियर जल को खेतों तक पहुँचाती हैं	सामुदायिक रूप से प्रबंधित सिंचाई प्रणाली (स्रोत 2)
जाबो	नागालैंड	पहाड़ी जंगलों से जल को सीढ़ीनुमा खेतों में एकत्रित करना	वानिकी, कृषि और मत्स्यपालन का एकीकृत मॉडल (स्रोत 1)
जैकवेल	ग्रेट निकोबार द्वीप (शोमपेन जनजाति)	लकड़ी के कुंदों से घिरे जल गड्ढे	उष्णकटिबंधीय वर्षावनों में जल संचयन की जनजातीय तकनीक (स्रोत 4)

(स्रोत 1: Gopal, B. (2003). Water and Environment in India: Traditional Practices and Contemporary Concerns. Indian Journal of History of Science, 38(4), 441–458.)

(स्रोत 2: Agarwal, A., & Narain, S. (1997). Dying Wisdom: Rise, Fall and Potential of India's Traditional Water Harvesting Systems. New Delhi: Centre for Science and Environment.)

(स्रोत 3: Habib, I. (2011). An Atlas of the Mughal Empire: Political and Economic Maps with Detailed Notes. New Delhi: Oxford University Press.)

(स्रोत 4: Singh, R. P. B. (2014). Sacredscapes and Water Temples of India. New Delhi: Aryan Books International.)

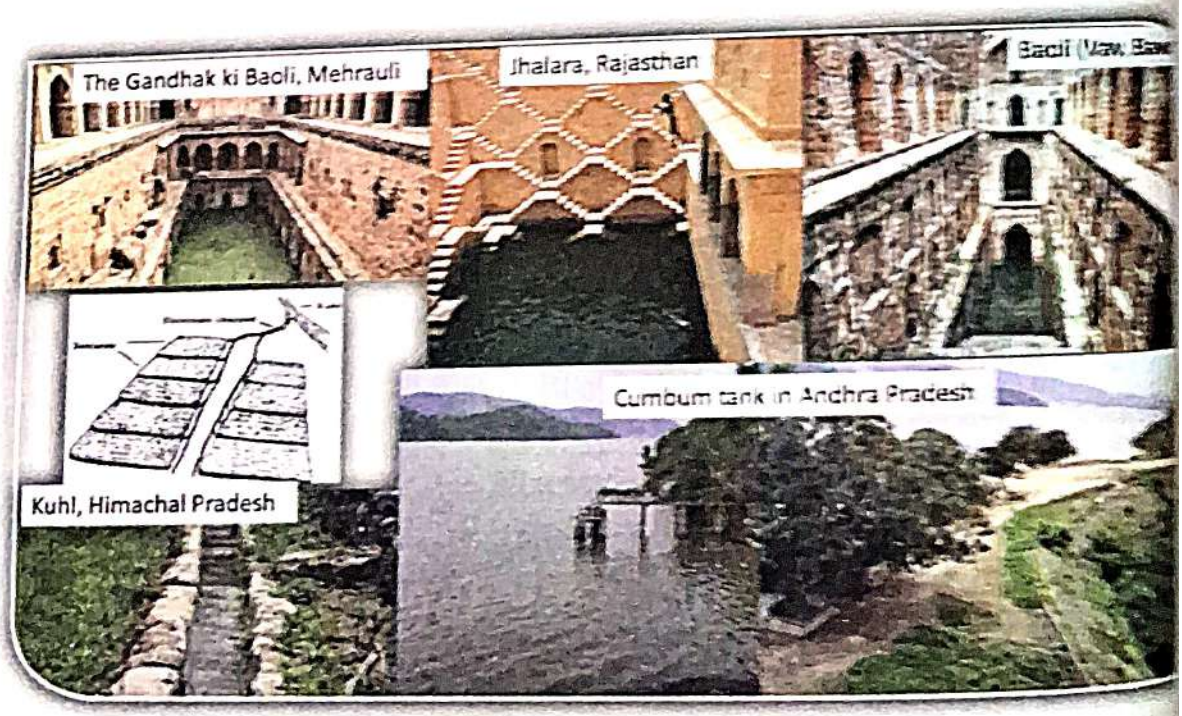

प्राचीन भारत में पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों के कुछ उदाहरण

कुंभम् (कुंबुम) टैंक (Cumbum Tank) – प्राचीन भारत की जल इंजीनियरिंग की अद्वितीय मिसाल

कुंभम् (कुंबुम) टैंक, जिसे गुंडलकम्मा टैंक (Gundlakamma Tank) के नाम से भी जाना जाता है, पूर्व-आधुनिक भारत की सतत जल संरचना की एक अद्वितीय मिसाल है। हाल ही में यह संरचना इस बात के लिए चर्चा में आई कि कैसे प्राचीन जल संचयन प्रणालियाँ आज भी समुदायों की प्रभावी सेवा कर रही हैं।

यह जलाशय आंध्र प्रदेश के प्रकाशम ज़िले में स्थित है और यह एशिया के सबसे बड़े मानव निर्मित जलाशयों में से एक है - और इस श्रेणी में विश्व स्तर पर तीसरे स्थान पर आता है। इसका निर्माण 1522 से 1524 ई. के बीच विजयनगर साम्राज्य के श्री कृष्णदेवराय की पत्नी राजकुमारी वरदराजम्मा (रुचिदेवी) द्वारा करवाया गया था। विजयनगर साम्राज्य अपने समय की सबसे जल-प्रवीण सभ्यताओं में से एक था।

(स्रोत: Gopal, B. (2003). *Water and Environment in India: Traditional Practices and Contemporary Concerns.* Indian Journal of History of Science, 38(4), 441–458)

स्थान: प्रकाशम ज़िला, आंध्र प्रदेश – जहाँ गोंडलकम्मा और जंपालेरु नदियाँ एक खड्ड (gorge) से होकर बहती हैं, वहीं इस जलाशय का निर्माण किया गया। इसकी लंबाई लगभग 7 किलोमीटर, चौड़ाई लगभग 3.5 किलोमीटर और जलग्रहण क्षेत्र लगभग 430 वर्ग मील में फैला है। यह टैंक गोंडलकम्मा और जंपालेरु नदियों के मार्ग में एक खड्ड को रोककर बनाया गया था। इसे मुख्य रूप से नल्लामल्ला पर्वतों (पूर्वी घाट) से निकलने वाली *नल्लमल्लवागु* धारा से जल प्राप्त होता है। गुरुत्वाकर्षण-आधारित सिंचाई के लिए स्थलाकृतिक ढांचे का कुशल उपयोग, पारंपरिक भू-जलविज्ञान की समझ का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(स्रोत: Singh, R. P. B. (2014). *Sacredscapes and Water Temples of India.* New Delhi: Aryan Books International)

ब्रिटिश काल के प्रमुख सिंचाई अभियंता सर आर्थर कॉटन, जो भारत में आधुनिक सिंचाई प्रणालियों के अग्रदूत माने जाते हैं, ने ऐसी पारंपरिक संरचनाओं की अत्यंत प्रशंसा की थी। उन्होंने विशेष रूप से बिना किसी लोहे के सुदृढ़ीकरण के बने मिट्टी के बांधों (embankments) को सराहा, जो सदियों तक टिके रहे। उन्होंने "puddled bank" तकनीक की प्रभावशीलता पर बल दिया - जिसमें मिट्टी की दीवार को ज़मीन और ऊपर रखी जाने वाली सामग्री के बीच सघनता से दबाया जाता है।

(स्रोत: Cotton, A. (1867). *Irrigation Works in Southern India.* Government Press)

प्रभाव और महत्त्व: एशिया का दूसरा सबसे बड़ा मानव निर्मित जलाशय और वैश्विक स्तर पर तीसरे स्थान पर। यह टैंक लगभग 10,300 एकड़ भूमि की सिंचाई करता है और सूखे के समय में भी लगभग 19 गाँवों और 7,000-10,300 एकड़ कृषि भूमि को जल प्रदान करता है।

आधुनिक मान्यता एवं संरक्षण कार्य:

2020 में इसे *World Heritage Irrigation Structure (WHIS)* का दर्जा मिला - यह इसकी सतत उपयोगिता और ऐतिहासिक महत्त्व की वैश्विक मान्यता है। हाल के वर्षों में, आंध्र प्रदेश सरकार ने जापान अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एजेंसी (JICA) के सहयोग से इस टैंक के आधुनिकीकरण और संरक्षण का कार्य प्रारंभ किया है ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए इसकी विरासत को सुरक्षित रखा जा सके।

(स्रोत: Andhra Pradesh Irrigation Department. (2023). Cumbum Tank Project Report. Government of Andhra Pradesh)

6. फसल चक्र और फसल प्रबंधन: वैदिक कृषि पद्धतियों का सूक्ष्म विश्लेषण

वैदिक काल में कृषि न केवल एक आर्थिक गतिविधि थी, बल्कि यह जीवन के समग्र संतुलन और प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का एक माध्यम भी थी। ऋग्वेद, यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता, बृहत्संहिता, और कौषीतकी ब्राह्मण जैसे ग्रंथों में कृषि से संबंधित विस्तृत निर्देश और शास्त्र मिलते हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन भारतीय समाज ने कृषि को एक विज्ञान के रूप में विकसित किया था।

6.1 फसल चक्र का महत्व

वेदों में कृषि के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख है, जिसमें फसल चक्र का पालन भी महत्वपूर्ण है। तैत्तिरीय संहिता (7.2.10.2) में उल्लेख है कि विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न फसलों की बुवाई और कटाई की जाती थी:

"यवं ग्रीष्माय औषधीर वर्षाभ्यो व्रीहीं
चरद् माषतिलौ हेमन्तशिशिराभ्याम्।"

अर्थात्, ग्रीष्म ऋतु में जौ और औषधियों की बुवाई की जाती थी, वर्षा ऋतु में धान की, और शीत ऋतु में तिल और मटर की। यह फसल चक्र भूमि की उर्वरता बनाए रखने और अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए था।

6.2 नक्षत्र आधारित कृषि पद्धतियाँ

प्राचीन भारतीय कृषि में नक्षत्रों का विशेष स्थान था। बृहत्संहिता के अनुसार, विभिन्न नक्षत्रों के आधार पर कृषि कार्यों का निर्धारण किया जाता था:

- उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रों के अतिरिक्त रेवती, रोहिणी, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी और हस्त नक्षत्रों के समय फसल चक्र विभाजन के नक्षत्र माने गए हैं।

यह नक्षत्रीय पद्धति आज के जैवगतिशील कृषि (बॉयोडायनेमिक फार्मिंग) के समान है, जिसमें चंद्रमा और नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर कृषि कार्यों की योजना बनाई जाती है।

6.3 भूमि की उर्वरता और परती भूमि

वैदिक काल में भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए परती भूमि प्रणाली का पालन किया जाता था। इसमें खेतों को चार माह तक परती (अवशिष्ट) रखा जाता था, जिससे भूमि सूर्यताप में तपकर अपनी उर्वरता पुनः प्राप्त करती थी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, परती भूमि में सिलिका की अधिकता होती है, जो वातावरण से कार्बन-डाईऑक्साइड और नाइट्रोजन गैसों को अवशोषित करती है, जिससे ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में मदद मिलती है।

6.4 जैविक उर्वरकों का प्रयोग

बृहत्संहिता में विभिन्न जैविक उर्वरकों का उल्लेख है, जैसे:

- गौमूत्र और गोबर (गौमाया): यह सभी प्रकार की फसलों के लिए सर्वोत्तम उर्वरक माने गए हैं।
- वृक्षों के पत्ते, फूल और फल: इन्हें उसी वृक्ष के लिए सर्वोत्तम उर्वरक माना गया है।

इसके अतिरिक्त, बृहत्संहिता में यह भी कहा गया है कि मृदु मिट्टी वाली भूमि सभी प्रकार की खेती के लिए उपयुक्त होती है। मृदु मिट्टी में सभी प्रकार के वृक्ष उगाए जा सकते हैं, क्योंकि यह भूमि पोषक तत्वों से भरपूर होती है।



जैविक उर्वरकों का प्रयोग

7. कृषि में सहजीवी पद्धतियाँ

वैदिक काल में कृषि में सहजीवी पद्धतियों का पालन किया जाता था। इस पद्धति में विभिन्न प्रकार की फसलें एक साथ उगाई जाती थीं, जो एक-दूसरे को पोषक तत्व प्रदान करती थीं और भूमि की उर्वरता बनाए रखती थीं। इसके द्वारा कीटों से सुरक्षा, जल संरक्षण, और मिट्टी की उर्वरता में संतुलन बनाए रखा जाता था।

8. कृषि से संबंधित धार्मिक अनुष्ठान

वैदिक काल में कृषि और उसके साथ जुड़े धार्मिक अनुष्ठान पर गहरा विश्वास था। यह न केवल समाज के समृद्धि के लिए, बल्कि प्रकृति और देवताओं के प्रति आभार और सम्मान को प्रकट करने का एक महत्वपूर्ण तरीका था। कृषि की सफलता और समृद्धि के लिए धार्मिक अनुष्ठान, विशेष रूप से यज्ञ, अनिवार्य थे। ये अनुष्ठान भूमि की उर्वरता बढ़ाने, मौसम की अच्छी स्थिति सुनिश्चित करने, और देवताओं से आशीर्वाद प्राप्त करने के उद्देश्य से किए जाते थे।

8.1 यज्ञ और अनुष्ठान

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में कृषि से संबंधित यज्ञों का उल्लेख किया गया है। इनमें प्रमुख रूप से **अग्निहोत्र यज्ञ, पृथ्वी यज्ञ, नमिचन यज्ञ,** और **आर्जव यज्ञ** शामिल थे, जिनके द्वारा कृषि से जुड़े देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। इन यज्ञों का उद्देश्य कृषि कार्य की सफलता, भूमि की उर्वरता और समृद्धि प्राप्त करना था। विशेष रूप से, **पृथ्वी यज्ञ** पृथ्वी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए किए जाते थे।

ऋग्वेद में एक श्लोक है, जिसमें कृषि कार्यों की सफलता के लिए देवताओं की पूजा का उल्लेख है:

"ऋतं सत्यं मृण्मयं रत्नं यच्छैषां तनोति पृथिवीं"

(ऋग्वेद 7.4.3)

अर्थात्, वह देवता जो पृथ्वी के रत्नों और सत्य को उत्पन्न करता है, उसी से कृषि की उर्वरता बढ़े।



भगवान से आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन

8.2 कृषि और कृषि से जुड़े देवी-देवता

भारत के सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं में कृषि का विशेष स्थान है, और कृषि से संबंधित देवी-देवताओं की पूजा आज भी प्रचलित है। वेदों और पुराणों में कई देवताओं का उल्लेख मिलता है जो खेती, वर्षा, भूमि की उर्वरता, और फसलों के समृद्धि के लिए पूजे जाते थे। इन देवताओं से न केवल कृषि कार्यों में सफलता की कामना की जाती थी, बल्कि वे भूमि और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति आदर और आभार की भावना को भी व्यक्त करते थे।

प्रमुख कृषि देवता:

1. **अन्नपूर्णा देवी:** अन्नपूर्णा देवी को अन्न और भोजन की देवी माना जाता है। उन्हें अन्न की समृद्धि और भंडार की असीमितता के रूप में पूजा जाता है। भारत में यह देवी खासकर उन स्थानों पर पूजी जाती हैं जहाँ खेती की मुख्य पैदावार अन्न होती है, जैसे कि धान, गेहूं, मक्का आदि। उनके आशीर्वाद से किसानों को अच्छे उत्पादन और समृद्धि की कामना की जाती है।

   श्लोक: **"अन्नपूर्णे सदा पूर्णे शंकरप्राण वल्लभे।**
   ज्ञान वाणि प्रदे देवि महालक्ष्मी नमोस्तुते॥"

   (अन्नपूर्णा का आशीर्वाद हमें हमेशा पूर्ण आहार और ज्ञान प्रदान करता है।)

2. **इन्द्रदेव**: इन्द्रदेव, वर्षा के देवता, कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। जब तक इन्द्रदेव की कृपा से वर्षा नहीं होती, तब तक भूमि में उर्वरता का अभाव रहता है। इन्द्रदेव की पूजा मानसून के समय विशेष रूप से की जाती है ताकि अच्छी वर्षा हो और किसानों को उनकी फसलों के लिए पर्याप्त जल मिल सके।

   श्लोक: "इन्द्राय च सोमाय महादेवाय च नैमिन।
   सहस्त्रबाहुं च यजामहे॥"

   (इन्द्रदेव की पूजा और सम्मान से वर्षा होती है और कृषि कार्य समृद्ध होते हैं।)

3. **पृथ्वी देवी**: पृथ्वी देवी को भूमि की उर्वरता, उत्पादकता और कृषियोग्यता के रूप में पूजा जाता है। वह हमारी माता मानी जाती हैं, जो हमारी खेती की बुनियादी श्रोत हैं। पृथ्वी देवी की पूजा कृषि भूमि के रख-रखाव और उसकी उर्वरता बढ़ाने के लिए की जाती है।

   श्लोक: "पृथिव्या मातरं प्रार्थयामहे।
   अस्मिन्न ति धरां भूत्वा स्वाहा॥"

   (पृथ्वी को माता मानकर हम उनसे हमारी भूमि की उर्वरता की प्रार्थना करते हैं।)

4. **वसु और अश्विनीकुमार:** ये देवता कृषि में स्वस्थ और समृद्ध फसल की उम्मीद को प्रकट करते हैं। अश्विनीकुमारों को कृषि कार्यों में समृद्धि लाने वाले देवता माना जाता है। उनका संबंध विशेष रूप से खेतों के स्वस्थ जीवन, वनस्पतियों, और पशुपालन से होता है।

8.3 ऐतिहासिक और आधुनिक कृषि उत्सव

भारत के विविधता से भरे क्षेत्र में कृषि आधारित उत्सवों का आयोजन हर स्थान पर अलग-अलग तरीकों से किया जाता है। ये उत्सव न केवल कृषि कार्यों से संबंधित होते हैं, बल्कि इनसे सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में एक गहरी जड़ भी मिलती है।

1. मकर संक्रांति (उत्तर भारत और पश्चिम भारत)

मकर संक्रांति का पर्व मुख्य रूप से उत्तर भारत और पश्चिम भारत में मनाया जाता है। यह दिन सूर्य के मकर राशि में प्रवेश के समय मनाया जाता है, जो फसल की कटाई के समय

होता है। किसान अपनी फसलों को भगवान के समक्ष अर्पित करते हैं और आभार व्यक्त करते हैं। इस दिन तिल, गुड़, और खिचड़ी जैसी खाद्य सामग्री का महत्व है।

"मकर संक्रांति के दिन सूर्य की पूजा होती है, जो हमारी फसलों के समृद्धि की प्रतीक है।"

2. पोंगल (दक्षिण भारत)

पोंगल दक्षिण भारत का प्रमुख कृषि उत्सव है, जिसे तमिलनाडु में विशेष रूप से मनाया जाता है। यह त्यौहार विशेष रूप से फसल की कटाई के समय मनाया जाता है और इसमें सूर्य, पृथ्वी और बैल की पूजा की जाती है। पोंगल का मतलब होता है "उबालना", और इस दिन नये अनाज से बने पकवानों को देवताओं को अर्पित किया जाता है।

"पोंगल का उत्सव हमारी कृषि की सफलता और उन्नति का प्रतीक है।"

3. लोहड़ी (पंजाब और हरियाणा)

लोहड़ी पर्व मुख्य रूप से पंजाब और हरियाणा में मनाया जाता है। यह विशेष रूप से रबी फसल की कटाई के समय मनाया जाता है और फसल की सुरक्षा के लिए अग्नि पूजन किया जाता है।

"लोहड़ी का त्यौहार कृषि कार्यों की सफलता और फसल की समृद्धि का प्रतीक है।"

8.4 आधुनिक समय में कृषि आधारित अनुष्ठान

आज भी भारत में कृषि आधारित धार्मिक अनुष्ठान मनाए जाते हैं। किसानों की सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखते हुए यह अनुष्ठान हर क्षेत्र में आयोजित होते हैं। खेतों में पूजा, नया बिज़ार, और फसल कटाई पूजा जैसी परंपराएं आज भी प्रचलित हैं। आधुनिक कृषि विधियों के साथ, इन उत्सवों का उद्देश्य अब भी भूमि के प्रति आदर, कृषि की सफलता, और समृद्धि की कामना करना है।

कृषि और संस्कृति का एक गहरा संबंध है, और यह भारतीय समाज के लिए हमेशा से महत्वपूर्ण रहा है। कृषि उत्सव, धार्मिक अनुष्ठान, और देवी-देवताओं की पूजा न केवल भौतिक समृद्धि के लिए होती थी, बल्कि ये मानवता और प्रकृति के प्रति आदर की भावना को भी व्यक्त करते थे। आज भी ये परंपराएं भारतीय समाज में जीवित हैं, और कृषि आधारित इन उत्सवों का आयोजन सांस्कृतिक समृद्धि को बनाए रखने के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों की सहेजने की ओर भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

तालिका: भारत में कृषि और कृषि संस्कृति से जुड़े प्रमुख पर्व व त्योहार

पर्व / त्योहार	राज्य / क्षेत्र	समय (मास / माह)	कृषि संबंध
मकर संक्रांति / पोंगल	तमिलनाडु, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात आदि	जनवरी (14-15 Jan)	खरीफ कटाई, सूर्य को धन्यवाद, पशु पूजा, नए अन्न से भोज
लोहड़ी	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली	13 जनवरी	रबी फसलों की बुआई के बाद अग्नि में तिल, मूंगफली अर्पण
बैसाखी (वैसाखी)	पंजाब, हरियाणा	अप्रैल (13-14 Apr)	रबी फसल की कटाई, नए अन्न का उत्सव, भांगड़ागिद्दा
बीहू (Bihu - असम)	असम	अप्रैल (बोहाग बीहू)	फसल चक्र की शुरुआत, नव वर्ष, भोगाली बीहू (कटाई उत्सव)
ओणम	केरल	अगस्तसितंबर (Aug-Sep)	धान की फसल, राजा महाबली की कथा, Onam Sadya, नाव रेस
नुआखाई	ओडिशा, छत्तीसगढ़	भाद्रपद पंचमी (Aug-Sep)	नई धान की कटाई, पहला अन्न देवता को अर्पित
नवन्ना (Nabanna)	पश्चिम बंगाल	नवंबरदिसंबर (Agrahayana)	नए चावल की कटाई, देवी लक्ष्मी को पहला अन्न अर्पण, सामुदायिक भोज
गुड़ी पड़वा / उगाड़ी	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र, तेलंगाना	मार्च / अप्रैल (Chaitra)	रबी सीज़न की बुआई की शुरुआत, नए वर्ष का आरंभ
वसंत पंचमी	उत्तर भारत (उत्तराखंड, पंजाब, बंगाल, ओडिशा आदि)	माघ शुक्ल पंचमी (Jan-Feb)	सरसों की फसलों का खिलना, बसंत ऋतु का आगमन, कृषि प्रारंभ का प्रतीक
पोल्ला (Pola)	महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़	श्रावण अमावस्या (Aug-Sep)	बैलों की पूजा, कृषि में बैल की भूमिका एवं कृतज्ञता
ड्री (Dree) उत्सव	अरुणाचल प्रदेश (आपतानी जनजाति)	जुलाई (मई-जुलाई वर्षान्तर)	चावल की फसल हेतु देवता पूजन, कीट नियंत्रण, उर्वरता की कामना
होर्नबिल फेस्टिवल	नागालैंड और पूर्वोत्तर	दिसंबर (1-10 Dec)	कृषि-निहित जनजातीय संस्कृति, उपज और प्रकृति का उत्सव

9. सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण

वैदिक कृषि पद्धतियों का समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान था। कृषि न केवल आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण थी, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण थी। किसान समाज की रीढ़ थे और उनके कार्यों के माध्यम से समाज का समृद्धि और स्थिरता सुनिश्चित होती थी। कृषि कार्यों को जीवन के धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं से जोड़ा जाता था, और यह समाज में धर्म, संस्कृति और परंपराओं के विकास में सहायक था। वैदिक काल में कृषि एक महत्वपूर्ण और केंद्रीय गतिविधि थी, जो भारतीय समाज के जीवन का अभिन्न हिस्सा थी। इस समय की कृषि तकनीकें अत्यधिक उन्नत थीं और इनका उद्देश्य भूमि के संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करना था। भूमि का चयन, बीज का परीक्षण, जल प्रबंधन, उर्वरक का उपयोग, और कृषि उपकरणों का प्रयोग वैदिक कृषि पद्धतियों के महत्वपूर्ण घटक थे। साथ ही, धार्मिक अनुष्ठान और समाज की सांस्कृतिक परंपराओं का भी कृषि से गहरा संबंध था। वैदिक कृषि पद्धतियाँ न केवल उस समय की आवश्यकता थीं, बल्कि वे आज भी हमें यह सिखाती हैं कि प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान करते हुए, कृषि को एक स्थिर और संवेदनशील तरीके से कैसे किया जा सकता है।

10. प्राचीन भारत में खाद्य प्रसंस्करण (Food Processing)

भारत में खाद्य प्रसंस्करण की प्राचीन परंपरा एक समृद्ध और विविधतापूर्ण इतिहास की द्योतक है। भारतीय सभ्यता में भोजन का महत्व केवल शारीरिक पोषण तक सीमित नहीं था, बल्कि उसे सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक संदर्भों में भी महत्व दिया गया था। प्राचीन भारतीय खाद्य प्रसंस्करण तकनीकें आज भी विभिन्न पारंपरिक विधियों के रूप में जीवित हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि की शुरुआत के साथ ही खाद्य प्रसंस्करण की प्रक्रिया भी अस्तित्व में आ गई थी। यह प्रक्रिया न केवल खाने योग्य खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने के लिए थी, बल्कि उनके स्वाद, पोषण और स्वास्थ्य लाभ को बढ़ाने के लिए भी थी।

10.1 प्राचीन भारतीय खाद्य प्रसंस्करण के प्रमुख तरीके

(i) अनाज का प्रसंस्करण

प्राचीन भारत में अनाजों का प्रसंस्करण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया थी। मुख्य रूप से गेहूं,

चावल, ज्वार, बाजरा और मक्का जैसी फसलों का उत्पादन किया जाता था। इन अनाजों को विभिन्न रूपों में प्रसंस्कृत किया जाता था, जैसे:

- **चावल मिलाना:** चावल को कूटकर उसे पकाने के बाद उसे खाने योग्य बनाया जाता था।
- **गेहूं का आटा बनाना:** गेहूं को पीसकर आटा तैयार किया जाता था, जिसका इस्तेमाल रोटियां और अन्य प्रकार के व्यंजन बनाने में किया जाता था।

इसके अतिरिक्त, **दलहन** जैसे मसूर, चना, मूंग आदि का प्रसंस्करण भी किया जाता था। इनका सेवन पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण था और इन्हें पकाकर या आटे में बदलकर उपयोग में लाया जाता था।

(ii) दूध और दुग्ध उत्पादों का प्रसंस्करण

प्राचीन भारत में दूध से विभिन्न उत्पादों का प्रसंस्करण किया जाता था। गाय, भैंस, बकरी और ऊँट का दूध भी प्रचलित था। दूध से बने उत्पादों का उपयोग न केवल खाने के लिए, बल्कि औषधि के रूप में भी किया जाता था। प्रमुख प्रसंस्कृत दूध उत्पादों में शामिल थे:

- **घी:** दूध से घी बनाने की प्रक्रिया बहुत पुरानी थी। घी का उपयोग न केवल भोजन में, बल्कि पूजा और आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी किया जाता था।
- **दही और माखन:** दूध को दही में परिवर्तित किया जाता था, और माखन बनाने के लिए दही को मथकर उसका घी निकाला जाता था।
- **पनीर :** दूध से पनीर बनाने की प्रक्रिया भी प्राचीन भारत में प्रचलित थी।

(iii) फल और सब्जियों का प्रसंस्करण

प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार के फल और सब्जियों का सेवन किया जाता था। इन्हें विभिन्न तरीकों से संरक्षित किया जाता था, ताकि मौसम बदलने पर भी ये उपलब्ध रहें। प्रमुख तरीकों में शामिल थे:

- **आचार बनाना:** फलों और सब्जियों से आचार बनाना प्राचीन भारतीय खाद्य प्रसंस्करण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। विशेष रूप से आम, नींबू, आंवला आदि के अचार तैयार किए जाते थे। इन आचारों में तेल, नमक और मसालों का मिश्रण होता था, जो उन्हें लंबे समय तक संरक्षित रखने में मदद करता था।

- **सुखाना:** फलों और सब्जियों को सुखाकर या धूप में रखकर संरक्षित किया जाता था। विशेष रूप से पपीता, आम, केला, मिर्च, और हरी सब्जियों को सुखाने की प्रक्रिया प्रचलित थी।

(iv) मांस और मछली का प्रसंस्करण

मांस और मछली का प्रसंस्करण भी प्राचीन भारत में होता था। इनका सेवन धार्मिक, सांस्कृतिक और आहारिक दृष्टिकोण से किया जाता था। मांस और मछली को पकाने के बाद सूखा कर या नमक के साथ संरक्षित किया जाता था।

(v) शहद और गुड़ का प्रसंस्करण

शहद और गुड़ भी प्राचीन भारत के प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों में शामिल थे। शहद का उपयोग भोजन में स्वाद बढ़ाने, औषधीय गुणों के लिए और धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता था। गुड़ को गन्ने के रस से तैयार किया जाता था और यह मिठाई बनाने के लिए प्रमुख रूप से उपयोग किया जाता था।

(vi) मसालों और चटनियों का प्रसंस्करण

प्राचीन भारतीय भोजन में मसालों का अत्यधिक महत्व था। विभिन्न प्रकार की चटनियाँ और मसाले विभिन्न खाद्य पदार्थों का स्वाद बढ़ाने के लिए उपयोग में लाए जाते थे। मसालों का प्रसंस्करण भी एक कला थी जिसमें अदरक, लहसुन, मिर्च, हल्दी, धनिया, जीरा, सौंफ आदि प्रमुख मसाले होते थे। इन मसालों को सूखा कर या ताजे रूप में उपयोग किया जाता था।

10.2 खाद्य प्रसंस्करण के पारंपरिक तरीके

प्राचीन भारत में खाद्य प्रसंस्करण के लिए पारंपरिक उपकरणों का उपयोग किया जाता था। इनमें शामिल थे:

- **मिट्टी के बर्तन:** खाद्य पदार्थों को पकाने, उबालने और पकाने के लिए मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग किया जाता था। इन बर्तनों में भोजन का स्वाद बढ़ता था और पोषक तत्वों की हानि नहीं होती थी।
- **पेस्टल और मूसल (उपकरण):** मसालों और अनाज को पीसने के लिए पेस्टल और मूसल का उपयोग किया जाता था। यह उपकरण भोजन को प्राकृतिक तरीके से तैयार करने में सहायक होते थे।

- **चक्की (घर्षण उपकरण):** आटा पीसने के लिए चक्की का प्रयोग किया जाता था, जो एक बड़ा पत्थर होता था।



खाद्य प्रसंस्करण के पारंपरिक उपकरण

10.3 आयुर्वेद और खाद्य प्रसंस्करण

प्राचीन भारत में आयुर्वेद का भी भोजन के प्रसंस्करण पर गहरा प्रभाव था। आयुर्वेद के अनुसार, भोजन का सेवन शारीरिक संतुलन बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण था। आयुर्वेद में विशेष ध्यान इस बात पर दिया गया था कि खाद्य पदार्थों को किस प्रकार से तैयार किया जाए ताकि उनका पाचन और पोषण लाभ अधिकतम हो सके। खाद्य प्रसंस्करण में हल्दी, अदरक, दारचीनी, लौंग, और जड़ी-बूटियों का उपयोग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लाभ के लिए किया जाता था।

10.4 खाद्य प्रसंस्करण में स्वच्छता और सुरक्षा

प्राचीन भारत में खाद्य प्रसंस्करण में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था। खाद्य पदार्थों को विशेष बर्तनों में रखा जाता था ताकि वे दूषित न हों। इसके अलावा, प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न तरीकों का पालन किया जाता था, जैसे कि उन्हें ठंडी जगह पर रखना, तेल में संरक्षित करना, और मसालों का इस्तेमाल करके उन्हें लंबे समय तक ताजगी बनाए रखना।

11. प्राचीन भारत में कृषि आधारित उद्योग

प्राचीन भारत में कृषि का समाज और अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव था। खेती के साथ-साथ कृषि आधारित उद्योगों का भी महत्वपूर्ण योगदान था, जो न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण थे। कृषि आधारित उद्योगों में खाद्य प्रसंस्करण, कपड़ा उद्योग, बुनाई, धातु शोधन, और कागज निर्माण जैसे विभिन्न उद्योग शामिल थे। इन उद्योगों ने समाज की रोज़मर्रा की ज़िंदगी को प्रभावित किया और प्राचीन भारतीय सभ्यता की समृद्धि को बढ़ाया।

11.1 कृषि आधारित उद्योगों का महत्व

प्राचीन भारत में कृषि उद्योग मुख्य रूप से खेतों से प्राप्त होने वाले उत्पादों को संसाधित करने के लिए होते थे। कृषि आधारित उद्योगों का उद्देश्य कृषि उत्पादों का उपयोग करके विभिन्न प्रकार के उपभोक्ता सामान तैयार करना और इन्हें उपयुक्त रूप में बाजारों में उपलब्ध कराना था। इन उद्योगों ने कृषि उत्पादों के वैविध्य को बढ़ावा दिया और इसके द्वारा अर्थव्यवस्था को समृद्ध किया।

1. कपास और वस्त्र उद्योग

कपास का उत्पादन और बुनाई का उद्योग प्राचीन भारत में विशेष रूप से प्रसिद्ध था। भारत में प्राचीन काल से ही कपास की खेती की जाती थी और कपड़ा उद्योग में बुनाई की तकनीक का अत्यधिक विकास हुआ था। विशेष रूप से, गुजरात और महाराष्ट्र में कपास के उत्पादन के लिए उपयुक्त जलवायु थी।

- **कपास की खेती और प्रसंस्करण:** कपास के रेशे को तैयार करने और उसे बुनाई के लिए उपयोग करने के लिए विशेष तरीके अपनाए जाते थे। प्राचीन भारत में बुनकर कारीगरों ने उच्च गुणवत्ता वाले कपड़े तैयार किए थे, जिनका उपयोग घरेलू वस्त्रों, धार्मिक पोशाकों और व्यापारिक उद्देश्यों के लिए किया जाता था।
- **सिल्क और ऊनी वस्त्र:** रेशम की बुनाई और ऊन से बने कपड़े भी प्राचीन भारत में बनाए जाते थे। विशेष रूप से बंगाल, कश्मीर और दक्षिण भारत में सिल्क के कपड़े बुनने की कला में प्रवीणता थी।

कृषि आधारित वस्त्र उद्योग का विकास न केवल घरेलू उपयोग के लिए था बल्कि व्यापार और निर्यात में भी महत्वपूर्ण था। भारतीय वस्त्र, जैसे कि काशी की बनारसी साड़ी, गुजरात का बंधनी, और कश्मीर का शॉल, प्राचीन काल में विश्वभर में प्रसिद्ध थे।

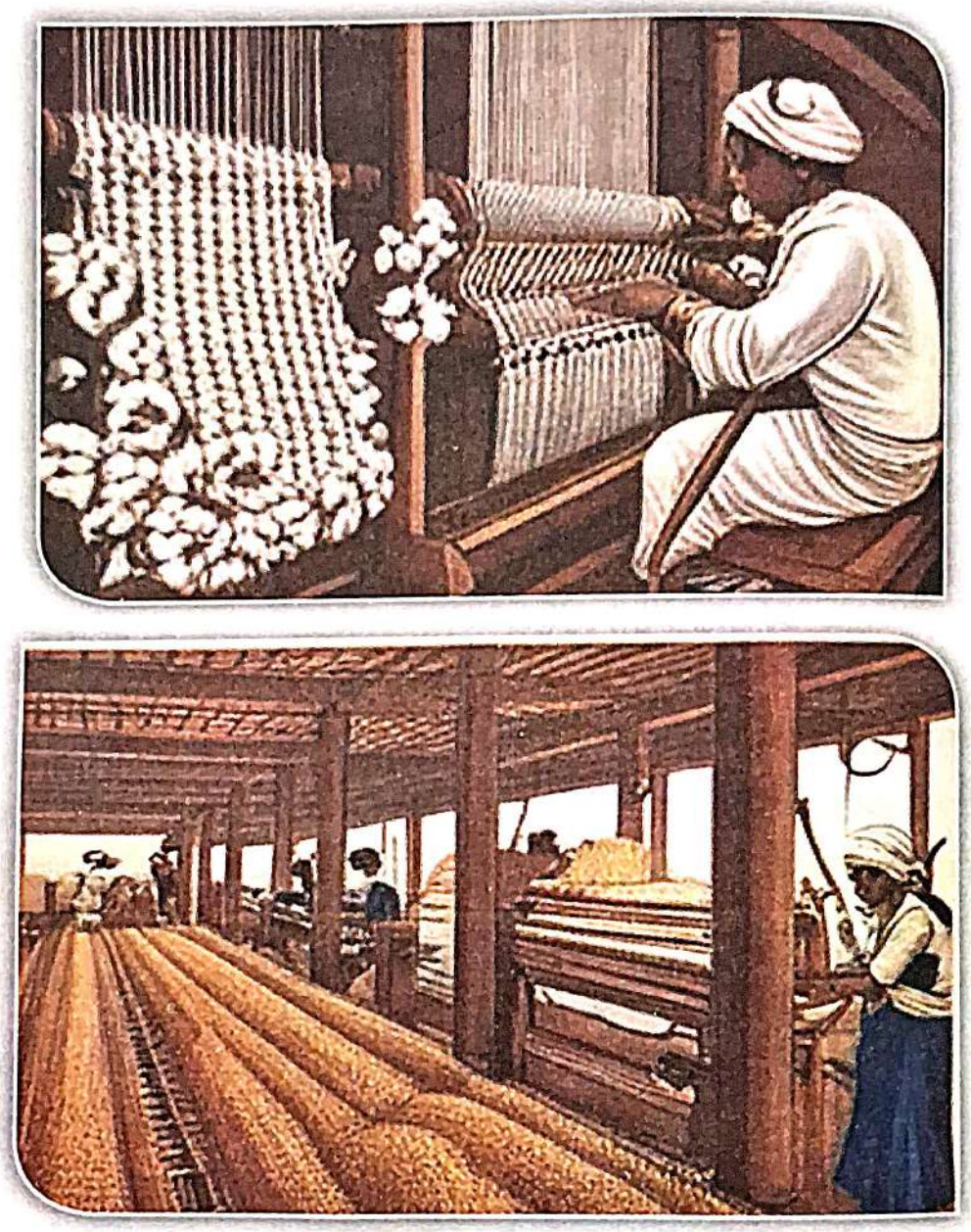

(कृषि आधारित वस्त्र उद्योग का विकास)

2. खाद्य प्रसंस्करण उद्योग

प्राचीन भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी कृषि आधारित उद्योगों का हिस्सा था। कृषि उत्पादों जैसे अनाज, फल, सब्जियां, मांस और दूध से विभिन्न उत्पाद तैयार किए जाते थे।

- **दूध उत्पाद:** प्राचीन भारत में दूध और दुग्ध उत्पादों का प्रसंस्करण महत्वपूर्ण था। घी, दही, माखन, और पनीर जैसे उत्पाद बनाए जाते थे। ये उत्पाद न केवल भोजन में स्वाद बढ़ाते थे बल्कि औषधीय और धार्मिक उद्देश्यों के लिए भी उपयोग किए जाते थे।
- **धान और गेहूं का प्रसंस्करण:** अनाजों के प्रसंस्करण के लिए विभिन्न तकनीकें अपनाई जाती थीं। गेहूं और चावल को पीसकर आटा तैयार किया जाता था, जो भोजन में उपयोग होता था।
- **फल और सब्जियों का संरक्षण:** प्राचीन भारत में फल और सब्जियों को सूखा कर या अचार बना कर संरक्षित किया जाता था। इनका प्रसंस्करण समय और मौसम के हिसाब से किया जाता था, ताकि इनका उपयोग पूरे वर्ष भर किया जा सके।





औषधीय और धार्मिक उद्देश्यों के लिए खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का विकास

3. दूध और घी उद्योग

दूध का प्रसंस्करण प्राचीन भारत में एक प्रमुख उद्योग था, जो कृषि और पशुपालन से

जुड़ा हुआ था। भारत में गाय, भैंस, बकरी और ऊंट का पालन किया जाता था, और इनसे मिलने वाले दूध का प्रयोग विभिन्न उत्पादों के निर्माण में किया जाता था।

- **घी का निर्माण:** दूध से घी बनाने की प्रक्रिया प्राचीन भारतीय कृषि आधारित उद्योगों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी। घी का उपयोग न केवल खाद्य पदार्थों में, बल्कि धार्मिक अनुष्ठानों और औषधीय उपचारों में भी किया जाता था।
- **दही और माखन का प्रसंस्करण:** दही और माखन बनाने की प्रक्रिया भी प्राचीन भारत में प्रचलित थी, जो किसानों और घरों के स्तर पर होती थी।

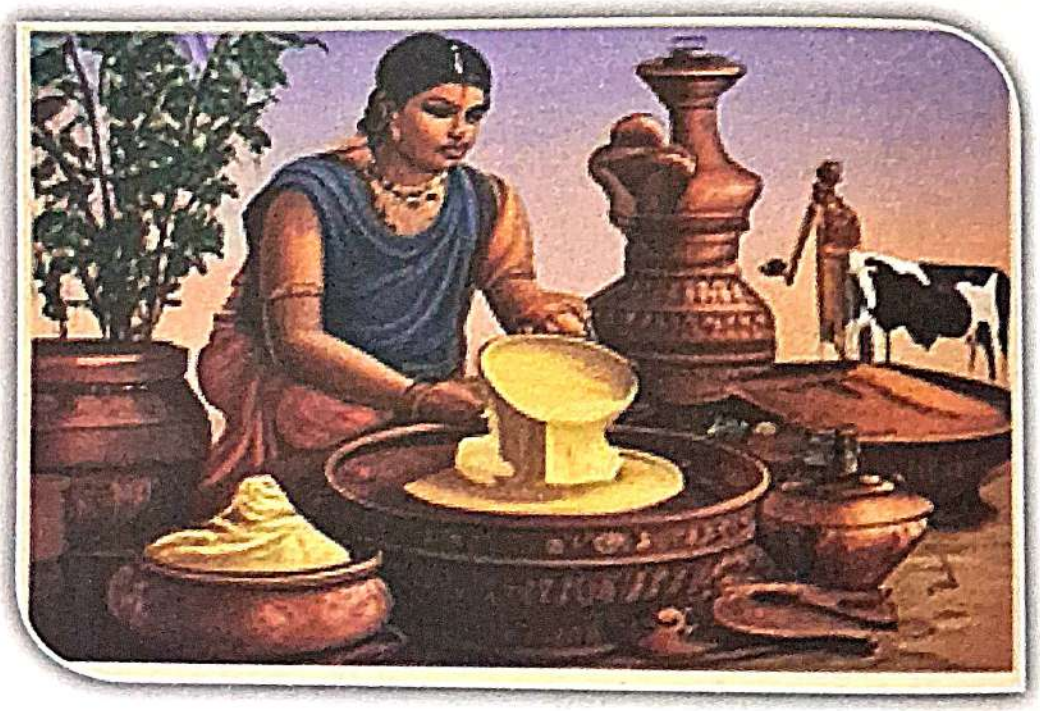

दही और माखन बनाने की प्रक्रिया

4. सुगंधित उत्पादों का उद्योग

प्राचीन भारत में कृषि आधारित उद्योगों में सुगंधित उत्पादों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। आयुर्वेद में सुगंधित पौधों और औषधियों का प्रयोग किया जाता था और इनका उत्पादन व्यापक रूप से किया जाता था।

- **आवश्यक तेलों और मसालों का उत्पादन:** भारत में अदरक, इलायची, लौंग, धनिया, हल्दी, और अन्य मसालों का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता था। इन मसालों का उपयोग न केवल भोजन में, बल्कि चिकित्सा और सौंदर्य प्रसाधनों में भी होता था।

- **फूलों और पौधों का प्रसंस्करण:** फूलों और पौधों से सुगंधित तेलों का उत्पादन किया जाता था, जो भारतीय संस्कृति में पूजा और अन्य धार्मिक कार्यों में उपयोग होते थे।

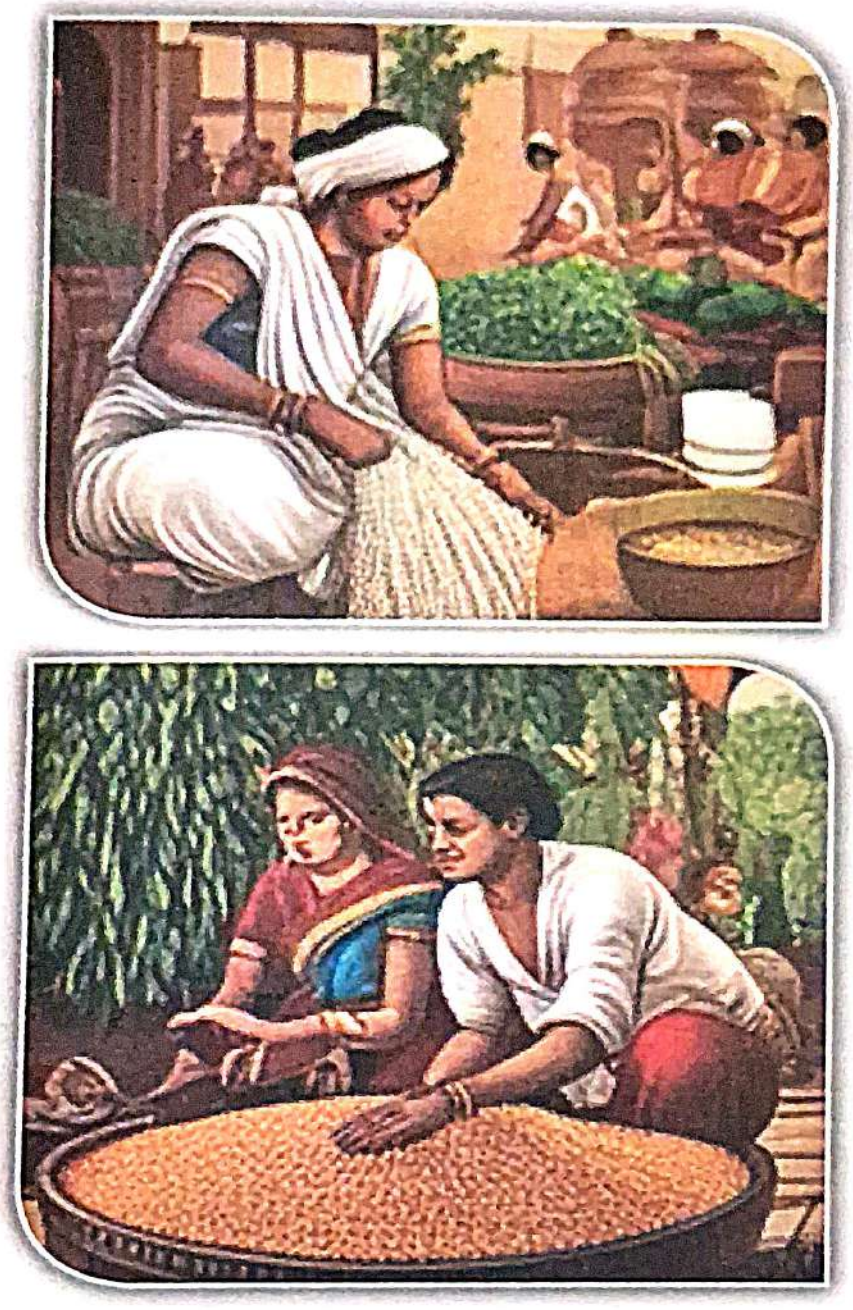

आयुर्वेद में सुगंधित पौधों और औषधियों का प्रयोग

5. धातु शोधन उद्योग

प्राचीन भारत में धातु उद्योग भी कृषि आधारित था। कृषि उपकरणों की निर्माण प्रक्रिया में धातुओं का उपयोग किया जाता था।

- **लोहे और तांबे का प्रसंस्करण:** प्राचीन भारत में लोहे और तांबे के उपकरणों का प्रसंस्करण किया जाता था। इनका उपयोग कृषि उपकरणों जैसे हल, कुदाल, और फावड़े बनाने में किया जाता था। इसके अलावा, तांबे और कांसे के बर्तनों का भी प्रसंस्करण किया जाता था।
- **सोने और चांदी का शोधन:** भारतीय सोने और चांदी के शोधन में भी प्रवीण थे। ये धातुएं व्यापार के लिए उपयोग होती थीं, और इनसे आभूषण और अन्य वस्त्र बनते थे।

6. कृषि उपकरणों का निर्माण

कृषि उपकरणों का निर्माण प्राचीन भारत के कृषि उद्योग का एक और महत्वपूर्ण हिस्सा था। हल, नांगर, फावड़ा, कुदाल और अन्य उपकरण कृषि कार्यों को सरल बनाने के लिए बनाए जाते थे। इन उपकरणों का निर्माण मुख्य रूप से धातु, लकड़ी और हड्डी से होता था।

- **हल और यांत्रिक उपकरण:** हल का निर्माण लकड़ी और धातु से किया जाता था, और यह खेतों की जुताई के लिए आवश्यक होता था।
- **नांगर और अन्य उपकरण:** नांगर का उपयोग भूमि को समतल करने के लिए किया जाता था, और अन्य कृषि उपकरणों का निर्माण पारंपरिक तरीके से किया जाता था।

12. कृषि और व्यापार का आपस में जुड़ाव



प्राचीन भारत में कृषि और उद्योग का आपस में घनिष्ठ संबंध था। कृषि उत्पादों से संबंधित उद्योगों का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं तक उत्पादों की आपूर्ति करना और उन उत्पादों को संरक्षित करना था। इन उद्योगों ने व्यापार को बढ़ावा दिया, और भारतीय व्यापारियों ने अपनी उपज को विदेशी बाजारों में भी निर्यात किया। प्रमुख व्यापारिक मार्गों के माध्यम से भारतीय वस्त्र, मसाले, धातु उत्पाद, और खाद्य सामग्री का निर्यात हुआ, और इसके बदले में अन्य देशों से सामग्री का आयात किया गया।

प्राचीन भारत में कृषि आधारित उद्योगों का अत्यधिक महत्व था। इन उद्योगों ने न केवल घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति की, बल्कि व्यापार और आर्थिक विकास में भी योगदान दिया। कृषि उत्पादों से बने विभिन्न उत्पादों ने भारतीय समाज के विकास में महत्वपूर्ण

भूमिका निभाई। इन उद्योगों ने यह भी सिद्ध कर दिया कि प्राचीन भारत में तकनीकी दक्षता और संसाधनों का प्रभावी उपयोग किया जाता था, जिससे समाज में समृद्धि और स्थिरता आई।

13. निष्कर्ष

प्राचीन भारत की कृषि और औद्योगिक परंपराएँ इसकी अर्थव्यवस्था, संस्कृति और आध्यात्मिकता के साथ गहराई से जुड़ी हुई थीं। संधारणीय कृषि पद्धतियाँ, खाद्य प्रसंस्करण तकनीकें और कृषि-आधारित उद्योगों ने आत्मनिर्भरता और आर्थिक समृद्धि में योगदान दिया। भारतीय वस्त्र, मसाले और धातु के सामान वैश्विक व्यापार में अत्यधिक मूल्यवान थे, जिससे भारत का आर्थिक प्रभाव मजबूत हुआ। वैदिक कृषि और पारंपरिक उद्योगों का ज्ञान आधुनिक संधारणीय प्रथाओं को प्रेरित करता रहता है, जो भारत की कृषि विरासत की स्थायी प्रासंगिकता को उजागर करता है।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. **वैदिक कृषि विज्ञान (Science of Vedic Agriculture)**, लेखक: देवेन्द्र कुमार गुप्त, प्रकाशक: प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष: 2012, ISBN: 9788177022872, भाषा: हिंदी.
2. **Vedic Farming**, लेखक: Ravi Prakash Arya, प्रकाशक: Indian Foundation for Vedic Science, वर्ष: 2006, ISBN: 9788187710363, भाषा: English.
3. **Trade and Commerce in Ancient India (From the Earliest Times to c. A.D. 300)**, लेखक: Balram Srivastava, प्रकाशक: Chowkhamba Sanskrit Series Office, वर्ष: 1968, ISBN: Not Available, भाषा: English.
4. **Foreign Trade and Commerce in Ancient India**, लेखक: Prakash Chandra Prasad, प्रकाशक: Abhinav Publications, वर्ष: 1990, ISBN: 9788170170532, भाषा: English.
5. **Ancient Indian Commerce**, लेखक: Dr. B.R. Ambedkar, प्रकाशक: Independently Published, वर्ष: 2018, ISBN: 9781720204008, भाषा: English.
6. **Trade and Trade Routes in Ancient India**, लेखक: Moti Chandra, प्रकाशक: Abhinav Publications, वर्ष: Not Available, ISBN: 9788170170556, भाषा: English.
7. **Organic Farming for Sustainable Agriculture**, लेखक: A.K. Dahama, प्रकाशक: Vedic Books, वर्ष: Not Available, ISBN: 8177540580, भाषा: English.
8. **Hydrology and Water Resources Management in Ancient India**, लेखक: R. Mujumdar, जर्नल: Hydrology and Earth System

Sciences, वर्ष: 2020, DOI: 10.5194/hess-24-4691-2020, ISSN: 1027-5606.

9. **Revisiting Indian Traditional Foods: A Critical Review of the Processing and Nutritional Aspects**, लेखक: Oluwafemi Ayodeji Adebo, जर्नल: Trends in Food Science & Technology, वर्ष: 2022, DOI: 10.1016/j.tifs.2022.07.005, ISSN: 0924-2244.

10. **Protecting Ancient Water Harvesting Technologies in India: Strategies and Challenges**, लेखक: Laskar, जर्नल: Frontiers in Water, वर्ष: 2024, DOI: 10.3389/frwa.2024.1441365, ISSN: 2624-9375.

11. **Manure, Soil and the Vedic Literature**, लेखक: Vanaja Ramprasad, पुस्तक अध्याय: Agricultural Knowledge and the Vedic Literature, प्रकाशक: Taylor & Francis, वर्ष: 2016, DOI: 10.4324/9781315593746-12.

12. **A Historical Study of Agriculture System in Vedic India**, लेखक: Nabyendu Roy Chaudhury, जर्नल: Not Available, वर्ष: 2021, DOI: Not Available, ISSN: Not Available.

13. **A Comprehensive Study of Trade and Commerce in Ancient India**, लेखक: Gautam Dilip Maske, जर्नल: Redshine Publication, वर्ष: 2023, DOI: 10.25215/9358095784.24, ISSN: Not Available.

14. **An Approach to Implement Vedic Mathematics to Agricultural System: A Review**, लेखक: Not Available, जर्नल: Agricultural Reviews, वर्ष: 2021

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. वैदिक साहित्य में 'अकृष्टपच्य' शब्द का क्या अर्थ है?
   - क) बार-बार हल चलाने योग्य भूमि
   - ख) बिना जोते उपजाऊ भूमि
   - ग) बंजर भूमि
   - घ) सिंचित भूमि

2. वायु पुराण के अनुसार, चाक्षुष मन्वंतर के समय क्या अनुपस्थित था?
   - क) हल चलाना और सिंचाई
   - ख) फसल, गौ-रक्षा, कृषि और व्यापार
   - ग) उपजाऊ भूमि और नदियाँ
   - घ) राजा और पुरोहित

3. वैदिक परंपरा में किस राजा को कृषि हेतु पृथ्वी को समतल करने का श्रेय दिया जाता है?
   - क) मनु
   - ख) परीक्षित
   - ग) पृथु
   - घ) हरिश्चंद्र

4. ऋग्वेद में कृषि को किस रूप में वर्णित किया गया है?
   - क) एक यांत्रिक प्रक्रिया
   - ख) एक पवित्र और आनंददायक क्रिया
   - ग) एक दंड स्वरूप कार्य
   - घ) एक गौण आर्थिक गतिविधि

5. ऋग्वेद 4.57.4 में किस कृषि उपकरण का स्पष्ट उल्लेख है?

क) कुल्हाड़ी

ख) फावड़ा

ग) हल

घ) संगरनी

6. पुरातात्विक खोजों के अनुसार, कोल्दिहवा किस फसल की प्रारंभिक खेती के लिए प्रसिद्ध है?

क) गेहूं

ख) बाजरा

ग) चावल

घ) जौ

7. उत्तर प्रदेश की कौन-सी जगह 6000–5000 ई.पू. के चावल की खेती का प्रमाण देती है?

क) महगड़ा

ख) लहुड़देवा

ग) हस्तिनापुर

घ) मेहरगढ़

8. संस्कृत शब्द 'कृषन्तः' का अर्थ क्या है?

क) बीज बोना

ख) हल चलाना

ग) फसल काटना

घ) खाद डालना

9. भूमि वर्ग के अनुसार, कितने प्रकार की कृषि योग्य भूमि का वर्णन है?

क) 10

ख) 12

ग) 15

घ) 8

10. प्राचीन कृषि में 'उर्वी' शब्द किसका संकेत देता है?

क) बंजर खेत

ख) उपजाऊ पृथ्वी

ग) सिंचाई नहर

घ) गौशाला

11. बृहत् संहिता के अनुसार, मिट्टी की उर्वरता की जांच के लिए किस बीज का उपयोग होता था?

क) जौ

ख) चावल

ग) तिल

घ) सरसों

12. यजुर्वेद में किस तीन प्रकार की भूमि का वर्णन है?

क) उर्वरा, शश्याय, इरण्याय

ख) माथा, पांडुर, गाढ़

ग) जलप्रिय, तिल्वान, नक्षत्र

घ) नदी, देवी, गहन

13. "मृदु मृत्तिका" (कोमल मिट्टी) किस ग्रंथ में खेती के लिए उपयुक्त मानी गई है?

क) तैत्तिरीय ब्राह्मण

ख) ऋग्वेद

ग) बृहत् संहिता

घ) कौषीतकि ब्राह्मण

14. वैदिक कृषि में 'वपन्तः' शब्द का क्या अर्थ है?

क) सिंचाई करना

ख) कटाई करना

ग) बीज बोना

घ) हल चलाना

15. वेदों में वर्षा और कृषि समृद्धि से जुड़ा देवता कौन है?

क) वरुण
ख) अग्नि
ग) इन्द्र
घ) सोम

16. प्राचीन कृषि प्रणाली में बीज बोने का समय कैसे तय किया जाता था?

क) छाया की लंबाई से
ख) चंद्रमा की कलाओं से
ग) नक्षत्रों से
घ) पशुओं के व्यवहार से

17. परती भूमि को बिना छेड़े कितने समय तक छोड़ दिया जाता था?

क) दो महीने
ख) चार महीने
ग) छह महीने
घ) एक वर्ष

18. वैदिक काल में सर्वश्रेष्ठ जैविक खाद किसे माना जाता था?

क) राख
ख) गोबर और गोमूत्र
ग) नीम चूर्ण
घ) फलों का गूदा

19. पृथ्वी यज्ञ जैसे कृषि यज्ञों का उद्देश्य क्या था?

क) व्यापार वृद्धि
ख) वर्षा उत्पत्ति
ग) मिट्टी की उर्वरता बढ़ाना
घ) बाढ़ रोकना

20. अन्न और पोषण की देवी के रूप में किस देवी की पूजा की जाती है?

क) सरस्वती

ख) लक्ष्मी

ग) अन्नपूर्णा

घ) शारदा

21. उत्तर भारत में फसल कटाई और सूर्य पूजा का त्योहार कौन-सा है?

क) होली

ख) दीपावली

ग) मकर संक्रांति

घ) वसंत पंचमी

22. किस ऋग्वैदिक मंत्र में जुए की निंदा कर कृषि को प्रोत्साहित किया गया है?

क) 4.57.4

ख) 10.34.13

ग) 7.2.3

घ) 1.23.15

23. "अपः प्राणिनां" का अर्थ क्या है?

क) अग्नि ही जीवन है

ख) पृथ्वी स्थिर है

ग) जल ही जीवन है

घ) वायु आवश्यक है

24. वैदिक कृषि में जैव-गतिक खेती किसके समान है?

क) बिना बीज की खेती

ख) चंद्रमा आधारित खेती

ग) नक्षत्र आधारित खेती

घ) पशु रहित कृषि

25. किस प्राचीन उद्योग में दूध का उपयोग धार्मिक और औषधीय वस्तुएँ बनाने में होता था?

क) लोहा उद्योग

ख) खाद्य संरक्षण

ग) दुग्ध प्रसंस्करण

घ) काष्ठ शिल्प

26. किस प्राचीन भारतीय ग्रंथ में कृषि और भूमि मापन की विस्तृत जानकारी मिलती है?

क) अर्थशास्त्र

ख) मनुस्मृति

ग) ऋग्वेद

घ) महाभारत

27. वैदिक काल में 'बली' शब्द का क्या अर्थ था?

क) एक प्रकार की फसल

ख) कर या उपहार

ग) हल चलाने की तकनीक

घ) फसल उत्सव

28. पोंगल कृषि पर्व मुख्यतः किस राज्य में मनाया जाता है?

क) केरल

ख) आंध्र प्रदेश

ग) तमिलनाडु

घ) कर्नाटक

29. किस वैदिक देवता का संबंध कृषि और उर्वरता से है?

क) अग्नि

ख) इन्द्र

ग) पृथ्वी

घ) वरुण

30. वैदिक साहित्य में 'उर्वरा' शब्द किसे दर्शाता है?

क) बंजर भूमि

ख) उपजाऊ भूमि

ग) पथरीला क्षेत्र

घ) वन क्षेत्र

31. प्राचीन भारत में प्रचलित सिंचाई प्रणाली कौन-सी थी?

क) ड्रिप सिंचाई

ख) स्प्रिंकलर प्रणाली

ग) नहर सिंचाई

घ) हाइड्रोपोनिक्स

32. प्राचीन भारत में परती भूमि छोड़ने की परंपरा को क्या कहा जाता था?

क) पार्वती

ख) खिला

ग) उर्वरा

घ) अनावृष्टि

33. ऋग्वेद में सबसे अधिक किस फसल का उल्लेख मिलता है?

क) गेहूं

ख) चावल

ग) जौ

घ) बाजरा

34. वैदिक ग्रंथों में 'सीता' शब्द का अर्थ क्या है?

क) फसल की देवी

ख) हल द्वारा बनी नाली

ग) अनाज का प्रकार

घ) एक यज्ञ बलि

35. कौन-सा प्राचीन भारतीय ग्रंथ रंग और बनावट के आधार पर मिट्टी का वर्गीकरण करता है?

क) अथर्ववेद
ख) मनुस्मृति
ग) बृहत् संहिता
घ) तैत्तिरीय ब्राह्मण

36. प्राचीन भारत में फसल चक्र का उद्देश्य क्या था?

क) मिट्टी की लवणता बढ़ाना
ख) मिट्टी का कटाव रोकना
ग) मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना
घ) श्रम लागत घटाना

37. संस्कृत में 'कृषि' शब्द का अर्थ क्या है?

क) व्यापार
ख) युद्ध
ग) कृषि
घ) शिक्षा

38. हल को समर्पित वैदिक स्तोत्र कौन-सा है?

क) पुरुष सूक्त
ख) द्यौः सूक्त
ग) सीता सूक्त
घ) अग्नि सूक्त

39. प्राचीन भारतीय उपकरण 'लांगल' किसे कहा जाता था?

क) हंसिया
ख) हल
ग) फावड़ा
घ) कुदाल

40. वैदिक यज्ञों में 'यजमान' कौन होता था?

क) यज्ञ करने वाला पुरोहित

ख) यज्ञ का प्रायोजक

ग) यज्ञ देखने वाला दर्शक

घ) पूजित देवता

41. वैदिक समाज में 'गृहपति' शब्द किसे दर्शाता है?

क) योद्धा

ख) राजा

ग) घर का मुखिया

घ) पुरोहित

42. कौन-सा प्राचीन भारतीय ग्रंथ समय पर बीज बोने के महत्व को दर्शाता है?

क) ऋग्वेद

ख) अर्थशास्त्र

ग) मनुस्मृति

घ) बृहत् संहिता

43. बैसाखी त्योहार किस गतिविधि से जुड़ा है?

क) बीज बोना

ख) फसल की कटाई

ग) पशु पूजन

घ) वर्षा प्रार्थना

44. प्राचीन भारत में भूमि मापन की इकाई 'निवार्तन' किसके बराबर थी?

क) एक एकड़

ख) आधा एकड़

ग) एक दिन की हल चलाने की भूमि

घ) एक वर्ग मील

45. संस्कृत में 'सस्यं' शब्द का अर्थ क्या है?

क) मिट्टी
ख) बीज
ग) फसल
घ) जल

46. कौन-सा प्राचीन भारतीय ग्रंथ कृषि के लिए जल प्रबंधन के निर्देश प्रदान करता है?

क) यजुर्वेद
ख) अर्थशास्त्र
ग) सामवेद
घ) महाभारत

47. गोबर को खाद के रूप में प्रयोग करने की परंपरा का उल्लेख किस ग्रंथ में है?

क) ऋग्वेद
ख) अथर्ववेद
ग) मनुस्मृति
घ) बृहत् संहिता

48. पंचगव्य किसमें प्रयोग होने वाला मिश्रण है?

क) युद्ध
ख) कृषि और अनुष्ठानों में
ग) व्यापार
घ) शिक्षा

49. प्राचीन भारतीय पंचांग मुख्यतः किस पर आधारित था?

क) सौर गति
ख) चंद्र गति
ग) नक्षत्र स्थिति
घ) कृषि चक्र

50. वैदिक शब्द 'संवत्सर' का अर्थ क्या है?

क) एक माह
ख) एक सप्ताह
ग) एक वर्ष
घ) एक ऋतु

51. ऋग्वेद में 'यव' शब्द किस फसल के लिए प्रयुक्त हुआ है?

क) गेहूं
ख) चावल
ग) जौ
घ) बाजरा

52. कौन-सा प्राचीन ग्रंथ कृषि और भूमि मापन पर विस्तृत जानकारी प्रदान करता है?

क) अर्थशास्त्र
ख) मनुस्मृति
ग) ऋग्वेद
घ) महाभारत

53. मकर संक्रांति पर्व मुख्यतः किस कार्य से जुड़ा होता है?

क) रबी फसलों की बुआई
ख) खरीफ फसल की कटाई
ग) नहर निर्माण का उत्सव
घ) हल जोतने की शुरुआत

54. 'लोहड़ी' पर्व के अवसर पर अग्नि में क्या अर्पित किया जाता है?

क) चावल और दही
ख) तिल और मूंगफली
ग) घी और हल्दी
घ) अनाज और फल

55. 'पोंगल' त्योहार किस राज्य में प्रमुख रूप से मनाया जाता है?

क) आंध्र प्रदेश
ख) तमिलनाडु
ग) महाराष्ट्र
घ) पंजाब

56. 'ओणम' पर्व किस फसल की कटाई के साथ जुड़ा है?

क) गेंहू
ख) बाजरा
ग) धान
घ) मक्का

57. 'बैसाखी' पर्व मुख्यतः किस राज्य से जुड़ा है?

क) उत्तर प्रदेश
ख) पंजाब
ग) गुजरात
घ) असम

58. 'नुआखाई' पर्व में पहला अन्न किसे अर्पित किया जाता है?

क) पितरों को
ख) देवी लक्ष्मी को
ग) पशुओं को
घ) देवता को

59. 'नवन्ना' पर्व किसके सम्मान में मनाया जाता है?

क) किसान
ख) देवी अन्नपूर्णा
ग) नई फसल
घ) पशुधन

60. 'गुड़ी पड़वा' या 'उगाड़ी' किसका प्रतीक है?

क) फसल की कटाई

ख) नए वर्ष और रबी बुआई का आरंभ

ग) खरीफ फसल का समापन

घ) पशुपालन उत्सव

61. 'वसंत पंचमी' पर्व सरसों की फसल से किस रूप में जुड़ा है?

क) फसल की कटाई

ख) फसल की बुआई

ग) सरसों के फूलों का खिलना

घ) बीज संरक्षण

62. 'पोला' पर्व में किसकी पूजा की जाती है?

क) हल

ख) बैल

ग) अन्न

घ) नदी

63. 'अक्का पांडा' पर्व किस समुदाय में मनाया जाता है?

क) काशी के ब्राह्मण

ख) छत्तीसगढ़ के आदिवासी

ग) मराठा किसान

घ) केरल के मछुआरे

64. 'होर्नबिल महोत्सव' किस राज्य में मनाया जाता है?

क) मणिपुर

ख) त्रिपुरा

ग) नागालैंड

घ) असम

65. 'ड्री' उत्सव किस जनजाति द्वारा मनाया जाता है?

क) गोंड

ख) संथाल

ग) मिजो

घ) आपातानी

66. 'अगड़ी' पर्व किस राज्य में मनाया जाता है और किससे जुड़ा होता है?

क) महाराष्ट्र – बुआई

ख) पंजाब – कटाई

ग) केरल – रोपाई

घ) तमिलनाडु – सिंचाई

67. 'थारपा' किस राज्य का कृषिपरक त्योहार है?

क) हिमाचल प्रदेश

ख) अरुणाचल प्रदेश

ग) जम्मू-कश्मीर

घ) लद्दाख

68. किस पर्व में "गोधन" की पूजा होती है?

क) होली

ख) दीपावली

ग) गोवर्धन पूजा

घ) महाशिवरात्रि

69. हलषष्ठी पर्व किससे संबंधित है?

क) बुआई की शुरुआत

ख) पुत्र संतान की कामना

ग) फसल कटाई

घ) नदी पूजन

70. कृषि पर आधारित सबसे पुराना पर्व कौन सा माना जाता है?

क) लोहड़ी
ख) मकर संक्रांति
ग) पोला
घ) वसंत पंचमी

71. 'बिहू' त्योहार किस राज्य का कृषि पर्व है?

क) ओडिशा
ख) बिहार
ग) असम
घ) झारखंड

72. किस त्योहार में नई फसल को घर लाकर पकाया और देवता को अर्पित किय जाता है?

क) नवन्ना
ख) दीपावली
ग) गुड़ी पड़वा
घ) होली

73. 'बावली' (वाव, बावड़ी) किस प्रकार की जल संरचना है?

क) भूमिगत जल सुरंग
ख) बहुपरत सीढ़ीनुमा जलकूप
ग) कांच से बनी जल टंकी
घ) नदी किनारे का बंध

74. 'बावली' जल प्रणाली मुख्य रूप से किन क्षेत्रों में पाई जाती है?

क) हिमालय क्षेत्र
ख) केरल और तमिलनाडु
ग) राजस्थान, दिल्ली, गुजरात
घ) उत्तर-पूर्वी राज्य

80. 'अहर' और 'पाइन' में क्या संबंध है?

क) दोनों खाद्यान्न हैं

ख) अहर एक नहर है, पाइन एक तालाब

ग) पाइन जल संग्रह करता है, अहर जल छोड़ता है

घ) पाइन जल लाता है, अहर में संग्रह होता है

81. जोहड़ किस प्रकार की जल संरचना है?

क) सीमेंट की पाइपलाइन

ख) मिट्टी की बांध संरचना

ग) भूमिगत टंकी

घ) पवनचक्की आधारित जल स्रोत

82. 'जोहड़' का प्रमुख लाभ क्या है?

क) जल को गर्म करना

ख) सिंचाई से बचना

ग) भूजल पुनर्भरण

घ) विद्युत उत्पादन

83. 'पनम केनि' जल स्रोत का उपयोग कौन करते हैं?

क) ब्राह्मण

ख) आदिवासी समुदाय

ग) सैनिक

घ) उद्योगपति

84. 'पनम केनि' किस प्रकार की संरचना है?

क) सीमेंट का तालाब

ख) गन्ने की चटाई से बना कुआं

ग) ताड़ी के पेड़ की छाल से बना पवित्र कुआं

घ) लकड़ी का नहर

85. 'खडीन' किस कृषि तकनीक से जुड़ा है?

क) बागवानी

ख) सूखा क्षेत्रीय खेती

ग) नर्सरी

घ) बांस आधारित खेती

86. 'खडीन' किस स्थान पर प्रमुखता से पाया जाता है?

क) जैसलमेर, राजस्थान

ख) गुवाहाटी, असम

ग) कच्छ, गुजरात

घ) मेरठ, उत्तर प्रदेश

87. 'कुंड' किस प्रकार की जल संरचना है?

क) भूमिगत गोलाकार कुआं

ख) बहती नदी

ग) टंकी और हौज का मेल

घ) पाइपलाइन

88. 'कुंड' को रिसाव से बचाने के लिए किसका उपयोग किया जाता था?

क) गोंद और सीमेंट

ख) नींबू और राख

ग) प्लास्टिक शीट

घ) लकड़ी और मिट्टी

89. 'जिंग' प्रणाली कहाँ उपयोग में ली जाती है?

क) लद्दाख

ख) नागालैंड

ग) झारखंड

घ) गोवा

90. 'कूल' प्रणाली का क्या कार्य है?

क) वर्षाजल रोकना

ख) जंगलों में जल संग्रह

ग) हिमनदीय जल को खेतों तक पहुँचाना

घ) पानी को गर्म करना

91. 'जाबो' प्रणाली किस राज्य से जुड़ी है?

क) राजस्थान

ख) नगालैंड

ग) पंजाब

घ) गुजरात

92. 'जैकवेल' किस जनजातीय क्षेत्र में पाया जाता है?

क) भील जनजाति

ख) गोंड जनजाति

ग) शोमपेन जनजाति

घ) संथाल जनजाति

93. 'कुम्बम टैंक' को और किस नाम से जाना जाता है?

क) कृष्णा सागर टैंक

ख) नल्लमाला टैंक

ग) गुंडलकम्मा टैंक

घ) नर्मदा जलाशय

94. कुम्बम टैंक किस राज्य में स्थित है?

क) तमिलनाडु

ख) कर्नाटक

ग) आंध्र प्रदेश

घ) केरल

95. कुम्बम टैंक का निर्माण किस काल में हुआ था?
   क) 10वीं शताब्दी
   ख) 14वीं शताब्दी
   ग) 1522–1524 ई.
   घ) 1600–1605 ई.

96. कुम्बम टैंक का निर्माण किसने करवाया था?
   क) महारानी गौरी
   ख) रानी वरदराजम्मा (रुचिदेवी)
   ग) रानी नागमणि
   घ) रानी पद्मावती

97. रानी वरदराजम्मा किस राजा की पत्नी थीं?
   क) राजा कृष्णदेवराय
   ख) राजा रामदेव
   ग) राजा हर्षवर्धन
   घ) राजा देवराय द्वितीय

98. कुम्बम टैंक मुख्यतः किस नदी द्वारा पोषित होता है?
   क) नर्मदा
   ख) नल्लमल्लावगु
   ग) गोदावरी
   घ) कृष्णा

99. नल्लमल्लावगु नदी कहाँ से निकलती है?
   क) विंध्य पर्वत
   ख) नीलगिरी पर्वत
   ग) नल्लमाला पर्वत
   घ) अरावली पर्वत

100. इस टैंक का जलाशय कितना लंबा है?

क) 3 किमी

ख) 5 किमी

ग) 7 किमी

घ) 9 किमी

101. कुम्बम टैंक की चौड़ाई लगभग कितनी है?

क) 1.5 किमी

ख) 3.5 किमी

ग) 4.5 किमी

घ) 2.5 किमी

102. इसका जल निकासी क्षेत्र लगभग कितना है?

क) 150 वर्ग मील

ख) 300 वर्ग मील

ग) 430 वर्ग मील

घ) 500 वर्ग मील

103. कुम्बम टैंक से कितने गांवों को सिंचाई मिलती है?

क) 5 गांव

ख) 12 गांव

ग) 15 गांव

घ) लगभग 19 गांव

104. किस ब्रिटिश इंजीनियर ने कुम्बम टैंक की सराहना की थी?

क) विलियम जोन्स

ख) जेम्स प्रिन्सेप

ग) सर आर्थर कॉटन

घ) जॉन मार्शल

105. सर आर्थर कॉटन ने किस तकनीक की सराहना की थी?

क) भू-उष्मीय प्रणाली

ख) पडल्ड बैंक (puddled bank)

ग) सौर पंपिंग

घ) पवन ऊर्जा

106. में कुम्बम टैंक को किस वैश्विक मान्यता से सम्मानित किया गया?

क) ग्रीन एनर्जी अवार्ड

ख) वर्ल्ड हेरिटेज साइट

ग) विश्व धरोहर सिंचाई संरचना (WHIS)

घ) यूनेस्को पारिस्थितिकी सम्मान

107. वर्तमान में कुम्बम टैंक के संरक्षण में कौन सी अंतरराष्ट्रीय एजेंसी सहायता कर रही है?

क) विश्व बैंक

ख) यूनेस्को

ग) जांपान अंतरराष्ट्रीय सहयोग एजेंसी (JICA)

घ) एशियन डेवलपमेंट बैंक

108. वैदिक काल में उपयोग की जाने वाली प्रमुख कृषि प्रणाली कौन-सी थी?

क) झूम खेती

ख) पशुपालन आधारित कृषि

ग) हल चलाकर कृषि (हल-कृषि प्रणाली)

घ) सिंचित बागवानी प्रणाली

109. प्राचीन भारतीय ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में किस कृषि-संबंधी विषय का विशेष वर्णन मिलता है?

क) केवल पशुपालन

ख) भूमि की खरीद-बिक्री

ग) सिंचाई प्रणाली और फसलों की रक्षा

घ) शिकार और वनजीवन

110. प्राचीन भारत में फसल विविधता को बढ़ाने हेतु कौन-सी पद्धति अपनाई जाती थी?

क) केवल एक ही फसल उगाना

ख) बहुफसली प्रणाली (Multi-cropping)

ग) भूमिगत सिंचाई

घ) कृषि यंत्रों का उपयोग

उत्तरदर्शिका

प्रश्न	उत्तर	प्रश्न	उत्तर	प्रश्न	उत्तर
1	ख	21	ग	41	ख
2	क	22	ख	42	घ
3	ग	23	ग	43	ख
4	ख	24	ग	44	ग
5	ग	25	ग	45	ग
6	ग	26	क	46	ख
7	ख	27	ख	47	ख
8	ख	28	ग	48	ख
9	ख	29	ग	49	ख
10	ख	30	ख	50	ग
11	ग	31	ग	51	ग
12	क	32	ख	52	क
13	ग	33	ग	53	ख
14	ग	34	ख	54	ख
15	ग	35	ग	55	ख
16	ग	36	ग	56	ग
17	ख	37	ग	57	ख
18	ख	38	ग	58	घ
19	ग	39	ख	59	ग
20	ग	40	ख	60	ख

प्रश्न	उत्तर	प्रश्न	उत्तर	प्रश्न	उत्तर
61	ग	78	घ	95	ग
62	ख	79	ग	96	ख
63	ख	80	घ	97	क
64	ग	81	ख	98	ख
65	घ	82	ग	99	ग
66	क	83	ख	100	ग
67	घ	84	ग	101	ख
68	ग	85	ख	102	ग
69	ख	86	क	103	घ
70	ख	87	क	104	ग
71	ग	88	ख	105	ख
72	क	89	क	106	ग
73	ख	90	ग	107	ग
74	ग	91	ख	108	ग
75	ग	92	ग	109	ग
76	ग	93	ग	110	ख
77	ग	94	ग		

Bharat Boudhiks

खंड-१

राजधर्म

भारत में शासन और लोकनीति

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

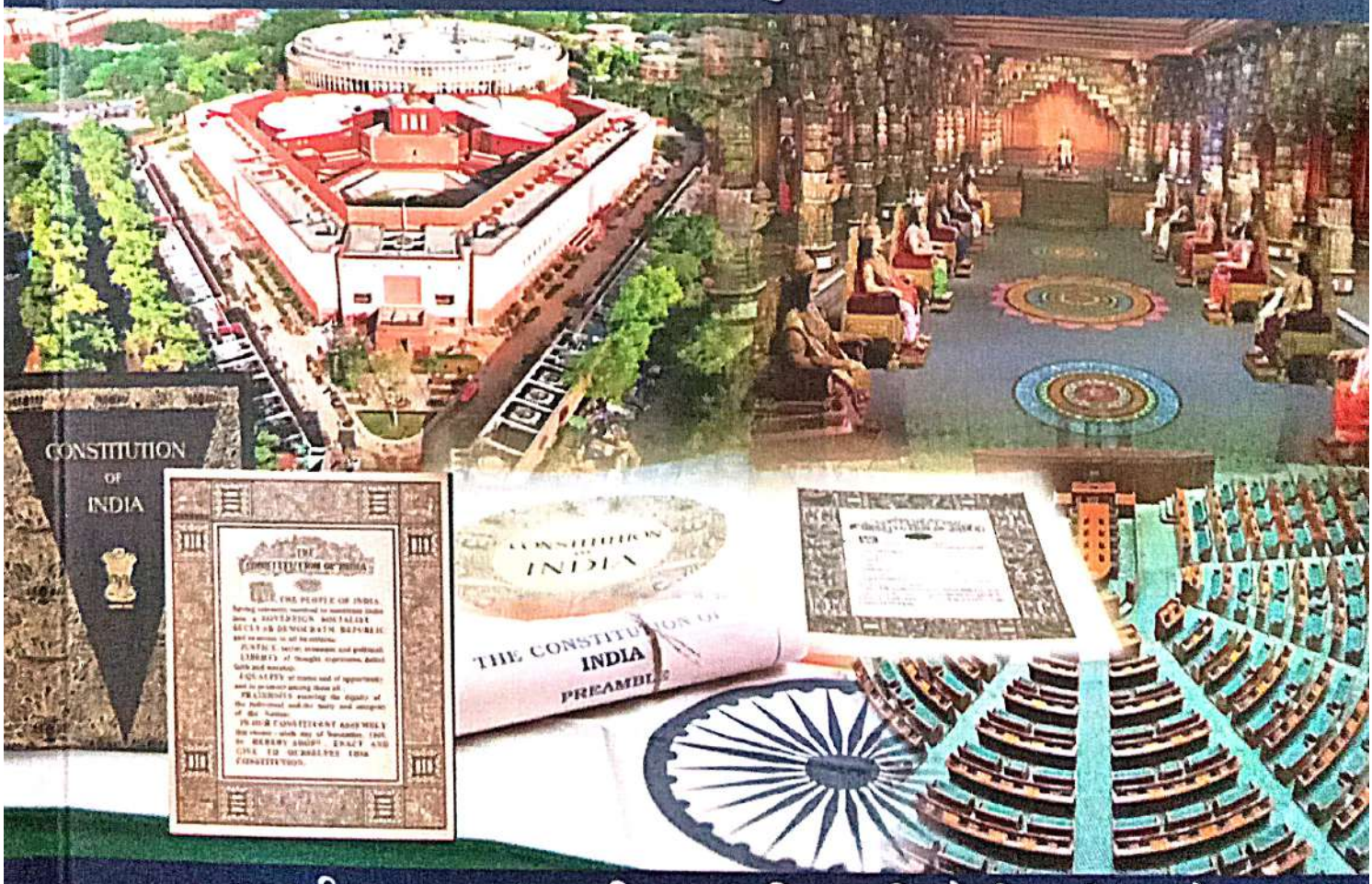

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

राजधर्म

भारत में शासन और लोकनीति

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। पौराणिक स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **राजधर्मः भारत में शासन और लोकनीति**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. दीपक कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-09-3

मूल्य : 250/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश



प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

प्रस्तावना	9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1. भूमिका - वैदिक काल और शासकीय व्यवस्था	13
2. वैदिक काल में राजनीतिक संरचना	13
3. शासकीय व्यवस्था में धर्म का सिद्धांत	14
4. पुजारियों की भूमिका	15
5. अर्थ की अवधारणा और समाज और शासन में इसकी भूमिका	15
6. शासन तंत्र: राजतंत्र एवं लोकतंत्र	17
7. अर्थशास्त्र से अंतर्दृष्टि	17
8. अर्थशास्त्र: प्राचीन शासन और प्रशासन की रूपरेखा	19
9. कौटिल्यन राज्य: प्रशासन का एक व्यावहारिक मॉडल	22
10. राज्य के सात तत्व: शासन की रूपरेखा	23
11. प्रशासनिक व्यवस्था	37
12. महाकाव्यों से लोक प्रशासन के परिप्रेक्ष्य: महाभारत और रामायण	42
13. निष्कर्ष	49
सुझावात्मक पठनीय सामग्री	50
बहु विकल्पीय प्रश्न	52
उत्तर-दर्शिका	83

The key Hindu concept of dharma - the right way, the sanctioned way, which all men must follow, according to their natures - is an elastic concept. At its noblest it combines self-fulfillment and truth to the self with the ideas of action as duty, action as its own spiritual reward, man as a holy vessel.

Source: Bulia A Wounded Civilization– by VS Naipaul



VS Naipaul

Renowned Indo-Trinidadian-British writer; he received the Nobel prize in literature in 2001. He has been called 'A Master of Modern Prose' and has been awarded numerous prizes, including the John Llewellyn Rhys Prize, the Somerset Maugham Award, the Booker Prize, and the David Cohen Prize for a lifetime's achievement in British literature

प्रस्तावना

यह पुस्तक **"राजधर्मः प्राचीन भारत में शासन और लोकनीति"** प्राचीन भारतीय राज्यशास्त्र की मूल अवधारणाओं एवं व्यवहारिक दृष्टिकोणों को प्रकाश में लाने का एक विनम्र प्रयास है।अर्थशास्त्र, महाभारत, रामायण तथा राजधर्म पर आधारित अन्य ग्रंथों के माध्यम से यह कृति न केवल भारत के पारंपरिक शासकीय ज्ञान को प्रस्तुत करती है, अपितु आधुनिक शासन प्रणाली से उसका सजीव संबंध भी स्थापित करती है।

भारतीय परंपरा में शासन सदा से धर्म (नैतिक उत्तरदायित्व), अर्थ (भौतिक समृद्धि), एवं सामाजिक समरसता का समन्वय रहा है। यह विचार प्रणाली न तो जड़ थी और न ही केवल धार्मिक; अपितु यह गहन, व्यावहारिक और दूरदर्शी थी। इसमें न केवल नीति और धर्म की व्याख्या है, बल्कि प्रशासनिक ढांचे, कर व्यवस्था, विदेश नीति, न्याय प्रणाली, एवं सैन्य संगठन जैसी व्यवस्थाओं का भी विशद वर्णन मिलता है।

विशेषतः कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र एक ऐसा ग्रंथ है जो शासन के नैतिक एवं प्रशासनिक दोनों पक्षों को समाहित करता है। इसमें राज्य की स्थिरता, जनकल्याण एवं शासक के नैतिक आचरण को प्रमुखता दी गई है। यह ग्रंथ शासन व्यवस्था की केवल शक्ति का साधन नहीं, अपितु एक लोक-सेवक की भूमिका के रूप में प्रस्तुत करता है।

यह पुस्तक विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) के सतत प्रयासों का अंग है, जिसका उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा का पुनरुद्धार एवं उसे वर्तमान उच्च शिक्षा प्रणाली में समाहित करना है। इस प्रयास के माध्यम से हम छात्रों में न केवल शैक्षणिक उत्कृष्टता, अपितु चरित्र, उत्तरदायित्व एवं राष्ट्रभावना का भी संचार करना चाहते हैं।

हमें विश्वास है कि यह पुस्तक भारत के समृद्ध प्रशासनिक ज्ञान को 21वीं शताब्दी की शासन चुनौतियों से जोड़ने का सेतु सिद्ध होगी। छात्र, शिक्षक, लोकसेवक एवं सभी ज्ञान-सेवी पाठकों के लिए यह ग्रंथ उपयोगी एवं प्रेरणास्पद सिद्ध होगा ।

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है । **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो ।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है । सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है । यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है ।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है । संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है । कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है ।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है ।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शाखों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

राजधर्मः भारत में शासन और लोकनीति

1. भूमिका - वैदिक काल और शासकीय व्यवस्था

राजधर्म, जो कि प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन में निहित एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, शासक के अपने प्रजा और राज्य के प्रति नैतिक और धार्मिक कर्तव्यों को दर्शाता है। यह न्याय, निष्पक्षता, जवाबदेही और जनकल्याण को शासन के मूल दायित्वों के रूप में प्रमुखता देता है। उस समय के राजा केवल राजनीतिक नेता नहीं माने जाते थे, बल्कि उन्हें नैतिक आदर्श के रूप में देखा जाता था, जो मनुस्मृति और महाभारत जैसे पवित्र ग्रंथों द्वारा मार्गदर्शित होते थे।

वैदिक काल (लगभग 1500 ई.पू. से 500 ई.पू.) भारत के रिकॉर्डेड इतिहास का प्रारंभिक चरण है। इसी काल में वह नींव रखी गई थी, जो बाद में उपमहाद्वीप को आकार देने वाली कई राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं का आधार बनी। वैदिक समाज जटिल और सूक्ष्म तरीके से विकसित हुआ, जिसमें शासकीय व्यवस्था पर जनजातीय रिवाजों और धार्मिक सिद्धांतों का गहरा प्रभाव पड़ा। वैदिक काल के दौरान प्रशासन मुख्य रूप से विकेंद्रीकृत था, जिसमें राजनीतिक नेताओं और धार्मिक व्यक्तित्वों दोनों की महत्वपूर्ण भूमिकाएं थीं।

2. वैदिक काल में राजनीतिक संरचना

वैदिक काल को दो चरणों में बांटा जा सकता है: प्रारंभिक वैदिक काल (ऋग्वेद) और उत्तरवैदिक काल (यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद)। इस समय की राजनीतिक संरचना प्रारंभ में जनजातीय, विकेंद्रीकृत और पारिवारिक या कुटुंब आधारित व्यवस्था पर आधारित थी। जनजाति या कबीला मुख्य राजनीतिक इकाई था, और शासकीय व्यवस्था का विचार परिवार या कबीला आधारित प्रणालियों से जुड़ा हुआ था।

राजा और सभा

प्रारंभिक वैदिक काल में राजनीतिक संगठन जनजाति या जनता (जिसका अर्थ "लोग" होता है) के विचार पर आधारित था, जिसे छोटे समूहों में बांटा गया था, जिन्हें कुल (परिवार) कहा जाता था। प्रत्येक जनजाति का एक नेता होता था जिसे राजा कहा जाता था, यह शब्द सामान्यतः "राजा" के रूप में अनुवादित किया जाता है। हालांकि, प्रारंभिक वैदिक समाज में राजा का कार्य एक पूर्णत: सम्राट के रूप में नहीं था, बल्कि वह एक जनजातीय प्रमुख या संरक्षक के रूप में था। राजा का चयन योग्यता और नेतृत्व क्षमता के आधार पर किया जाता था, जो अक्सर जनजाति द्वारा चुना या समर्थित होता था और उसकी मुख्य जिम्मेदारी लोगों की सुरक्षा और कल्याण सुनिश्चित करना होती थी।

राजा की शक्तियां पूर्णत: अभेद्य नहीं थीं; वे सभा और समिति जैसी जनजातीय संगठनों द्वारा नियंत्रित होती थीं। ये संगठनों निर्णय-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे और इनका गठन जनजातीय बुजुर्गों और प्रभावशाली व्यक्तित्वों द्वारा किया जाता था। इनका कार्य विवादों को सुलझाना, राजा को सलाह देना और निर्णयों के लिए सहमति देना होता था, विशेष रूप से युद्ध और शांति संधियों के संदर्भ में। समिति एक बड़ा और समावेशी शरीर था, जबकि सभा को अक्सर एक अधिक चयनित और अधिकारिक परिषद के रूप में देखा जाता था।

राजा की भूमिका

प्रारंभिक वैदिक काल में राजा की भूमिका मुख्य रूप से एक नेता के रूप में थी, जो युद्ध में भाग लेता था, लोगों का संरक्षक होता था और शांति और व्यवस्था बनाए रखता था। राजा के पास मंत्रियों या सलाहकारों की एक परिषद होती थी, जिन्हें मंत्रि कहा जाता था, जो जनजातीय मामलों के प्रशासन में मदद करते थे। हालांकि, वैदिक शासन का एक विशेष लक्षण था: राजा की सत्ता फिर भी धर्म (नैतिक कानून या कर्तव्य) के सिद्धांतों द्वारा सीमित होती थी और वह जनजाति की इच्छा के अनुसार कार्य करता था, जैसा कि सभा और समिति के माध्यम से व्यक्त किया जाता था।

3. शासकीय व्यवस्था में धर्म का सिद्धांत

वैदिक काल की शासकीय व्यवस्था में धर्म एक केंद्रीय सिद्धांत था, जिसका अर्थ था एक नैतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत आचरण से संबंधित कानूनों का संग्रह, जो किसी

व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करते थे। धर्म केवल व्यक्तिगत आचरण से संबंधित नहीं था, बल्कि समाज की शासकीय व्यवस्था भी इससे प्रभावित थी।

धर्म और राजतंत्र

राजा का कर्तव्य यह सुनिश्चित करना था कि समाज धर्म के अनुसार चले। वैदिक ग्रंथों में, विशेष रूप से ऋग्वेद में, राजा को रित (सार्वभौमिक व्यवस्था) और धर्म का रक्षक बताया गया है, जो यह सिद्ध करता है कि उसका कर्तव्य दोनों आध्यात्मिक और सामाजिक सद्भाव बनाए रखना था। धर्म का सिद्धांत राजधर्म (शासक के कर्तव्य) से भी जुड़ा हुआ था, जिसमें राजा से यह अपेक्षाएं की जाती थीं कि वह न्याय का प्रशासन करे, प्रजा की रक्षा करे और राज्य की भलाई सुनिश्चित करे। यदि कोई राजा अपने कर्तव्यों में विफल रहता था, यदि वह अन्याय या अत्याचार को बढ़ावा देता था, तो उसे राजधर्म में विफल माना जाता था, और इससे विद्रोह या प्रजा का समर्थन खोने की संभावना होती थी।

4. पुजारियों की भूमिका

वैदिक काल में पुजारियों, जिन्हें ब्राह्मण कहा जाता था, का शासकीय व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान था। वे केवल धार्मिक नेता नहीं थे, बल्कि राजा के प्रमुख सलाहकार भी होते थे। विशेष रूप से वे ब्राह्मण, जो वैदिक ग्रंथों में निपुण होते थे, को पवित्र ज्ञान के रक्षक के रूप में देखा जाता था और वे निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण सलाहकार भूमिका निभाते थे। हालांकि, उनका शासन में योगदान उनके धार्मिक अनुष्ठानों के पालन और नैतिक और धार्मिक मामलों में मार्गदर्शन देने पर आधारित था, जिसे राजा को पालन करना अपेक्षित होता था।

5. अर्थ की अवधारणा और समाज और शासन में इसकी भूमिका

प्राचीन भारतीय परंपराओं के अनुसार, अर्थ जीवन के तीन प्राथमिक उद्देश्यों में से एक है, विशेष रूप से सांसारिक गतिविधियों में लगे व्यक्तियों के लिए। यह भौतिक कल्याण और आर्थिक स्थिरता का प्रतिनिधित्व करता है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक है। इस शब्द में न केवल व्यक्तिगत संपत्ति बल्कि संसाधनों का व्यापक ढांचा और सामाजिक कल्याण के लिए उनका स्थायी उपयोग भी शामिल है।

आजीविका के स्तंभ के रूप में अर्थ

व्यक्तियों के लिए, अर्थ की खोज बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन सुनिश्चित करती है, जिससे आर्थिक अस्तित्व से संबंधित चुनौतियाँ कम हो जाती है। सामाजिक स्तर पर, व्यक्तियों की भलाई पृथ्वी से प्राप्त संसाधनों के स्थायी प्रबंधन पर निर्भर करती है। इन संसाधनों का उचित अभिग्रहण और संरक्षण महत्वपूर्ण है क्योंकि ये आजीविका का आधार बनते है। दीर्घकालिक सामाजिक समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त भौतिक संपदा का उपभोग स्थिरता के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए।



एक संतुलित समाज के स्तंभ

इस संदर्भ में देखा जाए तो अर्थ व्यक्तिगत आकांक्षाओं से परे जाकर सामाजिक कल्याण की आधारशिला बन जाता है, तथा निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है:

1. समाज को व्यक्तियों और सामूहिक दोनों के लाभ के लिए संसाधनों को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए खुद को कैसे व्यवस्थित करना चाहिए?
2. प्राकृतिक संसाधनों की खपत को विनियमित और नियंत्रित करने के लिए कौन से तरीके स्थापित किए जाने चाहिए?
3. स्थायी प्रथाओं को सुनिश्चित करने के लिए किन शासन तंत्रों की आवश्यकता है?

6. शासन तंत्र: राजतंत्र एवं लोकतंत्र

प्राचीन शासन प्रणालियाँ संरचना में भिन्न थी, जिनमें राजशाही प्रमुख मॉडलों में से एक थी। इस प्रणाली में, राजा सर्वोच्च प्राधिकार रखता था और अक्सर वंशानुगत उत्तराधिकार के माध्यम से सत्ता हस्तांतरित करता था। इसके विपरीत, लोकतंत्र एक विपरीत मॉडल के रूप में उभरा, जिसमें सत्ता निर्वाचित प्रतिनिधियों में निहित होती है जो सीमित अवधि के लिए शासन करते है, लोगों के प्रति जवाबदेह होते है।

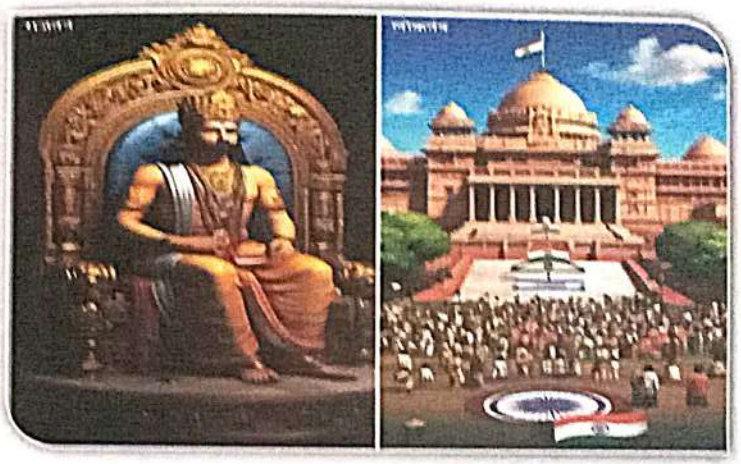

राजतंत्र बनाम लोकतंत्र

आधुनिक शब्दावली—जैसे लोक प्रशासन और शासन—इन विचारों को अभिव्यक्त करती है और संरचित पद्धतियों और संस्थाओं की आवश्यकता पर बल देती है। प्राचीन और समकालीन, दोनों ही संदर्भों में, नागरिकों के कल्याण के लिए नीतियाँ बनाने और नियमों का पालन सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

7. अर्थशास्त्र से अंतर्दृष्टि

राजधर्म पर आधारित ग्रंथों में, *चाणक्य (कौटिल्य)* द्वारा रचित अर्थशास्त्र एक मौलिक कृति है, जो शासन, संसाधन प्रबंधन और लोक प्रशासन पर व्यापक अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। जबकि अन्य ग्रंथ भी मूल्यवान दृष्टिकोण प्रदान करते है, अर्थशास्त्र शासन कला और आर्थिक नीति पर अपने विस्तृत दिशानिर्देशों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जो इसे प्राचीन भारतीय राजनीतिक दर्शन की आधारशिला बनाता है।

तालिका 1: राज-धर्म के बारे में कुछ भारतीय ग्रंथ

पाठ का नाम	मुख्य अनुभाग/संरचना	मुद्दों पर चर्चा की गई
महाभारत	शांति पर्व और अनुशासन पर्व	राजधर्म के विभिन्न पहलुओं को शामिल करता है राज-धर्म. इसमें युधिष्ठिर और भीष्म के बीच संवाद और एक राजा के नैतिक और प्रशासनिक कर्तव्यों का विवरण शामिल है।
मनु-स्मृति	अध्याय 7 और 9	राजाओं के कर्तव्यों, कानूनी प्रणालियों और न्याय के सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित किया गया है।
कौटिल्य का अर्थशास्त्र	6,500 श्लोकों को 15 पुस्तकों में व्यवस्थित किया गया	राजधर्म, शासन, अर्थशास्त्र, सैन्य रणनीति और लोक प्रशासन पर व्यापक ग्रंथ।
कामन्दक की नितिशारा	20 अध्याय	शासकों के दायित्वों, सरकारी संगठन, सिद्धांतों और नीतियों, अंतरराज्यीय संबंधों, दूतों और जासूसों की नैतिकता और विभिन्न प्रकार के युद्ध पर चर्चा करता है।
मानसोलास या अभिलाषितार्थ-चिंतामणि	पहली दो पुस्तकों में 40 अध्याय (1,600 छंद) हैं	राजाओं और मंत्रियों की योग्यता, उनके कर्तव्य और नैतिक गुण, शासन और आर्थिक प्रबंधन शामिल हैं।
चंदेश्वर के राजनीति-रत्नाकर	16 अध्यायों में व्यवस्थित	राजाओं, मंत्रियों, दुर्गों, सैन्य संगठन, राजकोष प्रबंधन, प्रशासन, नए शासकों की नियुक्ति और राज्याभिषेक अनुष्ठानों पर चर्चा करता है।
केशव पंडित की दण्डनीति	6 अध्याय	आपराधिक न्याय पर ग्रंथ. इसमें अपराध, दंड, आपराधिक प्रक्रियाएं, चोरी, व्यभिचार, बलात्कार, मानहानि, बदनामी, हमला और अन्य कानूनी मामले शामिल हैं।

8. अर्थशास्त्र: प्राचीन शासन और प्रशासन की रूपरेखा

अर्थशास्त्र प्राचीन भारत की बौद्धिक प्रतिभा के प्रमाण के रूप में खड़ा है, जो शासन, अर्थशास्त्र और रणनीति के लिए एक कालातीत मैनुअल पेश करता है। सिर्फ एक राजनीतिक मार्गदर्शक से कहीं अधिक, यह एक आदर्श राज्य की व्यापक दृष्टि बनाने के लिए शासन कला, सामाजिक कल्याण और व्यावहारिक ज्ञान के धागों को एक साथ बुनता है।

शासन के प्रति एक दूरदर्शी दृष्टिकोण

अर्थशास्त्र समाज की समृद्धि और सुरक्षा को सक्षम करने पर आधारित है। यह दो मूल सिद्धांतों पर जोर देता है–

1. **राज्य की सुरक्षा:** एक शासक को सक्षम प्रशासन के माध्यम से अपने राज्य की रक्षा करनी चाहिए।
2. **शक्ति का विस्तार:** रणनीतिक विजय और कूटनीति के माध्यम से नए क्षेत्रों को हासिल किया जा सकता है, जिससे विदेश नीति पर चर्चा का मार्ग प्रशस्त होगा।

इस दोहरे फोकस के माध्यम से, कौटिल्य ने एक ऐसा काम तैयार किया जो बाहरी ताकत के साथ-साथ आंतरिक सद्भाव के बारे में भी है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र का श्रेय कौटिल्य को दिया जाता है, जिन्हें चाणक्य या विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता है, जो शानदार रणनीतिकार और सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के सलाहकार थे। जबकि कौटिल्य की अंतर्दृष्टि गहन है, वह खुले तौर पर बृहस्पति और उसानास जैसे प्रारंभिक ऋषियों के योगदान को स्वीकार करते हैं। हालाँकि, उनकी प्रतिभा इन विचारों को संश्लेषित करने और उन्हें नए दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करने में निहित है जो अपने समय से सदियों आगे थे।

दिलचस्प बात यह है कि अर्थशास्त्र सदियों से इतिहास में खोया हुआ था और इसे 1905 में फिर से खोजा गया था। तब से, इसने न केवल अपने ऐतिहासिक मूल्य के लिए बल्कि अपनी स्थायी प्रासंगिकता के लिए विद्वानों और नीति निर्माताओं को समान रूप से आकर्षित किया है।

इस खजाने के अंदर क्या है?

अर्थशास्त्र 15 पुस्तकों में व्यवस्थित है (*अधिकारण*), प्रत्येक शासन कला के महत्वपू पहलुओं पर गहन जानकारी प्रदान करता है:

- **पुस्तकें 1-5:** भूमि प्रबंधन और शहरी नियोजन से लेकर आपराधिक कानू और न्याय तक, आंतरिक प्रशासन के सभी पहलुओं के बारे में बताती हैं।
- **पुस्तकें 6-13:** बाहरी संबंधों पर ध्यान केंद्रित करें, कूटनीति , क्षेत्रीय विस्ता और सैन्य अभियानों के लिए रणनीतियों के विवरण के बारे में बताती हैं।
- **पुस्तक 14:** दुश्मनों को खत्म करने और आंतरिक असंतोष को संबोधि करने के लिए गुप्त तरीके प्रदान करता है।
- **पुस्तक 15:** समस्या-समाधान और नीति-निर्माण के लिए 32 विश्लेषणात्मव तरीकों का परिचय देता है (*तन्त्रयुक्ति*) ।

प्रत्येक अध्याय विस्तार से कौटिल्य के सूक्ष्म ध्यान को दर्शाता है, जो पाठ कं नैतिक दर्शन और व्यावहारिक रणनीति का एक उल्लेखनीय संयोजन बनाता है।

एक राजा की शिक्षा के स्तंभ

कौटिल्य का मानना था कि एक शासक की सफलता ज्ञान की चार शाखाओं में महारत हासिल करने पर निर्भर करती है:

1. **तर्क एवं वितर्क** *(आन्वीक्षिकि)*: सभी विज्ञानों की नींव, यह शासकों के तर्क करने, विश्लेषण करने और सूचित निर्णय लेने की क्षमता से सुसज्जित करती है। यह धर्म और अधर्म, लाभ और हानि और अच्छी और बुरी नीतियों के बीच अंतर करना सिखाता है।
2. **वेद** *(त्रयी)*: धार्मिक ग्रंथों से अधिक, वेद सामाजिक भूमिकाएँ और जिम्मेदारियाँ स्थापित करते हैं, व्यवस्था और सद्भाव के लिए एक रूपरेखा तैयार करते हैं।
3. **अर्थशास्त्र** *(वार्ता)*: धन सृजन के लिए कृषि, पशुपालन और व्यापार महत्वपूर्ण हैं। एक समृद्ध अर्थव्यवस्था एक मजबूत खजाने का समर्थन करती है, जो बदले में एक शक्तिशाली सेना को बनाए रखती है और नागरिक कल्याण सुनिश्चित करती है।

4. **शासन** *(दण्डनीति)*: कानून एवं व्यवस्था एक स्थिर समाज की रीढ़ है। प्रभावी शासन उत्पीड़न को रोकता है, प्रगति को बढ़ावा देता है, और कमजोर और मजबूत दोनों की सुरक्षा करता है।

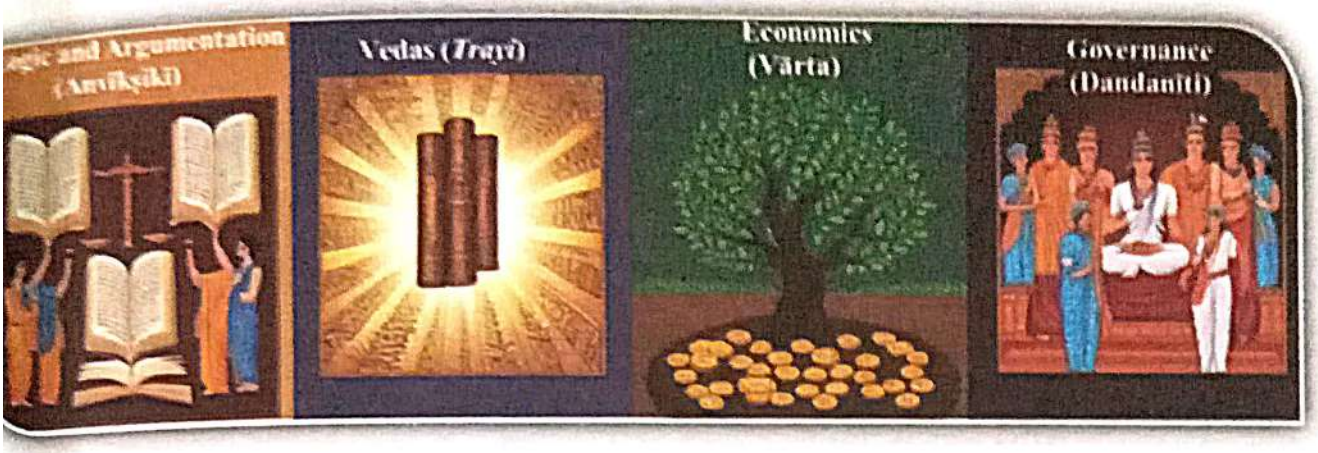

कौटिल्य के राजा की शिक्षा के चार स्तंभ

प्रभाव की एक विरासत

अर्थशास्त्र ने केवल मौर्य साम्राज्य को आकार दिया बल्कि कामन्दक की नितीशरा और सोमदेव का नीति-वाक्यमृत जैसे बाद के कार्यों को भी प्रेरित किया। इसका प्रभाव अभी भी नेतृत्व, सार्वजनिक प्रशासन और रणनीतिक योजना पर आधुनिक चर्चाओं में महसूस किया जा सकता है।

सदियों के बाद दोबारा खोजे गए इस प्राचीन ग्रंथ ने बार-बार अपनी प्रासंगिकता साबित की है। यह सिर्फ अतीत की एक खिड़की नहीं है, बल्कि सुशासन के शाश्वत सिद्धांतों को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण है।

यह आज क्यों मायने रखता है

अर्थशास्त्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ से कहीं अधिक है - यह शासन और नेतृत्व की जटिलताओं से निपटने के लिए एक जीवंत मार्गदर्शिका है। व्यावहारिक रणनीतियों के साथ नैतिक शासन का इसका मिश्रण ऐसी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है जो आधुनिक समय में भी गूंजती है। नीति-निर्माण से लेकर संघर्ष समाधान तक, कौटिल्य की बुद्धिमत्ता दुनिया भर के नेताओं को प्रेरित और मार्गदर्शन करती रहती है। तो, चाहे आप इतिहास के प्रति उत्साही हों, राजनीति विज्ञान के छात्र हों, या कालातीत रणनीतियों की तलाश करने वाले नेता हों, अर्थशास्त्र पेश करने के लिए कुछ गहरा है।

9. कौटिल्यन राज्य: प्रशासन का एक व्यावहारिक मॉडल

राज्य की उत्पत्ति या आदर्श शासन प्रणालियों पर बहस करने वाले काल्पनिक ग्रंथों के विपरीत, अर्थशास्त्र व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाता है। यह वास्तविक दुनिया के प्रशासन पर ध्यान केंद्रित करता है, जिसमें विषयों और उनकी संपत्ति की रक्षा के लिए शासक के कर्तव्य पर जोर दिया जाता है। यह सुरक्षा धोखेबाज व्यापारियों और चोरों से लेकर बाढ़ और आग जैसी प्राकृतिक आपदाओं तक विभिन्न खतरों तक फैली हुई है।

पुस्तक 2, अध्याय 1 में, कौटिल्य ने बच्चों, बुजुर्गों, बीमारों और निराश्रितों जैसे कमजोर लोगों की देखभाल करने की राजा की जिम्मेदारी पर प्रकाश डाला है।

- **योग:** उद्देश्यों की प्राप्ति.
- **क्षेमा:** उन उपलब्धियों का शांतिपूर्ण आनंद.

साथ में, ये प्रजा की समृद्धि, कल्याण और ख़ुशी सुनिश्चित करने के शासक के कर्तव्य को दर्शाते हैं। इसमें योग और क्षेम की दोहरी अवधारणाएं समाहित हैं–

कल्याण-केन्द्रित शासन व्यवस्था

कौटिल्य ने एक ऐसे सक्रिय राज्य की कल्पना की थी जो अपने लोगों के कल्याण में गहराई से निवेश करता हो। अर्थशास्त्र इस तरह की पहल की सिफारिश करता है:

1. **बुनियादी ढाँचा विकास:** अछूती ज़मीनों को व्यवस्थित करना, बाँधों, टैंकों और सिंचाई प्रणालियों का निर्माण करना और सुरक्षित व्यापार मार्गों को सुनिश्चित करना।
2. **आर्थिक विनियमन:** वस्तुओं की बिक्री को नियंत्रित करना, निष्पक्ष व्यापार प्रथाओं को सुनिश्चित करना और शोषणकारी मुनाफाखोरी से बचना।
3. **आपदा प्रतिक्रिया:** प्राकृतिक आपदाओं के समय लोगों के लिए पिता की तरह कार्य करना, सहायता और सुरक्षा प्रदान करना।

कौटिल्य ने चेतावनी दी है कि नागरिकों के कल्याण पर ध्यान न देने से असंतोष और यहां तक कि विद्रोह भी हो सकता है। पाठ में ऐसे कृत्यों की गणना की गई है जो शासक को अपनी प्रजा से दूर कर सकते हैं, जो चेतावनीपूर्ण सलाह के रूप में कार्य करता है।

10. राज्य के सात तत्व: शासन की रूपरेखा

अर्थशास्त्र के छठे अध्याय में सप्तांग या सात तत्वों (प्रकृतियों) का परिचय दिया गया है जो राज्य प्रशासन की नींव रखते हैं। प्रत्येक तत्व एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, और सूची में पहले वाले तत्व उच्चतर प्राथमिकता वाले होते हैं–

1. **राजा (स्वामिन्):** शासक और रक्षक, राज्य की स्थिरता के केंद्र में।
2. **मंत्री (अमात्य):** सलाहकार जो राजा के निर्णयों और नीतियों का मार्गदर्शन करते हैं।

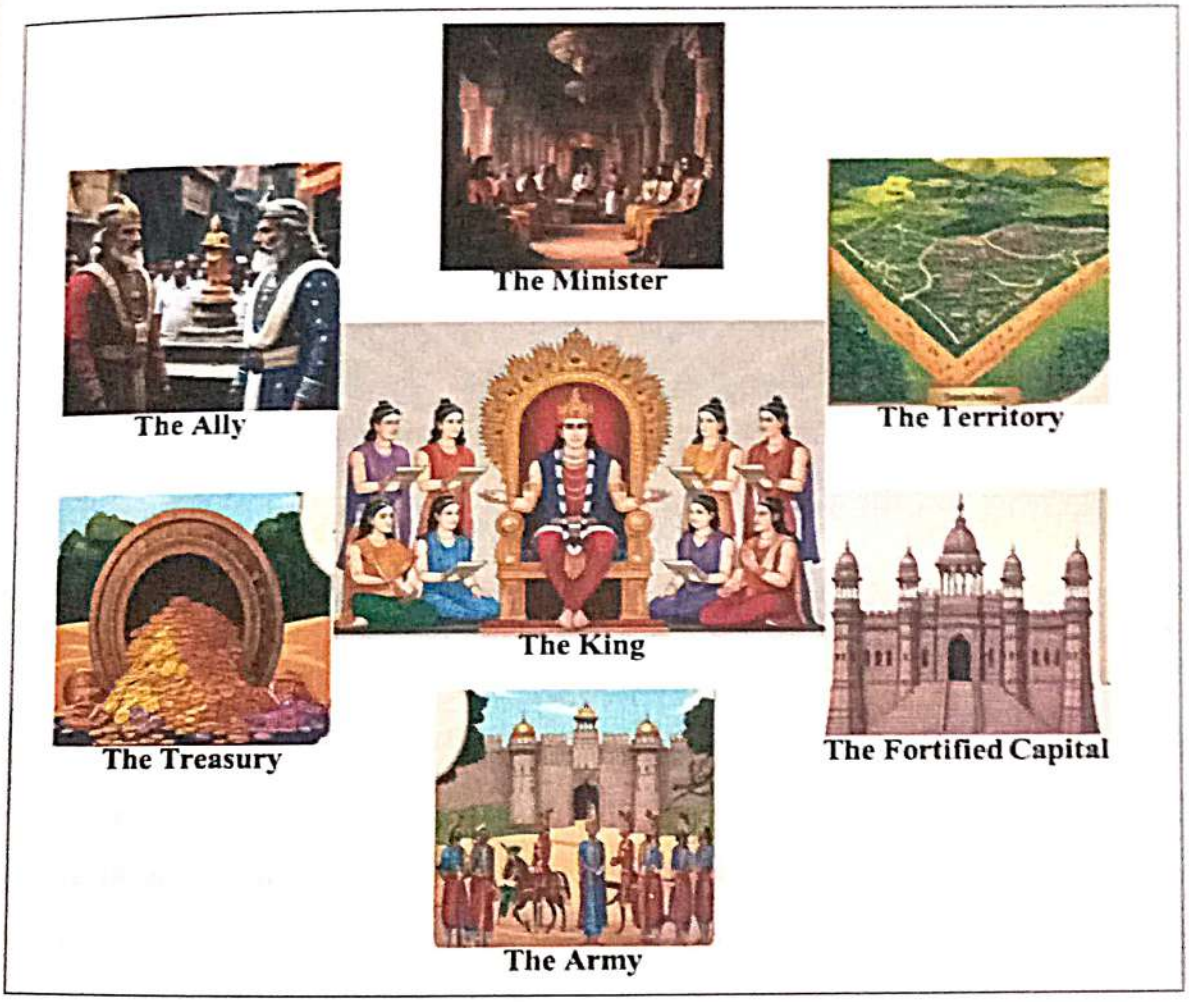

राज्य के सात तत्व

3. **क्षेत्र (जनपद):** वह भूमि और उसकी प्रजा, जिस पर राजा शासन करता है।
4. **दृढ़ राजधानी (दुर्ग):** राज्य का प्रशासनिक और रक्षात्मक केंद्र।
5. **राजकोष (कोष):** वित्तीय रीढ़, राज्य की स्थिरता और विकास सुनिश्चित करना।

6. **सेना (दण्ड):** कानून को लागू करने वाला और क्षेत्र का रक्षक।
7. **सहयोगी (मित्र):** मित्रवत शासक जो राज्य की विदेश नीति को मजबूत करते हैं।

परस्पर जुड़ी प्राथमिकताएँ

इन तत्वों का क्रम शासक के साथ उनके सापेक्ष महत्व को दर्शाता है। हालाँकि, कौटिल्य स्वीकार करते हैं कि किसी एक तत्व में प्रतिकूलता दूसरों को बाधित कर सकती है। उदाहरण के लिए, ख़त्म हुआ खजाना या कमज़ोर सेना पूरे राज्य को अस्थिर कर सकती है, चाहे शासक की क्षमता कुछ भी हो। यह परस्पर जुड़ा ढाँचा कौटिल्य शासन की समग्र प्रकृति पर प्रकाश डालता है।

व्यावहारिक बुद्धि की विरासत

अर्थशास्त्र व्यावहारिक उपायों के साथ नैतिक शासन का संयोजन करते हुए, राज्य प्रशासन का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। राज्य की जरूरतों को अपने लोगों के कल्याण के साथ संतुलित करके, कौटिल्य की दृष्टि आधुनिक शासन और प्रशासन के लिए कालातीत ज्ञान का प्रतीक बनी हुई है।

10.1 राजा: शासन का हृदय

कौटिल्य शास्त्र के अनुसार, एक आदर्श शासक ताकत, महान जन्म और शिक्षाओं के पालन का प्रतीक है शास्त्र। राजा को शारीरिक रोगों से मुक्त, बौद्धिक रूप से तेज़ और नैतिक रूप से ईमानदार होना चाहिए। अर्थशास्त्र की पुस्तक 6 एक शासक में वांछनीय गुणों के बारे में विस्तार से बताती है–

- **प्रेरणादायक गुण:** आत्मविश्वास को प्रेरित करने और सुलभता को बढ़ावा देने के लिए बड़प्पन, धर्मपरायणता और सच्चाई।
- **बौद्धिक कुशाग्रता:** विचारों की स्पष्टता और जटिल मुद्दों को समझने की क्षमता।
- **चरित्र की ताकत:** बहादुरी, निर्णायकता और लचीलापन।

चूँकि सभी शासक इन गुणों के साथ पैदा नहीं होते हैं, कौटिल्य चार महत्वपूर्ण विषयों में व्यवस्थित प्रशिक्षण पर जोर देते हैं:

1. **दार्शनिक पूछताछ *(आन्वीक्षिकि)*:** समभाव और जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण विकसित करता है।
2. **वैदिक विद्या *(त्रयी)*:** सामाजिक प्रणालियों और परंपराओं की समझ को बढ़ाता है।
3. **अर्थशास्त्र *(वार्ता)*:** शासक को राज्य की अर्थव्यवस्था को प्रबंधित करने के ज्ञान से सुसज्जित करता है।
4. **राजनीति और प्रशासन *(दण्डनीति)*:** प्रभावी शासन और कानून प्रवर्तन सुनिश्चित करता है।

इसके अतिरिक्त, अर्थशास्त्र राजा के लिए एक संरचित दैनिक कार्यक्रम निर्धारित करता है (पुस्तक 1, अध्याय 19 में उल्लिखित)। यह व्यक्तिगत जरूरतों के लिए साढ़े दस घंटे आवंटित करता है, जिसमें साढ़े चार घंटे की नींद शामिल है, और शेष प्रशासनिक कार्यों के लिए आवंटित करता है, जो प्रभावी शासन के लिए आवश्यक सावधानीपूर्वक योजना को दर्शाता है।

मनुस्मृति के अध्याय 7 में राजधर्म (राजा के कर्तव्य) पर विस्तृत चर्चा में इसी प्रकार की भावनाएँ प्रतिध्वनित होती हैं, जिसमें मंत्रियों की नियुक्ति, लोक कल्याण और विदेशी मामलों जैसे पहलुओं को शामिल किया गया है।

10.2 अमात्य:: राजा के विश्वसनीय साथियों का समूह

शासक चाहे कितना भी सक्षम क्यों न हो, अकेले शासन नहीं कर सकता। *अमात्य* (मंत्री) प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये सलाहकार राज्य के सुचारू कामकाज को सुनिश्चित करते हुए निर्णय-निर्माता और कार्यान्वयनकर्ता दोनों के रूप में कार्य करते हैं।

भूमिकाएँ और पदानुक्रम

- *मंत्री*: सर्वोच्च सलाहकार, गोपनीय परामर्श के लिए जिम्मेदार।
- *अमात्य*: कर संग्रह, दंड और क्षेत्रीय विकास जैसे प्रशासनिक कर्तव्यों को निष्पादित करने वाले उच्च-स्तरीय अधिकारी।

कौटिल्य दोनों में अंतर बताते हैं: केवल कठोर गुप्त परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने वाले ही मंत्री बनने के पात्र होते हैं। वहीं, अमात्य की योग्यताएँ थोड़ी कम होती हैं।

परिषद की संरचना: कौटिल्य तीन से चार *मंत्री* रखने की सलाह देते हैं, क्योंकि छोटी संख्या दक्षता और गोपनीयता सुनिश्चित करती है, जबकि बड़ा समूह कलह का जोखिम उठाता है। व्यापक परामर्श के लिए 12-20 सदस्यों की (परिषद) *मंत्री परिषद* राजा का समर्थन करती है, विशेषकर आपात स्थिति के दौरान।

अर्थशास्त्र राजा और उसकी परिषद के बीच संतुलन के महत्व को रेखांकित करता है, इस बात पर प्रकाश डालता है कि सुशासन सामूहिक ज्ञान पर निर्भर करता है।

10.3 बस्तियाँ एवं भूमि उपयोग (*जनपद*)

जनपद (क्षेत्र और उसके लोग) राज्य की आर्थिक रीढ़ बनते हैं। एक राजा की शक्ति उसकी प्रजा की समृद्धि के साथ बढ़ती है, जिससे भूमि प्रबंधन सार्वजनिक प्रशासन की आधारशिला बन जाता है।

प्रमुख भूमि उपयोग गतिविधियाँ

1. सुरक्षा के लिए किले बनाना
2. कृषि को बनाए रखने के लिए सिंचाई प्रणालियों का विकास करना।
3. आर्थिक विकास के लिए व्यापार मार्गों की स्थापना करना।
4. धातुओं और रत्नों जैसे संसाधनों के लिए खदानों का प्रबंधन करना।
5. इमारती लकड़ी और हाथियों के लिए वनों की रक्षा करना।

उचित भूमि उपयोग नियोजन में बस्तियों का आयोजन भी शामिल है। अर्थशास्त्र में 100-500 परिवारों वाले गाँव बनाने का प्रस्ताव है, जिसमें कृषकों को बसने वालों के रूप में प्राथमिकता दी गई है। समग्र विकास सुनिश्चित करने के लिए ब्राह्मणों, शिक्षकों, डॉक्टरों और अन्य प्रमुख पेशेवरों को भी भूमि आवंटित की गई।

प्रशासनिक प्रभाग: कुशल शासन के लिए राज्य को श्रेणीबद्ध इकाइयों में विभाजित किया गया था–

- **संग्रहणा:** 10 गांवों का मुख्यालय।
- **कर्वाटिक:** 200 गांवों का जिला मुख्यालय।

- **द्रोणमुख:** 400 गांवों का संभागीय मुख्यालय।
- **स्थानिय:** 800 गाँवों का प्रांतीय मुख्यालय।
- किलेबंदी और रक्षा: आक्रमणों से बचाव के लिए, अर्थशास्त्र चार सीमावर्ती किलों (प्रत्येक दिशा में एक), रणनीतिक रूप से स्थित और प्राकृतिक रूप से मजबूत (उदाहरण के लिए, पहाड़ों या नदियों पर) की सिफारिश करता है। आठ प्रकार के किलों की पहचान की गई है, जिनमें पहाड़ी किले सबसे सुरक्षित और भूमि किले सबसे कम सुरक्षित हैं।

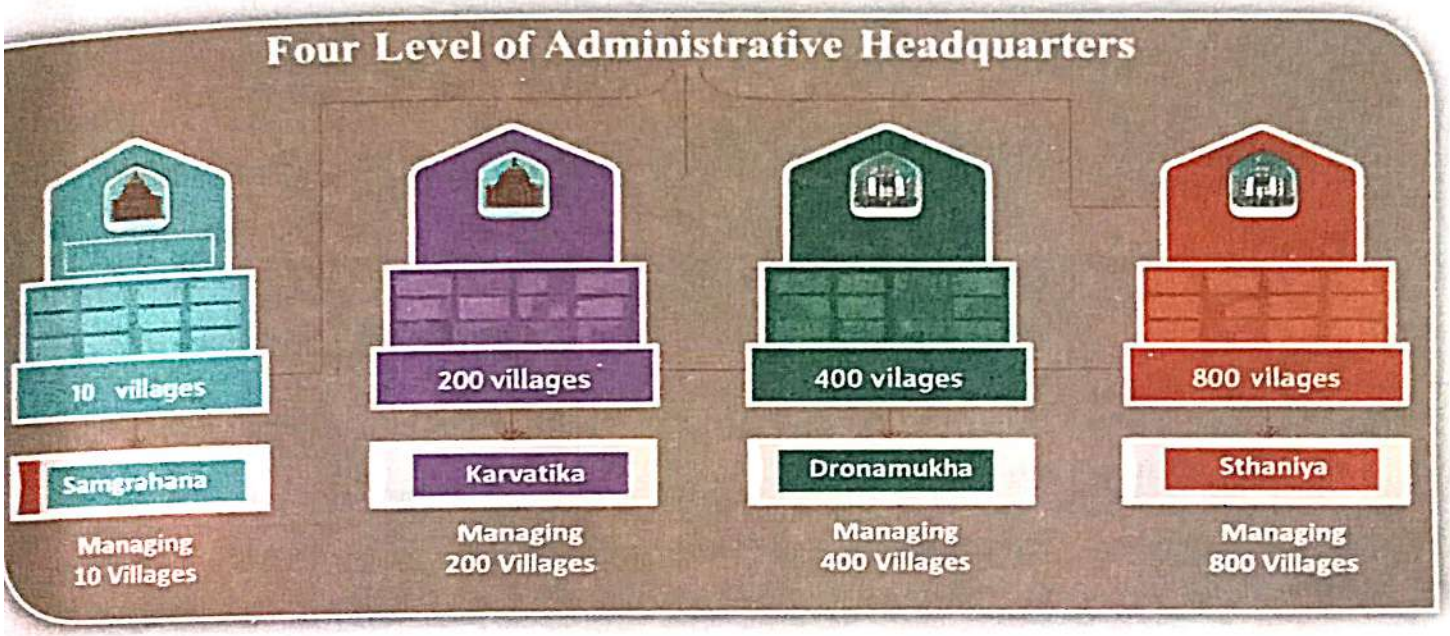

प्रशासनिक प्रभाग

सतत शासन के लिए एक दृष्टिकोण

अर्थशास्त्र नेतृत्व, प्रशासन और भूमि प्रबंधन की परस्पर निर्भरता पर जोर देते हुए शासन के लिए एक व्यापक खाका प्रदान करता है। अपने नागरिकों के कल्याण पर ध्यान केंद्रित करके, राज्य न केवल समृद्धि सुनिश्चित करता है बल्कि अपनी स्थिरता और विकास भी सुनिश्चित करता है।

10.4 दृढ़ राजधानी शहर (दुर्ग)

अर्थशास्त्र शासन के लिए एक व्यापक खाका प्रस्तुत करता है, जिसमें नेतृत्व, प्रशासन और भूमि प्रबंधन की परस्पर निर्भरता पर ज़ोर दिया गया है। अपने नागरिकों के कल्याण

पर ध्यान केंद्रित करके, राज्य न केवल समृद्धि सुनिश्चित करता है, बल्कि अपनी स्थिरता और विकास भी सुनिश्चित करता है–

भूमिका और रणनीतिक महत्व

1. राजा और नागरिकों की सुरक्षा

- दुर्ग को राजा की रक्षा करने और आक्रमण के दौरान नागरिकों को शरण प्रदान करने के लिए डिज़ाइन किया गया है।
- यह राजा और उसके सलाहकारों को बातचीत करने, रणनीति बनाने और दुश्मन की बढ़त को पीछे हटाने की अनुमति देता है, जिससे खतरों को कम करने के लिए महत्वपूर्ण समय मिलता है।

2. रक्षा तंत्र:

- गढ़वाले शहर आक्रामक और रक्षात्मक दोनों क्षमताएं प्रदान करते हैं, जिससे सेना को आवश्यकतानुसार घुसपैठियों पर पलटवार करने या बचाव करने में मदद मिलती है।

डिज़ाइन और लेआउट

1. आसपास की खाइयाँ

- शहर के निकट आने पर शहर तीन खाइयों से घिरा हुआ है, जिनकी चौड़ाई बढ़ती जा रही है, जिन्हें इस प्रकार डिज़ाइन किया गया है
  - प्राकृतिक या कृत्रिम जल निकाय।
  - अतिरिक्त सुरक्षा के लिए कमल के पौधे और मगरमच्छ।
  - पर्याप्त जल निकासी व्यवस्था
  - खाइयों को 6 फुट के अंतराल से अलग किया जाता है।

2. प्राचीर और दीवारें

- प्राचीर कंटीली झाड़ियों और 18 से 36 फुट ऊंची पैरापेट दीवारों से किलेबंद हैं।
- इनमें सैनिकों के लिए भागने और बाहर निकलने के दरवाजे और आपात स्थिति में गुप्त रास्तों के प्रावधान शामिल हैं।

3. प्रवेशद्वार और मीनारें

- प्रवेशद्वार में सीमा पर गश्त के लिए हॉल, कुएं और चौकियों के साथ टॉवर हैं।

- हाथियों के हमले का विरोध करने के लिए मुख्य और साइड के दरवाजों को मजबूत किया गया है।
- प्रतिबंधित पहुंच सुनिश्चित करने के लिए खंदकों पर बने पुल हटाने योग्य प्रकार के हैं।

4. **रक्षात्मक संरचनाएँ**
   - दुश्मन की प्रगति को विलंबित करने के लिए स्पीड ब्रेकर, गुप्त जाल और पैरापेट रणनीतिक रूप से लगाए गए हैं।

संसाधन और आत्मनिर्भरता

1. **लंबी घेराबंदी के लिए प्रावधान**
   - अनाज, तेल, नमक, दवाइयाँ, हथियार और चारा जैसी आपूर्तियाँ एक वर्ष से अधिक समय तक चलने के लिए संग्रहीत की जाती हैं।
     - प्रत्येक परिवार को भंडारण और बुनियादी जरूरतों के लिए पर्याप्त भूमि आवंटित की जाती है।
2. **सैन्य तैयारी**
   - विश्वासघात या मिलीभगत को रोकने के लिए सेना को कई प्रमुखों के अधीन इकाइयों (हाथी, रथ, घुड़सवार सेना, पैदल सेना) में विभाजित किया गया है।

10.5 राजकोष और राज्य अर्थव्यवस्था (कोष)

अर्थशास्त्र राज्य की अर्थव्यवस्था और रक्षा की रीढ़ के रूप में एक सुव्यवस्थित कोष (कोष) के महत्व पर ज़ोर देता है। इसमें कहा गया है कि सेना की तुलना में राजकोष अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि सेना अपने निर्वाह और विकास के लिए राजकोष पर निर्भर रहती है।

राज्य के राजस्व के स्रोत

राज्य में राजस्व को कई धाराओं में वर्गीकृत किया गया है, जिसमें कर, शुल्क और राज्य उद्यमों से मुनाफा शामिल है। प्रमुख स्रोत हैं:

1. **कृषि**
   - कृषि उपज का छठा हिस्सा कर के रूप में एकत्र किया जाता है (*Bhaga*).

- पानी के उपयोग के लिए अतिरिक्त कर लगाया जाता है, जो उपज के पांचवें हिस्से से लेकर एक तिहाई तक होता है।

2. **व्यापार और वाणिज्य**
   - आयात और निर्यात शुल्क.
   - ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच माल ले जाने पर उत्पाद शुल्क।
3. **खान और विनिर्माण**
   - राजस्व में रॉयल्टी, विनिर्माण शुल्क और राज्य के एकाधिकार के उल्लंघन के लिए जुर्माना शामिल है।
4. **श्रम योगदान**
   - विषय राज्य उद्यमों को उनके बकाया के हिस्से के रूप में श्रम प्रदान करते हैं।

व्यय एवं आर्थिक नियंत्रण

1. **खर्च**
   - राजकोष महल के खर्च, सैन्य रखरखाव और अन्य प्रशासनिक लागतों को निधि देता है।
2. **बफ़र स्टॉक**
   - राज्य कीमतों को स्थिर करने और कमी को रोकने के लिए बफर स्टॉक रखता है, फसल के दौरान अधिशेष माल खरीदता है और कमी के दौरान बेचता है।
3. **राजस्व प्रशासन**
   - राज्य के अधिकारियों की देखरेख में करों की सावधानीपूर्वक गणना और वसूली की जाती है। *अर्थशास्त्र* में कराधान और शुल्कों से संबंधित शर्तों की एक विस्तृत शब्दावली प्रदान की गई है ।

मजबूत राजकोष का महत्व

- भरपूर खजाना युद्धों या संकटों के दौरान लचीलापन सुनिश्चित करता है।
- पूर्ति के उपायों में कर वृद्धि, ऋण प्राप्त करना, या शत्रु के संसाधनों को ज़ब्त करना शामिल हैं, जिनका विवरण अर्थशास्त्र के अध्याय 5.2 में दिया गया है।

तालिका 2: करों, शुल्कों और अन्य शुल्कों से संबंधित शब्दों की शब्दावली (*अर्थशास्त्र*),

क्र.सं.	वर्ग	प्रकार	विवरण
1	कर	सीमा शुल्क (शुल्क)	- आयात शुल्क (प्रवेश्य) - निर्यात शुल्क (निष्कर्म्य) - अनुदान/टोल (द्वार-बहिरिकाद्य)
2		लेनदेन कर (ब्याजी)	- बिक्री या लेनदेन पर कर.
		क्राउन गुड्स के लिए लेनदेन कर	- शाही या राज्य के स्वामित्व वाली वस्तुओं से जुड़े लेनदेन पर कर (मानव्यजी).
3		उत्पादन का हिस्सा (भाग)	- 1/6वाँ हिस्सा उत्पादन का (सद्भाग) कर के रूप में एकत्र किया गया।
4	नकद और वस्तु	नकद में कर (कर)	- राज्य द्वारा वसूला जाने वाला मौद्रिक कर।
		वस्तु के रूप में कर (प्रतिकर)	- वस्तुओं या सेवाओं पर चुकाया गया कर।
		श्रम योगदान (विष्टि)	- राज्य उद्यमों को प्रदान किए गए श्रम के रूप में कर।
		सैनिकों की आपूर्ति (आयुधिय)	- राज्य की सेना के लिए सैनिक उपलब्ध कराने का दायित्व.
5	मिश्रित	प्रतिकारी कर्तव्य (वैधरण)	- व्यापार असमानताओं को संतुलित करने के लिए कर।
		सड़क उपकर (वर्तनी)	- सड़क रखरखाव के लिए लेवी.
		रॉयल्टी (प्रक्रिया)	- संसाधन निष्कर्षण के लिए शुल्क, जैसे खदानें या वन उपज।
		एकाधिकार कर (परिधि)	- राज्य या निजी एकाधिकार पर कर.
		वस्तु के रूप में ग्रामीण कर (पिंडकर)	- सामान में किया गया भुगतान, आमतौर पर ग्रामीण आबादी द्वारा।

क्र.से.	वर्ग	प्रकार	विवरण
		सेना रखरखाव कर (सेनाभक्त)	- सैन्य व्यय का समर्थन करने के लिए लगाया गया।
		अधिभार (पार्श्व)	- विशिष्ट लेनदेन या सामान पर अतिरिक्त शुल्क।
6	शुल्क और सेवाएँ	वज़न और माप (पौतव)	- बाट और माप को मानकीकृत और प्रमाणित करने के लिए शुल्क।
		पासपोर्ट शुल्क (मुद्र)	- यात्रा परमिट जारी करने के लिए शुल्क।
		नौका शुल्क (तर)	- नौका उपयोग के लिए शुल्क।
		आंशिक बकाया (पत्थन)	- वस्तुओं या सेवाओं के आंशिक उपयोग के लिए भुगतान।
		सिक्का शुल्क (रूपिक)	- मुद्रा ढालने का शुल्क।
		भूमि सर्वेक्षण शुल्क (रज्जु)	- भूमि के सर्वेक्षण और सीमांकन के लिए शुल्क।
		परीक्षण शुल्क (परिक्षिका)	- माल की गुणवत्ता या प्रामाणिकता के परीक्षण के लिए शुल्क।
		एस्कॉर्ट शुल्क (अत्याहिक)	- यात्रा के दौरान आधिकारिक सुरक्षा या अनुरक्षण प्रदान करने के लिए शुल्क।
		नियत शुल्क (किप्र)	- विशिष्ट राज्य सेवाओं या लेनदेन के लिए मानक शुल्क।

10.6. कानून एवं व्यवस्था एवं सुरक्षा (दण्ड)

अर्थशास्त्र में, "योग-क्षेम" शब्द राजा के एक आवश्यक कर्तव्य का वर्णन करता है। योग का तात्पर्य उद्देश्यों की सफल प्राप्ति से है, जबकि क्षेम का अर्थ समृद्धि का शांतिपूर्ण आनंद है। ये दोनों मिलकर राज्य की प्रजा के कल्याण का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो तब प्राप्त होता

है जब व्यक्ति अपने जीवन और संपत्ति में सुरक्षित रहते हैं। चोरों, लुटेरों, भ्रष्ट अधिकारियों या धोखेबाज व्यापारियों द्वारा उत्पन्न इस शांति भंग को दंड, राज्य की दमनकारी शक्ति द्वारा संबोधित किया जाता है। आंतरिक प्रशासन के संबंध में राजा के कर्तव्य तीन मुख्य क्षेत्रों पर केंद्रित हैं: राज्य को बाहरी खतरों से बचाना, कानून और व्यवस्था बनाए रखना और नागरिकों का कल्याण सुनिश्चित करना। दंड की अवधारणा न्याय और सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करके इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में केंद्रीय भूमिका निभाती है।

दण्ड की भूमिका

जबकि दंड राज्य की दमनकारी शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, इसका उपयोग सावधानी से किया जाना चाहिए। अर्थशास्त्र में चेतावनी दी गई है कि इस शक्ति के अनुचित उपयोग से प्रजा में असंतोष पैदा हो सकता है, जिससे संभावित रूप से विद्रोह हो सकता है। इसलिए राजा को उन दुर्व्यवहारों से बचना चाहिए जिनके परिणामस्वरूप राजशाही के खिलाफ विद्रोह या हिंसा हो सकती है। कई कार्रवाइयां, जैसे अत्यधिक कराधान, कठोर दंड, या अन्यायपूर्ण शासन, इस तरह के असंतोष को जन्म दे सकती हैं।

अर्थशास्त्र में कानून और न्याय की संरचना

कानून और न्याय प्रशासन की संरचना अर्थशास्त्र पदानुक्रमित है, जिसकी अंतिम जिम्मेदारी राजा की होती है। राजा को समय-समय पर नागरिकों से मिलकर उनकी शिकायतें सुननी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि न्याय मिल रहा है। यह शासन की एक अनूठी विशेषता है, क्योंकि यह शासक तक सीधी पहुंच की अनुमति देता है।

कानूनी प्रणाली को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया है:

1. **नागरिक संघर्ष:** धर्मस्थ के रूप में जाने जाने वाले न्यायाधीशों के एक निकाय द्वारा संबोधित किया जाता है, जो व्यक्तियों के बीच विवादों को संभालते हैं।
2. **अपराध:** शहरी क्षेत्रों के लिए नगर अधीक्षक और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए कुलाधिपति द्वारा संबोधित किया जाता है, जो चोरी, धोखाधड़ी और डकैती जैसे अपराधों से निपटते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में न्याय व्यवस्था विकेन्द्रीकृत है, जहाँ सीमावर्ती चौकियों, उप-ज़िलाओं और प्रांतीय मुख्यालयों जैसे विभिन्न स्तरों पर न्यायालय स्थापित हैं। प्रत्येक न्यायालय में

तीन न्यायाधीशों का एक पैनल होता है। इन न्यायाधीशों, या धर्मस्थों, से धर्म के सिद्धांतों का पालन करने और निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण निर्णय सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है। प्रदेश (मजिस्ट्रेट) आपराधिक मामलों के लिए ज़िम्मेदार थे, जबकि न्यायाधीश दीवानी विवादों का निपटारा करते थे।

न्यायिक प्रणाली और व्यावसायिक निगरानी

अर्थशास्त्र के अंतर्गत कारीगरों और व्यापारियों की भूमिका को विनियमित किया गया है, जहाँ धोखाधड़ी को रोकने के उपाय प्रस्तावित हैं। बुनकरों और लोहारों जैसे कारीगरों को माल की गलत डिलीवरी, अत्यधिक शुल्क वसूलने या सामग्री हड़पने जैसी कुप्रथाओं को रोकने के लिए विनियमित किया गया है। इसी प्रकार, मिलावट, गलत तौल या मूल्य हेरफेर जैसी धोखाधड़ी को रोकने के लिए व्यापारियों पर नज़र रखी जाती है। व्यापारियों और बाज़ारों की गतिविधियों की निगरानी के लिए विशेष अधिकारियों को नियुक्त किया गया था, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि जनता को शोषण से बचाया जाए।

भ्रष्टाचार से सुरक्षा

यह ग्रंथ भ्रष्टाचार, विशेष रूप से अधिकारियों और न्यायिक अधिकारियों के बीच, पर भी प्रकाश डालता है। इसमें विभागाध्यक्षों और न्यायिक अधिकारियों सहित 13 प्रकार के व्यक्तियों की सूची दी गई है, जो रिश्वतखोरी या जबरन वसूली के लिए प्रवृत्त हो सकते हैं। अर्थशास्त्र प्रशासन की अखंडता को बनाए रखने के लिए जाल बिछाकर और निगरानी का उपयोग करके इन भ्रष्ट व्यक्तियों को पकड़ने के तरीकों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

10.7. कानूनी ढाँचा और न्याय के स्रोत

कानूनी व्यवस्था में अर्थशास्त्र न्याय के चार मुख्य स्रोतों पर आधारित है–

1. धर्म (कानून),
2. गवाहों की गवाही,
3. लोगों द्वारा स्वीकृत परंपरा, और
4. पिछले निर्णयों द्वारा स्थापित मिसालें।

ये सिद्धांत राज्य की न्याय व्यवस्था की नींव रखते हैं और यह सुनिश्चित करते कि कानूनों का निष्पक्ष और सुसंगत रूप से पालन हो।

अर्थशास्त्र में, कानून और व्यवस्था (दंड) के प्रशासन को शासन के एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह केवल दंड का साधन नहीं है, बल्कि सामाजिक स्थिरता बनाए रखने और नागरिकों के कल्याण की रक्षा सुनिश्चित करने का एक साधन है। न्याय व्यवस्था, निष्पक्षता, पारदर्शिता और व्यवसायों के नियमन पर ज़ोर देते हुए, राज्य को आंतरिक विवादों से बचाने और शासक और शासित के बीच सामंजस्य बनाए रखने के लिए बनाई गई है।

10.8. विदेश नीति एवं सहयोगी (*मित्र*)

कौटिल्य का अर्थशास्त्र विदेश नीति के लिए एक विस्तृत रूपरेखा प्रदान करता है, जो पड़ोसी राज्यों के बीच संबंधों और राज्यों के एक समूह में सत्ता की गतिशीलता पर ध्यान केंद्रित करता है। इस अवधारणा को पुस्तक 6, 7, 11 और 12 में उल्लिखित किया गया है, पुस्तक 6 के अध्याय 2 में स्थापित मार्गदर्शक सिद्धांतों के साथ। कौटिल्य के अनुसार, किसी राज्य की विदेश नीति मूल रूप से उसके छह मूलभूत तत्वों की आंतरिक ताकत से प्रभावित होती है (सादंग). जब ये तत्व स्थिर और मजबूत होंगे तभी कोई राज्य प्रभावी विदेशी संबंधों को आगे बढ़ा सकता है।

विदेश नीति के मूल तत्व

अर्थशास्त्र इस बात पर ज़ोर देता है कि राजा की शक्ति—जो राज्य की आंतरिक स्थिति से निर्धारित होती है—उसकी विदेश नीति के विकल्पों को आकार देती है। राजाओं के बीच संबंध तीन संभावित शक्ति समीकरणों द्वारा निर्देशित होते हैं:

1. समान शक्ति: जहां दोनों राजा समान शक्ति वाले हों।
2. मजबूत: जहां दीक्षा लेने वाला राजा अधिक शक्तिशाली होता है।
3. कमज़ोर: जहां आरंभ करने वाला राजा कम शक्तिशाली हो।

ये परिदृश्य पड़ोसी राज्यों से निपटने के लिए सहयोगियों और रणनीतियों की पसंद को निर्धारित करते हैं।

विदेश नीति के छह तरीके

अर्थशास्त्र में कूटनीति और युद्ध में संलग्न होने के लिए छह विधियों (षड्गुण्य) की रूपरेखा दी गई है, जिनका वर्णन पुस्तक 7, अध्याय 1 में किया गया है:

1. **संधि (शांति की नीति)**
   - संघर्षों से बचने की शर्तों के साथ संधियाँ या समझौते करना।
   - आंतरिक स्थिरता को बढ़ावा देने या गठबंधन बनाने के लिए उपयोगी।
2. **विग्रह (आश्वस्तता):**
   - शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण, जैसे खुले तौर पर या गुप्त रूप से युद्ध छेड़ना।
   - प्रतिद्वंद्वी को कमजोर करने के लिए कूटनीतिक हमले शामिल हो सकते हैं।
3. **आसन (तटस्थता या निष्क्रियता):**
   - चुप रहना और तत्काल कार्रवाई से बचना।
   - स्थिति का आकलन करने या ताकत हासिल करने के लिए अक्सर एक अस्थायी रणनीति।
4. **याना (युद्ध की तैयारी):**
   - प्रतिद्वंद्वी के कमजोर होने या आंतरिक चुनौतियों का सामना करने की प्रतीक्षा करते हुए युद्ध की तैयारी करना।
   - अपनी ताकतों को मजबूत करने के लिए समय मिलता है।
5. **समरया (आश्रय की तलाश):**
   - खतरे में होने पर किसी किले में शरण लेना या किसी मजबूत राजा से सुरक्षा की मांग करना।
6. **द्वैधिभाव (द्वैति नीति):**
   - इसके साथ ही एक राजा के साथ शांति (संधि) का पालन करते हुए दूसरे के साथ शत्रुता (विग्रह) में संलग्न होना।
   - एक साथ कई रिश्तों को प्रबंधित करने का एक रणनीतिक तरीका।

रणनीतिक निहितार्थ

- संधि की सलाह तब दी जाती है जब राजा शत्रु से कमजोर होता है, क्योंकि उसे आंतरिक रूप से मजबूत होने या बाहरी सहयोगियों की तलाश करने के लिए समय मिलता है।
- विग्रह तब उपयुक्त होता है जब राजा शत्रु से अधिक शक्तिशाली हो, जिससे अधिक आक्रामक रुख संभव हो सके।

- आसन और याना शांति और युद्ध के बीच संक्रमणकालीन चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो रणनीतियों के पुनर्मूल्यांकन या पुनर्निर्देशन के अवसर प्रदान करते हैं।
- संश्रय भारी खतरों के सामने जीवित रहने के लिए रक्षात्मक दृष्टिकोण के रूप में कार्य करता है।
- द्वैधिभाव एक जटिल रणनीति है जिसमें शांति और शत्रुता को एक साथ संतुलित करने के लिए सावधानीपूर्वक कार्यान्वयन की आवश्यकता होती है।

व्यावहारिक विचार

सैन्य अभियान शुरू करने के निर्णय में महत्वपूर्ण संसाधन जुटाना, राजधानी से लंबे समय तक अनुपस्थित रहना और वाइसराय को सत्ता सौंपने से जुड़े जोखिम शामिल हैं। इस प्रकार, रुकने की रणनीति (आसन या याना) युद्ध की घोषणा के बाद व्यावहारिक महत्व रखता है, जिससे राज्य को अपनी स्थिति का पुनर्मूल्यांकन करने या अपनी रणनीति को समायोजित करने की अनुमति मिलती है।

11. प्रशासनिक व्यवस्था

कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक उच्च संगठित प्रशासनिक प्रणाली की कल्पना करता है, जो व्यापक राज्य नियंत्रण को लागू करने के लिए महत्वपूर्ण है जिसकी वह वकालत करता है। यह सेटअप कुशल शासन, मजबूत राज्य तंत्र और आंतरिक और बाहरी दोनों चुनौतियों का प्रबंधन करने की क्षमता पर जोर देता है। प्रशासनिक संरचना को मोटे तौर पर छह प्रमुख घटकों में वर्गीकृत किया जा सकता है: राजा और उसका मंत्रिमंडल, महल प्रशासन, रक्षा, ख़ज़ाना, राजस्व एवं कानून एवं व्यवस्था, और नागरिक प्रशासन. प्रत्येक घटक की अलग-अलग जिम्मेदारियाँ होती हैं, जो शासन कार्यों का निर्बाध एकीकरण सुनिश्चित करती हैं।

1. राजा और उसका मंत्रिमंडल

प्रशासनिक ढांचे के शीर्ष पर राजा होता है, जो व्यक्तियों के एक समूह से घिरा होता है जो औपचारिक और अनौपचारिक रूप से उसका समर्थन करते हैं। राजा सभी निर्णय लेने की प्रक्रियाओं के केंद्र में होता है और राज्य के शासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

राजा का निकटतम परिवार, जिसमें मुख्य रानी, अन्य रानियाँ, युवराज, अन्य राजकुमार और रानी की माँ, शाही परिवार बनाते हैं। उनके साथ जैसे विश्वसनीय निजी सलाहकार भी हैं आचार्य (मुख्य शिक्षक), पुरोहित (पारिवारिक पुजारी), और ऋत्विज (अनुष्ठानों के लिए कार्यवाहक पुजारी)। यह आंतरिक चक्र राजा को आध्यात्मिक, नैतिक और रणनीतिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। अन्य सदस्य जैसे शाही शास्त्री, दरबारी, भविष्यवक्ता और ज्योतिषी भी राज्यकला और शगुन सहित विभिन्न मामलों पर अपनी विशेषज्ञता प्रदान करके योगदान देते हैं।

राजा के मंत्रियों का मंत्रिमंडल औपचारिक सलाहकार निकाय का गठन करता है। ये मंत्री विभिन्न प्रशासनिक डोमेन का प्रतिनिधित्व करते हैं और नीति निर्माण, कार्यान्वयन और निष्पादन जैसे प्रमुख क्षेत्रों में राजा की सहायता करते हैं। वे निर्णय लेने के लिए महत्वपूर्ण इनपुट प्रदान करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि राज्य कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से संचालित होता है।

2. महल प्रशासन

महल प्रशासन शाही घराने के कामकाज और राजा के निजी जीवन से संबंधित सभी मामलों का प्रबंधन करता है। इसमें महल के संचालन का रखरखाव, राजा का कार्यक्रम और उसकी व्यक्तिगत सुरक्षा शामिल है।

महल परिचारकों का प्रमुख महल के भीतर दिन-प्रतिदिन के मामलों की देखरेख करता है, और यह सुनिश्चित करता है कि शाही परिवार की सभी घरेलू और प्रशासनिक ज़रूरतें पूरी हों। इसके साथ ही, पैलेस गार्ड्स का प्रमुख राजा और शाही परिवार की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होता है। ये भूमिकाएँ महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि महल न केवल राजा के निवास के रूप में बल्कि राज्य के शासन के मुख्य केंद्र के रूप में भी कार्य करता है।

3. रक्षा

रक्षा तंत्र प्रशासन के सबसे महत्वपूर्ण घटकों में से एक है, जिसका काम राज्य को बाहरी खतरों से बचाना, आंतरिक स्थिरता बनाए रखना और क्षेत्रीय सीमाओं का विस्तार करना है। सशस्त्र बलों के प्रमुख (कमांडर) सर्वोच्च रैंकिंग अधिकारी है, जो सीधे तौर पर सेना के लिए जिम्मेदार है।

सशस्त्र बलों को चार मुख्य प्रभागों में विभाजित किया गया है: पैदल सेना, रथ, घुड़सवार सेना और हाथी। प्रत्येक प्रभाग युद्ध में एक अद्वितीय भूमिका निभाता है, और

उनका समन्वय राज्य की सैन्य ताकत सुनिश्चित करता है। युवराज अक्सर सैन्य अभियानों में भाग लेता है, या तो अभियानों का नेतृत्व करता है या आंतरिक विद्रोहों को संबोधित करता है, जो राज्य की रक्षा में शाही परिवार की भागीदारी को रेखांकित करता है।

4. राजकोष

राजकोष राज्य की रीढ़ है, क्योंकि यह सभी प्रकार के राजस्व और संसाधनों का प्रबंधन करता है। कर और राजस्व अक्सर वस्तुओं के रूप में एकत्र किए जाते हैं, जिनमें अनाज, रत्न, तेल और शस्त्रागार जैसी वस्तुएं शामिल होती हैं। खजाना न केवल धन के भंडार के रूप में कार्य करता है, बल्कि अकाल, युद्ध या प्राकृतिक आपदाओं जैसे संकटों से निपटने के लिए एक महत्वपूर्ण भंडार के रूप में भी कार्य करता है।

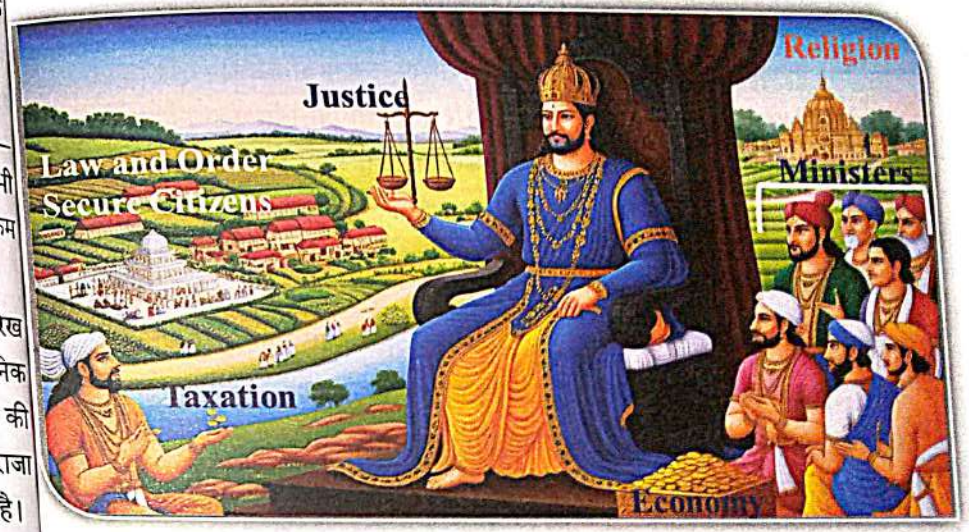

राजा का प्रशासन और कर्तव्य

कोषाध्यक्ष (सन्निधात्र), सीधे राजा को रिपोर्ट करने वाला एक वरिष्ठ अधिकारी, इस विभाग की देखरेख करता है। उन्हें राज्य संसाधनों के संग्रह, भंडारण और सुरक्षा के लिए जिम्मेदार अधिकारियों के एक नेटवर्क द्वारा समर्थित किया जाता है। नागरिकों के कल्याण और राज्य के वित्तीय स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए राजकोष की स्थिरता महत्वपूर्ण है।

5. राजस्व एवं कानून व्यवस्था

यह घटक वित्तीय नियोजन को आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने के साथ जोड़ता है। चांसलर (समाहर्तृ) इस विभाग का प्रमुख होता है, वित्त मंत्री और ग्रामीण इलाकों के मुख्य प्रशासक के रूप में कार्य करता है।

वित्तीय मोर्चे पर, चांसलर वार्षिक बजट तैयार करता है, राजस्व लक्ष्य निर्धारित करता है और संग्रह की निगरानी करता है। प्रशासनिक दक्षता के लिए, ग्रामीण इलाकों को चार प्रभागों में विभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक का प्रबंधन स्थानिक नामक एक अधिकारी द्वारा किया जाता है। उनके नीचे, गोप नामक कनिष्ठ अधिकारी गांवों के छोटे समूहों की देखरेख करते हैं। यह पदानुक्रमित संरचना चांसलर को वित्तीय और प्रशासनिक योजना के लिए आवश्यक जानकारी एकत्र करने में सक्षम बनाती है।

कानून-व्यवस्था के पहलू में शांति बनाए रखना और आंतरिक खतरों से निपटना शामिल है। चांसलर असामाजिक तत्वों, व्यापारियों, लुटेरों और दुश्मन एजेंटों पर नजर रखने के लिए मुखबिरों के एक नेटवर्क पर निर्भर करता है। किलेबंद राजधानी शहर में, ये जिम्मेदारियां सिटी गवर्नर-जनरल (नागरिक) द्वारा संभाली जाती हैं, जो शहरी क्षेत्राधिकार के भीतर एक समान प्रशासनिक व्यवस्था संचालित करता है।

6. नागरिक प्रशासन

नागरिक प्रशासन नागरिक जीवन और आर्थिक गतिविधि के सभी पहलुओं को शामिल करता है। इसमें कृषि, खनन, विनिर्माण, मत्स्य पालन, पशु पालन और व्यापार शामिल हैं। अर्थशास्त्र इन गतिविधियों को कैसे विनियमित और मॉनिटर किया जाना चाहिए, इस पर विस्तार से ध्यान केंद्रित करता है।

राज्य का नागरिक प्रशासन 33 विभागों के माध्यम से संचालित होता है, प्रत्येक का नेतृत्व एक वरिष्ठ अधिकारी करता है। ये विभाग विशिष्ट डोमेन को संबोधित करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि नागरिक गतिविधियाँ राज्य के उद्देश्यों के साथ संरेखित हों। उदाहरण के लिए, कृषि विभाग फसल उत्पादन और सिंचाई की निगरानी करता है, जबकि व्यापार विभाग शोषण को रोकने और उचित प्रथाओं को सुनिश्चित करने के लिए वाणिज्य को नियंत्रित करता है।

अर्थशास्त्र की दूसरी पुस्तक प्रत्येक विभाग के लिए विस्तृत दिशानिर्देश प्रदान करती है, जिसमें उनकी ज़िम्मेदारियों और संचालन तंत्रों की रूपरेखा दी गई है। इससे

यह सुनिश्चित होता है कि नागरिक प्रशासन कुशलतापूर्वक कार्य करे और राज्य की समग्र समृद्धि में योगदान दे। अर्थशास्त्र में उल्लिखित प्रशासनिक ढाँचा कौटिल्य के एक अत्यंत केंद्रीकृत और कुशल राज्य तंत्र के दृष्टिकोण को दर्शाता है। राज्य को स्पष्ट रूप से परिभाषित घटकों में संगठित करके, जिनमें से प्रत्येक की अपनी ज़िम्मेदारियाँ और पदानुक्रम हैं, यह ग्रंथ शासन के लिए एक व्यापक ढाँचा प्रदान करता है। यह प्रणाली राज्य की स्थिरता, सुरक्षा और समृद्धि सुनिश्चित करने में जवाबदेही, समन्वय और राजा के अंतिम अधिकार पर ज़ोर देती है। अपने विस्तृत दिशानिर्देशों के माध्यम से, अर्थशास्त्र एक सुचारू रूप से कार्यशील और समृद्ध राज्य प्राप्त करने के लिए एक कुशल प्रशासन के महत्व को दर्शाता है।

तालिका 3: अर्थशास्त्र में विभागों के प्रमुख

सेक्टर	विभाग	सिर
व्यापार और उद्योग	राज्य व्यापार	राज्य व्यापार के मुख्य नियंत्रक
	बाट और माप	बाट एवं माप के मुख्य नियंत्रक
	कपड़ा	मुख्य कपड़ा आयुक्त
	निजी व्यापार	निजी व्यापार के मुख्य नियंत्रक
राजकोष और वित्त	ख़ज़ाना	कोषागार के मुख्य अधीक्षक
	जैसा	टकसाल के मुख्य मास्टर
	नमक	मुख्य नमक आयुक्त
	गोदामों	गोदामों के मुख्य अधीक्षक
	सीमा शुल्क और चुंगी	सीमा शुल्क और चुंगी के मुख्य नियंत्रक
भूमि उपयोग और पशुधन	हाथी वनपाल	मुख्य हाथी वनपाल
	वन उपज	मुख्य वन उपज अधीक्षक
	सर्वेक्षक और टाइमकीपिंग	मुख्य सर्वेक्षक एवं टाइमकीपर
	ताज भूमि	क्राउन लैंड्स के मुख्य अधीक्षक
	मुकुट झुंड	क्राउन हर्ड्स के मुख्य अधीक्षक
	पशु वध	पशुवध के मुख्य नियंत्रक
	चराइयों	चारागाह भूमि के मुख्य नियंत्रक

सेक्टर	विभाग	सिर
खनन	खनन और धातुकर्म	खनन एवं धातुकर्म के मुख्य नियंत्रक
	धातुओं	मुख्य धातु अधीक्षक
	खानों	मुख्य खान अधीक्षक
	कीमती धातुएँ और आभूषण	कीमती धातुओं और आभूषणों के मुख्य अधीक्षक
	तोपें	आयुध प्रमुख
रक्षा	घुड़सवार सेना	घुड़सवार सेना का मुख्य सेनापति
	हाथी दल	हाथी कोर के मुख्य कमांडर
	कार्ट बॉडी	रथ वाहिनी के मुख्य सेनापति
	पैदल सेना	पैदल सेना के मुख्य कमांडर
नागरिक सेवाएँ	मादक पेय पदार्थ	मादक पेय पदार्थों के मुख्य नियंत्रक
	मनोरंजन	मनोरंजन के मुख्य नियंत्रक
	जुआ	जुआ के मुख्य नियंत्रक
	मंदिरों	मन्दिरों के मुख्य अधीक्षक
शिपिंग और संचलन	शिपिंग	मुख्य नौवहन नियंत्रक
	बंदरगाह और बंदरगाह	बंदरगाहों और बंदरगाहों के मुख्य नियंत्रक
	पासपोर्ट	मुख्य पासपोर्ट अधिकारी

12. महाकाव्यों से लोक प्रशासन के परिप्रेक्ष्य: महाभारत और रामायण

महाभारत

महाभारत, विशेषकर शांति पर्व, शासन में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, एक राजा की जिम्मेदारियों, कराधान सिद्धांतों और प्रशासन में धर्म के अनुप्रयोग पर जोर देता है। प्रमुख तत्वों में शामिल हैं:

शासन में धर्म का महत्व

- धर्म एक केंद्रीय सिद्धांत के रूप में: भीष्म इस बात पर ज़ोर देते हैं कि राजा को धार्मिकता अपनानी चाहिए (राजा धर्म). एक राजा के कार्य समाज के नैतिक ढांचे को प्रभावित करते हैं - यदि शासक धर्म का पालन करता है, तो यह सामाजिक समृद्धि और स्थिरता को बढ़ावा देता है।
- एक राजा के कर्तव्य:
  - न्याय की रक्षा करना और धर्म की रक्षा करना।
  - विषयों को प्रेरित करने के लिए उदाहरण के द्वारा नेतृत्व करना।
  - निष्पक्षता और धर्म के सिद्धांतों का पालन करके शांति और व्यवस्था सुनिश्चित करना।
- राजा की योग्यता: धर्म के माध्यम से अपनी प्रजा की रक्षा के लिए समर्पित राजा न केवल इस लोक में प्रसिद्धि प्राप्त करता है, बल्कि परलोक में भी शाश्वत पुण्य प्राप्त करता है।

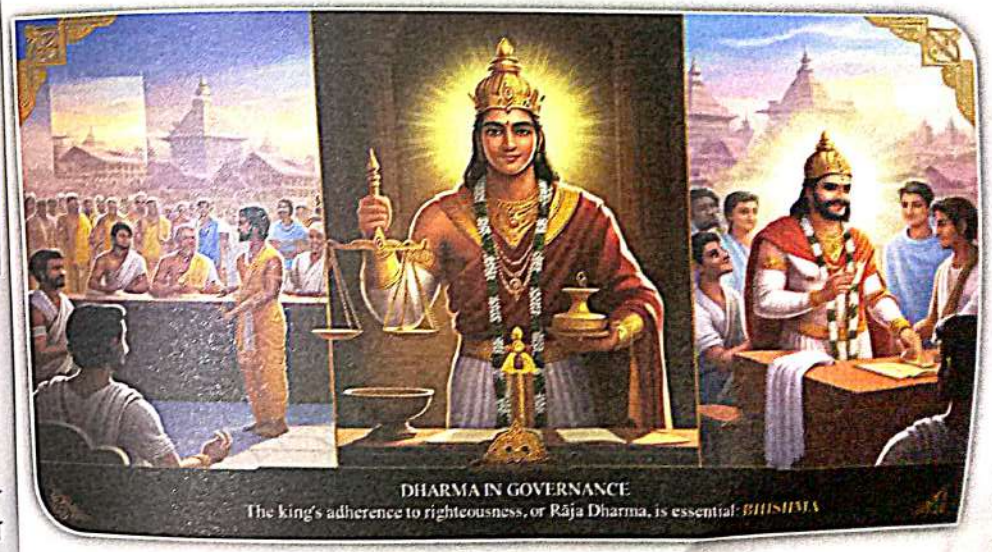

शासन में धर्म

राजकोष और कराधान

- राजकोष का महत्व: विशेष रूप से प्रतिकूल परिस्थितियों के दौरान राज्य की सुरक्षा, कल्याण और स्थिरता बनाए रखने के लिए खजाना महत्वपूर्ण है।
- कराधान के सिद्धांत:
  - कर निष्पक्ष होने चाहिए, शास्त्रीय दिशानिर्देशों के अनुरूप होने चाहिए और प्रजा पर बोझ डालने वाले नहीं होने चाहिए।
  - भीष्म ने कहा कि कर संग्रह गाय का दूध निकालने के समान है - यह सावधानी से किया जाता है, लालच से नहीं, कहीं ऐसा न हो कि स्रोत ही नष्ट हो जाए
  - सुझाए गए राजस्व स्रोतों में शामिल हैं:
    * कृषि उपज का छठा हिस्सा।
    * जुर्माना और दंड।
    * सुरक्षा और बुनियादी ढांचे के बदले में व्यापारियों और व्यापारियों पर कर।
  - राज्य और उत्पादकों के बीच मुनाफे का समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए करों में उत्पादन स्तर, श्रम और बुनियादी ढांचे पर विचार करना चाहिए।

रामायण

रामायण, विशेष रूप से पुस्तक 2 में "कैसिट सर्ग", राम और भरत के बीच एक प्रवचन को दर्शाता है, जहां राम के प्रश्न सुशासन के सिद्धांतों को रेखांकित करते हैं, बुद्धिमान सलाह, न्याय और प्रशासनिक परिश्रम पर जोर देते हैं।

बुद्धिमान परामर्श का महत्व

- सलाहकारों की भूमिका: राम ने योग्य मंत्रियों की आवश्यकता पर प्रकाश डाला (अमात्य), जो विद्वान, बहादुर, आत्म-नियंत्रित और सत्यनिष्ठा रखते हैं।
- प्रभावी परामर्शदाताओं के लक्षण:
  - शास्त्रों का ज्ञान और प्रशासनिक कौशल।

  - नैतिक ईमानदारी, रिश्वतखोरी का विरोध और सार्वजनिक सेवा के प्रति अटूट समर्पण।
  - सूक्ष्म संकेतों से जटिल स्थितियों का अनुमान लगाने और उनका विश्लेषण करने की क्षमता।
- राम द्वारा पूछे गए प्रश्न:
  - क्या आपने ऐसे सलाहकार नियुक्त किये हैं जो नेक, कुशल और भरोसेमंद हों?
  - क्या ये सलाहकार भ्रष्टाचार से मुक्त हैं और राज्य के कल्याण के लिए ठोस निर्णय लेने में सक्षम हैं?



रामायण: भगवान राम का महाकाव्य और प्राचीन भारत का इतिहास

न्याय और दंड

राम ने भरत को न्याय पर महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान किया, जिसमें निष्पक्षता, सत्यनिष्ठा और शासन में सतर्कता की आवश्यकता पर जोर दिया। उनकी सलाह में प्रमुख सिद्धांत शामिल थे:

1. **समतामूलक न्याय**
   - राम ने चेतावनी दी कि दोषियों को दंडित करने में विफल रहने से जनता में असंतोष फैल सकता है, जिससे संभावित रूप से विद्रोह हो सकता है।
   - उन्होंने निर्दोष व्यक्तियों को, विशेषकर व्यभिचार जैसे अपराधों के झूठे आरोपियों को दंडित न करने की सलाह दी। लालच या लापरवाही से किए गए ऐसे कार्य, शासक और उसके राज्य पर विपत्ति ला सकते हैं।
   - पूर्वाग्रह या पक्षपात से बचते हुए सज़ा आनुपातिक और उचित होनी चाहिए। राजा को संवेदनशील मामलों पर निर्णय लेने से पहले विशेषज्ञों और शास्त्रों से परामर्श लेना चाहिए।
   - राम ने चेतावनी देते हुए कहा कि झूठी सजा पाने वालों के आंसू राजा की संतान और समृद्धि को नुकसान पहुंचा सकते हैं।
2. **निगरानी कर रहे अधिकारी**
   - उच्च पदस्थ अधिकारी, अपनी शक्ति के कारण, भ्रष्ट आचरण में संलग्न हो सकते हैं या नागरिकों का शोषण कर सकते हैं। इसका मुकाबला करने के लिए, राम ने खुफिया जानकारी एकत्र करने और जांच की आवश्यकता पर जोर दिया।
     - उन्होंने भरत को जवाबदेही सुनिश्चित करते हुए प्रमुख अधिकारियों की गतिविधियों पर निगरानी रखने के लिए जासूसों को नियुक्त करने की सलाह दी।
     - दुश्मन के इलाकों में महत्वपूर्ण जानकारी इकट्ठा करने और अधिकारियों की वफादारी और आचरण का आकलन करने के लिए जासूस भी महत्वपूर्ण थे।



भगवान राम, धर्म और न्याय के प्रति अपनी अटूट प्रतिबद्धता के लिए जाने जाते हैं

गोपनीयता का महत्व

राम ने प्रशासन में गोपनीयता के मूल्य पर प्रकाश डाला और इसे वर्गीकृत जानकारी की आधुनिक अवधारणाओं के बराबर बताया। उन्होंने जोर देकर कहा:

1. **गोपनीयता बनाए रखना**
   - गद्दारों या दुश्मनों को उन्हें कमज़ोर करने से रोकने के लिए प्रशासनिक निर्णयों की सुरक्षा की जानी चाहिए।
   - योजनाओं का समय से पहले खुलासा पहल को पटरी से उतार सकता है और प्रशासन को संभावित खतरों का मुकाबला करने के लिए संसाधन खर्च करने के लिए मजबूर कर सकता है।
2. **रणनीतिक कार्यान्वयन**
   - राम ने पूछा कि क्या भरत ने यह सुनिश्चित किया कि अन्य राज्यों को उसकी योजनाओं के बारे में तभी पता चले जब वे सफल हों या सफल होने के करीब हों।
   - उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मंत्रियों के निर्णय और इरादे भी तब तक छिपे रहने चाहिए जब तक कि राजा द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकट न किया जाए।

3. **अनुमान को रोकना**
   - राजा और उसके मंत्रियों को कार्यों, अनुमान या अनुमान के माध्यम से अपनी योजनाओं को प्रकट करने से बचना चाहिए। गोपनीयता का यह स्तर राज्य के रणनीतिक लाभ की रक्षा करता है।

शहरी विकास और नागरिक कल्याण

भरत से राम के प्रश्नों ने बुनियादी ढांचे, आर्थिक समृद्धि और नागरिक खुशी पर ध्यान केंद्रित करते हुए शासन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रकट किया:

1. **शहरी विकास**
   - राम ने यात्रियों के लिए शांतिपूर्ण स्थानों, मंदिरों, विश्राम गृहों और पानी की टंकियों की उपस्थिति के बारे में पूछताछ की।
   - ऐसी सुविधाएं राज्य की सांस्कृतिक जीवंतता और उसके नागरिकों और आगंतुकों के प्रति चिंता को दर्शाती हैं।
2. **कृषि एवं आर्थिक कल्याण**
   - उन्होंने सिंचाई प्रणालियों द्वारा समर्थित सुव्यवस्थित कृषि भूमि के महत्व पर जोर दिया, जो केवल वर्षा पर निर्भर नहीं थी।
   - खानों और संसाधनों को उचित तरीके से प्रबंधित करने की आवश्यकता है, और मवेशियों को नुकसान और शिकारी खतरों से बचाया जाना चाहिए।
3. **सामाजिक एवं आर्थिक समृद्धि**
   - राम यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि पुरुष और महिलाएं आनंदमय सामाजिक उत्सवों में शामिल हों, जो सामाजिक सद्भाव और आर्थिक कल्याण का प्रतीक है।

न्याय, गोपनीयता और नागरिक कल्याण पर ध्यान केंद्रित करके, राम का प्रवचन निष्पक्षता, सुरक्षा और समृद्धि को बढ़ावा देने के उद्देश्य से शासन का एक व्यापक मॉडल प्रस्तुत करता है। ये सिद्धांत प्रभावी लोक प्रशासन के आवश्यक तत्वों के रूप में गूंजते रहते हैं।

13. निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय शासन-परंपरा, जैसे कि अर्थशास्त्र, महाभारत, रामायण और मनुस्मृति में वर्णित है, एक समृद्ध, व्यापक और नैतिक आधारों पर स्थापित प्रशासनिक ढांचा प्रस्तुत करती है। ये ग्रंथ केवल प्रशासन के संरचनात्मक पक्षों पर ही नहीं, बल्कि नेतृत्व, न्याय और कल्याण के गहन नैतिक और दार्शनिक आधारों पर भी बल देते हैं।

वैदिक काल के जातीय नेतृत्व मॉडल से लेकर कौटिल्य के अत्यंत सुव्यवस्थित राज्यशास्त्र तक, भारतीय ज्ञान परंपरा एक ऐसे शासन प्रणाली को दर्शाती है जो धर्म, अर्थ और राजधर्म की गहराई में निहित है। प्राचीन शासन का विचार केवल नियंत्रण या शासन तक सीमित नहीं था; यह एक समग्र प्रणाली थी जिसका उद्देश्य सभी नागरिकों की समृद्धि, न्याय, सुरक्षा और नैतिक उत्थान सुनिश्चित करना था।

इन ग्रंथों में निहित प्रज्ञा आधुनिक युग में भी प्रासंगिक है और नेतृत्व, नैतिक शासन, संकट प्रबंधन, सार्वजनिक नीति और सतत विकास के महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। जैसे भारत पुनः विश्वगुरु बनने का लक्ष्य रखता है, वैसे ही इस वैदिक ज्ञान को आधुनिक प्रशासनिक सिद्धांतों के साथ समेकित करना एक ऐसा प्रशासन स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है जो प्रभावी एवं धर्मपरायण दोनों हो।

यह पुस्तक भारतीय प्रशासनिक दर्शन के मुख्य पहलुओं को सरल एवं सुलभ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास रही है। आशा है कि यह छात्रों, शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं और नागरिकों को इस सभ्यतागत विरासत की ओर नए उत्साह और विश्वास के साथ देखने के लिए प्रेरित करेगी, और इससे न्यायपूर्ण एवं प्रबुद्ध शासन का एक दृष्टिकोण प्राप्त होगा।

सुझावात्मक पठनीय सामग्री

1. Altekar, A. S. 1958. *State and Government in Ancient India*. 2nd ed. Delhi: Motilal Banarsidass.
2. Chatterjee, Partha. 2012. *The Black Hole of Empire: History of a Global Practice of Power*. Princeton: Princeton University Press.
3. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), "*Introduction to Indian Knowledge System*", PHI learning private ltd.
4. Drekmeier, Charles. 1962. *Kingship and Community in Early India*. Stanford: Stanford University Press.
5. Jayaswal, K. P. 1924. *Hindu Polity: A Constitutional History of India in Hindu Times*. Bangalore: Bangalore Printing and Publishing Co.
6. Law, N. N. 1923. *Studies in Ancient Indian Political Thought*. London: Longmans, Green & Co.
7. Olivelle, Patrick, ed. 2006. *Between the Empires: Society in India 300 BCE to 400 CE*. Oxford: Oxford University Press.
8. Puri, B. N. 1963. "Public Administration in Ancient India." *Indian Journal of Public Administration* 9 (3): 583–596.
9. Shamasastry, R., trans. 1915. *Kautilya's Arthashastra*. Bangalore: Government Press. *Also see:* Olivelle, Patrick, trans. 2013. *King, Governance, and Law in Ancient India: Kautilya's Arthashastra*. Oxford: Oxford University Press.
10. Sharma, R. S. 1959. *Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India*. Delhi: Motilal Banarsidass.
11. Thapar, Romila. 1984. "The Theory of Varna and the State in Ancient India." In *Ancient Indian Social History: Some Interpretations*, 1–37.
12. Thiruvalluvar. *Tirukkural*. Translated by G. U. Pope. 1886. Oxford: Clarendon Press.
13. Doniger, Wendy, and Brian K. Smith, trans. 1991. *The Laws of Manu*. London: Penguin Books.
14. OP Pandey (2023), "Bharat Vaibhav", National Book Trust, India.
15. Van Buitenen, J. A. B., trans. 1981. *The Mahabharata, Volume 3: Book 12–11: The Book of the Women; The Book of Peace*. Chicago: University of Chicago Press.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय परंपराओं में 'अर्थ' शब्द का क्या तात्पर्य है?
   क) धार्मिक पूर्ति
   ख) भौतिक समृद्धि एवं आर्थिक स्थिरता
   ग) व्यक्तिगत आकांक्षाएँ
   घ) आत्मिक ज्ञान

2. निम्नलिखित में से कौन-सा प्राचीन भारतीय परंपराओं के अनुसार जीवन का मुख्य उद्देश्य नहीं है?
   क) अर्थ
   ख) कर्म
   ग) धर्म
   घ) मोक्ष

3. समाजिक कल्याण के साथ 'अर्थ' का क्या संबंध है?
   क) अर्थ का समाजिक कल्याण से कोई संबंध नहीं
   ख) अर्थ ही समाजिक कल्याण का एकमात्र आधार है
   ग) अर्थ केवल व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है
   घ) अर्थ व्यक्तिगत आकांक्षाओं से आगे बढ़कर समाजिक समृद्धि में योगदान देता है

4. शासन व्यवस्था में 'अर्थ' की अवधारणा किस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न करती है?
   क) समाज को संसाधनों के प्रभावी प्रबंधन हेतु कैसे संगठित किया जाए?
   ख) व्यक्तिगत जीवन में धर्म का क्या महत्व है?
   ग) राजा अपने व्यक्तिगत धन को कैसे सुरक्षित रखे?
   घ) धार्मिक अनुष्ठानों को बढ़ाने के लिए कौन-से उपाय अपनाए जाएँ?

5. शासन व्यवस्था में 'राजधर्म' की अवधारणा किस बात पर बल देती है?
   क) राजा का दिव्य अधिकार
   ख) राजा का नैतिक एवं प्रशासनिक कर्तव्यों का पालन
   ग) राज्य की वित्तीय व्यवस्था
   घ) राजा का आध्यात्मिक कर्तव्य

6. 'राजधर्म' राजा से क्या अपेक्षा करता है?
   क) सभी निर्णयों पर पूर्ण अधिकार
   ख) धर्म के अनुसार कार्य कर प्रजा के लिए शांति, सुरक्षा और सुख सुनिश्चित करना
   ग) विधि व नैतिकता से पूर्ण स्वतंत्रता
   घ) जनकल्याण की अपेक्षा व्यक्तिगत धन पर ध्यान

7. प्राचीन भारत में राजतंत्र के विपरीत कौन-सी शासन प्रणाली थी?
   क) गणराज्य
   ख) कुलीनतंत्र
   ग) प्रजातंत्र
   घ) सामंतवाद

8. शासन व्यवस्था में प्रजातंत्र राजतंत्र से किस प्रकार भिन्न है?
   क) प्रजातंत्र में सत्ता उत्तराधिकार से प्राप्त होती है
   ख) प्रजातंत्र में चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से सीमित अवधि के लिए शासन होता है
   ग) प्रजातंत्र में राजा को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त होता है
   घ) दोनों प्रणालियाँ संरचना में समान होती हैं

9. प्राचीन भारत का कौन-सा ग्रंथ शासन और लोक प्रशासन की गहन जानकारी देता है?
   क) भगवद्गीता
   ख) अर्थशास्त्र
   ग) महाभारत
   घ) रामायण

10. अर्थशास्त्र में कुल कितनी श्लोकें हैं?
    क) 4,000
    ख) 6,000
    ग) 6,500
    घ) 10,000

11. अर्थशास्त्र का मुख्य विषय क्या है?
    क) सैन्य रणनीति एवं अर्थनीति
    ख) शासन, अर्थव्यवस्था एवं सैन्य नीति
    ग) धार्मिक अनुष्ठान एवं कर्मकाण्ड
    घ) राजाओं का जीवन एवं आध्यात्मिक यात्रा

12. निम्नलिखित में से कौन-सा ग्रंथ शासन व्यवस्था एवं प्रशासन पर केन्द्रित नहीं है?
    क) मनुस्मृति
    ख) कौटिल्य का अर्थशास्त्र
    ग) महाभारत
    घ) वेद

13. महाभारत के किस पर्व में 'राजधर्म' का वर्णन है?
    क) उद्योग पर्व
    ख) भीष्म पर्व
    ग) शान्ति पर्व
    घ) द्रोण पर्व

14. महाभारत के 'शान्ति पर्व' में किस प्रमुख विषय की चर्चा की गई है?
    क) युद्ध की रणनीतियाँ
    ख) राजा के नैतिक व प्रशासनिक कर्तव्य
    ग) राज्य की रचना
    घ) व्यापार एवं उद्योग का महत्व

15. मनुस्मृति किस प्रकार के न्याय पर बल देती है?
    क) दीवानी न्याय
    ख) फौजदारी न्याय
    ग) आर्थिक न्याय
    घ) आत्मिक न्याय

16. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुल कितने अध्याय हैं?
    क) 20
    ख) 40
    ग) 15
    घ) 150

17. निम्नलिखित में से कौन-सा ग्रंथ शासन में न्याय और दंड के सिद्धांतों पर आधारित है?
    क) कामन्दक का नीतिसार
    ख) अर्थशास्त्र
    ग) केशव पंडित की दण्डनीति
    घ) महाभारत

18. अर्थशास्त्र के अनुसार निम्नलिखित में से कौन-सा राजा का कर्तव्य नहीं है?
    क) नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित करना
    ख) प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना
    ग) नागरिकों के विवादों का निपटारा करना
    घ) नागरिकों से अत्यधिक कर वसूलना

19. अर्थशास्त्र राज्य के संसाधनों के प्रबंधन के लिए क्या सुझाव देता है?
    क) संसाधनों का अनियंत्रित उपभोग
    ख) समाज के हित में उनका सतत उपयोग
    ग) व्यक्तिगत धन संचय पर बल
    घ) सभी संसाधनों का पड़ोसी राज्यों को निर्यात

20. प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार 'अर्थ' का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   क) आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करना
   ख) समाज के कल्याण हेतु संसाधनों का प्रबंधन
   ग) व्यक्तिगत धन प्राप्त करना
   घ) राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना

21. प्राचीन भारत में शासकों के नैतिक कर्तव्यों से संबंधित प्रमुख अवधारणा कौन-सी है?
   क) राजधर्म
   ख) अर्थ
   ग) कर्म
   घ) मोक्ष

22. अर्थशास्त्र में राजा और मंत्रियों के बीच के संबंध को किस प्रकार दर्शाया गया है?
   क) राजा का वचन अंतिम होता है और मंत्रियों को कोई अधिकार नहीं होता
   ख) मंत्री राजा के अधीन होते हैं और उन्हें सदैव आज्ञा माननी होती है
   ग) मंत्री शासन का अभिन्न अंग होते हैं और राज्य की नीतियाँ लागू करने में सहयोग करते हैं
   घ) मंत्री केवल सलाहकार होते हैं, वास्तविक नियंत्रण राजा के पास होता है

23. अर्थशास्त्र के अनुसार शासन में राजा को किसे प्राथमिकता देनी चाहिए?
   क) राज्य के लिए धन का संचय
   ख) नागरिकों के कल्याण व विधि-व्यवस्था की स्थापना
   ग) सैन्य शक्ति को सुदृढ़ करना
   घ) व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति

24. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में शासन की एक प्रमुख चिंता क्या थी?
   क) क्षेत्रीय विस्तार
   ख) युद्ध एवं रणनीति
   ग) नैतिक शासन और समाज कल्याण
   घ) प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण

25. प्राचीन शासन व्यवस्था में 'धर्म' और 'अर्थ' के बीच क्या संबंध था?
   क) धर्म, अर्थ से गौण था
   ख) धर्म समाज के कल्याण हेतु अर्थ के नैतिक उपयोग को निर्देशित करता था
   ग) धर्म का अर्थ से कोई संबंध नहीं था
   घ) अर्थ को धर्म प्राप्त करने हेतु प्रयोग किया जाता था

26. अर्थशास्त्र का मूल उद्देश्य क्या है?
   क) आध्यात्मिक उन्नति
   ख) आंतरिक समरसता और बाह्य शक्ति
   ग) धार्मिक अनुष्ठान
   घ) व्यक्तिगत संपत्ति

27. अर्थशास्त्र शासकों के लिए किन दो मूल सिद्धांतों पर बल देता है?
   क) धन की रक्षा और क्षेत्र का विस्तार
   ख) राज्य की रक्षा और शक्ति का विस्तार
   ग) धर्म की रक्षा और धन की वृद्धि
   घ) कोश की रक्षा और आंतरिक प्रशासन

28. अर्थशास्त्र के लेखक कौन हैं?
   क) बृहस्पति
   ख) चाणक्य (कौटिल्य)
   ग) मनु
   घ) पतंजलि

29. मौर्य साम्राज्य में कौटिल्य की भूमिका क्या थी?
   क) सैन्य प्रमुख
   ख) धार्मिक गुरु
   ग) सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के सलाहकार
   घ) विदेशी राजदूत

30. अर्थशास्त्र की पुनः खोज किस वर्ष हुई थी?

क) 1750

ख) 1905

ग) 1850

घ) 1950

31. अर्थशास्त्र की कितनी पुस्तकें हैं ?

क) 10

ख) 20

ग) 15

घ) 25

32. अर्थशास्त्र के कौन-से ग्रंथ आंतरिक प्रशासन से संबंधित हैं?

क) ग्रंथ 1–5

ख) ग्रंथ 6–13

ग) ग्रंथ 14

घ) ग्रंथ 10–15

33. अर्थशास्त्र में कौन-से ग्रंथ बाह्य संबंधों और कूटनीति पर केन्द्रित हैं?

क) ग्रंथ 1–5

ख) ग्रंथ 6–16

ग) ग्रंथ 14

घ) ग्रंथ 15

34. अर्थशास्त्र की 14 पुस्तक में क्या वर्णित है?

क) सैन्य रणनीति

ख) शत्रुओं का गुप्त रूप से विनाश एवं आंतरिक विद्रोह का समाधान

ग) व्यापार एवं अर्थव्यवस्था

घ) उत्तराधिकार के नियम

35. अर्थशास्त्र का ग्रंथ किस विषय की प्रस्तावना करता है?

क) शासन के नियम

ख) आर्थिक नीतियाँ

ग) समस्या-समाधान और नीति निर्माण के लिए विश्लेषणात्मक विधियाँ

घ) सैन्य विस्तार की रणनीतियाँ

36. कौटिल्य के अनुसार शासक को कौन-सी चार विद्याओं में पारंगत होना चाहिए?

क) वेद, अर्थशास्त्र, युद्धकला, व्यापार

ख) तर्कशास्त्र, वेद, अर्थशास्त्र, शासन

ग) नीतिशास्त्र, अर्थ, विधि, रणनीति

घ) विधिशास्त्र, गणित, इतिहास, प्रशासन

37. शासन के संदर्भ में अन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) का मुख्य उद्देश्य क्या है?

क) कृषि

ख) सैन्य रणनीति

ग) तर्क एवं विचार-विमर्श

घ) कूटनीतिक संबंध

38. कौटिल्य की दृष्टि में शासक के लिए वेदों का सर्वोत्तम वर्णन क्या है?

क) केवल धार्मिक ग्रंथ

ख) विधि और व्यवस्था के स्रोत

ग) सामाजिक भूमिकाओं और समरसता का ढाँचा

घ) केवल अनुष्ठानिक निर्देश

39. कौटिल्य के शासन तंत्र में वार्ता (अर्थशास्त्र) का क्या महत्व है?

क) यह सैन्य कोष जुटाने पर केंद्रित है

ख) यह कृषि, पशुपालन और व्यापार के माध्यम से धन-संपत्ति उत्पन्न करने में सहायक है

ग) यह धार्मिक आहुति को प्राथमिकता देता है

घ) यह शासक की व्यक्तिगत संपत्ति सुनिश्चित करता है

40. अर्थशास्त्र में दण्डनीति की क्या भूमिका है?

क) यह राजा के धार्मिक कर्तव्यों को परिभाषित करती है

ख) यह विधि और व्यवस्था पर केन्द्रित है जिससे समाज में स्थिरता बनी रहे

ग) यह सैन्य रणनीतियों पर आधारित है

घ) यह विदेश नीति का संचालन करती है

41. कौटिल्य के अनुसार शासक का मुख्य कर्तव्य क्या है?

क) धन का संग्रह करना

ख) विदेशी क्षेत्रों को जीतना

ग) प्रजा और उसकी संपत्ति की रक्षा करना

घ) धार्मिक कर्तव्यों पर ध्यान देना

42. अर्थशास्त्र के अनुसार राजा की बच्चों एवं वृद्धजनों जैसे निर्बल नागरिकों के प्रति क्या जिम्मेदारी है?

क) उन्हें महत्वहीन मानकर उपेक्षा करना

ख) उनके लिए कल्याण और सुरक्षा प्रदान करना

ग) उनके संरक्षण का दायित्व पुजारियों को सौंपना

घ) राज्य के राजस्व हेतु उन पर कर लगाना

43. कौटिल्य के शासन सिद्धांत में शासक को किन दो अवधारणाओं में संतुलन बनाए रखना चाहिए?

क) योग और क्षेम

ख) धर्म और अर्थ

ग) कर्म और मोक्ष

घ) शक्ति और धन

44. कौटिल्य के शासन सिद्धांत में 'योग' शब्द का क्या तात्पर्य है?

क) आध्यात्मिक ध्यान

ख) लक्ष्यों की प्राप्ति

ग) अनुष्ठानिक क्रियाएँ

घ) व्यापारिक लेन-देन

45. कौटिल्य के शासन सिद्धांत में 'क्षेम' शब्द का क्या अर्थ है?

क) प्राप्त उपलब्धियों का शांतिपूर्वक उपभोग

ख) धन का संचय

ग) सैन्य विजय का प्रयास

घ) धर्म का आचरण

46. कौटिल्य की शासन दृष्टि में बुनियादी ढांचे के विकास की क्या भूमिका है?

क) यह एक अनावश्यक विलासिता है

ख) यह राज्य की समृद्धि और सुरक्षा सुनिश्चित करता है

ग) यह केवल सैन्य विस्तार के लिए है

घ) यह धार्मिक प्रयोजनों हेतु है

47. अर्थशास्त्र में कौटिल्य व्यापार के विनियमन को कैसे देखते हैं?

क) वह शोषणकारी लाभ कमाने का समर्थन करते हैं

ख) वह वस्तुओं की बिक्री पर नियंत्रण रखने की सलाह देते हैं जिससे व्यापार में न्याय बना रहे

ग) वह बिना सरकारी हस्तक्षेप के स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था का समर्थन करते हैं

घ) वह आर्थिक नियंत्रण को अनावश्यक मानते हैं

48. कौटिल्य के शासन सिद्धांत में आपदा प्रबंधन का क्या महत्व है?

क) यह केवल युद्धकाल में लागू होता है

ख) राजा को आपदा के समय प्रजा के प्रति पिता के समान व्यवहार करना चाहिए

ग) यह धार्मिक संस्थानों की जिम्मेदारी है, राज्य की नहीं

घ) यह सैन्य विस्तार के बाद विचारणीय विषय है

49. कौटिल्य के अनुसार प्रजाजन के कल्याण की उपेक्षा करने से क्या परिणाम हो सकता है?

क) सैन्य शक्ति में वृद्धि

ख) प्रजा की संतुष्टि और निष्ठा

ग) असंतोष और संभावित विद्रोह

घ) विदेशी गठबंधन

50. अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य के सप्तांग (सात अंग) कौन-कौन से हैं?

क) राजा, मंत्री, प्रदेश, कोष, सेना, दुर्ग, और मित्र

ख) राजा, सेना, धार्मिक नेता, प्रजा, कोष, अर्थव्यवस्था, और मित्र

ग) सेना, कोष, मंत्री, धर्म, राजा, राजदूत, और न्यायाधीश

घ) शासक, संपत्ति, सेना, भूमि, अर्थव्यवस्था, राजनयिक, और सलाहकार

51. कौटिल्य के अनुसार आदर्श शासक के आवश्यक गुण कौन-से हैं?

क) उदारता, शक्ति, और संपत्ति

ख) शक्ति, कुलीनता, और शास्त्रानुसार आचरण

ग) धार्मिक भक्ति और करुणा

घ) संपत्ति, बुद्धिमत्ता, और सुदृढ़ सैन्य शक्ति

52. निम्नलिखित में से कौन-सा गुण कौटिल्य द्वारा शासक में वांछनीय नहीं माना गया है?

क) प्रेरणादायक विशेषताएँ

ख) बौद्धिक प्रतिभा

ग) चरित्र की दृढ़ता

घ) धार्मिक भक्ति

53. कौटिल्य के अनुसार शासक की शिक्षा में अन्वीक्षिकी की क्या भूमिका है?

क) आर्थिक प्रबंधन की समझ को बढ़ाना

ख) समता एवं जीवन की व्यापक दृष्टि विकसित करना

ग) शारीरिक क्षमता को सुदृढ़ करना

घ) धार्मिक अनुष्ठानों की शिक्षा देना

54. कौटिल्य के शासन सिद्धांत में वेद-विद्या (त्रयी) किस पहलू को बल देती है?

क) सैन्य आचरण के नियम

ख) सामाजिक प्रणाली एवं परंपराएँ

ग) आर्थिक प्रबंधन

घ) संघर्ष समाधान

55. कौटिल्य के शासकीय शिक्षा मॉडल में दण्डनीति का उद्देश्य क्या है?

क) धार्मिक कर्तव्यों की शिक्षा देना

ख) प्रभावी शासन और विधि-पालन सुनिश्चित करना

ग) सैन्य रणनीति का विकास करना

घ) व्यापारिक संबंध स्थापित करना

56. कौटिल्य के अनुसार राजा को अपनी दिनचर्या कैसे नियोजित करनी चाहिए?

क) व्यक्तिगत सुख-विलास को अधिक समय देना चाहिए

ख) प्रशासनिक कार्यों को प्राथमिकता देते हुए व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए न्यूनतम समय देना चाहिए

ग) संपूर्ण रूप से शासन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए

घ) शासन कार्यों को दूसरों को सौंप देना चाहिए

57. कौटिल्य के अनुसार राजा को प्रतिदिन कितने घंटे निद्रा लेनी चाहिए?

क) 5 घंटे

ख) 4½ घंटे

ग) 6 घंटे

घ) 8 घंटे

58. मनुस्मृति में राजा के कर्तव्यों के संदर्भ में शासन का कौन-सा पक्ष प्रमुख रूप से उल्लेखित है?

क) सैन्य रणनीति का महत्व

ख) मंत्रियों की नियुक्ति, जनकल्याण, और विदेश नीति

ग) धार्मिक अनुष्ठान और यज्ञ

घ) धन संग्रह और कराधान

59. कौटिल्य के अनुसार शासन में अमात्य (मंत्री) की क्या भूमिका है?

क) केवल सैन्य सलाहकार

ख) केवल कर संग्रह के उत्तरदायी

ग) निर्णय लेने वाले और प्रशासनिक कार्यों के कार्यान्वयनकर्ता

घ) राज्य के धार्मिक नेता

60. कौटिल्य के तंत्र में मन्त्रिन् और अमात्य की भूमिकाओं में प्रमुख अंतर क्या है?
   क) मन्त्रिन् सैन्य प्रमुख होते हैं जबकि अमात्य प्रशासन संभालते हैं
   ख) मन्त्रिन् उच्च स्तरीय सलाहकार होते हैं जो गोपनीय परामर्श देते हैं, जबकि अमात्य प्रशासनिक कार्य करते हैं
   ग) मन्त्रिन् जनकल्याण देखते हैं जबकि अमात्य कर प्रबंधन करते हैं
   घ) मन्त्रिन् भूमि व्यवस्था देखते हैं जबकि अमात्य विधि व्यवस्था का संचालन करते हैं

61. कौटिल्य राजा की मन्त्रिपरिषद् में कितने मन्त्रिन् रखने की अनुशंसा करते हैं?
   क) 1-2२
   ख) 5-6
   ग) 3-4
   घ) 12-20

62. आपातकालीन समय में व्यापक विचार-विमर्श हेतु मन्त्रिपरिषद् का अनुशंसित आकार क्या है?
   क) 10–सदस्य
   ख) 3-4 सदस्य
   ग) 12–सदस्य
   घ) 5–सदस्य

63. कौटिल्य शासन में राजा और मन्त्रिपरिषद् के संबंध को कैसे परिभाषित करते हैं?
   क) राजा को परिषद् से स्वतंत्र होकर कार्य करना चाहिए
   ख) शासन सामूहिक बुद्धिमत्ता और राजा व परिषद् के संतुलन पर आधारित है
   ग) परिषद् राजा के व्यक्तिगत निर्णयों के अधीन होनी चाहिए
   घ) परिषद् केवल सैन्य विषयों पर परामर्श दे

64. कौटिल्य के शासन दृष्टिकोण में जनपद (प्रदेश व प्रजा) का क्या महत्व है?
   क) यह राज्य प्रशासन के लिए अप्रासंगिक है
   ख) यह राज्य की आर्थिक रीढ़ है और राजा की शक्ति का निर्धारक है
   ग) यह केवल धार्मिक कार्यों के लिए है
   घ) यह केवल सैन्य रक्षा से संबंधित है

65. निम्नलिखित में से कौन-सा भूमि उपयोग का कार्य अर्थशास्त्र द्वारा अनुशंसित नहीं है?
   क) सुरक्षा हेतु किले निर्माण
   ख) कृषि के लिए सिंचाई व्यवस्था का विकास
   ग) व्यक्तिगत उपयोग के लिए
   घ) आर्थिक विकास हेतु व्यापार मार्गों की स्थापना

66. कौटिल्य ने राज्य में बस्तियों को किस प्रकार व्यवस्थित करने की सिफ़ारिश की थी?
   क) हज़ारों परिवारों वाले बड़े नगरों की स्थापना करना
   ख) 100 –परिवारों वाले ग्रामों की रचना करना, जिनमें कृषकों को प्राथमिकता दी जाए
   ग) केवल सैन्य बस्तियों पर ध्यान केंद्रित करना
   घ) भूमि को केवल व्यापार और वाणिज्य हेतु आवंटित करना

67. कौटिल्य की प्रशासनिक व्यवस्था में 'संग्रहण' की भूमिका क्या है?
   क) यह ग्रामों का ज़िला मुख्यालय होता है
   ख) यह ग्रामों का मुख्यालय होता है
   ग) यह विदेश संबंधों के लिए उत्तरदायी होता है
   घ) यह राजा की निजी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है

68. कौटिल्य की रक्षानीति में सीमावर्ती क़िलों का रणनीतिक महत्त्व क्या है?
   क) ये केवल औपचारिक उद्देश्यों के लिए होते हैं
   ख) ये आक्रमणों से रक्षा करते हैं और प्राकृतिक सुरक्षा स्थलों पर स्थित होते हैं
   ग) ये नगर की सीमा में आंतरिक सुरक्षा हेतु स्थित होते हैं
   घ) शांतिपूर्ण राज्य में इनकी आवश्यकता नहीं होती

69. अर्थशास्त्र के अनुसार कौन-सा क़िला सबसे सुरक्षित माना गया है?
   क) नदी क़िले
   ख) पर्वतीय क़िले
   ग) स्थल क़िले
   घ) समुद्र क़िले

70. अर्थशास्त्र में सतत शासन का दृष्टिकोण किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है?
   क) केवल सैन्य विस्तार पर ध्यान देकर
   ख) नेतृत्व, प्रशासन और भूमि प्रबंधन की परस्पर निर्भरता पर बल देकर नागरिक कल्याण हेतु
   ग) धन संचय और व्यापार को प्राथमिकता देकर
   घ) केवल राजा की व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित करके

71. अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य की रक्षा और विकास हेतु सेना से भी अधिक महत्वपूर्ण क्या है?
   क) कोष (धन भंडार)
   ख) राजा की व्यक्तिगत शक्ति
   ग) सैन्य गठबंधन
   घ) व्यापार मार्ग

72. अर्थशास्त्र में राज्य की आय का प्रमुख स्रोत क्या है?
   क) विदेशी उपहार और श्रद्धांजलियाँ
   ख) कर, शुल्क और राज्य उपक्रमों से प्राप्त लाभ
   ग) सैन्य विजय
   घ) ऋण और विदेशी निवेश

73. अर्थशास्त्र के अनुसार कृषि उत्पाद का कितना भाग कर (भाग) के रूप में एकत्रित किया जाता है?
   क) दसवाँ भाग
   ख) पाँचवाँ भाग
   ग) छठा भाग
   घ) चौथाई भाग

74. अर्थशास्त्र में कृषि उत्पाद पर कौन-से अतिरिक्त कर लगाए जाते हैं?
   क) भूमि स्वामित्व पर कर
   ख) जल उपयोग पर कर, जो उत्पाद का पाँचवाँ से तिहाई भाग हो सकता है
   ग) कृषि उपकरण पर कर
   घ) श्रम योगदान पर कर

75. निम्न में से कौन-सा अर्थशास्त्र में राज्य की आय का स्रोत नहीं है?
   क) व्यापार और वाणिज्यिक शुल्क
   ख) खनिज और उत्पादन से आय
   ग) सैन्य विजय
   घ) श्रमिक योगदान

76. अर्थशास्त्र के अनुसार श्रमिक योगदान को नियंत्रित करने में राज्य की क्या भूमिका है?
   क) राज्य उपक्रमों हेतु स्वैच्छिक श्रम को प्रोत्साहित करना
   ख) प्रजाजनों से श्रम को राज्य के प्रति कर्तव्य के रूप में प्राप्त करना
   ग) केवल युद्ध के समय श्रम लेना
   घ) केवल कृषि क्षेत्र से श्रम लेना

77. अर्थशास्त्र के अनुसार भंडार सुरक्षित रखने का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   क) सैन्य खर्चों की पूर्ति
   ख) मूल्य स्थिर रखना और संकट के समय कमी से बचाव
   ग) कोष हेतु धन एकत्र करना
   घ) अधिशेष वस्तुओं का निर्यात पड़ोसी राज्यों को करना

78. संकट के समय कोष भरने हेतु अर्थशास्त्र में कौन-से उपाय सुझाए गए हैं?
   क) कर बढ़ाना, ऋण लेना या शत्रु की संपत्ति पर अधिकार
   ख) राजपरिवार की भूमि और संपत्ति बेचना
   ग) सैन्य व्यय में कटौती करना
   घ) केवल विदेशी व्यापार पर निर्भर रहना

79. अर्थशास्त्र में 'शुल्क' कर की भूमिका क्या है?
   क) कृषि पर कर
   ख) विक्रय या व्यापार पर लेन-देन कर
   ग) आयात-निर्यात पर सीमा शुल्क
   घ) श्रम योगदान पर कर

80. अर्थशास्त्र में 'भाग' कर क्या है?

क) विदेशी व्यापारियों पर कर

ख) एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ले जाने वाली वस्तुओं पर शुल्क

ग) कृषि उत्पादन का एक भाग (प्रायः छठा भाग)

घ) राजपरिवार की आय पर कर

81. निम्नलिखित में से कौन-सा अर्थशास्त्र की शब्दावली में कर का प्रकार नहीं है?

क) मार्ग कर (वर्तनी)

ख) राजकीय भूमि पर कर

ग) सेना रख-रखाव कर

घ) राजकीय वस्तुओं पर लेन-देन कर

82. अर्थशास्त्र में 'वर्तनी' (मार्ग कर) का उद्देश्य क्या है?

क) मार्गों का रखरखाव और मरम्मत

ख) सैन्य अभियानों का वित्तपोषण

ग) व्यापार का नियमन

घ) कृषि गतिविधियों का समर्थन

83. अर्थशास्त्र में 'प्रक्रिया' कर किसे संदर्भित करता है?

क) धार्मिक अनुष्ठानों पर कर

ख) खनन और वनों जैसे संसाधनों के निष्कर्षण पर शुल्क

ग) कृषि उत्पादन पर कर

घ) विलासिता वस्तुओं पर विक्रय कर

84. अर्थशास्त्र में 'मानव्याजि' लेन-देन कर किससे संबंधित है?

क) राजकीय वस्तुओं पर कर

ख) विदेशी आयात पर कर

ग) व्यापारियों द्वारा प्रदत्त सेवाओं पर कर

घ) कृषि निर्यात पर कर

85. अर्थशास्त्र के अनुसार वस्तु या सेवा के रूप में दिए जाने वाले कर का उदाहरण क्या है?

क) वस्तुओं या सेवाओं में दिया गया कर

ख) धनराशि में दिया गया कर

ग) विलासिता वस्तुओं पर कर

घ) विदेशी व्यापार पर कर

86. अर्थशास्त्र में 'विष्टि' कर क्या है?

क) राज्य उपक्रमों में श्रमिक योगदान पर कर

ख) कृषि उत्पादन पर कर

ग) विदेशी व्यापार पर कर

घ) राजकीय वस्तुओं पर कर

87. अर्थशास्त्र में 'आयुधीय' कर क्या है?

क) सैन्य सामग्री पर कर

ख) राज्य की सेना हेतु सैनिक प्रदान करने की बाध्यता

ग) हथियार व्यापार पर कर

घ) सैन्य उपयोग हेतु भूमि पर कर

88. अर्थशास्त्र में 'पिण्डकर' कर क्या है?

क) ग्रामीणों द्वारा वस्तु के रूप में दिया गया कर

ख) कृषि उत्पादन पर कर

ग) राज्य के भीतर व्यापार पर कर

घ) राजकीय सेवकों पर कर

89. अर्थशास्त्र में कौन-सा शुल्क राजकीय सेवाओं से संबंधित है?

क) मुद्रा टकसाल के लिए मुद्रांकन शुल्क

ख) विदेशी व्यापारियों पर कर

ग) कृषि कर

घ) राजकीय वस्तुओं पर लेन-देन कर

90. अर्थशास्त्र में 'रूपिक' शुल्क क्या है?

क) आयातित वस्तुओं पर कर

ख) मुद्रा बनाने हेतु मुद्रांकन शुल्क

ग) सैन्य सामग्री पर कर

घ) भूमि सर्वेक्षण हेतु शुल्क

91. अर्थशास्त्र में 'योग-क्षेम' का क्या तात्पर्य है?

क) राजा की निजी संपत्ति और समृद्धि

ख) राज्य के उद्देश्य की प्राप्ति और समृद्धि का शांतिपूर्ण उपभोग

ग) कर लगाने की राजा की शक्ति

घ) विदेश नीति का संचालन

92. अर्थशास्त्र में 'दण्ड' (बलप्रयोग) की क्या भूमिका है?

क) व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहन देना

ख) न्याय और सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु सावधानीपूर्वक उपयोग

ग) विदेश व्यापार पर नियंत्रण का साधन

घ) प्रजाजनों से कर वसूलने का साधन

93. अर्थशास्त्र के अनुसार 'दण्ड' (बलप्रयोग) का दुरुपयोग करने का क्या संभावित परिणाम है?

क) किसी प्रतिद्वन्द्वी राज्य का उदय

ख) असंतोष, विद्रोह और राजसत्ता के विरुद्ध हिंसा की आशंका

ग) राज्य की आय में वृद्धि

घ) राज्य के व्यापारिक संबंधों में कमजोरी

94. अर्थशास्त्र में कानून व्यवस्था के संदर्भ में राजा की मुख्य ज़िम्मेदारी क्या है?

क) विदेश नीति का संचालन

ख) कर संग्रह करना

ग) समय-समय पर प्रजाजनों से भेंट कर उनकी शिकायतें सुनना और न्याय सुनिश्चित करना

घ) व्यापार और वाणिज्य की देखरेख

95. अर्थशास्त्र में व्यक्तियों के मध्य दीवानी मामलों का निपटारा कौन करता है?

क) नगर अधीक्षक

ख) महामात्य

ग) धर्मस्थ (न्यायाधीश)

घ) स्वयं राजा

96. अर्थशास्त्र के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में आपराधिक मामलों की देखरेख कौन करता है?

क) नगर अधीक्षक

ख) महामात्य

ग) प्रदेशृ (न्यायाधिकारी)

घ) राजा के मंत्री

97. अर्थशास्त्र के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में न्याय व्यवस्था कैसी होती है?

क) राजा के निजी प्रशासन के अधीन केंद्रीकृत

ख) प्रत्येक ज़िले में तीन न्यायाधीशों की समिति द्वारा विकेंद्रीकृत

ग) ग्रामीण क्षेत्रों में न्याय व्यवस्था नहीं होती

घ) केवल सैन्य अधिकारियों द्वारा न्याय व्यवस्था संचालित होती है

98. अर्थशास्त्र में कारीगरों और व्यापारियों को कैसे नियंत्रित किया जाता है?

क) उन्हें अपनी गतिविधियाँ स्वयं संचालित करने की स्वतंत्रता होती है

ख) विशेष अधिकारी उनकी गतिविधियों की निगरानी करते हैं ताकि ठगी, धोखाधड़ी और शोषण रोका जा सके

ग) उनकी आय के आधार पर कर लगाया जाता है

घ) उनके व्यापार केवल राजपरिवार द्वारा संचालित होते हैं

99. अर्थशास्त्र के अनुसार अधिकारियों में भ्रष्टाचार से सुरक्षा हेतु राज्य क्या उपाय करता है?

क) अधिक अधिकारियों की नियुक्ति कर एक-दूसरे की निगरानी

ख) गुप्त निगरानी और जाल बिछाकर भ्रष्ट व्यक्तियों को पकड़ना

ग) अधिकारियों की संख्या सीमित करना

घ) अधिकारियों को रिश्वत देकर भ्रष्टाचार से रोकना

100. अर्थशास्त्र में न्याय के चार प्रमुख स्रोत कौन-से हैं?

क) धर्म, राजाज्ञा, सैन्य शक्ति, और जनमत

ख) धर्म, साक्षी की गवाही, परंपरा, और पूर्व उदाहरण

ग) धार्मिक विधियाँ, राजाज्ञाएँ, सैन्य विधियाँ, और जनसहमति

घ) धर्म, बाह्य विधियाँ, स्थानीय परंपराएँ, और राजकीय आदेश

101. अर्थशास्त्र में दण्ड (बल प्रयोग) का प्रमुख उद्देश्य क्या है?

क) सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना और नागरिकों के कल्याण को सुनिश्चित करना

ख) राज्य की सीमाओं का विस्तार करना

ग) पड़ोसी राज्यों से संधियाँ स्थापित करना

घ) व्यापार और वाणिज्यिक गतिविधियों का समर्थन करना

102. अर्थशास्त्र के अनुसार, कानून और व्यवस्था सुनिश्चित करने की अंतिम जिम्मेदारी किसकी होती है?

क) सेनापति

ख) मंत्रीगण

ग) राजा

घ) सलाहकार परिषद

103. अर्थशास्त्र में कौटिल्य की विदेश नीति का केंद्रीय विचार क्या है?

क) व्यापार और आर्थिक संधियों पर केंद्रित होना

ख) पड़ोसी राज्यों के बीच संबंध और शक्ति संतुलन

ग) हर कीमत पर सैन्य विस्तार करना

घ) केवल शांतिपूर्ण वार्ता पर निर्भर रहना

104. अर्थशास्त्र के अनुसार, राजा की विदेश नीति के विकल्प किन पर निर्भर करते हैं?

क) राजा की राजनीतिक विचारधारा पर

ख) राज्य की आंतरिक शक्ति, विशेषकर षाडड्गुण तत्त्वों पर

ग) राज्य के भौगोलिक स्थान पर

घ) राज्य के पास उपलब्ध आर्थिक संसाधनों पर

105. अर्थशास्त्र के अनुसार, राजाओं के बीच शक्ति-संबंध की तीन संभावनाएँ कौन-सी हैं?

क) समान शक्ति, अधिक शक्तिशाली, कमज़ोर

ख) अधिक शक्तिशाली, तटस्थ, निष्क्रिय

ग) शत्रुता, शांतिपूर्ण, उदासीन

घ) समान शक्ति, कूटनीतिक, विस्तारवादी

106. निम्नलिखित में से कौन-सा अर्थशास्त्र में वर्णित छह विदेश नीति विधियों में से एक है?

क) कूटनीति, संधि, युद्ध, गठबंधन, तटस्थता, पृथक्करण

ख) संधि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय, द्वैधिभाव

ग) युद्ध, आक्रमण, नाकाबंदी, दमन, समझौता, शांति

घ) अधीनता, वार्ता, युद्ध, रोकथाम, मध्यस्थता, बल प्रयोग

107. अर्थशास्त्र में संधि नीति का उद्देश्य क्या है?

क) शक्तिशाली राज्यों पर युद्ध घोषित करना

ख) समझौते या संधियों के माध्यम से संघर्ष से बचना

ग) गुप्त रूप से शत्रु को कमजोर करना

घ) भविष्य में सैन्य विजय की तैयारी करना

108. अर्थशास्त्र के अनुसार विग्रह नीति का क्या तात्पर्य है?

क) बाह्य संघर्षों से बचने हेतु तटस्थता की नीति

ख) शांतिपूर्ण विदेश नीति

ग) खुला या गुप्त रूप से युद्ध की नीति

घ) शक्तिशाली राज्यों से शरण लेना

109. अर्थशास्त्र में संश्रय नीति का क्या उद्देश्य है?

क) युद्ध की तैयारी करना

ख) किसी शक्तिशाली राजा से शरण लेना

ग) सभी पड़ोसी राज्यों से शांति बनाए रखना

घ) चुप रहकर परिस्थिति का निरीक्षण करना

110. अर्थशास्त्र में द्वैधिभाव नीति की मुख्य विशेषता क्या है?

क) सभी पड़ोसी राज्यों से शांति बनाए रखना

ख) एक राजा से शांति और दूसरे से शत्रुता रखना

ग) सभी शत्रुओं से केवल युद्ध करना

घ) किसी तटस्थ राज्य से शरण लेना

111. अर्थशास्त्र के अनुसार राजा की मंत्रिपरिषद की प्रमुख जिम्मेदारी क्या है?

क) राजा को धार्मिक और अनुष्ठानिक विषयों में सलाह देना

ख) नीति निर्माण और क्रियान्वयन में राजा की सहायता करना

ग) राजपरिवार के निजी मामलों की देखरेख करना

घ) अन्य राज्यों से विदेशी संबंधों का प्रबंधन करना

112. अर्थशास्त्र में राजप्रासाद प्रशासन का प्रमुख कार्य क्या है?

क) कृषि संसाधनों का प्रबंधन

ख) राजपरिवार की सुरक्षा और गृहकार्य की निगरानी

ग) व्यापार और वाणिज्य का प्रबंधन

घ) सैन्य रक्षा रणनीतियों का आयोजन

113. अर्थशास्त्र के अनुसार राजा और राजपरिवार की सुरक्षा की जिम्मेदारी किसकी होती है?

क) कोषाध्यक्ष प्रमुख

ख) राजप्रासाद रक्षक प्रमुख

ग) राजा के निजी सलाहकार

घ) सेना प्रमुख

114. अर्थशास्त्र में सेनापति (सैन्य प्रमुख) की भूमिका क्या है?

क) आंतरिक कानून व्यवस्था का प्रबंधन

ख) राजपरिवार की गतिविधियों की निगरानी

ग) राज्य की बाह्य सुरक्षा और आंतरिक स्थिरता बनाए रखना

घ) कूटनीतिक वार्ताओं का संचालन करना

115. अर्थशास्त्र में कोष विभाग किसका प्रबंधन करता है?

क) विदेशी व्यापार का प्रशासन

ख) राज्य की आय और संसाधनों का संग्रह एवं सुरक्षा

ग) सैन्य संसाधनों का प्रबंधन

घ) कृषि गतिविधियों का नियमन

116. अर्थशास्त्र में कानून व्यवस्था को राजस्व प्रणाली से कैसे जोड़ा गया है?

क) व्यापार कानूनों के प्रबंधन के माध्यम से

ख) कोषाध्यक्ष द्वारा वित्तीय योजना और आंतरिक सुरक्षा की निगरानी से

ग) कानून प्रवर्तन का दायित्व सैन्य अधिकारियों को सौंपकर

घ) बाह्य गुप्तचर एजेंसियों के माध्यम से

117. अर्थशास्त्र में नागरिक मामलों के प्रशासन को कैसे संगठित किया गया है?

क) सैन्य नियंत्रण पर केंद्रित होकर

ख) विभागों के माध्यम से, प्रत्येक का नेतृत्व एक वरिष्ठ अधिकारी करता है

ग) सभी निर्णयों को स्थानीय नेताओं को सौंपकर

घ) एक केंद्रीय प्राधिकरण के माध्यम से जो सभी क्षेत्रों का प्रबंधन करता है

118. महाभारत में राजा के शासन का केंद्रीय सिद्धांत क्या है?

क) धन और भौतिक समृद्धि

ख) धर्म (नीति और न्याय)

ग) सैन्य विजय

घ) व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा

119. महाभारत के अनुसार राजा की क्या जिम्मेदारी है?

क) सैन्य मामलों पर पूर्ण नियंत्रण बनाए रखना

ख) न्याय सुनिश्चित करना, धर्म की रक्षा करना, और आदर्श नेतृत्व देना

ग) केवल आर्थिक विकास पर ध्यान देना

घ) केवल मंत्रियों की इच्छानुसार कार्य करना

120. महाभारत में कोष का उद्देश्य क्या है?

क) धार्मिक अनुष्ठानों का वित्तपोषण करना

ख) राज्य की सुरक्षा, कल्याण और स्थिरता बनाए रखना

ग) सैन्य विस्तार के लिए धन एकत्रित करना

घ) विदेशी व्यापार में निवेश करना

121. महाभारत में भीष्म कराधान के बारे में क्या बल देते हैं?

क) करों का उपयोग केवल सैन्य उद्देश्यों के लिए होना चाहिए

ख) कर अत्यधिक होने चाहिए जिससे राज्य को पर्याप्त संसाधन मिल सकें

ग) कर उचित, मध्यम और प्रजा पर भारहीन होने चाहिए

घ) कर केवल धनी व्यापारियों से ही लिए जाने चाहिए

122. रामायण में योग्य अमात्य (मंत्री) शासन में क्या भूमिका निभाते हैं?

क) केवल सैन्य रणनीति तैयार करते हैं

ख) शास्त्रों के ज्ञान और प्रशासनिक कौशल के आधार पर सलाह देते हैं

ग) केवल व्यापार और वाणिज्य का प्रबंधन करते हैं

घ) सार्वजनिक अनुष्ठानों और समारोहों का आयोजन करते हैं

123. रामायण में प्रभावी मंत्रियों के लिए किन गुणों पर बल दिया गया है?

क) युद्धकला और रणनीति में दक्षता

ख) शास्त्रों का ज्ञान, ईमानदारी, और भ्रष्टाचार से दूर रहना

ग) कृषि और संसाधनों की देखरेख की क्षमता

घ) पड़ोसी राज्यों से अच्छे संबंध

124. रामायण के अनुसार यदि न्याय समान रूप से नहीं दिया जाए तो क्या परिणाम हो सकते हैं?

क) व्यापार और आर्थिक समृद्धि में वृद्धि हो सकती है

ख) जनता में असंतोष और विद्रोह हो सकता है

ग) राजा की संधियाँ मजबूत होंगी

घ) सेना का मनोबल और विजय की संभावना बढ़ेगी

125. रामायण में राम उच्च पदस्थ अधिकारियों की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए क्या उपाय बताते हैं?

क) प्रशासन में पारदर्शिता और जनसहभागिता को बढ़ावा देना

ख) गुप्तचरों द्वारा अधिकारियों की गतिविधियों की निगरानी करना

ग) अधिकारियों को आत्म-नियंत्रित रहने देना

घ) सभी निगरानी कार्य स्थानीय शासकों को सौंपना

126. रामायण में राम के अनुसार शासन में गोपनीयता का क्या महत्त्व है?

क) यह शत्रुओं के लिए शासकों के कार्यों को अप्रत्याशित बनाए रखती है

ख) इससे राजा को प्रतिद्वंद्वी राज्यों पर लाभ मिलता है

ग) यह प्रशासनिक निर्णयों को जनता से छिपाती है

घ) इससे रणनीतिक योजना और तैयारी की आवश्यकता समाप्त हो जाती है

127. रामायण में राम नगरीय विकास के संबंध में क्या परामर्श देते हैं?

क) फोकस पूरी तरह से सैन्य किलेबंदी पर होना चाहिए

ख) नागरिकों और यात्रियों के लिए शांतिपूर्ण स्थान, मंदिर, विश्राम गृह और पानी की टंकियाँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए

ग) राज्य को केवल कृषि विस्तार में ही निवेश करना चाहिए

घ) शहरी विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए

उत्तर: ख) नागरिकों और यात्रियों के लिए शांतिपूर्ण स्थान, मंदिर, विश्राम गृह और पानी की टंकियाँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए

128. रामायण में राम कृषि तथा आर्थिक कल्याण के संबंध में किस बात पर विशेष बल देते हैं?

क) केवल कराधान को कृषि उत्पादन पर केंद्रित किया जाना चाहिए

ख) सिंचाई प्रणालियों द्वारा समर्थित सुव्यवस्थित कृषि भूमि समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है

ग) कृषि पर व्यापार को प्राथमिकता दी जानी चाहिए

घ) खदानों जैसे प्राकृतिक संसाधनों को राज्य की आर्थिक योजना से बाहर रखा जाना चाहिए

129. रामायण में राम अपने राज्य की आदर्श सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन किस प्रकार करते हैं?

क) पुरुषों और महिलाओं को सख्त सैन्य अनुशासन के तहत रहना चाहिए

ख) राज्य को लोगों के आनंदमय सामाजिक उत्सवों में शामिल होने के साथ सामाजिक सद्भाव और आर्थिक कल्याण सुनिश्चित करना चाहिए

ग) राज्य को सामाजिक कल्याण की चिंता किए बिना केवल आर्थिक समृद्धि पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए

घ) व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए नागरिकों पर लगातार निगरानी रखी जानी चाहिए

130. महाभारत के अनुसार, राजा के गुणों का क्या महत्व है?

क) यह वर्तमान दुनिया में केवल प्रसिद्धि और समृद्धि सुनिश्चित करता है

ख) जो राजा धर्मपूर्वक अपनी प्रजा की रक्षा करता है, उसे शाश्वत पुण्य प्राप्त होता है

ग) यह सुनिश्चित करता है कि राजा बाहरी खतरों से मुक्त रहे

घ) यह सैन्य विजय में राजा की सफलता की गारंटी देता है

131. कौन-सा ग्रन्थ दूतों, गुप्तचरों एवं युद्धनीति की चर्चा करता है?

क) मनु-स्मृति

ख) राजनिति-रत्नाकर

ग) कामन्दक का नीति-सार

घ) दण्डनीति

132. कौटिल्य के अनुसार राजा की शिक्षा के चार स्तम्भों में निम्नलिखित में से कौन-सा सम्मिलित नहीं था?

क) अन्वीक्षिकी

ख) वार्ता

ग) ज्योतिष (ज्योतिषशास्त्र)

घ) दण्डनीति

133. कौटिल्य ने किस सम्राट को परामर्श दिया था?

क) चन्द्रगुप्त मौर्य

ख) अशोक महान

ग) हर्षवर्धन

घ) विक्रमादित्य

134. अर्थशास्त्र की पुनः खोज किस वर्ष में हुई थी?

क) 1890

ख) 1885

ग) 1905

घ) 1920

135. कौन-सा ग्रन्थ राजाओं व मन्त्रियों के कर्तव्यों एवं नैतिक गुणों का वर्णन करता है?

क) राजनिति-रत्नाकर

ख) मानसोल्लास

ग) दण्डनीति

घ) अर्थशास्त्र

136. निम्नलिखित में से कौन-सा तत्त्व सप्त-प्रकृतियों (राज्य के सात अंगों) में सम्मिलित नहीं है?

क) राजा

ख) सेना

ग) न्यायपालिका

घ) कोश (धनकोष)

137. अन्वीक्षिकी राजा को किस प्रकार का प्रशिक्षण देती है?

क) दार्शनिक चिन्तन व संतुलित विचार

ख) शारीरिक स्वास्थ्य

ग) यज्ञ-यागादि

घ) व्यापारिक वार्ता

138. अर्थशास्त्र में नागरिक प्रशासन के अन्तर्गत कितने विभाग थे?

क) 20

ख) 25

ग) 33

घ) 35

139. अधिकारियों की निगरानी हेतु राम ने किस समूह की अनुशंसा की थी?

क) योद्धा

ख) लोक अभियोजक

ग) पुरोहित

घ) गुप्तचर

140. अर्थशास्त्र में 'दण्ड' शब्द का प्रमुख अर्थ क्या है?

क) धार्मिक अनुष्ठान

ख) आर्थिक योजना

ग) राज्य की दमनकारी शक्ति

घ) दार्शनिक विमर्श

141. ग्रामीण क्षेत्रों में आपराधिक मामलों का निपटारा करने वाला अधिकारी कौन होता था?

क) धर्मस्थ

ख) स्थानिक

ग) प्रदेशट्ट (न्यायाधीश)

घ) कोशाध्यक्ष (धनाध्यक्ष)

142. विदेश नीति की वह विधि कौन-सी है जिसमें संधियाँ बनाई जाती हैं?

क) विग्रह

ख) संधि

ग) संश्रय

घ) आसन

143. सेना की चार शाखाएँ कौन-सी थीं?

क) नौसेना, पैदलसेना, घुड़सवार, टैंक

ख) पैदलसेना, रथ, घुड़सवार, हाथी

ग) अंगरक्षक, गुप्तचर, घुड़सवार, नौसेना

घ) पैदलसेना, नौसेना, वायुसेना, घुड़सवार

144. भ्रष्ट अधिकारियों को पकड़ने के लिए एक उपाय क्या बताया गया है?

क) सार्वजनिक न्यायालय

ख) जनमत

ग) निगरानी एवं जाल बिछाना

घ) नागरिकों द्वारा जुर्माना

145. युवराज प्रायः राज्य की रक्षा में कौन-सी भूमिका निभाता था?

क) मंदिर निर्माण

ख) बजट प्रबंधन

ग) सैन्य अभियानों का नेतृत्व

घ) विधिक सुधार

146. चांसलर की प्रणाली के अन्तर्गत गाँवों के छोटे समूहों का प्रबंधन कौन करता था?

क) संनिधात्र

ख) गोप

ग) नागरिका

घ) प्रदेशट्ट

147. प्रारम्भिक वैदिक काल में मुख्य राजनीतिक इकाई क्या थी?

क) राज्य

ख) जनता (जनजाति)

ग) प्रदेश

घ) ग्राम

148. वैदिक शासन व्यवस्था में परामर्शदाता तथा धार्मिक भूमिका किस वर्ग की होती थी?

क) क्षत्रिय

ख) वैश्य

ग) ब्राह्मण

घ) शूद्र

149. पाठ के अनुसार, वह कौन-सा सिद्धान्त है जिसे राजा के द्वारा बनाए रखा जाता है और जो ब्रह्माण्डीय व्यवस्था का प्रतीक है?

क) अर्थ

ख) ऋत

ग) कर्म

घ) शास्त्र

150. वैदिक राजनीतिक संरचना में 'कुल' शब्द का क्या तात्पर्य है?

क) योद्धा वर्ग

ख) जनजातीय पुरोहित

ग) जनजाति में एक पारिवारिक इकाई

घ) एक सैन्य दल

उत्तर-दर्शिका

1. ख	2. ख	3. घ
4. क	5. ख	6. ख
7. ग	8. ख	9. ख
10. ग	11. ख	12. घ
13. ग	14. ख	15. ख
16. घ	17. ग	18. घ
19. ख	20. ख	21. क
22. ग	23. ख	24. ग
25. ख	26. ख	27. ख
28. ख	29. ग	30. ख
31. ग	32. क	33. ख
34. ख	35. ग	36. ख
37. ग	38. ग	39. ख
40. ख	41. ग	42. ख
43. क	44. ख	45. क
46. ख	47. ख	48. ख
49. ग	50. क	51. ख
52. घ	53. ख	54. ख
55. ख	56. ख	57. ख
58. ख	59. ग	60. ख
61. ग	62. ग	63. ख
64. ख	65. ग	66. ख
67. ख	68. ख	69. ख

70. ख	71. क	72. ख
73. ग	74. ख	75. ग
76. ख	77. ख	78. क
79. ग	80. ग	81. ख
82. क	83. ख	84. क
85. क	86. क	87. ख
88. क	89. क	90. ख
91. ख	92. ख	93. ख
94. ग	95. ग	96. ग
97. ख	98. ख	99. ख
100. ख	101. क	102. ग
103. ख	104. ख	105. क
106. ख	107. ख	108. ग
109. ख	110. ख	111. ख
112. ख	113. ख	114. ग
115. ख	116. ख	117. ख
118. ख	119. ख	120. ख
121. ग	122. ख	123. ख
124. ख	125. ख	126. ख
127. ख	128. ख	129. ख
130. ख	131. ग	132. ग
133. क	134. ग	135. ख
136. ग	137. क	138. ग
139. घ	140. ग	141. ग
142. ख	143. ख	144. ग
145. ग	146. ख	147. ख
148. ग	149. ख	150. ग

Bharat Bandhakes

खंड-10

भारतीय दृष्टिकोण से मन और आत्मा

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान



भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

भारतीय दृष्टिकोण से
मन और आत्मा



भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वतापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। हालाँकि स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **भारतीय दृष्टिकोण से मन और आत्मा**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. शोभिता सिंघल

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-36-9

मूल्य : 230/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

विषय सूची

	प्रस्तावना	5
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	7
1.	भारतीय मनोविज्ञान का ऐतिहासिक विकास	14
2.	भारतीय दर्शन का मनोविज्ञान पर प्रभाव	16
3.	भारतीय मनोविज्ञान की विशिष्ट विशेषताएँ: व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ ज्ञान का एकीकरण	17
4.	तीन गुण: सत्त्व, रजस और तमस	24
5.	पंचकोष: पाँच-परतों का अस्तित्व	28
6.	अस्तित्व की चार अवस्थाएँ	30
7.	आत्म-ज्ञान के मार्ग के रूप में चार अवस्थाएँ	33
8.	चेतना अध्ययन: मुद्दे	33
9.	आधुनिक मनोविज्ञान में भारतीय योगदान	36
10.	भारत में शिक्षा प्रणाली में मनोविज्ञान	39
11.	भारतीय त्यौहारों और परंपराओं का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव	41
12.	सारांश	42
	सुझावात्मक पठनीय सामग्री	43
	बहु विकल्पीय प्रश्न	45
	उत्तर-दर्शिका	75

As we study the philosophy of the Upanishads, the impression grows on us that the attainment of this path is not exactly the simplest of tasks. Our Western superciliousness in the face of these Indian insights is a mark of our barbarian nature, which has not the remotest inkling of their extraordinary depth and astonishing psychological accuracy.

Source: Psychological Types by Carl Jung

* * * *

Great and enduring civilizations like those of the Indian and the Chinese were built upon this foundation and developed from it a discipline of self-knowledge which they brought to a high pitch of refinement both in philosophy and practice.

Source: Hinds Callare Geru Dut

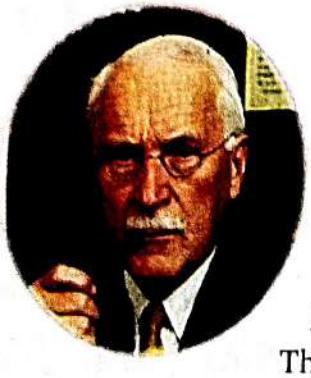

Carl Jung

Illustrious Swiss psychiatrist and psychoanalyst who founded Analytical Psychology, often known as lungian Psychology. While working as a research scientist at the famous Burgholzii Hospital, the Viennese founder of psychoanalysis, Sigmund Freud learned of him, and the two developed a lengthy correspondence. This relationship is dramatically depicted in the 2011 movie, A Dangerous Method. Jung formulated some of the best-known theories in psychology, including Synchronicity, Archetypal Phenomena, the Collective Unconsciousness and Extroversion and Introversion.

प्रस्तावना



मनोविज्ञान मानव मस्तिष्क, व्यवहार, भावनाओं और चेतना को समझने का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह न केवल हमारे सोचने और अनुभव करने के तरीकों को स्पष्ट करता है, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, कार्यस्थल उत्पादकता और व्यक्तिगत विकास में भी सहायक होता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान मुख्य रूप से मानसिक प्रक्रियाओं और बाहरी व्यवहारों पर केंद्रित रहता है। इसने मानसिक विकारों, संज्ञानात्मक कार्यों और सामाजिक व्यवहार को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन यह अक्सर मानव अस्तित्व के भावनात्मक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहलुओं की उपेक्षा करता है। इसके विपरीत, भारतीय मनोविज्ञान एक समग्र दृष्टिकोण अपनाता है। यह मस्तिष्क और मानसिक प्रक्रियाओं के साथ-साथ आत्मा, चेतना और शरीर को एकीकृत रूप में देखता है। यह केवल मानसिक विकारों के उपचार तक सीमित नहीं रहता, बल्कि आत्म-जागरूकता, आंतरिक शांति और आत्म-विकास को भी प्रोत्साहित करता है। भारतीय मनोविज्ञान की जड़ें योग, ध्यान और आध्यात्मिक ज्ञान में हैं। यह दृष्टिकोण बताता है कि सच्ची खुशी बाहरी उपलब्धियों में नहीं, बल्कि आत्मबोध और संतुलन में निहित है। आज के समय में, जब तनाव, चिंता और अवसाद जैसी समस्याएं बढ़ रही हैं, भारतीय मनोविज्ञान योग, ध्यान और सकारात्मक सोच जैसी विधियों के माध्यम से व्यावहारिक समाधान प्रदान करता है। यह अध्ययन केवल एक अकादमिक विषय नहीं, बल्कि एक जीवन-शैली है जो मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

When first time I came upon this inexhaustible work, SAKUNTALA - It aroused such enthusiasm in me and so held me that I could not stop studying it. I even felt impelled to make the impossible attempt to bring it in some form to the German stage. These efforts were fruitless but they made me so thoroughly acquainted with this most valuable work, it represented such an epoch In my life, I so absorbed it, that for thirty years I did not look at either the English or the German version. It is only now that I understand the enormous Impression that work made on me at an earlier age.

Source: Letters from Goethe, Johann Wolfgang von Goethe

* * * *



Johann Wolfgang von Goethe

Germany's supreme poet, dramatist and philosopher is often regarded as the Father of German Literature. His works include epic and lyrical poetry, prose and verse dramas, literary and aesthetic criticism and writings on scientific topics. He was an esteemed member of the Duke's Council and implemented many administrative and policy reforms. Heavily influenced by the works of Kalidasa, Goethe's literary creations later inspired Iqbal, Lamarck, Darwin, Hegel, Schelling, Schopenhauer, Carlyle, Kierkegaard, Nietzsche and Tesla.

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) एक प्रमुख शैक्षिक संस्था है जो भारतीय परंपराओं में निहित मूल्य-आधारित, समग्र शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए समर्पित है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - जिसका अर्थ है "ज्ञान वह है जो मुक्ति देता है" - इस प्रेरणादायक आदर्श वाक्य से प्रेरित होकर VBUSS का उद्देश्य ऐसी पीढ़ी तैयार करना है जो न केवल शैक्षिक रूप से सक्षम हो, बल्कि सामाजिक रूप से जिम्मेदार और आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो। यह संस्था उच्च शिक्षा के मूल घटकों के रूप में आलोचनात्मक सोच, वैज्ञानिक क्षमता, नैतिक जीवनशैली और गहरी सांस्कृतिक समझ को महत्व देती है।

VBUSS ने देश भर में अपनी व्यापक शैक्षिक नेटवर्क के माध्यम से महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। यह कई शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेजों, डिग्री संस्थानों और व्यावसायिक केंद्रों को समर्थन प्रदान करता है, ताकि देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और पहुंच को बेहतर बनाया जा सके।

उपलब्धियों के संदर्भ में, VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की है। इस संस्था ने भारत भर में कॉलेजों और विश्वविद्यालयों का एक नेटवर्क स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला और सामाजिक विज्ञान जैसे विभिन्न क्षेत्रों में विविध कार्यक्रम प्रदान करते हैं। यह संस्था अपने मांगपूर्ण शैक्षणिक कार्यक्रमों, चुनौतीपूर्ण पाठ्यक्रम एवं शोध पहलों के माध्यम से शैक्षिक उत्कृष्टता को निरंतर बनाए रखती है, और शिक्षा में अपनी योगदानों के लिए सराहना प्राप्त कर चुकी है। इसके अतिरिक्त, यह संस्था सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में सक्रिय भूमिका निभाती है, विशेष रूप से वंचित समुदायों को शिक्षा प्रदान करके गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच के अंतर को पाटने का कार्य करती है। इसके पूर्व छात्र विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दे चुके हैं, जो विद्या भारती की शैक्षिक दर्शन के प्रभाव को सिद्ध करते हैं।

VBUSS अपने निरंतर प्रयासों के माध्यम से भारत के भविष्य को आकार दे रहा है, जो कुशल, जानकार और नैतिक नेताओं का निर्माण कर रहा है। आधुनिक शैक्षिक क्षेत्रों को प्राचीन भारतीय ज्ञान के साथ जोड़कर, vbuss जिम्मेदार, प्रबुद्ध नागरिकों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है जो देश की प्रगति के लिए समर्पित हैं।

भारतीय दृष्टिकोण से मन और आत्मा

आज की दुनिया में मानव मनोविज्ञान एक गहरे रुचि का क्षेत्र बना हुआ है। जबकि विज्ञान और प्रौद्योगिकी में पिछले शतक में महत्वपूर्ण प्रगति ने हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को बदल दिया है, यह प्रगति जरूरी नहीं कि मानव खुशी या कल्याण में सुधार लाई हो। प्रौद्योगिकियों के बावजूद, कई व्यक्तियों को अभी भी मानसिक तनाव, अस्तित्व संबंधी प्रश्नों और असंतोष का सामना करना पड़ता है। मानव मनोविज्ञान का मूल उद्देश्य जीवन के लक्ष्यों को समझना, संतोष प्राप्त करना और रास्ते में आने वाली चुनौतियों से निपटना है। यही कारण है कि मनोविज्ञान केवल मन का अध्ययन नहीं है, बल्कि यह व्यवहार, भावनाओं और व्यक्तिगत अनुभवों का भी अध्ययन है।

पश्चिमी मनोविज्ञान, जो आधुनिक दृष्टिकोणों पर हावी है, ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन यह अक्सर विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में व्यक्तियों द्वारा सामना की जाने वाली गहरी मानसिक समस्याओं को संबोधित करने में असफल रहता है। उदाहरण के लिए, जबकि पश्चिमी मनोविज्ञान व्यवहारिक और संज्ञानात्मक तत्वों के महत्व को महत्व देता है, यह मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं में योगदान करने वाली सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक जटिलताओं की अनदेखी करता है। इसके अलावा, पश्चिमी मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं को गैर-पश्चिमी संदर्भों में लागू करना हमेशा प्रभावी नहीं रहा है, क्योंकि यह व्यक्तिगत अनुभवों को आकार देने वाले विविध सांस्कृतिक और आध्यात्मिक ढांचे को ध्यान में नहीं रखता।

इसके विपरीत, भारतीय मनोविज्ञान एक अधिक समग्र और एकीकृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो सदियों की आत्मनिरीक्षण, ध्यान और अनुभवात्मक अध्ययन से निकलता है। प्राचीन भारतीय दार्शनिक ग्रंथों जैसे उपनिषदों और वेदों में निहित, भारतीय मनोविज्ञान मन, शरीर और चेतना को आपस में जुड़े तत्वों के रूप में गहरे रूप से समझता है। यह एकीकृत दृष्टिकोण कठोर बौद्धिक परंपराओं और विविध विचारधाराओं जैसे

छह दर्शनों, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के माध्यम से विकसित हुआ है। इन परंपराओं ने लंबे समय से मानव अस्तित्व की जटिलताओं का अध्ययन किया है, न केवल मानसिक भलाई बल्कि आध्यात्मिक विकास और दुःख से मुक्ति पर भी बल दिया है।

1. भारतीय मनोविज्ञान का ऐतिहासिक विकास

भारतीय मनोविज्ञान देश की दीर्घकालिक आध्यात्मिक और दार्शनिक खोज से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह उस समय विकसित होना प्रारंभ हुआ जब पश्चिम में मनोविज्ञान एक औपचारिक अकादमिक विषय के रूप में अस्तित्व में भी नहीं आया था। इसका आधार आत्मनिरीक्षण की समृद्ध परंपरा और मानव मन, चेतना तथा व्यवहार की गहन समझ पर टिका है। भारतीय मनोविज्ञान की जड़ें प्राचीन धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों में मिलती हैं, जिन्होंने मन के कार्य-प्रणाली के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पहलुओं के लिए आधार प्रदान किया।

1.1 प्राचीन भारतीय मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टियाँ

भारत में मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के सबसे प्रारंभिक उल्लेख इसके पवित्र ग्रंथों – वेद, उपनिषद और भगवद गीता – में मिलते हैं। ये ग्रंथ न केवल मानवीय स्थिति के आध्यात्मिक पक्षों को छूते हैं, बल्कि मन, भावनाओं और चेतना की प्रकृति का भी अन्वेषण करते हैं, जो आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से मेल खाते हैं।

वेद, विशेषकर ऋग्वेद, में मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के सबसे पुराने उल्लेख मिलते हैं। यद्यपि वे मुख्य रूप से आध्यात्मिक हैं, परंतु वे मन और चेतना को दैविक तथा ब्रह्मांडीय व्यवस्था से जुड़ा हुआ मानते हैं। वेदों में ऐसे विचार मिलते हैं जो बाद में मनोविज्ञान में आधारभूत बने, जैसे कि मन की वास्तविकता को प्रभावित करने की क्षमता और मानसिक अनुशासन का महत्व। वैदिक परंपरा यह बताती है कि मन जीवन में सामंजस्य और असामंजस्य दोनों उत्पन्न कर सकता है – जो बाद में संज्ञानात्मक और भावनात्मक नियंत्रण के रूप में जाना गया।

उपनिषद, जो वेदों के बाद रचे गए, मन, शरीर और चेतना के आपसी संबंध में और भी गहराई से उतरते हैं। इनमें आत्मा और ब्रह्म की अवधारणाएँ दी गई हैं – आत्मा को व्यक्ति के अस्तित्व का सार और ब्रह्म को अंतिम सत्य या ब्रह्मांडीय चेतना माना गया है। उपनिषद कहते हैं कि सच्चा मानसिक कल्याण आत्मा और ब्रह्म की एकता

को अनुभव करने से प्राप्त होता है। इससे ध्यान (मेडिटेशन) के विकास को बल मिला, जो आत्मनिरीक्षण और आत्मबोध का साधन है। उपनिषद में यह भी बताया गया है कि मानसिक कष्ट और दुःख अविद्या (अज्ञान) के कारण होते हैं – जो आधुनिक मनोविज्ञान में आत्म-जागरूकता और माइंडफुलनेस की अवधारणाओं के समान है।

भगवद गीता, उपनिषदों के समानांतर, भावनात्मक नियंत्रण और निर्णय-निर्माण में मन की भूमिका को दर्शाती है। इसमें अर्जुन और भगवान कृष्ण के बीच संवाद होता है, जिसमें अर्जुन युद्ध के कर्तव्य को लेकर भ्रम, डर और संशय में होता है। कृष्ण की शिक्षाएँ मानसिक स्थिरता पाने के लिए मन और भावनाओं को नियंत्रित करने पर केंद्रित हैं। गीता में अनासक्ति और आत्म-अनुशासन को मानसिक संघर्ष के समाधान के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह विचार कि कर्तव्य करते समय फल की चिंता नहीं करनी चाहिए, आज के संज्ञानात्मक व्यवहारिक चिकित्सा जैसे दृष्टिकोणों से मेल खाता है, जो विचारों और प्रतिक्रियाओं को बदलकर भावनात्मक उत्तरों को संतुलित करने की कोशिश करते हैं।

1. बौद्ध मनोविज्ञान

बौद्ध मनोविज्ञान के योगदान विशेष रूप से मानसिक प्रशिक्षण और माइंडफुलनेस के क्षेत्र में अत्यंत गहरे और व्यापक रूप से स्वीकार किए गए हैं। अनित्य (सब कुछ अस्थायी है) और अनात्म (कोई स्थायी आत्म नहीं है) की बौद्ध अवधारणाएँ यह दर्शाती हैं कि मानसिक घटनाएँ भी क्षणिक और परस्पर संबद्ध हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान की ब्रेन प्लास्टिसिटी की धारणा से मेल खाता है, जो कहता है कि मानसिक अवस्थाएँ प्रशिक्षण द्वारा बदली जा सकती हैं।

बौद्ध ध्यान पद्धतियाँ, जैसे कि स्मृति साधना, मानसिक कष्ट को कम करने और मानसिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए आवश्यक मानी गई हैं। बौद्ध दृष्टिकोण केवल मन को समझने का नहीं बल्कि उसे रूपांतरित करने का मार्ग भी है। यह विचार आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपायों जैसे माइंडफुलनेस आधारित संज्ञानात्मक थेरेपी और माइंडफुलनेस आधारित तनाव में कमी में व्यापक रूप से अपनाया गया है।

बौद्ध धर्म यह भी सिखाता है कि मानसिक अवस्थाएँ अस्थायी होती हैं और व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं के प्रति दृष्टिकोण को बदलकर अपने दुःख को कम कर सकता है। यह विचार आधुनिक मनोचिकित्सकीय पद्धतियों जैसे कि स्वीकृति और प्रतिबद्धता चिकित्सा में प्रयुक्त संज्ञानात्मक भ्रम तकनीकों से मेल खाता है।

2. सांख्य और योग दर्शन

सांख्य और योग दर्शन भारतीय मनोविज्ञान के इतिहास में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं, विशेषकर मानसिक अनुशासन और आत्मबोध की दिशा में। योगसूत्र के रचयिता पतंजलि द्वारा प्रणीत योग दर्शन मानसिक नियंत्रण और स्पष्टता प्राप्त करने के व्यावहारिक उपाय प्रस्तुत करता है। योग का मुख्य उद्देश्य मन के उतार-चढ़ाव को रोककर समाधि की अवस्था प्राप्त करना है, जहाँ साधक दिव्यता से एकत्व का अनुभव करता है।

योग का अष्टांग मार्ग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – मानसिक और शारीरिक शुद्धता के लिए साधन हैं। इन विधियों का उद्देश्य मन और शरीर को संतुलन और शांति की स्थिति में लाना है। योग में निहित मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टियाँ आधुनिक मन-शरीर संबंध की अवधारणाओं से मेल खाती हैं, जैसे कि भावनाओं को नियंत्रित करने में श्वास-नियंत्रण और शरीर-स्थितियों का प्रयोग।

योग का आधुनिक मनोविज्ञान पर गहरा प्रभाव पड़ा है – विशेष रूप से तनाव प्रबंधन, विश्राम तकनीकों और भावनात्मक नियंत्रण के क्षेत्र में। प्राणायाम जैसे श्वास-नियंत्रण तकनीकों को आज तनाव कम करने और मानसिक संतुलन बनाए रखने के प्रभावशाली साधन के रूप में अपनाया जा रहा है।

2. भारतीय दर्शन का मनोविज्ञान पर प्रभाव

भारतीय दर्शन, जिसमें विविध विचार-परंपराएँ हैं, ने मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं में अनेक योगदान दिए हैं। वेदान्त, बौद्ध, जैन और सांख्य जैसे दर्शन-प्रणालियाँ मन, चेतना और मानसिक पीड़ा की प्रक्रिया को समझने में सहायक रही हैं।

वेदांत भारतीय मनोविज्ञान को आकार देने वाले सबसे प्रभावशाली दर्शन में से एक है। वेदांत के अनुसार अंतिम सत्य ब्रह्म है, जो समस्त अस्तित्व और मन का मूल है। इस दर्शन में मन को एक उपकरण माना गया है, जो अनुभव, सोच और व्यवहार को आकार देता है। मानसिक कष्ट आत्मा की अज्ञानता से उत्पन्न होते हैं। वेदांत में ज्ञान योग के माध्यम से आत्मबोध प्राप्त करने का मार्ग सुझाया गया है। इस पथ में ध्यान, आत्म-चिंतन और वैराग्य के द्वारा मन की शुद्धि संभव मानी गई है – यह आधुनिक मनोविज्ञान के आत्म-जागरूकता और मानसिक अनुशासन पर बल देने वाले दृष्टिकोणों से मेल खाता है।

बौद्ध धर्म ने भी भारतीय मनोविज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, विशेषकर मानसिक पीड़ा और उसके निवारण के संदर्भ में। बौद्ध दर्शन में चार आर्य सत्य मनोविज्ञान की एक स्पष्ट रूपरेखा प्रदान करते हैं, जो यह बताते हैं कि दुःख (दुःख) कैसे उत्पन्न होता है और इसे कैसे समाप्त किया जा सकता है। बौद्ध मनोविज्ञान के अनुसार दुःख का कारण तृष्णा, आसक्ति और अज्ञानता है, और इसे समाप्त करने के लिए मानसिक प्रशिक्षण, नैतिक आचरण और प्रज्ञा आवश्यक है। अष्टांगिक मार्ग मानसिक स्पष्टता और भावनात्मक संतुलन के लिए दिशानिर्देश प्रदान करता है। बौद्ध ध्यान पद्धतियाँ जैसे विपश्यना और स्मृति साधना (माइंडफुलनेस) वर्तमान क्षण में जागरूकता बढ़ाने में सहायक हैं – जो आज के आधुनिक थेरेपी मॉडल में अपनाए जा रहे हैं।

जैन दर्शन, हालांकि एक धार्मिक परंपरा के रूप में देखा जाता है, परंतु इसका मनोवैज्ञानिक मॉडल भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें मन की शुद्धता पर विशेष बल दिया गया है। जैन दर्शन के अनुसार मन एक शक्तिशाली शक्ति है, जो या तो मुक्ति की ओर ले जा सकता है या बंधन की ओर, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे कैसे प्रशिक्षित किया गया है। अहिंसा की अवधारणा – जिसमें केवल शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक अहिंसा (हानिकारक विचारों से बचना) शामिल है – मानसिक शांति के लिए आवश्यक मानी जाती है। आत्म-नियंत्रण और भौतिक मोह से मुक्त होने की जैन शिक्षाएँ भावनात्मक नियंत्रण और नकारात्मक विचारों से दूरी बनाने के आधुनिक सिद्धांतों से मेल खाती हैं।

सांख्य दर्शन एक द्वैतवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसमें दो मूल तत्व माने गए हैं: पुरुष (चेतना) और प्रकृति (भौतिक जगत)। मन, जिसे मनस् कहा गया है, प्रकृति का हिस्सा माना गया है और यह त्रिगुण – सत्त्व (शुद्धता), रजस (क्रिया) और तमस (जड़ता) – के प्रभाव में रहता है। इन गुणों का संतुलन या असंतुलन व्यक्ति की मानसिक अवस्था और व्यवहार को निर्धारित करता है। मानसिक शांति के लिए इन गुणों का संतुलन आवश्यक है – यह विचार आधुनिक मनोविज्ञान के भावनात्मक संतुलन और स्वभाव संबंधी सिद्धांतों से मेल खाता है।

3. भारतीय मनोविज्ञान की विशिष्ट विशेषताएँ: व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ ज्ञान का एकीकरण

भारतीय मनोविज्ञान पश्चिमी मनोविज्ञान से अपने क्षेत्र और आधारभूत दर्शन में महत्वपूर्ण रूप से भिन्न है। जबकि पश्चिमी मॉडल अक्सर मानव व्यवहार के भौतिकवादी और

निर्धारक पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं, भारतीय मनोविज्ञान आध्यात्मिक आयामों और आत्म-विकास के महत्व को पहचानता है। मानव अस्तित्व का यह व्यापक दृष्टिकोण बाहरी दुनिया और व्यक्तित्व की आंतरिक दुनिया दोनों को शामिल करता है, जो मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने में चेतना की भूमिका को प्रमुख बनाता है।

पश्चिमी मनोविज्ञान में, शरीर को अक्सर स्वास्थ्य और कल्याण, जिसमें मानसिक स्वास्थ्य भी शामिल है, निर्धारित करने वाले प्राथमिक तत्व के रूप में देखा जाता है। जबकि कुछ पश्चिमी मॉडल मन की भूमिका को पहचानते हैं, ध्यान आमतौर पर मानसिक बीमारी के भौतिक या जैविक कारणों पर होता है। इसके विपरीत, भारतीय दृष्टिकोण एक अधिक समग्र दृष्टिकोण अपनाता है, जहां मन, शरीर और चेतना एक आपस में जुड़े हुए सिस्टम के रूप में देखे जाते हैं, जो सामूहिक रूप से व्यक्ति के स्वास्थ्य और कल्याण को प्रभावित करते हैं। भारतीय मनोविज्ञान के लिए, अंतिम लक्ष्य केवल जीवन की अवधि का विस्तार करना नहीं है, बल्कि खुशी, संतोष और एक सच्ची संतुष्टि की भावना को बढ़ावा देना है, जो शारीरिक दीर्घायु से परे है।

भारतीय दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण तत्व इसका व्यक्तिगत विकास, आंतरिक शांति और दुःख को कम करने पर ध्यान केंद्रित करना है। जबकि पश्चिमी मॉडल अक्सर मानसिक बीमारी या विकारों का इलाज करने पर केंद्रित होते हैं, भारतीय मनोविज्ञान अस्तित्व संबंधी मुद्दों जैसे अज्ञानता, तनाव और आध्यात्मिक मुक्ति के लिए प्रयास को संबोधित करने में आगे बढ़ता है। यह दृष्टिकोण धार्मिक रूप से तटस्थ है; यह खुशी, दुःख और आत्म-प्रकाशन जैसे सार्वभौमिक मानवीय मुद्दों को संबोधित करता है, बिना किसी विशेष धार्मिक परंपरा या सांस्कृतिक संदर्भ से जुड़ा हुए। परिणामस्वरूप, भारतीय मनोविज्ञान के सिद्धांतों का वैश्विक आकर्षण है, जिसमें योग और ध्यान जैसी प्रथाएँ मानसिक भलाई के लिए शक्तिशाली उपकरण के रूप में व्यापक स्वीकृति प्राप्त कर रही हैं।

भारतीय मनोविज्ञान का एक सबसे विशिष्ट पहलू यह है कि इसमें वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिपरक दोनों प्रकार के ज्ञान का एकीकरण किया गया है। पश्चिमी मनोविज्ञान में, अक्सर व्यवहार और मानसिक स्थितियों के वस्तुनिष्ठ, मापनीय पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जबकि व्यक्तिपरक अनुभवों को गौण या मापने में कठिन माना जाता है। भारतीय मनोविज्ञान, हालांकि, व्यक्तिपरक ज्ञान को समान महत्व देता है, जो गहरे आत्मनिरीक्षण, अंतर्दृष्टि और व्यक्तिगत अनुभव से प्राप्त होता है। "आंतरिक संसार" की यह समझ "बाहरी संसार" के ज्ञान के पूरक के रूप में कार्य करती है, और मानव व्यवहार और मानसिक स्वास्थ्य को समझने के लिए एक अधिक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

भारतीय मनोविज्ञान यह भी पहचानता है कि प्रत्येक व्यक्ति की एक अद्वितीय स्थिति और बहुपरस्तीय चेतना होती है। यह अवधारणा आत्म-जागरूकता और आत्म-विकास के लिए एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण की अनुमति देती है। ध्यान और आत्म-चिंतन जैसी प्रथाओं के माध्यम से, व्यक्ति अपनी आंतरिक दुनिया का अन्वेषण कर सकते हैं, अपने विचारों और भावनाओं में अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं और अधिक आत्म-जागरूकता विकसित कर सकते हैं। आत्म-अन्वेषण की यह प्रक्रिया मानसिक भलाई और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक मानी जाती है।

3.1 व्यावहारिक अनुप्रयोग: योग, ध्यान और इसके आगे

भारतीय मनोविज्ञान के व्यावहारिक अनुप्रयोग व्यापक हैं, जिनमें योग और ध्यान दो सबसे व्यापक रूप से पहचाने गए उपकरण हैं जो मानसिक चुनौतियों को संबोधित करने में मदद करते हैं। ये प्रथाएँ व्यक्तियों को अपनी आंतरिक सत्ताओं से जोड़ने, तनाव कम करने और मानसिक स्पष्टता और भावनात्मक संतुलन प्राप्त करने में मदद करती हैं। योग, जो मानसिकता, श्वास-प्रश्वास और शारीरिक मुद्राओं पर जोर देता है, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। ध्यान, दूसरी ओर, गहरे आत्म-चिंतन और जागरूकता की अनुमति देता है, जो व्यक्तियों को आंतरिक शांति की भावना विकसित करने और मानसिक तनाव को कम करने में मदद करता है।

भारतीय मनोविज्ञान आत्म-निरीक्षण और प्रयोग की भी महत्वपूर्णता को मान्यता देता है। विभिन्न विधियाँ सदियों से विकसित की गई हैं, जो व्यक्तियों को आत्म-खोज और मानसिक भलाई की यात्रा में सहायता करती हैं। ये विधियाँ प्रत्येक व्यक्ति की अद्वितीय आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलन योग्य होती हैं, जो मानसिक विकास और उपचार के लिए एक विस्तृत दृष्टिकोण की अनुमति देती हैं।

भारतीय मनोविज्ञान का दृष्टिकोण एक समग्र, एकीकृत दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो मन, शरीर और चेतना की आपसी संबंधिता को पहचानता है। आध्यात्मिक और मानसिक विकास पर ध्यान केंद्रित करके, यह खुशी, संतोष और व्यक्तिगत संतुष्टि प्राप्त करने के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करता है। पश्चिमी मॉडलों के विपरीत, जो अक्सर स्वास्थ्य के भौतिक पहलुओं को प्राथमिकता देते हैं, भारतीय मनोविज्ञान मानसिक भलाई के मुख्य तत्व के रूप में आंतरिक शांति और आत्म-जागरूकता के महत्व को महत्व देता है। इस प्रकार, यह उन व्यक्तियों के लिए एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत

भारतीय मनोविज्ञान यह भी पहचानता है कि प्रत्येक व्यक्ति की एक अद्वितीय स्थिति और बहुपरस्तीय चेतना होती है। यह अवधारणा आत्म-जागरूकता और आत्म-विकास के लिए एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण की अनुमति देती है। ध्यान और आत्म-चिंतन जैसी प्रथाओं के माध्यम से, व्यक्ति अपनी आंतरिक दुनिया का अन्वेषण कर सकते हैं, अपने विचारों और भावनाओं में अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं और अधिक आत्म-जागरूकता विकसित कर सकते हैं। आत्म-अन्वेषण की यह प्रक्रिया मानसिक भलाई और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक मानी जाती है।

3.1 व्यावहारिक अनुप्रयोग: योग, ध्यान और इसके आगे

भारतीय मनोविज्ञान के व्यावहारिक अनुप्रयोग व्यापक हैं, जिनमें योग और ध्यान दो सबसे व्यापक रूप से पहचाने गए उपकरण हैं जो मानसिक चुनौतियों को संबोधित करने में मदद करते हैं। ये प्रथाएँ व्यक्तियों को अपनी आंतरिक सत्ताओं से जोड़ने, तनाव कम करने और मानसिक स्पष्टता और भावनात्मक संतुलन प्राप्त करने में मदद करती हैं। योग, जो मानसिकता, श्वास-प्रश्वास और शारीरिक मुद्राओं पर जोर देता है, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। ध्यान, दूसरी ओर, गहरे आत्म-चिंतन और जागरूकता की अनुमति देता है, जो व्यक्तियों को आंतरिक शांति की भावना विकसित करने और मानसिक तनाव को कम करने में मदद करता है।

भारतीय मनोविज्ञान आत्म-निरीक्षण और प्रयोग की भी महत्वपूर्णता को मान्यता देता है। विभिन्न विधियाँ सदियों से विकसित की गई हैं, जो व्यक्तियों को आत्म-खोज और मानसिक भलाई की यात्रा में सहायता करती हैं। ये विधियाँ प्रत्येक व्यक्ति की अद्वितीय आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलन योग्य होती हैं, जो मानसिक विकास और उपचार के लिए एक विस्तृत दृष्टिकोण की अनुमति देती हैं।

भारतीय मनोविज्ञान का दृष्टिकोण एक समग्र, एकीकृत दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो मन, शरीर और चेतना की आपसी संबंधिता को पहचानता है। आध्यात्मिक और मानसिक विकास पर ध्यान केंद्रित करके, यह खुशी, संतोष और व्यक्तिगत संतुष्टि प्राप्त करने के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करता है। पश्चिमी मॉडलों के विपरीत, जो अक्सर स्वास्थ्य के भौतिक पहलुओं को प्राथमिकता देते हैं, भारतीय मनोविज्ञान मानसिक भलाई के मुख्य तत्व के रूप में आंतरिक शांति और आत्म-जागरूकता के महत्व को महत्व देता है। इस प्रकार, यह उन व्यक्तियों के लिए एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत

करता है जो तनाव कम करने, मानसिक स्वास्थ्य में सुधार करने और अंततः खुद और अपने चारों ओर की दुनिया की गहरी समझ प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं।

3.2 भारतीय मनोविज्ञान के बुनियादी सिद्धांत

भारतीय मनोविज्ञान प्राचीन भारत की दार्शनिक परंपराओं में गहरे रूप से निहित है, विशेष रूप से उपनिषदों और वेदांत जैसे ग्रंथों में। भारतीय मनोविज्ञान के मुख्य सिद्धांत मानव प्राणी, उनके स्वाभाविक स्वभाव और जीवन में उन्हें आने वाली चुनौतियों को गहरे रूप से समझने की पेशकश करते हैं। भारतीय मनोविज्ञान के मुख्य पहलू और बुनियादी सिद्धांत इस प्रकार हैं–

मानव प्राणी की संरचना: भारतीय मनोविज्ञान में, मानव प्राणी को तीन महत्वपूर्ण तत्वों का संयोजन माना जाता है: सत, चित और आनंद।

- सत का अर्थ है अस्तित्व या व्यक्ति का भौतिक/सामग्री पहलू। यह शरीर और ठोस तत्वों को शामिल करता है जो एक व्यक्ति का निर्माण करते हैं।
- चित का अर्थ है चेतना, व्यक्ति की मानसिक और आध्यात्मिक सार जो जीवन के अनुभवों के लिए आधार और संदर्भ का कार्य करती है।
- आनंद, जिसका अर्थ है सुख, व्यक्ति की असली अवस्था को दर्शाता है जब वह अहंकार और परिवर्तित विचारों के बंधनों से मुक्त होता है।

यह मानव स्वभाव की समझ पश्चिमी मनोविज्ञान से काफी अलग है, जो अक्सर भौतिक और व्यवहारिक पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करता है, आध्यात्मिक या अस्तित्व संबंधी तत्वों की अनदेखी करता है।

1. मानव प्राणी की संरचना: सत, चित और आनंद

भारतीय मनोविज्ञान में, मनुष्य को तीन आवश्यक तत्वों: सत्, चित् और आनंद का मिश्रण माना जाता है।

- सत् व्यक्ति के अस्तित्व या भौतिक पहलू को दर्शाता है। इसमें वे शारीरिक और मूर्त तत्व शामिल हैं जिनसे व्यक्ति बनता है।
- चित् चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जो व्यक्ति का मानसिक और आध्यात्मिक सार है और जीवन के अनुभवों के लिए आधार और संदर्भ का काम करता है।

- आनंद, जिसका अनुवाद परमानंद होता है, अस्तित्व की परम, शुद्ध अवस्था का प्रतीक है। यह अहंकार और बद्ध विचारों की बाधाओं से मुक्त होने पर व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है।

मानव स्वभाव की यह समझ पश्चिमी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बिल्कुल अलग है, जो भौतिक और व्यवहारिक पहलुओं पर ज़्यादा ध्यान केंद्रित करता है और अक्सर आध्यात्मिक या अस्तित्वगत तत्वों को नज़रअंदाज़ कर देता है। मानव स्वभाव में, मनुष्य को इन तीन तत्वों के एक गतिशील और परस्पर जुड़े हुए मिश्रण के रूप में देखा जाता है, जो मनोवैज्ञानिक मुद्दों के समाधान और समाधान का मार्गदर्शन करता है।

2. आधिकारिक लक्ष्य: एकता और मुक्ति

भारतीय मनोविज्ञान का मूल सिद्धांत आत्मा (आत्मन) के विचार पर आधारित है, जो मानवता की एकता का संकेत है। इसका उद्देश्य व्यक्तियों को अज्ञानता से मुक्त करना और उनके स्वाभाविक दिव्यत्व को महसूस करने में मदद करना है।

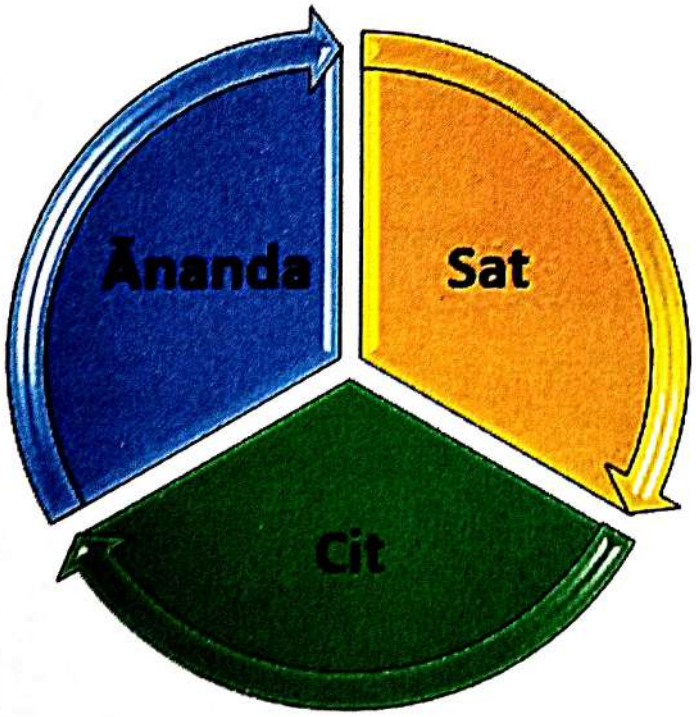

मानव प्राणी की संरचना: सत, चित और आनंद

3. मानव स्वभाव और सुख की खोज

भारतीय मनोविज्ञान इस आधार से शुरू होता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से दिव्य है, अनंत संभावनाओं वाला है, और सच की खोज करने वाला है।



एकता और मुक्ति

4. अस्तित्वगत प्रतिबंध और सच्ची प्रकृति तथा जीवन के अनुभव के बीच संघर्ष

मानव अनुभव अक्सर एक व्यक्ति की सच्ची, आनंदमयी प्रकृति और जीवन की कठोर वास्तविकताओं के बीच संघर्ष से चिह्नित होता है। खुशी की अस्थायी प्रकृति और दुःख की अनिवार्यता व्यक्ति की सच्ची पहचान की गलत समझ से उत्पन्न होती हैं। लोग अपने अहंकार, शरीर और विचारों के साथ पहचान करते हैं, बजाय इसके कि वे अपनी गहरी चेतना को पहचानें। यह गलत पहचान भावनात्मक उथल-पुथल, अस्थिर चीजों से जुड़ाव और अधूरापन की भावना का कारण बनती है। लोगों को जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे चिंता, तनाव और असंतोष, वे सच्ची पहचान और बाहरी भौतिक दुनिया के बीच इस असंयोग से उत्पन्न होती हैं। भारतीय मनोविज्ञान इस संघर्ष को हल करने का प्रयास करता है, व्यक्तियों को आत्मज्ञान की ओर मार्गदर्शन करके, जो उनके अनुभवों को उनके उच्च आत्म के साथ संरेखित करने में मदद करता है, जिससे मानसिक संकट कम होता है।

5. जीवन के प्रतिबंधों को संबोधित करने के तंत्र

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार, जीवन में अस्तित्वगत प्रतिबंधों को संबोधित करने का मुख्य समाधान आत्मज्ञान के माध्यम से है। इसमें गहरी आत्मनिरीक्षण, ध्यान और आत्म-पर्यवेक्षण की प्रक्रिया शामिल है, जहाँ व्यक्ति अपने मन पर नियंत्रण प्राप्त करने और अपनी झूठी पहचान द्वारा लगाए गए सीमाओं से उबरने की प्रक्रिया सीखता है।

- **आत्म-पर्यवेक्षण**: भारतीय मनोविज्ञान में एक महत्वपूर्ण तकनीक है, जो व्यक्तियों को उनके विचारों, भावनाओं और व्यवहार के पैटर्न के प्रति जागरूक होने के लिए प्रेरित करती है।

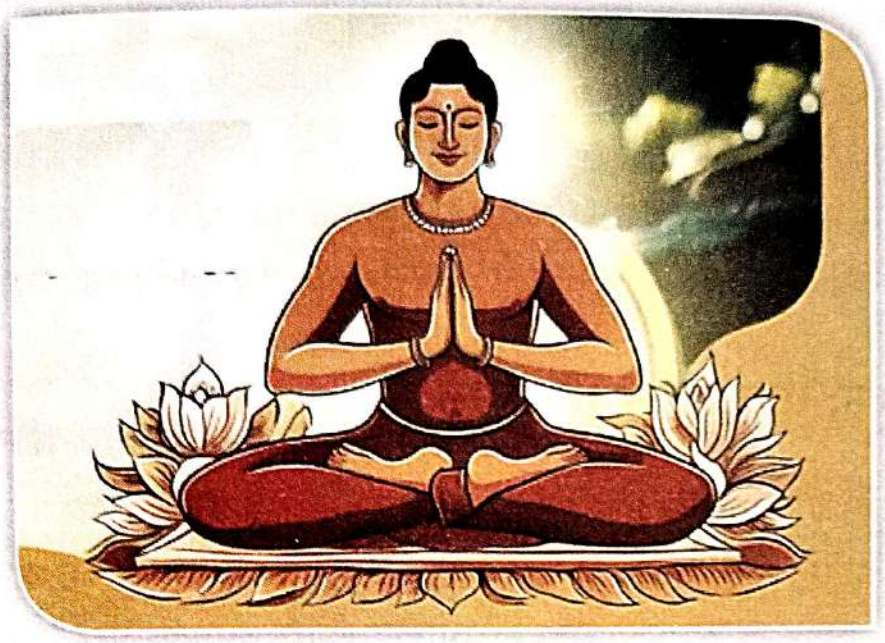

भारतीय मनोविज्ञान में आत्म-पर्यवेक्षण

- **योग और ध्यान** केंद्रीय अभ्यास हैं जो व्यक्तियों के मन को शांत करने, ध्यान भटकावों पर नियंत्रण करने और अधिक आत्म-जागरूकता विकसित करने में मदद करते हैं। ये तकनीकें व्यक्तियों को उच्चतर चेतना की अवस्थाओं तक पहुँचने की अनुमति देती हैं, जिससे वे नकारात्मक भावनाओं और मानसिक उथल-पुथल से दूर हो सकते हैं।

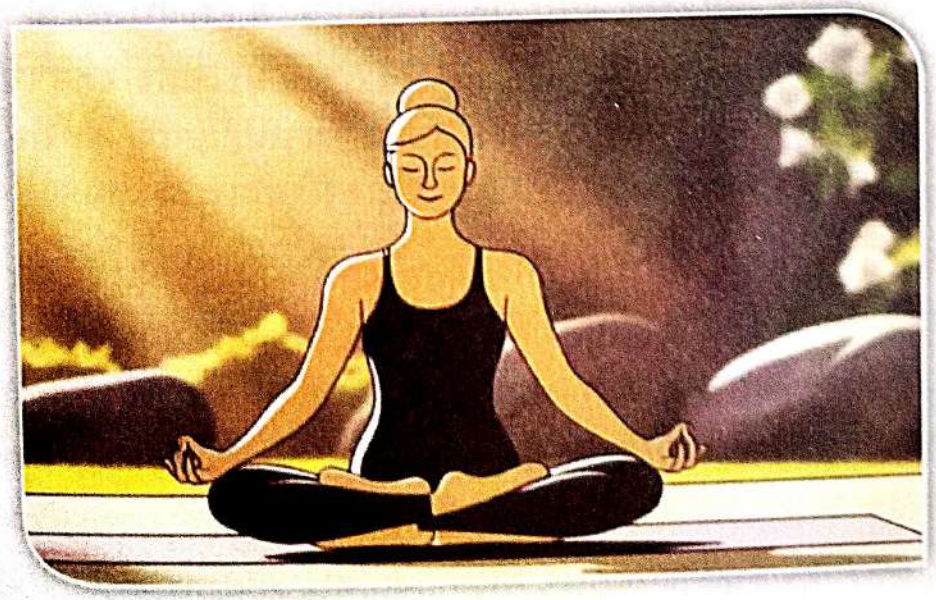

योग और ध्यान का अभ्यास

- इन अभ्यासों में संलग्न होकर, व्यक्ति धीरे-धीरे अपने मन में संघर्ष को कम कर सकते हैं, अधिक शांति, स्थिरता और स्पष्टता का अनुभव कर सकते हैं। यह अंततः मानसिक कल्याण और आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाता है।
- ऐसी प्रथाओं के माध्यम से, व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्य की संघर्ष-मुक्त अवस्था की ओर बढ़ते हैं, जो न केवल उनके अपने जीवन के लिए लाभकारी है बल्कि उन्हें समाज के लिए सकारात्मक योगदान देने में भी सक्षम बनाता है। अंतिम लक्ष्य यह है कि वे बिना स्वार्थ की सेवा की भावना को बढ़ावा दें, जहाँ व्यक्ति करुणा के साथ कार्य करते हैं और दूसरों के भले के लिए परिवर्तनकारी कार्य करते हैं।

4. तीन गुण: सत्त्व, रजस और तमस

सत्त्व: यह गुण ज्ञान, शुद्धता और खुशी से संबंधित है। यह स्पष्टता, शांतता और संतुलन के गुणों का प्रतिनिधित्व करता है। सत्त्व ज्ञान और शांति का स्रोत है, जो मानसिक शांति की स्थिति की ओर ले जाता है। सत्त्व से प्रभावित व्यक्ति आमतौर पर विचारशील, शांत और आत्मनिरीक्षण करने वाले होते हैं। वे आध्यात्मिक और बौद्धिक प्रवृत्तियों की ओर अधिक झुकते हैं और गहरे संतोष और आनंद का अनुभव करते हैं। सत्त्व आत्मज्ञान, सत्य और सामंजस्य पर ध्यान केंद्रित करने वाली मानसिकता को बढ़ावा देता है।

रजस: यह गुण उत्तेजना, इच्छा और क्रिया से संबंधित है। यह क्रिया, महत्वाकांक्षा और जुड़ाव की प्रेरक शक्ति है। रजस अक्सर एक अशांत मन से जुड़ा होता है, जो लगातार सुख, शक्ति या सफलता की खोज करता है। रजस से प्रभावित व्यक्ति आमतौर पर क्रियाशील, ऊर्जावान और लक्ष्य-प्रेरित होते हैं। हालांकि, बाहरी पुरस्कार या पहचान की इच्छा तनाव, असंतोष और अशांति का कारण बन सकती है। जबकि रजस रचनात्मकता और गति को बढ़ावा देता है, यह मानसिक उथल-पुथल भी उत्पन्न कर सकता है यदि इसे नियंत्रित न किया जाए।

तमस: तमस गुण अज्ञानता, निष्क्रियता और भ्रम से संबंधित है। यह आलस्य, सुस्ती और परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध जैसे गुणों का प्रतिनिधित्व करता है। तमस वह शक्ति है जो भ्रांति, उदासीनता और अस्पष्टता की ओर ले जाती है। तमस से प्रभावित व्यक्ति अक्सर नकारात्मक विचार पैटर्न में फंसे होते हैं, जो विनाशकारी आदतों से मुक्त नहीं हो पाते। तमस मानसिक ठहराव, अवसाद और प्रेरणा की कमी का कारण बन सकता है। हालांकि, संतुलित होने पर, तमस गहरी नींद और विचारशीलता की स्थिति की ओर भी ले जा सकता है।



तीन गुण: सत्त्व, रजस और तमस

4.1 त्रिगुण प्रणाली और मानव व्यवहार

त्रिगुण प्रणाली यह समझने में मदद करती है कि क्यों कुछ व्यक्तियाँ स्वाभाविक रूप से अधिक आक्रामक या भावुक होते हैं, जबकि अन्य शांत और बौद्धिक होते हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जो प्रेरित, ऊर्जावान और नेतृत्व की भूमिकाएँ चाहता है, उसका रजस गुण प्रबल हो सकता है, जबकि एक व्यक्ति जो चिंतनशील, शांत और ज्ञान की तलाश में होता है, वह सत्त्व के साथ अधिक मेल खाता है। दूसरी ओर, जो व्यक्ति क्रिया से बचते हैं और प्रेरणा की कमी का सामना करते हैं, वे तमस से प्रभावित हो सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का इन तीन गुणों का अद्वितीय संयोजन उनके व्यक्तित्व, प्रवृत्तियों और जीवन अनुभवों को आकार देता है। त्रिगुण प्रणाली न केवल इन भिन्नताओं को समझने का एक तरीका प्रदान करती है बल्कि व्यक्तिगत विकास और व्यवहार परिवर्तन के लिए एक मार्ग भी प्रस्तुत करती है। जब व्यक्ति सत्त्व, रजस और तमस के गुणों को पहचानते हैं, तो वे एक अधिक संतुलित जीवन की ओर काम कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, व्यक्ति सत्त्व के ज्ञान और शांति गुणों को बढ़ा सकते हैं, रजस के इच्छा और जुड़ाव की प्रवृत्तियों को संतुलित कर सकते हैं, और तमस के आलस्य और अज्ञानता की प्रवृत्तियों को कम कर सकते हैं।

4.2 शरीर-मन-बुद्धि-चेतना परिसर

भारतीय मनोविज्ञान में, मानव अस्तित्व को केवल शारीरिक शरीर से परे समझना होता है। इसमें शरीर-मन-बुद्धि-चेतना परिसर शामिल है, जिसमें भौतिक शरीर और सूक्ष्म शरीर दोनों शामिल हैं।

भौतिक शरीर: यह व्यक्ति की भौतिक अभिव्यक्ति को संदर्भित करता है, जो पांच भूतों (तत्त्वों) से बना होता है। यह मानव का ठोस, दृश्य भाग है जिसमें अंग और शारीरिक संरचनाएँ शामिल हैं।

सूक्ष्म शरीर: सूक्ष्म शरीर व्यक्ति के मानसिक और मानसिक पहलुओं को शामिल करता है। इसमें पांच प्राण (जीवित बल), ज्ञान और क्रिया के अंग और आंतरिक उपकरण जैसे बुद्धि, स्मृति, मन और अहंकार शामिल हैं। यह सूक्ष्म शरीर के माध्यम से ही व्यक्ति विचारों, भावनाओं और मानसिक अवस्थाओं का अनुभव करता है। यह सूक्ष्म शरीर ही प्रपञ्च की परिप्रेक्ष्य, निर्णय और क्रियाओं का नियंत्रण करता है। शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच का अंतर मानव अनुभव को समझने में महत्वपूर्ण है। भौतिक शरीर में आंखें, कान और अंग होते हैं, जो बाहरी दुनिया के साथ संपर्क के लिए आवश्यक हैं, लेकिन ये देखने या क्रियाएँ करने के असली स्रोत नहीं हैं। इसके बजाय, ज्ञान और क्रिया के असली अंग सूक्ष्म शरीर में हैं, जो अधिक सूक्ष्म और भौतिक शरीर के माध्यम से प्राप्त संवेदनाओं को संसाधित करने के लिए जिम्मेदार है। उदाहरण के लिए, एक अंधा व्यक्ति भले ही भौतिक दृष्टि रखता हो, लेकिन दृश्य अनुभव की कमी महसूस करता है। इसी तरह, एक बहरा या मूक व्यक्ति के पास कार्यरत कान और स्वरयंत्र होते हुए भी, उनकी सुनने या बोलने की क्षमता सूक्ष्म शरीर के आंतरिक अंगों द्वारा संचालित होती है।

सच्चा आत्म – चेतना: एक व्यक्ति की अंतिम वास्तविकता भौतिक या मानसिक परतें नहीं हैं, बल्कि चेतना या आत्मा है, जो व्यक्ति का शाश्वत, अपरिवर्तनीय सार है। भारतीय मनोविज्ञान में, व्यक्ति को शरीर और मन के माध्यम से अनुभव करने वाली चेतना के रूप में माना जाता है। यह बाहरी और आंतरिक अस्तित्व की परतों के बीच का अंतर सच्चे मानव अनुभव को और आत्मज्ञान की दिशा में मार्गदर्शन करने में मदद करता है।

4.3 त्रिगुण प्रणाली का शरीर-मन-बुद्धि-चेतना परिसर के साथ एकीकरण

त्रिगुण प्रणाली मानव व्यवहार को समझने के लिए एक गहरे ढांचे की पेशकश करती है, जो इस विश्वास पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति एक अद्वितीय संरचना है, जो सत्त्व, रजस और तमस के मिश्रण से आकारित होती है। इन गुणों की पहचान कर और संतुलित करके, व्यक्ति जीवन की चुनौतियों को पार कर सकते हैं और आत्म-ज्ञान और आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ सकते हैं।

शरीर-मन-बुद्धि-चेतना परिसर मानव अनुभव की गहरी समझ प्रदान करता है, यह समझाते हुए कि कैसे भौतिक शरीर और सूक्ष्म शरीर मिलकर हमारे विचारों, कार्यों और

धारणाओं का निर्माण करते हैं। अंततः, वास्तविक आत्म वह चेतना है जो इन परतों से परे है, और इसे समझने से व्यक्ति को शांति, ज्ञान और संतुष्टि की ओर एक बेहतर जीवन जीने में मदद मिलती है।

4.4 चेतना: एक व्यक्ति की वास्तविक प्रकृति

हजारों वर्षों से, मानवता द्वारा पूछा गया एक सबसे गहरा प्रश्न है, "मैं कौन हूँ?" भारतीय दर्शन के संदर्भ में, इस प्रश्न की जांच अक्सर इस समझ के साथ की गई है कि व्यक्ति केवल अपने भौतिक शरीर या मन से कहीं अधिक है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुसार, एक व्यक्ति का सार चेतना है, जो आत्म की वास्तविक और शाश्वत प्रकृति है। यह समझ यह प्रकट करती है कि व्यक्ति केवल एक शरीर या मन नहीं है, बल्कि एक चेतना का अस्तित्व है, जो अस्थायी रूप से भौतिक रूप में निवास करती है।



एक व्यक्ति की वास्तविक प्रकृति: चेतना

चेतना इस दृष्टिकोण में एक अलग या बाहरी तत्व नहीं है, बल्कि अस्तित्व का मूल है, वह स्रोत है जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है। यह स्थूल शरीर (भौतिक शरीर) और सूक्ष्म शरीर (मानसिक और बौद्धिक क्षेत्र) के माध्यम से प्रकट होती है। भौतिक दुनिया में हम सीधे चेतना को महसूस नहीं कर सकते, क्योंकि यह निराकार है और इन्द्रिय अनुभव से परे है। इसके बजाय, हम इसके प्रभावों के माध्यम से इसकी उपस्थिति का अनुमान लगाते हैं—जैसे विद्युत को केवल विद्युत उपकरण के कार्य से समझा जा सकता है। जब चेतना शरीर और मन से प्रवाहित होती है, तो यह जीवन, अनुभूति और क्रिया को सक्षम बनाती है। इसके बिना, स्थूल और सूक्ष्म शरीर निष्क्रिय रहते हैं।

यह चेतना की समझ कोई अमूर्त सिद्धांत नहीं है, बल्कि इसके लिए आत्म-परीक्षण और गहरी ध्यान की आवश्यकता होती है। यह आत्म-निरीक्षण और व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से है कि हम चेतना की बहुपरकारी प्रकृति को पहचानते हैं। इस समझ को स्पष्ट करने के लिए, प्राचीन ऋषियों, विशेष रूप से उपनिषदों से, ने विभिन्न ढांचे तैयार किए, जिनके माध्यम से चेतना के विभिन्न स्तरों को व्यक्त किया जा सकता था।

5. पंचकोष: पाँच-परतों का अस्तित्व

चेतना को समझने के लिए एक गहरा ढांचा तैत्तिरीय उपनिषद से आता है, जिसमें मनुष्य को पाँच परतों या कोशों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। "कोष" शब्द का अर्थ "आवरण" या "पट" होता है, जो यह दर्शाता है कि प्रत्येक परत आत्म के वास्तविक स्वरूप, जो चेतना है, के ऊपर एक आवरण है। ये परतें हैं:

अन्नमय कोश (भौतिक शरीर): यह सबसे बाहरी परत है, जो भौतिक तत्वों से बनी स्थूल शरीर को प्रस्तुत करती है। अधिकांश लोग इस परत के साथ अपनी पहचान बनाते हैं, मानते हैं कि उनका भौतिक रूप ही उनका वास्तविक स्वरूप है। हालांकि, यह पहचान अस्थायी और भ्रांतिपूर्ण है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति का कोई अंग कट जाए, तो भी उनका आत्म-बोध उसमें कमी महसूस नहीं करता, जो यह प्रमाणित करता है कि हमारी वास्तविक पहचान भौतिक शरीर से जुड़ी नहीं है।

प्राणमय कोश (जीवंत ऊर्जा की परत): भौतिक शरीर के नीचे प्राण या जीवन शक्ति (प्राण), जो जीवन और ऊर्जा को बनाए रखती है, की परत होती है। यह परत शारीरिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करती है, जैसे श्वास, परिसंचरण, पाचन और अन्य जीवन क्रियाएँ। यह परत भौतिक शरीर से अधिक सूक्ष्म है, फिर भी यह भौतिक संसार से जुड़ी रहती है और इसे ऊर्जा और जीवन की अनुभूति के माध्यम से अनुभव किया जाता है।

मनोमय कोश (मानसिक परत): यह परत भौतिक और प्राण ऊर्जा परतों से अधिक सूक्ष्म है और इसमें मन और उससे जुड़ी भावनाएँ, विचार और इच्छाएँ शामिल होती हैं। यहीं हम भावनाएँ, मानसिक अवस्थाएँ और मूड्स का अनुभव करते हैं। मानसिक परत हमारी धारणाओं, भावनाओं और व्यक्तिगत अनुभवों के लिए जिम्मेदार है, जो इसे व्यक्तिगत पहचान का एक आवश्यक हिस्सा बनाता है। हालांकि, यह आत्म के गहरे स्तरों के ऊपर एक आवरण है।

विज्ञानमय कोश (बौद्धिक परत): यह परत आत्म के बौद्धिक या संज्ञानात्मक पहलू का प्रतिनिधित्व करती है। यह तर्क, समझ और निर्णय लेने को नियंत्रित करती है। यह वह पहलू है जो विश्लेषण और चिंतन कर सकता है। जबकि मानसिक परत भावनात्मक और प्रतिक्रियाशील होती है, बौद्धिक परत तर्कसंगत और विवेकपूर्ण होती है। यह परत वास्तविकता की प्रकृति पर गहरी ध्यान और जागरूकता की अनुमति देती है।

आनंदमय कोश (आनंद की परत): यह सबसे आंतरिक और सूक्ष्म परत है, जो आनंद या शुद्ध चेतना का अनुभव प्रस्तुत करती है। यह परत व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव के सबसे निकट होती है, जो शुद्ध, अपरिवर्तनीय चेतना है, जो भौतिक और मानसिक अवस्थाओं से परे है। यह उस शांति, आनंद और संतोष का अनुभव है जो मन और शरीर के उतार-चढ़ाव से परे है। गहरी ध्यान या आध्यात्मिक जागृति के क्षणों में, व्यक्ति इस परत का अनुभव कर सकता है और ब्रह्मांड के साथ गहरे एकता का एहसास कर सकता है।



पंचकोष: पाँच-परतों का अस्तित्व

5.1 परतें और वास्तविक आत्म

कोशों की अवधारणा यह दर्शाती है कि वास्तविक आत्म इन परतों में से किसी एक परत से बंधा नहीं है, बल्कि इनसे परे अस्तित्वमान है। ये परतें, हालांकि मानव अनुभव में महत्वपूर्ण हैं, अस्थायी और परिवर्तनीय हैं। जैसे तैत्तिरीय उपनिषद में कहा गया है, जैसे

व्यक्ति पुराने कपड़े त्यागकर नए कपड़े पहनता है, वैसे ही शरीर और मन भी त्यागे जा सकते हैं। एक व्यक्ति का मूल वास्तविक आत्म अपरिवर्तित, शाश्वत और सदैव उपस्थित रहता है, चाहे जीवन में शारीरिक और मानसिक परिवर्तन हों।

पाँच-परतों का मॉडल यह भी सिखाता है कि शरीर या मन के साथ हमारी पहचान हमें गलत पहचान दिलाती है। जैसे व्यक्ति किसी वस्तु के बाहरी आवरण को वस्तु के रूप में मान सकता है, वैसे ही हम अक्सर अपने शरीर या मन को अपनी वास्तविक पहचान मान लेते हैं। यह गलत पहचान ही दुख और अज्ञान का मूल है। आत्म-ज्ञान का मार्ग इन परतों को पार कर वास्तविक स्वरूप की पहचान करना है, जो स्वयं चेतना है—जो शरीर, मन और बुद्धि से परे है।

5.2 चेतना और आत्म-ज्ञान

पाँच कोशों का ढांचा आत्म की प्रकृति को समझने के लिए एक गहरे और व्यवस्थित तरीके से मार्गदर्शन करता है। जब हम भौतिक शरीर, जीवन शक्ति, मन, बुद्धि और आनंद की परतों को पहचानते हैं, तो हम अपने अस्तित्व के अस्थायी पहलुओं और चेतना की शाश्वत सत्य को अलग कर सकते हैं। भारतीय मानसिकता का अंतिम उद्देश्य व्यक्तियों को इन परतों द्वारा निर्मित भ्रांतियों से मुक्त करना है, जिससे वे अपनी वास्तविक प्रकृति, जो चेतना है, को पहचान सकें।

आत्म-परीक्षण, आत्म-निरीक्षण और ध्यान इस यात्रा में आवश्यक उपकरण हैं। ध्यान और माइंडफुलनेस जैसी प्रथाओं के माध्यम से व्यक्ति आत्म की परतों को हटा सकते हैं और उस शांति, आनंद और ज्ञान का अनुभव कर सकते हैं जो ब्रह्मांड के साथ अपनी मौलिक एकता को पहचानने से उत्पन्न होती है। यही आत्म-ज्ञान का मार्ग है—यह समझना कि हम न तो अपने शरीर, मन या भावनाएँ हैं, बल्कि शुद्ध चेतना हैं, जो सदैव उपस्थित और अपरिवर्तनीय है।

6. अस्तित्व की चार अवस्थाएँ

भारतीय मानसिकता और चेतना की बहुआयामी प्रकृति को समझने के लिए एक प्रमुख अवधारणा अस्तित्व की चार अवस्थाओं की है, जो एक व्यक्ति अनुभव करता है। ये अवस्थाएँ उपनिषदों में गहरे रूप से विश्लेषित की गई हैं, और मांडूक्य उपनिषद इन अवस्थाओं का स्पष्ट और गहरा वर्णन प्रदान करता है। ये अवस्थाएँ हैं:

- जागृत-आवस्था (जागने की अवस्था)
- स्वप्न-आवस्था (स्वप्न की अवस्था)
- सुषुप्ति-आवस्था (गहरी नींद)
- तुरीय-आवस्था (समाधि या शुद्ध चेतना की अवस्था)

ये अवस्थाएँ चेतना के विभिन्न संदर्भों में कैसे व्यवहार करती है, इसे समझने के लिए एक ढांचा प्रदान करती हैं, जो मानव अनुभव पर प्रकाश डालती हैं। इसके विपरीत, पश्चिमी मानसिक ढांचे आमतौर पर केवल दो अवस्थाओं (जागृत और सोने) पर ध्यान केंद्रित करते हैं और चेतना की गहरी, सूक्ष्म अवस्थाओं का न्यूनतम विश्लेषण करते हैं, जैसे चौथी अवस्था (तुरीय)।

6.1 जागृत-आवस्था (जागने की अवस्था)

इस अवस्था में, व्यक्ति का स्थूल शरीर (भौतिक रूप) पूरी तरह से बाहरी दुनिया से संपर्क करता है, और सूक्ष्म शरीर (मन, भावनाएँ, बुद्धि) इसके साथ मिलकर कार्य करता है। इस अवस्था में चेतना का अनुभव द्वैतपूर्ण होता है, जो सुख और दुख, सफलता और विफलता, और अन्य विरोधों के बीच झूलता है। चेतना को इन्द्रिय अनुभव और बाहरी दुनिया के साथ जुड़कर अनुभव किया जाता है, जो हमारे अनुभवों को आकार देती है। हम अपने परिवेश से परिचित होते हैं और हमारे अहंकार, इच्छाएँ और बाहरी उत्तेजनाएँ हमारे क्रियाओं को प्रेरित करती हैं।



भारतीय मानसिकता के अस्तित्व की चार अवस्थाएँ

6.2 स्वप्न-आवस्था (स्वप्न की अवस्था)

जब चेतना स्वप्न की अवस्था में बदलती है, तो स्थूल शरीर निष्क्रिय हो जाता है, लेकिन मन और अन्य आंतरिक अंग (अंतःकरण) सक्रिय रहते हैं। इस अवस्था में, अहंकार अपनी एक नई दुनिया "बनाता" है, जिसमें तर्क और जागृत संसार के नियमों का उल्लंघन हो सकता है। यह दुनिया तरल होती है, और इसके नियम अक्सर टूट जाते हैं—घटनाएँ असंगत, स्वप्न जैसी स्थिति में घट सकती हैं, जिसमें पात्र और सेटिंग एक-दूसरे से संबंधित नहीं होते।

6.3 सुषुप्ति-आवस्था (गहरी नींद)

तीसरी अवस्था, गहरी नींद, बाहरी और आंतरिक गतिविधियों का पूर्ण समापन है। इस अवस्था में, दोनों स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर निष्क्रिय होते हैं—इन्द्रियाँ निष्क्रिय होती हैं, और बाहरी दुनिया का कोई ज्ञान नहीं होता। व्यक्ति शांति और विश्राम का अनुभव करता है, बिना इसे सचेत रूप से जाने। यह अवस्था सभी जीवों द्वारा अनुभव की जाती है, न केवल मनुष्यों द्वारा।

6.4 तुरीयावस्था (समाधि या शुद्ध चेतना)

चौथी अवस्था, तुरीया, शुद्ध चेतना की अवस्था है, जिसे अक्सर अस्तित्व की सर्वोत्तम अवस्था के रूप में वर्णित किया जाता है। यह पारंपरिक अर्थों में चेतना की अवस्था नहीं है, बल्कि ब्रह्मांड और वास्तविक आत्मा के साथ पूर्ण एकता की अवस्था है। यह अवस्था जागृत, स्वप्न और गहरी नींद की अवस्थाओं की सीमाओं से परे, पारलौकिक है। यह समाधि की अवस्था है, एक गहरी, ध्यानमग्न अवस्था जिसमें व्यक्ति दिव्य या शुद्ध चेतना के साथ गहरे संबंध का अनुभव करता है, और आत्मा और विश्व के बीच सभी भेद मिट जाते हैं। तुरीया में, न तो अहंकार है, न मानसिक गतिविधि है, और न कोई द्वैत है। यह शुद्ध, अपरिभाषित जागरूकता की अवस्था है, जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व के साथ अपनी मूल एकता का अनुभव करता है। इस अवस्था को शब्दों में ठीक से व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि यह मन के वैचारिक ढांचे से परे है। जो लोग समाधि का अनुभव करते हैं, वे आनंद, शांति और अपनी वास्तविक प्रकृति की अनुभूति की रिपोर्ट करते हैं।

7. आत्म-ज्ञान के मार्ग के रूप में चार अवस्थाएँ

ये चार चेतना की अवस्थाएँ—जागरण, स्वप्न, गहरी नींद और शुद्ध चेतना (तुरीया)—भारतीय मानसिकता में आत्मा के विकसित होने की प्रकृति को समझने के लिए एक गहरे ढांचे के रूप में कार्य करती हैं। ये बताती हैं कि चेतना विभिन्न अनुभवों की परतों से कैसे गुजरती है, बाहरी संसार के साथ जुड़ने से (जागरण), विचारों और स्वप्नों की आंतरिक दुनिया तक, गहरी नींद की विश्राम अवस्था तक, और अंततः शुद्ध चेतना की अनुभूति तक।

इन अवस्थाओं में से प्रत्येक चेतना और आत्मा की प्रकृति पर मूल्यवान अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करती है:

- जागरण संसार के द्वैत को प्रकट करता है, जहाँ सुख और दुःख हमारे अनुभवों पर हावी रहते हैं।
- स्वप्न मन की रचनात्मकता, कल्पना और मानसिक पैटर्न का विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करते हैं।
- गहरी नींद वास्तविक आत्मा की सुख और शांति की झलक प्रदान करती है, जो बाहरी प्रभाव से मुक्त होती है।
- तुरीया आत्म-ज्ञान की सर्वोत्तम अवस्था को दर्शाता है, जहाँ व्यक्ति ब्रह्मांड के साथ अपनी एकता और चेतना की वास्तविक प्रकृति को पहचानता है।

इस प्रकार, भारतीय मानसिकता वास्तविकता के सीमित दृष्टिकोण को पार करने के महत्व पर जोर देती है, जो जागरण और स्वप्न की अवस्थाओं द्वारा आकारित होता है, और व्यक्तियों को तुरीया, शुद्ध चेतना की अवस्था में उनके वास्तविक स्वरूप की अनुभूति की ओर मार्गदर्शन करती है।

8. चेतना अध्ययन: मुद्दे

भारतीय मानसिकता परंपरा में, चेतना की खोज का गहरा संबंध मन, बुद्धि और शरीर के अध्ययन से है, जिसे अक्सर शरीर-मन-बुद्धि जटिल या अंतःकरणों के रूप में जाना जाता है। ये आंतरिक उपकरण हैं जो व्यक्ति की चेतना और उनके भौतिक शरीर के बीच कनेक्शन की मध्यस्थता करते हैं। सारतः, चेतना मन और बुद्धि के साथ इंटरैक्ट करती है,

जिससे जागरूकता और ज्ञान संभव होता है। हालांकि, मन और चेतना के बीच एक गहरा अंतर है, जो आंतरिक अस्तित्व की अवस्थाओं के अध्ययन में केंद्रीय है।

8.1 चेतना और मन की प्रकृति

जबकि मन को सूक्ष्म रूप से पदार्थ माना जाता है, चेतना अमूर्त (अविकृत) होती है। यह अंतर इस बात को समझने में महत्वपूर्ण है कि क्यों पारंपरिक बाहरी अवलोकन और अध्ययन के तरीके, जैसे कि संज्ञान (प्रत्यक्ष), अनुमान (अनुमान), और उपमा (उपमा), चेतना की आंतरिक दुनिया के अध्ययन के लिए अपर्याप्त हैं। ये बाहरी तरीके भौतिक, अनुभवजन्य दुनिया को समझने के लिए प्रभावी होते हैं, लेकिन चेतना के अध्ययन के लिए जो अधिक सूक्ष्म और अमूर्त है, ये पर्याप्त नहीं होते। भारतीय मनोविज्ञान परंपरा में, प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य इन आंतरिक अवस्थाओं का अन्वेषण करना और अंततः अपनी वास्तविक चेतना का अनुभव करना है। इसके लिए चेतना का अध्ययन पारंपरिक वैज्ञानिक तरीकों से अलग दृष्टिकोण की आवश्यकता करता है। आत्म-खोज और प्रयोग की प्रक्रिया में वस्तुओं (विषय) से विषय (विषयी) की ओर, बाहरी घटनाओं से आंतरिक, व्यक्तिगत अनुभव की ओर ध्यान केंद्रित करना होता है।

8.2 आंतरिक अन्वेषण के तरीके

चेतना की प्रकृति को देखते हुए, इसके अध्ययन के तरीके गहरे, व्यक्तिगत अनुभव और आत्म-निरीक्षण पर आधारित होते हैं। यह अन्वेषण मुख्य रूप से व्यक्तिगत और अनुभवजन्य होता है, न कि बाहरी ज्ञान उपकरणों पर निर्भर। चेतना का अध्ययन करने के लिए, ध्यान और आंतरिक अभ्यासों पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है, जो व्यक्ति को उनके आंतरिक अनुभव को समझने और अनुभव करने का अवसर प्रदान करते हैं। ये तरीके निम्नलिखित हैं:

- **श्रवण** (ज्ञानी या प्रबुद्ध व्यक्तियों की शिक्षाओं को ध्यानपूर्वक सुनना, संवेदी समझ प्राप्त करना)
- **मनन** (ज्ञान को आंतरिक रूप से आत्मसात करना और गहरे रूप से चिंतन करना, बौद्धिक समझ)
- **निदिध्यासन** (ज्ञान को ध्यानमग्न या इन्विजिटिव रूप से आत्मसात करना, अनुभवजन्य समझ)

इस परंपरा में, शब्द (सब्द) को आंतरिक दुनिया के बारे में सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण माना जाता है। उद्देश्य बौद्धिक समझ से परे जाकर प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान की ओर बढ़ना है।

8.3 देखने वाले और देखे जाने वाले के बीच संबंध

चेतना की आंतरिक प्रकृति के अध्ययन में, 'देखने वाले' और 'देखे जाने वाले' के बीच एक महत्वपूर्ण भेद किया जाता है। पारंपरिक अध्ययन में ये दोनों अलग-अलग होते हैं—देखने वाला और देखा जाने वाला। हालांकि, चेतना के अन्वेषण में, देखने वाला (जो व्यक्ति देख रहा है) और देखे जाने वाला (जो देखा जा रहा है) एकीकृत हो जाते हैं। अध्ययन का विषय कोई बाहरी वस्तु नहीं है, बल्कि वास्तविक आत्म है—हम कौन हैं, इसका सार। ध्यान आत्म-जागरूकता और आत्म-ज्ञान पर केंद्रित होता है, जहाँ देखने वाले और देखे जाने वाले के बीच की सीमा समाप्त हो जाती है, और व्यक्ति की अपनी प्रकृति की गहरी समझ होती है।

8.4 परा-विद्या और अपर-विद्या

भारतीय मनोविज्ञान परंपरा में ज्ञान के दो प्रकारों के बीच स्पष्ट भेद किया जाता है:

- **अपर-विद्या:** भौतिक, अनुभवजन्य दुनिया का ज्ञान। इसमें वे विज्ञान, प्रौद्योगिकी, और प्रबंधन के ज्ञान शामिल हैं, जिनका उपयोग हम बाहरी दुनिया के साथ बातचीत करने के लिए करते हैं। अपर-विद्या जीवन के व्यावहारिक, भौतिक पहलुओं से संबंधित है।
- **परा-विद्या:** आंतरिक दुनिया का ज्ञान, जो मानसिक, मानसिक और अस्तित्वात्मक प्रश्नों से संबंधित है। यह आध्यात्मिक ज्ञान है, जो अस्तित्व, चेतना और आत्मा की प्रकृति के गहरे पहलुओं से संबंधित है। परा-विद्या उस ज्ञान को संदर्भित करता है जो चेतना की वास्तविक प्रकृति, एक व्यक्ति के आध्यात्मिक सार और उनके ब्रह्मांड से संबंध को समझने से संबंधित है।

परा-विद्या का अध्ययन व्यक्तियों को प्रश्नों की ओर प्रेरित करता है जैसे "मैं कौन हूँ?", "चेतना की प्रकृति क्या है?", और "मेरे ब्रह्मांड से क्या संबंध हैं?" ये प्रश्न बाहरी, भौतिक घटनाओं के ज्ञान के बजाय आत्मा के आंतरिक आयामों को समझने पर केंद्रित होते हैं।

8.5 बाहरी इंद्रियों की सीमाएँ

सामान्य संवेदी अंग बाहरी दुनिया के साथ बातचीत करने में उपयोगी होते हैं—ये हमें जीवन के भौतिक पहलुओं को समझने में मदद करते हैं। हालांकि, इन इंद्रियों की आंतरिक चेतना की दुनिया को समझने में सीमित उपयोगिता होती है। उदाहरण के लिए, यदि 100 लोग एक अंधेरे कमरे में हैं और बिजली चली जाती है, तो किसी को भी यह जानने के लिए टॉर्च की आवश्यकता नहीं होगी कि वे कमरे में हैं। इसका कारण यह है कि चेतना स्वयं स्थिति को महसूस कर सकती है, भले ही बाहरी संवेदी इनपुट न हों। इसके विपरीत, बाहरी दुनिया को समझने के लिए हम अपनी संवेदी अंगों और बाहरी उपकरणों (जैसे प्रकाश) पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार, चेतना के अध्ययन के लिए एक अलग सेट के उपकरणों की आवश्यकता होती है—आंतरिक क्षमताएँ जैसे आत्म-निरीक्षण, ध्यान और गहरी चिंतनशीलता जो मन और आत्मा की आंतरिक अवस्थाओं से संबंधित होती हैं।

8.6 चेतना की आध्यात्मिक प्रकृति

चेतना का अध्ययन स्वाभाविक रूप से एक व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रकृति की गहरी खोज की ओर ले जाता है। यह मानव को गहरे स्तर पर समझने का अध्ययन है, और प्रश्नों का ध्यान "क्या" या "कैसे" से अस्तित्व के गहरे प्रश्नों की ओर स्थानांतरित हो जाता है। दूसरे शब्दों में, ध्यान केंद्रित करने का रुख भौतिक घटनाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण से हटकर आत्मा की रहस्यमय और अस्तित्वात्मक खोज की ओर होता है। इस संदर्भ में, आध्यात्मिकता और चेतना अध्ययन आपस में जुड़े हुए हैं। वास्तविक आत्म, या आत्मा, को अक्सर शारीरिक शरीर और मन से परे समझा जाता है, और इस प्रकृति की खोज परा-विद्या का अंतिम उद्देश्य है। यह जांच प्रेम, सत्य, मूल्यों और अस्तित्व की प्रकृति के बारे में समझ की ओर ले जाती है।

9. आधुनिक मनोविज्ञान में भारतीय योगदान

भारत का आधुनिक मनोविज्ञान के विकास में योगदान इसकी प्राचीन दार्शनिक परंपराओं, धार्मिक प्रथाओं और सांस्कृतिक मूल्यों में गहरे रूप से निहित है। प्रारंभिक विचारकों से जिन्होंने आत्मा और मन की प्रकृति का अध्ययन किया, से लेकर समकालीन विद्वानों तक जिन्होंने भारत में मनोविज्ञान के अनुसंधान और अभ्यास को आकार दिया, भारत का इस क्षेत्र पर महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। विशेष रूप से, भारतीय विद्वानों ने सैद्धांतिक

और अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान दोनों में अद्वितीय योगदान दिए हैं, जिनमें पश्चिमी मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को स्वदेशी अवधारणाओं के साथ मिलाया गया है, साथ ही मानव व्यवहार, संज्ञान और मानसिक स्वास्थ्य को समझने के लिए विशिष्ट ढांचे भी प्रदान किए हैं। यह खंड प्रारंभिक भारतीय मनोवैज्ञानिकों के योगदान, आधुनिक भारतीय मनोविज्ञान के विकास में प्रमुख व्यक्तियों और भारतीय सांस्कृतिक प्रथाओं के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत और चिकित्सा पद्धतियों पर प्रभाव की चर्चा करता है।

9.1 प्रारंभिक भारतीय मनोवैज्ञानिक

भारत में मनोविज्ञान की प्रथाएँ प्राचीन काल से ही मौजूद हैं, लेकिन 19वीं और 20वीं शताब्दी के अंत में भारतीय विद्वानों ने मनोविज्ञान के अध्ययन को औपचारिक रूप से प्रारंभ किया। भारत में मनोविज्ञान के वैज्ञानिक अनुशासन के रूप में विकास पर ब्रिटिश उपनिवेशी काल के दौरान पश्चिमी मनोविज्ञान के साथ भारत की बातचीत का गहरा प्रभाव पड़ा। हालांकि, भारतीय विद्वान पश्चिमी वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को पारंपरिक भारतीय ज्ञान प्रणालियों के साथ मिलाने की कोशिश कर रहे थे।

मनोविज्ञान में आधुनिक योगदान देने वाले सबसे प्रारंभिक भारतीय व्यक्तियों में से एक गिरीश चंद्र घोष (1853–1912) थे। भारतीय रंगमंच और मनोविज्ञान दोनों में प्रसिद्ध, घोष पहले व्यक्तियों में से थे जिन्होंने सम्मोहन के चिकित्सीय संभावनाओं का अन्वेषण किया और भारत में पश्चिमी मनोवैज्ञानिक विधियों को प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सम्मोहन और सुझाव के क्षेत्र में उनके कार्य ने मनोविज्ञान और चिकित्सीय संदर्भों में मन के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

राधाकामल मुखर्जी, एक प्रमुख समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिक, भारतीय मनोविज्ञान के प्रारंभिक विकास में एक और महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। उन्होंने मानव व्यवहार और मानसिक घटनाओं को समझने में सांस्कृतिक संदर्भ के महत्व को उजागर करने में योगदान दिया। मानसिक स्वास्थ्य और व्यवहार के सामाजिक निर्धारकों पर उनका जोर मनोविज्ञान के अधिक संदर्भित दृष्टिकोण के लिए आधार प्रदान करता है, जिसे बाद में सांस्कृतिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में विस्तार दिया गया।

जी. एस. घुर्ये, बी. के. करंथ और एन. एन. विग का आधुनिक भारतीय मनोविज्ञान में योगदान

20वीं शताब्दी में कई भारतीय विद्वानों ने भारतीय मनोविज्ञान के आधुनिक दिशा निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जी. एस. घुर्ये, एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री और

मानवविज्ञानी, भारतीय समाज के मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक पहलुओं को समझने में योगदान दिया। घुर्ये का कार्य मुख्य रूप से समाजशास्त्रीय था, लेकिन उन्होंने सामाजिक मानदंडों, पारिवारिक संरचना और सामुदायिक जीवन पर किए गए अनुसंधान के माध्यम से भारतीय मनोविज्ञान के सिद्धांतों को प्रभावित किया।

बी. के. करंथ भारतीय संदर्भों में मनोविज्ञान के अध्ययन में अग्रणी व्यक्तित्व थे। उन्होंने संस्कृति के मनुष्यों के विकास में भूमिका पर ध्यान केंद्रित किया, विशेष रूप से यह कैसे भाषा, सामाजिक संरचना और पारंपरिक मूल्य संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। करंथ के द्वारा मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के सांस्कृतिक संदर्भ पर जोर देने से भारत में सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त मनोविज्ञान के विकास में मदद मिली।

एन. एन. विग, एक मानसिक रोग विशेषज्ञ और शोधकर्ता, भारतीय मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक चिकित्सा में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले व्यक्तित्व हैं। उनका मानसिक रोगों के निदान और उपचार पर कार्य, और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले मानसिक-सामाजिक कारकों पर उनका ध्यान, देश में मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक था। विग का मानसिक स्वास्थ्य उपचार में संस्कृति और आत्मा के भूमिका पर जोर देना भारत में समुदाय आधारित मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों और सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त उपचार विधियों के उपयोग के लिए मार्गदर्शक बन गया।

9.2 मनोविज्ञान के सिद्धांतों के विकास में भारतीय विद्वानों का योगदान

भारतीय विद्वानों ने मनोविज्ञान के सिद्धांतों के विकास में सैद्धांतिक और अनुप्रयुक्त दोनों क्षेत्रों में योगदान किया है। भारतीय दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपराओं से प्रेरणा लेते हुए, उन्होंने मानव व्यवहार, व्यक्तित्व और संज्ञान के मॉडल प्रस्तुत किए हैं जो पश्चिमी मानकों से भिन्न हैं, और जो मन, शरीर और आत्मा के आपसी संबंध को महत्व देते हैं।

भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने सामाजिक मनोविज्ञान में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत में संस्कृति मानव व्यवहार को समझने में केंद्रीय भूमिका निभाती है, और विद्वानों जैसे जी. एच. बोरकर और एम. एल. कपूर ने यह अन्वेषण किया है कि कैसे सामूहिकतावादी मूल्य, पारिवारिक संरचना और सामाजिक भूमिकाएँ व्यक्तिगत और समूह व्यवहार को आकार देती हैं। इन अध्ययनों ने सांस्कृतिक संदर्भ में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए एक ढांचा स्थापित करने में मदद की, जो क्रॉस-सांस्कृतिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम था।

10. भारत में शिक्षा प्रणाली में मनोविज्ञान

भारत की शिक्षा प्रणाली ने छात्रों के मानसिक विकास को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऐतिहासिक रूप से, भारत में शिक्षा गुरुकुल प्रणाली में निहित थी, जहाँ अध्ययन को बौद्धिक, भावनात्मक और नैतिक विकास की एक समग्र प्रक्रिया माना जाता था। यह प्रणाली मुख्य रूप से मार्गदर्शन, प्रत्यक्ष अध्ययन और आध्यात्मिक विकास पर आधारित थी।

आधुनिक समय में, मनोविज्ञान भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक आवश्यक हिस्सा बन गया है, हालांकि चुनौतियाँ बनी हुई हैं। भारत में शिक्षा प्रणाली में मनोविज्ञान की शुरुआत 19वीं और 20वीं शताब्दी के अंत में विश्वविद्यालयों की स्थापना से की जा सकती है। विशेष रूप से, कलकत्ता विश्वविद्यालय और इलाहाबाद विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं ने भारत में मनोविज्ञान विभागों की शुरुआत की, जो इस क्षेत्र में स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्री प्रदान करती थीं।

हालाँकि भारत में आजकल मनोविज्ञान का औपचारिक अध्ययन अच्छी तरह स्थापित हो चुका है, यह मुख्य रूप से पश्चिमी सिद्धांतों और मनोवैज्ञानिक कार्यप्रणालियों पर केंद्रित है। हालांकि, भारतीय दार्शनिकताओं और पारंपरिक प्रथाओं को अकादमिक पाठ्यक्रम में शामिल करने के लिए एक बढ़ती हुई प्रवृत्ति है। आयुर्वेद, योग और ध्यान की प्रथाओं को मनोविज्ञान पाठ्यक्रम में धीरे-धीरे एकीकृत किया जा रहा है, हालांकि ये तत्व प्रायः समानांतर रूप से अध्ययन किए जाते हैं, न कि मुख्यधारा की शिक्षा में पूरी तरह से समाहित किए गए हैं।

10.1 गुरुकुल और पारंपरिक शिक्षा प्रणाली का मानसिक विकास पर प्रभाव

प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का भारतीय मानसिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के विपरीत, जो संरचित पाठ्यक्रम और परीक्षाओं पर आधारित है, गुरुकुल प्रणाली में व्यक्तिगत अध्ययन, आत्म-अनुशासन और आध्यात्मिक विकास पर जोर दिया जाता था। शिक्षक, या गुरू, को केवल ज्ञान प्रदान करने वाले नहीं बल्कि छात्रों के नैतिक चरित्र, बौद्धिक क्षमता और भावनात्मक बुद्धिमत्ता को भी विकसित करने में मदद करने वाले मार्गदर्शक के रूप में देखा जाता था।

यह समग्र दृष्टिकोण इस विचार पर आधारित था कि मानसिक विकास को भावनात्मक और नैतिक विकास से अलग नहीं किया जा सकता। कहानी कहने, ध्यान

और प्रकृति के साथ सीधे संपर्क पर जोर देने से बौद्धिक और भावनात्मक दोनों प्रकार के विकास को बढ़ावा मिला, जो आधुनिक शैक्षिक मनोविज्ञान की अक्सर विभाजित प्रकृति से अलग था। गुरुकुल प्रणाली ने छात्रों को स्वयं, उनके परिवेश और उनकी दुनिया में उनके स्थान को गहरे रूप से समझने में मदद करने के लिए डिज़ाइन किया था, जो आधुनिक शैक्षिक मनोविज्ञान के बढ़ते हुए समग्र विकास पर ध्यान केंद्रित करने के अनुरूप था।

10.2 भारत में शैक्षिक मनोविज्ञान: चुनौतियाँ और नवाचार

हालांकि भारत ने शैक्षिक मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण प्रगति की है, फिर भी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। देश की विविध सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ प्रभावी शैक्षिक मनोविज्ञान अभ्यासों के कार्यान्वयन में अनूठी समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। पारंपरिक रूप से, ध्यान केंद्रित शिक्षा और परीक्षा-आधारित मूल्यांकन प्रणाली अक्सर भावनात्मक बुद्धिमत्ता, रचनात्मकता और व्यक्तिगत अध्ययन शैलियों में अंतर को नजरअंदाज करती है। इसके अलावा, मानकीकृत परीक्षणों पर अधिक जोर देने से नवाचार और आलोचनात्मक सोच के कौशल का विकास बाधित हो सकता है।

हालाँकि, हाल के वर्षों में भारत में शैक्षिक मनोविज्ञान के ढाँचे में नवाचारात्मक परिवर्तन देखने को मिले हैं। मानसिक स्वास्थ्य, छात्रों की भलाई और सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा के महत्व को बढ़ते हुए पहचाना जा रहा है, और कई स्कूलों ने अपने पाठ्यक्रमों में काउंसलिंग सेवाएँ, माइंडफुलनेस कार्यक्रम और सामाजिक-भावनात्मक कौशल प्रशिक्षण को शामिल करना शुरू कर दिया है। यह बदलाव बच्चों के समग्र विकास पर ध्यान केंद्रित करने की बढ़ती आवश्यकता को पहचानने का प्रतीक है, न कि केवल उनके शैक्षिक प्रदर्शन पर।

10.3 भारतीय संस्कृति में मनोविज्ञान के दृष्टिकोण

भारतीय संस्कृति ने लंबे समय से मन, शरीर और आत्मा के बीच संतुलन पर जोर दिया है, जो देश में मनोविज्ञान के दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। आयुर्वेद, योग और ध्यान मानसिक स्वास्थ्य और भलाई को समझने में अभिन्न हैं। स्वास्थ्य के प्रति समग्र दृष्टिकोण भारतीय मनोविज्ञान की विशेषताएँ में से एक है, जो केवल मन की नहीं, बल्कि पूरे शारीरिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक तंत्र को संबोधित करने का प्रयास करता है।

भारतीय परंपराएँ जैसे भक्ति योग (भक्ति साधना), ज्ञान योग (ज्ञान की साधना), और कर्म योग (निस्वार्थ कर्म की साधना) व्यक्तिगत विकास और आत्म-समझ के लिए महत्वपूर्ण हैं, जो समकालीन मानवतावादी और ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान के दृष्टिकोणों के साथ मेल खाती हैं।

11. भारतीय त्यौहारों और परंपराओं का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

भारतीय त्यौहार और परंपराएँ, जो सांस्कृतिक प्रथाओं में गहराई से निहित हैं, मानसिक स्वास्थ्य और भलाई पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। दिवाली, होली और दुर्गा पूजा जैसे उत्सव सामूहिक मेल-मिलाप, भावनाओं की अभिव्यक्ति और सामूहिक आनंद के अवसर प्रदान करते हैं। ये त्यौहार अक्सर मानसिक शुद्धिकरण का रूप होते हैं, जो व्यक्तियों को तनाव छोड़ने और समुदायों से जुड़ने में मदद करते हैं। इसके अलावा, कई भारतीय परंपराएँ आभार, क्षमा और आत्म-चिंतन को बढ़ावा देती हैं, जो मानसिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए शक्तिशाली उपकरण होते हैं। उदाहरण स्वरूप, त्यौहारों के दौरान प्रार्थनाएँ और अनुष्ठान करने की प्रथा को मानसिक संतुलन और मानसिक शांति प्राप्त करने का एक तरीका माना जाता है, जो भावनाओं को नियंत्रित करने और चिंता को कम करने में मदद करता है।

11.1 भारतीय समाज में सामूहिकतावादी बनाम व्यक्तिगततावादी मनोविज्ञान

भारतीय समाज को आमतौर पर सामूहिकतावादी माना जाता है, जबकि पश्चिमी संस्कृतियाँ व्यक्तिगत उपलब्धियों और स्वायत्तता को महत्व देती हैं, भारतीय संस्कृति परिवार, समुदाय और आपसी निर्भरता पर जोर देती है। यह सामूहिकतावादी प्रवृत्ति मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में प्रभाव डालती है, क्योंकि व्यक्ति अपनी पहचान और आत्म-संस्कार को अपने परिवार और समुदाय में रिश्तों और भूमिकाओं से प्राप्त करते हैं।

जहाँ व्यक्तिवाद आत्म-साक्षात्कार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है, वहीं सामूहिकतावाद भावनात्मक समर्थन, सामाजिक तालमेल और साझा जिम्मेदारी को बढ़ावा देता है। भारतीय समाज में मानसिक स्वास्थ्य में परिवार के रिश्तों का महत्व अत्यधिक है। परिवार के सदस्य अक्सर व्यक्तियों को भावनात्मक समर्थन प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने के लिए एक सुरक्षा जाल का कार्य करते हैं।

11.2 मानसिक स्वास्थ्य में परिवार और समुदाय की भूमिका

भारतीय समाज में परिवार मानसिक स्वास्थ्य देखभाल का केंद्रीय भाग है। विस्तारित परिवार प्रणाली उन व्यक्तियों के लिए एक मजबूत समर्थन नेटवर्क प्रदान करती है जो भावनात्मक संकट का सामना कर रहे होते हैं। सामुदायिक संबंध भी भावनात्मक और सामाजिक समर्थन प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ग्रामीण इलाकों में, जहाँ पेशेवर मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ सीमित हो सकती हैं, परिवार और समुदाय-आधारित मानसिक स्वास्थ्य दृष्टिकोण विशेष रूप से महत्वपूर्ण होते हैं।

भारतीय परंपराएँ सामाजिक समर्थन, सामुदायिक अनुष्ठानों और उपचार प्रक्रियाओं में परिवार की भागीदारी के महत्व को उजागर करती हैं। समूह प्रार्थनाएँ, अनुष्ठान और त्यौहार जैसी प्रथाएँ सामूहिक रूप से भावनात्मक अभिव्यक्ति और उपचार के अवसर प्रदान करती हैं, जो व्यक्तियों को तनाव से निपटने और मानसिक भलाई बनाए रखने में मदद करती हैं। मानसिक स्वास्थ्य में सामूहिकतावादी दृष्टिकोण पश्चिमी मनोविज्ञान में पाए जाने वाले व्यक्तिगत उपचार मॉडलों से भिन्न है।

12. सारांश

भारतीय मानसिकता परंपरा में चेतना का अध्ययन बाहरी भौतिक दुनिया से आंतरिक, व्यक्तिगत अनुभव की दुनिया की ओर दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। यह आत्म-निरीक्षण अध्ययन विशिष्ट तरीकों जैसे गहरे सुनने, चिंतन और ध्यान का पालन करता है, जिसका उद्देश्य मन और शुद्ध चेतना के बीच की खाई को पाटना है। अपने वास्तविक स्वरूप को समझने की यात्रा गहरे आध्यात्मिक और अस्तित्वात्मक पहलुओं को उजागर करती है, जो अंततः ब्रह्मांड के साथ एकता की अनुभूति और आनंद और आत्म-जागरूकता का प्रत्यक्ष अनुभव देती है। ध्यान, आत्म-प्रयोग और आध्यात्मिक के माध्यम से व्यक्तियों को मन की सीमाओं से परे जाकर चेतना की वास्तविक प्रकृति पर गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है।

सुझावात्मक पठनीय सामग्री

1. "*Foundations of Indian Psychology*: volume 1 – Concepts and Theories", Matthijs Cornelissen, Girishwar Misra, Suneet Varma, pearson education, 2010, isbn: 978-8131730843.
2. Dalal, A.K. and Misra, G. (2010). "*The Core and Context of Indian Psychology*", Psychology and Developing Societies, 22(1). pp. 121-155.
3. *Psychology in the Indian Tradition*", K. Ramakrishna Rao, DK printworld, 2013, isbn: 978-8124606566.
4. Dominik, W. (2001). "*The Roots of Ayurveda*", Penguin Classics, Haryana, india. isbn: 9780140436808
5. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), "*Introduction to Indian Knowledge System*", Phi Learning Private Ltd.
6. Gangadharan, G.G. (2009). "*Kṣemakutühalam composed by Kšemaśarma*", Foundation of Revitalisation of Local Health Traditions (Frlht), Bengaluru
7. Godbole, A., Abhinav, S., Singh, O.P. and Tripathi, J.S. (2017). "Conceptual Study of Agni in Ayurveda, Pharma Science Monitor: *An International Journal of Pharmaceutical Sciences*, Pp. 15-20.
8. Guruprasad, S. (2017). *Sankhya Karika*, Chaukhambha Vidyabharati, Varanasi, ISBN: 978-93-83721-66-5
9. Kuppuswami, B. (1985). *Elements of Ancient Indian Psychology*, Vikas Publishing House, New Delhi.
10. Mishra, L.c. (2004). *Scientific Basis for Ayurvedic Therapies*, CRC Press LLC, Washington DC.
11. Pandey, J. (1988). *Psychology in India: The State-of-the-Art*, Vols. 1, 2, 3, Sage Publications, New Delhi.
12. Rao, K.R. (2014). "Positive Psychology and Indian Psychology in Need of Mutual Reinforcement", *Psychological Studies*, 59(2), PP. 94-102.
13. Rao, K.R. (2012). "Psychology in The Indian Tradition". *Psychological Studies*, 57, PP. 323-330.

14. Rao, K.R., Paranjpe, A.C., And Dalal, A.K. (2008). *Handbook OfIndian Psychology*, Cambridge University Press, New Delhi.

15. Telles, S., Joshi, M., Dash, M., Raghuraj, P., Naveen, K. and Nagendra, H.R. (2004). "An Evaluation of The Ability to Voluntarily Reduce The Heart Rate After A Month of Yoga Practice," *Integrative Physiological and Behavioral Science*, 39(2), Pp. 119-25.

16. Thakker, J., Chaudhari, S. And Sarkar, P.s. (2011). "Ritucharya: Answers to the Lifestyle Disorders, *An International Quarterly Journal of Research in Ayurveda*, Official Publication OfInstitute for Post Graduate Teaching & Research in Ayurveda, Jamnagar, Oct-Dec; 32(4): Pp. 466-471. Doi: 10.4103/0974-8520.96117. https://Www.ncbi.nlm.nih.gov/Pmc/Articles/Pmc3361919/#Ref5

17. Tiwari, P.V. (2018). *Caraka-Samhita*, Chaukhambha Vishvabharati, Varanasi.

18. Valiathan, M.S. (2015). *The Legacy of Caraku*, University Press (India) Private Limited, Hyderabad. ISBN: 9788173716676

19. Valiathan, M.s. (2015). The Legacy of Susruta, University Press (India) Private Limited, Hyderabad.

20. Op Pandey (2023), "*Bharat Vaibhav*", National Book Trust, India.

21. Valiathan, M.s. (2015). *The Legacy of Vagbhata*, University Press (India) Private Limited, Hyderabad.

22. Vidyanath, R. (2013). *Illustrated Aṣtănga Hṛdaya of Vägbhaṭa - Sütrasthāna*, Chaukhambha Surabharati Prakashan, Varanasi.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. पाठ के अनुसार पश्चिमी मनोविज्ञान का प्राथमिक ध्यान क्या है?
   a) आध्यात्मिक विकास और मुक्ति
   b) व्यवहारिक और संज्ञानात्मक कारक
   c) मन, शरीर और चेतना का आपसी संबंध
   d) आत्म-साक्षात्कार की खोज

2. भारतीय मनोविज्ञान पश्चिमी मनोविज्ञान से कैसे भिन्न है?
   a) केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर केंद्रित।
   b) मन, शरीर, चेतना संबंध महत्वपूर्ण।
   c) आध्यात्मिकता की अनदेखी करता।
   d) मानसिक रोगों को अधिक प्राथमिकता।

3. भारतीय मनोविज्ञान में मानसिक भलाई के लिए कौन सी प्रथा प्रमुख उपकरण के रूप में प्रमुख है?
   a) संज्ञानात्मक व्यवहारिक चिकित्सा
   b) योग और ध्यान
   c) मानसिक विश्लेषण
   d) औषधीय उपचार

4. भारतीय मनोविज्ञान का अंतिम उद्देश्य क्या है ?
   a) शारीरिक दीर्घायु
   b) वित्तीय सफलता
   c) खुशी, संतोष और आत्मनिर्भरता
   d) दूसरों से पहचान

5. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार, मानव व्यवहार को समझने में विषयगत ज्ञान की क्या भूमिका है?

a) वस्तुनिष्ठ ज्ञान से कम महत्व।

b) मानसिक भलाई के लिए अप्रासंगिक।

c) आत्मनिरीक्षण समान रूप से महत्वपूर्ण।

d) केवल आध्यात्मिक विकास के लिए।

6. नीचे से कौन सा भारतीय मनोविज्ञान की विशेषता नहीं है, जैसा कि पाठ में चर्चा की गई है?

a) आध्यात्मिक विकास और मुक्ति पर जोर

b) मानसिक स्वास्थ्य को केवल जैविक रूप से

c) मन, शरीर और चेतना का एकीकरण

d) आत्म-विकास और जागरूकता पर ध्यान।

7. भारतीय मनोविज्ञान की स्वास्थ्य के प्रति दृष्टिकोण में पश्चिमी मनोविज्ञान से क्या अंतर है?

a) शरीर की भूमिका नकारता।

b) आध्यात्मिकता केंद्रीय।

c) पश्चिमी आध्यात्मिक भलाई प्राथमिकता।

d) केवल इलाज, रोकथाम नहीं।

8. भारतीय मनोविज्ञान में मानसिक भलाई के लिए क्या आवश्यक माना जाता है?

a) वित्तीय सफलता

b) चिकित्सा हस्तक्षेप

c) ध्यान के माध्यम से आत्म-अन्वेषण

d) बाहरी उपलब्धियां और सामाजिक पहचान

9. भारतीय मनोविज्ञान के लिए कौन से प्राचीन भारतीय ग्रंथ मौलिक हैं?

a) बाइबिल और क़ुरआन

b) उपनिषद और वेदिक साहित्य

c) ताओ ते चिंग

d) तालमुड

10. भारतीय मनोविज्ञान में विषयगत अनुभव की क्या भूमिका है?

a) वस्तुनिष्ठ मापदंडों के कारण नजरअंदाज।

b) मानसिक अवस्थाओं को समझने में प्रमुख।

c) केवल धार्मिक प्रथाओं में उपयोग।

d) मानसिक स्वास्थ्य के लिए अप्रासंगिक।

11. भारतीय और पश्चिमी मनोविज्ञान में मन-शरीर संबंध के संदर्भ में मुख्य अंतर क्या है?

a) पश्चिमी अलग, भारतीय जुड़ा मानता।

b) भारतीय अलग, पश्चिमी जुड़ा मानता।

c) दोनों अलग मानते हैं।

d) कोई संबंध नहीं मानते।

12. भारतीय मनोविज्ञान को प्रभावित करने वाली बौद्धिक परंपरा का कौन सा विद्यालय है?

a) फ्रायडियन मानसिक विश्लेषण

b) छह दर्शन

c) मानवतावादी मनोविज्ञान

d) व्यवहारवाद

13. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार, व्यक्तियों के लिए अंतिम लक्ष्य क्या है?

a) संपत्ति और स्थिति

b) खुशी, संतोष और आत्मनिर्भरता

c) प्रसिद्धि और पहचान प्राप्त करना

d) मानसिक बीमारियों को दूर करना

14. भारतीय मनोविज्ञान अस्तित्वगत समस्याओं जैसे तनाव और पीड़ा को कैसे संबोधित करता है?

a) केवल औषधियों से मानसिक रोगों का इलाज।

b) आध्यात्मिकता और विकास से समाधान।

c) अस्तित्वगत समस्याओं की अनदेखी

d) केवल बाहरी चुनौतियों से निपटना।

15. भारतीय मनोविज्ञान में मानसिक स्पष्टता और भावनात्मक संतुलन प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक संबंधित प्रथा कौन सी है?

a) योग

b) संज्ञानात्मक चिकित्सा

c) मानसिक विश्लेषण

d) कला चिकित्सा

16. पाठ के अनुसार, भारतीय मनोविज्ञान का ज्ञान के प्रति क्या विशेष दृष्टिकोण है?

a) केवल मापने योग्य पहलुओं पर केंद्रित।

b) वस्तुनिष्ठ व विषयगत ज्ञान एकीकृत।

c) केवल विषयगत ज्ञान पर ध्यान।

d) दोनों ज्ञान को नकारता है।

17. भारतीय मनोविज्ञान में योग और ध्यान की कौन सी सामान्य विशेषता है?

a) केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर केंद्रित।

b) आत्म-जागरूकता और शांति बढ़ाते हैं।

c) केवल बौद्धिक शिक्षा से संबंधित।

d) केवल धार्मिक प्रथाएँ हैं।

18. पश्चिमी मानसिक संरचनाओं को गैर-पश्चिमी संदर्भों में लागू करने में क्या मुख्य चुनौती है?

a) सांस्कृतिक पहलुओं पर अधिक ध्यान।

b) अन्य संस्कृतियों की जटिलताओं की अनदेखी।

c) अत्यधिक आध्यात्मिक, गैर-विज्ञानिक।

d) केवल शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य उपेक्षित।

19. भारतीय मनोविज्ञान के दृष्टिकोण का सबसे अच्छा वर्णन कौन सा है?

a) केवल बाहरी कारकों पर केंद्रित।

b) वैज्ञानिक, आध्यात्मिकता नजरअंदाज।

c) मन, शरीर, चेतना एकीकृत।

d) मानसिक रोगों के इलाज पर ध्यान।

20. भारतीय मनोविज्ञान में खुशी और आत्मनिर्भरता बढ़ाने के लिए क्या महत्व दिया जाता है?

a) भौतिक सफलता और वित्तीय स्थिरता
b) आध्यात्मिक प्रथाएँ जैसे योग और ध्यान
c) समाज में प्रतिस्पर्धात्मक उपलब्धियाँ
d) बौद्धिक विकास और अकादमिक सफलता

21. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार, मानव का गठन करने वाले तीन आवश्यक तत्व कौन से हैं?

a) मन, शरीर, आत्मा
b) सत, चित, आनंद
c) शरीर, अहंकार, आत्मा
d) चेतना, अस्तित्व, आनंद

22. भारतीय मनोविज्ञान में 'सत' का क्या अर्थ है?

a) व्यक्ति का मानसिक पहलू
b) अस्तित्व या शारीरिक/भौतिक पहलू
c) व्यक्ति का आध्यात्मिक सार
d) आनंद या अंतिम अवस्था

23. भारतीय मनोविज्ञान में 'चित' का क्या प्रतिनिधित्व है?

a) व्यक्ति का भौतिक रूप
b) चेतना और मानसिक/आध्यात्मिक सार
c) अहंकार और संकुचित पहचान
d) खुशी और संतोष

24. भारतीय मनोविज्ञान में 'आनंद' क्या है?

a) आत्मा का बौद्धिक पहलू
b) आनंद और अंतिम अस्तित्व की शुद्ध अवस्था
c) शारीरिक स्वास्थ्य की स्थिति
d) व्यक्ति के भीतर भावनात्मक संतुलन

25. भारतीय मनोविज्ञान पश्चिमी मनोविज्ञान से मानव प्रकृति के बारे में कैसे भिन्न है?

a) पश्चिमी मनोविज्ञान आध्यात्मिकता पर

b) भारतीय मनोविज्ञान व्यवहार और शरीर पर

c) मनोविज्ञान समग्र, पश्चिमी भौतिकवादी

d) पश्चिमी मनोविज्ञान आध्यात्मिकता नजरअंदाज

26. भारतीय मनोविज्ञान का केंद्रीय उद्देश्य क्या है?

a) व्यवहारिक चिकित्सा से मानसिक उपचार।

b) मुक्ति और ब्रह्मांड से एकता।

c) बाहरी सफलता और पहचान।

d) बौद्धिक श्रेष्ठता बढ़ाना।

27. भारतीय मनोविज्ञान के दर्शन का कौन सा सिद्धांत केंद्रीय है?

a) अहंकार

b) आत्मा (मानवता की एकता)

c) इड

d) आत्म-साक्षात्कार

28. भारतीय मनोविज्ञान में आत्म-साक्षात्कार का अंतिम उद्देश्य क्या है?

a) दूसरों पर शक्ति और प्रभाव प्राप्त करना

b) भौतिक जीवन में सफलता प्राप्त करना

c) अज्ञानता मिटाकर सच्ची शांति और आत्मनिर्भरता

d) सामाजिक मानकों के अनुसार

29. भारतीय मनोविज्ञान जीवन की अस्तित्वगत बाधाओं को कैसे संबोधित करता है?

a) चिकित्सा उपचार पर ध्यान देना।

b) आत्मनिरीक्षण से आत्म-साक्षात्कार।

c) भावनाओं को छोड़ बौद्धिक विकास।

d) व्यायाम से शारीरिक सुधार।

0. भारतीय मनोविज्ञान में जीवन की अस्तित्वगत बाधाओं से निपटने के लिए कौन सी प्रमुख तकनीक है?

a) संज्ञानात्मक व्यवहारिक चिकित्सा

b) आत्म-निरीक्षण

c) औषधीय हस्तक्षेप

d) सम्मोहन

1. मानसिक स्पष्टता और शांति के लिए भारतीय मनोविज्ञान में कौन सी प्रथाएँ केंद्रीय हैं?

a) योग और ध्यान

b) बौद्धिक विश्लेषण

c) व्यवहार संशोधन

d) निद्रा चिकित्सा

2. भारतीय मनोविज्ञान में ध्यान और योग जैसी प्रथाओं में संलग्न होने का अंतिम लक्ष्य क्या है?

a) शारीरिक शक्ति बढ़ाना

b) बौद्धिक शक्ति विकसित करना

c) यह व्यक्ति के अनुभवों को उच्च आत्म से जोड़ता है।

d) संपत्ति और पहचान जमा करना

3. भारतीय मनोविज्ञान में मानव स्वभाव के रूप में कौन सा सिद्धांत वर्णित है?

a) खुशी बाहरी सफलता से आती है।

b) मनुष्य स्वभाव से दिव्य और सभी प्राणियों से जुड़े होते हैं।

c) लोग भौतिक दुनिया से अलग होते हैं।

d) जीवन का उद्देश्य धन और सुख

4. भारतीय मनोविज्ञान में जीवन में असंतोष और तनाव का प्रमुख कारण क्या है?

a) बौद्धिक विकास की कमी

b) बाहरी चीजों से जुड़ाव और अहंकार से गलत पहचान

c) शारीरिक स्वास्थ्य की कमी

d) अपर्याप्त संपत्ति और स्थिति

35. भारतीय मनोविज्ञान में त्रि-गुणा प्रणाली का उपयोग किसलिए किया जाता है?

a) मानसिक रोगों को वर्गीकृत करना।

b) व्यवहार और मानसिकता समझना।

c) शारीरिक शक्ति बढ़ाना।

d) बौद्धिक क्षमता सुधारना।

36. त्रि-गुणा प्रणाली में क्या शामिल है?

a) ज्ञान, बुद्धिमत्ता, शांति

b) सत्व, रजस, तमस

c) अहंकार, मन, शरीर

d) खुशी, शांति, संतुष्टि

37. कौन सा गुण स्पष्टता, संतुलन और खुशी जैसी गुणों से जुड़ा है?

a) रजस

b) सत्व

c) तमस

d) उपरोक्त में से कोई नहीं

38. कौन सा गुण इच्छा, जुनून और सक्रियता से जुड़ा है?

a) सत्व

b) रजस

c) तमस

d) आत्मा

39. कौन सा गुण अज्ञानता, स्थिरता और भ्रम से जुड़ा है?

a) सत्व

b) रजस

c) तमस

d) चित

40. रजस के प्रबल प्रभाव वाले व्यक्ति को किस रूप में वर्णित किया जा सकता है?

a) शांत, शांतिपूर्ण और आत्मनिरीक्षण

b) बेचैन, क्रियाशील और लक्ष्य-प्रेरित

c) आलसी और प्रेरणा की कमी

d) दुनिया से अलग और उदासीन

41. तमस के प्रबल प्रभाव वाले व्यक्तियों का सामान्य गुण क्या है?

a) ऊर्जावान और महत्वाकांक्षी

b) शांतिपूर्ण और चिंतनशील

c) आलस्य, परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध और अस्पष्टता

d) अत्यधिक रचनात्मक और उत्पादक

42. त्रि-गुणों के संतुलन के माध्यम से भारतीय मनोविज्ञान क्या प्राप्त करने का लक्ष्य रखता है?

a) सांसारिक प्रवृत्तियों से पूरी तरह से अलगाव

b) एक अधिक संतुलित और सामंजस्यपूर्ण जीवन

c) बौद्धिक श्रेष्ठता

d) बाहरी उपलब्धियों पर ध्यान केंद्रित करना

43. भारतीय मनोविज्ञान में आत्म-ज्ञान का क्या महत्व है?

a) यह सांसारिक सफलता प्राप्त करने का रास्ता है।

b) यह शांति और खुशी पाने की कुंजी है।

c) यह केवल बौद्धिक विकास पर केंद्रित है।

d) यह मानसिक कल्याण के लिए

44. भारतीय मनोविज्ञान में आत्म-निरीक्षण की प्रक्रिया क्या है?

a) दूसरों के व्यवहार पर नजर रखना।

b) अपने विचारों और भावनाओं को पहचानना।

c) नई भावनात्मक प्रतिक्रियाएं विकसित करना।

d) तर्क को भावनाओं से ऊपर रखना।

45. भारतीय मनोविज्ञान में अलगाव का क्या महत्व है?

a) यह दुनिया से अलगाव की ओर ले जाता है।

b) यह व्यक्ति को नकारात्मकता और आसक्ति से मुक्त

c) यह व्यक्तिगत पहचान का हनन करता है।

d) यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी से बचने का तरीका है

46. निम्नलिखित में से कौन सा शरीर-मस्तिष्क-बुद्धि-चेतना समग्र में एक व्यक्ति का भौतिक रूप है?

a) सूक्ष्म शरीर

b) चेतना

c) स्थूल शरीर

d) बुद्धि

47. सूक्ष्म शरीर मुख्य रूप से किसके लिए जिम्मेदार है?

a) शारीरिक वृद्धि और गति

b) मानसिक और मानसिक अनुभव

c) संवेदी इनपुट

d) प्रजनन कार्य

48. निम्नलिखित में से कौन सा सूक्ष्म शरीर का हिस्सा नहीं है?

a) बुद्धि

b) अहंकार

c) आँखें

d) स्मृति

49. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार, एक व्यक्ति का वास्तविक स्वभाव क्या है?

a) शरीर

b) मन

c) चेतना (आत्मा)

d) बुद्धि

50. भारतीय मनोविज्ञान में त्रि-गुणा प्रणाली क्या है?

a) शरीर के तीन विभिन्न अवस्थाएँ

b) तीन मानसिक गुणों का संयोजन

c) आत्मा की परतें

d) इंद्रियाँ जो अनुभव को नियंत्रित करती हैं

51. भारतीय मनोविज्ञान में पंचकोश प्रणाली के अनुसार, कौन सी परत शारीरिक संवेदनाओं और ऊर्जा के लिए जिम्मेदार है?

a) अन्नमय कोश

b) प्राणमय कोश

c) मनोमय कोश

d) विज्ञामय कोश

52. अन्नमय कोश व्यक्ति के किस पहलू का प्रतिनिधित्व करता है?

a) बौद्धिक परत

b) जीवन ऊर्जा परत

c) भौतिक शरीर

d) आनंद परत

53. कौन सा कोश सबसे भीतरी और सूक्ष्मतम परत माना जाता है, जो शुद्ध चेतना के सबसे करीब है?

a) अन्नमय कोश

b) प्राणमय कोश

c) आनंदमय कोश

d) विज्ञामय कोश

54. प्राणमय कोश क्या नियंत्रित करता है?

a) विचार और भावनाएँ

b) तर्क और बुद्धि

c) जीवन बल और शारीरिक क्रियाएँ

d) आनंद और शांति

55. विज्ञामय कोश किस मानसिक कार्य से संबंधित है?

a) अनुभव और भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ

b) जीवन ऊर्जा और शारीरिक क्रियाएँ

c) तर्क, समझ और निर्णय लेने

d) संवेदी इनपुट

56. भारतीय मनोविज्ञान में अस्तित्व की चार अवस्थाएँ कहाँ वर्णित हैं?

a) भगवद गीता

b) तैत्तिरीय उपनिषद

c) माण्डूक्य उपनिषद

d) पतंजलि के योग सूत्र

57. जाग्रत अवस्था क्या है?

a) गहरी नींद

b) स्वप्न देखना

c) जागृत अवस्था

d) शुद्ध चेतना

58. स्वप्न अवस्था में व्यक्ति क्या करता है?

a) कोई सपना नहीं देखता

b) बाहरी उत्तेजनाओं का अनुभव करता है

c) अपनी वास्तविकता को मन से उत्पन्न करता है

d) गहरे ध्यान में होता है

59. सूषुप्ति अवस्था (गहरी नींद) में व्यक्ति क्या अनुभव करता है?

a) उच्च जागरूकता वाले सपने

b) बाहरी दुनिया से संज्ञान लेना

c) शांति का गहरा अनुभव बिना जागरूकता के

d) चारों ओर की पूरी जागरूकता

60. तुरीय अवस्था को क्या कहा जाता है?

a) जागृत अवस्था

b) स्वप्न अवस्था

c) गहरी नींद की अवस्था

d) शुद्ध चेतना या समाधि

61. निम्नलिखित में से कौन सी चेतना की अवस्था विशेषता है जिसमें अद्वितीय जागरूकता होती है, जहाँ आत्मा ब्रह्म के साथ विलीन हो जाती है?

a) जाग्रत अवस्था

b) स्वप्न अवस्था

c) सूषुप्ति अवस्था

d) तुरीय अवस्था

62. आनंदमय कोश भारतीय मनोविज्ञान में किस अवधारणा के सबसे करीब है?

a) मन

b) बुद्धि

c) चेतना

d) भौतिक शरीर

63. भारतीय मनोविज्ञान का प्रमुख सिद्धांत कौन सा है?

a) अहंकार ही वास्तविक आत्मा है

b) आत्मा केवल भौतिक है

c) चेतना शाश्वत, अपरिवर्तनीय तत्व है

d) मन का क्रियाओं पर कोई प्रभाव नहीं होता

64. पंचकोश प्रणाली के अनुसार, शारीरिक संवेदनाएँ और ऊर्जा किस परत द्वारा नियंत्रित होती हैं?

a) अन्नमय कोश

b) प्राणमय कोश

c) मनोमय कोश

d) विज्ञामय कोश

70. भारतीय मनोविज्ञान परंपरा में चेतना का अध्ययन करने के लिए कौन सी विधि प्रयोग की जाती है?

a) श्रवण

b) प्रत्यक्ष

c) आत्म निरीक्षण

d) परिपेक्ष

71. चेतना के अन्वेषण में 'देखनेवाला' और 'देखी गई' के बीच मुख्य भेद क्या है?

a) देखने वाला और देखी गई हमेशा अलग होते हैं

b) देखने वाला और देखी गई एकजुट होती हैं

c) देखने वाला अस्तित्व में नहीं है

d) देखी गई बिना देखने वाले के अस्तित्व में है

72. विद्या मुख्य रूप से किस पर केंद्रित है?

a) भौतिक, अनुभवजन्य ज्ञान

b) बाहरी वस्तुओं का ज्ञान

c) आंतरिक दुनिया और आत्मिक सार का ज्ञान

d) प्रौद्योगिकीय और वैज्ञानिक ज्ञान

73. चेतना के अध्ययन में बाहरी संवेदी अंगों की मुख्य सीमा क्या है?

a) वे केवल बाहरी घटनाओं को देख सकते हैं

b) वे आंतरिक, आत्मिक आयामों तक पहुँच प्रदान

c) वे आत्म-निरीक्षण को प्रोत्साहित करते हैं

d) वे चेतना की प्रकृति को समझने के लिए

74. चेतना के अध्ययन में प्रयोग किए गए आत्मनिरीक्षण विधियों में से कौन सा नहीं है?

a) ध्यान

b) गहरी ध्यानमग्नता

c) आत्म-निरीक्षण

d) शारीरिक प्रयोग

75. भारतीय मनोविज्ञान परंपरा में चेतना का अध्ययन अंततः किसकी समझ में ले जाता है?

a) ब्रह्मांड का वैज्ञानिक ज्ञान

b) आत्म का ब्रह्म के साथ एकता और आनंद का प्रत्यक्ष अनुभव

c) भौतिक और बाहरी सत्य

d) शारीरिक शरीर पर ध्यान केंद्रित करना

76. भारतीय मनोविज्ञान में सच्चा आत्म कौन माना जाता है?

a) शरीर

b) बुद्धि

c) आत्मा

d) अहंकार

77. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मानसिक पीड़ा का कारण क्या है?

a) आनुवंशिक प्रवृत्ति

b) अविद्या या अपने सच्चे आत्म की अज्ञानता

c) खराब आहार

d) पर्यावरण प्रदूषण

78. भारतीय परंपरा में ध्यान का उद्देश्य क्या है?

a) शारीरिक तंदुरुस्ती

b) स्मृति बढ़ाना

c) आत्मबोध और आत्मनिरीक्षण

d) सामाजिक ज़िम्मेदारियों से बचाव

79. भगवद्गीता भावनात्मक संतुलन सिखाती है किसके माध्यम से?

a) औषधि

b) इनकार

c) वैराग्य और आत्म-अनुशासन

d) तर्कवाद

80. गुण (सत्त्व, रज, तम) सबसे अधिक किसको प्रभावित करते हैं?

a) पाचन क्रिया

b) धार्मिक विश्वास

c) व्यक्तित्व और व्यवहार

d) शारीरिक रूप

81. सत्त्व को रज और तम से क्या अलग करता है?

a) शारीरिक शक्ति

b) बौद्धिक दुर्बलता

c) पवित्रता, ज्ञान और संतुलन

d) सभी उत्तेजनाओं के प्रति उदासीनता

82. सांख्य दर्शन के अनुसार मन किसका भाग है?

a) पुरुष

b) प्रकृति

c) ब्रह्म

d) आनंद

83. जैन मनोविज्ञान में किस बात पर बल दिया गया है?

a) बाह्य अनुष्ठान

b) इन्द्रिय सुख

c) अहिंसा और मानसिक शुद्धि

d) वैज्ञानिक भौतिकवाद

84. प्राणायाम का मानसिक स्वास्थ्य में क्या योगदान है?

a) यह हृदय गति बढ़ाता है

b) यह नींद लाता है

c) यह भावनाओं को नियंत्रित करता है और तनाव को कम करता है

d) यह वजन बढ़ाता है

85. वेदांत के अनुसार आत्मा की अज्ञानता का परिणाम क्या है?

a) शारीरिक स्वास्थ्य

b) मुक्ति

c) दुख और बंधन

d) शैक्षणिक सफलता

86. भारतीय मनोविज्ञान में आत्मनिरीक्षण का प्रयोग किस रूप में होता है?

a) दूसरों की आलोचना का माध्यम

b) बाह्य जागरूकता को मजबूत करने की विधि

c) आंतरिक चेतना को समझने का उपकरण

d) मनोरंजन का रूप

87. वेदांत में कौन-सा मार्ग ज्ञान और आत्म-चिंतन पर केंद्रित है?

a) भक्ति योग

b) कर्म योग

c) हठ योग

d) ज्ञान योग

88. विपश्यना ध्यान का उद्देश्य क्या है?

a) मांसपेशियों का निर्माण

b) बाह्य सुखों का अनुभव

c) सजगता और जागरूकता को विकसित करना

d) विदेशी भाषाएँ सीखना

89. उपनिषद किसकी प्राप्ति की वकालत करते हैं?

a) सांसारिक महत्त्वाकांक्षाएँ

b) बौद्धिक उपलब्धियाँ

c) आत्मा और ब्रह्म की एकता

d) सामाजिक श्रेणीबद्धता



90. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार बुद्धि किस शरीर का भाग है?

a) भौतिक

b) स्थूल

c) सूक्ष्म

d) ज्योतिर्मय

91. तमस किसका कारण बन सकता है?

a) भावनात्मक स्थिरता

b) मानसिक स्पष्टता

c) अवसाद और जड़ता

d) रचनात्मकता

92. कौन-सा गुण बेचैनी और आसक्ति उत्पन्न करता है?

a) सत्त्व

b) रज

c) तम

d) चित्

93. भारतीय मनोविज्ञान के अभ्यासों का अंतिम लक्ष्य क्या है?

a) प्रसिद्धि

b) दुख से मुक्ति

c) आर्थिक स्वतंत्रता

d) स्मरण शक्ति में सुधार

94. त्रिगुण सिद्धांत किस बात को समझाता है?

a) ब्रह्मांड की रचना

b) शारीरिक स्वास्थ्य

c) मानव व्यवहार की विविधता

d) ज्योतिष

95. भारतीय चिंतन में चेतना क्या है?

a) सभी चीजों से अलग

b) सभी अनुभवों का स्रोत

c) एक माया

d) न्यूरॉन्स का उपोत्पाद

96. माण्डूक्य उपनिषद किस विषय पर प्रकाश डालती है?

a) कर्म के नियम

b) भावनात्मक विकास की अवस्थाएँ

c) चेतना की चार अवस्थाएँ

d) आहार नियम

97. तुरीय को अन्य चेतन अवस्थाओं से क्या अलग करता है?

a) यह स्वप्न अवस्था से जुड़ा है

b) यह इन्द्रिय अनुभूति को शामिल करता है

c) यह शुद्ध जागरूकता की अवस्था है

d) यह समस्या समाधान से जुड़ी है

98. गहरी नींद (सुषुप्ति) की विशेषता क्या है?

a) तीव्र भावनाएँ

b) मानसिक गतिविधि का अभाव

c) उच्च संज्ञानात्मक क्रिया

d) सक्रिय योजना

99. निदिध्यासन का लक्ष्य क्या है?

a) तार्किक बहस

b) ज्ञान का संचय

c) प्रत्यक्ष अनुभवजन्य बोध

d) सामाजिक सेवा

100. आंतरिक अन्वेषण के लिए किस ज्ञान के साधन पर बल दिया गया है?

a) प्रत्यक्ष

b) अनुमान

c) उपमा

d) शब्द (प्रामाणिक वचन)

101. "चित्तवृत्तिनिरोधः" किस योग सूत्र का आरंभिक सूत्र है?

a) पतंजलि योगसूत्र

b) सांख्य सूत्र

c) ब्रह्म सूत्र

d) उपनिषद

102. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार चित्त में कौन-कौन सी वृत्तियाँ होती हैं?

a) केवल चेतना

b) इच्छा और द्वेष

c) ज्ञान, स्मृति, कल्पना, निद्रा, प्रमाण

d) क्रोध और लालच

103. यम और नियम किसका अंग हैं?

a) कर्म योग

b) हठ योग

c) अष्टांग योग

d) ज्ञान योग

104. यम में निम्नलिखित में से कौन शामिल नहीं है?

a) अहिंसा

b) सत्य

c) ध्यान

d) अस्तेय

105. नियमों में 'शौच' का अर्थ क्या है?

a) बाहरी प्रदर्शन

b) ध्यान अभ्यास

c) शुद्धता

d) मनोरंजन

106. अष्टांग योग में 'प्रत्याहार' का उद्देश्य क्या है?

a) भोजन को त्यागना

b) इन्द्रियों को नियंत्रित करना

c) श्वास को रोकना

d) दौड़ना

107. धारणा का अर्थ है—

a) मन को किसी एक वस्तु पर केंद्रित करना

b) नींद लेना

c) इन्द्रियों को सजग रखना

d) क्रिया करना

108. ध्यान और धारणा में क्या अंतर है?

a) ध्यान संक्षिप्त होता है

b) धारणा में बहिर्मुखी प्रवृत्ति होती है

c) ध्यान सतत और गहन होता है

d) दोनों एक ही हैं

109. समाधि की अवस्था में क्या होता है?

a) मन स्थिर नहीं होता

b) विचार चलते रहते हैं

c) मन, बुद्धि और अहंकार लीन हो जाते हैं

d) इन्द्रियाँ अधिक सक्रिय होती हैं

110. भारतीय दृष्टिकोण में "कर्म" का अर्थ क्या है?

a) केवल शारीरिक क्रिया

b) मानसिक और शारीरिक क्रिया दोनों

c) भाग्य

d) मनोरंजन

111. संस्कार किस प्रकार से व्यवहार को प्रभावित करते हैं?

a) केवल वर्तमान में

b) केवल जन्म के समय

c) गहरे स्तर पर मन को प्रभावित कर भविष्य के कर्मों को निर्देशित करते हैं

d) कोई प्रभाव नहीं पड़ता

112. भारतीय मनोविज्ञान में "अहंकार" क्या दर्शाता है?

a) आत्मज्ञान

b) अज्ञान

c) स्व का मिथ्या बोध

d) प्रेम

113. 'श्रद्धा' योगसूत्र के अनुसार किसका अंग है?

a) असंयम

b) क्लीशा

c) साधनपाद

d) कर्मविपाक

114. 'वैराग्य' का सही अर्थ क्या है?

a) विरक्ति

b) आसक्ति का त्याग

c) जीवन से घृणा

d) आलस्य

115. "स्मृति" को पतंजलि योगदर्शन में कैसे परिभाषित किया गया है?

a) केवल वर्तमान को जानना

b) अनुभवों का स्थायी प्रभाव

c) निद्रा की अवस्था

d) शुद्ध विचार

116. "साक्षी भाव" किस स्थिति को दर्शाता है?

a) संघर्ष की स्थिति

b) आसक्ति की स्थिति

c) तटस्थ जागरूकता

d) भ्रम

117. अष्टांग योग का अंतिम अंग क्या है?

a) ध्यान

b) धारणा

c) प्राणायाम

d) समाधि

118. भारतीय मनोविज्ञान में 'स्व' का अनुभव कैसे संभव है?

a) बाह्य ज्ञान से

b) शास्त्रों को पढ़कर

c) प्रत्यक्ष अनुभव और ध्यान द्वारा

d) तर्क से

119. "आत्मा" किसे कहा गया है?

a) शरीर

b) चित्त

c) साक्षी चेतना

d) मन

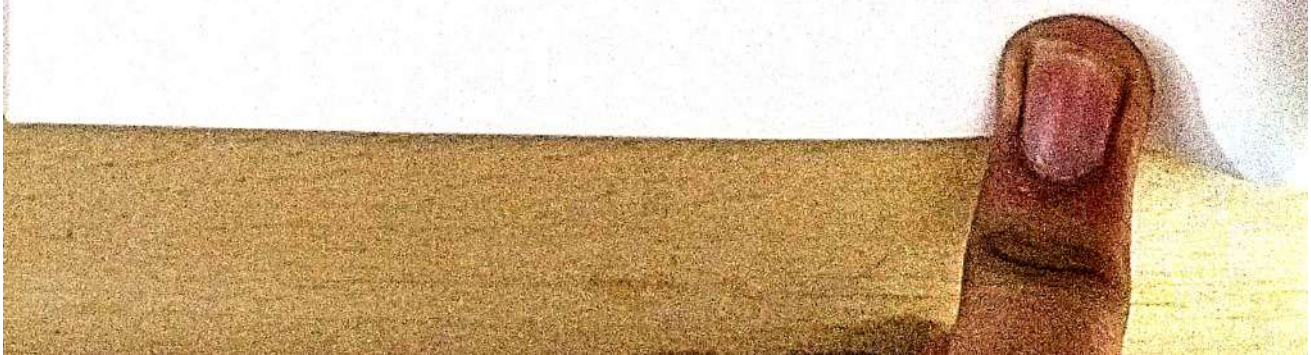

120. "प्रकृति" में कितने तत्त्व माने जाते हैं सांख्य दर्शन में?

a) 3

b) 5

c) 24

d) 108

121. 'चित्त' के मुख्य अवयव कौन-से हैं?

a) शरीर, इन्द्रियाँ, आत्मा

b) मन, बुद्धि, अहंकार

c) मन, आत्मा, ज्ञान

d) केवल बुद्धि

122. 'क्लेश' योगसूत्र में क्या दर्शाते हैं?

a) मानसिक शक्तियाँ

b) सुख के साधन

c) दुःख के कारण

d) मोक्ष के उपाय

123. 'अविद्या' से उत्पन्न होने वाले अन्य क्लेश कौन-से हैं?

a) राग, द्वेष, अभिनिवेश, असंयम

b) राग, द्वेष, अहंकार, भय

c) अहंकार, राग, द्वेष, अभिनिवेश

d) प्रेम, आशा, स्वार्थ, भय

124. पतंजलि के अनुसार "निरोध" का क्या फल है?

a) निद्रा

b) अज्ञान

c) स्वरूप का अभिव्यक्ति

d) मनोविकृति

125. भारतीय मनोविज्ञान का उद्देश्य क्या है?

a) समाज की सेवा

b) मानसिक रोगों का इलाज

c) आत्मा का साक्षात्कार और मुक्ति

d) वैज्ञानिक प्रयोग

126. 'मन' भारतीय मनोविज्ञान में किसका उपकरण है?

a) शरीर का

b) आत्मा का

c) बुद्धि का

d) समाज का

127. 'बुद्धि' का कार्य क्या है?

a) निर्णय लेना

b) कल्पना करना

c) संवेदना अनुभव करना

d) भोजन पचाना

128. 'अहंकार' किस प्रकार की भावना है?

a) त्याग की

b) नियंत्रण की

c) 'मैं' की पहचान की

d) अन्य के प्रति सहानुभूति की

129. भारतीय दर्शन में 'स्व' का स्वरूप कैसा माना गया है?

a) नश्वर

b) भौतिक

c) शुद्ध, साक्षी, चैतन्य

d) कर्म के अनुसार बदलने वाला

130. योगदर्शन में 'अष्टधा प्रकृति' का क्या अर्थ है?

a) प्रकृति के आठ रूप

b) योग के आठ लाभ

c) चित्त की आठ अवस्थाएँ

d) आत्मा के आठ गुण

131. 'माया' का कार्य क्या होता है?

a) सत्य को प्रकट करना

b) आत्मा को मुक्त करना

c) वास्तविकता को ढंकना

d) केवल ज्ञान देना

132. भारतीय मनोविज्ञान में 'अनुभव' का महत्व क्यों है?

a) यह तर्क से श्रेष्ठ है

b) केवल ग्रंथ पढ़ने से मुक्ति मिलती है

c) अनुभव भ्रमित करता है

d) यह अनावश्यक है

133. ध्यान की प्रक्रिया में 'विचारों का निरोध' क्यों आवश्यक है?

a) क्योंकि विचार शक्ति बढ़ाते हैं

b) क्योंकि विचार सत्य हैं

c) ताकि मन शुद्ध और स्थिर हो सके

d) ताकि नींद आ जाए

134. 'वैराग्य' किस अवस्था का प्रतीक है?

a) मोह

b) त्याग

c) लोभ

d) भय

135. किस अवस्था में आत्मा 'साक्षी' रूप में स्थित होती है?

a) निद्रा
b) समाधि
c) राग-द्वेष
d) क्रिया

136. सांख्य दर्शन में 'पुरुष' क्या है?

a) मन
b) बुद्धि
c) चैतन्य आत्मा
d) शरीर

137. ध्यान में 'एकाग्रता' क्यों आवश्यक है?

a) ताकि मन व्यस्त रहे
b) ताकि लक्ष्य प्राप्त हो
c) ताकि आनंद आए
d) ताकि विचार दौड़ते रहें

138. 'प्रमाण' का अर्थ योगदर्शन में क्या है?

a) तर्क का अंत
b) सही ज्ञान प्राप्त करने का साधन
c) स्वप्न
d) केवल स्मृति

139. 'स्मृति' और 'प्रमाण' में अंतर क्या है?

a) स्मृति वर्तमान है, प्रमाण भूतकाल
b) स्मृति अज्ञान है, प्रमाण ज्ञान
c) स्मृति पूर्व अनुभव है, प्रमाण सत्य का साधन
d) दोनों एक ही हैं

140. 'ध्यान' का अंतिम लक्ष्य क्या है?

a) मानसिक विश्राम

b) इन्द्रियों का आनंद

c) आत्मा का साक्षात्कार

d) विचारों की वृद्धि

141. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार 'विकार' किसके कारण होते हैं?

a) शारीरिक रोग

b) समाज

c) अज्ञान और अहंकार

d) विज्ञान

142. 'प्राणायाम' से क्या लाभ होता है?

a) पाचन शक्ति में वृद्धि

b) इन्द्रियाँ तेज़ होती हैं

c) चित्त स्थिर होता है

d) आलस्य बढ़ता है

143. योगदर्शन के अनुसार 'अविद्या' क्या है?

a) पढ़ाई की कमी

b) सत् को असत् समझना

c) बुद्धि की शक्ति

d) तर्कशक्ति

144. भारतीय मनोविज्ञान में 'शुद्ध चित्त' की पहचान क्या है?

a) भ्रमित मन

b) स्थिर, शांत और निर्मल चित्त

c) अत्यधिक सक्रिय चित्त

d) चिंतित चित्त

145. ध्यान के अभ्यास में 'संकल्प' क्यों महत्वपूर्ण है?

a) संकल्प से शक्ति मिलती है

b) यह मनोरंजन करता है

c) यह संदेह पैदा करता है

d) यह बंधन का कारण बनता है

146. योग के अभ्यास से कौन-सी भावना विकसित होती है?

a) मोह

b) घृणा

c) करुणा

d) क्रोध

147. 'स्वाध्याय' का अर्थ क्या है?

a) आत्मा की पूजा

b) शास्त्रों का अध्ययन और आत्मनिरीक्षण

c) दूसरों की आलोचना

d) केवल स्मृति पढ़ना

148. भारतीय दृष्टिकोण से 'मुक्ति' क्या है?

a) स्वर्ग प्राप्ति

b) शरीर का अंत

c) जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति

d) धन की प्राप्ति

149. योग के अनुसार किससे चित्त की शुद्धि होती है?

a) विचारों के बढ़ने से

b) इन्द्रिय सुख से

c) यम, नियम और ध्यान से

d) भय से

150. भारतीय मनोविज्ञान किस पर सबसे अधिक बल देता है?

a) बाह्य आचरण

b) अनुभव और आत्मसाक्षात्कार

c) सामाजिक संबंध

d) आर्थिक उन्नति

उत्तर-दर्शिका

Q.	Answer	Q.	Answer	Q.	Answer	Q.	Answer	Q.	Answer
1	(B)	2	(B)	3	(B)	4	(C)	5	(C)
6	(B)	7	(B)	8	(C)	9	(B)	10	(B)
11	(A)	12	(B)	13	(B)	14	(B)	15	(A)
16	(B)	17	(B)	18	(B)	19	(C)	20	(B)
21	(B)	22	(B)	23	(B)	24	(B)	25	(C)
26	(B)	27	(B)	28	(C)	29	(B)	30	(B)
31	(A)	32	(C)	33	(B)	34	(B)	35	(B)
36	(B)	37	(B)	38	(B)	39	(C)	40	(B)
41	(C)	42	(B)	43	(B)	44	(B)	45	(B)
46	(C)	47	(B)	48	(C)	49	(C)	50	(B)
51	(B)	52	(C)	53	(C)	54	(C)	55	(C)
56	(C)	57	(C)	58	(C)	59	(C)	60	(D)
61	(D)	62	(C)	63	(C)	64	(B)	65	(C)
66	(B)	67	(B)	68	(D)	69	(B)	70	(C)
71	(A)	72	(C)	73	(B)	74	(D)	75	(B)
76	(C)	77	(B)	78	(C)	79	(C)	80	(C)
81	(C)	82	(B)	83	(C)	84	(C)	85	(C)
86	(C)	87	(D)	88	(C)	89	(C)	90	(C)
91	(C)	92	(B)	93	(B)	94	(C)	95	(B)

Q.	Answer	Q.	Answer	Q.	Answer	Q.	Answer	Q.	Answer
96	(C)	97	(C)	98	(B)	99	(C)	100	(A)
101	(A)	102	(C)	103	(C)	104	(C)	105	(C)
106	(B)	107	(A)	108	(C)	109	(C)	110	(B)
111	(C)	112	(C)	113	(C)	114	(C)	115	(B)
116	(C)	117	(C)	118	(C)	119	(B)	120	(C)
121	(C)	122	(C)	123	(C)	124	(C)	125	(C)
126	(C)	127	(C)	128	(C)	129	(C)	130	(A)
131	(C)	132	(A)	133	(C)	134	(B)	135	(B)
136	(C)	137	(C)	138	(B)	139	(C)	140	(C)
141	(C)	142	(C)	143	(B)	144	(B)	145	(A)
146	(C)	147	(D)	148	(B)	149	(C)	150	(B)

पुस्तक के विषय में

'*भारतीय दृष्टिकोण से मन और आत्मा*' भारतीय मनोविज्ञान की परंपरा का एक गहन और समग्र अध्ययन प्रस्तुत करती है, जो सनातन दर्शन और आत्म-चिंतन की अवधारणाओं पर आधारित है। यह पुस्तक त्रिगुण सिद्धांत, पंचकोश सिद्धांत, चित्त की चार अवस्थाएँ तथा शरीरख्रमनख्रबुद्धिख्रचेतना की जटिल संरचना जैसे मौलिक विषयों की विस्तार से व्याख्या करती है। इसमें यह बताया गया है कि भारतीय दृष्टिकोण मानसिक स्वास्थ्य, आंतरिक रूपांतरण, और आत्मबोध को पराविद्या (आध्यात्मिक ज्ञान) और अपराविद्या (इंद्रियजन्य ज्ञान) के समन्वय से किस प्रकार समझता है। यह पुस्तक भारतीय मनोविज्ञान के ऐतिहासिक विकास, शिक्षा, परिवार और समाज में इसकी भूमिका पर प्रकाश डालते हुए पाठकों-चाहे वे विद्यार्थी हों, शोधार्थी हों या आत्मान्वेषी-को मानसिक स्वास्थ्य और चेतना को एक विशिष्ट भारतीय दृष्टिकोण से समझने के लिए प्रेरित करती है।



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-36-9

Bharat BoudhIKS

खंड-11

दर्शन

भारतीय तत्त्वज्ञान की षड्दर्शन परंपरा

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

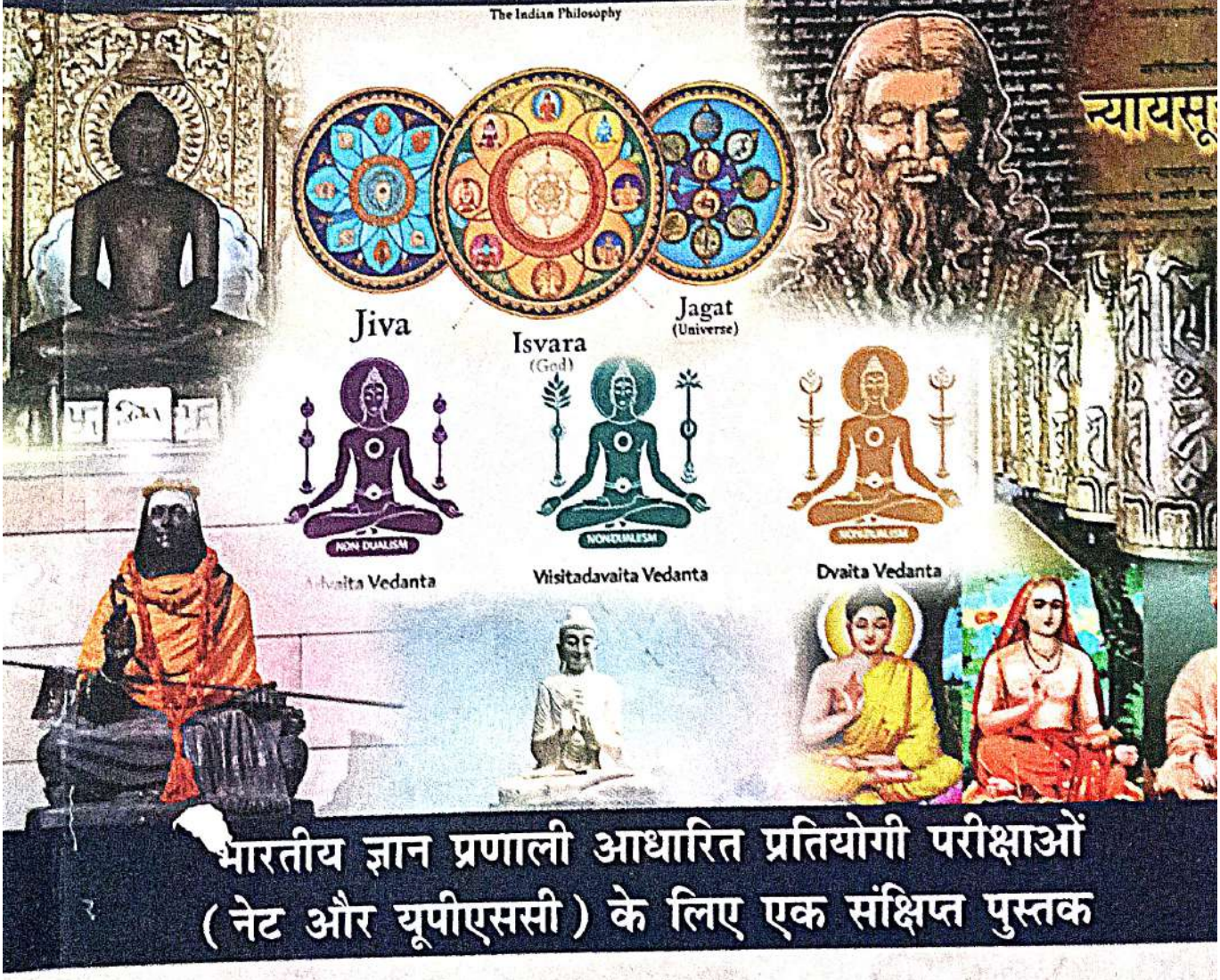

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

दर्शन : भारतीय तत्वज्ञान की षड्दर्शन परंपरा

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वतापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक / ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **दर्शनः भारतीय तत्त्वज्ञान की षड्दर्शन परंपरा**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. शोभिता सिंघल

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-26-0

मूल्य : 250/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

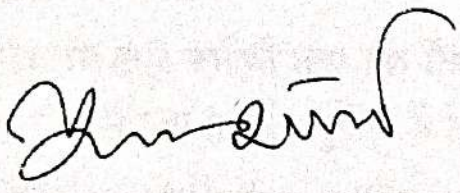

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

प्रस्तावना 9

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान 11

1. परिचय 13
   - भारतीय दर्शन का उद्देश्य और स्वरूप 14
   - पश्चिमी दर्शन से भिन्नताएँ 15
2. भारतीय दर्शन के विभिन्न शालाएँ 18
   - आस्तिक शालाएँ 19
3. सांख्य दर्शन– चैतन्य और पदार्थ का द्वैतवाद 24
   - पुरुष – शुद्ध चैतन्य 24
   - प्रकृति – मूल पदार्थ 24
   - पुरुष और प्रकृति का पारस्परिक संबंध 25
   - सांख्य का प्रभाव और विरासत 26
4. योग – मन और शरीर का व्यावहारिक अनुशासन 26
   - योग का उद्देश्य 27
   - अष्टांग योग (आठ अंगों वाला मार्ग) 27
   - योग में ईश्वर की भूमिका 28
   - योग की मनोविज्ञान और नैतिक दृष्टि 28
   - मुक्ति और योग की व्यापकता 29
5. मीमांसा – कर्मकांड और व्याख्याशास्त्र 29
   - मुख्य दार्शनिक सिद्धांत 30
   - ज्ञानमीमांसा – प्रमाण और सत्य का साधन 30
   - मोक्ष की अवधारणा 31
   - मीमांसा का प्रभाव और योगदान 31

- वेदांत – उपनिषदों का दर्शन 32
- वेदांत के मूल सिद्धांत 33
- नास्तिक दर्शन परंपराएँ 35
- आधुनिक विचारकों पर प्रभाव 42
- समष्टिगत प्रभाव और आज की प्रासंगिकता 46
- सारांश 47

सुझावात्मक पठनीय सामग्री 49

बहुविकल्पीय प्रश्न 51

उत्तर दर्शिका 82

प्रस्तावना



दर्शन: भारतीय तत्त्वज्ञान की षड्दर्शन परंपरा, यह पुस्तक भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता में निहित गहरे ज्ञान का अन्वेषण करती है। वेदों, उपनिषदों और अन्य पूजनीय ग्रंथों की शाश्वत शिक्षाओं में निहित यह श्रृंखला उन विचारों का अध्ययन करती है, जिन्होंने हजारों वर्षों से भारत में व्यक्तियों और समुदायों के जीवन को आकार दिया है। भारतीय संस्कृति, अपनी संपूर्णता में, केवल आचार-प्रथाओं का संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक समग्र प्रणाली है जो व्यक्तियों को व्यक्तिगत विकास, आध्यात्मिक उन्नति और अंतिम लक्ष्य मोक्ष (मुक्ति) की ओर मार्गदर्शन करती है।

प्राचीन भारतीय दार्शनिक प्रणाली विश्व में अब तक की सबसे गहरी और विविध बौद्धिक परंपराओं में से एक है। यह सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरोहर में निहित है, जो सहस्त्राब्दियों तक फैली हुई है। भारतीय दर्शन एक कशीदाकारी विचारों, अवधारणाओं और प्रथाओं का एक समन्वय है, जिसमें से प्रत्येक विचार आज भी मानव सोच और अनुभव की रूपरेखा को प्रारूप दे रहा है। उपनिषदों से लेकर भगवद् गीता तक, बुद्ध के उपदेशों से लेकर वेदांत और न्याय स्कूलों तक, प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पाई जाने वाली दार्शनिक सूझ-बूझ हमें एक अद्वितीय दृष्टिकोण प्रदान करती है, जिसके माध्यम से हम वास्तविकता, आत्मा, ज्ञान और ब्रह्मांड के स्वरूप का अन्वेषण कर सकते हैं।

यह पुस्तक आपको प्राचीन भारत की मुख्य दार्शनिक प्रणालियों के माध्यम से एक यात्रा पर ले जाने का प्रयास करती है, जिसमें उनके ऐतिहासिक मूल, दार्शनिक तर्क और निरंतर प्रासंगिकता की खोज की जाएगी। वेदांत, योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक और मीमांसा जैसी विविध विचारधाराएँ, प्रत्येक दुनिया और उसमें हमारे स्थान को समझने के अलग-अलग तरीके प्रस्तुत करती हैं। ये प्रणालियाँ, जो अक्सर धार्मिक अभ्यास और आध्यात्मिक आकांक्षाओं से जुड़ी होती हैं, केवल बौद्धिक रूपरेखाएँ ही नहीं, बल्कि ज्ञान और सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन भी प्रदान करती हैं।

The conception of the world as deduced from the Veda, and chiefly from the Upanishads, is indeed astounding.

Source: The Six Systems of Indian Philosophy by Max Muller

****

What distinguishes the Vedanta philosophy from all other philosophies is that it is at the same time a religion and a philosophy.

Source: Three Lectures on the Vedanta Philosophy-by Max Muller



Prof F. Max Müller

Famous German philosopher, writer and philologist. Muller was considered the foremost Sanskrit scholar of his day, translating vast amounts of ancient literature into English. His belief that the study of the earliest documents regarding Vedic culture would provide clues about the development of subsequent European religions led him to study the ancient texts of the Vedic scriptures.

It was only my first meeting with the Indian philosophy that confirmed my vague speculations and seemed at once logical and boundless.

Source: India and World Civilization-by D. P. Singhal



William Butler Yeats

One of the most celebrated Irish poets, dramatists and essayists of the twentieth century. Yeats helped with the founding of the Abbey Theatre and served as an Irish senator during the latter part of his life. In 1923, he was awarded the Nobel Prize in Literature. Highly inspired by the Vedanta philosophy, he also co-translated The Ten Principal Upanishads.

विद्या भारती उच्च संस्थान



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) का उद्देश्य एक ऐसी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है जो न केवल शैक्षणिक उत्कृष्टता पर बल देती है, बल्कि चरित्र निर्माण और राष्ट्र निर्माण को भी अपनी शिक्षा व्यवस्था का मूल अंग मानती है। यह संस्थान भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और समग्र दृष्टिकोण पर आधारित शिक्षा को बढ़ावा देता है। संस्थान का प्रेरणास्पद ध्येय वाक्य **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान ही सच्चा है जो मुक्ति दिलाए" - इस उद्देश्य को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। VBUSS का प्रयास है कि ऐसी पीढ़ी तैयार की जाए जो न केवल शैक्षणिक रूप से सक्षम हो, बल्कि समाजिक रूप से उत्तरदायी और आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

VBUSS उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नैतिक जीवन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आलोचनात्मक चिंतन, और सांस्कृतिक समझ को शिक्षा की मूल आधारशिलाएं मानता है। संस्थान ने पूरे देश में प्रभावशाली शैक्षणिक नेटवर्क के माध्यम से उल्लेखनीय योगदान दिया है। इसमें शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, स्नातक संस्थानों, और व्यावसायिक केंद्रों की स्थापना शामिल है, जो उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और पहुँच को सुदृढ़ करते हैं। उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। भारतभर में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला और समाजशास्त्र जैसे विविध क्षेत्रों में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का सशक्त नेटवर्क स्थापित किया गया है। इन संस्थानों ने कठोर पाठ्यक्रम, शोध केंद्रित पहल, और शैक्षणिक गुणवत्ता के बल पर अपनी अलग पहचान बनाई है।

इसके साथ ही, विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा का अवसर प्रदान कर सामाजिक समावेश को भी बढ़ावा दिया है। इसके पूर्व छात्रों ने विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दिया है, जो विद्या भारती की शिक्षा-दृष्टि की सफलता को प्रमाणित करते हैं।

VBUSS का सतत प्रयास है कि आधुनिक शिक्षा में प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का पुनः समावेश हो और उसे देश की शिक्षा व्यवस्था का अभिन्न अंग बनाया जाए।

यह पुस्तक उस महान उद्देश्य की एक विनम्र प्रस्तुति है। इसमें भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दर्शनों और विषयों को सरल, बोधगम्य और प्रेरणादायक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हम आशा करते हैं कि यह ग्रंथ विद्यार्थियों, शिक्षकों और शोधकर्ताओं के लिए एक प्रेरणास्पद प्रवेशद्वार सिद्ध होगा, जो उन्हें भारत की मौलिक ज्ञान-संपदा की गहराइयों में ले जाएगा-जहाँ केवल जानकारी नहीं, प्रेरणा भी प्राप्त होगी।

दर्शन : भारतीय तत्वज्ञान की षड्दर्शन परंपरा



भारतीय दर्शन एक समृद्ध और विविधतापूर्ण परंपरा है जो हजारों सालों से चली आ रही है, जिसमें विभिन्न विचारधाराएँ शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक का वास्तविकता, स्वयं और ब्रह्मांड को समझने का अपना अनूठा दृष्टिकोण है। भारतीय विचार के छह शास्त्रीय दर्शन (दार्शनिक प्रणालियाँ) - न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत - तर्क, तत्वमीमांसा, नैतिकता और ज्ञानमीमांसा पर अलग-अलग दृष्टिकोण प्रदान करते हैं, लेकिन वे सभी अस्तित्व की प्रकृति को समझने और मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने के एक सामान्य लक्ष्य को साझा करते हैं। इनमें से कई प्रणालियों के केंद्र में कर्म की अवधारणा, कारण और प्रभाव का नियम और पुनर्जन्म में विश्वास है। इसके अतिरिक्त, ध्यान और आत्म-अनुशासन जैसी प्रथाओं के माध्यम से मन, चेतना और भौतिक दुनिया के परस्पर संबंधों का पता लगाया जाता है। भारतीय दार्शनिक परंपरा अनुभवात्मक ज्ञान पर जोर देती है, जिसे अक्सर प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि या बोध के माध्यम से पाया जाता है, और यह आध्यात्मिक प्रथाओं और आत्म-साक्षात्कार की खोज से गहराई से जुड़ा हुआ है।

1. परिचय

भारतीय दर्शन केवल कुछ अमूर्त विचारों या शैक्षणिक सिद्धांतों का संग्रह नहीं है; यह जीवन जीने का एक ऐसा तरीका है जो भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक इतिहास में गहराई से रचा-बसा है। यह आत्मचिंतन, संवाद और आंतरिक परिवर्तन की प्रक्रिया में निहित है और अस्तित्व, ज्ञान, नैतिकता, चेतना और अंतिम मुक्ति जैसे मूलभूत प्रश्नों से गहराई से जुड़ा हुआ है।

भारतीय दर्शन एक समृद्ध और विविध दार्शनिक परंपरा को दर्शाता है, जिसका उद्भव और विकास हजारों वर्षों में भारतीय उपमहाद्वीप में हुआ। यह विभिन्न दर्शनों, परंपराओं और दृष्टिकोणों को समाहित करता है, जो यथार्थ, आत्मा, ज्ञान, नैतिकता और जीवन के परम उद्देश्य-दुख और बंधन से मुक्ति-की खोज करते हैं।

सामान्य धारणा के विपरीत कि दर्शन केवल सैद्धांतिक चर्चाओं तक सीमित होता है, भारतीय दर्शन में सिद्धांत और व्यवहार का समन्वय है। इसका उद्देश्य केवल बौद्धिक रूप से संसार को समझना नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और नैतिक रूप से व्यक्ति का रूपांतरण करना भी है। इस कारण से भारतीय दर्शन का दायरा सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से व्यापक है। इसमें सम्मिलित हैं:

- आत्मा और ब्रह्मांड की प्रकृति पर दार्शनिक (तात्त्विक) प्रश्न
- ज्ञान प्राप्ति के वैध साधनों (प्रमाणों) का विश्लेषण
- उचित आचरण और नैतिक जीवन के लिए नैतिक ढाँचे
- मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने हेतु आध्यात्मिक साधन
- मानव व्यवहार और दुःख की सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समझ

प्रारंभिक वैदिक मंत्रों और उपनिषदों के चिंतन से लेकर न्याय दर्शन की तार्किक प्रणाली और बौद्ध व जैन दर्शनों के ध्यान-आधारित अंतर्दृष्टियों तक, भारतीय दर्शन एक व्यापक और स्थायी बौद्धिक परंपरा को प्रस्तुत करता है। यह कोई एकरूप व्यवस्था नहीं है, बल्कि एक बहुलतावादी परिदृश्य है, जहाँ परस्पर विरोधी विचारधाराएँ भी सह-अस्तित्व में रहते हुए रचनात्मक संवाद करती हैं।

भारतीय दर्शन का उद्देश्य और स्वरूप

भारतीय दर्शन की मूल प्रेरणा मानव जीवन की स्थिति को समझने और उसकी सीमाओं को पार करने की गहन चिंता से उत्पन्न होती है। यद्यपि यह आत्मा, ब्रह्मांड और प्रमाणिक ज्ञान जैसे तात्त्विक (मेटाफिजिकल) और ज्ञानमीमांसीय (एपिस्टेमोलॉजिकल) विषयों पर विचार करता है, फिर भी इसका उद्देश्य जन्म, मृत्यु, दुःख और पुनर्जन्म जैसी अस्तित्वगत समस्याओं का समाधान खोजना है।

भारतीय दार्शनिक प्रणालियों की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि वे **मोक्ष (मुक्ति)** की ओर उन्मुख होती हैं, जिसे जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। इस लक्ष्य तक पहुँचने की यात्रा में निम्नलिखित चरण शामिल होते हैं:

- यथार्थ की प्रकृति को समझना (तत्त्व-ज्ञान)
- प्रमाणिक साधनों से ज्ञान प्राप्त करना (प्रमाण)
- नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासनों का अभ्यास

- जीवन के असत्य या क्षणभंगुर पक्षों से विरक्त होना

इस प्रकार, भारतीय दर्शन सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों है-यह गहन और सूक्ष्म सिद्धांतों का विकास करता है, लेकिन उसका केंद्रीय उद्देश्य मानवीय रूपांतरण होता है।

इस विषय में गहन अध्ययन करना स्वाभाविक रूप से व्यापक ब्रह्मांड की ओर ले जाता है, वह परिप्रेक्ष्य जहाँ व्यक्ति के निर्णय और कर्म घटित होते हैं। यह अंततः एक सर्वव्यापक शक्ति की धारणा की ओर ध्यान आकर्षित करता है, जिसे सामान्यतः ईश्वर या दिव्यता के रूप में जाना जाता है।

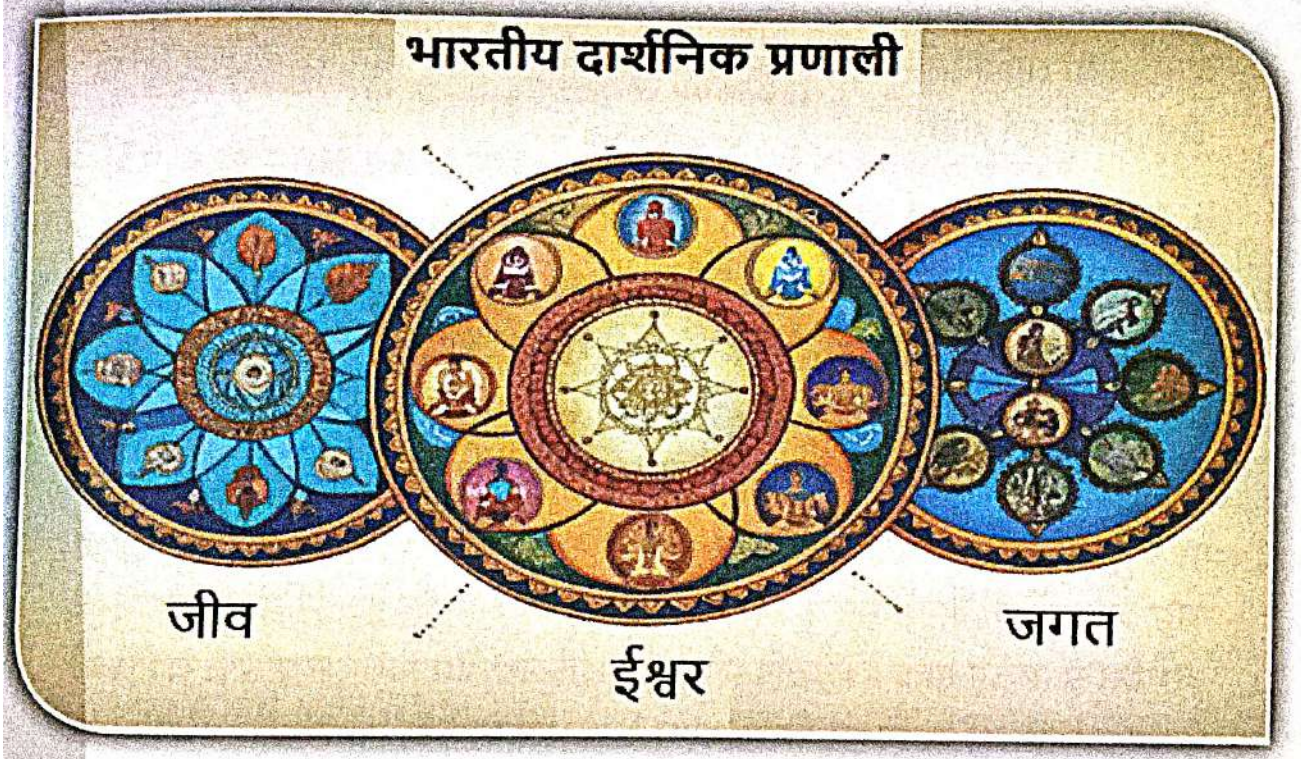

भारतीय दार्शनिक चिंतन आम तौर पर इन विषयों की पड़ताल तीन प्रमुख अवधारणाओं के माध्यम से करता है: जीव (व्यक्तिगत आत्मा), जगत (संसार या ब्रह्मांड), और ईश्वर (भगवान)।

पश्चिमी दर्शन से भिन्नताएँ

यद्यपि भारतीय और पश्चिमी दर्शन दोनों का उद्देश्य सत्य की खोज और मानव स्थिति को समझना है, फिर भी ये अपने दृष्टिकोण, प्राथमिकताओं और दार्शनिक स्वभाव में काफी भिन्न हैं। इन भिन्नताओं की जड़ें उनके ऐतिहासिक संदर्भों, सांस्कृतिक आधारों और बौद्धिक प्रवृत्तियों में निहित हैं। नीचे भारतीय दर्शन की विशिष्टता को उजागर करने वाले कुछ प्रमुख अंतर दिए गए हैं:

i. उद्देश्य-केन्द्रित बनाम सैद्धांतिक केंद्रित

भारतीय दर्शन मुख्यतः उद्देश्य-केन्द्रित है। इसका केंद्रीय लक्ष्य मोक्ष (मुक्ति) है-दुख, अज्ञान और जन्म-मृत्यु के चक्र (संसार) से मुक्ति। दर्शन को आत्म-परिवर्तन और परम स्वतंत्रता की ओर एक मार्ग के रूप में देखा जाता है।

इसके विपरीत, पश्चिमी दर्शन विशेषकर प्राचीन ग्रीस से लेकर आधुनिक युग तक, सैद्धांतिक जिज्ञासा पर ज़ोर देता रहा है-तार्किक तर्क, विश्लेषण और अनुभवजन्य (एम्पिरिकल) जाँच के माध्यम से संसार को समझने का प्रयास। यद्यपि नैतिकता और अस्तित्व संबंधी चिंताएँ भी उसमें हैं, वे अक्सर तत्त्वमीमांसा (मेटाफिजिक्स) और ज्ञानमीमांसा (एपिस्टेमोलॉजी) से अलग मानी जाती हैं और व्यक्तिगत मुक्ति से उनका सीधा संबंध नहीं होता।

ii. दर्शन और आध्यात्मिक साधना का समन्वय

भारतीय दर्शन में ध्यान, आत्म-अनुशासन, भक्ति और विरक्ति जैसी आध्यात्मिक साधनाएँ दर्शन का अनिवार्य अंग हैं। केवल बौद्धिक समझ पर्याप्त नहीं मानी जाती, बल्कि व्यक्तिगत अनुभव को सत्य की प्राप्ति का साधन माना जाता है। योग, वेदांत और बौद्ध दर्शन जैसे पंथ प्रत्यक्ष अनुभव पर विशेष बल देते हैं।

वहीं पश्चिमी परंपरा, खासकर आधुनिक काल में, दर्शन को एक धर्मनिरपेक्ष और अकादमिक अनुशासन के रूप में देखती है, जो आमतौर पर धर्म या आध्यात्मिक अभ्यास से अलग होता है। यद्यपि प्लेटो या प्लॉटिनस जैसे प्रारंभिक पश्चिमी दार्शनिकों ने उच्चतर यथार्थों पर विचार किया, परन्तु आगे चलकर तर्क, विज्ञान और राजनीति पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया और धार्मिक पक्षों से अक्सर दूरी बना ली गई।

iii. शास्त्रों का महत्व बनाम अनुभवजन्य खोज

भारतीय दर्शनों, विशेषकर **आस्तिक परंपराओं** (जैसे सांख्य, योग, वेदांत आदि) में **शास्त्रों (श्रुति)**-जैसे वेद और उपनिषद-को वैध ज्ञान का स्रोत माना जाता है। यद्यपि तर्क और अनुभव का प्रयोग होता है, परंतु वे प्रायः शास्त्रीय ज्ञान से संयमित या समर्थित होते हैं।

इसके विपरीत, पश्चिमी दर्शन, विशेषकर प्रबोधन काल (Enlightenment) के बाद, अनुभवजन्य प्रमाण और तर्कसंगत स्वतंत्रता पर अधिक बल देता है। धार्मिक ग्रंथों और परंपराओं पर प्रश्न उठाना और व्यक्तिगत विवेक को प्राथमिकता देना इसकी प्रमुख प्रवृत्ति बन गई, जैसा कि डेसकार्टेस, ह्यूम और कांट जैसे विचारकों में देखा जा सकता है।

iv. अनुभव और आंतरिक ज्ञान पर बल

भारतीय दर्शन में व्यक्तिगत, अंतर्दृष्टिपूर्ण अनुभव को ज्ञान का वैध साधन माना गया है। ध्यान (ध्यान), आत्म-अन्वेषण और योगिक एकाग्रता जैसी विधियाँ अंतिम सत्य के साक्षात्कार के लिए विश्वसनीय मानी जाती हैं।

पश्चिमी दर्शन सामान्यतः वस्तुनिष्ठ ज्ञान को प्राथमिकता देता है– ऐसे तथ्यों को जो व्यक्तिगत अनुभव से स्वतंत्र रूप से सत्यापित किए जा सकें। यद्यपि घटना विज्ञान और अस्तित्ववाद जैसे विचारों ने पश्चिमी दर्शन में अंतर्दृष्टि को स्थान दिया, परंतु ये अपेक्षाकृत आधुनिक विकास हैं और अभी भी भारतीय अंतर्मुखी परंपराओं से भिन्न माने जाते हैं।

v. दार्शनिक बहुलता बनाम प्रणालीगत एकरूपता

भारतीय दर्शन बहुलवाद के लिए जाना जाता है। इसमें भौतिकवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, ईश्वरवाद और नास्तिकता जैसे विविध दर्शन एक साथ अस्तित्व में रह सकते हैं। ये मतभेद सह-अस्तित्व में रहते हुए आपसी संवाद करते हैं, बिना एक-दूसरे को पूरी तरह खारिज किए।

पश्चिमी दर्शन प्रायः एकीकृत प्रणाली की खोज करता है। अरस्तू, डेसकार्टेस, या हेगेल जैसे विचारकों ने समग्र दर्शन प्रणालियाँ बनाईं जो विरोधाभासों को समाप्त कर एकल दृष्टिकोण स्थापित करना चाहती थीं। इस प्रक्रिया में विरोधी दृष्टिकोण अक्सर हाशिए पर चले जाते हैं।

vi. शैली और अभिव्यक्ति

भारतीय दार्शनिक ग्रंथ प्रायः सूत्र रूप (अल्प वाक्य) में लिखे गए होते हैं, जिनकी व्याख्या और टीका की आवश्यकता होती है। इनका भाषा-शैली गूढ़ और बहुस्तरीय होती है, जो तत्काल स्पष्टता की अपेक्षा गहन चिंतन को आमंत्रित करती है।

वहीं पश्चिमी दर्शन, विशेषकर प्रबोधन युग के बाद, स्पष्ट भाषा और तर्क-संगत संरचना को महत्व देता है। इसमें स्पष्ट परिभाषाएँ, युक्तिपूर्ण ढांचा और प्रत्यक्ष प्रस्तुति प्रमुख होती हैं।

vii. समग्र दृष्टिकोण बनाम खंडित अनुशासन

भारतीय दर्शन में तत्त्वमीमांसा, नैतिकता, मनोविज्ञान और ब्रह्मांड-विज्ञान को एक-दूसरे से जुड़ा हुआ माना जाता है। उदाहरणतः आत्मा की प्रकृति को समझना नैतिक जीवन और मानसिक अनुशासन से अलग नहीं माना जाता।

इसके विपरीत, पश्चिमी दर्शन विशेषतः आधुनिक काल में, अपने विषयों को अलग-अलग खंडों-जैसे मेटाफिजिक्स, एपिस्टेमोलॉजी, एथिक्स, एस्थेटिक्स-में बाँट देता है। इससे विशिष्ट अध्ययन में सुविधा तो होती है, लेकिन कभी-कभी यह दृष्टिकोण विषयों की आपसी एकता को भंग कर देता है।

इन भिन्नताओं से स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन एक समग्र, अनुभव-संपन्न और मुक्ति-केंद्रित परंपरा है, जो केवल विचार में नहीं, जीवन में भी परिवर्तन लाने का प्रयत्न करती है।

2. भारतीय दर्शन के विभिन्न शालाएँ

दिए गए चित्र में भारतीय दर्शन की शालाओं के प्रमुख पहलुओं को उजागर किया गया है। जहाँ ये शालाएँ "मैं कौन हूँ?" और "परम मुक्ति का मार्ग क्या है?" जैसे गहरे प्रश्नों के उत्तर खोजने जैसे सामान्य उद्देश्य साझा करती हैं, वहीं वे आत्म–साक्षात्कार और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आवश्यक सही ज्ञान प्राप्त करने के तरीकों में अंतर रखती हैं। मुक्ति प्राप्त करने के लिए सटीक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। प्रत्येक शाला इस ज्ञान को प्राप्त करने और 'आत्मा' की अंतिम स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए इसका उपयोग करने की एक विशिष्ट विधि प्रदान करती है। इन दार्शनिक चर्चाओं में अक्सर ईश्वर, ब्रह्मांड और व्यक्ति की परस्पर जुड़ी अवधारणाओं के इर्दगिर्द विचार होता है। आत्म-विकास और मुक्ति की यात्रा को समझने में ये तीनों तत्व केंद्रीय भूमिका निभाते हैं।

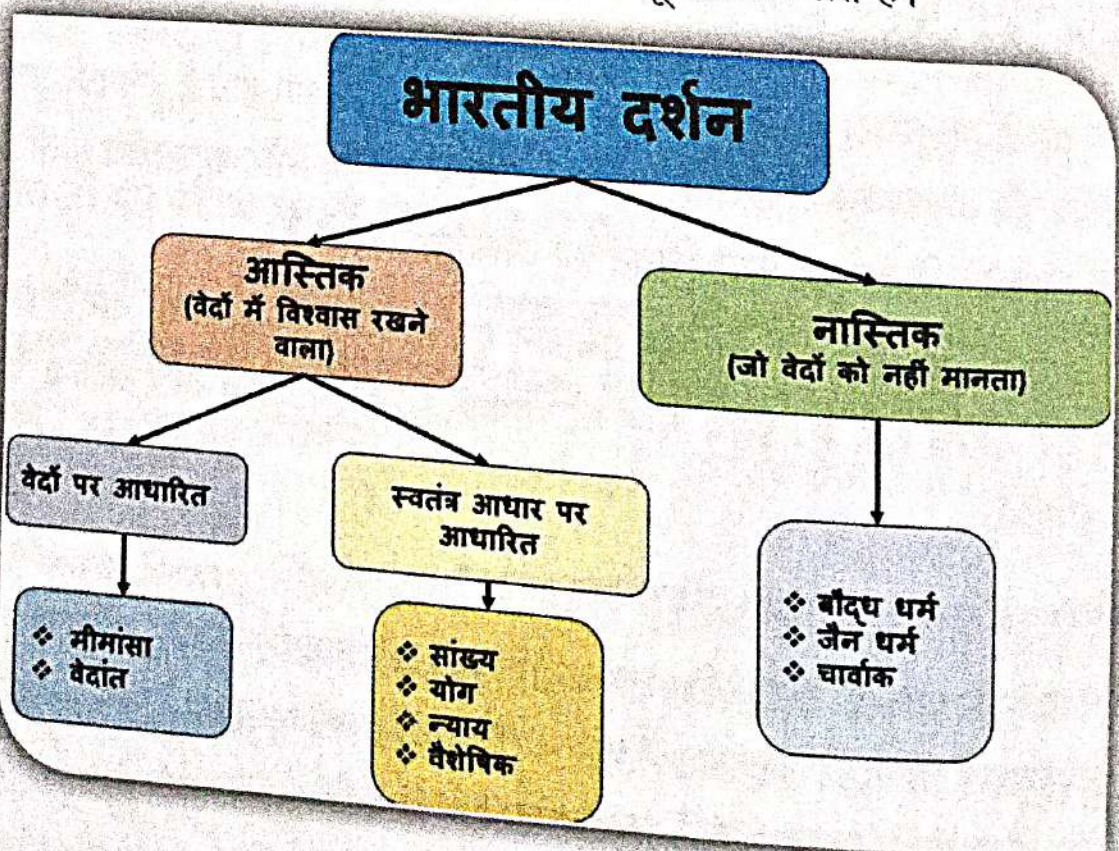

A) आस्तिक (ORTHODOX) शालाएँ

1. न्याय दर्शन – तर्क और ज्ञानमीमांसा

न्याय दर्शन भारतीय दर्शन की छह शास्त्रीय (आस्तिक) शालाओं में से एक है और मुख्य रूप से तर्क, ज्ञानमीमांसा (सत्य की प्रकृति) और तत्वमीमांसा (मेटाफिजिक्स) से संबंधित है। इसकी स्थापना मुनि गौतम (अक्षपाद गौतम) द्वारा लगभग दूसरी शताब्दी ईसा-पूर्व हुई थी, और इसका आधारभूत ग्रंथ न्याय सूत्र हैं। यद्यपि न्याय को अक्सर तर्क शाला माना जाता है, इसका अंतिम उद्देश्य मोक्ष (दुख और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति) प्राप्त करना है। यह शिक्षित करता है कि यह मुक्ति केवल सच्चा और प्रमाणिक ज्ञान प्राप्त करके ही संभव है, जो अज्ञान को, जो दुख की जड़ है, दूर करता है।

न्याय दर्शन 16 प्रमुख श्रेणियों (पदार्थों) का वर्णन करता है जो दार्शनिक जांच और वाद-विवाद की नींव हैं। इनमें प्रमाण (सत्य ज्ञान), प्रमेय (ज्ञान का विषय), संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, तर्क, हेत्वाभास (कुतर्क) आदि शामिल हैं। ये मिलकर तर्क, जांच, और सत्य की खोज के लिए एक संरचित विधि प्रदान करते हैं।

न्याय दर्शन का एक केंद्रीय पहलू चार प्रमाणों के विस्तृत वर्गीकरण पर आधारित है:

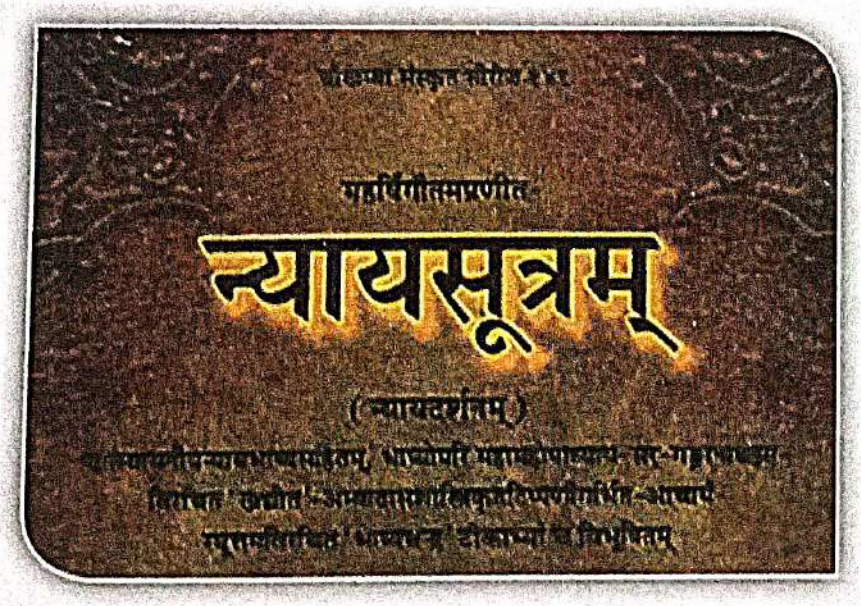

Source: https://www.hua.edu/product/nyaya-darshana-part-I

- प्रत्यक्ष – प्रत्यक्ष इंद्रिय अनुभव।
- अनुमान – कारण-परिणाम संबंध पर आधारित तर्क।
- उपमान – उपमा या समानता द्वारा ज्ञान।
- शब्द – विश्वसनीय स्रोतों जैसे शास्त्रों या ऋषियों के शब्द।

न्याय ने भारतीय दर्शन को उसका सबसे मजबूत तर्कशास्त्रीय ढांचा प्रदान किया। इसने तर्कों को संरचित करने के लिए पांच- चरणीय न्यायवाक्य (प्रस्ताव, कारण, दृष्टांत, अनुप्रयोग, निष्कर्ष) प्रस्तुत किया। उदाहरण: "पहाड़ी पर आग है क्योंकि वहाँ धुआँ है, और जहाँ धुआँ होता है, वहाँ आग होती है, जैसे रसोई में; पहाड़ी पर धुआँ है; अतः पहाड़ी पर आग है।" यह तर्कशास्त्र भारत में विभिन्न दार्शनिक और धार्मिक परंपराओं में व्यापक रूप से अपनाया गया।

तत्वमीमांसा के संदर्भ में न्याय का मानना है कि आत्मा (आत्मन्) एक वास्तविक और शाश्वत सत्ता है, जो शरीर, मन, और इंद्रियों से स्वतंत्र है। यह शाला ईश्वरवादी भी है, जो तार्किक अनुमान के माध्यम से ईश्वर (ईश्वर) के अस्तित्व का समर्थन करती है। न्याय के अनुसार ब्रह्मांड की व्यवस्था और रचना एक दिव्य स्रष्टा की ओर संकेत करती है जो इसके संचालन की देखभाल करता है। मोक्ष का परिभाषित अर्थ सुख नहीं है, बल्कि दुःख और पुनर्जन्म की पूर्ण समाप्ति है। यह तब प्राप्त होता है, जब व्यक्ति, सही ज्ञान और वैराग्य के द्वारा, आत्मा की वास्तविक प्रकृति को पहचानता है और इच्छाओं और कर्मबाधा से मुक्त हो जाता है।

11वीं शताब्दी ईस्वी में, दार्शनिक गंगेश उपाध्याय ने नव्या-न्याय नामक एक सुधार आंदोलन की शुरुआत की, जिसने शाला के तर्क और ज्ञानमीमांसा को और अधिक सूक्ष्म, तकनीकी, और विश्लेषणात्मक बनाया। इसकी विधियाँ इतनी सटीक थीं कि वे शताब्दियों तक भारत में व्याकरण, कानून, और धर्मशास्त्र सहित कई क्षेत्रों में मानदंड बन गईं।

2. वैशेषिक दर्शन – परमाणुवादी यथार्थवाद

वैशेषिक दर्शन हिंदू चिंतन की छह शास्त्रीय (दर्शन) प्रणालियों में से एक है। इसकी स्थापना प्राचीन ऋषि कणाद द्वारा की गई थी और यह तत्वमीमांसा तथा प्राकृतिक दर्शन में गहन संलग्नता के लिए जाना जाता है। "वैशेषिक" शब्द "विशेष" से बना है, जिसका अर्थ है "विशिष्टता" या "भिन्नता", जो इस शाला के मूल उद्देश्य-वास्तविकता के मूलभूत घटकों का वर्गीकरण और विश्लेषण-को दर्शाता है।

शुद्ध आध्यात्मिक प्रणालियों के विपरीत, वैशेषिक ब्रह्मांड को समझने के लिए अधिक वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोण अपनाता है। यह मानता है कि सभी वस्तुएँ शाश्वत, अविभाज्य परमाणुओं (अणु) से बनी हैं, और इन मूल तत्वों के ज्ञान से आत्मिक मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

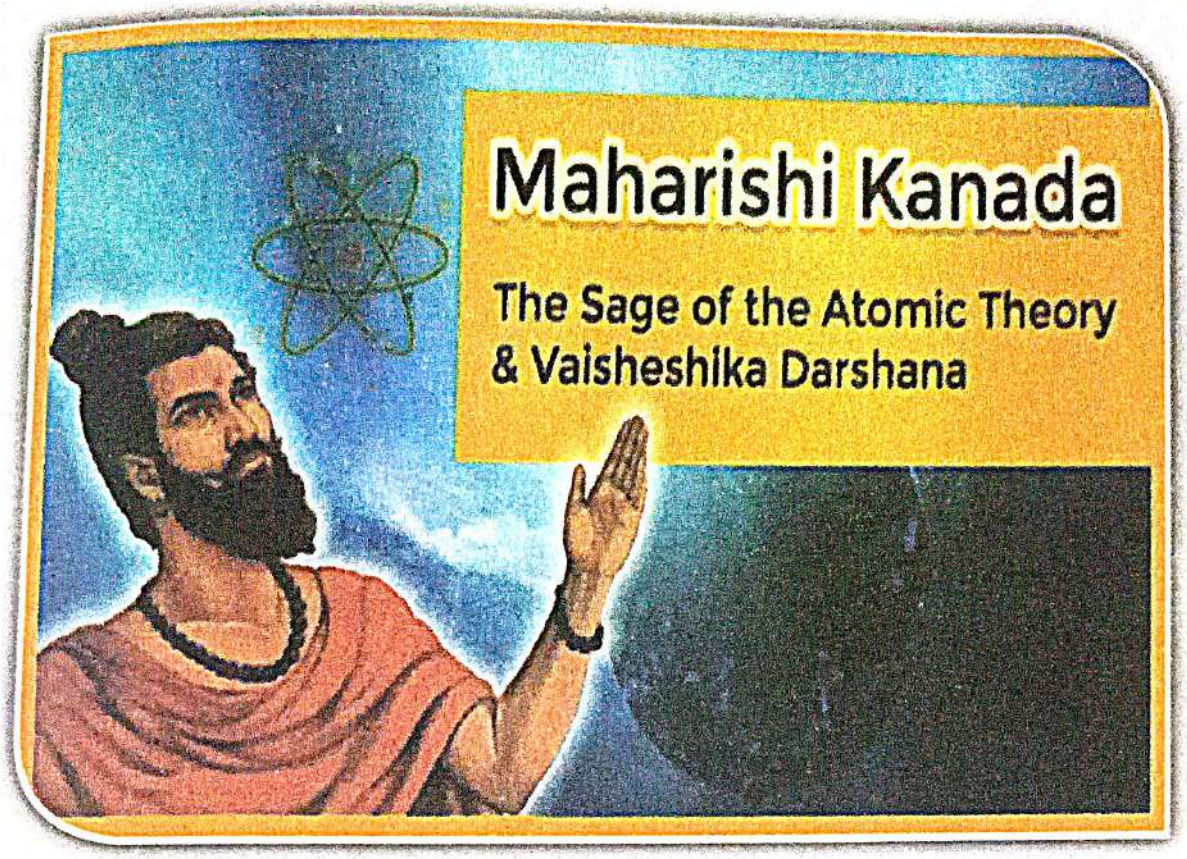

वैशेषिक दर्शन का प्रमुख उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है, जिसे वह सभी दुखों और पुनर्जन्म की समाप्ति के रूप में देखता है। यह लक्ष्य आत्मा और बाह्य जगत की प्रकृति के बारे में सच्चे ज्ञान (ज्ञान) को प्राप्त कर के ही संभव है। वैशेषिक के अनुसार अज्ञान ही बंधन का मूल कारण है, और सही समझ के माध्यम से जब अज्ञान दूर होता है, तब व्यक्ति जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है। यह शाला मानती है कि जो कुछ भी अस्तित्व में है, उसका उचित वर्गीकरण व्यक्ति को वास्तविकता की एक स्पष्ट और तार्किक समझ देता है, जो अंततः आध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर ले जाता है।

वैशेषिक दर्शन सात पदार्थों (पदार्थों) - जिन्हें ज्ञान के विषय कहा जाता है - पर आधारित है। ये हैं:

1. **द्रव्य (Substance)**
2. **गुण (Quality)**
3. **कर्म (Action/Movement)**
4. **सामान्य (Generality)**
5. **विशेष (Particularity)**
6. **समवाय (Inherence)**
7. **अभाव (Non-existence)**

इन श्रेणियों का उपयोग समस्त अस्तित्व का व्यवस्थित विश्लेषण करने हेतु किया जाता है। यह शाला नौ प्रकार के द्रव्यों को पहचानती है:

1. पृथ्वी
2. जल
3. अग्नि
4. वायु
5. आकाश
6. काल
7. दिशा
8. आत्मा
9. मन

इन प्रत्येक द्रव्यों में गुण होते हैं और वे कर्म कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, रंग, स्वाद, संख्या जैसे गुण माने जाते हैं, जबकि गति और परिवर्तन को कर्म माना जाता है। "समवाय" की अवधारणा वैशेषिक में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह गुण और द्रव्य के अविच्छिन्न संबंध को समझाने का आधार है।

वैशेषिक दर्शन की एक प्रमुख विशेषता इसकी **परमाणु सिद्धांत** है। यह मानता है कि सभी भौतिक वस्तुएँ सूक्ष्म, शाश्वत और अविभाज्य कणों - **अणुओं** - से बनी होती हैं। ये अणु चार प्रकार के होते हैं: पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। ये विभिन्न प्रकार से संयोजन करके सभी दृश्यमान वस्तुएँ बनाते हैं। अणुओं का यह संयोजन ही वृद्धि, क्षय और परिवर्तन जैसी भौतिक घटनाओं की व्याख्या करता है। यह प्रारंभिक परमाणुवाद अत्यंत परिष्कृत है और आधुनिक विज्ञान की कुछ अवधारणाओं से साम्यता रखता है, यद्यपि यह एक दार्शनिक ढांचे में आधारित है, प्रयोगात्मक ढांचे में नहीं। वैशेषिक का परमाणुवाद आधुनिक भौतिकी से इस मायने में भिन्न है कि इसमें **अभौतिक परमाणु** भी शामिल हैं जैसे - आकाश, काल और आत्मा - जो अनुभव की पूर्ण समझ के लिए आवश्यक हैं।

आत्मा के विषय में वैशेषिक मानता है कि यह एक वास्तविक और शाश्वत द्रव्य है, जो शरीर और मन से भिन्न है। यह सुख, दुख और चेतना का अनुभव करता है और भौतिक मृत्यु के बाद भी अस्तित्व में रहता है। जब आत्मा सही ज्ञान के माध्यम से नश्वर वस्तुओं के साथ अपनी पहचान छोड़ देती है और इच्छाओं व कर्म से विमुक्त हो जाती है, तब मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रारंभिक वैशेषिक ग्रंथों में ईश्वर की अवधारणा को विशेष महत्व नहीं दिया गया था। परंतु बाद के विकासों में– विशेषतः जब वैशेषिक न्याय दर्शन से घनिष्ठ रूप से जुड़

गया-इसमें एक ईश्वरवादी दृष्टिकोण को शामिल किया गया। तब ईश्वर को ब्रह्मांड का **बुद्धिमान कारण** और **नैतिक शासक** माना गया, जो अणुओं का संयोजन करता है और सृष्टि की प्रक्रिया को प्रारंभ करता है।

वैशेषिक दर्शन को न्याय दर्शन के साथ अक्सर जोड़ा जाता है, क्योंकि दोनों का ज्ञानमीमांसा और तर्क में गहरा रुचि है। न्याय जहाँ प्रमाण (सत्य ज्ञान के साधन) पर केंद्रित है, वहीं वैशेषिक वास्तविकता की प्रकृति और वर्गीकरण पर बल देता है। समय के साथ दोनों प्रणालियाँ इतनी एकीकृत हो गईं कि उन्हें एक समेकित दार्शनिक परंपरा के रूप में पढ़ाया और समझा जाने लगा।

वैशेषिक दर्शन एक **संगठित, तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण** से वास्तविकता को समझने का प्रयास करता है। इसका अनूठा योगदान इसमें निहित है कि यह समस्त अस्तित्व का वर्गीकरण करने और संसार के कार्य-प्रणालियों को **परमाणुवादी एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण** से समझाने की चेष्टा करता है। जब साधक द्रव्यों, गुणों, क्रियाओं और उनके पारस्परिक संबंधों की प्रकृति को समझ लेता है, तब वह अज्ञान से ऊपर उठकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार, वैशेषिक दर्शन वैज्ञानिक जिज्ञासा और आध्यात्मिक मुक्ति को जोड़ने वाला एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण दार्शनिक पथ प्रस्तुत करता है।

न्याय और वैशेषिक दर्शन

विशेषता	न्याय-दर्शन	वैशेषिक-दर्शन
नाम	तर्क	विवरण
संस्थापक	गौतम	कणाद
समय	नया (500 ईसा पूर्व)	पुराना (600 ईसा पूर्व)
ज्ञान का स्रोत	धारणा, अनुमान, गवाही और तुलना	धारणा, अनुमान
श्रेणियाँ	सोलह	सात
दृष्टिकोण	कृत्रिम ज्ञानमीमांसा सामान्य गैर परमाणुवादी	विश्लेषणात्मक तत्त्वमीमांसा विवरण परमाणुवेत्ता ब्रह्मांड विज्ञान

3. सांख्य दर्शन– चैतन्य और पदार्थ का द्वैतवाद

सांख्य दर्शन भारतीय दर्शन की सबसे प्राचीन और प्रभावशाली प्रणालियों में से एक है। इसे परंपरागत रूप से ऋषि कपिल के नाम से जोड़ा जाता है। सांख्य दर्शन अपनी द्वैतवादी दृष्टिकोण के लिए जाना जाता है, जो दो मूल और शाश्वत तत्वों के बीच अंतर करता है: **पुरुष (शुद्ध चैतन्य)** और **प्रकृति (मूल पदार्थ)**। यह द्वैतवाद इसकी दार्शनिक शिक्षाओं का केंद्र है और इसे उन अन्य भारतीय परंपराओं से अलग करता है जो अद्वैतवाद या ईश्वरवाद की ओर झुकी हुई हैं।

सांख्य मुख्यतः एक तर्कप्रधान और व्यवस्थित तत्वमीमांसीय प्रणाली है। यह शास्त्रीय प्रमाण या ईश्वर में आस्था पर अधिक निर्भर नहीं करती। वास्तव में, शास्त्रीय सांख्य को **नास्तिक** माना जाता है क्योंकि यह ब्रह्मांड या मोक्ष की व्याख्या के लिए एक व्यक्तिगत ईश्वर (ईश्वर) की आवश्यकता नहीं मानता। इसके स्थान पर, यह आत्मा और ब्रह्मांड का एक **तार्किक विश्लेषण** प्रस्तुत करता है, यह समझाने के लिए कि कैसे संसार की विविधता इन दो शाश्वत तत्त्वों - पुरुष और प्रकृति - की पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होती है।

पुरुष – शुद्ध चैतन्य

सांख्य में **पुरुष** को शुद्ध साक्षी-चैतन्य माना गया है-अपरिवर्तनीय, शाश्वत, निष्क्रिय और भौतिक क्रियाओं से परे। यह कोई कर्म करने वाला नहीं है, बल्कि एक **अभौतिक और अलौकिक** तत्त्व है जो केवल अनुभव करता है या देखता है। प्रत्येक जीवित प्राणी का अपना एक स्वतंत्र पुरुष होता है। यह **स्वप्रकाशक** है, अर्थात् यह स्वयं चेतना का स्रोत है। यह न तो कार्य करता है, न सृजन करता है, न हस्तक्षेप करता है; यह अनुभवों को प्रकाशित करता है जैसे कोई दीपक कमरे में वस्तुओं को प्रकाश में लाता है।

मोक्ष (मुक्ति) सांख्य में तब प्राप्त होता है जब व्यक्ति इस सत्य को जान लेता है कि वह पुरुष है, और वह प्रकृति के परिवर्तनशील संसार से भिन्न है।

प्रकृति – मूल पदार्थ

प्रकृति, इसके विपरीत, अचेतन, सक्रिय और सृजनशील तत्त्व है। यह भी शाश्वत और वास्तविक है, परंतु पुरुष के विपरीत, यह तीन गुणों - **सत्त्व** (पवित्रता, हल्कापन, सामंजस्य), **रजस्** (क्रियाशीलता, ऊर्जा), और **तमस्** (जड़ता, अंधकार) - से बनी होती

है। ये तीनों गुण सदैव आपस में क्रिया करते रहते हैं, और इनकी असंतुलन या चक्रवात से ही भौतिक संसार की उत्पत्ति होती है।

जो कुछ भी अनुभव किया जाता है - विचार, भावनाएँ, शरीर और बाह्य ब्रह्मांड - वह सब **प्रकृति** की उत्पत्ति है।

प्रकृति एक **ब्रह्मांडीय विकास प्रक्रिया** के माध्यम से २४ तत्त्वों (तत्वों या अवयवों) की श्रृंखला में विकसित होती है, जिनमें शामिल हैं:

- बुद्धि (बुद्धि)
- अहंकार (अहंकार)
- मन (मनस)
- पाँच ज्ञानेंद्रियाँ
- पाँच कर्मेंद्रियाँ
- पाँच तन्मात्राएँ (सूक्ष्म तत्व)
- पाँच स्थूल तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)

यह **सांख्य ब्रह्मांड विज्ञान** एक समग्र मॉडल प्रस्तुत करता है जो मनोवैज्ञानिक, भौतिक और आध्यात्मिक यथार्थ को स्पष्ट करता है।

पुरुष और प्रकृति का पारस्परिक संबंध

हालाँकि पुरुष और प्रकृति स्वतंत्र और शाश्वत हैं, परंतु **सृष्टि तब आरंभ होती है जब पुरुष प्रकृति के संपर्क में आता है**। पुरुष की चेतना की उपस्थिति से प्रेरित होकर प्रकृति स्वयं को प्रकट और विकसित करना शुरू करती है, यद्यपि पुरुष स्वयं कोई क्रिया नहीं करता।

इस संबंध को रूपक में इस प्रकार वर्णित किया गया है: **प्रकृति एक नर्तकी है जो पुरुष रूपी दर्शक के लिए नृत्य करती है।** संसार का अस्तित्व और विकास पुरुष के अनुभव और मोक्ष की दिशा में होता है।

परंतु **अज्ञान (अविद्या)** के कारण, पुरुष स्वयं को प्रकृति के रूपों-जैसे शरीर, मन, या अहंकार-के साथ पहचानने लगता है और सुख-दुख व जन्म-मरण के चक्र (संसार) में बंध जाता है।

सांख्य दर्शन का उद्देश्य इस अज्ञान को दूर करना है, और पुरुष व प्रकृति के बीच **विवेक (विवेकजन्य ज्ञान)** को उत्पन्न करना है। जब यह विवेक स्थिर हो जाता है, तो पुरुष प्रकृति से अलग हो जाता है, जिससे **कैवल्य** - पूर्ण मुक्ति - प्राप्त होती है, जिसमें चेतना अपने शुद्ध और अलग स्वरूप में स्थित हो जाती है, बिना किसी भौतिक बंधन के।

सांख्य का प्रभाव और विरासत

सांख्य ने कई अन्य भारतीय दार्शनिक प्रणालियों पर गहरा प्रभाव डाला है, विशेष रूप से **योग, वेदांत,** और **बौद्ध विचारधारा** पर। **पतंजलि का योग दर्शन** सांख्य की तत्वमीमांसा को लगभग पूर्णतः स्वीकार करता है, परंतु इसमें **ईश्वर** की अवधारणा और ध्यान, नैतिकता, प्राणायाम जैसे व्यावहारिक अनुशासन जोड़े गए हैं। **वेदांत**, यद्यपि अंतिम रूप में अद्वैतवादी है, परंतु सांख्य के कई विश्लेषणात्मक उपकरणों को अपनाता है और उन्हें अपने सिद्धांत के अनुरूप पुनः व्याख्यायित करता है। हालाँकि आज सांख्य दर्शन अपनी शुद्ध शास्त्रीय रूप में व्यापक रूप से प्रचलित नहीं है, परंतु इसकी दार्शनिक स्पष्टता, तर्कसंगत संरचना, और गहन मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टियाँ आज भी **आदर और अध्ययन** का विषय बनी हुई हैं। इसका **विवेक, वैराग्य और आत्म-साक्षात्कार** पर बल, इसे **आध्यात्मिक और दार्शनिक खोज** के लिए एक स्थायी रूपरेखा बनाता है।

4. योग – मन और शरीर का व्यावहारिक अनुशासन

योग दर्शन भारतीय दर्शन की छह प्रमुख दर्शनों (षड्दर्शन) में से एक है। यह प्राचीन आध्यात्मिक परंपराओं में निहित है और आत्म-साक्षात्कार एवं मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए एक व्यावहारिक और व्यवस्थित मार्ग प्रदान करता है। इस दर्शन का संकलन ऋषि **पतंजलि** ने किया, जिन्होंने लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से चौथी शताब्दी ईस्वी के बीच **योगसूत्रों** की रचना की।

आज भले ही योग की शारीरिक मुद्राएँ (आसन) प्रसिद्ध हैं, परंतु **योग दर्शन** उससे कहीं व्यापक है - यह मन का अनुशासन, इंद्रियों का नियंत्रण, नैतिक आचरण और आध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर ले जाने वाले मार्ग की चर्चा करता है।

योग दर्शन की नींव सांख्य दर्शन पर आधारित है, विशेषकर इसके **द्वैतवादी दृष्टिकोण** पर। यह **पुरुष** (शुद्ध चैतन्य या आत्मा) और **प्रकृति** (भौतिक प्रकृति या पदार्थ) के बीच के भेद को स्वीकार करता है।

हालाँकि, शास्त्रीय सांख्य से भिन्न, **योग दर्शन ईश्वर की अवधारणा** को जोड़ता है - एक **व्यक्तिगत ईश्वर (ईश्वर)** जो साधक का मार्गदर्शक और आदर्श होता है। यही तत्व योग को एक **ईश्वरवादी प्रणाली** बनाता है, जो तत्वमीमांसा को भक्ति और व्यावहारिक साधना के साथ जोड़ता है।

योग का उद्देश्य

योग का अंतिम उद्देश्य है **दु:ख का निवारण** और आत्मा को जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करना। पतंजलि के योगसूत्र में योग की प्रथम परिभाषा है:

"चित्तवृत्तिनिरोध:" – अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध।

जब मन की चंचलता समाप्त हो जाती है, तब आत्मा - पुरुष - का **स्वरूप स्पष्ट होता है।** इस मुक्त अवस्था में आत्मा संसार के परिवर्तनशील अनुभवों से **असंग** रहती है।

अष्टांग योग (आठ अंगों वाला मार्ग)

योग दर्शन एक क्रमिक और समग्र आध्यात्मिक मार्ग प्रस्तुत करता है जिसे **अष्टांग योग** कहा जाता है। यह मार्ग साधक को नैतिकता और ध्यान की दिशा में मार्गदर्शन करता है। इसके आठ अंग हैं–

1. **यम (सामाजिक अनुशासन)** – जैसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (इंद्रिय संयम), अपरिग्रह (स्वामित्व त्याग)।
2. **नियम (व्यक्तिगत अनुशासन)** – जैसे शौच (शुद्धता), संतोष (संतोष), तप (अनुशासन), स्वाध्याय (आत्म-अध्ययन), ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर के प्रति समर्पण)।
3. **आसन** – शरीर को स्थिर और सहज रखने वाले शारीरिक मुद्राएँ, जो ध्यान के लिए शरीर को तैयार करती हैं।
4. **प्राणायाम** – श्वास का नियंत्रण, जिससे प्राणशक्ति का प्रवाह संतुलित होता है और मन शांत होता है।
5. **प्रत्याहार** – इंद्रियों को बाहरी विषयों से हटाकर भीतर की ओर मोड़ना।
6. **धारणा** – किसी एक विषय, वस्तु या बिंदु पर ध्यान केंद्रित करना।
7. **ध्यान** – ध्यान का निरंतर और अविचल प्रवाह।

8. **समाधि** – पूर्ण एकाग्रता की वह अवस्था जहाँ साधक ध्यान के विषय से एक हो जाता है, और आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है

ये आठों अंग साधक को **नैतिक जीवन** और **शारीरिक अनुशासन** से लेकर **उच्च चेतना की अवस्था** तक ले जाते हैं। यह एक क्रमिक और संचयी प्रक्रिया है जिसमें **नियमित अभ्यास, आत्म-नियंत्रण और अंतरदृष्टि** की आवश्यकता होती है।

योग में ईश्वर की भूमिका

योग दर्शन की एक विशिष्ट विशेषता है इसका **ईश्वर का स्वीकार** - एक ऐसा दिव्य तत्व जो **कर्म, क्लेश और जन्म-मरण से रहित** है। यह ईश्वर पारंपरिक सृष्टिकर्ता नहीं है, बल्कि **शाश्वत पथप्रदर्शक और आध्यात्मिक प्रेरणा का स्रोत** है। पतंजलि के अनुसार, ईश्वर पर ध्यान केंद्रित करने के लिए **"ॐ"** का जाप किया जाता है, जो एकाग्रता को गहराई प्रदान करता है और योग की सिद्धि में सहायता करता है। इस कारण योग दर्शन **तत्वमीमांसीय** और **भक्तिमूलक** – दोनों ही बन जाता है।

योग की मनोविज्ञान और नैतिक दृष्टि

योग दर्शन में मानव मन की गहरी **मनोवैज्ञानिक व्याख्या** मिलती है। इसके अनुसार **चित्त** तीन कार्यों से बना होता है:

- **मनस् (मन)** – इंद्रियों से सूचनाओं का समन्वय
- **बुद्धि (विवेक)** – निर्णय लेने की शक्ति
- **अहंकार (अहम्)** – "मैं" की भावना

ये तीनों **गुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्)** से प्रभावित होते हैं, जो प्रकृति के घटक हैं। मन की चंचलता **आसक्ति, इच्छाओं, द्वेष और अज्ञान** से उत्पन्न होती है, जो आत्मा को बंधन में डालते हैं।

अनुशासित साधना के माध्यम से मन शांत, स्थिर और आत्मा के प्रकाश को प्रतिबिंबित करने वाला बनता है। योग में नैतिक जीवन को अत्यंत आवश्यक माना गया है। यम और नियम का अभ्यास **नैतिक शुद्धता, आत्मसंयम, और सामाजिक सामंजस्य** को जन्म देता है। इसके बिना योग के उच्चतर चरणों में प्रगति करना अत्यंत **कठिन या असंभव** माना जाता है।

मुक्ति और योग की व्यापकता

योग दर्शन के अनुसार **मोक्ष (कैवल्य या मुक्ति)** न तो केवल आस्था से प्राप्त होता है, न ही केवल कर्मकांड से - बल्कि **प्रत्यक्ष अनुभव और अनुशासित साधना** से होता है। जब चित्त पूरी तरह शांत हो जाता है और शरीर, अहंकार, बुद्धि से अपनी पहचान छोड़ देता है, तब आत्मा - पुरुष - का **साक्षात्कार होता है।** यह साक्षात्कार **स्थायी शांति, दुःखों से मुक्ति,** और **भौतिक संसार से वैराग्य** लाता है।

योग दर्शन ने न केवल भारतीय दर्शन को, बल्कि पूरी दुनिया के **आध्यात्मिक और स्वास्थ्य परंपराओं** को प्रभावित किया है। जहाँ आधुनिक योग का केंद्र **शारीरिक आसनों** पर है, वहीं शास्त्रीय योग एक **समग्र मार्ग** प्रदान करता है जिसमें **शरीर, मन और आत्मा** - तीनों का समन्वय है। यह सांख्य दर्शन (जिससे इसकी तत्वमीमांसा ली गई है) और वेदांत (जिसके साथ इसका लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार है) - दोनों का पूरक है।

5. मीमांसा – कर्मकांड और व्याख्याशास्त्र

मीमांसा दर्शन भारतीय दर्शन की छह शास्त्रीय प्रणालियों (षड्दर्शन) में से एक है, जिसका मुख्य उद्देश्य **वेदों की व्याख्या और उनके अधिकार** को स्थापित करना है, विशेषकर वेदों के प्रारंभिक भाग को, जिसे **कर्मकाण्ड** कहा जाता है। **"मीमांसा"** शब्द का अर्थ है "विचार" या "गंभीर परीक्षण," और इस संदर्भ में यह वेदों के अर्थ, उद्देश्य और अनुप्रयोग की गहन विवेचना को दर्शाता है।

मीमांसा का मूल उद्देश्य है **वेदों की शाश्वतता और आत्मनिर्भरता** को सिद्ध करना, और यह दिखाना कि **सही ढंग से किया गया कर्म (विधिपूर्वक यज्ञ, अनुष्ठान आदि)** इच्छित फल देता है - जैसे भौतिक सफलता और अंततः मुक्ति।

इस दर्शन का सबसे प्रारंभिक और प्रमुख ग्रंथ है **मीमांसा सूत्र,** जिसकी रचना **जैमिनि** ने लगभग **तीसरी से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व** के बीच की थी। समय के साथ दो प्रमुख उपपरंपराएँ उभरीं–

- **प्रभाकर संप्रदाय,** जिसकी स्थापना **प्रभाकर** ने की।
- **भट्ट संप्रदाय,** जिसके प्रमुख थे – **कुमारिल भट्ट**।

हालाँकि दोनों संप्रदाय **कर्मवाद** और **वेदों की सर्वोच्चता** पर सहमत हैं, लेकिन ज्ञानमीमांसा और भाषा-संबंधी कुछ विषयों पर इनकी व्याख्याएँ भिन्न हैं।

मुख्य दार्शनिक सिद्धांत

- **वेदों का अधिकार:** मीमांसा मानती है कि **वेद शाश्वत, अपौरुषेय (अमानुषीय)** और **अचूक** हैं। अन्य दर्शनों की तरह यह न तो वेदों को किसी **ईश्वर द्वारा प्रकट** मानती है, न ही केवल तर्क आधारित। वेदों के मंत्र न तो मनुष्य द्वारा रचित हैं और न ही किसी ईश्वर द्वारा, बल्कि ये **ऋषियों द्वारा प्रत्यक्ष की गई सनातन सत्यवाचक ध्वनियाँ** हैं। इसलिए वेदों के **आदेश (विधि)** धर्म के लिए अंतिम मार्गदर्शक माने जाते हैं।
- **धर्म और कर्म की प्रधानता:** मीमांसा दर्शन का केंद्रीय विषय है **धर्म**, जिसे वेदों द्वारा निर्दिष्ट कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया गया है। इस दर्शन के अनुसार, **विधिपूर्वक यज्ञ व कर्म करना ही धर्म है**, और यही धर्म **अर्थ (समृद्धि), काम (इच्छा-पूर्ति)** और अंततः **मोक्ष (पुनर्जन्म से मुक्ति)** का मार्ग है। मीमांसा में मोक्ष का अर्थ वेदांत की तरह **ब्रह्मज्ञान या आत्मसाक्षात्कार** नहीं है, बल्कि यह **पुनर्जन्म और दुःखों की समाप्ति** है, जो **निष्काम कर्मों** से अर्जित पुण्य द्वारा प्राप्त होती है। मीमांसा **सन्यास या ध्यानयोग** को प्राथमिकता नहीं देती, बल्कि इसे मानती है कि **कर्म ही आध्यात्मिक और सामाजिक कर्तव्य** है, जिसे वेदमार्ग का अनुकरण करने वाले श्रद्धापूर्वक निभाएँ।

ज्ञानमीमांसा – प्रमाण और सत्य का साधन

मीमांसा ने एक अत्यंत विकसित **ज्ञानमीमांसीय ढाँचा** प्रस्तुत किया और कई प्रमाणों (ज्ञान के साधनों) को मान्यता दी:

- **प्रत्यक्ष (इंद्रियों द्वारा अनुभव)**
- **अनुमान (तर्क आधारित निष्कर्ष)**
- **उपमान (समानता द्वारा ज्ञान)**
- **अर्थापत्ति (अनिवार्य पूर्वकल्पना)**
- **अनुपलब्धि (अनुपस्थिति से ज्ञान)**
- **शब्द (वाचिक प्रमाण)** – विशेषतः **वेदों का प्रमाण**, जिसे सर्वोच्च माना गया है

मीमांसा दर्शन में विशेष बल है **शब्द प्रमाण** पर। इनका मत है कि **वैदिक वाक्य सत्य हैं**, क्योंकि वे **मानव त्रुटियों और इच्छाओं से रहित** हैं। इनका यह भी मत है कि भाषा स्वयं

सत्य प्रकट करने में सक्षम है, यदि उसे **व्याकरण और प्रसंग** के अनुसार सही प्रकार से समझा जाए। मीमांसा आचार्यों ने **भाषा दर्शन** में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे वाक्य का अर्थ, शब्द और उनके संकेतार्थों के संबंध तथा कर्मविधियों की व्याख्या जैसे विषयों पर गहन विचार करते हैं।

प्रभाकर और भट्ट संप्रदायों के बीच एक मुख्य विवाद था–

- **प्रभाकर संप्रदाय** मानता है कि **वाक्य का अर्थ सीधे संदर्भ से उत्पन्न होता है,** न कि व्यक्तिगत शब्दों से।
- **भट्ट संप्रदाय** के अनुसार **वाक्य का अर्थ व्यक्तिगत शब्दों के क्रमिक अर्थों से बनता है।**

इन चर्चाओं ने भारतीय भाषाविज्ञान की नींव रखी और आगे चलकर वेदांत व अन्य दर्शनों को भी प्रभावित किया।

मोक्ष की अवधारणा

मीमांसा, वेदांत की भाँति आत्मा और ब्रह्म की एकता पर बल नहीं देती।

यह एक **निरीश्वरवादी और कर्मकेंद्रित** प्रणाली है, जहाँ मोक्ष कोई रहस्यमयी या अद्वैत अनुभव नहीं, बल्कि एक **पुनर्जन्म रहित अवस्था** है, जो **पूर्णतः विधिपूर्वक किए गए कर्मों** से प्राप्त होती है। मीमांसा के अनुसार, **ज्ञान नहीं, बल्कि कर्म ही मोक्ष का साधन है।** यह दर्शन किसी **व्यक्तिगत ईश्वर** में विश्वास को आवश्यक नहीं मानता। हालाँकि बाद के कुछ मीमांसा विचारकों ने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया, परंतु वे मानते हैं कि वेदीय कर्मों के फल के लिए ईश्वर की कृपा की आवश्यकता नहीं है। **वेदवाक्य की शक्ति** ही कर्मफल देने के लिए पर्याप्त है।

मीमांसा का प्रभाव और योगदान

मीमांसा दर्शन ने **हिंदू कर्मकांड, वेदाध्ययन और भारतीय न्यायशास्त्र** पर गहरा प्रभाव डाला। **ग्रंथों की सटीक व्याख्या, तर्कशक्ति और विधिवत कर्म** पर इसका जोर इसे **प्राचीन भारत की ब्राह्मणिक और पंडित परंपरा** में केंद्रीय स्थान देता है।

यद्यपि आज यह वेदांत या योग जैसे दर्शनों जितना प्रसिद्ध नहीं है, फिर भी **मीमांसा की व्याख्याशास्त्र और तर्कशास्त्र संबंधी विधियाँ** भारतीय बौद्धिक परंपरा की नींव हैं।

यह दर्शन विशेषकर **भट्ट संप्रदाय** के माध्यम से वेदांत का दार्शनिक सहयोगी बना, जिसे **आदि शंकराचार्य** ने भी अपने भाष्यों में अपनाया। यहाँ तक कि **बौद्ध और जैन दार्शनिकों** ने भी मीमांसा के तर्कों से संवाद करके अपनी भाषिक, नैतिक और ज्ञानमीमांसीय प्रणालियाँ विकसित कीं।

वेदांत – उपनिषदों का दर्शन

वेदांत भारतीय दर्शन की छह प्रमुख शास्त्रीय प्रणालियों (षड्दर्शन) में से एक है, जो अपनी गहन आध्यात्मिकता और तत्वमीमांसा के लिए प्रसिद्ध है।

"वेदांत" का शाब्दिक अर्थ है "वेदों का अंत", और यह विशेष रूप से **उपनिषदों** को संदर्भित करता है, जो वेदों के अंतिम भाग हैं। जहाँ प्रारंभिक वेद कर्मकांड पर केंद्रित थे, वहीं उपनिषद **सत्य, चेतना, आत्मा और मुक्ति** जैसे गूढ़ विषयों की विवेचना करते हैं। इस प्रकार, वेदांत दर्शन का मूल उद्देश्य है **उपनिषदों के दार्शनिक शिक्षाओं की व्याख्या करना**, साथ ही **भगवद्गीता** और **ब्रह्मसूत्र** (वेदांत सूत्र) जैसे ग्रंथों का गूढ़ार्थ समझाना। वेदांत कोई एकमत दर्शन नहीं है, बल्कि यह एक **विस्तृत परंपरा** है, जिसमें अनेक व्याख्याएँ और उप-मत हैं। इन विविधताओं के बावजूद, सभी वेदांत मतों का मूल उद्देश्य है – **परम सत्य (ब्रह्म)** और **ब्रह्म, आत्मा और जगत के पारस्परिक संबंध** को समझना।

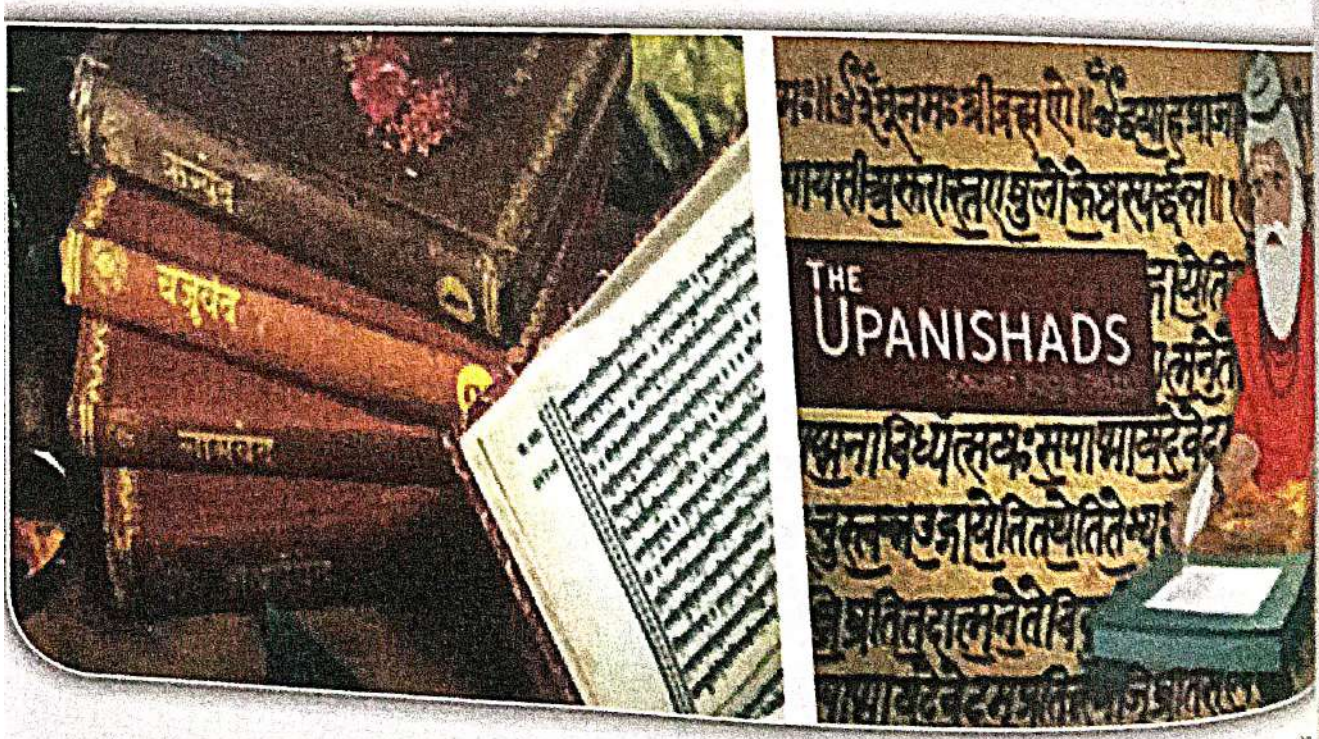

Source: https://realhappiness.org/blog/what-are-vedas-ph
https://www.yogabasics.com/learn/upanishad

वेदांत के मूल सिद्धांत

ब्रह्म – परम सत्य

वेदांत दर्शन का केंद्र है **ब्रह्म**, जो परम, अनंत, अपरिवर्तनशील और शाश्वत सत्य है – **समस्त सृष्टि का कारण और आधार**। ब्रह्म समय, स्थान और कारण-कार्य के परे है। **उपनिषदों** में ब्रह्म को दो रूपों में वर्णित किया गया है:

- **निर्गुण ब्रह्म** – बिना किसी गुण या स्वरूप के
- **सगुण ब्रह्म** – गुण और रूप सहित

वेदांत के आचार्य इस विषय में मतभेद रखते हैं कि किस रूप को प्राथमिकता दी जाए, परंतु सभी मानते हैं कि **ब्रह्म ही समस्त अस्तित्व की जड़** है।

आत्मा – सच्चा स्वरूप

ब्रह्म से जुड़ा हुआ है **आत्मा** का सिद्धांत, जो प्रत्येक प्राणी के भीतर स्थित **अंतरतम स्वभाव** या **चेतना** है। वेदांत के अनुसार, **स्व का वास्तविक स्वरूप** न शरीर है, न मन, न अहं – बल्कि **आत्मा ही शुद्ध, शाश्वत चेतना** है। **उपनिषदों का मुख्य ज्ञानवाक्य** है – **"तत्त्वमसि" (तू वही है)** – जो आत्मा और ब्रह्म की एकता को उद्घाटित करता है।

मोक्ष – अंतिम मुक्ति

वेदांत का परम लक्ष्य है **मोक्ष** – जन्म-मृत्यु के चक्र (संसार) से मुक्ति।

यह मुक्ति कर्म या बाह्य क्रिया से नहीं, बल्कि **आत्मज्ञान (आत्मा का साक्षात्कार)** से प्राप्त होती है। जब मनुष्य जान लेता है कि उसका स्वरूप सीमित, पृथक या असत्य नहीं, बल्कि **अनंत ब्रह्म के साथ एक** है, तभी वह **पूर्ण स्वतंत्रता, आनंद और शांति** प्राप्त करता है।

माया और अविद्या – भ्रांति और अज्ञान

अनेक वेदांत परंपराओं (विशेषतः अद्वैत) में **जगत को माया** कहा गया है – एक भ्रांतिपूर्ण प्रतीति, जो ब्रह्म के सत्य स्वरूप को ढँक देती है। **मानव का दुःख** इसी माया से उत्पन्न **अविद्या (अज्ञान)** से होता है। इस अज्ञान को दूर करने के लिए आवश्यक है – **शास्त्राध्ययन, ध्यान, और गुरु के निर्देशन में साधना**, जिससे आध्यात्मिक जागरण होता है।

वेदांत की प्रमुख शाखाएँ

वेदांत दर्शन कई उप-मतों में विकसित हुआ, जो उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता की भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं। इनमें तीन प्रमुख और प्रभावशाली परंपराएँ हैं:

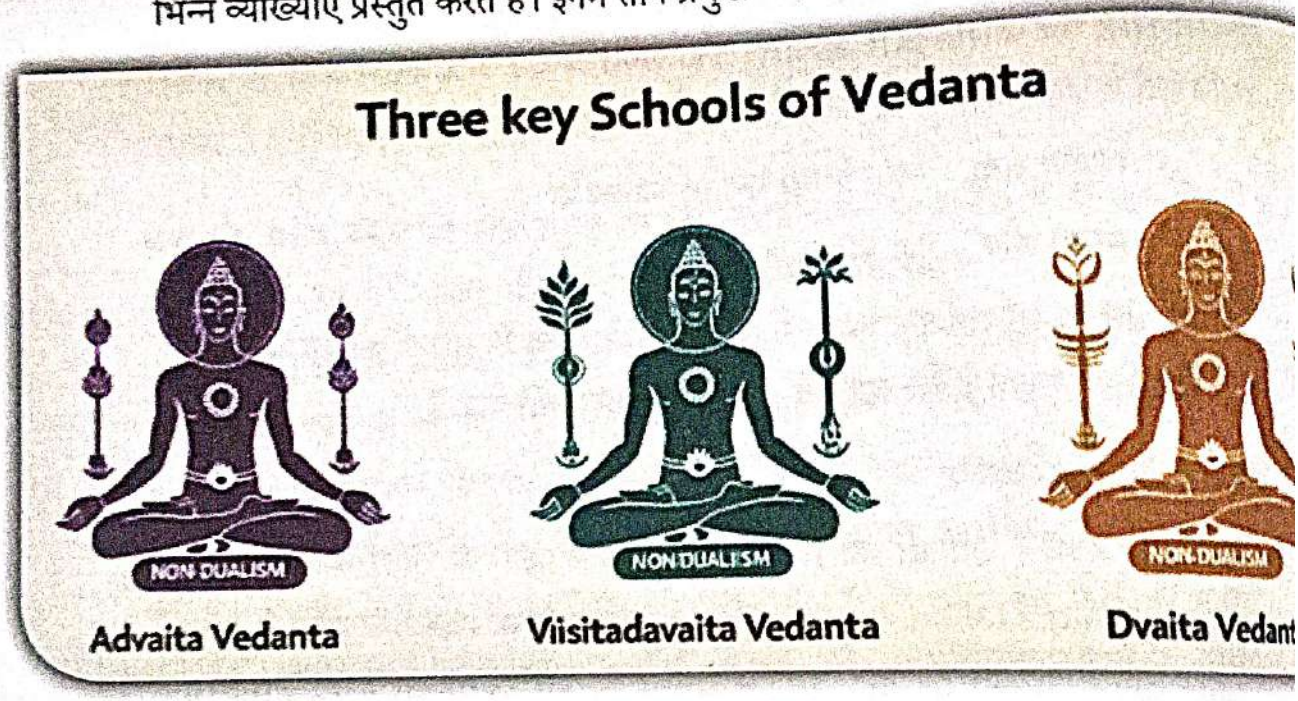

अद्वैत वेदांत (अद्वैतवाद) – संस्थापक: आदि शंकराचार्य

- **दृष्टिकोण:** सत्य अद्वितीय है। केवल **ब्रह्म ही सत्य है**; जगत और जीव केवल अज्ञानवश प्रतीत होते हैं।
- **मुख्य शिक्षा:** आत्मा और ब्रह्म पूर्णतः एक हैं। **ज्ञान द्वारा इस एकता की अनुभूति** ही मोक्ष है।
- **ईश्वर की भूमिका:** सगुण ब्रह्म (ईश्वर) उपासना के लिए सहायक हैं, परंतु अंतिम सत्य **निर्गुण ब्रह्म** है।

विशिष्टाद्वैत वेदांत (विशिष्ट अद्वैत) – संस्थापक: रामानुजाचार्य

- **दृष्टिकोण:** सत्य एक ही है, पर उसमें **विशेषताएँ** (जगत और जीव) विद्यमान हैं।
- **मुख्य शिक्षा:** मोक्ष **भक्ति, ज्ञान और ईश्वर की कृपा** (विशेषतः विष्णु या नारायण) से प्राप्त होता है।
- **ईश्वर की भूमिका:** ईश्वर ही **सर्वत्र व्याप्त** और **सर्वपर नियंत्रक** हैं – वे सगुण ब्रह्म हैं।

द्वैत वेदांत (द्वैतवाद) – संस्थापक: मध्वाचार्य

- **दृष्टिकोण:** सत्य द्वैतीय है – **ईश्वर (विष्णु), जीव** और **जगत** तीनों शाश्वत और अलग हैं।
- **मुख्य शिक्षा:** मोक्ष **ईश्वर की भक्ति और सेवा** से प्राप्त होता है, पर आत्मा मोक्ष के बाद भी ईश्वर से भिन्न रहती है।
- **ईश्वर की भूमिका:** ईश्वर एक **स्वतंत्र, व्यक्तिगत, परम सत्ता** हैं – विष्णु सर्वश्रेष्ठ और रचयिता हैं।

ज्ञान प्राप्ति के साधन (प्रमाण)

वेदांत दर्शन **प्रमाणों** को मान्यता देता है, जिनसे सत्य का ज्ञान होता है:

- **श्रुति (शास्त्र):** उपनिषदें सर्वोच्च प्रमाण हैं।
- **स्मृति (परंपरा):** भगवद्गीता, धर्मशास्त्र आदि ग्रंथ।
- **युक्ति (तर्क):** तर्क आवश्यक है, पर उसे शास्त्र के अनुकूल होना चाहिए।
- **अनुभव (प्रत्यक्ष अनुभूति):** आत्मा का साक्षात्कार ही अंतिम प्रमाण है।

वेदांत में आत्म-संयम, वैराग्य, भक्ति और अंतर्मुखी चिंतन को आध्यात्मिक उन्नति के लिए अत्यावश्यक माना गया है। एक साधक को **धार्मिक आचरण (धर्म), सेवा (कर्मयोग), भक्ति (भक्तियोग), ध्यान (ध्यानयोग)** के द्वारा मन को शुद्ध करना होता है, जिससे अंततः **ज्ञानयोग** की ओर प्रगति हो सके। विभिन्न वेदांत मतों में इन मार्गों की प्राथमिकता भिन्न हो सकती है।

B) नास्तिक दर्शन परंपराएँ

1. बौद्ध दर्शन – अनित्य और अनात्मा

बौद्ध दर्शन, भारत की सबसे प्रभावशाली दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपराओं में से एक है, जिसकी स्थापना सिद्धार्थ गौतम द्वारा की गई थी, जो बाद में बुद्ध कहलाए। यह परंपरा ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी में उभरी, जब प्राचीन भारत में गहन दार्शनिक चिंतन का दौर चल रहा था। बौद्ध धर्म वैदिक परंपरा की कर्मकांड और जाति-आधारित संरचना के विरोध में एक सुधारवादी आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। वैदिक परंपरा की आस्तिक दर्शन शाखाएँ वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करती हैं, जबकि बौद्ध धर्म को नास्तिक माना जाता है क्योंकि यह वेदों को अस्वीकार करता है, स्थायी आत्मा (आत्मन्)

के अस्तित्व को नकारता है और सृष्टिकर्ता ईश्वर को स्वीकार नहीं करता। इसके स्थान पर, यह व्यक्तिगत अनुभव, तर्कशील विवेक और नैतिक आचरण को आध्यात्मिक मुक्ति का आधार मानता है।



बौद्ध दर्शन का केंद्र चार आर्य सत्य हैं, जो मानव स्थिति और उसकी मुक्ति को स्पष्ट करते हैं। पहला सत्य यह स्वीकार करता है कि जीवन (दुःख), असंतोष और अनित्यत्व से भरा है। दूसरा सत्य तृष्णा या लालसा और आसक्ति को इस दुःख का मूल कारण बताता है। तीसरा सत्य यह दर्शाता है कि तृष्णा का अंत करके दुःख से मुक्ति संभव है। चौथा सत्य अष्टांगिक मार्ग को इस मुक्ति का साधन बताता है। इस मार्ग में नैतिक आचरण, मानसिक अनुशासन और प्रज्ञा (बुद्धि) शामिल हैं-जो सभी भ्रम से मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं, जो कि जन्म-मरण के चक्र (संसार) से मुक्ति की अवस्था है।

बौद्ध धर्म का एक विशेष सिद्धांत अनात्मा है, अर्थात् किसी स्थायी, अपरिवर्तनीय आत्मा के अस्तित्व का निषेध। उपनिषदों के आत्मा के स्थायी स्वरूप के विपरीत, बौद्ध धर्म मानता है कि व्यक्ति का 'स्व' पांच स्कंधों का समुच्चय है: रूप, वेदना (अनुभूति), संज्ञा (धारण), संस्कार (मानसिक प्रवृत्तियाँ), और विज्ञान (चेतना)। ये सभी निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं, और आत्मा की स्थिरता की भ्रांति अज्ञान और आसक्ति से उत्पन्न होती है। इसके साथ ही प्रतित्यसमुत्पाद (सापेक्ष उत्पत्ति) का सिद्धांत बताता है कि सभी

वस्तुएँ अन्य कारणों पर निर्भर होकर उत्पन्न होती हैं– कुछ भी स्वतः, स्वतंत्र या शाश्वत रूप से अस्तित्व में नहीं है। इस अंतर्दृष्टि से यह बोध होता है कि अनित्य वस्तुओं से आसक्ति ही दुःख का कारण है।

जैसे-जैसे बौद्ध धर्म का विकास हुआ, इसकी कई दार्शनिक शाखाएँ सामने आईं। **थेरवाद**, सबसे पुरानी जीवित परंपरा है, जो बुद्ध की प्रारंभिक शिक्षाओं (पाली कैनन) पर आधारित है और ध्यान तथा नैतिक जीवन के माध्यम से व्यक्तिगत मुक्ति पर बल देती है। इसके विपरीत, **माध्यमक परंपरा**, जिसकी स्थापना नागार्जुन ने की, शून्यता की अवधारणा प्रस्तुत करती है, जो कहती है कि सभी वस्तुएँ निज अस्तित्व से रहित हैं। यह दृष्टिकोण सभी प्रकार की विचारात्मक सीमाओं को तोड़ता है और वास्तविकता की गहरी समझ की ओर ले जाता है। एक अन्य प्रमुख परंपरा, **योगाचार**, जो वसुबन्धु और असंग से जुड़ी है, चेतना की प्रधानता पर बल देती है और कहती है कि सभी अनुभव मानसिक रचनाएँ हैं, और बाह्य वस्तुएँ मन से स्वतंत्र नहीं होतीं।

बौद्ध दर्शन ने तर्क और प्रमाणशास्त्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया, विशेष रूप से **दिग्नाग** और **धर्मकीर्ति** जैसे विचारकों द्वारा। इन्होंने प्रमाण (सत्य ज्ञान के साधन) की एक परिष्कृत प्रणाली विकसित की, जिसमें प्रत्यक्ष और अनुमान को मान्य ज्ञान के साधन माना गया। इनके विचारों ने न केवल भारतीय और तिब्बती बौद्ध चिंतन को, बल्कि न्याय और वेदांत जैसे आस्तिक दर्शनों को भी प्रभावित किया।

नैतिक रूप से, बौद्ध धर्म अहिंसा, करुणा और स्मृति जैसे सिद्धांतों की वकालत करता है-ना केवल नैतिक नियमों के रूप में, बल्कि मन को शुद्ध करने और अंतर्दृष्टि के लिए तैयार करने वाले उपकरणों के रूप में। बौद्ध साधना का उद्देश्य देवताओं की पूजा या कर्मकांड नहीं, बल्कि प्रज्ञा और करुणा का विकास है जो निर्वाण– दुःख की समाप्ति और पुनर्जन्म के अंत-की ओर ले जाता है। हालाँकि बौद्ध धर्म दिव्य या अलौकिक प्राणियों के अस्तित्व को स्वीकार करता है, वे मुक्ति के मार्ग में केंद्रीय भूमिका नहीं निभाते। इसके स्थान पर, मुख्य ज़ोर व्यक्तिगत प्रयास और मानसिक अनुशासन पर है।

बौद्ध धर्म एक व्यापक और व्यावहारिक दार्शनिक प्रणाली के रूप में खड़ा है, जिसकी जड़ें व्यक्तिगत अनुभव, तर्कसंगत विश्लेषण और नैतिक परिवर्तन में हैं। यह वास्तविकता और मन के कार्य-प्रणाली को समझकर दुःख से पार पाने का स्पष्ट मार्ग प्रस्तुत करता है। यद्यपि यह वेदों की सत्ता और आत्मा की स्थायित्व जैसी वैदिक धारणाओं को अस्वीकार करता है, बौद्ध धर्म ने भारत और इसके बाहर के बौद्धिक तथा

आध्यात्मिक परिदृश्य को गहराई से प्रभावित किया है। इसकी करुणा, सजगता और सभी वस्तुओं की परस्पर निर्भरता की शिक्षाएँ आज भी आधुनिक साधकों और विद्वानों के बीच गूंजती हैं।

2. जैन दर्शन– बहुवाद और अहिंसा

जैन **दर्शन** भारत की सबसे पुरानी दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपराओं में से एक है। इसे अपने मौजूदा रूप में छठी शताब्दी ईसा पूर्व में **महावीर** द्वारा स्थापित माना जाता है, जो 24वें और अंतिम तीर्थंकर थे। हालांकि, जैन परंपरा का मानना है कि यह ज्ञान हमेशा से अस्तित्व में है और महावीर से पहले भी कई जाग्रत गुरु इसे संसार को सिखाते आए हैं। कुछ हद तक बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म को भी "नास्तिक" दर्शन की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि यह वेदों की सर्वोच्चता और किसी सृष्टिकर्ता ईश्वर की धारणा को स्वीकार नहीं करता। लेकिन इसके बावजूद, इसमें एक गहराई से विकसित दर्शन है, जिसमें आत्मा, ब्रह्मांड और मुक्ति के मार्ग को लेकर स्पष्ट विचार हैं।

जीव और अजीव का सिद्धांत

जैन दर्शन के मूल में दो मुख्य तत्व हैं - **जीव** (आत्मा) और **अजीव** (निर्जीव तत्व)। जीव वह चेतन शक्ति है जो जीवन का आधार है, जबकि अजीव में वे सभी तत्व आते हैं जो निर्जीव होते हैं, जैसे - पुद्गल (पदार्थ), समय, आकाश और गति। जैन धर्म यह मानता है कि हर जीवधारी में आत्मा होती है - जो स्वभावतः शुद्ध, आनंदमयी और असीम ज्ञान से युक्त होती है। लेकिन यह आत्मा कर्मों के प्रभाव से ढक जाती है। ये कर्म, जैन दृष्टिकोण में, कोई रूपक नहीं बल्कि वास्तविक और सूक्ष्म भौतिक कण हैं जो हमारे कार्यों, इच्छाओं और अज्ञान के कारण आत्मा से चिपक जाते हैं, और पुनर्जन्म के चक्र को चलाते हैं।

जैन धर्म का अंतिम लक्ष्य है **मोक्ष** - यानी आत्मा को कर्म के बंधनों से पूरी तरह मुक्त करना। यह लक्ष्य कठोर नैतिक अनुशासन, आत्मसंयम और आध्यात्मिक शुद्धिकरण के ज़रिए प्राप्त किया जाता है। जैन नैतिकता का सबसे बड़ा आधार अहिंसा है - इसे सबसे ऊँचा धर्म माना गया है। यह अहिंसा केवल शरीर से किए गए कार्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि हमारे विचारों और वाणी में भी इसका पालन ज़रूरी है। इसी कारण जैन धर्म के अनुयायी पूरी तरह शाकाहारी होते हैं, और साधु-साध्वियाँ तो यहाँ तक कि छोटे जीव-जंतुओं और सूक्ष्म कीटों को भी हानि पहुँचाने से बचते हैं।

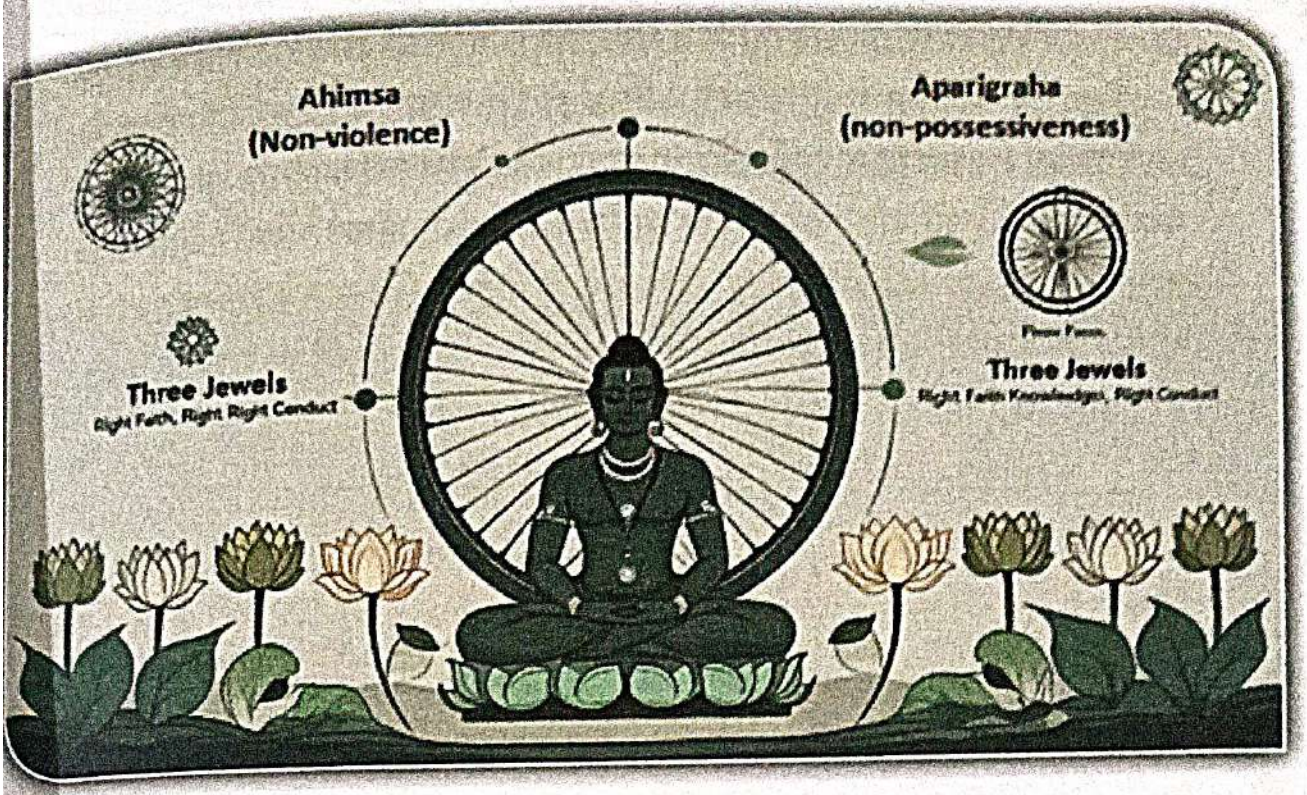

पाँच व्रत और संयम का महत्व

अहिंसा के साथ-साथ जैन धर्म में चार और प्रमुख व्रतों का पालन आवश्यक माना गया है: **सत्य** (सच बोलना), **अस्तेय** (चोरी न करना), **ब्रह्मचर्य** (संयमित जीवन या यौन संयम) और **अपरिग्रह** (संपत्ति का त्याग या मोह से मुक्ति)। ये चार व्रत जैन जीवन की नींव हैं। इन्हें सामान्य गृहस्थ से लेकर तपस्वी तक, अलग-अलग स्तरों पर निभाते हैं - लेकिन साधुओं और संन्यासियों के लिए इनका पालन अत्यंत कठोर होता है। त्याग और आत्मसंयम को जैन धर्म में आत्मा की उन्नति के लिए बेहद आवश्यक माना गया है, और तपस्या को एक ऐसा उपाय माना गया है जिससे पुराने कर्म जलते हैं और नए कर्म नहीं जुड़ते।

ज्ञान का दृष्टिकोण – अनेकांतवाद

ज्ञान के क्षेत्र में जैन धर्म का अनोखा योगदान है **अनेकांतवाद** - यानी यह मान्यता कि हर चीज़ के कई पहलू होते हैं, और किसी भी विषय या सच्चाई को केवल एक दृष्टिकोण से पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। यह दृष्टिकोण बौद्धिक विनम्रता सिखाता है, जहाँ हर मत और दृष्टिकोण को सहिष्णुता से देखा जाता है। इसी से जुड़े दो और सिद्धांत हैं: **स्याद्वाद** - जिसमें कथनों को सापेक्ष और संभाव्य माना जाता है, और **नयवाद** - जो यह बताता है कि हर कथन किसी खास दृष्टिकोण से कहा गया होता है। ये सिद्धांत यह समझने में मदद करते हैं कि सत्य हमेशा सापेक्ष और संदर्भ पर निर्भर होता है।

जैन ब्रह्मांड विज्ञान एक ऐसे विश्व का वर्णन करता है जो **शाश्वत और स्वचालित** है - इसका न कोई आरंभ है, न अंत, और न ही इसे चलाने के लिए किसी ईश्वर की आवश्यकता है। ब्रह्मांड तीन हिस्सों में बाँटा गया है: **ऊर्ध्व लोक** (देवताओं का क्षेत्र), **मध्य लोक** (मनुष्यों और जानवरों का संसार), और **अधो लोक** (नरक)। जीव अपने कर्मों के आधार पर इनमें से किसी भी लोक में जन्म लेते हैं। लेकिन जब आत्मा इन चक्रों को पार कर लेती है और सिद्ध लोक तक पहुँच जाती है, तब वह हमेशा के लिए **आनंद, ज्ञान और स्वतंत्रता** की अवस्था में रहती है - यही मोक्ष है।

जैन धर्म ने भारतीय दर्शन को तर्क, नैतिकता और तत्वमीमांसा के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया है। इसने **ज्ञान (ज्ञान), श्रद्धा (दर्शन)** और **आचरण (चरित्र)** - इन तीनों को **त्रिरत्न** के रूप में प्रतिष्ठित किया है, जो मोक्ष की ओर ले जाते हैं। जैन दर्शन में ज्ञान को पाँच श्रेणियों में बाँटा गया है – जो साधारण इंद्रियबोध से लेकर केवलज्ञान तक पहुँचता है, जिसे एक आत्मज्ञानी और पूर्णतया मुक्त आत्मा ही प्राप्त कर सकती है।

3. चार्वाक – भौतिकवाद और संशयवाद

भारतीय दर्शन की विविध धाराओं में **चार्वाक दर्शन**, जिसे **लोकायत** भी कहा जाता है, भौतिकवादी और तर्कवादी परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। यह विचारधारा भारतीय चिंतन की सबसे प्राचीन भौतिकवादी अभिव्यक्तियों में से एक मानी जाती है, और आध्यात्मिक व रहस्यवादी दर्शनों के ठीक विपरीत खड़ी दिखाई देती है। इसे एक **नास्तिक प्रणाली** के रूप में वर्गीकृत किया गया है क्योंकि यह वेदों की प्रामाणिकता, ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, कर्म और परलोक जैसी अवधारणाओं को सिरे से नकारती है। इसके बजाय, चार्वाक दर्शन संसार को समझने के लिए केवल **भौतिक और प्रत्यक्ष अनुभवों** को ही आधार मानता है।

इस दर्शन का नाम संभवतः इसके एक प्रमुख विचारक **चार्वाक** के नाम पर पड़ा, हालांकि इस परंपरा के मूल ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए जो भी जानकारी हमारे पास है, वह अधिकतर विरोधी दर्शनों (जैसे वेदान्त, बौद्ध, जैन आदि) की आलोचनात्मक रचनाओं से प्राप्त होती है।

ज्ञान का स्रोत: केवल प्रत्यक्ष अनुभव

चार्वाक दर्शन की बुनियाद इस विचार पर टिकी है कि **प्रत्यक्ष अनुभव (प्रत्यक्षा)** ही ज्ञान का एकमात्र विश्वसनीय स्रोत है। जहाँ अन्य दर्शन अनुमान (अनुमान), प्रमाण (शब्द), उपमान आदि को भी ज्ञान के माध्यम मानते हैं, वहीं चार्वाक इन सबको अस्वीकार करता

है। उसका तर्क है कि अनुमान अक्सर अविश्वसनीय होता है क्योंकि वह कारण और परिणाम के बीच ऐसे संबंधों पर निर्भर करता है जिन्हें हर बार प्रत्यक्ष रूप से नहीं परखा जा सकता। इसलिए आत्मा, पुनर्जन्म, या कर्म जैसे अमूर्त और परलोक संबंधी विषयों को चार्वाक केवल कल्पना और अविश्वसनीय मानता है।

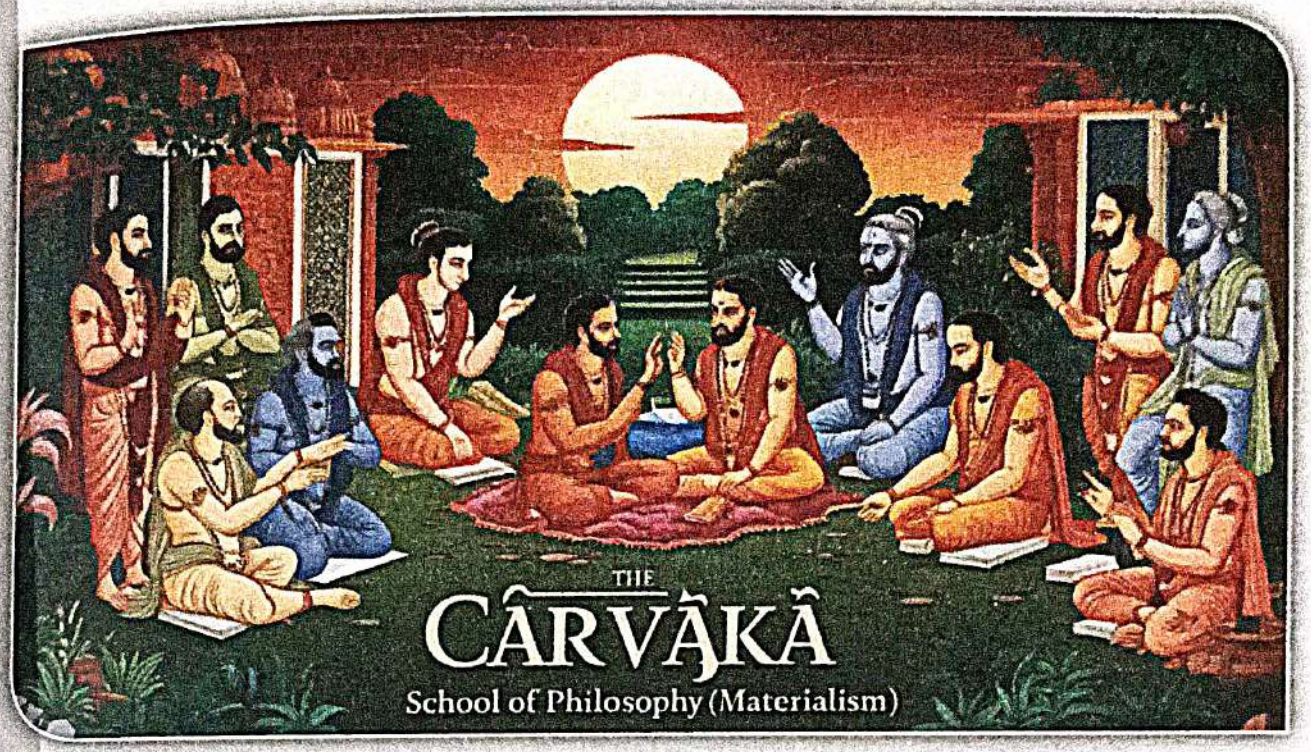

चार्वाक जीवन को एक शुद्ध भौतिक प्रक्रिया मानता है। उसके अनुसार केवल चार तत्व - **पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु** - ही वास्तविक हैं। चेतना भी इन्हीं तत्वों के संयोग से उत्पन्न होती है, ठीक वैसे ही जैसे शराब के तत्वों को मिलाने से नशा पैदा होता है। इस दृष्टिकोण में **मनुष्य एक मात्र जैविक शरीर है**, और आत्मा जैसा कोई अलग, अमर अस्तित्व नहीं होता। जब शरीर नष्ट होता है, तो व्यक्ति का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है - जैसे ईंधन खत्म होने पर आग बुझ जाती है।

भोगवादी दृष्टिकोण और नैतिकता

चूंकि चार्वाक परलोक या पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता, इसलिए उसका नैतिक दृष्टिकोण इसी जीवन पर केंद्रित है। वह जीवन को **आनंदपूर्वक जीने**, सुख भोगने और इंद्रियों की तृप्ति को ही मानव जीवन का स्वाभाविक लक्ष्य मानता है। इसका सबसे प्रसिद्ध वाक्य है:

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्"

अर्थात् – *"जब तक जियो, सुख से जियो । चाहे उधार लेकर क्यों न हो, लेकिन घी पियो ।"*

यह बात सुनने में भले ही भोगवादी या विलासी लगे, लेकिन इसका आशय यह है कि चूंकि मृत्यु के बाद कुछ नहीं है, इसलिए जीवन को पूरी तरह से जीना चाहिए - अब, इसी क्षण में। यह दर्शन बताता है कि धार्मिक भय या परलोक की उम्मीद में जीवन को बोझिल बना लेना समझदारी नहीं है।

हालाँकि चार्वाक दर्शन ने धर्म, आत्मा और ईश्वर जैसी परंपरागत मान्यताओं को खारिज किया, लेकिन इसका भारतीय दर्शन में एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह दर्शन उन परंपराओं के लिए एक तर्कपूर्ण चुनौती बनकर सामने आया जो कर्मकांड और आध्यात्मिक रहस्यवाद में लिप्त थीं। इसके तर्क, युक्ति और अनुभव-आधारित आलोचना ने अन्य दर्शनों को अपने सिद्धांतों को और अधिक मज़बूत और स्पष्ट करने के लिए प्रेरित किया। चार्वाक को एक प्रकार के **दार्शनिक प्राकृतिकवाद** के रूप में भी देखा जा सकता है – कुछ हद तक यह यूनानी भौतिकवाद की तरह है, जहाँ संसार और जीवन की व्याख्या बिना किसी अलौकिक तत्व के की जाती है।

समय के साथ, चार्वाक परंपरा धीरे-धीरे विलुप्त होती चली गई। इसका मुख्य कारण था - धार्मिक दर्शनों को मिला संस्थागत और सामाजिक समर्थन, जिसके मुकाबले चार्वाक विचारधारा को संगठित समर्थन नहीं मिला। इसके मूल ग्रंथ भी नष्ट हो गए या संरक्षित नहीं रह सके। आज जो भी जानकारी हमारे पास है, वह अधिकतर विरोधी विचारधाराओं द्वारा की गई आलोचना के माध्यम से ही मिलती है। फिर भी, चार्वाक एक साहसी, स्वतंत्र और आलोचनात्मक आवाज़ के रूप में भारतीय चिंतन में हमेशा याद किया जाता है। यह दर्शन हमें यह सिखाता है कि तर्क, अनुभव और स्वतंत्र सोच - किसी भी ज्ञान प्रणाली की रीढ़ हो सकते हैं। यह धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास से परे जाकर जीवन को समझने की एक निडर कोशिश का प्रतीक है।

C) आधुनिक विचारकों पर प्रभाव

स्वामी विवेकानंद (1902–1863): आध्यात्मिक मानवतावाद के पुनरुद्धारक

स्वामी विवेकानंद ने 20वीं सदी के आरंभ में भारतीय आध्यात्मिक दर्शन को पुनर्जीवित करने और वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे संत रामकृष्ण परमहंस के प्रमुख शिष्य थे और उन्होंने प्राचीन वेदांत दर्शन को आधुनिक तर्कशीलता, मानवतावाद और सामाजिक सुधार के आदर्शों के साथ मिलाकर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

उनका सबसे प्रसिद्ध क्षण 1893 में शिकागो में आयोजित "विश्व धर्म महासभा" में हुआ, जहाँ उन्होंने हिंदू धर्म की आध्यात्मिक समृद्धि का परिचय विश्व को दिया और यह संदेश दिया कि सभी धर्म मूलतः एक ही सत्य की ओर अग्रसर हैं। विवेकानंद की मूल देन थी अद्वैत वेदांत की व्याख्या को एक व्यावहारिक और जीवन-समर्थक आध्यात्मिकता में बदलना। उन्होंने यह सिखाया कि हर आत्मा में दिव्यता निहित है और जीवन का उद्देश्य उस दिव्यता को सेवा, शिक्षा और आत्मबोध के माध्यम से प्रकट करना है। वे मानते थे कि आध्यात्मिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व एक-दूसरे के पूरक हैं।

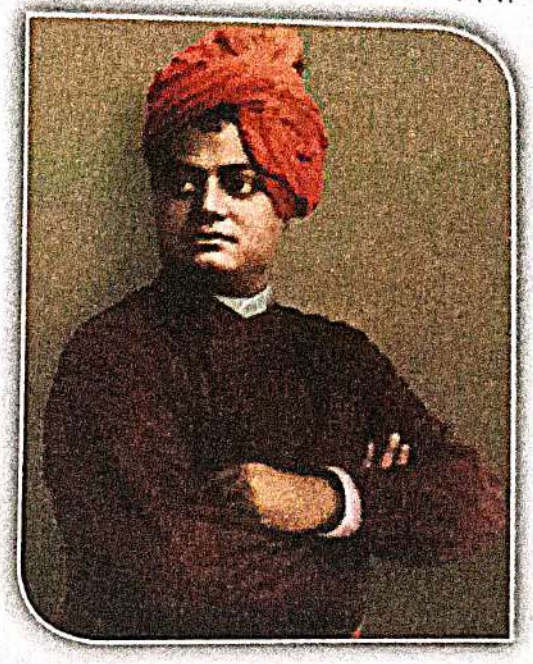

राष्ट्र निर्माण और सेवा के लिए उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जो आज भी धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और परोपकार को एक साथ लेकर चलता है। उनके विचार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में युवाओं के लिए प्रेरणा बने और आज भी धार्मिक सहिष्णुता, अंतर-धर्म संवाद और नैतिक नेतृत्व की चर्चाओं में प्रासंगिक हैं।

महात्मा गांधी (1948–1869): अहिंसा और आध्यात्मिक क्रियाशीलता के नैतिकतावादी

महात्मा गांधी का दार्शनिक योगदान शास्त्रीय ग्रंथों में कम और अपने जीवन में दर्शन को जीने में अधिक दिखता है। वे भगवद्गीता, जैन धर्म की अहिंसा की भावना, और वेदांत के आदर्शों से गहराई से प्रभावित थे। उन्होंने सत्याग्रह यानी **"सत्य की शक्ति"** को एक नैतिक और आध्यात्मिक साधन के रूप में विकसित किया। गांधीजी के लिए सत्य ही परम वास्तविकता थी, और अहिंसा उस तक पहुँचने का मार्ग। उनका दर्शन व्यावहारिक था-त्याग या सैद्धांतिक ज्ञान से परे-और समाज सुधार, आत्म-अनुशासन, तथा सामूहिक नैतिक जागरूकता में निहित था।

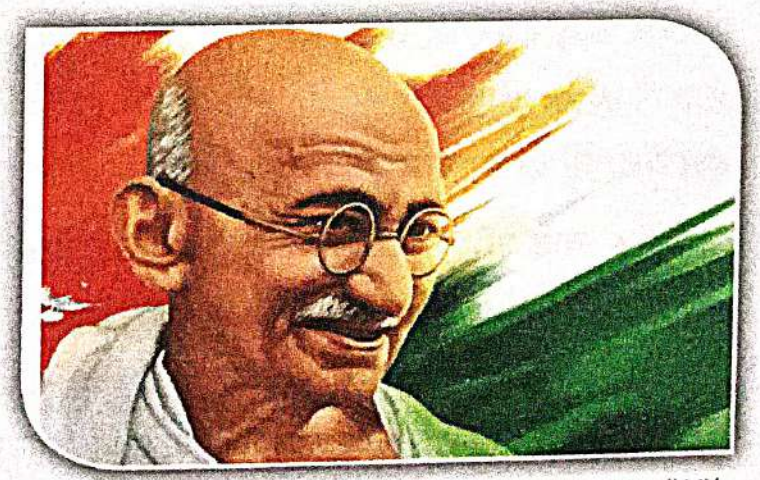

Source: https://hindusfestivals.com/rashtrapita-mahatma-gandhi-ji/

गांधी के प्रमुख दार्शनिक सिद्धांतों में शामिल हैं:

- **सर्वोदय** – सबका कल्याण, जो आध्यात्मिक और नैतिक जिम्मेदारी से जुड़ा है।
- **ट्रस्टीशिप** – संपत्ति को समाज के भले के लिए नैतिक रूप से संभालना।
- **सरलता और आत्म-अनुशासन** – एक सरल जीवन जो धर्म (कर्तव्य) से जुड़ा हो।
- **धार्मिक बहुलता** – गांधी सभी धर्मों का सम्मान करते थे और मानते थे कि हर धर्म ईश्वर की ओर ले जाने वाला एक मार्ग है।

गांधीजी के कार्यों ने भारतीय दर्शन को राजनीति और नैतिकता में एक जीवंत शक्ति बना दिया और उन्होंने यह सिद्ध किया कि कर्म, धर्म और त्याग जैसे विचार लोकतांत्रिक और आधुनिक समाज में भी पूरी तरह प्रासंगिक हैं।

डॉ. भीमराव अंबेडकर (1956–1891): सामाजिक न्याय और तर्कशील नैतिकता के दार्शनिक


Source: https://en.wikipedia.org/wiki/B._R._Ambedkar

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर एक प्रखर राजनीतिक नेता, विधिवेत्ता और समाज सुधारक थे, जिन्होंने भारतीय परंपराओं में व्याप्त जातिगत भेदभाव को खुलकर चुनौती दी। उन्होंने पश्चिमी दर्शन, कानून और अर्थशास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी, लेकिन साथ ही वे भारतीय परंपराओं, खासकर बौद्ध धर्म से भी गहराई से जुड़े रहे। उन्होंने बाद में ब्राह्मणवादी हिंदुत्व के विकल्प के रूप में बौद्ध धर्म को अपनाया।

अंबेडकर की दार्शनिक दृष्टि इन मूल सिद्धांतों पर आधारित थी:

- **तर्क और नैतिकता** – उन्होंने अंधविश्वास को नकारा और धर्म के लिए एक तर्कसंगत और नैतिक आधार की वकालत की।
- **मानव गरिमा और समानता** – वे मानते थे कि दर्शन का उद्देश्य केवल आत्म-मुक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन होना चाहिए।

- **जाति प्रथा की आलोचना** – उन्होंने जातिव्यवस्था को भारतीय आध्यात्मिक मूल्यों के विरुद्ध बताया।
- **नवयान बौद्ध धर्म** – उन्होंने बौद्ध धर्म की एक नई व्याख्या की जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को बढ़ावा देती है।

जहाँ अन्य आधुनिक विचारक उपनिषद या वेदांत की ओर झुके, अंबेडकर ने एक साहसिक और क्रांतिकारी रुख अपनाया। उन्होंने कहा कि भारतीय दर्शन का वास्तविक उद्देश्य मुक्ति तभी है जब वह न्याय और मानव अधिकारों को भी साथ ले चले। उनका कार्य केवल आलोचना नहीं था, बल्कि भारतीय दर्शन की पुनर्रचना थी, जो सबके लिए सुलभ और उपयोगी हो।

श्री अरविंद (1950–1872): समग्र विकास के दार्शनिक

श्री अरविंद एक दूरदर्शी दार्शनिक, योगी, कवि और राष्ट्रवादी नेता थे, जिन्होंने भारतीय दर्शन को एक उत्क्रांतिशील और आध्यात्मिक दिशा दी। आरंभ में वे स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रहे, परंतु बाद में उन्होंने आध्यात्मिक साधना की ओर रुख किया और "समन्वित योग" का दर्शन प्रस्तुत किया। इसका उद्देश्य केवल पीड़ा से मुक्ति नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव का आध्यात्मिक रूपांतरण था।

उन्होंने सांख्य, वेदांत और योग की शिक्षाओं को अपनाया, पर उससे आगे बढ़कर यह विचार रखा कि ईश्वर केवल ब्रह्मांड से परे नहीं, बल्कि इस जीवन के विकास में सक्रिय रूप से उपस्थित है। उन्होंने एक ऐसे भविष्य की कल्पना की जिसमें मानवता चेतना में विकसित होकर अपने दिव्य मूल को पूरी तरह साकार करेगी। अपने प्रमुख ग्रंथ *The Life Divine* में उन्होंने यह प्रतिपादन किया कि पदार्थ और आत्मा विरोधी नहीं, बल्कि एक ही दिव्य सत्ता के विभिन्न रूप हैं।

पांडिचेरी स्थित श्री अरविंद आश्रम में उन्होंने और उनकी सहयोगिनी **'द मदर'** (मिर्रा अल्फासा) ने उनके सिद्धांतों को व्यवहार में उतारते हुए एक आध्यात्मिक समुदाय की स्थापना की। उनके विचारों का शिक्षा, नैतिकता, मनोविज्ञान और सामाजिक विकास के क्षेत्र में स्थायी प्रभाव पड़ा। वे मानते थे कि आध्यात्मिक प्रगति को मानव विकास और वैश्विक समरसता के साथ चलना चाहिए।

रवीन्द्रनाथ टैगोर (1941–1861): सार्वभौमिक मानवतावाद के कवि-दार्शनिक

रवीन्द्रनाथ टैगोर, जो साहित्य में नोबेल पुरस्कार पाने वाले पहले गैर-यूरोपीय बने (1913), केवल एक महान साहित्यकार ही नहीं, बल्कि एक दूरदर्शी दार्शनिक और शिक्षाविद भी

थे। उपनिषदों के दर्शन से गहराई से प्रभावित टैगोर मानते थे कि हर मानव आत्मा में ईश्वर की उपस्थिति है और समस्त जीवन मूल रूप से एक है। उनका "ब्रह्म" का विचार कोई सूखा, जटिल सिद्धांत नहीं था, बल्कि वह सौंदर्य, प्रेम, सृजनशीलता और स्वतंत्रता से गहराई से जुड़ा हुआ था।

टैगोर ने ईश्वर को किसी दूरदराज़ सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि प्रेम, प्रकृति और कला के माध्यम से हृदय में अनुभव की जाने वाली उपस्थिति के रूप में देखा। उनके लेखन में पूर्वी आध्यात्मिकता और पाश्चात्य उदारवाद का सुंदर समन्वय मिलता है, जहाँ शिक्षा को रटंत प्रणाली से हटाकर स्वतंत्रता, सृजनात्मकता और भावनात्मक विकास पर आधारित बनाया गया। शांतिनिकेतन स्थित विश्व-भारती विश्वविद्यालय के माध्यम से उन्होंने शिक्षा का एक अनोखा मॉडल प्रस्तुत किया, जहाँ संगीत, कला, प्रकृति और आत्म-अन्वेषण को साथ जोड़ा गया। यह उपनिवेशीय स्कूलों की यांत्रिकता से बिल्कुल भिन्न था।

टैगोर अंतरराष्ट्रीयता और शांति के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने उग्र राष्ट्रवाद का विरोध करते हुए भारत की सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना का समर्थन किया। उनका मानवतावाद आध्यात्मिक था-जो विविधताओं का स्वागत करता था और परंपरा तथा प्रगति के बीच संतुलन की तलाश करता था।

समष्टिगत प्रभाव और आज की प्रासंगिकता

स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, डॉ. अंबेडकर, श्री अरविंद और रवीन्द्रनाथ टैगोर– ये सभी आधुनिक भारतीय दर्शन के पांच शक्तिशाली स्रोतों का प्रतिनिधित्व करते हैं:

- **विवेकानंद** ने आध्यात्मिक शक्ति और सेवा-प्रधान राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया।
- **गांधी** ने आध्यात्मिक राजनीति और नैतिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया, जिसमें प्राचीन मूल्यों को सामाजिक कार्य और स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ा गया।
- **अंबेडकर** ने एक तर्कशील, मानवीय दृष्टिकोण अपनाया, जो अन्यायपूर्ण संरचनाओं को खारिज करता है और समानता व न्याय पर आधारित धर्म और नैतिकता को स्थापित करता है।
- **अरविंद** ने मानवता के आध्यात्मिक विकास की कल्पना की, जिसमें पूर्व और पश्चिम दोनों का समन्वय हो।

- **टैगोर** ने एक सौंदर्यपरक और मानवीय दर्शन दिया, जो आंतरिक स्वतंत्रता और जीवन की एकता पर आधारित था।

इन सभी विचारकों के दृष्टिकोण आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, खासकर जब हम धार्मिक असहिष्णुता, नैतिक नेतृत्व, समग्र शिक्षा, पर्यावरणीय संतुलन और व्यक्तिगत रूपांतरण जैसी जटिल समस्याओं का सामना कर रहे हैं। इन्होंने यह दिखाया कि आध्यात्मिक दृष्टि और सामाजिक प्रगति को एक-दूसरे के विरोध में नहीं, बल्कि पूरक के रूप में देखा जा सकता है। इनके योगदान ने एक ऐसे आधुनिक भारत की नींव रखी जो परंपरा और नवाचार-दोनों को समान रूप से महत्व देता है।

सारांश

भारतीय दर्शन एक समृद्ध और विविध बौद्धिक परंपरा है, जो सहस्राब्दियों में विकसित हुई है। इसमें आस्तिक (जो वेदों को मानते हैं) और नास्तिक (जो वेदों की प्रामाणिकता को नहीं मानते) - दोनों प्रकार की दर्शनों का समावेश है। छह प्रमुख आस्तिक दर्शनों में **न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा** और **वेदांत** शामिल हैं। वहीं, **बौद्ध, जैन**, और **चार्वाक** जैसे नास्तिक दर्शन वेदों की सत्ता को अस्वीकार करते हुए अपनी स्वतंत्र और मौलिक दार्शनिक दृष्टियाँ प्रस्तुत करते हैं।

न्याय दर्शन ज्ञान और तर्कशक्ति पर केंद्रित है, जहाँ सच्चाई तक पहुँचने के लिए प्रमाणों की शुद्धता को सर्वोपरि माना गया है। इसके विश्लेषणात्मक तरीकों की आज के समय में भी आलोचनात्मक सोच और तर्कसंगत विमर्श में बड़ी भूमिका है। **वैशेषिक दर्शन**, न्याय से जुड़ा हुआ, जगत को सूक्ष्म कणों (परमाणुओं) के रूप में देखता है और तत्वों के वर्गीकरण द्वारा अस्तित्व की प्रकृति को समझाने का प्रयास करता है।

सांख्य दर्शन एक द्वैतवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जिसमें **पुरुष** (चेतना) और **प्रकृति** (भौतिक जगत) दो मूल तत्व माने जाते हैं। यह दृष्टिकोण भारतीय मनोविज्ञान और ब्रह्मांड विज्ञान की आधारशिला रखता है, और आत्मनिरीक्षण तथा मन और आत्मा के भेद को समझने में सहायक है। **योग दर्शन**, जो सांख्य से जुड़ा हुआ है, आत्ममोक्ष की ओर ले जाने वाली एक व्यावहारिक पद्धति प्रदान करता है-जिसमें नैतिक अनुशासन, शरीर पर नियंत्रण और ध्यान की गहन साधना शामिल है। आज योग मानसिक स्वास्थ्य, ध्यान और समग्र जीवनशैली का वैश्विक प्रतीक बन गया है।

मीमांसा दर्शन वेदों के कर्मकांड और धर्म (कर्तव्य) को जीवन का मार्गदर्शक मानता है। यद्यपि इसके अनुष्ठानात्मक पक्ष को आज पुरातन समझा जा सकता है, फिर

भी भाषा, अर्थ और नैतिक जिम्मेदारी पर इसकी विश्लेषणात्मक दृष्टि आज के नैतिक विमर्श और भाषा-दर्शन में प्रेरणा देती है। **वेदांत**, विशेषतः रूप, आत्मा और ब्रह्म के एकत्व की बात करता है। यह मानता है कि व्यक्तिगत आत्मा (आत्मन्) और परम सत्य (ब्रह्म) एक ही हैं। वेदांत आज भी ध्यान, अध्यात्म और धार्मिक संवादों में एक प्रमुख स्तंभ बना हुआ है।

नास्तिक दर्शनों में, **बौद्ध दर्शन** अनित्यत्व, अनात्मवाद और दुःख की निवृत्ति जैसे सिद्धांतों पर आधारित है। इसका ध्यान और नैतिक जीवन पर बल आधुनिक मनोचिकित्सा और आध्यात्मिक साधना में व्यापक रूप से अपनाया गया है। **जैन दर्शन** कठोर अहिंसा, सत्य, और तपस्या की भावना को प्रकट करता है, और पर्यावरणीय संतुलन तथा करुणा पर आधारित जीवन का एक आदर्श प्रस्तुत करता है। वहीं **चार्वाक दर्शन** भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाता है, जिसमें ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म और कर्म जैसे अमूर्त विश्वासों को खारिज किया गया है। यह तर्क, प्रत्यक्ष अनुभव और वैज्ञानिक सोच पर बल देता है और आज की वैज्ञानिक एवं धर्म-निरपेक्ष चेतना से मेल खाता है।

आज के समय में ये दर्शन केवल ऐतिहासिक या शास्त्रीय महत्व तक सीमित नहीं हैं। ये ज्ञान, चेतना, नैतिकता और मुक्ति के ऐसे ढांचे प्रस्तुत करते हैं जो आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। चाहे वह **बौद्ध और योग** से उत्पन्न ध्यान की विधियाँ हों, **जैन और मीमांसा** से मिली नैतिक जीवन शैली, या **न्याय** से प्राप्त तर्क और विवेक-भारतीय दर्शन की विविध धाराएँ आज भी व्यक्तिगत विकास, धर्मों के बीच संवाद, और वैश्विक बौद्धिक विमर्श में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

सुझावात्मक पठनीय सामग्री

1. *A History of Indian Philosophy* by Surendranath Dasgupta.
2. *The Art of Indian Philosophy* by Kh. T. Patanjali.
3. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), "*Introduction to Indian Knowledge System*", PHI learning private ltd.
4. OP Pandey (2023), "*Bharat Vaibhav*", National Book Trust, India.
5. Ralasubramanian, R. (2000). "*Introduction*". In Chattopadhyana (Ed.). History of Science, Philosophy and Culture in Indian Civilisation. Volume II. Part 2: Advaita Vedanta. Delhi: Centre for Studies in Civilisations.
6. Bhaduri, S. (1975). "*Studies in Nyaya-Vaiśesika Metaphysics*", Bhandarkar Oriental Research Institute. Pune.
7. Bhattacharya, R. (2002). "Cārvāka Fragments: A New Collection", *Journal of Indian Philosophy*, 30, pp. 597-640.
8. Bose. R.C. (1884). *The Hindu Philosophy: Orthodox Systems*, Funk & Wagnalls, London.
9. Chattopadhyaya, J-C. (1912). *The Hindu Realism*, The Indian Press, Allahabad.
10. Dasgupta, S. (1975). *A History of Indian Philosophy* - Volume 1, Motilal Banarsidass, New Delhi
11. Hiriyanna, M. (1994). *Outlines of Indian Philosophy*, Motilal Banarsidass, New Delhi.
12. Jain, PS. (2000). "*Collected Papers on Jaina Studies*", Motilal Banarsidass, Delhi.
13. Jain, P.S. (2001). "*Collected Papers on Buddhist Studies*", Motilal Banarsidass, Delhi

14. Madhavacarya, S. (1978). *Sarvadarsana-samgraha*, V.S. Abhyankar (Ed.), 3rd ed., Bhandarkar Oriental Research Institute.
15. Puligandla, R. (2005). *Fundamentals of Indian Philosophy*, DK Print World, New Delhi, pp. 119-208.
16. Radhakrishnan, S. (1958). *Indian Philosophy* - Volume 2, The Macmillan Company, New York.
17. Raghavendrachar, H.N. and Wadia, A.R. (1941). "*The Dvaita Philosophy and Its Place in the Vedanta*", The University of Mysuru.
18. Sethia, T. (2004). *Ahimsa, Anekānta and Jainism*, Motilal Banarsidass, New Delhi.
19. Sharma, C. A. (1964). *Critical Survey of Indian Philosophy*. Motilal Banarasidass Publication.
20. Sinha, N. (1990). *The Nyaya Sūtras of Gotama*, Motilal Banarsidass Publishers, Delhi.
21. Sinha, N. (2008). *The Vaiśeşika Sūtras of Kanada*, Cosmos Publications. New Delhi.

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय दर्शन का केंद्रीय विषय है ?
   A) भौतिकवाद
   B) व्यक्ति, ब्रह्मांड और भगवान के बीच संबंध
   C) धर्म और दर्शन का पृथक्करण
   D) धन और शक्ति की प्राप्ति

2. भारतीय दर्शन में "दर्शन" शब्द का अर्थ क्या है?
   A) खुशी
   B) ज्ञान
   C) दृष्टिकोण या दृष्टि
   D) मुक्ति

3. कौन से प्राचीन भारतीय ग्रंथ भारतीय दर्शन के मौलिक ग्रंथ माने जाते हैं?
   A) भगवद गीता
   B) वेद
   C) योग सूत्र
   D) तंत्र

4. उपनिषदों में, ब्रह्मन और आत्मा को किस रूप में माना जाता है?
   A) भौतिक अस्तित्व और भौतिकवाद
   B) परम सत्य और व्यक्तिगत आत्मा
   C) पुनर्जन्म और कर्म के चक्र
   D) ज्ञान और अज्ञान

5. भारतीय दर्शन की अधिकांश परंपराओं के अनुसार, व्यक्ति का प्रमुख उद्देश्य क्या है?

A) धन का संचय
B) मुक्ति (मोक्ष)
C) शक्ति और नियंत्रण
D) प्रसिद्धि की प्राप्ति

6. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय दर्शन की विशेषता नहीं है?

A) व्यक्ति और दिव्य के बीच संबंध पर जोर
B) दर्शन का धार्मिक अभ्यास से एकीकरण
C) ज्ञान के मुख्य साधन के रूप में इंद्रिय अनुभव पर ध्यान केंद्रित करना
D) विभिन्न विचारधाराओं और बौद्धिक बहसों को स्वीकार करना

7. भारतीय दर्शन में "प्रमाण" शब्द का अर्थ है:

A) पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति
B) ज्ञान प्राप्ति के साधन
C) मानव व्यवहार को मार्गदर्शित करने वाले नैतिक सिद्धांत
D) मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य

8. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय दर्शन के वैदिक और गैर-वैदिक विद्यालय में एक समान विशेषता है?

A) धार्मिक अभ्यासों का निषेध
B) संसार (पुनर्जन्म के चक्र) में विश्वास
C) भौतिक सफलता पर ध्यान
D) स्वतंत्र इच्छा का इनकार

9. भारतीय दर्शन के न्याय विद्यालय को किसके लिए जाना जाता है?

A) मुक्ति के एकमात्र साधन के रूप में ध्यान को बढ़ावा देना
B) दर्शनिक बहस के लिए एक औपचारिक रूपरेखा स्थापित करना
C) सभी धार्मिक अवधारणाओं का खंडन करना
D) केवल नैतिक आचरण पर ध्यान केंद्रित करना

10. ऋग्वेद का प्रसिद्ध "नसदिया सूक्त" मुख्य रूप से किसकी उत्पत्ति का अन्वेषण करता है?

A) आत्मा का स्वरूप
B) ब्रह्मांड की उत्पत्ति
C) समाज की संरचना
D) खुशी की प्राप्ति

11. न्याय दर्शन का केंद्रीय विचार क्या है?

A) इंद्रिय अनुभव के माध्यम से मुक्ति
B) सत्य के ज्ञान के माध्यम से मुक्ति
C) ब्रह्मांड की एकता
D) भौतिक सुखों की प्राप्ति

12. न्याय विद्यालय के परिचय से कौन सा दार्शनिक जुड़ा हुआ है?

A) कनाडा
B) गौतम
C) गंगेशोपाध्याय
D) प्रसस्तपाद

13. न्याय दर्शन में, ज्ञान का अंतिम उद्देश्य क्या है?

A) भौतिक सफलता प्राप्त करना
B) जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त करना
C) आत्मा का स्वरूप समझना
D) सुख और खुशी प्राप्त करना

14. न्याय दर्शन के किस उप-विद्यालय ने 11वीं शताब्दी CE में महत्वपूर्ण सुधार किए थे?

A) वैशेषिक
B) नव्य-न्याय
C) पूर्वमीमांसा
D) वेदांत

15. वैशेषिक दर्शन मुख्य रूप से किससे संबंधित है?

A) ज्ञान प्राप्ति के उपाय
B) भगवान और व्यक्ति के बीच संबंध
C) ब्रह्मांड की मूल विविधता
D) मुक्ति प्राप्त करने में ध्यान का भूमिका

16. वैशेषिक दर्शन के अनुसार, पदार्थ के अंतिम घटक कौन से हैं?

A) इंद्रिय
B) परमाणु (अदृश्य कण)
C) कर्म
D) गुण (विशेषताएँ)

17. वैशेषिक प्रणाली में वास्तविकता के वर्गीकरण में निम्नलिखित में से कौन सा श्रेणी नहीं है?

A) द्रव्य (पदार्थ)
B) गुण (विशेषता)
C) कर्म (कार्य)
D) आत्मा (आत्मा)

18. न्याय दर्शन में, तर्क के विधि का उपयोग किसलिए किया जाता है?

A) दुख से मुक्ति
B) भौतिक संपत्ति
C) सही इंद्रिय ज्ञान
D) मुक्ति के लिए सही ज्ञान प्राप्त करना

19. पूर्वमीमांसा दर्शन का ध्यान किस पर है?

A) ज्ञान और मुक्ति
B) मुक्ति की ओर ले जाने वाले अनुष्ठान और कर्म
C) आध्यात्मिक जागरण के लिए ध्यान
D) दिव्य सृष्टि का अध्ययन

20. वेदों के किस भाग पर वेदांत विद्यालय आधारित है?

A) कर्मकांड (अनुष्ठान भाग)

B) ज्ञानकांड (ज्ञान भाग)

C) उपनिषद

D) ब्राह्मण

21. पूर्वमीमांसा विद्यालय का मुक्ति के संदर्भ में मुख्य उद्देश्य क्या है?

A) सांसारिक संपत्ति का त्याग

B) ब्रह्मन का ज्ञान

C) कर्तव्यों और अनुष्ठानों का सही रूप से पालन

D) एक व्यक्तिगत भगवान की भक्ति

22. पूर्वमीमांसा दर्शन में निम्नलिखित में से कौन सा ध्यान केंद्रित नहीं है?

A) कर्मकांड और अनुष्ठान

B) वैदिक ग्रंथों की व्याख्या

C) धर्म का सिद्धांत

D) ब्रह्मन के साथ अंतिम सत्य की पहचान

23. वेदांत के किस भाग पर मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित किया जाता है?

A) कर्मकांड (अनुष्ठान भाग)

B) ज्ञानकांड (ज्ञान भाग)

C) ब्राह्मण

D) संहिता

24. वेदांत के किस विद्यालय की स्थापना आदि शंकराचार्य ने की थी?

A) विशिष्टाद्वैत वेदांत

B) अद्वैत वेदांत

C) द्वैत वेदांत

D) भक्ति वेदांत

25. अद्वैत वेदांत में अंतिम वास्तविकता क्या है?

A) विष्णु, एक व्यक्तिगत भगवान

B) निर्गुण ब्रह्म, निराकार और निरुपद्रव

C) आत्मा (आत्मन) अकेला

D) भौतिक संसार

26. शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत मुक्ति के लिए किस रास्ते पर जोर देता है?

A) विष्णु के प्रति भक्ति

B) यह ज्ञान कि आत्मा और ब्रह्मन एक हैं

C) केवल अनुष्ठानों का पालन करना

D) तपस्विता और त्याग

27. विशिष्टाद्वैत वेदांत की एक प्रमुख विशेषता क्या है?

A) आत्मा और ब्रह्मन की एकता

B) संसार एक माया (भ्रम) है

C) ब्रह्मन के गुण हैं और वह व्यक्तिगत है

D) व्यक्ति की आत्मा और भगवान के बीच द्वैत एक माया है

28. द्वैत वेदांत के अनुसार, व्यक्ति आत्मा (जीव) और परमेश्वर (ईश्वर) के बीच संबंध क्या है?

A) आत्मा और भगवान एक जैसे हैं

B) आत्मा भगवान द्वारा बनाई गई माया है

C) आत्मा हमेशा भगवान से भिन्न है

D) आत्मा मुक्ति प्राप्त करने पर भगवान में मिल जाती है

29. माध्वाचार्य का द्वैत वेदांत दर्शन मुक्ति के लिए किस रास्ते पर जोर देता है?

A) आत्मा और भगवान के बीच एकता का ज्ञान

B) विष्णु के प्रति भक्ति और कृपा

C) ब्रह्मन का ज्ञान

D) सांसारिक बंधनों से त्याग

30. द्वैत वेदांत में पाँच भेदों (पंचभेद) में से निम्नलिखित कौन सा नहीं है?

A) जीव और ईश्वर के बीच भेद

B) जीव और प्रकृति के बीच भेद

C) जीव और भौतिक संसार के बीच भेद

D) ब्रह्मन और माया के बीच भेद

31. जैन दर्शन का एक प्रमुख सिद्धांत क्या है?

A) एक सर्वोच्च स्रष्टा भगवान का अस्तित्व

B) तपस्विता और अहिंसा के माध्यम से मुक्ति की प्राप्ति

C) आत्मा (आत्मन) और ब्रह्मन की पहचान

D) निर्वाण प्राप्त करने के लिए ध्यान का अभ्यास

32. जैन धर्म में अंतिम चतुर्वेदी तीर्थंकर के रूप में किसे माना जाता है?

A) सिद्धार्थ गौतम

B) महावीर

C) बुद्ध

D) उमास्वाती

33. जैन दर्शन में कर्म से संबंधित एक केंद्रीय उपदेश क्या है?

A) कर्म एक भ्रांति है

B) कर्म एक भौतिक पदार्थ है जो आत्मा को बाँधता है

C) कर्म एक मानसिक संरचना है

D) कर्म का मुक्ति पर कोई प्रभाव नहीं होता

34. जैन संप्रदाय में कौन सा संप्रदाय अधिक तपस्विता पर जोर देता है, जिसमें नग्नता का अभ्यास भी होता है?

A) श्वेतांबर

B) दिगंबर

C) महायान

D) थेरवाद

35. जैन दर्शन में सत्य के सापेक्षता का सिद्धांत किसे कहा जाता है?

A) कर्मवाद
B) स्याद्वाद
C) अहिंसा
D) मोक्षवाद

36. जैन दर्शन में अंतिम लक्ष्य क्या है?

A) ब्रह्मा के साथ मिल जाना
B) कर्म को शुद्ध करके जन्म-मृत्यु के चक्र को समाप्त करना (मोक्ष)
C) वेदों का सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करना
D) ध्यान के माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति

37. बौद्ध (बुद्धवादी) दर्शन के संस्थापक कौन हैं?

A) महावीर
B) गौतम बुद्ध
C) शंकराचार्य
D) रामानुज

38. निम्नलिखित में से कौन सा बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य में से नहीं है?

A) दुःख का अस्तित्व है (दुःख)
B) दुःख का कारण इच्छा है (तृष्णा)
C) निर्वाण शाश्वत जीवन की स्थिति है
D) दुःख से मुक्ति के लिए Noble Eightfold Path है

39. बौद्ध दर्शन का अंतिम उद्देश्य क्या है?

A) ब्रह्मा के साथ मिल जाना
B) निर्वाण प्राप्त करना, दुःख की समाप्ति
C) देवताओं के स्वर्ग में शाश्वत सुख रहना
D) मुक्ति के लिए अनुष्ठान करना

40. निम्नलिखित में से कौन सा बौद्ध धर्म के Noble Eightfold Path का हिस्सा नहीं है?

A) सही समझ
B) सही वाणी
C) सही धन
D) सही ध्यान

41. बौद्ध धर्म में, समसार (पुनर्जन्म) और दुःख का कारण क्या है?

A) अज्ञान और इच्छा (तृष्णा)
B) कर्म का संचय
C) अनुष्ठानों का पालन न करना
D) भौतिक संपत्ति से जुड़ाव

42. बौद्ध धर्म का कौन सा विद्यालय थाईलैंड, श्रीलंका, और कंबोडिया जैसे देशों में प्रमुख रूप से प्रचलित है?

A) महायान बौद्ध धर्म
B) वज्रयान बौद्ध धर्म
C) थेरावादा बौद्ध धर्म
D) ज़ेन बौद्ध धर्म

43. बौद्ध धर्म के पंचकंधा (Five Aggregates) के सिद्धांत में निम्नलिखित में से कौन सा एक प्रमुख विचार है?

A) आत्मा (आत्मन) शाश्वत है
B) कंधों से जुड़ाव दुःख का कारण है
C) कंधे शाश्वत आत्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं
D) कंधे आपस में जुड़े नहीं होते

44. जैन धर्म में कर्म को शुद्ध करने के लिए कौन सी क्रिया सबसे महत्वपूर्ण है?

A) ध्यान
B) अहिंसा (अहिंसा)
C) अनुष्ठान बलि
D) व्यक्तिगत भगवान की पूजा

45. बौद्ध धर्म में निर्वाण की अवधारणा को सबसे अच्छा क्या वर्णित करता है?

A) शाश्वत सुख का स्थान
B) इच्छा का पूर्ण विनाश और दुःख का समापन
C) एक उच्च लोक में जीवन की निरंतरता
D) वेदों को समझने की दार्शनिक स्थिति

46. चार्वाक विद्यालय का वास्तविकता के बारे में मुख्य विश्वास क्या है?

A) ब्रह्मा द्वारा शासित ब्रह्मांड
B) केवल भौतिकता ही अस्तित्व में है, और कोई परापर ब्रह्मा नहीं है
C) भौतिक संसार केवल एक भ्रांति है
D) ब्रह्मांड कर्म और पुनर्जन्म द्वारा शासित है

47. निम्नलिखित में से कौन सा चार्वाक दर्शन द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है?

A) कर्म
B) आत्मा (आत्मन)
C) पुनर्जन्म
D) इंद्रिय अनुभव को ज्ञान का एक स्रोत के रूप में

48. चार्वाक दर्शन का परलोक या पुनर्जन्म के बारे में क्या दृष्टिकोण है?

A) मृत्यु के बाद आत्मा किसी अन्य शरीर में पुनः जन्म लेती है
B) आत्मा मुक्ति प्राप्त करती है और ब्रह्मा में मिल जाती है
C) कोई परलोक या पुनर्जन्म नहीं है; शरीर नष्ट होकर तत्वों में मिल जाता है
D) आत्मा अच्छे कर्मों के आधार पर स्वर्ग में चढ़ जाती है

49. निम्नलिखित में से कौन सा चार्वाक दर्शन के अनुसार जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य है?

A) मोक्ष प्राप्त करना
B) वेदों का ज्ञान प्राप्त करना
C) वर्तमान जीवन में सुख, संपत्ति, और आनंद प्राप्त करना
D) पुण्य कर्म (धर्म) करना

50. चार्वाक दर्शन आत्मा (आत्मन) के बारे में क्या दृष्टिकोण रखता है?

A) आत्मा शाश्वत है और शरीर से अलग है
B) आत्मा भौतिक शरीर का अस्थायी रूप है
C) आत्मा भौतिक संसार से परे है और अनुभव नहीं की जा सकती
D) मृत्यु के बाद आत्मा ब्रह्मा में विलीन हो जाती है

51. निम्नलिखित में से कौन सा चार्वाक दर्शन द्वारा अस्वीकार किया गया है?

A) सीधे इंद्रिय अनुभव
B) दिव्य beings या परापर वास्तविकताओं का अस्तित्व
C) जीवन का लक्ष्य आनंद प्राप्ति
D) यह विचार कि भौतिक पदार्थों को इंद्रियों से अनुभव किया जा सकता है

52. चार्वाक दर्शन का दृष्टिकोण धर्म, मोक्ष और कर्म जैसी अमूर्त अवधारणाओं के बारे में क्या है?

A) ये भौतिक संसार को समझने के लिए आवश्यक हैं
B) ये बेतुके विचार हैं जिनका भौतिक संसार में कोई आधार नहीं है
C) ये वैध अवधारणाएं हैं लेकिन मानव समझ से परे हैं
D) ये मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं

53. चार्वाक दर्शन के अनुसार ज्ञान के बारे में कौन सा मुख्य सिद्धांत है?

A) ज्ञान वेदों और दिव्य प्रकटनों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है
B) ज्ञान का एकमात्र वैध स्रोत सीधे इंद्रिय अनुभव है
C) ज्ञान ध्यान और आत्मिक अभ्यास से प्राप्त होता है
D) ज्ञान अप्रासंगिक है; केवल सुख महत्वपूर्ण है

54. चार्वाक दर्शन का मुख्य नैतिक फोकस क्या है?

A) सांसारिक सुखों का त्याग करके आत्मिक मुक्ति प्राप्त करना
B) तपस्विता के माध्यम से प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना
C) जीवन को पूरी तरह से आनंदित करते हुए तत्काल इंद्रिय सुखों का अनुभव करना
D) पुण्य कर्म (धर्म) का पालन करके अच्छे कर्म प्राप्त करना

55. चार्वाक दर्शन का अंत क्यों हुआ?

A) यह बहुत लोकप्रिय हो गया और भारतीय दर्शन में एक बदलाव लाया
B) इसके पास ठोस ग्रंथ और एक स्थापित बौद्धिक परंपरा की कमी थी
C) यह अन्य दार्शनिक परंपराओं में समाहित हो गया
D) इसके भौतिकवादी दृष्टिकोण ने भारत में व्यापक रूप से स्वीकृति प्राप्त की

56. चार्वाक दर्शन को अक्सर किस रूप में वर्णित किया जाता है?

A) भोगवाद (Hedonism)
B) अद्वैतवाद
C) द्वैतवाद
D) आदर्शवाद

57. निम्नलिखित में से कौन सा भौतिक तत्व चार्वाक दर्शन द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है?

A) पृथ्वी
B) पानी
C) आकाश (आकाश)
D) वायु

58. चार्वाक दर्शन में, मृत्यु के बाद शरीर के साथ क्या होता है?

A) यह पुनर्जन्म के चक्र में प्रवेश करता है
B) यह ब्रह्मा के साथ मिल जाता है
C) यह नष्ट हो जाता है और तत्वों में मिल जाता है
D) यह एक दिव्य लोक में चढ़ जाता है

59. "चार्वाक" नाम संस्कृत शब्द "चरु-वाक" से लिया गया है, जिसका अर्थ है:

A) "आध्यात्मिक ज्ञान"
B) "मिठी ज़बान वाला"
C) "दिव्य ज्ञान"
D) "मुक्ति का मार्ग"

60. निम्नलिखित में से कौन सा चार्वाक दर्शन में प्राथमिकता प्राप्त करता है?

A) रहस्यमय अनुभव और परापर ज्ञान
B) इंद्रिय अनुभव और तत्काल सुख
C) ध्यान के माध्यम से आत्मिक मुक्ति की खोज
D) पवित्र ग्रंथों और अनुष्ठानों का अध्ययन

61. वैदिक दर्शन शास्त्रों का मुख्य उद्देश्य क्या है?

A) भौतिक विज्ञानों की खोज करना
B) आत्मा की प्रकृति को समझना और मुक्ति प्राप्त करना
C) केवल वैदिक अनुष्ठानों का अध्ययन करना
D) सांसारिक शक्ति और संपत्ति प्राप्त करना

62. वैदिक दर्शनों में मुक्ति की धारणा किससे सबसे अधिक जुड़ी हुई है?

A) सामाजिक कर्तव्यों से मुक्ति
B) अपने सच्चे स्वरूप की पहचान
C) ज्ञान का संचय
D) भौतिक संपत्ति की प्राप्ति

63. निम्नलिखित में से कौन सा वैदिक दर्शन मुक्ति के लिए ज्ञान प्राप्ति पर बल देता है?

A) न्याय
B) वैशेषिक
C) सांख्य
D) उपरोक्त सभी

64. सांख्य और योग दोनों किसके बीच के संबंध पर ध्यान केंद्रित करते हैं?

A) ईश्वर, ब्रह्मांड और व्यक्ति
B) भौतिक संपत्ति और सामाजिक स्थिति
C) सुख और दुख
D) मानसिक व्याकुलता और इंद्रियां

65. सांख्य दर्शन निम्न में से किसके अस्तित्व को नकारता है?

A) प्रकृति

B) पुरुष

C) एक सर्वोच्च ईश्वर (ईश्वर)

D) मन

66. सांख्य और योग में मूल अंतर यह है कि योग:

A) आत्मा के अस्तित्व को नकारता है

B) मन को नियंत्रित करने की व्यावहारिक विधियों पर ध्यान देता है

C) केवल बौद्धिक ज्ञान से संबंधित है

D) प्रकृति को महत्वपूर्ण नहीं मानता

67. सांख्य दर्शन में कौन सा तत्व शुद्ध चेतना का प्रतिनिधित्व करता है?

A) प्रकृति

B) पुरुष

C) महत

D) अहंकार

68. सांख्य दर्शन में तीन मुख्य गुण कौन से हैं?

A) रजस, सत्त्व, तमस

B) अग्नि, जल, पृथ्वी

C) ज्ञान, इच्छा, अज्ञान

D) मन, बुद्धि, अहंकार

69. सांख्य दर्शन में प्रकृति का विकास किसकी रचना करता है?

A) केवल भौतिक संसार

B) पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ और पाँच महाभूत

C) केवल आध्यात्मिक तत्व

D) उपरोक्त में से कोई नहीं

70. सांख्य दर्शन में मुक्ति कब प्राप्त होती है?

A) जब कोई सांसारिक ज्ञान प्राप्त करता है

B) जब आत्मा पुरुष और प्रकृति के भेद को पहचानती है

C) जब कोई व्यक्ति संपत्ति एकत्र करता है

D) जब कोई व्यक्ति तपस्या करता है

71. योग किस पर विशेष बल देता है?

A) प्रकृति का विश्लेषण

B) ध्यान और मानसिक नियंत्रण

C) प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन

D) देवताओं की पूजा

72. योग दर्शन में मानसिक विकारों की समाप्ति को क्या कहा जाता है?

A) समाधि

B) यम

C) आसन

D) योग

73. योग अभ्यास का अंतिम लक्ष्य क्या है?

A) मानसिक शांति

B) दुःख और जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति

C) शारीरिक स्वास्थ्य

D) सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना

74. निम्नलिखित में से कौन योग के अष्टांग का अंग नहीं है?

A) यम

B) समाधि

C) प्रत्याहार

D) प्रत्येक

75. योग में कौन सा चरण विचारों, शब्दों और कर्मों पर आत्मसंयम से जुड़ा होता है?

A) नियम
B) आसन
C) यम
D) समाधि

76. योग में नियम चरण का मुख्य फोकस क्या होता है?

A) केवल बाहरी क्रियाएं
B) शुद्धता और संतोष जैसे सकारात्मक नियम
C) शक्ति के लिए शारीरिक मुद्राएं
D) मौन और एकांत

77. योग में आसन का अभ्यास करने का उद्देश्य क्या है?

A) बौद्धिक विश्लेषण में लगना
B) मानसिक स्पष्टता प्राप्त करना
C) ध्यान के लिए स्थिर और आरामदायक मुद्राएं अपनाना
D) शारीरिक शक्ति और लचीलापन बढ़ाना

78. निम्न में से कौन सी योग की प्रक्रिया श्वास नियंत्रण से संबंधित है?

A) यम
B) प्राणायाम
C) ध्यान
D) धारणा

79. योग में प्रत्याहार का अभ्यास क्या होता है?

A) शारीरिक मुद्राओं में निपुणता
B) इंद्रियों को बाहरी विषयों से हटाना
C) श्वास नियंत्रण पर ध्यान देना
D) किसी एक वस्तु पर निरंतर ध्यान

80. योग में धारणा चरण का उद्देश्य क्या है?

A) मन के उतार-चढ़ाव का निरीक्षण करना

B) मन को एक ही वस्तु पर बिना विचलन के केंद्रित करना

C) पूर्ण मानसिक शांति प्राप्त करना

D) भौतिक संसार से अलग होना

81. योग में ध्यान को सबसे अच्छी तरह कैसे वर्णित किया जा सकता है?

A) एक वस्तु पर लगातार ध्यान केंद्रित करने की मानसिक अनुशासन

B) ध्यान का प्रारंभिक चरण

C) शरीर को नियंत्रित करने की प्रक्रिया

D) पवित्र ग्रंथों का अध्ययन

82. योग के अंतिम चरण समाधि में साधक को क्या अनुभव होता है?

A) ध्यान की वस्तु में पूर्ण लयबद्धता

B) शारीरिक शक्ति में वृद्धि

C) सामाजिक संपर्क में वृद्धि

D) इंद्रियों के अनुभवों पर नियंत्रण

83. सांख्य दर्शन के अनुसार कैवल्य (मोक्ष) तब प्राप्त होता है जब:

A) कोई व्यक्ति बिना आसक्ति के सांसारिक कर्तव्यों का पालन करता है

B) आत्मा प्रकृति और उसके तत्वों से विरक्त हो जाती है

C) व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान एकत्र करता है

D) कोई व्यक्ति सांसारिक नेता बन जाता है

84. इंद्रियों को बाह्य वस्तुओं से हटाने की प्रक्रिया को क्या कहा जाता है?

A) आसन

B) यम

C) प्रत्याहार

D) समाधि

85. निम्न में से कौन-सा विकल्प सांख्य दर्शन में गुणों के दृष्टिकोण को सबसे अच्छी तरह दर्शाता है?

A) वे आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत हैं
B) वे मन और शरीर की क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं
C) वे मुक्ति के मार्ग में अप्रासंगिक हैं
D) उन्हें ध्यान द्वारा समाप्त किया जा सकता है

86. योग में प्राणायाम की क्या भूमिका है?

A) परम सत्य पर ध्यान लगाना
B) श्वास पर ध्यान केंद्रित कर मानसिक गतिविधि को नियंत्रित करना
C) शारीरिक मुद्राएँ करना
D) पवित्र ग्रंथों का अध्ययन करना

87. सांख्य दर्शन के अनुसार, बौद्धिक समझ के लिए कौन-सा तत्व उत्तरदायी है?

A) मन
B) बुद्धि (महत्तत्त्व)
C) अहंकार
D) तमस

88. निम्नलिखित वेदांत दर्शनों में से कौन ईश्वर (ईश्वर) के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता?

A) सांख्य
B) योग
C) वैशेषिक
D) न्याय

89. योग में समाधि का अंतिम लक्ष्य क्या है?

A) ध्यान की वस्तु के साथ पूर्ण एकता का अनुभव
B) बाह्य विकर्षणों पर नियंत्रण
C) अनुष्ठानिक क्रियाओं में भाग लेना
D) उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करना

90. निम्न में से कौन-सा योग प्रणाली का मुख्य केंद्र है?

A) सैद्धांतिक ज्ञान
B) केवल शारीरिक मुद्राएँ
C) मानसिक नियंत्रण और विकर्षणों की समाप्ति
D) सांसारिक उपलब्धियाँ

91. सांख्य दर्शन के अनुसार ब्रह्मांड किससे बना है?

A) दो मूल तत्व: प्रकृति और पुरुष
B) केवल एक अंतिम वास्तविकता
C) केवल भौतिक पदार्थ
D) एक सर्वोच्च देवता

92. योग दर्शन के अनुसार, मन को कैसे होना चाहिए?

A) सच्ची स्वतंत्रता के अनुभव के लिए अनियंत्रित छोड़ देना चाहिए
B) नियंत्रित कर शांति की अवस्था में लाना चाहिए
C) सांसारिक इच्छाओं पर केंद्रित होना चाहिए
D) बौद्धिक ज्ञान के लिए अनदेखा कर देना चाहिए

93. योग साधना में कैवल्य शब्द का क्या अर्थ है?

A) शारीरिक मुद्राओं का अभ्यास
B) पीड़ा और जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति
C) बौद्धिक विकास
D) अनुष्ठानिक प्रथाएँ

94. योग अभ्यास में अहिंसा की क्या भूमिका है?

A) अहिंसा पर ध्यान करना
B) विचारों, शब्दों और कर्मों में अहिंसा का पालन करना
C) सभी सांसारिक वस्तुओं से परहेज करना
D) श्वास को नियंत्रित करना

95. योग में आत्मा (पुरुष) और भौतिक ब्रह्मांड (प्रकृति) के संबंध को कैसे देखा जाता है?

A) वे एक जैसे और अविभाज्य हैं
B) आत्मा प्रकृति के अधीन है
C) आत्मा (पुरुष) प्रकृति से भिन्न और स्वतंत्र है
D) ब्रह्मांड व्यक्ति की आत्मा द्वारा नियंत्रित होता है

96. सांख्य दर्शन में कैवल्य की अवधारणा का क्या अर्थ है?

A) सांसारिक आसक्तियों के माध्यम से सुख की खोज
B) बाह्य वस्तुओं में लीन रहने की अवस्था
C) पुरुष और प्रकृति के पृथकत्व की अनुभूति, जिससे मुक्ति मिलती है
D) ध्यान द्वारा अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति

97. सांख्य और योग दर्शनों के बीच प्रमुख अंतर क्या है?

A) योग शारीरिक अभ्यासों की वकालत करता है, जबकि सांख्य केवल ध्यान पर केंद्रित है
B) सांख्य आत्मविश्लेषण पर बल देता है, जबकि योग मानसिक और शारीरिक अभ्यासों से मन को नियंत्रित करता है
C) योग ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता, जबकि सांख्य मानता है
D) सांख्य और योग दोनों में मुक्ति प्राप्त करने के तरीके समान हैं

98. निम्न में से कौन-सी क्रिया योग के यम चरण का हिस्सा है?

A) पवित्र ग्रंथों का अध्ययन
B) अहिंसा (Non-violence)
C) श्वास नियंत्रण
D) किसी देवता पर ध्यान लगाना

99. योग में नियम चरण का मुख्य फोकस क्या है?

A) शक्ति प्राप्त करने के लिए बाह्य अभ्यास
B) स्वच्छता और संतोष जैसी सकारात्मक साधनाएँ
C) एकाग्रता के लिए बाहरी वस्तुओं पर ध्यान
D) श्वास पर नियंत्रण

100. योग के किस चरण में श्वास को नियंत्रित करने की विस्तृत विधि शामिल होती है?

A) प्रत्याहार
B) ध्यान
C) प्राणायाम
D) समाधि

101. सांख्य दर्शन की स्थापना किसने की थी?

a) गौतम
b) कणाद
c) पतंजलि
d) कपिल

102. सांख्य दर्शन मुख्यतः किस प्रकार का दर्शन है?

a) ईश्वरवादी
b) अनुष्ठान केंद्रित
c) द्वैतवादी
d) आदर्शवादी

103. सांख्य दर्शन के अनुसार दो अंतिम वास्तविकताएं कौन सी हैं?

a) आत्मा और ब्रह्म
b) पुरुष और प्रकृति
c) कर्म और धर्म
d) जीव और परमात्मा

104. सांख्य दर्शन में प्रकृति को क्या माना गया है?

a) शुद्ध चैतन्य
b) ब्रह्मांड का भौतिक कारण
c) एक देवी
d) एक प्रकार का कर्म

105. सांख्य दर्शन किसको स्वीकार नहीं करता?

a) मुक्ति
b) आत्मा
c) ईश्वर
d) पुनर्जन्म

106. सांख्य दर्शन में तीन गुण कौन से हैं?

a) धर्म, अर्थ, काम
b) सत्त्व, रजस, तमस
c) ब्रह्मा, विष्णु, शिव
d) मन, बुद्धि, अहंकार

107. सांख्य दर्शन के अनुसार मुक्ति किससे प्राप्त होती है?

a) वैदिक यज्ञों से
b) प्रकृति से वैराग्य से
c) ईश्वर की कृपा से
d) शारीरिक तप से

108. सांख्य में विकास की प्रक्रिया किससे प्रारंभ होती है?

a) महत (बुद्धि)
b) अहंकार
c) मन
d) इंद्रियाँ

109. सांख्य दर्शन में जीवन का अंतिम उद्देश्य क्या है?

a) भक्ति
b) ध्यान
c) जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति
d) कर्म संग्रह

110. सांख्य दर्शन किस ज्ञान पर बल देता है?

a) शास्त्रों का ज्ञान

b) तर्कशक्ति

c) पुरुष और प्रकृति के भेद का ज्ञान

d) यज्ञ और अनुष्ठान

111. योग दर्शन का निरूपण किसने किया था?

a) कपिल

b) कणाद

c) पतंजलि

d) शंकराचार्य

112. योग सूत्र किसके द्वारा रचित माने जाते हैं?

a) कपिल

b) कणाद

c) पतंजलि

d) व्यास

113. योग की आठ अंगों की प्रणाली को क्या कहते हैं?

a) कर्म योग

b) राज योग

c) हठ योग

d) भक्ति योग

114. योग के अष्टांग मार्ग का पहला अंग कौन-सा है?

a) आसन

b) यम

c) प्राणायाम

d) ध्यान

115. योग दर्शन में "चित्तवृत्ति निरोध" का क्या अर्थ है?

a) कुंडलिनी जागरण

b) कर्म से मुक्ति

c) चित्त की वृत्तियों को नियंत्रित करना

d) यज्ञ करना

116. योग का मुख्य उद्देश्य क्या है?

a) सिद्धियाँ प्राप्त करना

b) स्वर्ग प्राप्त करना

c) आत्मा के साथ एकत्व

d) भौतिक सुख प्राप्त करना

117. प्राणायाम का संबंध किससे है?

a) इंद्रियों से

b) मन से

c) श्वास से

d) आहार से

118. पतंजलि के अनुसार ईश्वर कौन है?

a) एक व्यक्तिगत देवता

b) माया का प्रतीक

c) एक ऐसा गुरु जो कष्टों से परे है

d) अस्तित्वहीन

119. योग में समाधि का क्या अर्थ है?

a) शास्त्रों का ज्ञान

b) परम एकाग्रता

c) शारीरिक क्रियाएं

d) हवन

120. योग में "आसन" का तात्पर्य है:

a) मानसिक नियंत्रण

b) शारीरिक स्थिति (posture)

c) अनुशासन

d) मोक्ष

121. मीमांसा दर्शन मुख्य रूप से किस पर केंद्रित है?

a) ध्यान

b) यज्ञ और धर्म

c) मुक्ति

d) योगाभ्यास

122. पूर्व मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक कौन हैं?

a) जैमिनि

b) बादरायण

c) पतंजलि

d) गौतम

123. मीमांसा दर्शन में किसे सबसे महत्वपूर्ण माना गया है?

a) प्रत्यक्ष ज्ञान

b) वैदिक वाक्य

c) तर्कशक्ति

d) भक्ति

124. मीमांसा दर्शन के अनुसार वेद:

a) ऋषियों द्वारा रचित हैं

b) शाश्वत और अपौरुषेय हैं

c) कलियुग में अप्रासंगिक हैं

d) केवल मिथक हैं

125. मीमांसा दर्शन किस क्रिया पर बल देता है?

a) ध्यान

b) भक्ति

c) यज्ञ और कर्मकांड

d) योग

126. मीमांसा के अनुसार वेदों की प्रमाणिकता:

a) संदिग्ध है

b) तर्क पर आधारित है

c) स्वयं प्रमाणिक है

d) केवल विश्वास की बात है

127. मीमांसा में "अपूर्व" का अर्थ क्या है?

a) पूर्व जन्म का कर्म

b) यज्ञों की अदृश्य शक्ति

c) आत्मा

d) मुक्ति

128. मीमांसा दर्शन के अनुसार जीवन का उद्देश्य है:

a) मोक्ष

b) ब्रह्म से एकता

c) धर्म के द्वारा स्वर्ग प्राप्ति

d) ध्यान द्वारा मुक्ति

129. मीमांसा दर्शन को और किस नाम से जाना जाता है?

a) वेदांत

b) कर्म मीमांसा

c) सांख्य

d) योग

130. निम्न में से कौन-सा मीमांसा दर्शन का प्रमुख ग्रंथ है?

a) योग सूत्र

b) मीमांसा सूत्र

c) न्याय भाष्य

d) चरक संहिता

131. वेदांत दर्शन मुख्य रूप से किस ग्रंथ पर आधारित है?

a) ब्राह्मण

b) आरण्यक

c) उपनिषद

d) ऋग्वेद

132. ब्रह्म सूत्र के रचयिता कौन हैं?

a) शंकराचार्य

b) जैमिनि

c) बादरायण

d) व्यास

133. "वेदांत" शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?

a) योग का अंत

b) वेदों का अंत

c) सर्वोच्च तर्क

d) कर्म का मार्ग

134. अद्वैत वेदांत का प्रतिपादन किसने किया?

a) रामानुज

b) मध्वाचार्य

c) शंकराचार्य

d) वल्लभाचार्य

135. अद्वैत वेदांत में ब्रह्म को किस रूप में माना जाता है?

a) सगुण और व्यक्तिगत

b) द्वैत रूप

c) निर्गुण और अद्वैत

d) एक देवता

136. वेदांत दर्शन में "माया" का अर्थ है:

a) वास्तविकता

b) भ्रम या अज्ञान

c) ज्ञान

d) आत्म साक्षात्कार

137. विशिष्टाद्वैत वेदांत की स्थापना किसने की?

a) शंकराचार्य

b) रामानुज

c) मध्वाचार्य

d) पतंजलि

138. मध्वाचार्य का दर्शन किस नाम से जाना जाता है?

a) अद्वैत

b) विशिष्टाद्वैत

c) द्वैत

d) अचिंत्य भेदाभेद

139. अद्वैत वेदांत में मुख्य साधन क्या है?

a) कर्म

b) भक्ति

c) आत्मज्ञान (ज्ञान योग)

d) योगाभ्यास

140. वेदांत के अनुसार आत्मा क्या है?

a) ब्रह्म से भिन्न

b) ब्रह्म के समान

c) अस्थायी और मिथ्या

d) कर्म का अंश

141. बौद्ध धर्म की स्थापना किसने की?

a) महावीर

b) अशोक

c) सिद्धार्थ गौतम

d) नागार्जुन

142. बौद्ध धर्म का मूल उपदेश किसमें निहित है?

a) चार आश्रम

b) तीन वेद

c) चार आर्य सत्य

d) आठ समाधि

143. बौद्ध धर्म में अंतिम लक्ष्य क्या है?

a) मोक्ष

b) निर्वाण

c) स्वर्ग

d) पुनर्जन्म

144. बौद्ध धर्म में अष्टांगिक मार्ग का उद्देश्य क्या है?

a) कर्म बढ़ाना

b) मुक्ति प्राप्त करना

c) यज्ञ करना

d) देवताओं की पूजा करना

145. जैन दर्शन में मुक्ति को क्या कहते हैं?

a) मोक्ष

b) निर्वाण

c) कैवल्य

d) समाधि

146. जैन धर्म की स्थापना किसने की?

a) बुद्ध

b) ऋषभदेव

c) पार्श्वनाथ

d) महावीर

147. जैन धर्म में "अहिंसा" का अर्थ है:

a) प्रार्थना

b) ध्यान

c) हिंसा का पूर्ण त्याग

d) स्वाध्याय

148. जैन दर्शन के अनुसार आत्मा कैसी है?

a) अस्तित्वहीन

b) ब्रह्म के साथ एक

c) स्वतंत्र और शाश्वत

d) कर्म द्वारा उत्पन्न

149. जैन दर्शन के अनुसार मुक्ति का मार्ग क्या है?

a) वैदिक यज्ञ

b) सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक आचरण

c) ईश्वर भक्ति

d) प्रकृति पूजा

150. निम्न में से कौन-सी बात जैन धर्म में स्वीकार नहीं की जाती?

a) कर्म सिद्धांत

b) वेद

c) मोक्ष

d) पुनर्जन्म

उत्तर दर्शिका

Q.	Ans.	Q.	Ans.	Q.	Ans.
1	b	26	b	51	b
2	c	27	c	52	b
3	b	28	c	53	b
4	b	29	b	54	c
5	b	30	d	55	b
6	c	31	b	56	a
7	b	32	b	57	c
8	b	33	b	58	c
9	b	34	b	59	b
10	b	35	b	60	b
11	b	36	b	61	b
12	b	37	b	62	b
13	b	38	c	63	d
14	b	39	b	64	a
15	c	40	c	65	c
16	b	41	a	66	b
17	d	42	c	67	b
18	d	43	b	68	a
19	b	44	b	69	b
20	b	45	b	70	b
21	c	46	b	71	b
22	d	47	a	72	d
23	b	48	c	73	b
24	b	49	c	74	d
25	b	50	b	75	c

Q.	Ans.	Q.	Ans.	Q.	Ans.
76	b	101	d	126	c
77	c	102	c	127	b
78	b	103	b	128	c
79	b	104	b	129	b
80	b	105	c	130	b
81	a	106	b	131	c
82	a	107	b	132	c
83	b	108	a	133	b
84	c	109	c	134	c
85	b	110	c	135	c
86	b	111	c	136	b
87	b	112	c	137	b
88	a	113	b	138	c
89	a	114	b	139	c
90	c	115	c	140	b
91	a	116	c	141	c
92	b	117	c	142	c
93	b	118	c	143	b
94	b	119	b	144	b
95	c	120	b	145	a
96	c	121	b	146	d
97	b	122	a	147	c
98	b	123	b	148	c
99	b	124	b	149	b
100	c	125	c	150	b

पुस्तक के विषय में

यह पुस्तक भारतीय दर्शन की एक समग्र झलक प्रस्तुत करती है, जो वेदों के मंत्रों से प्रारम्भ होकर न्याय, सांख्य, वेदांत, बौद्ध तथा अन्य दर्शनों की परिपक्व प्रणालियों तक विस्तृत है। इसमें भारतीय चिंतन की तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, नैतिकता और मोक्ष-केन्द्रित साधना पद्धतियों को सहजता से समझाया गया है। प्रत्येक दर्शन को उसके मूल ग्रंथों, प्रमुख आचार्यों और विचार-विमर्श की परंपराओं के आलोक में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक, भारतीय दर्शन को केवल एक ऐतिहासिक या शास्त्रीय विषय नहीं मानती, बल्कि इसे एक जीवंत, अनुभवशील और आत्मचिंतन की यात्रा के रूप में प्रस्तुत करती है।

इस पुस्तक में केवल प्राचीन चिंतकों की नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय दार्शनिकों जैसे स्वामी विवेकानंद, श्री अरविंद, रवींद्रनाथ टैगोर के विचारों को भी स्थान दिया गया है। इन विचारकों ने भारतीय दर्शन को आधुनिकता, राष्ट्रवाद, विज्ञान और वैश्विक नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में पुनः व्याख्यायित किया। उपनिषदों, भगवद्गीता, योगसूत्र, जैन-बौद्ध साहित्य और आधुनिक चिंतन के समन्वय से यह पुस्तक प्राचीन और समकालीन के बीच एक सेतु का कार्य करती है। यह न केवल छात्रों और शोधार्थियों के लिए उपयोगी है, बल्कि उन सभी पाठकों के लिए भी जो भारतीय चिंतन परंपरा की गहराई और उसकी आज की प्रासंगिकता को समझना चाहते हैं।

सहयोग से :

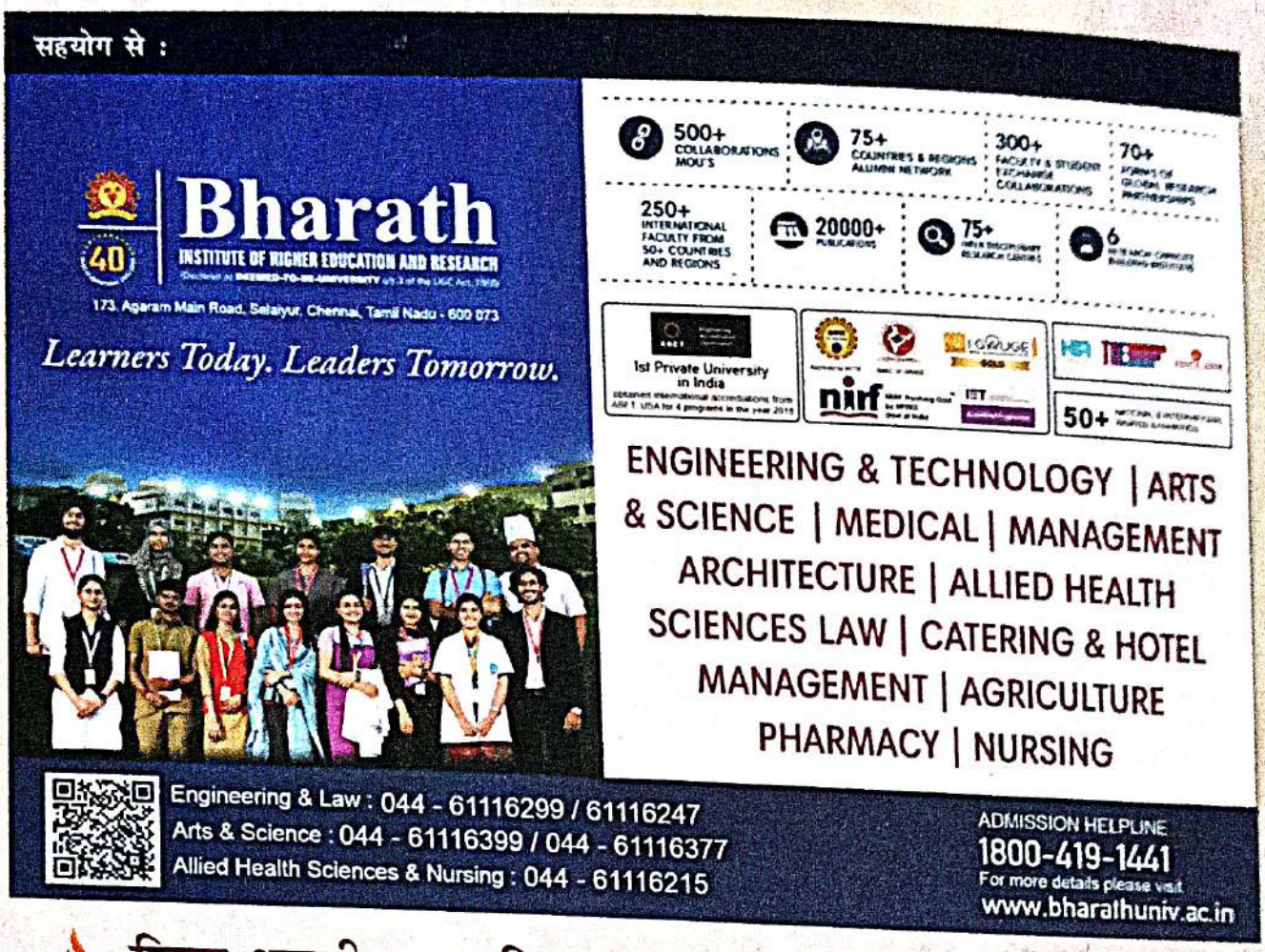

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-26-0
9 789349 531260

Bharat Boudhik

खंड-12

नगर नियोजन और भारतीय वास्तुकला

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

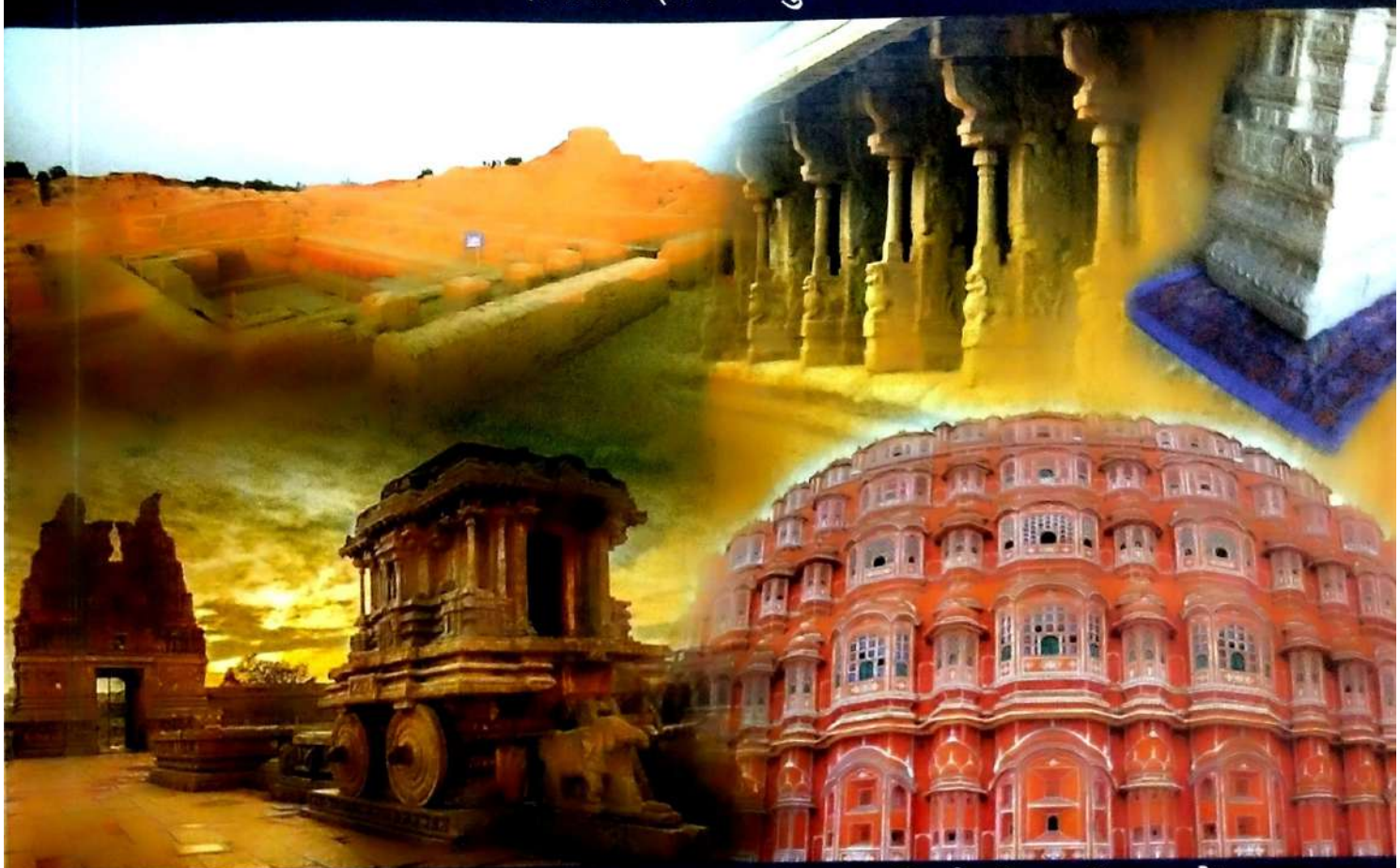

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251
E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg
http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

नगर नियोजन और भारतीय वास्तुकला

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक सक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश है और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **नगर नियोजन और भारतीय वास्तुकला**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, जितेन्द्र कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-88-8

मूल्य : 200/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश



प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1.	भूमिका	13
2.	भारतीय वास्तुकला का ऐतिहासिक अवलोकन	16
3.	वास्तुकला का विज्ञान – वास्तु-शास्त्र	17
4.	दुर्ग विधान - प्राचीन भारत में किलों की वास्तुकला	24
5.	वास्तुशास्त्र में नगर योजना	27
6.	व्यावहारिक विचार	39
7.	सड़क का विन्यास और क्षेत्र विभाजन	40
8.	आवासीय वास्तुकला	41
	अनुशंसित पठन सामग्री	46
	बहुविकल्पीय प्रश्न	48
	उत्तरदर्शिका	68

"India is the land of dreams. India had always dreamt - more of the Bliss that is man's final goal. And this has helped India to be more creative in history than any other nation. Hence the effervescence of myths and legends, religions, and philosophies, music, and dances and the different styles of architecture."

(Source: A Survey of Hinduism by - Klaus K. Klostermaier, Page-25)

* * * * *



Friedrich Hegel

(1770-1831)

One of the greatest German philosophers, and an important figure of German Idealism. His major achievement is a distinctive articulation of Idealism. His Historicist and Idealist account of the total reality as a whole revolutionized European philosophy. His philosophical works provided the theoretical frameworks and conceptual blueprints which were influential in the creation and formation of government structures. Hegel influenced many thinkers and writers, such as Theodor W. Adorno, Karl Barth, Bauer, Karl Marx, Bosanquet, Bradley Simone de Beauvoir, Judith Butler, Benedetto Croce, Jacques Derrida, Friedrich Engels, Ludwig Feuerbach, Paul Charles Aymard Sartre, Giovanni Gentile, Søren Aabye Kierkegaard Herbert Marcuse et al.

प्रस्तावना

नगर नियोजन और शहरी विकास का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है, जो कि विभिन्न सभ्यताओं में अपनी अनूठी विशेषताओं के साथ विकसित हुआ है। विशेष रूप से, भारतीय नगर नियोजन की परंपरा अत्यधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित रही है। यह पुस्तक नगर नियोजन और वास्तु-शास्त्र के प्राचीन भारतीय सिद्धांतों पर केंद्रित है, जो आधुनिक शहरी विकास के लिए भी प्रेरणा स्रोत बन सकते हैं। प्राचीन भारत में नगर नियोजन की अवधारणा का उल्लेख विभिन्न ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलता है। अर्थशास्त्र और कौटिल्य के लेखों में नगरों के विभाजन, भूमि उपयोग, सड़क व्यवस्था और नागरिक सुविधाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। सिंधु-सरस्वती सभ्यता के पुरातात्त्विक साक्ष्य दर्शाते हैं कि हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और धोलावीरा जैसे नगरों में अत्यधिक उन्नत जल निकासी प्रणाली, सुव्यवस्थित सड़कें, तथा नागरिक सुविधाओं की योजनाबद्ध व्यवस्था थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में नगर नियोजन केवल भौतिक संरचना तक सीमित न रहकर सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखता था। भारतीय वास्तुकला में वास्तु-शास्त्र का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह शास्त्र न केवल इमारतों और नगरों के निर्माण के नियमों को परिभाषित करता है, बल्कि प्राकृतिक तत्वों के साथ संतुलन स्थापित करने पर भी बल देता है। वास्तु-पुरुष-मंडल, पंच-भूत तत्व, तथा दिशाओं के अनुरूप भवन निर्माण के सिद्धांत आधुनिक वास्तुकला और शहरी नियोजन के लिए भी प्रासंगिक हैं। इस पुस्तक में प्राचीन भारतीय नगर नियोजन के सिद्धांतों, वास्तु-शास्त्र की अवधारणाओं, ऐतिहासिक नगरों की विशेषताओं और शहरी विकास की प्रक्रिया को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन न केवल इतिहास के प्रति जागरूकता बढ़ाने में सहायक होगा, बल्कि समकालीन शहरी नियोजन और वास्तुकला के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। यह पुस्तक नगर नियोजन, वास्तुकला, और ऐतिहासिक अध्ययन में रुचि रखने वाले पाठकों, शोधकर्ताओं, तथा योजनाकारों के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ साबित होगी।

"In the Indian ancient scriptures, the idea of man is quite illimitable and sublime. He is at length lost in the Supreme Entity himself."

Source: The Writings of Henry D. Thoreau - Walden

* * * * *



Henry David Thoreau
(1817-1862)

Great American essayist, poet, philosopher, and historian. He met Ralph Waldo Emerson and followed Transcendentalism advocated by him. Thoreau was also a devout abolitionist, who constantly attacked the Fugitive Slave Law. He wrote volumes of books, articles, essays, journals and poetry, and is remembered for his writings on natural history and philosophy. His philosophy of Civil disobedience had an impact on the political ideologies and actions of successive generations of great icons, such as, Leo Tolstoy, William Butler Yeats, Bernard Shaw, Ernest Hemingway, Walt Whitman, Mahatma Gandhi, Martin Luther King, John Kennedy.

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है। इसके पूर्व छात्र विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं, जो विद्या भारती की शिक्षा-नीति की प्रभावशीलता को सुदृढ़ करते हैं।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

नगर नियोजन और भारतीय वास्तुकला

भूमिका

प्राचीन भारत की शहरी योजना और मंदिर वास्तुकला, जो अर्थशास्त्र, बृहत्संहिता, मयमतम् और समराङ्गणसूत्रधार जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों से प्रेरित थी, केवल उपयोगितावादी बस्तियों से कहीं आगे थी। प्राचीन भारतीय नगरों को ब्रह्मांडीय व्यवस्था, प्राकृतिक तत्वों और सामाजिक उद्देश्यों के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से डिज़ाइन किया गया था, जिससे वे जीवंत पारिस्थितिक तंत्र बन गए थे। इन सभ्यताओं ने वैज्ञानिक सटीकता, कलात्मक संवेदनशीलता और आध्यात्मिक दृष्टिकोण का गहन समन्वय किया, जो आधुनिक शहरीकरण की चुनौतियों के साथ आज भी प्रासंगिक है।

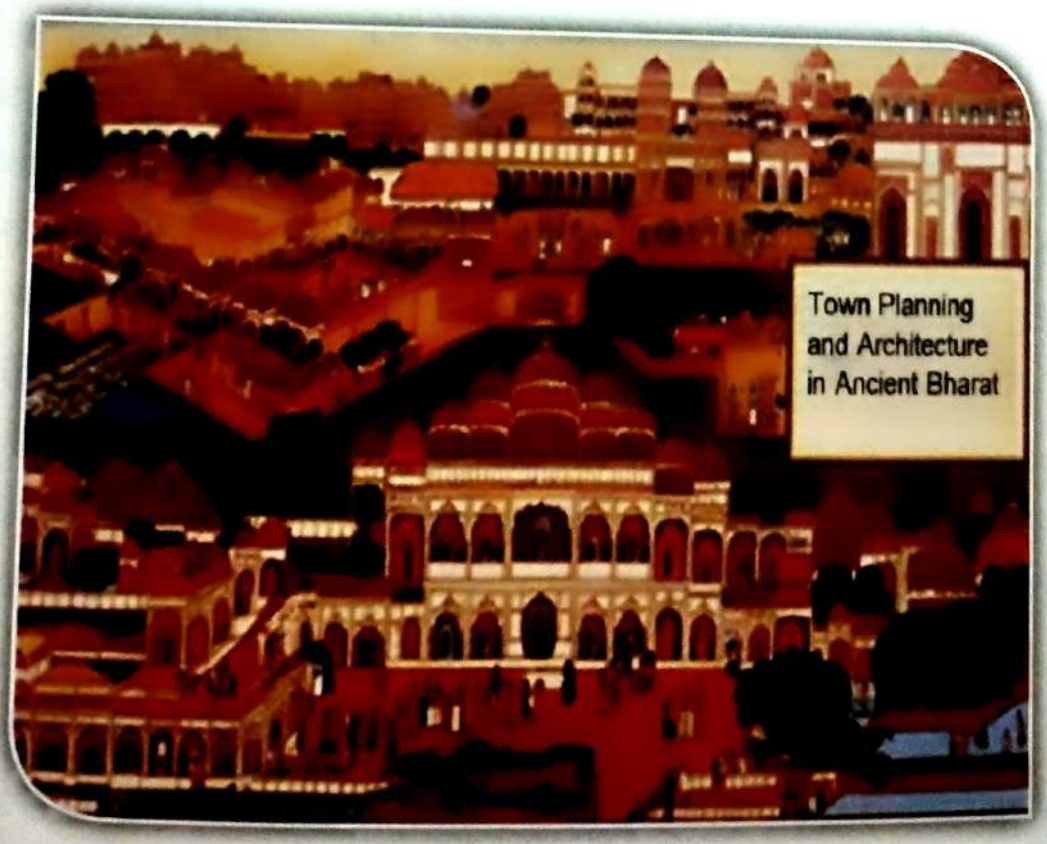

अजमेर जैन मंदिर में स्वर्ण नक्काशी द्वारा प्रदर्शित पौराणिक अयोध्या

शहरी परिदृश्य को पेशे, जाति और नागरिक भूमिकाओं के अनुसार कार्यात्मक क्षेत्रों में सावधानीपूर्वक विभाजित किया गया था। राजा का महल और मंदिर शहर के केंद्र में रणनीतिक रूप से स्थित थे, जो शासन और आध्यात्मिकता के संगम का प्रतीक थे। सड़कें मानकीकृत आयामों का पालन करती थीं-मुख्य मार्ग 54 फीट चौड़े और पैदल मार्ग 3 से 6 फीट के-जो सूर्य के प्रकाश, वायु परिसंचरण और सुगम्यता के लिए दिशाओं के अनुसार संरेखित थे। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और धोलावीरा में खुदाई से योजनाबद्ध ग्रिड लेआउट, भूमिगत जल निकासी, सार्वजनिक अन्नागार, जलाशय और स्नानागारों का पता चलता है, जो प्रभावशाली नागरिक दूरदर्शिता को उजागर करता है।

इस योजना परंपरा के मूल में वास्तुशास्त्र-जिसे शिल्पशास्त्र या वास्तुविद्या भी कहा जाता है-स्थित है, जो मानव निर्मित वातावरण को सार्वभौमिक ऊर्जा के साथ संरेखित करने का एक पवित्र वास्तु विज्ञान है। इसकी नींव वास्तुपुरुषमंडल पर आधारित है, जो ज्यामितीय संरेखण के माध्यम से स्थानिक सामंजस्य सुनिश्चित करने वाला एक ब्रह्मांडीय आरेख है। वास्तु के आठ मूलभूत अंग-स्थल चयन और निर्माण अनुष्ठानों से लेकर सामग्री विज्ञान, कारीगर कौशल और सजावटी कला तक-सतत और सार्थक स्थानों के लिए एक समग्र ढांचा बनाते हैं।

मंदिर वास्तुकला इस समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है, विशेष रूप से नागर (उत्तर भारतीय) और द्रविड़ (दक्षिण भारतीय) शैलियों में। मंदिरों को ब्रह्मांड के सूक्ष्म रूप में डिज़ाइन किया गया था, जिसका केंद्र गर्भगृह (संस्थान) था, जिसे मंडप, प्राकार और आरोही शिखर या विमान द्वारा घेरा जाता था, और स्तूपि द्वारा मुकुटित किया जाता था। मूर्तिकला के नियम देवताओं के दिव्य अनुपात सुनिश्चित करते थे, जिससे सौंदर्यात्मक सुंदरता और आध्यात्मिक शक्ति का संतुलन बना रहता था।

यह पुस्तक पाठकों को प्राचीन भारत की शहरी और मंदिर योजना को स्थिर अवशेषों के रूप में नहीं, बल्कि पारिस्थितिक ज्ञान, सांस्कृतिक समृद्धि और आध्यात्मिक अखंडता के गतिशील मॉडल के रूप में पुनः खोजने के लिए आमंत्रित करता है-जो भविष्य के लिए स्थायी, समावेशी और आत्मा-पोषक शहरों के निर्माण के लिए कालातीत खाके प्रदान करता है।

प्रभावी नगर नियोजन और संतुलित शहरी विकास का मुख्य आधार जोनिंग और भूमि उपयोग पर आधारित होता है। ये अवधारणाएँ प्राचीन भारतीय नगर नियोजन का केंद्रीय तत्व हैं, जैसा कि अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथों और कौटिल्य द्वारा लिखित कृतियों में

उल्लेखित है, जो किलेबंदी वाले नगरों का विस्तृत वर्णन प्रदान करते हैं इन ग्रंथों में नगर को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित करने का उल्लेख किया गया है, जिनका प्रत्येक वर्ग विशेष सामाजिक वर्ग (वर्ण) और कार्यों से संबंधित होता है।

प्राचीन भारतीय नगरों की प्रमुख विशेषताएँ, जैसा कि कौटिल्य द्वारा बताया गया है, वे हैं:

- राजमहल ने कुल क्षेत्रफल का एक-नौवां हिस्सा घेर लिया था, जो केंद्र के थोड़ा उत्तर में स्थित था।
- नगर में तीन शाही सड़कें थीं, जो पूर्व-पश्चिम और उत्तर-पूर्व दिशा में चलती थीं, और इसे 12 द्वारों से घेर लिया गया था।
- सुगंधित पदार्थों, द्रव्यों और माला बनाने वाले व्यापारी पूर्वी दिशा में रहते थे, साथ ही क्षत्रिय (योद्धा वर्ग) भी।
- उत्तर क्षेत्र में राज शिक्षक, पुजारी और मंत्री रहते थे, जबकि पश्चिमी क्षेत्र कारीगरों, शिल्पकारों और शूद्रों (कार्यकर्ता वर्ग) के लिए निर्धारित था।
- उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम कोने में प्रशासनिक कार्यालय, गोदाम और निर्माण सुविधाएँ थीं।
- गिल्ड और निगम नगर के कोनों में स्थित थे, जबकि मंदिर मध्य में स्थित थे।
- कौटिल्य के ग्रंथों में विभिन्न सड़कों की चौड़ाई के बारे में भी विशिष्ट विवरण दिए गए हैं, जैसे: शाही सड़कें, गाँव की सड़कें और बागों या जंगलों को जाने वाली सड़कें 54 फीट चौड़ी होनी चाहिए।
- सैन्य गोदामों और अंतिम संस्कार की जगहों को जाने वाली सड़कें थोड़ी संकरी होती थीं, जिनकी चौड़ाई 48 फीट थी।
- हाथियों और रथों के लिए सड़कें 12 फीट और 7.5 फीट चौड़ी होती थीं।
- पशुओं या पैदल यात्रियों के लिए छोटी सड़कें सिर्फ 6 फीट और 3 फीट चौड़ी होती थीं।

(Source: Shamasastry, R. (1929). "Kautilya's Arthaśāstra", 3rd ed., The Wesleyan Mission Press, Mysuru, pp. 53-57. Rangarajan, L.N. (1987). "Kautilya-The Arthashastra", Penguin Books, New Delhi, p. 192.)



हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में जल निकासी व्यवस्था और महान स्नानागार खुदाई के दौरान प्राप्त हुए।

- बौद्ध और मौर्य काल के दौरान, वास्तुकला और शहरी विकास का निरंतर विकास हुआ। संकीर्ण और राहत चित्रों में, जैसे कि साँची, उस समय के शहरी नियोजन प्रथाओं का प्रमाण मिलता है। ग्रीक इतिहासकार मेगस्थनीज, जिन्होंने लगभग 300 ईसा पूर्व भारत का दौरा किया, ने पाटलिपुत्र (मौर्य राजधानी) की किलाबंदी वाले नगर का वर्णन किया, जिसमें 564 मीनारें और 64 द्वार थे, जो वहाँ के उन्नत नियोजन और किलाबंदी को दर्शाते हैं।

वास्तुकला का विज्ञान – वास्तु-शास्त्र

वास्तु-शास्त्र प्राचीन भारतीय वास्तुकला का विज्ञान है, जो भवनों, जैसे मंदिरों, आवासीय घरों और सार्वजनिक बुनियादी ढाँचे के निर्माण, डिज़ाइन और नियोजन से संबंधित है। इसे अक्सर वास्तु-विज्ञान या शिल्प-शास्त्र कहा जाता है, जो कार्यात्मक और सौंदर्यपूर्ण रूप से आकर्षक संरचनाओं के निर्माण में कलात्मक और वैज्ञानिक सिद्धांतों को जोड़ता है। यह भवनों के प्राकृतिक तत्वों-विशेष रूप से पाँच प्राथमिक तत्वों (पंच-भूत)- के साथ-साथ सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की आकाशीय गति के अनुरूप संरेखण को निर्देशित करता है। समकालीन दृष्टिकोण से, वास्तु-शास्त्र वास्तुकला के क्षेत्र से संबंधित है।

वास्तु के प्रमुख तत्व

वास्तु-शास्त्र में चार आवश्यक घटक होते हैं–

1. भूमि – पृथ्वी या भूमि
2. प्रासाद – मंदिर या महल
3. यात्रा – परिवहन
4. शयन – शयनकक्ष या बिस्तर

ये तत्व वास्तुकला डिज़ाइन प्रक्रिया में अभिन्न होते हैं, ताकि निर्मित वातावरण अपने प्राकृतिक और ब्रह्मांडीय परिवेश के साथ सामंजस्यपूर्ण हो।

वास्तु-शास्त्र के प्रमुख क्षेत्र

1. नागरिक वास्तुकला

यह विभिन्न संरचनाओं जैसे शाही महल, विभिन्न सामाजिक वर्गों के आवासीय घर, किले, सार्वजनिक भवन (जैसे बैठक हॉल, पुस्तकालय, स्वास्थ्य केंद्र) और अन्य नागरिक बुनियादी ढाँचे के डिज़ाइन और निर्माण से संबंधित है।

2. मंदिर वास्तुकला

यह मंदिरों के डिज़ाइन और संरचना पर केंद्रित है, जिसमें मंडप (स्तंभित हॉल), गर्भगृह (सांक्टम सैंटोरम), शिखर (चोटी) और स्तूप (गुम्बद) जैसी संरचनाएँ शामिल हैं। इसमें मूर्तिकला भी शामिल है मंदिरों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाना और स्थापित करना।

3. कलात्मक निर्माण

यह भवनों के सौंदर्य डिज़ाइन तत्वों से संबंधित है, जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला और फर्नीचर शामिल हैं। इसमें गैर-धार्मिक कलात्मक वस्तुएं जैसे सोने के बिस्तर और दरवाजे भी शामिल हैं।

4. अन्य वास्तुशास्त्रीय विचार

वास्तु-शास्त्र में अतिरिक्त विषयों में प्रमुख वास्तुकार (स्थपति) और उनकी टीम की योग्यताएँ, निर्माण सामग्री का चयन और स्थान नियोजन ढांचा शामिल है जिसे वास्तु-पुरुष-मंडल कहा जाता है, जो सभी प्रकार की वास्तुकला नगर नियोजन, मंदिर डिज़ाइन और नागरिक अभियंत्रण पर लागू होता है।

वास्तु-शास्त्र के साहित्यिक स्रोत

वास्तु-शास्त्र का उल्लेख विभिन्न प्राचीन ग्रंथों में किया गया है, जिनमें वेदिक साहित्य, महाकाव्य, पुराण, ब्राह्मण, आगम, सूत्र और शिल्प-शास्त्र शामिल हैं। कुछ प्रमुख संदर्भों में शामिल हैं:

- शांकायन-गृह्य-सूत्र, जो भवन निर्माण से संबंधित अनुष्ठानों का वर्णन करता है।
- अग्नि-पुराण (अध्या. 21-106, 263-272, 317-326), जो वास्तु-शास्त्र के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करता है ।
- रामायण, जो अयोध्या नगर में तीन प्रकार के घरों का वर्णन करता है: प्रासाद (शाही महल), हरम्य (राजसी हवेलियाँ), और विमान (बहु-मंजिला इमारतें)।
- अर्थशास्त्र, जो वास्तु को घरों, खेतों, बगानों और बुनियादी ढाँचे के रूप में व्यापक रूप से परिभाषित करता है।
- दुर्गविधान, जो किले के निर्माण पर केंद्रित है।

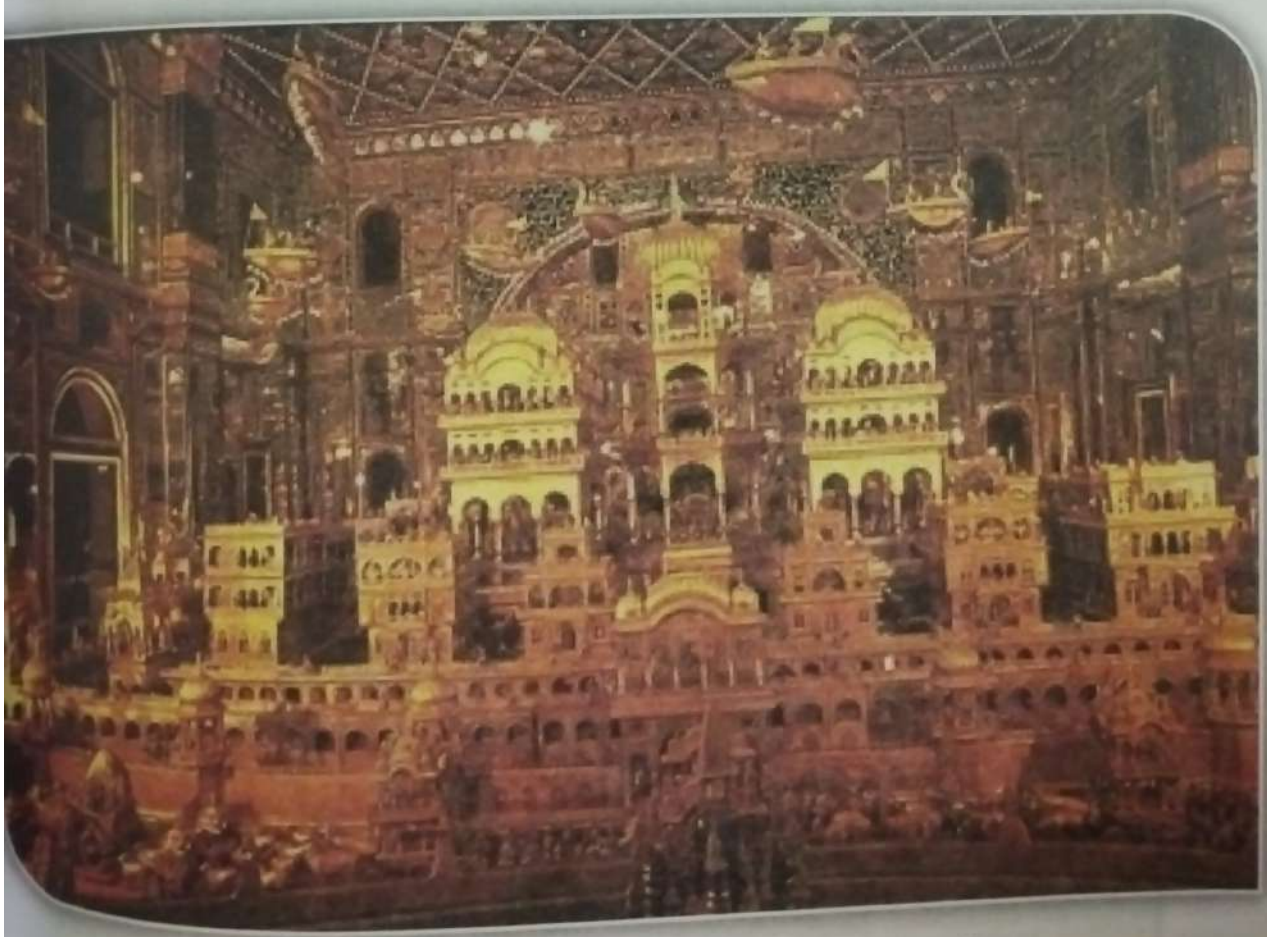

अजमेर जैन मंदिर में स्वर्ण नक्काशी द्वारा प्रदर्शित पौराणिक अयोध्या

- **बृहतसंहिता,** (6वीं शताब्दी ईस्वी) द्वारा वराहमिहिर, जो मंदिर डिज़ाइन, मूर्ति निर्माण और स्थापना प्रक्रिया पर अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करता है। विशेष अध्याय (54 और 56) शिल्प-शास्त्र और मंदिर संरचनाओं की विशेषताएँ बताते हैं।
- **वास्तु-पुरुष-मंडल,** वास्तु-पुरुष की अवधारणा पारंपरिक भारतीय वास्तुकला में केंद्रीय है, जो प्रस्तावित संरचना के स्थल के लिए एक खाका प्रस्तुत करती है। गरुड़ पुराण के अनुसार, आदर्श व्यवस्था में वास्तु-पुरुष का सिर उत्तर-पूर्व में, पैर दक्षिण-पश्चिम में और हाथों को दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम कोने में रखा जाता है। वास्तु-मंडल का केंद्र ब्रह्मा-स्थल के रूप में जाना जाता है एक पवित्र स्थान जो ब्रह्मांडीय ऊर्जा के अनुरूप होता है। यह संरेखण संरचना को प्राकृतिक और आकाशीय बलों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में मदद करता है। मंदिर वास्तुकला में, गर्भगृह (संस्कृम सैंटोरम) ब्रह्मा-स्थल पर स्थित होता है। वास्तु-पुरुष-मंडल का आकार सामान्यतः वर्गाकार होता है, और इसका उपयोग नगरों, मंदिरों और अन्य वास्तुकार परियोजनाओं के डिज़ाइन और लेआउट को मार्गदर्शन करने के लिए किया जाता है।

वास्तु-शास्त्र के आठ अंग

वास्तु-शास्त्र में आठ महत्वपूर्ण घटक होते हैं जिन्हें "आठ अंग" कहा जाता है जो वास्तुकला के कार्यों को बनाने के लिए मार्गदर्शन करते हैं, ताकि वे सामंजस्यपूर्ण, टिकाऊ और आध्यात्मिक रूप से सुसंगत हों। इन तत्वों में व्यावहारिक और आध्यात्मिक दोनों पहलुओं पर विचार किया जाता है, जिनमें निर्माणकर्ता से लेकर उपयोग किए गए सामग्री तक का ध्यान रखा जाता है।

1. याजमान (मालिक)

याजमान वह व्यक्ति होता है जो निर्माण का आदेश देता है और परियोजना की सफलता और समृद्धि में केंद्रीय भूमिका निभाता है। मालिक का कर्तव्य होता है कि वह निवासियों के लिए एक शांतिपूर्ण और समृद्ध वातावरण प्रदान करे। इसमें व्यक्ति की कुंडली, वर्ण (सामाजिक वर्गीकरण), पेशा और यहां तक कि मानव शरीर के मापों (एंथ्रोपोमेट्रिक्स) का गहन विचार करना शामिल है। उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि भवन का डिज़ाइन मालिक की आध्यात्मिक और भौतिक आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

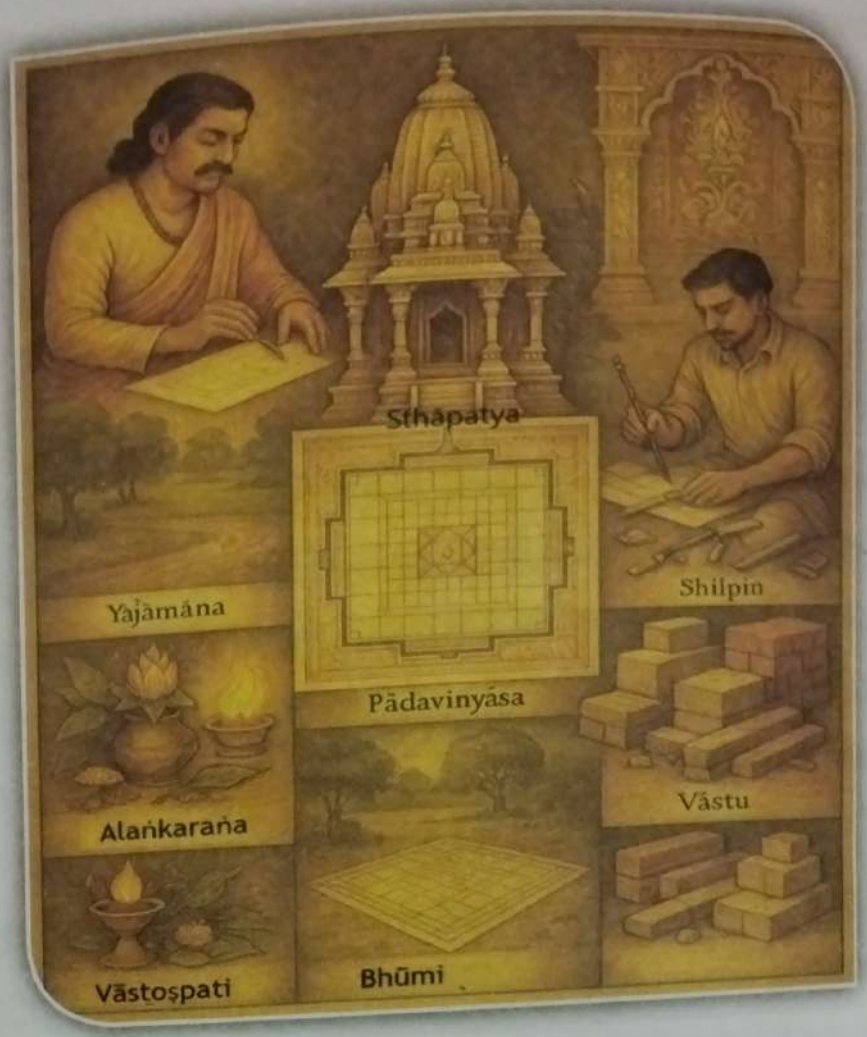

वास्तु-शास्त्र के आठ अंग

2. स्थापत्य (वास्तुकला)

स्थापत्य उस संरचना के समग्र वास्तुशिल्प डिज़ाइन और योजना को संदर्भित करता है इसमें विस्तृत विशिष्टताओं और लागत अनुमानों से लेकर अद्वितीय वास्तुशिल्प शैलियों के डिज़ाइन तक शामिल है। वास्तु-शास्त्र के ग्रंथों में यह अनुशंसा की जाती है कि एक घर को आदर्श रूप से लगभग 200 वर्षों तक रहना चाहिए, जबकि शाही महल कम से कम 600 वर्षों तक चलने चाहिए। आदर्श वास्तुशिल्प शैली दिव्य मानी जाती है, और वास्तुकारों (शिल्पी) को अपनी डिज़ाइनों को इस दिव्य आदर्श पर आधारित करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

3. शिल्पिन (तकनीकी विशेषज्ञ)

शिल्पिन वे कुशल कारीगर और श्रमिक होते हैं जो वास्तुशिल्प योजनाओं को साकार करते हैं। मायामता के अनुसार, निर्माण प्रक्रिया में शामिल शिल्पियों के चार प्रमुख प्रकार होते हैं:

6. पादविन्यास (स्थल लेआउट)

पादविन्यास वह लेआउट है जो प्रस्तावित स्थल का विन्यास करता है। ग्रंथ जैसे मायामतम और मानसार घरों और इमारतों के लेआउट को व्यवस्थित करने के लिए विस्तृत मॉडल प्रदान करते हैं।

7. वास्तु (सामग्री)

सामग्री का चयन और प्रसंस्करण वास्तु-शास्त्र का एक अभिन्न अंग है। विभिन्न सामग्री, जैसे पत्थर, लकड़ी और धातु, उनके गुणवत्ता, रंग और उपयुक्तता के आधार पर ध्यान से चुनी जाती हैं।

8. अलंकरण (संसोधन और सजावट)

अलंकरण आंतरिक और बाहरी डिज़ाइन के साथ-साथ मरम्मत और संशोधन पर केंद्रित है। इसमें द्वारों को आर्चवे डिज़ाइनों से सजाना, सजावटी तत्वों जैसे दीवार उकेरने और छतों पर भित्ति चित्रों की रचना शामिल है।

दुर्ग विधान - प्राचीन भारत में किलों की वास्तुकला

प्राचीन भारत में दुर्ग निर्माण की विद्या, जिसे दुर्ग विधान कहा जाता है, वास्तुशास्त्र और नगर नियोजन की गहन समझ को दर्शाती है। दुर्ग केवल रक्षणात्मक संरचनाएँ नहीं थे, बल्कि वे राज्य की शक्ति, सांस्कृतिक विरासत और धर्मनिष्ठ नगरों का केंद्र बिंदु थे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र (पुस्तक 2, अध्याय 3) के अनुसार, एक आदर्श दुर्ग को भूगोल, रक्षा प्रणाली और नागरिक जीवन को ध्यान में रखकर निर्मित किया जाना चाहिए। (स्रोत: कौटिल्य का अर्थशास्त्र, आर. शमशास्त्री, 1915)

मुख्य स्थापत्य तत्त्व

कौटिल्य द्वारा निर्दिष्ट दुर्ग के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं:

- **परिखा (Parikhā):** गहरी जल-भरी खाई, जो सुरंग खोदने या सीधा आक्रमण करने से रोकती है।
- **प्राकार (Prākāra):** मोटी पत्थर या ईंट की दीवारें, जिनमें बुर्ज और प्रहरी मीनारें होती थीं।

- **गुप्त प्रवेश (Gupta Praveśa):** आपातकालीन पलायन और छुपे हमलों हेतु भूमिगत मार्ग।
- **बाह्यगृह (Bahya-Griha):** शस्त्र भंडारण, सैनिकों के आवास, और आपूर्ति गोदाम।
- **अन्त:पुर (Antahpura):** राजपरिवार के निवास हेतु आंतरिक क्षेत्र, जिसमें उद्यान व मंदिर सम्मिलित होते थे।

ये सभी विशेषताएँ वास्तु शास्त्र में उल्लिखित कोस्मिक संतुलन और ब्रह्मस्थल की अवधारणाओं के अनुसार विन्यस्त होती थीं।

- **दुर्गों के प्रकार (दुर्ग भेद)**

अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, और सामराङ्गण सूत्रधार में दुर्गों को 6 प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया है:

1. जल दुर्ग (Jala Durga)

"आप्लाव्य जलदुर्गाणि जलनिधिपरिक्षिप्तानि च।"

- मनुस्मृति, अध्याय 7

- **महत्त्व:** जल को रक्षा अवरोध व संसाधन के रूप में उपयोग करना।
- **उदाहरण:** मुरुद-जंजीरा दुर्ग, महाराष्ट्र

2. गिरी दुर्ग (Giri Durga)

"सर्वेषु दुर्गेषु गिरी दुर्गं श्रेष्ठतमम्।"

- सामराङ्गण सूत्रधार, अध्याय 66

Source: Gupta, P. (2005). Structural Elements of Forts in Indian History. Journal of South Asian Archaeology, 22(3), 145-167.

- **महत्त्व:** ऊँचाई से रणनीतिक श्रेष्ठता व भय का मनोवैज्ञानिक प्रभाव।
- **उदाहरण:** चित्तौड़गढ़ दुर्ग, राजस्थान

3. वन दुर्ग (Vana Durga)

- **महत्त्व:** वनस्पतियों में छिपी सुरक्षा व गुरिल्ला युद्ध की अनुकूलता।
- उदाहरण: कालिंजर किला, मध्य प्रदेश

Source: Sharma, R. (2011). Epigraphic Evidence from Chittorgarh, Gwalior, and Kalinjar Forts. Indian Epigraphical Studies, 35(2), 212-228.)

4. मही दुर्ग (Mahi Durga)

- **महत्त्व:** मिट्टी व कच्चे पदार्थों से निर्मित प्रारंभिक नगर रक्षा संरचना।
- **उदाहरण:** राजगीर प्राचीर, बिहार

5. नर दुर्ग (Nara Durga)

- **महत्त्व:** सैनिकों की रणनीतिक तैनाती व मानव-आधारित रक्षा तंत्र।
- **उदाहरण:** पुराना किला, दिल्ली

Source: Nath, R. (1998). Military and Civic Architecture of Medieval India. Oxford University Press.

6. धन्वन दुर्ग (Dhanvana Durga)

- **महत्त्व:** मरुस्थलीय जलवायु में जल संरक्षण व रेत सुरक्षा प्रणाली।
- **उदाहरण:** जैसलमेर किला, राजस्थान
- **साझा रक्षणीय विशेषताएँ**
  - **बुर्ज (Burj):** धनुर्धारियों व तोपचियों के लिए उच्च स्थान।
  - **ड्रॉब्रिज व लौह द्वार:** सीमित व संरक्षित प्रवेश बिंदु।
  - **मंदिर परिसर:** आंतरिक अध्यात्म के प्रतीक जैसे कालीका माता मंदिर, चित्तौड़गढ़।
  - **जल प्रबंधन:** बावड़ियाँ, कुंड व वर्षाजल संचयन हेतु स्थापत्य।

Source: Archaeological Survey of India (ASI). (n.d.). Studies on Forts and City Planning in India. ASI Archives.

- **प्राचीन बनाम आधुनिक किलेबंदी की तुलना**

विशेषता	प्राचीन दुर्ग	आधुनिक किलेबंदी
उद्देश्य	रक्षा + संस्कृति + शासन	केवल सामरिक
डिज़ाइन	प्रकृति समेकित (पर्वत, वन, जल)	भूमिगत / एकांत
सामग्री	पत्थर, चूना, लकड़ी, मिट्टी	प्रबलित कंक्रीट व स्टील
रक्षा प्रणाली	मानवीय व प्रतीकात्मक	स्वचालित, गुप्त, इलेक्ट्रॉनिक
सांस्कृतिक भूमिका	नागरिक जीवन व पर्वों का केंद्र	प्रतिबंधित सैन्य क्षेत्र

प्राचीन भारत के दुर्ग केवल सैनिक ठिकाने नहीं थे, वे राज्य व्यवस्था, संस्कृति और वास्तु की गूढ़ समन्वय का उदाहरण थे। चाहे वह गिरी दुर्ग की ऊँचाई हो या जल दुर्ग की जलराशि, प्रत्येक दुर्ग एक भावनात्मक, भौगोलिक व सांस्कृतिक कथा कहता है।

इन दुर्गों की स्थायी उपस्थिति आज भी हमें प्रेरणा देती है कि वास्तुकला केवल निर्माण नहीं, एक सभ्यता का प्रतिबिंब है।

वास्तुशास्त्र में नगर योजना

आधुनिक शहरी योजना, जिसमें आवासीय, औद्योगिक और वाणिज्यिक क्षेत्रों में भूमि का विभाजन किया जाता है, का प्राचीन समकक्ष वास्तुशास्त्र में मिलता है। वास्तुशास्त्र नगरों, गांवों और संरचनाओं के समरस लेआउट पर ध्यान केंद्रित करता है, जो प्राकृतिक शक्तियों और ब्रह्मांडीय सिद्धांतों के अनुसार होते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथ जैसे अर्थशास्त्र और नारद शिल्पशास्त्र दर्शाते हैं कि नगर योजना और शहरी वास्तुकला को कैसे व्यवस्थित रूप से संगठित किया गया था ताकि निवासियों की भलाई सुनिश्चित हो सके।

वास्तुशास्त्र में नगर योजना के सिद्धांत

वास्तुशास्त्र में, नगर योजना के लिए मूल इकाई गांव (ग्राम) है। बड़े प्रशासनिक क्षेत्र, जैसे कस्बे और शहर, कई गांवों के आधार पर निर्मित होते हैं। अर्थशास्त्र के अनुसार, बस्तियों को स्थान, कार्य और जनसंख्या आकार के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है:

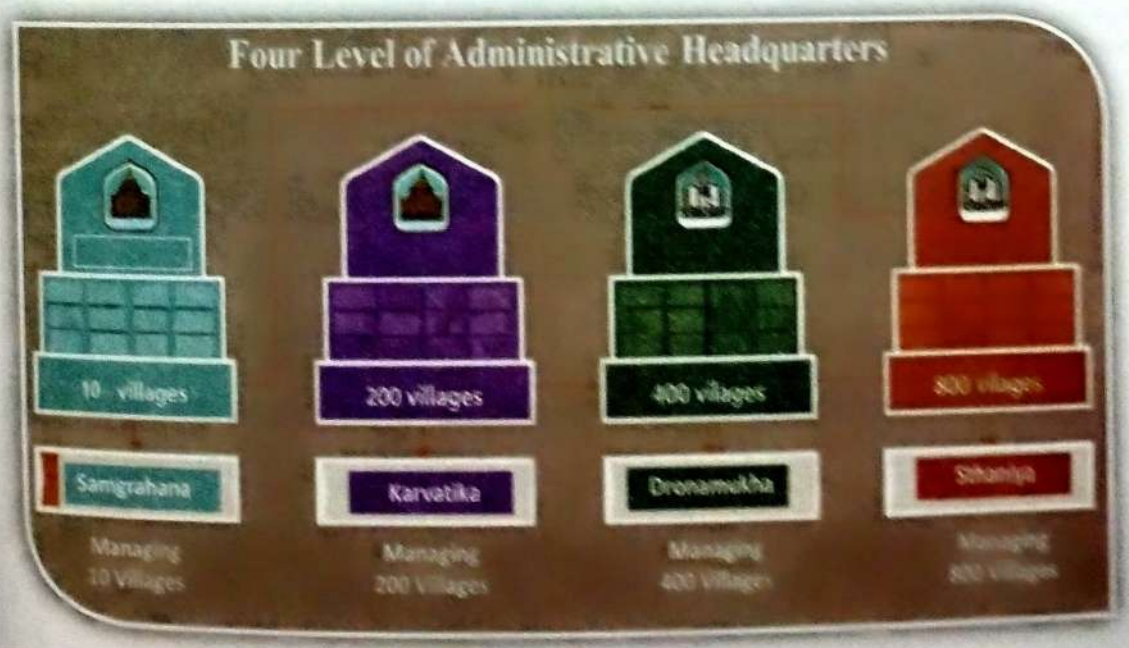

प्रशासनिक प्रभाग

- गांव (ग्राम): सबसे छोटी इकाई।
- स्थानीय प्रशासन (स्थानीय प्रशासन): दस गांवों का समूह।
- जिला मुख्यालय (जिला मुख्यालय): दो सौ गांवों का समूह।
- प्रभागीय मुख्यालय (प्रभागीय मुख्यालय): चार सौ गांवों का समूह।
- प्रांतीय मुख्यालय (प्रांतीय मुख्यालय): आठ सौ गांवों का समूह।

ये अवधारणाएं आधुनिक शहरों जैसे चंडीगढ़ और जयपुर की संरचित शहरी योजना के साथ मेल खाती हैं, जो क्रमशः वास्तुशास्त्र के सर्वतोभद्र और प्रस्तार मॉडलों के सिद्धांतों पर आधारित हैं।

Source: Deshkar, S. M. (2010). Kautilya Arthashastra and its relevance to urban planning studies. Inst Town Plan India, 7(1), 87-95.

वास्तुशास्त्र में नगर डिज़ाइन मॉडल

वास्तुशास्त्र कई नगर डिज़ाइन प्रदान करता है, जिसमें सुव्यवस्थित ग्रिड और आवासीय, धार्मिक और वाणिज्यिक स्थानों के लिए विशिष्ट ज़ोनिंग शामिल हैं। नगर का लेआउट परंपरागत रूप से एक वर्ग या ग्रिड पैटर्न में डिज़ाइन किया जाता है, जो महत्वपूर्ण नागरिक भवनों, जैसे महलों और मंदिरों के आसपास केंद्रित होता है। कुछ प्रमुख मॉडल इस प्रकार हैं:

1. **दण्डक (दण्ड):** वानप्रस्थ (सेवानिवृत्त) लोगों के लिए डिज़ाइन किया गया, जो एक सरल और व्यवस्थित रूपरेखा द्वारा चिह्नित है। दण्डक योजना प्राचीन भारतीय वास्तु ग्रंथ "मानसार शिल्पशास्त्र" में वर्णित आठ पारंपरिक नगर नियोजन मॉडलों में से एक है। इस योजना की विशेषता इसकी रेखीय संरचना है, जो "दण्ड" या छड़ी के समान है, और यह सामान्यतः छोटे नगरों और गाँवों के लिए प्रयुक्त होती है, विशेषकर उन स्थानों पर जो नदियों या सड़कों के किनारे स्थित होते हैं।"

दण्डक योजना की मुख्य विशेषताएँ

- **रेखीय संरचना**: गाँव को एक सीधी रेखा में व्यवस्थित किया जाता है, जो व्यवस्था और सरलता का प्रतीक है।
- **मुख्य सड़क:** एक केंद्रीय सड़क गाँव के बीच से गुजरती है, जिसके दोनों ओर घर और सार्वजनिक भवन पंक्तिबद्ध होते हैं। इस सड़क की चौड़ाई लगभग 1 दण्ड (लगभग 6 फुट) होती है।

- **पार्श्व सड़कें:** पार्श्व सड़कें मुख्य सड़क को समकोण पर काटती हैं, जिससे पूरे गाँव में सरल आवागमन और पहुँच सुनिश्चित होती है।
- **द्वार:** मुख्य सड़क के दोनों सिरों पर प्रवेश द्वार स्थित होते हैं, जो नियंत्रित प्रवेश और निकास सुनिश्चित करते हैं।
- **ग्राम कार्यालय:** प्रशासनिक भवन या ग्राम कार्यालय सामान्यतः गाँव के पूर्वी भाग में स्थित होते हैं।
- **मंदिर:** धार्मिक संरचनाएँ प्रायः गाँव के केंद्र से दूर, सामान्यतः बाहरी किनारों पर स्थित होती हैं। जब एक से अधिक मंदिर होते हैं, तो उन्हें आमतौर पर गाँव या नगर के विभिन्न सिरों पर रखा जाता है।
- **अनुपात:** गाँव की लंबाई इसकी चौड़ाई से दोगुनी रखी जाती है, जिससे विशिष्ट अनुपातीय दिशानिर्देशों का पालन होता है।

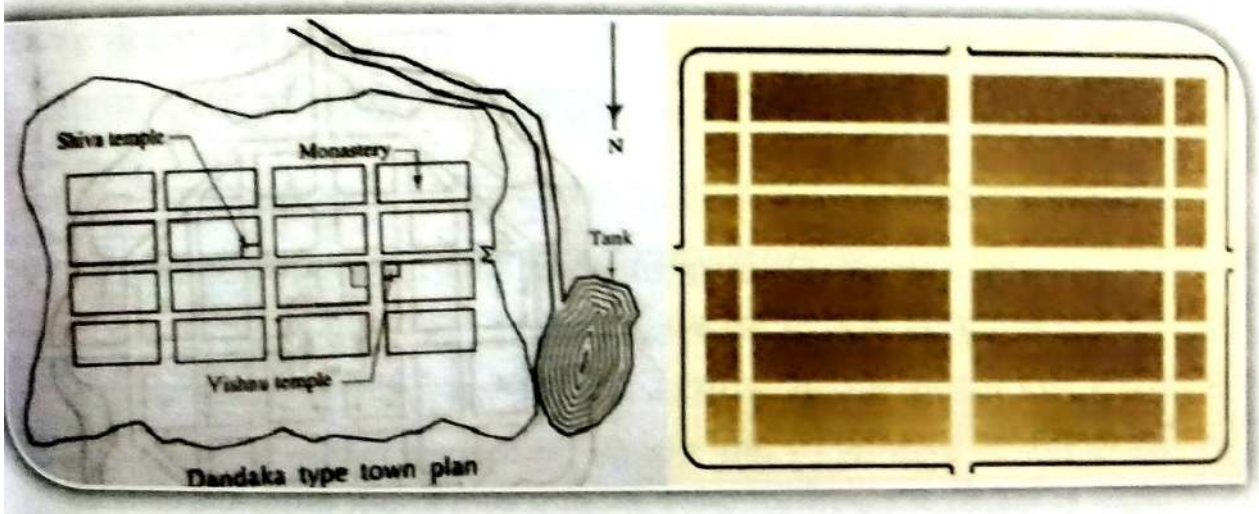

दण्डक रूपरेखा

दण्डक योजना, अपनी रेखीयता और व्यवस्था पर बल देते हुए, प्राचीन भारतीय नगर नियोजन दृष्टिकोण को दर्शाती है, जहाँ कार्यक्षमता, प्रतीकात्मकता और पर्यावरण के साथ सामंजस्य को सर्वोपरि माना गया था।

2. **सर्वतोभद्र (चतुष्कोणीय जाल/चतुर्भुज ग्रिड):** एक दुर्गीकृत, सुरक्षित ग्राम योजना, जो बाहरी खतरों के प्रति संवेदनशील क्षेत्रों के लिए आदर्श है। उदाहरण: चंडीगढ़। "सर्वतोभद्र" शब्द का अर्थ है "सभी दिशाओं से शुभ", जो ऐसी योजना को दर्शाता है जो हर दिशा में कल्याण और सामंजस्य सुनिश्चित करती है।

मुख्य विशेषताएँ

- **आकार और संरचना**
  - योजना चतुर्भुज (वर्गाकार) होती है, जो स्थिरता और संतुलन का प्रतीक है।
  - यह एक से पाँच मुख्य मार्गों (प्रमुख सड़कों) को सम्मिलित करती है जो नगर को पार करते हैं, जिनके साथ बाहरी परिधीय सड़कें होती हैं।
- **कोणीय संरचनाएँ**
  - चारों कोनों पर प्रमुख सार्वजनिक भवन जैसे मठ, मंदिर या विश्रामगृह स्थित होते हैं।
  - आवश्यकतानुसार अन्य सार्वजनिक संरचनाएँ विभिन्न खंडों में वितरित की जाती हैं।
- **द्वार और प्रवेश**
  - मुख्य द्वार चारों दिशाओं (उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम) में स्थित होते हैं, जो प्रवेश को सुविधाजनक बनाते हैं और खुलेपन का प्रतीक हैं।
- **जोनिंग प्रणाली**
  - विभिन्न व्यापारों और व्यवसायों के लिए अलग-अलग भूखंड आवंटित किए जाते हैं, जो प्रारंभिक जोनिंग व्यवस्था को दर्शाते हैं।
- **केंद्रीय क्षेत्र**
  - केंद्र की ओर जनसंख्या घनत्व कम होता जाता है, और अंततः एक खुला क्षेत्र होता है जहाँ कोई भवन नहीं होता।
  - यह केंद्रीय रिक्त स्थान आधुनिक शहरी केंद्रों से भिन्न है, जो सामान्यतः घने रूप से निर्मित होते हैं।
- **द्वितीयक सड़कें**
  - दो मुख्य सड़कों के बीच कम महत्त्वपूर्ण सड़कें या गलियाँ प्रदान करने पर बल दिया जाता है, जिन्हें अधिमानतः एक ओर एक फूटपाथ के साथ बनाया जाता है।

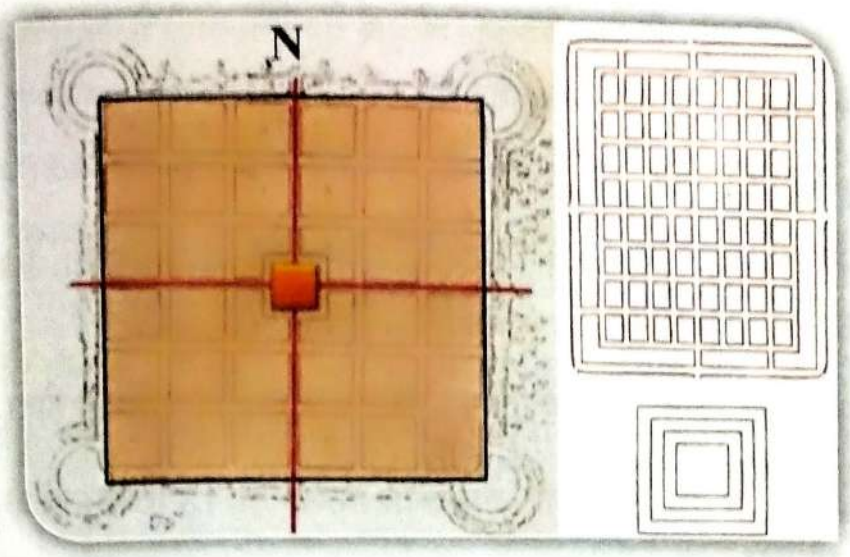

सर्वतोभद्र रूपरेखा

सर्वतोभद्र योजना के विपरीत, दण्डक योजना में व्यापार और व्यवसायिक गतिविधियाँ केंद्र में केंद्रित होती हैं, जबकि आवासीय क्षेत्र बाहरी किनारों की ओर विस्तृत होते हैं। यह व्यवस्था वाणिज्यिक क्षेत्रों के निर्बाध विस्तार की अनुमति देती है, बिना मौजूदा आवासीय क्षेत्रों को बाधित किए या व्यापक पुनर्निर्माण की आवश्यकता के।

3. **नन्द्यावर्त (चतुर्भुज संकेंद्रित संरचना):** इस योजना में केन्द्रीय वलय और बारह प्रवेश-निकास द्वार होते हैं, जो सड़कों के जाल द्वारा जुड़े होते हैं, जिससे आवागमन में सुविधा सुनिश्चित होती है। नन्द्यावर्त एक संस्कृत शब्द है, जो एक ऐसे नगर नियोजन को संदर्भित करता है जो एक केंद्रीय वर्ग के साथ वृत्ताकार होता है और जिसकी सड़कों का विस्तार बाहर की ओर होता है। इस प्रकार की नगर योजना प्राचीन भारत में, विशेषतः नगरों और बड़े बस्तियों के निर्माण में सामान्यतः प्रयुक्त होती थी। साथ ही, नन्द्यावर्त एक विशिष्ट प्रकार के स्वस्तिक चिन्ह को भी संदर्भित करता है और यह एक सफेद फूल का नाम भी है, जो अपनी आपस में अतिक्रांत पंखुड़ियों के लिए जाना जाता है। यह योजना इसी अतिक्रांत प्रतिरूप की नकल करती है, जो समृद्धि और शुभता का प्रतीक है।

नन्द्यावर्त योजना की मुख्य विशेषताएँ

- **आकार और संरचना**
  - रूप: योजना या तो वृत्ताकार या चतुर्भुजाकार होती है, जिसे लगभग 3,000 से 4,000 घरों के लिए डिज़ाइन किया जाता है।

- आयाम: नगर की लंबाई इसकी चौड़ाई से दुगुनी होती है, जिससे एक लंबवत आयताकार आकार बनता है।

- **केंद्रीय क्षेत्र**
  - खुला स्थान: नगर का केंद्र खुला रखा जाता है, जहाँ संभवतः एक मंडप या मंदिर स्थित होता है, जो सामुदायिक केंद्र का कार्य करता है।
  - मंदिर का स्थान: मुख्य देवता का मंदिर नगर के केंद्र में स्थित होता है, जिससे आध्यात्मिक केंद्रता का बल मिलता है।

- **सड़क योजना**
  - प्रसारित सड़कें: सड़कें केंद्रीय वर्ग से बाहर की ओर प्रसारित होती हैं, जो नगर के विभिन्न भागों तक आसान पहुँच और विभिन्न मोहल्लों के बीच संपर्क को बढ़ावा देती हैं।
  - समानांतर सड़कें: सड़कें केंद्रीय सड़कों के समानांतर चलती हैं, जिससे संगठित आवागमन और पहुँच सुनिश्चित होती है।

- **जोनिंग और कार्यात्मकता**
  - आवासीय और व्यावसायिक क्षेत्र: इस योजना में विभिन्न व्यवसायों और व्यापारों के लिए निर्धारित भूखंड शामिल हैं, जो प्रारंभिक जोनिंग व्यवस्था को प्रस्तुत करते हैं।
  - सामुदायिक स्थान: केंद्रीय खुला क्षेत्र समुदाय के एकत्र होने का स्थान होता है, जो सामाजिक संपर्क और एकता को प्रोत्साहित करता है।

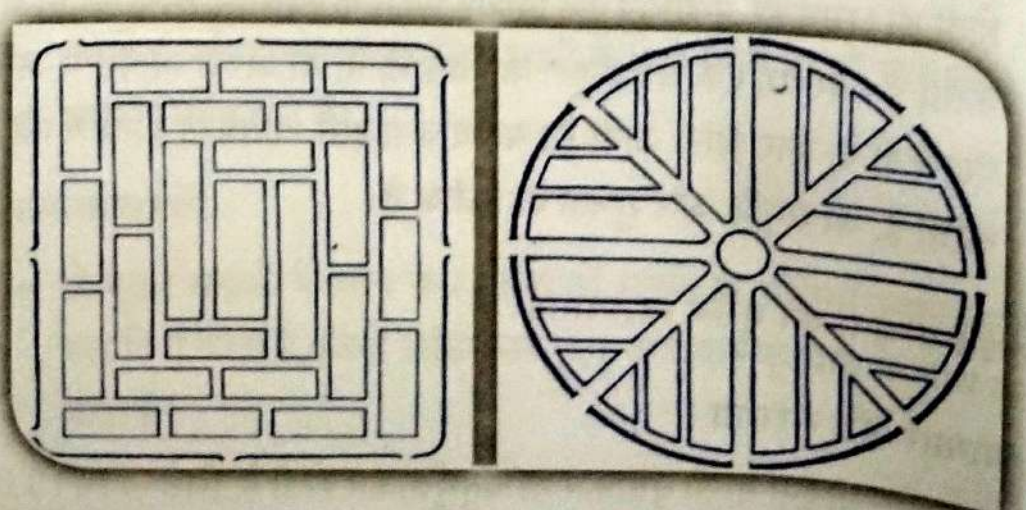

नन्द्यावर्त रूपरेखा

4. **पद्मक (कमल):** कमल की पंखुड़ियों के समान रूपरेखा। यह योजना प्राचीन भारतीय नगर नियोजन में निहित है और मानसार जैसे ग्रंथों में विस्तृत रूप से वर्णित है। इसका प्रेरणा स्रोत कमल का फूल है, जो पवित्रता और आध्यात्मिक सामंजस्य का प्रतीक है। इस डिज़ाइन में एक केंद्रीय मंदिर या परिषद भवन होता है, जिससे बारह मुख्य सड़कें बाहर की ओर फैलती हैं, जो कमल की पंखुड़ियों के समान प्रतीत होती हैं। ये सड़कें बस्ती को बारह भागों में विभाजित करती हैं, जिनमें से प्रत्येक भाग अलग-अलग कार्यों, जैसे आवासीय या वाणिज्यिक क्षेत्रों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। यह योजना सामान्यतः दीवारों से घिरी होती है, जो वृत्ताकार, चतुष्कोणीय, षट्कोणीय या अष्टकोणीय हो सकती हैं, और प्रत्येक प्रसारित सड़क के छोर पर द्वार स्थित होते हैं। प्रायः पूरा नगर जल से घिरा होता था, जिससे यह द्वीप जैसा प्रतीत होता था और विस्तार की संभावनाएँ सीमित होती थीं। इस डिज़ाइन का प्रयोग प्रायः दुर्गीकृत नगरों और आध्यात्मिक केंद्रों के लिए किया जाता था, जहाँ सौंदर्य और प्रतीकात्मक महत्व दोनों पर बल दिया जाता था।

पद्मक योजना की मुख्य विशेषताएँ

- **कमल-प्रेरित डिज़ाइन**
  - नगर को इस प्रकार डिज़ाइन किया जाता है कि वह कमल के समान प्रतीत हो, जिसमें सड़कें एक केंद्रीय बिंदु से पंखुड़ियों की तरह बाहर की ओर प्रसारित होती हैं।
- **सड़क विन्यास:**
  - इस योजना में चार से आठ मुख्य सड़कें सम्मिलित होती हैं।
  - नगर के भीतर और चारों ओर की सभी प्रमुख सड़कों पर फुटपाथ बनाए जाते हैं।
  - कोई भी सड़क नगर के ठीक केंद्र से होकर नहीं गुजरती।
  - मुख्य द्वार चारों दिशाओं — पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण — में स्थित होते हैं।
- **आवासीय और सार्वजनिक क्षेत्र:**
  - आवासीय भवनों को छह भूखंडों में स्थित किया जाता है, जिन्हें विकर्ण

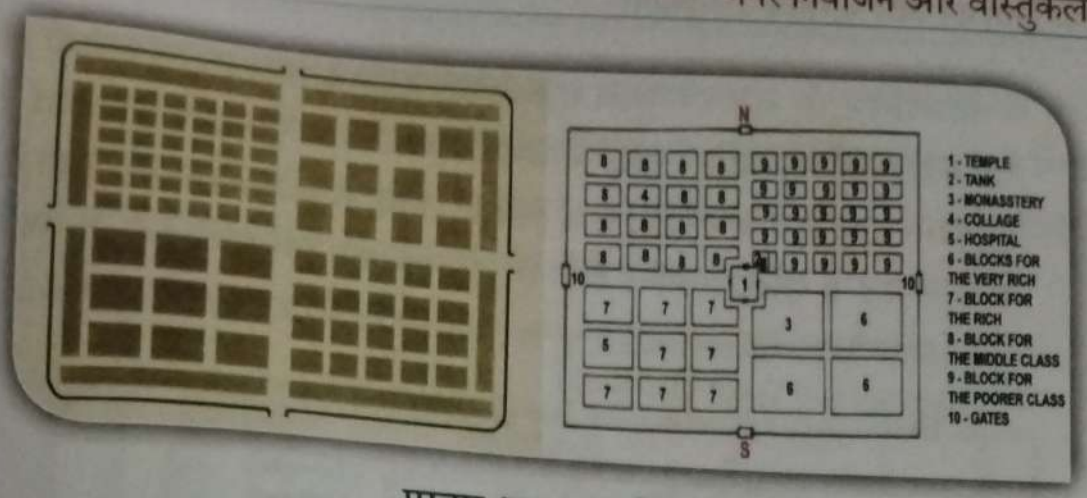

प्रस्तार (शय्या) रूपरेखा

प्रस्तार योजना एक वर्गाकार या आयताकार नगर योजना है, जो प्राचीन भारतीय वास्तुकला में निहित है और विशेष रूप से मानसार ग्रंथ में विस्तृत रूप से वर्णित है। इस डिज़ाइन में नगर को 16 वर्गाकार खंडों में विभाजित किया जाता है, जिसमें तीन मुख्य सड़कें पूर्व-पश्चिम दिशा में और तीन उत्तर-दक्षिण दिशा में जाती हैं, जिससे एक जालवत संरचना बनती है। केंद्रीय क्षेत्र में प्रायः एक मंदिर होता है, और आवासीय तथा वाणिज्यिक क्षेत्र बाहर की ओर प्रसारित होते हैं।

इस योजना में भूखंडों का आवंटन सामाजिक श्रेणी के आधार पर किया जाता है, जिसमें संपन्न व्यक्तियों को बड़े भूखंड प्रदान किए जाते हैं। मुख्य सड़कें अन्य योजनाओं की अपेक्षा विशेष रूप से चौड़ी होती हैं, और नगर को किलेबंदी से घेरा जा सकता है या नहीं भी। यह संगठित दृष्टिकोण कार्यात्मकता और सामाजिक व्यवस्था का समन्वय दर्शाता है, जिसे प्रायः अधिक विकसित वैदिक बस्तियों में लागू किया जाता था। (Source: Understanding the Vastu Shastra: City planning in walled city of Jaipur, international journal of architecture and engineering, doi. org/10.53136/97912599480766).

6. **कर्मुक (धनुष):** सामान्यतः तटीय नगरों के लिए प्रयुक्त, यह डिज़ाइन धनुष के आकार का होता है। उदाहरण: पूम्पुहार और कावेरीपट्टनम। कार्मुक योजना, जो संस्कृत शब्द "धनुष" से व्युत्पन्न है, प्राचीन भारतीय नगर नियोजन का एक मॉडल है जो धनुष, अर्धवृत्त या परवलय के आकार वाले स्थलों के लिए उपयुक्त होता है, और विशेष रूप से समुद्रतट या नदी किनारे स्थित नगरों में लागू किया जाता था। इस डिज़ाइन में सामान्यतः धनुष के आकार की दीवार से घिरा हुआ नगर होता है, जिसमें दो मुख्य द्वार उत्तर और दक्षिण दिशाओं में स्थित होते हैं। नगर के मध्य

में उत्तर-दक्षिण की ओर एक मुख्य सड़क होती है, जिसे समकोण पर काटती हुई पार्श्व सड़कें क्षेत्र को विभिन्न खंडों में विभाजित करती हैं। सुरक्षा के लिए नगर के चारों ओर एक गहरी और चौड़ी खाई (परिखा) होती है, जो जल से भरी होती है। बस्ती के केंद्र में एक देवी मंदिर होता है, जो नगर की अधिष्ठात्री देवी के रूप में पूजित होती है। (Source: Aswani, T. D., & Kalluraya, S. The Indian Ancient Architecture and Town Planning.)

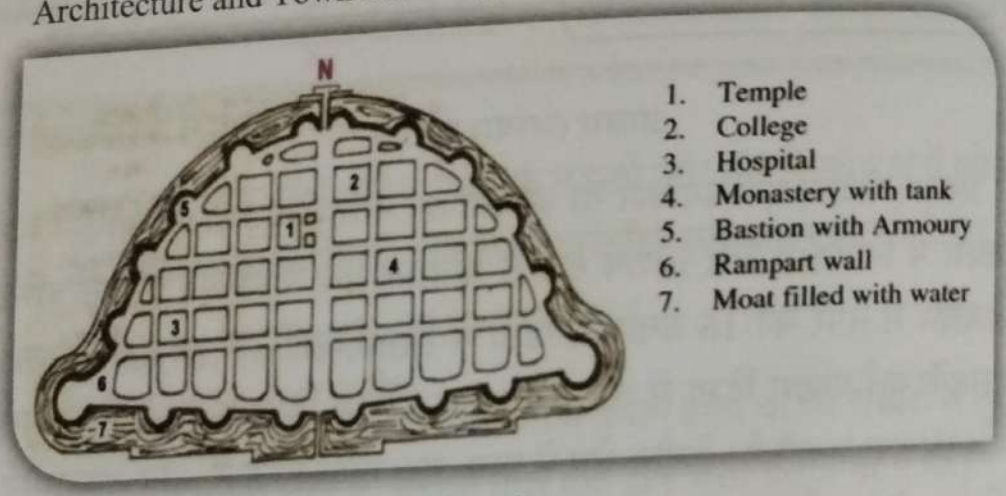

कार्मुक योजना

7. **चतुर्मुख (चारमुखी):** एक ऐसी योजना जिसमें केंद्र से चार मुख्य अक्ष प्रसारित होते हैं। चतुर्मुख योजना, जैसा कि प्राचीन भारतीय ग्रंथों जैसे मानसार में वर्णित है, वर्गाकार या आयताकार स्थलों के लिए उपयुक्त नगर नियोजन मॉडल है। इस डिज़ाइन में एक चौड़ी सड़क नगर के चारों ओर घूमती है, जिसमें दोनों ओर फुटपाथ बने होते हैं। केंद्रीय क्षेत्र को चार खंडों में विभाजित किया जाता है, प्रत्येक खंड के सिर पर एक द्वार या प्रवेश द्वार होता है, जो सभी दिशाओं से पहुँच प्रदान करता है। नगर का संगठन चार मुख्य सड़कों के साथ किया जाता है, जो पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण दिशाओं में चलती हैं तथा समकोण पर एक-दूसरे को काटती हैं, जिससे एक जालवत संरचना बनती है। इस योजना के केंद्र में एक मंदिर होता है, जो नगर की अधिष्ठात्री देवी को समर्पित होता है और नगर का आध्यात्मिक केंद्र होता है। आवासीय क्षेत्र व्यवस्थित रूप से नियोजित होते हैं, जिसमें शूद्रों के आवास नगर के बाहरी किनारों पर स्थित होते हैं। यह योजना कार्यात्मकता और सामाजिक संगठन का एक समन्वय दर्शाती है, जो नगर नियोजन में आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक दोनों पहलुओं को महत्व देती है। (Source: Boner, A., Śarmā, S. R., & Bäumer, B. (1996). The essence of form in sacred art. Motilal Banarsidass Publishe. 1-59)

5. **स्वस्तिक:** एक डिजाइन जिसमें आठ सड़कें विभिन्न दिशाओं से गाँव में प्रवेश करती हैं। स्वस्तिक योजना एक प्राचीन भारतीय नगर नियोजन मॉडल है जिसमें स्वस्तिक जैसा पैटर्न होता है। स्थल, जो किसी भी आकार का हो सकता है, विकर्ण सड़कों द्वारा त्रिकोणीय भूखंडों में विभाजित होता है।

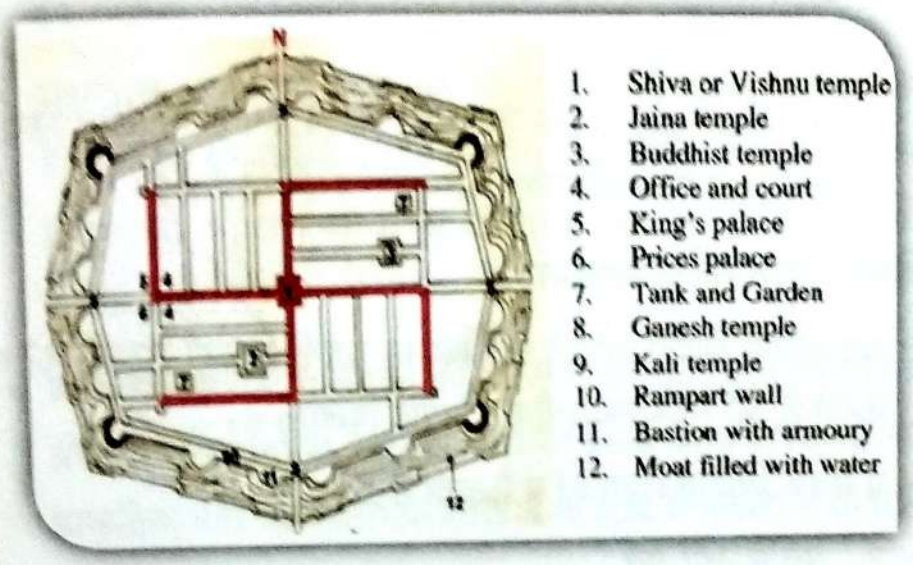

एक किलेबंद दीवार और खाई बस्ती को घेरती है, जो रक्षा को मजबूत करती है। दो मुख्य सड़कें बस्ती के केंद्र में एक-दूसरे को काटती हैं, जो पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण दिशा में चलती हैं, और शाखा सड़कें स्वस्तिक डिजाइन का पालन करती हैं। केंद्रीय क्षेत्र में एक मंदिर स्थित होता है, जो अक्सर एक देवी को समर्पित होता है, और एक जैन मंदिर दक्षिण-पश्चिम चौखट में स्थित होता है। दीवार को प्रक्षिप्त अस्त्रों से सुदृढ़ किया जाता है, और स्वस्तिक आकार चार द्वारों की रक्षा करता है, जिससे डिजाइन को आकर्षण और रणनीतिक लाभ मिलता है।

(Source: Wagoner, P. B. (1999). Ananda K. Coomaraswamy and the Practice of Architectural History. Journal of the Society of Architectural Historians, 58(1), 62-67. Ramanujan, A. K. (1989). Is there an Indian way of thinking? An informal essay. Contributions to Indian sociology, 23(1), 41-58.)

स्वस्तिक योजना की मुख्य विशेषताएँ

- **केंद्रीय चौराहा**
  - नगर दो मुख्य सड़कों के चारों ओर संरचित होता है, जो एक-दूसरे के लंबवत होती हैं: एक पूर्व-पश्चिम दिशा में और दूसरी उत्तर-दक्षिण दिशा में।

- ये सड़कें बस्ती के केंद्र में एक-दूसरे को काटती हैं, जिससे एक चौराहा बनता है जो पूरे योजना का मुख्य बिंदु होता है।

- **मंदिर की स्थिति**
  - चौराहे के ठीक केंद्र में एक मंदिर स्थित होता है, जो समुदाय के आध्यात्मिक केंद्र का प्रतीक है।
  - दक्षिण-पश्चिम खंड में एक जैन मंदिर विशेष रूप से निर्धारित किया जाता है, जो क्षेत्र की धार्मिक विविधता और महत्व को दर्शाता है।

- **स्वस्तिक-प्रेरित सड़क संरचना**
  - यह योजना केंद्रीय चौराहे से निकलने वाली विकर्ण सड़कों को सम्मिलित करती है, जो स्वस्तिक प्रतीक की याद दिलाती हैं।
  - ये सड़कें विशिष्ट दिशाओं में फैलती हैं–
    - पूर्व से उत्तर-पूर्व
    - दक्षिण से दक्षिण-पूर्व
    - पश्चिम से दक्षिण-पश्चिम
    - उत्तर से उत्तर-पश्चिम
  - यह व्यवस्था न केवल सौंदर्य की दृष्टि से आकर्षक है बल्कि ब्रह्मांडीय सिद्धांतों के अनुसार निर्मित वातावरण को प्राकृतिक शक्तियों के साथ संतुलित करने का प्रयास भी करती है।

- **किलेबंदी**
  - बस्ती के चारों ओर एक प्राचीर दीवार होती है, जिसे प्रक्षिप्त अस्त्रों द्वारा सुदृढ़ किया जाता है, जो सुरक्षा पर विशेष ध्यान देने को दर्शाता है।
  - दीवार के आधार पर एक गहरी खाई बनाई जाती है, जो रक्षा तंत्र को और भी सशक्त बनाती है, तथा नगर नियोजन में सुरक्षा के महत्व को दर्शाती है।

- **81-इकाई विभाजन**
  - पूरा नगर 81 समान इकाइयों में विभाजित होता है, जो नगरीय डिज़ाइन में क्रम और समरूपता पर बल देता है।
  - यह विभाजन संगठित ज़ोनिंग और भूमि के कुशल उपयोग को सुगम बनाता है, जो वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुरूप है।

सड़कों, जैसे राजमार्ग (राजा-मार्ग), को यातायात के मुक्त प्रवाह को समायोजित करने के लिए पर्याप्त चौड़ा बनाया जाता है और कंकड़ से मजबूत किया जाता है। इन सड़कों के दोनों ओर पैदल यात्रियों के लिए मार्ग भी होते हैं।

सड़क विनिर्देश

- **राजमार्ग (राजा-मार्ग):** 54 फीट चौड़ा।
- **शहर की सड़कें:** 27 फीट चौड़ी।
- **सुरक्षित सड़कों:** विभिन्न कार्यों के लिए निर्दिष्ट चौड़ाई, जैसे नगरों, ग्रामीण क्षेत्रों और बंदरगाह नगरों की सड़कों के लिए।

जयपुर में स्थापित सड़क नेटवर्क, जिसे राजा जय सिंह ने स्थापित किया था, प्राचीन सड़क प्रणाली का आधुनिक संदर्भ में उदाहरण है।

आवासीय वास्तुकला

वास्तु-शास्त्र में आवासीय भवनों का डिजाइन निवासियों की सामाजिक स्थिति, जीवन के चरण (आश्रम) और विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है। समरांगण-सूत्रधारा में आवासीय घरों की विस्तृत वर्गीकरण दी गई है, एक कमरे वाले आवासों से लेकर अधिक विशाल और शानदार घरों तक जो उच्च वर्ग के लिए होते हैं। इस ग्रंथ में 108 एक कमरे वाले घर, 52 दो कमरे वाले घर, और 72 तीन कमरे वाले घरों का विवरण है। घरों का डिजाइन और सजावट निवासियों की संपत्ति और सामाजिक स्थिति के आधार पर भिन्न होती है। वास्तु-शास्त्र में आवासीय वास्तुकला वास्तु और पद-विन्यास के सिद्धांतों से भी गहरे जुड़े होते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि घर प्राकृतिक और ब्रह्मांडीय शक्तियों के साथ सामंजस्य में हो। इसकी योजना में आंगन, बालकनी, खिड़कियां और अन्य तत्व शामिल होते हैं जो निवासियों की व्यावहारिक और सौंदर्यात्मक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

सार्वजनिक अवसंरचना

प्राचीन भारतीय नगरों में सार्वजनिक अवसंरचना दैनिक जीवन और सामाजिक कार्यों के लिए अभिन्न थी। समरांगण-सूत्रधारा ने राजसी भवनों, मंदिरों और सार्वजनिक स्थानों जैसे पुस्तकालयों, स्वास्थ्य केंद्रों और सार्वजनिक हॉल की वास्तुकला को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। एक अच्छी तरह से योजनाबद्ध शहर में ये नागरिक संरचनाएं नगर के केंद्र में स्थित होती हैं, जहाँ मनोरंजन और सामाजिक समारोहों के लिए पर्याप्त स्थान होता है।

- **सभा (सभा कक्ष):** एक बड़ा सभा कक्ष जहाँ बैठकें और न्यायिक कार्यवाही होती हैं।

सभा (अधिवेशन कक्ष)

सभा (या अधिवेशन कक्ष) राजमहल का एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्थान होता है। यह सरकारी कार्यों, राजसी घोषणाओं और कुलीनों, मंत्रियों और अन्य गणमान्य व्यक्तियों की बैठकों का स्थान होता है। समरांगण-सूत्रधारा में सभा के डिज़ाइन का विस्तृत विवरण दिया गया है, जिसमें कक्ष के स्तंभों की संख्या, प्रवेश डिज़ाइन और गलियारे या पोर्च की उपस्थिति के आधार पर आठ विभिन्न डिज़ाइन सुझाए गए हैं। सभा में अक्सर बड़ी संख्या में स्तंभ होते हैं (36 तक) और इसमें अग्निकुंड होते हैं, जो आधुनिक संसदीय या राष्ट्रपति हॉल की तरह होते हैं।

मयामतम में भी सार्वजनिक हॉल्स के डिज़ाइन का वर्णन है, जिसमें सभा कक्ष के नौ प्रकार के विन्यास और अतिरिक्त डिज़ाइन सुविधाएं जैसे कि चौकोर या आयताकार मंडप शामिल हैं।

सार्वजनिक उपयोगिता और अवसंरचना

महल के अलावा, वास्तु-शास्त्र ग्रंथों में शाही परिसर के भीतर विभिन्न सार्वजनिक उपयोगिता और अवसंरचना की डिज़ाइन पर भी चर्चा की गई है, जैसे कि:

- **रंगमंच:** मनोरंजन और सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के लिए स्थान।
- **कला दीर्घाएँ:** शाही कला और कलाकृतियों के संग्रह को प्रदर्शित करने के लिए डिज़ाइन की गई।
- **न्यायालय:** जहाँ कानूनी मामलों का निपटारा किया जाता था, जो अक्सर राजसी परिसर में स्थित होते थे।

वास्तु-शास्त्र में मंदिर वास्तुकला

मंदिर, जैसे कि महल, शहर के आध्यात्मिक और नागरिक जीवन के अभिन्न अंग होते हैं। वास्तु-शास्त्र में मंदिरों की डिज़ाइन में ज्यामिति, अनुपात और ब्रह्मांड के साथ सरेखण पर जोर दिया जाता है। मंदिरों का डिज़ाइन अत्यधिक सटीकता से किया जाता है और ये दिव्य आदेश को व्यक्त करने के लिए होते हैं। आमतौर पर इनका विन्यास वर्ग या ग्रिड प्रणाली में होता है, जिसमें ऊंचे मीनार होते हैं और जटिल उकेरे गए चित्र होते हैं, जो

अक्सर पुराणों की कथाओं को प्रदर्शित करते हैं। उत्तर भारत के मंदिर नागर शैली को अपनाते हैं, जबकि दक्षिण भारत के मंदिर द्रविड़ शैली का पालन करते हैं।

मंदिर के प्रमुख घटक

1. **गर्भगृह (संक्तमं स्थल):** मंदिर का सबसे भीतरी कक्ष, जहाँ देवता की मुख्य मूर्ति रखी जाती है। यह पवित्र स्थान मंदिर का केंद्र होता है और वास्तु-पुंष-मंडल के सिद्धांतों के अनुसार डिज़ाइन किया जाता है।
2. **मंडप:** ये स्तंभयुक्त हॉल होते हैं जो गर्भगृह से जुड़े होते हैं। प्रमुख प्रकार के मंडप:
   - मुख-मंडप: प्रवेश मंडप।
   - अर्ध-मंडप: अग्रभाग मंडप।
   - महा-मंडप: मुख्य हॉल, जो प्रायः बड़ा और भव्य रूप से सुसज्जित होता है।
3. **प्राकार:** गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा करने के लिए खुला मार्ग, जहाँ भक्त मंदिर के चारों ओर पूजा के रूप में चलते हैं। बड़े मंदिरों में एक से अधिक परिक्रमा हो सकती है।
4. **अधिष्ठान (आधार मंच):** वह ऊँचा मंच जिस पर मंदिर खड़ा होता है। यह आधार संरचना को स्थिरता प्रदान करता है और सजावटी तत्वों से अलंकृत होता है।
5. **स्तंभ (पिलर):** वे स्तंभ जो संरचना का समर्थन करते हैं, विशेष रूप से मंदिर की सुपर-संरचना। ये जटिल रूप से उकेरे जाते हैं और पूरे मंदिर में पाए जाते हैं, जो संरचनात्मक समर्थन और सौंदर्यात्मक मूल्य दोनों प्रदान करते हैं।
6. **प्रस्तर:** मंदिर का शीर्ष भाग, जो बीम और छत संरचना को शामिल करता है। बहु-मंजिला मंदिरों में प्रस्तर मंदिर की ऊंचाई और भव्यता में योगदान देता है।
7. **शिखर:** वह ऊपरी संरचना जो गर्भगृह के ऊपर उठती है, जो अक्सर मीनार के रूप में होती है। दक्षिण भारतीय मंदिरों में इसे विमाना कहा जाता है, और यह आमतौर पर एक गुंबदाकार शिखर के साथ समाप्त होता है।
8. **स्तूप:** मंदिर संरचना का शिखर, जो शिखर के शीर्ष पर स्थित होता है। यह मंदिर का सबसे ऊँचा बिंदु होता है और अक्सर दिव्य ऊर्जा के प्रतीकों से सजाया जाता है।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. Shukla, D.N. (1993). *Vastu-Sastra: Hindu Science of Architecture*, New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers, ISBN: 9788121505655
2. Kramrisch, Stella (1946). *The Hindu Temple*, Calcutta: University of Calcutta, ISBN: 9788120802229
3. Hardy, Adam (1995). *Indian Temple Architecture: Form and Transformation*, New Delhi: Indira Gandhi National Centre for the Arts, ISBN: 9788173050641
4. Acharya, P.K. (1933). *Mayamatam: Treatise of Housing Architecture and Iconography*. New Delhi: Indira Gandhi National Centre for the Arts, ISBN: 9788120800799
5. Acharya, P.K. (1934). *Manasara on Architecture and Sculpture*, New Delhi: Indira Gandhi, National Centre for the Arts, ISBN: 9788120800782
6. Hotwani, Mehul & Rastogi, Priyanka (2022). "Vastu Shastra: A Vedic Approach to Architecture." *International Journal of Engineering Research & Technology* (IJERT), 11(2), ISSN: 2278-0181, DOI: 10.17577/IJERTV11IS020141
7. Purkar, Pratik P., Narad, Anjali V., & Kothalkar, Pooja (2019). "Vedic Vaastushastra: A Scientific Approach.", *Journal of Civil Engineering and Environmental Technology*, 6(1), 6–10, ISSN (Print): 2349-8404, ISSN (Online): 2349-879X
8. Narkhede, Parag G. & Chiplunkar, Tanaya M. (2024). "Symbolism and Ancient Indian Town Planning.", *History Research Journal*, 30(3), 104–110. ISSN: 0976-5425
9. Venugopal, Jayadevi (2012). "Vastu Purusha Mandala: A Human Ecological Framework for Designing Living Environments." In R. Prabhakara et al. (Eds.), *Advances in Architecture and Civil Engineering*, pp. 870–877, Bonfring, Bangalore, India.

10. Ghom, Pashmeena V. (2021). "*Scientific Rationality in Vaastu Purusha Mandala: A Case Study of Desh and Konkan Architecture.*", New Design Ideas, 5(2), 195–205.

11. Dash, Shanta & Joshi, Mahendra (2021). "*A Comparative and Critical Analysis of Application of Vastu Shastra's Concepts with Philosophy, Psychology*, Feng Shui, Seismic Design and Contemporary Architecture Design Principles: A Review.", Applied Ecology and Environmental Sciences, 9(9), 838–845, DOI: 10.12691/aees-9-9-8.

कौन सा ग्रंथ 32, 49, 64 या 81 ग्रिड जैसे स्थल लेआउट के विस्तृत मॉडल प्रदान करता है?

क) ब्राहत-संहिता

ख) मानसार

ग) अर्थशास्त्र

घ) रामायण

6. मंदिर वास्तुकला में, गर्भगृह के ऊपर ऊँचा संकुचित टॉवर किसे कहा जाता है?

क) मंडप

ख) शिखर

ग) प्रारंभ

घ) स्तंभ

7. प्राचीन भारतीय सड़क योजना के अनुसार, हाथियों के लिए बनाई गई सड़कें आदर्श रूप से कितनी चौड़ी होती थीं?

क) 6 फीट

ख) 12 फीट

ग) 24 फीट

घ) 48 फीट

8. वास्तु-शास्त्र के अनुसार, 'तकनीशियन' या 'कारीगर' कौन है, जो डिज़ाइनों को निष्पादित करता है?

क) यजमान

ख) स्थापति

ग) शिल्पी

घ) कक्षक

9. कौन सा प्राचीन शहर वर्षा जल संचयन जलाशयों का उपयोग कर उन्नत जल प्रबंधन का उदाहरण देता है?

क) मोहनजोदड़ो

ख) हड़प्पा

ग) धोलावीरा

घ) लोथल

10. वास्तु-शास्त्र में कौन सा लेआउट तटीय नगरों के लिए आदर्श रूप से डिजाइन किया गया था?

क) कर्मुका (धनुष)

ख) दंडक (दंड)

ग) स्वस्तिक

घ) पद्मक (कमल)

11. राजमहलों के मुख्य समारोहिक हॉल को क्या कहा जाता है?

क) सभा

ख) प्राकार

ग) शिखर

घ) विमान

12. वास्तु-शास्त्र में, समरांगणसूत्रधारा में कितने एक-कक्षीय घरों का वर्णन किया गया है?

क) 72

ख) 52

ग) 108

घ) 36

13. वास्तु-शास्त्र के अनुसार, निर्माण प्रक्रिया में वास्तोषपति की भूमिका क्या है?

क) कारीगरों की निगरानी करना

ख) अनुष्ठान और आशीर्वाद देना

ग) भवन अनुपात मापना

घ) भूमि का चयन करना

14. स्वस्तिक लेआउट में कितने प्रमुख विभाग या कोश होते हैं?

क) 49

ख) 64

ग) 81

घ) 108

15. प्राचीन शास्त्रों के अनुसार, एक राजमार्ग (राजा-मार्ग) की आदर्श चौड़ाई क्या थी?

क) 24 फीट

ख) 36 फीट

ग) 54 फीट

घ) 72 फीट

16. वास्तु-पुरुष का सिर किस दिशा में स्थित होता है, ऐसा माना जाता है?

क) दक्षिण-पश्चिम

ख) उत्तर-पूर्व

ग) दक्षिण-पूर्व

घ) उत्तर-पश्चिम

17. नीचे में से कौन प्राचीन मंदिर निर्माण में मास्टर वास्तुकार के रूप में वर्णित है?

क) विश्वकर्मा

ख) शुक्र

ग) वराहमिहिर

घ) कौटिल्य

18. द्रविड़ शैली की मंदिर वास्तुकला मुख्य रूप से कहाँ पाई जाती है?

क) पश्चिमी भारत

ख) उत्तरी भारत

ग) दक्षिणी भारत

घ) पूर्वी भारत

19. किस सभ्यता में बड़े सार्वजनिक अनाज भंडार और ग्रिड लेआउट पाए गए थे?

क) मौर्य

ख) सिंधु-सरस्वती

ग) गुप्त

घ) मुग़ल

25. कौटिल्य के अनुसार, एक अच्छी योजना वाले शहर में कितने द्वार होने चाहिए?

क) 8

ख) 12

ग) 16

घ) 10

26. वास्तु-पुरुष-मंडल का पवित्र केंद्र बिंदु क्या कहलाता है?

क) आदित्यस्थल

ख) सोमस्थल

ग) ब्रह्मस्थल

घ) रुद्रस्थल

27. अर्थशास्त्र में, मंदिरों को शहर के किस भाग में रखने की सिफारिश की गई है?

क) पूर्वी भाग

ख) पश्चिमी भाग

ग) केंद्र

घ) दक्षिणी भाग

28. दंडक लेआउट किससे मिलता-जुलता है?

क) एक सीधी रेखा

ख) एक वृत्त

ग) एक स्वस्तिक

घ) एक धनुष

29. समरांगणसूत्रधारा में कितने प्रकार की सड़कें सुझाई गई हैं?

क) 8

ख) 16

ग) 24

घ) 34

30. प्राचीन भारतीय नगर योजना में, किलों के चारों ओर क्या था?

क) केवल ऊँची दीवारें

ख) खाई

ग) जंगल

घ) प्रहरी मीनारें

31. सर्वतोभद्र डिज़ाइन के मुख्य प्रवेश द्वार किस दिशा में स्थित होते हैं?

क) मुख्य दिशाओं में

ख) विकर्ण दिशाओं में

ग) केवल पूर्व-पश्चिम

घ) यादृच्छिक दिशाओं में

32. पद्मका लेआउट की मुख्य विशेषता क्या थी?

क) कमल जैसा संरचना

ख) वर्गाकार ग्रिड

ग) धनुषाकार डिज़ाइन

घ) विकर्ण सड़कें

33. वास्तु-शास्त्र के किस तत्व से उपयुक्त भूमि का चयन संबंधित है?

क) अलंकरण

ख) भूमि

ग) शयन

घ) यान

34. ब्राहत-संहिता की रचना किसने की थी?

क) कौटिल्य

ख) विश्वकर्मा

ग) वराहमिहिर

घ) वाल्मीकि

35. राजमहल को शहर के किस दिशा में स्थित किया जाता था?

क) पूर्व

ख) पश्चिम

ग) उत्तर

घ) दक्षिण

36. मंदिर निर्माण में, एंटेबलचर को क्या कहा जाता है?

क) शिखर

ख) प्रारंभ

ग) स्तंभ

घ) मंडप

37. वास्तु-शास्त्र के अनुसार, एक सामान्य घर को आदर्श रूप से कितने वर्षों तक टिकना चाहिए?

क) 200 साल

ख) 500 साल

ग) 1000 साल

घ) 100 साल

38. कक्षक का विशेषज्ञ किस कार्य में होता है?

क) मूर्तियों का शिल्प

ख) लकड़ी का काम

ग) पत्थर का काम

घ) दीवार चित्रकला

39. जयपुर की नगर योजना प्रणाली किस प्राचीन मॉडल पर आधारित है?

क) नंद्यावर्त

ख) कर्मुका

ग) प्रारंभ

घ) दंडक

40. मंदिर निर्माण में, शिखर के ऊपर जो मुकुट या फिनियल होता है, उसे क्या कहा जाता है?

क) मंडप
ख) स्तंभ
ग) प्रारंभ
घ) स्तूप

41. अष्टपद लेआउट किस आधुनिक संरचना जैसा होता है?

क) षटकोण
ख) शतरंज का बोर्ड
ग) तारा
घ) वृत्त

42. निर्माण की शुरुआत से पहले भूमिपूजन कौन करता था?

क) शिल्पी
ख) यजमान
ग) सूत्रग्रहिण
घ) वर्गकी

43. किस साहित्यिक कृति में लंका की वास्तुकला की भव्यता का वर्णन है?

क) महाभारत
ख) ब्राहत-संहिता
ग) रामायण
घ) मानसार

44. अर्थशास्त्र के अनुसार, जंगलों की ओर जाने वाली सड़कों की चौड़ाई कितनी होनी चाहिए?

क) 54 फीट
ख) 48 फीट
ग) 24 फीट
घ) 6 फीट

45. वास्तु-शास्त्र के किस तत्व से आंतरिक सजावट संबंधित है?

क) पादविन्यास
ख) भूमि
ग) वास्तोष्पति
घ) अलंकरण

46. निर्माण के दौरान अनुपात मापने का मुख्य जिम्मेदार कौन होता है?

क) कक्षक
ख) शिल्पी
ग) सूत्रग्रहिण
घ) वर्गकी

47. स्वस्तिक लेआउट में, एक जैन मंदिर सामान्यतः किस चौथाई में रखा जाता है?

क) उत्तर-पश्चिम
ख) दक्षिण-पश्चिम
ग) दक्षिण-पूर्व
घ) उत्तर-पूर्व

48. धोलावीरा में, कौन सा विशेष बुनियादी ढांचा शहरी दृष्टिकोण को उजागर करता है?

क) पत्थर के पुल
ख) स्तूप
ग) लकड़ी के महल
घ) जलाशय

49. ग्रीक इतिहासकार जिन्होंने पाटलिपुत्र की वास्तुकला का वर्णन किया था, वह थे:

क) मेगस्थनीज
ख) हेरोडोटस
ग) प्लिनी
घ) टॉलमी

60. अर्थशास्त्र के अनुसार, मवेशियों के लिए सड़क की अनुमानित चौड़ाई कितनी होनी चाहिए?

क) 3 फीट
ख) 6 फीट
ग) 12 फीट
घ) 24 फीट

61. मंदिर में प्रवेश मंडप को क्या कहा जाता है?

क) मुख-मंडप
ख) गर्भगृह
ग) शिखर
घ) प्राकार

62. प्राचीन भारतीय निर्माण में पत्थर चिपकाने वाला पदार्थ किस ग्रंथ में वर्णित है?

क) मानसार
ख) ब्राहत-संहिता
ग) रामायण
घ) अर्थशास्त्र

63. मंदिर की प्रतिमाओं में देवताओं के अनुपात का विवरण किस ग्रंथ में है?

क) अग्नि पुराण
ख) अर्थशास्त्र
ग) मानसार
घ) ब्राहत-संहिता

64. उत्तर भारत में मंदिरों का प्रमुख वास्तुशिल्प शैली क्या है?

क) द्रविड़
ख) वेसरा
ग) नागर
घ) गांधार

65. कर्मुका लेआउट में, नगर का आकार किसके समान होता है?

क) स्वस्तिक
ख) धनुष
ग) पद्म
घ) staff

66. मोहनजोदड़ो में ग्रेट बाथ के लिए कौन सा सामग्री बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया था?

क) ईंट और जिप्सम
ख) लकड़ी
ग) पत्थर
घ) लोहे की प्लेट

67. आदर्श मंदिर योजना किस ज्यामितीय रूप पर आधारित होती है?

क) त्रिकोण
ख) षटकोण
ग) वर्ग
घ) आयत

68. किस शब्द से बहु-मंजिला मंदिर के गोल भाग का संकेत मिलता है?

क) प्रास्तर
ख) शिखर
ग) मंडप
घ) स्तंभ

69. मंदिर का सबसे पवित्र स्थान क्या कहलाता है?

क) मुख-मंडप
ख) शिखर
ग) गर्भगृह
घ) प्राकार

70. वास्तुकला और योजना का विज्ञान सामान्यतः क्या कहलाता है?
   क) यान-शास्त्र
   ख) वास्तु-शास्त्र
   ग) शिल्प-शास्त्र
   घ) शिखर-शास्त्र

71. वास्तु-शास्त्र के अनुसार, किलेबंदी वाले नगरों में सामान्यतः कितने मुख्य द्वार होते थे?
   क) 2
   ख) 4
   ग) 6
   घ) 8

72. प्राचीन ग्रंथों के अनुसार, गांवों को प्रशासनिक इकाइयों के रूप में कितने गांवों का समूह माना जाता था?
   क) 10
   ख) 50
   ग) 100
   घ) 200

73. मंदिर निर्माण के घटक में कौन सा संरचनात्मक स्तंभ को संदर्भित करता है?
   क) प्रास्तर
   ख) स्तूप
   ग) शिखर
   घ) स्तंभ

74. वास्तु-मंडल में स्थित प्रतीकात्मक ब्रह्मांडीय आकृति को क्या कहा जाता है?
   क) विश्वकर्मा
   ख) ब्रह्मा
   ग) वास्तु-पुरुष
   घ) स्थापत्य

75. किस प्राचीन योजना में 81 वर्गों की योजना का उल्लेख है?
   क) प्रास्तर
   ख) दंडक
   ग) सर्वतोभद्र
   घ) स्वस्तिक

76. मानसार के अनुसार, स्थल योजनाओं के लिए कितने मॉडल अनुशंसित हैं?
   क) 16
   ख) 24
   ग) 32
   घ) 48

77. टक्षक मुख्य रूप से किस कार्य से संबंधित होता है?
   क) ईंट कारीगरी
   ख) चित्रकला
   ग) लकड़ी का काम
   घ) धातु शिल्प

78. वास्तु-शास्त्र में भूमि का क्या अर्थ है?
   क) परिवहन
   ख) भूमि
   ग) सजावट
   घ) आंतरिक सजावट

79. अर्थशास्त्र में आदर्श नगर योजनाओं का वर्णन करने वाले निम्नलिखित में से कौन थे?
   क) कौटिल्य
   ख) मनु
   ग) वराहमिहिर
   घ) विश्वकर्मा

85. अर्थशास्त्र के अनुसार, रथों के लिए सड़कों की अनुशंसित चौड़ाई क्या है?

क) 7.5 फीट

ख) 6 फीट

ग) 3 फीट

घ) 12 फीट

86. वास्तु-शास्त्र में, निर्माण से पहले पहला अनुष्ठान क्या होता है?

क) भूमि-पूजन

ख) वास्तु-शांति

ग) गृहारंभ

घ) गृहप्रवेश

87. स्थापत्यकार को कितने प्रकार की शिल्पकला में महारत होनी चाहिए?

क) चार

ख) छह

ग) आठ

घ) दस

88. मेगस्थनीज के अनुसार, किस शहर में 564 मीनारें और 64 द्वार थे?

क) हड़प्पा

ख) मोहनजोदड़ो

ग) पाटलिपुत्र

घ) लोथल

89. धोलावीरा के नगर नियोजन में, शहर को कितने अलग-अलग हिस्सों में विभाजित किया गया था?

क) 3

ख) 2

ग) 4

घ) 5

90. वास्तु-शास्त्र में, किस तत्व का संबंध शयन व्यवस्था से है?

क) शयन
ख) भूमि
ग) प्रासाद
घ) यान

91. किस शहर का नियोजन आधुनिक समय में प्रास्तर लेआउट का उदाहरण है?

क) चंडीगढ़
ख) जयपुर
ग) मुंबई
घ) दिल्ली

92. नए घर में प्रवेश का पहला अनुष्ठान क्या कहलाता है?

क) गृहप्रवेश
ख) वास्तु-पूजन
ग) शयन
घ) स्थापत्य

93. स्वस्तिक लेआउट रक्षा के दृष्टिकोण से किस प्रकार का लाभ प्रदान करता है?

क) केंद्रीय मंदिर
ख) मजबूत किलेबंदी
ग) चारों द्वारों की रक्षा
घ) गोलाकार क्षेत्रों में विभाजन

94. मयामतम मुख्य रूप से किस विषय पर एक ग्रंथ है?

क) युद्ध
ख) वास्तुकला
ग) साहित्य
घ) काव्य

95. नागर शैली के मंदिरों में, शीर्ष किस प्रकार से उभरते हैं?

क) गुंबद जैसे
ख) वक्र रेखीय
ग) पिरामिड के आकार की
घ) समतल

96. सर्वतोभद्र मॉडल में, जनसंख्या घनत्व कहाँ सबसे अधिक होता है?

क) शहर की दीवारों पर
ख) केंद्रीय खुले स्थान में
ग) बाहरी परिधियों में
घ) मुख्य मंदिरों के पास

97. अर्थशास्त्र के अनुसार, पशुओं की आवाजाही के लिए सड़कों की चौड़ाई कितनी होनी चाहिए?

क) 3 फीट ख) 6 फीट
ग) 12 फीट घ) 24 फीट

98. किस प्रकार की मंदिर योजना में सड़कों द्वारा केंद्र को सीधे पार करने से बचा जाता है?

क) दंडक ख) कर्मुका
ग) पद्मका घ) प्रास्तर

99. रामायण के अनुसार, अयोध्या की डिजाइन किस मॉडल के समान थी?

क) अष्टापद मॉडल ख) पद्मका मॉडल
ग) कर्मुका मॉडल घ) सर्वतोभद्र मॉडल

100. वास्तु-पुरुष-मंडल का प्रमुख पहलू क्या था?

क) कला सौंदर्य
ख) सौर कैलेंडर
ग) सामंजस्यपूर्ण ब्रह्मांडीय संरेखण
घ) रक्षात्मक वास्तुकला

उत्तरद्दर्शिका

1. (ग)	26. (ग)	51. (क)	76. (ग)
2. (ख)	27. (ग)	52. (ख)	77. (ग)
3. (ग)	28. (क)	53. (ग)	78. (ख)
4. (ग)	29. (घ)	54. (ख)	79. (क)
5. (ख)	30. (ग)	55. (घ)	80. (घ)
6. (ख)	31. (क)	56. (क)	81. (ग)
7. (ख)	32. (क)	57. (ख)	82. (ग)
8. (ग)	33. (ख)	58. (क)	83. (ग)
9. (ग)	34. (ग)	59. (ग)	84. (ख)
10. (क)	35. (ख)	60. (ख)	85. (क)
11. (क)	36. (ख)	61. (क)	86. (क)
12. (ग)	37. (क)	62. (ख)	87. (ग)
13. (ख)	38. (ख)	63. (घ)	88. (घ)
14. (ख)	39. (ग)	64. (ग)	89. (क)
15. (ग)	40. (ग)	65. (ख)	90. (ख)
16. (ग)	41. (घ)	66. (ग)	91. (ख)
17. (घ)	42. (ख)	67. (घ)	92. (क)
18. (ख)	43. (ग)	68. (क)	93. (घ)
19. (ख)	44. (क)	69. (ग)	94. (ख)
20. (ग)	45. (घ)	70. (ख)	95. (क)
21. (ख)	46. (ग)	71. (ब)	96. (घ)
22. (क)	47. (ख)	72. (क)	97. (ख)
23. (ग)	48. (घ)	73. (घ)	98. (ग)
24. (क)	49. (क)	74. (ग)	99. (क)
25. (ख)	50. (ग)	75. (घ)	100. (ग)

Bharat BoudhiKS

खंड-13

भारतीय लोकशासन परंपरा

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

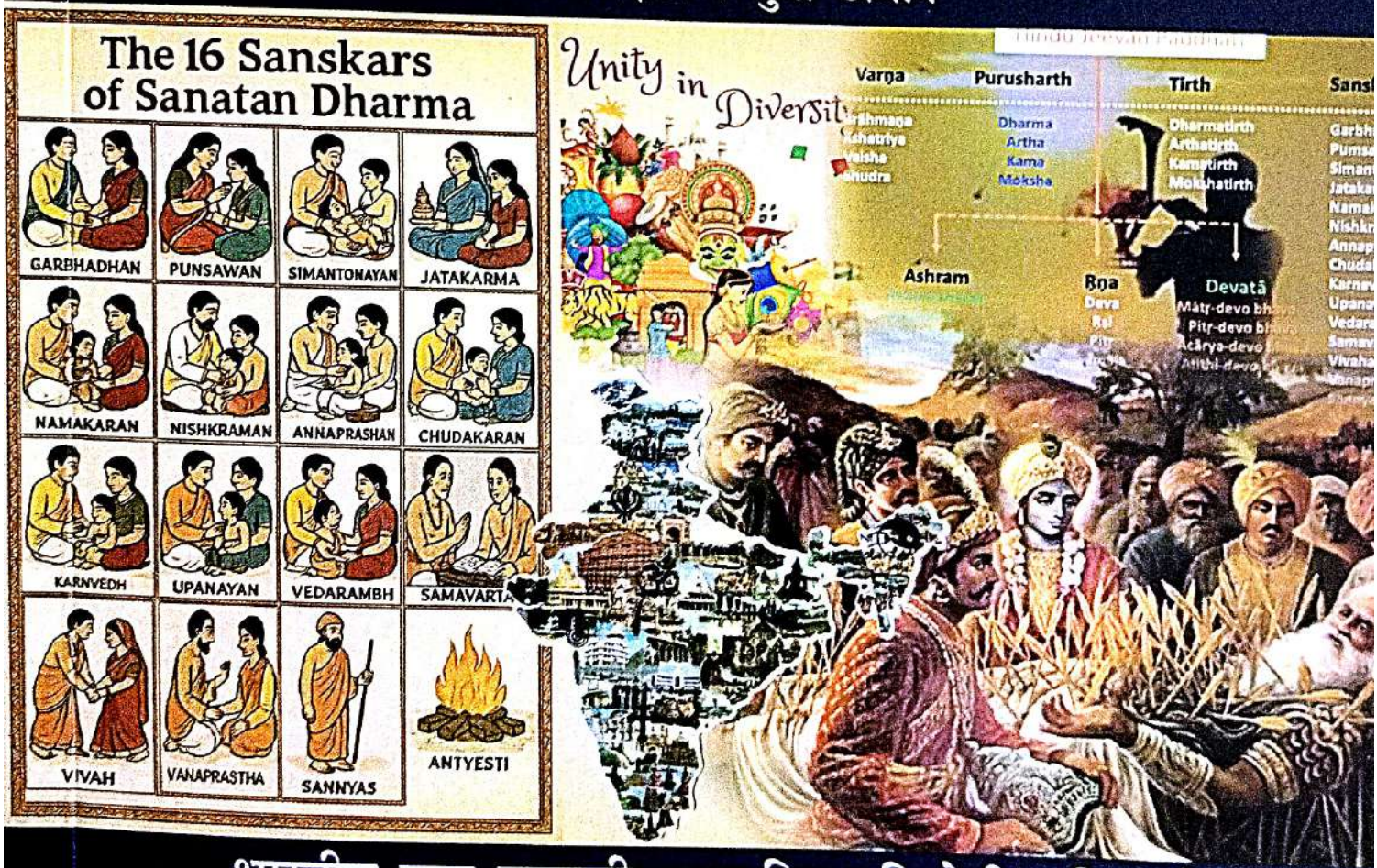

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

भारतीय लोकशासन परंपरा

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नई दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक / ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **भारतीय लोकशासन परंपरा**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. दीपक कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-80-2

मूल्य : 170/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1.	भूमिका	13
2.	मनुष्यत्व और श्रेष्ठता	14
3.	मनुष्य का उद्भव और विकास	15
4.	परिवार और कुटुम्ब	17
5.	संस्कार और मनुष्य-निर्माण	18
6.	लोक और वर्ण व्यवस्था: भारतीय समाज की परंपरागत संरचना	26
7.	लोक-राष्ट्र का सिद्धांत प्राचीन भारत में	33
	अनुशंसित पठन सामग्री	36
	बहु विकल्पीय प्रश्न	37
	उत्तर-दर्शिका	56

प्रस्तावना

भारतीय लोक व्यवस्थाएँ केवल एक ऐतिहासिक सामाजिक संरचना का अध्ययन नहीं, बल्कि भारतीय चिंतन की उस गहराई को दर्शाती हैं, जो समाज, व्यक्ति और राज्य के बीच एक संतुलित, नैतिक और धर्माधारित संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देती है। यह ग्रंथ भारतीय जीवन-दर्शन की उस परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें व्यक्ति को केवल एक भौतिक अस्तित्व नहीं, बल्कि एक आत्मिक, मानसिक और सामाजिक उत्तरदायित्व से युक्त प्राणी माना गया है। मनुष्य की श्रेष्ठता उसके बाह्य बल में नहीं, बल्कि उसके विवेक, आत्मसंयम और सामाजिक चेतना में है। भारतीय विचारधारा में वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य कर्तव्यों और गुणों के आधार पर समाज का संतुलित विभाजन था, जबकि लोक व्यवस्था में जन-कल्याण, समानता और न्याय पर बल दिया गया। यह ग्रंथ संस्कारों की श्रृंखला के माध्यम से व्यक्ति के मानसिक और नैतिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है, जिससे वह समाज और राष्ट्र के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा सके। पुस्तक में वर्णित विषय - जैसे कि भारतीय परिवार व्यवस्था, लोक-राष्ट्र की अवधारणा, जाति व्यवस्था और उसका ऐतिहासिक स्वरूप, महापुरुषों द्वारा किए गए सामाजिक सुधार - इन सभी से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज व्यवस्था की जड़ें केवल रीति-रिवाजों में नहीं, बल्कि गहन दार्शनिक विचारधारा और मानवता की मूलभूत भावनाओं में निहित हैं। यह ग्रंथ विशेष रूप से उन पाठकों के लिए उपयोगी है जो भारत के सामाजिक ढाँचे को उसकी मूल भावना के साथ समझना चाहते हैं। यह न केवल अतीत को उद्घाटित करता है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की सामाजिक दिशा को भी आलोकित करता है।

"India- the land of Vedas, the remarkable works contain not only religious ideas for a perfect life, but also facts which science has proved true.

Electricity, radium, electronics, airship, all are known to the seers who founded the Vedas."

Source: Indian systems of psychotherapy by Prakash Veereshwar.

• • •



Ella Wheeler Wilcox
(1850-1919)

Prolific American mystic poetess and journalist. She was instrumental in the establishment of the Rosicrucian Movement in twentieth-century America and is best known for her 'Poems and Passion'

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है । **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो ।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है । सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है । यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है ।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है । संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है । कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है ।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है ।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

भारतीय लोक शासन परंपरा

भूमिका

मनुष्य की श्रेष्ठता पर भारतीय दृष्टिकोण एक गहरे दार्शनिक विचार का परिणाम है, जो न केवल उसकी भौतिक अवस्था बल्कि उसकी मानसिक और आत्मिक क्षमता पर आधारित है। भारतीय संस्कृतियों में मनुष्य को "सर्वश्रेष्ठ प्राणी" माना गया है, और इसका आधार उसकी अद्वितीय मानसिक और चिंतनशील क्षमताओं में निहित है।

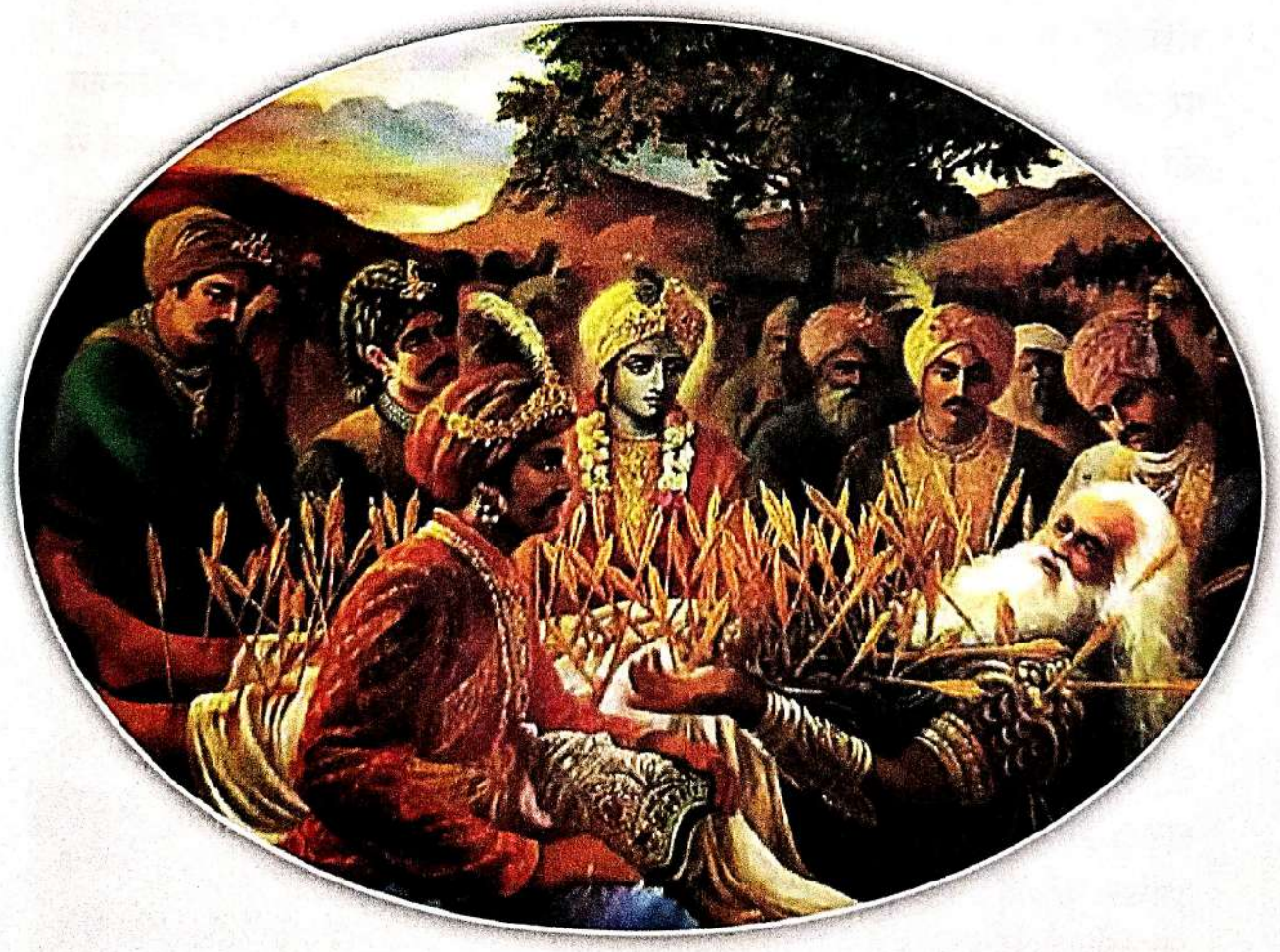

Source: https://spiritualworld.co.in

महाभारत के शान्तिपर्व (299/20) में यह कहा गया है, **"न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्"**, जिसका अर्थ है कि मनुष्य इस सृष्टि का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण में, मनुष्य की श्रेष्ठता का मूल कारण उसकी सोचने और समझने की क्षमता है। इस विचार के अनुसार, मनुष्य केवल भौतिक जगत के भोग में लिप्त नहीं रहता, बल्कि अपने कर्मों और मानसिक क्षमता द्वारा अपने जीवन को उन्नत और श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करता है।

ऋषि अरविंद ने इस विषय पर महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए। उनके अनुसार, मनुष्य स्वभाव से **मनोमय प्राणी** है, जिसका अर्थ है कि उसका अस्तित्व केवल भौतिक या जैविक नहीं है, बल्कि मानसिक और आत्मिक भी है। वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य का उच्चतम रूप वह है जब वह अपने वास्तविक स्वरूप के अधिक निकट होता है (योग समन्वय। यह मानसिक रूप से उन्नत और आत्म-साक्षात्कार की स्थिति है, जो उसे अन्य जीवों से अलग करती है।

भारतीय दृष्टिकोण में मनुष्य को **कर्मयोनि** माना गया है, जबकि अन्य प्राणियों को **भोगयोनि** कहा गया है। इसका अर्थ है कि मनुष्य केवल भोग और उपभोग के लिए पृथ्वी पर नहीं आया है, बल्कि उसे अपने कर्मों द्वारा आत्म-निर्माण और आत्म-साक्षात्कार की दिशा में अग्रसर होना है। मनुष्य की यह **कर्म** की विशेषता उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है। उदाहरण के लिए, अन्य प्राणी अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करते हैं, जैसे कि भूख लगने पर बिना किसी चयन के जो सामने हो, उसे खा लेना। लेकिन मनुष्य की स्थिति अलग है। वह अपनी प्राकृतिक इच्छाओं और प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने की क्षमता रखता है। उदाहरण स्वरूप, वह अपने आहार, पानी और अन्य आवश्यकताओं के लिए नियम बनाता है कि कौन सा भोजन योग्य है और कौन सा नहीं, क्या पीना चाहिए और क्या नहीं।

मनुष्यत्व और श्रेष्ठता

मनुष्य की यह विशेषता ही **"मनुष्यत्व"** और उसकी **"श्रेष्ठता"** का प्रतीक है। उसकी यह क्षमता उसे अन्य प्राणियों से ऊँचा उठाती है, क्योंकि वह भोग और जीवन-निर्वाह से कहीं अधिक कुछ है। मनुष्य का अस्तित्व केवल भौतिक जगत से जुड़ा हुआ नहीं है, बल्कि वह उससे कहीं अधिक विलक्षण है।

मनुष्य की यह विशेषता उसे अपने जीवन के उद्देश्यों को निर्धारित करने की

स्वतंत्रता देती है, और उसे अपने कर्मों के प्रति उत्तरदायी बनाती है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन में मनुष्य को एक "कर्मयोगी" के रूप में देखा जाता है, जो केवल अपने लिए नहीं, बल्कि समाज और संसार के लिए भी कार्य करता है।



भारतीय लोक व्यवस्था में व्यक्ति की भूमिका केवल भोग और उपभोग की नहीं, बल्कि वह समाज और राष्ट्र के निर्माण में भी योगदान करता है। यह व्यवस्था व्यक्तित्व के विकास, परिवार की भूमिका, और सामाजिक अनुशासन के द्वारा एक सामूहिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है। मनुष्य का मुख्य उद्देश्य केवल अपने जीवन की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करना नहीं है, बल्कि वह अपनी मानसिक, आत्मिक और आध्यात्मिक क्षमता को जाग्रत करके आत्म-साक्षात्कार की दिशा में अग्रसर होता है। यही भारतीय लोक व्यवस्थाओं का मर्म है, जो उसे एक उच्चतम प्राणी बनाता है, और यही उसकी असली श्रेष्ठता का कारण है।

मनुष्य का उद्भव और विकास

मनुष्य के उद्भव और विकास पर चिंतन भारतीय सोच की एक विशिष्टता है, जिसका आधार भारतीयों की सृष्टि और मानवता से जुड़ी समझ में निहित है। भारतीय विद्वानों

का मानना था कि मनुष्य अपनी मौजूदा रूप में उत्पन्न हुआ और आरंभिक काल में उसने धर्म और नैतिकता के साथ जीवन बिताया। जैसे-जैसे उसकी धार्मिकता में कमी आई, वह पशुता की ओर बढ़ने लगा। इसके विपरीत, पश्चिमी यूरोपीय विचारक जो स्वयं को वैज्ञानिक मानते हैं, यह मानते हैं कि मनुष्य पहले एक जंगली पशु था, जो धीरे-धीरे विकास की प्रक्रिया से मनुष्य बना। उनके अनुसार, यह विकास उसकी प्राकृतिक आवश्यकताओं और उन्हें पूरा करने के प्रयासों के कारण हुआ।

आधुनिक विकासवाद के अनुसार, पहले शाकाहारी बंदर जब मनुष्य के रूप में परिवर्तित हुए, तो उन्होंने मांसाहार की ओर रुख किया। "हिस्ट्री ऑफ फूड" में रिए टन्नाहिल ने लिखा है कि लगभग 40 लाख से 1 करोड़ वर्ष पहले, पृथ्वी की प्लेटों में परिवर्तन के कारण जलवायु में बदलाव आया। उष्णकटिबंधीय इलाकों से ठंडे प्रदेश बनने लगे, जंगल कम हो गए और वनस्पतियाँ मौसम पर निर्भर होने लगीं। फल, जो पहले बंदरों को पेड़ों से मिलते थे, अब कम होने लगे, जिससे वे मैदानों में घूमने लगे। यहाँ उन्हें कंदमूल, बीज और मांसाहारी जीव-जंतु जैसे छिपकलियाँ, साही, कछुए, गिलहरी, चूहे, कीड़े, और उनके अंडे मिले। यह विकास के प्रारंभ की स्थिति थी, जिसने आगे चलकर मानव इतिहास को आकार दिया। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय चिंतन जहाँ मानव विकास को प्राकृतिक आवश्यकताओं को संतुलित रूप से समझने और नियंत्रित करने के रूप में देखता है, वहीं यूरोपीय विचारधारा इसे अपनी मूल प्रकृति को छोड़ने और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बदलाव के रूप में मानती है। यह अंतर केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि जीवन के लक्ष्यों और स्वभाव के संदर्भ में भी है। यूरोपीय और नवयूरोपीय देशों में लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति को ही प्राथमिक लक्ष्य मानते हैं, चाहे इसके लिए पृथ्वी का विनाश क्यों न हो जाए। इसके विपरीत, भारतीय अवधारणाएँ प्रकृति और सभी जीवों की रक्षा करते हुए मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करने का समर्थन करती हैं।

इस मौलिक अंतर के कारण ही दोनों विचारधाराओं के विकास के मानदंड परस्पर विपरीत रहे हैं। यूरोप में व्यक्ति को एक संसाधन के रूप में देखा जाता है, जबकि भारतीय चिंतन उसे एक चेतनाशक्ति के रूप में देखता है। भारतीय दृष्टिकोण मनुष्य को आत्मा से जोड़कर देखता है, जबकि यूरोपीय वैज्ञानिक किसी सजीव और निर्जीव के बीच भेद करते हुए आत्मा को अस्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि मनुष्य अमीबा जैसे कोशिकाओं से बना है, और कोशिकाएँ रासायनिक प्रतिक्रियाओं का परिणाम हैं।

परिवार और कुटुम्ब

भारत में परिवार संस्था को एक विशेष स्थान प्राप्त है, और यह भारतीय संस्कृति की एक अनूठी विशेषता मानी जाती है। यहां परिवार का भाव इतना व्यापक और गहरा है कि उसका विस्तार सिर्फ कुटुम्ब तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह संपूर्ण पृथ्वी तक फैल जाता है। इसके विपरीत, पश्चिमी दुनिया, विशेषकर यूरोप, में परिवार को एक संस्था के रूप में देखा गया और इसे एक व्यक्तिगत सत्ता का प्रतीक माना गया। यूरोपीय विचारधारा में कुटुम्ब या आत्मीय रिश्तों जैसा कोई भावनात्मक संबंध कभी विकसित नहीं हो पाया।



भारत में परिवार का आधार भावनाओं और संबंधों पर आधारित है, जबकि पश्चिम में इसे एक औपचारिक संस्था के रूप में देखा जाता है। यहां माता-पिता कोई सत्ता नहीं होते, बल्कि उनका मातृत्व और पितृत्व एक भावनात्मक बंधन है। इस भावनात्मक संबंध के कारण ही परिवार का अस्तित्व होता है और यह परिवार भाव ही मनुष्य को पशु से ऊपर उठाता है। जब परिवार बनता है तो स्त्री केवल स्त्री नहीं रहती और पुरुष केवल पुरुष नहीं रहता। स्त्री माँ, बहन, बेटी, मामी, मौसी, चाची, फुआ, दादी, नानी जैसी विविध भूमिकाएँ ग्रहण करती है, जबकि पुरुष पिता, भाई, बेटा, मामा, मौसा, चाचा, फूफा, दादा, नाना आदि बन जाता है।

इसका अर्थ यह है कि परिवार में स्त्री-पुरुष अपनी व्यक्तिगत पहचान खोकर नए रूप में ढल जाते हैं। यह रूप केवल भावनात्मक होता है, और यह वास्तविक जीवन में अधिक सुंदर और प्रभावशाली होता है। पश्चिम में इस प्रकार का परिवार का स्वरूप कभी विकसित नहीं हुआ। क्योंकि वहां विवाह को एक कानूनी अनुबंध के रूप में देखा जाता था, इसलिए परिवार अक्सर संसाधनों पर कब्जा जमाने की मानसिकता का प्रतीक बनकर रह गया।

संस्कार और मनुष्य-निर्माण

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का अत्यधिक महत्व है, और वे जीवन के प्रत्येक चरण में व्यक्ति को शुद्ध और सकारात्मक बनाने की प्रक्रिया को समझाते हैं। वेदों में "मनुर्भवा" का आदेश दिया गया है, जिसका अर्थ है कि हर व्यक्ति को श्रेष्ठ, धर्मशील और संस्कारित मनुष्य के रूप में जन्म लेना चाहिए। इस आदेश को साकार करने के लिए भारतीय मनीषियों ने संस्कारों का विधान किया, जो जीवन की प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति के आत्म-विकास और उसकी सामाजिक, धार्मिक जिम्मेदारियों को संतुलित करते हैं। संस्कारों की यह प्रणाली भारत की एक अद्वितीय विशेषता है, जो अन्य देशों या समाजों में नहीं पाई जाती।



https://blog.dharmikvibes.com

भारतीय संस्कारों की व्यवस्था में कुल 16 संस्कार माने गए हैं, जो

जीवन के विभिन्न चरणों में व्यक्ति के शुद्धिकरण और उसके चरित्र निर्माण के लिए अनिवार्य होते हैं। कुछ पुराने ग्रंथों में इन संस्कारों की संख्या 24 भी बताई गई है, लेकिन अधिकांश स्थानों पर 16 संस्कारों को ही माना जाता है। ये संस्कार व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक के प्रत्येक महत्वपूर्ण चरण को संस्कारित करने का कार्य करते हैं।

1. गर्भाधान (Garbhaadhaan)

गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य संतान की शुभ और स्वस्थ उत्पत्ति के लिए एक पवित्र वातावरण बनाना है। यह संस्कार संतान के जन्म से पहले किया जाता है, जब दंपति संतान उत्पत्ति की योजना बनाते हैं। यह संस्कार एक धार्मिक, मानसिक और शारीरिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। गर्भाधान के दौरान विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, जो शिशु के विकास के लिए शुभ होते हैं। संस्कार का यह उद्देश्य केवल संतान की उत्पत्ति नहीं, बल्कि उसका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास सुनिश्चित करना होता है। इसके द्वारा माता-पिता को यह समझाया जाता है कि वे केवल संतान के जन्म के जिम्मेदार नहीं होते, बल्कि उसका सही दिशा में पालन-पोषण करना भी उनका धर्म है। इस संस्कार का गहरा संबंध भारतीय दर्शन और धार्मिक विचारधारा से है, जहां जीवन की उत्पत्ति को ईश्वर की कृपा और उसकी योजना से जोड़कर देखा जाता है। इसे एक दिव्य प्रक्रिया माना जाता है, जो केवल शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक और आत्मिक शुद्धता की आवश्यकता भी बताता है। यह संस्कार संतान के जीवन में सकारात्मक बदलाव और ऊर्जावान शुरुआत की उम्मीदों को बल देता है।

2. पुंसवन (Pumsavan)

पुंसवन संस्कार का उद्देश्य गर्भस्थ शिशु के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखना है। यह संस्कार गर्भावस्था के दूसरे या तीसरे महीने में किया जाता है, जब गर्भ में पल रहे शिशु की शारीरिक संरचना और विकास की स्थिति स्थिर हो जाती है। इस संस्कार के दौरान महिला को विशेष आशीर्वाद और आहार पर ध्यान केंद्रित करने के लिए निर्देश दिए जाते हैं। इसके माध्यम से माता-पिता की भावना होती है कि वे शिशु के स्वास्थ्य के प्रति पूरी तरह जागरूक हैं और उसे अच्छे स्वास्थ्य की दिशा में प्रेरित करना चाहते हैं। इस संस्कार में विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है जो शिशु के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माने जाते हैं। इसके साथ-साथ यह संस्कार माता-पिता को यह समझाता है कि गर्भावस्था में महिला के मानसिक और

शारीरिक स्वास्थ्य का सीधा असर शिशु पर पड़ता है। यह संस्कार पारिवारिक जीवन में एक सकारात्मक ऊर्जा का संचार करता है, जिससे परिवार में प्रेम और सहयोग बढ़ता है। इसके द्वारा संतान की उत्पत्ति को लेकर उम्मीद और विश्वास भी बढ़ता है।

3. सीमंतोन्नयन (Seemantonayan)

सीमंतोन्नयन संस्कार गर्भवती महिला के लिए एक महत्वपूर्ण धार्मिक और शारीरिक संस्कार होता है। यह संस्कार गर्भावस्था के अंतिम चरणों में किया जाता है, जब महिला की शारीरिक और मानसिक स्थिति में परिवर्तन होता है। यह संस्कार महिला के स्वास्थ्य और गर्भस्थ शिशु की सुरक्षा के लिए किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य शिशु के लिए एक सुरक्षित और आरामदायक वातावरण सुनिश्चित करना है। सीमंतोन्नयन संस्कार के दौरान विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है और महिला को आशीर्वाद दिया जाता है। इसके माध्यम से शिशु की सुरक्षा, स्वास्थ्य और मानसिक शांति की कामना की जाती है। इस संस्कार में महिला को विशेष रूप से पवित्रता और मानसिक शांति की आवश्यकता होती है, ताकि शिशु का मानसिक और शारीरिक विकास सही तरीके से हो सके। यह संस्कार भारतीय संस्कृति में महिलाओं के लिए एक सम्मानजनक और पवित्र स्थान को सुनिश्चित करता है और उसे मातृत्व के प्रति जिम्मेदार बना देता है। साथ ही, यह संस्कार पारिवारिक जीवन में संतान के लिए शुभकामनाओं और आशीर्वाद का प्रतीक होता है।

4. जातकर्म (Jatakarma)

जातकर्म संस्कार शिशु के जन्म के बाद किया जाता है, जिसमें शिशु का स्वागत और उसका शुद्धिकरण किया जाता है। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य शिशु के जीवन में पहली बार धार्मिक और सामाजिक रूप से प्रवेश करना होता है। इसे शिशु की जीवन यात्रा की शुरुआत के रूप में माना जाता है। जातकर्म संस्कार के दौरान शिशु का मुंह एक विशेष पदार्थ से छुआ जाता है, और उसे जीवन के महत्व के बारे में बताया जाता है। यह संस्कार शिशु को उसके परिवार और समाज से जोड़ने का कार्य करता है। इसमें माता-पिता और परिवार के सदस्य शिशु के जीवन में शुभकामनाओं और आशीर्वाद का समर्पण करते हैं। यह संस्कार शिशु के शरीर की शुद्धि के लिए होता है और उसे पूरी तरह से धार्मिक, सामाजिक और शारीरिक दृष्टिकोण से पवित्र करता है। जातकर्म के दौरान परिवार के सदस्य और रिश्तेदार शिशु के जन्म पर खुशी और प्रेम व्यक्त करते हैं। इसके माध्यम से



शिशु को एक समाजिक पहचान मिलती है और उसकी शुरुआत धार्मिक दृष्टिकोण से होती है।

5. निष्क्रमण (Nishkraman)

निष्क्रमण संस्कार तब किया जाता है जब शिशु को घर से बाहर ले जाया जाता है। यह संस्कार शिशु को पहली बार बाहरी वातावरण से परिचित कराता है। यह संस्कार विशेष रूप से शिशु के जीवन में एक नए अनुभव की शुरुआत का प्रतीक होता है, जहां वह बाहर की दुनिया से मिलने के लिए तैयार होता है। निष्क्रमण संस्कार में शिशु को शुद्ध और पवित्र वातावरण में लाया जाता है, ताकि उसकी शारीरिक और मानसिक शुद्धता बनी रहे। इस संस्कार का उद्देश्य शिशु को प्रकृति से जोड़ना है और उसे स्वस्थ वातावरण में पलने का अवसर देना है। यह संस्कार शिशु की सुरक्षा और दीर्घायु की कामना करता है। निष्क्रमण संस्कार में शिशु को ताजगी और सुखद अनुभवों के साथ बाहरी दुनिया का पहला परिचय मिलता है। इस संस्कार के द्वारा परिवार और समाज शिशु को जीवन की वास्तविकता से जोड़ते हैं, ताकि वह भविष्य में अच्छे कार्यों की ओर बढ़े। यह संस्कार शिशु के जीवन में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर होता है।

6. नामकरण (Namkaran)

नामकरण संस्कार शिशु के जीवन का एक महत्वपूर्ण और पवित्र संस्कार होता है, जिसमें उसे एक शुभ और उत्तम नाम दिया जाता है। नामकरण संस्कार का उद्देश्य शिशु को एक पहचान देना होता है, ताकि वह समाज में अपने अस्तित्व का एहसास कर सके। इस संस्कार में माता-पिता शिशु के लिए एक ऐसा नाम चुनते हैं, जो उसकी क़िस्मत, पवित्रता और भविष्य को दर्शाता हो। नामकरण संस्कार आमतौर पर शिशु के जन्म के पहले महीने में किया जाता है। इसमें परिवार और रिश्तेदार शिशु के नाम के चयन में भाग लेते हैं। यह संस्कार शिशु के जीवन में एक नई शुरुआत और एक जिम्मेदारी का प्रतीक होता है। नामकरण के दौरान विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, जो शिशु के भविष्य के लिए शुभ और साकारात्मक होते हैं। इस संस्कार से शिशु को धर्म, संस्कृति और समाज के प्रति जिम्मेदारी का बोध होता है। साथ ही, यह संस्कार उसे अपने परिवार और समाज के प्रति निष्ठा और समर्पण की भावना देता है।

7. अन्नप्राशन (Annaprashan)

अन्नप्राशन संस्कार शिशु के जीवन का एक महत्वपूर्ण संस्कार होता है, जिसमें शिशु को पहली बार ठोस आहार दिया जाता है। यह संस्कार शिशु के जीवन के एक नए चरण की शुरुआत का प्रतीक होता है, जब वह केवल दूध के बजाय अन्य आहार को ग्रहण करना शुरू करता है। अन्नप्राशन संस्कार आमतौर पर शिशु के छह महीने की उम्र के आस-पास किया जाता है। इस संस्कार का उद्देश्य शिशु के शारीरिक विकास को प्रोत्साहित करना और उसे ठोस आहार से परिचित कराना होता है। इसे शिशु की जीवन शक्ति और ऊर्जा को बढ़ाने के रूप में देखा जाता है। इस संस्कार के दौरान शिशु को खीर, चिउड़े या किसी हल्के आहार का पहला कौर दिया जाता है। परिवार और समाज शिशु को आशीर्वाद और शुभकामनाएँ देते हैं ताकि वह अच्छे स्वास्थ्य के साथ जीवन जी सके। अन्नप्राशन संस्कार से शिशु के जीवन में खुशी और समृद्धि का माहौल बनता है, और यह संस्कार परिवार के अन्य सदस्य के साथ जुड़ाव को भी बढ़ाता है।

8. चूड़ाकर्म (Chudakarma)

चूड़ाकर्म संस्कार शिशु के जीवन का एक महत्वपूर्ण और पारंपरिक संस्कार होता है, जिसमें शिशु के सिर के बालों को पहली बार कटवाया जाता है। इसे 'मुंडन' भी कहा जाता है। यह संस्कार शिशु के जीवन में शुद्धि और नए जीवन की शुरुआत का प्रतीक होता है। चूड़ाकर्म संस्कार आमतौर पर शिशु के पहले वर्ष में किया जाता है। इस संस्कार के दौरान शिशु के सिर के बालों को धार्मिक तरीके से काटा जाता है, और इसके साथ ही परिवार और समाज की शुभकामनाएँ शिशु को दी जाती हैं। यह संस्कार शिशु की शारीरिक शुद्धता को दर्शाता है और उसे सकारात्मक ऊर्जा का आशीर्वाद प्रदान करता है। चूड़ाकर्म संस्कार को भारतीय संस्कृति में बहुत शुभ और पुण्यकारी माना जाता है। इसे शिशु के जीवन में नई ऊर्जा, स्वास्थ्य और समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। यह संस्कार शिशु के लिए एक नए जीवन की शुरुआत और उसके जीवन की सफलता का प्रतीक बनता है।

9. कर्णवेध (Karnavedh)

कर्णवेध संस्कार में शिशु के कान छिदवाए जाते हैं, जो विशेष रूप से लड़कियों के लिए किया जाता है। यह संस्कार आमतौर पर शिशु के छह महीने या उससे अधिक की उम्र में

किया जाता है। कर्णवेध संस्कार का उद्देश्य शिशु के शरीर को शुद्ध और सजाने का होता है। इसे सौंदर्य, धार्मिकता और सामाजिक जिम्मेदारी से जोड़ा जाता है। कान छिदवाने से न केवल शिशु के शारीरिक रूप में एक सुंदरता आती है, बल्कि यह एक धार्मिक कार्य भी माना जाता है, क्योंकि इससे शिशु को भगवान की कृपा प्राप्त होती है। यह संस्कार शिशु को समाज में पहचान दिलाने का कार्य करता है और उसे सामाजिक और धार्मिक समुदाय का हिस्सा बनाने में मदद करता है। इस संस्कार में विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, और शिशु के कानों में धागा या झुमका पहनाया जाता है। कर्णवेध संस्कार को धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसे संतान के लिए शुभ और आशीर्वादपूर्ण माना जाता है।

10. उपनयन (Upanayan)

उपनयन संस्कार भारतीय संस्कृति में अत्यधिक महत्व रखता है, और इसे 'जनेऊ संस्कार' भी कहा जाता है। यह संस्कार विशेष रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग के लड़कों के लिए होता है। उपनयन संस्कार का उद्देश्य बालक को शिक्षा और धार्मिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक करना है। इसे आमतौर पर 7 से 16 वर्ष की आयु में किया जाता है। इस संस्कार में बालक को गुरु के पास भेजने से पहले जनेऊ पहनाया जाता है, जो उसकी धार्मिक जिम्मेदारियों का प्रतीक होता है। यह संस्कार बालक के जीवन के महत्वपूर्ण मोड़ को दर्शाता है, जब वह शारीरिक और मानसिक रूप से शिक्षित होने के लिए तैयार होता है। उपनयन संस्कार को ज्ञान की शुरुआत और बालक के जीवन में आध्यात्मिक यात्रा की शुरुआत के रूप में देखा जाता है। यह संस्कार शिक्षा, संस्कार और धर्म के प्रति बालक को जागरूक करता है और उसे अपनी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए प्रेरित करता है।

11. वेदारंभ (Vedarambh)

वेदारंभ संस्कार उपनयन संस्कार के बाद किया जाता है और इसका उद्देश्य बालक को वेदों और धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन शुरू करने के लिए प्रेरित करना है। यह संस्कार शिक्षार्थी जीवन की शुरुआत को दर्शाता है, जिसमें बालक को गुरु से धर्म, वेद और शास्त्रों का अध्ययन करना सिखाया जाता है। वेदों का अध्ययन भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च धार्मिक कर्तव्य माना जाता है। वेदारंभ संस्कार का मुख्य उद्देश्य बालक के जीवन में धर्म का महत्व स्थापित करना और उसे धर्म, संस्कृति और संस्कारों से जोड़ना है। इस संस्कार में विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, जो बालक के जीवन में ज्ञान और

सफलता लाने के लिए होते हैं। वेदारंभ संस्कार में बालक को उपनयन संस्कार के बाद पहले शास्त्रों का अध्ययन आरंभ करने के लिए प्रेरित किया जाता है, ताकि वह जीवन में सफलता प्राप्त कर सके और समाज में अपने कर्तव्यों को ठीक से निभा सके। यह संस्कार बालक को सही मार्ग पर चलने और उच्च आदर्शों को अपनाने के लिए प्रेरित करता है।

12. समावर्तन (Samavartan)

समावर्तन संस्कार का उद्देश्य बालक को घर लौटने और गृहस्थ जीवन में लौटने के लिए प्रेरित करना होता है। यह संस्कार तब किया जाता है जब बालक अपनी शिक्षा पूरी कर लेता है। यह संस्कार शिक्षा के समापन का प्रतीक होता है और यह जीवन के एक नए चरण की शुरुआत को दर्शाता है। समावर्तन संस्कार में बालक अपने गुरु और शिक्षा से विदाई लेता है और फिर गृहस्थ जीवन की ओर लौटता है। यह संस्कार पारंपरिक रूप से शिक्षा की समाप्ति और जीवन के कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का प्रतीक है। समावर्तन संस्कार के दौरान बालक को विशेष आशीर्वाद और अच्छे कार्यों की प्रेरणा दी जाती है, ताकि वह अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सके और अपने समाज में आदर्श नागरिक बने। यह संस्कार शिक्षा और जीवन की सही दिशा के बीच संबंध को स्पष्ट करता है और व्यक्ति को अपने धर्म, संस्कार और कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

13. विवाह (Vivah)

विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण संस्कार है, जो जीवन के सबसे महत्वपूर्ण और पवित्र कर्तव्यों में से एक माना जाता है। विवाह दो व्यक्तियों के बीच एक धार्मिक और सामाजिक बंधन की शुरुआत होती है, जिसमें वे एक-दूसरे के साथ अपना जीवन व्यतीत करने का संकल्प लेते हैं। यह संस्कार केवल शारीरिक संबंधों का प्रारंभ नहीं होता, बल्कि यह दो व्यक्तियों के जीवन को एक-दूसरे से जोड़ता है और उन्हें समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को समझने और निभाने के लिए प्रेरित करता है। विवाह संस्कार में दोनों पक्षों के परिवार, रिश्तेदार और समाज के लोग एकत्रित होते हैं, और इस आयोजन के दौरान विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं। विवाह संस्कार को भारतीय संस्कृति में बहुत पवित्र माना जाता है, क्योंकि इसे जीवन के उद्देश्य, कर्तव्यों और समाज के प्रति जिम्मेदारियों का प्रतिबिंब माना जाता है। विवाह से व्यक्ति को प्रेम, समर्पण और समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की शिक्षा मिलती है।

14. वानप्रस्थ (Vanaprastha)

वानप्रस्थ संस्कार व्यक्ति के जीवन का एक अहम मोड़ होता है, जब वह गृहस्थ जीवन से निवृत्त होकर तपस्वी और धार्मिक जीवन की ओर बढ़ता है। यह संस्कार व्यक्ति के तीसरे जीवन चरण की शुरुआत का प्रतीक होता है, जब वह अपने परिवार और सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर ध्यान और साधना की ओर अग्रसर होता है। वानप्रस्थ संस्कार में व्यक्ति अपने गृहस्थ कर्तव्यों से संन्यास लेकर मानसिक शांति और आत्मा की शुद्धि के लिए वन में जाता है। इसे आत्मा के शुद्धिकरण और जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का कदम माना जाता है। इस संस्कार के माध्यम से व्यक्ति संसारिकता से ऊपर उठता है और अपने अंतिम लक्ष्य, मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। वानप्रस्थ संस्कार व्यक्ति को अपने जीवन के उद्देश्य और कर्तव्यों पर पुनर्विचार करने का अवसर देता है, ताकि वह आत्म-साक्षात्कार और वास्तविक शांति की प्राप्ति कर सके। यह संस्कार जीवन के ज्ञान और अंतिम मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

15. संन्यास (Sannyas)

संन्यास संस्कार जीवन के अंतिम चरण का प्रतीक होता है, जब व्यक्ति अपने सांसारिक बंधनों से पूरी तरह मुक्त होकर केवल आत्मा की शांति और मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। संन्यास संस्कार के दौरान व्यक्ति सभी सांसारिक इच्छाओं और भोगों से निवृत्त होकर एक तपस्वी जीवन जीने का संकल्प लेता है। यह संस्कार व्यक्ति के जीवन के उद्देश्य की गहरी समझ का परिणाम होता है। संन्यास संस्कार को भारतीय संस्कृति में जीवन की अंतिम यात्रा के रूप में देखा जाता है, जहां व्यक्ति केवल आत्मा की शांति और परमात्मा के साथ एकता की प्राप्ति के लिए ध्यान और साधना करता है। इस संस्कार के द्वारा व्यक्ति अपने शरीर, मन और आत्मा को शुद्ध करने की दिशा में कदम बढ़ाता है। संन्यास संस्कार को आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष की ओर एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में माना जाता है, जहां व्यक्ति संसार की सभी बंधनाओं से मुक्त हो जाता है।

16. अन्त्येष्टि (Antyeshti)

अन्त्येष्टि संस्कार मृत्यु के बाद किया जाता है, जिसमें व्यक्ति के शरीर का अंतिम संस्कार किया जाता है। यह संस्कार मृत्यु के बाद की प्रक्रिया का हिस्सा होता है, और इसका उद्देश्य व्यक्ति की आत्मा को शांति देना और उसे अगले जन्म की यात्रा के लिए तैयार

करना होता है। अन्त्येष्टि संस्कार के दौरान मृतक के शरीर को धोकर उसे पवित्र किया जाता है और फिर उसे अग्नि में समर्पित किया जाता है। इस संस्कार में मृतक के परिवार और रिश्तेदार उसे श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करते हैं। यह संस्कार जीवन के अंत और अगले जीवन के शुरू होने का प्रतीक होता है। अन्त्येष्टि संस्कार को भारतीय संस्कृति में एक महत्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है, जो व्यक्ति के जीवन के अंतिम यात्रा का हिस्सा होता है। इसके माध्यम से व्यक्ति को शांति और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

लोक और वर्ण व्यवस्था: भारतीय समाज की परंपरागत संरचना

भारतीय समाज की सामाजिक संरचना प्राचीन काल से ही विविधताओं और जटिलताओं से भरी रही है। भारतीय समाज में समाजिक समानता, जिम्मेदारियाँ और अधिकारों का वितरण बहुत व्यवस्थित था, जिसका आधार था **वर्ण व्यवस्था** और **लोक व्यवस्था**। ये दोनों व्यवस्थाएँ भारतीय समाज के विकास और उसकी संस्कृति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

1. वर्ण व्यवस्था (Varna Vyavastha)

प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था को समाज के संगठन के लिए एक समरस और कार्यक्षम ढाँचे के रूप में कल्पित किया गया था। यह वेदों की परंपरा में निहित थी और अपने मूल स्वरूप में जन्म या वंश पर आधारित नहीं थी, बल्कि **गुण** (स्वभाविक गुणों), **कर्म** (किये गए कार्यों) और **स्वभाव** (प्राकृतिक प्रवृत्ति) पर आधारित थी। जब इसे अपने इसी मूल संदर्भ में समझा जाता है, तो यह व्यवस्था एक संतुलित समाज की रचना का उद्देश्य रखती थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका समाज के सामूहिक कल्याण में सार्थक योगदान देने वाली होती थी। इस व्यवस्था के अनुसार समाज को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया था– **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य** और **शूद्र**।

ब्राह्मण (Brahman): ब्राह्मण समाज का सबसे उच्च वर्ग था। उनका मुख्य कार्य धर्म, शिक्षा और ज्ञान की प्राप्ति और प्रसार था। वे वेदों के ज्ञाता होते थे और समाज में धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ और पूजा-पाठ का आयोजन करते थे। ब्राह्मणों को समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और वे सामाजिक और धार्मिक निर्णय लेने में प्रमुख भूमिका निभाते थे।

क्षत्रिय (Kshatriya): क्षत्रिय वर्ग समाज के शासक और योद्धा थे। उनका मुख्य कार्य रक्षा करना, राज्य का शासन चलाना और युद्धों में भाग लेना था। वे शासन व्यवस्था और समाज की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार थे। वे युद्ध में कुशल और शासकीय कार्यों में माहिर होते थे। इस वर्ग में राजा और सेनापति आते थे, जो समाज की भलाई के लिए लड़ाई करते थे और न्याय व्यवस्था की स्थापना करते थे।



वैश्य (Vaishya): वैश्य वर्ग समाज के व्यापारी, कृषक और उद्योगपति होते थे। उनका कार्य कृषि, व्यापार, व्यवसाय और धन संचय था। वे आर्थिक गतिविधियों में शामिल होते थे और समाज के लिए धन का संचार करते थे। वैश्य वर्ग ने कृषि, उद्योग और व्यापार को प्रोत्साहित किया और समाज की आर्थिक स्थिति को मजबूत किया।

शूद्र (Shudra): उन्होंने कुशल श्रम, शिल्पकला और सहायक सेवाओं के माध्यम से सेवा प्रदान की। ये सामान्यतः शारीरिक श्रम से जुड़े कार्यों में संलग्न रहते थे, जैसे — कृषि, निर्माण कार्य, वस्त्र निर्माण और घरेलू सेवा।

वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य

वर्ण व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य था कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्राकृतिक प्रवृत्तियों और योग्यताओं के अनुसार अपना कार्य करे और समाज के विकास में योगदान दे।

इसका आदर्श था कि प्रत्येक वर्ग अपने कर्तव्यों को निभाते हुए समाज के हित में काम करता है। हालांकि, समय के साथ यह व्यवस्था जटिल और कठोर हो गई, जिससे कई सामाजिक असमानताएँ और असंतोष उत्पन्न हुए।

2. लोक व्यवस्था (Lok Vyavastha)

लोक व्यवस्था भारतीय समाज में एक ऐसी प्रणाली थी, जिसमें समाज के विभिन्न पहलुओं को समानता, न्याय और सामूहिक कल्याण के सिद्धांत पर आधारित किया गया था। लोक व्यवस्था का संबंध समाज के सामान्य लोगों से था, जिनका कार्य परंपरागत समाज संरचना के अनुसार था।

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था

प्राचीन भारत ने मानव इतिहास में सबसे व्यापक और नैतिक न्याय प्रणालियों में से एक का विकास किया। आधुनिक अदालतों और लिखित कानूनों के अस्तित्व में आने से बहुत पहले ही भारतीय विचारकों और शासकों ने एक ऐसी न्यायिक व्यवस्था की रचना कर ली थी, जिसकी जड़ें **धर्म** में थीं—एक ऐसा सिद्धांत जो क़ानून, नैतिकता, कर्तव्य और धर्म को एक सूत्र में पिरोता था। यह प्रणाली केवल दंड देने का माध्यम नहीं थी, बल्कि यह एक ऐसा मार्गदर्शक थी, जो व्यक्ति और समाज के जीवन में संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती थी।

प्राचीन भारत में न्याय का आधार **धर्म** था। आज के जैसे कठोर और स्थायी कानूनों की जगह धर्म ने जीवन में उचित आचरण और नैतिकता को महत्त्व दिया। यह नियम स्थिर नहीं थे, बल्कि व्यक्ति की उम्र, व्यवसाय, सामाजिक स्थिति और परिस्थिति के अनुसार बदलते थे। धर्म का पालन केवल आम नागरिकों से ही नहीं, बल्कि राजा, न्यायाधीश और आध्यात्मिक गुरुओं से भी अपेक्षित था।

प्राचीन भारतीय कानून के स्रोत

आधुनिक काल की तरह प्राचीन भारतीय कानून किसी विधान सभा द्वारा बनाए गए नहीं थे। इसके बजाय, न्याय व्यवस्था चार प्रमुख स्रोतों पर आधारित थी:

- **श्रुति** – वेद जैसे पवित्र ग्रंथ, जिन्हें दिव्य ज्ञान माना जाता था और जो सर्वोच्च अधिकार रखते थे।
- **स्मृति** – मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति जैसे ग्रंथ, जिनमें नागरिक, आपराधिक और पारिवारिक मामलों से संबंधित विस्तृत नियम दिए गए थे।

- **आचार (परंपरा)** – समाज में प्रचलित परंपराएँ और रीति-रिवाज़, जो लंबे समय से स्वीकार्य रहे थे।
- **राजाज्ञा (राजनीति)** – जिन मामलों में शास्त्र स्पष्ट मार्गदर्शन नहीं देते थे, वहाँ राजा को आवश्यकता और न्याय के आधार पर निर्णय लेने का अधिकार था।

इन ग्रंथीय, पारंपरिक और व्यवहारिक स्रोतों के संतुलन ने न्याय व्यवस्था को समय के साथ-साथ विकसित होने की क्षमता दी।

न्याय प्रणाली की संरचना

प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था को कई स्तरों पर संगठित किया गया था–

A. राजदरबार (राजा की अदालत)

राजा को न्याय का मुख्य रक्षक माना जाता था। उसे विद्वानों, मंत्रियों और धर्मगुरुओं की सलाह मिलती थी। गंभीर और राजनीतिक मामलों में स्वयं राजा न्यायाधीश की भूमिका निभाता था, लेकिन उससे अपेक्षा की जाती थी कि वह व्यक्तिगत भावनाओं के स्थान पर धर्म के अनुसार निर्णय ले।

B. ग्राम और स्थानीय अदालतें

अधिकांश विवाद स्थानीय स्तर पर निपटाए जाते थे। गाँवों में **पंचायतें** होती थीं, जो बुज़ुर्गों की परिषद के रूप में कार्य करती थीं और गाँववासियों के बीच विवाद सुलझाती थीं। इसी तरह व्यापारी संघ (श्रेणियाँ) और अन्य व्यवसायिक समूहों की भी अपनी आंतरिक न्याय प्रणाली होती थी।

C. नियुक्त न्यायाधीश

बड़े नगरों या मौर्य और गुप्त जैसे राजवंशों के शासनकाल में राजा **धर्माधिकरण** या **व्यवहारपति** जैसे न्यायाधीश नियुक्त करता था। ये न्यायाधीश धार्मिक ग्रंथों के ज्ञाता और ईमानदार माने जाते थे।

न्यायिक प्रक्रिया

प्राचीन भारतीय न्याय प्रक्रिया निष्पक्ष, गहन और नैतिक रूप से उचित मानी जाती थी। प्रमुख प्रक्रियाएँ निम्न थीं:

- **शिकायत दर्ज करना** – मुक़दमे की शुरुआत वादी द्वारा एक औपचारिक बयान देने से होती थी।

- **उत्तर देना (प्रतिवादी का पक्ष)** – आरोपी को अपना पक्ष रखने का पूरा अधिकार होता था।
- **साक्ष्य और गवाह (साक्षी)** – गवाहों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती थी। झूठे गवाह को कड़ा दंड दिया जाता था।
- **शपथ और अग्नि परीक्षा** – यदि ठोस साक्ष्य उपलब्ध न हो तो अभियुक्त से शपथ ली जाती थी या अग्निपरीक्षा जैसे उपाय अपनाए जाते थे।
- **विचारणा (न्यायिक जांच)** – न्यायाधीश तथ्य परखते, दोनों पक्षों से प्रश्न करते और शास्त्रों का परामर्श लेकर निर्णय लेते थे।

दंड की प्रकृति

दंड का उद्देश्य केवल कष्ट देना नहीं, बल्कि समाज में संतुलन को पुनर्स्थापित करना था। दंड के प्रकार थे:

- **जुर्माना (दंड)** – नागरिक मामलों और छोटे अपराधों के लिए सामान्य दंड।
- **क्षतिपूर्ति (प्रतिपूर्ति)** – अपराधी को हुए नुकसान की भरपाई करनी होती थी।
- **निर्वासन या सामाजिक बहिष्कार** – गंभीर नैतिक अपराधों के मामलों में उपयोग किया जाता था।
- **शारीरिक दंड** – यह दुर्लभ था और आमतौर पर प्रतीकात्मक रूप में होता था।

दंड तय करते समय अपराध की भावना और पीड़ित व अपराधी की सामाजिक स्थिति का ध्यान रखा जाता था।

प्राचीन भारत की न्यायिक परंपराएँ आगे चलकर मौर्य, गुप्त और अन्य राजवंशों में विकसित हुईं। सम्राट **अशोक** जैसे शासकों ने न्याय और करुणा के सिद्धांतों को अपने शिलालेखों के माध्यम से प्रचारित किया। मुगल और ब्रिटिश काल में भी गाँव स्तर पर पंचायतों और परंपराओं की भूमिका बनी रही। आज का **पंचायती राज तंत्र** उसी प्राचीन लोक-न्याय प्रणाली की आधुनिक प्रतिध्वनि है। प्राचीन भारत की न्यायिक प्रणाली केवल क़ानूनों और दंडों का समूह नहीं थी, बल्कि यह एक **जीवनशैली** थी, जो नैतिकता, कर्तव्य और सामाजिक समरसता पर आधारित थी। इसका उद्देश्य केवल अपराधों की सज़ा देना नहीं, बल्कि समाज में सत्य, न्याय और करुणा के माध्यम से संतुलन बनाए रखना था। आज की आधुनिक अदालतें और क़ानून व्यवस्था उससे भिन्न हैं, फिर भी प्राचीन भारत की यह परंपरा न्याय को एक **पवित्र कर्तव्य** और सामाजिक कल्याण का माध्यम मानने की प्रेरणा देती है।

- **राजा का स्थान और कार्य:** राजा लोक व्यवस्था का सबसे बड़ा प्रतीक था। राजा को धर्म का पालन करने वाला, न्यायप्रिय और प्रजाजन की भलाई में निष्ठावान माना जाता था। वह अपने राज्य के शासक होने के नाते अपने प्रजाओं की सुरक्षा, कल्याण और समृद्धि के लिए कार्य करता था। राजा का कर्तव्य था कि वह समाज में किसी भी प्रकार के अन्याय को समाप्त करे और धर्म की रक्षा करे।
- **व्यक्तिगत कर्तव्यों का पालन:** लोक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी गई थी। यह व्यवस्था बहुत ही आदर्शवादी थी, जो प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षाएँ करती थी कि वह अपने कार्यों से समाज के कल्याण में योगदान दे। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्यों का चयन अपनी योग्यताओं और जन्म के आधार पर करना होता था, ताकि वह समाज में सबसे अच्छा कार्य कर सके।
- **लोक और राज्य का संबंध:** लोक व्यवस्था और राज्य की व्यवस्था के बीच एक गहरा संबंध था। प्राचीन भारत में राज्य की स्थिरता और न्याय का पालन करने के लिए लोक व्यवस्था महत्वपूर्ण थी। समाज की कई समस्याओं का हल राज्य और लोक के सहयोग से ही संभव था। उदाहरण के लिए, एक राजा को अपने राज्य में शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए लोक से सहमति प्राप्त करनी होती थी, और लोक को भी यह अपेक्षित था कि वह राजा के आदेशों का पालन करें।

3. वर्ण और लोक व्यवस्था का संबंध

वर्ण व्यवस्था और लोक व्यवस्था दोनों का ही उद्देश्य समाज के प्रत्येक सदस्य को उसकी भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करना था। इन दोनों व्यवस्थाओं में एक सामूहिक दृष्टिकोण था, जिसमें हर व्यक्ति का कार्य समाज की भलाई के लिए था। हालांकि, समय के साथ वर्ण व्यवस्था में असमानता और जातिवाद के तत्व विकसित हुए, जिससे समाज में विभाजन और असंतोष बढ़ा।

वर्ण व्यवस्था के तहत, लोग अपनी जन्मजात स्थिति के अनुसार कार्य करते थे, जबकि लोक व्यवस्था समाज में सामूहिक कार्यों और कर्तव्यों के पालन पर आधारित थी। इस प्रकार, दोनों व्यवस्थाएँ समाज के संगठन और संरचना को बनाने के लिए थी, परंतु इन्हें समय के साथ आलोचनाएँ भी मिलीं, खासकर जब जातिवाद और असमानता ने समाज में गहरी जड़ें जमा लीं।

4. समाज में बदलाव और वर्तमान परिपेक्ष्य

समाज में वर्ण और लोक व्यवस्था के सिद्धांत समय के साथ बदलावों का शिकार हुए। विभिन्न सामाजिक सुधारकों ने इन व्यवस्था की आलोचना की और समानता और सामाजिक न्याय की वकालत की। महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे नेताओं ने समाज में समता लाने के लिए विशेष प्रयास किए। वर्तमान में भारतीय संविधान ने जातिवाद और वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कई प्रावधान किए हैं, जिससे समाज में समानता और न्याय सुनिश्चित हो सके। हालाँकि, वर्ण व्यवस्था का प्रभाव आज भी कुछ हद तक भारतीय समाज में देखने को मिलता है, परंतु समय के साथ बदलाव आया है और लोग अब एक समान समाज की दिशा में काम कर रहे हैं।

5. वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था के बीच अंतर

वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण अंतर हैं, जिनके कारण दोनों की संरचना और प्रभाव अलग-अलग होते हैं:

सिद्धांत बनाम व्यवहार

- वर्ण व्यवस्था एक आदर्श सिद्धांत था, जो वेदों और धार्मिक ग्रंथों में वर्णित था। यह समाज को चार वर्गों में बांटने का एक विचार था, जो जीवन के उद्देश्य और कार्यों के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए था।
- जाति व्यवस्था एक व्यावहारिक और जन्म आधारित व्यवस्था थी, जो समय के साथ समाज में घुल-मिल गई और जटिल हो गई। जातियाँ केवल कार्यों तक सीमित नहीं थीं, बल्कि जाति के आधार पर विवाह, खानपान और सामाजिक संबंधों पर भी कड़े प्रतिबंध थे।

पारदर्शिता

- वर्ण व्यवस्था में चार वर्ग स्पष्ट थे (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र), जिनके कर्तव्य और कार्य विभाजित थे। हालांकि, यह आदर्श सिद्धांत था, इसका समय के साथ पालन और व्यावहारिकता में भिन्नता आई।
- जाति व्यवस्था अधिक जटिल और अस्पष्ट थी। इसमें कई उप-जातियाँ (जैसे ब्राह्मणों के भीतर विभिन्न उपजातियाँ, शूद्रों के भीतर भी कई जातियाँ) थीं और इनकी पहचान और स्थान विशेष स्थानों और समुदायों में भिन्न होते थे। जातियों

के बीच रिश्ते और भेदभाव कठोर थे, और यह व्यवस्था आम जनता के लिए कठिन थी।

अंतरगत असमानता

- **वर्ण व्यवस्था** का उद्देश्य कार्यों का विभाजन करना था और समाज में सामूहिक रूप से धर्म और कर्तव्यों के पालन के लिए था। इसमें उच्च और निम्न वर्ग के बीच कोई स्पष्ट असमानता नहीं थी।
- **जाति व्यवस्था** में जन्म आधारित भेदभाव था और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच असमानता और भेदभाव था। उच्च जातियों को अधिक अधिकार, सम्मान और सुख-सुविधाएँ मिलती थीं, जबकि निम्न जातियों को कई प्रतिबंधों और कष्टों का सामना करना पड़ता था।

7. समाज में जाति और वर्ण व्यवस्था का प्रभाव

वर्ण व्यवस्था और **जाति व्यवस्था** ने भारतीय समाज में लंबे समय तक अपने प्रभाव को बनाए रखा। यह व्यवस्था कई बार सामाजिक असमानता और भेदभाव को जन्म देती रही। हालांकि, **महात्मा गांधी** और **डॉ. भीमराव अंबेडकर** जैसे महान नेताओं ने इन दोनों व्यवस्थाओं की आलोचना की और समाज में समानता की दिशा में कई कदम उठाए।

आज, **भारतीय संविधान** ने जातिवाद और वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया है, और भारतीय समाज में समानता और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए कई विधिक प्रावधान किए गए हैं। तथापि, जाति व्यवस्था का प्रभाव कुछ हद तक अभी भी भारतीय समाज में देखा जाता है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

लोक-राष्ट्र का सिद्धांत प्राचीन भारत में

प्राचीन भारतीय समाज में लोक-राष्ट्र की अवधारणा एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, जो समाज की सामूहिक भलाई, समानता और जनहित पर आधारित थी। यह सिद्धांत भारतीय राजनीति और समाज के बीच गहरे रिश्ते को दर्शाता था, जहां शासन और सत्ता का मुख्य स्रोत जनता (लोक) होती थी। प्राचीन भारतीय चिंतन में यह माना जाता था कि राष्ट्र की शक्ति और समृद्धि जनता के कल्याण और उनकी सहभागिता पर निर्भर करती

है। लोक-राष्ट्र का सिद्धांत केवल शासन की व्यवस्था से संबंधित नहीं था, बल्कि यह सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी जुड़ा हुआ था। इसमें यह विचार किया गया कि प्रत्येक व्यक्ति का धर्म और कर्तव्य समाज और राष्ट्र की समृद्धि में योगदान देने के लिए होना चाहिए।

प्राचीन भारत में "लोक" का अर्थ सिर्फ जनसमूह से नहीं था, बल्कि यह समाज के धर्म, नैतिकता और संस्कृति के बोध को भी व्यक्त करता था। लोक-राष्ट्र के सिद्धांत के अनुसार, समाज का प्रत्येक सदस्य अपने धार्मिक और सामाजिक कर्तव्यों को निभाते हुए राष्ट्र के कल्याण में भागीदार बनता था। समाज का सही संचालन और कल्याण तभी संभव था जब हर व्यक्ति अपने धर्म का पालन करता हो और समाज की हर क्रिया से जुड़ा होता हो। वेदों, उपनिषदों और शास्त्रों में यह स्पष्ट किया गया है कि आदर्श समाज का निर्माण केवल तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करे और समाज के अन्य सदस्यों के साथ सामूहिक रूप से अच्छे कार्य करे। यह सामूहिकता और साझेदारी ही लोक-राष्ट्र की परिभाषा का एक प्रमुख पहलू था।

राजनीतिक दृष्टिकोण से लोक-राष्ट्र का सिद्धांत शासक की भूमिका पर भी प्रकाश डालता है। इस सिद्धांत के अनुसार शासक या राजा की सत्ता जनता से ही प्राप्त होती थी और वह अपने प्रजा के कल्याण के लिए जिम्मेदार था। राजा को लोक का प्रतिनिधि माना जाता था और उसे यह जिम्मेदारी दी जाती थी कि वह राज्य में न्याय, समानता और धर्म का पालन करे। अगर शासक अपने कर्तव्यों में विफल होता, तो उसे प्रजा द्वारा उत्तरदायी ठहराया जा सकता था। प्राचीन भारतीय राजनीति में लोक-राष्ट्र का यह सिद्धांत राजा और प्रजा के बीच एक प्रकार का समझौता था, जिसमें राजा अपने शासन के माध्यम से जनकल्याण सुनिश्चित करने का दायित्व निभाता था।

लोक-राष्ट्र का सिद्धांत प्राचीन भारतीय समाज में न्याय और समानता पर भी आधारित था। इसमें समाज के प्रत्येक वर्ग को समान अधिकार प्राप्त थे, और कोई भी व्यक्ति अपने जन्म, जाति या स्थिति के आधार पर भेदभाव का शिकार नहीं होता था। राजा का कर्तव्य था कि वह अपने राज्य में समानता बनाए रखे और समाज के हर व्यक्ति को उचित अवसर प्रदान करे। इस प्रकार, लोक-राष्ट्र का सिद्धांत समाज के भीतर भेदभाव को समाप्त करने और सबके लिए एक समान जीवन जीने की अवधारणा को बढ़ावा देता था। यह सिद्धांत प्राचीन भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं के अस्तित्व की पुष्टि भी करता था, क्योंकि राज्य में निर्णय लेने की प्रक्रिया में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी महत्वपूर्ण मानी जाती थी।

लोक-राष्ट्र का विचार प्राचीन भारत में एक आदर्श शासन की परिकल्पना थी, जिसमें न्याय, समानता और लोक कल्याण को प्राथमिकता दी जाती थी। शासक को धर्म का पालन करते हुए जनता की भलाई के लिए कार्य करना होता था, और राज्य की नीतियाँ और कृतियाँ जनहित में होती थीं। यह सिद्धांत समाज में आपसी सहयोग और सहभागिता को बढ़ावा देता था, जिससे राष्ट्र की समृद्धि और शक्ति सुनिश्चित होती थी। प्राचीन भारतीय समाज में लोक-राष्ट्र का यह सिद्धांत एक आदर्श शासन व्यवस्था को प्रस्तुत करता था, जो सामाजिक और राजनीतिक रूप से संतुलित था और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों का समान सम्मान था। इस प्रकार, लोक-राष्ट्र का सिद्धांत प्राचीन भारतीय समाज में एक स्वस्थ, न्यायपूर्ण और समान समाज की नींव रखता था। यह सिद्धांत आज भी भारतीय राजनीति और समाज में प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें यह सिखाता है कि एक सफल और समृद्ध राष्ट्र वही है, जहाँ जनता का कल्याण सर्वोपरि हो और शासन के हर कदम में उनके हित का ध्यान रखा जाए।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. G.S. Ghurye, *Caste and Race in India*, Popular Prakashan, 1932 (multiple reprints).
2. André Béteille, *Caste, Class and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village*, Oxford University Press, 1965.
3. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), "Introduction to Indian Knowledge System", PHI learning private ltd.
4. M.N. Srinivas, *Social Change in* Modern *India*, Orient BlackSwan, 1966.
5. Dipankar Gupta, *Interrogating Caste: Understanding Hierarchy and Difference in Indian Society*, Penguin India, 2000.
6. Surinder S. Jodhka, *Caste in Contemporary India*, Routledge India, 2012.
7. B.R. Ambedkar, *Annihilation of Caste*, Navayana Publishing (Annotated Critical Edition by Arundhati Roy), 2014.
8. Louis Dumont, *Homo Hierarchicus: The Caste System and Its Implications*, University of Chicago Press, 1970.
9. Nandini Sundar, *Subalterns and Sovereigns: An Anthropological History of Bastar (1854–1996)*, Oxford University Press, 1997.
10. OP Pandey (2023), "Bharat Vaibhav", National Book Trust, India.
11. Veena Das, *Critical Events: An Anthropological Perspective on Contemporary India*, Oxford University Press, 1995.
12. Rajni Kothari (ed.), *Caste in Indian Politics*, Orient BlackSwan, 1970.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. भारतीय दर्शन के अनुसार, मानव को श्रेष्ठ बनाने वाला तत्व क्या है?
   a) शारीरिक शक्ति
   b) धन संचय
   c) मानसिक और आध्यात्मिक क्षमताएँ
   d) तकनीकी प्रगति

2. महाभारत के शांति पर्व (299/20) में कहा गया है–
   a) जानवर दिव्य प्राणी हैं
   b) मानव से श्रेष्ठ कुछ नहीं है
   c) आत्मा नश्वर है
   d) ज्ञान गौण है

3. ऋषि अरविन्द मानव को किस शब्द से संबोधित करते हैं?
   a) भोगयोनि
   b) कर्मयोगी
   c) सचेतन प्राणी
   d) पशु सरीखे प्राणी

4. भारतीय दर्शन में "कर्मयोनि" का तात्पर्य है–
   a) भोग करना
   b) पुनर्जन्म
   c) कर्म प्रधान प्राणी
   d) संसाधनों का उपभोग करने वाला

5. भारतीय चिंतन में मानव को पशु से अलग करने वाला गुण क्या है?

a) आक्रामकता

b) प्रवृत्ति

c) विवेक और आत्म-नियंत्रण

d) शिकार

6. भारतीय संस्कृति में परिवार का आधार क्या है?

a) कानूनी अनुबंध

b) राजनीतिक स्थिति

c) भावनात्मक संबंध

d) आर्थिक निर्भरता

7. भारतीय समाज में माता-पिता मुख्यतः होते हैं–

a) अधिकार के प्रतीक

b) सरकारी प्रतिनिधि

c) भावनात्मक संबंध

d) अनुशासनकर्ता

8. भारतीय परिवार व्यवस्था में व्यक्ति की पहचान का क्या होता है?

a) वह उन्नत होती है

b) वह अपरिवर्तित रहती है

c) वह संबंधों की भूमिकाओं में बदल जाती है

d) वह खो जाती है

9. पाश्चात्य दृष्टिकोण में परिवार को देखा जाता है–

a) एक पवित्र विश्वास के रूप में

b) एक धार्मिक इकाई के रूप में

c) एक कानूनी संस्था के रूप में

d) एक ग्राम संस्था के रूप में

10. भारतीय संस्कृति में किस प्रकार की पहचान में परिवर्तन को बल दिया गया है?

a) राजनीतिक पहचान

b) व्यावसायिक पहचान

c) भावनात्मक और सामाजिक पहचान

d) तकनीकी पहचान

11. भारतीय विश्वास के अनुसार, प्रारंभिक मानव जीवन आधारित था–

a) युद्ध और विजय

b) विज्ञान

c) धर्म और नैतिकता

d) प्रवृत्ति

12. पाश्चात्य विकासवादी दृष्टिकोण में मानव को देखा जाता है–

a) प्रारंभ से ही सजग प्राणी के रूप में

b) आध्यात्मिक रूप से विकसित जीव के रूप में

c) विकसित पशु के रूप में

d) दिव्य प्राणी के रूप में

13. रिया टेन्हिल की "हिस्ट्री ऑफ फूड" प्रारंभिक मानव विकास को किससे जोड़ती है?

a) तकनीकी आविष्कार

b) धार्मिक प्रथाएँ

c) जलवायु परिवर्तन और खाद्य उपलब्धता

d) युद्ध

14. भारतीय विचारधारा बल देती है–

a) प्रकृति पर प्रभुत्व जमाने पर

b) प्रकृति को त्यागने पर

c) प्रकृति के साथ सामंजस्य पर

d) प्रकृति की उपेक्षा करने पर

15. यूरोपीय विचारधारा मानव को मानती है–

a) आत्मवान प्राणी

b) संसाधन

c) धर्म-प्रेरित

d) पर्यावरण-मित्र

16. परंपरागत रूप से कितने मुख्य संस्कार माने जाते हैं?

a) 8

b) 12

c) 16

d) 24

17. गर्भाधान संस्कार कब किया जाता है?

a) जन्म के बाद

b) गर्भाधान से पूर्व

c) नामकरण के समय

d) मृत्यु पर

18. कौन सा संस्कार भ्रूण की सुरक्षा पर केंद्रित होता है?

a) जातकर्म

b) पुंसवन

c) अन्नप्राशन

d) सीमन्तोन्नयन

19. सीमन्तोन्नयन का उद्देश्य है–

a) बच्चे का नामकरण

b) प्रसव की तैयारी

c) बच्चे का स्वागत

d) बच्चे को ठोस आहार देना

20. जातकर्म संस्कार चिह्नित करता है–

a) मुंडन समारोह

b) नामकरण संस्कार

c) जन्म और शुद्धिकरण

d) ठोस आहार देना

21. निष्क्रमण संस्कार में बच्चे को परिचित कराया जाता है–

a) धार्मिक शिक्षा से

b) परिवार के बुज़ुर्गों से

c) बाह्य वातावरण से

d) सामाजिक रीति-रिवाज़ों से

22. नामकरण संस्कार को कहते हैं–

a) अन्नप्राशन

b) जातकर्म

c) नामकरण

d) उपनयन

23. किस संस्कार में बच्चे को पहली बार ठोस आहार दिया जाता है?

a) अन्नप्राशन

b) चूड़ाकर्म

c) समावर्तन

d) निष्क्रमण

24. मुंडन संस्कार को और क्या कहते हैं?

a) कर्णवेध

b) चूड़ाकर्म

c) नामकरण

d) पुंसवन

25. कर्ण छेदन संस्कार को कहते हैं–

a) चूड़ाकर्म

b) जातकर्म

c) कर्णवेध

d) सीमन्तोन्नयन

26. उपनयन संस्कार का अर्थ है–

a) अंतिम संस्कार

b) वैदिक शिक्षा की शुरुआत

c) मुंडन

d) नामकरण

27. उपनयन में पहनाई जाने वाली पवित्र डोरी को कहते हैं–

a) रुद्राक्ष

b) तिलक

c) जनेऊ

d) माला

28. वेदारंभ संस्कार दर्शाता है–

a) जीवन का अंत

b) ब्रह्मचर्य जीवन की शुरुआत

c) शिक्षा की पूर्णता

d) विवाह जीवन की शुरुआत

29. समावर्तन संस्कार दर्शाता है–

a) नामकरण

b) गुरुकुल से वापसी

c) मुंडन

d) संतान का जन्म

30. भारतीय संस्कृति में विवाह को माना जाता है–

a) एक व्यापारिक अनुबंध

b) एक पवित्र सामाजिक बंधन

c) एक निजी निर्णय

d) एक दंड

31. वानप्रस्थ दर्शाता है–

a) विवाह

b) जन्म

c) आध्यात्मिक जीवन की ओर गमन / संन्यास की तैयारी

d) शिक्षा की शुरुआत

32. संन्यास का तात्पर्य है–

a) राजनीति में प्रवेश

b) सांसारिक बंधनों का त्याग

c) सैन्य सेवा

d) घर निर्माण

33. मृत्यु के बाद किया जाने वाला अंतिम संस्कार है–

a) संन्यास

b) समावर्तन

c) अन्त्येष्टि

d) उपनयन

34. भारतीय वर्ण व्यवस्था में कितने वर्णों का उल्लेख है?

a) 2

b) 3

c) 4

d) 5

35. ब्राह्मणों की मुख्य जिम्मेदारी थी–

a) व्यापार

b) कृषि

c) धार्मिक और शैक्षिक कार्य

d) युद्ध

36. क्षत्रियों का मुख्य कर्तव्य था–

a) शिक्षा देना

b) व्यापार करना

c) सुरक्षा और शासन

d) ग्रंथ लेखन

37. वैश्य किस कार्य में लगे होते थे–

a) शिक्षा

b) संन्यास

c) कृषि और व्यापार

d) श्रम कार्य

38. शूद्र किससे संबंधित थे?

a) पूजा

b) सैन्य सेवा

c) श्रम और सेवा

d) शिक्षा

39. वर्ण व्यवस्था का मूल उद्देश्य था–

a) राजनीतिक नियंत्रण

b) धन का विभाजन

c) स्वभाव और क्षमता के अनुसार कर्तव्यों का निर्धारण

d) शिक्षा को सीमित करना

35. ब्राह्मणों की मुख्य जिम्मेदारी थी–
   a) व्यापार
   b) कृषि
   c) धार्मिक और शैक्षिक कार्य
   d) युद्ध

36. क्षत्रियों का मुख्य कर्तव्य था–
   a) शिक्षा देना
   b) व्यापार करना
   c) सुरक्षा और शासन
   d) ग्रंथ लेखन

37. वैश्य किस कार्य में लगे होते थे–
   a) शिक्षा
   b) संन्यास
   c) कृषि और व्यापार
   d) श्रम कार्य

38. शूद्र किससे संबंधित थे?
   a) पूजा
   b) सैन्य सेवा
   c) श्रम और सेवा
   d) शिक्षा

39. वर्ण व्यवस्था का मूल उद्देश्य था–
   a) राजनीतिक नियंत्रण
   b) धन का विभाजन
   c) स्वभाव और क्षमता के अनुसार कर्तव्यों का निर्धारण
   d) शिक्षा को सीमित करना

40. यज्ञ और अनुष्ठान कौन-स
   a) वैश्य
   b) शूद्र
   c) क्षत्रिय
   d) ब्राह्मण

41. लोक व्यवस्था आधारित
   a) नस्लीय श्रेष्ठता पर
   b) पूंजी संचय पर
   c) समानता और न्या
   d) युद्ध पर

42. प्राचीन भारत में ग्राम स
   a) राज्यसभा
   b) लोकसभा
   c) ग्राम पंचायत
   d) उच्च न्यायालय

43. लोक व्यवस्था में राजा
   a) लोकप्रियता
   b) धर्म
   c) बाजार के नियम
   d) पूंजीवादी विचा

44. लोक व्यवस्था में व्यक्ति
   a) विदेशी शासकों
   b) कार्य से बचें
   c) अपने सामाजिक
   d) धन इकट्ठा करें

40. यज्ञ और अनुष्ठान कौन-सा वर्ण करता था ?

a) वैश्य

b) शूद्र

c) क्षत्रिय

d) ब्राह्मण

41. लोक व्यवस्था आधारित थी–

a) नस्लीय श्रेष्ठता पर

b) पूंजी संचय पर

c) समानता और न्याय पर

d) युद्ध पर

42. प्राचीन भारत में ग्राम स्तर की न्यायिक व्यवस्था थी–

a) राज्यसभा

b) लोकसभा

c) ग्राम पंचायत

d) उच्च न्यायालय

43. लोक व्यवस्था में राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह पालन करे–

a) लोकप्रियता

b) धर्म

c) बाजार के नियम

d) पूंजीवादी विचार

44. लोक व्यवस्था में व्यक्ति से अपेक्षा की जाती थी कि वह–

a) विदेशी शासकों की आज्ञा माने

b) कार्य से बचें

c) अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन करें

d) धन इकट्ठा करें

45. लोक व्यवस्था में न्याय की प्रमुख जिम्मेदारी थी–

a) संसद

b) विदेशी लोग

c) पंचायत

d) मंदिर

46. वर्ण व्यवस्था अधिक–

a) व्यावहारिक

b) आर्थिक

c) सैद्धांतिक रूप से आदर्शवादी

d) अस्थायी

47. लोक व्यवस्था केंद्रित थी–

a) व्यक्तिगत संपत्ति पर

b) निजी अनुष्ठानों पर

c) सामूहिक जिम्मेदारी पर

d) अलगाव पर

48. समय के साथ वर्ण व्यवस्था बन गई–

a) एक वैश्विक धर्म

b) एक लचीला मॉडल

c) एक कठोर जाति व्यवस्था

d) एक लोकतांत्रिक प्रणाली

49. एक मुख्य अंतर यह है कि वर्ण व्यवस्था–

a) शुरू से ही जन्म-आधारित थी

b) कर्म और स्वभाव पर आधारित थी

c) यूरोपीय लोगों द्वारा बनाई गई थी

d) एक जनजातीय शासन थी

50. लोक व्यवस्था ने प्रभावित किया–

a) केवल व्यापार

b) यूरोपीय विज्ञान

c) ग्रामीण और राज्य प्रशासन

d) केवल विवाह संबंध

51. जाति व्यवस्था मुख्यतः आधारित है–

a) राजनीतिक संबंधों पर

b) धन पर

c) जन्म पर

d) आध्यात्मिक उपलब्धि पर

52. जाति और वर्ण में क्या अंतर है?

a) जाति एक लचीला मॉडल था

b) वर्ण का कोई शास्त्रीय आधार नहीं था

c) जाति कठोर और भेदभावपूर्ण बन गई

d) कोई अंतर नहीं है

53. अस्पृश्यता जुड़ी थी–

a) ब्राह्मणों से

b) क्षत्रियों से

c) दलितों से

d) वैश्य से

54. जाति व्यवस्था बनाई गई थी–

a) समानता के लिए

b) एकता के लिए

c) सामाजिक भेदभाव के लिए

d) कल्याण के लिए

55. जाति व्यवस्था में किसी व्यक्ति की जाति निर्धारित होती थी–

a) [illegible]

b) पारिवारिक मूल्यों से

c) जन्म से

d) शिक्षा से

56. जाति व्यवस्था का कड़ा विरोध किसने किया?

a) ऋषि अरविंद

b) स्वामी दयानंद

c) महात्मा गांधी

d) मनु

57. डॉ. भीमराव अंबेडकर ने समर्थन किया–

a) वैदिक वर्ण में लौटने का

b) समानता और सामाजिक न्याय का

c) ब्रिटिश शासन का

d) अस्पृश्यता का

58. भारतीय संविधान किसे समाप्त करने का लक्ष्य रखता है?

a) धार्मिक अनुष्ठानों को

b) आध्यात्मिक शिक्षा को

c) जाति-आधारित भेदभाव को

d) पंचायत प्रणाली को

59. संवैधानिक प्रयासों के बावजूद, जाति का प्रभाव अभी भी दिखता है–

a) केवल शहरी क्षेत्रों में

b) वैश्विक स्तर पर

c) ग्रामीण क्षेत्रों में

d) केवल सरकार में

60. आधुनिक भारतीय समाज अग्रसर है–
   a) वर्ण आधारित समाज की ओर
   b) पूर्ण राजतंत्र की ओर
   c) सामाजिक समानता की ओर
   d) पश्चिमी जीवनशैली की ओर

61. लोक-राष्ट्र आधारित है–
   a) जातीय श्रेष्ठता पर
   b) व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पर
   c) सामूहिक कल्याण पर
   d) व्यापारिक सिद्धांतों पर

62. लोक-राष्ट्र सिद्धांत के अनुसार शक्ति आती है–
   a) हथियारों से
   b) राजा की इच्छा से
   c) लोगों (लोक) से
   d) धन से

63. लोक-राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति योगदान करता है–
   a) समाज से बचकर
   b) व्यक्तिवाद के द्वारा
   c) धर्म के पालन से
   d) राजनीतिक शक्ति द्वारा

64. लोक-राष्ट्र में शासक होता है–
   a) कंपनियों द्वारा निर्वाचित
   b) दिव्य
   c) जनता का प्रतिनिधि
   d) अचूक

75. पाठ के अनुसार, भारतीय परंपरा में गर्भाधान को माना जाता है–

a) एक संयोग मात्र

b) निजी मामला

c) एक पवित्र और आध्यात्मिक घटना

d) एक कानूनी अनुबंध

76. भारतीय पारिवारिक मूल्यों में मातृत्व और पितृत्व आधारित होते हैं–

a) अनुबंध आधारित भूमिकाओं पर

b) आनुवंशिक प्रभुत्व पर

c) भावनात्मक संबंधों पर

d) सरकारी नियमों पर

77. भारतीय परिवार की एक अनोखी विशेषता है–

a) भूमिका में विशेषज्ञता

b) भावनाओं का संबंधी पहचान में रूपांतरण

c) निर्धारित आर्थिक जिम्मेदारियाँ

d) कानूनी औपचारिकताएँ

78. भारतीय और पश्चिमी परिवारों में एक मुख्य अंतर–

a) भारत में अधिक कानून हैं

b) व्यक्तिगत स्वतंत्रता

c) भावनात्मक जुड़ाव बनाम कानूनी ढांचा

d) धार्मिक विविधता

79. भारतीय पारिवारिक प्रणाली मनुष्य को ऊपर उठाने में सहायक है–

a) अन्य जीवों से ऊपर

b) राजत्व की ओर

c) योद्धा की स्थिति तक

d) आर्थिक शक्ति की ओर

80. भारतीय संस्कृति में विवाह को माना जाता है–

a) एक अस्थायी संबंध

b) एक पवित्र मिलन और कर्तव्य

c) एक कानूनी विवाद

d) एक राजनीतिक साधन

81. भारत में जातीय भेदभाव का कानूनी विरोध किस दस्तावेज़ में किया गया है?

a) वेद

b) भारतीय संविधान

c) अर्थशास्त्र

d) भगवद गीता

82. जाति व्यवस्था ने जन्म दिया–

a) समान शिक्षा को

b) वैज्ञानिक प्रगति को

c) भेदभाव और अस्पृश्यता को

d) सभी के लिए आर्थिक विकास को

83. डॉ. आंबेडकर का आंदोलन केंद्रित था–

a) व्यापार सुधारों पर

b) आध्यात्मिक विरक्ति पर

c) सामाजिक समानता और अधिकारों पर

d) विदेशी गठबंधनों पर

84. महात्मा गांधी ने "हरिजन" शब्द किसके लिए प्रयोग किया?

a) ब्राह्मणों के लिए

b) संतों के लिए

c) दलितों के लिए

d) व्यापारियों के लिए

85. आधुनिक भारत के सामाजिक सुधारकों का उद्देश्य था–

a) वर्ण व्यवस्था को सुदृढ़ करना b) राजतंत्र की रक्षा करना

c) समानता को बढ़ावा देना d) अस्पृश्यता का समर्थन करना

86. यूरोपीय विचारधारा में मनुष्य को मुख्यतः माना गया–

a) एक दिव्य आत्मा b) एक चेतन प्राणी

c) एक संसाधन d) एक नैतिक मार्गदर्शक

87. भारतीय दर्शन मनुष्य को किससे जोड़कर देखता है?

a) कानून और राज्य से b) विज्ञान और तर्क से

c) आत्मा और धर्म से d) तकनीकी विकास से

88. भारतीय विचारधारा समरसता लाती है–

a) शक्ति और राजनीति में b) प्रकृति और मानव आवश्यकताओं में

c) जाति और धन में d) राज्य और हिंसा में

89. पश्चिमी विकास सिद्धांत के अनुसार मनुष्य का उद्भव–

a) नैतिक रूप से उन्नत प्राणी से हुआ b) दिव्य जन्म से हुआ

c) वानरों से हुआ d) पुनर्जन्म से हुआ

90. भारतीय विकास की धारणा ज़ोर देती है–

a) विजय पर b) पर्यावरण विनाश पर

c) संतुलन और सामंजस्य पर d) शोषण पर

91. लोक-राष्ट्र का सिद्धांत जोड़ता है–

a) लोगों और विज्ञान को b) समाज और सेना को

c) लोगों और शासन को d) राज्य और अलगाव को

92. लोक-राष्ट्र में राजा की भूमिका होती है–

a) भूमि जीतना b) धन एकत्र करना

c) जनता की सेवा करना d) व्यापार का विस्तार करना

93. लोक-राष्ट्र में सामूहिक चेतना में शामिल हैं–

a) व्यापार और श्रम b) युद्ध और शांति

c) धर्म, नैतिकता और संस्कृति d) हथियार और रक्षा

94. जनकल्याण की अवधारणा आधारित है–

a) लाभ कमाने पर b) राजनीतिक प्रतिस्पर्धा पर

c) धर्म और सामाजिक उत्तरदायित्व पर d) तकनीकी नवाचार पर

95. प्राचीन भारतीय ग्रंथ जो लोक-राष्ट्र का समर्थन करते हैं–

a) संविधान b) वेद और उपनिषद

c) कम्युनिस्ट घोषणापत्र d) व्यापार अधिनियम

96. भारतीय सामाजिक प्रणाली के अनुसार एक सफल राष्ट्र वह है जो–

a) दूसरों को जीत ले b) जाति को बनाए रखे

c) जन कल्याण को प्राथमिकता दे d) क्षेत्र का विस्तार करे

97. संस्कारों (रीतियों) का उद्देश्य है–

a) व्यक्ति को धनवान बनाना b) व्यक्ति को नियमों में बांधना

c) जीवन के हर चरण में व्यक्ति को शुद्ध और उन्नत बनाना

d) धार्मिक लोगों को दूसरों से अलग करना

98. भारतीय शिक्षा की शुरुआत मानी जाती है–

a) वेदारंभ से b) विवाह से

c) अन्नप्राशन से d) अंत्येष्टि से

99. आश्रम व्यवस्था में विद्यार्थी जीवन के बाद कौन सा चरण आता है?

a) संन्यास b) गृहस्थ

c) ब्रह्मचर्य d) वानप्रस्थ

100. भारतीय जीवन-दर्शन का अंतिम लक्ष्य है–

a) युद्ध में विजय b) सामाजिक प्रसिद्धि

c) मोक्ष (मुक्ति) d) व्यावसायिक सफलता

उत्तर-दर्शिका

Q.	Ans.	Q.	Ans.	Q.	Ans.	Q.	Ans.
1	c	26	b	51	c	76	c
2	b	27	c	52	c	77	b
3	c	28	b	53	c	78	c
4	c	29	b	54	c	79	a
5	c	30	b	55	c	80	b
6	c	31	c	56	c	81	b
7	c	32	b	57	b	82	c
8	c	33	c	58	c	83	c
9	c	34	c	59	c	84	c
10	c	35	c	60	c	85	c
11	c	36	c	61	c	86	c
12	c	37	c	62	c	87	c
13	c	38	c	63	c	88	b
14	c	39	c	64	c	89	c
15	b	40	d	65	c	90	c
16	c	41	c	66	b	91	c
17	b	42	c	67	c	92	c
18	b	43	b	68	c	93	c
19	b	44	c	69	c	94	c
20	c	45	c	70	b	95	b
21	c	46	c	71	c	96	c
22	c	47	c	72	c	97	c
23	a	48	c	73	b	98	a
24	b	49	b	74	c	99	b
25	c	50	c	75	c	100	c

Bharat BoudhIKS

खंड–14

भारतीय आर्थिक चिन्तन

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान



भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

भारतीय आर्थिक चिंतन

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

विषय सूची

प्रस्तावना 9

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान 11

1. भूमिका 13
2. ऐतिहासिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य 16
3. प्रमुख आर्थिक ग्रंथ और विचारक 20
4. भारतीय अर्थव्यवस्था और आर्थिक प्रणाली का संचालन 44
5. आर्थिक प्रणाली की प्रमुख गतिविधियाँ 45
6. प्राचीन भारत में मुद्रा प्रणाली : एक समग्र अवलोकन 47
7. आधुनिक विश्व में प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता 49
8. वर्तमान भारतीय आर्थिक चिंतन: नवाचार और वैश्विक नेतृत्व 53
9. निष्कर्ष 56

अनुशंसित पठन सामग्री 57

बहु विकल्पीय प्रश्न 59

उत्तर-दर्शिका 79

प्रस्तावना



प्राचीन भारत का आर्थिक चिन्तन वैश्विक आर्थिक विचारों के इतिहास में एक समृद्ध और विशिष्ट परंपरा प्रस्तुत करता है। जहाँ आधुनिक आर्थिक सिद्धांत प्रायः मात्रात्मक विश्लेषण और लाभ-केंद्रित मॉडल को प्राथमिकता देते हैं, वहीं भारतीय परंपरा ने अर्थनीति को एक व्यापक नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग माना। यह पुस्तक उन्हीं शास्त्रों की गहन विवेचना का परिणाम है—जैसे वेद, उपनिषद, मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, बौद्ध-जैन धर्मग्रंथ तथा शुक्रनीति और शुकर नीतिसार जैसे ग्रंथ। प्रत्येक अध्याय प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन के उद्देश्य और उत्तरदायित्व की गहरी समझ को प्रतिबिंबित करता है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन का मूल उद्देश्य केवल संपत्ति का संचय नहीं, बल्कि उसके धर्मसम्मत अर्जन, नैतिक उपयोग और समाज कल्याण हेतु वितरण में निहित था। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चार पुरुषार्थों की अवधारणा इस समग्र दृष्टिकोण का आधार है, जिसके अंतर्गत धन की प्राप्ति और उपभोग को संतुलित किया गया। आर्थिक गतिविधियों का लक्ष्य लोकसंग्रह – अर्थात् सम्पूर्ण समाज का कल्याण – था, न कि केवल व्यक्तिगत लाभ।

इस पुस्तक में वर्णित है कि कृषि, शिल्प-उद्योग, व्यापार तंत्र और मौद्रिक व्यवस्था किस प्रकार वैज्ञानिक और नैतिक ढांचे में संगठित थे। सिंचाई, मुद्रा निर्माण, मजदूरी निर्धारण और निष्पक्ष व्यापार जैसे क्षेत्रों में राज्य की निगरानी भूमिका को भी स्पष्ट किया गया है। साथ ही, कारीगरों, व्यापारियों, श्रमिकों और प्रशासकों के योगदान को भी समुचित स्थान दिया गया है। विशेष रूप से कौटिल्य का अर्थशास्त्र – जो भारतीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था का मूल स्तम्भ है – एक सुव्यवस्थित, प्रशासकीय दृष्टि से कुशल और नैतिकता से युक्त आर्थिक प्रणाली को प्रस्तुत करता है।

यह ग्रंथ पाठकों को प्राचीन भारतीय आर्थिक सिद्धांतों की निरंतरता, विविधता और आज के संदर्भ में प्रासंगिकता का बोध कराता है। आज जब विश्व असमानता,

पर्यावरणीय संकट और पूँजीवाद की नैतिक शून्यता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब भारत के पारंपरिक दृष्टिकोण समावेशी, टिकाऊ और मूल्य-आधारित अर्थनीति की दिशा में मार्गदर्शन कर सकते हैं।

यह पुस्तक प्राचीन और आधुनिक के बीच एक सेतु के रूप में प्रस्तुत है — कोई मात्र स्मृतिचिन्ह नहीं, बल्कि ऐसी जीवन-दृष्टि का पुनर्पाठ, जो शासन, नैतिकता और सामाजिक कल्याण को समेकित करते हुए भारत की सांस्कृतिक चेतना में गहराई से निहित है।



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शाखों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

भारतीय आर्थिक चिन्तन

1. भूमिका

अर्थशास्त्र का अध्ययन अपने व्यापकतम रूप में इस बात से संबंधित है कि मानव समाज किस प्रकार संसाधनों का प्रबंधन करता है, वस्तुओं का उत्पादन करता है और संपत्ति का वितरण करता है। यद्यपि आधुनिक आर्थिक सिद्धांतों की उत्पत्ति सामान्यतः ऐडम स्मिथ जैसे प्रबोधन युग के विचारकों से मानी जाती है, परंतु आर्थिक चिन्तन का बौद्धिक इतिहास इससे कहीं अधिक प्राचीन और विविधतापूर्ण है। इन पुरातन परंपराओं में भारत की प्राचीन आर्थिक परंपरा अत्यंत गहन और विशिष्ट है, जिसे अपेक्षाकृत कम खोजा गया है। यहाँ आर्थिक सिद्धांत धार्मिक, दार्शनिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोणों में गहराई से समाहित थे।



Source: https://www.goodreads.com

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन को समझना मात्र एक शैक्षणिक अभ्यास नहीं है, बल्कि यह उस सभ्यता की झलक है, जिसने धन, निर्धनता, शासन और न्याय जैसे प्रश्नों का समाधान आधुनिक अर्थशास्त्र के जन्म से बहुत पहले किया था। प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन उन सिद्धांतों, नियमों और व्यवहारों को दर्शाता है जो आर्थिक जीवन से जुड़े हुए थे और जिन्हें भारत की शास्त्रीय परंपराओं और ग्रंथों में प्रतिपादित किया गया था। ये विचार आधुनिक आर्थिक शब्दावली में न होकर वैदिक ऋचाओं, धर्मशास्त्रों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा बौद्ध ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों में कृषि, व्यापार, कर, श्रम, धन-संचय, गरीबी उन्मूलन और राज्य-शासन जैसे विषयों पर गहन विचार किया गया है। जहाँ आधुनिक अर्थशास्त्र प्रायः मात्रात्मक विश्लेषण और बाज़ार-केन्द्रित तर्क पर आधारित होता है, वहीं प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण समग्र था। यहाँ अर्थशास्त्र को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा गया। आर्थिक गतिविधियों का लक्ष्य केवल भौतिक संपत्ति की वृद्धि न होकर सामाजिक समरसता, व्यक्तिगत कर्तव्य (धर्म) और सामूहिक कल्याण (लोकसंग्रह) की प्राप्ति था। आर्थिक जीवन नैतिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होता था और जीवन के चार पुरुषार्थों–धर्म (कर्तव्य), अर्थ (धन), काम (इच्छा) और मोक्ष (मुक्ति)–से जुड़ा हुआ था।

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों का अध्ययन इसीलिए मूल्यवान है क्योंकि वे मौलिक, नैतिकतापूर्ण और टिकाऊ हैं। इन प्रणालियों का विकास पश्चिमी आर्थिक ढाँचों से स्वतंत्र रूप से हुआ और वे इस बात की गवाही देते हैं कि एक सभ्यता किस प्रकार जटिल आर्थिक गतिविधियों को सामाजिक और नैतिक संतुलन के साथ संचालित कर सकती है। जब आज के आर्थिक तंत्रों पर असमानता, पर्यावरणीय हानि और नैतिक शून्यता जैसे आरोप लगते हैं, तब प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण उत्तरदायित्व, संतुलन और समग्र कल्याण की वैकल्पिक व्यवस्था प्रस्तुत करते हैं।

प्राचीन भारत एक समृद्ध और जुड़ा हुआ आर्थिक तंत्र था। पाटलिपुत्र, उज्जैन और तक्षशिला जैसे नगर व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे, और भारतीय व्यापारी रोम, चीन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया तक व्यापार करते थे। इस आर्थिक जीवंतता के पीछे जो बौद्धिक आधार था, उसे समझना इतिहासकारों और अर्थशास्त्रियों दोनों के लिए अत्यंत आवश्यक है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत के विकास के संदर्भ में, पारंपरिक आर्थिक सिद्धांतों की पुनरावृत्ति एक अधिक सांस्कृतिक रूप से आधारित नीतिगत ढाँचे का निर्माण कर सकती है। जैसे विकेन्द्रीकृत शासन, नैतिक व्यापारिक आचरण और कल्याण-केंद्रित शासन की अवधारणाएँ आज भी प्रासंगिक हैं। इन परंपराओं की पुनर्पहचान से ऐसे विकास मॉडल

निर्मित किए जा सकते हैं जो आर्थिक रूप से सक्षम होने के साथ-साथ सांस्कृतिक रूप से सामंजस्यपूर्ण भी हों।

प्राचीन भारत के आर्थिक विचार किसी एक ग्रंथ या लेखक तक सीमित नहीं हैं। ये अनेक ग्रंथों और परंपराओं में विस्तारित हैं:

- **वेद:** धार्मिक होते हुए भी इनमें व्यापार, पशुपालन और कृषि जैसी आर्थिक क्रियाओं के उल्लेख हैं।
- **उपनिषद और महाकाव्य (महाभारत और रामायण):** इनमें संपत्ति, राजधर्म और न्याय जैसे विषयों पर दार्शनिक चर्चाएँ मिलती हैं।
- **धर्मशास्त्र (जैसे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति):** ये वर्गानुसार कर्तव्यों, संपत्ति के अधिकार, कर, उत्तराधिकार और व्यापार नैतिकता के नियमों को बताते हैं।
- **कौटिल्य का अर्थशास्त्र:** यह प्राचीन भारत में राजनीति और अर्थनीति का अत्यंत संगठित और व्यापक ग्रंथ है, जिसमें शासन-कला, कर प्रणाली, श्रम, व्यापार, गुप्तचर नीति और सैन्य रणनीति का वर्णन है।
- **शिलालेख और पुरातात्त्विक अभिलेख:** इनसे आर्थिक लेन-देन, कर, शिल्प-गिल्ड तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रमाण मिलता है।

शुक्र नीतिसार, कात्यायन का अर्थशास्त्र, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कमंडक नीतिसार जैसे अनेक ग्रंथों ने भारतीय आर्थिक चिन्तन में योगदान दिया है। मनुस्मृति, महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथों में भी इसका गहन वर्णन है। जहाँ पाश्चात्य विचारकों जैसे एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है, वहीं भारतीय दृष्टिकोण वेदों को इसकी उत्पत्ति मानता है और आचार्य चाणक्य को इसका वास्तविक प्रवर्तक मानता है।

वेदों में वैश्यों और आर्थिक गतिविधियों का उल्लेख आने के पश्चात इन गतिविधियों को विधिवत करने के उपायों पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। यजुर्वेद में व्यापार के सिद्धांत को "विनिमय" के रूप में प्रस्तुत किया गया है:

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारञ्च हरासि मे, निहान्निहराणि ते॥ (यजुर्वेद 50/3)

"तुम मुझे दो, मैं तुम्हें दूँ। तुम मेरे लिए रखो, मैं तुम्हारे लिए रखूँ। तुम मुझे अपना सामान दो, मैं तुम्हें उसका मूल्य दूँ।" (यजुर्वेद 3/50)

व्यापार से संबंधित शब्द जैसे *वसना* (मूल्य), शुल्क (कर/शुल्क), और *निहारा* (बिक्री) भी वेदों में आते हैं। चरित्र की पवित्रता, व्यवहार की शुद्धता, और दृढ़ता जैसे

गुण व्यापार में सफलता के लिए अनिवार्य माने गए हैं। अथर्ववेद (3/15/04) में इसे "चरितम्-उत्थितम्" (श्रेष्ठ आचरण) कहा गया है। भारतीय ऋषियों ने धन को जीवन के लिए आवश्यक माना, परंतु इसके अर्जन की विधि को वैज्ञानिक और योजनाबद्ध बताया। उनके अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चार पुरुषार्थों के माध्यम से एक सुखी और समृद्ध जीवन संभव है। यह समग्र दृष्टिकोण विश्व की अन्य किसी आर्थिक प्रणाली में देखने को नहीं मिलता। आचार्य चाणक्य के प्रसिद्ध वाक्य से यह पुष्टि होती है

"सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः।"

(अर्थात् सुख का मूल धर्म है, और धर्म का मूल अर्थ है।)

ऋग्वेद भी इस बात की पुष्टि करता है कि धर्म और अर्थ में कोई विरोध नहीं है। एक मंत्र कहता है:

"परिचिन्मो द्रविणं मामन्यदुतस्य पथा नमसा विवसेत्,
उत स्वेन क्रतुना सम वैदेते श्रेयांसं दक्षं मनर्षा जग्रभ्यात्।" (ऋग्वेद 10.31.2)

इसका अर्थ है कि सभी लोगों को धन और समृद्धि के विषय में विचार करना चाहिए, परंतु वे इसे विनम्रता और विवेक से सही मार्ग पर अर्जित करें। यह भी बताया गया है कि धन को धर्मपूर्वक और सत्य के साथ अर्जित करना चाहिए।

इस प्रकार, धर्म, अर्थ और काम के मध्य संतुलन बनाए रखना भारतीय परंपरा में सदैव आवश्यक माना गया है। इसी कारण भारत प्राचीन काल से ही एक सुखी, समृद्ध और वैभवशाली राष्ट्र रहा है।

2. ऐतिहासिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

प्राचीन भारत का आर्थिक चिंतन एक शून्य में विकसित नहीं हुआ, अपितु यह सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक विकास की सदियों लंबी प्रक्रिया का परिणाम था। इसकी समग्रता और गहराई को समझने के लिए यह आवश्यक है कि भारत के इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में आर्थिक विचारों के विकास का अध्ययन किया जाए। प्राचीन भारत की बौद्धिक भूमि वेदों की कर्मकाण्ड प्रधान दृष्टि, अर्थशास्त्र की व्यवहारिक नीतियों तथा बौद्ध और जैन धर्मों की नैतिक शिक्षा से आकार ग्रहण करती थी। यद्यपि ये काल विभिन्न थे, परन्तु इन्होंने मिलकर एक समेकित जीवन दृष्टिकोण को जन्म दिया जिसमें अर्थशास्त्र, नैतिकता और आध्यात्मिकता का सह-अस्तित्व था।

2.1 वैदिक काल (1500–600 ई.पू.)

सामाजिक और आर्थिक संरचना

भारतीय सभ्यता का सबसे प्रारंभिक काल, जिसके लिए हमारे पास पर्याप्त ग्रंथीय साक्ष्य हैं, वैदिक काल कहलाता है। इस काल का नाम चार वेदों–ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद–पर आधारित है। प्रारंभिक वैदिक युग (1500–1000 ई.पू.) में समाज मुख्यतः पशुपालक था और संपत्ति का मापदंड गौ-संपत्ति थी। ऋग्वेद में गायों को समृद्धि का प्रतीक माना गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि पशुधन का स्वामित्व आर्थिक जीवन का केन्द्र था।

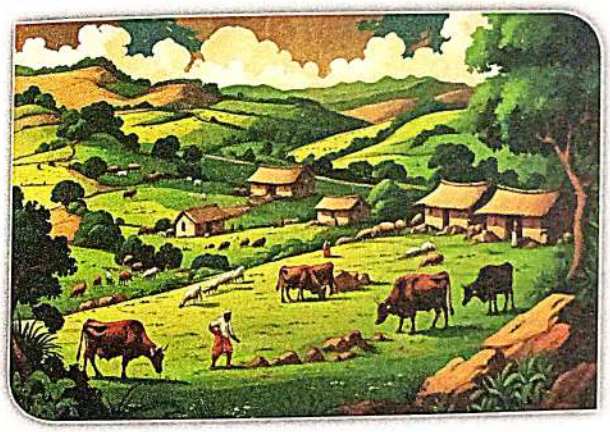

बाद के वैदिक काल (1000–600 ई.पू.) में समाज कृषि आधारित स्थायी जीवनशैली की ओर अग्रसर हुआ। भूमि एक प्रमुख आर्थिक संसाधन बन गई, और यजुर्वेद तथा अथर्ववेद जैसे ग्रंथों में हल चलाने, बीज बोने और सिंचाई के उल्लेख मिलते हैं। यद्यपि इस समय व्यक्तिगत भूमि स्वामित्व के स्पष्ट प्रमाण कम हैं, परन्तु भूमि की उत्पादक संपत्ति के रूप में महत्ता आर्थिक दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को दर्शाती है।

वेदों में अर्थ की अवधारणा

'अर्थ' शब्द जो चार पुरुषार्थों में से एक है, इसी काल में प्रमुखता से उभरा। बाद में यह धन और आर्थिक लाभ से जुड़ गया, परन्तु वैदिक सन्दर्भ में इसका आशय व्यापक रूप

से भौतिक समृद्धि और जीवनयापन के साधनों से था। यह स्वयं में कोई लक्ष्य नहीं था, अपितु इसे धर्म (नैतिक कर्तव्य) और काम (इन्द्रिय सुख) के साथ संतुलन में रखना आवश्यक था, जो अंततः मोक्ष (मुक्ति) की प्राप्ति की ओर ले जाता था।

इस प्रकार, वैदिक आर्थिक दृष्टिकोण व्यावहारिक आवश्यकताओं और नैतिक-धार्मिक कर्तव्यों के समन्वय से निर्मित था। व्यापार और उत्पादन का उद्देश्य केवल लाभ नहीं, बल्कि वैदिक कर्मकाण्डों एवं दान में संपत्ति का सदुपयोग था।

2.2 उपनिषद और धर्मशास्त्र काल (600 ई.पू. – 200 ई.)

इस काल में भारतीय बौद्धिक जीवन में एक प्रमुख परिवर्तन देखा गया। उपनिषदों का प्रादुर्भाव, बौद्ध और जैन धर्मों का उत्थान, तथा धर्मशास्त्रों की रचना ने संपत्ति और आर्थिक गतिविधियों की धारणा को अधिक नैतिक और चिंतनशील बनाया। धर्मशास्त्रों ने सामाजिक भूमिकाओं, विधियों और कर्तव्यों का संहिताकरण किया, जिनके गहन आर्थिक प्रभाव थे।

उपनिषदों में दार्शनिक विकास

उपनिषद (लगभग 800–500 ई.पू.) कर्मकाण्ड केंद्रित धर्म से दार्शनिक चिंतन की ओर संक्रमण का संकेत देते हैं। यद्यपि ये ग्रंथ सीधे-सीधे आर्थिक नहीं हैं, फिर भी इनमें इच्छा, धन, वैराग्य और जीवन के उद्देश्य पर गहन विचार प्रस्तुत किए गए हैं। आर्थिक गतिविधियाँ गृहस्थ आश्रम के दौरान आवश्यक मानी जाती थीं, परन्तु जीवन के बाद के चरणों (वानप्रस्थ और संन्यास) में उनसे ऊपर उठने को कहा गया।

इन ग्रंथों में यह विचार भी व्यक्त हुआ कि सच्ची संपत्ति आत्म-ज्ञान है, और केवल भौतिक संचय जीवन की पूर्ति नहीं करता। तथापि, पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक दायित्वों के निर्वहन हेतु अर्थसाधन अर्जन को मान्यता दी गई।

धर्मशास्त्र साहित्य और सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था

इस काल में धर्मशास्त्रों की परंपरा का विकास हुआ, जिनमें प्रमुख हैं मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और नारद स्मृति। इन ग्रंथों में निम्नलिखित के लिए विस्तृत व्यवस्था दी गई:

- संपत्ति अधिकार और उत्तराधिकार नियम
- वर्ण आधारित श्रम विभाजन
- व्यापार, ऋण और ब्याज से संबंधित नियम

- कर संग्रह और राज्य की उत्तरदायित्व व्यवस्था

धर्मशास्त्रों में आर्थिक भूमिकाओं को वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत निर्धारित किया गया, जिसमें ब्राह्मण (विद्या और यज्ञ), क्षत्रिय (रक्षा और शासन), वैश्य (कृषि, व्यापार, पशुपालन) और शूद्र (सेवा कार्य) के कर्तव्य निर्दिष्ट थे। यद्यपि यह व्यवस्था कठोर प्रतीत होती है, फिर भी यह सामाजिक संतुलन और आर्थिक दक्षता सुनिश्चित करने का प्रयास थी।

धर्म और अर्थनीति का संबंध

इस काल में भारतीय आर्थिक चिंतन की एक विशेषता थी–धन और नैतिकता के बीच घनिष्ठ संबंध। अर्थ को केवल तभी वैध माना गया जब वह धर्म के अनुरूप हो। "दान" और "भिक्षा" जैसे सिद्धांत सामाजिक पुनर्वितरण के माध्यम बने। राजा और व्यापारी वर्ग को भी ब्राह्मणों, मंदिरों और गरीबों को उदारतापूर्वक दान देने के लिए प्रेरित किया गया।

धन की नैतिक मर्यादाएँ मजदूरी, ऋण नीति और शोषण निषेध तक विस्तृत थीं। अत्यधिक ब्याज की निंदा की गई, जो आर्थिक न्याय की प्राचीन चेतना को दर्शाता है।

2.3 प्राचीन भारत में धर्म का आर्थिक विचारों में योगदान

धर्म ने प्राचीन भारत में आर्थिक दृष्टिकोणों और आचरणों को गहराई से प्रभावित किया। आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं की भांति यह लौकिक या धर्मनिरपेक्ष नहीं था, बल्कि हर आर्थिक क्रिया को आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से देखा जाता था।

हिन्दू दृष्टिकोण

हिन्दू दर्शन में चार पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–के संतुलित साधन को आदर्श जीवन माना गया। गृहस्थ को न केवल धन कमाने की अनुमति थी, बल्कि उसका यह कर्तव्य भी था कि वह अपने परिवार और समाज का भरण-पोषण करे। परन्तु यह धन शुद्ध मार्ग (श्रेष्ठ मार्ग) से अर्जित होना चाहिए तथा सद्कर्मों में लगाया जाना चाहिए।

बौद्ध और जैन दृष्टिकोण

बौद्ध और जैन परंपराओं ने आर्थिक विचारों में नई नैतिकता जोड़ी। बुद्ध का मध्यम मार्ग अधिक भोग और अधिक त्याग दोनों से बचने की सलाह देता है और गृहस्थ को ईमानदारी और संयम से धन कमाने को प्रेरित करता है। बौद्ध विहारों के नियम संपत्ति प्रबंधन और सामूहिक उपभोग को व्यवस्थित करते हैं।

जैन दर्शन में अहिंसा (अहिंसा) और अपरिग्रह (गैर-संचय) के सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं। जैन समुदायों ने व्यावसायिक नैतिकता को अपनाया, जिसमें सत्य-लेन-देन, न्यूनतम हानि और समाज सेवा की भावना रही।

3. प्रमुख आर्थिक ग्रंथ और विचारक

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों में गहराई से अंतर्निहित हैं, जो शासन, नैतिकता, विधि और धर्म से संबंधित हैं। यद्यपि ये ग्रंथ आधुनिक अर्थशास्त्रीय अर्थ में "आर्थिक ग्रंथ" के रूप में प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, फिर भी इनमें धन सृजन, संसाधनों का वितरण, कर प्रणाली, श्रम, व्यापार और राज्य की भूमिका पर गहन विचार व्यक्त किए गए हैं। इनमें से कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', 'मनुस्मृति' जैसे धर्मशास्त्र ग्रंथ तथा 'शुक्रनीति' जैसे राजनीतिक-नैतिक ग्रंथ विशेष रूप से गहनता और व्यापकता के लिए उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त, बौद्ध जातक कथाएँ तथा जैन ग्रंथ आर्थिक आचरण पर एक वैकल्पिक नैतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

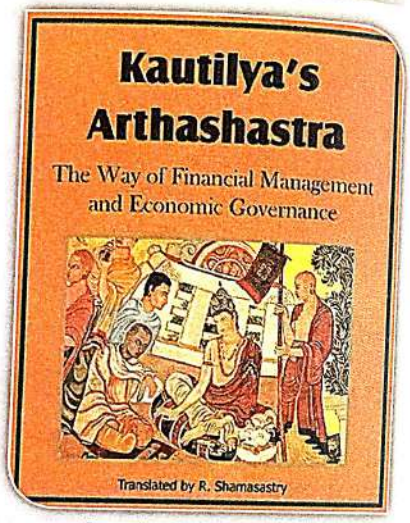

Source: https://www.goodreads.com

यह खंड उन प्रमुख विचारकों और ग्रंथों का विश्लेषण करता है जिन्होंने प्राचीन भारत की आर्थिक सोच को आकार दिया।

3.1. कौटिल्य का अर्थशास्त्र

'अर्थशास्त्र' प्राचीन भारत में शासन और अर्थनीति पर रचित सबसे विस्तृत और व्यवस्थित ग्रंथों में से एक है। इसे पारंपरिक रूप से कौटिल्य (जो चाणक्य या विष्णुगुप्त के नाम से भी प्रसिद्ध हैं) द्वारा रचित माना गया है, जो चंद्रगुप्त मौर्य (321 ईसा पूर्व) के मुख्य

सलाहकार थे। यह ग्रंथ कई शताब्दियों तक लुप्त रहा और 1905 में पुनः प्राप्त हुआ। यह प्राचीन विश्व में राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर लिखे गए सर्वप्रथम और सर्वाधिक विस्तृत ग्रंथों में से एक है। 'अर्थशास्त्र' का शाब्दिक अर्थ है – "धन और राज्यशास्त्र का विज्ञान"।

यह ग्रंथ नैतिक या आध्यात्मिक ग्रंथों के विपरीत, पूर्णतः व्यावहारिक और उपयोगितावादी है। इसमें शासक को राज्य का प्रभावी संचालन, विधि व्यवस्था बनाए रखना, और अधिकतम धन व शक्ति अर्जित करने की रणनीतियाँ बताई गई हैं। कौटिल्य ने आर्थिक स्थिरता को एक सशक्त राज्य की नींव माना। उन्होंने कहा था – "अर्थ ही सबसे प्रमुख पुरुषार्थ है", क्योंकि धर्म, काम और मोक्ष – शेष तीनों पुरुषार्थ – की प्राप्ति बिना अर्थ के संभव नहीं।

हालाँकि अर्थ को प्रमुख मानने का अर्थ यह नहीं था कि नैतिकता को त्याग दिया जाए; आर्थिक क्रियाएँ राज्य के नियमन में होती थीं और लोककल्याण के उद्देश्य से संचालित होती थीं। प्राचीन भारतीय विचारधारा समग्र विकास पर बल देती थी, जिसमें धन और धर्म, भौतिकता और आध्यात्मिकता, संग्रह और त्याग, अर्जन और वितरण, व्यक्ति और समाज, स्वतंत्रता और नियंत्रण – इन सभी के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक माना गया।

शुक्राचार्य की दृष्टि से अर्थशास्त्र

शुक्राचार्य ने अपनी 'नीतिसार' में अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा –

"श्रुतिस्मृतिविरोधेन राजवृत्तादिशासनं,
संयुक्तार्थार्जनं यत्र अर्थशास्त्रं तदुच्यते।" (नीतिसार 4.54)

अर्थात – वह शास्त्र जिसमें श्रुति और स्मृति के विरुद्ध न जाकर राजकीय व आर्थिक नीति तथा शासन का वर्णन किया गया हो और जिसमें नैतिक रूप से धन अर्जन के उपाय हों – वही 'अर्थशास्त्र' कहलाता है।

उन्होंने यह भी कहा – "अर्थ केवल अर्जन का विषय नहीं, अपितु अनर्थों से बचाव का उपाय भी है।" (नीतिसार 1.154)

वार्ता के चार प्रमुख अंग

शुक्राचार्य के अनुसार 'वार्ता' नामक आर्थिक गतिविधियों में चार क्षेत्र आते हैं – (1) सूद पर लेन-देन, (2) कृषि, (3) व्यापार, और (4) गौ-संवर्द्धन। इन कार्यों में निपुण व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों से मुक्त रहता है।

"कुसीद कृषिवाणिज्यं गोरक्षा वार्त्ताच्यते।
सम्पन्नो वार्तया साधुर्नावृत्तेर्ममृच्छति॥" (नीतिसार 1.156)

चाणक्य का दृष्टिकोण

चाणक्य ने भी जीवन की समस्त भौतिक गतिविधियों को अर्थशास्त्र की परिधि में माना। उनके अनुसार – भूमि, धन, पशु, ज्ञान, कला और कृषि – ये सब 'अर्थ' के अंतर्गत आते हैं। उन्होंने कहा – "मनुष्य स्वाभाविक रूप से इच्छाओं से प्रेरित होता है और इन इच्छाओं की पूर्ति का साधन अर्थ (धन) ही है।"

चाणक्य ने यह भी कहा –

"अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद्विनश्यति॥" (चाणक्य नीति, 5/15)

अर्थात – अन्यायपूर्वक अर्जित धन दस वर्षों तक तो टिकता है, परंतु ग्यारहवें वर्ष में वह समूल नष्ट हो जाता है।

अर्थशास्त्र की प्रमुख आर्थिक अवधारणाएँ

1. **राज्य और अर्थव्यवस्था:** कौटिल्य के अनुसार राज्य ही प्रमुख आर्थिक संस्था है। राजा न केवल धर्म का रक्षक है, अपितु आर्थिक नियोजन और प्रशासन का मुख्य अधिकारी भी है।
2. **कर और राजस्व:** इसमें करों का विस्तृत विवरण मिलता है: भूमि कर (बली), व्यापार शुल्क, खनिज शुल्क, दंड, वन उत्पादन कर, जल-प्रयोग शुल्क आदि। कर प्रणाली में लचीलापन था – समृद्धि के समय कर सामान्य और संकट के समय कम किया जाता था।

कानून, अर्थशास्त्र और शासन का महत्व

अर्थशास्त्र की पुस्तक 1, अध्याय 2 में चाणक्य (कौटिल्य) विभिन्न ज्ञान की धाराओं के महत्व पर विभिन्न दर्शनों की विविधताओं को स्वीकार करते हैं। वे उसनस्, बृहस्पति, मनु और अपनी स्वयं की परंपरा के दृष्टिकोणों का उल्लेख करते हैं।

उसनस् का मत है कि शासन ही एकमात्र आवश्यक ज्ञान है, क्योंकि इसके बिना अन्य कोई भी विद्या कार्य नहीं कर सकती। बृहस्पति का मत है कि दो प्रमुख क्षेत्र हैं: शासन और अर्थशास्त्र (जो कृषि, पशुपालन और व्यापार से संबंधित है), और अन्य सभी

विद्याएं केवल बौद्धिक विलास हैं। मनु की परंपरा तीन आवश्यक ज्ञान क्षेत्रों को मानती है: वेद, शासन और अर्थशास्त्र – यह तर्क देते हुए कि ये तीनों एक-दूसरे के सहायक हैं और अन्य सभी विद्याएं इन्हीं से निकली हुई हैं।

3. **कौटिल्य चौथे ज्ञान क्षेत्र के रूप में आन्वीक्षिकी:** (तार्किक दर्शन, जिसमें सांख्य, योग और लोकायत शामिल हैं) को जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि समस्त अन्य ज्ञान और समृद्धि इन्हीं चार क्षेत्रों से उत्पन्न होती है।
4. **अर्थशास्त्र प्रत्येक क्षेत्र की विशिष्ट भूमिका को स्पष्ट करता है:** वेद धर्म (नैतिकता) का निर्धारण करते हैं, अर्थशास्त्र धन के सृजन और क्षय को दर्शाता है, शासन न्याय (न्याय) को सुनिश्चित करता है, और आन्वीक्षिकी विवेक और तर्क प्रदान करती है, जो अन्य सभी क्षेत्रों और नैतिक व्यवहार का मार्गदर्शन करती है।
5. **कृषि और सिंचाई:** कृषि को प्रमुख आर्थिक क्रिया माना गया। राज्य सिंचाई, बीज उपलब्धता और आपदा से रक्षा हेतु उत्तरदायी था।
6. **व्यापार और वाणिज्य:** कौटिल्य ने राज्य नियंत्रित और निजी व्यापार – दोनों का समर्थन किया। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और समुद्रपत्तनों की महत्ता को स्वीकार करते हुए उन्होंने 'पण्याध्यक्ष' नामक अधिकारी द्वारा बाजारों पर निगरानी की व्यवस्था दी।

अधिकारियों, सलाहकारों और शासन पर निगरानी

अर्थशास्त्र में युवराज की शिक्षा, राजा की निरंतर सीखने की प्रक्रिया, तथा मंत्रियों, अधिकारियों और न्यायिक कर्मचारियों की सावधानीपूर्वक चयन और संगठन पर विशेष ध्यान दिया गया है।

अध्याय 5 में यह उल्लेख है कि राजा को सतत रूप से ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिए और विभिन्न विषयों के विश्वसनीय बुजुर्गों से परामर्श लेना चाहिए। अध्याय 4 में मंत्रियों की नियुक्ति की प्रक्रिया का वर्णन है, जिसमें विभिन्न विद्वानों के मत दिए गए हैं: कुछ ईमानदारी और ज्ञान को प्राथमिकता देते हैं, कुछ वंश परंपरा को, कुछ उन्हें चुनने की सलाह देते हैं जिनकी कमजोरियों का लाभ उठाया जा सके, जबकि कुछ अनुभव को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं। कौटिल्य अंततः सलाह देते हैं कि अधिकारियों का चयन उनके सिद्ध प्रदर्शन, चरित्र और नैतिक मूल्यों के अनुरूप किया जाना चाहिए।

योग्य मंत्री (अमात्य) वे होते हैं जिनमें बुद्धिमत्ता, अनुशासन, साहस, दूरदर्शिता, ईमानदारी, विशेषज्ञता और धर्म के प्रति निष्ठा जैसे गुण हों। जिनमें कुछ गुणों की कमी हो,

उन्हें अधीनस्थ पदों पर वरिष्ठ अधिकारियों की निगरानी में कार्य करना चाहिए। अर्थशास्त्र इन गुणों की जांच के लिए कठोर परीक्षणों की अनुशंसा करता है।

अध्याय 6 में यह बताया गया है कि अधिकारियों की ईमानदारी की गुप्त रूप से निगरानी कैसे की जाए। जो भ्रष्ट पाए जाएं, उन्हें तुरंत पद से हटाया जाना चाहिए। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि जो लोग न्याय, वित्त या संवेदनशील पदों के लिए अयोग्य हों, उन्हें इन स्थानों पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। केवल वे ही उच्च पदों के योग्य हैं जो सभी प्रकार के प्रलोभनों का दृढ़ता से विरोध कर सकें।

7. **श्रम और वेतन:** श्रम को योग्यता और वर्ण के आधार पर वर्गीकृत किया गया। वेतन दर निर्धारित की गई, अनुबंध उल्लंघन पर दंड का प्रावधान था।

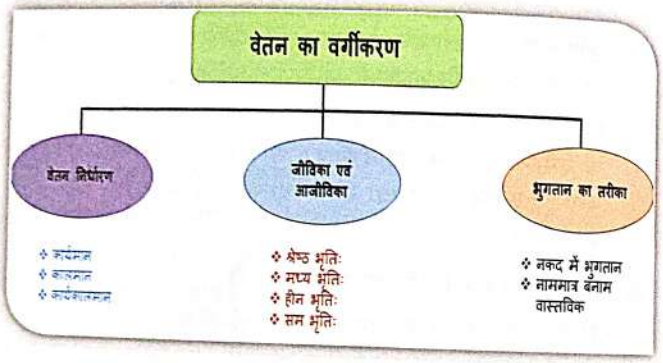

Source: https://www.goodreads.com

(क) वेतन निर्धारण की विधियों के आधार पर

शुक्राचार्य, जो प्राचीन काल के एक प्रसिद्ध विद्वान थे, तीन प्रमुख प्रकार की वेतन भुगतान प्रणालियों का वर्णन करते हैं:

1. कार्य-आधारित वेतन (कार्यमान)

यह प्रणाली उस कार्य या उत्पादित इकाई के अनुसार भुगतान पर आधारित होती है जो पूरा किया गया हो। शुक्राचार्य के अनुसार, एक नियोक्ता श्रमिक को कोई निश्चित भार किसी स्थान तक पहुँचाने का आदेश दे सकता है और उस कार्य के लिए एक निश्चित राशि का भुगतान कर सकता है। यह स्पष्ट रूप से टुकड़ा-दर (पीस-रेट) वेतन प्रणाली को दर्शाता है।

याज्ञवल्क्य और कौटिल्य के ग्रंथों में भी इसी प्रकार की धारणा मिलती है, जहाँ वेतन को निष्पादित कार्य या पूरी की गई विशिष्ट जिम्मेदारियों से जोड़ा गया है।

2. काल-आधारित वेतन (कालमान)

इस प्रणाली में, श्रमिक को सेवा की अवधि के आधार पर वेतन दिया जाता है, चाहे उसने कितना भी कार्य किया हो। यह समय कुछ घंटे, दिन, महीने या वर्षों तक हो सकता है।

मनु, जो एक प्राचीन विधि-निर्माता थे, ने विभिन्न प्रकार के श्रमिकों के लिए दैनिक वेतन मानकों का निर्धारण किया था। पतंजलि ने भी 'पादिक' शब्द का प्रयोग दैनिक मजदूरी के लिए किया है। शुक्राचार्य भी इस प्रणाली का उल्लेख करते हैं, जहाँ एक श्रमिक को प्रतिवर्ष, प्रतिमाह या प्रतिदिन एक निर्धारित राशि दी जाती है।

3. समेकित समय और कार्य-आधारित वेतन (कार्यकालमान)

यह मिश्रित प्रणाली समय और कार्य–दोनों के आधार पर भुगतान को निर्धारित करती है।

शुक्राचार्य के अनुसार, इस पद्धति में श्रमिक को इस आधार पर वेतन मिलता है कि उसने किसी निर्दिष्ट समयावधि में कितना कार्य किया।

कौटिल्य भी अर्थशास्त्र (पुस्तक III, अध्याय 13) में इस विचार का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि वेतन को "कर्मकालानुरूपम्" – अर्थात कार्य और समय के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिए। अर्थशास्त्र के एक अन्य भाग (पुस्तक II, अध्याय 23) में कुशल कारीगरों का उल्लेख है जिनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे एक निश्चित समय में निश्चित उत्पादन करें और उसके लिए पूर्वनिर्धारित वेतन लिया जाए। यह आधुनिक कांट्रैक्ट वेतन प्रणाली की तरह है, जिसमें निश्चित समय में कार्य को पूरा करने के लिए पहले से तय पारिश्रमिक दिया जाता है।

(ख) जीविका और निर्वाह के आधार पर वेतन का वर्गीकरण

प्राचीन भारतीय विद्वानों ने वेतन वर्गीकरण को इस दृष्टिकोण से भी देखा कि श्रमिक और उसका परिवार अपनी कमाई से किस हद तक जीवन यापन कर सकता है। **शुक्राचार्य**, जो प्राचीन भारतीय आर्थिक और नैतिक विचारों के प्रमुख ग्रंथकार माने जाते हैं, इस प्रणाली के अंतर्गत वेतन की चार प्रमुख श्रेणियाँ बताते हैं:

1. श्रेष्ठ भृतिः (उच्च वेतन)

यह श्रेणी आधुनिक संदर्भ में "उचित" या "इष्टतम" वेतन के रूप में समझी जा सकती है। शुक्राचार्य के अनुसार, यह वह वेतन है जो न केवल श्रमिक की मूलभूत आवश्यकताओं को

पूरा करने के लिए पर्याप्त है, बल्कि उसके परिवार और आश्रितों को भी आरामदायक जीवन प्रदान करने में सक्षम है। ऐसे वेतन से परिवार को आवश्यक वस्तुएँ और कुछ सीमित सुख-सुविधाएँ भी मिल सकती हैं, जो केवल जीवित रहने से कहीं आगे का जीवन-स्तर दर्शाते हैं। इस विचार के पीछे नैतिक दृष्टिकोण यह है कि श्रमिक को ऐसा वेतन मिलना चाहिए जिससे वह गरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर सके।

2. मध्यम भृतिः (मध्यम वेतन)

इस प्रकार का वेतन, जैसा कि शुक्राचार्य परिभाषित करते हैं, केवल श्रमिक के निकटतम और अनिवार्य आश्रितों–जैसे माता-पिता, पत्नी और बच्चे–की जीविका के लिए पर्याप्त होता है। यह वेतन श्रेणी उच्च और निम्न वेतन के बीच आती है और इसमें किसी विलासिता या विस्तारित परिवार का पालन शामिल नहीं होता। यह एक मूलभूत लेकिन पर्याप्त जीवनयापन को दर्शाता है।

3. सम भृतिः (सामान्य वेतन)

सामान्य वेतन वह होता है जो केवल सबसे आवश्यक आवश्यकताओं–विशेष रूप से भोजन और वस्त्र–की पूर्ति के लिए पर्याप्त होता है। शुक्राचार्य इस वेतन स्तर को श्रमिक की दक्षता से जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि श्रमिकों को उनके प्रदर्शन के अनुसार–धीमे, औसत या कुशल–वर्गीकृत किया जा सकता है और उसी के अनुसार उनका वेतन क्रमशः सामान्य, मध्यम या श्रेष्ठ होना चाहिए। इस दृष्टिकोण में वेतन को श्रमिक की उत्पादकता से सीधा संबंध बताया गया है।

4. हीन भृतिः (न्यूनतम या अपर्याप्त वेतन)

शुक्राचार्य के अनुसार, यह सबसे निम्न श्रेणी का वेतन है, जो केवल श्रमिक की अपनी जीविका चलाने के लिए पर्याप्त होता है, और वह किसी भी आश्रित का भरण-पोषण नहीं कर सकता। वे ऐसे न्यून वेतन की आलोचना करते हैं और चेतावनी देते हैं कि इस प्रकार का शोषण असंतोष और सामाजिक विघटन को जन्म देता है। वे यह भी कहते हैं कि निम्न पदों पर कार्यरत श्रमिकों को भी इतना वेतन अवश्य मिलना चाहिए कि वे अपने परिवार के लिए कम से कम भोजन और वस्त्र की व्यवस्था कर सकें। इससे स्पष्ट होता है कि केवल व्यक्तिगत निर्वाह योग्य वेतन न्यायपूर्ण समाज में नैतिक रूप से स्वीकार्य नहीं है। यह वर्गीकरण यह भी दर्शाता है कि वेतन संरचना सामाजिक भूमिका और कौशल स्तर पर आधारित होनी चाहिए, और अधिक कुशल श्रमिकों को मूलभूत निर्वाह से अधिक वेतन मिलना चाहिए।

(ग) भुगतान के प्रकार के आधार पर वेतन का वर्गीकरण

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन में वेतन का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया गया है कि उन्हें किस रूप में भुगतान किया जाता था। **स्मृतियों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीति** और विभिन्न कालों के अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि उस समय वेतन भुगतान की कई प्रणालियाँ प्रचलित थीं।

1. नगद में भुगतान

प्राचीन ग्रंथों और विधि-संहिताओं में बार-बार यह उल्लेख मिलता है कि श्रमिकों को वेतन नकद और वस्तु दोनों रूपों में मिलता था। प्राचीन भारत में श्रमिकों को सिक्कों के रूप में भुगतान किया जाता था, लेकिन अनाज, वस्त्र, पशु या अन्य वस्तुओं के रूप में वेतन देना भी उतना ही सामान्य था। यह दोहरी प्रणाली उस समय की आर्थिक संरचना को दर्शाती है, जहाँ **बार्टर (वस्तु विनिमय)** और **स्थानीय व्यापार** प्रमुख थे। विशेषकर ग्रामीण और कृषि-प्रधान क्षेत्रों में नकद के बजाय वस्तु-आधारित वेतन अधिक व्यावहारिक और तात्कालिक होता था।

2. नाममात्र वेतन बनाम वास्तविक वेतन

"नाममात्र वेतन (Nominal Wages)" का अर्थ होता है केवल मौद्रिक (नकद) आय, जबकि **"वास्तविक वेतन (Real Wages)"** में श्रमिक को मिलने वाले कुल लाभ–जैसे सुविधाएँ, सम्मान और सामाजिक स्थिति–भी शामिल होते हैं। प्राचीन भारतीय विचारकों ने इस व्यापक दृष्टिकोण को पहचाना और स्वीकार किया।

शुक्राचार्य ने विशेष रूप से गैर-नकद लाभों के महत्व को रेखांकित किया है। इनमें शामिल हैं:

- नियोक्ता द्वारा सम्मानजनक व्यवहार
- मधुर वचन
- पहचान और सामाजिक प्रतिष्ठा
- पान, उत्तम वस्त्र जैसे उपहार
- उत्तम भोजन
- उन्नति के अवसर

इस प्रकार के लाभ श्रमिक की **गरिमा** और **संतोष** को बढ़ाते थे और उनके वास्तविक जीवन स्तर व संतुष्टि में योगदान करते थे।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मनु और अन्य विधिवेत्ताओं के लेखन में भी इस समझ की झलक मिलती है। वे यह बताते हैं कि वेतन के अतिरिक्त सहायता–जैसे आवास, भोजन, या उत्सवों में उपहार–भी दिए जाने चाहिए। ये परंपराएँ यह दर्शाती हैं कि प्राचीन भारत में श्रमिक और नियोक्ता के बीच संबंध केवल आर्थिक लेन-देन नहीं, बल्कि **नैतिक जिम्मेदारी** और **सामाजिक मर्यादा** पर आधारित था।

3. **शहरी अर्थव्यवस्था और सार्वजनिक ढांचा:** नगर नियोजन, सड़कें, बाजार, सफाई, जल व्यवस्था आदि को अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग माना गया।

कौटिल्यीय अर्थशास्त्र की विरासत

अर्थशास्त्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में आज भी प्रासंगिक है। इसमें वित्तीय नीति, राज्य हस्तक्षेप, प्रगतिशील कर प्रणाली और आर्थिक गुप्तचर जैसे आधुनिक विचारों की पूर्व सूचना मिलती है। इसकी व्यवहारिकता और यथार्थवादी दृष्टिकोण इसे अपनी कालावधि का अद्वितीय ग्रंथ बनाते हैं।

3.2. मनुस्मृति और अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रंथ

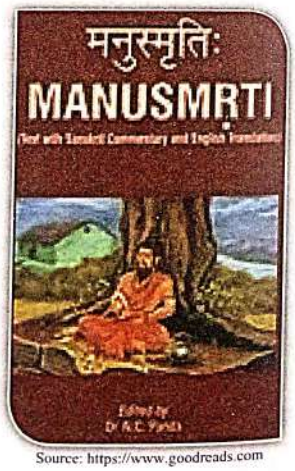

Source: https://www.goodreads.com

धर्मशास्त्र प्राचीन भारतीय विधिक एवं नैतिक ग्रंथ हैं जो व्यक्ति के धर्म अर्थात् कर्तव्यों को उसके वर्ण (जाति) और आश्रम (जीवन के चरण) के आधार पर निर्धारित करते हैं। इन ग्रंथों में सर्वाधिक प्रसिद्ध मनुस्मृति (लगभग 200 ईसा पूर्व – 200 ईस्वी) है। यद्यपि इसे प्रायः धार्मिक या सामाजिक ग्रंथ के रूप में देखा जाता है, तथापि इसमें आर्थिक विषयवस्तु भी पर्याप्त रूप से समाहित है।

आर्थिक विषयवस्तु एवं आधारभूत मान्यताएँ

1. **संपत्ति और उत्तराधिकार के नियम**

धर्मशास्त्रों में भूमि तथा चल-अचल संपत्ति के स्वामित्व, विभाजन और उत्तराधिकार से संबंधित विस्तृत नियम दिए गए हैं। यद्यपि

स्त्रियों को सीमित संपत्ति अधिकार प्राप्त थे, फिर भी कुछ ग्रंथों में स्त्रीधन को मान्यता दी गई है।

2. **व्यापार नीति और अनुबंध**

इन ग्रंथों में व्यापारिक नैतिकता पर बल दिया गया है। व्यापारियों से अपेक्षा की गई कि वे सत्यनिष्ठ रहें, माप-तौल में ईमानदारी रखें और वस्तुओं की जमाखोरी से परहेज़ करें। ऋण चुकता करने, ब्याज की दरों और अनुबंधों पर भी इन ग्रंथों में स्पष्ट निर्देश मिलते हैं।

3. **कर प्रणाली एवं राज्य की आय**

राजा को कृषि उत्पाद का छठा भाग, व्यापार से कर, एवं जुर्मानों की आय प्राप्त होती थी। किन्तु करों का उपयोग जनहित, न्याय-व्यवस्था, रक्षा और सार्वजनिक कार्यों के लिए किया जाना चाहिए – यह अपेक्षा थी।

नैतिक दृष्टिकोण

मनुस्मृति में दान (दान धर्म) और संपत्ति के नैतिक उपयोग पर विशेष बल दिया गया है। आर्थिक कार्यकलापों को धर्म से प्रेरित होना चाहिए और अत्यधिक लालच को निंदनीय माना गया है। अनैतिक रूप से अर्जित धन (अपराजा अर्थ) को धार्मिक कार्यों हेतु अनुपयुक्त घोषित किया गया है।

3.3. अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ और विचारक

शुक्रनीति



Source: https://www.goodreads.com

शुक्राचार्य द्वारा रचित शुक्रनीति एक उत्तरकालीन ग्रंथ है (संभवतः मध्यकालीन काल में)। इसमें शासन, कराधान, नीति और प्रशासन पर विशेष बल है। यह ग्रंथ कौटिल्यीय सिद्धांतों का पुनर्पुष्टिकरण करता है और धर्मयुक्त शासन एवं लोकहितकारी नीतियों पर बल देता है। इसमें न्यायसंगत कर-व्यवस्था, व्यापारिक नैतिकता और लोककल्याण की दिशा में निर्देश प्रदान किए गए हैं।

बौद्ध ग्रंथ और जातक कथाएँ



बौद्ध साहित्य विशेषतः जातक कथाएँ आर्थिक जीवन की एक नैतिक एवं मानवीय दृष्टि प्रस्तुत करती हैं। इन कथाओं में व्यापारी, श्रमिक, राजा और सामान्य जन जीवन के पात्र बनते हैं, जिनके माध्यम से ईमानदारी, करुणा और उदारता का पाठ पढ़ाया जाता है।

- सम्यक आजीविका (सम्मा आजीव) बौद्ध धर्म की एक मूल शिक्षा है, जिसमें शस्त्र-विक्रय, दास-विक्रय और पशु-वध जैसे व्यवसायों से विरति की सलाह दी जाती है।
- विनय पिटक जैसे ग्रंथों में भिक्षुओं के लिए दान-स्वीकृति, सम्पत्ति प्रबंधन एवं सामुदायिक उपभोग के नियम बनाए गए हैं – जो एक प्रकार के आरंभिक आर्थिक सहकारिता मॉडल का आभास देते हैं।
- व्यापार और बैंकिंग व्यवस्था का उल्लेख भी मिलता है, जो दर्शाता है कि एक सुव्यवस्थित वाणिज्यिक तंत्र विद्यमान था।

जैन आर्थिक नैतिकता

जैन ग्रंथ अहिंसा और अपरिग्रह (अधिकारहीनता) के सिद्धांतों को महत्व देते हैं। यद्यपि यह दर्शन संयम और त्याग पर आधारित है, फिर भी जैन समाज ऐतिहासिक रूप से व्यापार और वित्त के क्षेत्र में प्रमुख रहा है। जैन व्यापार नैतिकता सत्य, न्यूनतम हिंसा और सामाजिक सेवा पर आधारित थी।

भारतीय आर्थिक चिंतन में कारीगर, श्रमिक एवं उद्योगों की भूमिका: कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कारीगरों और श्रमिकों की अनेक श्रेणियाँ वर्णित हैं – जैसे बुनकर, राजमिस्त्री, लोहार, चर्मकार, धोबी, लकड़हारा, सुनार, मद्यनिर्माता, ग्वाले, चरवाहे, दास, श्रमिक, मछुआरे, वैद्य, कलाकार, व्यापारी आदि। अर्थशास्त्र में इनके

कार्यों की स्थिति, नियमों और उनके नियंत्रण का व्यापक विवरण दिया गया है। आचार्य चाणक्य ने इन उद्योगों के संचालन के लिए विभिन्न प्रशासनिक प्रमुखों की नियुक्ति का प्रावधान किया था।



1. **बुनकर (वायव):** अर्थशास्त्र में वस्त्र उत्पादन को राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख घटक बताया गया है। बुनकरों को एक नियंत्रित शिल्पकार वर्ग के रूप में देखा गया, जिनके कार्य की गुणवत्ता और उत्पादन पर निगरानी रखी जाती थी। राज्य की ओर से सूत्राध्यक्ष (बुनाई अधीक्षक) के माध्यम से वस्त्र निर्माण की देखरेख की जाती थी–चाहे वह नागरिक उपयोग के लिए हो, सैन्य आवश्यकताओं के लिए हो, या राजपरिवार के लिए।

   वस्त्र निर्माण प्रायः **कार्यशालाओं** (वर्कशॉप्स) में किया जाता था, जिनमें से कुछ राज्य द्वारा संचालित होती थीं या शाही कराधान के अधीन होती थीं। बुनकरों की ज़िम्मेदारी थी कि वे विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का निर्माण करें–जैसे **कपास, रेशम** और **ऊन**–जो वे स्थानीय करघों (indigenous looms) का उपयोग करके बनाते थे। वे वस्त्रों की आपूर्ति **घरेलू उपयोग** और **व्यावसायिक बाजार** दोनों के लिए करते थे।

   अर्थशास्त्र से संकेत मिलता है कि बुनकरों की मजदूरी उनके **कौशल स्तर, कार्य की गुणवत्ता**, और **उत्पादन की मात्रा** के आधार पर तय की जाती थी–और यह

प्रायः **कार्य-आधारित वेतन प्रणाली (कार्यमान)** के अनुसार होती थी, हालांकि **समय आधारित भुगतान** (कालमान) के भी उल्लेख मिलते हैं। **कौटिल्य** इस बात पर बल देते हैं कि **कच्चे माल के दुरुपयोग** से बचा जाए और बुनकरों द्वारा **धागे की गुणवत्ता, रंगाई,** और **परिष्करण** (finishing) में निर्धारित मानकों का पालन किया जाए। यदि कोई उल्लंघन होता, तो उस पर कठोर आर्थिक कानूनों के अंतर्गत दंड भी निर्धारित थे। यह दर्शाता है कि व्यापार और शिल्प कौशल में मानकों को बनाए रखना प्राचीन भारतीय शासन-व्यवस्था में अत्यंत महत्वपूर्ण था।

2. **राजमिस्त्री (स्थपति):** राजमिस्त्री, जिन्हें शिल्पकारों और निर्माणकर्ताओं की श्रेणी में रखा गया है, सार्वजनिक अवसंरचना (public infrastructure) के निर्माण में केन्द्रीय भूमिका निभाते थे–जैसे मंदिर, आवासीय भवन, कुएँ, किले, और नगर की दीवारें।



अर्थशास्त्र के अनुसार, सार्वजनिक और शाही निर्माण कार्य विशेष रूप से **नवाध्यक्ष** (निर्माण अधीक्षक) के अधीन संचालित होते थे। राजमिस्त्रियों को **निर्धारित वास्तुशास्त्रीय निर्देशों** का पालन करना होता था और उनके कार्यों की **गुणवत्ता की जांच** भी की जाती थी। राजमिस्त्रियों का श्रम **कौटिल्य द्वारा वर्णित विस्तृत शहरी नियोजन (urban planning)** के सिद्धांतों को लागू करने में

अत्यंत महत्वपूर्ण था। नगरों को **सुरक्षित रूप से दुर्गीकृत** किया जाना था, जिसमें सड़कें, जल निकासी व्यवस्था, और भवनों की योजना **सुव्यवस्थित और रक्षा-संबंधी आवश्यकताओं** के अनुसार बनाई जाती थी। **कुशल राजमिस्त्री** इस बात को सुनिश्चित करने के लिए नियुक्त किए जाते थे कि निर्माण न केवल **सौंदर्यपूर्ण** हो, बल्कि **संरचनात्मक रूप से मज़बूत** भी हो।

अन्य श्रमिकों की भाँति, राजमिस्त्रियों को भी कार्य की **प्रकृति और अवधि** के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता था–जिससे यह संकेत मिलता है कि उनका भुगतान **समय-सह-कार्य आधारित प्रणाली (कार्यकालमान)** पर आधारित होता था। **अर्थशास्त्र** में यह भी उल्लेख है कि श्रमिकों को **उचित वेतन** और **अनुकूल कार्य स्थितियाँ** प्रदान की जानी चाहिए। यह दर्शाता है कि **कौटिल्य** इस बात को भलीभांति समझते थे कि यदि **न्यायपूर्ण पारिश्रमिक** दिया जाए, तो उससे श्रमिकों की **निष्ठा और कार्यकुशलता** सुनिश्चित होती है।

3. **लोहार:** प्राचीन भारत में लोहार उपकरणों, हथियारों, औज़ारों और घरेलू वस्तुओं के निर्माण और रख-रखाव में लगे हुए थे। ***अर्थशास्त्र*** में नागरिक और सैन्य दोनों क्षेत्रों में धातु-कला के महत्व का उल्लेख मिलता है। धातुओं के अधीक्षक (आयसाध्यक्ष) लोहे, तांबे, टिन और सीसे जैसी धातुओं के संग्रहण, वितरण और उपयोग की देखरेख करते थे। लोहार इस व्यवस्था के अंतर्गत हल की धार, फावड़े, तलवारें, तीर और कवच जैसी वस्तुओं का निर्माण करते थे।

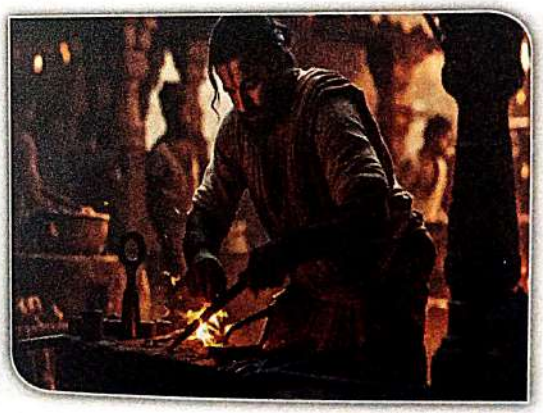

कृषि, निर्माण और युद्ध के लिए उनकी सेवाएं अनिवार्य थीं। इसलिए उनके कार्य की गुणवत्ता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए उस पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। उपकरणों और हथियारों को निर्धारित मानकों पर खरा उतरना आवश्यक था, और नियमों का पालन न करने पर दंड भी मिल सकता था। वेतन के संदर्भ में, लोहारों को संभवतः एक *कार्यकालमाना* प्रणाली के तहत भुगतान किया जाता था, जिसमें पारिश्रमिक उनके कार्य में लगे समय और तैयार उत्पाद की मात्रा/गुणवत्ता दोनों पर आधारित होता था।

कौटिल्य ने इन कारीगरों के आर्थिक महत्व पर ज़ोर दिया है, और सुनिश्चित किया कि उन्हें उचित पारिश्रमिक मिले तथा राज्य की समग्र आर्थिक व्यवस्था में उनका एकीकृत स्थान हो। उनकी कुशलता को विशिष्ट और अनिवार्य माना जाता था, जिससे उन्हें श्रमिक वर्ग में एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त था।

4. **चर्मकार:** प्राचीन भारत में चर्मकार मुख्य रूप से चमड़े की सफाई और परिशोधन (टैनींग), जूते, बेल्ट, थैले, जीन (घोड़े की सवारी के उपकरण) तथा घरेलू और सैन्य उपयोग के लिए अन्य चमड़े की वस्तुओं के निर्माण में संलग्न थे। *अर्थशास्त्र* में ऐसे कारीगरों का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से उद्योग, व्यापार और व्यवसायिक वर्गों के प्रबंधन के संदर्भ में किया गया है। चमड़े की वस्तुएँ कृषि प्रधान और युद्धप्रधान समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण थीं – जैसे हलों के लिए पशु-जीन या हथियारों के लिए चमड़े की म्यानें।

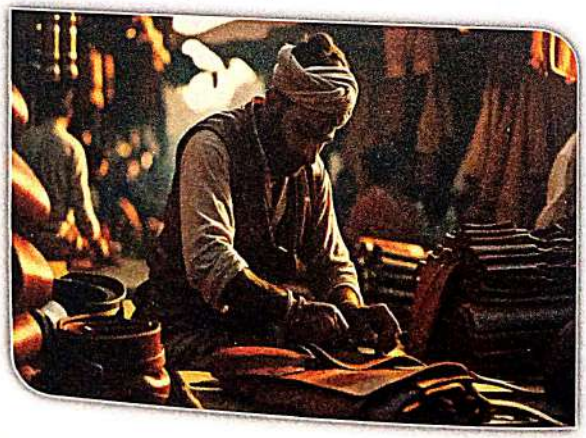

चर्मकार प्रायः श्रेणियों (श्रेणियों) के अंतर्गत कार्य करते थे, जो उनके शिल्प, मूल्य निर्धारण और अनुशासन के मानक निर्धारित करती थीं। यह सामुदायिक व्यवस्था उनके वेतन और कार्य स्थितियों के निर्धारण में भी सहायक होती थी।

यद्यपि उनका व्यवसाय वर्ण व्यवस्था में पशु-अवशेषों से संबंधित होने के कारण सामाजिक रूप से हाशिए पर माना जाता था, कौटिल्य का दृष्टिकोण *अर्थशास्त्र* में धार्मिक या कर्मकांड प्रधान न होकर व्यावहारिक है। उनका बल आर्थिक उपयोगिता, उत्पादन मूल्य और बाजार में योगदान पर है। चर्मकारों को न्यायसंगत पारिश्रमिक का अधिकार था – विशेषकर तब जब वे राज्य को आवश्यक वस्तुएँ आपूर्ति कर रहे हों या बड़े स्तर पर व्यापार में संलग्न हों।

कौटिल्य ने कारीगरों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार की वकालत की है और शोषण के विरुद्ध चेतावनी दी है। निम्न-स्थिति वाले व्यवसायों में लगे लोगों को भी अपने जीवन-यापन और परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त आय मिलनी चाहिए – यह आर्थिक न्याय के व्यापक सिद्धांत को दर्शाता है।

5. **धोबी:** धोबी, जिसे संस्कृत में रजक कहा जाता है, प्राचीन भारत में व्यक्तिगत और सामाजिक स्वच्छता बनाए रखने में एक आवश्यक भूमिका निभाता था। उस समय, स्वच्छ वस्त्रों को पवित्रता और सामाजिक शिष्टाचार से निकटता से जोड़ा जाता था, इसलिए धोबियों की सेवाएँ विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों और राजदरबारों में अत्यंत आवश्यक थीं।



यद्यपि रजक प्रायः वर्ण आधारित सामाजिक व्यवस्था में निम्न श्रेणी के माने जाते थे, उनका कार्य संस्थागत दृष्टि से महत्वपूर्ण था। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* से यह संकेत मिलता है कि उस काल में सेवा-आधारित अनेक व्यवसाय मौजूद थे, जो विभिन्न जनसमूहों – जैसे राज्यकर्मियों, सैनिकों और गृहस्थों – की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। धोबी संभवतः श्रेणी-प्रणाली (guild-like arrangements) या निर्दिष्ट बस्तियों (पुर या निगम) के अंतर्गत कार्य करते थे, और उन्हें नकद, वस्तु के रूप में, या परंपरागत सेवा-आधारित शुल्क द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त होता था। कुछ अवसरों पर, विशेषकर राजकीय या मंदिर संस्थानों में, धोबियों के लिए निश्चित क्षेत्र निर्धारित होते थे जहाँ वे कपड़े एकत्र और वितरित करते थे। उनकी सेवाएं अक्सर वंशानुगत होती थीं और स्थानीय प्रशासन या जाति पंचायतों द्वारा विनियमित की जाती थीं।

6. **लकड़हारा (लक्खद्हार):** लकड़हारे का पेशा उस युग में अत्यंत महत्वपूर्ण था जब लकड़ी निर्माण, ईंधन, औज़ार, रथ, हथियार और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए एक प्रमुख संसाधन थी। *अर्थशास्त्र* में वनों से प्राप्त सामग्री को राज्य के महत्वपूर्ण संसाधनों के रूप में वर्णित किया गया है, और *वनव्यवहारिक* नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है, जो लकड़ी की कटाई का प्रबंधन करता था और वन-सम्पदा के नियंत्रित उपयोग को सुनिश्चित करता था।



लकड़हारे प्रायः वन क्षेत्रों में कार्य करते थे और स्थानीय कारीगरों, निर्माणकर्ताओं तथा राज्य प्रायोजित परियोजनाओं को लकड़ी की आपूर्ति करते थे। उनका श्रम जोखिमपूर्ण और शारीरिक रूप से अत्यधिक कठिन माना जाता था। कई बार वे राज्य द्वारा नियोजित होते थे या व्यापारियों, बढ़इयों अथवा निर्माणकर्ताओं द्वारा विशेष प्रकार की लकड़ी की आपूर्ति के लिए अनुबंधित किए जाते थे। लकड़ी का आर्थिक महत्व – विशेष रूप से सागवान, चंदन या साल जैसी बहुमूल्य प्रजातियों का – यह दर्शाता है कि लकड़हारे, भले ही सामाजिक दृष्टि से विनम्र वर्ग में आते हों, महत्वपूर्ण व्यापार और आपूर्ति श्रृंखलाओं का हिस्सा थे।

कौटिल्य ने वन-संपदा के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया है और अनधिकृत कटाई पर दंड का प्रावधान किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि लकड़हारे पर्यवेक्षण में कार्य करते थे और उन्हें वन-नियमों का पालन करना अपेक्षित था।

7. **स्वर्णकार (सुनार):** सुनार स्वर्ण और अन्य कीमती धातुओं से आभूषण और विविध वस्तुएँ बनाते थे। इनका कार्य आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। इनकी कृतियाँ विवाह, धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक आयोजनों में उपयोगी थीं। *अर्थशास्त्र* में इनकी कार्यप्रणाली, गुणवत्ता और मानकों हेतु नियम एवं प्रक्रिया निर्धारित थीं।

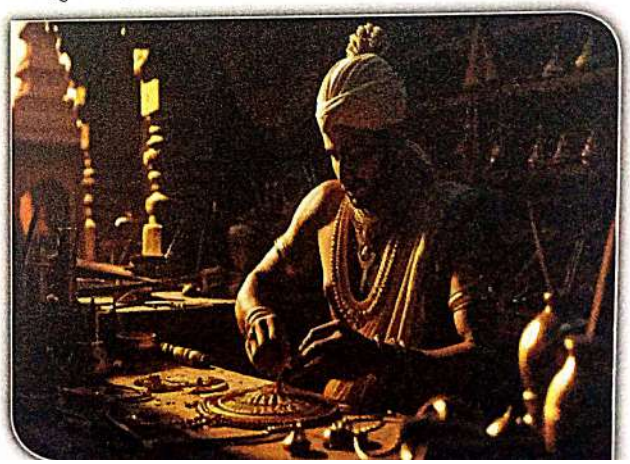

8. **मद्यनिर्माता (काल्बर):** काल्बर वे व्यक्ति थे जो मद्य निर्माण का कार्य करते थे। प्राचीन भारत में मद्य एक प्रमुख उद्योग था, जिसका सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं से संबंध था। *अर्थशास्त्र* में मद्य उद्योग के लिए स्पष्ट नियम और संरचनाएँ निर्धारित थीं, जिससे सामाजिक व्यवस्था और शांति बनी रहे।



9. **ग्वाला (गोप):** ग्वाले, जिन्हें संस्कृत में "गोप" कहा जाता है, प्राचीन भारत में गायों की देखभाल और पालन-पोषण के उत्तरदायी होते थे। गायों को उस समय धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत पवित्र और महत्वपूर्ण माना जाता था। वे केवल दूध, घी और गोबर (जो ईंधन और कृषि के लिए उपयोगी होता था) की स्रोत ही नहीं थीं, बल्कि समृद्धि, उर्वरता और शुभता के प्रतीक भी मानी जाती थीं। वैदिक साहित्य और पुराणों–विशेषकर भगवान कृष्ण से जुड़ी कथाओं–में गोप का चित्रण आर्थिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण रूप में होता है।



गोपों के कर्तव्यों में पशुओं को चराने ले जाना, उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करना, बीमारियों का उपचार करना और दुहाई में सहायता करना शामिल था। संगठित ग्राम समुदायों में गोपों के समूह बड़े पशु झुंडों का प्रबंधन करते थे और प्रायः किसी ज़मींदार, ग्रामप्रधान या कभी-कभी राज्य के अधीन कार्य करते थे। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में "गोपाध्यक्ष" (गायों का अधीक्षक) नामक पद का उल्लेख है, जो गायों के रख-रखाव, स्वास्थ्य, प्रजनन और चराई क्षेत्रों के प्रबंधन का उत्तरदायी होता था। इससे स्पष्ट है कि गोपालन एक साधारण कार्य नहीं, बल्कि एक नियोजित और मान्यता प्राप्त व्यवसाय था जो प्रशासनिक ढांचे का हिस्सा था।

गोपों को पारिश्रमिक के रूप में आमतौर पर दूध या दुग्ध उत्पादों का हिस्सा, चराई भूमि तक पहुँच, और कभी-कभी वस्तु या मुद्रा में अतिरिक्त भुगतान भी दिया जाता था। उनका कार्य ग्रामीण परिवारों, मंदिरों और राज्य संस्थाओं के सुचारु संचालन में सीधा योगदान देता था, जो भोजन, पूजा-अनुष्ठानों और धार्मिक उपयोगों के लिए दुग्ध उत्पादों पर निर्भर रहते थे।

10. **चरवाहा (चरवाह):** चरवाहों को प्राचीन ग्रंथों में *अविपाल* या *अजपाल* कहा गया है। ये वे लोग होते थे जो भेड़ों और बकरियों की देखभाल करते थे। ये पशु ऊन, मांस, खाल और दूध के लिए अत्यंत मूल्यवान माने जाते थे, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ गहन कृषि करना कठिन था। चरवाही प्रायः पहाड़ी, वनाच्छादित या शुष्क इलाकों में की जाती थी, जहाँ गतिशील पशुपालन (mobile pastoralism) बसावट-आधारित कृषि की तुलना में अधिक उपयुक्त था।



चरवाहे का कार्य अपने झुंड को चराई के मैदानों तक ले जाना, उन्हें जंगली जानवरों या चोरी से सुरक्षित रखना और उनके स्वास्थ्य की देखभाल करना होता था। इन कार्यों के लिए कौशल, धैर्य और पशुओं के साथ निकट परिचय की आवश्यकता होती थी। यद्यपि चरवाहे सामान्यतः निम्न सामाजिक वर्गों या विशेष पशुपालक समुदायों से संबंधित होते थे, उनकी आर्थिक महत्ता को अच्छी तरह समझा जाता था। ऊन और चमड़ा वस्त्र निर्माण, व्यापार और कारीगरों के कामों के लिए-विशेषकर नगरों और दरबारों में-अत्यावश्यक सामग्री थी।

हालाँकि *अर्थशास्त्र* में चरवाहों का नाम विशेष रूप से नहीं लिया गया है, परंतु उसमें पशुपालन का विस्तृत उल्लेख है और राज्य द्वारा पशुधन की निगरानी का वर्णन मिलता है। चरवाहे कभी स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे, तो कभी स्थानीय प्रशासन या ज़मींदारों की निगरानी में, यह क्षेत्र और समुदाय की संरचना पर निर्भर करता था।

11. **दास:** दास वे व्यक्ति होते थे जो दूसरों के अधीन रहकर कार्य करते थे। समाज में उनका स्थान महत्वपूर्ण था, परंतु उनका जीवन कठिनाइयों से भरा होता था। *अर्थशास्त्र* में दासों की स्थिति पर ध्यान दिया गया है और उनके अधिकारों की रक्षा हेतु प्रशासनिक उपाय सुझाए गए हैं।

12. **श्रमिक:** श्रमिक विविध प्रकार के शारीरिक कार्यों को अंजाम देते थे। समाज के आधारभूत कार्यों की पूर्ति में इनकी भूमिका अत्यंत आवश्यक थी। *अर्थशास्त्र* में इनके अधिकारों की सुरक्षा एवं न्यायोचित पारिश्रमिक की व्यवस्था सुनिश्चित की गई है।

13. **मछुआरा:** प्राचीन भारत में मछुआरों को प्रायः **मत्स्यजीविन** कहा जाता था, अर्थात् वे लोग जो मछलियों के माध्यम से जीवनयापन करते थे। ये समुदाय मुख्य रूप से नदियों, झीलों और तटीय क्षेत्रों पर थे। उनका कार्य मुख्यतः मछली पकड़ना, उसे संसाधित करना और बेचना होता था। मछली कई समुदायों-विशेष रूप से पूर्वी, दक्षिणी और तटीय भारत के लिए पोषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत थी।

कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* जैसे ग्रंथों में मत्स्य-पालन (fishing) को एक **नियंत्रित आर्थिक गतिविधि** के रूप में वर्णित किया गया है। राज्य को जलस्रोतों तक पहुँच पर नियंत्रण रखने, मत्स्य उत्पादन पर कर लगाने, और मत्स्य पालन के अधिकार सौंपने का अधिकार प्राप्त था। इससे यह स्पष्ट होता है कि मछली पकड़ना केवल एक सामान्य आजीविका ही नहीं, बल्कि आर्थिक रूप से भी मूल्यवान गतिविधि थी।

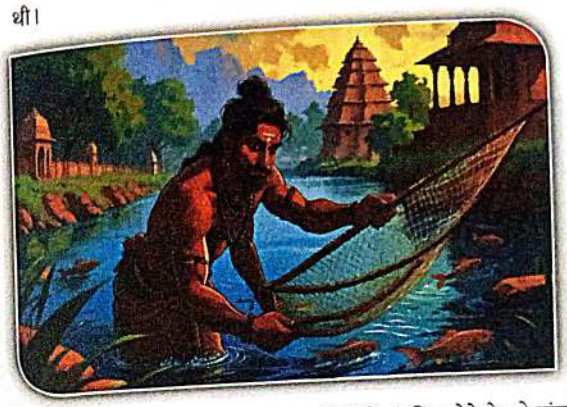

मछुआरे अक्सर विशेष जातियों या उपजातियों से संबंधित होते थे, जो परंपरागत रूप से जल-आधारित जीविकाओं में संलग्न रहती थीं। वे जाल, काँटे और नावों जैसे अनेक उपकरणों का प्रयोग करते थे और कभी-कभी ग्राम-आधारित सामूहिक समूहों में कार्य करते थे। मछलियों के अतिरिक्त वे कभी-कभी अन्य जल-संसाधनों जैसे शंख, केकड़े या मोती भी एकत्र करते थे। भुगतान सामान्यतः वस्तु-रूप में – जैसे मछलियों के एक हिस्से के रूप में – या यदि वे अपना उत्पाद बाजार में बेचते थे तो स्थानीय मुद्रा में होता था।

14. **वैद्य:** वैद्य के नाम से प्रसिद्ध चिकित्सक प्राचीन भारतीय समाज में एक सम्मानित स्थान रखते थे। वे स्वास्थ्य की देखभाल करने वाले प्रमुख व्यक्ति होते थे, और उनका ज्ञान भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति **आयुर्वेद** की समृद्ध परंपरा से प्राप्त होता था। *चरक संहिता* और *सुश्रुत संहिता* जैसे आयुर्वेद के मूल ग्रंथों में रोगों, निदान, औषधीय उपचार, शल्य चिकित्सा (सर्जरी) और चिकित्सकों के नैतिक आचरण का विस्तृत वर्णन मिलता है।

वैद्य प्रायः विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करते थे–या तो पारिवारिक परंपराओं में या गुरुकुल पद्धति की संस्थाओं के माध्यम से। उनका ज्ञान केवल मानव चिकित्सा तक सीमित नहीं था, बल्कि पशु-चिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य उपचार को भी समाहित करता था। *अर्थशास्त्र* में राजदरबारों और नगरों में वैद्यों की भूमिका

का उल्लेख मिलता है, जहाँ उन्हें कभी-कभी राज्य द्वारा नियुक्त किया जाता था ताकि वे सैनिकों, अधिकारियों और नागरिकों की सेवा कर सकें। इसके बदले में उन्हें नियमित वेतन, भूमिदान या कर-मुक्ति जैसे लाभ प्राप्त होते थे, जो उनके पद और ख्याति पर निर्भर करता था।

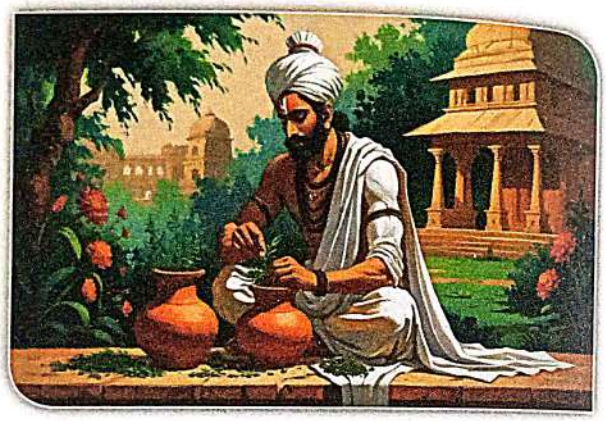

वैद्य का कार्य केवल रोग का उपचार करना नहीं था, बल्कि **रोग की रोकथाम, स्वास्थ्य संवर्धन** और आहार, ऋतुओं के अनुसार जीवनचर्या तथा स्वच्छता जैसे विषयों पर परामर्श देना भी उनकी ज़िम्मेदारी मानी जाती थी। वैद्यों के लिए नैतिक आचार संहिता कठोर थी – जिसमें करुणा, गोपनीयता और लोभ से बचाव पर विशेष बल दिया गया था। अपने विद्वतापूर्ण पृष्ठभूमि और जनकल्याण में योगदान के कारण उन्हें समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। प्राचीन भारत में चिकित्सा का अभ्यास पूरी तरह से जातिगत प्रतिबंधों में सीमित नहीं था। विभिन्न पृष्ठभूमियों से आने वाले कुशल चिकित्सक, यदि वे अपनी दक्षता और नैतिक आचरण सिद्ध कर पाते थे, तो उन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त हो सकती थी।

15. **नट (नाटककार):** प्राचीन भारत में **मनोरंजन करने वालों** में संगीतकार, नर्तक, अभिनेता, कथावाचक, नट (कलाबाज) और चारण (गायक-कथाकार) शामिल थे। इन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता था, जैसे – **नर्तक** (नृत्य करने वाला), **वादक** (वाद्य यंत्र बजाने वाला), **नाटक** (नाट्य कलाकार), और **कुशीलव** (घुमंतू कलाकार या गायक)। ये कलाकार राजदरबारों और लोक परंपराओं दोनों

का हिस्सा थे, और मंदिरों, राजसभाओं, जनसभाओं और ग्राम उत्सवों में प्रदर्शन करते थे।

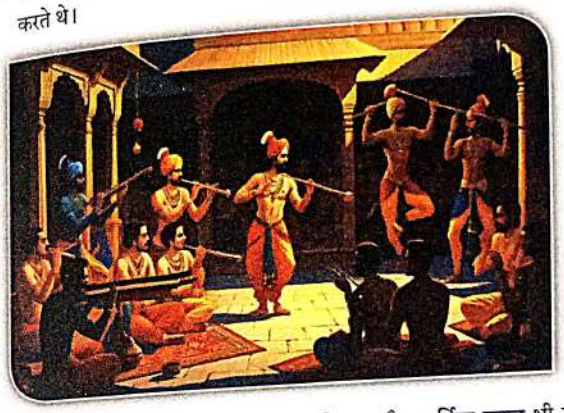

मनोरंजन की परंपरा में एक गहरा **आध्यात्मिक और धार्मिक पहलू** भी जुड़ा हुआ था। संगीत और नृत्य केवल आनंद के साधन नहीं माने जाते थे, बल्कि उन्हें धार्मिक अनुष्ठानों और मंदिरों की पूजा में भी प्रयोग किया जाता था – विशेषकर भक्ति संगीत और नृत्य रूपों में। भरत मुनि का *नाट्यशास्त्र*, जो नाटक और प्रदर्शन कला पर एक आधारभूत ग्रंथ है, विभिन्न कलाओं की तकनीक, भूमिकाएं और सौंदर्यशास्त्र को व्यवस्थित करता है और इन्हें समाज को **शिक्षा और उत्थान** देने के उपकरण के रूप में स्थापित करता है।

मनोरंजनकर्ता प्रायः वंशानुगत कलात्मक समुदायों या **श्रेणियों** से संबंधित होते थे और कभी-कभी उन्हें **राजाओं, कुलीनों या मंदिरों का संरक्षण** प्राप्त होता था। बदले में उन्हें उपहार, धन, अन्न या आवास जैसी सुविधाएं दी जाती थीं। *अर्थशास्त्र* में मनोरंजन करने वालों को शहरी समाज का हिस्सा माना गया है और उनके व्यवहार, आय और आचरण के लिए नियम निर्धारित किए गए हैं, जिससे उनकी सामाजिक मान्यता और आधिकारिक भूमिका का संकेत मिलता है। ये कलाकार पीढ़ी दर पीढ़ी **संस्कृति, भाषा और नैतिक कथाओं** के संरक्षण और प्रसारण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

16. **व्यापारी (वणिक/वणिजः):** व्यापारी, जिन्हें प्राचीन भारत में *वणिक*, *श्रेष्ठि* (धनाढ्य व्यापारी) या *सार्थवाह* (कारवां के नेता) कहा जाता था, उस काल के

सबसे प्रभावशाली आर्थिक वर्गों में से एक थे। वे देशीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापार की रीढ़ थे, और मसाले, वस्त्र, धातुएं, अनाज, रत्न, इत्र और शिल्प उत्पाद जैसे अनेक वस्तुओं के लेन-देन में संलग्न रहते थे।

भारतीय व्यापारी केवल गाँवों और नगरों में ही नहीं, बल्कि दूर-दराज़ के व्यापारिक मार्गों पर भी सक्रिय रहते थे, जो भारत को **मध्य एशिया, मध्य पूर्व**, और **दक्षिण-पूर्व एशिया** से जोड़ते थे। *तम्रलिप्ति, भृगुकच्छ (भरुच)* और *मुज़िरिस* जैसे बंदरगाह समुद्री व्यापार के प्रमुख केंद्र बन गए थे। *अर्थशास्त्र* और *जातक कथाओं* जैसे ग्रंथों में ऐसे संगठित व्यापारी समुदायों का उल्लेख मिलता है जो *श्रेणियों* (व्यापारी संघों) के रूप में कार्य करते थे–ये स्वायत्त संगठन व्यापार को नियंत्रित करते थे, न्यायपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित करते थे, और कई बार बैंक या ऋणदाता की भूमिका भी निभाते थे।

प्राचीन भारत में व्यापारियों को **आदर और कानूनी सुरक्षा** प्राप्त थी–विशेषकर वे जो करों या दान के माध्यम से अर्थव्यवस्था में योगदान देते थे। *अर्थशास्त्र* में व्यापार नियमन, सीमा शुल्क, माप-तौल और बेईमानी पर दंड जैसी व्यवस्थाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। आर्थिक क्षेत्र के अलावा, व्यापारी **मंदिरों, शिक्षण संस्थानों और सार्वजनिक अवसंरचना** के संरक्षक भी थे। वे अक्सर कुएँ, सड़कें, और धर्मशालाएं बनवाने में धन देते थे। उनका धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को समर्थन देना उन्हें भारतीय समाज की भौतिक और आध्यात्मिक दोनों संरचनाओं में एकीकृत करता था।

4. भारतीय अर्थव्यवस्था और आर्थिक प्रणाली का संचालन

प्रारंभिक भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि और उद्योग को विशेष महत्व प्राप्त था। भारतीय समाज की मुख्यधारा कृषि और उत्पादन पर आधारित थी, जिन्हें जीवन का अभिन्न अंग माना गया। राज्य और समाज दोनों ही मिलकर एक नैतिक और आदर्शवादी आधार पर अर्थव्यवस्था की स्थापना करते थे।

इस दर्शन को समझने हेतु हमें इसके विविध घटकों जैसे उत्पादन, विनिमय और नियंत्रण प्रणालियों का विश्लेषण करना आवश्यक है। कौटिल्य की *अर्थशास्त्र* तथा अन्य ग्रंथों में इनका विस्तृत विवरण मिलता है। राज्य का मुख्य कार्य निरीक्षण और व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना था।

5. आर्थिक प्रणाली की प्रमुख गतिविधियाँ

भारतीय अर्थव्यवस्था दो प्रमुख गतिविधियों पर आधारित थी – **उत्पादन और विनिमय**। इन्हें चार भागों में विभाजित किया गया:

1. कृषि
2. उद्योग
3. व्यापार
4. बैंकों का कार्य (कुसीद)

कृषि और उद्योग **उत्पादन** का भाग थे, जबकि व्यापार और कुसीद **विनिमय** का।

1. कृषि

भारत में कृषि सबसे पुरानी और महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि रही है। यह केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक रूप से भी समाज से जुड़ी हुई थी।

एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है–

"उत्तम खेती, मध्यम बान, निकृष्ट नौकरी, भीख निदान।"

अर्थात – खेती श्रेष्ठ है, व्यापार मध्यम, नौकरी निकृष्ट और भिक्षा अंतिम विकल्प।

इससे कृषि की प्रतिष्ठा और महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। कृषि भूमि को छोड़ना या उपेक्षित करना पाप माना जाता था, अतः कृषि भूमि का सदुपयोग राज्य का मुख्य कर्तव्य था।

2. उद्योग (उत्पादन)

भारतीय उद्योग वस्त्र, औज़ार, धातु एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करते थे। वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, चर्म उद्योग आदि प्रमुख उद्योग थे। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में *सूत्राध्यक्ष* नामक अधिकारी की नियुक्ति का उल्लेख है, जो वस्त्र उद्योग की निगरानी करता था। उसका कार्य केवल नियंत्रण था, न कि लाभ या हानि में हस्तक्षेप करना। वह शोषण रोकने और कर संकलन सुनिश्चित करने का कार्य करता था।

3. व्यापार

व्यापार उत्पादन और विनिमय के बीच का सेतु था। भारत में प्राचीन काल से व्यापारिक नेटवर्क फैला हुआ था। व्यापार के माध्यम से वस्तुओं के साथ-साथ संस्कृति और

विचारों का आदान-प्रदान भी होता था। *अर्थशास्त्र* और *मनुस्मृति* में व्यापार के संचालन हेतु स्पष्ट दिशा-निर्देश हैं। राज्य का कार्य निष्पक्ष व्यापार सुनिश्चित करना और अनुचित व्यवहार को रोकना था।

4. बैंकों का कार्य (कुसीद)

प्राचीन भारत में बैंकिंग प्रणाली *कुसीद* के रूप में विकसित हुई थी। यह ऋण, उधारी और वित्तीय प्रवाह से संबंधित थी। व्यापार और उत्पादन हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करना इसका कार्य था।

कुसीद नामक साहूकार व्यापार को आर्थिक संबल प्रदान करते थे। राज्य ने इस प्रणाली को सुचारु रूप देने हेतु आवश्यक उपाय किए।

राज्य की नियामक भूमिका

प्राचीन भारत में राज्य का मुख्य कार्य आर्थिक गतिविधियों की निगरानी करना था। राज्य स्वयं इन कार्यों में सीधे रूप से संलग्न नहीं होता था, अपितु यह सुनिश्चित करता था कि ये क्रियाएँ न्यायपूर्वक एवं व्यवस्थित रूप से संचालित हों।

कृषि का विनियमन

कृषि के क्षेत्र में राज्य की भूमिका प्रायः राजस्व करों की वसूली तक सीमित थी। जब तक कोई कृषक भूमि की खेती करता था, वह भूमि उसकी मानी जाती थी। राज्य का कर्तव्य यह सुनिश्चित करना था कि कृषि भूमि परती न पड़े और किसान सतत खेती करते रहें।

उद्योग का विनियमन

उद्योगों के लिए राज्य द्वारा विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी, जैसे कि सूत्राध्यक्ष, जिनका कार्य यह देखना होता था कि उद्योगों में शोषण न हो तथा राज्य को उचित रूप से कर प्राप्त हो।

व्यापार एवं बैंकिंग का विनियमन

व्यापार और बैंकिंग के क्षेत्र में भी राज्य की भूमिका निगरानी तक सीमित थी। राज्य ने यह सुनिश्चित करने हेतु विभिन्न उपाय अपनाए कि व्यापार निष्पक्ष एवं न्यायसंगत रूप से संचालित हो। बैंकिंग प्रणाली को प्रोत्साहित करने हेतु, राज्य ने व्यापारी वर्ग को ऋण एवं वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए विविध उपायों का विकास किया।

6. प्राचीन भारत में मुद्रा प्रणाली : एक समग्र अवलोकन

प्राचीन भारत की मुद्रा प्रणाली केवल व्यापार का साधन नहीं थी, बल्कि एवं समाज की समृद्धि को सुदृढ़ करने हेतु विकसित एक संगठित आर्थिक संस्था थी। इसका मुख्य उद्देश्य धन सृजन एवं संचय की प्रक्रिया को सरल बनाना, साथ ही राज्य की सत्ता को सुदृढ़ करना था। यह प्रणाली वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं सुव्यवस्थित संगठन का प्रमाण थी, विशेषतः मुद्रा निर्माण एवं उपयोग के क्षेत्र में।

6.1 प्राचीन मुद्रा प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ

1. वैज्ञानिक मुद्रा निर्माण एवं धातु संरचना

प्राचीन भारत में मुद्राएँ यों ही अनियोजित रूप से नहीं बनाई जाती थीं, वरन् इन्हें वैज्ञानिक विधियों द्वारा मानक भार पर आधारित बनाकर निर्मित किया जाता था। प्रत्येक सिक्के में विभिन्न धातुओं का संतुलित मिश्रण किया जाता था जिससे उसकी गुणवत्ता बनी रहे एवं नकली सिक्कों की संभावना न्यूनतम हो।

उदाहरणार्थ, एक मानक सिक्का 'पण' (Pana) का भार 16 माषा होता था, जिसमें शामिल थे:

- 11 माषा चाँदी
- 4 माषा ताँबा
- 1 माषा लोहा

इस मिश्रण से मुद्रा की मूल्यवत्ता एवं स्थायित्व सुनिश्चित होता था।

2. मुद्रा की भूमिका एवं परिसंचरण

मुद्राओं का उपयोग प्राचीन भारत में प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था के संचालन में केन्द्रीय भूमिका निभाने हेतु किया जाता था, जैसे कि:

- नागरिकों से कर वसूली
- दंड एवं शुल्क आरोपण
- अधिकारियों एवं कर्मचारियों को वेतन भुगतान

राज्य के पास मुद्रा निर्माण एवं धातु खनन पर पूर्ण नियंत्रण था। इस केन्द्रीय नियंत्रण से पूरे राज्य में मुद्रा का मानकीकरण संभव हुआ और मूल्यहीनता अथवा असमानता को रोका जा सका।

3. सिक्कों का कालानुक्रमिक विकास

प्रारंभ में 'पण' जैसे चाँदी या मिश्रित धातु के सिक्के सामान्य रूप से प्रयुक्त होते थे। कालांतर में व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार के साथ-साथ विभिन्न मूल्य वर्गों की नई मुद्राएँ प्रचलन में आईं:

- कौड़ी
- ढेला
- आना
- दमड़ी
- पाई
- रुपया

छोटे लेन-देन हेतु कौड़ियों का प्रयोग होता था, जबकि बड़े मूल्य की मुद्रा के रूप में रुपया प्रचलित हुआ।

6.2 भाषा एवं संस्कृति पर मुद्रा प्रणाली का प्रभाव

मुद्राओं के दैनिक उपयोग ने जनजीवन की भाषा एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को भी प्रभावित किया। कई कहावतें व मुहावरे मुद्रा शब्दों से प्रेरित हैं, जैसे:

- **"एक फूटी कौड़ी नहीं दूँगा"** – कुछ भी न देने की दृढ़ता
- **"ढेले भर का काम नहीं करते हो"** – कार्य के प्रति पूर्ण उपेक्षा
- **"चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए"** – अत्यधिक कंजूसी का भाव
- **"पाई-पाई का हिसाब रखना"** – अत्यधिक वित्तीय अनुशासन
- **"सोलह आने सच बोल रहा हूँ"** – सम्पूर्ण सत्य कहना

ये मुहावरे दिखाते हैं कि मुद्रा किस प्रकार आमजन के विचारों और अभिव्यक्तियों में समाहित हो चुकी थी।

6.3 स्वतंत्रता-उत्तर मुद्रा मूल्य प्रणाली

1947 में भारत की स्वतंत्रता के पश्चात भी पारंपरिक मुद्रा इकाइयों का प्रभाव कुछ समय तक बना रहा। 1957 में दशमलव प्रणाली के पूर्व प्रचलित विनिमय संरचना इस प्रकार थी:

1. 3 टूटी कौड़ियाँ = 1 कौड़ी
2. 10 कौड़ी = 1 दमड़ी
3. 2 दमड़ी या 1.5 पाई = 1 ढेला
4. 3 पाई = 1 पैसा (पुराना)

5. 4 पैसा = 1 आना
6. 16 आने या 64 पैसा = 1 रुपया

यह दशमलव पूर्व प्रणाली दर्शाती है कि प्राचीन मुद्रा प्रणाली का प्रभाव 20वीं शताब्दी तक विद्यमान था।

7. आधुनिक विश्व में प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता

प्राचीन भारत की आर्थिक प्रणाली एक अनूठे समन्वय पर आधारित थी–जिसमें व्यावहारिक प्रशासन, नैतिक मूल्य एवं आध्यात्मिक उद्देश्य समाहित थे। यद्यपि यह चिंतन प्राचीन काल में विकसित हुआ, परंतु इसकी अवधारणाएँ आज की वैश्विक चुनौतियों जैसे कि आर्थिक विषमता, पर्यावरणीय संकट, वित्तीय अस्थिरता एवं पूँजीवाद की नैतिक समस्याओं के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध हो रही हैं।

7.1 नैतिक पूँजीवाद और धर्मसम्मत अर्थव्यवस्था

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में धर्म (नैतिकता) को आर्थिक गतिविधियों का मूलाधार माना गया है। विशेष रूप से हिन्दू, बौद्ध एवं जैन परंपराओं में यह प्रतिपादित है कि अर्थ (धन) की प्राप्ति तभी उचित है जब वह धर्म के अनुकूल हो।

आधुनिक प्रासंगिकता

आज जब कॉर्पोरेट लालच, कर चोरी एवं श्रमिक शोषण आम हो गए हैं, तो निम्नलिखित प्राचीन भारतीय मूल्य प्रेरणा दे सकते हैं:

- **दान** (समाजोपयोगी दान देना)
- **अपरिग्रह** (संपत्ति का संग्रह न करना)
- **सम्मा आजीव** (बौद्ध धर्म में उचित आजीविका)

ये मूल्य आज की CSR (कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व) एवं ESG (पर्यावरण, समाज व शासन) की अवधारणाओं को नैतिक गहराई प्रदान कर सकते हैं।

7.2 सतत विकास और पारिस्थितिक संतुलन

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य पर निरंतर बल दिया गया है। कृषि, जल प्रबंधन एवं वन उपयोग की नीतियाँ केवल उत्पादन हेतु नहीं थीं, अपितु

संरक्षण की भावना से भी प्रेरित थीं। *अर्थशास्त्र* तथा विभिन्न *स्मृतियों* में वृक्षों की अकारण कटाई, नदियों का प्रदूषण अथवा प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक उपयोग पर दंड का प्रावधान था, जो पारिस्थितिक संतुलन के प्रति प्राचीन जागरूकता को दर्शाता है।

आधुनिक प्रासंगिकता

जब आज का विश्व जलवायु परिवर्तन, वनों की अंधाधुंध कटाई, जल संकट एवं जैव विविधता की क्षति जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब प्राचीन दृष्टिकोण आधुनिक सतत विकास के प्रयासों हेतु दार्शनिक आधार प्रदान कर सकते हैं:

- प्रकृति को पूज्य मानना, वस्तु नहीं।
- स्थानीय और चक्रीय अर्थव्यवस्थाओं को प्रोत्साहन देना, जो अपशिष्ट एवं अति-उत्पादन को न्यूनतम करें।
- पर्यावरण नीति में नैतिक तत्वों का समावेश करना, केवल तकनीकी उपायों से आगे बढ़कर।

उदाहरणस्वरूप, *भगवद्गीता* में वर्णित "**लोकसंग्रह**" (सभी के कल्याण) की अवधारणा ऐसी नीतियों को प्रेरित कर सकती है जो अल्पकालिक आर्थिक लाभ के स्थान पर दीर्घकालिक पारिस्थितिक संरक्षण को प्राथमिकता दें।

7.3 समावेशी शासन व्यवस्था और विकेन्द्रीकरण

प्राचीन भारतीय ग्रंथों, विशेषतः *अर्थशास्त्र* में शासन एवं प्रशासन के विस्तृत ढाँचे वर्णित हैं–जैसे कर-संग्रह, सार्वजनिक निर्माण, नगरीय नियोजन, एवं आर्थिक पर्यवेक्षण। नीति निर्माण में स्थानीय अधिकारियों एवं समुदाय प्रमुखों की भूमिका दर्शाती है कि शासन प्रणाली विकेन्द्रीकृत होने की पक्षधर थी।

आधुनिक प्रासंगिकता

वर्तमान भारत तथा अन्य लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में स्थानीय स्व-शासन की महत्ता पर विशेष बल दिया जा रहा है, विशेषतः निम्न माध्यमों से:

- पंचायती राज संस्थाएँ
- सहकारी आन्दोलन
- जमीनी स्तर पर विकास के वैकल्पिक मॉडल

प्राचीन भारतीय आर्थिक शासन इन आधुनिक प्रवृत्तियों को सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आधार दे सकता है। स्थानीय उत्तरदायित्व, जनकल्याण एवं सामुदायिक सहभागिता पर

बल–ये सब आधुनिक *नीचे से ऊपर तक* की विकास रणनीतियों के साथ मेल खाते हैं, और गांधीवादी ग्राम स्वराज की भावना को भी समृद्ध करते हैं।

7.4 श्रम और व्यवसाय

प्राचीन भारत में कृषि, कारीगर, सैन्य तथा घरेलू कार्य जैसे विविध श्रम रूपों को सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में स्थान दिया गया था। इन्हें *वर्ण व्यवस्था* और *श्रेणियों* के माध्यम से संगठित किया गया था। यद्यपि जाति आधारित व्यवसाय विभाजन को सामाजिक विषमता के कारण आलोचना प्राप्त है, तथापि श्रम के संगठनात्मक सिद्धांतों में निम्न विशेषताएँ विद्यमान थीं:

- मानक वेतन एवं अनुबंध व्यवस्था
- कौशल-आधारित भूमिका वितरण
- श्रेणियों के भीतर परस्पर सहायता
- कारीगरों एवं श्रमिकों का संरक्षण

आधुनिक प्रासंगिकता

आज के श्रम बाज़ार में स्वचालन, अनौपचारिक रोजगार, और *गिग इकॉनॉमी* जैसी नवीन व्यवस्थाओं के कारण गहरे बदलाव आ रहे हैं। ऐसे में कुछ प्राचीन विचार प्रेरणा दे सकते हैं:

- श्रम की गरिमा का सम्मान करते हुए कौशल-आधारित समावेशी रोजगार नीति
- प्राचीन श्रेणियों की भाँति श्रमिक संघ एवं सहकारी संस्थाएँ
- रोजगार, वेतन एवं कार्यस्थल नैतिकता में सामाजिक उत्तरदायित्व की मान्यता

साथ ही, प्राचीन ग्रंथों में *न्यायसंगत वेतन*, *ऋण मुक्ति*, एवं *आजीविका संरक्षण* की चिंता वर्तमान *मज़दूरी विधानों*, *न्यूनतम वेतन* नीति एवं *सामाजिक सुरक्षा योजनाओं* को नैतिक आधार प्रदान कर सकती है।

7.5 दान, पुनर्वितरण और सामाजिक कल्याण

प्राचीन भारतीय संस्कृति में यह विचार गहराई से समाहित था कि धन केवल नैतिकता से अर्जित ही नहीं किया जाए, बल्कि उसे समाज के साथ साझा करना भी आवश्यक है। *दान*

(दान करना), *यज्ञ* (हवन-यज्ञ जैसे सामाजिक अनुष्ठान) एवं *भिक्षा* (अन्न अथवा धन का वितरण) को राजा, व्यापारी एवं गृहस्थों की सामाजिक ज़िम्मेदारी माना गया।

मनुस्मृति एवं *अर्थशास्त्र* जैसे ग्रंथों में उल्लिखित है:

- राज्य द्वारा अकाल राहत हेतु प्रावधान
- मंदिरों, सार्वजनिक सुविधाओं एवं शैक्षणिक संस्थानों को दान
- निर्धनों, विधवाओं, अनाथों एवं विकलांगों के संरक्षण हेतु नियम

आधुनिक प्रासंगिकता

ये सिद्धांत आज की आधुनिक अवधारणाओं से तुलनीय हैं:

- **सार्वभौमिक आधारभूत आय (UBI)**
- **प्रगतिशील कर प्रणाली**
- **सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा एवं शिक्षा हेतु अनुदान**
- **सामाजिक परिवर्तन हेतु परमार्थ (philanthropy)**

7.6 व्यापार, वाणिज्य और वैश्वीकरण

प्राचीन भारत के व्यापारी एक सजीव एवं वैश्विक व्यापार प्रणाली का अभिन्न अंग थे। आचार-संहिता, माप-तौल की मानकीकरण व्यवस्था, *वचनपत्रों (promissory notes)* का प्रचलन, तथा बाज़ार नियमन दर्शाते हैं कि भारत में व्यापारिक ढाँचा अत्यंत परिष्कृत था।

आधुनिक प्रासंगिकता

आज के वैश्विक आपूर्ति-शृंखलाओं, व्यापार युद्धों एवं आर्थिक राष्ट्रवाद के युग में, प्राचीन भारतीय व्यापार मॉडल से निम्नलिखित शिक्षाएँ ली जा सकती हैं:

- श्रम, पर्यावरण और स्थानीय संस्कृति का सम्मान करते हुए **नैतिक वैश्वीकरण** को बढ़ावा देना
- **निष्पक्ष व्यापार** पद्धतियों को प्रोत्साहित करना
- **लघु एवं मध्यम उद्यमों** को प्राचीन श्रेणियों की भावना में समर्थन देना

इसके अतिरिक्त, प्राचीन व्यापारी केवल वस्त्र, मसाले या रत्न ही नहीं ले जाते थे, बल्कि **संस्कृति एवं आध्यात्मिक मूल्य** भी साथ ले जाते थे–जो यह दर्शाता है कि वाणिज्य केवल लाभ का साधन नहीं, अपितु *सांस्कृतिक संवाद* एवं *मृदु शक्ति कूटनीति* का भी माध्यम हो सकता है।

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन की प्रासंगिकता केवल ऐतिहासिक या दार्शनिक नहीं है–यह व्यावहारिक, समसामयिक और रूपांतरणकारी है। आज का विश्व जब पूँजीवाद की नैतिक मोहभंग, पारिस्थितिक विनाश और सामाजिक विषमता जैसी गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है, तब प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण ऐसे वैकल्पिक ढाँचे प्रस्तुत करते हैं जिनका केन्द्रबिंदु है–नैतिकता, सततता और समष्टि-कल्याण।

यद्यपि इन विचारों को आधुनिक जटिलताओं के अनुरूप रूपांतरित करना आवश्यक है, परंतु इनके मूल सिद्धांत–**नैतिक शासन, पारिस्थितिक संतुलन, न्यायसंगत व्यापार, विकेन्द्रीकृत प्रशासन और नैतिक संपन्नता**–नीतियों एवं व्यवहारों में नवाचार की प्रेरणा बन सकते हैं। भारत के प्राचीन आर्थिक ज्ञान की पुनः खोज कोई अतीत-निष्ठालु भावुकता नहीं है; यह *भविष्य के श्रेष्ठ निर्माण हेतु अतीत से शिक्षण* की एक विवेकपूर्ण एवं दूरदर्शी पहल है।

8. वर्तमान भारतीय आर्थिक चिंतन: नवाचार और वैश्विक नेतृत्व



आधुनिक भारतीय आर्थिक चिंतन एक गहन परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, जो देश की सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि, डिजिटल प्रगति और वैश्विक नेतृत्व की आकांक्षाओं से प्रेरित है। यह अब केवल सकल घरेलू उत्पाद (GDP) या औद्योगिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें समावेशी विकास, तकनीकी सशक्तिकरण, पर्यावरणीय स्थिरता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग जैसे पहलुओं को भी प्राथमिकता दी जा रही है। यह दृष्टिकोण इस विश्वास को दर्शाता है कि भारत न केवल वैश्विक अर्थव्यवस्था का हिस्सा है, बल्कि वह

उसकी दिशा तय करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसी सोच के केंद्र में है भारत का **5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था** बनने का लक्ष्य, जो नवाचार, निवेश, बुनियादी ढांचे और समावेशिता पर आधारित है।

8.1 G20 की अध्यक्षता

भारत की G20 अध्यक्षता (2023) उसके आर्थिक कूटनीति और वैश्विक प्रभाव का एक ऐतिहासिक क्षण था। देशभर में आयोजित 200 से अधिक बैठकों और दिल्ली में सफल शिखर सम्मेलन के ज़रिए भारत ने डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना, समावेशी विकास, महिला नेतृत्व और जलवायु कार्रवाई जैसे विषयों को वैश्विक आर्थिक एजेंडे में प्रमुखता से स्थान दिलाया। *"वसुधैव कुटुंबकम्"* या *"एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य"* की थीम के तहत भारत ने मानव-केंद्रित वैश्वीकरण की अवधारणा को आगे बढ़ाया, जिसमें व्यक्ति और पर्यावरण को आर्थिक नीतियों के केंद्र में रखा गया।

भारत ने इस मंच का उपयोग **वैश्विक दक्षिण** (Global South)—यानी विकासशील देशों—की आवाज़ बनने के लिए किया, जिन्हें अक्सर वैश्विक निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। जियोपॉलिटिकल तनावों के बावजूद G20 घोषणापत्र पर सहमति बनाकर भारत ने यह सिद्ध कर दिया कि वह वैश्विक मंचों पर संवाद और समाधान को संतुलित रूप से आगे बढ़ा सकता है। इस नेतृत्व ने भारत की आर्थिक साख को बढ़ाया और दिखाया कि एक उभरती अर्थव्यवस्था किस तरह वैश्विक दिशा को प्रभावित कर सकती है।

8.2 डिजिटल इंडिया और UPI: नई अर्थव्यवस्था की रीढ़

वर्तमान भारतीय आर्थिक दृष्टिकोण का एक और मुख्य स्तंभ है **डिजिटल इंडिया अभियान**, जिसे 2015 में शुरू किया गया था। इसका उद्देश्य तकनीक के माध्यम से शासन, सेवाओं और आर्थिक भागीदारी को आसान और पारदर्शी बनाना है। डिजिटल इंडिया ने न केवल इंटरनेट की पहुँच को बढ़ाया है, बल्कि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में डिजिटल मंचों के उपयोग को भी प्रोत्साहित किया है।



Source: https://dic.gov.in/

इस अभियान की सबसे क्रांतिकारी उपलब्धि रही है **यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस** (UPI)। भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (NPCI) द्वारा विकसित यह रीयल-टाइम भुगतान प्रणाली अब हर महीने **12 अरब से अधिक लेन-देन** कर रही है। UPI ने न केवल लेन-देन को त्वरित और सुलभ बनाया, बल्कि करोड़ों लोगों को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ दिया है और छोटे व्यापारों को सशक्त किया है। भारत का डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना मॉडल—जैसे आधार, डिजिलॉकर और CoWzIN—दुनिया भर में अनुकरणीय बन गया है। यह दिखाता है कि कैसे राज्य-प्रेरित डिजिटल प्रणाली आर्थिक समावेश, नवाचार और लचीलापन का माध्यम बन सकती है।

8.3 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था: रणनीति और चुनौतियाँ

भारत को 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाना मात्र एक आंकड़ा नहीं, बल्कि एक समग्र रणनीति का हिस्सा है जो देश को वैश्विक निर्माण, नवाचार और ज्ञान-आधारित केंद्र के रूप में स्थापित करने की दिशा में है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार *मेक इन इंडिया, राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन, निर्यात बढ़ोतरी, और व्यवसाय करने में सुगमता* जैसी पहलों पर ध्यान केंद्रित कर रही है।

इसके साथ ही **आत्मनिर्भर भारत अभियान**, जिसे कोविड-19 महामारी के बाद शुरू किया गया था, घरेलू उत्पादन और रणनीतिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने की दिशा में एक ठोस प्रयास है। *उत्पादन आधारित प्रोत्साहन (PLI)* योजनाएँ इसका एक प्रमुख उदाहरण हैं। हालांकि, इस लक्ष्य तक पहुँचना आसान नहीं है। *बेरोज़गारी, महंगाई, शिक्षा की गुणवत्ता, कौशल विकास और पर्यावरणीय संतुलन* जैसे मुद्दों पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए सरकार नई शिक्षा नीति (NEP 2020), श्रम सुधार और हरित ऊर्जा निवेश जैसे क्षेत्रों में सक्रिय कार्य कर रही है।

8.4 संतुलित और नैतिक आर्थिक ढांचा

वर्तमान भारतीय आर्थिक चिंतन की सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि यह *विकास और समानता, तकनीक और परंपरा, वैश्वीकरण और आत्मनिर्भरता* के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है। यह न तो पूरी तरह से राज्य-नियंत्रित मॉडल है और न ही केवल बाजार आधारित। बल्कि यह एक **मिश्रित विकास मॉडल** है, जिसमें सार्वजनिक निवेश, निजी नवाचार, वैश्विक भागीदारी और डिजिटल तकनीक सभी मिलकर विकास को आगे बढ़ा रहे हैं।

9. निष्कर्ष

प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतवर्ष में समाज की भौतिक जीवन-व्यवस्था एक गहन रूप से समन्वित, नैतिक तथा व्यावहारिक ढाँचे पर आधारित थी, जो आध्यात्मिक एवं नैतिक आदर्शों के साथ पूर्णतः समरस थी। जहाँ आधुनिक आर्थिक प्रतिमान प्रायः भौतिक प्रगति को मूल्यों से पृथक कर देते हैं, वहीं प्राचीन भारतीय मनीषियों ने–**अर्थशास्त्र**, **मनुस्मृति**, **उपनिषद्**, **शुक्रनीति** एवं अन्य ग्रंथों के माध्यम से–ऐसी आर्थिक दृष्टि प्रस्तुत की जिसमें अर्थ का स्वरूप **धर्म**, **लोकसंग्रह** (सामूहिक कल्याण) एवं **पार्यावरणीय संतुलन** से अविच्छिन्न था। इस ग्रंथ में कृषि, उद्योग, वाणिज्य एवं बैंकिंग जैसे आर्थिक क्षेत्रों के साथ-साथ कारीगरों, श्रमिकों, व्यापारियों एवं प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिकाओं का अनुशीलन किया गया है। मुद्रा-प्रणाली, राज्य की नियामक व्यवस्थाएँ तथा लोकोक्तियों एवं सूक्तियों में निहित सांस्कृतिक मूल्य, सभी इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था अनुशासन, नैतिकता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित थी। आर्थिक संस्थाओं की रचना केवल उत्पादन या संपत्ति के वितरण हेतु नहीं, अपितु सामाजिक समरसता की रक्षा एवं निर्बलों के संरक्षण हेतु की गई थी।

विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत में आर्थिक क्रियाकलापों को कभी भी पृथक स्वार्थ की पूर्ति का लक्ष्य नहीं माना गया। **अर्थ (धन)** की उपादेयता स्वीकृत थी, परन्तु वह तभी ग्राह्य थी जब वह **धर्म** के अनुकूल अर्जित हो तथा समाज के **समष्टि-कल्याण** हेतु उपयुक्त रूप में प्रयुक्त हो। **दान**, **सम्यक आजीविका** तथा **अपरिग्रह (संपत्ति का अनासक्त भाव)** केवल दार्शनिक कल्पनाएँ नहीं थीं, अपितु जीवन के व्यवहारिक आचरणों का मार्गदर्शन करने वाले जीवित सिद्धांत थे।

आज जब विश्व आर्थिक विषमता, पर्यावरणीय संकट एवं नैतिक पतन जैसी जटिल समस्याओं से जूझ रहा है, तब ये प्राचीन सिद्धांत हमें यह स्मरण कराते हैं कि समृद्धि तभी स्थायी हो सकती है जब वह न्याय, संयम एवं साझा मानवता की भावना द्वारा निर्देशित हो।

अतः यह पुस्तक केवल भारत की आर्थिक विरासत का अनावरण नहीं करता, बल्कि उसे वर्तमान एवं भविष्य के लिए **बोध और प्रेरणा के स्रोत** के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करता है–एक ऐसी विरासत जिसमें अर्थव्यवस्था केवल बाज़ार और लाभ तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसका उद्देश्य था नैतिक ध्येय, सामाजिक कल्याण और प्रकृति के साथ संतुलन।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. Kautilya (Chanakya), *Arthashastra*, Penguin Classics (translated by L.N. Rangarajan), 1992.
2. Ajit K. Dasgupta, *A History of Indian Economic Thought*, Routledge, 1993 (reprinted 2015).
3. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), *"Introduction to Indian Knowledge System"*, PHI learning private ltd.
4. R.S. Sharma, *Material Culture and Social Formations in Ancient India*, Macmillan Publishers India, 1983.
5. D.D. Kosambi, *An Introduction to the Study of Indian History*, Popular Prakashan, 1956.
6. Debiprasad Chattopadhyaya, *Lokayata: A Study in Ancient Indian Materialism*, People's Publishing House, 1959.
7. S. Kalyanaraman, *Economic History of Ancient India: Artha, 'Wealth' of Vedic Rastram*, CreateSpace Independent Publishing Platform, 2016.
8. O.P. Pandey (2023), *"Bharat Vaibhav"*, National Book Trust, India.
9. Manu. (2004). *The Law Code of Manu* (P. Olivelle, Trans.). Oxford University Press. *(Original work ca. 2nd century BCE – 3rd century CE)*
10. Olivelle, P. (Ed. & Trans.). (2005). *Manu's Code of Law: A Critical Edition and Translation of the Mānava-Dharmaśāstra*. Oxford University Press.
11. Cowell, E.B. (Ed.). (1895). *The Jataka or Stories of the Buddha's Former Births* (Vols. I–VI). Cambridge University Press.
12. Doniger, W., & Smith, B.K. (Trans.). (1991). *The Laws of Manu*. Penguin Books.

13. Griffith, R.T.H. (Trans.). (1896). *The Hymns of the Rigveda*. Evinity Publishing Inc.

14. Kosambi, D.D. (1956). *An Introduction to the Study of Indian History*. Popular Prakashan.

15. Sharma, R.S. (1983). *Perspectives in Social and Economic History of Early India*. Munshiram Manoharlal.

16. Gupta, B.L. (2023). *Ancient Indian Economics Thoughts and Systems*. Kitabwale

17. Jain, A.R. (2020). *Chanakya Father of Modern Economics*. Kitabwale.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. 'अर्थशास्त्र' में 'पण्याध्यक्ष' का कर्तव्य क्या था ?

   क. कर संग्रहण

   ख. सेना भर्ती

   ग. बाज़ार नियंत्रण

   घ. मन्दिर प्रबन्धन

2. अर्थशास्त्र का व्यापक उद्देश्य क्या होता है ?

   क. राजनैतिक शासन

   ख. आध्यात्मिक मुक्ति

   ग. संसाधनों का प्रबंधन और धन का वितरण

   घ. विधिक प्रणाली

3. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन किसमें गहराई से निहित है ?

   क. प्रौद्योगिकी और युद्ध

   ख. कला और साहित्य

   ग. धर्म, दर्शन और राजनीति

   घ. व्यापार मार्ग और साम्राज्य

4. प्राचीन भारत में राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर कौन-सा ग्रंथ एक व्यापक ग्रन्थ माना जाता है ?

   क. मनुस्मृति

   ख. रामायण

   ग. अर्थशास्त्र

   घ. नारद स्मृति

5. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन को आधुनिक अर्थशास्त्र से क्या अलग करता है?
   - क. सैन्य रणनीति पर ध्यान
   - ख. मात्रात्मक मॉडल
   - ग. समग्र और नैतिक दृष्टिकोण
   - घ. केन्द्रीय बैंक प्रणाली

6. चार पुरुषार्थों में से धन से सम्बन्धित मुख्य पुरुषार्थ कौन-सा है?
   - क. धर्म
   - ख. अर्थ
   - ग. काम
   - घ. मोक्ष

7. प्राचीन भारतीय विचारधारा के अनुसार आर्थिक गतिविधियों का उद्देश्य क्या होना चाहिए?
   - क. लाभ और विस्तार
   - ख. राज्य नियंत्रण और नियमन
   - ग. सामाजिक समरसता और सामूहिक कल्याण
   - घ. सैन्य वर्चस्व

8. "लोकसंग्रह" का क्या महत्त्व है?
   - क. व्यक्तिगत आत्मबोध
   - ख. कलात्मक अभिव्यक्ति
   - ग. सामूहिक कल्याण
   - घ. राजनीतिक अधिकार

9. यजुर्वेद में व्यापार के सिद्धांत को किस शब्द से व्यक्त किया गया है?
   - क. मोक्ष
   - ख. विनिमय
   - ग. यज्ञ
   - घ. दण्ड

10. निम्न में से कौन-सा प्राचीन भारतीय नगर प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के रूप में वर्णित नहीं है?
    - क. पाटलिपुत्र
    - ख. उज्जैन
    - ग. तक्षशिला
    - घ. हड़प्पा

11. अथर्ववेद की "चरितम्-उत्थितम्" उक्ति किस पर बल देती है?
    - क. रणनीतिक युद्ध
    - ख. व्यापार में शिष्ट आचरण
    - ग. राजगद्दी उत्तराधिकार
    - घ. व्यापारियों का प्रवास

12. "सुखस्य मूलं धर्मः, धर्मस्य मूलं अर्थः" से क्या संकेत मिलता है?
    - क. धन सुख का मूल है
    - ख. सुख धर्म से उत्पन्न होता है, और धर्म अर्थ से
    - ग. अर्थ का कोई महत्व नहीं
    - घ. धर्म सीधे मोक्ष की ओर ले जाता है

13. ऋग्वेद के अनुसार धन कैसे प्राप्त किया जाना चाहिए?
    - क. उत्तराधिकार द्वारा
    - ख. विजय द्वारा
    - ग. धर्मपूर्वक और सत्यपूर्वक
    - घ. दैवी हस्तक्षेप द्वारा

14. वैदिक काल में पशुपालन से कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की ओर बदलाव किससे चिन्हित होता है?
    - क. चीन से व्यापार
    - ख. राज्यों की स्थापना
    - ग. भूमि को सम्पत्ति के रूप में महत्व
    - घ. मनुस्मृति की रचना

15. 'अर्थ' की अवधारणा किस काल में उभरी?
    क. उपनिषदिक
    ख. प्रारम्भिक वैदिक
    ग. बौद्ध
    घ. मौर्य

16. उपनिषदों में किस आश्रम में आर्थिक गतिविधियों पर बल दिया गया है?
    क. संन्यास
    ख. वानप्रस्थ
    ग. गृहस्थ
    घ. ब्रह्मचर्य

17. मनुस्मृति विशेष रूप से किसका विवरण देती है?
    क. बुद्ध के उपदेश
    ख. कृषि तकनीक
    ग. कर्तव्य, कानून और सम्पत्ति अधिकार
    घ. समुद्री व्यापार नीति

18. आर्थिक कार्यों जैसे कृषि और व्यापार के लिए कौन-सा वर्ण उत्तरदायी था?
    क. ब्राह्मण
    ख. क्षत्रिय
    ग. वैश्य
    घ. शूद्र

19. प्राचीन भारत में पुनर्वितरण द्वारा आर्थिक न्याय को किसने बढ़ावा दिया?
    क. श्रेणियाँ
    ख. भिक्षा और दान
    ग. ऋण बैंकिंग
    घ. मुक्त व्यापार क्षेत्र

20. प्राचीन भारतीय आर्थिक ग्रंथों में सूदखोरी को कैसे देखा गया?
    क. व्यापारियों के लिए प्रोत्साहित
    ख. राजकीय अनुज्ञा के अन्तर्गत स्वीकार्य
    ग. निन्दनीय
    घ. युद्ध के वित्तपोषण हेतु आवश्यक

21. प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में धार्मिक संस्थाओं की भूमिका क्या थी?
    क. कर संग्रह
    ख. दान के माध्यम से पुनर्वितरण
    ग. निर्यात प्रबंधन
    घ. बैंकिंग नियम

22. जैन आर्थिक विचारधारा के अनुसार क्या दृष्टिकोण था?
    क. बिना प्रतिबंध के भौतिक धन को प्रोत्साहन
    ख. राज्य द्वारा नियंत्रित व्यापार
    ग. न्यूनतम हिंसा के साथ नैतिक पूँजीवाद
    घ. सभी व्यापारिक गतिविधियों पर प्रतिबंध

23. बौद्ध आर्थिक चिन्तन में गृहस्थों के लिए कौन-सा मार्ग सुझाया गया है?
    क. आत्मत्याग और एकांत
    ख. हर मूल्य पर धन
    ग. मध्यम मार्ग: ईमानदार और संयमित धन
    घ. सम्पत्ति का पूर्ण त्याग

24. जैन दर्शन में "अपरिग्रह" का क्या अर्थ है?
    क. धनार्जन
    ख. दान
    ग. गैर-संचय (अस्वामित्व)
    घ. कर व्यवस्था

25. वैदिक आर्थिक प्रणाली में धन को कैसे प्रयोग में लाना चाहिए?
   क. राजाओं के अधीन केन्द्रित
   ख. केवल यज्ञों में प्रयोग
   ग. धर्मपूर्वक संचय और उदारतापूर्वक व्यय
   घ. सुरक्षा हेतु संचय

26. आधुनिक प्रणालियों की तुलना में प्राचीन भारतीय आर्थिक दर्शन की एक विशिष्ट विशेषता क्या है?
   क. सिक्कों का प्रयोग
   ख. बाज़ार आधारित प्रतिस्पर्धा
   ग. नैतिकता, आध्यात्मिकता और अर्थनीति का समन्वय
   घ. विदेशी व्यापार पर निर्भरता

27. 'अर्थशास्त्र' के रचयिता के रूप में परम्परागत रूप से किसे माना जाता है?
   क. मनु
   ख. शुक्राचार्य
   ग. कौटिल्य
   घ. बुद्ध

28. 'अर्थशास्त्र' शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?
   क. धर्म का विज्ञान
   ख. ध्यान की कला
   ग. धन और राज्य संचालन का विज्ञान
   घ. आचार संहिता

29. कौटिल्य के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण पुरुषार्थ कौन-सा है?
   क. धर्म
   ख. अर्थ
   ग. काम
   घ. मोक्ष

30. 'अर्थशास्त्र' की पाण्डुलिपि का पुनः खोज वर्ष कौन-सा था?
   क. 1856
   ख. 1947
   ग. 1905
   घ. 2001

31. "अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति" का क्या अर्थ है?
   क. नैतिक धन सदा स्थायी रहता है
   ख. धन दान करना चाहिए
   ग. अन्याय से प्राप्त धन दस वर्षों में नष्ट हो जाता है
   घ. धन दिव्य होता है

32. 'अर्थशास्त्र' के आर्थिक ढाँचे में राजा की भूमिका क्या थी?
   क. धार्मिक प्रमुख
   ख. मुख्य आर्थिक योजनाकार एवं प्रशासक
   ग. दार्शनिक
   घ. केवल सैन्य सेनापति

33. निम्नलिखित में से किस आर्थिक क्षेत्र को 'अर्थशास्त्र' में सीधे नियंत्रित नहीं किया गया था?
   क. कृषि
   ख. व्यापार
   ग. खनन
   घ. अंतरिक्ष अन्वेषण

34. 'अर्थशास्त्र' में 'बलि' का क्या तात्पर्य है?
   क. राजकीय कर
   ख. भूमि कर
   ग. पुजारियों को दिया गया उपहार
   घ. सैनिक कर

35. कठिन समय में कौटिल्य किस प्रकार के कराधान की सिफारिश करते थे?
   क. प्रगतिशील कराधान
   ख. उदार कराधान
   ग. कर नहीं
   घ. स्थिर कराधान

36. भारत के प्राचीन आर्थिक चिन्तन से मिलने वाला व्यापक सन्देश क्या है?
   क. प्रौद्योगिकी को नैतिकता का स्थान लेना चाहिए
   ख. अल्पकालिक लाभ ही प्रमुख हैं
   ग. नैतिकता और स्थायित्व दीर्घकालिक कल्याण के लिए आवश्यक हैं
   घ. व्यापार को सीमित करना चाहिए

37. शुक्राचार्य के अनुसार "वार्ता" में क्या सम्मिलित होता है?
   क. सैन्य रणनीति
   ख. धार्मिक अनुष्ठान
   ग. ऋण, कृषि, व्यापार और गौ-संरक्षण
   घ. योगाभ्यास

38. बौद्ध आर्थिक नैतिकता के अनुसार किन व्यवसायों को हतोत्साहित किया गया?
   क. कृषि
   ख. शस्त्र व्यापार और दासता
   ग. शिक्षण
   घ. सिलाई

39. बौद्ध धर्म में "सम्मा आजीव" का क्या अर्थ है?
   क. सही ध्यान
   ख. सही वाक्
   ग. सही आजीविका
   घ. सही प्रयास

40. जैन धर्म में आर्थिक जीवन को कौन-सा सिद्धांत निर्देशित करता था?
   क. अहिंसा और अपरिग्रह
   ख. अधिकतम लाभ
   ग. विदेशी व्यापार
   घ. श्रमिक शोषण

41. चाणक्य के अनुसार मनुष्य को किससे प्रेरणा मिलती है?
   क. धर्म
   ख. ध्यान
   ग. इच्छाएँ
   घ. पुनर्जन्म

42. शुक्रनीति में 'अनर्थ' का क्या अर्थ है?
   क. धन की प्रचुरता
   ख. धर्मसम्मत आय
   ग. विपत्ति
   घ. सैन्य सम्पत्ति

43. 'अर्थशास्त्र' के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि कौन-सी थी?
   क. धातुकर्म
   ख. व्यापार
   ग. कृषि
   घ. मनोरंजन

44. 'अर्थशास्त्र' में सिंचाई व्यवस्था के लिए क्या उपाय सुझाया गया है?
   क. निजीकरण
   ख. राज्य द्वारा प्रबंधन और समर्थन
   ग. मठों का नियंत्रण
   घ. उपेक्षा

45. किस ग्रंथ में वर्ण-आधारित श्रम विभाजन का वर्णन है?
   क. अर्थशास्त्र
   ख. मनुस्मृति
   ग. शुक्रनीति
   घ. जातक कथाएँ

46. 'धर्मशास्त्र' में 'स्त्रीधन' क्या था?
   क. पुरुषों द्वारा प्राप्त दहेज
   ख. महिलाओं की स्वामित्व वाली सम्पत्ति
   ग. मन्दिरों को दान
   घ. महिलाओं पर कर

47. धर्मशास्त्र के अनुसार कृषि उपज में राज्य का सामान्य हिस्सा कितना था?
   क. एक-चौथाई
   ख. एक-षष्ठांश
   ग. आधा
   घ. सम्पूर्ण उपज

48. बौद्ध संघीय नियमों के अनुसार आर्थिक जीवन में क्या नियंत्रित होता था?
   क. कृषि तकनीक
   ख. दान और सामुदायिक उपभोग
   ग. सैन्य व्यय
   घ. कर प्रणाली

49. मनुस्मृति में धन के सन्दर्भ में कौन-सी नैतिक चिन्ता व्यक्त की गई है?
   क. अत्यधिक संचय को प्रोत्साहन
   ख. अमर्यादित धन (अपराज अर्थ) धार्मिक उपयोग के योग्य नहीं है
   ग. धन केवल राजा को ही मिलना चाहिए
   घ. महिलाओं को धन का स्वामित्व नहीं होना चाहिए

50. 'अर्थशास्त्र' के अनुसार वेतन निर्धारण का क्या दृष्टिकोण था?
   क. सभी के लिए समान वेतन
   ख. कौशल और जाति के अनुसार
   ग. केवल न्यूनतम वेतन
   घ. यादृच्छिक निर्धारण

51. अर्थशास्त्र में निम्नलिखित में से कौन-कौन से व्यवसाय विशेष रूप से उल्लेखित हैं?
   क. सॉफ़्टवेयर अभियंता
   ख. बुनकर, राजमिस्त्री, सोनार, चर्मकार
   ग. केवल पुरोहित और सन्यासी
   घ. कवि और ज्योतिषी

52. प्राचीन भारत में कपास तथा रेशमी वस्त्र किस व्यवसाय द्वारा बनाए जाते थे?
   क. राजमिस्त्री
   ख. बुनकर
   ग. सोनार
   घ. चर्मकार

53. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बुनकरों के संदर्भ में अधिकारियों की क्या भूमिका थी?
   क. न्यायधीश नियुक्त करना
   ख. कर व्यवस्था की देखरेख
   ग. उनके कार्य की निगरानी और गुणवत्ता सुनिश्चित करना
   घ. व्यापार में संलग्न होना

54. निम्नलिखित में से कौन से श्रमिक इमारतों और पुलों के निर्माण के लिए उत्तरदायी थे?
   क. राजमिस्त्री
   ख. लोहार
   ग. बढ़ई
   घ. सोनार

55. अर्थशास्त्र के अनुसार राजमिस्त्रियों को वेतन किस आधार पर मिलता था?
   क. राजा की इच्छा पर
   ख. निश्चित वार्षिक वेतन
   ग. कार्य की गुणवत्ता और परिमाण के आधार पर
   घ. उनकी जाति स्थिति पर

56. कृषि और दैनिक उपयोग में किस कारीगर के औजार आवश्यक होते थे?
   क. सोनार
   ख. चर्मकार
   ग. लोहार
   घ. बुनकर

57. जूते, पेटी, थैले आदि वस्तुएँ बनाने की ज़िम्मेदारी किसकी थी?
   क. बढ़ई
   ख. चर्मकार
   ग. सोनार
   घ. व्यापारी

58. समाज में धोबी (वाशकर्मी) की भूमिका क्या थी?
   क. मंदिरों की देखरेख
   ख. नृत्य करना
   ग. वस्त्रों की सफ़ाई
   घ. रेशमी वस्त्र बुनना

59. धोबियों का कार्य विशेष रूप से किस वर्ग के लिए महत्वपूर्ण था?
   क. कृषक वर्ग
   ख. किसान
   ग. निम्न जातियाँ
   घ. उच्च वर्ग

60. निर्माण और ईंधन हेतु लकड़ी इकट्ठा करने का कार्य कौन करता था?
   क. ग्वाले
   ख. लकड़हारे
   ग. चरवाहे
   घ. मछुआरे

61. सोनार का व्यवसाय किन कार्यों में महत्वपूर्ण था?
   क. माटी के बर्तन बनाना
   ख. राजनीतिक प्रशासन
   ग. धार्मिक अनुष्ठान और सांस्कृतिक जीवन
   घ. धातु निर्माण

62. प्राचीन भारतीय समाज में शराब बनाने वाले कौन कहलाते थे?
   क. वैद्य
   ख. चर्मकार
   ग. कालबारा
   घ. सूत्रधार

63. ग्वाले मुख्यतः किस कार्य से संबंधित थे?
   क. कर संग्रह
   ख. मंदिर प्रबंधन
   ग. दुग्ध हेतु गायों का पालन
   घ. रेशमी वस्त्र बनाना

64. चरवाहे मुख्यतः किसकी देखभाल करते थे?
   क. गाय
   ख. मछली
   ग. बकरी व पशुधन
   घ. मुर्गियाँ

65. अर्थशास्त्र में मान्यता प्राप्त होने के बावजूद किस वर्ग का जीवन कठिन होता था?
   क. वैद्य
   ख. दास
   ग. व्यापारी
   घ. कलाकार

66. किस वर्ग के श्रमिक सभी क्षेत्रों में शारीरिक श्रम के आधार थे?
   क. व्यापारी
   ख. वैद्य
   ग. श्रमिक
   घ. कलाकार

67. नदियों और समुद्रों से आवश्यक आहार कौन उपलब्ध कराता था?
   क. ग्वाले
   ख. मछुआरे
   ग. बुनकर
   घ. राजमिस्त्री

68. प्राचीन समाज में वैद्य की भूमिका क्या थी?
   क. मनोरंजन
   ख. धार्मिक उपदेश
   ग. स्वास्थ्य सेवा
   घ. सैनिक सेवा

69. सांस्कृतिक और धार्मिक कार्यक्रमों का संचालन कौन करता था?
   क. कलाकार
   ख. चर्मकार
   ग. व्यापारी
   घ. वैद्य

70. अनाज, वस्त्र, मसालों का व्यापार किसके द्वारा किया जाता था?
   क. मछुआरे
   ख. राजमिस्त्री
   ग. व्यापारी
   घ. दास

71. एक कहावत के अनुसार भारत में सबसे श्रेष्ठ व्यवसाय क्या माना जाता था?
   क. व्यापार
   ख. मनोरंजन
   ग. कृषि
   घ. सेवा

72. भारतीय कहावत के अनुसार अंतिम उपाय के रूप में कौन सा व्यवसाय चुना जाता था?
   क. व्यापार
   ख. कृषि
   ग. सेवा
   घ. भिक्षावृत्ति

73. वस्त्र और धातु शिल्प किस क्षेत्र का भाग माने जाते थे?
   क. कृषि
   ख. व्यापार
   ग. उद्योग
   घ. बैंकिंग

74. सूत्राध्यक्ष की भूमिका क्या थी?
   क. चिकित्सकीय कार्य करना
   ख. वस्त्र उद्योग की निगरानी
   ग. बैंकिंग संचालन
   घ. पशुपालन

75. प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में 'विनिमय' की श्रेणी में कौन सी दो गतिविधियाँ आती थीं?

क. कृषि और उद्योग
ख. कृषि और बैंकिंग
ग. व्यापार और बैंकिंग
घ. बुनाई और खेती

76. आर्थिक मामलों में राज्य की मुख्य भूमिका क्या थी?

क. प्रत्यक्ष उत्पादन
ख. सैन्य विस्तार
ग. निगरानी और नियमन
घ. धार्मिक उपदेश

77. प्राचीन भारत की मौद्रिक प्रणाली का उद्देश्य क्या था?

क. विदेशी व्यापार को बढ़ावा देना
ख. केवल कर संग्रह करना
ग. राज्य समृद्धि और सामाजिक धन का समर्थन
घ. विनिमय प्रणाली को प्रोत्साहन देना

78. निम्नलिखित में से कौन सी धातु पन मुद्रा का भाग नहीं थी?

क. चाँदी
ख. सोना
ग. ताँबा
घ. लोहा

79. एक मानक पन मुद्रा का वज़न कितने माषा होता था?

क. 12
ख. 16
ग. 20
घ. 10

80. पण मुद्रा की रचना कितने माषा में थी?

क. 8 चाँदी, 6 ताँबा, 2 लोहा
ख. 10 चाँदी, 5 ताँबा, 1 लोहा
ग. 11 चाँदी, 4 ताँबा, 1 लोहा
घ. 12 चाँदी, 3 ताँबा, 1 लोहा

81. प्रशासन में मुद्रा की भूमिका क्या थी?

क. केवल धार्मिक दान हेतु
ख. केवल युद्ध में उपयोग
ग. कर संग्रह, वेतन और कार्य
घ. केवल चीन के साथ व्यापार

82. प्राचीन भारत में सिक्के बनाने और धातु खनन पर किसका नियंत्रण था?

क. स्थानीय व्यापारी
ख. विदेशी व्यापारी
ग. राज्य
घ. धार्मिक संस्थाएँ

83. सिक्कों में धातुओं का मिश्रण क्यों किया जाता था?

क. आकर्षक दिखाने के लिए
ख. वज़न कम करने हेतु
ग. प्रामाणिकता सुनिश्चित करने व धोखाधड़ी रोकने हेतु
घ. उत्पादन बढ़ाने हेतु

84. निम्नलिखित में से कौन सी मुद्रा अल्प-मूल्य की थी जो छोटे लेन-देन में प्रयुक्त होती थी?

क. रुपया
ख. आना
ग. कौड़ी
घ. पन

85. पण के बाद कौन सी मुद्रा प्रचलन में आई?

क. दिनार
ख. आना
ग. कौड़ी
घ. पैसा

86. "चमड़ी जाये पर दमड़ी न जाये" इस कहावत से क्या अभिप्रेत है?

क. धार्मिक भक्ति
ख. धन के प्रति उदासीनता
ग. प्रकृति से प्रेम
घ. धन के प्रति अत्यधिक लगाव

87. "सोलह आने सच बोल रहा हूँ" का क्या अर्थ है?

क. अधूरा सत्य बोलना
ख. मितव्ययी होना
ग. पूर्ण सत्य बोलना
घ. सहायता से इनकार करना

88. दशमलव प्रणाली से पहले 1 रुपये में कितने पैसे होते थे?

क. 60 ख. 80
ग. 100 घ. 64

89. प्राचीन मुद्रा व्यवस्था में 1 धेला किसके बराबर था?

क. 2 दमड़ी ख. 3 दमड़ी
ग. 1 कौड़ी घ. 4 कौड़ी

90. सन् 1957 में किस मूल्य प्रणाली ने प्राचीन प्रणाली का स्थान लिया?

क. द्विआधारी प्रणाली
ख. दशमलव आधारित रुपया-पैसा प्रणाली
ग. वस्तु विनिमय प्रणाली
घ. शंख मुद्रा प्रणाली

91. प्राचीन भारत में आर्थिक गतिविधियों का मार्गदर्शन किस सिद्धांत द्वारा होता था?

क. लाभ की अधिकतमता
ख. धर्म (नैतिकता)
ग. अव्यवधान सिद्धांत (Laissez-faire)
घ. सैन्य विजय

92. दान, अपरिग्रह और सम्मा आजीव क्या दर्शाते हैं?

क. औद्योगिक नियम
ख. नैतिक पूँजीवाद
ग. कृषि तकनीक
घ. मुद्रा अवमूल्यन

93. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में किसका दंडात्मक उल्लेख मिलता है?

क. विदेश व्यापार
ख. जमाखोरी
ग. संसाधनों का अत्यधिक दोहन और प्रदूषण
घ. सिक्कों का उपयोग

94. गीता में लोकसंग्रह का अर्थ है:

क. सैन्य विजय
ख. तकनीकी नवाचार
ग. सामूहिक कल्याण
घ. बाज़ार पर एकाधिकार

95. निम्नलिखित में से कौन-सी आधुनिक संस्था प्राचीन विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था को प्रतिबिंबित करती है?

क. संसद
ख. पंचायती राज
ग. सर्वोच्च न्यायालय
घ. भारतीय रिज़र्व बैंक

96. प्राचीन श्रेणियाँ (श्रेणि) आज किसके तुल्य हैं?
   क. राजनीतिक दल
   ख. कर विभाग
   ग. श्रमिक सहकारी संस्थाएँ और श्रमिक संघ
   घ. सैन्य शिविर

97. निम्नलिखित में से कौन भारत की G20 अध्यक्षता के विषय का सबसे अच्छा वर्णन करता है?
   क. लचीली रिकवरी
   ख. सतत विकास
   ग. वसुधैव कुटुंबकम
   घ. वैश्विक सहयोग

98. प्राचीन आर्थिक ग्रंथों में निम्नलिखित में से किसको प्रोत्साहित नहीं किया गया?
   क. उचित पारिश्रमिक
   ख. कौशल आधारित भूमिकाएँ
   ग. असीमित संपत्ति संचय
   घ. श्रमिकों का संरक्षण

99. प्राचीन भारतीय व्यापारी किनके प्रचारक भी थे?
   क. रोग
   ख. आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्य
   ग. राजनीतिक प्रचार
   घ. उपनिवेशवाद

100. दान और भिक्षा के सिद्धांत से कौन-सा आधुनिक शब्दावली से मेल खाता है?
   क. वैश्विक ऊष्मीकरण
   ख. क्रिप्टोकरेंसी
   ग. परोपकार और कल्याणकारी योजनाएँ
   घ. व्यापार प्रतिबंध

उत्तर-दर्शिका

1. ग	2. ग	3. ग
4. ग	5. ग	6. ख
7. ग	8. ग	9. ख
10. घ	11. ख	12. ख
13. ग	14. ग	15. क
16. ग	17. ग	18. ग
19. ख	20. ग	21. ख
22. ग	23. ग	24. ग
25. ग	26. ग	27. ग
28. ग	29. ख	30. ग
31. ग	32. ख	33. घ
34. ख	35. क	36. ग
37. ग	38. ख	39. ग
40. क	41. ग	42. ग
43. ग	44. ख	45. ख
46. ख	47. ख	48. ख
49. ख	50. ख	51. ख
52. ख	53. ग	54. क
55. ग	56. ग	57. ख

58. ग	59. घ	60. ख
61. ग	62. ग	63. ग
64. ग	65. ख	66. ग
67. ख	68. ग	69. क
70. ग	71. ग	72. घ
73. ग	74. ख	75. ग
76. ग	77. ग	78. घ
79. ख	80. ग	81. ग
82. ग	83. ग	84. ग
85. घ	86. घ	87. ग
88. घ	89. क	90. ख
91. ख	92. ख	93. ख
94. ग	95. ख	96. ग
97. ग	98. ग	99. ख
100. ग		



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

Scanned with OKEN Scanner

नाट्य, नाद और भारतीय चेतना

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

Scanned with OKEN Scanner

शुभकामना संदेश



प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

Scanned with OKEN Scanner

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा
अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

Scanned with OKEN Scanner

विषय सूची

	प्रस्तावना	5
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	7
1.	भूमिका	13
2.	नाट्य और संगीत : एक दृष्टि	15
3.	स्वाति मुनि और संगीत-वाद्यों की उत्पत्ति की कथा	17
4.	भारतीय परंपरा की वैज्ञानिकता	17
5.	आधुनिक पीढ़ी के लिए प्रेरणा	18
6.	नाट्यशास्त्र में भाव-चेतना	18
7.	नाट्यशास्त्र: भारतीय चेतना का प्रतिबिंब	20
8.	नाट्यशास्त्र की सार्वभौमिकता	22
9.	गीत और वाद्य का पारस्परिक सौंदर्य	24
10.	भारतीय संगीतशास्त्र में नाद, श्रुति और स्वर का दार्शनिक आयाम	24
11.	गीत और वाद्य की अन्तर्निष्ठता	26
12.	श्रुति - संगीत की आधारशिला	28
13.	भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्रमुख शैलियाँ	39
14.	भारतीय वाद्यों का वैभव और प्रकार	40
15.	नाट्य, नर्तन, नृत्य और नृत्त – एक ही विधा के विभिन्न रूप	42
16.	ताण्डव और लास्य का अनुशासित स्वरूप और लोकनृत्य	44
17.	लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्य	47
18.	नाट्यशास्त्र और विश्व रंगमंच पर उसकी परंपरा का प्रभाव	49
19.	लोकनृत्य का सौंदर्य और जीवन्तता	51
20.	कालिदास का योगदान	52
21.	महाकवि भवभूति और उनकी कृतियाँ	55
22.	भवभूति का काव्यशास्त्र पर प्रभाव	56
23.	संस्कृत साहित्य की महाकाव्य और नाट्य परंपरा	57
24.	प्राकृत और क्षेत्रीय भाषाओं का विकास	57
25.	मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय साहित्य	60
26.	निष्कर्ष	64
	बहुविकल्पीय प्रश्न	66
	अनुशंसित पठन सामग्री	68
	उत्तर-दर्शिका	87

Scanned with OKEN Scanner

प्रस्तावना



यह पुस्तक भारतीय कला, साहित्य और संगीत की समृद्ध और बहुआयामी परंपराओं की गहरी जाँच करती है, जो उनकी आध्यात्मिकता, संस्कृति और मानव अनुभव से जुड़े हैं। प्राचीन विद्वानों जैसे भरतमुनि की शाश्वत ज्ञान से प्रेरित होकर, यह नाटकशास्त्र, संगीत और नृत्य की जटिल प्रणालियों पर प्रकाश डालती है, जिन्होंने भारत की कला धरोहर को आकार दिया। भारतीय शास्त्रीय संगीत, जो गहरे आध्यात्मिक आधारों पर आधारित है, केवल कलात्मक अभिव्यक्ति से परे होकर भावनात्मक गहराई और आत्मिक जागरण का मार्ग प्रस्तुत करता है। भारतीय कला रूपों में ध्वनि, राग, ताल और गति का एकत्रित रूप एक समग्र अनुभव प्रस्तुत करता है, जो समय और संस्कृतियों के बीच गूंजता रहा है।

महान कवियों जैसे कालिदास और भवभूति के कार्य, और शास्त्रीय नृत्य का शाश्वत प्रभाव, इस परंपरा को और भी समृद्ध करते हैं, जो मानव भावनाओं, मूल्यों और दार्शनिक विचारों का सार प्रस्तुत करते हैं। यह पुस्तक इन विभिन्न कलात्मक तत्वों - संगीत, नृत्य, साहित्य और नाटक - को एकत्रित करने का प्रयास करती है और उनके आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालती है।

जब हम इन परंपराओं के पवित्र और कलात्मक आयामों का अन्वेषण करते हैं, तो यह पुस्तक उनके शाश्वत प्रासंगिकता का प्रतीक है, जो समकालीन समाज को प्रेरित करती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए मूल्यवान पाठ प्रस्तुत करती है।

Scanned with OKEN Scanner

"India- the land of Vedas, the remarkable works contain not only religious ideas for a perfect life, but also facts which science has proved true.

Electricity, radium, electronics, airship, all are known to the seers who founded the Vedas."

Source: Indian systems of psychotherapy by Prakash Veereshwar.

• • •



Ella Wheeler Wilcox
(1850-1919)

Prolific American mystic poetess and journalist. She was instrumental in the establishment of the Rosicrucian Movement in twentieth-century America and is best known for her 'Poems and Passion'

Scanned with OKEN Scanner

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है । **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो ।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।



Scanned with OKEN Scanner

नाट्य, नाद और भारतीय चेतना



भूमिका

भारतीय कला, साहित्य एवं सौंदर्यशास्त्र की दिव्य परंपरा में नाट्यशास्त्र एक अद्वितीय और अविस्मरणीय ग्रंथ है, जिसकी जड़ें स्वयं आदि नर्तक-नटराज शिव की आराधना में प्रतिष्ठित हैं।

शिव तांडव स्तोत्र में कहा गया है-

"जटाटवी गलज्जल प्रवाह पावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।"

सरल अर्थ:

"जिनकी जटाओं से बहती गंगा की धारा सारे ब्रह्माण्ड को पवित्र कर रही है, और जिनके गले में विशाल सर्पों की माला झूल रही है-ऐसे महादेव की मैं वंदना करता हूँ।"

यह श्लोक रावणकृत शिव तांडव स्तोत्र का प्रसिद्ध प्रारंभिक श्लोक है, जिसका सौंदर्य, अलंकारिता और अर्थ भारतीय तांडव परंपरा व नाट्यकला की गहराई से जुड़ा हुआ है। इस श्लोक में *महादेव शिव* के तांडव रूप का अद्भुत चित्रण है। शिव का यह तांडव न केवल नृत्य है, बल्कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना, स्थिति और संहार का प्रतीक है-यही तांडव आगे चलकर भारतीय *नाट्य* परंपरा (नाट्यशास्त्र) की आधारभूमि बना।

भरतमुनि द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ न केवल नाट्यकला का वैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है, बल्कि भारतीय नृत्य, संगीत एवं नाटक परंपरा का सबसे प्राचीन और प्रमाणिक ग्रंथ भी है। ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मा ने वेदों के सार से नाट्यवेद की रचना कर मानव समाज को मनोरंजन, शिक्षा, और आध्यात्मिक जागरण का एक सशक्त माध्यम प्रदान किया।

Scanned with OKEN Scanner

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में स्वयं ब्रह्मा के श्रीमुख से इसकी उत्पत्ति का वर्णन मिलता है:

"अथ ब्रह्मा प्रजापतये नाट्यवेदं प्रोवाच।" (नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, श्लोक 7)

अर्थात ब्रह्मा ने देवताओं के आग्रह पर नाट्यवेद की रचना की ताकि देवताओं, असुरों, गंधर्वों और मानवों के सुख-दुःख, धर्म-अधर्म आदि का दृश्य प्रदर्शन हो सके। इस नाट्यवेद के चारों वेदों से निर्माण का वर्णन है-ऋग्वेद से पाठ (संवाद), यजुर्वेद से अभिनय (स्थापना), सामवेद से गान (संगीत) तथा अथर्ववेद से रस एवं भाव।

इस नाट्यवेद की व्यावहारिक संरचना और विस्तार भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में सुस्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

विशेष उल्लेखनीय है कि नाट्यशास्त्र के सिद्धांत भारत की सीमाओं तक सीमित नहीं रहे; प्राचीन व्यापार मार्गों के माध्यम से इस ग्रंथ की सांस्कृतिक गूंज दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों-बाली, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, म्यांमार, जापान और चीन-तक पहुँची। इन क्षेत्रों की नाट्य और नृत्य शैलियों में नाट्यशास्त्रीय अनुशासन और भारतीय काव्यग्रंथों, विशेषकर रामायण और महाभारत के घटनाचक्र, की छाया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

दक्षिण भारत की राजसत्ताओं ने नाट्यकला को न केवल संरक्षण दिया, अपितु कई शासक स्वयं नाटककार, अभिनेता और कलाप्रेमी बने। इस परंपरा का उत्कर्ष शूद्रक के मृच्छकटिकम् (चतुर्थ शती), हर्षवर्धन की रत्नावली (सप्तम शती), महेन्द्रविक्रम वर्मा का भगवदज्जुकम्, तथा विशाखदत्त का मुद्राराक्षस (नवम शती) जैसी कालजयी कृतियों में स्पष्ट होता है। इन ग्रंथों ने भारतीय रंगमंच को साहित्यिक और कलात्मक दृष्टि से समृद्ध किया। भारतीय जनमानस में नाट्यशास्त्र की परंपरा केवल शास्त्रीय रंगमंच तक सीमित नहीं रही; अपितु रामलीला, कृष्णलीला, नौटंकी, तमाशा, जात्रा, कथकली, भरतनाट्यम्, कत्थक आदि लोकनाट्य एवं नृत्यशैलियों के माध्यम से भी इस शास्त्र के सिद्धांत पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रहे।

नाट्यशास्त्र के अनुसार–

"न नृणां प्रवृत्तिरस्मिन्ननृता नाप्यधार्मिकी।
न च शोभनमन्यत्र दृश्यते सभ्यमन्वितम्॥"

(नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, श्लोक 114)

Scanned with OKEN Scanner

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में स्वयं ब्रह्मा के श्रीमुख से इसकी उत्पत्ति का वर्णन मिलता है:

"अथ ब्रह्मा प्रजापतये नाट्यवेदं प्रोवाच।" (नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, श्लोक 7)

अर्थात ब्रह्मा ने देवताओं के आग्रह पर नाट्यवेद की रचना की ताकि देवताओं, असुरों, गंधर्वों और मानवों के सुख-दुःख, धर्म-अधर्म आदि का दृश्य प्रदर्शन हो सके। इस नाट्यवेद के चारों वेदों से निर्माण का वर्णन है-ऋग्वेद से पाठ (संवाद), यजुर्वेद से अभिनय (स्थापना), सामवेद से गान (संगीत) तथा अथर्ववेद से रस एवं भाव।

इस नाट्यवेद की व्यावहारिक संरचना और विस्तार भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में सुस्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

विशेष उल्लेखनीय है कि नाट्यशास्त्र के सिद्धांत भारत की सीमाओं तक सीमित नहीं रहे; प्राचीन व्यापार मार्गों के माध्यम से इस ग्रंथ की सांस्कृतिक गूंज दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों-बाली, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, म्यांमार, जापान और चीन-तक पहुँची। इन क्षेत्रों की नाट्य और नृत्य शैलियों में नाट्यशास्त्रीय अनुशासन और भारतीय काव्यग्रंथों, विशेषकर रामायण और महाभारत के घटनाचक्र, की छाया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

दक्षिण भारत की राजसत्ताओं ने नाट्यकला को न केवल संरक्षण दिया, अपितु कई शासक स्वयं नाटककार, अभिनेता और कलाप्रेमी बने। इस परंपरा का उत्कर्ष शूद्रक के मृच्छकटिकम् (चतुर्थ शती), हर्षवर्धन की रत्नावली (सप्तम शती), महेन्द्रविक्रम वर्मा का भगवदज्जुकम्, तथा विशाखदत्त का मुद्राराक्षस (नवम शती) जैसी कालजयी कृतियों में स्पष्ट होता है। इन ग्रंथों ने भारतीय रंगमंच को साहित्यिक और कलात्मक दृष्टि से समृद्ध किया। भारतीय जनमानस में नाट्यशास्त्र की परंपरा केवल शास्त्रीय रंगमंच तक सीमित नहीं रही; अपितु रामलीला, कृष्णलीला, नौटंकी, तमाशा, जात्रा, कथकली, भरतनाट्यम्, कत्थक आदि लोकनाट्य एवं नृत्यशैलियों के माध्यम से भी इस शास्त्र के सिद्धांत पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रहे।

नाट्यशास्त्र के अनुसार–

"न नृणां प्रवृत्तिरस्मिन्ननृता नाप्यधार्मिकी।
न च शोभनमन्यत्र दृश्यते सभ्यमन्वितम्॥"

(नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, श्लोक 114)

Scanned with OKEN Scanner

अर्थात् नाट्यशास्त्र में ऐसा कुछ नहीं जो लोकधर्म से विपरीत हो अथवा जो सभ्यता व सौंदर्य को न शोभे। इन लोक-रूपों में धार्मिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का अद्भुत संगम दिखाई देता है, जो नाट्यशास्त्र के मूल सौंदर्यबोध एवं मानव-चेतना के अमूर्त पक्षों का सहज निरूपण करते हैं।

भरतमुनि ने अपने ग्रंथ के माध्यम से केवल रंगकला का स्वरूप ही नहीं रचा, अपितु उन्होंने सौंदर्यशास्त्र, धर्म, नीति, दर्शन, और मानव मनोविज्ञान का भी संतुलित समन्वय प्रस्तुत किया। नाट्य का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं है; इसका परम लक्ष्य मानव की चेतना को जागृत कर, उसे जीवन के गूढ़ रहस्यों का साक्षात्कार कराना है। नाट्यशास्त्र में उल्लिखित नवरस-हर्ष, श्रृंगार, हास्य, करुणा, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत-मानव हृदय के विविध भावों की परिपूर्ण अभिव्यक्ति हैं, जिनके माध्यम से दर्शकों के भीतर आत्मिक संवेदनाओं की सृष्टि होती है।

"रसात् स्याद् भावसम्भूतिः भावात्स्थायि प्रवर्तते।
स्थायिभावाद्रसं जातं ततोऽन्यं भावजं विदुः॥"

(नाट्यशास्त्र, अध्याय 6, श्लोक 31)

अर्थात रस भाव से उत्पन्न होता है, भाव स्थायिभाव से, और स्थायिभाव के बिना रस की सृष्टि नहीं होती।

नाट्यशास्त्र केवल कला का ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इसकी विषयवस्तु भारतीय दर्शन, मनोविज्ञान एवं सौंदर्यबोध की पराकाष्ठा है, जो मनोरंजन के साथ-साथ आत्मविकास और सामाजिक जागरण का भी सशक्त साधन बनती है। यह परंपरा केवल रंगमंच की सीमाओं तक नहीं बंधी; इसने काल-सीमा और भूगोल की रेखाओं को पार कर, सम्पूर्ण मानवता के चिरंतन प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है। इसी कारण नाट्यशास्त्र भारतीय जीवन-दर्शन का अविभाज्य अंग बना हुआ है।

नाट्य और संगीत : एक दृष्टि

भारत की सांस्कृतिक और वैज्ञानिक परंपरा में ***नाट्यशास्त्र*** और ***संगीत-विद्या*** का महत्वपूर्ण स्थान है। यह परंपरा न केवल कला और भावनाओं का अद्भुत संगम है, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण और प्रयोगशीलता का भी प्रमाण है। प्राचीन भारत में संगीत के उपकरण तात्त्विक या सैद्धांतिक आधार पर ही नहीं बने, बल्कि उनके निर्माण में निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोग की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

Scanned with OKEN Scanner

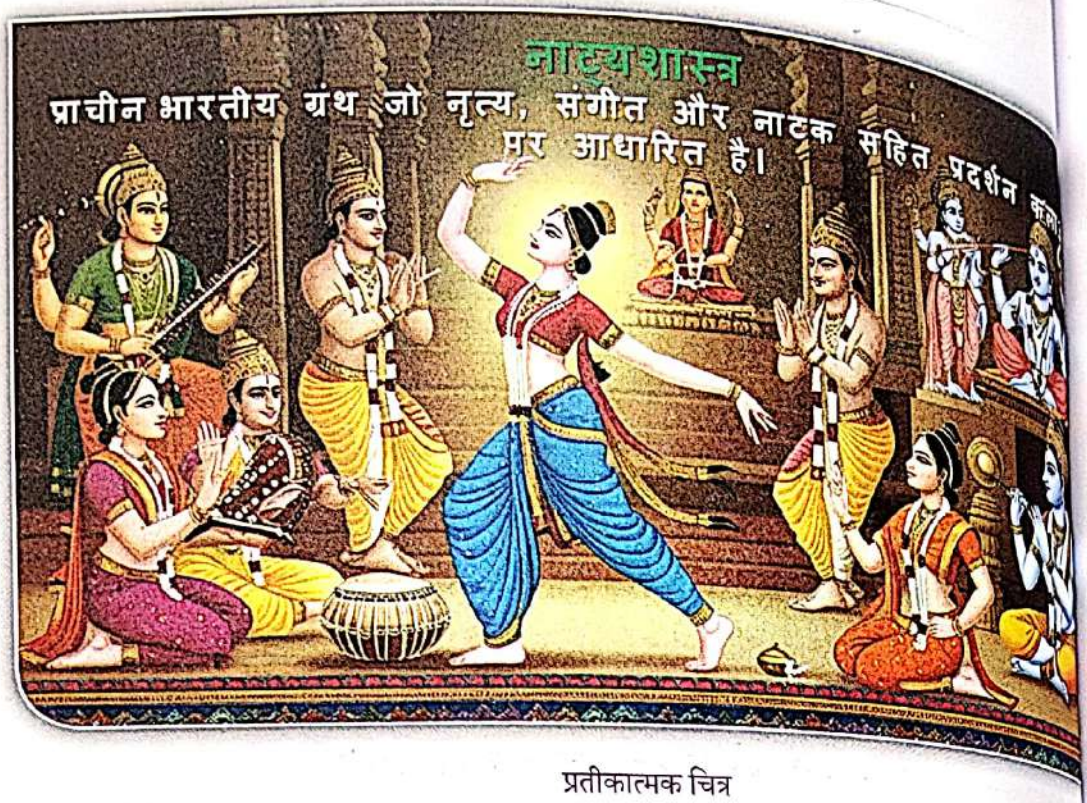

प्रतीकात्मक चित्र

भरतमुनि का *नाट्यशास्त्र* इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस ग्रंथ के 33वें अध्याय में मृदंग और अन्य वाद्य यंत्रों की उत्पत्ति और उनके निर्माण का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन वाद्य यंत्रों का निर्माण मात्र कल्पना नहीं था, बल्कि प्राकृतिक घटनाओं और उनके गहन निरीक्षण पर आधारित था।



प्रतीकात्मक चित्र

Scanned with OKEN Scanner

स्वाति मुनि और संगीत-वाद्यों की उत्पत्ति की कथा

प्राचीन समय में **स्वाति** नामक मुनि ने संगीत की उत्पत्ति के एक अद्भुत रहस्य का अवलोकन किया। एक दिन जलाशय के पास, जब वर्षा की बूंदें कमल के पत्तों पर गिरने लगीं, तो भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न हुईं। बड़े पत्तों से गंभीर ध्वनि, मध्यम पत्तों से मधुर ध्वनि, और छोटे पत्तों से हृदयस्पर्शी ध्वनि निकल रही थी। इस प्राकृतिक घटना से प्रेरित होकर, स्वाति मुनि ने इन ध्वनियों को कृत्रिम रूप से पुनः उत्पन्न करने के लिए प्रयोग प्रारंभ किया।

ध्वनियों की विविधता को समझते हुए, उन्होंने पत्तों और पानी की धाराओं के स्थान पर अन्य साधनों का उपयोग किया। इस प्रक्रिया में **मृदंग**, **प्रणव**, **दर्दुर** और **मुरज** जैसे वाद्य यंत्रों का आविष्कार हुआ। यह दृष्टांत न केवल संगीत-विद्या के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को दर्शाता है, बल्कि यह भी बताता है कि भारतीय संस्कृति में तर्क और प्रयोग को किस हद तक महत्व दिया गया।

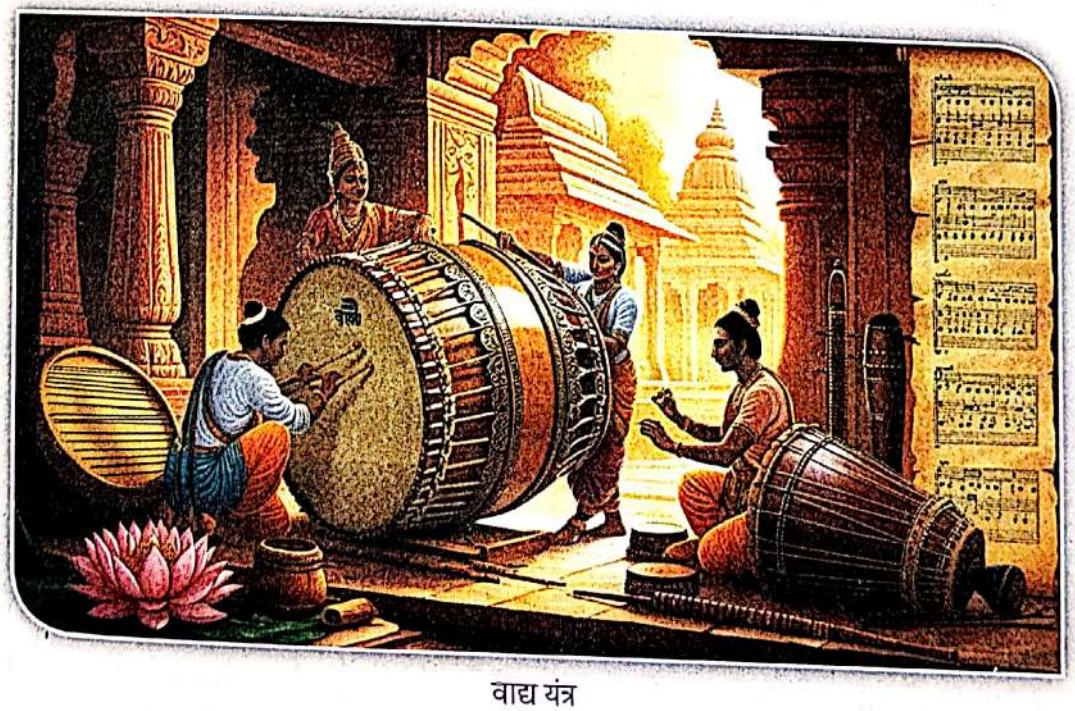

वाद्य यंत्र

भारतीय परंपरा की वैज्ञानिकता

यह कथा इस बात का साक्षात प्रमाण है कि भारतीय संस्कृति में हर रचनात्मक प्रक्रिया तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित थी। भारत में विचारों की स्वतंत्रता और

Scanned with OKEN Scanner

प्रत्यक्ष प्रयोगों की परंपरा उस समय से चली आ रही है, जब पश्चिमी जगत् में यह मात्र कल्पना थी। भारतीय संगीत के वाद्य यंत्र केवल मनोरंजन के उपकरण नहीं थे, बल्कि उनके निर्माण में भौतिक विज्ञान, ध्वनि विज्ञान और सौंदर्यशास्त्र का अद्भुत समन्वय था।

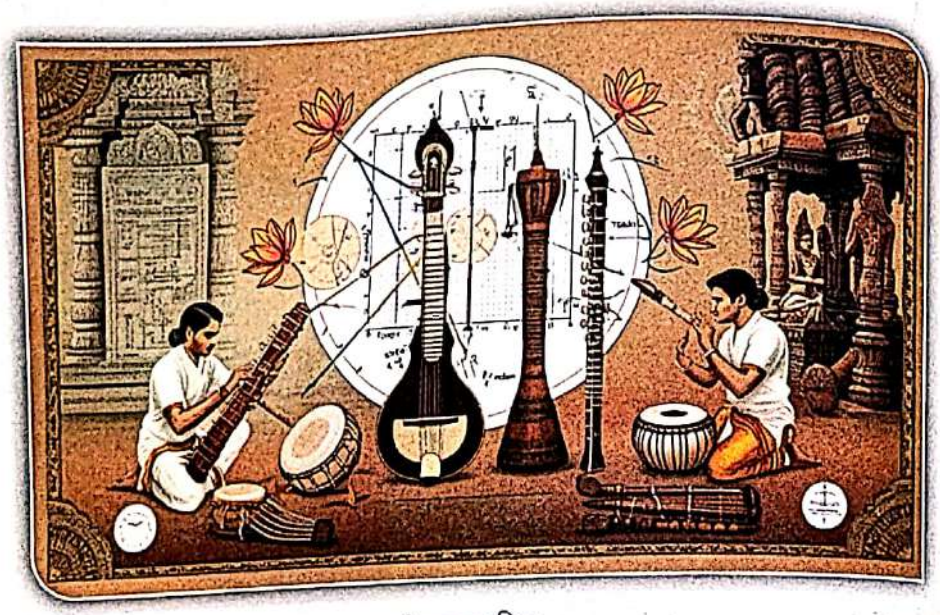

प्रतीकात्मक चित्र

आधुनिक पीढ़ी के लिए प्रेरणा

भारतीय संगीत और नाट्यशास्त्र की वैज्ञानिक परंपराएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं। इनसे आधुनिक पीढ़ी को यह समझने में मदद मिलती है कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर केवल परंपरा का हिस्सा नहीं, बल्कि तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रमाण है। यह ज्ञान हमें परानुकरण और हीनताबोध से मुक्त कर स्वावलंबन और स्वाभिमान की अनुभूति कराता है।

नाट्यशास्त्र और *संगीत-विद्या* भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐसे स्तंभ हैं, जो न केवल अतीत की गौरवशाली विरासत को जीवंत रखते हैं, बल्कि आधुनिक समय में भी भारतीय कला और विज्ञान को दिशा प्रदान करते हैं।

नाट्यशास्त्र में भाव-चेतना

आचार्य भरत के *नाट्यशास्त्र* को भारतीय नाट्यकला और सौंदर्यशास्त्र का आधारभूत ग्रंथ माना जाता है। इसे 36 अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिसमें नाट्य और रूपक

Scanned with OKEN Scanner

जैसे दो मुख्य प्रकारों की व्याख्या की गई है। रूपक के दस प्रकारों में से नाटक एक प्रमुख प्रकार है, जिसे आज की चलचित्र विधा का जनक भी कहा जा सकता है।

नाट्यशास्त्र और स्व-आलोकित चेतना

भरतमुनि के अनुसार, नाटक का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं है, बल्कि वह दर्शकों को सौंदर्य और भावनाओं की उच्चतम अवस्था तक ले जाता है। *ऋग्वेद* और *अथर्ववेद* में भी इसकी समीक्षा की गई है, जबकि *उपनिषदों* में *रस* को स्व-आलोकित चेतना से जोड़ा गया है। यह चेतना वह अवस्था है, जहाँ व्यक्ति अपनी आंतरिक भावनाओं और मूल्यों का साक्षात्कार करता है।

नाट्यशास्त्र में **विभाव**, **अनुभाव** और **व्यभिचारी** भाव के संयोजन से रस उत्पन्न होता है। यह संयोजन दर्शकों को भावनाओं की गहराई में डुबो देता है, जहाँ वे सौंदर्य, करुणा, हास्य, या अन्य भावनाओं को गहनता से अनुभव करते हैं। यह रसोत्पत्ति नाटक के कलाकार और दर्शकों के बीच एक सेतु का कार्य करती है, जहाँ दोनों एक साझा अनुभव का हिस्सा बनते हैं।

चेतना का समीकरण: सत्, चित्, आनंद

नाटक केवल बाहरी अभिनय तक सीमित नहीं है; इसका चरम उद्देश्य दर्शकों को चेतना के गहनतम स्तर तक पहुँचाना है। भरतमुनि के अनुसार, नाट्य का अंतिम लक्ष्य सत् (सत्य), चित् (चेतना), और आनंद (आनंद) की त्रयी तक पहुँचाना है। यह त्रयी भारतीय दर्शन में *सच्चिदानंद* के रूप में जानी जाती है।

- **सत् (सत्य):** नाटक के माध्यम से सत्य और यथार्थ का चित्रण।
- **चित् (चेतना):** दर्शकों में आंतरिक जागरूकता और भावनात्मक गहराई उत्पन्न करना।
- **आनंद:** नाटक के चरम अनुभव से दर्शकों को आनंद की अनुभूति कराना, जो उनके भीतर की चेतना को प्रकाशित करता है।

अभिनय की पराकाष्ठा और दर्शक की भूमिका

भरतमुनि के अनुसार, एक कलाकार का अभिनय तभी सफल माना जाता है, जब वह दर्शकों को उनकी आत्मा के गहन मूल्यों तक पहुँचा सके। दर्शक नाटक देखते समय रोते,

Scanned with OKEN Scanner

हँसते, और गाते हैं, लेकिन इन भावनाओं की गहराई उन्हें अंततः आत्मज्ञान और चेतना के उच्चतम स्तर तक ले जाती है।

नाट्यशास्त्र: भारतीय चेतना का प्रतिबिंब

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र केवल कला का ग्रंथ नहीं है; यह मानव चेतना के विभिन्न स्तरों को समझने और उन्हें व्यक्त करने का माध्यम है। इसके द्वारा, नाटक और उसके कलाकार मानव मन के विविध पक्षों को उजागर करते हैं और दर्शकों को जीवन की सत्यता और उसकी गहनता का अनुभव कराते हैं।

इस प्रकार, *नाट्यशास्त्र* भारतीय चेतना और सौंदर्यशास्त्र का एक ऐसा ग्रंथ है, जो न केवल कला को परिभाषित करता है, बल्कि व्यक्ति को आत्म-ज्ञान और आनंद की अवस्था तक पहुँचाने का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

नाट्यशास्त्र की पृष्ठभूमि और प्रयोजन

भारतीय नाट्यकला का उद्भव भी अन्य समस्त विद्याओं और कलाओं की भाँति वेदों से ही संबद्ध है। इसके महान आचार्य भरतमुनि ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में नाट्यविद्या की उत्पत्ति का विस्तार से निरूपण किया है। उनके अनुसार जब संसार में धर्म का ह्रास होने लगा, समाज में असंतुलन, दुख, हिंसा, वासनात्मक प्रवृत्तियाँ तथा नैतिक पतन बढ़ गया, तब देवर्षियों ने ब्रह्माजी से विनती की कि वे ऐसा कोई उपाय बतावें जो सामान्य जनमानस के लिए न केवल मनोरंजन का साधन बने, अपितु उनके मनोमालिन्य का शमन कर उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पथ पर प्रवृत्त करने में भी सहायक हो।

ब्रह्मा ने इस अनुरोध को स्वीकार करते हुए ध्यानावस्था में चारों वेदों का मनन किया और नाट्यशास्त्र की रचना की, जिसे उन्होंने **'पंचमवेद'** की संज्ञा दी। इस नवीन वेद में उन्होंने चारों वेदों के तत्त्वों का समावेश किया:

- **ऋग्वेद** से पाठ्य (संवाद एवं कथा-वस्तु),
- **सामवेद** से गीत (स्वर, लय और संगीत),
- **यजुर्वेद** से आंगिक अभिनय (नृत्य, हाव-भाव एवं मुद्राएँ),
- **अथर्ववेद** से रस (भावनाओं एवं अनुभवों की अभिव्यक्ति)।

इस प्रकार, नाट्यविद्या न केवल दृश्य-श्रव्य कला है, बल्कि वेदों की तत्व-संपदा से अनुप्राणित एक आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक साधना भी है, जिसका उद्देश्य केवल

Scanned with OKEN Scanner

तात्कालिक मनोरंजन न होकर लोकमंगल, चारों पुरुषार्थों की उपलब्धि तथा मानवीय चेतना का जागरण है।

भरतमुनि स्वयं कहते हैं–

"नाट्यं भिन्नरसं लोके न प्रतीयेत कर्हिचित्।"

(नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, श्लोक 120)

("नाट्य ऐसी विद्या है जिसमें लोक के विविध रस, भाव और अनुभव प्रकट होते हैं।") इस दृष्टि से नाट्यशास्त्र भारतीय जीवन-दर्शन का दर्पण है, जो लोक और परलोक दोनों की सिद्धि का साधन बनता है।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥

(नाट्यशास्त्र 1.18)

भरतमुनि को नाट्य के प्रयोग का अधिकार सौंपा गया, ताकि यह मानव जीवन के विविध पक्षों का अभिव्यक्तिकरण कर सके और जनसामान्य के कल्याण के लिए उपयोगी हो।

नाट्य का प्रयोजन

भरतमुनि के अनुसार, नाट्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के समस्त पहलुओं का प्रतिनिधित्व करना है। नाट्य जीवन के शुभ-अशुभ कर्मों, भावों और चरित्रों का प्रतिबिंब है।

नाट्य के मुख्य प्रयोजन

- **लोककल्याण**: नाट्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों की प्रेरणा देता है।
- **मनोरंजन**: सामान्य जनों के दुःख और श्रम से मुक्ति प्रदान करता है।
- **शिक्षा**: यह जीवन के शुभ-अशुभ कर्मों का प्रदर्शन कर नैतिकता और आदर्शों का प्रचार करता है।
- **संवेदनशीलता का विकास**: रसों और भावों के माध्यम से दर्शकों को उनके आंतरिक और बाह्य अनुभवों से जोड़ता है।
- **सामाजिक संतुलन**: दुष्टों के दमन, वीरों के उत्साहवर्धन, और असंतुलित समाज के सुधार में सहायक है।

Scanned with OKEN Scanner

नाट्य का व्यापक प्रभाव

भरतमुनि ने नाट्य को इस प्रकार परिभाषित किया है:

"त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।" (*ना. शा.* 1/107)

अर्थात, नाट्य पूरे विश्व के शुभ-अशुभ कर्मों और भावों का समावेश करता है।

यह धर्म, काम, और अर्थ की अनुभूति कराने के साथ-साथ दुःख, श्रम और शोक से पीड़ितों को शांति प्रदान करता है। तपस्वियों के लिए नाट्य आत्मचिंतन का माध्यम बनता है, तो उत्साही वीरों के लिए यह प्रेरणा का स्रोत बनता है।

नाट्यशास्त्र केवल एक कला-ग्रंथ नहीं है; यह एक दार्शनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना है, जो लोकमंगल और आत्मसाक्षात्कार का माध्यम बनता है। यह न केवल भारत की प्राचीन परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को सहेजता है, बल्कि इसे मानव-जीवन के हर पहलू से जोड़कर सार्वभौमिकता प्रदान करता है।

नाट्यशास्त्र की सार्वभौमिकता

भरतमुनि द्वारा रचित *नाट्यशास्त्र* न केवल भारतीय कला का आधारभूत ग्रंथ है, बल्कि यह मानव जीवन की विविध भावनाओं, क्रियाओं और ज्ञान का सार भी प्रस्तुत करता है। इसके मूल में यह विचार निहित है कि नाट्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उपदेश और प्रेरणा देने वाला एक साधन है।

सार्वभौमिक स्वरूप

भरतमुनि ने कहा–

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन् न दृश्यते।।" (*ना. शा.* 1/16)

अर्थात्, ऐसा कोई शास्त्र, शिल्प, कला, विद्या, योग या कर्म नहीं है, जो नाट्य में समाहित न हो। इस नाट्यशास्त्र में धर्म, यश, आयु और बुद्धि को बढ़ाने की शक्ति है।

नाट्यकला की परिवर्तनशील यात्रा: देशकाल के संदर्भ में

भरतमुनि ने नाट्य के सभी पक्षों को व्यवस्थित किया, लेकिन परवर्ती आचार्यों ने इसे

Scanned with OKEN Scanner

समय और स्थान के अनुरूप विकसित किया। नाट्य या रूपक के भेदों का वर्गीकरण कथावस्तु, नायक, और रस के आधार पर किया गया।

रूपक के दस भेद (संगीतसारसंग्रह, पृ. - 65)

1. नाटक
2. प्रकरण
3. भाण
4. प्रहसन
5. डिम
6. व्यायोग
7. समवकार
8. वीथी
9. अंक
10. ईहामृग

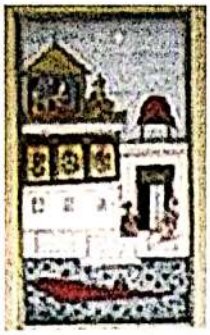

केदार रागिनी



कमोदिनी रागिनी



दीपिका राग

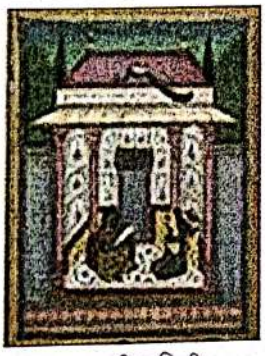

धन्याश्री रागिनी



मलकोसा रागिनी

रागमलिका ग्रंथ

इसके अतिरिक्त 18 उपरूपक या देशीय रूपक भी विकसित हुए। यह दर्शाता है कि नाट्य की व्यापकता में विश्व की सभी कलाएँ समाहित हो सकती हैं।

भरतमुनि के वचनों का प्रभाव

भरतमुनि के अनुसार–

"धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।"

(ना. शा. 1/14-15)

इस नाट्यशास्त्र का उद्देश्य केवल धार्मिक, सामाजिक, और नैतिक आदर्शों की स्थापना करना नहीं, बल्कि जनमानस को मानसिक और शारीरिक विश्रांति प्रदान करना भी है। यह उत्तम, मध्यम, और अधम सभी प्रकार के लोगों के लिए लाभदायक है।

Scanned with OKEN Scanner

भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित *नाट्यशास्त्र* एक सार्वकालिक ग्रंथ है, जो कला, संस्कृति, और मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को समाहित करता है। यह केवल भारत की सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि समस्त विश्व के लिए प्रेरणा का स्रोत है। नाट्यशास्त्र के सिद्धांत धर्म, ज्ञान, और सौंदर्य की खोज को एकजुट कर मानवता के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

गीत और वाद्य का पारस्परिक सौंदर्य

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में गीत को नाट्य का प्रमुख अंग माना है। उन्होंने गीत के साथ वाद्य की भूमिका को उपरञ्जक अर्थात् गीत को अलंकृत करने वाला बताया है। यद्यपि नाट्य में नृत्त (शुद्ध नृत्य) को स्वतंत्र रूप से स्वीकार किया गया है, लेकिन आचार्य भरत ने इसे गीत के साथ उस प्रकार सम्बद्ध नहीं किया, जैसे कि परवर्ती आचार्यों ने किया।

परवर्ती आचार्यों ने गीत, वाद्य, और नृत्त को एक साथ समन्वित करके *संगीत* की परिभाषा दी। इस दृष्टि से, गीत और वाद्य की अन्तरंगता न केवल नाट्यशास्त्र में, बल्कि भारतीय संगीत के विकास में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

भारतीय संगीतशास्त्र में नाद, श्रुति और स्वर का दार्शनिक आयाम

भारतीय संगीतशास्त्र में नाट्यकला से पृथक् होकर संगीत ने एक स्वतंत्र एवं विशिष्ट आचार्य-परंपरा को जन्म दिया है। संगीत रत्नाकर के अनुसार, इस परंपरा के प्रथम आचार्य स्वयं भगवान शिव माने जाते हैं, जिन्होंने तांडव के माध्यम से नाद अर्थात् आदि ध्वनि की उत्पत्ति की।इसके पश्चात ब्रह्मा, भरतमुनि तथा शार्ङ्गदेव जैसे अनेक आचार्यों ने इस विद्या को समृद्ध किया।

नाद : संगीत का मूलतत्त्व

भारतीय संगीत की आधारशिला नाद है। नाद का शाब्दिक अर्थ ध्वनि है, किन्तु इसका तात्त्विक अर्थ उससे कहीं अधिक व्यापक है। यह केवल श्रव्य ध्वनि न होकर सृष्टि का मूल कंपन (Cosmic Vibration) है– वही तत्त्व जिससे समस्त ब्रह्माण्ड का आविर्भाव माना गया है।

नादबिन्दुपनिषद् में कहा गया है–

Scanned with OKEN Scanner

"नादरूपं परं ब्रह्म तत्त्वमेकं निरामयम्।
नादबिन्दुं समालम्ब्य योगी मोक्षं निगच्छति।।"

(नादबिन्दुपनिषद्, श्लोक 6)

("नाद ही परम ब्रह्म का स्वरूप है। योगी नादबिन्दु का आलम्बन कर मोक्ष प्राप्त करता है।") यह सूचित करता है कि नाद न केवल संगीत का मूल है, बल्कि स्वयं ब्रह्म का प्रतीक है - जो सृष्टि, स्थिति और प्रलय का हेतु है।

नाद के तत्त्व

संगीतरत्नाकर (1.3.6-7) में नाद के प्रकटन का कारण इस प्रकार वर्णित है:

"नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।।"

अर्थात् नाद के दो मुख्य तत्त्व हैं –

1. नकार - प्राण तत्त्व का सूचक/ 'न' (प्राणतत्त्व का सूचक)
2. दकार - अग्नि तत्त्व का सूचक/ 'द' (अग्नितत्त्व का प्रतीक)

प्राण (जीवनशक्ति) तथा अग्नि (ऊर्जा) के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है। यही नाद जीवन के समस्त स्वरूपों का कारण है।

नाद के भेद

शास्त्रीय ग्रंथों में नाद के दो भेद स्वीकार किए गए हैं–

1. आहत नाद

यह वह ध्वनि है, जो बाहरी उपकरणों या क्रियाओं (वाद्य, कंठ) के माध्यम से उत्पन्न होती है। (बाह्य साधनों (कंठ, वाद्य आदि) द्वारा उत्पन्न ध्वनि।)

2. अनाहत नाद

- यह आंतरिक, सूक्ष्म और दिव्य ध्वनि है।
- इसे केवल ऋषि-मुनि और ज्ञानी उपासना के माध्यम से अनुभव कर सकते हैं।
- इसे मुक्तिदायक माना गया है, क्योंकि यह आध्यात्मिक चेतना का माध्यम है।आंतरिक, सूक्ष्म, दिव्य ध्वनि, जिसे योगी ध्यानावस्था में हृदयदेश में अनुभव करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

योगशिखोपनिषद् में अनाहत नाद की महत्ता बताते हुए कहा गया है-

"हृदि नादं सदा ध्यानं तन्मध्ये लीनमानसः।
नादेन विन्यस्तचित्तः परं ब्रह्माधिगच्छति।।"

(योगशिखोपनिषद्, 1.75)

("जो साधक हृदयस्थ नाद का निरंतर ध्यान करता है, वह ब्रह्म की परम स्थिति को प्राप्त होता है।")

श्रुति और स्वर

नाद का सूक्ष्मतम रूप श्रुति है। इसे सामान्यतः कंठ से उत्पन्न नहीं किया जा सकता, किंतु वीणा, वाद्य तथा विशेष साधना द्वारा इसका अनुभव संभव है। इन्हीं श्रुतियों का क्रमबद्ध संयोजन सात शुद्ध स्वरों (षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद) में किया गया है। सामवेद में भी स्वर की महिमा का उल्लेख है–

"उत्तिष्ठ स्वरः पृथिव्या दिवं गच्छतु मध्यमः।
अत्युच्छः पर्जन्यरूपः स्वरस्य देवताः स्मृताः।।"

(सामवेद संहिता)

("स्वर का प्रत्येक स्तर पृथ्वी, आकाश और वर्षा से जुड़ा है, ये देवतुल्य हैं।")

गीत और वाद्य की अन्तर्निष्ठता

भारतीय संगीत में गीत (स्वर) और वाद्य (वादन) की गहन अन्तरंगता है। वाद्य संगीत गीत को केवल संवारता नहीं, बल्कि उसके अर्थ, भाव और रस को भी परिपूर्ण करता है। दोनों के सामंजस्य से श्रोता को आत्मिक तृप्ति का अनुभव होता है।

नाद योग : संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप

भारतीय परंपरा में संगीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि साधना और योग का साधन भी है। नाद को 'नादयोग' की संज्ञा दी गई है, जिसका उद्देश्य आत्मा को ब्रह्म की ओर उन्मुख करना है। नादबिन्दूपनिषद् में कहा गया है:

"अनाहतशब्दं हृदये च ध्यायन्
ब्रह्मरूपं तत्त्वमवेति बुद्ध्या।"

(नादबिन्दूपनिषद्, श्लोक 24)

Scanned with OKEN Scanner

("जो साधक हृदय में स्थित अनाहत नाद का ध्यान करता है, वह बुद्धि द्वारा ब्रह्मरूप तत्त्व को प्राप्त करता है।")

नाद, श्रुति और स्वर का यह गूढ़ तत्त्व न केवल भारतीय संगीतशास्त्र का आधार है, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिंतन का केन्द्र भी है। संगीत यहाँ केवल कला नहीं, अपितु योग, उपासना और ब्रह्मानुभूति का माध्यम है - जो श्रोता और साधक दोनों को आत्मा की गहराइयों तक ले जाने में सक्षम है।

नाद का संगीत से विशेष संबंध

संगीत की नींव नाद पर आधारित है। ऐसी ध्वनि, जो नियमित, संगीतोपयोगी, और मन को रंजक लगे, उसे *आहत नाद* कहा गया है। संगीत शास्त्र के अनुसार, संपूर्ण संगीत नाद के अधीन है।

नाद का महत्व

संगीतरत्नाकर में नाद और उसके प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

"नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात् पदाद्वचः।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।।" (*सं.र.* 1/2/2)

इसका तात्पर्य यह है कि–

- नाद से वर्ण (अक्षर) उत्पन्न होते हैं।
- वर्ण से पद (शब्द) बनते हैं।
- पद से वचन (वाक्य-वाणी) बनती है।
- वाणी के माध्यम से व्यवहार संभव होता है।

इसलिए कहा गया है कि पूरा संसार नाद के अधीन है।

आहत नाद और संगीत

आहत नाद, जो वाणीस्वरूप होता है, संगीत का मुख्य आधार है। यह नाद वह ध्वनि है, जिसे सुनकर मन को आनंद मिले और जो संगीत में उपयोगी हो।

Scanned with OKEN Scanner

श्रुति - संगीत की आधारशिला

श्रुति का अर्थ

श्रुति शब्द *श्रु* धातु से बना है, जिसका अर्थ है "सुनना"। सामान्यतः इसे वह ध्वनि माना जाता है, जिसे कानों से सुना जा सके। लेकिन सांगीतिक दृष्टि से श्रुति का अर्थ है वह ध्वनि, जो स्पष्ट रूप से पहचानी जा सके और संगीत में उपयोगी हो।

संगीत में श्रुति की परिभाषा

अभिनव राजमंजरी में श्रुति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–

"नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।
लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत-श्रुतिलक्षणम्॥"

इसका अभिप्राय है–

- ऐसी ध्वनि, जो गीत में उपयोगी हो।
- स्पष्ट रूप से अलग-अलग पहचानी जा सके।

संगीत के ग्रंथों में मुख्यतः 22 श्रुतियों का उल्लेख मिलता है, जो संगीत का आधार हैं।

स्वर - श्रुति का विकसित रूप

स्वर की परिभाषा

संगीत पारिजात में स्वर को इस प्रकार समझाया गया है:

"स्वर-रजयन्ति स्वतः स्वांत श्रोतृणामिति ते स्वराः।"

इसका तात्पर्य है–

- स्वर वह ध्वनि है, जो स्वतः ही सुनने वालों के चित्त को आनंदित (रंजन) करती है।
- यह श्रुति से विकसित होती है और संगीत के लिए अनिवार्य होती है।

श्रुति और स्वर का संबंध

- श्रुति सूक्ष्म ध्वनि है, जो स्वर के रूप में प्रकट होती है।
- स्वर सुनने वालों को रंजक और आनंददायक अनुभव प्रदान करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

नाद, श्रुति, और स्वर का परस्पर संबंध संगीत की आधारशिला है।

1. नाद सबसे मूलभूत तत्त्व है, जिससे संगीत की ध्वनि उत्पन्न होती है।
2. श्रुति, नाद का व्यवस्थित और स्पष्ट रूप है, जो संगीत में उपयोगी होती है।
3. स्वर, श्रुति का विकसित और सुनने में आनंददायक रूप है।

भारतीय संगीत का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण इसकी परंपरा, गहराई और सौंदर्य को दर्शाता है, जिससे यह केवल एक कला नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक धरोहर भी है।

स्वर और उनकी विशेषता

स्वर का अर्थ और प्रकार

संगीत पारिजात में स्वर को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

"स्वर-रजयन्ति स्वतः स्वांत श्रोतृणामिति ते स्वराः।"

इसका तात्पर्य है कि–

- स्वर वे ध्वनियाँ हैं, जो सुनने वालों के चित्त को स्वाभाविक रूप से रंजित (आनंदित) करती हैं।
- संगीत में सात मुख्य स्वरों को मान्यता दी गई है:
  - **षड़ज (सा), ऋषभ (रे), गांधार (ग), मध्यम (म), पंचम (प), धैवत (ध), और निषाद (नि)।**

स्वरों के भेद

1. **शुद्ध स्वर:** मूल स्वर जो अपने प्राकृतिक रूप में प्रयोग होते हैं।
2. **विकृत स्वर:** स्वर जो कोमल (मृदु) या तीव्र (प्रखर) रूप में गाए जाते हैं।
3. **चल और अचल स्वर:**
   - **अचल स्वर:** षड़ज (सा) और पंचम (प), जिनमें बदलाव संभव नहीं।
   - **चल स्वर:** शेष पाँच स्वर (रे, ग, म, ध, नि), जो कोमल या तीव्र हो सकते हैं।

आधुनिक स्वर व्यवस्था

आज के संगीत में बारह स्वरों का प्रयोग किया जाता है:

Scanned with OKEN Scanner

- सात शुद्ध स्वर।
- पाँच विकृत स्वर (कोमल और तीव्र)।

स्वर से ग्राम और मूर्च्छना

ग्राम और मूर्च्छना का स्वरूप

- **ग्राम:** स्वरों के समूह को ग्राम कहा जाता है।
  - दो प्रकार: षड्ज-ग्राम और मध्यम-ग्राम।
- **मूर्च्छना:** सात स्वरों का क्रमिक आरोहण और अवरोहण मूर्च्छना कहलाता है।
  - षड्ज और मध्यम ग्राम से सात-सात मूर्च्छनाएँ बनती हैं।
  - कुल मूर्च्छनाएँ: 56 (षड्ज और मध्यम ग्राम से)।

षाडव और औडव मूर्च्छना

- **षाडव:** मूर्च्छना जिसमें एक स्वर कम हो।
- **औडव:** मूर्च्छना जिसमें दो स्वर कम हो।

इन स्वर संयोजनों को ही *तान* कहा जाता है।

राग और उसका स्वरूप

राग की परिभाषा

मतंगमुनि कृत वृहत् *देशी* में राग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

"योऽसौ ध्वनिशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।
रंजको जनचित्तानाम् स रागः कथितो उदाहृतः।।"

इसका अर्थ है:

- वह विशेष ध्वनि, जो स्वर और वाणी से सुसज्जित हो।
- जो चित्त को आनंदित (रंजित) करे, वह राग कहलाता है।

रागों का वर्गीकरण

शास्त्रीय संगीत में रागों का वर्गीकरण विभिन्न रूपों में किया गया है:

1. **शुद्ध राग**

Scanned with OKEN Scanner

2. **छायालम राग**
3. **संकीर्ण राग**
4. **राग-रागिनी पद्धति**
5. **दशविध राग वर्गीकरण**
6. **थाट-राग पद्धति** (आधुनिक उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित)।



(**वसंत रागिनी** वसंत ऋतु का राग है।
इस चित्र में श्रीकृष्ण को गोपियों के साथ नृत्य करते हुए दर्शाया गया है।)

थाट और वर्ण

थाट की परिभाषा

- थाट वह स्वर समूह है, जिसमें राग उत्पन्न करने की क्षमता होती है।

Scanned with OKEN Scanner

- **पंडित भातखंडे** के अनुसार–
  - सात स्वरों से युक्त थाट: सम्पूर्ण।
  - छह स्वरों से युक्त थाट: षाडव।
  - पाँच स्वरों से युक्त थाट: औडव।

वर्ण और उनके प्रकार

अभिनव रागमंजरी में वर्ण को इस प्रकार समझाया गया है:

"गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः।
स्थाय्यारोही ह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम्।।"

वर्ण चार प्रकार के होते हैं:

1. **स्थायी वर्ण**: एक स्वर को बार-बार स्थिर होकर गाना।
2. **आरोही वर्ण**: स्वरों को क्रम से नीचे से ऊपर की ओर गाना।
3. **अवरोही वर्ण**: स्वरों को ऊपर से नीचे की ओर गाना।
4. **संचारी वर्ण**: आरोह और अवरोह के बीच स्वरों का स्वतंत्र गति से गान।

भारतीय संगीत का आधार स्वर, ग्राम, मूर्च्छना और रागों का सामंजस्य है।

स्वर से ग्राम, ग्राम से मूर्च्छना, और मूर्च्छना से राग उत्पन्न होते हैं।

इन शास्त्रीय अवधारणाओं ने भारतीय संगीत को वैज्ञानिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान किया है, जिससे यह एक समृद्ध परंपरा बनती है।

संगीत में वर्ण और अलंकार

वर्ण के प्रकार

- **स्थाई वर्ण**
  - जब एक ही स्वर को बार-बार ठहर कर गाया जाए, तो उसे स्थाई वर्ण कहते हैं।
- **आरोही वर्ण**
  - स्वरों को नीचे से ऊपर की दिशा में क्रमबद्ध रूप से गाने को आरोही वर्ण कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

- **अवरोही वर्ण**
  - स्वरों को ऊपर से नीचे की दिशा में क्रमबद्ध रूप से गाने को अवरोही वर्ण कहते हैं।
- **संचारी वर्ण**
  - स्थाई, आरोही और अवरोही स्वरों का संयोग करके गाए जाने वाले वर्ण को संचारी वर्ण कहते हैं।

अलंकार का महत्व

- **अलंकार** का शाब्दिक अर्थ है "आभूषण"।
- संगीत में वर्णों के विशिष्ट प्रयोग को अलंकार कहते हैं।
- अलंकार का उद्देश्य गायन और वादन को सुंदर और प्रभावशाली बनाना है।
- *अभिनव रागमंजरी* में इसे इस प्रकार समझाया गया है:

"शाशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव।
अविभूषितेव कांता गीतिरलंकारहीना स्यात्।।"

चंद्रमा के बिना रात, जल के बिना नदी, और आभूषण के बिना स्त्री की तरह, अलंकार के बिना संगीत भी शोभा नहीं देता।

राग का स्वरूप और उसके तत्व

राग की जातियाँ

रागों को उनके स्वरों की संख्या के आधार पर तीन भागों में बाँटा गया है:

- **औडव राग**
  - पाँच स्वरों वाले राग।
- **षाडव राग**
  - छह स्वरों वाले राग।
- **संपूर्ण राग**
  - सात स्वरों वाले राग।
  - पाँच से कम या सात से अधिक स्वरों का राग संभव नहीं है।

Scanned with OKEN Scanner

राग के स्वर

- **वादी स्वर**
  - राग का सबसे प्रमुख स्वर। इसे राजा की उपाधि दी गई है।
- **संवादी स्वर**
  - वादी स्वर का सहायक स्वर। इसे मंत्री कहा गया है।
- **अनुवादी स्वर**
  - वादी और संवादी के अतिरिक्त अन्य स्वर।
- **विवादी स्वर**
  - ऐसे स्वर जो राग में कम प्रयुक्त होते हैं। कुशल संगीतज्ञ इन्हें प्रयोग कर राग की विविधता बढ़ाते हैं। इसे शत्रु स्वर भी कहा गया है।

राग के दस लक्षण

शास्त्रों में राग को पहचानने के लिए दस लक्षण बताए गए हैं–

1. **ग्रह**: वह स्वर जिससे राग शुरू होता है।
2. **अंश**: प्रमुख स्वर।
3. **मंद्र**: नीचे के स्वर।
4. **तार**: उच्च स्वर।
5. **न्यास**: वह स्वर जहाँ गाना समाप्त होता है।
6. **उपन्यास**: स्वरों का क्रमिक संयोग।
7. **अल्पत्व**: कुछ स्वरों का कम प्रयोग।
8. **बहुत्व**: कुछ स्वरों का अधिक प्रयोग।
9. **षाडव**: छह स्वरों का प्रयोग।
10. **औडव**: पाँच स्वरों का प्रयोग।

राग के विशेष तत्व

कण स्वर

- इसे स्पर्श स्वर भी कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

- यह मूल स्वर के साथ किसी अन्य स्वर का सूक्ष्म संपर्क होता है।
- इसका प्रयोग राग की रंजकता और माधुर्य बढ़ाने के लिए किया जाता है।

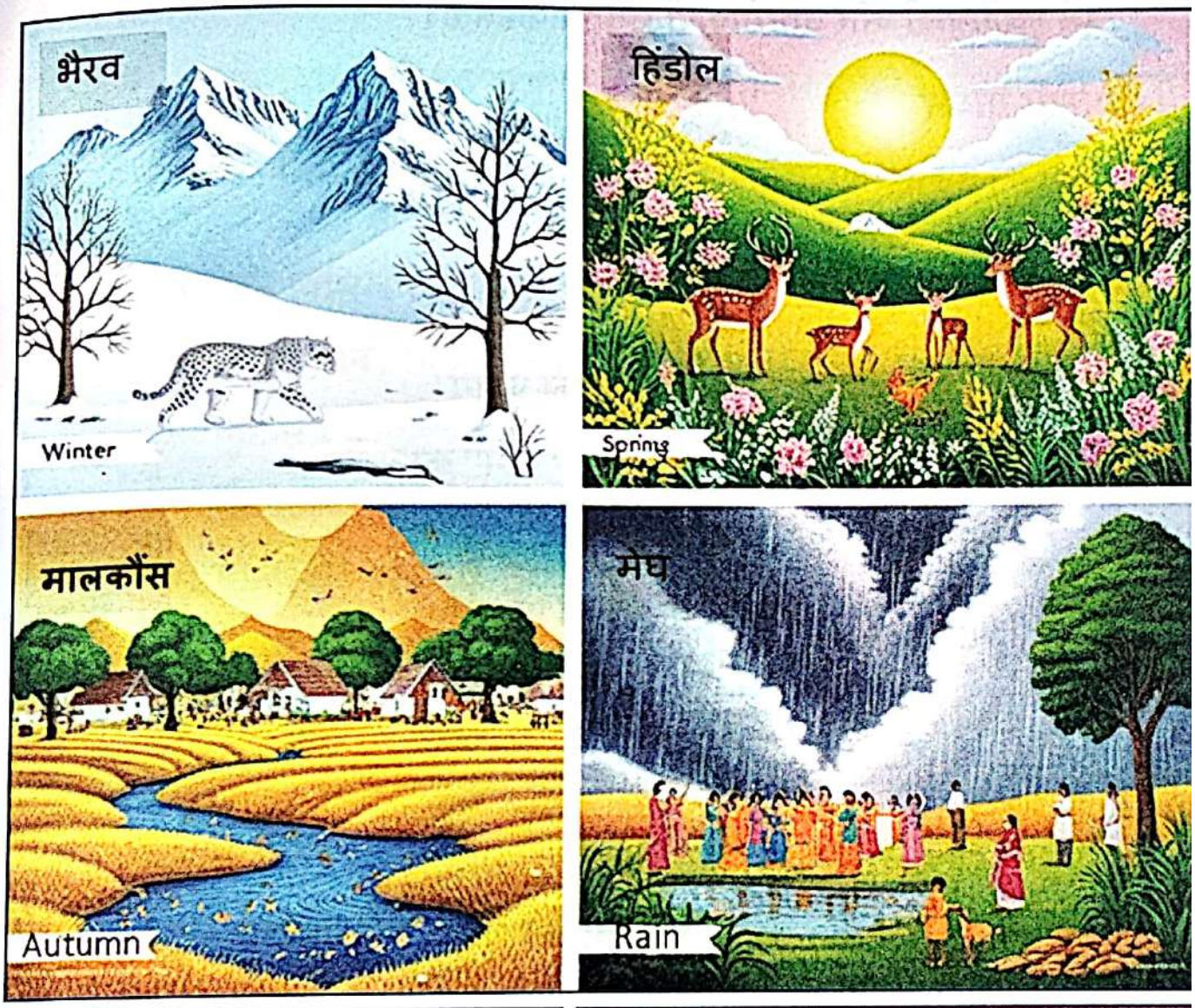

Scanned with OKEN Scanner

- **दिन का भाग**: 12 बजे दिन से 12 बजे रात।
- **रात का भाग**: 12 बजे रात से 12 बजे दिन।

इसे *पूर्वांगवादी* और *उत्तरांगवादी* राग भी कहते हैं।

आलाप गायन

राग के स्वरों को उनके वादी, संवादी और अन्य विशेष स्वरों के साथ नियमों के अनुसार गाना *आलाप* कहलाता है।

- आलाप के चार प्रकार–
  - **आकार आलाप**: "आ" ध्वनि का प्रयोग।
  - **नोम तोम आलाप**: "नोम" और "तोम" का प्रयोग।
  - **स्वराक्षर आलाप**: स्वरों का उच्चारण।
  - **बोल आलाप**: गीत के शब्दों का प्रयोग।

गमक

- **गमक** का अर्थ है स्वर में हल्के कंपन द्वारा सुनने वाले के मन को प्रसन्न करना।
- यह राग की भावनाओं को गहराई से व्यक्त करने का एक माध्यम है।

वर्ण, अलंकार, और रागों के तत्व भारतीय संगीत की जटिलता और सुंदरता को परिभाषित करते हैं।

रागों के लक्षण, स्वर का प्रयोग, और आलंकारिक सज्जा संगीत की अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाते हैं।

भारतीय संगीत में यह तत्व एक वैज्ञानिक और कलात्मक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं, जो इसे विश्व में अद्वितीय बनाता है।

संगीत के तत्वों और परंपराओं का विश्लेषण

गमक

- गमक का अर्थ है स्वरों का विशिष्ट प्रकार के कंपन के साथ प्रयोग, जो श्रोताओं के मन को सुख प्रदान करता है।
- प्राचीन संगीत शास्त्रों में गमक के पंद्रह **प्रकार** बताए गए हैं।
- **उत्तर भारतीय संगीत** में ध्रुपद गायकी गमक का प्रचुर प्रयोग करती है।

Scanned with OKEN Scanner

- **दक्षिण भारतीय संगीत (कर्नाटक संगीत)** में गमक का विशेष महत्त्व है, जहाँ इसे कई विविध तरीकों से प्रयोग किया जाता है।

तान

- राग के स्वरूप को **द्रुत लय** (तेज गति) में विस्तार करने की प्रक्रिया को तान कहते हैं।
- अलंकारों की सहायता से तानों की रचना होती है।
- तानों के विभिन्न प्रकार:
  - **सपाट तान**
  - **कूटतान**
  - **बोलतान**
  - **गमक की तान**
  - **फिरत की तान**
  - **छूट की तान**
- तानों के माध्यम से गायक या वादक राग के नियमों का पालन करते हुए राग को सजाता है और वैचित्र्य उत्पन्न करता है।

ताल, मात्रा और लय

ताल का अर्थ और महत्त्व

संगीत रत्नाकर के अनुसार–

"ताल स्तल-प्रतिष्ठायामिति धातोर्धञि स्मृतः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।।"

- ताल गीत, वाद्य और नृत्य को एक आधार और स्थिरता प्रदान करता है।
- ताल की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है।

ताल और मात्रा

- ताल की **लंबाई स्पष्ट करने वाली इकाई** को **मात्रा** कहते हैं।
- ताल की रचना मात्राओं के योग से होती है।

लय और ताल का संबंध

- ताल का संबंध **लय** से होता है।

Scanned with OKEN Scanner

- लय संगीत का आधार है, जिसमें क्रिया और विश्रांति के बीच का समय सम्मिलित होता है।

लय के प्रकार–

- **विलंबित लय** (धीमी गति)
- **मध्य लय** (मध्यम गति)
- **द्रुत लय** (तेज गति)

♪ गुरु-शिष्य परंपरा और संगीत की संरचना

- भारतीय संगीत को सही ढंग से समझने और प्रस्तुत करने के लिए **गुरु-शिष्य परंपरा** का महत्त्व अत्यधिक है।
- यह परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है और संगीत के व्यापक और नियमबद्ध स्वरूप को संरक्षित करती है।

♪ प्राचीन संगीत की विधाएँ

- प्राचीन संगीत में कपालगान, कंबलगान, जातिगान, प्रबंधगान, गीतक, और ध्रुवागान जैसी विधाएँ प्रचलित थीं, जो अब विलुप्तप्राय हैं।
- इसका मुख्य कारण **दीर्घकालीन परतंत्रता** और परंपरा का टूट जाना है।

मार्ग संगीत और देशी संगीत

♪ मार्ग संगीत

- यह प्राचीन समय का शास्त्रीय संगीत है, जो आज लगभग विलुप्त हो चुका है।
- कुछ वैष्णव मंदिरों में इसे पारंपरिक रूप से गाया जाता है, लेकिन इसके मूल नियमों का ज्ञान लुप्त हो गया है।

♪ देशी संगीत

- वर्तमान में ध्रुपद, मालकोश, भैरवी, ख्याल, ठुमरी, यमन आदि विधाएँ देशी संगीत के रूप में प्रचलित हैं।
- गायक मूल शास्त्रीय सिद्धांतों के अभाव में केवल गुरु से प्राप्त ज्ञान तक ही सीमित रहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

उत्तर भारत और दक्षिण भारत का संगीत

- **उत्तर भारत:** शास्त्रीय संगीत में कुछ कमी आई है, और गुरु-शिष्य परंपरा में सीमित ज्ञान का प्रसार हो रहा है।
- **दक्षिण भारत:** कर्नाटक संगीत में प्राचीन संगीत अधिक संरक्षित है।

हालाँकि, वहाँ भी शास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन उस स्तर पर नहीं हो रहा है, जैसा संरक्षण और संवर्धन के लिए आवश्यक है। भारतीय संगीत का इतिहास, इसकी परंपराएँ, और शास्त्रीय स्वरूप अत्यंत समृद्ध हैं। गमक, तान, ताल, और लय जैसे तत्व संगीत को वैज्ञानिक और कलात्मक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। हालाँकि, वर्तमान में शास्त्रीय संगीत के गहरे अध्ययन और संरक्षण की आवश्यकता है, ताकि इसकी परंपरा आने वाली पीढ़ियों तक संपूर्णता में पहुँच सके।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्रमुख शैलियाँ

भारतीय शास्त्रीय संगीत मुख्य रूप से दो प्रमुख शैलियों में बाँटा जाता है:

- **हिन्दुस्तानी संगीत:** यह संगीत शैली उत्तर भारत, पाकिस्तान, और बांग्लादेश में प्रचलित है। प्रमुख राग: भैरव, भैरवी, आशावरी, अहीरभैरव, यमन, कल्याण, मल्हार, पाहड़ी, वृन्दावनी सारंग, वसन्त, ललित, धनश्री, केदार, गुर्जरी, तोड़ी, कानडा, दरबारी कानडा, शिवरंजिनी, मियाँ की मल्हार, राग दीपक, नटविहाग, वागेश्री, भीमपलाशी, हिंडोल, आदि।

  इन रागों का संगीत में उपयोग विभिन्न भावनाओं, मौसमों और समय के अनुसार किया जाता है।

- **कर्नाटक संगीत:** यह दक्षिण भारत की प्रमुख शास्त्रीय संगीत शैली है, जिसमें रागों और तानों का एक अलग शैली में उपयोग किया जाता है। कर्नाटक संगीत में विशेष रूप से **कृति, काव्यात्मकता** और **भक्ति संगीत** की प्रधानता है।

शास्त्रीय सिद्धान्तों को आत्मसात करने के लिए संस्कृत का महत्त्व

- शास्त्रीय संगीत के सिद्धान्तों को समझने के लिए **संस्कृत** का ज्ञान अत्यधिक आवश्यक है, क्योंकि अधिकांश शास्त्रीय संगीत ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं।
- **नाट्य, काव्य** और **दर्शन** के ज्ञान के बिना शास्त्रीय संगीत के गहरे सिद्धान्तों को समझना मुश्किल हो सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

- यह सिद्धान्त भारतीय संगीत की गहरी परंपरा से जुड़े हैं, और इनका सही ज्ञान संगीतज्ञ के लिए अनिवार्य है।

वाद्य का महत्त्व

- भारतीय संगीत के सिद्धान्त के अनुसार, **वाद्य** को संगीत का अभिन्न अंग माना जाता है।
- **संगीतरत्नाकर** में यह कहा गया है–

  "गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं सङ्गीतमुच्यते"

  - इसका अर्थ है कि संगीत में **गीत, वाद्य**, और **नृत्य** तीनों का समावेश होता है।
- वाद्यों को **अनादि** (अनंत) माना गया है, क्योंकि वैदिक साहित्य में वाद्यों का उल्लेख बहुत पुराना और शाश्वत बताया गया है।
- **भगवान शंकर** (डमरूधारी) और **भगवती सरस्वती** (वीणाधारिणी) जैसे देवता वाद्य वादन से जुड़े हुए हैं, जो दर्शाते हैं कि वाद्य का महत्व भारतीय परंपरा में बहुत अधिक है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत एक विशाल और गहन परंपरा है, जिसमें राग, तान, ताल, और वाद्य का अनूठा मेल है। इसे समझने और सही तरीके से प्रस्तुत करने के लिए शास्त्रीय सिद्धान्तों का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है, जो संस्कृत, नाट्य, काव्य और दर्शन के अध्ययन के माध्यम से ही संभव है। वाद्य, गीत, और नृत्य को मिलाकर संगीत की एक संपूर्णता बनती है, जो भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

भारतीय वाद्यों का वैभव और प्रकार

भारतीय शास्त्रीय संगीत में वाद्य का अत्यधिक महत्व है। आचार्य भरत ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **नाट्यशास्त्र** में वाद्यों के प्रकार और उनके प्रयोग का विस्तार से उल्लेख किया। उन्होंने वाद्य के लिए **'आतोद्य'** शब्द का प्रयोग किया, जो संगीत के नाद उत्पन्न करने वाले उपकरणों के लिए है। इसके अलावा, आचार्य भरत के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, बाद के आचार्य और संगीतज्ञों ने वाद्य शास्त्र में और भी विस्तार किया।

आचार्य भरत ने संगीत के मूल तत्व **नाद** (ध्वनि) की उत्पत्ति को पदार्थों के संयोग और वियोग से जोड़ा। इसका मतलब है कि वाद्यों की ध्वनि भी उन पदार्थों के मिलने

Scanned with OKEN Scanner

और अलग होने से उत्पन्न होती है। इसी कारण वाद्यों का नाद **संयोगज** (जो दो या दो से अधिक पदार्थों के मिलने से उत्पन्न होता है) और **वियोगज** (जो पदार्थों के अलग होने से उत्पन्न होता है) होता है।

वाद्यों के चार प्रमुख प्रकार

आचार्य भरत ने वाद्यों को चार प्रमुख श्रेणियों में बाँटा है। ये श्रेणियाँ वाद्यों के निर्माण और उनकी ध्वनि उत्पन्न करने की प्रक्रिया पर आधारित हैं। आइए, इन चार प्रकार के वाद्यों को समझते हैं:

1. **ततः** ये वाद्य तंत्रियों (तारों) द्वारा बनाए जाते हैं और इनकी ध्वनि तारों के कंपन से उत्पन्न होती है। उदाहरण के तौर पर, **वीणा**, **सितार**, और **गिटार** जैसे वाद्य इसी श्रेणी में आते हैं।
2. **अवनद्धः** यह वह वाद्य होते हैं जिनमें एक प्रकार की त्वचा या झिल्ली होती है, जिसे दबाने या खींचने से ध्वनि निकलती है।**तबला, पखावज, ढोलक** आदि इसी श्रेणी में आते हैं। इन वाद्यों की ध्वनि मुख्यतः हवा के प्रवाह के बजाय, त्वचा की कंपन से उत्पन्न होती है।
3. **घनः** इन वाद्यों से ताल उत्पन्न होती है और ये आमतौर पर धातु, पत्थर या लकड़ी से बने होते हैं। **घण्टा**, **मृदंग**, और **सिंहासन** जैसे वाद्य इस श्रेणी में आते हैं। इन वाद्यों की ध्वनि भी ताल के साथ तालमेल में होती है और वे संगीत में लयात्मकता का योगदान करते हैं।
4. **सुषिरः** ये वाद्य हवा द्वारा ध्वनि उत्पन्न करते हैं और आमतौर पर बांस, लकड़ी या अन्य हल्के पदार्थों से बने होते हैं।**बांसुरी, शंख**, और **सक्सोफोन** इस श्रेणी में आते हैं। इन वाद्यों में हवा का प्रवाह प्रमुख भूमिका निभाता है, जो संगीत में एक नरम और मधुर ध्वनि उत्पन्न करता है।

वाद्यों की उत्पत्ति और परिष्कृत रूप

आचार्य भरत ने इन चार प्रकार के वाद्यों के बारे में विस्तार से बताया था। उनका मानना था कि इन वाद्यों का निर्माण पदार्थों के मिलाने और अलग करने से होता है, जो संगीत की सुंदरता और विविधता को बढ़ाते हैं। समय के साथ, इन वाद्यों के रूप में परिवर्तन आया और न केवल पुराने वाद्यों का सुधार हुआ, बल्कि नए वाद्य भी बनाए गए।

Scanned with OKEN Scanner

आज भी, इन चार वाद्य प्रकारों को संगीतज्ञों द्वारा अपनाया जाता है, और इनका सामूहिक नाम **आतोद्य** और **तूर्य** भी महाभारत और पुराणों में मिलता है। इन वाद्यों का सामूहिक प्रयोग भारतीय संगीत के हर रूप में देखा जाता है, चाहे वह लोक संगीत हो या शास्त्रीय संगीत।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में वाद्य का अत्यधिक महत्व है। ये संगीत के निर्माण में मदद करते हैं और संगीत को जीवंत बनाते हैं। आचार्य भरत के सिद्धांतों से लेकर आज तक, इन वाद्यों की ध्वनि, संरचना और उपयोग में निरंतर परिवर्तन आया है, जिससे भारतीय संगीत की विविधता और गहराई बढ़ी है। इन वाद्यों का महत्व सिर्फ संगीत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ये भारतीय संस्कृति और धार्मिक अनुष्ठानों का अभिन्न हिस्सा भी हैं।

नाट्य, नर्तन, नृत्य और नृत्त – एक ही विधा के विभिन्न रूप

भारतीय शास्त्रीय कला में **नाट्य**, **नर्तन**, **नृत्य** और **नृत्त** का महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य भरत ने **नाट्य** को एक समग्र कला के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें **गीत**, **वाद्य**, और **नृत्य** सभी के अभिन्न अंश होते हैं। समय के साथ, जब ये सभी तत्व **संगीत** के अंतर्गत सम्मिलित होने लगे, तो संगीतकारों और आचार्यों ने इन्हें संगीत के एक रूप के रूप में स्वीकार किया।

नाट्य और नर्तन का संबंध

अगर हम नाट्य की परिभाषा और इसके संदर्भ में विचार करें तो यह साफ़ होता है कि **नृत्य** और **नाट्य** एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। खासकर **नर्तन**, जो नाट्य के अभिन्न अंग के रूप में देखा जाता है। नर्तन का उद्देश्य सिर्फ शरीर के अंगों की क्रिया नहीं होता, बल्कि यह भावों और रसों की अभिव्यक्ति भी है। आचार्य शाङ्गदेव ने **संगीतरत्नाकर** के **नर्तनाध्याय** में नर्तन को एक विस्तृत और गहन रूप में समझाया है। उन्होंने नृत्य, नाट्य और नृत्त को एक ही तत्त्व के रूप में माना है और बताया कि ये तीनों ब्रह्मा जी द्वारा उपदेशित हैं।

नर्तन का उद्देश्य

भारतीय शास्त्रीय नर्तन केवल शारीरिक गति नहीं है, बल्कि यह भावों और रसों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। इसमें **गति**, **करण**, **अंगहार**, **रेचक**, **चारि** और **स्थानक** जैसे अंगों की क्रियाओं द्वारा मनोहर भावों का निरूपण होता है।**वायु पुराण** में नर्तन के उद्देश्य को और भी स्पष्ट किया गया है। इसके अनुसार, नृत्य के द्वारा **धर्म**, **आर्थ** और **कीर्ति** जैसे

Scanned with OKEN Scanner

पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है और यह दुख, शोक आदि को दूर करता है। नृत्य का मुख्य उद्देश्य **रसानन्द** का अनुभव कराना है, जो ब्रह्मानन्द से भी श्रेष्ठ माना जाता है।

संगीत रत्नाकर में यह उल्लेख मिलता है कि **नर्तनानन्द** ब्रह्मानन्द से अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि यही आनंद नारद और अन्य ब्रह्मज्ञानी भी प्राप्त करते हैं।



नटराज - यह मूर्ति शिव को नृत्य और नाट्य कला के भगवान के रूप में दर्शाती है। इसकी शैली और अनुपात हिंदू कला ग्रंथों के अनुसार बनाए गए हैं।

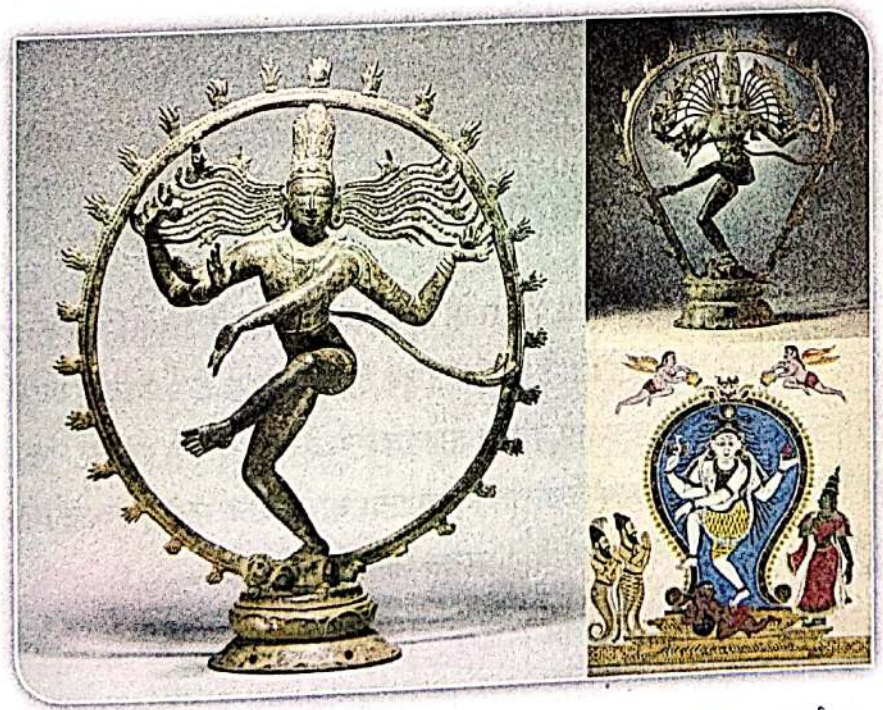

शिव को नटराज, नृत्य के भगवान के रूप में दर्शाया गया है (लगभग 950-1000 ई.), चोल कांस्य मूर्ति, तमिलनाडु, 10वीं या 11वीं शताब्दी। नटराज का एक चित्रण 1820 का है, जिसमें उन्हें मंदिर रथ में दर्शाया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

नृत्य और नृत्त का भेद

अब बात करते हैं **नृत्य** और **नृत्त** के भेद की, जो **दशरूपक** ग्रंथ के आधार पर स्पष्ट किया गया है। आचार्य धनंजय ने कहा:

अन्यद् भावाश्रयं नृत्यं नृत्तं ताललयाश्रयम्। - (द.रू.-1/6)

अर्थात् जो **अङ्ग-संचालन और अभिनयों** द्वारा **भावों** को अभिव्यक्त करता है, वह **नृत्य** कहलाता है, जबकि जो **ताल** और **लय** पर आधारित सिर्फ **अंग संचालन** हो, वह **नृत्त** कहलाता है।

शाङ्गदेव ने **संगीतरत्नाकर** में इस भेद को और स्पष्ट किया है–

"आङ्गिकाभिनयैरेव भावानेव व्यनक्ति यत्।
तन्नृत्यं मार्गशब्देन प्रसिद्धं नृत्यवेदिनाम्॥" (सं.र.-7/6)

अर्थात्, जो **आङ्गिक अभिनयों** द्वारा भावों को व्यक्त करता है, उसे **नृत्य** कहते हैं। नृत्य का उद्देश्य भावों और रसों की गहरी अभिव्यक्ति होती है।

इस प्रकार, नाट्य, नर्तन, नृत्य और नृत्त सभी एक ही कला रूप के विभिन्न पहलू हैं। ये विभिन्न रूप **भावों, रसों** और **लय** के माध्यम से दर्शकों को गहरे अनुभव प्रदान करते हैं। नृत्य और नर्तन, चाहे वे अलग-अलग नामों से जाने जाते हों, लेकिन वे भारतीय कला और संस्कृति के अभिन्न अंग हैं, जो जीवन और ब्रह्म के परम आनंद को दर्शाने का कार्य करते हैं।

ताण्डव और लास्य का अनुशासित स्वरूप और लोकनृत्य

ताण्डव और **लास्य** भारतीय नृत्य परंपरा के दो महत्वपूर्ण रूप हैं, जिनकी उत्पत्ति भगवान शिव और पार्वती से जुड़ी हुई मानी जाती है। इन दोनों नृत्य रूपों ने बाद में शास्त्रीय नृत्य के अनुशासन में एक विशेष स्थान पाया। ताण्डव एक तेज, उग्र और विकट नृत्य है, जिसे भगवान शिव द्वारा नृत्य के रूप में प्रस्तुत किया गया था, जबकि लास्य एक कोमल, सौम्य और सुंदर नृत्य है, जिसे देवी पार्वती ने प्रस्तुत किया।



Scanned with OKEN Scanner

सारणी: सप्ततांडव के प्रकार

क्र.	ताण्डव का प्रकार	विवरण	प्रतीकात्मक अर्थ	संदर्भ / स्रोत
1.	आनंद ताण्डव	शिव द्वारा परमानंद की स्थिति में किया गया नृत्य।	सृजन, संतुलन और ब्रह्म चेतना की लय का प्रतीक।	आनंद ताण्डव स्तोत्र, तैत्तिरीय संहिता, चिदम्बरम् परंपरा।
2.	संध्या ताण्डव	शिव द्वारा दिन-रात्रि की संधि बेला में किया गया नृत्य।	कालचक्र के परिवर्तन का प्रतीक।	आगम और पुराणों में संकेत रूप में उल्लेख।
3.	त्रिपुर ताण्डव	त्रिपुरासुर के वध के उपरांत किया गया विजय ताण्डव।	अधर्म पर धर्म की विजय।	शिव पुराण, कूर्म पुराण, महाभारत (शांति पर्व)।
4.	काल ताण्डव	काल के महान स्वरूप को दर्शाता है; शिव को काल के स्वामी रूप में प्रस्तुत करता है।	समय की अनिवार्यता और परिवर्तनशीलता।	शिव पुराण, तंत्र ग्रंथों में दार्शनिक रूप में।
5.	संपत्ति ताण्डव	समृद्धि, सिद्धि और शिवकृपा का प्रतीक ताण्डव।	ऐश्वर्य, सफलता और शुभ फल की प्राप्ति।	शैव परंपरा की व्याख्याओं में।
6.	संहार ताण्डव	शिव के उग्र और विनाशकारी रूप का प्रदर्शन; सृष्टि के अंत का नृत्य।	सृजन के बाद का विनाश – प्रलय का प्रतीक।	शिव पुराण, ललिता सहस्रनाम, नाट्यशास्त्र में संकेत।
7.	उमा ताण्डव	शिव द्वारा पार्वती (उमा) के साथ किया गया ताण्डव।	शिव-शक्ति के सामंजस्य और प्रेम का प्रतीक।	कैवल्य उपनिषद, पुराण एवं शैव तांत्रिक परंपराएँ।

सारणी: लास्य के चार प्रकार

क्र.	लास्य का प्रकार	विवरण	रस / भाव	मुख्य अभिव्यक्ति / विशेषताएँ	संदर्भ / ग्रंथ
1.	श्रृंगार लास्य	प्रेम, सौंदर्य और आकर्षण की कोमलता को प्रदर्शित करता है।	श्रृंगार रस	नेत्रों, भौंहों और अंगों की कोमल चेष्टाएँ।	नाट्यशास्त्र, पार्वती द्वारा उत्पत्ति की परंपरा।
2.	हास्य लास्य	हास्य, विनोद और चंचलता को दर्शाता है।	हास्य रस	चेहरे की चपलता, चंचल गति, मनोरंजक हाव-भाव।	अभिनयदर्पण, नाट्यशास्त्र के हास्य रस अध्याय से व्युत्पन्न।
3.	करुण लास्य	दुःख, दया और करुण रस की गहनता को प्रदर्शित करता है।	करुण रस	मन्द गति, नम आँखें, करुण हाव-भाव।	नाट्यशास्त्र में करुण रस; भक्तिपरक नृत्य परंपराओं में।
4.	भक्ति लास्य	ईश्वर भक्ति और आत्मसमर्पण की भावना से युक्त कोमल नृत्य।	भक्ति रस	हाथ जोड़ना, मंद मुस्कान, दिव्य भाव की दृष्टि।	भक्ति आंदोलन, कुचिपुड़ी, सत्रिया, मणिपुरी आदि में प्रचलित।

Scanned with OKEN Scanner

आचार्य भरत ने अपने ग्रंथ **नाट्यशास्त्र** में नृत्य के विविध रूपों और उनके अनुशासन का विवरण दिया है, जिसमें **आंगिक अभिनय, अंग, उपांग** और **प्रत्यंग** के माध्यम से भावों और रसों की अभिव्यक्ति पर जोर दिया गया है। भरत के अनुसार, नृत्य के इन विभिन्न पहलुओं को शास्त्रीय रूप से अनुशासित किया गया, जो आज तक भारतीय शास्त्रीय नृत्य की विभिन्न शैलियों में संरक्षित हैं, जैसे **भरतनाट्यम, ओडिसी, कुचिपुडी, कत्थकली, कत्थक, मोहिनी अट्टम्, सत्तरिया,** और **मणिपुरी**।



Scanned with OKEN Scanner



संगीत नाटक अकादमी और संस्कृति मंत्रालय द्वारा मान्यता प्राप्त आठ शास्त्रीय नृत्य

लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्य

भारत में शास्त्रीय नृत्य की परंपरा के साथ-साथ **लोकनृत्य** की भी प्राचीन और समृद्ध परंपरा रही है। लोकनृत्य, जिसे आम तौर पर बिना लिखित शास्त्रों के अभ्यास किया जाता है, अपने सरल रूप में जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रदर्शित करता है। ये नृत्य प्रकार आमतौर पर गांवों और छोटे समुदायों में प्रचलित होते हैं और उनकी संस्कृति और परंपरा को जीवित रखते हैं।



भारत के जनजातीय और लोक नृत्य

Scanned with OKEN Scanner

भारत में लोकनृत्य अपनी सांस्कृतिक विविधता और परंपराओं का अद्भुत प्रदर्शन करते हैं। ये नृत्य न केवल मनोरंजन का माध्यम हैं बल्कि इनमें सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संदेश भी समाहित होते हैं। प्रत्येक लोकनृत्य का अपना विशेष क्षेत्रीय संदर्भ और शैली है।

भारत में लोकनृत्यों की एक लंबी सूची है, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध नाम इस प्रकार हैं–

क्र.	लोकनृत्य	संक्षिप्त विवरण
1	धोबी नृत्य	धोबी समुदाय द्वारा किया जाने वाला यह नृत्य उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व करता है।
2	अहीरों का नाच (फरुवाही)	अहीर समुदाय का यह नृत्य मुख्यतः खेती और कृषि के उत्सवों में किया जाता है।
3	कहरुआ नृत्य	यह नृत्य ढोल और अन्य वाद्य यंत्रों के ताल पर किया जाता है और कृषि आधारित उत्सवों का हिस्सा है।
4	गोड़उ नाच	ग्रामीण क्षेत्रों में यह नृत्य समूह में किया जाता है और यह समुदाय की एकता का प्रतीक है।
5	नटुआ नृत्य	इसे मुख्यतः बिहार और झारखंड के क्षेत्र में किया जाता है और इसमें साहसिक कलाओं का प्रदर्शन होता है।
6	कोलदहकी नाच	आदिवासी संस्कृति का हिस्सा, यह नृत्य पारंपरिक जीवनशैली और उनकी सांस्कृतिक मान्यताओं को दर्शाता है।
7	मुसहरी नाच	मुसहर समुदाय का यह नृत्य उनकी सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक है।
8	ज्वालामुखी अगरही देवी नृत्य	यह धार्मिक नृत्य देवी की आराधना और भक्ति का प्रदर्शन करता है।
9	करमा नृत्य	यह आदिवासी समुदाय द्वारा खेती के सीजन में किया जाने वाला नृत्य है, जो प्रकृति के प्रति सम्मान दर्शाता है।
10	झूमर नाच	मुख्यतः झारखंड और पश्चिम बंगाल में लोकप्रिय, यह नृत्य वसंत ऋतु के उत्सवों में किया जाता है।
11	बीहू	असम का प्रसिद्ध नृत्य, यह फसल कटाई के समय उल्लासपूर्वक किया जाता है।
12	भांगड़ा	पंजाब का यह नृत्य कृषि और फसल कटाई के उत्सवों का प्रतीक है।
13	गरबा	गुजरात का यह नृत्य नवरात्रि उत्सव के दौरान किया जाता है और इसमें धार्मिक भक्ति भाव होता है।
14	कजरी नाच	यह मुख्यतः उत्तर प्रदेश और बिहार में श्रावण मास में किया जाने वाला नृत्य है।

Scanned with OKEN Scanner

भारत में लोकनृत्य अपनी सांस्कृतिक विविधता और परंपराओं का अद्भुत प्रदर्शन करते हैं। ये नृत्य न केवल मनोरंजन का माध्यम हैं बल्कि इनमें सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संदेश भी समाहित होते हैं। प्रत्येक लोकनृत्य का अपना विशेष क्षेत्रीय संदर्भ और शैली है।

भारत में लोकनृत्यों की एक लंबी सूची है, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध नाम इस प्रकार हैं–

क्र.	लोकनृत्य	संक्षिप्त विवरण
1	धोबी नृत्य	धोबी समुदाय द्वारा किया जाने वाला यह नृत्य उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व करता है।
2	अहीरों का नाच (फरुवाही)	अहीर समुदाय का यह नृत्य मुख्यतः खेती और कृषि के उत्सवों में किया जाता है।
3	कहरुआ नृत्य	यह नृत्य ढोल और अन्य वाद्य यंत्रों के ताल पर किया जाता है और कृषि आधारित उत्सवों का हिस्सा है।
4	गोड़उ नाच	ग्रामीण क्षेत्रों में यह नृत्य समूह में किया जाता है और यह समुदाय की एकता का प्रतीक है।
5	नटुआ नृत्य	इसे मुख्यतः बिहार और झारखंड के क्षेत्र में किया जाता है और इसमें साहसिक कलाओं का प्रदर्शन होता है।
6	कोलदहकी नाच	आदिवासी संस्कृति का हिस्सा, यह नृत्य पारंपरिक जीवनशैली और उनकी सांस्कृतिक मान्यताओं को दर्शाता है।
7	मुसहरी नाच	मुसहर समुदाय का यह नृत्य उनकी सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक है।
8	ज्वालामुखी अगरही देवी नृत्य	यह धार्मिक नृत्य देवी की आराधना और भक्ति का प्रदर्शन करता है।
9	करमा नृत्य	यह आदिवासी समुदाय द्वारा खेती के सीजन में किया जाने वाला नृत्य है, जो प्रकृति के प्रति सम्मान दर्शाता है।
10	झूमर नाच	मुख्यतः झारखंड और पश्चिम बंगाल में लोकप्रिय, यह नृत्य वसंत ऋतु के उत्सवों में किया जाता है।
11	बीहू	असम का प्रसिद्ध नृत्य, यह फसल कटाई के समय उल्लासपूर्वक किया जाता है।
12	भांगड़ा	पंजाब का यह नृत्य कृषि और फसल कटाई के उत्सवों का प्रतीक है।
13	गरबा	गुजरात का यह नृत्य नवरात्रि उत्सव के दौरान किया जाता है और इसमें धार्मिक भक्ति भाव होता है।
14	कजरी नाच	यह मुख्यतः उत्तर प्रदेश और बिहार में श्रावण मास में किया जाने वाला नृत्य है।

Scanned with OKEN Scanner

15	होली नृत्य	होली के त्योहार पर उत्तर भारत में किए जाने वाले इस नृत्य में रंग और उत्साह की झलक होती है।
16	बिदेसिया नृत्य	बिहार का यह नृत्य सामाजिक और सांस्कृतिक संदेशों को नाटकीय शैली में प्रस्तुत करता है।
17	घूमर नृत्य	राजस्थान (विशेष रूप से भील जनजाति द्वारा प्रारंभ, जिसे बाद में राजपूतों ने अपनाया)। यह नृत्य नारीत्व, आनंद, परंपरा और वैवाहिक सौभाग्य का उत्सव है।

भारतीय लोकनृत्य विविधता में एकता का प्रतीक हैं। ये नृत्य न केवल क्षेत्रीय बल्कि राष्ट्रीय संस्कृति की गहराईयों को समझने का माध्यम भी हैं। इनमें व्यक्त भावनाएँ, सामाजिक संदेश और सांस्कृतिक मूल्य वर्तमान और भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणादायक हैं।

इन लोकनृत्यों में कोई लिखित शास्त्र नहीं होता, परंतु वे परंपरागत नियमों और मान्यताओं के अनुसार संचालित होते हैं। इन नृत्यों में सौंदर्य, भावनात्मक अभिव्यक्ति और जीवन की वास्तविकताओं को दर्शाने की अद्भुत क्षमता होती है।

नाट्यशास्त्र और विश्व रंगमंच पर उसकी परंपरा का प्रभाव

1. कुटियाट्टम: विश्व की प्राचीनतम जीवित रंगपरंपरा

भारतीय रंगमंच की दीर्घजीवी परंपराओं में *कुटियाट्टम* (कूटियाट्टम) का स्थान अद्वितीय है। केरल की यह शास्त्रीय रंगशैली संसार की सबसे पुरानी जीवित नाट्यपरंपराओं में मानी जाती है। इसका उद्भव एवं विकास मुख्यतः संस्कृत नाटकों के मंचन हेतु हुआ, जिसमें भरत मुनि द्वारा प्रणीत *नाट्यशास्त्र* के सिद्धांतों का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जाता है।

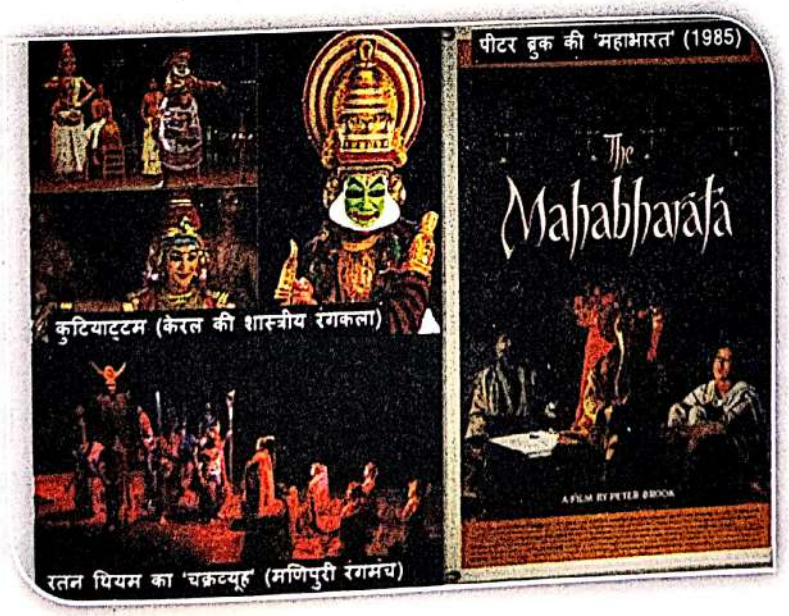

Scanned with OKEN Scanner

कुटियाट्टम की प्रस्तुति में *मुद्राओं* (हस्ताभिनय), *नेत्राभिनय* (आँखों द्वारा अभिनय) तथा *भावाभिनय* (आंतरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति) को प्रधानता दी जाती है। इस परंपरा की विशेषता यह है कि इसमें एक ही नाट्यकृति का मंचन कई दिनों अथवा सप्ताहों तक चलता है, जिसमें प्रत्येक पात्र, भाव एवं घटना का गहन अन्वेषण किया जाता है।

2. भारतीय शास्त्रीय नृत्य एवं मुद्राभिनय पर नाट्यशास्त्र की छाया

भरत मुनि का *नाट्यशास्त्र* न केवल रंगमंच, बल्कि समस्त शास्त्रीय नृत्य परंपराओं- भरतनाट्यम, कथकली, कथक, मणिपुरी, ओडिसी तथा कुचिपुड़ी-के मूल में स्थित है। इन सभी शैलियों में *नवरस सिद्धांत*, *अंगिक* (शारीरिक), *वाचिक* (संवादी), *आहार्य* (परिधान) और *सात्विक* (आंतरिक) अभिनय की अवधारणाओं का प्रत्यक्ष पालन होता है।

विशेष रूप से नृत्य की लयात्मकता, तालबद्धता, भावाभिनय, रंगमंचीय सौंदर्यबोध एवं प्रतीकात्मक मुद्राएँ-सभी *नाट्यशास्त्र* की अनुपालना करते हैं। नर्तक या नर्तकी का प्रत्येक अंग, मुद्रा, दृष्टि तथा गति दर्शक में विशिष्ट *रस* उत्पन्न करने हेतु संयोजित होता है।

3. रामलीला तथा लोकनाट्य परंपराओं में नाट्यशास्त्र की छाप

भारत के विविध लोकनाट्य रूपों में भी *नाट्यशास्त्र* की गहरी छाप देखी जा सकती है। उत्तर भारत की *रामलीला* इस परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें संवाद, शारीरिक हाव-भाव, पारंपरिक परिधान, संगीत तथा मंचीय विन्यास सभी भरत मुनि के सिद्धांतों से अनुप्राणित हैं।

इसी प्रकार बंगाल की *जात्रा*, महाराष्ट्र का *तमाशा* तथा उत्तर भारत की *नौटंकी* जैसे लोकनाट्य रूपों में भी भावाभिनय, मुखर संवादशैली एवं गीत-संगीत का उपयोग दर्शकों में रस उत्पन्न करने हेतु किया जाता है, जो प्रत्यक्षतः *नाट्यशास्त्र* की अवधारणाओं पर आधारित है।

4. दक्षिण-पूर्व एशिया में रामायण-आधारित रंगमंच परंपराएँ

भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव के परिणामस्वरूप कंबोडिया, थाईलैंड, बाली (इंडोनेशिया) इत्यादि देशों में भी रामायण पर आधारित विशिष्ट रंगपरंपराओं का उद्भव हुआ। बाली के *केचक* नृत्यनाट्य तथा कंबोडिया की *रामायण नृत्यशैली* में भारतीय *नाट्यशास्त्र* के तत्व-मुद्रा, अभिनय, संगीतिकता एवं भावविधान-स्पष्टतः विद्यमान हैं।

इन देशों में रामायण केवल एक कथा न रहकर जीवंत सांस्कृतिक अनुभव बन चुकी है, जिसमें भारत की प्राचीन नाट्य-दृष्टि का अद्भुत संवाहन हुआ है।

5. संस्कृत नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में नाट्यकला का सिद्धांत

दंडी कृत *दशरूपक*, *अभिनवगुप्त* कृत *अभिनवभारती* जैसे ग्रंथों ने नाट्यशास्त्र की व्याख्या और विस्तार में अमूल्य योगदान दिया है। कालिदास के *अभिज्ञानशाकुंतलम्*, भवभूति के *मालती-माधव* तथा भीष्मदेव के *उत्तररामचरितम्* जैसे नाटकों में नाट्यशास्त्रीय नियमों का अनुपालन अत्यंत सूक्ष्मता से दृष्टिगोचर होता है। इन ग्रंथों व नाटकों में *रस निष्पत्ति*, *चरित्र गठन*, *संवाद योजना*, *नायक-नायिका भेद*, तथा *विभाव*, *अनुभाव*, *संचारी भाव* की अवधारणाओं का श्रेष्ठ उदाहरण मिलता है। ये ग्रंथ नाट्यशास्त्र की सैद्धांतिक परंपरा के आधार स्तंभ हैं, जो भारतीय रंगमंचीय बौद्धिकता की पराकाष्ठा को दर्शाते हैं।

नाट्यशास्त्र न केवल भारत की रंगपरंपरा की रीढ़ है, अपितु इसकी शिक्षाएँ और सिद्धांत विश्व रंगमंच को भी गहरे स्तर पर प्रभावित करते रहे हैं। चाहे वह कुटियाट्टम जैसे शास्त्रीय रूप हों, या रामलीला, जात्रा जैसे लोकनाट्य; अथवा कंबोडिया-बाली जैसे विदेशी मंच-हर स्थान पर नाट्यशास्त्र की छाया विद्यमान है। इस ग्रंथ ने अभिनय, नृत्य, संगीत, रंगमंच-रचना और दर्शक-मनःस्थितियों पर आधारित ऐसी सर्वकालिक प्रणाली दी है, जो नाट्यकला के सार्वभौमिक दर्शन को प्रस्तुत करती है।

लोकनृत्य का सौंदर्य और जीवन्तता

लोकनृत्य, शास्त्रीय नृत्य की तुलना में सरल और सीधे होते हैं, लेकिन इनकी व्यावहारिक जीवन्तता और भावाभिव्यक्ति की शक्ति इन्हें अद्वितीय बनाती है। ये नृत्य उस समुदाय की संस्कृति, परंपराओं और दिनचर्या का अभिन्न हिस्सा होते हैं। इन नृत्यों का सौंदर्य और लालित्य उनकी साधारणता में छिपा होता है, जो इन्हें हर स्थान और समय में प्रासंगिक बनाता है।

ताण्डव और **लास्य** के शास्त्रीय रूपों ने नृत्य को अनुशासित किया और इसे एक कला रूप के रूप में प्रतिष्ठित किया, वहीं लोकनृत्य ने अपनी सरलता, भावनात्मक प्रभाव और जीवन्तता के द्वारा भारतीय संस्कृति में अपनी महत्ता बनाए रखी। शास्त्रीय नृत्य और लोकनृत्य दोनों ही भारतीय कला और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं, जो एक-दूसरे के पूरक और समर्थक हैं।

Scanned with OKEN Scanner

कालिदास का योगदान

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वह भारतीय काव्य परंपरा के महान आचार्य थे, जिनका योगदान भारतीय साहित्य में अनमोल है। उनके काव्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ हैं, बल्कि उनमें जीवन के उच्चतम आदर्शों और भावनाओं का प्रगट भी होता है। कालिदास के काव्य, **जैसे** रघुवंश, कुमारसंभव, और मालविकाग्निमित्र ने न केवल संस्कृत साहित्य को गौरवान्वित किया, बल्कि भारतीय काव्यशास्त्र में अपनी एक विशेष पहचान बनाई।

महाभारत और **भगवद्गीता** ने न केवल भारतीय समाज को, बल्कि समग्र मानवता को जीवन के आदर्श, धर्म, कर्म, और भक्ति के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया है। गीता के उपदेश आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने वह हजारों साल पहले थे। वहीं महाकवि कालिदास ने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय साहित्य को एक नई दिशा दी, जो आज भी साहित्यिक दुनिया में एक अमूल्य धरोहर के रूप में जानी जाती है।

महाकवि कालिदास ने भारतीय संस्कृति को अपनी कृतियों के माध्यम से न केवल आत्मसात किया, बल्कि उसे व्यापक रूप से प्रचारित और प्रसारित भी किया। कवि रवींद्रनाथ ठाकुर के अनुसार, कालिदास ने जीवन के दुःख और संकटों का सामना करके जो अमृत प्राप्त किया, उसे हमें प्रदान किया। महर्षि अरविंद का मानना था कि अगर वाल्मीकि, व्यास और कालिदास का साहित्य ही बचा रहे और बाकी सब नष्ट हो जाए, तो भी भारत को कोई हानि नहीं होगी। कालिदास ने भारतीय साहित्य को जो योगदान दिया है, वह अनमोल और अद्वितीय है।

कालिदास की प्रमुख कृतियों में सात प्रमुख कृतियाँ मानी जाती हैं, जो उनके साहित्यिक काव्य कौशल और दर्शन को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती हैं। इनमें से प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं:

1. **ऋतुसंहार:** यह कालिदास की एक प्रारंभिक काव्य रचना है, जो उनकी युवा प्रतिभा का परिचय देती है। इसमें उन्होंने प्रकृति, ऋतुओं और प्रेमी युगल के बीच का संबंध बेहद सुंदर तरीके से व्यक्त किया है। यह काव्य ऋतुओं के बदलते प्रभाव को प्रेमी युगल की भावनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है। ग्रीष्म ऋतु से वसंत ऋतु तक की यात्रा में छः ऋतुओं का वर्णन किया गया है, जो इसे संस्कृत साहित्य के ऋतुवर्णन में एक अद्वितीय काव्य बनाता है।



Scanned with OKEN Scanner

2. **मेघदूतम्:** अगर कालिदास ने केवल *मेघदूत* ही लिखा होता, तो भी उनकी गिनती विश्व के महान कवियों में होती। इस काव्य में एक यक्ष की कहानी है, जिसे अपनी पत्नी से दूर किया गया था और वह मेघ को अपना संदेश भेजने के लिए दूत के रूप में भेजता है। इसमें रामगिरि से अलका तक के मार्ग का सुंदर वर्णन किया गया है, जो प्रेम और प्रकृति के अद्भुत मेल को दर्शाता है।

3. **कुमारसंभवम्:** यह महाकाव्य भगवान शिव और पार्वती के विवाह की कथा पर आधारित है। इसमें कालिदास ने शिव और पार्वती के मिलन को केंद्रित कर उनके तप, प्रेम और कार्यों को निखारा है। काव्य का संदेश यह है कि जीवन में सफलता केवल तप और समर्पण से प्राप्त होती है, न कि कामवासना से। काव्य में शिव के तीसरे नेत्र द्वारा कामदेव के भस्म होने की घटना भी वर्णित है। यह महाकाव्य अधूरा रह गया था, लेकिन इसके संदेश और प्रभाव अभी भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

4. **रघुवंशम्:** यह संस्कृत साहित्य का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है, जिसमें सूर्यवंश के विभिन्न राजाओं का वर्णन किया गया है, जिनमें राजा दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम जैसे महान नायक शामिल हैं। रघुवंशम् में भारतीय राजाओं के आदर्श और उनके कर्तव्यों का निरूपण किया गया है। राम का सीतात्याग और भारतीय दाम्पत्य के आदर्श की सुंदर अभिव्यक्ति इस महाकाव्य में की गई है, जो भारतीय संस्कारों और नैतिकताओं को उजागर करती है।

नाटक: कालिदास के नाटकों का भी विशेष महत्व है। उनके तीन प्रमुख नाटक हैं, जो संस्कृत नाटक साहित्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें से सबसे प्रसिद्ध है–

- **शाकुन्तलम्**
- **विक्रमोर्वशीम्**
- **मालविकाग्निमित्रम्**

5. **मालविकाग्निमित्रम्:** यह कालिदास का एक प्रारंभिक नाटक है, जिसमें राजा अग्निमित्र और मालविका के प्रणय की कहानी प्रस्तुत की गई है। राजा अग्निमित्र केवल चित्र में ही मालविका को देखता है और उसकी सुंदरता से मोहित हो जाता है। राजा के प्रेम को प्राप्त करने के लिए वह अपने विदूषक मित्र गौतम से मदद लेता है। गौतम द्वारा अपनाई गई युक्तियों और चातुरी से दोनों का मिलन होता है। यह नाटक कालिदास के नाट्य कौशल की प्रारंभिक रचना है, जिसमें उनके महाकवित्व की झलक दिखाई देती है, जो बाद में अभिज्ञानशाकुन्तलम् महान काव्य रचनाओं का रूप धारण करता है।

Scanned with OKEN Scanner

6. **विक्रमोर्वशीयम्:** यह नाटक पृथ्वी के महान सम्राट पुरूरवा और स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी के बीच के प्रेम की कथा पर आधारित है। नाटक में केशी नामक राक्षस उर्वशी का अपहरण करता है, और पुरूरवा उसे राक्षस से मुक्त करने के लिए संघर्ष करता है। इस नाटक में प्रेम, विछोड़ और पुनः मिलन की भावना को अद्भुत तरीके से चित्रित किया गया है। विक्रमोर्वशीयम् का चौथा अंश आज भी नृत्यनाटिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और यह दर्शकों के दिलों में प्रेम और कला का रस संचारित करता है। इस नाटक में कालिदास ने प्रेम और प्रकृति के अद्वितीय मिश्रण को दर्शाया है, जो उन्हें एक महान नाटककार बनाता है।

7. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्:** यह कालिदास की सबसे प्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है, जिसे संस्कृत साहित्य के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जाता है। इस नाटक की कहानी स्वर्ग की अप्सरा मेनका की पुत्री शकुन्तला और पृथ्वी के राजा दुष्यंत के प्रेम संबंधों के इर्द-गिर्द घूमती है। शकुन्तला को महर्षि कण्व के आश्रम में पालन-पोषण मिलता है, जहाँ वह राजा दुष्यंत से मिलती है और दोनों के बीच गंधर्व विवाह होता है। एक दिन, शकुन्तला दुर्वासा ऋषि का सत्कार करने में चूक जाती है और उन्हें शाप मिल जाता है, जिससे राजा दुष्यंत उसे भूल जाते हैं। लेकिन अंत में, शकुन्तला को राजा का ध्यान आकर्षित करने वाली एक अंगूठी मिलती है, और यह शाप टूट जाता है। दोनों का मिलन ऋषि मरीचि के आश्रम में होता है, और उनका पुत्र भरत, जो बाद में महान सम्राट बनता है, इस मिलन का कारण बनता है। *अभिज्ञानशाकुन्तलम्* केवल एक प्रेमकथा है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, संस्कार और आदर्शों का भी अद्भुत चित्रण करती है। इस नाटक का अनुवाद पढ़कर यूरोप के महान कवि गेटे ने इसे अपने मस्तक पर रखा और नृत्य किया था, जो इसके वैश्विक प्रभाव और महत्व को दर्शाता है।

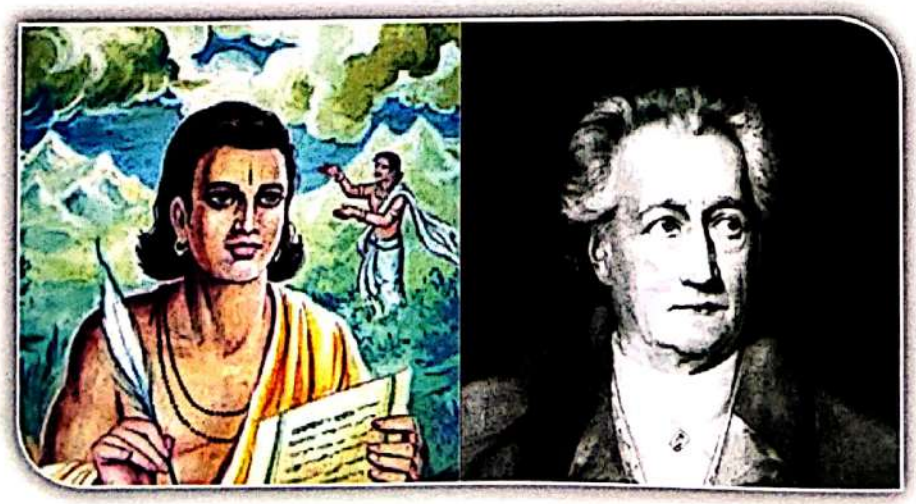

Scanned with OKEN Scanner

जोहान वोल्फगैंग वॉन गोएथे की प्रसिद्ध पंक्तियाँ, जो उन्होंने नाटक की प्रशंसा में लिखीं–

"Willst du den Himmel, die Erde mit Einem Namen begreifen,
Nenn' ich, Sakuntala, dich, und so ist alles gesagt."

(**अनुवाद:** यदि तुम स्वर्ग और पृथ्वी को एक ही नाम में समेटना चाहो, तो मैं तुम्हें 'शकुन्तला' कहता हूँ-और इतना कहना ही सब कुछ कह देना है।)

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का वैश्विक साहित्य पर विशेषकर यूरोप में गहरा प्रभाव पड़ा:

- इसे 18वीं शताब्दी में जर्मन भाषा में अनुवादित किया गया (सर विलियम जोन्स और फ्रांज़ बॉप द्वारा)।
- इसे गोएथे, श्लेगेल, और अन्य रोमांटिक कवियों द्वारा अत्यंत सराहा गया।
- इसने पश्चिमी रंगमंचीय परंपरा और सौंदर्यशास्त्र को रोमांटिक और प्राच्यवादी आंदोलनों के दौरान गहराई से प्रभावित किया।

महाकवि कालिदास के नाटक न केवल भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, बल्कि उन्होंने संस्कृत नाट्य कला को विश्वभर में प्रतिष्ठित किया। उनके नाटकों में प्रेम, प्रकृति, दर्शन और मानवता के गहरे तत्वों का अद्भुत मिश्रण मिलता है। *मालविकाग्निमित्रम्*, *विक्रमोर्वशीयम्* और *अभिज्ञानशाकुन्तलम्* नाटक कालिदास के लेखन के विविध पहलुओं को दर्शाते हैं और उनके महान काव्यात्मक कौशल को प्रदर्शित करते हैं। इन कृतियों के माध्यम से उन्होंने भारतीय संस्कृति और मानवीय भावनाओं का चित्रण अत्यंत सुंदरता से किया है, जो आज भी दुनिया भर के पाठकों और दर्शकों को प्रेरित करता है।

महाकवि भवभूति और उनकी कृतियाँ

महाकवि भवभूति संस्कृत साहित्य के एक महान रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं, जिनकी कृतियाँ कालिदास के साथ-साथ संस्कृत नाट्य साहित्य के सर्वोत्तम उदाहरणों में गिनी जाती हैं। भवभूति के नाटकों में करुण रस का अत्यधिक महत्व है, और उनकी कृतियाँ भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर मानी जाती हैं। उनके तीन प्रमुख नाटक हैं:

1. **महावीरचरितम्:** यह नाटक रामायण के राम के प्रारंभिक जीवन पर आधारित है, जिसमें राम के संघर्ष और त्याग की कथा को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया

Scanned with OKEN Scanner

है। नाटक में भवभूति ने राम के व्यक्तित्व को अत्यंत करुणापूरित तरीके से उकेरा है, और राम की नायकत्व की स्थिति को दैवीय निर्णयों और परिस्तिथियों के प्रभाव में देखा है। राम के जीवन में आने वाली कठिनाइयाँ और उनके द्वारा किए गए त्याग दर्शाते हैं कि नायक केवल अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं से नहीं, बल्कि उच्चतम सत्य और धर्म से प्रेरित होता है।

2. **मालतीमाधवम्:** यह नाटक काल्पनिक प्रेमकथा पर आधारित है, जिसमें मालती और माधव के बीच प्रेम संबंधों का चित्रण है। यह नाटक महाकवि शूद्रक के मृच्छकटिकम् से प्रेरित लगता है, जिसमें शूद्रक ने समाज के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया था। मालती और माधव का प्रेम कहानी भव्यता और रंगीनता के साथ प्रस्तुत किया गया है, जिसमें सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्षों का विवरण है।

3. **उत्तररामचरितम्:** यह नाटक भवभूति की सबसे प्रसिद्ध रचना मानी जाती है, जिसमें राम के जीवन के बाद के घटनाओं का चित्रण किया गया है। इस नाटक में राम और सीता के बीच के करुण संबंधों को अत्यंत भावुक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। भवभूति ने राम के राज्याभिषेक के बाद की स्थिति को विस्तार से दिखाया, जहां राम सीता को त्यागने का निर्णय लेते हैं, लेकिन यह निर्णय परिस्थितिवश लिया जाता है, न कि स्वेच्छा से। भवभूति ने प्रेम और त्याग के इस परिष्कृत रूप को दर्शाते हुए राम और सीता के पुनर्मिलन को एक कलात्मक और भावनात्मक चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया है। इस नाटक के कारण हीकरुण रस का महत्व बढ़ा और संस्कृत नाट्य साहित्य में इसे एक नई दिशा मिली।

भवभूति का काव्यशास्त्र पर प्रभाव

भवभूति की कृतियाँ संस्कृत साहित्य के करुण रस के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हुईं। उनके नाटक*उत्तररामचरितम्* प्रेम और त्याग के बीच के परस्पर विरोधी भावनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि यह आज भी काव्यशास्त्र में एक महत्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है। भवभूति ने यह सिद्ध कर दिया कि नायक की नायकत्व केवल उसकी वीरता और शक्तियों में नहीं, बल्कि उसकी करुणा और परिस्तिथियों के प्रति संवेदनशीलता में भी निहित होती है।

Scanned with OKEN Scanner

संस्कृत साहित्य की महाकाव्य और नाट्य परंपरा

भवभूति के साथ संस्कृत साहित्य में महाकाव्य और नाट्यकाव्य की परंपरा में कई अन्य महत्वपूर्ण कवियों का योगदान रहा है। महाकवि कालिदास और भवभूति के अतिरिक्त, महाकवि भारवि, माघ और श्रीहर्ष ने भी अपने महाकाव्य जैसे *किरातार्जुनीयम्*, *शिशुपालवधम्* और *नैषधीयचरितम्*स साहित्य में अद्वितीय योगदान दिया। इसके अलावा, संस्कृत के महान गद्य लेखक जैसे बाण, दण्डी, आचार्य धनञ्जय, और वामन ने भी अपनी काव्यशास्त्रीय रचनाओं से संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया।

प्राकृत और क्षेत्रीय भाषाओं का विकास

संस्कृत साहित्य के बाद, प्राकृत और उसके अपभ्रंश रूपों से उत्पन्न क्षेत्रीय भाषाओं का विकास हुआ। तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, बांग्ला, मैथिली, और अन्य भाषाओं में भक्ति और वीर रस के काव्य रचनाओं का विकास हुआ। इन क्षेत्रीय भाषाओं में विशेष रूप से भक्ति काव्य, जैसे कि *तिरुवाचकम्* (माणिक्कवाचकर), *भागवत* (जगन्नाथ दास) और मराठी में *अभंग* (एकनाथ, तुकाराम) ने धार्मिक और सामाजिक चेतना का प्रचार किया।

महाकवि भवभूति के नाटक संस्कृत नाट्य साहित्य की उच्चतम कृतियाँ मानी जाती हैं, जो न केवल करुण रस के प्रवर्तक रहे, बल्कि उन्होंने प्रेम और त्याग के दर्शन को एक नए रूप में प्रस्तुत किया। उनके नाटकों के कारण ही करुण रस का महत्व और प्रचलन बढ़ा, और संस्कृत साहित्य को एक नई दिशा मिली। भवभूति की कृतियों का प्रभाव केवल संस्कृत साहित्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उनके सिद्धांत और लेखन ने अन्य भाषाओं के साहित्यकारों को भी प्रेरित किया।

तालिका: भारतीय नाटककार और कलाकार जिन्हें नाट्यशास्त्र, नृत्य, संगीत और रंगमंच में उनके योगदान के लिए सम्मानित किया गया।

नाम	युग	क्षेत्र	उपलब्धियां एवं सरकारी सम्मान
भरत मुनि	प्राचीन	नाट्य (नृत्य एवं रंगमंच)	*नाट्यशास्त्र* की रचना की, भारतीय रंगमंच की आधारशिला रखी; इसे "पाँचवाँ वेद" माना जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

नाम	युग	क्षेत्र	उपलब्धियां एवं सरकारी सम्मान
कालिदास	प्राचीन	संस्कृत नाटक	*अभिज्ञान शाकुंतलम*, *मेघदूत*, *मालविकाग्निमित्रम्* जैसे महान नाटकों की रचना की।
भास	प्राचीन	संस्कृत नाटक	*स्वप्नवासवदत्तम* और अन्य कई प्रसिद्ध नाटकों के रचनाकार।
शूद्रक	प्राचीन	संस्कृत नाटक	*मृच्छकटिक* (*द लिटिल क्ले कार्ट*) की रचना की, जो अत्यंत प्रसिद्ध नाटक है।
भवभूति	मध्यकालीन	संस्कृत नाटक	*उत्तररामचरित* और *मालतीमाधव* जैसे उत्कृष्ट नाटकों के लिए प्रसिद्ध।
विशाखदत्त	मध्यकालीन	संस्कृत नाटक	*मुद्राराक्षस* की रचना की, जो चाणक्य और चंद्रगुप्त मौर्य की राजनीति पर आधारित है।
रवींद्रनाथ टैगोर	आधुनिक	बंगाली नाटक	*डाकघर*, *चित्रांगदा* और रेड *ओलियंडर्स* की रचना; **साहित्य का नोबेल पुरस्कार** प्राप्त।
विजय तेंडुलकर	आधुनिक	मराठी नाटक	*घाशीराम कोतवाल* और *सखाराम बाइंडर* जैसी प्रमुख रचनाएँ; **पद्म भूषण** प्राप्त।
हबीब तनवीर	आधुनिक	हिंदी और लोक थिएटर	*चरणदास चोर* और अन्य नाटकों के लिए प्रसिद्ध; **पद्म भूषण** प्राप्त।
बादल सरकार	आधुनिक	बंगाली नाटक	*इन्द्रजीत*, *पगला घोड़ा* जैसी रचनाएँ; **पद्म श्री** से सम्मानित।
भीष्म साहनी	आधुनिक	हिंदी नाटक	*तमस* लिखा, साम्प्रदायिक सौहार्द पर आधारित; **पद्म भूषण** से सम्मानित।
के.वी. सुब्बन्ना	आधुनिक	कन्नड़ रंगमंच	निनासम थिएटर संस्थान के संस्थापक **पद्म श्री** से सम्मानित।

Scanned with OKEN Scanner

नाम	युग	क्षेत्र	उपलब्धियां एवं सरकारी सम्मान
रतन थियाम	समकालीन	मणिपुरी रंगमंच	विशिष्ट रंगमंचीय प्रस्तुतियों के लिए प्रसिद्ध; **पद्म श्री** प्राप्त।
कन्हैलाल हेइसनाम	समकालीन	मणिपुरी रंगमंच	नवाचारपूर्ण रंगमंच कार्यों के लिए प्रसिद्ध; **पद्म श्री** से सम्मानित।
शंभू मित्रा	आधुनिक	बंगाली रंगमंच	*रक्तकरबी* जैसे नाटकों के लिए प्रसिद्ध; **पद्म भूषण** प्राप्त।
पंडित बिरजू महाराज	आधुनिक	कथक नृत्य	कथक में उत्कृष्टता के लिए **पद्म विभूषण** से सम्मानित।
उस्ताद बिस्मिल्लाह खान	आधुनिक	शहनाई (वाद्य संगीत)	शहनाई को वैश्विक मंच पर ले जाने के लिए **भारत रत्न** प्राप्त।
पंडित जसराज	आधुनिक	हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन	भारतीय शास्त्रीय संगीत में योगदान के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।
रवि शंकर	आधुनिक	सितार (वाद्य संगीत)	**भारत रत्न** और **पद्म पुरस्कार** प्राप्त; अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध।
लता मंगेशकर	आधुनिक	पार्श्व गायन	भारतीय संगीत में महान योगदान के लिए **भारत रत्न** प्राप्त।
सत्यजीत रे	आधुनिक	फिल्म निर्देशन	**ऑनरेरी ऑस्कर** प्राप्त करने वाले पहले भारतीय; **भारत रत्न** सम्मानित।
जाकिर हुसैन	आधुनिक	तबला (वाद्य संगीत)	वैश्विक स्तर पर तबला के प्रचार-प्रसार के लिए **पद्म भूषण** प्राप्त।
ए.आर. रहमान	आधुनिक	संगीत रचना	**पद्म भूषण** प्राप्त; *स्लमडॉग मिलियनेयर* के लिए **ऑस्कर पुरस्कार**।
मल्लिका साराभाई	आधुनिक	शास्त्रीय नृत्य और थिएटर	भारतीय रंगमंच और नृत्य में योगदान के लिए **पद्म भूषण** प्राप्त।

Scanned with OKEN Scanner

नाम	युग	क्षेत्र	उपलब्धियां एवं सरकारी सम्मान
केलुचरण महापात्रा	आधुनिक	ओडिसी नृत्य	ओडिसी नृत्य को पुनर्जीवित करने के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।
रुक्मिणी देवी अरुंडले	आधुनिक	भरतनाट्यम नृत्य	भरतनाट्यम को नई पहचान देने के लिए **पद्म भूषण** से सम्मानित।
एम.एस. सुब्बलक्ष्मी	आधुनिक	कर्नाटिक गायन	**भारत रत्न** प्राप्त करने वाली पहली गायिका; UN में प्रस्तुति दी।
टी. बाल सरस्वती	आधुनिक	भरतनाट्यम नृत्य	भरतनाट्यम में उत्कृष्ट योगदान के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।
हरिप्रसाद चौरसिया	आधुनिक	बांसुरी (वाद्य संगीत)	हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में योगदान के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।
शोवना नारायण	आधुनिक	कथक नृत्य	**पद्म श्री** प्राप्त, कथक के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका।
कुमार गंधर्व	आधुनिक	हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन	विशिष्ट गायन शैली के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।

मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय साहित्य

मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय साहित्य में भक्ति, वीर रस, समाज सुधार, और ऐतिहासिक काव्य परंपराओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य के विभिन्न रूपों में समाज के बदलते दृष्टिकोण और विचारों को उजागर किया गया। इस विशेष काल में विभिन्न कवियों और लेखकों ने न केवल धार्मिक और भक्ति साहित्य रचा, बल्कि सामजिक और राष्ट्रवादी चेतना को भी अपने लेखन में स्थान दिया।

भक्ति साहित्य

हिंदी साहित्य में भक्ति परंपरा को समृद्ध करने में कई कवियों ने योगदान दिया। नामदेव, गुरु नानक, कबीर, बिहारी, सूरदास, रसखान, तुलसीदास, मीराबाई और अन्य कवियों ने भक्ति साहित्य को उच्चतम स्तर तक पहुँचाया। कबीर ने अपनी रचनाएँ "पंचमेल

Scanned with OKEN Scanner

नाम	युग	क्षेत्र	उपलब्धियां एवं सरकारी सम्मान
केलुचरण महापात्रा	आधुनिक	ओडिसी नृत्य	ओडिसी नृत्य को पुनर्जीवित करने के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।
रुक्मिणी देवी अरुंडले	आधुनिक	भरतनाट्यम नृत्य	भरतनाट्यम को नई पहचान देने के लिए **पद्म भूषण** से सम्मानित।
एम.एस. सुब्बलक्ष्मी	आधुनिक	कर्नाटिक गायन	**भारत रत्न** प्राप्त करने वाली पहली गायिका; UN में प्रस्तुति दी।
टी. बाल सरस्वती	आधुनिक	भरतनाट्यम नृत्य	भरतनाट्यम में उत्कृष्ट योगदान के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।
हरिप्रसाद चौरसिया	आधुनिक	बांसुरी (वाद्य संगीत)	हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में योगदान के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।
शोवना नारायण	आधुनिक	कथक नृत्य	**पद्म श्री** प्राप्त, कथक के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका।
कुमार गंधर्व	आधुनिक	हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन	विशिष्ट गायन शैली के लिए **पद्म विभूषण** प्राप्त।

मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय साहित्य

मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय साहित्य में भक्ति, वीर रस, समाज सुधार, और ऐतिहासिक काव्य परंपराओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य के विभिन्न रूपों में समाज के बदलते दृष्टिकोण और विचारों को उजागर किया गया। इस विशेष काल में विभिन्न कवियों और लेखकों ने न केवल धार्मिक और भक्ति साहित्य रचा, बल्कि सामजिक और राष्ट्रवादी चेतना को भी अपने लेखन में स्थान दिया।

भक्ति साहित्य

हिंदी साहित्य में भक्ति परंपरा को समृद्ध करने में कई कवियों ने योगदान दिया। नामदेव, गुरु नानक, कबीर, बिहारी, सूरदास, रसखान, तुलसीदास, मीराबाई और अन्य कवियों ने भक्ति साहित्य को उच्चतम स्तर तक पहुँचाया। कबीर ने अपनी रचनाएँ "पंचमेल

Scanned with OKEN Scanner

खिचड़ी" जैसी मिश्रित लोकभाषा में कीं और **साखी, सबद,** तथा **रमैनी** के माध्यम से भक्ति, समाज-सुधार और आध्यात्मिक चेतना को अभिव्यक्त किया। (कबीर की भाषा को "पंचमेल खिचड़ी" कहा जाता है– लोकबोली + धर्म + दर्शन + प्रतीकात्मकता का मिश्रण।) तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से राम के चरित्र को अवधी भाषा में प्रस्तुत किया। सूरदास और रसखान ने कृष्ण भक्ति की भावना को ब्रज भाषा में अभिव्यक्त किया। मीराबाई ने अपनी कृष्ण भक्ति अभिव्यक्तियों को हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती में प्रकट किया।

वीर रस और ऐतिहासिक काव्य

मध्यकाल में वीर रस की प्रवृत्तियाँ भी प्रमुख थीं। चन्दबरदाई का *"पृथ्वीराज रासो"* और जगनिक का *"परमाल रासो"* जैसी काव्य रचनाएँ वीर गाथाओं का अद्भुत उदाहरण हैं। इन काव्यों में युद्ध, शौर्य, और वीरता के गुणों का बखान किया गया। विशेष रूप से *"आल्हा खण्ड"* को पं. ललिता प्रसाद मिश्र ने 1908 में आल्हा छंद में लिखा, जो एक वीरकाव्य था।



भक्ति काल के प्रमुख रचनाकार

Scanned with OKEN Scanner

सामाजिक सुधार और उपन्यास लेखन

समाज सुधारकों और लेखकों ने साहित्य के माध्यम से सामाजिक जागरूकता फैलाने का प्रयास किया। महर्षि दयानंद, विवेकानंद, पं. भगवदत्त, और अन्य सुधारकों ने भारतीय समाज की बुराइयों पर चर्चा की और सुधार की दिशा में विचार प्रस्तुत किए। इसी समय में उपन्यास लेखन का भी उत्कर्ष हुआ। *"चंद्रकांता"* (देवकीनंदन खत्री), *"गोदान"* (मुंशी प्रेमचंद्र), *"कामायनी"* (जयशंकर प्रसाद), *"साकेत"* (मैथिलीशरण गुप्त), *"झाँसी की रानी"* (सुभद्राकुमारी चौहान) और *"गीतांजलि"* (रवींद्रनाथ ठाकुर) जैसे उपन्यासों ने समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया।

राष्ट्रप्रेम और सामाजिक मुद्दे

भारतीय साहित्य में राष्ट्रप्रेम और मानव मूल्य भी प्रमुख रहे। रवींद्रनाथ ठाकुर की *"गीतांजलि"* ने न केवल भारतीय संस्कृति और अध्यात्म का विस्तार किया, बल्कि विश्वबंधुत्व की भावना को भी व्यक्त किया। महाश्वेता देवी की *"हजार चौरासी की माँ"* और बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय की *"आनंदमठ"* जैसे उपन्यासों में भारतीय समाज की वास्तविकता और संघर्षों को दर्शाया गया।

- **नारी चेतना:** नारी चेतना पर भी कई महत्वपूर्ण कृतियाँ रची गईं। भारतीय साहित्य में नारी की भूमिका, अधिकार और समस्याओं पर विचार करने के लिए कई रचनाएँ लिखी गईं। विशेष रूप से नारी की सामाजिक स्थिति और उसकी पहचान को लेकर विमर्श किया गया।
- **समाज और संस्कृति की विविधता:** भारतीय साहित्य की यह समृद्ध परंपरा न केवल भारतीय समाज और संस्कृति को समृद्ध करती है, बल्कि विश्वभर में भारतीय दृष्टिकोण को प्रसार करने में भी सहायक रही है। इन रचनाओं में पर्यावरण, आदर्श, धर्म, विज्ञान, और मानवमूल्यों से संबंधित विचार प्रस्तुत किए गए हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं।

वैश्विक रंगमंच पर आधुनिक भारतीय नाट्यकला की प्रभावपूर्ण उपस्थिति

भारतीय रंगमंच की परंपरा केवल देशीय सीमाओं तक सीमित नहीं रही; इसके शास्त्रीय सिद्धांत, अभिनय शैलियाँ, कथ्य-निर्माण एवं मंचीय प्रयोग विश्व रंगमंच की अनेक

Scanned with OKEN Scanner

धाराओं को गहराई से प्रभावित करते रहे हैं। आधुनिक भारतीय रंगमंच ने वैश्विक रंगकर्म को किस प्रकार समृद्ध किया है, इसका विवेचन निम्नानुसार है-

1. अंतरराष्ट्रीय रंगमंच में भारतीय नाट्यपरंपरा का समावेश

भारतीय शास्त्रीय और लोकनाट्य परंपराओं ने अनेक अंतरराष्ट्रीय रंगकर्मी एवं निर्देशकों को आकर्षित किया है। सुप्रसिद्ध ब्रिटिश रंगनिर्देशक पीटर ब्रुक ने अपने ऐतिहासिक नाट्य-उपस्थापन *महाभारत* (1985) में भारतीय कथा-विधान, सांकेतिक अभिनय शैली तथा तत्वदर्शी दार्शनिक दृष्टिकोण को मूल रूप से समाविष्ट कर पश्चिमी रंगमंच को भारतीय महाकाव्य की आत्मा से साक्षात्कार कराया। इस महत्त्वपूर्ण कृति में भारतीय नाट्यशास्त्र के 'रस सिद्धांत' तथा 'नेत्र-अभिनय' के प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं।

2. प्रयोगधर्मी रंगकर्म पर भारतीय सिद्धांतों की छाप

भारतीय रंगमंच की हस्तमुद्राएँ, रस-सिद्धांत, तथा प्रतीकात्मक अभिनय की अवधारणाओं ने वैश्विक प्रयोगधर्मी रंगमंच को नया आयाम प्रदान किया। फ्रांस की अरियान मनूशकीन (*Théâtre du Soleil*) तथा इटली के यूजेनियो बार्बा जैसे विख्यात रंगकर्मियों ने अपनी प्रस्तुतियों में कथकली व भरतनाट्यम की मुद्राभिनय पद्धतियों तथा गूढ़ नाट्यशास्त्रीय संकेतों का नवाचारपूर्वक प्रयोग किया। इन प्रयोगों ने पश्चिम के यथार्थवादी रंगमंच में प्रतीकात्मकता व रसात्मकता का नवसंचार किया।

3. भारतीय-पश्चिमी नाट्य परंपराओं का संगम

आधुनिक भारतीय रंगकर्मी तथा नाटककार पश्चिमी रंगमंच के तंत्रों व पद्धतियों को भारतीय नाट्य दृष्टि के साथ संयोजित कर रहे हैं। लंदन के *National Theatre*, न्यूयॉर्क के *Broadway*, तथा अन्य प्रमुख मंचों पर भारतीय कथावस्तु, मिथकीय आख्यान, व नाट्यसौंदर्य का प्रयोग हुआ है-उदाहरणार्थ *Bombay Dreams* (Andrew Lloyd Webber) तथा *The Merchants of Bollywood*। इन प्रस्तुतियों ने भारतीय रंगसंसार के भव्य दृश्यबोध, संगीतात्मकता, व गतिक अभिनय को वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठित किया।

4. उत्तर-औपनिवेशिक रंगकर्म में भारतीय दृष्टि का प्रभाव

आधुनिक भारतीय नाटककारों ने सामाजिक पहचान, औपनिवेशिक विरासत, एवं सांस्कृतिक द्वंद्व जैसे विषयों को केंद्र में रखकर ऐसे नाटकों की रचना की है, जिनका प्रभाव विश्व के उत्तर-औपनिवेशिक रंगमंच पर पड़ा है। अफ्रीका, कैरिबियन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में भी इसी पद्धति के रंगकर्म को नया आत्मबोध मिला है, जिसमें अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की पुनर्खोज प्राथमिक है।

Scanned with OKEN Scanner

5. अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारतीय रंगनिर्देशकों की उपस्थिति

भारतीय नाट्यनिर्देशक रतन थियम ने अपने मणिपुरी रंगमंच की विशिष्ट शैली को यूरोप तथा एशिया के रंगमंच महोत्सवों में प्रस्तुत कर विश्व मंच पर भारतीय रंगपरंपरा की गरिमा को प्रतिष्ठित किया। उनकी प्रस्तुतियाँ-जैसे चक्रव्यूह-भारतीय मिथकीय संदर्भों, मार्शल आर्ट (युद्ध कलाएं) तथा काव्यात्मक दृश्य भाषा का अद्भुत संगम हैं, जो विश्व के आधुनिक एवं प्रयोगधर्मी रंगमंच (अवां-गार्द थिएटर) को प्रभावित कर रही हैं।

6. वैश्विक सिनेमा और मल्टीमीडिया में भारतीय रंगशैली

भारतीय रंगमंच की कथा-विधान शैली तथा मंचीय भाषा ने वैश्विक सिनेमा, विशेषकर संगीतमय रंगकर्म (Musical Theatre) पर भी अपनी छाप छोड़ी है। बॉलीवुड की संगीतमय फिल्मों के कथानक व दृश्य-संयोजन शैली ने ब्रॉडवे व हॉलीवुड की प्रस्तुतियों को प्रभावित किया है।

आधुनिक भारतीय रंगमंच ने केवल देशीय रंगपरंपराओं को नवीनीकृत ही नहीं किया, अपितु वैश्विक रंगकर्म को भी अपने प्राचीन शास्त्रों, समृद्ध नाट्यपरंपरा तथा अभिनव प्रयोगों से अनुप्राणित किया है। नाट्यशास्त्र का 'लोकानुकरण' तथा 'रस निष्पत्ति' का शाश्वत सिद्धांत आज भी विश्व रंगमंच के प्रयोगधर्मी मनीषियों को नई दृष्टि प्रदान कर रहा है।

निष्कर्ष

भारतीय साहित्य के विभिन्न आयामों को समझते हुए यह कहा जा सकता है कि यह केवल एक सांस्कृतिक धरोहर नहीं है, बल्कि समाज, संस्कृति, धर्म और देशभक्ति के गहरे संकेत भी प्रदान करता है। इन कृतियों के माध्यम से लेखकों ने सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक चेतना को उजागर किया और भारतीय समाज को एक नए दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। भारतीय शास्त्रीय कला, साहित्य और संगीत आध्यात्मिकता, संस्कृति और रचनात्मकता का गहरा संगम हैं, जो सदियों की परंपरा से आकारित हुए हैं। जैसे प्राचीन विद्वान भरतमुनी के ग्रंथों में नाट्यशास्त्र और संगीत के जटिल प्रणालियों को समझने का एक व्यापक ढांचा प्रस्तुत किया गया है, जो जीवन के भावनात्मक, आध्यात्मिक और दार्शनिक आयामों से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत, जो ध्वनि, राग और लय पर जोर देता है, न केवल एक कलात्मक रूप के रूप में कार्य करता है, बल्कि यह आध्यात्मिक जागरूकता और भावनात्मक अभिव्यक्ति का एक

Scanned with OKEN Scanner

उपकरण भी है। गुरु-शिष्य परंपरा इस ज्ञान के संरक्षण और निरंतरता को सुनिश्चित करती है, इसे पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाती है। कालिदास और भवभूति जैसे महान साहित्यकारों से समृद्ध भारतीय साहित्य मानव अनुभव की नैतिक और दार्शनिक अन्वेषण प्रस्तुत करता है, जबकि जीवंत नृत्य और लोक परंपराएं भारत की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाती हैं। ये सभी कलात्मक रूप मिलकर एक समृद्ध कंबल की तरह हैं, जो लगातार प्रेरणा और प्रभाव प्रदान करते हुए दुनिया को जीवन के मूल स्वभाव और उच्च सत्य की खोज में शाश्वत अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. **Bharata Muni.** *Nāṭyaśāstra.* Translated by Manomohan Ghosh, Parimal Publications, 2005. ISBN: 978-8171100026.
2. **Abhinavagupta.** *Abhinavabhāratī: Abhinavagupta's Commentary on Bharata's Nāṭyaśāstra Chapter XXVIII.* Translated with historical explanations by Anupā Pāṇḍe, Indian Institute of Technology Bombay, Publication Date Not Specified.
3. **Mehta, Tarla.** *Sanskrit Play Production in Ancient India.* Motilal Banarsidass Publishers, 1995. ISBN: 978-8120810570.
4. **Tripathi, Radhavallabh.** *Lectures on the Nāṭyaśāstra.* Centre of Advanced Study in Sanskrit, University of Poona, 1991. ISBN: Not Available.
5. **Śārṅgadeva.** *Saṅgīta Ratnākara: An Ancient Treatise on Hindu Music.* Translated by R.K. Shringy and Prem Lata Sharma, Gyan Publishing House, 2024. ISBN: 978-9367807033.
6. **Te Nijenhuis, Emmie.** *Indian Music: History and Structure.* Brill Academic Publishers, 1974. ISBN: 978-9004038482.
7. **Vatsyayan, Kapila.** *Dance in Indian Painting.* Abhinav Publications, 1982. ISBN: 978-8170171539.
8. **Pollock, Sheldon, editor.** *A Rasa Reader: Classical Indian Aesthetics.* Columbia University Press, 2016. ISBN: 978-0231173902.
9. **Motilal Banarsidass Publishers.** *Indian Theatre: Traditions of Performance.* Motilal Banarsidass Publishers, 2006. ISBN: 978-8120820500.
10. **Jeste, Meena Devadatta.** *Arts in the Purāṇas: A Study.* Bhandarkar Oriental Research Institute, 1973. ISBN: Not Available.
11. **Chattopadhyay, Malyaban.** "A Historical Study of Ancient Indian Theatre-Communication in the Light of Nāṭyaśāstra." *Global Media Journal – Indian Edition*, vol. 4, no. 2, Winter 2013, ISSN: 2249-

Scanned with OKEN Scanner

5835. https://www.academia.edu/11936647/A_Historical_study_of_ancient_indian_theatre_communication_in_the_light_of_natyasastra

12. **Kalyani Kala Mandir.** "The Importance of Dance in Kalidasa's Works." *Kalyani Kala Mandir*, 2024. https://kalyanikalamandir.com/the-importance-of-dance-in-kalidasas-works/

13. **Anonymous.** "Indian Dramatics-Nāṭyaśāstra and Abhijñāna-śākuntalam." *Academia.edu*,https://www.academia.edu/9207335/Indian_Dramatics_Natyashastra_and_Abhigyanshakuntalam

Scanned with OKEN Scanner

अनुशंसित पठन सामग्री

1. नाट्यवेद का प्रारंभ किससे संबंधित है?

   (क) भरतमुनि

   (ख) नटराज शिव

   (ग) ब्रह्माजी

   (घ) ऋग्वेद

2. भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों का प्रभाव निम्नलिखित में से किस क्षेत्र में नहीं देखा गया?

   (क) बाली

   (ख) जावा

   (ग) यूरोप

   (घ) म्यांमार

3. भारतीय नाट्यकला का प्राचीनतम ग्रंथ कौन सा है?

   (क) रामायण

   (ख) नाट्यशास्त्र

   (ग) महाभारत

   (घ) मुद्राराक्षसम्

4. भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कितने रसों का वर्णन किया है?

   (क) सात

   (ख) आठ

   (ग) नौ

   (घ) दस

Scanned with OKEN Scanner

5. नाट्यशास्त्र के अनुसार, नाटक का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(क) केवल मनोरंजन

(ख) धार्मिक उपदेश देना

(ग) मानव की संवेदनाओं और चेतना को जागृत करना

(घ) लोक संस्कृति का प्रचार

6. भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के 33वें अध्याय में किसका उल्लेख किया गया है?

(क) अभिनय के प्रकार

(ख) संगीत और वाद्य यंत्रों की उत्पत्ति

(ग) नाट्यकला की उत्पत्ति

(घ) रस सिद्धांत

7. प्राचीन भारत में स्वाति मुनि ने संगीत की उत्पत्ति के लिए प्रेरणा कहाँ से प्राप्त की?

(क) समुद्र की लहरों से

(ख) वर्षा की बूंदों से

(ग) पक्षियों के गीत से

(घ) वायु की ध्वनि से

8. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि में प्रमुख रूप से कौन सी भावना व्यक्त की गई है?

(क) राजनीतिक व्यंग्य

(ख) सार्वभौमिक भाईचारा और आध्यात्मिकता

(ग) सामाजिक यथार्थवाद

(घ) ऐतिहासिक विवरण

9. ब्रह्माजी ने नाट्यशास्त्र की रचना में किस वेद से "गीत" लिया?

(क) ऋग्वेद

(ख) सामवेद

(ग) यजुर्वेद

(घ) अथर्ववेद

Scanned with OKEN Scanner

10. नाट्यशास्त्र को किस प्रकार का वेद कहा गया है?

(क) पंचम वेद

(ख) चतुर्थ वेद

(ग) पौराणिक वेद

(घ) उपवेद

11. भरतमुनि ने नाट्य के माध्यम से किन पुरुषार्थों की प्राप्ति का उल्लेख किया है?

(क) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

(ख) केवल धर्म और अर्थ

(ग) केवल काम और मोक्ष

(घ) केवल ज्ञान और शिक्षा

12. निम्नलिखित में से किस कवि ने ब्रज भाषा में कृष्ण भक्ति व्यक्त की है?

(क) कबीर

(ख) तुलसीदास

(ग) सूरदास

(घ) नामदेव

13. "धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्।" का क्या अर्थ है?

(क) नाट्य केवल मनोरंजन के लिए है।

(ख) नाट्य धर्म, यश, आयु और बुद्धि को बढ़ाता है।

(ग) नाट्य केवल सामाजिक आदर्श स्थापित करता है।

(घ) नाट्य शारीरिक शक्ति प्रदान करता है।

14. नाट्य के माध्यम से किसे विश्रांति और शांति मिलती है?

(क) विद्वानों को

(ख) दुःख, श्रम और शोक से पीड़ितों को

(ग) समाज के नेताओं को

(घ) केवल कलाकारों को

Scanned with OKEN Scanner

15. भारतीय संगीत में नाद का सूक्ष्मतम रूप क्या है?

(क) स्वर

(ख) श्रुति

(ग) आलाप

(घ) राग

16. नाट्य का कौन-सा उद्देश्य दर्शकों की संवेदनशीलता को बढ़ाता है?

(क) रसों और भावों के माध्यम से

(ख) केवल दृश्य प्रभाव से

(ग) नायक और खलनायक के प्रदर्शन से

(घ) संगीत और वाद्य से

17. भरतमुनि के अनुसार नाट्य किस प्रकार का माध्यम है?

(क) केवल धार्मिक शिक्षा का

(ख) केवल व्यक्तिगत उत्थान का

(ग) लोकमंगल और आत्मसाक्षात्कार का

(घ) मनोरंजन और ज्ञान का

18. नाट्य का कौन-सा रूपक हास्य प्रधान है?

(क) प्रहसन

(ख) व्यायोग

(ग) समवकार

(घ) भाण

19. भारतीय संगीत में "अनाहत नाद" का क्या महत्व है?

(क) इसे केवल वाद्य यंत्रों से उत्पन्न किया जा सकता है।

(ख) यह आंतरिक, सूक्ष्म और दिव्य ध्वनि है।

(ग) यह केवल स्वर साधना के लिए उपयोगी है।

(घ) यह सामान्य जन के लिए समझना कठिन है।

Scanned with OKEN Scanner

20. "न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं" श्लोक किसकी व्यापकता को व्यक्त करता है?
   (क) धर्मशास्त्र की
   (ख) नाट्यशास्त्र की
   (ग) संगीतरत्नाकर की
   (घ) लोककला की

21. गीत और वाद्य का नाट्य में क्या योगदान है?
   (क) केवल नृत्य को अलंकृत करना
   (ख) गीत को अलंकृत करना और भावों को गहराई देना
   (ग) केवल मनोरंजन के लिए उपयोगी होना
   (घ) केवल वाद्य यंत्र का प्रदर्शन करना

22. भरतमुनि के अनुसार नाट्य का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   (क) समाज का मनोरंजन
   (ख) जीवन के शुभ-अशुभ कर्मों का प्रतिबिंब
   (ग) केवल धार्मिक प्रचार
   (घ) सांस्कृतिक परंपरा का संरक्षण

23. "संवेदनशीलता का विकास" नाट्य के किस पक्ष से जुड़ा है?
   (क) दृश्य और संगीत से
   (ख) रसों और भावों से
   (ग) केवल पात्रों के संवाद से
   (घ) केवल कथा के माध्यम से

24. भरतमुनि ने नाट्य को किसका प्रतीक बताया है?
   (क) आध्यात्मिक चेतना
   (ख) जीवन के विविध पहलुओं का
   (ग) केवल धार्मिक अनुष्ठानों का
   (घ) केवल राजसी जीवन का

Scanned with OKEN Scanner

25. भारतीय संगीत में कितने स्वरों की व्यवस्था की गई है?

(क) पाँच

(ख) छह

(ग) सात

(घ) आठ

26. "नकार" और "दकार" का क्या सूचक है?

(क) वायु और अग्नि

(ख) प्राण और अग्नि

(ग) जल और पृथ्वी

(घ) अग्नि और आकाश

27. "नादेन व्यज्यते वर्णः" का तात्पर्य क्या है?

(क) नाद से संसार का अस्तित्व है।

(ख) नाद से स्वर उत्पन्न होते हैं।

(ग) नाद से वाक्य और व्यवहार बनते हैं।

(घ) नाद से केवल संगीत उत्पन्न होता है।

28. भारतीय संगीत में नाद का आधार क्या है?

(क) ध्वनि और वाद्य

(ख) नृत्य और गायन

(ग) स्वर और श्रुति

(घ) नाद और ताला

29. किस शास्त्र में नाद और उसकी महत्ता का वर्णन मिलता है?

(क) नाट्यशास्त्र

(ख) संगीतरत्नाकर

(ग) वेदांग

(घ) महाभाष्य

Scanned with OKEN Scanner

30. "अनाहत नाद" का अनुभव किसके द्वारा संभव है?

(क) सामान्य व्यक्ति

(ख) वादक कलाकार

(ग) ऋषि-मुनि और ज्ञानी

(घ) केवल भरतमुनि

31. आहत नाद का क्या अर्थ है?

(क) जो ध्वनि केवल देखी जा सके

(ख) जो ध्वनि केवल महसूस की जा सके

(ग) जो ध्वनि सुनी जा सके और आनंददायक हो

(घ) जो ध्वनि लिखी जा सके

32. श्रुति किससे विकसित होती है?

(क) स्वर

(ख) नाद

(ग) राग

(घ) ग्राम

33. भारतीय संगीत में कितनी श्रुतियाँ होती हैं?

(क) 12

(ख) 22

(ग) 7

(घ) 5

34. "रजयन्ति स्वतः स्वांत श्रोतृणामिति ते स्वराः" का क्या अर्थ है?

(क) स्वर वह है जो केवल गाया जाता है

(ख) स्वर वह है जो सुनने वालों के चित्त को आनंदित करता है

(ग) स्वर वह है जो लिखित रूप में हो

(घ) स्वर वह है जो केवल उच्च स्वर में हो

Scanned with OKEN Scanner

35. तुलसीदास ने रामचरितमानस किस भाषा में लिखा था?

(क) संस्कृत

(ख) ब्रज

(ग) हिंदी

(घ) अवधी

36. विकृत स्वर में कौन-सा स्वर शामिल नहीं है?

(क) कोमल

(ख) तीव्र

(ग) शुद्ध

(घ) निषाद

37. "ग्राम" का क्या अर्थ है?

(क) ध्वनि की तीव्रता

(ख) स्वरों का समूह

(ग) स्वरों की गति

(घ) राग का आरोह

38. मूर्च्छना में कितने स्वरों का क्रमिक आरोहण और अवरोहण होता है?

(क) 5

(ख) 6

(ग) 7

(घ) 8

39. "औडव राग" में कितने स्वर होते हैं?

(क) 7

(ख) 6

(ग) 5

(घ) 4

Scanned with OKEN Scanner

40. वादी स्वर को किसको उपमा दी गई है?

(क) सैनिक

(ख) राजा

(ग) मंत्री

(घ) शत्रु

41. संवादी स्वर को किससे उपमा दी गई है?

(क) राजा

(ख) मंत्री

(ग) सैनिक

(घ) कलाकार

42. "थाट" किसके लिए आधार है?

(क) राग निर्माण

(ख) मूर्च्छना निर्माण

(ग) आरोह निर्माण

(घ) ग्राम निर्माण

43. अलंकार का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(क) स्वर को पहचानना

(ख) संगीत को सुंदर और प्रभावशाली बनाना

(ग) ध्वनि को तीव्र बनाना

(घ) स्वरों को स्थिर करना

44. स्थायी वर्ण क्या है?

(क) स्वरों को क्रम से गाना

(ख) आरोह और अवरोह का मिश्रण

(ग) एक ही स्वर को बार-बार गाना

(घ) स्वरों को तीव्र रूप में गाना

Scanned with OKEN Scanner

45. राग की परिभाषा में क्या आवश्यक है?

(क) स्वर का आरोह

(ख) चित्त को आनंदित करना

(ग) आरोह-अवरोह का सही क्रम

(घ) केवल वादी और संवादी स्वर

46. रागों को उनकी स्वरों की संख्या के आधार पर कितने भागों में विभाजित किया गया है?

(क) चार

(ख) तीन

(ग) दो

(घ) पाँच

47. षाडव राग में कितने स्वर होते हैं?

(क) चार

(ख) पाँच

(ग) छह

(घ) सात

48. बंकिमचंद्र के आनन्दमठ के किस अध्याय में "वन्दे मातरम्" गीत का प्रथम उल्लेख मिलता है?

(क) "सत्यनिष्ठा"

(ख) "संन्यासी"

(ग) "भवनन्द"

(घ) "मदर-लैण्ड"

49. राग का सबसे कम प्रयुक्त स्वर क्या कहलाता है?

(क) वादी

(ख) संवादी

(ग) अनुवादी

(घ) विवादी

Scanned with OKEN Scanner

50. राग के दस लक्षणों में "ग्रह" का क्या अर्थ है?

(क) राग का मुख्य स्वर

(ख) राग का प्रारंभिक स्वर

(ग) राग का अंतिम स्वर

(घ) राग का उच्च स्वर

51. कण स्वर को और किस नाम से जाना जाता है?

(क) न्यास स्वर

(ख) शत्रु स्वर

(ग) स्पर्श स्वर

(घ) उच्च स्वर

52. "आकार आलाप" में किस ध्वनि का प्रयोग होता है?

(क) "नोम" और "तोम"

(ख) "आ"

(ग) "स्वराक्षर"

(घ) "बोल"

53. गमक का क्या उद्देश्य है?

(क) राग को सरल बनाना

(ख) राग में कंपन द्वारा भावनाओं को व्यक्त करना

(ग) राग के स्वर को तीव्र करना

(घ) केवल वादी स्वर को प्रमुख बनाना

54. "तान" किसमें प्रयुक्त होती है?

(क) राग के स्वरूप को द्रुत लय में विस्तार देने में

(ख) आलाप की संरचना में

(ग) गमक को बढ़ाने में

(घ) केवल स्वराक्षर में

Scanned with OKEN Scanner

55. उत्तर भारतीय संगीत में रागों का समय विभाजन किस प्रकार होता है?

(क) तीन भागों में

(ख) चार भागों में

(ग) दो भागों में

(घ) पाँच भागों में

56. "नोम तोम आलाप" में किन ध्वनियों का उपयोग होता है?

(क) "आ"

(ख) "स्वराक्षर"

(ग) "नोम" और "तोम"

(घ) "बोल"

57. तानों का कौन-सा प्रकार "कूटतान" कहलाता है?

(क) सीधी तान

(ख) जटिल और उलझी तान

(ग) कंपन युक्त तान

(घ) बोलयुक्त तान

58. "फिरत की तान" का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(क) स्वरों को उलझाना

(ख) स्वरों को विविधता देना

(ग) स्वरों का विस्तार करना

(घ) स्वर को शुद्ध करना

59. "राग के लक्षण" में "न्यास" का क्या तात्पर्य है?

(क) जिस स्वर पर राग समाप्त होता है

(ख) राग का आरंभिक स्वर

(ग) राग का मध्य स्वर

(घ) कम प्रयुक्त स्वर

Scanned with OKEN Scanner

60. "उत्तर भारतीय संगीत" और "दक्षिण भारतीय संगीत" में गमक का प्रयोग कैसे भिन्न होता है?

(क) दोनों में समान रूप से प्रयोग होता है

(ख) केवल दक्षिण भारतीय संगीत में प्रयोग होता है

(ग) उत्तर भारतीय संगीत में कम और दक्षिण भारतीय संगीत में अधिक प्रयोग होता है

(घ) उत्तर भारतीय संगीत में अधिक और दक्षिण भारतीय संगीत में कम प्रयोग होता है

61. ताल किसके लिए आधार प्रदान करता है?

(क) गीत

(ख) वाद्य

(ग) नृत्य

(घ) उपरोक्त सभी

62. मात्रा किसे स्पष्ट करती है?

(क) ताल की गति

(ख) ताल की लंबाई

(ग) स्वर का प्रकार

(घ) गाने का समय

63. लय कितने प्रकार की होती है?

(क) दो

(ख) चार

(ग) तीन

(घ) पाँच

64. "विलंबित लय" का क्या अर्थ है?

(क) मध्यम गति

(ख) तेज गति

(ग) धीमी गति

(घ) गाने का अंत

Scanned with OKEN Scanner

60. "उत्तर भारतीय संगीत" और "दक्षिण भारतीय संगीत" में गमक का प्रयोग कैसे भिन्न होता है?

(क) दोनों में समान रूप से प्रयोग होता है

(ख) केवल दक्षिण भारतीय संगीत में प्रयोग होता है

(ग) उत्तर भारतीय संगीत में कम और दक्षिण भारतीय संगीत में अधिक प्रयोग होता है

(घ) उत्तर भारतीय संगीत में अधिक और दक्षिण भारतीय संगीत में कम प्रयोग होता है

61. ताल किसके लिए आधार प्रदान करता है?

(क) गीत

(ख) वाद्य

(ग) नृत्य

(घ) उपरोक्त सभी

62. मात्रा किसे स्पष्ट करती है?

(क) ताल की गति

(ख) ताल की लंबाई

(ग) स्वर का प्रकार

(घ) गाने का समय

63. लय कितने प्रकार की होती है?

(क) दो

(ख) चार

(ग) तीन

(घ) पाँच

64. "विलंबित लय" का क्या अर्थ है?

(क) मध्यम गति

(ख) तेज गति

(ग) धीमी गति

(घ) गाने का अंत

Scanned with OKEN Scanner

65. गुरु-शिष्य परंपरा का उद्देश्य क्या है?

(क) ज्ञान का संरक्षण

(ख) संगीत का अभ्यास

(ग) पारंपरिक ज्ञान का प्रसार

(घ) उपरोक्त सभी

66. प्राचीन समय की संगीत विधाओं में कौन सी विधा शामिल नहीं है?

(क) कपालगान

(ख) कंबलगान

(ग) ध्रुपद

(घ) प्रबंधगान

67. मार्ग संगीत क्या है?

(क) प्राचीन शास्त्रीय संगीत

(ख) देशी संगीत

(ग) लोक संगीत

(घ) आधुनिक संगीत

68. उत्तर भारत में कौन सा राग प्रचलित नहीं है?

(क) यमन

(ख) भैरवी

(ग) कंबोजी

(घ) दरबारी कानड़ा

69. कर्नाटक संगीत में कौन सा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है?

(क) कृति

(ख) भैरवी

(ग) ध्रुपद

(घ) ठुमरी

Scanned with OKEN Scanner

70. भारतीय संगीत में वाद्य का स्थान किस ग्रंथ में वर्णित है?

(क) नाट्यशास्त्र

(ख) रामायण

(ग) महाभारत

(घ) गीत गोविंद

71. भारतीय संगीत के वाद्य कितने प्रकार के होते हैं?

(क) तीन

(ख) पाँच

(ग) चार

(घ) दो

72. 'सुषिर वाद्य' का उदाहरण कौन सा है?

(क) वीणा

(ख) तबला

(ग) बांसुरी

(घ) मंजीरा

73. संस्कृत का ज्ञान किसके लिए आवश्यक है?

(क) रागों के नाम जानने के लिए

(ख) शास्त्रीय संगीत के गहरे सिद्धांत समझने के लिए

(ग) गानों की लय समझने के लिए

(घ) केवल धार्मिक संगीत के लिए

74. भारतीय संगीत में "ताल" का क्या महत्त्व है?

(क) स्वर प्रदान करना

(ख) गति और समय का मापन

(ग) भाव उत्पन्न करना

(घ) केवल वाद्य का संचालन

Scanned with OKEN Scanner

75. किस प्रकार का वाद्य 'अवनद्ध वाद्य' कहलाता है?

(क) झंकार वाले वाद्य

(ख) हवा से बजने वाले वाद्य

(ग) चमड़े से ढँके वाद्य

(घ) धातु के वाद्य

76. आचार्य भरत के अनुसार वाद्ययंत्रों की रचना का आधार क्या था?

(क) पदार्थों के मिलाने और अलग करने

(ख) लय और ध्वनि

(ग) प्रकृति की ध्वनि

(घ) दिव्य ऊर्जा का उपयोग

77. प्राचीन ग्रंथों में चार प्रकार के वाद्ययंत्रों के सामूहिक नाम के रूप में कौन सा शब्द आया है?

(क) आतोद्य और तूर्य

(ख) स्वर और राग

(ग) नाद और वेद

(घ) श्रुति और लय

78. आचार्य भरत के अनुसार नाट्य, नर्तन, नृत्य और नृत्त के अंतर्गत कौन से तत्व शामिल हैं?

(क) नृत्य, संगीत और नाटक

(ख) राग, ताल और नृत्य

(ग) केवल संगीत और नृत्य

(घ) केवल लय और ध्वनि

79. भारतीय शास्त्रीय कला में नर्तन (नृत्य) का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(क) भावों और रसों की अभिव्यक्ति

(ख) शारीरिक व्यायाम

(ग) नैतिक मूल्यों की शिक्षा

(घ) अनुष्ठानिक कार्य

Scanned with OKEN Scanner

80. आचार्य शाङ्गदेव ने नर्तन को किस अपने ग्रंथ में विस्तार से समझाया है?

(क) नाट्यशास्त्र

(ख) संगीतरत्नाकर

(ग) संगीतदर्पण

(घ) रागविभाग

81. दशरूपक के अनुसार 'नृत्य' का क्या अर्थ है?

(क) शारीरिक गति और अभिनय द्वारा भावों की अभिव्यक्ति

(ख) लय पर आधारित अभिनय

(ग) स्वर का प्रयोग

(घ) दृश्य कला का प्रदर्शन

82. 'नृत्य' के संदर्भ में किसे शारीरिक रूप से व्यक्त भावों का प्रदर्शन कहा गया है?

(क) नृत्य

(ख) नृत्य

(ग) नृत्य

(घ) लोकनृत्य

83. भगवान शिव और देवी पार्वती से जुड़े भारतीय नृत्य रूप कौन से हैं?

(क) भरतनाट्यम और ओडिसी

(ख) ताण्डव और लास्य

(ग) कुचिपुडी और कत्थक

(घ) मोहिनीअट्टम और मणिपुरी

84. नृत्य और नृत्त में क्या मुख्य अंतर है?

(क) नृत्य लय और अंग संचालन पर आधारित है, जबकि नृत्य केवल अभिनय और भावों की अभिव्यक्ति है

(ख) नृत्य व्यक्तिगत प्रदर्शन है, जबकि नृत्य समूह नृत्य है

(ग) नृत्य अभिनय और नाट्य कला से संबंधित है

(घ) नृत्य केवल वाद्ययंत्रों के साथ होता है

Scanned with OKEN Scanner

85. कौन सा नृत्य रूप भारतीय नृत्य परंपरा में समुदाय की संस्कृति और परंपराओं को जीवित रखने का कार्य करता है?

(क) शास्त्रीय नृत्य

(ख) लोकनृत्य

(ग) समकालीन नृत्य

(घ) नाटक नृत्य

86. निम्नलिखित में से कौन सा लोकनृत्य नहीं है?

(क) भांगड़ा

(ख) गरबा

(ग) कत्थक

(घ) झूमर

87. वायु पुराण के अनुसार नर्तन का मुख्य उद्देश्य क्या है?

(क) भावों और रसों के माध्यम से गहरी अभिव्यक्ति

(ख) धर्म, अर्थ और कीर्ति की प्राप्ति

(ग) दर्शकों का मनोरंजन

(घ) शारीरिक अभ्यास

88. ताण्डव और लास्य के विशिष्ट रूप किससे जुड़े हुए हैं?

(क) भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी

(ख) भगवान शिव और देवी पार्वती

(ग) भगवान राम और देवी सीता

(घ) भगवान ब्रह्मा और देवी सरस्वती

89. निम्नलिखित में से कौन सा शास्त्रीय नृत्य शैली है?

(क) भांगड़ा

(ख) ओडिसी

(ग) कोलदाही

(घ) झूमर

Scanned with OKEN Scanner

90. 'नृत्य' में किसका सबसे अधिक महत्व है?

(क) लय और अभिनय का संयोजन

(ख) शारीरिक फिटनेस

(ग) कदमों की सटीकता

(घ) परिधान का सजावट

91. 'ऋतुसंहार' काव्य में क्या वर्णित है?

(क) प्रकृति और ऋतुओं का संबंध

(ख) भगवान शिव और पार्वती की कथा

(ग) राम का जीवन संघर्ष

(घ) उर्वशी और पुरूरवा का प्रेम

92. कालिदास के नाटक 'उर्वशी' में किस प्रकार की कहानी है?

(क) देवताओं और इंसानों का मिलन

(ख) रामायण की कथा

(ग) उर्वशी और पुरूरवा का प्रेम

(घ) कृष्ण और राधा का प्रेम

93. कालिदास का नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतलम' किस बारे में है?

(क) शाकुंतला और दुष्यंत का प्रेम

(ख) राम और सीता का मिलन

(ग) उर्वशी और पुरूरवा का मिलन

(घ) महाभारत की गाथा

94. कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्र' की कहानी किस पर आधारित है?

(क) राजा मालविकाग्निमित्र और उनका शासन

(ख) शाकुंतला और दुष्यंत का मिलन

(ग) रामायण की कथा

(घ) उर्वशी का प्रेम

Scanned with OKEN Scanner

उत्तर-दर्शिका

प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प
1	ग	25	ग	49	घ	73	ख
2	ग	26	ख	50	ख	74	ख
3	ख	27	ख	51	ग	75	ग
4	ख	28	ग	52	ग	76	ग
5	ग	29	ख	53	ख	77	क
6	ख	30	ग	54	क	78	क
7	ख	31	ग	55	ख	79	क
8	ख	32	ख	56	ग	80	ख
9	ख	33	ग	57	ख	81	क
10	क	34	ख	58	ख	82	ग
11	क	35	घ	59	क	83	ख
12	ग	36	ग	60	ग	84	क
13	ख	37	घ	61	घ	85	ख
14	ख	38	ग	62	ख	86	ग
15	ख	39	ग	63	ग	87	ख
16	क	40	ख	64	ग	88	ख
17	ग	41	ख	65	घ	89	ख
18	क	42	क	66	क	90	क
19	ख	43	ख	67	क	91	क
20	ख	44	ग	68	ग	92	ग
21	ख	45	ख	69	क	93	क
22	ख	46	ख	70	क	94	क
23	ख	47	ग	71	ग		
24	ख	48	ख	72	ग		

Scanned with OKEN Scanner

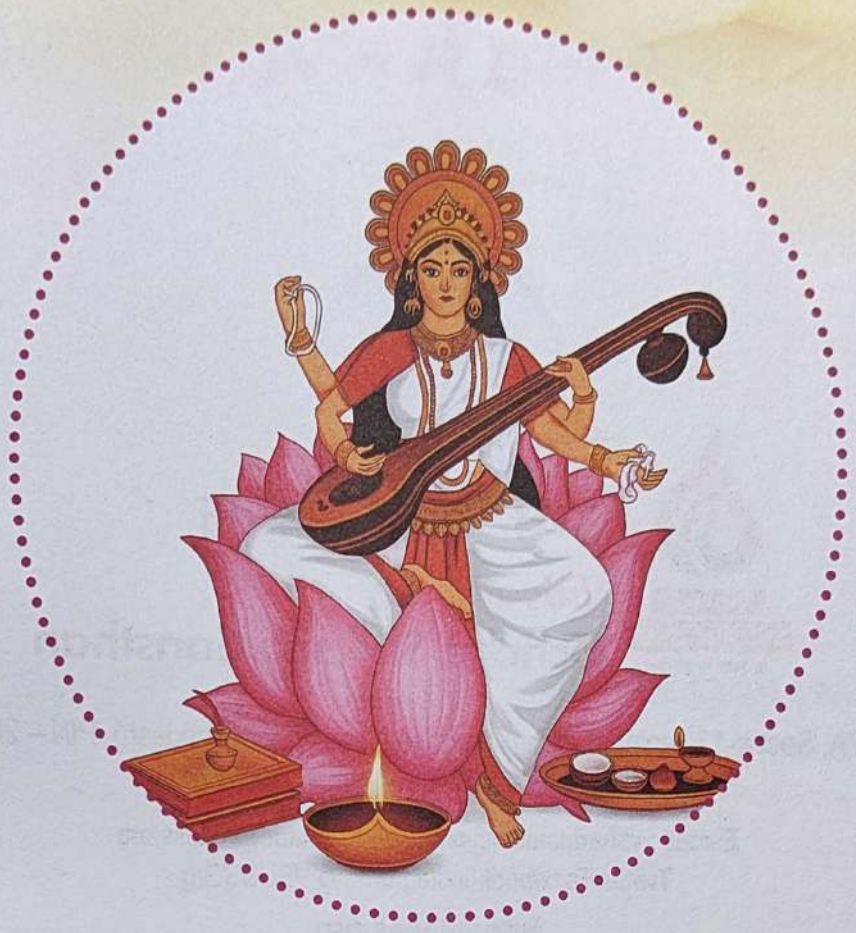

सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

Scanned with OKEN Scanner

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

Scanned with OKEN Scanner

तर्क और मुक्तिः
भारतीय दर्शन में ज्ञान संरचनाएँ

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

Scanned with OKEN Scanner

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक / ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **तर्क और मुक्तिः भारतीय दर्शन में ज्ञान संरचनाएँ**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. दीपक कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-32-1

मूल्य : 200/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

Scanned with OKEN Scanner

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

Scanned with OKEN Scanner

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

Scanned with OKEN Scanner

विषय सूची

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1.	भूमिका	13
2.	तर्क: भारतीय दर्शन में बहस की कला	14
3.	ज्ञान का ब्रह्मांडीय आधार	14
4.	ज्ञान का त्रिकोण	17
5.	न्याय और वैशेषिक: ज्ञान के दो दृष्टिकोण	18
6.	वैशेषिक दृष्टिकोण: भौतिक वास्तविकता को समझने के लिए	19
7.	क्रिया – संयोग और विछेदन की चालक	22
8.	प्रमाण – सत्य ज्ञान के साधन	23
9.	संशय – मौजूदा ज्ञान मॉडल में अस्पष्टताएँ	25
10.	न्याय में वियोजक / व्युत्क्रम तर्क का ढांचा	26
11.	तर्क प्रक्रिया में संभावित दोष (हेत्वाभासा)	28
12.	अध्यानवस्था के सिद्धांत	30
13.	प्राचीन भारत में शिक्षा और पद्धति	31
14.	सारांश	33
	अनुशंसित पठन सामग्री	35
	बहुविकल्पीय प्रश्न	36
	उत्तर-दर्शिका	67

Scanned with OKEN Scanner

"Whatever may be the discoveries of the scientific mind, none can dispute the eternal truths propounded by the Upanishads."

Source: Indian Antiquary-by Paul Deussen

* * * * *

"On the tree of wisdom there is no fairer flower than the Upanishads, and no finer fruit than the Vedanta philosophy."

Source: History of Philosophy by Paul Deussen



Paul Deussen
(1845-1919)

German Indologist and professor of philosophy at the University of Kiel. During his younger days he was a student and devotee of the German Philosopher, Arthur Schopenhauer, and became the first editor of the journal, Schopenhauer Yearbook. He had a marked admiration for Hinduism and Vedas, and even Sanskritised his name to Deva-Sena. Thus, he is considered as one of the great scholars to propagate the universal wisdom of the Upanishads and Vedic literature in European countries.

Scanned with OKEN Scanner

प्रस्तावना



भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों से गहराई, समग्रता और तर्कशीलता की दृष्टि से समृद्ध रही है। यह परंपरा न केवल बौद्धिक अनुशीलन पर बल देती है, बल्कि जीवन, ब्रह्मांड और चेतना के गूढ़ रहस्यों को समझने का एक समग्र ढांचा प्रस्तुत करती है। «ज्ञान: ढांचा और वर्गीकरण" ग्रंथ भारतीय दर्शन के प्रमुख स्रोतों जैसे न्याय, वैशेषिक, वेदांत और सांख्य के माध्यम से ज्ञान की परिभाषा, स्वरूप और साधनों की व्याख्या करता है।

इसमें प्रमाण, प्रमात्रा और प्रमेय के त्रिकोणीय संबंधों को स्पष्ट करते हुए ज्ञानमीमांसा की जटिल परतों को सरल भाषा में समझाया गया है। इस ग्रंथ में ज्ञान के ब्रह्मांडीय आधार, तर्कशास्त्र की विधियाँ, प्रमेय के प्रकार, प्रमाण की वैधता तथा संशय और हेत्वाभास जैसे बौद्धिक उपकरणों का गहन विवेचन किया गया है। साथ ही, यह प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली की संरचना, नैतिक उद्देश्य और समावेशी दृष्टिकोण को भी रेखांकित करता है। यह कृति केवल एक शैक्षणिक दस्तावेज़ नहीं, बल्कि एक दार्शनिक यात्रा है जो आधुनिक समय में भी भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता को दर्शाती है।

Scanned with OKEN Scanner

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित, मूल्य-आधारित एवं समग्र शिक्षा प्रणाली के संवर्धन हेतु समर्पित एक प्रतिष्ठित शिक्षण संस्था है। "सा विद्या या विमुक्तये" - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है। इसके पूर्व छात्र विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं, जो विद्या भारती की शिक्षा-नीति की प्रभावशीलता को सुदृढ़ करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

Scanned with OKEN Scanner

तर्क और मुक्ति: भारतीय दर्शन में ज्ञान संरचनाएँ

भूमिका

यह एक सामान्य अवधारणा है कि भारतीय विचार अंधविश्वासों और धार्मिक कुतर्कों द्वारा प्रभावित हैं। हालांकि, भारत में बौद्धिक परंपरा का गहन अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यहाँ नये ज्ञान प्रणालियों के विकास की एक समृद्ध संस्कृति है। भारत सदियों से कई विचारों का घर रहा है, प्रत्येक ने बौद्धिक बहस और कठोर परीक्षा की एक जीवंत परंपरा को बढ़ावा दिया है। ये बहसें अक्सर अत्यधिक तर्कसंगत और संरचित रूप में होती हैं। इन स्कूलों में, न्याय दर्शन (दर्शनशास्त्र) विशेष रूप से अपने व्यवस्थित अनुसंधान और नए ज्ञान की स्थापना के लिए संरचित प्रक्रियाओं के विकास पर ध्यान केंद्रित करने के लिए उभरकर सामने आता है। पिछले सहस्राब्दी में, भारतीय विद्वानों ने ऐसे उपकरण और तकनीकें विकसित की हैं जो तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा के लिए एक मजबूत ढांचा प्रदान करती हैं, जिससे स्थापित विश्वासों का आलोचनात्मक विश्लेषण और नए विचारों का सृजन किया जा सकता है।



Scanned with OKEN Scanner

तर्क: भारतीय दर्शन में बहस की कला

बहस और बौद्धिक चर्चा भारतीय बौद्धिक परंपरा का एक प्रमुख स्तंभ रही हैं, जो ज्ञान को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारतीय तर्कशास्त्र में वास्तविकता की खोज और समझने के लिए तर्क पर जोर दिया गया है, जो पश्चिमी परंपराओं से भिन्न है।

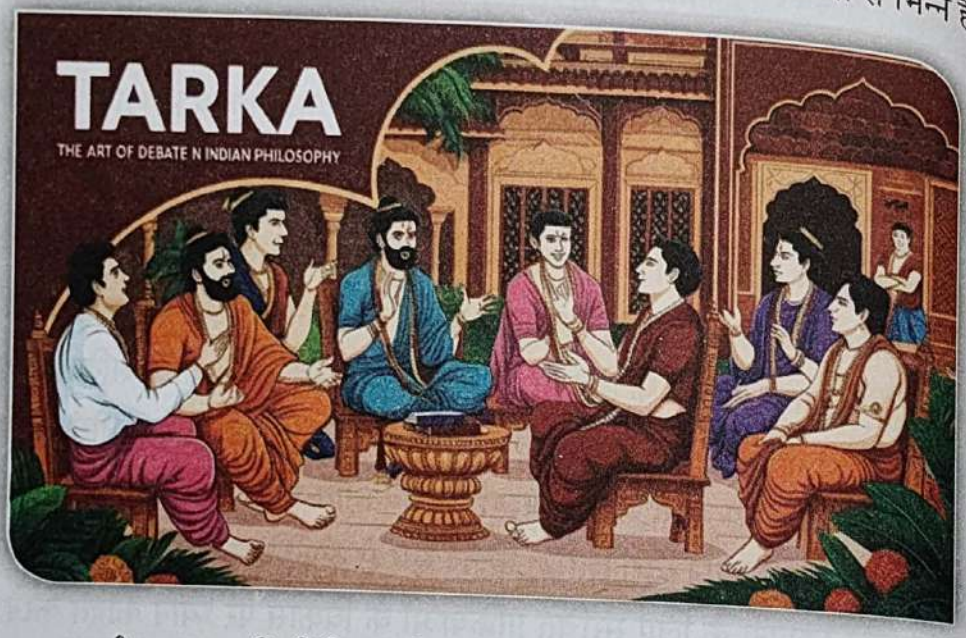

भारतीय बहस की विधि संरचित और औपचारिक है, जो अंधविश्वासों को नकारती है और तर्कपूर्ण तर्कों के उपयोग को प्रोत्साहित करती है। इस प्रणाली में, दो विरोधी पक्ष अपने विचार प्रस्तुत करते हैं और एक आपसी स्वीकृत निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए संवाद करते हैं। इस विधि को 'वाद' कहा जाता है, जो तर्क में स्पष्टता और सामंजस्य को महत्व देता है और एक सख्त प्रक्रिया के तहत मार्गदर्शित होता है।

इस बौद्धिक प्रणाली की नींव न्याय है, जिसका अर्थ है "वह जिसके द्वारा व्यक्ति ज्ञान तक पहुँचता है" या "तर्क करने के साधन"। न्याय इस बात पर बल देता है कि ज्ञान के सिद्धांतों को स्पष्ट करने और ज्ञान में असंगतियों को दूर करने के लिए संरचित बहस की आवश्यकता है।

ज्ञान का ब्रह्मांडीय आधार

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ केवल बौद्धिक संरचनाएँ नहीं थीं, बल्कि वे उन ब्रह्मांडीय आदेशों का गहरे जवाब थीं जिन्हें प्रारंभिक ऋषियों और दार्शनिकों ने महसूस किया था। ये विचारक ब्रह्माण्ड को केवल एक भौतिक विस्तार के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवित,

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

श्वास लेते हुए जीव के रूप में देखते थे, जो उन लय और सिद्धांतों द्वारा शासित है, जो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में व्याप्त हैं। इस दृष्टिकोण का केंद्रीय सिद्धांत यह था कि ज्ञान (ज्ञान) ब्रह्माण्ड से अलग नहीं खोजा जाता, बल्कि इसके स्वाभाविक सिद्धांतों के साथ गहरे सामंजस्य के माध्यम से प्राप्त होता है। इस परंपरा में, ज्ञान प्राप्ति न केवल एक बौद्धिक कार्य था, बल्कि यह एक दार्शनिक और अनुभवजन्य प्रयास था।

इस ब्रह्मांडीय समझ के मूल में ऋत (ऋत) का सिद्धांत था, जो वेदिक शब्द है, जो ब्रह्माण्ड को बनाए रखने वाले स्वाभाविक आदेश, सत्य और नियमितता को दर्शाता है। सबसे पहले ऋग्वेद में पाया गया, ऋत को आकाशीय पिंडों की सामंजस्यपूर्ण गति, मौसमी चक्रों और यहां तक कि नैतिक कानून के पीछे की शक्ति माना गया था। यह वह रूपरेखा थी जिसके अनुसार सब कुछ कार्य करता था—प्राकृतिक दुनिया से लेकर मानव समाज और मानसिक प्रक्रियाओं तक। इसलिए, ज्ञान की खोज को ऋत के अनुसार जीने और उसे पहचानने की प्रक्रिया के रूप में समझा गया। इसने ज्ञान को एक नैतिक और आध्यात्मिक आयाम दिया, जो भौतिक उपयोगिता से बहुत आगे था।

समय के साथ, ऋत का सिद्धांत धर्म में परिवर्तित हुआ, जो ब्रह्मांडीय आदेश की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति थी। धर्म में कर्तव्यों, भूमिकाओं और जीवन में किसी की स्थिति के अनुसार आचरण को समाहित किया गया था, लेकिन इसका आधार ब्रह्मांडीय था। किसी के धर्म के अनुसार कार्य करना ब्रह्मांडीय संतुलन को बनाए रखने के रूप में समझा जाता था, जबकि इसके विपरीत आचरण आंतरिक और बाहरी दोनों तरह के विकार का कारण बनता था। इसलिए, किसी के धर्म को जानना और उस पर कार्य करना स्वयं एक उच्चतर ज्ञान का रूप था। इस प्रकार, ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण ने न केवल यह निर्धारित किया कि क्या जाना जाना चाहिए, बल्कि यह भी कि उसे कैसे जाना जाना चाहिए और किस उद्देश्य के लिए।

भारतीय ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण का एक अन्य मौलिक पहलू उसके समय के अवधारण है। पश्चिमी परंपरा में आमतौर पर समझे जाने वाले रैखिक समय की प्रगति के विपरीत, भारतीय दर्शन में समय चक्रीय होता है। यह चक्रीय स्वभाव विशाल समयगत ढांचों में परिलक्षित होता है, जैसे युग (युग), कल्प (आयन्स) और मन्वंतर (सृष्टि और संहार के चक्र)। ये विशाल समय की धाराएँ न केवल ब्रह्माण्ड के विकास को नियंत्रित करती थीं, बल्कि मानव चेतना के उत्थान और पतन और ज्ञान की उपलब्धता को भी नियंत्रित करती थीं। उदाहरण के तौर पर, वर्तमान युग—कलियुग—में सत्य के गिरने की बात मानी जाती है, और इसलिए, सच्चा ज्ञान भी घटित होता है। यह चक्रीय समझ

बौद्धिक प्रयासों में विनम्रता को जन्म देती थी, क्योंकि ज्ञान को न तो स्थायी रूप से निर्धारित किया गया था और न ही यह हमेशा सभी समयों में सार्वभौमिक रूप से उपलब्ध था, बल्कि यह ब्रह्मांडीय लयों के अधीन था।

भारतीय ब्रह्मांडविज्ञान में पुरुष और प्रकृति के बीच एक मौलिक द्वैतवाद भी प्रस्तुत किया गया है—शुद्ध चेतना और प्रारंभिक पदार्थ—विशेष रूप से सांख्य दर्शन में। सभी घटनाएँ इन दोनों सिद्धांतों के परस्पर क्रिया से उत्पन्न होती हैं। इस संदर्भ में, ज्ञान कोई अमूर्त अवधारणा नहीं है, बल्कि एक अस्तित्वगत वास्तविकता है। ज्ञानी (पुरुष) मन (जो प्रकृति का उत्पाद है) के परिवर्तनों में उलझ जाता है, और सच्चा ज्ञान तब प्रकट होता है जब आत्मा और भौतिक प्रकृति के बीच भेद को स्पष्ट रूप से पहचाना जाता है। यह ढांचा मेटाफिजिक्स के भीतर ज्ञानमीमांसा का स्थान बनाता है, क्योंकि दुनिया को समझना आत्मा को समझने से अलग नहीं है।

इस ब्रह्मांडीय आधार को और गहरा करने वाला सिद्धांत वेदांत दर्शन में ब्रह्म का सिद्धांत है—वह अंतिम, अपरिवर्तनीय वास्तविकता जो सभी अस्तित्व का आधार है। उपनिषदों की परंपरा में, ब्रह्म ज्ञान एक वस्तु नहीं है, बल्कि एक ऐसी वास्तविकता है जिसे आंतरिक रूपांतरण के माध्यम से महसूस किया जाना चाहिए। सभी प्रकार के ज्ञान को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है: अपर विद्या, या निम्न ज्ञान, जिसमें अनुष्ठान, विज्ञान और तर्कशास्त्र शामिल हैं; और परा विद्या, या उच्च ज्ञान, जो ब्रह्म के प्रत्यक्ष अनुभव से संबंधित है। यह भेद इस बात पर जोर देता है कि सच्चा ज्ञान केवल जानकारी के बारे में नहीं है, बल्कि रूपांतरण के बारे में है—अज्ञान (अविद्या) से मुक्ति (मोक्ष) की ओर बढ़ना।

सूक्ष्मब्रह्मांड-महा-ब्रह्मांड उपमा, जो भारतीय विचारधारा में एक आवर्ती तत्व है, ज्ञान के ब्रह्मांडीय आधार को और स्पष्ट करती है। मनुष्य (पिण्ड) को ब्रह्मांड (ब्रह्माण्ड) का प्रतिबिंब माना जाता था, जिसे समान सिद्धांतों और तत्वों के अनुसार संरचित किया गया था। पांच महान तत्व (पंच महाभूत)—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—प्रकृति में और मानव शरीर और मानसिकता में समान रूप से उपस्थित होते हैं। इस गहरी मिररिंग ने समग्र विज्ञानों को जन्म दिया, जैसे आयुर्वेद, जो स्वास्थ्य और रोग को तत्त्वों के संतुलन के रूप में व्याख्यायित करता था, और ज्योतिष (ज्योतिष), जो ग्रहों के प्रभावों को ब्रह्मांडीय पैटर्न के विस्तार के रूप में मानता था, जो मानव जीवन को प्रभावित करते थे।

Scanned with OKEN Scanner

भाषा और ध्वनि भी इस ब्रह्मांडीय ढांचे में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। वेदों में सृष्टि को शब्द–ध्वनि–से उत्पन्न होने के रूप में वर्णित किया गया है, और अंततः ॐ से, जो प्राथमिक कंपन है। भाषा को केवल मानव परंपरा के रूप में नहीं देखा गया था, बल्कि इसे वास्तविकता के तंतुओं में अंतर्निहित के रूप में माना गया था। इस प्रकार, व्याकरण (व्याकरण) और ध्वनिविज्ञान (शिक्षा) जैसी शिक्षाएं केवल संवाद के उपकरण नहीं थीं, बल्कि आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के वाहक थीं। वेदों का अधिकार इस विचार पर आधारित था कि उनके मंत्र शाश्वत हैं, वे रचित नहीं, बल्कि प्रकटित हैं, क्योंकि वे ब्रह्मांडीय ध्वनि संरचना के साथ सामंजस्यपूर्ण होते हैं। इस प्रकार, वेद मंत्रों का सही उच्चारण और अर्थ जानना ब्रह्मांडीय सृष्टि और रखरखाव की क्रिया में भाग लेने के बराबर था।

ज्ञान की प्राप्ति और उपयोग कभी भी एक तटस्थ या पृथक गतिविधि नहीं थी। यह गहरे नैतिक, आध्यात्मिक, और ब्रह्मांडीय दायरे में था। ज्ञान को अक्सर प्रकाश के साथ और अज्ञान को अंधकार के साथ तुलनीय माना जाता था—यहां तक कि वास्तविक और रूपात्मक रूप से। जानने का अर्थ था स्वयं को सार्वभौमिक आदेश के साथ सामंजस्यपूर्ण बनाना; बिना ज्ञान के कार्य करना इसका उलटा था, जिससे विकृति और दुःख उत्पन्न होते थे। इसलिए, विद्वानों और ऋषियों ने ज्ञानार्जन करने वाले व्यक्ति की आंतरिक स्थिति के महत्व को रेखांकित किया। एक मन जिसे अहंकार, इच्छा या असंतुलन ने आच्छादित किया हो, उसे उच्चतर सत्य को समझने में असमर्थ माना जाता था, भले ही बौद्धिक क्षमता हो।

अंत में, प्राचीन भारत में ज्ञान के ब्रह्मांडीय आधार का खुलासा एक गहरे एकीकृत दृष्टिकोण को दर्शाता है, जिसमें समझ की खोज को एक बड़े अस्तित्वात्मक और नैतिक क्रम में निहित किया गया था। ज्ञान केवल दुनिया को नियंत्रित करने का एक उपकरण नहीं था, बल्कि यह ब्रह्मांड के साथ सामंजस्य स्थापित करने की एक पवित्र प्रक्रिया थी। यह दृष्टि ज्ञान के लिए आधुनिक विखंडित दृष्टिकोणों का एक प्रभावशाली विकल्प प्रस्तुत करती है और हमें याद दिलाती है कि सच्चा सीखना केवल बौद्धिक रूप से नहीं, बल्कि पूरे अस्तित्व के साथ—एक जीवित, जागरूक ब्रह्मांड में स्थित—होगा।

ज्ञान का त्रिकोण

भारतीय विचारधारा में, ज्ञान को वस्तुओं के प्रति सीधा अवबोधन या जागरूकता माना जाता है। ज्ञान को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है: वैध और अवैध। वैध ज्ञान वह है जो वास्तविकता के अनुरूप सही ढंग से प्राप्त किया गया हो, और यह विश्वसनीय साधनों

Scanned with OKEN Scanner

के द्वारा प्राप्त होता है। अवैध ज्ञान, इसके विपरीत, याददाश्त, संदेह, त्रुटि और काल्पनिक तर्क जैसे घटनाओं को शामिल करता है, जो सीधे तौर पर उस वस्तु या वास्तविकता से मेल नहीं खाते जिनका वे प्रतिनिधित्व करने का प्रयास करते हैं।

- **याददाश्त:** याददाश्त को अवैध माना जाता है क्योंकि यह वस्तु को अप्रत्यक्ष रूप से पुनः स्मरण करने पर आधारित होती है, न कि सीधे प्रस्तुत करने पर।
- **संशय:** संशय का मतलब है ज्ञान में असमर्थता, जिससे वस्तु के बारे में अस्पष्टता उत्पन्न होती है।
- **त्रुटि:** त्रुटि वस्तु की गलत समझ का परिणाम है, यानी धारणा वास्तविकता से मेल नहीं खाती।
- **काल्पनिक तर्क:** इसे अवैध माना जाता है क्योंकि यह सीधे ज्ञान से मेल नहीं खाता, बल्कि अनुमान या कल्पनाओं पर आधारित होता है।

वैध ज्ञान वह है जिसे एक व्यवस्थित प्रक्रिया के द्वारा कठोरता से स्थापित किया गया है, यह सुनिश्चित करते हुए कि यह अप्रामाणिक, सत्य और विश्वसनीय है, अपने विशिष्ट संदर्भ और शर्तों में। वैध ज्ञान अर्जित करने की प्रक्रिया में तीन महत्वपूर्ण घटक होते हैं, जिन्हें 'ज्ञान त्रिकोण' कहा जाता है:

1. **प्रमात्र (ज्ञान का प्राप्तकर्ता):** यह वह व्यक्ति या संस्था है जो ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में शामिल है। यह ज्ञान प्राप्ति के लिए समय, प्रयास और संसाधन समर्पित करता है।
2. **प्रमेय (ज्ञान का उद्देश्य):** यह वह वस्तु या अवधारणा है जिस पर ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास केंद्रित होता है। इसमें भौतिक, आध्यात्मिक या अमूर्त अवधारणाएँ शामिल हो सकती हैं ।
3. **प्रमाण (ज्ञान के साधन):** भारतीय ज्ञानमीमांसा में, प्रमाण वे वैध साधन होते हैं जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है, जैसे कि अनुभूति, अनुमान या प्रमाणिक साक्ष्य।

न्याय और वैशेषिक: ज्ञान के दो दृष्टिकोण

भारतीय दार्शनिक विचारधारा में, न्याय और वैशेषिक स्कूल ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न पहलुओं को संबोधित करते हैं, विशेष रूप से भौतिक वास्तविकता को समझने के संदर्भ में।

Scanned with OKEN Scanner

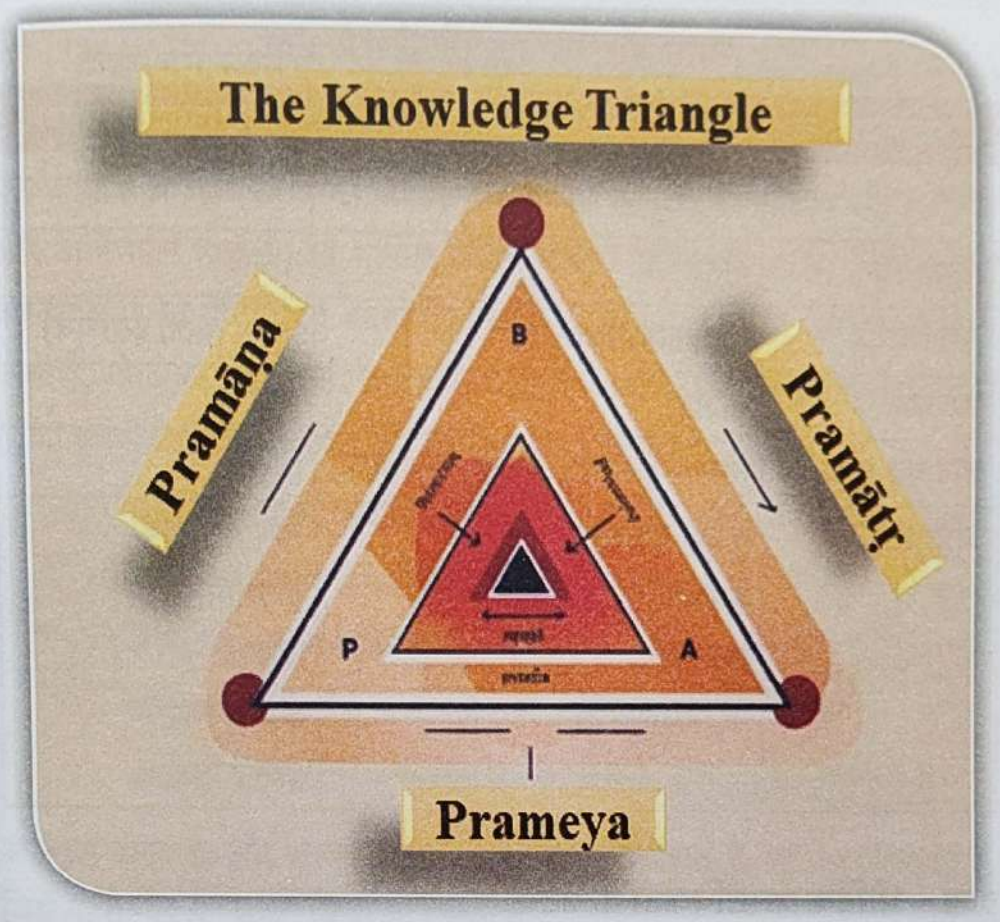

- न्याय तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा पर केंद्रित है, जो वैध ज्ञान की स्थापना के लिए एक ढांचा प्रदान करता है। यह उन विधियों और साधनों (प्रमाणों) से संबंधित है जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है।
- वैशेषिक, जिसको संस्थापक महर्षि कणाद है (लगभग छठी–दूसरी सदी ई.पू.), भौतिक वास्तविकता की वर्गीकरण और समझ पर बल देता है। वैशेषिक भूतत्वशास्त्र और अस्तित्ववाद से संबंधित है, जो भौतिक पदार्थों की प्रकृति और गुणों और उनके परस्पर क्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करता है।

वैशेषिक दृष्टिकोण: भौतिक वास्तविकता को समझने के लिए

कणाद का वैशेषिक दर्शन भौतिक संसार को समझने के लिए एक ढांचा प्रदान करता है, जो संस्थाओं के वर्गीकरण और उन गुणों पर ध्यान केंद्रित करता है जो उन्हें परिभाषित करते हैं। वैशेषिक प्रणाली भौतिक संस्थाओं के मौलिक गुणों की पहचान करती है और उन्हें बुनियादी तत्वों से जोड़ती है, जिससे आयुर्वेद और शिल्पशास्त्र जैसे क्षेत्रों में लागू किए गए दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

न्याय और वैशेषिक दृष्टिकोण में अंतर

विशेषता	न्याय दृष्टिकोण	वैशेषिक दृष्टिकोण
नाम	तर्क	विवरण
संस्थापक	गौतम	कणाद
समयावधि	नया (500 ईसा पूर्व)	पुराना (600 ईसा पूर्व)
श्रेणियाँ	सोलह	सात
ज्ञान का स्रोत	धारणा, शुरुआत, गवाही, और तुलना	धारणा
प्रक्रिया	कृत्रिम दृष्टिकोण ज्ञानमीमांसा सामान्य गैर परमाणुवादी	विश्लेषणात्मक तत्त्वमीमांसा विवरण परमाणुवेत्ता ब्रह्मांड विज्ञान

द्रव्य – भौतिक वास्तविकता के घटक

वैषेशिक दृष्टिकोण में, द्रव्य (पदार्थ) की संकल्पना भौतिक वास्तविकता के स्वभाव को समझने के लिए मौलिक है। वैषेशिक में "पदार्थ" केवल भौतिक पदार्थ तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यापक रूप से अस्तित्व में मौजूद विभिन्न तत्वों को समाहित करता है, जिनमें अदृश्य या अमूर्त पदार्थ जैसे समय, स्थान, आत्मा (Ātman) और मन भी शामिल हैं। ये पदार्थ स्वाभाविक गुण (गुण) और क्रियाएं (कर्म) रखते हैं, और वे जटिल तरीकों से आपस में क्रिया करते हैं, जिसे हम संसार में अनुभव करते हैं, वह बनता है। वैषेशिक प्रणाली में पदार्थों को वास्तविकता के मौलिक निर्माण खंड के रूप में देखा जाता है, और इनका संयोजन, समवाय (अंतर्निहितता) के सिद्धांत के माध्यम से, प्रकट होने वाले ब्रह्मांड को उत्पन्न करता है।

सिस्टम में नौ प्रमुख पदार्थों की पहचान की गई है, जिनमें से पाँच भौतिक और मूर्त हैं— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश (Ākāśa)—और चार अमूर्त हैं: समय, स्थान, आत्मा (Ātman) और मन। इन में से आकाश (Ākāśa) को अनंत माना गया है, जबकि अन्य पदार्थों की सीमित विशेषताएँ हैं। आकाश ध्वनि के यात्रा करने का माध्यम है, और समय और स्थान को शाश्वत और सर्वव्यापी माना जाता है, हालांकि इन्हें प्रत्यक्ष रूप से इंद्रियों से नहीं देखा जा सकता, बल्कि इनके प्रभावों से अनुमानित किया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

वैषेशिक में, सबसे छोटे अविभाज्य कणों को अणु (atoms) कहा जाता है। ये अणु द्व्याणुका (dyads) और त्र्याणुका (triads) बनाने के लिए मिल सकते हैं, जो पदार्थ के मूल घटक हैं जो दृश्य संसार को निर्मित करते हैं। इन अणुओं का स्वभाव अपरिवर्तनीय और अविभाज्य होता है, जो भौतिक संसार के नीचे छिपी हुई स्थायी, अपरिवर्तनीय वास्तविकता को प्रतिबिंबित करता है। आत्मा (Ātman) को शुद्ध जागरूकता माना जाता है, जो अवलोकक होता है, जबकि मन एक आंतरिक अंग के रूप में कार्य करता है, जो संवेदी डेटा को संसाधित और व्याख्यायित करता है।

- पृथ्वी ठोस पदार्थों से संबंधित है।
- जल तरल पदार्थों से संबंधित है।
- अग्नि का गुण रंग और गर्मी है।
- वायु का गुण स्पर्श है, न तो गर्म और न ही ठंडी।
- आकाश ध्वनि के लिए माध्यम है, जो वैषेशिक में एक महत्वपूर्ण गुण है।

आकाश अनंत है, और आत्मा (Ātman) शाश्वत अवलोकक है, जो मन से स्वतंत्र है, जिसे गहरी नींद में "शांत" किया जा सकता है।

वैषेशिक में, गुण (attributes) पदार्थों के स्वाभाविक गुण होते हैं, जो उन्हें विशिष्ट बनाने में मदद करते हैं। प्रारंभ में सत्रह गुणों की सूची दी जाती है, और बाद में वृद्धि के रूप में चौबीस गुणों की विस्तृति की जाती है। इन गुणों को भौतिक, मानसिक और रूपक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

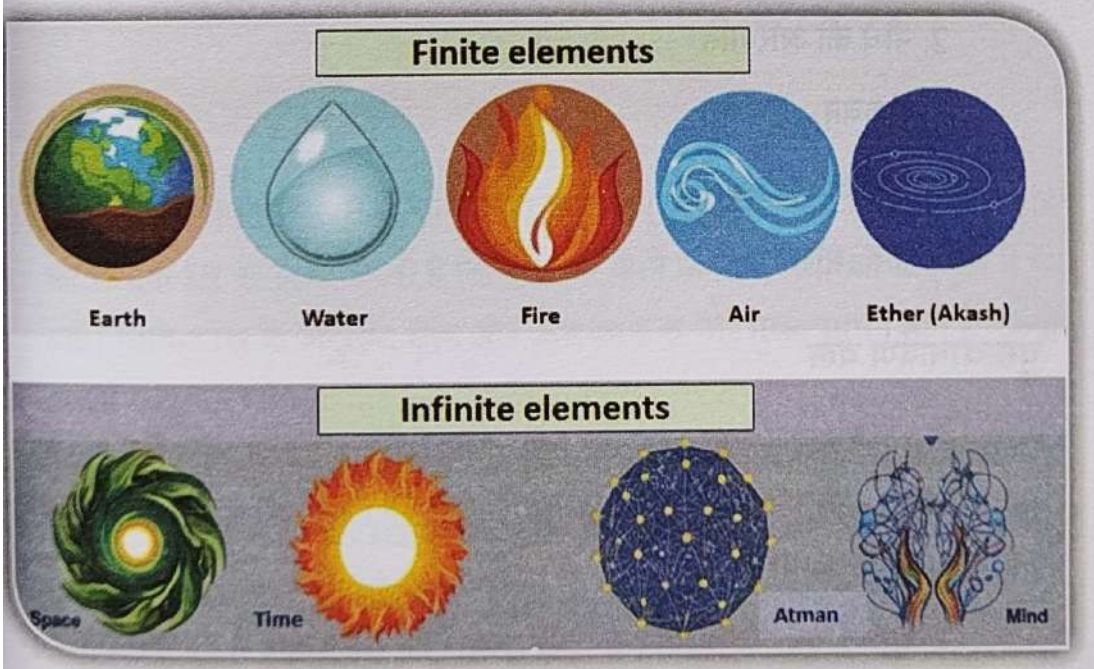

Scanned with OKEN Scanner

गुण – पदार्थों के गुणधर्म

1. **सीमित पदार्थों के गुण:** इसमें सामान्य भौतिक गुण जैसे रंग, स्वाद, गंध, स्पर्श, तरलता, चिपचिपापन और गति शामिल हैं।
2. **अनंत या अभार्य पदार्थों के गुण:** इसमें मानसिक और अनुभवजन्य गुण जैसे संज्ञान, आनंद, दुःख, इच्छा, नफरत, इच्छा, पुण्य, पाप, छाप, और ध्वनि शामिल हैं।
3. **सीमित और अनंत पदार्थों के सामान्य गुण:** इसमें संख्या, मात्रा, पृथकता, संयोग और विछेदन शामिल हैं। वैषेशिक में, कणाद इन गुणों के सृजन और विघटन के बारे में कई सूत्रों के माध्यम से व्याख्या करते हैं, यह बताते हुए कि गुण कैसे उभरते हैं और पदार्थों के साथ कैसे आपसी क्रियाएं होती हैं।

क्रिया – संयोग और विछेदन की चालक

वैषेशिक में क्रिया (कर्म) उन प्रक्रियाओं को संदर्भित करती है, जो पदार्थों के बीच संयोग और विछेदन लाती हैं। ये क्रियाएँ अपने आप में गुण नहीं रखतीं, लेकिन भौतिक दुनिया में अंतरक्रियाओं और परिवर्तनों को प्रेरित करने में मौलिक होती हैं। क्रियाओं को पांच प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

1. ऊपर की ओर गति
2. नीचे की ओर गति
3. संकुचन
4. विस्तार
5. गति (मोशन)

गुरुत्वाकर्षण बल

वैषेशिक प्रणाली गुरुत्वाकर्षण बल और गति पर इसके प्रभाव को भी स्वीकार करती है। गुरुत्वीय क्रियाएं सूत्रों के माध्यम से व्यक्त की जाती हैं, जो पदार्थों की ऊपर और नीचे की गति को स्वीकार करती हैं।

- **गुरुत्व-प्रयत्न-संयोगानाम् उत्क्षेपणम्:** यह सूत्र बताता है कि गुरुत्वाकर्षण

Scanned with OKEN Scanner

बल का प्रतिकार करने के लिए ऊपर की ओर गति के लिए प्रयास करना आवश्यक है।

- **संयोगाभावे गुरुत्वात पतनम्:** बाहरी बलों के अभाव में, वस्तुएं गुरुत्वाकर्षण के कारण गिरती हैं।
- **संस्काराभावे गुरुत्वात पतनम्:** वस्तुएं गुरुत्वाकर्षण के तहत स्वतंत्र रूप से गिरती हैं, जब तक उन पर बाहरी बल (जैसे प्रेरण) कार्य नहीं करता।

गति में वस्तुओं के गुण

गति के नियमों की विशेष रूप से जड़ता (inertia), की वैषेशिक में चर्चा की जाती है। यह प्रणाली यह स्पष्ट करती है कि गति किसी प्रारंभिक बल या आवेग द्वारा उत्पन्न होती है।

- **नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वं न तिर्यग्गमनम्:** जब कोई बाहरी बल लागू नहीं किया जाता, तो ऊपर या पार्श्व गति नहीं होती।
- **नोदनादाद्यमिषो: कर्म तत्कर्मकारिताच्च संस्कारादुत्तरं तथोत्तरमुत्तरञ्च:** बल की प्रारंभिक परिश्रम एक क्रियाओं की श्रृंखला को उत्पन्न करता है, जैसा कि धनुष से बाण छोड़े जाने पर देखा जाता है।
- **कार्यविरोधिकर्म:** प्रत्येक क्रिया का एक विपरीत प्रतिक्रिया होती है, इसका मतलब है कि निरंतर गति संभव नहीं है।

प्रमाण – सत्य ज्ञान के साधन

भारतीय ज्ञानमीमांसा परंपरा में, ज्ञान अंततः आत्मा (स्वयं) में उत्पन्न होता है, और ज्ञान की सत्यता इस पर निर्भर करती है कि उसे प्राप्त करने के लिए स्थितियाँ अनुकूल हैं या नहीं। न्याय-शास्त्र के अनुसार, सत्य ज्ञान प्राप्त करने के चार मुख्य साधन होते हैं, जिन्हें प्रमाण कहा जाता है:

1. **प्रत्यक्ष:** प्रत्यक्ष अनुभव, जो ज्ञान प्राप्त करने का सबसे तत्काल और प्राथमिक साधन है। यह इंद्रियों के माध्यम से अनुभव किया जाता है (देखना, सुनना, सूंघना, छूना, और स्वाद लेना)।

Scanned with OKEN Scanner

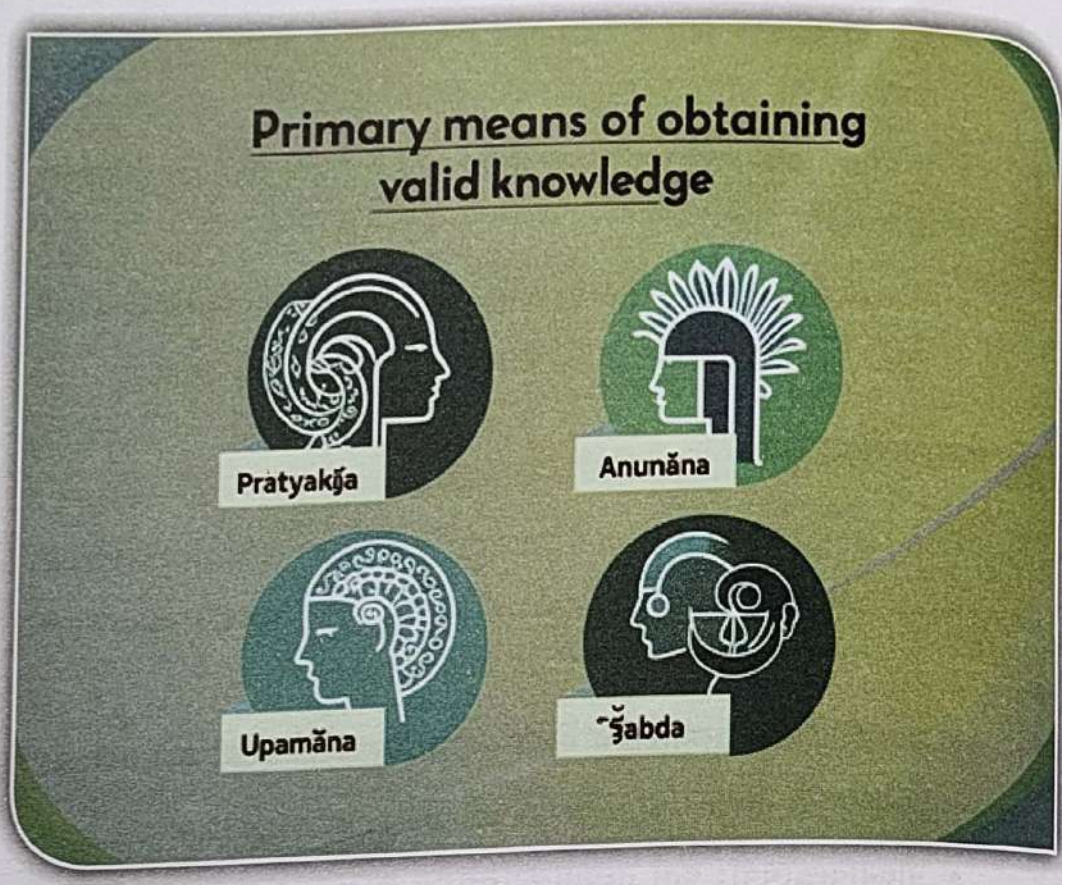

2. **अनुमान:** अनुमान या तर्क, जो प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होता है। इसमें देखे गए तथ्य से निष्कर्ष निकालना और तार्किक लागू करना शामिल होता है। न्याय में अनुमानों के प्रकार में शामिल हैं:
   - पूर्व अनुभव से प्राप्त ज्ञान।
   - किसी देखे गए कारण के प्रभाव से प्राप्त ज्ञान।
   - बार-बार किए गए अनुभवों से प्राप्त ज्ञान।
3. **उपमान:** तुलना या उपमा। इसका मतलब है कि अज्ञात को ज्ञात से समानता के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना। इसे तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है:
   - **सादृश्य-उपमान:** समानता के आधार पर ज्ञान।
   - **वैधर्म्य-उपमान:** असमानता के आधार पर ज्ञान।
   - **असाधारण-धर्म-उपमान:** वस्तु के अद्वितीय गुण या विशेषता के आधार पर ज्ञान।
4. **शब्द:** किसी प्रामाणिक स्रोत से मौखिक प्रमाण, जैसे शास्त्र या विशेषज्ञ शिक्षक। यह भारतीय परंपरा में सत्य ज्ञान प्राप्त करने के सबसे विश्वसनीय

Scanned with OKEN Scanner

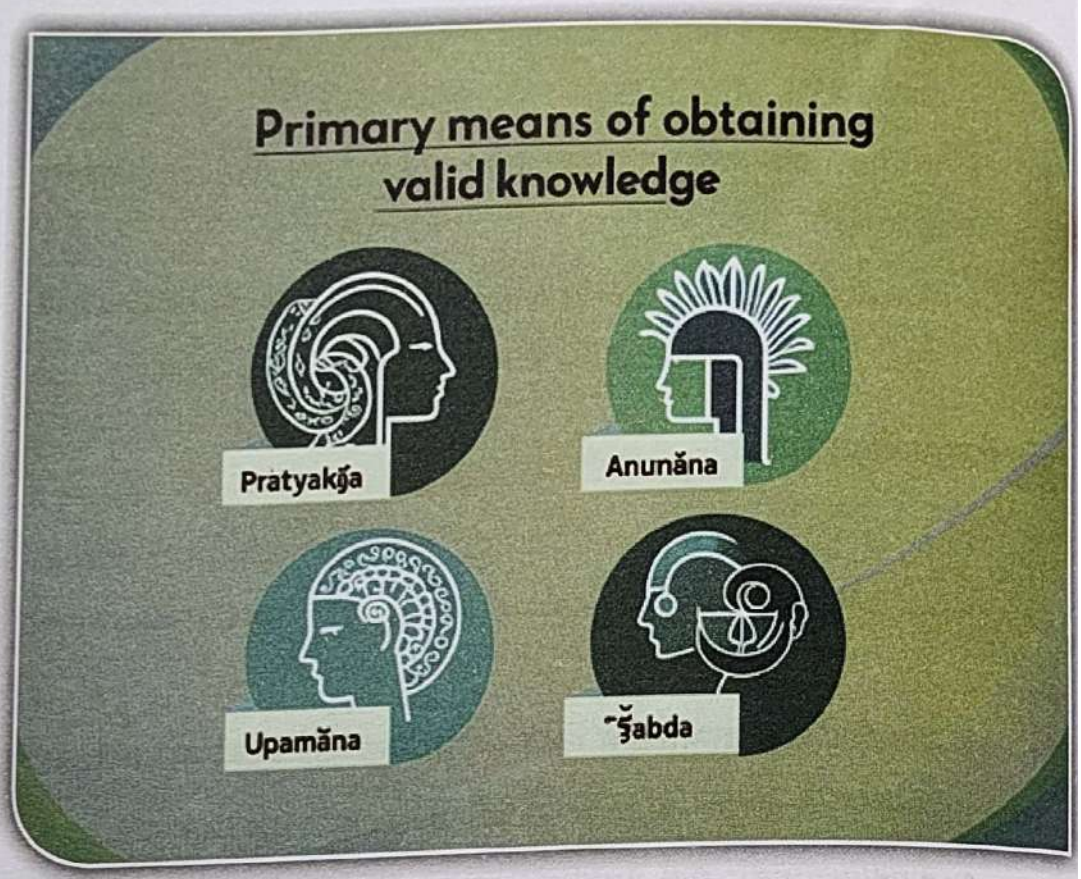

2. **अनुमान:** अनुमान या तर्क, जो प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होता है। इसमें देखे गए तथ्य से निष्कर्ष निकालना और तार्किक लागू करना शामिल होता है। न्याय में अनुमानों के प्रकार में शामिल हैं :
   - पूर्व अनुभव से प्राप्त ज्ञान।
   - किसी देखे गए कारण के प्रभाव से प्राप्त ज्ञान।
   - बार-बार किए गए अनुभवों से प्राप्त ज्ञान।
3. **उपमान:** तुलना या उपमा। इसका मतलब है कि अज्ञात को ज्ञात से समानता के आधार पर ज्ञान प्राप्त करना। इसे तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है:
   - **सादृश्य-उपमान:** समानता के आधार पर ज्ञान।
   - **वैधर्म्य-उपमान:** असमानता के आधार पर ज्ञान।
   - **असाधारण-धर्म-उपमान:** वस्तु के अद्वितीय गुण या विशेषता के आधार पर ज्ञान।
4. **शब्द:** किसी प्रामाणिक स्रोत से मौखिक प्रमाण, जैसे शास्त्र या विशेषज्ञ शिक्षक। यह भारतीय परंपरा में सत्य ज्ञान प्राप्त करने के सबसे विश्वसनीय

Scanned with OKEN Scanner

साधनों में से एक माना जाता है, क्योंकि यह उन व्यक्तियों के कथन पर आधारित होता है जो इस क्षेत्र में विशेषज्ञ होते हैं।

संशय – मौजूदा ज्ञान मॉडल में अस्पष्टताएँ

नए ज्ञान की खोज उस समय से शुरू होती है जब मौजूदा ज्ञान में संशय (अस्पष्टता) का पता चलता है। संशय उस बिंदु को चिह्नित करता है, जहाँ समझ को आगे बढ़ाने के लिए स्पष्टता या समाधान की आवश्यकता होती है। ज्ञान में अस्पष्टताएँ कई कारणों से उत्पन्न हो सकती हैं–

- जब कोई घटना कई ज्ञात गुणों के समान प्रतीत होती है, जिससे इसके वास्तविक स्वभाव के बारे में भ्रम उत्पन्न होता है।
- जब नए गुणों का अवलोकन किया जाता है, जो पहले से ज्ञात अवधारणाओं से मेल नहीं खाते, यह एक नई घटना की उपस्थिति को सूचित करता है।
- विभिन्न प्रयोगों से विरोधाभासी परिणाम या निष्कर्षों में भिन्नताएँ।
- ऐसी परिस्थितियाँ जहाँ समस्या स्वयं ठीक से समझी नहीं जाती है या पूरी तरह से अज्ञात होती है।

सत्य ज्ञान स्थापित करने के लिए ढांचा

सत्य ज्ञान स्थापित करने के लिए न्याय (Nyāya) एक दो-तरफा दृष्टिकोण अपनाता है:

1. **विवाद की परंपरा:** यह एक संरचित विवाद में भाग लेने की विधि है, जहाँ तर्क और प्रतितर्कों का व्यवस्थित मूल्यांकन किया जाता है ताकि सबसे तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके।
2. **तर्क की पद्धति:** न्याय नए ज्ञान की खोज के लिए पाँच-चरणीय तर्कशास्त्र का उपयोग करता है। इसमें उपसर्गात्मक (deductive) और प्रेरक (inductive) तर्क दोनों शामिल होते हैं, जो नए विचारों के तर्कसंगत विकास को मार्गदर्शन करते हैं और मौजूदा ज्ञान में अस्पष्टताओं को हल करने में मदद करते हैं।

न्याय तर्कशास्त्र और संरचित विवाद का उपयोग नए ज्ञान के सृजन के लिए प्रमुख उपकरण के रूप में करता है। इन विधियों के माध्यम से नए सिद्धांत (सिद्धांत) निकाले जा सकते हैं, और निष्कर्ष (निर्णय) पर पहुँचा जा सकता है, जिससे मौजूदा ज्ञान में सार्थक योगदान किया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

न्याय में वियोजक / व्युत्क्रम तर्क का ढांचा

न्याय प्रणाली तर्कशास्त्र को वैध ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन मानती है, और इसका ज्ञान स्थापित करने का ढांचा पांच-चरणीय तर्क प्रक्रिया पर आधारित है। यह प्रक्रिया, चाहे वियोजक (डिडक्टिव) या व्युत्क्रम (इंडक्टिव) तर्क का उपयोग कर रही हो, अस्पष्टताओं (संसय) को हल करने और नए ज्ञान का निर्माण करने के लिए एक संरचित विधि प्रदान करती है। यहाँ इस तर्क प्रक्रिया के पांच चरणों का विवरण दिया गया है:

चरण 1: प्रतिज्ञा (Pratijñā) – प्रस्ताव का विकास

प्रतिज्ञा वह प्रस्ताव है जो परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया जाता है, यह केंद्रीय कथन या सिद्धांत है जिसे सत्यापित करने की आवश्यकता होती है। यह चरण उस अस्पष्टता या समस्या से उत्पन्न होता है जिसे हल करने की आवश्यकता है। प्रस्ताव तर्क प्रक्रिया का आधार होता है और यह स्पष्ट रूप से बताता है कि क्या प्रस्तावित या दावा किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, यदि हम गुरुत्वाकर्षण के स्वभाव की जांच कर रहे हैं, तो प्रस्ताव हो सकता है: "गुरुत्वाकर्षण वह शक्ति है जो वस्तुओं के गिरने का कारण बनती है।"

चरण 2: हेतु (Hetu) – तर्क के माध्यम से प्रस्ताव का स्थापन

हेतु उस तर्क या प्रमाण को प्रस्तुत करने का कार्य है जो प्रस्ताव के पक्ष में होता है। प्रस्तुतकर्ता को प्रस्ताव के सत्य होने की संभावना या उचितता को दिखाने के लिए मौजूदा ज्ञान या सिद्धांतों का सहारा लेना होता है। यह चरण प्रस्ताव को स्थापित तथ्यों, डेटा, या तर्किक सिद्धांतों से जोड़ता है। गुरुत्वाकर्षण के उदाहरण में, कोई यह तर्क दे सकता है: "वस्तुएँ हमेशा पृथ्वी की ओर गिरती हैं जब तक कि कोई बल इसका विरोध न करे," जो उस दावे का समर्थन करने वाला एक सामान्य अवलोकन है।

चरण 3: उदाहरण (Udhāharaṇa) – प्रस्ताव के समर्थन में उदाहरण

उदाहरण में, प्रस्ताव की वैधता को प्रदर्शित करने के लिए ठोस उदाहरणों का उपयोग किया जाता है। उदाहरण, जो अक्सर सीधे अनुभव या सामान्य रूप से देखे गए घटनाओं से होते हैं, तर्क का समर्थन करने के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं। गुरुत्वाकर्षण के लिए, कोई गिरने वाले वस्तुओं के उदाहरण दे सकता है, जैसे कि एक सेब का पेड़ से गिरना या

Scanned with OKEN Scanner

न्याय में वियोजक / व्युत्क्रम तर्क का ढांचा

न्याय प्रणाली तर्कशास्त्र को वैध ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन मानती है, और इसका ज्ञान स्थापित करने का ढांचा पांच-चरणीय तर्क प्रक्रिया पर आधारित है। यह प्रक्रिया, चाहे वियोजक (डिडक्टिव) या व्युत्क्रम (इंडक्टिव) तर्क का उपयोग कर रही हो, अस्पष्टताओं (संसय) को हल करने और नए ज्ञान का निर्माण करने के लिए एक संरचित विधि प्रदान करती है। यहाँ इस तर्क प्रक्रिया के पांच चरणों का विवरण दिया गया है:

चरण 1: प्रतिज्ञा (Pratijñā) – प्रस्ताव का विकास

प्रतिज्ञा वह प्रस्ताव है जो परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया जाता है, यह केंद्रीय कथन या सिद्धांत है जिसे सत्यापित करने की आवश्यकता होती है। यह चरण उस अस्पष्टता या समस्या से उत्पन्न होता है जिसे हल करने की आवश्यकता है। प्रस्ताव तर्क प्रक्रिया का आधार होता है और यह स्पष्ट रूप से बताता है कि क्या प्रस्तावित या दावा किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, यदि हम गुरुत्वाकर्षण के स्वभाव की जांच कर रहे हैं, तो प्रस्ताव हो सकता है: "गुरुत्वाकर्षण वह शक्ति है जो वस्तुओं के गिरने का कारण बनती है।"

चरण 2: हेतु (Hetu) – तर्क के माध्यम से प्रस्ताव का स्थापन

हेतु उस तर्क या प्रमाण को प्रस्तुत करने का कार्य है जो प्रस्ताव के पक्ष में होता है। प्रस्तुतकर्ता को प्रस्ताव के सत्य होने की संभावना या उचितता को दिखाने के लिए मौजूदा ज्ञान या सिद्धांतों का सहारा लेना होता है। यह चरण प्रस्ताव को स्थापित तथ्यों, डेटा, या तर्किक सिद्धांतों से जोड़ता है। गुरुत्वाकर्षण के उदाहरण में, कोई यह तर्क दे सकता है: "वस्तुएँ हमेशा पृथ्वी की ओर गिरती हैं जब तक कि कोई बल इसका विरोध न करे," जो उस दावे का समर्थन करने वाला एक सामान्य अवलोकन है।

चरण 3: उदाहरण (Udhāharaṇa) – प्रस्ताव के समर्थन में उदाहरण

उदाहरण में, प्रस्ताव की वैधता को प्रदर्शित करने के लिए ठोस उदाहरणों का उपयोग किया जाता है। उदाहरण, जो अक्सर सीधे अनुभव या सामान्य रूप से देखे गए घटनाओं से होते हैं, तर्क का समर्थन करने के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं। गुरुत्वाकर्षण के लिए, कोई गिरने वाले वस्तुओं के उदाहरण दे सकता है, जैसे कि एक सेब का पेड़ से गिरना या

Scanned with OKEN Scanner

पानी में एक पत्थर का डूबना। ये उदाहरण यह दिखाते हैं कि गिरने की घटना प्रस्तावित तर्क के अनुरूप है।

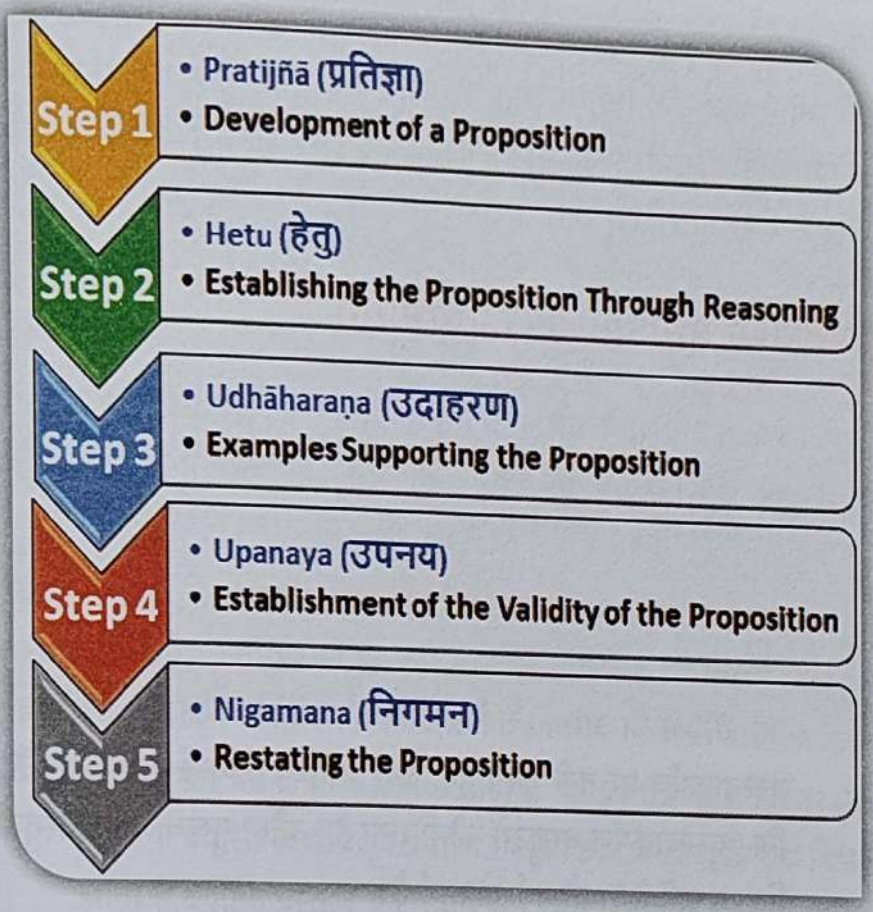

चरण 4: उपनय (Upanaya) – प्रस्ताव की वैधता का स्थापन

- उपनय यह सुनिश्चित करता है कि प्रस्ताव न केवल तर्क और उदाहरणों द्वारा समर्थित है, बल्कि यह पर्याप्त रूप से सामान्य और सार्वभौमिक रूप से लागू होने योग्य है। यह चरण प्रस्ताव की व्यापक वैधता की स्थापना करता है, यह साबित करते हुए कि यह सभी संबंधित संदर्भों में सही है।
- गुरुत्वाकर्षण के मामले में, कोई यह तर्क कर सकता है कि वस्तुओं के गिरने का सिद्धांत सिर्फ सेब या पत्थर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उन सभी वस्तुओं पर लागू होता है जो गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में हैं।

चरण 5: निगमन (Nigamana) – प्रस्ताव का पुन:स्थापन

- निगमन अंतिम चरण है, जहाँ प्रस्ताव को फिर से पुष्टि या निश्चित रूप से पुनःस्थापित किया जाता है, क्योंकि इसे पहले के चरणों के माध्यम से पूरी तरह से जांचा और

Scanned with OKEN Scanner

समर्थन किया गया है। यह निगमन तर्क को संकलित करता है और प्रस्ताव की वैधता को फिर से पुष्ट करता है।

- गुरुत्वाकर्षण के लिए, यह निष्कर्ष इस प्रकार हो सकता है: "चूँकि सभी वस्तुएँ गिरती हैं जब उन्हें गिराया जाता है, और यह सार्वभौमिक रूप से सत्य है, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गुरुत्वाकर्षण वह शक्ति है जो वस्तुओं को गिरने का कारण बनती है।"

तर्क प्रक्रिया में संभावित दोष (हेत्वाभासा)

न्याय-शास्त्र में तर्क प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न होने वाले कई संभावित दोष (हेत्वाभासा) की पहचान की गई है। ये दोष तर्क की ताकत को कमजोर करते हैं और इनसे बचने की आवश्यकता होती है ताकि तर्क वैध हो सके। प्रमुख पांच दोष निम्नलिखित हैं:

1. **अव्याभिचार:** यह तब होता है जब तर्क प्रक्रिया कई, विरोधी निष्कर्षों पर पहुँचती है। यदि तर्क लगातार एक ही निष्कर्ष का समर्थन नहीं करता, तो यह अस्थिर या असंगत तर्क प्रक्रिया को अंकित करता है। उदाहरण: यदि, गुरुत्वाकर्षण पर तर्क करते हुए, कोई विरोधी निष्कर्ष पर पहुँचता है (जैसे कि "गुरुत्वाकर्षण वस्तुओं को गिराता है" और "गुरुत्वाकर्षण वस्तुओं को गिराता नहीं है"), तो तर्क दोषपूर्ण है।

2. **विरोध:** यह दोष तब उत्पन्न होता है जब प्रस्ताव खुद से विरोधाभासी हो या इसे पर्याप्त समर्थन नहीं मिलता है। विरोधी निष्कर्ष का मतलब है कि प्रस्ताव को गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया था या यह गलत तथ्यों पर आधारित था।

   उदाहरण: यदि प्रस्ताव यह दावा करता है कि "गुरुत्वाकर्षण वस्तुओं को नीचे की ओर आकर्षित करता है," लेकिन व्यवहार में, कुछ संदर्भों में गुरुत्वाकर्षण वस्तुओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है, तो प्रस्ताव स्वयं विरोधाभासी होगा।

3. **प्रकरणसमा:** यह दोष तब होता है जब तर्क प्रक्रिया पुनः मूल प्रस्ताव की ओर लौटने लगती है, बिना नए या पर्याप्त समर्थन के। यह तर्क प्रक्रिया स्व-सम्बंधित हो जाती है और यह स्पष्टता या प्रमाण नहीं जोड़ती।

   उदाहरण: यदि कोई बार-बार कहता है, "गुरुत्वाकर्षण वस्तुओं को गिराता है

Scanned with OKEN Scanner

क्योंकि गुरुत्वाकर्षण वस्तुओं को गिराता है," बिना अतिरिक्त तर्क या प्रमाण के, तो तर्क चक्रीय हो जाता है।

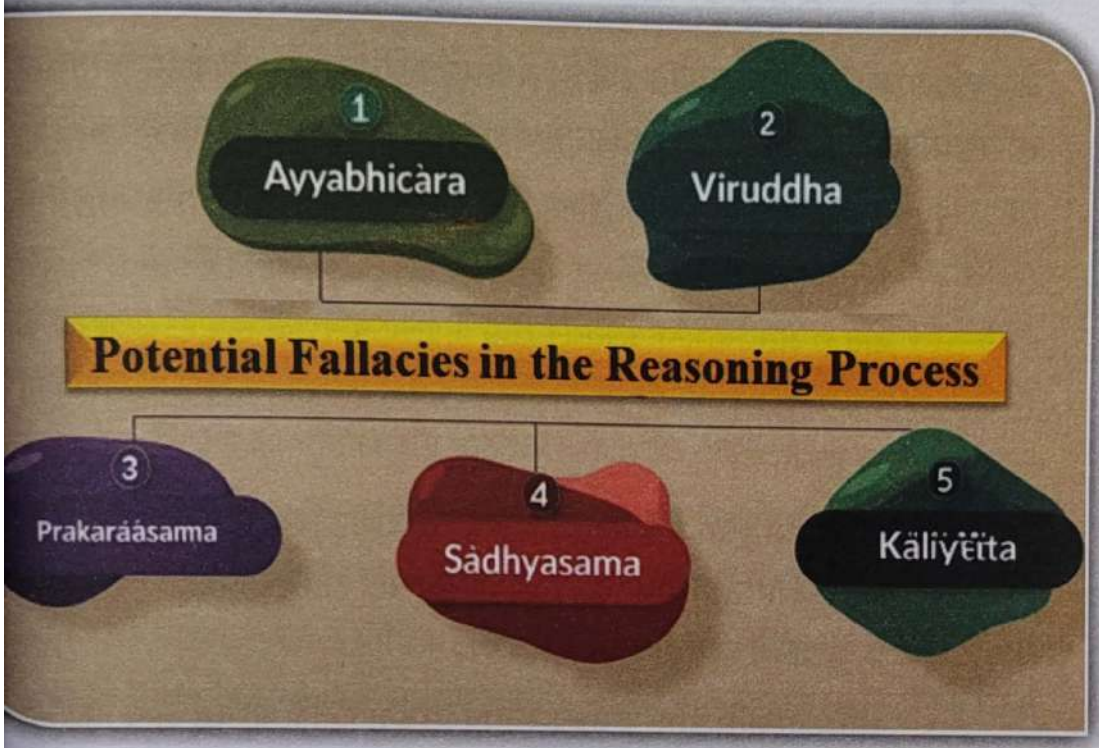

4. **साध्यसमा:** यह दोष तब उत्पन्न होता है जब प्रस्ताव को तर्क द्वारा स्थापित करने के प्रयासों के बावजूद प्रमाणित नहीं किया जाता। यह तर्क विफल हो जाता है क्योंकि प्रस्ताव को पर्याप्त रूप से समर्थित या प्रदर्शित नहीं किया गया है।

   उदाहरण: "आकाश सभी गति का माध्यम है" जैसे प्रस्ताव को प्रमाणित किया जा सकता है, लेकिन यदि कोई अनुभवजन्य प्रमाण या उचित तर्क नहीं प्रस्तुत किया गया है, तो यह विफल हो जाएगा।

5. **कालातीत:** यह दोष तब उत्पन्न होता है जब निष्कर्ष या प्रमाण उस समय या संदर्भ से मेल नहीं खाते हैं जिस पर प्रस्ताव चर्चा की जा रही है। तर्क या उदाहरण पुराने हो सकते हैं या वर्तमान परिस्थितियों से अप्रासंगिक हो सकते हैं।

   उदाहरण: यदि कोई पुरानी वैज्ञानिक धारणाओं (जैसे कि द्रव्यगुण सिद्धांत) का उपयोग करता है, तो यह वर्तमान रासायनिक प्रतिक्रियाओं के आधुनिक समझ के खिलाफ गलत हो सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

अध्यानवस्था के सिद्धांत

न्याय में, ज्ञान का निर्माण एक क्रमिक प्रक्रिया माना जाता है, जिसमें नए विचार पहले से स्थापित सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। ये सिद्धांत निरंतर तर्क और बहस के माध्यम से विकसित होते हैं। न्याय में चार प्रकार के स्थापित सिद्धांत (सिद्धांत) पहचाने जाते हैं:

1. **सर्वतंत्रसिद्धांत:** ये वे मौलिक सिद्धांत होते हैं जो सभी विचारधाराओं में सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत होते हैं। ये दर्शन और विज्ञान की समझ के मूल होते हैं और विभिन्न अध्ययन क्षेत्रों के लिए बुनियादी होते हैं। उदाहरण के रूप में, कारण और प्रभाव का नियम न्याय में एक सार्वभौमिक सिद्धांत माना जा सकता है।
2. **प्रतितंत्रसिद्धांत:** ये वे सिद्धांत होते हैं जो विशिष्ट विचारधाराओं से संबंधित होते हैं और सभी परंपराओं द्वारा स्वीकृत नहीं होते। ये किसी विशेष स्कूल के दृष्टिकोण या पद्धति को दर्शाते हैं।
3. **अधिकारणसिद्धांत:** ये उच्च-स्तरीय सिद्धांत होते हैं जो कई अन्य सिद्धांतों का मार्गदर्शन करते हैं। ये व्यवस्थित सिद्धांत होते हैं जो अन्य, विशिष्ट सिद्धांतों को एकजुट करते हैं।
4. **अभ्युपगमसिद्धांत:** ये सिद्धांत विश्लेषण और अध्ययन के माध्यम से स्थापित होते हैं, और इन्हें सीधे तौर पर नहीं कहा जाता, बल्कि इनका अनुमान या निष्कर्ष प्राप्त किया जाता है।



Scanned with OKEN Scanner

प्राचीन भारत में शिक्षा और पद्धति

प्राचीन भारत में शिक्षा उस सभ्यता के मूल सिद्धांतों में गहरे से निहित थी, जो ज्ञान को पवित्र, मुक्ति देने वाला और नैतिक रूप से परिवर्तित करने वाला मानती थी। आधुनिक शिक्षा प्रणालियों के विपरीत, जो अक्सर कौशल अधिग्रहण को नैतिक और आध्यात्मिक विकास से अलग कर देती हैं, प्राचीन भारतीय पद्धति का उद्देश्य मानव का समग्र विकास था। ज्ञान स्वयं में कोई उद्देश्य नहीं था, बल्कि यह ज्ञान से संबंधित विवेक, आत्म-ज्ञान (मोक्ष) और ब्रह्मांड के साथ सामंजस्य प्राप्त करने का एक साधन था। इस व्यापक दृष्टिकोण ने शिक्षा की प्रक्रिया के हर पहलू को प्रभावित किया—छात्रों के चयन से लेकर पाठ्यक्रम, शिक्षक की भूमिका और पाठ्यवस्तु के तरीके तक।

प्रारंभिक शिक्षा का मॉडल गुरुकुल प्रणाली थी, जिसमें छात्र अपने गुरुओं के साथ रहते थे, जो अक्सर वन या ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित आश्रमों में रहते थे। यह आवासीय और गहन मॉडल न केवल बौद्धिक शिक्षा प्रदान करता था, बल्कि गुरु के साथ निरंतर संवाद और सामूहिक जीवन के माध्यम से चरित्र निर्माण भी करता था। छात्र दैनिक कार्यों जैसे लकड़ी इकट्ठा करना, खाना पकाना और जानवरों की देखभाल करते थे, जो केवल श्रमिक कार्य नहीं थे, बल्कि उनके शिक्षा का अभिन्न हिस्सा थे। ये गतिविधियाँ विनम्रता, अनुशासन, जिम्मेदारी और आत्मनिर्भरता जैसे मूल्यों को बढ़ावा देती थीं—जो सच्चे ज्ञान के लिए आवश्यक माने जाते थे। इसका जोर केवल अमूर्त सिद्धांत पर नहीं था, बल्कि एक परिष्कृत मानव व्यक्तित्व का निर्माण करने पर था, जो विवेक (विवेक) और कर्म (कर्म) दोनों में सक्षम हो।

पाठ्यक्रम व्यापक था और यह छात्र के सामाजिक संदर्भ, प्राकृतिक योग्यता और शिक्षक के क्षेत्रीय विशेषज्ञता के अनुसार अनुकूलित किया जाता था। मौलिक शिक्षा वेदों के अध्ययन से शुरू होती थी, जिन्हें कठोर मौखिक परंपराओं के माध्यम से संरक्षित किया जाता था, जिसमें पाठ (श्रुति), सही उच्चारण, और लयबद्ध स्मरण शामिल थे। इसके बाद वेदांगों का अध्ययन किया जाता था—छह सहायक विज्ञान, जिनमें phonetics (शिक्षा), मीटर (छंद), व्याकरण (व्याकरण), व्युत्पत्ति (निर्वक्त), अनुष्ठान (कल्प) और खगोलशास्त्र (ज्योतिष) शामिल थे। ये वेदों को समझने और व्याख्या करने के लिए बौद्धिक आधार प्रदान करते थे।

इन मुख्य विषयों के अलावा, छात्रों को अक्सर उपवेदों या लागू विज्ञानों में प्रशिक्षण प्राप्त होता था। आयुर्वेद, जीवन और चिकित्सा का विज्ञान, व्यावहारिक

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

अपरेंटिसशिप के माध्यम से सिखाया जाता था। धनुर्वेद, युद्धकला का विज्ञान, जिसमें शारीरिक शिक्षा, शस्त्रास्त्र और युद्ध की रणनीति शामिल थी। गांधर्ववेद, संगीत और प्रदर्शन का विज्ञान, जो मंदिर संस्कृति और आध्यात्मिक सौंदर्यशास्त्र से निकट रूप से जुड़ा था। अर्थशास्त्र, जिसमें अर्थशास्त्र, राजनीति और प्रशासन शामिल था, छात्रों को शासक के रूप में तैयार करता था। ये अनुशासन यह दर्शाते हैं कि भारतीय शिक्षा केवल धार्मिक या काल्पनिक विचारों तक सीमित नहीं थी; इसमें कला, विज्ञान, व्यावसायिक शिल्प और नेतृत्व कौशल भी शामिल थे।

इस पद्धति का एक विशिष्ट पहलू था इसकी मौखिक प्रसारण और स्मृति-आधारित अध्ययन पर निर्भरता। शिक्षक अनुच्छेदों का उच्चारण करते थे, जिन्हें छात्र तब तक दोहराते थे जब तक वे याद न कर लेते। समय के साथ, वे अर्थों को आत्मसात करते थे, व्याख्या (भाष्य) में संलग्न होते थे, और विश्लेषणात्मक चर्चाओं में भाग लेते थे। इस पद्धति ने सैकड़ों वर्षों तक ग्रंथों को अद्वितीय सटीकता के साथ संरक्षित किया, इससे पहले कि उन्हें लिखा जाता। इसने मानसिक अनुशासन, ध्यान और ज्ञान के आंतरिककरण को भी बढ़ावा दिया। जबकि यह आधुनिक मानकों द्वारा कठिन प्रतीत हो सकता है, इसने छात्रों में असाधारण संज्ञानात्मक क्षमताओं को विकसित किया, जिससे वे केवल ज्ञान के भंडारणक नहीं, बल्कि व्याख्याता और विचारक भी बन गए।

प्राचीन भारतीय पद्धति का एक और प्रमुख तत्व था बहस और वैचारिक तर्क का महत्व। छात्र केवल जानकारी प्राप्त करने वाले निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं होते थे, बल्कि उन्हें आलोचनात्मक सोच, सवाल पूछने और तर्क (तर्कशास्त्र) और वाद (वाद-विवाद) में भाग लेने के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। ये बौद्धिक अभ्यास न्याय (न्याय), मीमांसा (व्याख्याशास्त्र), और बौद्ध विद्यानुसार परंपराओं में गहरे रूप से निहित थे। बहस केवल तर्कों को जीतने का अभ्यास नहीं थीं; यह समझ को परिष्कृत करने, दोषों को उजागर करने और गहरे सत्य तक पहुँचने के तरीके थे। शास्त्रार्थ—दार्शनिक विवाद—एक आवश्यक शैक्षिक उपकरण था, जो मानसिक चुस्ती और दार्शनिक कठोरता को बढ़ावा देता था।

जबकि गुरुकुल एक विकेंद्रीकृत और व्यक्तिगत रूप से जुड़ी शिक्षा प्रणाली थी, बाद में भारतीय इतिहास में बड़े, संगठित शैक्षिक संस्थानों का उदय हुआ, खासकर बौद्ध और गुप्त काल के दौरान। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशीला और वल्लभी जैसी विश्वविद्यालयों ने शिक्षा के प्रसिद्ध केंद्रों के रूप में कार्य किया, जो पूरे भारत और विदेशों से छात्रों को आकर्षित करते थे—तिब्बत, चीन, मध्य एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया। इन संस्थाओं में व्यवस्थित पाठ्यक्रम, बहु-स्तरीय संकाय, विशाल पुस्तकालय और

छात्रावास थे, जो उन्नत शैक्षिक ढांचे को प्रदर्शित करते थे। शिक्षा केवल बौद्ध अध्ययन तक सीमित नहीं थी; धर्म, साहित्य, व्याकरण, तर्कशास्त्र, खगोलशास्त्र, चिकित्सा और कानून भी प्रचलित थे।

नालंदा, उदाहरण के लिए, एक विशाल मठीय विश्वविद्यालय था, जिसे राज्य प्रायोजन और निजी दान से समर्थन प्राप्त था। इसमें हजारों छात्र और शिक्षक रहते थे, जो कक्षाओं, सार्वजनिक बहसों और व्यक्तिगत अध्ययन के माध्यम से निरंतर अध्ययन करते थे। यहां की पद्धति बेहद खुली और विविध थी, जो विभिन्न विचारों को स्वागत करती थी और अंतर-सम्प्रदायिक बहस में संलग्न होती थी। चीनी तीर्थयात्री शुआनज़ांग के रिकॉर्ड नालंदा में विद्वता और शैक्षिक कठोरता के विस्तृत विवरण देते हैं, जिसमें बहु-दिनीय मौखिक परीक्षाएँ और डिग्री मिलने से पहले संरचित विवाद होते थे।

भारतीय शिक्षा की नैतिक नींव को अत्यधिक महत्व दिया गया था। शिक्षकों से उच्च नैतिक चरित्र और निःस्वार्थ सेवा की उम्मीद की जाती थी। गुरु दक्षिणा प्रणाली, जिसमें छात्र अपनी शिक्षा के अंत में आभार का प्रतीक प्रस्तुत करते थे, यह प्रतीक था कि ज्ञान एक पवित्र विश्वास था, न कि एक व्यावसायिक लेन-देन। इस नैतिक संस्कृति ने सीखने के प्रयास में श्रद्धा और जिम्मेदारी का वातावरण उत्पन्न किया। फिर भी, यह महत्वपूर्ण है कि यह पहचाना जाए कि शिक्षा तक पहुँच समय की सामाजिक श्रेणियों द्वारा निर्धारित थी, विशेष रूप से वर्ण व्यवस्था के द्वारा। जबकि प्रणाली आदर्श रूप से योग्यता को शिक्षा के साथ मिलाती थी, व्यवहार में यह अक्सर निम्न जातियों और महिलाओं को उच्च शिक्षा से बाहर रखती थी। फिर भी, बौद्ध, जैन और कुछ भक्ति आंदोलनों जैसी वैकल्पिक परंपराओं ने अधिक समावेशी शैक्षिक स्थान प्रदान किए। उल्लेखनीय उदाहरणों में गार्गी और मैत्रेयी जैसी महिला दार्शनिकों और नंदनार जैसे दलित ऋषियों की उपस्थिति है, जिन्होंने प्रचलित मान्यताओं को चुनौती दी और ज्ञान और आध्यात्मिकता के अनुसरण के अपने अधिकार का दावा किया।

सारांश

प्राचीन भारतीय ज्ञान ढांचा वास्तविकता को समझने के लिए एक गहरे एकीकृत दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है, जो मेटाफिजिकल सिद्धांतों, तार्किक कठोरता और अनुभवजन्य अवलोकन को संतुलित करता है। इसका मूल यह मानता है कि ज्ञान (ज्ञान) एक रूपांतरकारी प्रक्रिया है जो ज्ञाता और ज्ञेय को ब्रह्मांडीय आदेश के भीतर जोड़ती है, जिसे

Scanned with OKEN Scanner

ऋत और धर्म द्वारा शासित किया जाता है। न्याय और वैशेषिक जैसे दार्शनिक प्रणालियाँ मान्य तर्क और बहस के लिए विश्लेषणात्मक उपकरण प्रदान करती हैं, जबकि वेदांत और सांख्य जैसी परंपराएँ चेतना और अस्तित्व के स्वभाव को संबोधित करती हैं। आयुर्वेद, भाषा विज्ञान, और खगोलशास्त्र जैसे अनुभवजन्य विज्ञान इस व्यापक दार्शनिक संदर्भ के भीतर कार्य करते थे, यह दर्शाते हुए कि यहां तर्कसंगत जांच, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि, और नैतिक जिम्मेदारी अपरिहार्य थीं। परिणामस्वरूप, यह एक समग्र ज्ञान परिपाटी है जो न केवल बौद्धिक महारत, बल्कि आंतरिक अनुशासन, सामाजिक सामंजस्य और मुक्ति को भी महत्व देती है।

यह समग्र परंपरा आधुनिक विज्ञान, तुलनात्मक दर्शन और अंतरविभागीय अध्ययन के लिए मूल्यवान दृष्टिकोण प्रदान करती है। इसके तरीके प्रणाली सिद्धांत, संज्ञानात्मक विज्ञान, और नैतिकता-आधारित जांच के पहलुओं का अनुमान लगाते हैं, जिससे यह एक दुनिया में अत्यधिक प्रासंगिक हो जाती है जो एकीकृत ढाँचों की तलाश में है। भारतीय ज्ञानमीमांसा का अनुभवजन्य ज्ञान, संज्ञान की संवेदनाओं को परिष्कृत करने और ज्ञान में आत्मा की भूमिका पर बल इस समय के चेतना अध्ययन और समग्र शिक्षा के दृष्टिकोणों के पूरक हो सकते हैं। जैसे-जैसे पाठ्यक्रमों के उपनिवेशीकरण और वैश्विक दार्शनिक संवाद में रुचि बढ़ती है, भारतीय परंपरा वैकल्पिक मॉडल के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में खड़ी है। भविष्य के दिशा-निर्देशों में इन अंतर्दृष्टियों को समकालीन पद्धतियों में समाहित करना, पूर्व-पश्चिम दार्शनिक संवादों को बढ़ावा देना और प्राचीन ग्रंथों के साथ आलोचनात्मक संलग्नता को प्रोत्साहित करना शामिल हो सकता है, जिससे समावेशी, नैतिक रूप से मजबूत और बहुआयामी शिक्षा और अनुसंधान दृष्टिकोण विकसित हो सकें।

Scanned with OKEN Scanner

अनुशंसित पठन सामग्री

1. *The Upanishads* by Eknath Easwaran (1987, Nilgiri Press)
2. *The Bhagavad Gita by Swami Sivananda* (1947, Divine Life Society)
3. *Nyāya Sūtras of Gautama by Ganganatha Jha* (1920, Motilal Banarsidass)
4. *Vaiśeṣika Sūtras* by T.S. Kuppuswami (1969, M.N.B. Publishers)
5. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), "*Introduction to Indian Knowledge System*", PHI learning private ltd.
6. *Tarka-Sāstra: The Art of Debate* by Bimal K. Matilal (1996, Motilal Banarsidass)
7. *An Introduction to Indian Philosophy* by M. Hiriyanna (1973, Motilal Banarsidass)
8. *The Philosophy of Education in Ancient Indi*a by S.K. Soni (2005, Rupa Publications)
9. *The Role of the Guru in Indian Education* by M.A.W.H.S. Shrivastava (2002, Munshiram Manoharlal Publishers)
10. O.P. Pandey (2023), "*Bharat Vaibhav*", National Book Trust, India.

Scanned with OKEN Scanner

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन भारतीय ज्ञानमीमांसा में अवैध ज्ञान का एक रूप नहीं माना जाता है?
   a) स्मृति
   b) कल्पित तर्क
   c) अनुमान
   d) भ्रम

2. ज्ञान त्रिभुज के संदर्भ में, कौन-सा घटक ज्ञान के जिज्ञासु को दर्शाता है?
   a) प्रमाण
   b) प्रमाण
   c) प्रामाता
   d) वाद

3. निम्नलिखित में से कौन-सा दर्शन भौतिक वास्तविकता की श्रेणीबद्धता और समझ पर बल देता है?
   a) न्याय
   b) वेदांत
   c) वैशेषिक
   d) सांख्य

4. वैशेषिक दर्शन में, ब्रह्मांड को बनाने वाली मूल भौतिक इकाइयों को क्या कहा जाता है?
   a) गुण
   b) द्रव्य
   c) कर्म
   d) सामान्य

Scanned with OKEN Scanner

5. भारतीय ज्ञानमीमांसा में "प्रमाण" शब्द का क्या अर्थ है?

a) ज्ञान का विषय

b) ज्ञान का जिज्ञासु

c) ज्ञान प्राप्त करने का साधन

d) अध्ययन की जाने वाली अवधारणा

6. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा द्रव्य अमूर्त (अशरीरी) माना जाता है?

a) जल

b) वायु

c) आकाश

d) आत्मा

7. वैशेषिक दर्शन में वर्णित कर्म (क्रिया) का एक प्रकार क्या है?

a) सृजन

b) संकोचन

c) विश्राम

d) अस्तित्व

8. न्याय दर्शन के संदर्भ में 'प्रत्यक्ष' का क्या अर्थ है?

a) तर्क और कारण पर आधारित अनुमानात्मक ज्ञान

b) विशेषज्ञों की वाणी से प्राप्त ज्ञान

c) इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान

d) उपमाओं और तुलनाओं से प्राप्त ज्ञान

9. न्याय दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा अनुमान (अनुमान) का प्रकार है ?

a) पूर्वज्ञान

b) पश्चज्ञान

c) सामान्यतः देखा गया

d) उपर्युक्त सभी

Scanned with OKEN Scanner

10. न्याय दर्शन में 'संशय' शब्द का क्या तात्पर्य है?

a) प्रमाणित ज्ञान

b) विद्यमान ज्ञान में अस्पष्टता या अनिश्चितता

c) औपचारिक वाद प्रक्रिया

d) ज्ञान का विषय

11. न्याय दर्शन में संशय (अस्पष्टता) के कारणों में से कौन-सा कारण मान्य नहीं है?

a) प्रारंभिक और बाद के प्रयोगों के विरोधाभासी निष्कर्ष

b) देखी गई घटना और ज्ञात गुणों के बीच समानता

c) स्थापित ज्ञान का प्रत्यक्ष विरोध

d) अध्ययन की जा रही घटना की समझ की कमी

12. न्याय दर्शन में नव ज्ञान स्थापित करने की प्रक्रिया का पहला चरण क्या है?

a) हेत्वाभास (तर्क)

b) निगमन (प्रस्ताव की पुनरुक्ति)

c) प्रतिज्ञा (प्रस्ताव का निर्माण)

d) उदाहरण (प्रमाण हेतु उदाहरण देना)

13. न्याय तर्क प्रणाली में वह चरण कौन-सा है जिसमें प्रस्ताव को प्रमाणित करने हेतु उदाहरण दिए जाते हैं?

a) हेत्वाभास

b) उदाहरण

c) निगमन

d) उपनय

14. न्याय दर्शन के अनुसार, जब निष्कर्ष एक-दूसरे से विरोधाभासी हो जाते हैं तो वह किस प्रकार का प्रमाद (fallacy) होता है?

a) अव्यभिचार (अनियमित निष्कर्ष)

b) विरुद्ध (विरोधाभासी निष्कर्ष)

c) कालातीत (अप्रासंगिक निष्कर्ष)

d) साध्यसम (असिद्ध निष्कर्ष)

Scanned with OKEN Scanner

15. न्याय दर्शन में वह प्रमाद कौन-सा है जिसमें तर्क प्रक्रिया मूल प्रस्ताव पर लौट आती है लेकिन कोई ठोस समर्थन नहीं देती?

a) अव्यभिचार

b) विरुद्ध

c) प्रकरणसम

d) साध्यसम

16. 'अधिकरण-सिद्धांत' को सबसे उपयुक्त रूप में कैसे परिभाषित किया जा सकता है?

a) विभिन्न दर्शनों के विशेष सिद्धांत

b) अन्य सिद्धांतों को निर्देशित करने वाले उच्च-स्तरीय सिद्धांत

c) विस्तृत अध्ययन के माध्यम से निहित सिद्धांत

d) सभी दर्शनों पर लागू सार्वभौमिक नियम

17. निम्नलिखित में से कौन-सा अधिकरण-सिद्धांत का उदाहरण हो सकता है?

a) सभी घटनाओं पर लागू होने वाला कारण-कार्य का नियम

b) वेदांत में आत्मा की अवधारणा

c) न्याय में इंद्रिय प्रत्यक्ष का सिद्धांत

d) कारण-कार्य जैसे सार्वभौमिक सिद्धांतों की धारणा

18. अभ्युपगम-सिद्धांत का एक उदाहरण कौन-सा हो सकता है?

a) सभी दर्शनों में कारण-कार्य का सिद्धांत

b) भौतिक संसार में कारण-कार्य के अवलोकन से आधारित क्रिया की निहित अवधारणा

c) सार्वभौमिक कारणता का नियम

d) वेदांत में आत्मा की अनोखी अवधारणा

19. न्याय दर्शन में सिद्धांतों की भूमिका को किस रूप में समझा जा सकता है?

a) वे नए ज्ञान की नींव बनाते हैं जो तर्क और वाद-विवाद द्वारा विकसित होते हैं

Scanned with OKEN Scanner

b) ये केवल काल्पनिक धारणाएं होती हैं जिनका व्यावहारिक उपयोग नहीं होता

c) ये किसी भी नए ज्ञान को अस्वीकार करते हैं और परंपरागत मान्यताओं को ही मानते हैं

d) ये केवल व्यक्तिगत विश्वास पर आधारित होते हैं, न कि तर्क पर

20. निम्नलिखित में से कौन-सा न्याय दर्शन में मान्यता प्राप्त सिद्धांत (सिद्धान्त) का प्रकार नहीं है?

a) सर्वतंत्र-सिद्धांत

b) प्रतितंत्र-सिद्धांत

c) अधिकरण-सिद्धांत

d) निरूपण-सिद्धांत

21. भारतीय दर्शन में न्याय दर्शन किस रूप में जाना जाता है?

a) भावनात्मक बुद्धिमत्ता पर आधारित प्रणाली

b) अंधश्रद्धा और धार्मिक मान्यताओं पर आधारित पद्धति

c) तर्क और वाद के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की संरचित प्रणाली

d) बिना तर्क के शिक्षा देने की विधि

22. वाद पद्धति का प्रमुख उद्देश्य क्या है?

a) धार्मिक मतों का प्रचार

b) विश्वास के पक्ष में तर्क को नकारना

c) एक साझा निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु संरचित वाद-विवाद करना

d) विरोधी दृष्टिकोणों को अलग-थलग करना

23. भारतीय ज्ञानमीमांसा में 'प्रमाण' का क्या अर्थ है?

a) ज्ञान का विषय

b) ज्ञान का जिज्ञासु

c) मान्य ज्ञान प्राप्त करने का साधन

d) ज्ञान में त्रुटि

Scanned with OKEN Scanner

24. भारतीय दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा अमान्य ज्ञान माना जाता है?

a) प्रत्यक्ष

b) अनुमान

c) स्मृति

d) शब्द

25. कौन-सा भारतीय दर्शन भौतिक वास्तविकता की श्रेणीबद्धता और समझ पर ध्यान देता है?

a) न्याय

b) वैशेषिक

c) वेदांत

d) सांख्य

26. ज्ञान त्रिकोण में 'प्रमाता' किसे कहते हैं?

a) ज्ञान का विषय

b) ज्ञान प्राप्त करने का साधन

c) ज्ञान का जिज्ञासु

d) ज्ञान में त्रुटि

27. भारतीय दर्शन में मान्य ज्ञान का एक आवश्यक घटक कौन-सा है?

a) त्रुटि

b) संदेह

c) व्यवस्थित प्रक्रिया से प्राप्त निष्कर्ष

d) कल्पना आधारित तर्क

28. न्याय दर्शन मुख्य रूप से किस पर केंद्रित है?

a) तत्वमीमांसा और सत्ता

b) भौतिक पदार्थों की श्रेणीबद्धता

c) तर्कशक्ति और ज्ञानमीमांसा, विशेषकर मान्य ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ

d) आध्यात्मिक अभ्यासों का विकास

Scanned with OKEN Scanner

29. 'प्रमेय' शब्द का भारतीय ज्ञानमीमांसा में क्या तात्पर्य है?

a) ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया

b) ज्ञान का जिज्ञासु

c) समझा जाने वाला विषय या वस्तु

d) अमान्य ज्ञान

30. भारतीय ज्ञानमीमांसा के अनुसार, निम्नलिखित में से कौन-सा अमान्य ज्ञान का उदाहरण है?

a) प्रत्यक्ष

b) त्रुटि

c) कल्पना आधारित तर्क

d) शब्द

31. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा ब्रह्मांड का मूल भौतिक घटक है?

a) गुण

b) कर्म

c) द्रव्य

d) सामान्य

32. वैशेषिक दर्शन के छह मुख्य पदार्थों में से कौन-सा नहीं है?

a) द्रव्य

b) गुण

c) आत्मा

d) कर्म

33. वैशेषिक दर्शन में कौन-सा तत्व अनंत माना जाता है और ध्वनि का माध्यम होता है?

a) पृथ्वी

b) आकाश

c) जल

d) अग्नि

Scanned with OKEN Scanner

34. वैशेषिक दर्शन के अनुसार, वह सबसे छोटा अविभाज्य कण कौन-सा है जो पदार्थ का मूल निर्माण करता है?

a) द्व्यणुक

b) त्र्यणुक

c) अणु

d) गुण

35. वैशेषिक पद्धति का ज्ञान प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य क्या है?

a) विश्वास को तर्क से अधिक महत्व देना

b) भौतिक वास्तविकता के घटकों को वर्गीकृत और परिभाषित करना

c) तत्वमीमांसा को भौतिक विश्लेषण से ऊपर रखना

d) आत्म-चिंतन द्वारा आध्यात्मिक अभ्यासों का विकास करना

36. वैशेषिक दर्शन में सीमित पदार्थों के गुण का एक उदाहरण कौन-सा है?

a) संज्ञान

b) इच्छा

c) रंग

d) ध्वनि

37. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा द्रव्य शाश्वत और सर्वव्यापी है, किंतु प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता?

a) पृथ्वी

b) अग्नि

c) काल (समय)

d) जल

38. 'समवाय' शब्द का वैशेषिक दर्शन में क्या अर्थ है?

a) पदार्थ और उसके गुणों के बीच का संबंध

b) ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया

c) पदार्थों का वर्गीकरण

d) पदार्थों का विनाश

Scanned with OKEN Scanner

39. वैशेषिक दर्शन में कौन-सी क्रियाएं पदार्थों के संयोग और वियोग में परिवर्तन लाती हैं?

a) ऊपर की गति
b) विस्तार
c) कर्म
d) समवाय

40. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा अशरीरी (अमूर्त) पदार्थ है?

a) आकाश
b) जल
c) काल
d) पृथ्वी

41. वैशेषिक दर्शन में असीम (अनंत) और अदृश्य होते हुए भी कौन-सा द्रव्य शाश्वत और सर्वव्यापी माना गया है?

a) पृथ्वी
b) अग्नि
c) काल (समय)
d) जल

42. वैशेषिक दर्शन में 'समवाय' शब्द का क्या तात्पर्य है?

a) पदार्थ और उसके गुणों के बीच संबंध
b) ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया
c) पदार्थों का वर्गीकरण
d) पदार्थों का विघटन

43. वैशेषिक में कौन-सी क्रिया पदार्थों के संयोग और वियोग में परिवर्तन लाने वाली प्रक्रिया को दर्शाती है?

a) ऊपर की गति
b) विस्तार
c) कर्म
d) समवाय

Scanned with OKEN Scanner

39. वैशेषिक दर्शन में कौन-सी क्रियाएं पदार्थों के संयोग और वियोग में परिवर्तन लाती हैं?

a) ऊपर की गति
b) विस्तार
c) कर्म
d) समवाय

40. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा अशरीरी (अमूर्त) पदार्थ है?

a) आकाश
b) जल
c) काल
d) पृथ्वी

41. वैशेषिक दर्शन में असीम (अनंत) और अदृश्य होते हुए भी कौन-सा द्रव्य शाश्वत और सर्वव्यापी माना गया है?

a) पृथ्वी
b) अग्नि
c) काल (समय)
d) जल

42. वैशेषिक दर्शन में 'समवाय' शब्द का क्या तात्पर्य है?

a) पदार्थ और उसके गुणों के बीच संबंध
b) ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया
c) पदार्थों का वर्गीकरण
d) पदार्थों का विघटन

43. वैशेषिक में कौन-सी क्रिया पदार्थों के संयोग और वियोग में परिवर्तन लाने वाली प्रक्रिया को दर्शाती है?

a) ऊपर की गति
b) विस्तार
c) कर्म
d) समवाय

Scanned with OKEN Scanner

44. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा अशरीरी (अमूर्त) द्रव्य माना जाता है?

a) आकाश
b) जल
c) काल
d) पृथ्वी

45. वैशेषिक दर्शन में ठोस पदार्थों के रूप में कौन-सा तत्व पहचाना गया है?

a) जल
b) अग्नि
c) पृथ्वी
d) वायु

46. वैशेषिक में प्रमुख क्रियाओं में से कौन-सी पदार्थों की गति को दर्शाती है?

a) ऊपर की गति
b) समवाय
c) विशेषता
d) सामान्यता

47. वैशेषिक में कर्मों (क्रियाओं) का वर्गीकरण कैसे किया गया है?

a) उनके गुणों के अनुसार
b) पाँच प्रकारों में – ऊपर की गति, नीचे की गति, संकोचन, विस्तार, और गति
c) उनके भौतिक द्रव्य के आधार पर
d) मानसिक और भौतिक श्रेणियों में

48. वैशेषिक दर्शन में कौन-सा गुण सीमित और असीमित दोनों प्रकार के द्रव्यों में पाया जाता है?

a) रंग
b) संख्या
c) तरलता
d) संज्ञान

Scanned with OKEN Scanner

49. वैशेषिक दर्शन में आकाश की क्या भूमिका है?

a) यह स्पर्श का गुण देता है

b) यह ध्वनि के संचार का माध्यम है

c) यह मानसिक गुणों का प्रतिनिधित्व करता है

d) यह समय और स्थान की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है

50. वैशेषिक सूत्र के अनुसार, ऊपर की गति को गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध बनाए रखने के लिए क्या आवश्यक है?

a) संकोचन की शक्ति

b) गुरुत्वाकर्षण का प्रतिरोध करने का प्रयास

c) बाहरी तापमान परिवर्तन

d) परमाणुओं की गति

51. वैशेषिक दर्शन में ठोस पदार्थों के रूप में कौन-सा तत्व पहचाना जाता है?

a) जल

b) अग्नि

c) पृथ्वी

d) वायु

52. वैशेषिक में वर्णित प्रमुख क्रियाओं में से कौन-सी पदार्थों की गति को दर्शाती है?

a) ऊपर की गति

b) समवाय

c) विशेषता

d) सामान्यता

53. वैशेषिक दर्शन में क्रियाओं (कर्म) का वर्गीकरण कैसे किया गया है?

a) उनके गुणों के अनुसार

b) पाँच प्रकारों में: ऊपर की गति, नीचे की गति, संकोचन, विस्तार, और गति

c) उनके भौतिक द्रव्य के आधार पर

d) मानसिक और भौतिक श्रेणियों में

Scanned with OKEN Scanner

54. वैशेषिक दर्शन में कौन-सा गुण सीमित और असीमित दोनों प्रकार के द्रव्यों में पाया जाता है?

a) रंग
b) संख्या
c) तरलता
d) संज्ञान

55. वैशेषिक दर्शन में आकाश (Ether) की भूमिका क्या है?

a) स्पर्श का गुण प्रदान करता है
b) ध्वनि के संचार का माध्यम
c) मानसिक गुणों का प्रतिनिधित्व करता है
d) समय और स्थान की विशेषता

56. वैशेषिक सूत्र के अनुसार, गुरुत्वाकर्षण को रोकने के लिए ऊपर की गति में क्या आवश्यक है?

a) संकोचन की शक्ति
b) गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध प्रयास
c) बाहरी तापमान परिवर्तन
d) परमाणुओं की गति

57. वैशेषिक सूत्र के अनुसार, जब कोई बाह्य बल नहीं होता, तो वस्तुएँ क्या करती हैं?

a) उसी दिशा में चलती रहती हैं
b) गुरुत्वाकर्षण के कारण गिरती हैं
c) ऊपर की ओर जाती हैं
d) स्थिर रहती हैं

58. जब कोई बाह्य बल लागू नहीं होता, तब गति के संबंध में वैशेषिक दर्शन का क्या निष्कर्ष है?

a) वस्तुएँ अपनी वर्तमान गति में चलती रहती हैं
b) वस्तुएँ ऊपर की ओर चलती हैं
c) ऊपर या पार्श्व गति नहीं होगी
d) वस्तुएँ घूमने लगेंगी

Scanned with OKEN Scanner

59. न्याय दर्शन में वर्णित तर्क के प्रकारों में कौन-सा शामिल है?

a) उपमान (समानता)

b) कर्म (क्रिया)

c) वेदांत (ज्ञान का अंत)

d) सांख्य (संख्या आधारित दर्शन)

60. न्याय पद्धति में मान्य ज्ञान स्थापित करने की तार्किक प्रक्रिया का पहला चरण क्या है?

a) हेतु (तर्क)

b) उदाहरण (उदाहरण)

c) प्रतिज्ञा (प्रस्ताव)

d) निगमन (निष्कर्ष)

61. न्याय तर्क में वह चरण कौन-सा है जिसमें प्रस्ताव के समर्थन हेतु तार्किक प्रमाण दिए जाते हैं?

a) हेतु (तर्क)

b) उदाहरण (उदाहरण)

c) उपनय (सामान्यीकरण)

d) निगमन (निष्कर्ष)

62. न्याय दर्शन का "उदाहरण" चरण किससे संबंधित है?

a) सामान्य निष्कर्ष निकालना

b) प्रस्ताव को समर्थन देने के लिए विशिष्ट उदाहरण देना

c) अंतिम निष्कर्ष प्रस्तुत करना

d) प्रस्ताव को दोहराना

63. न्याय दर्शन का "निगमन" चरण किसका प्रतिनिधित्व करता है?

a) पिछले अनुभवों के आधार पर निष्कर्ष निकालना

b) तर्क और उदाहरणों द्वारा समर्थन मिलने के बाद प्रस्ताव को पुनः प्रस्तुत करना

c) प्रस्ताव को व्यापक संदर्भ में सामान्यीकृत करना

d) प्रस्ताव का समर्थन करने हेतु उपमाओं का उपयोग करना

Scanned with OKEN Scanner

64. न्याय के तर्क में दूसरा चरण क्या कहलाता है, जिसमें तर्क के माध्यम से प्रस्ताव को स्थापित किया जाता है?

a) हेतु (तर्क)

b) उदाहरण (उदाहरण)

c) उपनय (सामान्यीकरण)

d) निगमन (निष्कर्ष)

65. न्याय दर्शन में ज्ञान प्राप्ति के प्राथमिक साधनों में से कौन-सा इंद्रिय अनुभव पर आधारित है?

a) प्रत्यक्ष (इंद्रिय जनित ज्ञान)

b) अनुमान (तर्क)

c) शब्द (वाणी प्रमाण)

d) उपमान (समानता)

66. न्याय दर्शन में जब किसी देखे गए कारण के प्रभाव से ज्ञान प्राप्त होता है, तो वह किस प्रकार का ज्ञान होता है?

a) पश्चज्ञान (प्रभाव से कारण की ओर)

b) पूर्वज्ञान (अनुभव से निष्कर्ष की ओर)

c) सादृश्य उपमान (समानता द्वारा ज्ञान)

d) असाधारण धर्म उपमान (विशिष्ट लक्षणों पर आधारित ज्ञान)

67. न्याय की तर्क प्रक्रिया में तीसरे चरण में उदाहरणों द्वारा किस बात की पुष्टि की जाती है?

a) हेतु (तर्क)

b) उदाहरण (उदाहरण)

c) प्रतिज्ञा (प्रस्ताव)

d) निगमन (निष्कर्ष)

68. न्याय में 'शब्द' शब्द किसका तात्पर्य है?

a) प्रत्यक्ष ज्ञान

b) विश्वसनीय स्रोत से प्राप्त वाचिक प्रमाण

c) अनुमान

d) उपमान

Scanned with OKEN Scanner

69. न्याय के तर्क चरणों में कौन-सा चरण प्रस्ताव को सभी संदर्भों में मान्य बनाने के लिए प्रयुक्त होता है?

a) हेतु
b) उदाहरण
c) उपनय
d) निगमन

70. न्याय तर्क में प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए निम्नलिखित में से क्या प्रयोग होता है?

a) पूर्वज्ञान
b) पश्चज्ञान
c) अमूर्त अवधारणाएँ
d) केवल उपमाएँ

71. वैदिक दर्शन में 'ऋत' शब्द का मुख्य रूप से क्या अर्थ है?

a) अराजकता और अनिश्चितता
b) यांत्रिक दोहराव
c) ब्रह्मांड में निहित व्यवस्था और सत्य
d) अलौकिक हस्तक्षेप

72. भारतीय दर्शन में ऋत से कौन-सा सिद्धांत विकसित हुआ जो व्यक्तिगत ब्रह्मांडीय व्यवस्था को दर्शाता है?

a) कर्म
b) अविद्या
c) मोक्ष
d) धर्म

73. भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान के अनुसार समय को मुख्यतः कैसे समझा जाता है?

a) रेखीय और एकदिशात्मक
b) स्थैतिक आयाम
c) चक्रीय और लयबद्ध
d) अस्तित्वहीन

Scanned with OKEN Scanner

74. भारतीय दर्शन में युगों का क्या तात्पर्य है?

a) धन की इकाइयाँ

b) ऋतुओं के देवता

c) ब्रह्मांडीय चक्र या युग

d) ज्ञान के प्रकार

75. सांख्य दर्शन में पुरुष का क्या तात्पर्य है?

a) पदार्थ या भौतिक वास्तविकता

b) अग्नि और प्रकाश

c) शुद्ध चैतन्य या साक्षी

d) मन के विचार

76. वेदांत में पाराविद्या का परम उद्देश्य क्या है ?

a) धन संचय

b) अनुष्ठानों में दक्षता

c) ब्रह्म की अनुभूति

d) सभी वैदिक मंत्रों का अध्ययन

77. भारतीय ज्ञान प्रणाली के अनुसार ब्रह्म और ज्ञान के बीच क्या संबंध है?

a) ब्रह्म पूजा का विषय है, जानने योग्य नहीं

b) ब्रह्म एक भ्रांति है

c) ब्रह्म अंतिम सत्य है जिसे जाना जाना चाहिए

d) ब्रह्म केवल सैद्धांतिक है

78. प्राचीन भारतीय ज्ञानमीमांसा में 'शब्द' किस रूप में मान्य है?

a) कल्पना पर आधारित तर्क

b) प्रमाणिक स्रोत से प्राप्त वाचिक साक्ष्य

c) अविश्वसनीय अफवाह

d) आंतरिक स्मृति

Scanned with OKEN Scanner

79. वैशेषिक दर्शन में समवाय की मुख्य भूमिका क्या है?

a) पदार्थ का विघटन करना

b) नई ऊर्जा उत्पन्न करना

c) पदार्थ और उसके गुणों के बीच अंतर्निहित संबंध को परिभाषित करना

d) द्वैतवाद स्थापित करना

80. प्राचीन भारतीय विज्ञानों में कौन-सी विद्या पंच महाभूतों के संतुलन पर आधारित है?

a) ज्योतिष

b) धनुर्वेद

c) आयुर्वेद

d) गंधर्ववेद

81. न्याय दर्शन में उपमान का प्रयोग किस लिए किया जाता है?

a) आस्था आधारित विश्वास

b) भौतिक प्रयोग

c) समानता या तुलना

d) काल्पनिक कथाओं के लिए

82. वैदिक परंपरा में व्याकरण का शैक्षिक उद्देश्य क्या था?

a) युद्ध नीति

b) चिकित्सा

c) मंत्र उच्चारण

d) व्याकरण और भाषाई विश्लेषण

83. वैशेषिक दर्शन के अनुसार, वास्तविकता को वर्गीकृत करने के लिए कितने आवश्यक पदार्थ (पदार्थ) होते हैं?

a) चार

b) छह

c) सात

d) नौ

Scanned with OKEN Scanner

84. निम्नलिखित में से कौन-सा वेदांग नहीं है?

a) शिक्षा (उच्चारण)

b) न्याय (तर्क)

c) छंद (वेदिक छंद)

d) निरुक्त (शब्द व्युत्पत्ति)

85. गुरुकुल प्रणाली में बौद्धिक अध्ययन के साथ-साथ किस बात पर ज़ोर दिया जाता था?

a) यांत्रिक रटंत

b) राजनीतिक सक्रियता

c) चरित्र निर्माण और सेवा

d) औद्योगिक प्रशिक्षण

86. गुरुकुल शिक्षा में दैनिक कार्यों के माध्यम से किस मूल्य को बढ़ावा दिया जाता था?

a) आर्थिक आत्मनिर्भरता

b) बौद्धिक अहंकार

c) विनम्रता और अनुशासन

d) अनुष्ठानों की पूर्णता

87. प्राचीन विश्वविद्यालय जैसे नालंदा और तक्षशिला किस पर बल देते थे?

a) केवल बौद्ध शिक्षा

b) केवल वैदिक अनुष्ठान

c) बहु-विषयक और विविध ज्ञान

d) गुप्त शिक्षण

88. वैशेषिक दर्शन में विशेष (विशेष) को सामान्य (सामान्य) से किस रूप में अलग किया जाता है?

a) विशेषता सार्वभौमिकता को दर्शाती है; सामान्यता विशिष्टता को

b) विशेषता अद्वितीय गुणों को दर्शाती है; सामान्यता सामान्य गुणों को

c) विशेष एक प्रकार की क्रिया है; सामान्य एक शास्त्र

d) दोनों समानार्थक शब्द हैं

Scanned with OKEN Scanner

89. वैशेषिक दर्शन में मन की भूमिका क्या है?

a) यह सभी क्रियाओं का नियंत्रक है
b) यह एक भौतिक अंग है
c) यह आंतरिक अंग है जो इंद्रिय ज्ञान की मध्यस्थता करता है
d) इसकी कोई भूमिका नहीं है

90. वैशेषिक में कर्म (क्रिया) की क्या भूमिका है?

a) आध्यात्मिक मुक्ति का कारण
b) वस्तुओं की यादृच्छिक गति
c) पदार्थों के संयोग और वियोग का कारक
d) मानसिक भ्रांतियों का परिणाम

91. भारतीय ब्रह्मांड विज्ञान के अनुसार, ज्ञान को अक्सर किससे जोड़ा गया है?

a) गति
b) प्रकाश
c) अग्नि
d) सोना

92. प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में मौखिक परंपरा किस विधि पर आधारित थी?

a) ग्रंथों का लेखन और लिप्यांकन
b) मानसिक पुनरावृत्ति और मंत्रों का उच्चारण
c) ग्रंथों का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद
d) समूह पाठ

93. न्याय तर्क प्रणाली में कौन-सा चरण वास्तविक जीवन के उदाहरणों का उपयोग करता है?

a) हेतु
b) निगमन
c) प्रतिज्ञा
d) उदाहरण

Scanned with OKEN Scanner

94. प्राचीन भारत में शिक्षकों के नैतिक आचरण का एक प्रमुख तत्व क्या था?

a) अधिक शुल्क लेना

b) राजनीति में भाग लेना

c) आचरण से शिक्षा देने वाले आचार्य बनना

d) छात्रों से दूरी बनाना

95. शिक्षा के संदर्भ में 'श्रद्धा' शब्द का क्या तात्पर्य है?

a) आक्रामकता

b) संशय

c) आस्था या श्रद्धा

d) उदासीनता

96. न्याय दर्शन में कौन-सी त्रुटि (fallacy) चक्रीय तर्क को दर्शाती है?

a) अव्यभिचार

b) प्रकरणसम

c) विरुद्ध

d) कालातीत

97. न्याय में 'साध्यसम' शब्द का तात्पर्य किससे है?

a) अनियमित निष्कर्ष पर आधारित प्रमाद

b) प्रमाणित वैज्ञानिक दावा

c) असिद्ध प्रस्ताव

d) वाद का सारांश

98. वैशेषिक दर्शन में कौन-सा भौतिक द्रव्य तापमान के बिना केवल स्पर्श को प्रकट करता है?

a) आकाश

b) अग्नि

c) वायु

d) जल

Scanned with OKEN Scanner

99. भारतीय शिक्षा में 'विवेक' शब्द का क्या अर्थ है?

a) अनुष्ठानिक व्यवहार

b) वाद-विवाद कौशल

c) विवेकशीलता या भेद करने की क्षमता

d) अज्ञान

100. न्याय दर्शन में 'कालातीत' प्रमाद किस प्रकार की तर्क त्रुटि को दर्शाता है?

a) पुरानी या अप्रासंगिक तर्क

b) प्रस्तावों में विरोधाभास

c) प्रमाणित निष्कर्ष

d) उपमा का एक रूप

101. निम्नलिखित में से कौन-सा तत्व ज्ञान त्रिकोण का भाग नहीं है?

a) प्रामाता

b) प्रमेय

c) प्रमाण

d) प्रकृति

102. न्याय दर्शन में 'निगमन' शब्द का क्या तात्पर्य है?

a) निष्कर्ष को पुनः व्यक्त करना

b) विरोधी साक्ष्य प्रस्तुत करना

c) उदाहरण एकत्र करना

d) धारणाओं पर प्रश्न उठाना

103. पराविद्या और अपराविद्या में प्रमुख अंतर क्या है?

a) एक विदेशी है, एक स्वदेशी

b) परा उच्च ज्ञान है; अपरा निम्न, अनुभवात्मक ज्ञान

c) अपरा परा से श्रेष्ठ है

d) दोनों अनुष्ठानात्मक हैं

Scanned with OKEN Scanner

104. भारतीय दर्शन में 'तर्क' शब्द का क्या अर्थ है?

a) निष्क्रिय स्वीकृति

b) कविता पाठ

c) तर्क या वाद-विवाद

d) शारीरिक शक्ति

105. वैशेषिक दर्शन में 'आत्मा' किसे दर्शाता है?

a) सर्वोच्च देवता

b) अहंकार या घमंड

c) व्यक्ति की आत्मा या शुद्ध चेतना

d) मस्तिष्क

106. वेदांगों में से 'शिक्षा' का विषय क्या है?

a) ज्योतिष

b) युद्ध

c) ध्वनि और उच्चारण

d) पाक कला

107. न्याय दर्शन में प्रस्ताव की स्थापना सबसे पहले किससे होती है?

a) उदाहरण

b) हेतु

c) उपनय

d) निगमन

108. 'प्रमाण' शब्द का क्या अर्थ है?

a) जो सुना गया

b) आत्मा का सार

c) मान्य ज्ञान का साधन

d) अज्ञान का कारण

Scanned with OKEN Scanner

109. वैशेषिक में निम्नलिखित में से कौन-सा गुण मानसिक माना जाता है, न कि भौतिक?

a) ध्वनि
b) चिपचिपापन
c) संज्ञान
d) वेग

110. न्याय दर्शन के अनुसार वाद-विवाद में भाग लेने का अंतिम उद्देश्य क्या है?

a) प्रतिद्वंदी को भ्रमित करना
b) अपनी श्रेष्ठता दिखाना
c) तार्किक और परस्पर स्वीकृत निष्कर्ष तक पहुँचना
d) त्रुटियों से बचना

111. न्याय की तर्क प्रणाली में कौन-सा चरण प्रस्ताव की सार्वभौमिकता को दर्शाता है?

a) हेतु
b) उपनय
c) प्रतिज्ञा
d) निगमन

112. कौन-सी भारतीय परंपरा मानव (पिंड) को ब्रह्मांड (ब्रह्माण्ड) का प्रतिबिंब मानती है?

a) वेदांत
b) न्याय
c) सांख्य
d) सूक्ष्म-ब्रह्मांड उपमा

113. निम्नलिखित वेदांगों में से कौन-सा वैदिक छंदों की संरचना से संबंधित है?

a) छंद
b) शिक्षा
c) निरुक्त
d) कल्प

Scanned with OKEN Scanner

114. छह वेदांगों में 'कल्प' किस विषय से संबंधित है?

a) शब्द व्युत्पत्ति

b) अनुष्ठान प्रक्रिया

c) दर्शन

d) वाद-विवाद की रणनीति

115. निम्नलिखित में से कौन-सा उपवेद शासन, अर्थशास्त्र और प्रशासन पर केंद्रित है?

a) गंधर्ववेद

b) धनुर्वेद

c) आयुर्वेद

d) अर्थशास्त्र

116. भारतीय ज्ञानमीमांसा में जिज्ञासु (प्रमाता) के लिए उच्च सत्य को समझने के लिए क्या आवश्यक है?

a) धन

b) अहंकार और महत्वाकांक्षा

c) मानसिक स्पष्टता और अनुशासन

d) केवल अनुष्ठान

117. 'शब्द' को प्रमाण के रूप में क्यों मान्यता दी गई है?

a) यह अनुमान पर आधारित होता है

b) यह एक रूपक अवधारणा है

c) यह विश्वसनीय स्रोतों से प्राप्त वाचिक साक्ष्य है

d) यह अप्रत्यक्ष ज्ञान है

118. निम्न में से कौन-सी गुणवत्ता सामान्यतः सीमित पदार्थों से नहीं जुड़ी होती?

a) स्वाद

b) चिपचिपापन

c) संज्ञान

d) रंग

Scanned with OKEN Scanner

119. न्याय दर्शन की पाँच-चरणीय तर्क प्रक्रिया का उद्देश्य क्या है?

a) आध्यात्मिक विश्वास को मजबूत करना
b) शास्त्रों को याद करना
c) मान्य ज्ञान को व्यवस्थित रूप से स्थापित करना
d) अन्य दर्शनों का खंडन करना

120. वैशेषिक के अनुसार जब कोई बाहरी बल नहीं होता तो क्या होता है?

a) वस्तुएँ गुरुत्वाकर्षण के कारण गिरती हैं
b) वस्तुएँ यादृच्छिक रूप से चलती हैं
c) वस्तुएँ ऊपर की ओर तैरती हैं
d) वस्तुएँ तेजी से गति करती हैं

121. वैशेषिक दर्शन में 'त्र्यणुक' किसे दर्शाता है?

a) एक शाश्वत आत्मा
b) एकल कण
c) तीन अणुओं का समूह
d) आकाश का एक रूप

122. न्याय दर्शन में कौन-सी त्रुटि तब उत्पन्न होती है जब कोई प्रस्ताव प्रमाणित नहीं किया जा सकता?

a) विरुद्ध
b) प्रकरणसम
c) साध्यसम
d) कालातीत

123. प्राचीन भारतीय शिक्षा में 'ब्रह्मचर्य' का क्या अर्थ है?

a) विवाह अनुष्ठान
b) ब्रह्मचारी जीवन या अनुशासित जीवन
c) राजनीतिक प्रशिक्षण
d) कथा वाचन

Scanned with OKEN Scanner

124. तर्क (तर्कशास्त्र) का प्रयोग मुख्यतः किसके लिए किया जाता था?

a) पूजा

b) वाद-विवाद और तर्क

c) पाक तकनीक

d) स्मृति

125. वैशेषिक दर्शन में 'द्रव्य' शब्द का क्या अर्थ है?

a) अनुष्ठान प्रक्रिया

b) नैतिक नियम

c) पदार्थ

d) प्रमाद

126. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-से द्रव्य अनंत माने जाते हैं?

a) जल और अग्नि

b) वायु और पृथ्वी

c) आकाश और काल

d) मन और गंध

127. न्याय में ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को क्या कहते हैं?

a) प्रमेय

b) प्रामाता

c) प्रमाण

d) संशय

128. वैशेषिक में आकाश (Ether) की मुख्य विशेषता क्या है?

a) मूर्त और मापनीय

b) गंध का माध्यम

c) ध्वनि का माध्यम

d) स्वाद के लिए उत्तरदायी

Scanned with OKEN Scanner

129. कौन-सा प्रमाण उपमा या तुलना पर आधारित होता है?

a) अनुमान

b) शब्द

c) उपमान

d) प्रत्यक्ष

130. शिक्षा में गुरु दक्षिणा प्रणाली का क्या तात्पर्य था?

a) एक अनिवार्य शुल्क

b) धार्मिक अनुष्ठान

c) गुरु के प्रति आभार का प्रतीक

d) पाठ्यक्रम पूर्णता का प्रमाणपत्र

131. न्याय दर्शन में 'अव्यभिचार' किस प्रकार की त्रुटि को दर्शाता है?

a) तर्क में विरोधाभास

b) चक्रीय तर्क

c) असंगत या अनियमित निष्कर्ष

d) अप्रासंगिक संदर्भ

132. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सा मानसिक गुण है?

a) वेग

b) स्पर्श

c) इच्छा

d) चिपचिपापन

133. न्याय के अनुसार, वह ज्ञान जो वास्तविकता से मेल खाता है, क्या कहलाता है?

a) अविद्या

b) अमान्य ज्ञान

c) मान्य ज्ञान

d) तुलनात्मक ज्ञान

Scanned with OKEN Scanner

134. वैशेषिक ज्ञान प्रक्रिया में 'लक्षण' की भूमिका क्या है?

a) अनुष्ठानों का वर्गीकरण

b) वस्तुओं के विशिष्ट गुणों की परिभाषा

c) वाद-विवाद की तकनीक

d) ध्वनि का प्रसारण

135. भारतीय दर्शन में स्मृति और प्रत्यक्ष के बीच मुख्य अंतर क्या है?

a) स्मृति प्रत्यक्ष होती है; प्रत्यक्ष परोक्ष

b) दोनों समान रूप से मान्य हैं

c) स्मृति अप्रत्यक्ष और अमान्य मानी जाती है; प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष और मान्य

d) स्मृति अधिक सटीक होती है

136. वैशेषिक दर्शन में 'उद्देश' शब्द का क्या तात्पर्य है?

a) वाचिक साक्ष्य देना

b) उपमाएँ प्रस्तुत करना

c) वास्तविकता का वर्गीकरण और गणना

d) भावनात्मक स्थितियों का वर्णन

137. वैशेषिक दर्शन में 'विशेष' का क्या अर्थ है?

a) वस्तुओं के साझा गुण

b) प्रत्येक पदार्थ को अलग पहचान देने वाला गुण

c) एक प्रकार की तार्किक त्रुटि

d) एक खगोलीय वस्तु

138. निम्नलिखित में से कौन-सी प्राचीन भारतीय संस्था अंतरराष्ट्रीय ख्याति और विशाल शैक्षणिक संरचना के लिए जानी जाती थी?

a) नालंदा

b) अयोध्या

c) हस्तिनापुर

d) कुरुक्षेत्र

Scanned with OKEN Scanner

139. गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा का केंद्रीय तत्व क्या था?

a) पुस्तकों से स्वाध्याय

b) बार-बार लिखित परीक्षा

c) गुरु के साथ निवास कर अनुभव आधारित अध्ययन

d) कंप्यूटर से स्मरण

140. वैशेषिक दर्शन में निम्नलिखित में से कौन-सी 'कर्म' (क्रिया) का रूप है?

a) ध्वनि

b) संकोचन

c) स्वाद

d) संस्कार

141. न्याय दर्शन में जब ज्ञात गुणों से समानता के कारण स्पष्टता नहीं होती, तो उस स्थिति को क्या कहते हैं?

a) प्रमाण

b) प्रमेय

c) संशय

d) उपमान

142. निम्न में से कौन-सा न्याय दर्शन में मान्य प्रमाण (प्रमाण) का उदाहरण नहीं है?

a) प्रत्यक्ष

b) अनुमान

c) उपमान

d) संस्कार

143. वैशेषिक दर्शन किस प्रकार के चिंतन पर केंद्रित है?

a) भक्ति द्वारा मुक्ति

b) प्रत्यक्ष अनुभव का तर्क विश्लेषण

c) भौतिक वास्तविकता का अस्तित्वमीमांसात्मक वर्गीकरण

d) अनुष्ठानों का निष्पादन

Scanned with OKEN Scanner

144. वेदांगों में से 'छंद' क्या सिखाता है?

a) ग्रहों की गति

b) अनुष्ठानिक आचरण

c) वैदिक छंद और लय

d) व्याकरण के नियम

145. 'निरुक्त' मुख्यतः किससे संबंधित है?

a) राजनीतिक दर्शन

b) शब्दों की परिभाषा और व्युत्पत्ति

c) युद्धनीति

d) संगीत शास्त्र

146. कौन-सी अवधारणा बताती है कि ज्ञान ब्रह्मांड से मेल खाने की एक पवित्र प्रक्रिया है?

a) प्रमाण

b) ज्ञान

c) संस्कार

d) वाद

147. प्राचीन भारत में खगोलशास्त्र (ज्योतिष) को शिक्षा में किस रूप में देखा गया?

a) केवल ज्योतिष की एक शाखा

b) एक रहस्यमय परंपरा

c) ब्रह्मांडीय व्यवस्था पर आधारित विज्ञान

d) समाज के लिए अप्रासंगिक

148. न्याय और वैशेषिक दर्शन में मुख्य अंतर क्या है?

a) एक अनुष्ठानों पर केंद्रित है, दूसरा नैतिकता पर

b) न्याय वैशेषिक से प्राचीन है

c) न्याय तर्क पर केंद्रित है; वैशेषिक वास्तविकता की श्रेणी पर

d) दोनों एक जैसे हैं

Scanned with OKEN Scanner

149. न्याय में कौन-सा चरण "सेब पेड़ से गिरता है" जैसे उदाहरण प्रस्तुत करता है?

a) हेतु

b) प्रतिज्ञा

c) उपनय

d) उदाहरण

150. न्याय दर्शन में किस प्रकार की त्रुटि तब उत्पन्न होती है जब तर्क के निष्कर्ष परस्पर विरोधी होते हैं?

a) अव्यभिचार

b) साध्यसम

c) विरुद्ध

d) कालातीत

Scanned with OKEN Scanner

उत्तर-दर्शिका

Q. No	Ans	Q. No	Ans	Q. No	Ans
1	a	2	c	3	c
4	b	5	c	6	c
7	b	8	c	9	d
10	b	11	b	12	c
13	b	14	b	15	c
16	b	17	a	18	b
19	a	20	d	21	c
22	c	23	c	24	c
25	b	26	c	27	b
28	a	29	c	30	b
31	b	32	c	33	b
34	c	35	b	36	b
37	c	38	a	39	c
40	a	41	a	42	b
43	a	44	c	45	c
46	a	47	b	48	c
49	b	50	b	51	c
52	c	53	c	54	c
55	b	56	b	57	a
58	a	59	b	60	c
61	b	62	b	63	b
64	a	65	a	66	a
67	b	68	b	69	d

Scanned with OKEN Scanner

Q. No	Ans	Q. No	Ans	Q. No	Ans
70	c	71	c	72	d
73	c	74	c	75	c
76	c	77	c	78	b
79	c	80	c	81	c
82	d	83	c	84	b
85	c	86	c	87	c
88	b	89	c	90	c
91	b	92	b	93	d
94	c	95	c	96	b
97	c	98	c	99	c
100	a	101	d	102	a
103	b	104	c	105	c
106	c	107	b	108	c
109	c	110	c	111	b
112	d	113	a	114	b
115	d	116	c	117	c
118	c	119	c	120	a
121	c	122	c	123	b
124	b	125	c	126	c
127	b	128	c	129	c
130	c	131	c	132	c
133	c	134	b	135	c
136	c	137	b	138	a
139	c	140	b	141	c
142	d	143	c	144	c
145	b	146	b	147	c
148	c	149	d	150	c

Scanned with OKEN Scanner



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

Scanned with OKEN Scanner

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

Scanned with OKEN Scanner

भारतीय भाषा विज्ञान

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

Scanned with OKEN Scanner

Scanned with OKEN Scanner

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **भारतीय भाषा विज्ञान**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. मीनाक्षी शर्मा

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-10-9

मूल्य : 240/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
पटपड़ गंज, नई दिल्ली

Scanned with OKEN Scanner

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

Scanned with OKEN Scanner

विषय सूची

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1.	परिचय: प्राचीन भारत में भाषाविज्ञान	13
2.	वैदिक भाषाविज्ञान	17
3.	पाणिनि पूर्व भाषाई विचार	21
4.	पाणिनि की अष्टाध्यायी – शास्त्रीय भाषाविज्ञान का आधार	26
5.	पाणिनि के बाद की भाषाविज्ञान	30
6.	मध्यकालीन भारत में भाषाई और दार्शनिक सिद्धांत	35
7.	भारतीय तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा में भाषा	38
8.	भाषाई धरोहर और अन्य संस्कृतियों में उसका प्रसार	40
9.	प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण और संस्कृत की भूमिका	43
10.	सारांश	47
	सुझावात्मक पठनीय सामग्री	48
	बहुविकल्पीय प्रश्न	49
	उत्तर दर्शिका	79

Scanned with OKEN Scanner

There is no language in the world, even Greek, which has the clarity and the philosophical precision of Sanskrit, and this great India is not only at the origin of everything, She is superior in everything, intellectually, religiously or politically and even the Greek heritage seems pale in comparison.

Source: Arise, O India-by Francois Gautier

Friedrich von Schlegel



"German writer, critic, philosopher, philologist, and the most prominent founder of 'German Romanticism', and pioneer in comparative Indo-European linguistics and philology, he published revolutionary work on the 'Language and Wisdom of the Indians' that greatly inspired renowned linguists like Franz Bopp, August Schlegel, Max Muller, Michel Breal, Ferdinand de Saussure, Leonard Bloomfield, Roman Jakobson, Frits Staal. Schlegel was also the founder of Indo-European studies and comparative linguistics.

While in the classical world scholars were dealing with language in a somewhat metaphysical way, the Indians were telling us what their language actually was, how it worked, and how it was put together. The methods and techniques for describing the structure of Sanskrit which we find in Panini have not been substantially bettered to this day in modern linguistic theory and practice. We today employ many devices in describing languages that were already known to Panini's first two commentators. The concept of "zero" which in mathematics is attributed to India, finds its place also in linguistics.

Source: Thulitional India-edited by O. L. Chanerria-Aguilar refer to chapter on Grammar-By Leonard Bloomfield Hall

Leonard Bloomfield



Great American linguist and author, made significant contributions to Indo-European historical linguistics, developed structural linguistics. He was highly impressed by the Sanskrit language, for its scientific precision and exquisite refinement. Language was his most renowned work.

प्रस्तावना

श्रृंखला भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता में नि
करती है। यह वेदों, उपनिषदों और अन्य पूज्य ग्रंथों की
विचारों की पड़ताल करती है, जिन्होंने भारत में व्यक्तियों
हजारों वर्षों से आकार दिया है। भारतीय संस्कृति, अपने
का संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक समग्र प्रणाली है जो व्य
आध्यात्मिक उन्नति और अंतिम लक्ष्य मोक्ष (मुक्ति) की

प्राचीन भारतीय दार्शनिक प्रणाली दुनिया की सब
परंपराओं में से एक है। यह एक सांस्कृतिक और आध्य
जो सहस्राब्दियों से फैली हुई है, और भारतीय दर्शन एव
जटिल विचारों, अवधारणाओं और प्रथाओं का बुनाव
आज भी मानव विचार और अनुभव के रूपों को आक
भगवद गीता तक, बुद्ध के उपदेशों से लेकर वेदांत औ
भारतीय ग्रंथों में पाया गया दार्शनिक ज्ञान हमें वास्तविक
स्वभाव को समझने के लिए एक अद्वितीय दृष्टिकोण प्र

यह पुस्तक आपको प्राचीन भारत की मुख्य द
एक यात्रा पर ले जाने का प्रयास करती है, उनके ऐति
स्थायी प्रासंगिकता का अन्वेषण करती है। विचारधार
योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक और मीमांसा , प्रत्येक ह
को समझने के अलग-अलग तरीके प्रस्तुत करते हैं।
अभ्यास और आध्यात्मिक आकांक्षाओं से जुड़ी हो
करती हैं, बल्कि यह जीवन जीने के लिए व्यावहारि

इस कार्य का उद्देश्य केवल विभिन्न स्कूलों
करना नहीं है, बल्कि उन दार्शनिक प्रश्नों में गहराई से

Scanned with OKEN Scanner

प्रस्तावना



श्रृंखला भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता में निहित गहरी ज्ञान को अन्वेषण करती है। यह वेदों, उपनिषदों और अन्य पूज्य ग्रंथों की शाश्वत शिक्षाओं में निहित विचारों की पड़ताल करती है, जिन्होंने भारत में व्यक्तियों और समुदायों के जीवन को हजारों वर्षों से आकार दिया है। भारतीय संस्कृति, अपने सार में, केवल एक अनुष्ठान का संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक समग्र प्रणाली है जो व्यक्तियों को व्यक्तिगत विकास, आध्यात्मिक उन्नति और अंतिम लक्ष्य मोक्ष (मुक्ति) की ओर मार्गदर्शन करती है।

प्राचीन भारतीय दार्शनिक प्रणाली दुनिया की सबसे गहरी और विविध बौद्धिक परंपराओं में से एक है। यह एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरोहर पर आधारित है, जो सहस्राब्दियों से फैली हुई है, और भारतीय दर्शन एक ऐसे चटाई की तरह है, जिसमें जटिल विचारों, अवधारणाओं और प्रथाओं का बुनाव किया गया है, जिनमें से प्रत्येक आज भी मानव विचार और अनुभव के रूपों को आकार दे रहा है। उपनिषदों से लेकर भगवद गीता तक, बुद्ध के उपदेशों से लेकर वेदांत और न्याय के स्कूलों तक, प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पाया गया दार्शनिक ज्ञान हमें वास्तविकता, आत्मा, ज्ञान और ब्रह्मांड के स्वभाव को समझने के लिए एक अद्वितीय दृष्टिकोण प्रदान करता है।

यह पुस्तक आपको प्राचीन भारत की मुख्य दार्शनिक प्रणालियों के माध्यम से एक यात्रा पर ले जाने का प्रयास करती है, उनके ऐतिहासिक जड़ें, दार्शनिक तर्क और स्थायी प्रासंगिकता का अन्वेषण करती है। विचारधाराओं के विविध स्कूल, जैसे वेदांत, योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक और मीमांसा , प्रत्येक हमें दुनिया और उसमें हमारी स्थिति को समझने के अलग-अलग तरीके प्रस्तुत करते हैं। ये प्रणालियाँ, जो अक्सर धार्मिक अभ्यास और आध्यात्मिक आकांक्षाओं से जुड़ी होती हैं, न केवल बौद्धिक ढांचे प्रदान करती हैं, बल्कि यह जीवन जीने के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन भी प्रदान करती हैं।

इस कार्य का उद्देश्य केवल विभिन्न स्कूलों और उनके सिद्धांतों को सूचीबद्ध करना नहीं है, बल्कि उन दार्शनिक प्रश्नों में गहराई से उतरना है जिन्होंने भारतीय विश्वदृष्टि

Scanned with OKEN Scanner

को आकार दिया है। ज्ञान की खोज, आत्मा की तलाश, अंतिम वास्तविकता का प्रश्न और व्यक्ति और ब्रह्मांड के बीच संबंध—ये वे शाश्वत मुद्दे हैं जिनका भारतीय दार्शनिकों ने अपनी रचनाओं में समाधान किया है। जैसे ही हम इन अवधारणाओं की खोज करते हैं, यह महत्वपूर्ण है कि हम भारतीय दर्शन में विचार और जीवन के बीच गहरे आपसी संबंध को पहचानें। दर्शन एक अमूर्त या केवल सैद्धांतिक प्रयास नहीं था; यह और आज भी दैनिक जीवन और आध्यात्मिक अभ्यास का अभिन्न हिस्सा है।

Scanned with OKEN Scanner

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

Scanned with OKEN Scanner

भारतीय भाषा विज्ञान

1. परिचय: प्राचीन भारत में भाषाविज्ञान

1.1 भाषा: भारतीय ज्ञान प्रणालियों की नींव

प्राचीन भारत में भाषाविज्ञान एक स्वतंत्र बौद्धिक प्रयास नहीं था; बल्कि यह आध्यात्मिक, दार्शनिक और शैक्षिक परंपराओं के ताने-बाने में गहरे तरीके से बुना हुआ था। भाषा को न केवल संचार का एक साधन माना जाता था, बल्कि इसे रूपात्मक अन्वेषण और आध्यात्मिक आत्मसाक्षात्कार का एक माध्यम भी माना जाता था। प्राचीन भारतीय विश्वदृष्टि यह मानती थी कि ध्वनि (शब्द) एक सृजनात्मक शक्ति है—जो स्वयं ब्रह्मांड में अंतर्निहित है। वेदों की ब्रह्मांडविज्ञान में, ब्रह्मांड की उत्पत्ति ध्वनि से मानी जाती थी, और इस प्रकार भाषाई घटनाओं को भौतिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की महत्वपूर्णता के रूप में माना जाता था।

इस नींव से, प्राचीन भारतीय विद्वानों ने भाषा की सटीकता पर विशेष जोर दिया, चाहे वह बोली गई हो या लिखी गई हो। भाषा का अध्ययन विभिन्न ज्ञान क्षेत्रों में केंद्रीय बन गया, जिसमें अनुष्ठान (कर्मकांड), दार्शनिक सत्य की खोज (ज्ञानकांड), और पवित्र ग्रंथों की व्याख्या शामिल थी। भाषाई विश्लेषण को वेदों के आदेशों को सही ढंग से समझने और लागू करने के लिए आवश्यक माना जाता था, जिन्हें ब्रह्मांडीय व्यवस्था बनाए रखने के लिए माना जाता था।

1.2 वेदांग व्याकरण

भारतीय बौद्धिक इतिहास की एक विशेष विशेषता यह है कि भाषाविज्ञान को एक औपचारिक अनुशासन के रूप में जल्दी ही संस्थागत रूप दिया गया। वैदिक परंपरा में, छह सहायक शास्त्रों को वेदांग कहा गया, जो वेदों के अध्ययन और संरक्षण में सहायक

Scanned with OKEN Scanner

थे। इन छह में से व्याकरण (व्याकरण) को सबसे महत्वपूर्ण माना गया। क्योंकि वेदों को शताब्दियों तक मौखिक रूप से प्रेषित किया गया, इसलिए सही उच्चारण, वाक्य संरचना और व्याकरणिक सटीकता आवश्यक थी ताकि उनका सही ढंग से प्रसारण किया जा सके।

प्रत्येक वेदांग का एक विशिष्ट कार्य था:

- **शिक्षा (ध्वन्यात्मकता):** उच्चारण और ध्वनि पर ध्यान केंद्रित करता था।
- **छंद (छंदशास्त्र):** लय से संबंधित था।
- **व्याकरण (व्याकरण):** शब्द निर्माण और वाक्य निर्माण का विश्लेषण करता था।
- **निरुक्त (व्युत्पत्ति):** अस्पष्ट शब्दों के अर्थ और व्युत्पत्ति की व्याख्या करता था।
- **कल्प (कर्मकांड):** अनुष्ठान प्रदर्शन के लिए दिशानिर्देश प्रदान करता था।
- **ज्योतिष (खगोलशास्त्र):** अनुष्ठानों के लिए समय को नियंत्रित करता था।

इनमें से, व्याकरण को एक अद्वितीय स्थिति प्राप्त थी क्योंकि यह अन्य सभी शास्त्रों के लिए द्वार के रूप में कार्य करता था। बिना व्याकरण में निपुण हुए, एक छात्र वेदों के मंत्रों को सही तरीके से समझने या दार्शनिक बहसों में भाग लेने में सक्षम नहीं हो सकता था।

1.3 भाषा और पवित्र ग्रंथ: वेद

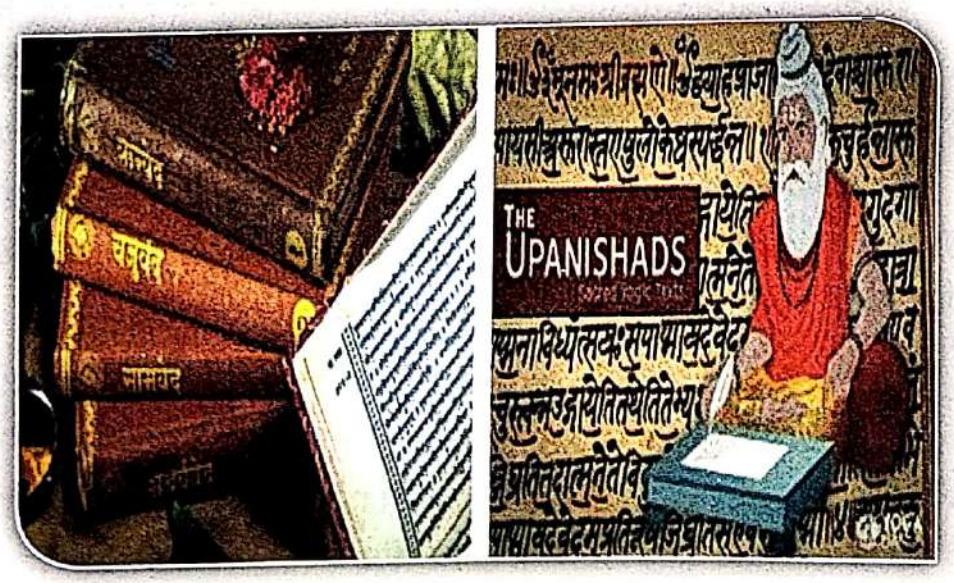

Source: https://realhappiness.org/blog/what-are-vedas.php, https://www.yogabasics.com/learn/upanishads

Scanned with OKEN Scanner

भारत में सबसे प्रारंभिक भाषाई गतिविधि वेदों से जुड़ी हुई है, जो एक ज्ञान का संचयन है, जिसे 1500 ईसा पूर्व से लेकर 500 ईसा पूर्व तक प्राचीन संस्कृत में संकलित किया गया। ये ग्रंथ—मुख्य रूप से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—अद्वितीय सावधानी के साथ मौखिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित किए गए थे। यह उपलब्धि एक जटिल प्रणाली द्वारा संभव हुई थी, जिसमें विशेष रूप से प्रशिक्षित पुजारी, जिन्हें श्रोत्रिय कहा जाता था, ने पीढ़ी दर पीढ़ी स्मरण और ध्वन्यात्मक सटीकता का पालन किया।

क्योंकि वेद मंत्रों का अर्थ सही उच्चारण पर निर्भर माना जाता था, वैदिक परंपरा ने औपचारिक भाषाविज्ञान सिद्धांत के जन्म से पहले ही अत्यधिक उन्नत ध्वन्यात्मक जागरूकता विकसित की थी। जैसे पदपाठ (शब्द दर शब्द उच्चारण) और क्रमपाठ (चरण दर चरण उच्चारण) जैसी तकनीकों ने इन मौखिक ग्रंथों की भाषाई अखंडता सुनिश्चित की। इस प्रणाली को समर्थन देने के लिए, प्रारंभिक विद्वानों ने भाषण के घटकों का विश्लेषण करना शुरू किया, जिसमें ध्वनियाँ (वर्ण), स्वर (अक्षर), और शब्द संयोजन (समास) शामिल थे। इस प्रोटो-भाषाई (*proto-linguistic*) जागरूकता ने बाद में व्याकरण और ध्वन्यात्मकता के विकास का आधार तैयार किया।

1.4 संस्कृत का केंद्रीय स्थान

प्राचीन भारतीय भाषाविज्ञान का केंद्र बिंदु संस्कृत था, जो प्राचीन भारत की पवित्र और शैक्षिक भाषा थी। संस्कृत (शाब्दिक अर्थ "परिष्कृत" या "अच्छी तरह से निर्मित") एक स्थानीय भाषा नहीं थी, बल्कि यह एक अत्यधिक संहिताबद्ध माध्यम था जिसका उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों, शैक्षिक संवाद और साहित्यिक रचनाओं के लिए किया जाता था। समय के साथ, यह बौद्धिक संवाद का मानक बन गया और गणित, चिकित्सा, खगोलशास्त्र, संगीत और दर्शन जैसे विविध क्षेत्रों में इसका उपयोग हुआ।

संस्कृत व्याकरण की जटिलता और नियमितता ने इसे विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए एक आदर्श विषय बना दिया। प्रारंभिक व्याकरणज्ञों ने यह पहचाना कि भाषा को नियंत्रित करने वाले नियमों का व्यवस्थित रूप से वर्णन किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप पाणिनि जैसे औपचारिक व्याकरण प्रणालियाँ विकसित हुईं, जिनका काम प्राचीन भारतीय भाषाविज्ञान विचारधारा की चोटी का प्रतिनिधित्व करता है।

Scanned with OKEN Scanner

1.5 एक अंतरविभागीय परंपरा

भारतीय भाषाविज्ञान की एक और विशिष्ट विशेषता इसकी अंतरविभागीय प्रकृति है। भाषा का अध्ययन अलग से नहीं किया गया था, बल्कि इसे अन्य ज्ञान शाखाओं, विशेष रूप से दर्शन (दर्शन) और तर्कशास्त्र (न्याय) के साथ जोड़ा गया था। उदाहरण के लिए, मीमांसा विद्यालय वेदों के ग्रंथों की सही व्याख्या पर ध्यान केंद्रित करता था, जिसमें पवित्र आदेशों में अस्पष्टताओं को दूर करने के लिए भाषाई विश्लेषण का उपयोग किया जाता था। न्याय विद्यालय ने तर्कसंगत बहस और ज्ञानमीमांसा में भाषा के सही उपयोग पर बल दिया। इस आपसी संबंध ने अर्थ, भाषाई सार्वभौमिकता की स्थिति और शब्दों और वस्तुओं के बीच संबंध पर जटिल चर्चाओं को जन्म दिया। ये बहसें पश्चिमी भाषा दर्शन में बाद में चर्चा किए गए कई मुद्दों की पूर्वानुमान थीं, जैसे संदर्भ, उद्देश्य और वाक्य-विधान-सेमांटिक्स संबंध।

1.6 भाषा और तत्वमीमांसा: शब्द ब्रह्म का सिद्धांत

उपनिषदों और बाद के वेदांतिक विचार में तत्वमीमांसा के ढांचे में, भाषा को ब्रह्म के साथ पहचाना गया, जो अंतिम वास्तविकता है। शब्द ब्रह्म (ध्वनि को साकार रूप में) का सिद्धांत यह विचार व्यक्त करता है कि ब्रह्मांड ध्वनि से बना और सशक्त है। यह विचार भाषा को एक ब्रह्मांडीय सिद्धांत में स्थान देता है, इसे दिव्य के समान मानते हुए।

उदाहरण के लिए, माण्डूक्य उपनिषद " ॐ " शब्द को सभी भाषणों का सार और संपूर्ण अस्तित्व के रूप में व्याख्यायित करता है। इसी प्रकार, तांत्रिक परंपरा मंत्रों (पवित्र उच्चारणों) को दिव्य शक्ति की कंपनात्मक अभिव्यक्तियाँ मानती है। दोनों मामलों में, भाषाई रूपों को आध्यात्मिक जागरण और आत्म-साक्षात्कार के उपकरण के रूप में देखा जाता है।

1.7 धरोहर और वैश्विक पहचान

प्राचीन भारत का भाषाविज्ञान में योगदान पश्चिम में 18वीं और 19वीं सदी तक अपेक्षाकृत अज्ञात था, जब यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन करना शुरू किया। पाणिनि के व्याकरण की खोज ने पश्चिमी भाषाविज्ञानियों को चकित कर दिया, जिन्होंने इसे शास्त्रीय दुनिया में अनुपम उपलब्धि के रूप में पहचाना। प्रसिद्ध विद्वान जैसे फर्डिनेंड डी सॉसूर, लियोनार्ड ब्लूमफील्ड, और नोआम चॉम्स्की ने बाद में इसके प्रभाव को स्वीकार किया, विशेष रूप से संरचनात्मक और उत्पत्ति व्याकरणों के विकास में।

Scanned with OKEN Scanner

आज, प्राचीन भारतीय भाषाविज्ञान को दुनिया में भाषा अध्ययन की सबसे प्रारंभिक और उन्नत परंपराओं में से एक के रूप में पहचाना जाता है। इसकी सटीकता, व्यापकता और दार्शनिक गहराई आज भी भाषाविज्ञान, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और संज्ञानात्मक विज्ञान के शोधकर्ताओं को प्रेरित करती है।

2. वैदिक भाषाविज्ञान

2.1 वेद: भाषा और ज्ञान की नींव

वेद हिंदू धर्म के सबसे पुराने पवित्र ग्रंथ हैं और प्राचीन भारत के सबसे प्रारंभिक ज्ञात भाषाई दस्तावेज़ हैं। लगभग 1500 ईसा पूर्व और 500 ईसा पूर्व के बीच संकलित किए गए, वेदों में चार मुख्य संग्रह शामिल हैं:

- ऋग्वेद
- यजुर्वेद
- सामवेद
- अथर्ववेद

प्रत्येक वेद में मंत्र, स्तोत्र और अनुष्ठान शामिल हैं, जो पीढ़ियों तक मौखिक रूप से संप्रेषित होते रहे, इससे पहले कि उन्हें शास्त्रीय संस्कृत में लिपिबद्ध किया गया। वेदों की भाषा – जिसे सामान्यतः वैदिक संस्कृत कहा जाता है – संस्कृत का एक प्राचीन और अधिक जटिल रूप है, जो बाद के कालों में दिखाई देने वाले संस्कृत से भिन्न है। वेदों के संकलन में भाषा का महत्व अत्यधिक है। वैदिक दृष्टिकोण में, भाषण न केवल संचार का एक साधन था, बल्कि एक सृजनात्मक शक्ति भी था। यह विश्वास "शब्द ब्रह्म" की अवधारणा का आधार बनाता है—ध्वनि या शब्द को अंतिम वास्तविकता के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार, भाषाई सटीकता, ध्वन्यात्मक स्पष्टता, और शब्दों का अनुष्ठानिक उपयोग अत्यंत महत्वपूर्ण थे।

2.2 मौखिक परंपरा और ध्वनि की भूमिका

मौखिक परंपरा ने वेदों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चूँकि प्रारंभिक वैदिक काल में लेखन प्रणाली या तो विकसित नहीं थी या पवित्र ग्रंथों के लिए उपयोग में नहीं लाई जाती थी, इसलिए सटीक स्मरण और मौखिक प्रसारण आवश्यक थे। इसके

Scanned with OKEN Scanner

परिणामस्वरूप ध्वन्यात्मकता, उच्चारण, और लय पर विशेष ध्यान देने की संस्कृति विकसित हुई।

इस प्रक्रिया को सहायता प्रदान करने के लिए, वैदिक पाठ का उच्चारण एक अत्यधिक अनुशासित विज्ञान के रूप में विकसित किया गया, जिसे 'शिक्षा' ग्रंथों में उल्लिखित ध्वन्यात्मक नियमों द्वारा मार्गदर्शन किया जाता था, जो छह वेदांगों (सहायक शास्त्रों) में से एक है। शिक्षा प्रणाली में शामिल थे:

- उच्चारण – प्रत्येक ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है।
- अवधि (मात्रा) – ध्वनियों की लंबाई।
- स्वर (स्वर) – उच्चारण का उतार-चढ़ाव।
- श्वास नियंत्रण (प्राण) – उच्चारण करते समय श्वास की सही प्रक्रिया।

पाठकों को वैदिक ग्रंथों के पुनः उच्चारण के विभिन्न तरीकों में प्रशिक्षित किया जाता था, जैसे:

- पदपाठ – वाक्यों को व्यक्तिगत शब्दों में विभाजित करना।
- क्रमपाठ – शब्दों को जोड़कर लयात्मक निरंतरता के लिए उच्चारण।
- जटपाठ और घनपाठ – सही प्रसारण सुनिश्चित करने के लिए जटिल संयोजन।

इन विधियों ने त्रुटियों के लिए शून्य सहिष्णुता सुनिश्चित की, प्रत्येक स्वर को पवित्र और प्रभावशाली माना गया।

2.3 वेदों की भाषा: वैदिक संस्कृत

वेदों की भाषा—जिसे आज वैदिक संस्कृत कहा जाता है—कई महत्वपूर्ण तरीकों से शास्त्रीय संस्कृत से भिन्न है:

- **ध्वन्यविज्ञान:** वैदिक संस्कृत में ऐसे पुराने ध्वनियाँ हैं जो शास्त्रीय संस्कृत में नहीं पाई जातीं (जैसे, तीन उच्चारण उच्चारण: उदात्त (उच्च), अनुदात्त (निम्न), स्वरित (गिरता हुआ))।
- **शब्दावली:** इसमें कई प्राचीन और संदर्भ-विशिष्ट शब्द हैं, जिनमें से कई बाद में अस्पष्ट हो गए।
- **व्याकरण:** अधिक लचीला वाक्य संरचना, क्रिया पूर्वसर्गों का उपयोग, और संयुक्त रूपों का व्यापक उपयोग।

Scanned with OKEN Scanner

- **रूपविज्ञान:** वैदिक ग्रंथों में क्रियात्मक रूप और संज्ञा होते हैं जो बाद में अप्रचलित हो गए।

इन जटिलताओं के कारण, बाद के विद्वानों को वेदों को समझने में अधिक कठिनाई हुई, जिससे निरुक्त (व्युत्पत्ति) और व्याकरण (व्याकरण) जैसे अनुशासनों का जन्म हुआ।

2.4 वैदिक ग्रंथों में प्रारंभिक भाषाई जागरूकता

वैदिक ऋषि भाषा को एक ऐसा घटना के रूप में पहचानते थे, जिस पर विचार करना आवश्यक था। ऋग्वेद में, मंत्र अक्सर भाषण (वाच) की सराहना करते हैं, जिसे एक दिव्य सत्ता के रूप में देखा जाता है। उदाहरण के लिए:

"वाचं अस्ताम् नः... वाचं उत्तमाम्..."
हमारे पास भाषण आए... सर्वोत्तम भाषण।

ऋग्वेद का पुरुष सूक्त ब्रह्मांड की उत्पत्ति का वर्णन करता है, जहाँ भाषण (वाच) ब्रह्मांडीय पुरुष से उत्पन्न होता है। यह रूपक भाषा को सृजनात्मक और दिव्य के रूप में गहरे दार्शनिक समझ को व्यक्त करता है। **बृहदारण्यक** उपनिषद में, जो एक प्रारंभिक उपनिषद है, नाम और रूप के बीच संबंध का दार्शनिक रूप से परीक्षण किया जाता है। यह प्रस्तावित करता है कि नाम केवल मनमाने लेबल (*Label*) नहीं होते, बल्कि वे वस्तु का सार व्यक्त करते हैं, जो एक प्रोटो-सेमांटिक सिद्धांत को परिलक्षित करता है।

2.5 वैदिक उपभाषाशास्त्र: श्रेणियाँ और वर्गीकरण

हालाँकि पाणिनी के समय तक औपचारिक व्याकरण को संहिताबद्ध नहीं किया गया था, वैदिक विद्वानों ने पहले ही भाषाई तत्वों का वर्गीकरण करना शुरू कर दिया था:

- संज्ञा, क्रिया और उपसर्गों का विभेदन।
- प्रातिपदिक (संज्ञा मूल), धातु (मूल), और कारक (वाक्य संरचनात्मक भूमिका) जैसे शब्दों का उपयोग।
- संधि (ध्वन्यात्मक संयोजन) की पहचान, जो शब्दों के सीमाओं पर ध्वनियों को जोड़ता है।
- इन निरीक्षणों ने बाद में पाणिनि के व्याकरण का आधार बनाया, लेकिन इनकी जड़ें वैदिक चेतना में गहरी हैं। वैदिक ग्रंथों ने न केवल जटिल भाषाई

Scanned with OKEN Scanner

संरचनाओं का उपयोग किया बल्कि इन पर विचार भी किया, जिससे प्रारंभिक मेटालिंग्विस्टिक जागरूकता प्रकट होती है।

2.6 वेदांगों का उदय

वेदों की जटिलता और प्राचीनता ने अध्ययन और प्रसारण के लिए शैक्षिक ढाँचों की आवश्यकता को जन्म दिया। इस कारण से छह वेदांगों का निर्माण हुआ, जिनमें से तीन सीधे तौर पर भाषाई प्रकृति के थे:

- **शिक्षा** – ध्वन्यात्मकता और उच्चारण।
- **व्याकरण** – पाणिनी द्वारा बाद में संहिताबद्ध।
- **निरुक्त** – व्युत्पत्ति और व्याख्या।

इन वेदांगों ने शैक्षिक और दार्शनिक कार्य किया, जिससे छात्रों और शिक्षकों को पवित्र ग्रंथों की रूप और सामग्री दोनों में विश्लेषण और व्याख्या करने में मदद मिली। प्रत्येक अनुशासन ने वैदिक विद्या के भाषाई पारिस्थितिकी तंत्र को समृद्ध किया और भारत की अत्यधिक संहिताबद्ध व्याकरणिक परंपरा की नींव रखी।

2.7 भाषाई परंपराओं पर प्रभाव

वैदिक काल में ध्वन्यात्मक सटीकता, मेटालिंग्विस्टिक विचार, और व्याकरणिक जागरूकता का स्थायी प्रभाव पड़ा:

- शिक्षा के औपचारिककरण ने ध्वन्यविज्ञान में उन्नति की।
- निरुक्त ने अर्थ और व्युत्पत्ति में रुचि उत्पन्न की।
- व्याकरण पाणिनी और अन्य विद्वानों के तहत एक पूर्ण विज्ञान के रूप में परिपक्व हुआ।

इसके अतिरिक्त, इन प्रथाओं ने केवल धार्मिक अध्ययन ही नहीं, बल्कि तर्कशास्त्र (न्याय), कर्मकांड विज्ञान (मीमांसा), और रूपवाद (वेदांत) पर भी प्रभाव डाला। इस प्रकार, वैदिक भाषाविज्ञान को भारतीय बौद्धिक संस्कृति के बीज के रूप में देखा जा सकता है, जिससे कई अन्य अनुशासन विकसित हुए।

Scanned with OKEN Scanner

3. पाणिनि पूर्व भाषाई विचार

3.1 पाणिनि से पूर्व भाषाई वातावरण

जबकि पाणिनि को उनके अद्वितीय और व्यवस्थित व्याकरण (**अष्टाध्यायी**) के लिए भाषाविज्ञान का जनक माना जाता है, वे बौद्धिक निर्वात में उत्पन्न नहीं हुए थे। भारतीय भाषाई विचार पहले ही पाणिनि से कई शताब्दियाँ पूर्व में मजबूत विश्लेषणात्मक प्रवृत्तियाँ विकसित कर चुका था। यह पूर्वकाल–जिसे पाणिनि से पूर्व काल कहा जाता है–निरुक्त (व्युत्पत्ति), ध्वन्यात्मक टिप्पणियों और भाषाई तत्वों का प्रारंभिक वर्गीकरण के उदय द्वारा चिह्नित था।



Source: https://tamilandvedas.com


Source: https://sreenivasaraos.com

इस समय के दौरान भाषाई विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य व्याख्यात्मक था—वेदों को समझना और उनका व्याख्यान करना। प्राचीन विद्वानों ने यह महसूस किया कि कई प्राचीन या अस्पष्ट वैदिक शब्दों को समझाने की आवश्यकता थी, ताकि वे अनुष्ठानों और पाठों में सही तरीके से उपयोग किए जा सकें। इसने शब्दकोशों, अर्थ विश्लेषण और व्युत्पत्तिवाद की परंपरा को जन्म दिया, जो पाणिनि और बाद के व्याकरणविदों द्वारा बनाई गई बौद्धिक नींव का निर्माण करती है।

3.2 यास्क: पहले भाषाई सिद्धांतकार

पाणिनि से पूर्व की परंपरा में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों में से एक **यास्क** हैं, जिन्हें पारंपरिक रूप से 7वीं से 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व के बीच माना जाता है, हालांकि अनुमानों में भिन्नता है। वे अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ निरुक्त के लिए प्रसिद्ध हैं, जो भारतीय परंपरा में व्युत्पत्ति और अर्थशास्त्र पर सबसे पुरानी जीवित रचनाओं में से एक है।

Scanned with OKEN Scanner

यास्क का निरुक्त: संरचना और उद्देश्य

निरुक्त एक पूर्व-ग्रंथ निघंटु पर एक टिप्पणी के रूप में कार्य करता है, जो वैदिक शब्दों का एक संग्रह है जिसे विषयगत श्रेणियों में व्यवस्थित किया गया है। यास्क का उद्देश्य इन शब्दों के अर्थ और व्युत्पत्तियों को स्पष्ट करना था, विशेष रूप से उन शब्दों को जिनका उपयोग अस्पष्ट या प्राचीन हो गया था।

निरुक्त तीन भागों में विभाजित है:

1. **निघंटुक-कांड** – वेदों से समानार्थक शब्दों की सूची।
2. **नैगम-कांड** – कठिन और दुर्लभ वैदिक शब्दों की सूची।
3. **दैवत-कांड** – देवताओं के नामों पर ध्यान केंद्रित करता है।

यास्क का कार्य केवल शब्दों की सूची बनाने तक सीमित नहीं था; यह शब्दों का व्युत्पत्तिवाद विश्लेषण (निर्वचन) प्रदान करता था, जिसमें उन्हें धातुओं (धातु) से व्युत्पन्न किया जाता था, इस प्रकार रूप और अर्थ को जोड़ता था। यह दृष्टिकोण केवल शब्दकोशीय नहीं था—यह गहरे दार्शनिक था, जो शब्दों की उत्पत्ति को उनके ब्रह्मांडीय और अनुष्ठानिक महत्व से जोड़ता था।

3.3 यास्क का भाषाई सिद्धांत में योगदान

यास्क का निरुक्त दुनिया का सबसे पुराना ग्रंथ है जो भाषाविज्ञान को एक विज्ञान के रूप में पेश करता है, अर्थात भाषा की संरचना और अर्थ का विश्लेषण।

उनके कुछ प्रमुख योगदान हैं:

1. व्युत्पत्ति (निर्वचन)

यास्क का मानना था कि शब्द का असली अर्थ उसके मूल में निहित होता है, और इस मूल का विश्लेषण करने से वस्तु की वास्तविक प्रकृति का पता चलता है। उदाहरण के लिए, वह "गौ" (गाय) शब्द को "गम" (जाना) से व्युत्पन्न करते हैं, यह बताते हुए कि गायें ऐसी प्राणी हैं जो चलती हैं—रूप और कार्य के बीच एक सरल लेकिन गहरे संबंध को व्यक्त करते हुए।

निर्वचन की यह प्रक्रिया भारतीय भाषाई दर्शन का एक महत्वपूर्ण तत्व है और बाद में व्याकरण और मीमांसा विद्यालयों में केंद्रीय बन जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

2. शब्द-वर्ग वर्गीकरण

यास्क शब्दों को चार मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं:

1. नाम (संज्ञा) – वस्तुओं के नाम।
2. आख्यात (क्रिया) – क्रियाएँ और अवस्थाएँ।
3. उपसर्ग (पूर्वसर्ग) – क्रियाओं के पहले लगाए गए परिष्कर्तक।
4. निपात (अपरिवर्तनीय) – कण या अव्ययीकरण शब्द।

इन श्रेणियों ने बाद में व्याकरण में रूप-संरचनात्मक वर्गीकरण के लिए आधार तैयार किया। जबकि यह पाणिनि की प्रणाली जितना कठोर नहीं था, यास्क का ढांचा वाक्यांशों के बारे में प्रारंभिक जागरूकता प्रदर्शित करता है।

3. संयुक्त शब्दों का अर्थशास्त्र

यास्क संयुक्त शब्दों की रचनाओं पर ध्यान देते हैं, यह दिखाते हुए कि जब शब्दों को जोड़ा जाता है तो उनके अर्थ में किस प्रकार का परिवर्तन होता है। वह इस पर विचार करते थे कि शब्दों के संयोजन से अर्थ में कैसे परिवर्तन होता है, यह एक सिद्धांत बन गया जो बाद में व्याकरण में समास (संयुक्त शब्द निर्माण) के विश्लेषण का केंद्रीय बिंदु बना।

4. दार्शनिक विवाद

यास्क अपने पूर्ववर्तियों के साथ दार्शनिक बहस करते हैं। एक विशिष्ट उद्धरण में, वह आलोचकों का जवाब देते हैं जो यह मानते हैं कि शब्दों के निश्चित अर्थ नहीं होते, बल्कि वह यह तर्क करते हैं कि शब्द का मूल स्वाभाविक रूप से एक अर्थपूर्ण मूल्य धारण करता है। यह बहस बाद में न्याय और मीमांसा परंपराओं में भाषाई-दार्शनिक चर्चाओं का पूर्वाभास करती है।

3.4 अर्थ और संदर्भ के प्रारंभिक सिद्धांत

निरुक्त भारतीय दर्शन में अर्थशास्त्र पर एक प्रारंभिक चर्चा प्रस्तुत करता है। यास्क पूछते हैं:

"किं पूर्वं, पदं उता अर्थः ?"

"पहले क्या आता है, शब्द या अर्थ ?"

यह दार्शनिक प्रश्न यह अन्वेषण करता है कि शब्दों का वस्तुओं से कैसे संबंध है—यह एक प्रोटो-सेमियोटिक चिंता है। वह एक वास्तविकतावादी दृष्टिकोण की ओर झुकते हैं,

Scanned with OKEN Scanner

यह सुझाव देते हुए कि शब्द पूर्व-निर्मित वास्तविकताओं का संदर्भ देते हैं, और उनका अर्थ केवल मनमाना नहीं होता। यह पारंपरिकतावादी दृष्टिकोण से भिन्न है, जो शब्द-अर्थ संबंधों को सामाजिक समझौते के उत्पाद के रूप में देखता है। अर्थ, संदर्भ, और उपयोग पर इस तरह की जांचों को बाद में **भर्तृहरी** जैसे दार्शनिकों द्वारा गहरे तौर पर लिया गया, लेकिन यास्क को इस शोध की अग्रणी के रूप में देखा जा सकता है।

3.5 अन्य पाणिनि से पूर्व विचारक और भाषाई परंपराएँ

हालाँकि यास्क सबसे अधिक प्रलेखित पाणिनि से पूर्व भाषाविद हैं, वे एक बड़ी मौखिक और लिखित परंपरा का हिस्सा थे जो भाषा से संबंधित थी। अन्य विकासों में शामिल थे:

a) शिक्षा ग्रंथ (ध्वन्यविज्ञान)

इन ग्रंथों ने उच्चारण और ध्वन्यात्मकता पर ध्यान केंद्रित किया, जो ध्वन्यविज्ञान में मौलिक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। ये विश्लेषण करते हैं:

- स्वर और व्यंजन का उत्पादन।
- उच्चारण के बिंदु और तरीके।
- समय और तनाव।

प्राचीन भारतीय परंपरा में ध्वनि के अध्ययन से संबंधित शास्त्र को शिक्षा कहा जाता है, जो वेदांगों में से एक है। वेदों के उच्चारण और संरक्षण के लिए आवश्यक छह सहायक शास्त्रों में से शिक्षा का स्थान प्रमुख है।

ध्वनि-विज्ञान पर प्रारंभिक ग्रंथों में प्रातिशाख्य ग्रंथ प्रमुख हैं, जो वर्णों के उच्चारण और उनके शारीरिक स्रोतों की विस्तार से व्याख्या करते हैं। इस क्षेत्र में दो प्रमुख और प्रारंभिक ग्रंथ हैं — ऋग्वेद-प्रातिशाख्य और तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य। ये ग्रंथ ध्वनि के शारीरिक उत्पादन की प्रक्रिया को समझाते हैं। इनके अनुसार, ध्वनि का उद्गम कंठ और वक्षस्थल के संधि-स्थल पर श्वास की गति से होता है। यह ध्वनि फिर मुखगुहा (oral cavity) में विभिन्न स्थानों पर आकार ग्रहण करती है, जिससे विभिन्न प्रकार के ध्वनि-रूप उत्पन्न होते हैं। प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरणाचार्य पाणिनि ने भी ध्वनि-विज्ञान के सिद्धांतों को अपने महान ग्रंथ अष्टाध्यायी में सूत्रों के माध्यम से सम्मिलित किया है। उन्होंने इन विषयों पर और अधिक प्रकाश डालते हुए एक पृथक ग्रंथ पाणिनीय-शिक्षा की भी रचना की है।

Scanned with OKEN Scanner

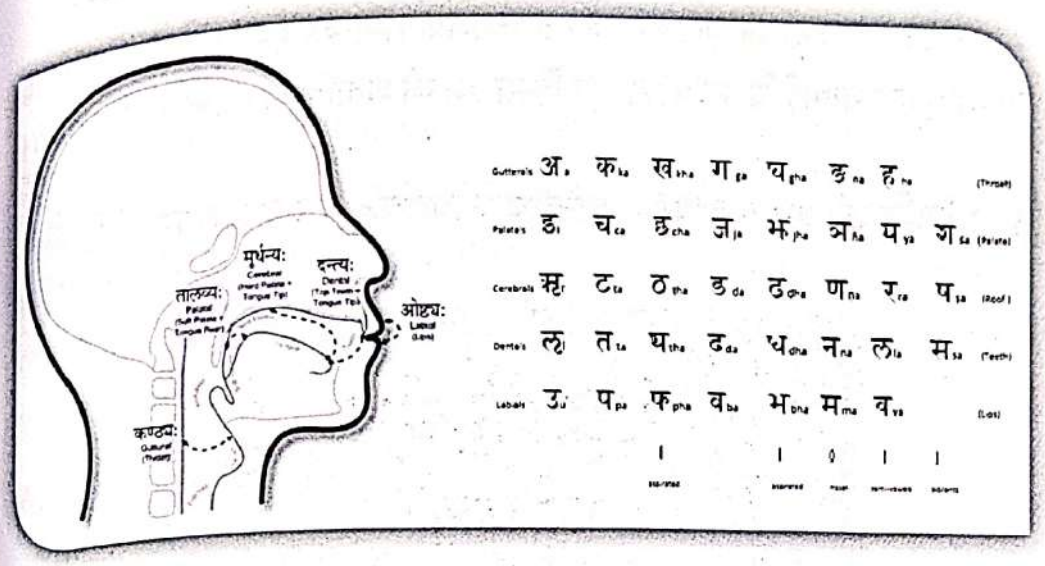

Source: https://akhil.blog/2020/07/06/sanskrit-varnamala/

पाणिनि के अनुसार, संस्कृत के वर्णों की ध्वनियाँ अनेक स्तरों पर उत्पन्न होती हैं, जिनमें से एक प्रमुख स्तर मुखगुहा में ध्वनि का स्थान है। उन्होंने छह प्रमुख उच्चारण-स्थानों की पहचान की है। ध्वनि इन स्थानों पर या इनके संयोजन से उत्पन्न होती है। पाणिनि ने इस विचार को सूत्रों के एक व्यवस्थित समूह के माध्यम से स्थापित किया है। इन ध्वन्यात्मक सिद्धांतों को अक्सर चित्रों के माध्यम से समझाया जाता है, जो उच्चारण-स्थलों को दृश्य रूप में दर्शाकर विद्यार्थियों को संस्कृत की ध्वन्यात्मक प्रणाली समझने में सहायता करते हैं। उदाहरण के लिए, तैत्तिरीय प्रतीशाख्य एक शिक्षा ग्रंथ है जो संधि (ध्वन्यात्मक संयोजन) और उच्चारण पर नियमों को विस्तृत करता है।

b) प्रारंभिक मीमांसा व्याख्याएँ

हालाँकि बाद में औपचारिक रूप से विकसित हुई, मीमांसा विद्यालय ने यह विचार विकसित किया कि कैसे भाषा धर्म (कर्मकांड कर्तव्य) को व्यक्त करती है। उन्होंने शब्दों के शाब्दिक अर्थ **(अभिधा)** पर बल दिया और व्याख्यात्मक सिद्धांत विकसित किए जो भाषाई संगति पर आधारित थे।

3.6 पाणिनि पर पाणिनि से पूर्व का प्रभाव

हालाँकि पाणिनि की अष्टाध्यायी भाषाई विश्लेषण में एक प्रणालीकरण और औपचारिकता के कारण एक परिवर्तनकारी दृष्टिकोण है, वह निश्चित रूप से यास्क जैसे पूर्ववर्तियों के कार्यों से प्रभावित थे। पाणिनि स्वयं पुराने व्याकरणियों का संदर्भ देते हैं, जिन्हें समग्र रूप से प्राचीन व्याकरणिक के रूप में जाना जाता है, और कभी-कभी उनके दृष्टिकोणों पर

Scanned with OKEN Scanner

बहस करते हैं या उन्हें परिष्कृत करते हैं। उनका अपना व्याकरण, हालांकि क्रांतिकारी था एक सामूहिक भाषाई विचार परंपरा का हिस्सा था जो शताब्दियों से विकसित होती रही

4. पाणिनि की अष्टाध्यायी – शास्त्रीय भाषाविज्ञान का आधार

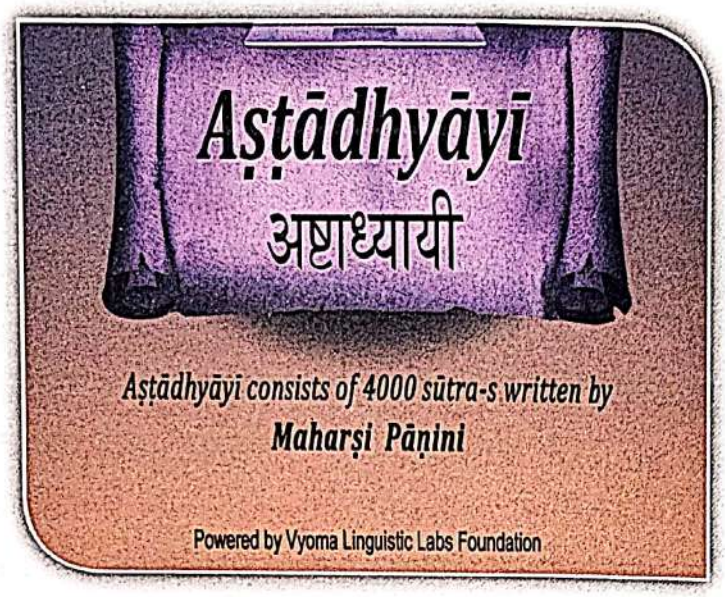

Source: https://www.sanskritfromhome.org

4.1 पाणिनि का जीवन और संदर्भ

पाणिनि को सामान्य व्याकरण का जनक और इतिहास के सबसे प्रभावशाली भाषाविदों में से एक माना जाता है। पारंपरिक रूप से माना जाता है कि वे प्राचीन भारत में 6वीं से 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास जीवित थे, हालांकि उनके जीवनकाल की सटीक तिथियाँ विवादित हैं। पाणिनि का जन्म **शलातुला** (वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान या पाकिस्तान) में हुआ था, और उनका काम भारतीय और वैश्विक भाषाई परंपराओं पर स्थायी प्रभाव छोड़ चुका है। पाणिनि का बौद्धिक संदर्भ वैदिक परंपरा में निहित था, जो पवित्र ग्रंथों के सटीक उच्चारण और व्याख्या पर अत्यधिक बल देती थी। वेदों का संरक्षण ध्वन्यविज्ञान, व्याकरण, और अर्थशास्त्र की एक सटीक समझ की आवश्यकता थी। हालांकि, यास्क जैसे पिछले विद्वानों ने व्युत्पत्ति और वैदिक अर्थशास्त्र पर ध्यान केंद्रित किया, पाणिनि का योगदान अधिक औपचारिक और प्रणालीबद्ध था—जो संस्कृत भाषा का पूर्ण रूप से विश्लेषण करने का प्रयास करता था। पाणिनि का काम भाषाविज्ञान में वाक्यविन्यास, रूपविज्ञान और ध्वन्यविज्ञान के अध्ययन की नींव रखता है और इसे प्राचीनकाल में उभरे सबसे उन्नत भाषाई प्रणालियों में से एक माना जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

4.2 अष्टाध्यायी: संरचना और सामग्री

अष्टाध्यायी, जिसका अर्थ है "आठ अध्याय", पाणिनि का संस्कृत व्याकरण पर सबसे महत्वपूर्ण और पूर्ण कार्य है। यह ग्रंथ 4000 सूत्रों (सूक्तियों) से बना है, जो आठ अध्यायों में विभाजित हैं। यह कार्य अत्यधिक संक्षिप्त है, जिसमें प्रत्येक सूत्र में कई तरीकों से व्याख्या करने योग्य जानकारी निहित होती है। पाणिनि की शैली अत्यधिक तकनीकी और सटीक है, और यह संक्षिप्तता अष्टाध्यायी की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से एक है।

A) अष्टाध्यायी के अध्याय

अष्टाध्यायी निम्नलिखित आठ अध्यायों में विभाजित है:

1. **पहला अध्याय** – सामान्य अवधारणाओं और शब्दों की संरचना से संबंधित है।
2. **दूसरा अध्याय** – शब्द निर्माण (जैसे व्युत्पत्ति और समास) का वर्णन करता है।
3. **तीसरा अध्याय** – ध्वन्यात्मक नियमों से संबंधित है, जिसमें ध्वनि परिवर्तन शामिल है।
4. **चौथा अध्याय** – क्रियाओं के संयुग्मन पर ध्यान केंद्रित करता है।
5. **पाँचवां अध्याय** – संज्ञाओं और विशेषणों के रूपांतरण से संबंधित है।
6. **छठा अध्याय** – संबंधसूचक, पूर्वसर्ग और सर्वनामों का वर्णन करता है।
7. **सातवाँ अध्याय** – ध्वन्यात्मक संयोजन और संधि नियमों पर ध्यान केंद्रित करता है।
8. **आठवाँ अध्याय**– विभिन्न अपवादात्मक नियमों और विशेष मामलों से संबंधित है।

ग्रंथ की संरचना पदानुक्रमित है, जिसमें नियम एक-दूसरे पर आधारित होते हैं और विश्लेषण की एक सावधानीपूर्वक बनाई गई प्रणाली के तहत व्यवस्थित होते हैं। पाणिनि की प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें मेटा-नियमों और आर्थिकता के सिद्धांत का उपयोग किया गया है, जिसके अंतर्गत नियमों को सबसे संक्षिप्त और प्रभावी रूप में तैयार किया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

4.3 संस्कृत: एक प्रणालीबद्ध भाषा

पाणिनि से पहले, संस्कृत को एक जीवित भाषा माना जाता था, जिसे मुख्य रूप से मौखिक रूप से किया जाता था। हालांकि वैदिक पाठन में ध्वन्यविज्ञान और व्याकरण पर ध्यान दिया जाता था, फिर भी इसके नियमों को समझने के लिए एक औपचारिक सैद्धांतिक ढाँचा नहीं था। पाणिनि ने संस्कृत को एक सुसंगत भाषाई विश्लेषण मॉडल में प्रणालीबद्ध किया। पाणिनि की अष्टाध्यायी ने न केवल भाषा के उपयोग के लिए नियमों का एक सेट प्रदान किया, बल्कि इसमें एक दार्शनिक ढांचा भी शामिल था जो भाषा को एक गतिशील, संरचित प्रणाली के रूप में देखता था, जिसमें अंतर्निहित उत्पत्ति सिद्धांतों का एक सेट होता है। उन्होंने रूपविज्ञान नियमों की अवधारणा प्रस्तुत की, जो एक सीमित तत्वों के सेट से अनंत शब्दों और वाक्यों का निर्माण कर सकते थे। उदाहरण के लिए, पाणिनि ने यह नियम निर्धारित किया कि कैसे मूल शब्द (धातु) उपसर्गों (पूर्वसर्ग और प्रत्यय) के साथ मिलकर नए शब्द और अर्थ उत्पन्न करते हैं, जो आज के आधुनिक भाषाविज्ञान में रूपविज्ञान उत्पादन के रूप में पहचाने जाते हैं। यह भाषा से निपटने का एक अधिक उन्नत तरीका था, जो पहले के वर्णनात्मक तरीकों से अधिक था, जैसा कि निरुक्त जैसे ग्रंथों में पाया गया था।

4.4 पाणिनि के व्याकरण के प्रमुख योगदान

पाणिनि के व्याकरण ने भाषा के वर्णन और विश्लेषण के तरीके को पूरी तरह से बदल दिया। उनके कुछ महत्वपूर्ण योगदान इस प्रकार हैं:

A) "सूत्र" (सूक्ति) की अवधारणा

पाणिनि का कार्य सूत्रों के रूप में लिखा गया है, जो छोटे, संक्षिप्त सूक्तियाँ होती हैं। इस संकुचित शैली ने अधिकतम जानकारी को सबसे छोटे स्थान में समाहित करने की अनुमति दी, जिसमें प्रत्येक नियम को उसके मूल सार में संक्षेपित किया गया। सूत्रों की संक्षिप्तता ने व्याख्या और विश्लेषण के लिए भी स्थान छोड़ा, और पाणिनि के व्याकरण का अध्ययन एक विशेष विषय बन गया।

B) ध्वन्यविज्ञान और ध्वनि परिवर्तन (शब्द)

पाणिनि ने संस्कृत शब्दों की संरचना का वर्णन करने के लिए ध्वन्यात्मक नियमों का व्यापक उपयोग किया। उनके व्याकरण में ध्वन्यात्मक प्रक्रियाएँ शामिल हैं जो यह बताती हैं कि ध्वनियाँ एक-दूसरे के साथ कैसे परस्पर प्रभाव करती हैं। इस क्षेत्र में उनके कुछ प्रमुख नवाचार इस प्रकार हैं:

Scanned with OKEN Scanner

4.3 संस्कृत: एक प्रणालीबद्ध भाषा

पाणिनि से पहले, संस्कृत को एक जीवित भाषा माना जाता था, जिसे मुख्य रूप से मौखिक रूप से किया जाता था। हालांकि वैदिक पाठन में ध्वन्यविज्ञान और व्याकरण पर ध्यान दिया जाता था, फिर भी इसके नियमों को समझने के लिए एक औपचारिक सैद्धांतिक ढाँचा नहीं था। पाणिनि ने संस्कृत को एक सुसंगत भाषाई विश्लेषण मॉडल में प्रणालीबद्ध किया। पाणिनि की अष्टाध्यायी ने न केवल भाषा के उपयोग के लिए नियमों का एक सेट प्रदान किया, बल्कि इसमें एक दार्शनिक ढांचा भी शामिल था जो भाषा को एक गतिशील, संरचित प्रणाली के रूप में देखता था, जिसमें अंतर्निहित उत्पत्ति सिद्धांतों का एक सेट होता है। उन्होंने रूपविज्ञान नियमों की अवधारणा प्रस्तुत की, जो एक सीमित तत्वों के सेट से अनंत शब्दों और वाक्यों का निर्माण कर सकते थे। उदाहरण के लिए, पाणिनि ने यह नियम निर्धारित किया कि कैसे मूल शब्द (धातु) उपसर्गों (पूर्वसर्ग और प्रत्यय) के साथ मिलकर नए शब्द और अर्थ उत्पन्न करते हैं, जो आज के आधुनिक भाषाविज्ञान में रूपविज्ञान उत्पादन के रूप में पहचाने जाते हैं। यह भाषा से निपटने का एक अधिक उन्नत तरीका था, जो पहले के वर्णनात्मक तरीकों से अधिक था, जैसा कि निरुक्त जैसे ग्रंथों में पाया गया था।

4.4 पाणिनि के व्याकरण के प्रमुख योगदान

पाणिनि के व्याकरण ने भाषा के वर्णन और विश्लेषण के तरीके को पूरी तरह से बदल दिया। उनके कुछ महत्वपूर्ण योगदान इस प्रकार हैं:

A) "सूत्र" (सूक्ति) की अवधारणा

पाणिनि का कार्य सूत्रों के रूप में लिखा गया है, जो छोटे, संक्षिप्त सूक्तियाँ होती हैं। इस संकुचित शैली ने अधिकतम जानकारी को सबसे छोटे स्थान में समाहित करने की अनुमति दी, जिसमें प्रत्येक नियम को उसके मूल सार में संक्षेपित किया गया। सूत्रों की संक्षिप्तता ने व्याख्या और विश्लेषण के लिए भी स्थान छोड़ा, और पाणिनि के व्याकरण का अध्ययन एक विशेष विषय बन गया।

B) ध्वन्यविज्ञान और ध्वनि परिवर्तन (शब्द)

पाणिनि ने संस्कृत शब्दों की संरचना का वर्णन करने के लिए ध्वन्यात्मक नियमों का व्यापक उपयोग किया। उनके व्याकरण में ध्वन्यात्मक प्रक्रियाएँ शामिल हैं जो यह बताती हैं कि ध्वनियाँ एक-दूसरे के साथ कैसे परस्पर प्रभाव करती हैं। इस क्षेत्र में उनके कुछ प्रमुख नवाचार इस प्रकार हैं:

Scanned with OKEN Scanner

- **संधि:** वे नियम जो शब्दों के संयोजन से उत्पन्न होने वाले ध्वनि परिवर्तनों का वर्णन करते हैं।
- **समान्वयन और विमोचन:** कैसे व्यंजन और स्वर अपने आसपास की ध्वनियों के आधार पर बदलते हैं।

इन ध्वन्यविज्ञान नियमों ने बाद में रूपध्वन्यविज्ञान (Morphophonemics) के अध्ययन के लिए मार्ग प्रशस्त किया, जो रूपविज्ञान (शब्द संरचना) और ध्वन्यविज्ञान (ध्वनि संरचना) के बीच संबंधों का अध्ययन करता है।

C) रूपविज्ञान-संरचना: शब्द निर्माण और वाक्य संरचना

पाणिनि एक अग्रणी थे जो यह अध्ययन करते थे कि कैसे रूपमात्राएँ (भाषा की सबसे छोटी अर्थपूर्ण इकाइयाँ) शब्द बनाने के लिए एक साथ आती हैं। उनके द्वारा दी गई वाक्यविन्यास की संरचना एक महत्वपूर्ण कदम थी, क्योंकि उन्होंने यह समझाने के लिए एक विस्तृत ढांचा प्रदान किया कि शब्दों को वाक्यों में कैसे संरचित किया जाता है। वे पहले थे जिन्होंने वाक्यविन्यास का एक औपचारिक सिद्धांत विकसित किया—विशेष रूप से शब्द क्रम और संघटक संरचना के संदर्भ में। उदाहरण के लिए, उन्होंने शब्द निर्माण (व्युत्पत्ति), समास और रूपांतरण (वाक्य रूप में परिवर्तन) के नियम तैयार किए। पाणिनि की प्रणाली को आधुनिक उत्पत्ति व्याकरण से तुलना की जा सकती है, जो यह भी अध्ययन करती है कि कैसे शब्दों और वाक्यों को सिद्धांतों के सीमित सेट से बनाया जाता है।

D) भाषा की उत्पत्ति प्रकृति

पाणिनि का कार्य एक उत्पत्ति व्याकरण की परिभाषा देने का पहला प्रयास था—एक सेट नियमों का जो किसी भाषा के सभी संभावित व्याकरणिक वाक्यों का निर्माण (या उत्पादन) कर सके। उनके नियम संस्कृत रूपों की जटिल श्रेणी उत्पन्न करने में सक्षम थे, सबसे बुनियादी से लेकर उच्च रूपांतरण और समास रूपों तक, जिससे कविता और दैनिक संदर्भों में भाषाई अभिव्यक्ति की अनुमति मिलती थी।

4.5 पाणिनि व्याकरण के उपनियम और सिद्धांत

पाणिनि के काम का एक और महत्वपूर्ण पहलू उनके मेटा-नियमों और आर्थिकता के सिद्धांत का उपयोग है। उदाहरण के लिए, वह प्रत्यय के सिद्धांत का उपयोग करते हैं, जो बताते हैं कि कैसे उपसर्ग (प्रत्यय और पूर्वसर्ग) मूल शब्दों (धातु) से जुड़कर अधिक

Scanned with OKEN Scanner

जटिल शब्द बना सकते हैं। पाणिनि के नियमों में अक्सर पुनरावृत्ति (recursive) का गुण होता है। उदाहरण के लिए, एक नियम का आवेदन अन्य नियमों के लागू होने की स्थिति उत्पन्न कर सकता है, ठीक वैसे ही जैसे आजकल एक औपचारिक भाषा के नियम काम करते हैं। यह पुनरावृत्ति नियम लागू करने का विचार पाणिनि के व्याकरण को अत्यधिक मॉड्यूलर और लचीला बनाता है, जिससे सीमित नियमों से अनंत प्रकार के व्याकरणिक रूपों का निर्माण किया जा सकता है।

4.6 पाणिनि का प्रभाव और धरोहर

पाणिनि के व्याकरण का न केवल भारतीय भाषाविज्ञान पर, बल्कि वैश्विक भाषाविज्ञान सिद्धांतों के विकास पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। उनके कार्य की सटीकता और तर्कशीलता ने भाषा के अध्ययन के लिए एक औपचारिक, प्रणालीबद्ध तरीके की नींव रखी। उनका प्रभाव न केवल संस्कृत व्याकरण में बल्कि कम्प्यूटर भाषाविज्ञान, औपचारिक भाषा सिद्धांत, और वाक्यविन्यास में भी महसूस होता है।

- **आधुनिक संरचनावाद:** फ़र्डिनेंड डी सॉसूर, लियोनार्ड ब्लूमफील्ड, और नोआम चॉम्स्की जैसे भाषाविदों ने पाणिनि के व्याकरण को संरचनात्मक और उत्पत्ति मॉडल्स के लिए एक पूर्ववर्ती के रूप में माना है।
- **कम्प्यूटर भाषाविज्ञान:** पाणिनि के प्रणालीबद्ध भाषा उत्पादन नियम आजकल कम्प्यूटर भाषाओं के निर्माण के तरीके से मिलते-जुलते हैं।

5. पाणिनि के बाद की भाषाविज्ञान

पाणिनि की अष्टाध्यायी के बाद, प्राचीन भारत में भाषा का अध्ययन एक परिष्कृत और विस्तारित चरण में प्रवेश कर गया, क्योंकि उनके अभूतपूर्व कार्य ने न केवल व्याकरण परंपरा को प्रभावित किया, बल्कि व्यापक दार्शनिक और बौद्धिक बहसों को भी प्रभावित किया। पाणिनि के बाद के समय में विद्वानों ने पाणिनि के व्याकरण पर काम किया और नई भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों जैसे ध्वन्यविज्ञान, अर्थविज्ञान और भाषा के दर्शन को विकसित किया। यह अनुभाग पाणिनि के बाद विभिन्न विचारधाराओं, उनके कार्य का अगले पीढ़ियों पर प्रभाव, और उन शताब्दियों में भाषाविज्ञान सिद्धांत में किए गए महत्वपूर्ण योगदानों पर चर्चा करेगा।

Scanned with OKEN Scanner

5.1 पाणिनि के बाद व्याकरण का विद्यालय

पाणिनि के बाद, व्याकरण का अध्ययन प्राचीन भारत के बौद्धिक परिप्रेक्ष्य का केंद्र बना रहा, और कई विद्वानों ने पाणिनि के मौलिक विचारों की व्याख्या और विस्तार करने का प्रयास किया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण विकास व्याकरण परंपरा में ही पाए गए, जो छह शास्त्रीय दर्शन (दार्शनिक विद्यालयों) में से एक के रूप में जारी रहा। पाणिनि के बाद के व्याकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

A) टिप्पणी (भाष्य) की परंपरा

अष्टाध्यायी अत्यधिक संक्षिप्त था, और इस कारण इसे समझाने के लिए शताब्दियों तक कई भाष्य लिखे गए। पाणिनि के बाद के समय में कई विद्वानों ने पाणिनि के व्याकरण की व्याख्या करने और इसके गहरे निहितार्थों का अन्वेषण करने के लिए भाष्य (टिप्पणियाँ) लिखीं। कुछ महत्वपूर्ण पाणिनि के बाद के टिप्पणीकारों में शामिल हैं:

- **कात्यायन (लगभग 3वीं शताबदी ईसा पूर्व):** पाणिनि की अष्टाध्यायी पर उनका भाष्य, **वर्तिक** ने पाणिनि के काम को परिष्कृत करने और विस्तारित करने का प्रयास किया। उन्होंने व्याकरणिक अपवादों का सिद्धांत विकसित किया और नए नियमों को प्रस्तुत किया, जिसका संस्कृत व्याकरण के बाद के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।
- **पतंजलि (लगभग 2वीं शताबदी ईसा पूर्व)**: पतंजलि का **महाभाष्य** पाणिनि की अष्टाध्यायी और कात्यायन के पहले के कार्यों पर सबसे महत्वपूर्ण टिप्पणियों में से एक है। उनका भाष्य भाषाई और दार्शनिक दोनों मुद्दों पर चर्चा करता है, और यह संस्कृत व्याकरण परंपरा का एक कोने का पत्थर है। पतंजलि ने भाषा में प्रयोग आधारित नियमों का गहरा विश्लेषण प्रस्तुत किया, जो यह समझने पर ध्यान केंद्रित करता है कि व्यवहार में भाषा कैसे काम करती है।

B) ध्वन्यविज्ञान सिद्धांत का विकास (शिक्षा और वृत्ति)

पाणिनि के काम के बाद, ध्वन्यविज्ञान और ध्वनि प्रणालियों को समझने का काम विकसित होता रहा। पाणिनि के ध्वन्यात्मक नियमों ने संस्कृत की ध्वन्यात्मक विशेषताओं का गहरे अध्ययन के लिए नींव रखी।

- **शिक्षा**, अर्थात उच्चारण का अध्ययन, ध्वनियों के सही उच्चारण पर केंद्रित था और संस्कृत में स्वराघात, छंद और स्वरोच्चारण जैसे क्षेत्रों का अन्वेषण

Scanned with OKEN Scanner

करता था, जो पाणिनि के ध्वनि विश्लेषण प्रणाली के विचारों पर आधारित था।

- **वृत्ति**, परंपरा में एक अन्य प्रमुख अवधारणा, भाषण में विशेष प्रयोगों या भिन्नताओं को संदर्भित करती है। इस अध्ययन शाखा ने यह अन्वेषण किया कि शब्दों और ध्वनियों को किस प्रकार बदला जा सकता है, जिससे संधि नियमों (ध्वनि संयोजन के नियम) और आगे के ध्वन्यविज्ञान में सुधार की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

5.2 मीमांसा विद्यालय और भाषा

जहाँ व्याकरण भाषा की संरचना और वाक्यविन्यास पर केंद्रित था, वहीं एक अन्य महत्वपूर्ण परंपरा—मीमांसा —ने भाषा के एक अलग दृष्टिकोण को विकसित किया जो अनुष्ठानिक अभ्यास और ग्रंथों की व्याख्या से गहरे तौर पर जुड़ा हुआ था।

मीमांसा का भाषा के प्रति दृष्टिकोण

मीमांसा का दर्शन, जिसकी स्थापना **जैमिनि** ने (लगभग 4वीं से 3वीं शताबदी ईसा पूर्व) की, पवित्र ग्रंथों की शाब्दिक और सांदर्भिक व्याख्या पर जोर देता है। जबकि इसका मुख्य ध्यान अनुष्ठानों और धार्मिक आचरण पर था, मीमांसा के विद्वान भाषा के प्रति गहरी रुचि रखते थे क्योंकि सही अनुष्ठान प्रदर्शन के लिए व्याकरणिक रूपों की सही समझ आवश्यक थी।

- **अर्थ (अर्थ):** मीमांसा ने यह समझने के लिए एक जटिल दृष्टिकोण विकसित किया कि भाषा अर्थ कैसे व्यक्त करती है, शाब्दिक अर्थ **(अभिधा)** और सन्निहित अर्थ **(लक्षणा)** के बीच भेद करते हुए, जो अप्रत्यक्ष या अभिप्रेत अर्थों को संदर्भित करता है। यह यह समझने में महत्वपूर्ण है कि कैसे जटिल, बहुपरतीय अर्थ शब्दों से निकाले जा सकते हैं।
- **अर्थविज्ञान सिद्धांत:** मीमांसा के दार्शनिकों ने यह प्रस्तावित किया कि शब्द केवल स्वच्छंद ध्वनियों का संग्रह नहीं होते, बल्कि उनका एक अंतर्निहित संबंध उन वस्तुओं से होता है, जिनका वे संदर्भ देते हैं। इस दृष्टिकोण ने अर्थ के स्वभाव और शब्दों और वास्तविकता के बीच संबंध की गहरी दार्शनिक अन्वेषण के लिए मार्ग प्रशस्त किया, जो बाद में पश्चिमी भाषाविज्ञान और दर्शन को प्रभावित करेगा।

Scanned with OKEN Scanner

- **क्रिया-आधारित व्याकरण:** पाणिनि के विपरीत, जिन्होंने संज्ञाओं और क्रियाओं दोनों पर व्यापक ध्यान केंद्रित किया, मीमांसा के विद्वान विशेष रूप से क्रियाओं (क्रिया शब्द) के बारे में चिंतित थे क्योंकि अनुष्ठान क्रिया के माध्यम से किए जाते हैं। इसलिए, क्रियाओं के रूप और कार्य का समझना उनके लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण था।

5.3 नाट्यशास्त्र का भाषा सिद्धांत पर प्रभाव

पाणिनि के बाद भाषाविज्ञान के विचार में एक और महत्वपूर्ण विकास नाट्यशास्त्र से आया, जिसे भरत मुनि (लगभग 2वीं शताबदी ईसा पूर्व से 2वीं शताबदी CE) को श्रेय दिया जाता है। नाट्यशास्त्र एक बुनियादी ग्रंथ है जो रंगमंच, प्रदर्शन, और नाट्य कला पर आधारित है, लेकिन इसमें भाषा और छंद पर भी विस्तृत चर्चा की गई है।

प्रदर्शन में भाषा की भूमिका

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र प्रदर्शन में भाषा के उपयोग पर जोर देता है, यह बताता है कि बोले गए शब्द (वाचिक) और भाव और मुद्राओं के साथ मिलकर प्रदर्शनात्मक संदर्भों में अर्थ कैसे व्यक्त करते हैं। यह ग्रंथ प्रदर्शन के अन्य तत्वों के साथ शब्दों के परस्पर क्रिया के माध्यम से अर्थ के संप्रेषण को उजागर करता है। नाट्यशास्त्र में सात प्रकार के अर्थ (रसा) को प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें भाषा और प्रदर्शन के अन्य तत्वों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है, जैसे:

- **सत्त्विक रसा** (भावनात्मक अभिव्यक्ति)
- **विभाव** (भावना के कारण)
- **अनुभाव** (भावनात्मक अवस्थाओं के परिणाम)

इस प्रकार नाट्यशास्त्र भाषा के प्रति एक अधिक संदर्भात्मक और बहुआयामी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो केवल व्याकरणिक संरचना के माध्यम से ही नहीं, बल्कि प्रदर्शन के अन्य तत्वों के साथ शब्दों की परस्पर क्रिया के माध्यम से भी अर्थ को व्यक्त करता है।

5.4 वेदांत और भक्ति दर्शन में भाषा की भूमिका

पाणिनि के बाद शताब्दियों में वेदांत दर्शन विद्यालय—विशेष रूप से भक्ति रूप में—ने धार्मिक भाषा और शास्त्रों के उपयोग पर जोर दिया जो दिव्य सत्य व्यक्त करने का माध्यम बन गई। इन परंपराओं में, भाषा को दिव्य को व्यक्त करने का एक साधन माना गया था।

Scanned with OKEN Scanner

A) वेदांत का भाषा का दार्शनिक व्याख्यान

वेदांतिक विद्वान जैसे **शंकर** (8वीं शताब्दी CE) और बाद में **रामानुज** (11वीं शताब्दी CE) ने यह अध्ययन किया कि भाषा गहरे रूप से दार्शनिक विचारों को कैसे व्यक्त कर सकती है। वे अक्सर उपनिषदों, भगवद् गीता, और ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या करते थे, जिनमें ऐसे दार्शनिक विचार थे जिन्हें गहरे भाषाई और अर्थविज्ञानात्मक विश्लेषण के माध्यम से समझा जाना था। वेदांत के दार्शनिकों ने यह चर्चा की कि अर्थ का स्वभाव क्या है और भाषा कैसे परम वास्तविकता (ब्रह्म) और व्यक्तिगत आत्मा का प्रतिनिधित्व कर सकती है। जबकि पारंपरिक दार्शनिकों ने भौतिक वास्तविकता को वर्णित करने में भाषा की भूमिका पर बल दिया, वेदांत के विचारक भाषा को रूपक और पराभौतिक विचारों की अभिव्यक्ति के एक माध्यम के रूप में देखते थे।

B) भक्ति परंपरा में भाषा

प्रारंभिक मध्यकाल में (6वीं–12वीं शताब्दी CE) भक्ति (निष्ठा) के उदय के साथ, भाषा दिव्य से व्यक्तिगत जुड़ाव का एक उपकरण बन गई। लोक भाषाओं में लिखी गई भक्तिपूर्ण कविताएँ और भजनों ने धार्मिक अभिव्यक्ति को नई दिशा दी, जिसमें सरल और सुलभ भाषा के माध्यम से भावनात्मक अभिव्यक्ति और भक्ति को बढ़ावा मिला। इस अवधि में, कठोर व्याकरणिक रूपों से अधिक लचीले, भक्तिपूर्ण अभिव्यक्तियों की ओर एक बदलाव देखा गया, और तमिल, मराठी और हिंदी जैसी भाषाएँ धार्मिक अभिव्यक्ति के केंद्रीय माध्यम बन गईं।

5.5 पाणिनि के बाद की भाषाविज्ञान

पाणिनि के बाद का युग भारतीय भाषाविज्ञान और विश्व भाषाविज्ञान पर गहरा प्रभाव छोड़ गया:

- व्याकरण की परंपरा का विकास जारी रहा, जिससे संस्कृत व्याकरण और बाद के शताब्दियों में भाषाविज्ञान के सिद्धांतों को प्रभावित किया।
- मीमांसा विद्यालय ने दार्शनिक अर्थविज्ञान और भाषा में अर्थ के विश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- नाट्यशास्त्र ने भाषा के बहुआयामी पहलू को उजागर किया, जो प्रदर्शन और नाटकीय संवाद में उसके योगदान को सामने लाया।
- वेदांत और भक्ति के दार्शनिकों ने भाषा, अर्थ और दिव्यता के बीच के संबंध में नए दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

Scanned with OKEN Scanner

6. मध्यकालीन भारत में भाषाई और दार्शनिक सिद्धांत

भारत के मध्यकालीन भाषाविज्ञान का काल, जो लगभग 7वीं से 15वीं सदी ईस्वी तक फैला हुआ है, व्याकरण, दर्शन और तत्वमीमांसा का संगम देखा गया। भाषा अब केवल संवाद या शास्त्रों की व्याख्या का उपकरण नहीं रह गई थी—बल्कि यह ज्ञान, वास्तविकता, चेतना और अभिव्यक्ति से संबंधित चर्चाओं का केंद्रीय बिंदु बन गई। इस काल में दो प्रमुख परंपराएँ उभरीं:

1. व्याकरणिक-दार्शनिक परंपरा (विशेष रूप से व्याकरण और भर्तृहरि जैसे विचारकों की विचारधारा)
2. ज्ञानात्मक-तार्किक परंपरा (जैसे न्याय और मीमांसा स्कूल)

इनमें से प्रत्येक ने इस बात पर गहरी चर्चा की कि भाषा कैसे कार्य करती है, यह अर्थ कैसे व्यक्त करती है, और इसका वास्तविकता के साथ क्या संबंध है।

6.1 भर्तृहरि का उदय और स्फोट सिद्धांत

मध्यकालीन भारतीय भाषाविज्ञान में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व **भर्तृहरि** (5वीं–6वीं सदी ईस्वी) थे, जो एक दार्शनिक, व्याकरणज्ञ और कवि थे। उन्होंने वाक्यपदीय (Vākyapadīya) नामक एक मौलिक ग्रंथ की रचना की, जो व्याकरण और दर्शन का पुल था, और इसने बाद में भारतीय और वैश्विक भाषाई विचारधारा को गहरे रूप से प्रभावित किया।

A) भर्तृहरि का वाक्यपदीय

वाक्यपदीय तीन भागों में विभाजित है:

1. **ब्रह्मकांड:** भाषा को ब्रह्म (अंतिम वास्तविकता) के रूप में व्यक्त करने पर चर्चा करता है।
2. **वाक्यकांड:** वाक्य की प्रकृति और संरचना पर केंद्रित है।
3. **पदकांड:** व्यक्तिगत शब्दों और उनके व्याकरणिक व्यवहार से संबंधित है।

इस कार्य के माध्यम से, भर्तृहरि ने भाषाई, तत्वमीमांतिक और ज्ञानात्मक विचारों का अद्वितीय संगम प्रस्तुत किया।

B) स्फोट सिद्धांत

ध्वनि-अर्थ का संबंध स्फोट सिद्धांत भर्तृहरि का सबसे प्रभावशाली योगदान है। यह उस

Scanned with OKEN Scanner

अद्वितीय, तात्कालिक अर्थ के विस्फोट को संदर्भित करता है जो तब उत्पन्न होता है जब किसी शब्द या वाक्य को समझा जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार:

- स्फोट वह शाश्वत, अमूर्त भाषाई इकाई है जो अर्थ व्यक्त करती है, जबकि भौतिक ध्वनि (ध्वनि) अस्थायी और क्षणिक होती है।
- अर्थ व्यक्तिगत ध्वनियों या अक्षरों से नहीं, बल्कि संपूर्ण इकाई (शब्द या वाक्य) से उत्पन्न होता है जिसे एक एकल इकाई के रूप में समझा जाता है।
- श्रोता जब शब्द या वाक्य सुनता है, तो वह स्फोट को एक पूर्ण रूप में समझता है।

यह सिद्धांत पहले के दृष्टिकोण से भिन्न है, जिसमें यह माना जाता था कि अर्थ अक्षरों या वर्णों से क्रमिक रूप से उत्पन्न होता है।

C) स्फोट के निहितार्थ

भर्तृहरि का स्फोट सिद्धांत भाषा के समग्र दृष्टिकोण के अनुकूल है, जो आधुनिक अर्थशास्त्र और अनुभववाद (phenomenology) के कुछ दृष्टिकोणों से मिलता है। यह परम तत्वमीमांसी दृष्टिकोणों (शब्दों को भागों में विभाजित करने) को चुनौती देता है, और यह प्रस्तावित करता है कि अर्थ को कुल रूप में समझा जाता है। स्फोट सिद्धांत ध्वनि और चेतना के बीच संबंध स्थापित करता है, और यह भाषाई दर्शन को वेदांत तत्वमीमांसा से जोड़ता है–भाषा को सार्वभौमिक वास्तविकता (शब्द-ब्रह्म) का प्रतीक मानते हुए।

6.2 वाक्य

अर्थ की इकाई के रूप में वाक्य भर्तृहरि ने वाक्य को भाषा की मूल इकाई के रूप में प्रस्तुत किया, न कि व्यक्तिगत शब्दों या रूपों के रूप में। उनके अनुसार:

- वाक्य पूर्ण अर्थ व्यक्त करता है, जबकि पृथक शब्द केवल अधूरे विचारों का संकेत देते हैं।
- शब्द अपने अर्थ को संदर्भ में, वाक्य के भीतर प्राप्त करते हैं—यह आधुनिक अर्थशास्त्र में संदर्भात्मक दृष्टिकोण की पूर्वसूचना प्रदान करता है।

यह विचार बाद के कई दार्शनिकों और भाषाविज्ञानियों को प्रभावित करता है, जिन्होंने व्यावहारिक अर्थशास्त्र, संवाद विश्लेषण और अर्थ की एकता पर ध्यान केंद्रित किया।

6.3 न्याय और भाषा की तर्कशक्ति

न्याय स्कूल अपनी कठोर ज्ञानमीमांसा और तर्कशक्ति (तर्क) के लिए प्रसिद्ध है, न्याय स्कूल ने भाषा और संज्ञान के सिद्धांतों में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

Scanned with OKEN Scanner

A) **शब्द प्रमाण का सिद्धांत:** न्याय दार्शनिकों ने शब्द ज्ञान को सत्य ज्ञान प्राप्त करने के एक वैध साधन के रूप में माना। उन्होंने यह तर्क किया कि:

- एक वाक्य, जब एक विश्वसनीय वक्ता (आप्त) द्वारा बोला जाता है और सही तरीके से समझा जाता है, तो यह वैध ज्ञान व्यक्त करता है।
- उन्होंने वाक्य के अर्थ को निर्धारित करने में वाक्य संरचना, शब्दक्रम और संदर्भ उपयोग पर जोर दिया।

B) **सामान्यताओं और विशिष्टताओं पर बहस:** न्याय विचारकों ने यह बहस की कि शब्द वस्तुओं को किस प्रकार संदर्भित करते हैं—क्या वे विशिष्ट उदाहरणों को निरूपित करते हैं या वे सामान्य अवधारणाओं का संदर्भ प्रदान करते हैं?

- न्याय ने यथार्थवादी दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी, जिसमें शब्द सामान्यताओं को संदर्भित करते हैं और जिससे सामान्यीकरण की अनुमति मिलती है।
- यह बहस संदर्भ, वर्ग सदस्यता और अर्थ की संज्ञानात्मक प्रक्रिया पर गहरे विचार को जन्म देती है।

6.4 मीमांसा और अर्थविमर्शात्मक भाषाविज्ञान

मीमांसा स्कूल, जो मध्यकाल से पहले अस्तित्व में था, इस काल में भाषाई-दार्शनिक परिष्करण के उच्चतम स्तर पर पहुंचा। जैसे कि कुमारिल भट्ट (7वीं सदी ईस्वी) जैसे विचारकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

A) **शब्द-अर्थ संबंध:** मीमांसा दार्शनिकों ने शब्द अर्थ के सिद्धांतों का विकास किया, जिसमें शाब्दिक अर्थ (अभिधा), सुझाए गए अर्थ (लक्षणा) और द्वितीयक अर्थ (व्यङ्जना) पर जोर दिया। यह सूक्ष्म सिद्धांत महत्वपूर्ण था:

- शास्त्रों की व्याख्या में अस्पष्टताओं को हल करने के लिए
- रूपक भाषा, काव्य और रूपकों को समझने के लिए
- अर्थ के कई स्तरों के सिद्धांत के विकास के लिए

B) **क्रिया-केंद्रित विश्लेषण:** उन्होंने क्रियाओं को कार्य और अर्थ व्यक्त करने के केंद्र के रूप में देखा, जो आदेश-आधारित अभिव्यक्तियों को प्राथमिकता देने वाले अनुष्ठान ग्रंथों के साथ मेल खाते थे। उनके आदेशात्मक, इच्छाशक्ति

Scanned with OKEN Scanner

और कारणात्मक रूपों का विश्लेषण मौलिकता और प्रकारात्मकता के अर्थविज्ञान में योगदान करता है—जो आधुनिक भाषाविज्ञान में अभी भी बहस का विषय है।

7. भारतीय तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा में भाषा

भारतीय दर्शन में तर्कशास्त्र (न्याय) और ज्ञानमीमांसा (प्रमाण-शास्त्र) उन प्रक्रियाओं से गहरे जुड़े हुए हैं जिनके द्वारा हम सत्य ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस संदर्भ में भाषा का केंद्रीय स्थान है, न केवल ज्ञान के संचार के साधन के रूप में, बल्कि एक दार्शनिक विश्लेषण के विषय के रूप में भी। प्राचीन विचारकों जैसे **गौतम** (न्याय सूत्रों के लेखक) से लेकर बाद के तर्कशास्त्रियों जैसे **गंगेश** उपाध्याय तक, भारतीय दार्शनिकों ने यह अन्वेषण किया कि भाषा के प्रयोग सत्य, संदर्भ और संज्ञान से कैसे संबंधित होते हैं। उनके काम ने दुनिया के प्राचीनतम तर्कशास्त्र और अर्थविज्ञान प्रणालियों को जन्म दिया। यह खंड निम्नलिखित में भाषा की भूमिका को कवर करता है:

1. न्याय स्कूल और इसके औपचारिक तर्क प्रणाली
2. नव्य-न्याय (नई तर्कशास्त्र) आंदोलन
3. मौखिक प्रमाण (शब्द प्रमाण) के सिद्धांत
4. भाषा और ज्ञान के बीच संबंध

7.1 न्याय स्कूल: भारतीय तर्कशास्त्र की नींव

न्याय स्कूल, जिसकी स्थापना गौतम ने (लगभग 2वीं शताब्दी ईसा पूर्व) की, ने तर्कशास्त्र, ज्ञानमीमांसा और आलोचनात्मक तर्क की एक व्यापक प्रणाली विकसित की। इस प्रणाली में भाषा ज्ञान का स्रोत और तर्क विश्लेषण का उपकरण दोनों है।

A) चार प्रमाण (सत्य ज्ञान के साधन)

न्याय चार मान्य ज्ञान के स्रोतों को पहचानता है:

1. प्रत्यक्ष (अनुभव)
2. अनुमान (तर्क)
3. उपमान (समानता या उपमा)
4. शब्द (मौखिक प्रमाण)

Scanned with OKEN Scanner

यहां, शब्द सीधे तौर पर भाषा से जुड़ा है, जिससे इसका विश्लेषण न्याय प्रणाली के लिए आवश्यक हो जाता है।

B) अनुमान का संरचना (अनुमान)

न्याय के विचारकों ने तर्कों को संरचित करने के लिए भाषा का उपयोग किया। एक सामान्य पांच-भागीय न्याय तर्क (पंचवयव न्याय) में शामिल हैं:

1. प्रत्यज (प्रस्ताव) : जैसे, "पहाड़ी पर आग है।"
2. हेतु (कारण) : "क्योंकि वहां धुआं है।"
3. उदाहरण (उदाहरण) : "जहां-जहां धुआं होता है, वहां आग होती है, जैसे रसोई में।"
4. उपनय (आवेदन) : "पहाड़ी पर धुआं है।"
5. निष्कर्ष (निगमन) : "इसलिए, पहाड़ी पर आग है।"

प्रत्येक भाग को भाषाई कथनों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, और अनुमान की वैधता शब्दों, श्रेणियों और सामान्यीकरण के उचित उपयोग पर निर्भर करती है।

7.2 शब्द ज्ञान का स्रोत (शब्द प्रमाण)

भारतीय विचार में भाषा से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण ज्ञानमीमांसा योगदान यह है कि भाषा स्वयं एक सत्य ज्ञान का साधन है—केवल एक माध्यम नहीं, बल्कि एक स्रोत है।

A) शब्द प्रमाण की परिभाषा

- शब्द प्रमाण को विश्वसनीय मौखिक प्रमाण के रूप में परिभाषित किया गया है।
- यह एक विश्वसनीय स्रोत **(आप्त)** से आना चाहिए, जो सक्षम और ईमानदार हो।
- श्रोता को भी भाषा और संदर्भ को ठीक से समझना चाहिए। यह आधुनिक ज्ञानमीमांसकों द्वारा प्रमाण के स्रोत के रूप में बयान को कैसे स्वीकार करते हैं, उससे मिलता-जुलता है – लेकिन भारतीय संदर्भ में इसे तर्कशास्त्र में व्यवस्थित रूप से जोड़ा गया है।

B) शब्द के प्रकार

न्याय शब्द ज्ञान को वर्गीकृत करता है:

- **वैदिक (श्रुति)** – वेदों से प्राप्त मौखिक ज्ञान, जिसे निराकार और शाश्वत माना जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

- **लौकिक (स्मृति)** – मानव भाषण या सामान्य मौखिक संवाद।

दोनों को वैध माना जाता है यदि स्रोत विश्वसनीय है और सामग्री का अनुभव या अनुमान से विरोध नहीं होता।

7.3 नव्य-न्याय: भाषा और तर्क का पुनःकल्पना

नव्य-न्याय (नई तर्कशास्त्र) आंदोलन लगभग 13वीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ, इस शास्त्र ने न्याय प्रणाली को और अधिक सटीक और औपचारिक भाषा विश्लेषण के साथ परिष्कृत किया। यहां प्रमुख व्यक्ति **गंगेश उपाध्याय** हैं, जिन्होंने अपनी प्रमुख कृति *तत्त्वचिंतामणि* (वस्तुओं की प्रकृति पर विचार) की रचना की।

A) भाषाई और तर्कात्मक अभिव्यक्ति में सटीकता

नव्य-न्याय के दार्शनिकों ने एक अत्यधिक तकनीकी मेटा-भाषा बनाई ताकि ज्ञानात्मक और भाषाई संबंधों का सटीक रूप से वर्णन किया जा सके। यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण था–

- अस्पष्टता से बचने के लिए
- कानूनी, दार्शनिक और धार्मिक तर्कों को अधिक सख्त बनाने के लिए
- बहस में स्पष्टता सुनिश्चित करने के लिए

B) नव्य-न्याय विश्लेषण का उदाहरण

"मटका मेज़ पर है" जैसे बयान का विश्लेषण करते समय, नव्य-न्याय इस प्रकार अंतर करता है–

- गुणसूचक (विशेषण) – "मेज़ पर"
- गुणयुक्त वस्तु (विशेष्य) – "मटका"
- संबंध (संबंध) – मटका और मेज़ के बीच स्थानिक संबंध
- संबंध का संज्ञान – कैसे मन इस स्थानिक संबंध को समझता है

यह बहु-स्तरीय विश्लेषण आधुनिक कृतज्ञ-तर्क और औपचारिक अर्थविज्ञान की पूर्वकल्पना करता है।

8. भाषाई धरोहर और अन्य संस्कृतियों में उसका प्रसार

प्राचीन भारत की बौद्धिक परंपराएँ विशेष रूप से भाषाशास्त्र, तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा से संबंधित हैं, इन परम्पराओं ने न केवल भारतीय दर्शन और साहित्य पर बल्कि विश्वभर

Scanned with OKEN Scanner

की कई अन्य सांस्कृतिक और बौद्धिक परंपराओं पर गहरा प्रभाव डाला। यह प्रसार विभिन्न माध्यमों से हुआ, जैसे:

1. एशिया में पड़ोसी संस्कृतियों के साथ संवाद
2. उपनिवेशी मुठभेड़ और संस्कृत शिक्षा का वैश्विक प्रसार
3. आधुनिक भाषाशास्त्र और दार्शनिक आंदोलनों पर भारतीय विचारों का प्रभाव

इस खंड में हम यह जानेंगे कि कैसे भारतीय भाषाई विचारों ने विश्व के विभिन्न हिस्सों में व्याकरण, तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा के विकास को प्रभावित किया, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और भारतीय बौद्धिक परंपराओं की स्थायी धरोहर को उजागर करते हुए।

3.1 भारतीय भाषाशास्त्र का दक्षिण-पूर्व एशिया पर प्रभाव

दक्षिण-पूर्व एशिया, विशेष रूप से श्रीलंका, थाईलैंड, इंडोनेशिया, कंबोडिया और वियतनाम जैसे क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति और बौद्धिक परंपराओं का गहरा प्रभाव रहा है। यह प्रभाव मुख्य रूप से बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म और संस्कृत भाषा के प्रसार के माध्यम से आया, जो सभी अपने साथ तर्कशास्त्र, भाषाशास्त्र और दर्शनशास्त्र की समृद्ध प्रणालियाँ लेकर आए थे।

A) संस्कृत व्याकरण और ज्ञानमीमांसा

- संस्कृत व्याकरणज्ञ, जैसे पाणिनि, दक्षिण-पूर्व एशिया के भाषाई परंपराओं को आकार देने में महत्वपूर्ण थे।
- संस्कृत व्याकरण का विस्तृत और व्यवस्थित अध्ययन, विशेष रूप से अष्टाध्यायी जैसे ग्रंथों के माध्यम से, विभिन्न दक्षिण-पूर्व एशियाई भाषाओं में स्थानीय व्याकरणों के विकास के लिए एक ढांचा प्रदान किया।
- जैन और बौद्ध विचार, विशेष रूप से स्याद्वाद और **अपोह** (निषेध सिद्धांत), ने स्थानीय दार्शनिक संवादों को प्रभावित किया, जो भाषा और सत्य के संबंध में थे।

B) भारतीय तर्कशास्त्र और बहस परंपराओं का प्रसार

- भारतीय तर्कशास्त्र (न्याय और नव्य-न्याय) ने दक्षिण-पूर्व एशियाई बौद्ध विद्वत्ता पर गहरा प्रभाव डाला, खासकर श्रीलंका और थाईलैंड जैसे देशों में। बौद्ध ग्रंथ जैसे *अभिधम्म* और *विसुद्धिमग्ग* ने भारत में विकसित किए गए कई तर्कात्मक उपकरणों को अपनाया, जिनमें पर्यायवाची और ज्ञानमीमांसा तर्क शामिल हैं।

Scanned with OKEN Scanner

की कई अन्य सांस्कृतिक और बौद्धिक परंपराओं पर गहरा प्रभाव डाला। यह प्रसार विभिन्न माध्यमों से हुआ, जैसे:

1. एशिया में पड़ोसी संस्कृतियों के साथ संवाद
2. उपनिवेशी मुठभेड़ और संस्कृत शिक्षा का वैश्विक प्रसार
3. आधुनिक भाषाशास्त्र और दार्शनिक आंदोलनों पर भारतीय विचारों का प्रभाव

इस खंड में हम यह जानेंगे कि कैसे भारतीय भाषाई विचारों ने विश्व के विभिन्न हिस्सों में व्याकरण, तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा के विकास को प्रभावित किया, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और भारतीय बौद्धिक परंपराओं की स्थायी धरोहर को उजागर करते हुए।

8.1 भारतीय भाषाशास्त्र का दक्षिण-पूर्व एशिया पर प्रभाव

दक्षिण-पूर्व एशिया, विशेष रूप से श्रीलंका, थाईलैंड, इंडोनेशिया, कंबोडिया और वियतनाम जैसे क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति और बौद्धिक परंपराओं का गहरा प्रभाव रहा है। यह प्रभाव मुख्य रूप से बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म और संस्कृत भाषा के प्रसार के माध्यम से आया, जो सभी अपने साथ तर्कशास्त्र, भाषाशास्त्र और दर्शनशास्त्र की समृद्ध प्रणालियाँ लेकर आए थे।

A) संस्कृत व्याकरण और ज्ञानमीमांसा

- संस्कृत व्याकरणज्ञ, जैसे पाणिनि, दक्षिण-पूर्व एशिया के भाषाई परंपराओं को आकार देने में महत्वपूर्ण थे।
- संस्कृत व्याकरण का विस्तृत और व्यवस्थित अध्ययन, विशेष रूप से अष्टाध्यायी जैसे ग्रंथों के माध्यम से, विभिन्न दक्षिण-पूर्व एशियाई भाषाओं में स्थानीय व्याकरणों के विकास के लिए एक ढांचा प्रदान किया।
- जैन और बौद्ध विचार, विशेष रूप से स्याद्वाद और **अपोह** (निषेध सिद्धांत), ने स्थानीय दार्शनिक संवादों को प्रभावित किया, जो भाषा और सत्य के संबंध में थे।

B) भारतीय तर्कशास्त्र और बहस परंपराओं का प्रसार

- भारतीय तर्कशास्त्र (न्याय और नव्य-न्याय) ने दक्षिण-पूर्व एशियाई बौद्ध विद्वत्ता पर गहरा प्रभाव डाला, खासकर श्रीलंका और थाईलैंड जैसे देशों में। बौद्ध ग्रंथ जैसे *अभिधम्म* और *विसुद्धिमग्ग* ने भारत में विकसित किए गए कई तर्कात्मक उपकरणों को अपनाया, जिनमें पर्यायवाची और ज्ञानमीमांसा तर्क शामिल हैं।

Scanned with OKEN Scanner

- बहस की परंपराएँ, जैसे द्वंद्वात्मक तर्क और औपचारिक तर्कशास्त्र, जो भारतीय बौद्धिक जीवन का केंद्रीय हिस्सा थीं, बौद्ध धर्म के प्रसार के माध्यम से दक्षिण-पूर्व एशिया में अपनाई और अनुकूलित की गई; विशेष रूप से मठों में।

8.2 भारतीय भाषाशास्त्र का मध्यकालीन यूरोप में प्रसार

हालाँकि भारतीय भाषाशास्त्र का यूरोप पर प्रभाव अधिक अप्रत्यक्ष था, फिर भी मध्यकालीन यूरोपीय विचार पर इसका प्रभाव महत्वपूर्ण था, विशेष रूप से पुनर्जागरण और अन्वेषण युग के दौरान।

A) संस्कृत और भाषाशास्त्र के सिद्धांत

- पुनर्जागरण के मानवतावादियों ने प्राचीन भाषाओं में रुचि लेना शुरू किया, जिनमें संस्कृत भी शामिल थी, जिसे यूरोपीय विद्वानों द्वारा व्यापार, मिशनरी कार्य और इस्लामी विद्वानों के अनुवाद प्रयासों के माध्यम से जाना जा रहा था।
- यूरोपीय विद्वान जैसे विलियम जोन्स, जिन्होंने 18वीं शताब्दी के अंत में एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की, को अक्सर इंडो-यूरोपीय भाषा परिवार की पहचान करने और संस्कृत, लैटिन और ग्रीक के बीच संबंध को समझने का श्रेय दिया जाता है। यह पहचान तुलनात्मक भाषाशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण थी।
- प्राचीन भारत के कठोर व्याकरणिक प्रणालियाँ, विशेष रूप से पाणिनि का व्याकरण, ने यूरोपीय भाषाशास्त्र और व्याकरण सिद्धांतों के विकास पर गहरा प्रभाव डाला।

B) आधुनिक पश्चिमी भाषाशास्त्र पर प्रभाव

- पाणिनि की अष्टाध्यायी में भाषाई संरचनाओं के औपचारिककरण ने संरचनावाद और बाद में प्रजनक व्याकरण के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला।
- भाषाशास्त्री जैसे फर्डिनेंड डी सौसूर और नोआम चॉम्स्की भारतीय व्याकरणिक परंपराओं में पाए जाने वाले कठोर सांकेतिक विश्लेषण विधियों से प्रभावित थे।
- भाषा के व्याकरण को एक औपचारिक प्रणाली के रूप में देखने का विचार भारतीय परंपराओं से प्रभावित था, विशेष रूप से इस धारणा से कि भाषा को वाक्य विन्यास नियमों के सेट में घटित किया जा सकता है, जो बाद में आधुनिक भाषाशास्त्र में परिलक्षित हुआ।

Scanned with OKEN Scanner

8.3 उपनिवेशी मुठभेड़ और संस्कृत शिक्षा का वैश्विक प्रसार

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशी काल (18वीं से 19वीं शताब्दी) ने संस्कृत और उसकी भाषाई परंपराओं को व्यापक रूप से जाना। ब्रिटिश उपनिवेशी अधिकारी, मिशनरी और विद्वान भारतीय बौद्धिक परंपराओं में गहरी रुचि रखते थे, और उन्हें यूरोपीय पाठकों के लिए अनुवादित और दस्तावेजित किया।

A) प्राच्यवाद और संस्कृत अध्ययन

- उपनिवेशी मुठभेड़ ने यूरोपीय विश्वविद्यालयों में संस्कृत अध्ययन की स्थापना की, विशेष रूप से इंग्लैंड, जर्मनी और फ्रांस में।
- विद्वान जैसे विलियम जोन्स, मैक्स मुलर और राल्फ टी.एच. ग्रिफिथ ने प्रमुख संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया, जिसमें पाणिनि का अष्टाध्यायी, वेदांत के ग्रंथ और बौद्ध धर्मग्रंथ शामिल हैं, और उन्होंने भारतीय विचारों को व्याकरण, तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा के बारे में यूरोपीय पाठकों के सामने प्रस्तुत किया।
- संस्कृत अध्ययन ने इस प्रकार इंडोलॉजी के विकास में केंद्रीय भूमिका निभाई, और जो आज माना जाता है कि वह शास्त्रीय भाषाशास्त्र है, उसका बड़ा हिस्सा भारतीय भाषाई परंपराओं के साथ इन शुरुआती मुठभेड़ों का ऋणी है।

B) भारतीय भाषाशास्त्र के विचारों का पुनरुद्धार

- उपनिवेशी काल के दौरान भारत में एक पुनरुद्धारवादी आंदोलन का विकास हुआ, जिसमें विद्वान जैसे शंकरानंद, रामानुजाचार्य और औरोबिंदो घोष ने भारतीय भाषाशास्त्र की शास्त्रीय परंपराओं के साथ पुनः संपर्क किया और उन्हें बढ़ावा दिया।
- पाणिनियन व्याकरण और भारतीय तर्कशास्त्र का पुन: परिचय आधुनिक भाषाशास्त्र अनुसंधान के संदर्भ में भारतीय बौद्धिक परंपराओं को वैश्विक दार्शनिक और भाषाशास्त्र बहसों में समाहित करने का कारण बना।

9. प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण और संस्कृत की भूमिका

प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (Natural Language Processing) भाषाशास्त्र और कंप्यूटर विज्ञान की एक शाखा है जो कंप्यूटरों को मानव भाषा को समझने, व्याख्या करने और उत्पन्न करने में सक्षम बनाने से संबंधित है। NLP कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), कंप्यूटर विज्ञान और भाषाशास्त्र से तकनीकों को लागू करता है ताकि मानव संवाद और मशीन

Scanned with OKEN Scanner

समझ के बीच अंतर को पाटा जा सके। NLP का उद्देश्य कंप्यूटरों को प्राकृतिक भाषा का उपयोग करके मनुष्यों के साथ संवाद करने की अनुमति देना है, जिससे वे निम्नलिखित कार्य कर सकें:

- प्राकृतिक भाषा में दिए गए निर्देशों को समझना और उन्हें क्रियान्वित करना।
- भाषा डेटा से सार्थक जानकारी प्राप्त करने, विश्लेषण करने और निकालने के लिए विधियाँ विकसित करना, यह सुनिश्चित करते हुए कि वाक्य में अर्थ तार्किक रूप से और स्पष्ट रूप से जुड़े हों।

NLP में एक प्रमुख चुनौती प्राकृतिक भाषाओं की अंतर्निहित अस्पष्टताओं से निपटना है। शब्दों के अक्सर कई अर्थ होते हैं, और ये अर्थ संदर्भ के आधार पर बदल सकते हैं। संस्कृत भाषाशास्त्र में, इस प्रकार के बहु-सम्भावित अर्थों की अवधारणा को **आकांक्षा** कहा जाता है, जो शब्द के अर्थ की "अपेक्षाएँ" होती हैं, जो वाक्य में अन्य अर्थों से जुड़ती हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई क्रिया (धातु) वाक्य में आती है, तो यह सामान्यत: "अपेक्षा" करती है कि उसे एक कर्ता (कारक) मिलेगा, और यह संबंध वाक्य के अर्थ को व्याख्यायित करने के लिए आवश्यक है। कर्ता को द्वितीय विभक्ति (कारक) द्वारा चिह्नित किया जाएगा, और इन दो तत्वों (क्रिया और कर्ता) के बीच संबंध अर्थ को स्पष्ट करता है।

NLP की श्रेणियाँ

NLP को दो मुख्य उप-क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है:

1. प्राकृतिक भाषा उत्पन्न करना (Natrual Language Generation)

NLG में संरचित अर्थ प्रतिनिधित्व से सुसंगत और संदर्भानुकूल टेक्स्ट उत्पन्न करने की प्रक्रिया शामिल है। यह प्रक्रिया नियमों, शब्दकोशों और वाक्य विन्यास का उपयोग करके अमूर्त विचारों या डेटा से वाक्य बनाती है। उदाहरण के लिए, तथ्यों या प्रश्नों के एक सेट के आधार पर, एक NLG प्रणाली व्याकरणिक रूप से सही और संदर्भ में सटीक वाक्य उत्पन्न कर सकती है।

2. प्राकृतिक भाषा समझना (Natural Language Understanding)

NLU दूसरी ओर, टेक्स्ट डेटा के अर्थ को समझने पर केंद्रित है। इसमें शब्दों और वाक्यांशों का पार्सिंग, विश्लेषण और अस्पष्टता का निराकरण करना शामिल है, खासकर जब शब्दों के कई संभावित अर्थ होते हैं। NLU प्रणालियाँ यह "समझती हैं" कि शब्द किस संदर्भ में उपयोग किए गए हैं, जो NLP में एक महत्वपूर्ण चुनौती है। जबकि मनुष्य

Scanned with OKEN Scanner

संदर्भ के आधार पर जल्दी से अस्पष्टताओं को हल कर सकते हैं, कंप्यूटरों को इस कार्य में अक्सर कठिनाई होती है, विशेष रूप से उन शब्दों से निपटने में जिनके कई अर्थ होते हैं।

ये दोनों क्षेत्र—NLG और NLU—पूरक हैं। NLU इनपुट (टेक्स्ट या भाषण) को संसाधित करता है ताकि अर्थ निकाला जा सके, जबकि NLG मानव-पढ़ने योग्य रूप में आउटपुट उत्पन्न करता है। दोनों का संयोजन कार्यात्मक NLP प्रणालियाँ बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।

अस्पष्टता की चुनौती

प्रभावी NLP प्राप्त करने में सबसे बड़ी बाधाओं में से एक प्राकृतिक भाषाओं में अस्पष्टता है। शब्दों के अर्थ अक्सर संदर्भ के आधार पर बदलते हैं। मनुष्य आमतौर पर संदर्भ संकेतों का उपयोग करके इस अस्पष्टता को सहजता से हल कर सकते हैं, लेकिन कंप्यूटर इसके साथ संघर्ष करते हैं। उदाहरण के लिए, "बैंक" शब्द एक वित्तीय संस्थान, नदी के किनारे, या कुछ रखने का स्थान हो सकता है, यह संदर्भ पर निर्भर करता है। ऐसी अस्पष्टताओं का समाधान करने के लिए उन्नत संदर्भ विश्लेषण की आवश्यकता होती है, जो वर्तमान NLP प्रणालियों में एक चुनौती बनी हुई है।

भारतीय भाषाशास्त्र में, इस अर्थ की अस्पष्टता को हल करने की क्षमता को **योग्यता** कहा जाता है, जो शब्द के सही अर्थ को संदर्भ के आधार पर पहचानने की क्षमता है। इस प्रक्रिया में सहायता करने के लिए, भारतीय व्याकरणज्ञों ने 14 निर्धारक (उपकरण या मार्गदर्शन) विकसित किए हैं जो यह सुनिश्चित करने में मदद करते हैं कि एक शब्द का उद्देश्यपूर्ण अर्थ निर्धारित किया जा सके, जब उसके कई संभावित अर्थ होते हैं। ये निर्धारक अस्पष्टताओं को हल करने के लिए संरचित तरीका प्रदान करते हैं, और इनके सिद्धांतों को NLP प्रणालियों में सुधार के लिए लागू किया जा सकता है, विशेष रूप से संस्कृत जैसी भाषाओं में, जहाँ अर्थ संदर्भ-संवेदनशील होते हैं और अत्यधिक संरचित होते हैं।

संस्कृत और NLP

संस्कृत, अपनी समृद्ध व्याकरणिक संरचना और तार्किक ढांचे के साथ, संगणकीय भाषाशास्त्र और NLP के क्षेत्र में अद्वितीय लाभ प्रदान करती है। इसकी व्युत्पत्ति और आवृत्ति-आधारित प्रकृति इसे संगणकीय विश्लेषण के लिए विशेष रूप से उपयुक्त बनाती है। संस्कृत शब्द प्रणालीबद्ध नियमों (जैसे पाणिनि के व्याकरण) के माध्यम से बनती है, और प्रत्येक शब्द का रूप और अर्थ इन नियमों के आवेदन से व्युत्पन्न किया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

संदर्भ के आधार पर जल्दी से अस्पष्टताओं को हल कर सकते हैं, कंप्यूटरों को इस कार्य में अक्सर कठिनाई होती है, विशेष रूप से उन शब्दों से निपटने में जिनके कई अर्थ होते हैं।

ये दोनों क्षेत्र—NLG और NLU—पूरक हैं। NLU इनपुट (टेक्स्ट या भाषण) को संसाधित करता है ताकि अर्थ निकाला जा सके, जबकि NLG मानव-पढ़ने योग्य रूप में आउटपुट उत्पन्न करता है। दोनों का संयोजन कार्यात्मक NLP प्रणालियाँ बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।

अस्पष्टता की चुनौती

प्रभावी NLP प्राप्त करने में सबसे बड़ी बाधाओं में से एक प्राकृतिक भाषाओं में अस्पष्टता है। शब्दों के अर्थ अक्सर संदर्भ के आधार पर बदलते हैं। मनुष्य आमतौर पर संदर्भ संकेतों का उपयोग करके इस अस्पष्टता को सहजता से हल कर सकते हैं, लेकिन कंप्यूटर इसके साथ संघर्ष करते हैं। उदाहरण के लिए, "बैंक" शब्द एक वित्तीय संस्थान, नदी के किनारे, या कुछ रखने का स्थान हो सकता है, यह संदर्भ पर निर्भर करता है। ऐसी अस्पष्टताओं का समाधान करने के लिए उन्नत संदर्भ विश्लेषण की आवश्यकता होती है, जो वर्तमान NLP प्रणालियों में एक चुनौती बनी हुई है।

भारतीय भाषाशास्त्र में, इस अर्थ की अस्पष्टता को हल करने की क्षमता को **योग्यता** कहा जाता है, जो शब्द के सही अर्थ को संदर्भ के आधार पर पहचानने की क्षमता है। इस प्रक्रिया में सहायता करने के लिए, भारतीय व्याकरणज्ञों ने 14 निर्धारक (उपकरण या मार्गदर्शन) विकसित किए हैं जो यह सुनिश्चित करने में मदद करते हैं कि एक शब्द का उद्देश्यपूर्ण अर्थ निर्धारित किया जा सके, जब उसके कई संभावित अर्थ होते हैं। ये निर्धारक अस्पष्टताओं को हल करने के लिए संरचित तरीका प्रदान करते हैं, और इनके सिद्धांतों को NLP प्रणालियों में सुधार के लिए लागू किया जा सकता है, विशेष रूप से संस्कृत जैसी भाषाओं में, जहाँ अर्थ संदर्भ-संवेदनशील होते हैं और अत्यधिक संरचित होते हैं।

संस्कृत और NLP

संस्कृत, अपनी समृद्ध व्याकरणिक संरचना और तार्किक ढांचे के साथ, संगणकीय भाषाशास्त्र और NLP के क्षेत्र में अद्वितीय लाभ प्रदान करती है। इसकी व्युत्पत्ति और आवृत्ति-आधारित प्रकृति इसे संगणकीय विश्लेषण के लिए विशेष रूप से उपयुक्त बनाती है। संस्कृत शब्द प्रणालीबद्ध नियमों (जैसे पाणिनि के व्याकरण) के माध्यम से बनती है, और प्रत्येक शब्द का रूप और अर्थ इन नियमों के आवेदन से व्युत्पन्न किया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

संस्कृत को NLP और AI अनुसंधान के लिए आकर्षक विकल्प बनाने के कुछ मुख्य कारण हैं:

- **उच्च संरचित व्याकरण:** संस्कृत का व्याकरण औपचारिक और व्यवस्थित है, जिसमें शब्द निर्माण, विभक्ति चिह्न, काल, और अन्य के लिए नियम हैं। इससे संगणकीय प्रणालियों के लिए संस्कृत टेक्स्ट का विश्लेषण और प्रसंस्करण अन्य कम संरचित भाषाओं की तुलना में आसान हो जाता है।
- **शब्द निर्माण:** संस्कृत नियम-आधारित दृष्टिकोण का उपयोग करती है, विशेष रूप से संज्ञा शब्दों (समास) के निर्माण में। यह लगभग अनंत संख्या में शब्द संयोजनों की अनुमति देती है, जिन्हें संगणकीय विधियों का उपयोग करके प्रभावी रूप से मॉडल किया जा सकता है।
- **अस्पष्टता का निराकरण:** संस्कृत में आकांक्षा (अपेक्षा) की अवधारणा वाक्य के अर्थ को समझने से सीधे जुड़ी होती है। यह अस्पष्टताओं को हल करने में मदद करती है, क्योंकि यह स्पष्ट नियम प्रदान करती है कि शब्दों को संदर्भ में एक-दूसरे से कैसे संबंधित किया जाना चाहिए, जिससे संस्कृत NLP में अस्पष्टता निराकरण तकनीकों के अन्वेषण के लिए एक मूल्यवान भाषा बन जाती है।

संस्कृत संगणकीय भाषाशास्त्र में प्रगति

हाल के वर्षों में, संस्कृत संगणकीय भाषाशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। संस्कृत टेक्स्ट के विश्लेषण, उत्पन्न करने और पदच्छेद (Parsing) के लिए कई उपकरण और संसाधन विकसित किए गए हैं। कुछ प्रमुख विकासों में शामिल हैं:

- **रूपविज्ञान विश्लेषक:** ये उपकरण संस्कृत शब्दों को उनके घटक भागों (मूल, उपसर्ग, प्रत्यय) में विभाजित करते हैं, जिससे व्याकरणिक नियमों के आधार पर शब्दों का स्वचालित प्रसंस्करण और निर्माण संभव होता है।
- **शब्दकोश संसाधन:** व्यापक संस्कृत शब्दकोश और डेटाबेस विकसित किए जा रहे हैं जो NLP कार्यों के लिए आवश्यक भाषाई संसाधन प्रदान करते हैं, जैसे कि मशीन अनुवाद, अर्थशास्त्र विश्लेषण, और टेक्स्ट उत्पन्न करना।
- **शब्द जनरेटर और पार्सर:** ये उपकरण संस्कृत व्याकरण के औपचारिक नियमों का उपयोग करके नए शब्द उत्पन्न करने या जटिल संस्कृत वाक्यों को

Scanned with OKEN Scanner

पार्स करने के लिए बनाए गए हैं। इन उपकरणों का उपयोग मशीन अनुवाद, स्वचालित सामग्री निर्माण, और जानकारी निष्कर्षण में किया जाता है।

- **संयोग शब्द विश्लेषण:** संस्कृत के संयोग शब्द निर्माण (समास) में संगणकीय भाषाशास्त्र का एक और क्षेत्र है। प्रणालियाँ विकसित की गई हैं जो संयोग शब्दों का स्वचालित रूप से विश्लेषण और निर्माण करती हैं, जिससे संस्कृत में अंतर्निहित जटिल शब्द संरचनाओं को संभालना आसान हो जाता है।

10. सारांश

भारतीय भाषाशास्त्र की स्थायी धरोहर यह प्रदर्शित करती है कि प्राचीन भारतीय भाषाई, तार्किक, और ज्ञानमीमांसा परंपराओं का वैश्विक बौद्धिक विचार और आधुनिक शैक्षिक अनुशासनों पर गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा है। यह खंड भारतीय विद्वानों द्वारा व्याकरण के व्यवस्थित दृष्टिकोण पर जोर देता है, जैसे पाणिनि, जिनकी *अष्टाध्यायी* ने आधुनिक भाषाशास्त्र सिद्धांतों की नींव रखी, विशेष रूप से वाक्य विन्यास और औपचारिक अर्थशास्त्र में। इसके अतिरिक्त, भाषा, अर्थ और ज्ञान की भारतीय अवधारणाएँ– जिनमें भर्तृहरि और दिग्नाग जैसे व्यक्तित्वों का योगदान शामिल है– ने विभिन्न दार्शनिक परंपराओं में ज्ञानमीमांसा, तर्कशास्त्र और व्यावहारिक के विकास को प्रभावित किया, जिसमें पश्चिमी विचारधाराएँ भी शामिल हैं। भारतीय सिद्धांतों ने वाक्य विन्यास और अर्थशास्त्र, संज्ञानात्मक भाषाशास्त्र और संदर्भात्मक अर्थ के बीच के संबंधों को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसने आधुनिक भाषाशास्त्र, दर्शन और संज्ञानात्मक विज्ञान पर गहरा प्रभाव डाला है।

इसके अलावा, भारतीय भाषाशास्त्र और दर्शन के योगदान आज भी अंतरविषयक अध्ययन को आकार देते हैं। तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा में भारतीय धरोहर, विशेष रूप से वैध तर्क, निराकरण और अर्थ निर्माण के क्षेत्रों में, आज भी भाषा दर्शन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, और भाषाशास्त्रात्मक मानवशास्त्र में समकालीन चर्चाओं का एक अभिन्न हिस्सा बनी हुई है। खंड इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्राचीन भारतीय विचारधारा की प्रासंगिकता अब भी जारी है, क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों के विद्वान भारतीय बौद्धिक परंपराओं से प्रेरणा लेकर भाषाशास्त्र, दर्शन और संज्ञानात्मक विज्ञान में आधुनिक सिद्धांतों को आगे बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं।

Scanned with OKEN Scanner

सुझावात्मक पठनीय सामग्री

1. "*A History of Sanskrit Literature*" by Arthur Macdonell (1900) Dover Publications.
2. "*Introduction to Indian Linguistics*" by P. K. Jha (2005), Motila Banarsidass Publishers.
3. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022) "*Introduction to Indian Knowledge System*", PHI learning privat ltd.
4. OP Pandey (2023), "*Bharat Vaibhav*", National Book Trust, India.
5. "*Sanskrit Grammar*" by William Dwight Whitney (1879), Harvar University Press.
6. "*The Aṣṭādhyāyī of Pāṇini*" translated by R. L. H. Jha (1999), Motila Banarsidass Publishers.
7. "*Sanskrit Syntax and the Theory of Meaning*" by M. L. Dube (1975) Munshiram Manoharlal Publishers.
8. "*The Grammar of the Sanskrit Language*" by A. A. Macdone (1910), Dover Publications.
9. "*Theories of Meaning in Indian Philosophy*" by K. S. Narayanaswam (1990), Motilal Banarsidass Publishers.
10. "*The Syntax of Sanskrit*" by M. L. Dube (1987), HarperCollins.
11. "*The Vākya-Padīya of Bhartrhari*" translated by N. D. Bhatt (1991) Motilal Banarsidass Publishers.
12. "*Computational Linguistics and Sanskrit*" by C. P. Sinha (2002) Springer.
13. "*Indian Theories of Meaning and their Impact on Wester Philosophy*" by M. H. Bhagvat (1995), Oxford University Press.
14. "*The Impact of Indian Philosophy on Contemporary Philosophy o Language*" by P. T. Raju (1992), Wiley-Blackwell.

Scanned with OKEN Scanner

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्राचीन भारत में भाषाशास्त्र का मुख्य ध्यान किस पर था?
   A. सामाजिक संरचनाओं की समझ
   B. भाषा की संरचना और कार्य का विश्लेषण
   C. तात्त्विक वाद पर दार्शनिक चर्चा
   D. प्राचीन ग्रंथों का ऐतिहासिक दस्तावेजीकरण

2. प्राचीन भारतीय विद्वान कौन था जिसे संस्कृत व्याकरण के अध्ययन में एक अग्रदूत माना जाता है?
   A. पतंजलि
   B. पाणिनी
   C. कालिदास
   D. भास

3. पाणिनी का मुख्य काम जो संस्कृत व्याकरण को व्यवस्थित करता है, उसे क्या कहा जाता है?
   A. मनुस्मृति
   B. अष्टाध्यायी
   C. वेद
   D. उपनिषद

4. भारतीय भाषाशास्त्र की प्रमुख विशेषता क्या है?
   A. केवल वाक्य रचना पर ध्यान केंद्रित करना
   B. ध्वन्यात्मक विश्लेषण का विस्तृत अध्ययन
   C. लिखित व्याकरण प्रणालियों का अभाव
   D. दार्शनिक प्रणालियों में भाषा का निषेध

Scanned with OKEN Scanner

5. प्राचीन भारत में कौन सा दार्शनिक विद्यालय भाषा और अर्थ के अध्ययन से सबसे अधिक जुड़ा हुआ है?
   A. वेदांत
   B. न्याय
   C. योग
   D. सांख्य

6. भारतीय भाषाशास्त्र में उस ध्वनि इकाई को क्या कहा जाता है, जो अर्थ को स्पष्ट करने में सक्षम हो?
   A. मीमांसा
   B. ध्वनि
   C. रूपिक
   D. शब्द

7. संस्कृत व्याकरण में, निम्नलिखित में से कौन सा नियम है जो धातु से शब्दों के निर्माण की अनुमति देता है?
   A. धातु
   B. तंत्र
   C. सूत्र
   D. विष्णु

8. पाणिनी द्वारा विकसित प्रणाली किस प्रकार के नियमों पर आधारित है?
   A. निराकरणात्मक तर्क
   B. सामान्यीकृत नियम और रूपरेखाएँ
   C. सख्त ध्वन्यात्मक नियम
   D. रूपिक-आधारित रूपांतरण

9. निम्नलिखित में से कौन सा प्राचीन भारतीय दार्शनिक ग्रंथ है जिसमें व्याकरण और भाषा संरचना पर चर्चा की गई है?
   A. भगवद गीता
   B. अष्टाध्यायी
   C. महाभारत
   D. योग सूत्र

Scanned with OKEN Scanner

5. प्राचीन भारत में कौन सा दार्शनिक विद्यालय भाषा और अर्थ के अध्ययन से सबसे अधिक जुड़ा हुआ है?
   A. वेदांत
   B. न्याय
   C. योग
   D. सांख्य

6. भारतीय भाषाशास्त्र में उस ध्वनि इकाई को क्या कहा जाता है, जो अर्थ को स्पष्ट करने में सक्षम हो?
   A. मीमांसा
   B. ध्वनि
   C. रूपिक
   D. शब्द

7. संस्कृत व्याकरण में, निम्नलिखित में से कौन सा नियम है जो धातु से शब्दों के निर्माण की अनुमति देता है?
   A. धातु
   B. तंत्र
   C. सूत्र
   D. विष्णु

8. पाणिनी द्वारा विकसित प्रणाली किस प्रकार के नियमों पर आधारित है?
   A. निराकरणात्मक तर्क
   B. सामान्यीकृत नियम और रूपरेखाएँ
   C. सख्त ध्वन्यात्मक नियम
   D. रूपिक-आधारित रूपांतरण

9. निम्नलिखित में से कौन सा प्राचीन भारतीय दार्शनिक ग्रंथ है जिसमें व्याकरण और भाषा संरचना पर चर्चा की गई है?
   A. भगवद गीता
   B. अष्टाध्यायी
   C. महाभारत
   D. योग सूत्र

Scanned with OKEN Scanner

10. मीमांसा विद्यालय द्वारा किस भाषाशास्त्रीय पहलू पर बल दिया गया?
   A. वाक्य रचना और शब्द क्रम
   B. शब्दों की ध्वन्यात्मक संरचना
   C. यज्ञात्मक संदर्भों में शब्दों का अर्थ
   D. धातु से क्रियाओं का निर्माण

11. न्याय विद्यालय का भाषा से संबंधित एक प्रमुख चिंतन क्या था?
   A. वाक्य संरचना
   B. शब्द निर्माण के तरीके
   C. तर्क और अनुमानों की वैधता
   D. वैदिक व्याख्याएँ

12. भर्तृहरि के दर्शन में "स्फोट" का सिद्धांत क्या संदर्भित करता है?
   A. शब्द में अर्थ की सबसे छोटी इकाई
   B. शब्द द्वारा व्यक्त कुल अर्थ
   C. वाक्य की ध्वन्यात्मक संरचना
   D. धातु से शब्दों का निर्माण

13. निम्नलिखित में से कौन सा कथन संस्कृत व्याकरण और भारतीय दर्शन के बीच संबंध को सर्वोत्तम रूप से वर्णित करता है?
   A. संस्कृत व्याकरण दर्शन से अलग था
   B. व्याकरण को अर्थ से अप्रासंगिक, केवल नियमों की एक अमूर्त प्रणाली के रूप में देखा जाता था
   C. व्याकरण को भाषा और अर्थ पर दार्शनिक चर्चाओं में एकीकृत किया गया था
   D. दार्शनिक विचारों का संस्कृत व्याकरण के अध्ययन पर कोई प्रभाव नहीं था

14. प्राचीन भारत में कौन सा तर्कशास्त्र प्रणाली तर्क, अनुमानों और वैध तर्कों पर ध्यान केंद्रित करती है?
   A. मीमांसा
   B. न्याय
   C. वेदांत
   D. योग

Scanned with OKEN Scanner

15. पाणिनी के व्याकरण के अनुसार, एक शब्द को इसके आधार पर वर्गीकृत किया जाता है:

A. रूपिक संरचना
B. अर्थपूर्ण सामग्री
C. ध्वन्यात्मक घटक
D. व्याकरणिक कार्य

16. भारतीय दार्शनिक परंपरा में "शब्द" शब्द का क्या अर्थ है?

A. अंतिम सत्य
B. भाषा या ध्वनि
C. अनुष्ठानिक भाषण
D. शब्दों का आध्यात्मिक अर्थ

17. भारतीय ज्ञानमीमांसा में "प्रमाण" शब्द का क्या अर्थ है?

A. भाषा का सही रूप
B. ज्ञान का वैध साधन
C. शब्दों का निर्माण
D. वाक्यों की व्याकरणिक रचनावली

18. निम्नलिखित में से कौन सा प्राचीन ग्रंथ वैदिक अनुष्ठानों के संदर्भ में भाषा के दार्शनिक और व्याकरणिक विश्लेषण से संबंधित है?

A. मीमांसा
B. भगवद् गीता
C. अष्टाध्यायी
D. तैत्तिरीय उपनिषद

19. प्राचीन भारत में भाषा का अध्ययन मुख्य रूप से किस पर केंद्रित था?

A. शब्दों का उच्चारण
B. शब्दों का अर्थ और व्याख्या
C. संस्कृत का लिखित रूप
D. भाषा का मानव व्यवहार पर प्रभाव

Scanned with OKEN Scanner

20. पाणिनी द्वारा विकसित व्याकरणात्मक संरचना किसके लिए प्रसिद्ध है?
A. शब्द निर्माण के सरल नियम
B. विभक्ति और निर्माण के लिए जटिल नियमों की प्रणाली
C. केवल वाक्य रचना पर ध्यान केंद्रित करना
D. ध्वन्यात्मकता पर ध्यान न देना

21. भारतीय ज्ञानमीमांसा के अनुसार, बौद्ध और जैन विद्यालयों के अनुसार भाषा की क्या भूमिका था?
A. भाषा सत्य की प्राप्ति में एक अवरोध है
B. भाषा तर्कपूर्ण प्रमाणों के निर्माण में मदद करती है
C. भाषा भौतिक संसार को पार करने का एक माध्यम है
D. भाषा एक उपकरण है जो वास्तविकता को निषेध और संदर्भ के माध्यम से समझने के लिए उपयोग किया जाता है

22. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय दर्शन विद्यालय पवित्र ग्रंथों के अर्थ के अध्ययन में भाषा का उपयोग करने से सीधे जुड़ा हुआ है?
A. न्याय
B. मीमांसा
C. योग
D. वेदांत

23. संस्कृत व्याकरण में ध्वन्यात्मक अध्ययन का श्रेय निम्नलिखित में से किसका है?
A. गौतम
B. पाणिनी
C. पतंजलि
D. कात्यायन

24. निम्नलिखित में से कौन सा शब्द संस्कृत व्याकरण में शब्दों को उनके अर्थ और कार्य के आधार पर वर्गीकृत करने का संदर्भित करता है?
A. सूत्र
B. शब्द
C. धातु
D. संधि

Scanned with OKEN Scanner

25. मीमांसा विद्यालय के मुख्य चिंता का विषय भाषा के संदर्भ में क्या था?

A. तर्कपूर्ण तर्कों का अध्ययन

B. यज्ञ ग्रंथों में शब्दों के सही अर्थ की व्याख्या

C. भाषा और दर्शन के बीच संबंध

D. ध्वन्यात्मकता का विकास

26. संस्कृत व्याकरण पर सबसे प्रारंभिक ज्ञात कार्य कौन सा था?

A. मीमांसा

B. अष्टाध्यायी

C. नाट्यशास्त्र

D. महाभारत

27. प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्र का मुख्य ध्यान किस पर था?

A. केवल ध्वन्यात्मकता की खोज

B. दर्शनात्मक संवाद के लिए भाषा का अध्ययन

C. बोले गए भाषा का रिकॉर्डिंग

D. आधुनिक भाषाओं का विकास

28. संस्कृत ध्वन्यात्मकता के सिद्धांत में आधारभूत कार्य का श्रेय किसे दिया जाता है?

A. कात्यायन

B. पाणिनी

C. पतंजलि

D. भर्तृहरि

29. पाणिनी की अष्टाध्यायी मुख्य रूप से किस पर केंद्रित है?

A. भाषा के धार्मिक चर्चा

B. संस्कृत के व्याकरणिक संरचना

C. संस्कृत में काव्य रूप

D. भाषा में दार्शनिक सिद्धांत

Scanned with OKEN Scanner

30. भारतीय भाषाशास्त्र के अनुसार, भाषा में ध्वनि की सबसे छोटी इकाई को क्या कहा जाता है?

A. रूपिक
B. ध्वनि
C. शब्द
D. वाक्य

31. प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्र में, निम्नलिखित में से कौन सा शब्द अर्थ की मूल इकाई माना जाता है?

A. ध्वनि
B. धातु
C. रूपिक
D. वाक्य

32. संस्कृत में शब्द के अर्थ को बनाने के लिए ध्वनियों का संयोजन किस व्याकरणिक सिद्धांत के तहत आता है?

A. संधि
B. ध्वन्यात्मता
C. सूत्र
D. वाक्य रचना

33. शब्द के सिद्धांत का क्या अर्थ है?

A. वे ध्वनियाँ जो अर्थ नहीं व्यक्त करतीं
B. भाषा को ध्वनि और अर्थ के रूप में एक प्रणाली के रूप में देखना
C. भाषा और अनुष्ठान के बीच संबंध
D. संस्कृत में एक विशेष व्याकरणिक नियम

34. कौन सा भारतीय दर्शन विद्यालय अनुष्ठान और वेदों के ग्रंथों में भाषा और अर्थ के महत्व पर बल देता है?

A. न्याय
B. मीमांसा
C. वेदांत
D. सांख्य

Scanned with OKEN Scanner

35. पाणिनी के अनुसार, व्याकरण का प्राथमिक कार्य क्या है?

A. भाषण में तार्किक संगति स्थापित करना

B. शब्द उपयोग और निर्माण के नियमों का वर्णन करना

C. प्राचीन ग्रंथों का अर्थ व्याख्यायित करना

D. धार्मिक शास्त्रों की याददाश्त में मदद करना

36. भर्तृहरि के अनुसार "स्फोट" का सिद्धांत क्या संदर्भित करता है?

A. व्याकरणिक नियमों की एक प्रणाली

B. एक शब्द के रूप में व्यक्त कुल अर्थ

C. एक विशेष ध्वन्यात्मक ध्वनि

D. वाक्य की औपचारिक वाक्य रचना

37. प्राचीन भारतीय दार्शनिकों में से कौन ने ज्ञान के निर्माण में भाषा और अनुभूति के बीच के संबंध पर बल दिया?

A. न्याय

B. पतंजलि

C. भर्तृहरि

D. दिग्नाग

38. प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्र में "व्याकरण" का अध्ययन मुख्य रूप से किस पर केंद्रित था?

A. ध्वन्यात्मता और ध्वनियाँ

B. वाक्य रचना और वाक्य संरचना

C. वेदों के ग्रंथों का व्याकरण

D. दर्शन में शब्दों का अर्थ

39. भारतीय "प्रमाण" सिद्धांत मुख्य रूप से किस पर केंद्रित है?

A. ज्ञान का स्रोत और ज्ञान प्राप्त करने के तरीके

B. भाषा का ध्वन्यात्मक विश्लेषण

C. शब्दों की व्याकरणिक संरचना

D. वाक्य रचना और अर्थ का संबंध

Scanned with OKEN Scanner

40. भारतीय भाषाशास्त्र में "मीमांसा" शब्द किस अध्ययन से संबंधित है?

A. तर्क

B. अनुष्ठान, वेदों के ग्रंथों और अर्थ की व्याख्या

C. व्याकरण के सिद्धांत

D. भाषा की ध्वन्यात्मक संरचनाएँ

41. कौन सा भारतीय दर्शन विद्यालय भाषा में वैध अनुमानों और तार्किकता का विस्तृत विश्लेषण करता है?

A. न्याय

B. योग

C. सांख्य

D. वेदांत

42. "अपोहन" का सिद्धांत, जो कहता है कि अर्थ विकल्पों के निषेध द्वारा समझा जाता है, किस परंपरा से संबंधित है?

A. न्याय

B. मीमांसा

C. बौद्ध दर्शन

D. जैन दर्शन

43. पाणिनी के व्याकरण में "सूत्र" क्या होते हैं?

A. धार्मिक ग्रंथ जो दार्शनिक अर्थ रखते हैं

B. छोटे सूत्रात्मक नियम जो व्याकरणिक संरचनाओं का वर्णन करते हैं

C. लंबे दार्शनिक ग्रंथ

D. संस्कृत साहित्य में काव्य रचनाएँ

44. न्याय विद्यालय के अनुसार, भाषा का मुख्य उद्देश्य क्या होता है?

A. अनुष्ठानिक निर्देशों को व्यक्त करना

B. अंतिम तात्त्विक सत्य को प्रकट करना

C. तर्क और वैध ज्ञान की स्थापना करना

D. दार्शनिक सिद्धांतों को प्रमाणित करना

Scanned with OKEN Scanner

45. भारतीय भाषाशास्त्र में, संस्कृत में ध्वनियों के संयोजन के नियमों को किस शब्द से संदर्भित किया जाता है?

A. संधि
B. सूत्र
C. धातु
D. शब्द

46. भर्तृहरि के दृष्टिकोण में, भाषा का अध्ययन क्या है?

A. मुख्य रूप से शब्द निर्माण से संबंधित
B. वास्तविकता और ज्ञान को समझने का एक महत्वपूर्ण उपकरण
C. केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए लागू
D. मुख्य रूप से ध्वन्यात्मकता पर केंद्रित

47. संस्कृत व्याकरण में "धातु" का सिद्धांत क्या है?

A. शब्द का मूल या आधार रूप
B. शब्द में विशिष्ट ध्वनियाँ
C. वाक्य की वाक्य संरचना
D. संदर्भ के माध्यम से अर्थ का निर्माण

48. निम्नलिखित सिद्धांतों में से कौन सा सिद्धांत यह दर्शाता है कि अर्थ विकल्पों के निषेध के माध्यम से उत्पन्न होता है?

A. न्याय सिद्धांत
B. अपोह सिद्धांत
C. स्फोट सिद्धांत
D. संधि सिद्धांत

49. संस्कृत व्याकरण में "प्रकृति" का क्या अर्थ है?

A. एक व्याकरणिक नियम
B. एक शब्द का प्राकृतिक या मौलिक रूप
C. ध्वनियों का परिवर्तन
D. शब्द क्रम का प्रकार

Scanned with OKEN Scanner

50. भारतीय भाषाशास्त्र के संदर्भ में, "मीमांसा" शब्द का क्या अर्थ है?

A. दार्शनिक सिद्धांत

B. सही अर्थ की व्याख्या

C. धार्मिक शास्त्र

D. भाषा की ध्वन्यात्मक संरचना

51. संस्कृत व्याकरण के पिता के रूप में किसे माना जाता है और जिन्होंने अष्टाध्यायी का सूत्रीकरण किया?

A. कात्यायन

B. पाणिनि

C. भर्तृहरि

D. पतंजलि

52. पाणिनि की अष्टाध्यायी का मुख्य ध्यान किस पर था?

A. संस्कृत का ध्वन्यात्मक विश्लेषण

B. संस्कृत का व्याकरण और संरचना

C. भाषा का धार्मिक महत्व

D. शब्दों का दार्शनिक व्याख्यात्मकता

53. पाणिनि के व्याकरण पर विस्तृत टिप्पणी "महाभाष्य" किस विद्वान ने लिखी थी?

A. कात्यायन

B. पतंजलि

C. भर्तृहरि

D. दिग्नाग

54. भाषाशास्त्र के संदर्भ में पतंजलि के लिए प्रमुख पहचान क्या है?

A. अर्थ पर सिद्धांत विकसित करना

B. योगसूत्रों पर टिप्पणी लिखना

C. संस्कृत व्याकरण का विश्लेषण करने की प्रणाली बनाना

D. पाणिनि की अष्टाध्यायी पर टिप्पणी लिखना

Scanned with OKEN Scanner

55. कौन सा दार्शनिक शब्दों के समग्र अर्थ को समझाने के लिए "स्फोट" सिद्धांत के लिए प्रसिद्ध है?
   A. न्याय
   B. भर्तृहरि
   C. दिग्नाग
   D. गौतम

56. तर्क और निष्कर्ष पर ध्यान देने वाले न्याय दर्शन के संस्थापक कौन थे?
   A. गौतम
   B. पतंजलि
   C. पाणिनि
   D. भर्तृहरि

57. "अपोह" सिद्धांत को किस दार्शनिक ने विकसित किया था, जो यह समझाता है कि अर्थ विकल्पों को नकारने के द्वारा उत्पन्न होता है?
   A. दिग्नाग
   B. गौतम
   C. भर्तृहरि
   D. नागेश

58. मीमांसा विद्यालय, जो वेदों के ग्रंथों के व्याख्यायन पर ध्यान केंद्रित करता है, किस विद्वान द्वारा स्थापित किया गया था?
   A. जैमिनी
   B. पतंजलि
   C. बृहस्पति
   D. गंगेसा

59. भर्तृहरि के अनुसार, भाषा केवल संवाद का साधन नहीं है, बल्कि यह समझने का एक माध्यम है:
   A. व्याकरण
   B. वास्तविकता की पारलौकिक प्रकृति
   C. ध्वन्यात्मक नियम
   D. सामाजिक पदानुक्रम

60. वाक्य-वृत्ति, एक ग्रंथ जो शब्दों और वाक्यों के बीच संबंध पर चर्चा करता है, किस दार्शनिक ने लिखा था?

A. कात्यायन
B. भर्तृहरि
C. पतंजलि
D. दिग्नाग

61. पाणिनि के सूत्र कितने अध्यायों में व्यवस्थित हैं?

A. 4
B. 8
C. 10
D. 12

62. कौन सा भारतीय दर्शन विद्यालय भाषा और तर्क में वैध निष्कर्षण के महत्व को बल देता है?

A. मीमांसा
B. वेदांत
C. न्याय
D. सांख्य

63. किसे जैन तर्कशास्त्र के संस्थापक के रूप में माना जाता है, जिसने भाषा के अध्ययन में भी योगदान किया?

A. हरिभद्र
B. उमास्वाती
C. कुंडकुंड
D. सिद्धसेना

64. कात्यायन, प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्र के प्रमुख विद्वान, विशेष रूप से किसके लिए प्रसिद्ध हैं?

A. संस्कृत की ध्वन्यात्मकता और ध्वनियों पर
B. पाणिनि के व्याकरण पर अपनी टिप्पणी द्वारा विस्तार करने के लिए
C. अपोह सिद्धांत को विकसित करने के लिए
D. भाषा और तर्क के बीच संबंध को स्पष्ट करने के लिए

Scanned with OKEN Scanner

65. दिग्नाग, एक बौद्ध दार्शनिक, ने भाषाशास्त्र के किस क्षेत्र में योगदान किया?

A. अर्थ सिद्धांतों के विकास में
B. अपोह सिद्धांत के औपचारिकीकरण में
C. भाषा का तर्कसंगत विश्लेषण
D. भाषा और संज्ञान के बीच संबंध

66. संस्कृत व्याकरण में संधि का प्रमुख कार्य क्या है?

A. शब्दों के अर्थों को स्थापित करना
B. यह वर्णन करना कि शब्दों के संयोजन में ध्वनियाँ कैसे बदलती हैं
C. वाक्य संरचनाओं को परिभाषित करना
D. जटिल संयुक्त शब्दों का निर्माण करना

67. संस्कृत में विभक्ति किसे संदर्भित करती है?

A. शब्द की जड़ें
B. संज्ञाओं का व्याकरणिक उपयोग
C. भाषण के लिए ध्वन्यात्मक नियम
D. क्रिया रूपांतरण

68. निम्नलिखित में से कौन सा संस्कृत की वाक्य रचना का विशेषता है जो इसे कई आधुनिक भाषाओं से अलग करती है?

A. निश्चित शब्द क्रम का उपयोग
B. व्याकरणिक रिश्तों को दर्शाने के लिए विभक्ति का सामान्य उपयोग
C. सहायक क्रियाओं पर पूरी तरह से निर्भर रहना
D. संयुक्त शब्दों की अनुपस्थिति

69. संस्कृत व्याकरण में प्रकृति किसे संदर्भित करती है?

A. एक व्याकरणिक नियम
B. शब्द का प्राकृतिक रूप
C. एक वाक्यात्मक निर्माण
D. जड़ और प्रत्यय के बीच संबंध

Scanned with OKEN Scanner

70. संस्कृत में "धातु" किसके लिए आवश्यक है?

A. क्रियाओं का रूपांतरण

B. संज्ञाओं का निर्माण

C. अर्थ का व्युत्पत्ति

D. ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को समझना

71. निम्नलिखित में से कौन सी शब्द श्रेणी संस्कृत के वाक्यात्मक नियमों द्वारा शासित होती है?

A. संज्ञाएँ

B. विशेषण

C. क्रियाएँ

D. उपर्युक्त सभी

72. संस्कृत व्याकरण संरचना जो "लिंग," "वचन," और "विभक्ति" को शब्दों में व्यक्त करती है, उसे क्या कहा जाता है?

A. विभक्ति

B. संधि

C. समास

D. प्रकृति

73. संस्कृत का "संसार" एक उदाहरण है जो समास शब्द है, जिसे किस प्रकार से बनाया जाता है?

A. क्रिया और संज्ञा को जोड़कर

B. एक प्रत्यय को जोड़कर

C. दो या दो से अधिक शब्दों को जोड़कर नया अर्थ बनाना

D. शब्दों के मूल अर्थ को संशोधित करने के लिए उपसर्गों का उपयोग

74. संस्कृत में "समास" शब्द किसे संदर्भित करता है?

A. क्रिया रूपांतरण की प्रणाली

B. संज्ञाओं के लिए प्रयोग होने वाला व्याकरणिक उपयोग

C. संयुक्त शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया

D. शब्दों के बीच ध्वन्यात्मक परिवर्तन के नियम

Scanned with OKEN Scanner

75. संस्कृत का "काल" प्रणाली किस प्रकार की श्रेणियाँ शामिल करती है?

A. वर्तमान, भूत, भविष्य

B. वर्तमान, भविष्य, संभाव्य

C. भविष्य, पूर्ण, शर्तवाला

D. भूत, भविष्य, आदेशात्मक

76. संस्कृत में संधि नियम मुख्य रूप से क्या प्रभावित करते हैं?

A. शब्दों के अलग-अलग अर्थों को

B. शब्द सीमाओं पर ध्वनियों के परस्पर प्रभाव

C. क्रियाओं में काल के उपयोग को

D. संज्ञाओं के लिए विभक्ति के प्रत्यय

77. निम्नलिखित में से कौन सा संस्कृत क्रिया का "जड़" रूप है?

A. करक

B. धातु

C. प्रकृति

D. विभक्ति

78. संस्कृत में "कर्म" या क्रिया का "वस्तु" सामान्यतः किस माध्यम से व्यक्त होता है?

A. कर्ता

B. उपकरण

C. उद्देश्य

D. सम्बोधन

79. संस्कृत में "सूत्र" क्या होते हैं?

A. छोटे संज्ञा नियम जो व्याकरण संरचनाओं का वर्णन करते हैं

B. शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करने वाले लंबे दार्शनिक ग्रंथ

C. क्रिया रूपांतरण तालिकाएँ

D. प्रारंभिक शिक्षा के लिए उच्चारण मार्गदर्शिकाएँ

Scanned with OKEN Scanner

80. संस्कृत में "विभक्ति" शब्द मुख्य रूप से किसका संदर्भ है?

A. संयुक्त शब्द निर्माण

B. क्रियाओं में काल

C. संज्ञाओं के व्याकरणिक उपयोग

D. शब्दों के अंत में ध्वन्यात्मक परिवर्तन

81. प्राचीन भारतीय भाषाशास्त्र में ध्वन्यात्मकता का अध्ययन मुख्य रूप से किससे संबंधित है?

A. शब्दों के अर्थ और परिभाषाओं

B. भाषण ध्वनियों का अध्ययन और उनका वर्गीकरण

C. वाक्यों की व्याकरणिक संरचना

D. संयुक्त शब्दों का निर्माण

82. संस्कृत के प्राचीन ध्वन्यात्मक संरचना पर चर्चा करने वाली पहली ग्रंथ कौन सी मानी जाती है?

A. अष्टाध्यायी पाणिनि द्वारा

B. प्रातिशाख्य ग्रंथ

C. महाभाष्य पतंजलि द्वारा

D. योगसूत्र पतंजलि द्वारा

83. संस्कृत ध्वन्यात्मकता में "शब्द" का क्या अर्थ है?

A. शब्दों का अर्थ

B. भाषण ध्वनि

C. क्रिया रूपांतरण

D. व्याकरणिक केस

84. भाषाशास्त्र में वह अध्ययन जिसे भाषण ध्वनियों के निर्माण के रूप में जाना जाता है, किसे कहते हैं?

A. ध्वन्यात्मकता

B. रूपविज्ञान

C. उच्चारणात्मक ध्वन्यात्मकता

D. वाक्यविधान

Scanned with OKEN Scanner

85. संस्कृत के "प्रातिशाख्य" ग्रंथ किससे संबंधित हैं?

A. शब्दों के अर्थ

B. ध्वन्यात्मक नियमों और संस्कृत की ध्वनियों

C. वाक्यविधान और वाक्य संरचना

D. पाणिनि के कार्य पर व्याकरणिक टिप्पणी

86. ध्वन्यात्मकता के संदर्भ में संस्कृत में निम्नलिखित में से कौन सा एक प्रमुख वर्गीकरण है?

A. क्रिया और भावना

B. स्वर और व्यंजन

C. अनुपांब्धा और उपाधा

D. संधि और विभक्ति

87. संस्कृत में "मात्रा" किसे संदर्भित करती है?

A. अर्थ की एक बुनियादी इकाई

B. स्वर ध्वनि की लंबाई

C. संज्ञा का व्याकरणिक केस

D. क्रिया रूपांतरण का प्रकार

88. संस्कृत में, "संधि" शब्द का क्या अर्थ है?

A. शब्दों के संधि से ध्वन्यात्मक परिवर्तन के नियम

B. काल में क्रियाओं

C. संज्ञाओं के व्याकरणिक केस

D. शब्दों के रूपांतरण

89. संस्कृत में "अक्षर" का अध्ययन किसे संदर्भित करता है?

A. वाक्य संरचना

B. ध्वनि की सबसे छोटी इकाई (स्वर)

C. शब्द के जड़ रूप

D. संयुक्त शब्द

Scanned with OKEN Scanner

85. संस्कृत के "प्रातिशाख्य" ग्रंथ किससे संबंधित हैं?

A. शब्दों के अर्थ

B. ध्वन्यात्मक नियमों और संस्कृत की ध्वनियों

C. वाक्यविधान और वाक्य संरचना

D. पाणिनि के कार्य पर व्याकरणिक टिप्पणी

86. ध्वन्यात्मकता के संदर्भ में संस्कृत में निम्नलिखित में से कौन सा एक प्रमुख वर्गीकरण है?

A. क्रिया और भावना

B. स्वर और व्यंजन

C. अनुपांब्धा और उपाधा

D. संधि और विभक्ति

87. संस्कृत में "मात्रा" किसे संदर्भित करती है?

A. अर्थ की एक बुनियादी इकाई

B. स्वर ध्वनि की लंबाई

C. संज्ञा का व्याकरणिक केस

D. क्रिया रूपांतरण का प्रकार

88. संस्कृत में, "संधि" शब्द का क्या अर्थ है?

A. शब्दों के संधि से ध्वन्यात्मक परिवर्तन के नियम

B. काल में क्रियाओं

C. संज्ञाओं के व्याकरणिक केस

D. शब्दों के रूपांतरण

89. संस्कृत में "अक्षर" का अध्ययन किसे संदर्भित करता है?

A. वाक्य संरचना

B. ध्वनि की सबसे छोटी इकाई (स्वर)

C. शब्द के जड़ रूप

D. संयुक्त शब्द

Scanned with OKEN Scanner

90. संस्कृत ध्वन्यात्मक विश्लेषण में निम्नलिखित में से कौन सा एक घटक नहीं है?

A. व्यंजन ध्वनियों का उच्चारणात्मक वर्गीकरण

B. भाषण ध्वनियों की ध्वनितात्मक गुण

C. शब्दों के व्युत्पत्ति का निर्माण

D. स्वर ध्वनियों का लंबाई और गुणवत्ता के आधार पर वर्गीकरण

91. संस्कृत में व्यंजनों की वर्गीकरण जिसमें उनका उत्पादन स्थल शामिल होता है, निम्नलिखित में से कौन सा नहीं है?

A. कंठ्य

B. तालव्य

C. दंत्य

D. शिबिलं

92. संस्कृत ध्वन्यात्मकता में स्वर को मुख्य रूप से किस आधार पर वर्गीकृत किया जाता है?

A. छोटा, लंबा और अतिरिक्त लंबा

B. स्वरित और अप्रत्याशित

C. श्वासीय और अश्वासीय

D. कठोर और मुलायम

93. संस्कृत में "स्वराभक्ति" का क्या अर्थ है?

A. एक स्वर को जोड़कर एक वर्ण को और अधिक स्वरयुक्त बनाना

B. संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होने वाला एक प्रकार का व्याकरणिक केस

C. संयुक्त शब्दों में व्यंजनों का संयोजन

D. वाक्यों में तनाव के विश्लेषण

94. पाणिनि की अष्टाध्यायी में संस्कृत में ध्वन्यात्मक परिवर्तनों के लिए कौन से नियम हैं?

A. संधि

B. समास

C. विभक्ति

D. काल

Scanned with OKEN Scanner

95. संस्कृत में "जीव्हामूलिया" का क्या अर्थ है?

A. स्वर का एक वर्गीकरण

B. कंठ्य व्यंजनों को उत्पन्न करने के लिए उपयोगी उच्चारणात्मक बिंदु

C. स्वर लंबाई के लिए एक प्रकार का ध्वन्यात्मक नियम

D. क्रिया रूपांतरणों के क्रम के लिए एक नियम

96. संस्कृत का "स्फोट सिद्धान्त" के जनक कौन हैं?

A. पाणिनि

B. भर्तृहरि

C. दिग्नाग

D. गौतम

97. स्फोट सिद्धांत के अनुसार, अर्थ क्या है?

A. व्यक्तिगत ध्वनियों से उत्पन्न होता है

B. शब्दों के संदर्भ द्वारा निर्धारित होता है

C. संपूर्ण शब्द या वाक्य में पाया जाता है, न कि व्यक्तिगत भागों में

D. ध्वनियों और वाक्यविधान के बीच बातचीत का परिणाम होता है

98. भर्तृहरि के स्फोट सिद्धांत के अनुसार, शब्द का अर्थ क्या होता है?

A. यह पूरी तरह से वक्ता की मंशा पर निर्भर करता है

B. यह व्यक्तिगत ध्वनियों का गुण है

C. यह शब्द की समग्रता में निहित होता है

D. यह तब तक अस्पष्ट रहता है जब तक इसे वाक्य में उपयोग नहीं किया जाता

99. "अपोह" सिद्धांत, जो अर्थ विचार में एक महत्वपूर्ण योगदान है, किसने विकसित किया था?

A. गौतम

B. भर्तृहरि

C. दिग्नाग

D. पाणिनि

Scanned with OKEN Scanner

100. अपोह सिद्धांत के अनुसार, अर्थ किस प्रकार उत्पन्न होता है?

A. शब्दों का वस्तुओं से संबद्ध होना

B. अन्य संभावित अर्थों के निषेध द्वारा

C. वाक्य संरचना द्वारा

D. शब्द की ध्वन्यात्मक गुणवत्ता द्वारा

101. न्याय दर्शन ने अर्थशास्त्र के सिद्धांत में किस पर जोर दिया है?

A. अर्थ प्राप्त करने में संदर्भ की भूमिका

B. अनुमान और तार्किकता

C. शब्द का अंतर्निहित ध्वनि

D. शब्दों के व्याकरणिक रूप

102. न्याय दर्शन के अनुसार, अर्थ समझने की प्रक्रिया में क्या शामिल है?

A. केवल ध्वनि का विश्लेषण

B. वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान

C. शब्दों और अनुमान का संयोजन अर्थ प्राप्त करने के लिए

D. अकेले वाक्यविधान का अध्ययन

103. भर्तृहरि के दृष्टिकोण में, अर्थ किससे जुड़ा होता है?

A. ध्वन्यात्मक संरचना

B. मानसिक और संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ

C. व्यक्तिगत ध्वनियों से अलग

D. शब्दों की व्याकरणिक श्रेणियाँ

104. न्याय दर्शन में "प्रमाण" का क्या अर्थ है?

A. वैध स्रोतों के माध्यम से अर्थ प्राप्त करने का सही तरीका

B. शब्द निर्माण का एक विशेष उदाहरण

C. स्वामित्व को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त व्याकरणिक केस

D. शब्द व्युत्पत्ति में प्रयुक्त ध्वनि पैटर्न

Scanned with OKEN Scanner

105. प्राचीन भारतीय दर्शन में "शब्द" का मुख्य रूप से क्या अर्थ है?

A. शब्दों द्वारा उत्पन्न भौतिक ध्वनि

B. शब्दों के संयोजन से प्राप्त अर्थ

C. संज्ञाओं के व्याकरणिक रूप

D. वह बोला या लिखा गया रूप जो अर्थ व्यक्त करता है

106. न्याय-वैषेणिक दर्शन के अनुसार, शब्दों का प्रमुख कार्य क्या होता है?

A. दुनिया में वस्तुओं के स्वभाव को व्यक्त करना

B. पारलौकिक सत्य व्यक्त करना

C. श्रोताओं में भावनाएँ उत्पन्न करना

D. केवल व्याकरण के माध्यम से अर्थ व्यक्त करना

107. "वाक्यार्थ" का क्या अर्थ है?

A. संस्कृत व्याकरण में शब्दों के मूलों का अध्ययन

B. वाक्य के संपूर्ण अर्थ को प्राप्त करना

C. जटिल शब्दों का उच्चारण

D. शब्द निर्माण के लिए व्याकरणिक नियम

108. प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र के सिद्धांतों में सूत्रों या लक्षणों का उपयोग किसके लिए किया गया था?

A. भाषा के बारे में गहन दार्शनिक तर्क प्रस्तुत करने के लिए

B. वाक्यों को बनाने के लिए कड़े नियम स्थापित करने के लिए

C. अर्थ प्राप्त करने के सिद्धांतों का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करने के लिए

D. वाक्य और विचार के बीच संबंध का विश्लेषण करने के लिए

109. भर्तृहरि के स्फोट सिद्धांत के अनुसार, अर्थ क्या है?

A. शब्द के मौखिक रूपांतरण पर निर्भर है

B. शब्द और उसकी ध्वनि के संयोजन से निर्धारित होता है

C. शब्द के पीछे के मानसिक विचार से परिभाषित होता है

D. केवल संदर्भित उपयोग के माध्यम से उत्पन्न होता है

Scanned with OKEN Scanner

110. न्याय दर्शन में "पदार्थ" का क्या अर्थ है?

A. भाषिक चिह्नों का संपूर्णता

B. वस्तु या संदर्भ जिसे शब्द व्यक्त करता है

C. वाक्य की व्याकरणिक संरचना

D. शब्दों का ध्वन्यात्मक विश्लेषण

111. प्राचीन भारतीय भाषाविज्ञान में, वाक्यविधान मुख्य रूप से किससे संबंधित है?

A. स्वर और व्यंजन की वर्गीकरण

B. वाक्य निर्माण को नियंत्रित करने वाले संरचनाएँ और नियम

C. शब्दों के अर्थों का व्युत्पत्ति

D. शब्दों में ध्वनि परिवर्तन का विश्लेषण

112. मीमांसा दर्शन ने वाक्यविधान के महत्व पर किस पर जोर दिया?

A. संस्कृत पाठों में शब्दों के सही अर्थ को स्थापित करने के लिए

B. शब्दों की ध्वन्यात्मक संरचना निर्धारित करने के लिए

C. संयुक्त शब्दों के निर्माण के नियमों का विश्लेषण करने के लिए

D. पारलौकिक विचारों की व्याख्या करने के लिए

113. प्राचीन भारतीय भाषाविज्ञान में सूत्रों का प्रमुख उद्देश्य क्या था?

A. ध्वनि प्रणालियों को परिभाषित करना

B. व्याकरणिक नियमों और वाक्यविधान संरचनाओं को समझाना

C. शब्दों में अर्थ की प्रकृति का विश्लेषण करना

D. विभिन्न प्रकार के ध्वन्यात्मक ध्वनियों की श्रेणीबद्ध करना

114. पाणिनि को संस्कृत वाक्यविधान पर उनके काम के लिए सबसे अधिक जाना जाता है, वह कहाँ पाया जाता है?

A. वाक्य-पाठ

B. अष्टाध्यायी

C. महाभाष्य

D. रामायण

Scanned with OKEN Scanner

115. पाणिनि की प्रणाली में, क्रिया का "कर्म" (वस्तु) सामान्यतः किस द्वारा शासित होता है?

A. नामवाचक
B. कार्यवाचक
C. ध्वन्यात्मक
D. अपादान

116. पाणिनि के संस्कृत वाक्यविधान के नियमों में से कौन सा मुख्य घटक है?

A. निश्चित शब्द क्रम (विषय-क्रिया-फल)
B. व्याकरणिक संबंधों को दर्शाने के लिए प्रत्ययों का प्रयोग
C. अनावश्यक शब्दों का उन्मूलन
D. प्रत्येक वाक्य में सहायक क्रियाओं का प्रयोग

117. संस्कृत वाक्यविधान में "विभक्ति" प्रणाली किसे संदर्भित करती है?

A. शब्दों को जोड़कर संयुक्त शब्द बनाने के नियम
B. संज्ञाओं के व्याकरणिक रूपांतरण जो उनके वाक्य में भूमिका को दर्शाते हैं
C. मूल क्रिया के वाक्यविधानिक रूपों को बनाने के तरीके
D. वाक्य में शब्दों के स्थान का क्रम

118. संस्कृत व्याकरण में "समास" किसे संदर्भित करता है?

A. क्रियाओं का संशोधन
B. व्याकरणिक रूपों को बनाने के लिए प्रत्ययों का प्रयोग
C. दो या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर संयुक्त शब्द बनाने की प्रक्रिया
D. विशेषणों और संज्ञाओं का वाक्यविधानिक क्रम

119. पाणिनि के अनुसार, संस्कृत वाक्य में शब्दों का क्रम सामान्यतः क्या होता है?

A. विषय-कार्य-फल
B. विषय-कार्य-फल
C. क्रिया-विषय-फल
D. वस्तु-विषय-क्रिया

Scanned with OKEN Scanner

120. संस्कृत में "संधि" नियम किसे प्रभावित करते हैं?

A. व्यक्तिगत शब्दों के अर्थ को

B. यह दर्शाता है कि शब्दों को जोड़ने पर ध्वनियाँ कैसे बदलती हैं

C. वाक्य संरचना को

D. शब्दों को क्रिया और संज्ञा में वर्गीकृत करने को

121. पाणिनि की अष्टाध्यायी संस्कृत वाक्यों के संरचनात्मक तरीके को किसके द्वारा विस्तार से समझाती है?

A. ध्वन्यात्मक प्रतीकों

B. व्याकरणिक नियमों और वाक्यविधानिक सिद्धांतों

C. मूल शब्दों की व्युत्पत्तियों

D. धार्मिक विचारों

122. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय दर्शन विद्यालय पवित्र ग्रंथों और अनुष्ठानों को समझने में वाक्यविधान के महत्व पर जोर देता है?

A. वेदांत

B. न्याय

C. मीमांसा

D. बौद्ध दर्शन

123. पाणिनि की प्रणाली में "धातुपाठ" का क्या अर्थ है?

A. क्रिया संयोजन के लिए प्रयुक्त क्रिया मूलों की सूची

B. वाक्य में शब्दों के क्रम के लिए एक वाक्यविधान नियम

C. स्वरों के परिवर्तन के लिए एक ध्वन्यात्मक नियमों का सेट

D. एक व्याकरणिक उपयोग जो कर्ता को दर्शाता है

124. पाणिनि का वाक्यविधान पर काम महत्वपूर्ण था क्योंकि उसने क्या किया?

A. विषय-क्रिया समझौते का सिद्धांत प्रस्तुत किया

B. व्याकरणिक नियमों और वाक्यविधानिक संरचनाओं को संक्षिप्त रूप में व्यवस्थित किया

C. शब्द निर्माण में प्रत्ययों और उपसर्गों के उपयोग पर ध्यान केंद्रित किया

D. यह सुझाव दिया कि संस्कृत एक अव्यतिकी भाषा है

Scanned with OKEN Scanner

125. प्राचीन भारतीय भाषाविज्ञान में वाक्यविधान के नियमों का मुख्य उद्देश्य क्या होता है?

A. शब्दों की ध्वन्यात्मक संरचना को परिभाषित करना
B. वाक्यों में शब्दों और उनके अर्थ के बीच संबंध स्थापित करना
C. संस्कृत शब्दों का उच्चारण सरल बनाना
D. धार्मिक ग्रंथों के लिए नए शब्दों का निर्माण करना

126. प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) का मुख्य उद्देश्य क्या है?

A. कंप्यूटरों को भाषण उत्पन्न करने की अनुमति देना
B. कंप्यूटरों को मानव भाषा को समझने, व्याख्या करने और उत्पन्न करने में सक्षम बनाना
C. मानव भाषण द्वारा उत्पन्न ध्वनि तरंगों का विश्लेषण करना
D. मानव भाषाओं के इतिहास का अध्ययन करना

127. NLP निम्नलिखित क्षेत्रों से तकनीकों का संयोजन करता है?

A. गणित, अर्थशास्त्र, और इंजीनियरिंग
B. कृत्रिम बुद्धिमत्ता, कंप्यूटर विज्ञान, और भाषाविज्ञान
C. भौतिकी, मनोविज्ञान, और समाजशास्त्र
D. दर्शनशास्त्र, इतिहास, और संगीत

128. निम्नलिखित में से कौन सा NLP का उप-क्षेत्र है जो मानव-पढ़ने योग्य पाठ उत्पन्न करने पर केंद्रित है?

A. प्राकृतिक भाषा समझ (NLU)
B. प्राकृतिक भाषा उत्पादन (NLG)
C. डेटा खनन
D. अर्थशास्त्र विश्लेषण

129. NLP में प्राकृतिक भाषा समझ (NLU) का कार्य क्या है?

A. व्याकरणिक रूप से सही पाठ उत्पन्न करना
B. पाठ के अर्थ को समझना और विश्लेषण करना
C. उपयोगकर्ता इनपुट के लिए प्रतिक्रिया उत्पन्न करना
D. वास्तविक समय में भाषाओं का अनुवाद करना

Scanned with OKEN Scanner

130. NLP में सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक क्या है?

A. अप्रासंगिक डेटा से निपटना

B. संदर्भ के आधार पर शब्दों के अर्थ की अस्पष्टता

C. व्याकरणिक रूप से गलत वाक्य उत्पन्न करना

D. भाषाओं का स्वचालित अनुवाद करना

131. संस्कृत का "आकांक्षा" सिद्धांत निम्नलिखित में से किसे संदर्भित करता है?

A. वाक्य के अर्थ की अंतिम व्याख्या

B. शब्द के अर्थ की प्रत्याशा जो वाक्य में अन्य अर्थों से जुड़ती है

C. संयुक्त शब्द की संरचना

D. ध्वनियों और अर्थों के बीच संबंध

132. NLP में संदर्भ के आधार पर शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने की प्रक्रिया को क्या कहा जाता है?

A. अर्थशास्त्र विश्लेषण

B. वाक्यविधान विश्लेषण

C. योग्यता

D. रूपविज्ञान विश्लेषण

133. NLP प्रणालियों को प्राकृतिक भाषा से निपटते समय कौन सी चुनौती होती है?

A. बड़ी मात्रा में डेटा को संसाधित करने में असमर्थता

B. कई अर्थों वाले शब्दों के अर्थ को समझने में कठिनाई

C. संगणनात्मक शक्ति की कमी

D. भाषाओं में संरचित व्याकरण का अभाव

134. NLP का कौन सा उप-क्षेत्र संरचित डेटा से सुसंगत पाठ उत्पन्न करने पर केंद्रित है?

A. सूचना पुनर्प्राप्ति

B. प्राकृतिक भाषा उत्पादन (NLG)

C. भाषण पहचान

D. भावना विश्लेषण

Scanned with OKEN Scanner

135. संस्कृत भाषाविज्ञान में क्रिया और इसके कर्ता के बीच संबंध को किस विभक्ति (केस) द्वारा चिह्नित किया जाता है?

A. प्रथम विभक्ति
B. द्वितीय विभक्ति
C. तृतीय विभक्ति
D. अपादान विभक्ति

136. संस्कृत NLP शोध के लिए विशेष रूप से आकर्षक है क्योंकि इसमें क्या है?

A. सरल शब्दावली
B. अत्यधिक संरचित व्याकरण
C. वाक्यविधानिक नियमों की कमी
D. संयुक्त शब्दों की अनुपस्थिति

137. NLP प्रणालियों में प्राकृतिक भाषा उत्पादन (NLG) का क्या कार्य है?

A. इनपुट डेटा का विश्लेषण और समझना
B. संरचित डेटा से नया, मानव-पढ़ने योग्य पाठ उत्पन्न करना
C. पाठ से अर्थपूर्ण जानकारी निकालना
D. शब्दों के अर्थों की अस्पष्टता को स्पष्ट करना

138. कम्प्यूटेशनल भाषाविज्ञान में संस्कृत का एक लाभ क्या है?

A. इसका लचीला और अस्पष्ट व्याकरण
B. शब्द निर्माण के लिए गैर-मानकीकरण नियमों का उपयोग
C. इसका अत्यधिक प्रणालीबद्ध और नियम-आधारित व्याकरण
D. इसके रूपविज्ञानिक परिवर्तनों की अनुपस्थिति

139. संस्कृत में "समास" क्या दर्शाता है?

A. शब्दों के अर्थों की अस्पष्टता को स्पष्ट करना
B. संयुक्त शब्दों का निर्माण
C. वाक्य संरचना का विश्लेषण
D. शब्दों का मूल और प्रत्यय में विभाजन

Scanned with OKEN Scanner

140. संस्कृत के व्याकरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता जो NLP में सहायक है, वह है इसकी:

A. क्रिया संयोजन में सरलता

B. व्युत्पत्ति और रूपविन्यास की प्रकृति

C. केवल जटिल संयुक्त संरचनाओं का उपयोग

D. विभक्ति प्रणाली का अभाव

141. संस्कृत में "आकांक्षा" का सिद्धांत NLP में किस चुनौती से सबसे अधिक मेल खाता है?

A. अस्पष्टता समाधान

B. डेटा निष्कर्षण

C. पाठ संक्षिप्तता

D. नामित इकाई पहचान

142. संस्कृत कम्प्यूटेशनल भाषाविज्ञान में निम्नलिखित में से कौन सा उपकरण शब्दों को उनके घटक भागों में विभाजित करता है?

A. रूपविज्ञान विश्लेषक

B. वाक्य उत्पन्नकर्ता

C. अर्थशास्त्र विश्लेषक

D. शब्द पार्सर

143. संस्कृत में शब्द निर्माण, जैसे समास के माध्यम से, कम्प्यूटेशनल प्रणालियों को क्या करने की अनुमति देता है?

A. शब्द संयोजन की अनंत संख्या उत्पन्न करना

B. संदर्भ के बिना पृथक शब्द अर्थों पर ध्यान केंद्रित करना

C. वाक्य विश्लेषण में संदर्भ की आवश्यकता को समाप्त करना

D. शब्द निर्माण को पूर्वनिर्धारित नियमों तक सीमित करना

144. संदर्भ के आधार पर शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करने की प्रक्रिया विशेष रूप से NLP के किस उप-क्षेत्र में महत्वपूर्ण है?

A. प्राकृतिक भाषा उत्पादन (NLG)

B. मशीन अनुवाद

C. भाषण पहचान

D. प्राकृतिक भाषा समझ (NLU)

Scanned with OKEN Scanner

145. निम्नलिखित में से कौन सा उपकरण संस्कृत में व्याकरणिक नियमों के आधार पर नए शब्द उत्पन्न करने में मदद करता है?

A. शब्दकोश संसाधन
B. शब्द उत्पन्नकर्ता
C, वाक्य पार्सर
D. संयुक्त शब्द विश्लेषक

146. NLP में अर्थशास्त्र विश्लेषण की प्रक्रिया क्या है?

A. बोली भाषा को पाठ में बदलना
B. शब्दों और वाक्यों के अर्थ को हल करना
C. वाक्य की व्याकरणिक संरचनाओं की पहचान करना
D. संरचित डेटा से सुसंगत वाक्य उत्पन्न करना

147. संस्कृत में वाक्य में क्रिया को उसके कर्ता से जोड़ने वाला तत्व कौन सा है, जो अस्पष्टता को हल करने में मदद करता है?

A. क्रिया काल
B. विभक्ति
C. शब्द क्रम
D. उपसर्ग और प्रत्यय

148. संस्कृत में रूपविज्ञान विश्लेषकों का विकास किसकी मदद करता है?

A. संस्कृत पाठों का आधुनिक भाषाओं में अनुवाद करना
B. शब्दों को उनके घटक मूल और प्रत्ययों में तोड़ना
C. नए व्याकरणिक नियमों का निर्माण
D. शब्दों के सांस्कृतिक अर्थों को समझना

149. संस्कृत कम्प्यूटेशनल भाषाविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की गई है:

A. संस्कृत के लिए गहरे शिक्षण मॉडल विकसित करने में
B. शब्द विश्लेषण और उत्पत्ति को स्वचालित करने में
C. संस्कृत ग्रंथों का आधुनिक भाषाओं में अनुवाद करने में
D. संस्कृत पाठ की व्याख्या में अस्पष्टता को कम करने में

150. भारतीय भाषाविज्ञान और दर्शनशास्त्र के योगदान की धरोहर का प्रभाव आज भी किस पर पड़ता है?

A. केवल भारतीय भाषाविज्ञान अध्ययन पर
B. भाषा समझने के लिए कम्प्यूटेशनल मॉडल के विकास पर
C. केवल पश्चिमी दार्शनिकताओं के विकास पर
D. केवल प्राचीन भारतीय ग्रंथों पर

Scanned with OKEN Scanner

उत्तर दर्शिका

Q.	Ans	Q.	Ans	Q.	Ans
1	B	26	B	51	B
2	B	27	B	52	B
3	B	28	B	53	B
4	B	29	B	54	D
5	B	30	B	55	B
6	B	31	B	56	A
7	A	32	A	57	A
8	B	33	B	58	A
9	B	34	B	59	B
10	C	35	B	60	B
11	C	36	B	61	B
12	B	37	C	62	C
13	C	38	B	63	B
14	B	39	A	64	B
15	A	40	B	65	C
16	B	41	A	66	D
17	B	42	C	67	B
18	A	43	B	68	B
19	B	44	C	69	B
20	B	45	A	70	A
21	D	46	B	71	D
22	B	47	A	72	A
23	B	48	B	73	C
24	B	49	B	74	C
25	B	50	B	75	A

Scanned with OKEN Scanner

Q.	Ans	Q.	Ans	Q.	Ans
76	B	101	B	126	B
77	B	102	C	127	B
78	C	103	B	128	B
79	A	104	A	129	B
80	C	105	B	130	B
81	B	106	A	131	B
82	B	107	B	132	C
83	B	108	C	133	B
84	C	109	C	134	B
85	B	110	B	135	B
86	B	111	B	136	B
87	B	112	A	137	B
88	A	113	B	138	C
89	B	114	B	139	B
90	C	115	B	140	B
91	D	116	B	141	A
92	A	117	B	142	A
93	A	118	C	143	A
94	A	119	A	144	D
95	D	120	B	145	B
96	B	121	B	146	B
97	C	122	C	147	B
98	C	123	A	148	B
99	C	124	B	149	B
100	B	125	B	150	B

Scanned with OKEN Scanner

Bharat BoudhIKS

खंड-18

भारतीय ज्ञान प्रणाली

शाश्वत ज्ञान और विवेक की विरासत

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

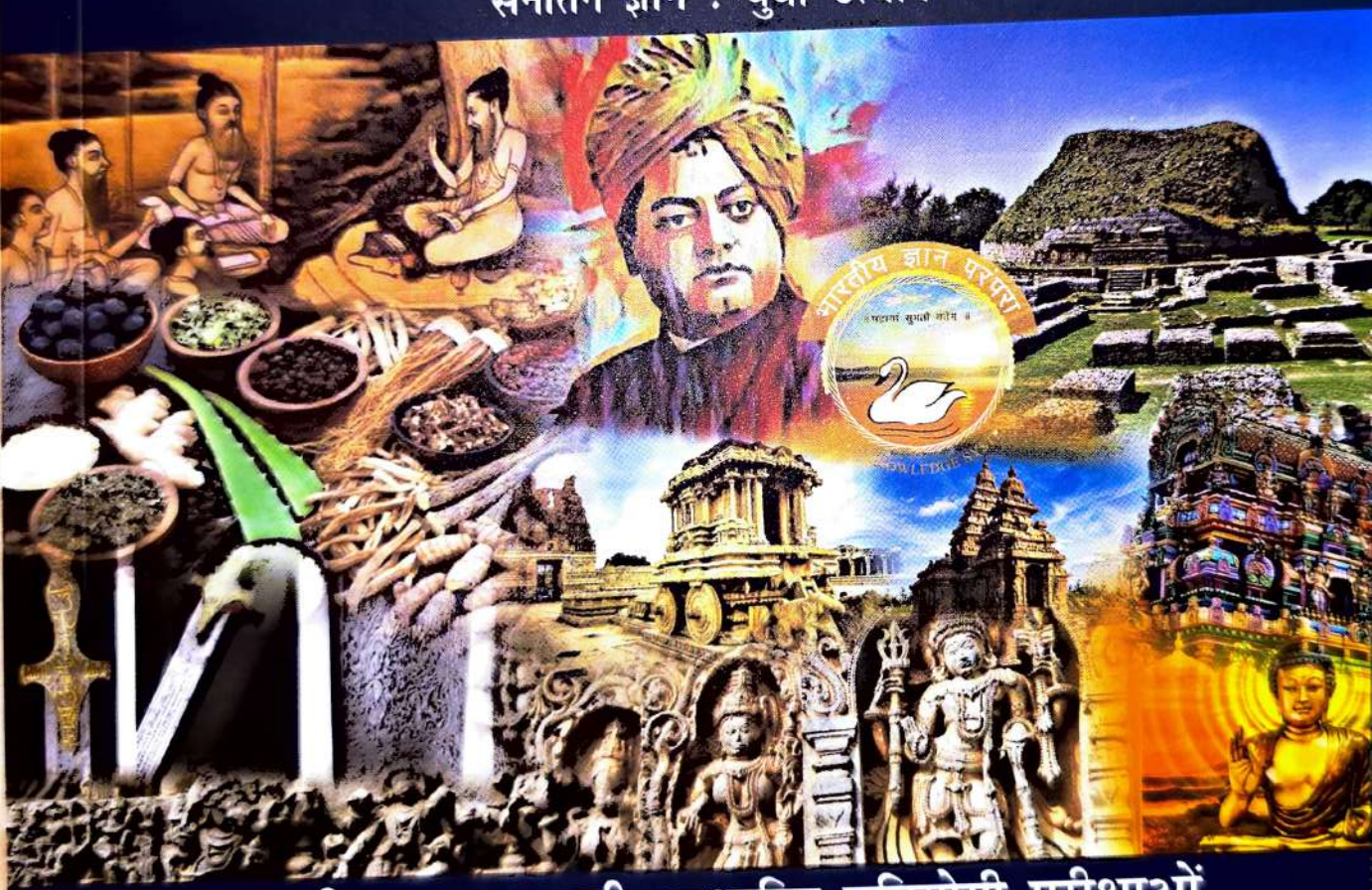

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

भारतीय ज्ञान प्रणाली

शाश्वत ज्ञान और ज्ञान की विरासत

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक / ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **भारतीय ज्ञान प्रणाली: शाश्वत ज्ञान और विवेक की विरासत**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. मीनाक्षी शर्मा

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-03-1

मूल्य : 240/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

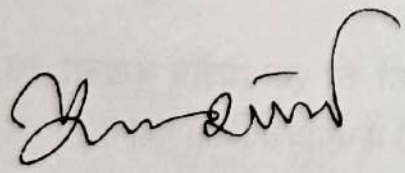

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1.	सिंहावलोकन	13
2.	भारतीय ज्ञान प्रणाली : सांस्कृतिक विरासत की एक जीवंत झलक	17
3.	भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ: संरक्षण और विकास की आवश्यकता	20
4.	प्राचीन ज्ञान का महत्व—अपनी जड़ों से जुड़ने की शक्ति	22
5.	भारतीय ज्ञान परिदृश्य का मानचित्रण	28
6.	भारतीय ज्ञान प्रणाली का वर्गीकरण	34
7.	चतुर्दश विद्यास्थान	35
8.	भारतीय ज्ञान प्रणाली की उत्पत्ति	38
9.	भारतीय ज्ञान प्रणाली की विशेषताएँ	41
10.	सारांश	45
	सुझावात्मक पठनीय सामग्री	47
	बहुविकल्पीय प्रश्न	49
	उत्तर दर्शिका	79

In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of the Upanishads. It has been the solace of my life; and it will be the solace of my death. They are the product of the highest wisdom.

Source: The Discovery of India - by Jawaharlal Nehru

******

Access to the Vedas is the greatest privilege this century may claim over all previous centuries.

******

How entirely does the Upanishad breathe throughout the holy spirit of the Vedas! How is every one, who by a diligent study of its Persian Latin has become familiar with that incomparable book, stirred by that spirit to the very depth of his Soul!

Source: Autobiography of a Yogi - by Paramhansa Yogananda 'Autobiography of a Yogi' was one book in particular stayed with Apple CEO Steve Jobs entire life... This guide to meditation and spirituality that he had first read as a teenager, then re-read in India and had read once a year ever since.- Walter Isaacson's Biography, Steve Jobs

Arthur Schopenhauer

(1788-1860)



One of the great German philosophers and writers, best known for his work 'The World as Will and Representation'. Though his work failed to attract much attention during his life, he had a great impact on thinkers throughout the 19th and 20th centuries, through his writing on aesthetics, morality, and psychology. His works had an impact upon great scholars, such as Nietzsche, Wagner, Wittgenstein, Schrodinger, Einstein, Freud, Rank, Jung and Eminescu.

प्रस्तावना



प्राचीन भारत का ज्ञान एक अनमोल खजाना है। जिसने हजारों वर्षों तक दार्शनिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को आकार दिया और मार्गदर्शन किया। इस ज्ञान प्रणाली में निहित ज्ञान न केवल विशाल है, बल्कि यह भारतीय जीवन पद्धति से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। यह एक समृद्ध विविधता का समावेश करता है, जिसमें वेदों और उपनिषदों के रूप में आध्यात्मिक और दार्शनिक शिक्षाएँ, और आयुर्वेद, योग और वास्तु शास्त्र जैसे प्रायोगिक विज्ञान शामिल हैं। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य समकालीन समाज में भारतीय ज्ञान परंपराओं की गहराई, विविधता और कालातीत प्रासंगिकता का अन्वेषण करना है। भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ सदियों से विकसित हुई हैं, जिनमें विभिन्न दार्शनिक स्कूलों, धार्मिक परंपराओं और सांस्कृतिक प्रथाओं का योगदान रहा है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली की नींव आध्यात्मिकता और भौतिक ज्ञान के अद्वितीय सम्मिलन पर आधारित है, जहाँ इन दोनों क्षेत्रों को अलग-अलग नहीं बल्कि एक एकीकृत दृष्टिकोण के रूप में देखा जाता है। चाहे वह प्राचीन ग्रंथों के रूप में हो, मौखिक परंपराओं के रूप में हो, या लोक ज्ञान के रूप में हो, भारतीय ज्ञान प्रणाली एक सामंजस्यपूर्ण अस्तित्व की दिशा में मार्गदर्शन करती है, जहाँ भौतिक भौतिकवाद तथा आध्यात्म दोनों एक साथ रहते हैं और एक-दूसरे का समर्थन करते हैं। आयुर्वेद, योग और वेदांत के अभ्यास इस बात के आदर्श उदाहरण हैं कि कैसे भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ जीवन के प्रति संतुलित और समग्र दृष्टिकोण की वकालत करती हैं, जो प्रायोगिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शन दोनों प्रदान करती हैं।

जैसे ही आप इस पुस्तक का अध्ययन करेंगे, मुझे आशा है कि यह पुस्तक भारत की प्राचीन ज्ञान प्रणालियों में निहित गहरे दृष्टिकोणों की एक गहरी सराहना उत्पन्न करेगी, जिससे आप भारतीय ज्ञान प्रणाली के तेजी से बदलते हुए संसार में प्रासंगिकता पर विचार करेंगे।

Indian philosophers' subtleties make most of the great European philosophers look like schoolboys.

* * * * *

Two years spent in the study of Sanskrit under Charles Lanman, and a year in the mazes of Patanjali's metaphysics under the guidance of James Woods, left me in a state of enlightened mystification.

Source: After Strange Gods - by T. S. Eliot Eliot learnt Sanskrit and studied Vedas, Upanishads, and the Bhagavad Gita

* * * * *



T. S. Eliot

(1788-1860)

An American born British playwright,literary critic, publisher, essayist,philosopher and one of the most celebrated poets of the twentieth century. His bestworks include The Love Song of J. Alfred rufrock', 'The Waste Lad' The Hollow Men' (1925), 'Ash Wednesday' and 'Four Quartets'. He won the Nobel Prize in literature in 1948 in appreciation of his exceptional contribution to modern poetry.

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली

1. सिंहावलोकन

भारत का एक समृद्ध और प्राचीन इतिहास है, जिसमें सभ्यताएँ और परंपराएँ शामिल हैं जो लगभग समय से परे मानी जाती हैं। जबकि समकालीन पश्चिमी विद्वान सामान्यत: भारत की सभ्यता को लगभग 5000-8000 साल पुराना मानते हैं, भारतीय स्रोत एक और भी प्राचीन अतीत, प्रागैतिहासिक काल का संकेत देते हैं इतनी लंबी इतिहास वाली एक सभ्यता, जैसे भारत, ने स्वाभाविक रूप से समय के साथ विशाल ज्ञान का संचय किया। फिर भी आजकल, कई लोग मानते हैं कि पश्चिमी सभ्यताएँ ही ज्ञान के मुख्य स्रोत हैं, और वे भारतीय, चीनी या मिस्र जैसी पुरानी संस्कृतियों को नज़रअंदाज़ करते हैं। यह दृष्टिकोण गलत है—मानवता ने हमेशा तर्क और विवेक के माध्यम से ज्ञान उत्पन्न किया है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भारत ज्ञान का एक प्रमुख केंद्र बन गया, जिसका अधिकांश हिस्सा आज भी उसकी रीति-रिवाजों और परंपराओं में विद्यमान है।

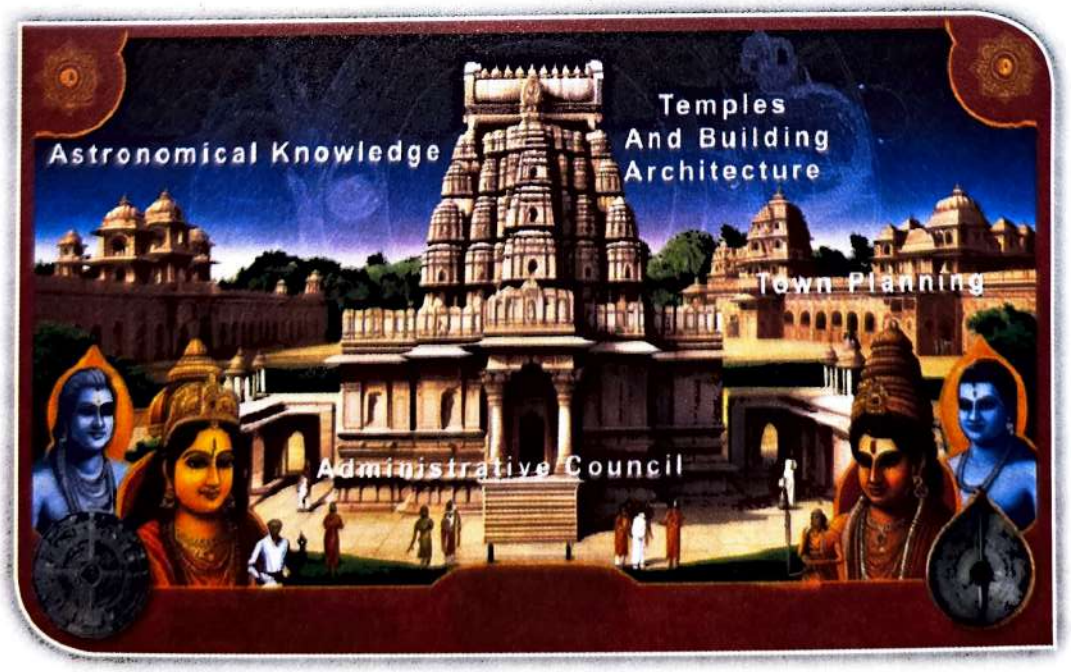

भारत के प्राचीन मंदिरों और शाश्वत सौंदर्य का एक प्रस्तुतीकरण चित्र

भारत की प्राचीन सभ्यता का वैज्ञानिक और तकनीकी नवाचार में एक लंबा और समृद्ध इतिहास रहा है। सिंधु घाटी में उन्नत शहरी नियोजन से लेकर गणित, खगोलशास्त्र, धातुकर्म और चिकित्सा में उल्लेखनीय उपलब्धियों तक, भारत ज्ञान का एक वैश्विक केंद्र था। आश्चर्यजनक वास्तुशिल्प चमत्कार जैसे मंदिर परिसर और बावड़ियाँ, इंजीनियरिंग और सौंदर्यशास्त्र की गहरी समझ को प्रदर्शित करते हैं।



श्री बृहदीश्वर मंदिर, तंजावुर

https://www.incredibleindia.gov.in/en/tamil-nadu/thanjavur/brihadeeswarar-temple

प्राचीन भारत की वास्तुकला का एक शानदार उदाहरण है ब्रहदेश्वर मंदिर, जिसे 1010 ईस्वी में राजा राज चोल ने तमिलनाडु में बनवाया था। यह मंदिर न केवल अपनी ऐतिहासिकता के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि अपनी भव्यता और तकनीकी महारत के लिए भी जाना जाता है। यह मंदिर दुनिया की सबसे पुरानी ग्रेनाइट संरचनाओं में से एक है और इसे बनाने में करीब 60,000 टन पत्थर का इस्तेमाल हुआ था। मंदिर का कुम्भम (जो मंदिर के ऊपर की संरचना होती है) लगभग 80 टन वज़न का है और यह दुनिया के सबसे ऊंचे मंदिर के गुम्बद का हिस्सा है। इस मंदिर में भगवान शिव की पूजा होती है,

और इसकी वास्तुकला उस समय की अत्याधुनिक इंजीनियरिंग और शिल्प कौशल का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह मंदिर सिर्फ एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि भारतीय पुरातनकाल की उन्नत सोच और कला का जीवंत प्रतीक है।

मानव स्वभाव में हमेशा से ही अनुभव, अभ्यास, तर्क और आलोचनात्मक सोच के माध्यम से ज्ञान अर्जित करने की प्रवृत्ति रही है। सदियों से, भारतीय उपमहाद्वीप इस प्रकार के ज्ञान का एक समृद्ध केंद्र बनकर उभरा है, जो उसकी विविध परंपराओं और प्रथाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतीय गणित, खगोलशास्त्र और संख्यात्मक प्रणाली में किए गए अग्रणी शोध ने अरबी विद्वानों के माध्यम से पश्चिमी विज्ञान पर गहरा प्रभाव डाला। लेकिन आज भी, हमारी शिक्षा प्रणाली इन महान योगदानों को बड़े पैमाने पर अनदेखा करती है, जिससे हमारे ऐतिहासिक धरोहर के महत्व और प्रासंगिकता पर सवाल उठते हैं।

उदाहरण के लिए, भारत ने स्टील निर्माण में एक ऐसी उत्कृष्टता हासिल की, जो आज भी चमत्कारी मानी जाती है। 'वुट्ज़' स्टील, जिसे प्रसिद्ध दमास्कस ब्लेड्स के निर्माण में इस्तेमाल किया गया था, इतनी उच्च गुणवत्ता की थी कि इसे फिर से सदियों तक नहीं बनाया जा सका।

धातुकर्म के क्षेत्र में, भारतीय धातुकर्मियों को 17वीं सदी तक अपनी विशेषज्ञता के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त थी। प्रसिद्ध दमास्कस ब्लेड्स उसी अद्वितीय भारतीय स्टील, 'वुट्ज़ स्टील', से बनाई जाती थीं, जो अपनी गुणवत्ता और विशेषताओं में बेजोड़ थी। यह स्टील एक उच्च गुणवत्ता वाली लोहे की मिश्र धातु थी, जिसे भारतीय धातुकर्मियों ने विशेष रूप से उच्च तापमान पर विभिन्न धातुओं के मिश्रण से तैयार किया था। इस प्रक्रिया में उच्च कौशल की आवश्यकता होती थी, और यही कारण था कि वुट्ज़ स्टील की विशेषता यह थी कि वह ब्लेड्स में वक्रता और ताकत का असाधारण संतुलन पैदा करता था, जिससे वे न केवल धारदार बल्कि अत्यधिक मजबूत भी बनते थे।



दमास्कस ब्लेड्स में इस्तमाल की गई वुट्ज़ स्टील

जब टीपू सुलतान 4 मई, 1799 को युद्ध में शहीद हुए, तो ब्रिटिश सेना ने उनका शरीर पाया, और उनके हाथों में उनकी शक्तिशाली तलवार थी। यह तलवार सबसे बेहतरीन और मजबूत वुट्ज़ स्टील से बनी थी, और अंग्रेज़ों को इस उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद के बारे में जानकारी थी। क्रूसेड्स के दौरान इस्तेमाल होने वाली प्रसिद्ध दमास्कस स्टील की ब्लेड्स भी भारत के वुट्ज़ स्टील इन्गोट्स से बनाई गई थीं।

वुट्ज़ स्टील और दमास्कस ब्लेड्स का निर्माण भारत में हुआ, और ये ब्लेड्स पूरी दुनिया में प्रसिद्ध हुए, खासकर मध्यपूर्व में, जहाँ इन्हें अत्यधिक मूल्यवान माना जाता था। इनका उपयोग सैनिकों और शाही परिवारों के हथियारों के रूप में किया जाता था, क्योंकि ये अत्यधिक धारदार, लचीले और मजबूत होते थे।

इसके अलावा, वुट्ज़ स्टील और दमास्कस ब्लेड्स ने धातुकर्म और विज्ञान में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित किया, क्योंकि इनसे धातु विज्ञान और उन्नत धातु मिश्रण की कला में नई दिशाएँ और संभावनाएँ खुली।

इसके अतिरिक्त, पहली सहस्राब्दी ईस्वी में, भारतीय गणित, खगोलशास्त्र और संख्यात्मक प्रणाली में किए गए योगदानों ने पश्चिमी दुनिया को भी गहरे तरीके से प्रभावित किया। ये विचार अरबी विद्वानों के माध्यम से 15वीं सदी तक यूरोप तक पहुंचे। दुर्भाग्यवश, आज की शिक्षा प्रणाली और विज्ञान के पाठ्यक्रमों में भारत के इन योगदानों को अक्सर नजरअंदाज किया जाता है, जिससे हमारे ऐतिहासिक धरोहर और ज्ञान के महत्व पर गंभीर सवाल उठते हैं।

ऐतिहासिक रूप से, भारत में ज्ञान मौखिक रूप से एक निरंतर परंपरा के माध्यम से पारित किया जाता था, जिसे "गुरु-शिष्य" प्रणाली के रूप में जाना जाता है। ज्ञान अक्सर परिवारों द्वारा संरक्षित किया जाता था, जहां पिता और पुत्र या अन्य संबंधित व्यक्ति शिक्षक और विद्यार्थी के रूप में कार्य करते थे, जिससे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान का संचार सुनिश्चित होता था।

ऐतिहासिक रूप से भारत में ज्ञान का आदान-प्रदान एक जीवंत परंपरा का हिस्सा था। इसे हम "गुरु-शिष्य परंपरा" के नाम से जानते हैं, जहां ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से आगे बढ़ता था। अक्सर यह ज्ञान परिवारों में ही सुरक्षित रहता — पिता अपने बेटे को, या कोई बुज़ुर्ग रिश्तेदार अपने छोटे परिजन को सिखाता। इस तरह, ज्ञान सिर्फ एक विषय नहीं था, बल्कि जीवन जीने का तरीका था जो पीढ़ियों से आगे बढ़ता रहा।

यह मौखिक परंपरा केवल बातचीत तक सीमित नहीं थी — उसे ताड़पत्रों पर लिखी पांडुलिपियों और बाद में छपाई के ज़रिए संरक्षित भी किया जाता रहा। यह एक समृद्ध, जीवंत और आत्मीय परंपरा थी जो हर घर, हर गाँव में पनपती थी। लेकिन लगभग 200 साल पहले, जब ब्रिटिशों ने औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली को भारत में लागू किया, तो यह सिलसिला अचानक टूटने लगा। धीरे-धीरे लोगों ने पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को त्यागना शुरू कर दिया, क्योंकि नई व्यवस्था में वही लोग ‹शिक्षित› माने जाते थे जो औपनिवेशिक स्कूलों से पढ़े हुए थे।

इस बदलाव का असर गहरा था — न सिर्फ ज्ञान की पीढ़ियों से चली आ रही कड़ी टूट गई, बल्कि उस स्थानीय, व्यावहारिक और सांस्कृतिक समझ का भी ह्रास हुआ जो पीढ़ियों से लोगों के जीवन का हिस्सा रही थी। पारंपरिक ज्ञान की वह ज़मीन, जो कभी हमारी ताक़त थी, धीरे-धीरे गुम होती चली गई।



भारत का समृद्ध ज्ञान इतिहास

2. भारतीय ज्ञान प्रणाली : सांस्कृतिक विरासत की एक जीवंत झलक

भारत की समृद्ध और विविध सांस्कृतिक विरासत से उपजा एक विशाल और गहराई से जुड़ा ज्ञान भंडार है। यह कोई एक पुस्तक या शास्त्र में सीमित नहीं है—यह वह जीवंत परंपरा है जो हज़ारों वर्षों से लोगों के जीवन, सोच और व्यवहार का हिस्सा रही है। लगभग पाँच हज़ार वर्षों के प्रलेखित इतिहास में फैली इस प्रणाली में साहित्य, सामाजिक

रीति-रिवाज़, ऐतिहासिक दस्तावेज़ और विभिन्न क्षेत्रों, भाषाओं व बोलियों में प्रचलित व्यवहार शामिल हैं। यह ज्ञान किसी एक समय में नहीं रचा गया, बल्कि अनगिनत पीढ़ियों ने अपने अनुभव, चिंतन और प्रयोग से इसे गढ़ा और सँवारा है। इसमें प्राचीन ऋषियों की गूढ़ सूझ-बूझ से लेकर आज के वैज्ञानिक सोच तक सब कुछ समाहित है।

यहाँ "भारतीय" का तात्पर्य सिर्फ आधुनिक भारत तक सीमित नहीं है। यह उस विशाल सांस्कृतिक भूगोल की बात करता है जिसे 'अखण्ड भारत' कहा जाता है—जो म्यांमार से लेकर अफगानिस्तान तक और हिमालय से लेकर भारतीय महासागर तक फैला था। इस विशाल क्षेत्र में सदियों से अलग-अलग समुदायों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा, और इन विविधताओं के बावजूद एक गहरी सांस्कृतिक एकता बनी रही। इतिहास के पन्नों में चाहे कितने भी राजाओं और रियासतों का शासन रहा हो, भारतवर्ष की आत्मा एक ही रही—ज्ञान से जुड़ी, परंपरा से बंधी, और साझा मूल्यों से प्रेरित। तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालय में अध्ययन करने वाले चाणक्य, या गांधार क्षेत्र के महान संस्कृत व्याकरणाचार्य पाणिनी जैसे विद्वानों ने इस ज्ञान-परंपरा को न केवल समृद्ध किया, बल्कि पूरे उपमहाद्वीप की पहचान को आकार देने में अहम भूमिका निभाई।

भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल किताबों में बंद कोई विषय नहीं, बल्कि वह जीता-जागता दर्शन है जो हमें अपनी जड़ों से जोड़ता है और बताता है कि हमारी विरासत कितनी गहरी, समृद्ध और आज भी प्रासंगिक है।

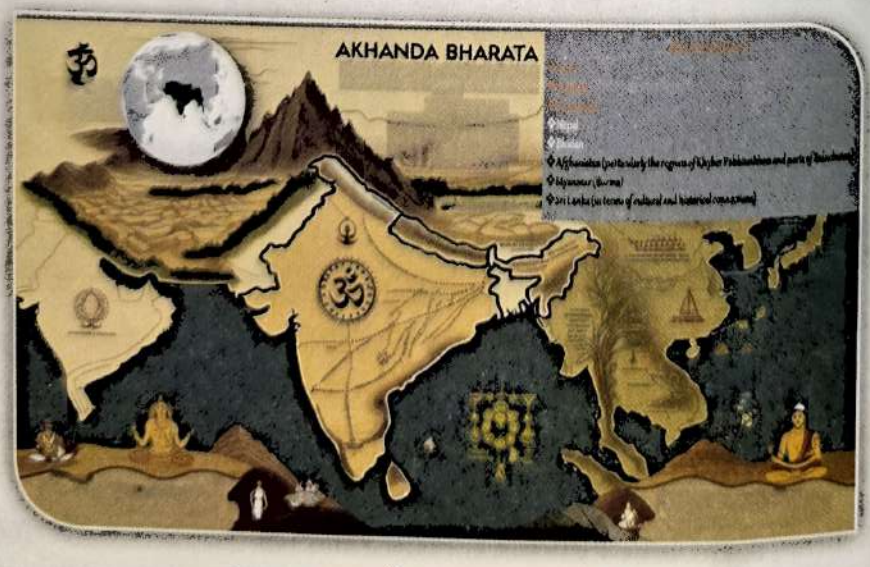

अखण्ड भारत की अवधारणा का मानचित्र

(Source: Banerjee, Supurna; Ghosh, Nandini (17 September 2018). Caste and Gender in Contemporary India: Power, Privilege and Politics. Taylor & Francis. ISBN 978-0-429-78395-1. The Hindutva discourse believes in India, Pakistan, Bangladesh and Afghanistan all being a part of Akhand Bharat as they are a part of the sacred soil of the Hindu nation with common claims of nationalism.)

इसके अतिरिक्त, यह समझना भी महत्वपूर्ण है कि "भारतीय" ज्ञान केवल उसी ज्ञान को माना जाता है जो भारतीय उपमहाद्वीप के मूल निवासियों द्वारा रचा, संहिताबद्ध और पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित किया गया है। हालांकि, विदेशी विद्वानों ने भारतीय ज्ञान को वैश्विक स्तर पर फैलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, फिर भी यह ज्ञान मूल रूप से भारतीय संदर्भ में निहित है, जो इस क्षेत्र की विशिष्ट सांस्कृतिक, बौद्धिक और दार्शनिक धरोहर को दर्शाता है।

यहां "ज्ञान" शब्द विविध और बहुआयामी है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में यह अक्सर सहज होता है—जो व्यक्तिगत अनुभवों, चुनौतियों और जीवन के अवलोकनों से आकार लेता है। यह प्रयोग, अनुमान और विश्लेषण के माध्यम से भी उत्पन्न हो सकता है। ज्ञान या तो निहित (अर्थात व्यक्ति के मस्तिष्क में स्थित) हो सकता है, या स्पष्ट (लिखित रूप में रिकॉर्ड किया गया) हो सकता है। भारत में दोनों प्रकार के ज्ञान सहस्राब्दियों से साथ-साथ चलते आए हैं। मौखिक परंपराएं, जैसे लोककथाएँ, कहानी सुनाना और ज्ञान का मौखिक संप्रेषण, ने पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, आज के समय में लिखित रूप में संकलित ज्ञान अधिक प्रमुख हो गया है। इस चर्चा के संदर्भ में, "ज्ञान" मुख्य रूप से उस औपचारिक, संहिताबद्ध ज्ञान को संदर्भित करता है जो साहित्यिक स्रोतों में संकलित है। इसमें सैद्धांतिक रूपरेखाएँ, विद्वतापूर्ण रचनाएँ, और अन्य लिखित कृतियाँ शामिल हैं जो औपचारिक चैनलों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी पहुंचाई गई हैं।

भारतीय ज्ञान प्रणाली एक व्यापक ज्ञान प्रणाली है, जिसमें सामाजिक प्रथाएँ, दैनिक जीवन, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टियाँ, दार्शनिक शिक्षाएँ और वैज्ञानिक ज्ञान शामिल हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली को समझने की कुंजी यह है कि ज्ञान जीवन के किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है; यह मानव अनुभव के सभी पहलुओं में फैला हुआ है, जिसमें व्यावहारिक समाधान से लेकर गहरी आध्यात्मिक ज्ञान तक शामिल है।

"प्रणाली" शब्द का अर्थ है वह व्यवस्थित ढांचा जिसके माध्यम से ज्ञान को वर्गीकृत, संरक्षित और संप्रेषित किया जाता है। भारत में, ज्ञान कभी भी अव्यवस्थित नहीं रहा; इसे भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुलभ बनाए रखने के लिए सावधानीपूर्वक संरचित किया गया है। इसमें संहिताबद्ध ग्रंथ, शैक्षिक प्रथाएँ और संस्थाएँ शामिल हैं जो अन्वेषण और नवाचार को बढ़ावा देती हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली एक समृद्ध, स्वदेशी ज्ञान का भंडार है जो समय, भौगोलिक स्थान और विभिन्न क्षेत्रों में फैला हुआ है। इसकी

व्यवस्थित प्रकृति और समकालीन मुद्दों से इसकी प्रासंगिकता आज के समय में भारतीय ज्ञान प्रणाली को समझने और सराहने की महत्ता को उजागर करती है।

3. भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ: संरक्षण और विकास की आवश्यकता

आज के विविध सांस्कृतिक समाज में भारतीय ज्ञान प्रणालियों (भारतीय ज्ञान प्रणाली) पर विचार करना क्यों जरूरी है? यह सवाल हमारे समय की गंभीर और आवश्यक चर्चा बन चुकी है, खासकर जब हम वैश्विक स्तर पर बौद्धिक संपदा अधिकार, पेटेंटिंग और ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती प्रभाव को देखते हैं। भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ सिर्फ हमारे पूर्वजों के ज्ञान को सम्मानित करने का तरीका नहीं हैं; ये भारत के सांस्कृतिक मूल्यों को भी समाहित करती हैं, जैसे सततता, समग्र जीवन जीने का तरीका और नवाचार। भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने में मदद करती है, बल्कि यह आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने और आर्थिक लचीलापन सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसे अपनाने से हमारे बीच एक मजबूत राष्ट्रीय पहचान और गर्व की भावना विकसित होती है, जो हमें भारतीय बौद्धिक और सांस्कृतिक धरोहर से फिर से जोड़ती है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली को संरक्षित करने की आवश्यकता को दर्शाने वाला एक प्रमुख उदाहरण है नीम के पेड़ के उत्पाद। भारत में सदियों से नीम का उपयोग प्राकृतिक कीटनाशक के रूप में किया जाता रहा है, एक उपचार जिसे देशभर के किसान अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में इस्तेमाल करते हैं। लेकिन, इस लंबे समय से चले आ रहे ज्ञान के बावजूद, एक अमेरिकी कंपनी को नीम से बने एक कीटनाशक का पेटेंट दिया गया। कंपनी ने दावा किया कि उसने नीम के सक्रिय कीटनाशक तत्व की प्रभावशीलता को उसके सामान्य दो सप्ताह के जीवनकाल से अधिक समय तक बढ़ाने का तरीका विकसित किया है। जबकि भारतीय शोधकर्ता वर्षों से नीम पर काम कर रहे थे, उन्होंने इस विशेष आवेदन पर पेटेंट नहीं कराया, और परिणामस्वरूप पेटेंट एक विदेशी कंपनी को मिल गया। यह स्थिति पारंपरिक ज्ञान की सुरक्षा और इसके अनदेखा होने के कारण होने वाले संभावित आर्थिक नुकसान को उजागर करती है।

इसी तरह, विकसित और विकासशील देशों से पारंपरिक उपचारों का पेटेंटिंग एक अंतरराष्ट्रीय चिंता बन चुका है। भारत के लिए एक बड़ी जीत हल्दी (*Curcuma longa*) के मामले में हुई, जो भारतीय भोजन और पारंपरिक चिकित्सा में व्यापक रूप से

उपयोग की जाती है। 1995 में, दो अमेरिकी शोधकर्ताओं को हल्दी के घावों के इलाज में उपयोग के लिए पेटेंट मिला। हालांकि, भारत के वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने इस पेटेंट को चुनौती दी, यह तर्क देते हुए कि हल्दी का उपयोग इस उद्देश्य के लिए सदियों से भारत में किया जा रहा है। एक लंबी कानूनी लड़ाई के बाद, पेटेंट को रद्द कर दिया गया, जिससे यह साबित हुआ कि बायोपाइरेसी और पेटेंट प्रणाली के दुरुपयोग के खिलाफ स्वदेशी ज्ञान की रक्षा करना कितनी महत्वपूर्ण बात है।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भारत और अन्य पारंपरिक ज्ञान से समृद्ध देशों के लिए एक महत्वपूर्ण चिंता है: बायोपाइरेसी। मौजूदा पेटेंट प्रणाली, कई मामलों में, विकासशील देशों के पारंपरिक ज्ञान का शोषण करती है, बिना इसके स्रोत का सम्मान किए। इसका समाधान निकालने के लिए, भारत ने आंवला, हल्दी और अन्य औषधीय पौधों के उपयोग से संबंधित पेटेंट्स को रद्द करने की सिफारिश की है, यह तर्क देते हुए कि ये भारत की प्राचीन धरोहर और ज्ञान का हिस्सा हैं।

हल्दी पेटेंट मामला पारंपरिक ज्ञान की रक्षा में आने वाली सांस्कृतिक और आर्थिक चुनौतियों को उजागर करता है। पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होने वाला यह ज्ञान बहुत आसानी से शोषण का शिकार हो सकता है। वैज्ञानिक सत्यापन और पेटेंटिंग भारत को अपनी धरोहर को संरक्षित करने और वैश्विक ज्ञान अर्थव्यवस्था में अपनी भूमिका को सशक्त बनाने में मदद कर सकती है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह देश की आर्थिक और वैज्ञानिक प्रगति में भी योगदान करता है।

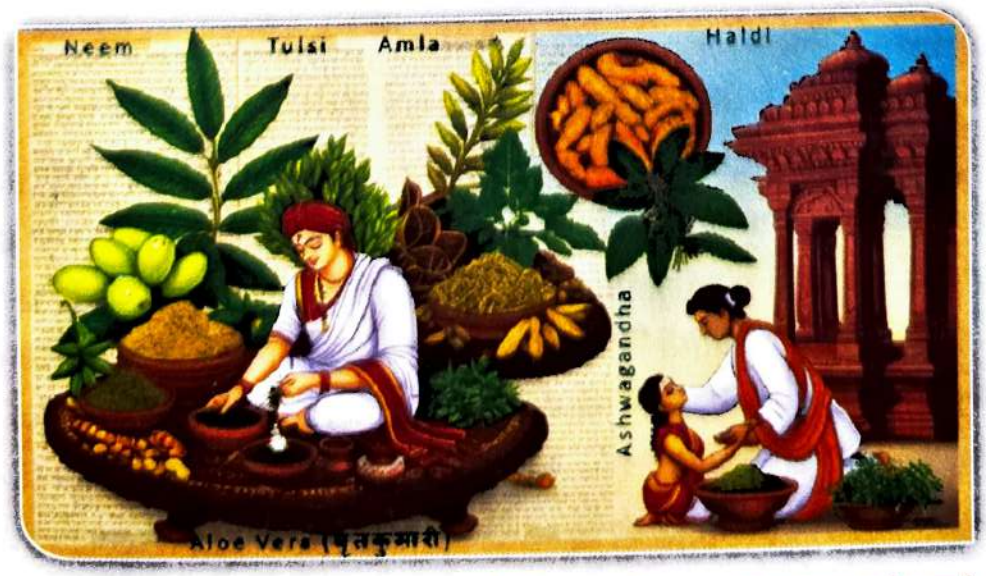

प्राचीन भारतीय आरोग्य और उपचार परंपराओं के स्तंभ: नीम, तुलसी, आंवला और हल्दी

भारत के पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण: यह जरूरी पहल उस मूल्यवान ज्ञान को दस्तावेजीकृत करने, शोध करने और पेटेंट करने से संबंधित है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हमारे पास आया है, यह सुनिश्चित करते हुए कि इसे वैश्विक स्तर पर पहचाना और सम्मानित किया जाए। यही हमारी सांस्कृतिक और बौद्धिक विरासत को बचाने और उसे भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने का सही तरीका है।

4. प्राचीन ज्ञान का महत्व—अपनी जड़ों से जुड़ने की शक्ति

प्राचीन ज्ञान, जो हमारे पूर्वजों की गहरी समझ और अनुभव का फल है, मौखिक परंपराओं और लिखित ग्रंथों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित किया गया है। भारत के विशाल ताड़पत्रों पर लिखे गए अमूल्य ग्रंथों को विद्वानों ने जरूर खोजा है, लेकिन अभी भी कई ऐसे खजाने हैं जो हमारी नजरों से दूर हैं। आज भी कुछ ग्रामीण समुदायों में ये मौखिक परंपराएँ जीवित हैं, लेकिन यदि इन्हें बचा कर नहीं रखा गया, तो इनका लुप्त होना निश्चित हो सकता है। यह ज्ञान केवल इतिहास का हिस्सा नहीं है, बल्कि हमारे सांस्कृतिक और बौद्धिक धरोहर का जीवंत प्रमाण है, जिसे संरक्षित करने की आवश्यकता है।

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है—क्या हमें अपने प्राचीन ज्ञान को आने वाली पीढ़ियों के लिए सहेजकर रखना चाहिए? इसका उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है: हाँ। क्योंकि यही ज्ञान हमारे सोचने के तरीके को दिशा देता है, हमारे पूर्वजों की दृष्टि और समझ को दर्शाता है। आज के संदर्भ में यदि हम इस ज्ञान के साथ संवाद करें, उसे नए नजरिए से देखें, तो हमारी सोच और समझ कहीं अधिक समृद्ध होती है। इस विरासत की उपेक्षा करना न केवल मूर्खता होगी, बल्कि यह हमारी बौद्धिक जड़ों से एक जरूरी संबंध को तोड़ देने जैसा होगा—एक ऐसा संबंध जो भविष्य के नवाचारों की नींव बन सकता है।

प्राचीन ज्ञान समाज में कई स्तरों पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अतीत और वर्तमान के बीच एक पुल का कार्य करता है, और चिकित्सा, कृषि, दर्शन, तथा सतत जीवनशैली जैसे क्षेत्रों में कालातीत समझ प्रदान करता है। यह ज्ञान सदियों के अनुभव और अवलोकन पर आधारित है, और यही बात इसे इतना मूल्यवान बनाती है। यह न केवल हमारी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखता है, बल्कि आधुनिक नवाचारों को भी दिशा देने में सहायक होता है।

जब हम पारंपरिक ज्ञान को महत्व देते हैं और उसे अपने जीवन में समाहित करते हैं, तो हम एक ऐसी दुनिया की ओर बढ़ते हैं जो अधिक संतुलित, समग्र और मजबूत

होती है। यही वह आधार है जिस पर हम एक बेहतर, टिकाऊ और आत्मबोध से भरपूर भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

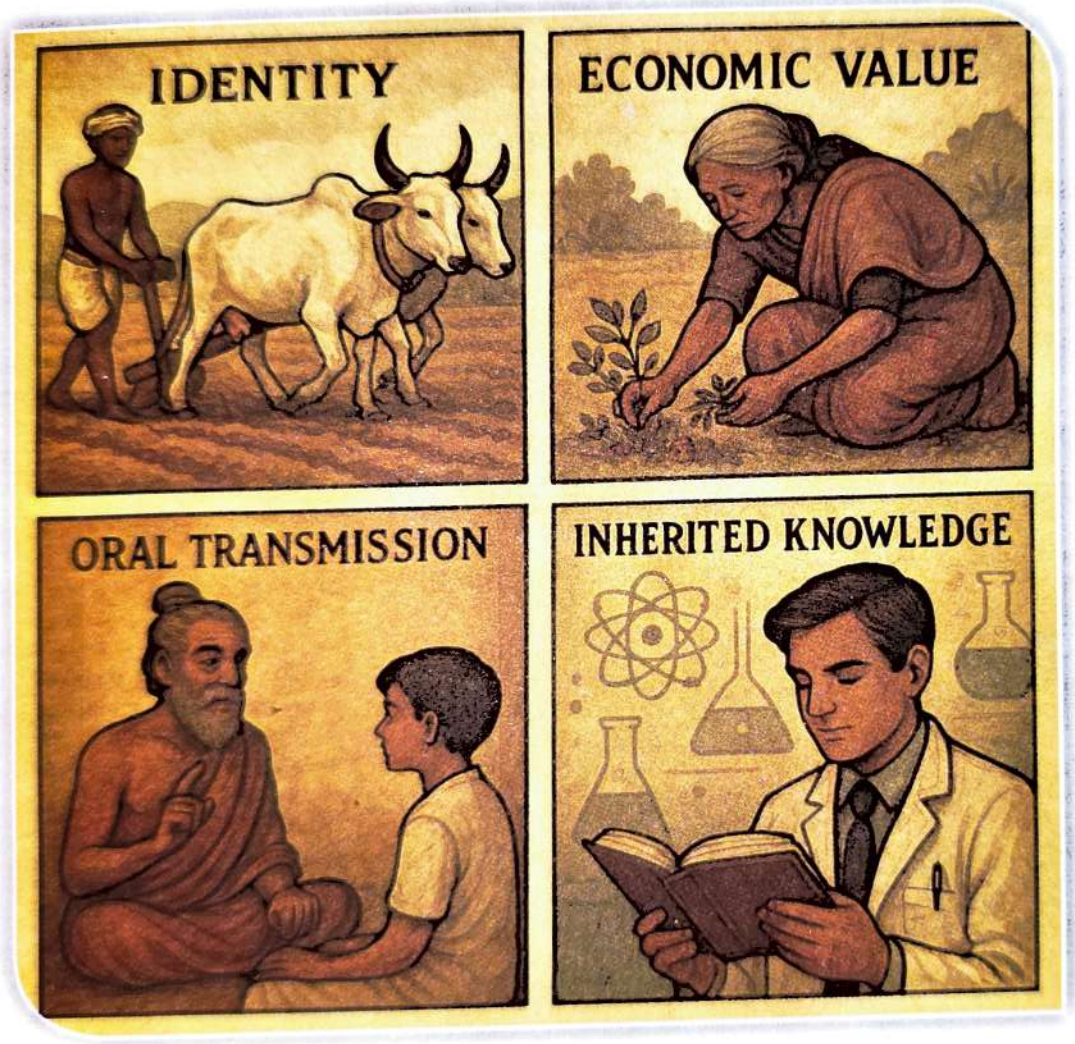

भारतीय ज्ञान प्रणाली के विशेष स्तम्भ

4.1 पहचान (Identity)

प्राचीन ज्ञान का सबसे बुनियादी और गहरा लाभ यह है कि यह समाज के लोगों को एक मजबूत पहचान देता है। यह ज्ञान हमारे जीवन के कई पहलुओं की नींव रखता है—जैसे सामाजिक नियम, परंपराएं, रीति-रिवाज़ और दैनिक आचरण। ये सब कुछ यूँ ही नहीं बने; ये पीढ़ी दर पीढ़ी हमारे पूर्वजों से हमें मिले हैं, और आज भी हमारे जीवन को दिशा देते हैं।

जब यह ज्ञान पीढ़ियों तक सहेजा और साझा किया जाता है, तो समाज की सांस्कृतिक निरंतरता बनी रहती है। इसी निरंतरता से हम अपने इतिहास से जुड़ते हैं, अपनी जड़ों को पहचानते हैं, और अपने संस्कारों में गर्व महसूस करते हैं।

आज के आधुनिक और तेजी से बदलते समय में, इस ज्ञान को संरक्षित रखना और भी जरूरी हो गया है। यह न सिर्फ हमारे अतीत से जुड़ाव बनाए रखता है, बल्कि हमें यह भी समझने में मदद करता है कि हम कौन हैं, और हमारे जीवन की परंपराओं का क्या महत्व है।

अगर यह जुड़ाव टूट जाए, अगर हम अपनी परंपराओं और मूल्यों की जड़ें भूल जाएं—तो हमारी व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान पर सवाल उठने लगते हैं। हम यह सोचने लगते हैं कि इन रीति-रिवाजों का क्या मतलब है? और जब ये सवाल गहराते हैं, तो हमारी आत्मा और समाज दोनों की स्थिरता डगमगाने लगती है।

इसलिए, अपनी पहचान को सहेजने और समझने के लिए, हमें अपने प्राचीन ज्ञान को अपनाना और उसका सम्मान करना बेहद जरूरी है। यही ज्ञान हमें अपने इतिहास से जोड़ता है और एक समृद्ध सांस्कृतिक भविष्य की ओर ले जाता है।



भारत की स्वर्णिम जड़—हल्दी, जो भोजन और चिकित्सा दोनों में प्रिय है।

4.2 संस्कृति (Culture)

संस्कृति किसी समाज की सामूहिक बौद्धिक उपलब्धियों की बाहरी अभिव्यक्ति होती है। इसमें विश्वास, परंपराएं और सामाजिक व्यवहार शामिल होते हैं जो एक समुदाय की पहचान बनाते हैं। यही संस्कृति लोगों को एक साझा मंच देती है—जहाँ विचारों का आदान-प्रदान होता है और एकता की भावना पनपती है।

प्राचीन ज्ञान इस सांस्कृतिक ताने-बाने की नींव है। अगर यह ज्ञान खो गया या नजरअंदाज किया गया, तो सांस्कृतिक परंपराएं विकृत हो सकती हैं और समाज की निरंतरता टूट सकती है। इसलिए सांस्कृतिक विकास को बनाए रखने के लिए प्राचीन ज्ञान की सुरक्षा बेहद ज़रूरी है।

4.3 विरासत में मिला ज्ञान (Inherited Knowledge)

ज्ञान और नवाचार (innovation) आपस में जुड़े हुए हैं—ये कोई एकबार की प्रक्रिया नहीं, बल्कि निरंतर चलने वाला सिलसिला है। किसी भी समाज में नया विकास पुराने अनुभवों और उपलब्धियों पर आधारित होता है। अगर हम अपनी ज्ञान की विरासत को नहीं समझते या सहेजते, तो कई बार वही समस्याएं बार-बार हल करनी पड़ती हैं, जिनका समाधान हमारे पूर्वज पहले ही कर चुके होते हैं। इससे समय और संसाधनों की बर्बादी होती है। प्राचीन ज्ञान, जो पीढ़ियों से चला आ रहा है, नई खोजों की बुनियाद बनता है। यह वो नींव है जिस पर आने वाला भविष्य खड़ा होता है।

4.4 परंपरा से जुड़ी अर्थव्यवस्था (Economy Rooted in Tradition)

आज की दुनिया एक "ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था" बनती जा रही है, जहाँ ताकत बंदूकों में नहीं, बल्कि विचारों और बुद्धिमत्ता में होती है। ऐसे में जिन देशों के पास समृद्ध बौद्धिक परंपराएं हैं, वे वैश्विक मंच पर बढ़त बना सकते हैं। भारतीय ज्ञान परंपराएं अपार आर्थिक संभावना रखती हैं, बशर्ते उन्हें पहचाना, संरक्षित किया और सही तरीके से उपयोग किया जाए। इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स और पेटेंट जैसे तंत्र इस ज्ञान को आर्थिक मूल्य में बदलने के रास्ते खोलते हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि भारत अपने पारंपरिक ज्ञान को खोने नहीं दे।

4.5 सततता (Sustainability)

भारतीय पारंपरिक ज्ञान हमेशा से प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखने की बात करता रहा है। हमारे पूर्वजों की जीवनशैली में प्रकृति का सम्मान और संरक्षण गहराई से जुड़ा हुआ था।

चाहे वह कृषि पद्धतियां हों, जल संरक्षण के उपाय, पर्यावरण-अनुकूल वास्तुकला हो या फिर वनस्पति आधारित आहार—सभी कुछ इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत में जीवन और प्रकृति साथ-साथ चलते थे। यह समझ आज की दुनिया के लिए बेहद ज़रूरी है, जहाँ टिकाऊ जीवनशैली की पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरत है।

4.6 समग्र स्वास्थ्य (Holistic Well-being)

आयुर्वेद और योग जैसे भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ सिर्फ शरीर को नहीं, बल्कि मन और आत्मा को भी संतुलित करने पर ज़ोर देती हैं। आज के तनावपूर्ण जीवन में, इन प्रणालियों की समझ और उपयोग लोगों को बेहतर स्वास्थ्य, संतुलन और मानसिक शांति की ओर ले जा सकते हैं।

4.7 बहुविषयक शिक्षा (Multi-disciplinary Learning)

भारतीय ज्ञान परंपरा ने हमेशा गणित, खगोल, संगीत, कला और दर्शन जैसे विविध विषयों को एक साथ जोड़ा। यह दृष्टिकोण शिक्षा को समग्र बनाता है और समस्याओं के समाधान में रचनात्मकता लाता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली इससे प्रेरणा लेकर और अधिक समन्वित और व्यावहारिक बन सकती है।

4.8 विज्ञान और तकनीक में नवाचार (Innovation in Science and Technology)

आज के वैज्ञानिक और तकनीकी युग में प्राचीन भारतीय ज्ञान की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। शून्य का आविष्कार, दशमलव पद्धति, धातु विज्ञान, आयुर्वेद और खगोलशास्त्र जैसे क्षेत्रों में भारतीय विद्वानों का योगदान आधुनिक विज्ञान की नींव बन चुका है। इन्हीं में से एक अमूल्य धरोहर है संस्कृत भाषा, जो अपनी वैज्ञानिक संरचना और व्याकरणिक स्पष्टता के कारण आज भी वैश्विक स्तर पर सराही जा रही है।

नेशनल एयरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन और अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थानों ने संस्कृत में रुचि दिखाई है क्योंकि यह कंप्यूटर विज्ञान, विशेषकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग (NLP) के लिए एक उपयुक्त भाषा मानी जाती है। इसकी अस्पष्टता-रहित प्रकृति और सटीक नियमबद्धता इसे मशीनों द्वारा समझे जाने योग्य बनाती है। पाणिनि द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण आज भी एल्गोरिदम सोच का एक बेहतरीन उदाहरण माना जाता है।

संस्कृत भाषा और प्राचीन भारतीय सिद्धांतों का आधुनिक संदर्भ में पुनः मूल्यांकन करके हम न केवल अपने अतीत को सम्मान दे सकते हैं, बल्कि भविष्य की तकनीकों को भी नई दिशा दे सकते हैं। यह ज्ञान न केवल हमारी सांस्कृतिक पहचान को मजबूती देता है, बल्कि हमें वैश्विक नवाचार में एक अग्रणी भूमिका निभाने का अवसर भी देता है। इसलिए आज जब हम स्पेस टेक्नोलॉजी, क्वांटम कंप्यूटिंग और कृत्रिम बुद्धिमत्ता में नए

मुकाम हासिल कर रहे हैं, तब प्राचीन भारतीय ज्ञान से प्रेरणा लेकर हम और भी ऊँचाइयों तक पहुँच सकते हैं। यह सिर्फ अतीत की याद नहीं, बल्कि भविष्य की चाबी है।

4.9 सामाजिक समरसता और नैतिकता (Social Harmony and Ethics)

धर्म और अहिंसा जैसे प्राचीन भारतीय सिद्धांत आज के समाज में भी उतने ही प्रासंगिक हैं। ये विचार सामाजिक एकता, विविधता के प्रति सम्मान और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को प्रोत्साहित करते हैं।

4.10 मानसिक अंतर्दृष्टि (Psychological Insights)

वेदांत और बौद्ध दर्शन जैसे भारतीय ज्ञान क्षेत्रों में मानव मन, ध्यान और मानसिक संतुलन को लेकर गहरी समझ है। आज की मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियों में यह ज्ञान व्यक्तिगत विकास और थैरेपी दोनों में सहायक बन सकता है।

4.11 नेतृत्व और शासन प्रणाली (Leadership and Governance)

कौटिल्य का अर्थशास्त्र या भगवद्गीता जैसे ग्रंथ नेतृत्व, नीति और नैतिक शासन के अमूल्य सूत्रों से भरे हुए हैं।आधुनिक नेतृत्व को यह सिखाते हैं कि कैसे शक्ति को ज़िम्मेदारी के साथ संतुलित किया जाए और लोककल्याण को प्राथमिकता दी जाए।

4.12 लचीलापन और अनुकूलन क्षमता (Resilience and Adaptability)

भारतीय ज्ञान परंपरा बार-बार यह सिखाती है कि बदलाव के समय में कैसे संतुलन बनाए रखा जाए।

आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण व्यक्ति और समाज दोनों को बदलती परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बैठाने में सक्षम बनाते हैं—चाहे वह जलवायु परिवर्तन हो या सामाजिक बदलाव।

प्राचीन भारतीय ज्ञान समाज के लिए अनमोल खजाना है। यह न केवल हमारी पहचान को परिभाषित करता है, बल्कि संस्कृति को आकार देता है, नवाचार को आधार देता है और आर्थिक रूप से भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अगर हम इस ज्ञान को सुरक्षित रखें और इसे आज के संदर्भ में जीवंत बनाएं, तो हम एक ऐसे भविष्य की ओर बढ़ सकते हैं जो और अधिक टिकाऊ, समरस और रचनात्मक हो। भारतीय ज्ञान प्रणाली से जुड़ना केवल अतीत को जानना नहीं, बल्कि आने वाले कल को बेहतर बनाना है।

5. भारतीय ज्ञान परिदृश्य का मानचित्रण

भारतीय ज्ञान प्रणाली में भारत में सदियों से संचित ज्ञान और बुद्धिमत्ता का एक विशाल क्षेत्र समाहित है। भारतीय ज्ञान प्रणाली को परिभाषित और वर्गीकृत करने के लिए सावधानीपूर्वक विचार की आवश्यकता है, क्योंकि इसमें प्राचीन परंपराओं में निहित अध्ययन और प्रथाओं के विविध क्षेत्र शामिल हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रमुख विषयों, जैसे वेद, योग, वास्तु, शिल्प शास्त्र, आयुर्वेद, बौद्ध धर्म और जैन धर्म, या फिर भारतीय चिकित्सा आदि जैसे वाक्यांशों का चयन करके परिभाषित किया जा सकता है। ये भारतीय ज्ञान के मूलभूत तत्व हैं। हालाँकि, एक मजबूत वर्गीकरण ढाँचा केवल विषयों की सूची से कहीं अधिक होना चाहिए; इसे तीन महत्वपूर्ण मानदंडों को पूरा करना होगा: समावेशिता, संक्षिप्तता और अंतर्संबंध।

5.1 भारतीय ज्ञान प्रणाली वर्गिकरण के प्रभावी सिद्धान्त

1. समावेशिता (Inclusiveness)

एक अच्छा वर्गीकरण ढांचा भारतीय ज्ञान प्रणाली के सभी महत्वपूर्ण घटकों को शामिल करना चाहिए। अगर किसी महत्वपूर्ण क्षेत्र या ज्ञान के विषय को छोड़ दिया जाता है, तो वर्गीकरण ढांचा अधूरा होगा और भारतीय ज्ञान की पूरी श्रृंखला का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाएगा।

2. संक्षिप्तता (Conciseness)

यह ढांचा भारतीय ज्ञान प्रणाली के विषयों को इस प्रकार समूहित करना चाहिए कि वह तार्किक और संक्षिप्त हो। इससे यह सुनिश्चित होता है कि वर्गीकरण को समझना, अध्ययन करना और याद रखना आसान हो। जानकारी को स्पष्ट रूप से व्यवस्थित किया जाना चाहिए, बिना किसी अनावश्यक पुनरावृत्ति या भ्रम के।

3. आपसी संबंध (Interrelations)

एक प्रभावी वर्गीकरण ढांचा यह स्पष्ट रूप से दर्शाता हैं कि विभिन्न विषय और उप-श्रेणियाँ आपस में कैसे जुड़ी हुई हैं। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बीच के संबंधों को समझना बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हम उनके समग्र स्वभाव को बेहतर तरीके से जान सकते हैं और यह समझ सकते हैं कि वे भारतीय ज्ञान प्रणाली में किस प्रकार अपना योगदान देती हैं। ऐसे संबंधों को पहचानने से न केवल ज्ञान की गहराई का अहसास होता है, बल्कि यह

भी पता चलता है कि कैसे ये क्षेत्र एक-दूसरे को समृद्ध करते हैं और साझा रूप से विकास की दिशा में योगदान करते हैं।

5.2 भारतीय ज्ञान प्रणाली ज्ञान के स्रोत

जब हम भारतीय ज्ञान प्रणाली के भंडार का अध्ययन करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह ज्ञान साहित्यिक और गैर-साहित्यिक स्रोतों का मिश्रण है। भारतीय ज्ञान के साहित्यिक स्रोतों को व्यापक रूप से तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

1. सनातन धर्म साहित्य

यह साहित्य मुख्य रूप से संस्कृत में है, जिसमें वेदों का संकलन और संबंधित ग्रंथ आते हैं, जो दर्शन, विज्ञान, वास्तुकला और सौंदर्यशास्त्र से जुड़े होते हैं।

अन्य धार्मिक परंपराओं के ग्रंथ

इसमें अन्य धर्मिक परंपराओं के ज्ञान से संबंधित साहित्य शामिल है।

क्षेत्रीय भारतीय भाषाओं और बोलियों में संरक्षित साहित्य

इसमें भारतीय भाषाओं और बोलियों में संरक्षित विविध ज्ञान शामिल है।

गैर-साहित्यिक स्रोत (Non-literary sources): गैर-साहित्यिक स्रोत मुख्य रूप से देशभर में समृद्ध मौखिक परंपराओं के माध्यम से संरक्षित हैं।

साहित्यिक स्रोत

भारतीय ज्ञान प्रणाली साहित्य में गहरे रूप से निहित है, और इसका अधिकांश हिस्सा संस्कृत में लिखा गया है। सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रंथों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

- **वेदों और उपनिषदों:** ये भारतीय ज्ञान परंपरा के सबसे प्राचीन और केंद्रीय ग्रंथ हैं।
- **पुराण और महाकाव्य:** ये ग्रंथ भारतीय संस्कृति, इतिहास, और दर्शन को व्याख्यायित करते हैं।
- **साहित्यिक रचनाएँ:** शास्त्र, काव्य, और अन्य लिखित रचनाएँ जो समाज के विभिन्न पहलुओं को समझाती हैं।

2. सनातन धर्म: मुख्य ग्रंथ और शाश्वत ज्ञान

यह हिन्दू धर्म के बुनियादी ग्रंथों को शामिल करता है, जैसे वेद, उपनिषद, पुराण, और भगवद गीता। ये ग्रंथ भारतीय आध्यात्मिक, दार्शनिक, और वैज्ञानिक विचारों के मूल हैं। इन ग्रंथों में समाहित ज्ञान विभिन्न विषयों का विस्तार से उल्लेख करता है, जैसे ब्रह्माण्डशास्त्र, नैतिकता, अनुष्ठान, चिकित्सा, और आध्यात्मिकता।

इस विशाल ज्ञान का स्रोत वेद हैं, जिन्हें श्रुति कहा जाता है, जो मूल रूप से मौखिक रूप से प्रसारित किए गए थे और बाद में लिखित रूप में व्यवस्थित रूप से संकलित किए गए। वेद भारतीय समाज में एक मजबूत आधार माने जाते हैं और इनके प्रभाव में कई अन्य ग्रंथों की रचना हुई, जिनका उद्देश्य वेदों के मूल विचारों की व्याख्या और उनका आवेदन करना था।

ये ग्रंथ वेदों के सिद्धांतों से जुड़े रहते थे और उनके बुनियादी विचारों से प्रेरित होते थे। उदाहरण के तौर पर, छह दार्शनिक स्कूल (दर्शन) अपने बुनियादी विचारों को वेदों पर आधारित करते थे। वेदों का साहित्य और इसके संबंधित ग्रंथों को सबसे अच्छे तरीके से समझने के लिए एक संरचित वर्गीकरण प्रणाली की आवश्यकता होती है, क्योंकि इसके कई घटक और उप-श्रेणियाँ हैं।

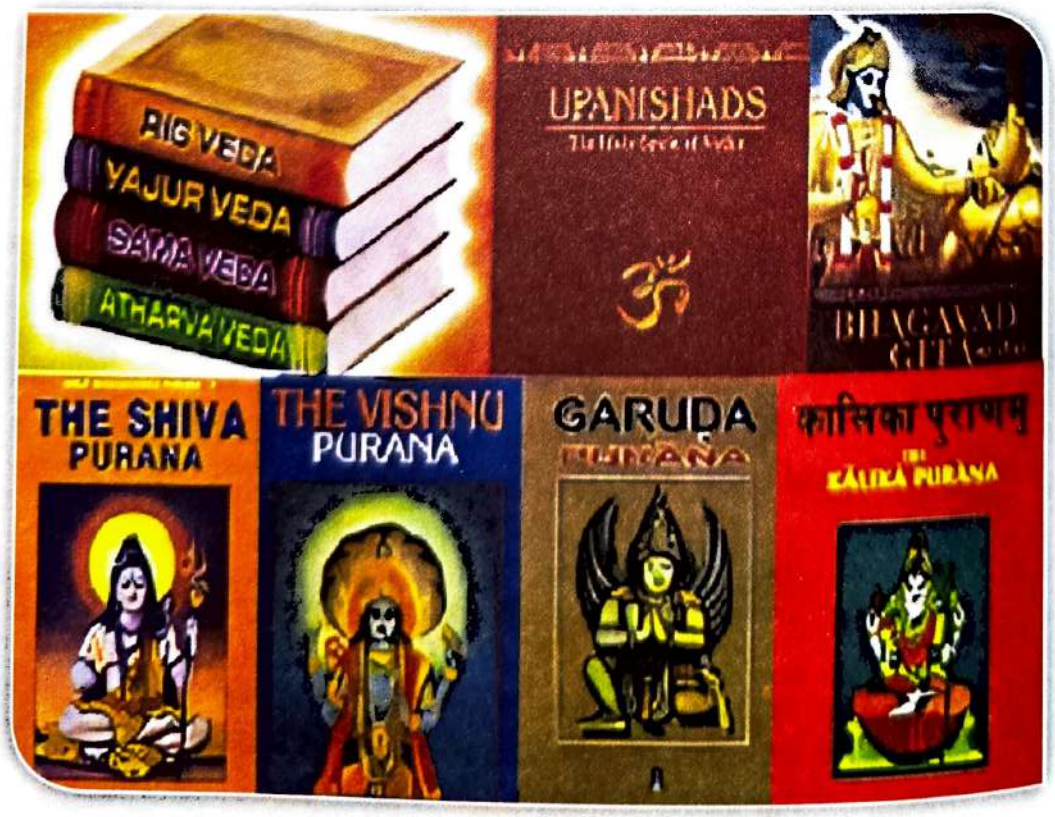

सनातन धर्म के आधारभूत ग्रंथ

संक्षेप में, ये ग्रंथ न केवल धार्मिक विचारों को व्यक्त करते हैं, बल्कि हमारे ज्ञान के विभिन्न पहलुओं को भी समाहित करते हैं, जो हमारे जीवन, ब्रह्माण्ड, और अस्तित्व के बारे में गहरे प्रश्नों को हल करने में सहायक होते हैं।

3. सनातन धर्म (अतिरिक्त-साहित्य)

इस साहित्य का दूसरा वर्ग दैनिक जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से संबंधित है, जैसे स्वास्थ्य, कल्याण, विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और कला, जो समाजिक उन्नति में योगदान करते हैं। ये ग्रंथ विविध विषयों पर ध्यान केंद्रित करते हुए भी सनातन धर्म के सिद्धांतों पर आधारित रहते थे और जहाँ आवश्यक था, वेदों से बुनियादी विचारों को उधार लेते थे। उदाहरण स्वरूप, आर्यभट का खगोलशास्त्र पर ग्रंथ वेदों के विचारों को जैसे वर्ष की परिभाषा और चार युगों की अवधारणा से संदर्भित करता है, जबकि गणितीय चर्चाओं को आगे बढ़ाता है।

यह साहित्य पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व में फलने-फूलने लगा और विभिन्न क्षेत्रों में विस्तारित हुआ, जिनमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित क्षेत्र शामिल हैं:

- **भारतीय साहित्य** में उन्नत इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी प्रथाओं के प्रमाण मिलते हैं, जैसे धातु शास्त्र, जहाज निर्माण, बांध और जलग्रहण प्रबंधन, रसायन विज्ञान, सौंदर्य प्रसाधन, इत्र, रंग, नगर नियोजन और वास्तुकला, साथ ही उनके पीछे के विचारों और तकनीकों का विस्तार से वर्णन।
- **मूलभूत और अनुप्रयुक्त विज्ञान** जैसे गणित, खगोलशास्त्र और पौधों का विज्ञान प्रारंभिक सामान्य युग से निरंतर अध्ययन किए गए थे। समय के साथ, बाद के ग्रंथों ने इस ज्ञान को विस्तारित और परिष्कृत किया, जिससे नए दृष्टिकोण और समझ पैदा हुई, जो विभिन्न साहित्यिक स्रोतों में परिलक्षित होती है।
- **स्वास्थ्य, कल्याण और मनोविज्ञान:** भारतीय ज्ञान प्रणाली ने स्वास्थ्य और कल्याण की प्रमुख चिंताओं का समाधान किया, जैसे कि **चरक संहिता**, **सुश्रुत संहिता**, और **अष्टांग हृदय** जैसे बुनियादी ग्रंथों के माध्यम से आयुर्वेद पर गहरे विचार। **रसरत्न-संमूचय** जैसे ग्रंथों में आयुर्वेदिक अभ्यास में रासायनिक संयोगों की विस्तृत खोज की गई। मानसिक स्वास्थ्य और विचारधारा पर भी **योग**, **सांख्य** और **उपनिषदों** जैसे दार्शनिक प्रणालियों में गहरे विचार किए गए।
- **पर्यावरण और पारिस्थितिकी:** भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ प्रकृति को पवित्र मानती हैं और पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाए रखने पर जोर देती हैं। वेदों और

कृषि-पराशर जैसे ग्रंथों में पारिस्थितिकीय संतुलन, सतत कृषि और प्राकृतिक तत्वों के प्रति सम्मान की महत्वपूर्ण बातें कही गई हैं। वास्तु शास्त्र और पवित्र वन जैसी प्रथाएँ इस समग्र दृष्टिकोण का उदाहरण हैं, जो आज की पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान के लिए अमूल्य विचार प्रदान करती हैं। ये प्राचीन सिद्धांत हमें न केवल प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान करना सिखाते हैं, बल्कि यह भी दिखाते हैं कि कैसे हम प्रकृति के साथ एक सामंजस्यपूर्ण और स्थायी संबंध बना सकते हैं।

- **नीति-शास्त्र (नैतिकता और आचार):** नीति साहित्य नैतिक जीवन के प्रचार-प्रसार के लिए काव्यात्मक छंदों और कथाओं का प्रयोग करता है। **सामान्य-नीति** में मूल्यों, नैतिकता और आदर्श व्यवहार पर विचार किया गया है, जिसे अक्सर उपकथाओं और पहेलियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है, जैसे **पंचतंत्र**, **भार्तृहरी** की कविताएँ, और अन्य **सुभाषितों** में। नीति-शास्त्र का एक और पहलू **राज-नीति** है, जो शासन और सार्वजनिक प्रशासन पर केंद्रित है।
- **सार्वजनिक प्रशासन और शासन:** भारतीय ग्रंथों में शासन पर चर्चा करते हुए **मनुस्मृति** और **अर्थशास्त्र** (तीसरी शतक ईसा पूर्व) को अहम स्थान प्राप्त है, जो राज्यशिल्प में एक मौलिक ग्रंथ है और इसके प्रभाव में बाद के ग्रंथों ने **कमंडक** के **नीति सार** जैसे ग्रंथों की रचना की। ये ग्रंथ सार्वजनिक नीति, नेतृत्व और प्रशासन की खोज करते हैं।
- **सौंदर्यशास्त्र, साहित्य और प्रदर्शन कला:** संस्कृत भाषा ने सनातन धर्म के साहित्यिक और कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम के रूप में कार्य किया। संस्कृत भाषाशास्त्र और ध्वन्यात्मकता में बुनियादी अध्ययन ने कविता, नाटक, और सौंदर्यशास्त्र में विशाल साहित्य की रचना को समर्थित किया। प्रमुख योगदानकर्ताओं में **कालिदास**, **दंडी**, और **बाणभट्ट** शामिल हैं, साथ ही **कामसूत्र** (वात्स्यायन) और **नाट्यशास्त्र** (भरत) जैसी शास्त्रग्रंथों का उल्लेख किया जा सकता है।

हालाँकि वेदिक परंपरा से बाहर, बौद्ध और जैन स्कूलों ने 500 BCE के बाद से भारतीय ज्ञान प्रणालियों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म के ग्रंथ, जैसे बौद्ध धर्म में त्रिपिटक और जैन धर्म में आगम, भारतीय दार्शनिक विचार, नैतिकता, और आध्यात्मिक प्रथाओं पर गहरी समझ प्रदान करते हैं।

बौद्ध ग्रंथ, जो मुख्य रूप से धार्मिक होते हुए भी गणित, समुद्री प्रथाओं और रसायनशास्त्र का भी अध्ययन करते हैं—**नागार्जुन** का **रसरत्नाकर** (प्रथम शताब्दी CE) इस क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कृति है। जैन साहित्य में गणित को गहरे तौर पर समाहित किया गया है, जिसमें **गणितानुयोग** इसका प्रमुख उदाहरण है। प्रमुख ग्रंथों में **तत्त्वार्थसूत्र** (उमास्वाती, 2–3वीं शताब्दी CE), **अनुयोगद्वारसूत्र** और **सूर्यप्रज्ञप्ति** शामिल हैं। **महावीराचार्य** का **गणितसारसंग्रह** (850 CE) भारतीय गणित में एक मील का पत्थर माना जाता है। दोनों परंपराएँ दार्शनिक, धार्मिक, और वैज्ञानिक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान प्रणाली को समृद्ध करती हैं।

इसी तरह, **आयुर्वेद** भी भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसके जड़ें प्राचीन ग्रंथों जैसे **चरक संहिता** और **सुश्रुत संहिता** में पाई जाती हैं। ये ग्रंथ स्वास्थ्य, कल्याण, और उपचार के सिद्धांतों को प्राकृतिक तत्वों के माध्यम से परिभाषित करते हैं। **पतंजलि के योग सूत्र** और **वेदांत** पर दार्शनिक ग्रंथ (जैसे **आदिशंकर** के कार्य) भारतीय ज्ञान प्रणाली का अनिवार्य हिस्सा हैं, जो मन, शरीर, और आत्मिक विकास पर गहरे विचार प्रदान करते हैं। **वास्तु शास्त्र** और **शिल्प शास्त्र** भवनों और कला के डिज़ाइन से संबंधित हैं, जिसमें मूर्तिकला और वास्तुकला भी शामिल हैं, और यह भारतीय संस्कृति में **ज्यामिति, स्थानिक सामंजस्य** और **सौंदर्यशास्त्र** के गहरे ज्ञान को दर्शाते हैं।

- **गैर-साहित्यिक स्रोत:** लिखित कार्यों के अलावा, अधिकांश भारतीय ज्ञान प्रणाली (भारतीय ज्ञान प्रणाली) मौखिक परंपराओं में समाहित है। ये मौखिक परंपराएँ लोककथाएँ, लोक गीत, कहावतें, कहानी सुनाना, और समुदायिक प्रथाएँ हैं जो पीढ़ियों से पारंपरिक रूप से संप्रेषित होती रही हैं। ये परंपराएँ समुदायों के जीवन अनुभव को दर्शाती हैं, जिसमें कृषि, स्वास्थ्य, सामाजिक मानक, और पर्यावरण के बारे में व्यावहारिक ज्ञान शामिल है। मौखिक ज्ञान उन सांस्कृतिक प्रथाओं को संरक्षित करने के लिए भी महत्वपूर्ण है जिन्हें लिखित रूप में दस्तावेज़ नहीं किया गया है।
- **लोक परंपराएँ:** भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी-अपनी अनूठी मौखिक परंपराएँ हैं, जो स्थानीय ज्ञान के अनमोल स्रोत हैं। इन परंपराओं में अक्सर स्थानीय मिथक, किंवदंतियाँ, और प्राकृतिक संसाधनों, कृषि, और उपचार प्रथाओं के बारे में ज्ञान शामिल होता है।

- **ग्रामीण ज्ञान**: ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, शिल्प, और सतत जीवन प्रथाओं से संबंधित पारंपरिक ज्ञान प्रायः मौखिक रूप में संप्रेषित होता है। इसमें फसल चक्र पद्धतियाँ, औषधीय पौधों का उपयोग, और स्थानीय जलवायु के अनुसार वास्तु डिज़ाइन शामिल होते हैं।

6. भारतीय ज्ञान प्रणाली का वर्गीकरण

भारतीय ज्ञान प्रणाली के विशाल संग्रह को व्यवस्थित करने के लिए, हम इसे व्यापक श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। वर्गीकरण ढांचा निम्नलिखित तरीके से संरचित किया जा सकता है:

1. दर्शनशास्त्र और आध्यात्मिकता

- इसमें अस्तित्व के स्वभाव, ब्रह्मांड विज्ञान, और आध्यात्मिक प्रथाओं का अध्ययन शामिल है। वेद, उपनिषद, योग और वेदांत इस श्रेणी में आते हैं, साथ ही बौद्ध धर्म और जैन धर्म के उपदेश भी यहाँ शामिल होंगे।

2. विज्ञान और प्रौद्योगिकी

- भारतीय ज्ञान प्रणाली में गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा (आयुर्वेद), और वास्तुकला (वास्तु, शिल्प शास्त्र) में प्रारंभिक प्रगति भी शामिल है। यह श्रेणी उन वैज्ञानिक ग्रंथों और व्यावहारिक ज्ञान को कवर करती है, जो प्राचीन भारत में चिकित्सा उपचार, निर्माण और ब्रह्मांड को समझने के लिए उपयोग किए जाते थे।

3. कला और संस्कृति

- इसमें भारतीय कला, जैसे नृत्य, संगीत, साहित्य और नाटक शामिल होंगे। सांस्कृतिक ज्ञान और प्रथाएँ, जैसे वास्तु शास्त्र, भारतीय मूर्तिकला और शास्त्रीय नृत्य रूपों को भी यहाँ वर्गीकृत किया जाएगा।

4. सामाजिक विज्ञान

- इस श्रेणी में समाजिक संगठन, भारतीय मनोविज्ञान और नैतिकता से संबंधित ज्ञान शामिल होगा। यह गवर्नेंस, राजनीति, और समुदायिक जीवन से जुड़े दृष्टिकोण भी शामिल करता है, जैसा कि कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में देखा गया है।

5. स्थानीय और लोक ज्ञान

- यह श्रेणी ग्रामीण समुदायों में पाए जाने वाले ज्ञान को कवर करेगी, जिसमें पारंपरिक पारिस्थितिकी ज्ञान, कृषि प्रथाएँ, हर्बल चिकित्सा, और शिल्प कौशल शामिल हैं। यह ज्ञान मुख्य रूप से मौखिक रूप में संप्रेषित होता है और सतत जीवन और पर्यावरण प्रबंधन में अत्यधिक मूल्यवान है।

7. चतुर्दश विद्यास्थान

चतुर्दश विद्यास्थान सनातन धर्म साहित्य का एक पारंपरिक वर्गीकरण योजना है। संस्कृत में "चतुर्दश" का अर्थ "चौदह" है, जो इस विशाल ज्ञान के संग्रह के चौदह मुख्य श्रेणियों का प्रतीक है। ये श्रेणियाँ वेदिक परंपरा के भीतर ज्ञान और दर्शन के प्रमुख क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो सनातन धर्म (सनातन आदेश या धर्म) की रीढ़ है। साहित्य को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया गया है–

1. **चार वेद (और उनके उपवेद)**
2. **छह वेदांग**
3. **पुराण**
4. **धर्मशास्त्र**
5. **न्याय** (इसके विस्तारित रूप सहित)
6. **मीमांसा** (पूर्व और उत्तर मीमांसा दोनों)

7.1 वेद

वेद सनातन धर्म के मौलिक ग्रंथ हैं और इन्हें "श्रुति" माना जाता है (जिसका शाब्दिक अर्थ है "जो सुना जाता है")। इसका मतलब यह है कि वेदों की रचना मानवों द्वारा नहीं की गई थी, बल्कि ये ऋषियों (ज्ञानी महात्माओं) को दिव्य उद्बोधन के माध्यम से प्रकट हुए थे। वेदों को ज्ञान का सर्वोत्तम स्रोत माना जाता है और उनका मुख्य उद्देश्य जीवन के उद्देश्य और अर्थ को समझने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करना है। वेदों का श्रवण परंपरा के माध्यम से गुरु-शिष्य (शिक्षक-शिष्य) परंपरा में पीढ़ी दर पीढ़ी हुआ है।

वेदों को चार प्रमुख ग्रंथों में बाँटा गया है–

- **ऋग्वेद**

- **यजुर्वेद**
- **सामवेद**
- **अथर्ववेद**

ये ग्रंथ और उनके सहायक ज्ञान (उपवेद), भारतीय सभ्यता के आध्यात्मिक और बौद्धिक ढांचे के मूल रूप में कार्य करते हैं। वेदों में गीत, मंत्र, अनुष्ठान, दार्शनिक शिक्षाएँ, और ब्रह्मांडीय नियम शामिल हैं, जो भारतीय परंपरा में सभी अन्य ज्ञान का आधार बनते हैं। वेद सनातन धर्म के जीवनशैली को समझने के लिए केंद्रीय हैं।

7.2 वेदांग

वेदांग वेद ज्ञान को सही तरीके से समझने और लागू करने के लिए सहायक विज्ञान या अंग हैं। ये छह संख्या में होते हैं और वेदों की शिक्षाओं की व्याख्या और अभ्यास के लिए आवश्यक होते हैं। वेदांग के छह अंग हैं:

1. **शिक्षा** (उच्चारण)
2. **कल्प** (अनुष्ठान)
3. **व्याकरण** (भाषा विज्ञान)
4. **निरुक्त** (शब्द विज्ञान)
5. **छंद** (माप)
6. **ज्योतिष** (खगोलशास्त्र/ज्योतिषशास्त्र)

इनमें से प्रत्येक वेदांग का एक विशेष कार्य है, जो यह सुनिश्चित करता है कि वेदों की शिक्षाएँ सही तरीके से प्रक्षिप्त, समझी जाएं, और उचित रूप से लागू की जाएं। ये वेदों में निहित भाषा, अनुष्ठान, और आध्यात्मिक (metaphysical, अदृष्ट) अवधारणाओं को समझने के लिए उपकरण प्रदान करते हैं।

7.3 दर्शन

दर्शन वेदांत पर आधारित सनातन धर्म के छह मुख्य दार्शनिक स्कूलों को कहा जाता है। "दर्शन" शब्द का अर्थ है "दृष्टिकोण" या "दृष्टि", और ये विचारधाराएँ व्यक्तित्व (जीव), ब्रह्मांड (जगत), और परम सत्य (ईश्वर या ब्रह्म) के बीच संबंध को समझने के विभिन्न तरीके प्रदान करती हैं। छह प्रमुख दर्शन स्कूल्स हैं:

1. **न्याय** (तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा)

2. **वैशेषिक** (सूक्ष्मता और ज्ञान की वर्गीकरण)
3. **सांख्य** (गणना और रूपात्मक विश्लेषण)
4. **योग** (आध्यात्मिक अनुशासन और योग)
5. **मीमांसा** (अनुष्ठान और धर्म विश्लेषण)
6. **वेदांत** (उपनिषदों का दर्शन)

इनमें से प्रत्येक दर्शन जीवन, वास्तविकता और चेतना को समझने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है, और सभी मिलकर यह बताते हैं कि ब्रह्मांड कैसे कार्य करता है और मनुष्य किस प्रकार मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त कर सकता है। न्याय और मीमांसा को प्रायः "प्राभाकर" स्कूल के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, जबकि वेदांत के कई शाखाएं हैं (अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, आदि)।

7.4 पुराण और इतिहास

- **पुराण** सांस्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक ज्ञान का समृद्ध स्रोत होते हैं। ये ग्रंथ कथाएँ, उपाख्यान, और उपदेशों के माध्यम से वेदों के सिद्धांतों को स्पष्ट करते हैं और ब्रह्मांडीय विचारों का अन्वेषण करते हैं। इनमें विश्व के सृजन, देवताओं और राजाओं की वंशावली, और समय के चक्रीय चक्र (युग) का वर्णन किया गया है। पुराणों में मिथकात्मक कथाएँ शामिल हैं जो ब्रह्मांड के उत्पत्ति और उसके कार्यों को समझाती हैं, साथ ही संतों, महर्षियों, और देवताओं के जीवन का भी उल्लेख करती हैं।
- **इतिहास** ऐसे ऐतिहासिक आख्यान होते हैं जो वास्तविक घटनाओं का वर्णन करते हैं। प्रमुख इतिहासिक ग्रंथों में **रामायण** और **महाभारत** आते हैं। इन ग्रंथों में मिथकात्मक तत्व होते हुए भी, ये ऐतिहासिक विवरण माने जाते हैं, जो राम, कृष्ण, और पांडवों जैसे ऐतिहासिक पात्रों के जीवन को चित्रित करते हैं। उदाहरण के तौर पर, महाभारत एक विशाल ग्रंथ है जिसमें न केवल पांडवों और कौरवों के बीच विशाल युद्ध की कहानी है, बल्कि इसमें भगवद गीता जैसे मूल्यवान दार्शनिक संवाद भी शामिल हैं।

पुराण और इतिहास दोनों ही वेदों की नैतिक और धार्मिक शिक्षाओं को अधिक सुलभ रूप में व्यक्त करने में मदद करते हैं, जिससे ये लोगों के दैनिक जीवन से जुड़ी रहती हैं। ये जीवन के बड़े अस्तित्व संबंधी सवालों का समाधान भी प्रदान करते हैं, और धर्म (धार्मिक आचरण) के आधार पर मानव समस्याओं के समाधान पेश करते हैं।

7.5 धर्मशास्त्र और स्मृतियाँ

धर्मशास्त्र वे ग्रंथ होते हैं जो धर्म के अनुसार सत्य, आचार और नैतिक जीवन जीने के विस्तृत दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। ये ग्रंथ सामाजिक कर्तव्यों, नैतिक कोड, आचार संहिता और कानूनों का वर्णन करते हैं। सबसे प्रसिद्ध धर्मशास्त्र **मनु स्मृति** है, जो समाज में व्यक्तियों के कर्तव्यों को निर्धारित करती है, जैसे कि जाति कर्तव्य (वर्ण), जीवन के आश्रम (आश्रम) और सामाजिक सद्भाव के लिए दिशानिर्देश।

स्मृतियाँ उन नियमों की पुस्तिकाएं होती हैं जो धर्म के सिद्धांतों को वास्तविक जीवन में लागू करने के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। ये ग्रंथ व्यक्तियों और समुदायों के नैतिक, कानूनी और सामाजिक कर्तव्यों पर केंद्रित होते हैं, और व्यक्तिगत आचरण से लेकर सामाजिक न्याय तक के मुद्दों को संबोधित करते हैं। **नीति-शास्त्र** और **सुभाषित** अतिरिक्त ग्रंथ हैं जो जीवन में नैतिक अखंडता बनाए रखने के लिए नैतिक ज्ञान और कथन प्रदान करते हैं।

ये ग्रंथ उदाहरणों (केस स्टडीज़) और नैतिक दुविधाओं को प्रस्तुत करते हैं, दिखाते हैं कि कैसे धार्मिक सिद्धांतों को जटिल वास्तविक जीवन की स्थितियों में लागू किया जा सकता है। ये ग्रंथ भारतीय परंपरा में मानव व्यवहार को मार्गदर्शन देने वाले नैतिक ढांचे को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

8. भारतीय ज्ञान प्रणाली की उत्पत्ति

भारतीय ज्ञान प्रणाली (भारतीय ज्ञान प्रणाली) का ऐतिहासिक महत्व एक जटिल और अक्सर बहस का विषय है, क्योंकि प्राचीन ग्रंथों और ज्ञान के स्रोतों को सही तरीके से तारीख देने में कई चुनौतियां हैं। भारतीय ज्ञान पश्चिमी सभ्यता से हजारों साल पहले का है, और कई भारतीय ग्रंथ 500 ईसा पूर्व से पहले उत्पन्न हुए थे। हालांकि, पश्चिमी पद्धतियाँ इन स्रोतों की असली आयु को पहचानने में कठिनाई महसूस करती हैं, क्योंकि ज्ञान को व्यक्त करने, संग्रहित करने और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपराओं के माध्यम से प्रसारित करने के तरीके में अंतर हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली के ऐतिहासिक महत्व को समझने के लिए विभिन्न समय अवधियों का सारांश नीचे दिया गया है:

8.1 3,000 ईसा पूर्व से पहले

इस अवधि को अक्सर पश्चिमी इतिहास में "अंधेरे युग" के रूप में संदर्भित किया जाता

है, क्योंकि उस समय लिखित रिकॉर्ड की कमी थी। इसके विपरीत, भारत में एक समृद्ध मौखिक परंपरा थी, जिसने ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित और प्रसारित किया। हालांकि लिखित साक्ष्य दुर्लभ हैं, यह मौखिक धरोहर वेदों, पुराणों और इतिहासों जैसे ग्रंथों पर गहरा प्रभाव डालती थी। दस्तावेज़ीकरण की कमी का मतलब सांस्कृतिक पतन नहीं है—ज्ञान मौखिक रूप से पनपा था। हाल की पुरातात्विक खोजें, जैसे द्वारका में डूबे हुए अवशेष, और ग्रहगति सॉफ़्टवेयर जैसे उपकरण, इस युग पर नई रोशनी डाल रहे हैं। हालांकि, भारतीय परंपरा में, सटीक तारीखों का कम महत्व है, क्योंकि इन ग्रंथों को कालातीत माना जाता है, और ये एक अटूट सांस्कृतिक निरंतरता का हिस्सा हैं।

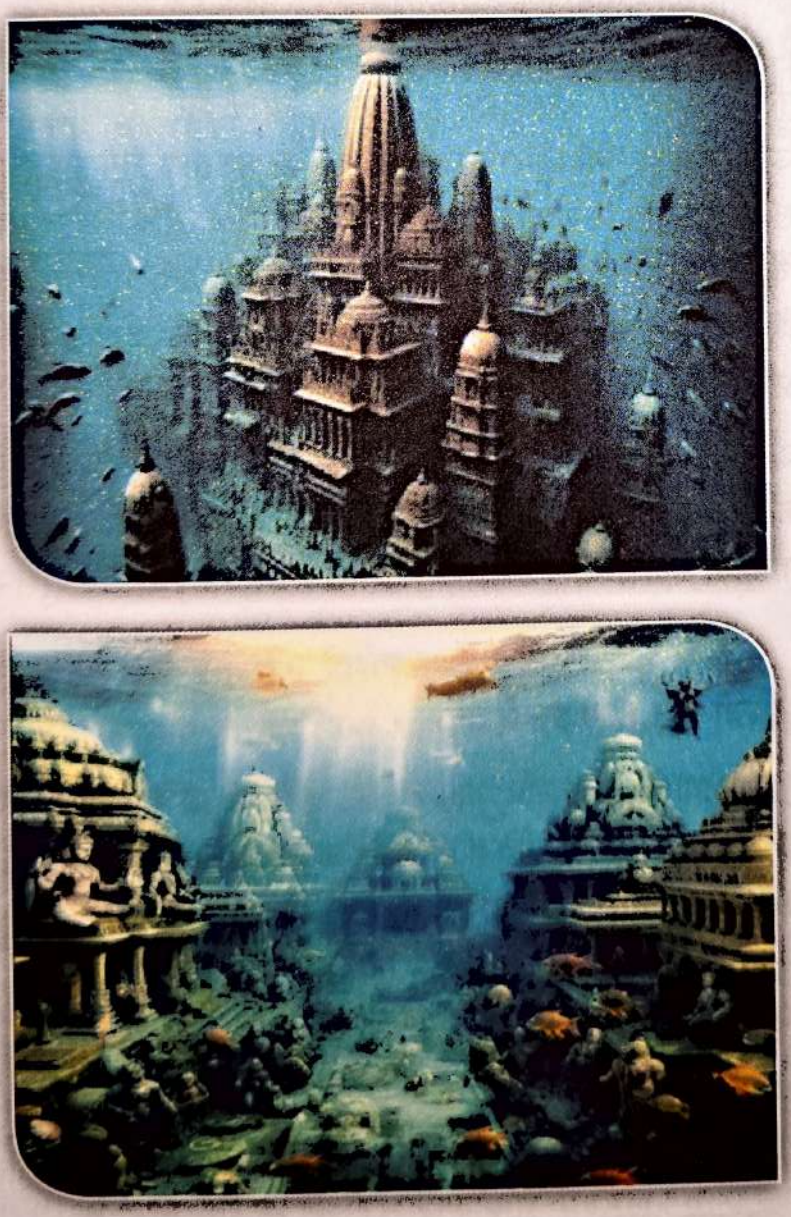

हिंदू पुराणों में महत्वपूर्ण स्थल: डूबा हुआ द्वारका शहर

इसे भगवान श्री कृष्ण ने बनवाया था और बाद में यह अरब सागर में डूब गया। प्राचीन द्वारका शहर की वास्तुकला भव्यता अद्वितीय थी। पुरातात्विक अनुसंधानों से पता चलता है कि यह शहर 3500 से 9000 वर्ष पुराना है, जबकि कुछ साक्ष्य इसे इससे भी प्राचीन बताते हैं। पुरातात्विक अनुसंधानों ने इस प्राचीन शहर के सबूत पाए हैं, जिसमें पत्थर की संरचनाएँ और एंकर शामिल हैं, जो महाभारत में किए गए दावों का समर्थन करते हैं।

8.2 3,000 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी तक

यह अवधि मानव सभ्यता के लिए एक महत्वपूर्ण चरण है, जो पश्चिम में लिखित इतिहास के उदय से लेकर रोमन साम्राज्य के पतन तक फैली हुई है। जबकि दुनिया के अधिकांश हिस्से अभी भी बुनियादी सामाजिक संरचनाओं का विकास कर रहे थे, भारत भाषाशास्त्र, साहित्य, गणित, स्वास्थ्य और दर्शन में तेज़ी से प्रगति कर रहा था। वेदों, उपनिषदों, महाभारत और रामायण जैसे मौलिक ग्रंथ रचे गए, जो भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल बने। वेदांत, सांख्य, और योग जैसे दर्शन स्कूल उभरे, जिन्होंने भारतीय विचारधारा को आकार दिया और वैश्विक दर्शन पर प्रभाव डाला। शून्य की अवधारणा, प्रारंभिक चिकित्सा ज्ञान, और विकसित भाषाशास्त्र जैसे अग्रणी दृष्टिकोणों ने भारत और दुनिया भर में भविष्य की वैज्ञानिक और बौद्धिक प्रगति की नींव रखी।

जबकि दुनिया के अधिकांश हिस्से अस्तित्व और बुनियादी सामाजिक विकास पर ध्यान केंद्रित कर रहे थे, भारत का बौद्धिक परिदृश्य समृद्ध हुआ और विभिन्न क्षेत्रों में मजबूत प्रणालियाँ बनाई, जो नवाचार और बौद्धिक अन्वेषण के प्रति खुलेपन का प्रतीक थीं।

8.3 500 ईस्वी से 1,800 ईस्वी तक

यह अवधि भारतीय विज्ञान, दर्शन, गणित और खगोलशास्त्र का स्वर्णकाल है। भारतीय सभ्यता ने इस समय में प्रमुख प्रगति की, विशेष रूप से गणितीय सिद्धांतों में, जिसने अन्य क्षेत्रों जैसे वास्तुकला और प्रौद्योगिकी में भी प्रगति को प्रेरित किया।

इस युग की प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं–

- **गणित:** शून्य की अवधारणा, दशमलव प्रणाली, और बीजगणित तथा ज्यामिति में प्रगति हुई।
- **खगोलशास्त्र:** भारतीय विद्वानों ने ग्रहों, तारों और आकाशीय पिंडों का अध्ययन करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, और जटिल खगोलशास्त्रीय प्रणालियाँ और ग्रंथ विकसित किए।

- **वास्तुकला:** भव्य मंदिर परिसरों और धातु से निर्मित अविश्वसनीय वास्तु चमत्कारों जैसे जंग से मुक्त लोहे के स्तंभों और संगीतमहालों ने उन्नत अभियंत्रण कौशल को प्रदर्शित किया।
- **धातु विज्ञान और रसायन शास्त्र:** भारतीयों ने धातु शिल्प में उत्कृष्टता प्राप्त की, और धातु से निर्मित ऐसे टिकाऊ पदार्थ बनाए, जो सदियों तक जीवित रहे। दिल्ली का प्रसिद्ध लौह स्तंभ उस समय की प्रभावशाली धातु विज्ञान तकनीकों का उदाहरण है।
- **आध्यात्मिकता और दर्शन:** भारतीय दार्शनिकों ने तात्त्विक, नैतिक और आध्यात्मिक प्रणालियों को विकसित करना जारी रखा, जिसने न केवल भारतीय विचारधारा को प्रभावित किया, बल्कि इसे दुनिया के अन्य हिस्सों में भी फैलाया।
- **मध्यकाल** (500 ईस्वी से 1,800 ईस्वी तक) में ज्ञान का विस्तार हुआ, जिसमें चिकित्सा, अभियंत्रण और रसायन शास्त्र जैसे क्षेत्रों में कई योगदान हुए, इसके साथ ही दार्शनिक और धार्मिक ग्रंथों ने आधुनिक दुनिया की नींव को मजबूत किया।

9. भारतीय ज्ञान प्रणाली की विशेषताएँ

भारतीय ज्ञान प्रणाली कई अद्वितीय विशेषताओं से परिभाषित होती है, जो इसकी मौखिक परंपरा, संरचना और आध्यात्मिक, धार्मिक और भौतिक आयामों को सहजता से एकीकृत करने की क्षमता में निहित हैं। नीचे भारतीय ज्ञान प्रणाली के कुछ प्रमुख पहलुओं का विवरण दिया गया है, जो इसे विशिष्ट बनाते हैं।

9.1 मौखिक परंपरा में विविधताएँ

भारतीय ज्ञान प्रणाली में गहरी मौखिक परंपरा निहित है, जिसका अर्थ है कि ज्ञान मूल रूप से मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी प्रेषित होता था, जो याददाश्त पर बहुत अधिक निर्भर था। लिखित परंपराओं के विपरीत, जहाँ विस्तृत विवरण और गहरे विश्लेषण संभव होते हैं, मौखिक परंपराओं में विचारों को संक्षेप, सटीक और याद रखने योग्य रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। इसके कुछ प्रभाव निम्नलिखित हैं–

संक्षिप्तता और बहुपरकता: भारतीय मौखिक परंपरा में यह ज़रूरी था कि गहरे और जटिल विचारों को इस तरह से कहा जाए कि वे याद भी रह जाएँ और समझने में आसान भी हों। इसलिए यहाँ के ग्रंथ अक्सर एक ही समय में कई विषयों को छूते हैं। जैसे 'न्याय'—जो कि तर्क का स्कूल माना जाता है—सिर्फ दर्शन की बात नहीं करता, बल्कि यह तर्क करना, बहस करना, और हम कैसे ज्ञान प्राप्त करते हैं, इन सब पर विस्तार से बात करता है। पुराण और इतिहास भी केवल कहानियाँ नहीं हैं। ये ऐसे विश्वकोश हैं जो ब्रह्मांड की रचना से लेकर जीवन जीने की कला, राजनीति, सौंदर्य, और नैतिकता तक हर पहलू को अपने में समेटे हुए हैं।

विषयों का आपसी संबंध: मौखिक परंपरा की आवश्यकता के कारण, एकल ग्रंथ में आध्यात्मिक, धार्मिक और सांसारिक अवधारणाएँ एक साथ बारीकी से जुड़ी हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, भगवद गीता को तीन दृष्टिकोणों में समझा जा सकता है—आध्यात्मिक (ईश्वर से संबंधित ज्ञान), धार्मिक (धर्म और भक्ति का मार्गदर्शन), और सांसारिक (नेतृत्व, प्रबंधन और जीवन के सिद्धांतों के रूप में)

9.2 धर्म और भौतिकता का संतुलन

भगवद गीता जैसे ग्रंथों में, अवधारणाओं की दोहरी व्याख्या होती है, जहाँ धार्मिक और भौतिक विचार अक्सर एक-दूसरे में घुलमिल जाते हैं:

अवतार-पुरुष की अवधारणा: गीता के चौथे अध्याय में अवतार (ईश्वरीय अवतार) की व्याख्या धार्मिक रूप से की गई है, जहाँ भगवान ब्रह्मांडीय व्यवस्था को पुनःस्थापित करने के लिए अवतार लेते हैं। इस विचार को एक सांसारिक दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है, विशेष रूप से प्रणालियों-इंजीनियरिंग या प्रबंधन के क्षेत्रों में। यहाँ यह विचार संगठनों में संतुलन को बहाल करने और उसे क्षीण होने से रोकने के लिए पुनर्जनन बिंदुओं या प्रणालियों की आवश्यकता को दर्शाता है, ठीक वैसे जैसे अवतार दुनिया में संतुलन बहाल करते हैं।

प्रणालियों में स्थिरता: प्रणालियों के पुनर्निर्माण की अवधारणा को वास्तविक जीवन की समस्याओं से जोड़ा जा सकता है, जैसे मांग और आपूर्ति का संतुलन, बाज़ार की गतिशीलता और संगठनात्मक नेतृत्व। यह विचार कि किसी प्रणाली को फलने-फूलने के लिए संतुलन बहाल करना आवश्यक है, व्यापार प्रबंधन के सिद्धांतों से मेल खाता है, जिनमें यह कहा गया है कि व्यवसायों को विकास और सफलता के लिए नेतृत्व या रणनीतियों को ताजगी और बदलाव की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार, भारतीय ज्ञान प्रणाली का अद्वितीय पहलू न केवल इसके गहरे सांस्कृतिक और धार्मिक अंतर्दृष्टियों में है, बल्कि इसके समग्र दृष्टिकोण में भी है, जो जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक पहलुओं को एक साथ जोड़ता है।

9.3 आध्यात्मिकता और भौतिकता: संतुलन की साधना

भगवद गीता यह उदाहरण प्रस्तुत करती है कि कैसे आध्यात्मिक शिक्षाओं को भौतिक संदर्भ में भी समझा जा सकता है:

समय और परिवर्तन (अध्याय 2): गीता के श्लोक 22 में आत्मा के जन्म और मृत्यु के चक्र को समझाने के लिए पुराने वस्त्रों को त्यागने का रूपक दिया गया है। यह आध्यात्मिक सिद्धांत व्यापार के संदर्भ में नवाचार और संगठनात्मक परिवर्तन के रूप में भी व्याख्यायित किया जा सकता है। जैसे आत्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नए शरीर में प्रवेश करती है, वैसे ही संगठनों को पुरानी विचारधाराओं को छोड़ने और नई विचारधाराओं को अपनाने के लिए तैयार रहना चाहिए ताकि वे नवाचारी और स्थिर बने रहें। यह सिद्धांत व्यापार सिद्धांत में रचनात्मक विनाश से जुड़ा है, जो यह बताता है कि प्रगति के लिए पुराने और अप्रचलित विचारों को छोड़ना कितना महत्वपूर्ण है।

मानसिक जड़ता: गीता की शिक्षाएँ हमें पुराने विश्वासों को छोड़ने का संदेश देती हैं, जो आधुनिक संगठनात्मक सिद्धांत से मेल खाती हैं। यह सिद्धांत मानसिक जड़ता और निरंतर अनुकूलन और नवाचार की आवश्यकता के बारे में चेतावनी देता है। यह विचार अब आर्थिक अनुसंधान में प्रतिस्पर्धात्मक लाभ (competitive advantage) के लिए केंद्रीय बन चुका है।

इस प्रकार, गीता न केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन देती है, बल्कि भौतिक संदर्भों में भी उपयोगी सिद्धांतों की पेशकश करती है, जो संगठनात्मक नवाचार और विकास में सहायक हो सकते हैं।

9.4 भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रस्तुति शैली: सूत्र और संकेतन

भारतीय ज्ञान प्रणाली में ज्ञान को संक्षिप्त, सटीक और याद रखने योग्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए कुछ विशिष्ट संरचनात्मक तत्वों का उपयोग किया गया है:

- **स्मृति सहायक श्लोक**

भारतीय ज्ञान प्रणाली के कई ग्रंथ स्मृति सहायक श्लोक में प्रस्तुत किए गए हैं, जो संक्षिप्त होते हुए भी विषय की गहराई को बनाए रखते हैं। इस शैली में शब्दों की न्यूनतमता के

बावजूद गहन अर्थ निहित होते हैं, जिससे इन्हें याद करना और मौखिक रूप से प्रसारित करना सरल होता है। उदाहरण के लिए, पाई (π) के मान को स्मृति सहायक रूप में संक्षेपित किया गया है, जिससे इसे आसानी से याद किया जा सकता है।

इस प्रकार की प्रस्तुति शैली न केवल ज्ञान को संक्षेपित और सुबोध बनाती है, बल्कि इसे याद रखना और पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित करना भी आसान बनाती है।

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् ।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः॥ (आर्यभटीय...)

caturadhikam śatamaṣṭaguṇam dvāṣaṣṭistathā sahasrāṇām |
ayutadvayaviskambhasyāsanno vṛttapariṇāhah ||

उपरोक्त श्लोक के अनुसार, π(पाई) का मान इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

3.1416 = 20000 ÷ 62000 + (4 + 100) × 8

अर्थात, पहले 100 में 4 जोड़ें, फिर उसे 8 से गुणा करें, और अंत में 62000 जोड़ें। प्राप्त योग को 20000 से भाग देने पर π का मान लगभग 3.1416 प्राप्त होता है।

यह सूत्र आर्यभट्ट के गणितशास्त्र "आर्यभटीय" से लिया गया है, जिसमें उन्होंने वृत्त के व्यास 20000 की परिधि की गणना इस प्रकार की–

(62832 = 62000 + 8 × (4 + 100

फिर, 62832 को 20000 से भाग देने पर π का मान लगभग 3.1416 प्राप्त होता है। यह गणना आर्यभट्ट द्वारा π के मान की सटीकता को दर्शाती है, जो लगभग 3.1416 है, और यह आधुनिक गणना के बहुत करीब है।

इस प्रकार, आर्यभट्ट ने π के मान को एक सरल और स्मरणीय सूत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया, जो उनकी गणितीय समझ और सूक्ष्मता को दर्शाता है।

$$\pi = \frac{\text{circumference}}{\text{Diameter}} = \frac{62832}{20000} = 3.1416$$

- **सूत्र और स्मृति सहायक श्लोक**

ज्ञान को संरक्षित और प्रसारित करने के लिए सूत्रों का उपयोग किया गया है। एक सूत्र एक संक्षिप्त, यादगार वाक्य होता है जो विस्तृत ज्ञान का सार प्रस्तुत करता है। उदाहरण स्वरूप, पिंगला के श्लोकों में द्विआधारी संख्याओं की अवधारणा को सरल सूत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, जो आधुनिक कंप्यूटर विज्ञान में प्रयुक्त डि-ब्रुइजन अनुक्रमों के समान हैं।

- **संकेतन प्रणालियाँ**

भारतीय ज्ञान प्रणाली में संकेतन प्रणालियों का भी उपयोग किया गया है, जो जानकारी को संक्षिप्त और यादगार रूप में प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए, 'कटपयादी' और 'भूतसंख्य' प्रणालियाँ संख्याओं को श्लोकों में संकेतन करने के लिए प्रयुक्त होती थीं। इसी प्रकार, आर्यभट्ट के 'साइन तालिका' को काव्य रूप में प्रस्तुत किया गया था, जिससे जटिल डेटा को याद करना सरल हो जाता था।

इन विशेषताओं के माध्यम से भारतीय ज्ञान प्रणाली ने ज्ञान को संरक्षित और प्रसारित करने के लिए अभिनव और प्रभावी तरीकों का विकास किया, जो आज भी अध्ययन और अनुसंधान के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं।

10. सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा (भारतीय ज्ञान प्रणाली) एक गहरी और समृद्ध परंपरा है, जो न केवल हमारे ऐतिहासिक अतीत को परिभाषित करती है, बल्कि आधुनिक समाज के लिए भी एक अमूल्य धरोहर के रूप में कार्य करती है। यह प्रणाली धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान से परे, विज्ञान, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, कला और समाजशास्त्र जैसे क्षेत्रों में गहरी समझ और सिद्धांत प्रदान करती है। वेदों, उपनिषदों, आयुर्वेद, योग और वास्तु शास्त्र जैसे मौलिक ग्रंथों से लेकर ग्रामीण परंपराओं के माध्यम से मौखिक रूप से प्रेषित ज्ञान तक, भारतीय ज्ञान प्रणाली ने भारतीय संस्कृति और समाज की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय ज्ञान का ऐतिहासिक विकास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 3000 ईसा पूर्व से 1800 ईसा तक, भारतीय ज्ञान प्रणाली ने गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, धातु विज्ञान और वास्तुकला में महत्वपूर्ण प्रगति की। शून्य की अवधारणा, वेदों में वैज्ञानिक सिद्धांत, और आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धतियाँ, जो आज भी प्रासंगिक हैं, भारतीय ज्ञान की गहरी जड़ों को प्रदर्शित करती हैं। इन सभी क्षेत्रों में, भारतीय ज्ञान प्रणाली ने न केवल भारत में, बल्कि वैश्विक ज्ञान परिदृश्य में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक विशिष्ट विशेषता इसकी मौखिक परंपरा है, जो यह सुनिश्चित करती है कि ज्ञान संक्षेप और सटीक रूप से प्रेषित हो। सूत्रों, छंदों और प्रतीकों का उपयोग यह सुनिश्चित करता है कि ज्ञान गहरा होने के साथ-साथ याद रखने में भी आसान हो, जिससे यह पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से प्रेषित हो सके। यह प्रणाली

सांस्कृतिक और भौतिक ज्ञान के बीच एक अद्वितीय संतुलन स्थापित करती है, जो हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में आज भी प्रासंगिक है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली का संरक्षण और संवर्धन भारतीय संस्कृति के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल हमारी सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा करना आवश्यक है, बल्कि वैश्विक ज्ञान अर्थव्यवस्था में भारत की अग्रणी भूमिका सुनिश्चित करना भी आवश्यक है। भारतीय ज्ञान परंपरा को संरक्षित करके, हम नवाचार और सामाजिक समृद्धि के लिए नए मार्ग खोल सकते हैं।

सुझावात्मक पठनीय सामग्री

1. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), "*Introduction to Indian Knowledge System*", PHI learning private ltd.
2. OP Pandey (2023), "*Bharat Vaibhav*", National Book Trust, India.
3. Datta, B. and Singh, A.N. (1962). *History of Hindu Mathematics*: Parts I and II, Asia Publishing House, Mumbai.
4. Joseph, G.G. (2016). "*Indian Mathematics: Engaging with the World from Ancient to Modern Times*", World Scientific, pp. 97-114.
5. Kak, S. (2010). "*India*", Chapter 6 in Heritage Sites of Astronomy and Archeoastronomy in the context of the UNESCO World Heritage Convention: A Thematic Study, Clive Ruggles and Michel Cotte (Eds.), Published by ICOMOS, pp. 99-112.
6. Lal, B.B. (1997). *The Earliest Civilization of South Asia*, Aryan Books International, New Delhi.
7. Mukerji, R. (1977). "*Notes on Ancient Hindu Shipping*" in R. G. Bhandarkar Commemoration Volume, Bharatiya Publishing House, Delhi, pp. 447-455.
8. Pusalker, A.D. (1955). *Studies in the Epics and Puranas*, Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai.
9. Raju, C.K. (2007). "*Cultural Foundations of Indian Mathematics*", Centre for Studies in Civilization, New Delhi.
10. Rao, S.S. (2006). "Indigenous Knowledge Organization: An Indian Scenario", *International Journal of Information Management*, 26, pp. 224-233.
11. Ray, P. (1956). "*History of Chemistry in Ancient and Medieval India*", Indian Chemical Society, Kolkata.
12. Sampad and Vijay (2011). "*The Wonder that is Sanskrit*", Sri Aurobindo Society, Puducherry.
13. Sarasvati Amma, T.A. (1999). *Geometry in Ancient and Medieval India*, Motilal Banarsidass, 2nd ed., New Delhi.

14. Sen, S.N. and Shukla, K.S. (2000). *History of Astronomy in India*, Indian National Science Academy, 2nd ed., New Delhi.

15. Subbarayappa, B.V. (1982). "*Glimpses of Science and Technology in Ancient and Mediaeval India*". Endeavour, New Series, 6(4), pp. 177-182.

16. "US Firm Bags Patent on Arhar Extracts", Financial Express, August 3, 2003. https://www.financialexpress. com/archive/us-firm-bags-patent-on-arhar-extracts/89352/Last accessed on May 1, 2020.

17. Beer, S. (1994). "*May the Whole Earth be Happy: Lokasamastat Sukhino Bhavantu*", Interfaces, 24(4), pp. 83-93.

18. Danino, M. (2010). *The Lost River-On the Trail of Saraswati*, Penguin Books, New Delhi.

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. समकालीन पश्चिमी शैक्षिक प्रणाली भारत के प्राचीन योगदानों की उपेक्षा क्यों करती है?

   a) भारत का ज्ञान अप्रचलित माना जाता है।

   b) पश्चिमी सभ्यता को ज्ञान का मुख्य स्रोत माना जाता है।

   c) भारतीय ज्ञान कभी महत्वपूर्ण नहीं था।

   d) प्राचीन ज्ञान केवल मौखिक रूप से किया गया था।

2. किस संरचना को भारत के उन्नत वास्तुकला और अभियंत्रण कौशल का उदाहरण माना जाता है?

   a) ताज महल

   b) बृहदीश्वर मंदिर

   c) कुतुब मीनार

   d) लोटस टेम्पल

3. बृहदीश्वर मंदिर का निर्माण किस सामग्री से किया गया था?

   a) संगमरमर

   b) ग्रेनाइट

   c) चूना पत्थर

   d) बलुआ पत्थर

4. कौन सा स्टील धातुकर्म में अपनी अद्वितीय गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध है, जिसका उपयोग दमिश्क की छुरी बनाने में किया जाता था?

   a) कास्ट आयरन

   b) वुट्ज़ स्टील

   c) स्टेनलेस स्टील

   d) कार्बन स्टील

5. पहले सहस्त्राब्दी में पश्चिमी दुनिया को भारत का कौन सा योगदान प्रभावी था?
   a) दर्शनशास्त्र
   b) संख्या प्रणाली
   c) आधुनिक चिकित्सा
   d) खगोलभौतिकी

6. ब्रिटिशों द्वारा पेश की गई कौन सी शैक्षिक प्रणाली ने पारंपरिक भारतीय ज्ञान के प्रसार में गिरावट की शुरुआत की?
   a) गुरुकुल प्रणाली
   b) औपचारिक उपनिवेशी शैक्षिक प्रणाली
   c) वैदिक शैक्षिक प्रणाली
   d) संस्कृत-आधारित शैक्षिक प्रणाली

7. भारत में नीम के पेड़ से जुड़ा पारंपरिक ज्ञान क्या है?
   a) पेट की बीमारियों के लिए इलाज
   b) प्राकृतिक कीटनाशक
   c) किडनी रोगों के लिए औषधीय पौधा
   d) खाद्य संरक्षक

8. नीम आधारित कीटनाशक के पेटेंट को लेकर भारत को क्या चुनौती थी?
   a) भारत ने पहले इसे पेटेंट कराया।
   b) एक अमेरिकी कंपनी ने नीम का उपयोग करने वाली एक विधि को पेटेंट कराया, बिना भारत के पूर्व ज्ञान को स्वीकार किए।
   c) भारत ने पेटेंट के लिए आवेदन नहीं किया।
   d) अमेरिका ने पेटेंट देने से इनकार कर दिया।

9. हल्दी के पेटेंट मामले में, अमेरिकी शोधकर्ताओं के पेटेंट का परिणाम क्या था?
   a) पेटेंट भारत को दिया गया।
   b) भारत की चुनौती के बाद पेटेंट रद्द कर दिया गया।
   c) कोर्ट ने पेटेंट को बरकरार रखा।
   d) भारत कानूनी लड़ाई में शामिल नहीं था।

10. विकासशील देशों से पारंपरिक ज्ञान के शोषण को विदेशी कंपनियों द्वारा क्या कहा जाता है?

a) ज्ञान चोरी
b) जैव-चोरी
c) बौद्धिक चोरी
d) ज्ञान का अधिग्रहण

11. भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करने के महत्व के बारे में क्या सुझाव देता है?

a) इसे आधुनिक ज्ञान के पक्ष में छोड़ देना चाहिए।
b) यह समाजों को उनके बौद्धिक धरोहर से जोड़ने में मदद करता है।
c) यह समकालीन समाज के लिए अप्रासंगिक है।
d) यह केवल ऐतिहासिक उद्देश्य के लिए है, न कि व्यावहारिक उद्देश्य के लिए।

12. प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करने का एक प्रमुख लाभ समाज की पहचान से संबंधित क्या है?

a) यह समाजों को पुराने रीति-रिवाजों को छोड़ने में मदद करता है।
b) यह दैनिक जीवन के लिए एक ढांचा प्रदान करता है, जिसमें सामाजिक मानदंड और रीति-रिवाज शामिल हैं।
c) यह विदेशी परंपराओं को अपनाने को बढ़ावा देता है।
d) यह समाजिक मूल्यों के बारे में भ्रम उत्पन्न करता है।

13. भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्राचीन ज्ञान संस्कृति को आकार देने में किस भूमिका का निर्वाह करता है?

a) यह सामाजिक संपर्क के लिए एक अवरोध के रूप में कार्य करता है।
b) यह नई सांस्कृतिक प्रथाओं के विकास में विघ्न डालता है।
c) यह सांस्कृतिक प्रथाओं और सामाजिक विकास के लिए एक आधार प्रदान करता है।
d) यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान के पतन का कारण बनता है।

14. समाजों में नवाचार के संदर्भ में "पथ-निर्भर" शब्द का क्या मतलब है?

a) नवाचार केवल आधुनिक प्रौद्योगिकी के उपयोग से संभव है।

b) भविष्य में होने वाली प्रगति पिछले ज्ञान और प्रगति पर निर्भर करती है।

c) नवाचार यादृच्छिक रूप से होता है और इतिहास से कोई संबंध नहीं रखता।

d) पथ-निर्भरता नए विचारों के विकास में बाधा डालती है।

15. प्राचीन ज्ञान समाज की आर्थिक मूल्य में कैसे योगदान करता है?

a) यह समाजों को बाहरी मदद पर अधिक निर्भर बना देता है।

b) यह बौद्धिक शक्ति प्रदान करता है, जो ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण कारक है।

c) यह केवल ऐतिहासिक अनुसंधान में लाभकारी है, अर्थव्यवस्था में नहीं।

d) यह नवाचार और आधुनिक प्रौद्योगिकी की आवश्यकता को कम कर देता है।

16. भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्राचीन ज्ञान के आर्थिक मूल्य का उदाहरण क्या दिया गया है?

a) यूरोप में प्राचीन आयुर्वेदिक उपचार की खोज।

b) एक पेटेंट जो पिजन पी (तूर) अर्क के उपयोग के लिए दिया गया, जो भारतीय चिकित्सा में पारंपरिक रूप से प्रयोग किया जाता था।

c) भारत में नई प्रौद्योगिकियों का विकास।

d) अफ्रीका में प्राचीन ज्ञान से संबंधित पेटेंट का नुकसान।

17. पिजन पी अर्क के उदाहरण में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) की भूमिका क्या थी?

a) उन्होंने पिजन पी अर्क का पेटेंट कराया।

b) उन्होंने पेटेंट को चुनौती दी और भारतीय चिकित्सा में पिजन पी के पारंपरिक उपयोग का बचाव किया।

c) उन्होंने औद्योगिक उपयोग के लिए पिजन पी के नए तरीकों का विकास किया।

d) उन्होंने पिजन पी के पारंपरिक ज्ञान की उपेक्षा की।

18. भारतीय ज्ञान प्रणाली के अनुसार यदि प्राचीन ज्ञान को संरक्षित या सुरक्षा नहीं दी जाती है तो इसका क्या परिणाम होगा?

a) यह पारंपरिक ज्ञान के वैश्विक वर्चस्व की ओर ले जाएगा।

b) समाजों को सांस्कृतिक और सामाजिक विकास में विघ्न का सामना करना पड़ सकता है।

c) यह भविष्य की पीढ़ियों द्वारा उपेक्षित हो जाएगा, जिससे सांस्कृतिक गिरावट होगी।

d) पारंपरिक ज्ञान हमेशा के लिए खो जाएगा, लेकिन आधुनिक समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

19. भारतीय ज्ञान प्रणाली में "भारतीय" शब्द का क्या अर्थ है?

a) केवल भारत के राजनीतिक क्षेत्र से उत्पन्न ज्ञान

b) भारतीय उपमहाद्वीप के मूल निवासियों द्वारा रचित, संकलित और प्रसारित ज्ञान

c) विदेशी विद्वानों के योगदान से साझा वैश्विक ज्ञान

d) केवल वर्तमान भारत के लिए आधुनिक और प्रासंगिक ज्ञान

20. भारतीय ज्ञान प्रणाली के संदर्भ में "भारतीय" शब्द किस क्षेत्र को ऐतिहासिक रूप से संदर्भित करता है?

a) केवल वर्तमान भारत का क्षेत्र

b) भारतीय उपमहाद्वीप, जिसमें बर्मा (म्यांमार) पूर्व में और अफगानिस्तान पश्चिम में शामिल है

c) केवल दक्षिण भारत का भाग

d) समग्र दक्षिण एशियाई क्षेत्र, जिसमें सभी पड़ोसी देश शामिल हैं

21. भारतीय ज्ञान प्रणाली के संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली में "ज्ञान" को कैसे परिभाषित किया गया है?

a) केवल वैज्ञानिक और शैक्षिक ज्ञान

b) ज्ञान जो मौन और व्यक्तिगत अनुभवों से सीखा जाता है

c) ज्ञान जो दोनों मौन (अज्ञेय) और स्पष्ट (लिखित रूप में दर्ज) होता है

d) ज्ञान जो केवल मौखिक परंपराओं के माध्यम से किया जाता है

22. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय ज्ञान प्रणाली में ज्ञान के रूप में उल्लेखित नहीं है?

a) आध्यात्मिक दृष्टिकोण

b) वैज्ञानिक ज्ञान

c) राजनीतिक रणनीतियाँ

d) कलात्मक अभ्यास

23. भारतीय ज्ञान प्रणाली में मौखिक परंपराओं की क्या भूमिका है?

a) वे अप्रासंगिक और पुराने ज्ञान प्रसारण के तरीके हैं

b) वे एक द्वितीयक तरीका हैं, केवल अनौपचारिक ज्ञान के लिए उपयोग किए जाते हैं

c) वे पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं

d) वे मुख्य रूप से धार्मिक प्रथाओं और अनुष्ठानों पर केंद्रित होते हैं

24. भारतीय ज्ञान प्रणाली में "वर्गीकरण" का क्या महत्व है?

a) यह बिना किसी तर्क के ज्ञान को यादृच्छिक रूप से व्यवस्थित करता है

b) यह ज्ञान को साझा सिद्धांतों या विषयों के आधार पर तार्किक रूप से वर्गीकृत करता है

c) यह केवल वैज्ञानिक ज्ञान से संबंधित है

d) यह केवल दार्शनिक ज्ञान पर केंद्रित है

25. भारतीय ज्ञान प्रणाली के प्रणालीबद्ध ढांचे में "संबंध" का क्या मतलब है?

a) ज्ञान खंडित है और दूसरे ज्ञान से कोई संबंध नहीं है

b) विभिन्न ज्ञान के टुकड़ों के बीच तार्किक संबंध हैं, जो यह दिखाते हैं कि वे एक-दूसरे से कैसे जुड़े हैं

c) ज्ञान वास्तविक दुनिया की समस्याओं से संबंधित नहीं है और लागू नहीं किया जा सकता

d) ये संबंध केवल सामाजिक हैं और शैक्षिक ज्ञान से संबंधित नहीं हैं

26. भारतीय ज्ञान प्रणाली के अनुसार, भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता क्या है?

a) यह संकीर्ण है, केवल धार्मिक प्रथाओं पर ध्यान केंद्रित करता है

b) यह बिना किसी स्पष्ट ढांचे के अव्यवस्थित और अस्तव्यस्त है

c) यह एक विशाल और जटिल संग्रह है जो समय, भूगोल और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में फैला हुआ है

d) यह केवल आधुनिक नवाचारों पर आधारित है और ऐतिहासिक गहराई की कमी है

27. भारतीय ज्ञान प्रणाली को समझना और परिभाषित करना क्यों महत्वपूर्ण है?

a) विदेशी ज्ञान प्रणालियों को स्वदेशी प्रणालियों पर प्राथमिकता देने के लिए

b) इसकी प्रासंगिकता को समझने के लिए ताकि यह समकालीन चुनौतियों का समाधान कर सके और मूल्यवान दृष्टिकोण प्रदान कर सके

c) पुराने ज्ञान को त्याग कर आधुनिक प्रणालियों को प्राथमिकता देने के लिए

d) केवल प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए बिना इसे आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलित किए

28. भारतीय ज्ञान प्रणाली किस तक सीमित नहीं है?

a) वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय ज्ञान

b) सामाजिक प्रथाएँ और दैनिक जीवन

c) धार्मिक और दार्शनिक उपदेश

d) केवल पारंपरिक लोक ज्ञान

29. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय ज्ञान प्रणाली के अच्छे वर्गीकरण ढांचे के लिए तीन प्रमुख मानदंडों में से नहीं है?

a) पूर्णता

b) संक्षिप्तता

c) आपसी संबंध

d) आधुनिकीकरण

30. "पूर्णता" मानदंड का क्या मतलब है भारतीय ज्ञान प्रणाली वर्गीकरण के संदर्भ में?
    a) ढांचा संक्षिप्त और समझने में आसान होना चाहिए
    b) ढांचा IKS के सभी महत्वपूर्ण घटकों को शामिल करना चाहिए
    c) ढांचा यह दिखाना चाहिए कि विभिन्न विषय कैसे एक-दूसरे से संबंधित हैं
    d) ढांचा केवल आधुनिक ज्ञान प्रणालियों पर केंद्रित होना चाहिए

31. भारतीय ज्ञान प्रणाली के अनुसार निम्नलिखित में से कौन सा का साहित्यिक स्रोत नहीं माना जाता है?
    a) सनातन धर्म साहित्य
    b) आयुर्वेद ग्रंथ जैसे चरक संहिता
    c) लोक गीत और मौखिक परंपराएँ
    d) पतंजलि के योग सूत्र

32. निम्नलिखित में से कौन सा विषय भारतीय ज्ञान प्रणाली के वर्गीकरण ढांचे में "दार्शनिकता और आध्यात्मिकता" श्रेणी का हिस्सा है?
    a) आयुर्वेद
    b) योग और वेदांत
    c) कृषि प्रथाएँ
    d) वास्तुकला और वास्तु

33. भारतीय ज्ञान प्रणाली की "विज्ञान और प्रौद्योगिकी" श्रेणी में क्या शामिल है?
    a) साहित्य, नृत्य, और संगीत
    b) गणित, खगोलशास्त्र, और वास्तुकला में प्रारंभिक प्रगति
    c) लोक परंपराएँ और कहावतें
    d) राजनीतिक सिद्धांत और सामाजिक नैतिकताएँ

34. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय ज्ञान प्रणाली के ज्ञान का गैर-साहित्यिक स्रोत माना जाता है?
    a) उपनिषद
    b) भगवद गीता
    c) लोक परंपराएँ और मौखिक कहानी सुनाना
    d) सुश्रुत संहिता

35. "स्थानीय और लोक ज्ञान" श्रेणी में कौन सा प्रकार का ज्ञान शामिल है?

a) शासन और राजनीति से संबंधित ज्ञान
b) आध्यात्मिकता और नैतिकता पर ज्ञान
c) पारंपरिक पारिस्थितिकी ज्ञान, कृषि, और कारीगरी
d) चिकित्सा और खगोलशास्त्र पर वैज्ञानिक ग्रंथ

36. IKS वर्गीकरण ढांचे में "अर्थशास्त्र" जैसे ग्रंथ किस श्रेणी में आते हैं?

a) विज्ञान और प्रौद्योगिकी
b) कला और संस्कृति
c) सामाजिक विज्ञान
d) दर्शन और आध्यात्मिकता

37. चतुर्दश-विद्यास्थान में "चतुर्दश" शब्द का क्या अर्थ है?

a) बारह
b) सत्रह
c) चौदह
d) बीस

38. चतुर्दश-विद्यास्थान वर्गीकरण में निम्नलिखित में से कौन सा प्राथमिक श्रेणी नहीं है?

a) चार वेद
b) पुराण
c) धर्मशास्त्र
d) महाभारत

39. भारतीय ज्ञान प्रणाली के अनुसार, वेदों का मुख्य उद्देश्य क्या है?

a) आध्यात्मिक प्रथाओं और अनुष्ठानों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करना
b) ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करना
c) राजाओं और देवताओं के इतिहास को सिखाना
d) नैतिक और धार्मिक उपदेश प्रदान करना

40. निम्नलिखित में से कौन सा वेदांग नहीं है?

a) शिक्षा

b) कल्प

c) व्याकरण

d) सांख्य

41. "वेदा अंग" शब्द का क्या अर्थ है?

a) वेदों के चार प्रमुख ग्रंथ

b) सनातन धर्म में दर्शन के स्कूल

c) सहायक विज्ञान जो वेदों के ज्ञान को समझने और लागू करने में मदद करते हैं

d) भारतीय संस्कृति के ऐतिहासिक ग्रंथ

42. निम्नलिखित में से कौन सा दर्शन श्रेणी के तहत दर्शनशास्त्र स्कूलों में से एक है?

a) न्याय

b) पुराण

c) वास्तु

d) आयुर्वेद

43. न्याय दर्शन स्कूल का ध्यान किस पर है?

a) तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा

b) अनुष्ठान और धर्म विश्लेषण

c) आध्यात्मिक अनुशासन और योग

d) परमाणुवाद और ज्ञान की श्रेणीकरण

44. पुराण मुख्य रूप से वेदिक सिद्धांतों को व्यक्त करने के लिए किस विधि का उपयोग करते हैं?

a) तार्किक

b) कथाएँ, उपाख्यान और उपदेश

c) सीधे दार्शनिक संवाद

d) वैज्ञानिक प्रयोग

45. निम्नलिखित में से कौन सा "धर्मशास्त्र" या "स्मृति" के रूप में वर्गीकृत नहीं है?

a) मनुस्मृति
b) नीति-शास्त्र
c) सुभाषित
d) रामायण

46. धर्मशास्त्रों का मुख्य उद्देश्य क्या है, जैसा कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में वर्णित है?

a) ब्रह्माण्डीय सिद्धांतों का वर्णन करना
b) सामाजिक कर्तव्यों, नैतिक संहिता और नैतिक आचरण को रेखांकित करना
c) देवताओं और राजाओं के जीवन को वर्णित करना
d) तत्वमीमांसा के सिद्धांतों को स्पष्ट करना

47. भारतीय ज्ञान प्रणाली के ऐतिहासिकता को निर्धारित करने में मुख्य चुनौती क्या है?

a) लिखित अभिलेखों की कमी
b) केवल मौखिक परंपराओं की उपस्थिति
c) प्राचीन ग्रंथों की सटीक तारीख निर्धारण में कठिनाई
d) वैज्ञानिक प्रमाणों की कमी

48. भारत में 3000 ईसा पूर्व से पहले के दौर के बारे में कौन सा कथन सत्य है?

a) इसे भारतीय सभ्यता के संदर्भ में "अंधकार युग" माना जाता था
b) इस समय में ज्ञान प्रसारित करने के लिए एक अत्यधिक विकसित मौखिक परंपरा थी
c) यह मुख्य रूप से लिखित दस्तावेजों पर ध्यान केंद्रित करता था
d) इसमें वेदों और पुराणों की उत्पत्ति हुई थी

49. भारत में 3000 ईसा पूर्व से पहले के दौर को समझने में कौन सी खोज ने शोधकर्ताओं की मदद की है?

a) उस समय के लिखित अभिलेख
b) द्वारका में डूबे हुए वस्त्र और ग्रहण सॉफ़्टवेयर
c) आधुनिक भाषाओं का विकास
d) संस्कृत में प्राचीन पांडुलिपियाँ

50. 3000 ईसा पूर्व से 500 CE के बीच कौन से प्रमुख ग्रंथ रचित और संकलित हुए थे?
    a) भगवद गीता और अर्थशास्त्र
    b) वेद, उपनिषद, महाभारत, और रामायण
    c) चरक संहिता और सुश्रुत संहिता
    d) बौद्ध सूत्र और जैन आगम

51. 3000 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी तक भारत में गणित में कौन सी प्रमुख प्रगति की गई थी?
    a) कैलकुलस और रैखिक गणित का परिचय
    b) शून्य और दशमलव प्रणाली का सिद्धांत
    c) त्रिकोणमिति और ज्यामिति का विकास
    d) द्विआधारी संख्यात्मक प्रणाली का निर्माण

52. 3000 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी तक भारत में कौन सी दार्शनिक स्कूलें उभरीं?
    a) अद्वैत वेदांत और विशिष्टाद्वैत
    b) वेदांत, सांख्य और योग
    c) बौद्ध धर्म और जैन धर्म
    d) मार्क्सवाद और उपभोक्तिवाद

53. 500 ईस्वी से 1800 ईस्वी तक भारतीय सभ्यता की कौन सी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी?
    a) मुद्रण यंत्र का आविष्कार
    b) शून्य और रैखिक गणित का सिद्धांत
    c) न्यू वर्ल्ड की खोज
    d) रेशम मार्ग की स्थापना

54. दिल्ली का लौह स्तंभ का क्या महत्व है?
    a) यह भारत की प्रारंभिक खगोलशास्त्रीय प्रगति को दर्शाता है
    b) यह भारत की धातुकर्म तकनीकों और जंग-रहित लोहे को प्रदर्शित करता है
    c) यह भारत के आध्यात्मिक विकास का प्रतीक है
    d) यह गुप्त काल में निर्मित एक वास्तुशिल्प स्मारक है

55. भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता क्या है?

a) लिखित अभिलेखों पर भारी निर्भरता

b) गहरी रूप से समाहित मौखिक परंपरा

c) केवल धार्मिक ग्रंथों पर ध्यान केंद्रित करना

d) व्यवस्थित संरचना की कमी

56. भारतीय ज्ञान प्रणाली की मौखिक परंपरा ज्ञान प्रसारण के लिए किसे आवश्यक बनाती है?

a) व्यापक लिखित दस्तावेज़

b) जटिल विचारों को संक्षिप्त और यादगार रूपों में संकुचित करना

c) प्रत्येक ग्रंथ में विस्तृत विश्लेषण

d) केवल दृश्य कला का उपयोग करना

57. निम्नलिखित में से कौन सा भारतीय ज्ञान प्रणाली द्वारा एक साथ कई विषयों को संबोधित करने का उदाहरण है?

a) उपनिषद केवल आध्यात्मिक उपदेशों पर केंद्रित होते हैं

b) भगवद गीता आध्यात्मिक, धार्मिक और सांसारिक विचारों को संबोधित करती है

c) पुराण केवल मिथक कथाओं पर केंद्रित होते हैं

d) महाभारत केवल युद्ध रणनीतियों पर ध्यान केंद्रित करता है

58. भगवद गीता में अवतार-पुरुष का क्या सिद्धांत है?

a) आत्मा का जन्म और मृत्यु का चक्र

b) ब्रह्मांडीय व्यवस्था को बहाल करने के लिए दिव्य अवतारों की आवश्यकता

c) संगठनात्मक नेतृत्व के लिए एक सांसारिक सिद्धांत

d) मृत्यु के बाद शाश्वत जीवन का विचार

59. अवतार-पुरुष के सिद्धांत को एक सांसारिक संदर्भ में कैसे समझा जा सकता है?

a) आध्यात्मिक जागरण की प्रक्रिया के रूप में

b) संगठनात्मक संतुलन या प्रणालियों को बहाल करने का तरीका

c) पुनर्जन्म का उपमा के रूप में

d) व्यक्तिगत भक्ति और प्रेम के मार्गदर्शक के रूप में

60. भगवद गीता में पुराने कपड़े त्यागने का रूपक किस सिद्धांत को समझाने के लिए उपयोग किया गया है?

a) भौतिक शरीरों का अस्थिरता
b) आत्मा (आत्मा) का जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म का चक्र
c) जानवरों में पुनर्जन्म का सिद्धांत
d) एक व्यक्ति की आध्यात्मिक पवित्रता

61. भगवद गीता का मानसिक जड़ता के बारे में उपदेश आधुनिक व्यापार सिद्धांत में कैसे लागू होता है?

a) पारंपरिक तरीकों का कठोर पालन करने को बढ़ावा देना
b) निरंतर नवाचार और अनुकूलन की आवश्यकता को जोर देना
c) पुराने विचारों को संरक्षित करने पर ध्यान केंद्रित करना
d) बिना बदलाव के प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना

62. भारतीय ज्ञान प्रणाली में ज्ञान प्रस्तुत करने की सामान्य शैली क्या है?

a) लंबी गद्य रचनाएँ
b) मैट्रिक छंद और सूत्र
c) लिखित शैक्षिक लेख
d) व्यापक टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ

63. भारतीय ज्ञान प्रणालियों के ऐतिहासिकता का अध्ययन करने में प्रमुख चुनौती क्या है?

A) प्राचीन ग्रंथों में रुचि की कमी
B) संस्कृत का अनुवाद करने में कठिनाई
C) प्राचीन ग्रंथों और ज्ञान स्रोतों को सही तरीके से तिथिबद्ध करना
D) भारतीय ज्ञान के प्रति पश्चिमी विरोध

64. कई भारतीय कृतियाँ किस वर्ष से पहले उत्पन्न हुई थीं?

A) 1000 ईस्वी
B) 500 ईसा पूर्व
C) 1500 ईस्वी
D) 300 ईस्वी

65. प्राचीन भारत में ज्ञान का मुख्य रूप से कैसे प्रसारण किया जाता था?

A) पत्थरों पर खुदाई

B) लिखित पुस्तकें

C) मौखिक परंपरा

D) डिजिटल अभिलेखागार

66. निम्नलिखित में से कौन सा ग्रंथ भारतीय ज्ञान प्रणाली का हिस्सा है?

A) ओडिसी

B) इलियड

C) रामायण

D) कैंटरबरी टेल्स

67. भारत के मौखिक अतीत को समझने में कौन सी खोज मददगार साबित हुई है?

A) चीन की महान दीवार

B) द्वारका में डूबे हुए खंडहर

C) गिजा के पिरामिड

D) बाबिलोन के लटके हुए बगिचे

68. गणित में किस सिद्धांत का श्रेय भारतीय विद्वानों को जाता है?

A) गुणन

B) ज्यामिति

C) शून्य का सिद्धांत

D) भिन्न

69. कौन सा भारतीय शहर जंग रहित लौह स्तंभ से जुड़ा हुआ है?

A) वाराणसी

B) मैसूर

C) दिल्ली

D) जयपुर

70. भारतीय ऐतिहासिक परंपरा को पश्चिमी ऐतिहासिक विधियों से क्या अंतर है?

A) लैटिन का उपयोग

B) स्मारकों पर ध्यान केंद्रित करना

C) सटीक तिथिबद्ध करने की बजाय शाश्वतता पर जोर देना

D) कागज की पांडुलिपियों का उपयोग

71. महाभारत और रामायण किस चरण में रचित हुए थे?

A) आधुनिक काल

B) प्रारंभिक मध्यकाल

C) लिखित इतिहास के उदय से लेकर रोमन साम्राज्य के पतन तक का काल

D) उपनिवेश काल

72. निम्नलिखित में से कौन सा दार्शनिक स्कूल पारंपरिक भारतीय नहीं है?

A) वेदांत

B) सांख्य

C) स्टोइकवाद

D) योग

73. कौन सा उपकरण प्राचीन भारतीय समयरेखाओं का पुनः मूल्यांकन करने में मदद कर रहा है?

A) ब्लॉकचेन

B) एआई-जनित लेख

C) ग्रहदर्शन सॉफ़्टवेयर

D) मुद्रण प्रेस

74. भारत के स्वर्णिम वैज्ञानिक युग के दौरान किस क्षेत्र में प्रमुख प्रगति हुई थी?

A) नौसेना इंजीनियरिंग

B) भाषा विज्ञान

C) सॉफ़्टवेयर विकास

D) संगीत लेखन

75. भारतीय मंदिरों की कौन सी विशेषता वास्तुशिल्प नवाचार को दर्शाती है?

A) ईंटों की परतें

B) बलुआ पत्थर के गुंबद

C) संगीतात्मक स्तंभ

D) लटकी हुई बालकनी

76. भारतीय धातुकर्म कौशल को किस धातु के काम के उदाहरण से प्रदर्शित किया जाता है?

A) कांस्य रथ

B) सोने की मूर्ति

C) दिल्ली का लौह स्तंभ

D) चांदी के मुकुट

77. पश्चिमी तिथिबद्ध विधियाँ भारतीय प्राचीन ज्ञान के साथ क्यों संघर्ष करती हैं?

A) संस्कृत को हल नहीं किया जा सकता

B) तकनीकी उपकरणों की कमी

C) मौखिक परंपरा में भौतिक प्रमाण की कमी

D) भारतीय विद्वानों के साथ सहयोग का अभाव

78. भारतीय ज्ञान के "शाश्वत" होने का दृष्टिकोण किस पर प्रभाव डालता है?

A) इसकी पहुँच

B) इसका भाषा उपयोग

C) इसकी तिथीकरण और ऐतिहासिक स्थान

D) इसका आध्यात्मिक मूल्य

79. कौन सा भारतीय दार्शनिक प्रणाली वैश्विक मेटाफिज़िक्स पर गहरा प्रभाव डाल चुकी है?

A) चार्वाक

B) न्याय

C) वेदांत

D) मीमांसा

80. मध्यकालीन भारतीय सभ्यता के दौरान किस क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई?
A) चिकित्सा
B) रसायनशास्त्र
C) इंजीनियरिंग
D) भूकंप विज्ञान

81. 500 ईस्वी से 1800 ईस्वी तक के काल को भारतीय ज्ञान इतिहास में क्यों महत्वपूर्ण माना जाता है?
A) अध्ययन में गिरावट
B) उपनिवेश काल
C) विज्ञान, दर्शन और प्रौद्योगिकी में महत्वपूर्ण योगदान
D) मंदिरों का विध्वंस

82. भारतीय ज्ञान के प्रसारण के दृष्टिकोण को सर्वश्रेष्ठ रूप से कौन सा कथन संक्षेपित करता है?
A) यह केवल पुरातत्व पर निर्भर करता है
B) यह ग्रंथों को अपरिवर्तनीय ऐतिहासिक कलाकृतियाँ मानता है
C) यह सटीक तिथीकरण की बजाय अविरत मौखिक परंपरा को महत्व देता है
D) यह प्राचीन ग्रंथों को आधुनिक भाषाओं में अक्सर रूपांतरित करता है

83. भगवद गीता के अध्याय 4 में वर्णित अवतार-पुरुष का सिद्धांत मुख्य रूप से किस बारे में है?
A) समय प्रबंधन
B) आदेश बहाल करने के लिए दिव्य अवतार
C) मानव विकास
D) आर्थिक योजना

84. गीता के अध्याय 2 में आत्मा की यात्रा को समझाने के लिए किस रूपक का उपयोग किया गया है?
A) एक बहता हुआ नदी
B) एक जलती हुई आग
C) पुराने कपड़े त्यागना
D) एक घूमता हुआ पहिया

85. भारतीय ज्ञान प्रणाली में छंदों को आसान याद रखने के लिए सामान्यत: किस प्रकार संरचित किया जाता है?

A) गद्य रूप में

B) चित्रात्मक रूप में

C) कड़ी मीट्रिक पैटर्न का उपयोग करके

D) वर्णमाला के क्रम में

86. भगवद गीता के पुराने विश्वासों को छोड़ने के विचार के साथ कौन सा आधुनिक सिद्धांत मेल खाता है?

A) व्यवसाय प्रक्रिया आउटसोर्सिंग

B) रचनात्मक विनाश

C) स्थिरता रिपोर्टिंग

D) पूंजी बजट

87. कौन से प्राचीन भारतीय विद्वान को कविता के रूप में एक संख्यात्मक प्रणाली से जोड़ा जाता है?

A) पतंजलि

B) आर्यभट्ट

C) पाणिनि

D) चरक

88. भारतीय ज्ञान प्रणाली में सूत्रों और स्मरणोत्सुक विधियों का मुख्य उद्देश्य क्या है?

A) सजावट

B) हास्य

C) स्मृति संरक्षण

D) व्याकरण सुधार

89. कौन सा छंद आधारित विज्ञान ग्रंथ द्विआधारी संख्याओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए स्मरणोत्सुक दृष्टिकोण का उपयोग करता है?

A) चरक संहिता

B) पिंगला का छंदशास्त्र

C) योग सूत्र

D) अर्थशास्त्र

90. कौन सा आधुनिक क्षेत्र अवतार-पुरुष के सिद्धांत की व्याख्या एक सांसारिक तरीके से कर सकता है?
   A) राजनीतिक विज्ञान
   B) प्रणाली इंजीनियरिंग और प्रबंधन
   C) साहित्य
   D) ज्योतिष

91. संगठनात्मक दृष्टिकोण से, गीता का संदेश सिस्टम पुनर्जन्म के बारे में क्या दर्शाता है?
   A) कर्मचारियों की कमी
   B) प्रणाली सुधार और नेतृत्व नवीकरण
   C) वित्तीय लेखांकन
   D) विपणन अभियान

92. पुराने कपड़े त्यागने के रूपक को व्यापार में किस रूप में समझा जा सकता है?
   A) कर्मचारियों की कमी
   B) नवाचार और संगठनात्मक परिवर्तन
   C) भर्ती
   D) ग्राहक संतुष्टि

93. अर्थशास्त्र में मानसिक जड़ता के खिलाफ गीता की चेतावनी से संबंधित कौन सा सिद्धांत है?
   A) एकाधिकार नियंत्रण
   B) तुलनात्मक लाभ
   C) प्रतिस्पर्धात्मक लाभ
   D) मुद्रास्फीति लक्ष्य

94. भारतीय ज्ञान प्रणाली में मीट्रिक छंदों को मौखिक प्रसारण के लिए प्रभावी क्यों माना जाता है?
   A) लंबे वाक्य का उपयोग
   B) कड़ी नियम और संक्षिप्त अभिव्यक्ति
   C) कथाओं का पुनरावृत्ति
   D) आधुनिक अनुवाद

95. भारतीय ज्ञान प्रणाली में कौन सी संहिताएँ संख्याओं को अक्षरों से जोड़ने वाली प्रणाली का उपयोग करती हैं?

A) स्थापत्य-वेद
B) कतपायादि
C) निरुक्त
D) अनुप्याख्यान

96. गीता के परिवर्तन और संतुलन पर विचारों से कौन सा पारंपरिक धर्म के बाहर का क्षेत्र लाभान्वित होता है?

A) समाजशास्त्र
B) फैशन डिजाइन
C) व्यापार प्रबंधन
D) ललित कला

97. इंजीनियरिंग के संदर्भ में, अवतारों की अवधारणा प्रणाली डिज़ाइन से कैसे संबंधित है?

A) यह अतिरिक्तता का प्रतीक है
B) यह विस्तार का प्रतीक है
C) यह संतुलन बहाल करने वाले बिंदुओं को प्रदर्शित करता है
D) यह शटडाउन अनुक्रम दिखाता है

98. भारतीय ज्ञान प्रणाली में सूत्रों जैसी स्मरणोत्सुक विधियाँ क्यों महत्वपूर्ण हैं?

A) वे श्रोता का मनोरंजन करती हैं
B) वे केवल धार्मिक उद्देश्यों के लिए हैं
C) वे बड़े ज्ञान प्रणालियों को संक्षेपित और संरक्षित करने में मदद करती हैं
D) वे संगीत की ध्वनियों को सरल बनाती हैं

99. कंप्यूटर विज्ञान में कौन सा सिद्धांत पिंगला के द्विआधारी स्मरणोत्सुक अनुक्रमों के समान है?

A) छांटन
B) ब्लॉकचेन
C) ड ब्रुइन अनुक्रम
D) न्यूरल नेटवर्क

100. आर्यभट्ट द्वारा साइन टेबल्स के कोडिंग को कैसे वर्णित किया गया है?

A) गद्य में संगीत नोट्स

B) कथाओं में छिपे हुए संख्याएँ

C) काव्य रूप में डेटा कोडित

D) हाथ की मुद्राओं के माध्यम से स्मरण किया गया

101. गीता की शिक्षाओं को आधुनिक ज्ञान प्रणालियों के संदर्भ में बहुआयामी क्यों माना जाता है?

A) ये केवल धार्मिक अनुष्ठानों को बढ़ावा देती हैं

B) ये भौतिक व्याख्या को बाहर करती हैं

C) ये आध्यात्मिक दृष्टिकोण को भौतिक और प्रणालीगत अनुप्रयोगों के साथ जोड़ती हैं

D) ये सभी आधुनिक दृष्टिकोणों को नकारती हैं

102. गीता का कौन सा सिद्धांत आधुनिक प्रबंधन में अनुकूल नेतृत्व से सबसे अधिक मेल खाता है?

A) क्रिया का त्याग

B) जाति कर्तव्यों का पालन

C) पुराने विचारों को छोड़कर रणनीति को नवीनीकरण करना

D) अनुष्ठान की शुद्धता पर ध्यान केंद्रित करना

103. भारतीय ज्ञान प्रणाली साहित्य का अधिकांश मूल रूप से किस भाषा में लिखा गया है?

A) तमिल

B) पाली

C) संस्कृत

D) फारसी

104. निम्नलिखित में से कौन सा सनातन धर्म का मूल पाठ है?

A) बाइबिल

B) वेद

C) क़ुरआन

D) त्रिपिटक

105. "चतुर्दश" का अर्थ चतुर्दश-विद्यास्थान के संदर्भ में क्या है?

A) दसगुणा
B) चौदह
C) बीस
D) सात

106. भारतीय ज्ञान प्रणाली के किस श्रेणी में वेद, उपनिषद और भगवद गीता शामिल हैं?

A) बौद्ध साहित्य
B) साहित्यिक स्रोत नहीं
C) मूल सनातन-धर्म साहित्य
D) लोक परंपराएँ

107. भारतीय ज्ञान का एक प्रमुख साहित्यिक नहीं स्रोत कौन सा है?

A) पांडुलिपियाँ
B) मौखिक परंपराएँ
C) शिला लेख
D) मुद्राएँ

108. कौन सा भारतीय ज्ञान प्रणाली पाठ मुख्य रूप से शासन और प्रशासन से संबंधित है?

A) ऋग्वेद
B) अर्थशास्त्र
C) भगवद गीता
D) छांदोग्य उपनिषद

109. उपनिषद मुख्य रूप से किस पर केंद्रित हैं?

A) युद्ध
B) आध्यात्मिक दर्शन
C) खगोलशास्त्र
D) कृषि

110. 'वेदांग' शब्द का क्या अर्थ है?

A) दार्शनिक विद्यालय

B) वेदों को समझने के सहायक शास्त्र

C) नृत्य और संगीत के ग्रंथ

D) बौद्ध सूत्र

111. निम्नलिखित में से कौन सा ग्रंथ प्राचीन भारतीय इतिहास का हिस्सा है?

A) योग सूत्र

B) ऋग्वेद

C) रामायण

D) अर्थशास्त्र

112. भारतीय ज्ञान प्रणाली में लोक परंपराएँ आमतौर पर किसके द्वारा प्रसारित की जाती हैं?

A) मुद्रित पुस्तकें

B) सरकारी आदेश

C) मौखिक प्रसारण

D) शिला शिल्प

113. आयुर्वेद से मुख्य रूप से कौन सा ग्रंथ संबंधित है?

A) महाभारत

B) सुश्रुत संहिता

C) अर्थशास्त्र

D) नाट्य शास्त्र

114. कौन सा दर्शन संघ और अनुशासन पर केंद्रित है?

A) न्याय

B) सांख्य

C) योग

D) मीमांसा

115. कौन सा सहायक वेदांग अनुष्ठानों पर केंद्रित है?

A) व्याकरण

B) कल्प

C) निरुक्त

D) ज्योतिष

116. रसरत्नकार किस क्षेत्र से संबंधित है?

A) संगीत

B) रसायनशास्त्र

C) वास्तुकला

D) व्याकरण

117. इनमें से कौन सा बौद्ध योगदान IKS में है?

A) तत्त्वार्थसूत्र

B) सुश्रुत संहिता

C) त्रिपिटक

D) अर्थशास्त्र

118. पंचतंत्र किसके लिए प्रसिद्ध है?

A) युद्ध

B) दर्शन

C) कहानियों के माध्यम से नैतिकता

D) खगोलशास्त्र

119. भारतीय दर्शन के छह विद्यालयों को collectively क्या कहा जाता है?

A) श्रुतियाँ

B) वेदांग

C) दर्शन

D) आगम

120. नाट्यशास्त्र का लेखक कौन था?

A) चरक

B) भरत

C) कालिदास

D) पतंजलि

121. वेदिक साहित्य के संदर्भ में 'श्रुति' का क्या अर्थ है?

A) जो भुला दिया गया है

B) जो सुना गया (दैवी रूप से प्रकट)

C) जो देखा गया

D) जो लिखा गया

122. मनुस्मृति को किस श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है?

A) अरण्यक

B) धर्मशास्त्र

C) वेदांत

D) पुराण

123. ज्योतिष किस विज्ञान से संबंधित है?

A) ज्यामिति

B) कृषि

C) खगोलशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र

D) चिकित्सा

124. कौन सा जैन ग्रंथ गणितीय ज्ञान पर केंद्रित है?

A) आगम सूत्र

B) तत्त्वार्थसूत्र

C) गणित सार संग्रह

D) न्याय सूत्र

125. इनमें से कौन सा वेदांग नहीं है?

A) शिक्षा

B) कल्प

C) सांख्य

D) छंद

126. उपवेद मुख्य रूप से किससे संबंधित हैं?

A) पुराण

B) द्वितीयक विज्ञान जैसे चिकित्सा और युद्ध

C) कानून और प्रशासन

D) पवित्र गायन

127. धर्मशास्त्र का मुख्य उद्देश्य क्या है?

A) खगोलशास्त्र

B) यज्ञ बलिदान

C) नैतिक और कानूनी मार्गदर्शन

D) वास्तुकला

128. युगों और ब्रह्मांडीय चक्रों की अवधारणा सबसे अधिक विस्तार से किसमें दी गई है?

A) उपनिषद

B) अर्थशास्त्र

C) पुराण

D) योग सूत्र

129. कौन सा दर्शन तत्वों की मेटाफिजिकल गणना पर आधारित है?

A) सांख्य

B) न्याय

C) वैशेषिक

D) वेदांत

130. कामंदक की नीति-सार मुख्य रूप से किस पर आधारित है?

A) सैन्य विज्ञान
B) राज्यशिल्प और सार्वजनिक नीति
C) आध्यात्मिक अभ्यास
D) कृषि

131. कौन सी गैर-वेदिक परंपरा समुद्री और रसायनिक ज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान देती है?

A) जैन धर्म
B) बौद्ध धर्म
C) चार्वाक
D) न्याय

132. गणित सार संग्रह का निर्माण किसने किया?

A) आर्यभट्ट
B) भास्कर II
C) महावीराचार्य
D) नागार्जुन

133. कौन सा वेदांग मीटर के विज्ञान से संबंधित है?

A) छंद
B) निरुक्त
C) व्याकरण
D) ज्योतिष

134. वास्तु और शिल्प शास्त्रों को किस श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है?

A) दर्शन और आध्यात्मिकता
B) विज्ञान और प्रौद्योगिकी
C) कला और संस्कृति
D) सामाजिक विज्ञान

135. कौन सा प्राचीन ग्रंथ आयुर्वेद और रसायनशास्त्र के अभ्यास को एकीकृत करता है?

A) नाट्य शास्त्र
B) रसरत्न समुच्चय
C) अर्थशास्त्र
D) पंचतंत्र

136. भारतीय ज्ञान प्रणाली संकलन "स्थानीय और लोक ज्ञान" को कैसे वर्गीकृत करता है?

A) असंगठित
B) निम्न संस्कृति साहित्य
C) मूल्यवान मौखिक परंपराएँ
D) सांसारिक अज्ञानी

137. योग सूत्र, वेदांत और जैन शिक्षाओं को किस क्षेत्र में रखा जाएगा?

A) स्थानीय ज्ञान
B) विज्ञान और प्रौद्योगिकी
C) दर्शन और आध्यात्मिकता
D) प्रदर्शन कला

138. भारतीय ज्ञान प्रणाली (भारतीय ज्ञान प्रणाली) के स्रोतों की तिथि निर्धारण में मुख्य चुनौती क्या है?
A. पुरातात्विक स्थलों की कमी
B. बार-बार हुए आक्रमण
C. ज्ञान के संप्रेषण और संग्रहण की पद्धतियों में अंतर
D. भारतीय इतिहास में पश्चिमी रुचि की कमी

139. 3000 ईसा पूर्व से पहले भारत में ज्ञान को कैसे संरक्षित और प्रेषित किया जाता था?
A. पत्थर की पट्टियों पर शिलालेख के माध्यम से
B. ताड़पत्र पांडुलिपियों के द्वारा
C. मौखिक परंपरा के माध्यम से
D. विदेशी यात्रियों की सहायता से

140. निम्न में से कौन-सी खोज 3000 ईसा पूर्व से पहले की प्राचीन भारतीय सभ्यता पर प्रकाश डालती है?
A. हड़प्पा में प्राचीन सिक्के
B. नालंदा के खंडहर
C. द्वारका का जलमग्न शहर
D. अशोक के शिलालेख

141. प्राचीन ग्रंथों के बारे में भारतीय परंपरा का कौन-सा दृष्टिकोण सही है?
A. ग्रंथों को आधुनिक मूल्यों के अनुसार फिर से लिखा जाता है
B. किसी ग्रंथ का महत्व उसकी तिथि निर्धारण पर निर्भर करता है
C. ग्रंथों को कालातीत माना जाता है और वे सांस्कृतिक निरंतरता का हिस्सा हैं
D. सभी प्राचीन ग्रंथ आक्रमणों में नष्ट हो गए

142. भारत में 3000 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी तक के काल में किस वैज्ञानिक उपलब्धि का विकास हुआ?
A. मुद्रण तकनीक का आविष्कार
B. क्वांटम सिद्धांत का विकास
C. शून्य की संकल्पना
D. सूक्ष्मदर्शी का उपयोग

143. वेदांत, सांख्य और योग जैसी दर्शनों की उत्पत्ति किस काल में हुई?

A. 3000 ईसा पूर्व से पहले
B. 3000 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी
C. 500 ईस्वी से 1800 ईस्वी
D. 1800 ईस्वी के बाद

144. 500 ईस्वी से 1800 ईस्वी के बीच भारतीय वास्तुकला में कौन-सी विशेषता उन्नत इंजीनियरिंग को दर्शाती है?

A. पत्थर की सड़कों का निर्माण
B. मधुर ध्वनि उत्पन्न करने वाले स्तंभ और जंग-रहित लौह स्तंभ
C. काँच की गगनचुंबी इमारतें
D. लकड़ी के मंदिर

145. दिल्ली का लौह स्तंभ किस क्षेत्र में भारत की प्राचीन उन्नति का प्रमाण है?

A. कृषि
B. खगोल विज्ञान
C. धातुकर्म
D. केवल वास्तुकला

146. मौखिक परंपरा के कारण भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक विशेषता क्या थी?

A. व्यक्तिगत डायरी पर ज़ोर
B. सभी ग्रंथों में विस्तृत लिखित विश्लेषण
C. संक्षिप्त और बहुआयामी विचारों की अभिव्यक्ति
D. गुप्त लिखित कोड्स का उपयोग

147. निम्न में से कौन-सा ग्रंथ धार्मिक और सांसारिक दोनों दृष्टियों से व्याख्यायित किया जा सकता है?

A. अर्थशास्त्र
B. रामायण
C. न्याय सूत्र
D. भगवद गीता

148. भगवद गीता में अवतार-पुरुष की संकल्पना का सांसारिक अर्थ क्या बताया गया है?

A. एक राजनीतिक क्रांति
B. संतुलन बहाल करने वाली प्रबंधन प्रणाली
C. एक गणितीय प्रमेय
D. एक ज्योतिषीय चक्र

उत्तर दर्शिका

Q.No.	Ans.	Q.No.	Ans.	Q.No.	Ans.
1	b	26	c	51	c
2	b	27	b	52	b
3	b	28	d	53	b
4	b	29	d	54	b
5	b	30	b	55	b
6	b	31	c	56	b
7	c	32	b	57	b
8	b	33	b	58	b
9	b	34	c	59	b
10	b	35	c	60	b
11	b	36	c	61	b
12	b	37	c	62	b
13	c	38	d	63	c
14	b	39	a	64	b
15	b	40	d	65	c
16	b	41	c	66	c
17	b	42	a	67	b
18	b	43	a	68	c
19	b	44	b	69	c
20	b	45	d	70	c
21	c	46	b	71	c
22	c	47	c	72	c
23	c	48	b	73	c
24	b	49	b	74	b
25	b	50	b	75	c

Q.No.	Ans.	Q.No.	Ans.	Q.No.	Ans.
76	c	101	c	126	b
77	c	102	c	127	c
78	c	103	c	128	c
79	c	104	b	129	a
80	d	105	b	130	b
81	c	106	c	131	b
82	c	107	b	132	c
83	b	108	b	133	a
84	c	109	b	134	b
85	c	110	b	135	b
86	b	111	c	136	c
87	b	112	c	137	c
88	c	113	b	138	c
89	b	114	c	139	c
90	b	115	b	140	c
91	b	116	b	141	c
92	b	117	c	142	c
93	c	118	c	143	b
94	b	119	c	144	b
95	b	120	b	145	c
96	c	121	b	146	c
97	c	122	b	147	d
98	c	123	c	148	b
99	c	124	c		
100	c	125	c		

पुस्तक के विषय में

यह कृति ''भारत बौद्धिक्स'' पुस्तक संग्रह का एक भाग है, जो भारत की समृद्ध और विविध बौद्धिक विरासत का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यह प्राचीन ज्ञान की मूलभूत स्तंभों की खोज करती है, जिसमें चतुर्दश-विद्यास्थान, ग्रंथों का वर्गीकरण, और उपमहाद्वीप में विचारधारा के ऐतिहासिक विकास जैसे संरचित विषयों को शामिल किया गया है। भारतीय ज्ञान परिदृश्य का मानचित्रण करते हुए और इसकी विशिष्ट विशेषताओं को उजागर करते हुए, यह कृति न केवल इस अमूल्य धरोहर को संरक्षित करने का प्रयास करती है, बल्कि इसे आज की दुनिया में प्रासंगिक भी बनाती है। आधुनिक युवाओं के लिए यह पुस्तक एक सेतु का कार्य करती है। जो शाश्वत सिद्धांतों को समकालीन चुनौतियों से जोड़ती है, गहराई से जुड़ी सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित नवाचारपूर्ण सोच को प्रेरित करती है, और शिक्षा व जीवन के प्रति एक अधिक समग्र एवं समावेशी दृष्टिकोण को बढ़ावा देती है।



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-03-1

Bharat BoudhIKS

खंड-19

गुरुकुल और वैदिक परंपरा

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान

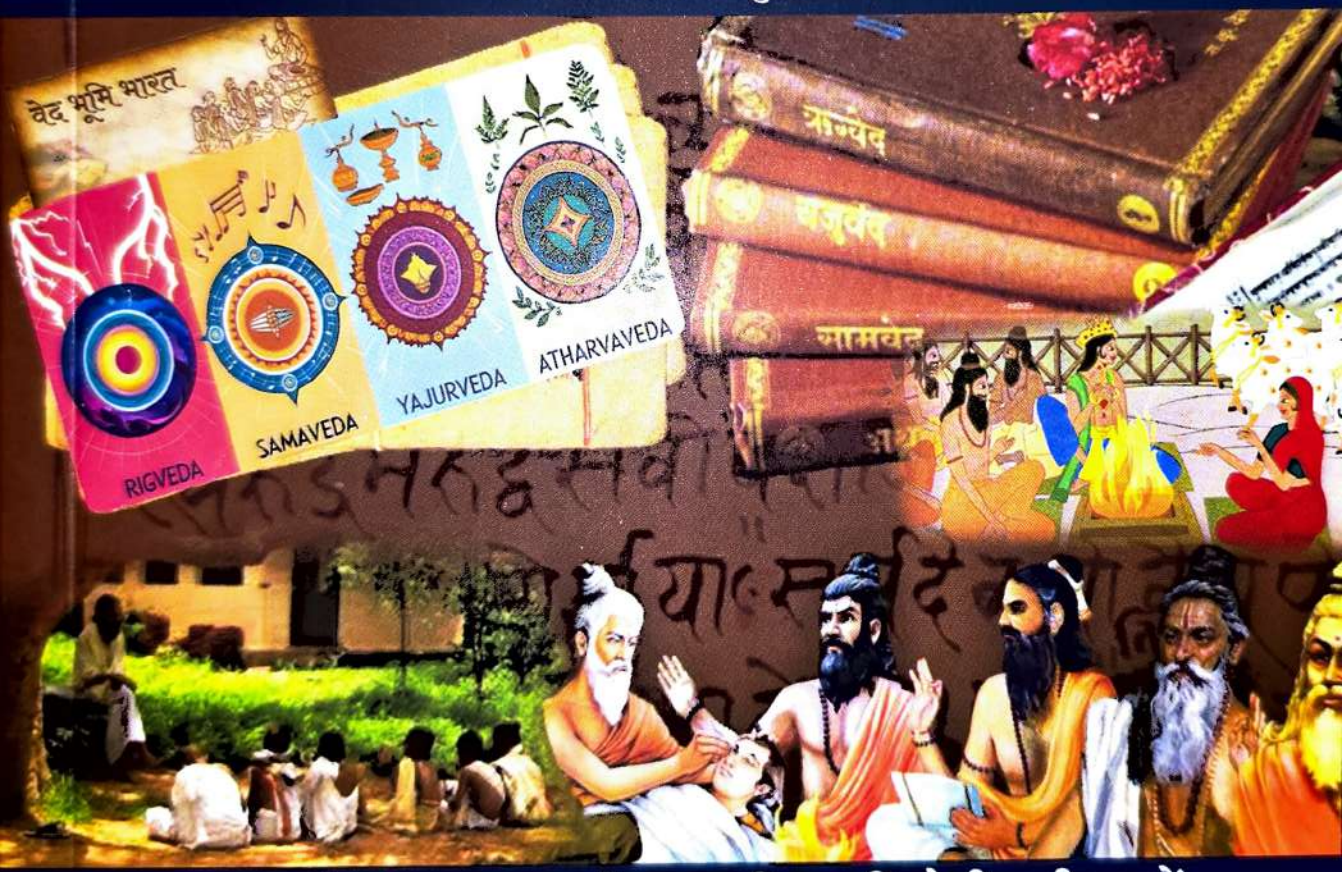

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251
E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg
http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

गुरुकुल और वैदिक परंपरा

Bharat BoudhIKS

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वत्तापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक / ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : **गुरुकुल और वैदिक परंपरा**

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, डॉ. शोभिता सिंघल

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-72-7

मूल्य : 210/-

प्रकाशक:

किताबवाले

नई दिल्ली-110002

सहयोग:

विद्या भारती

उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:

जी.के. फाईन आर्ट प्रेस

पटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश

प्रिय मित्रों,



यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला,** इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

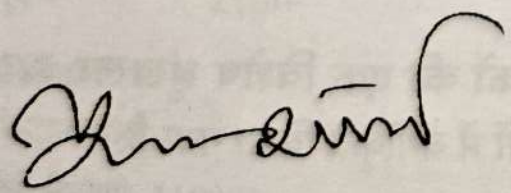

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

प्रस्तावना	9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1. परिचय	**13**
2. चार वेद	**15**
2.1 ऋग्वेद	16
2.2 यजुर्वेद	16
2.3 सामवेद	17
2.4 अथर्ववेद	17
3. वेदों में संदेश	**18**
4. वेदांग	**20**
4.1 वेदांगों के छह अंग	20
4.2 वेदांगों का महत्व	22
5. वैदिक जीवन	**23**
5.1 जीवन को उत्साही और जीवंत बनाना	23
5.2 संतुलित जीवन के लिए प्राथमिकताएँ	24
5.3 स्थिर जीवन पर जोर	24
5.4 अग्नि की प्राथमिकता	25
5.5 ऋत, सत्य और धर्म द्वारा मार्गदर्शित जीवन	25
6. प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली	**26**
6.1 चौंसठ कलाएँ	34
6.2 प्राचीन भारतीय शिक्षा में समावेशिता	34
6.3 शिक्षा में स्त्रियों की भागीदारी	35
6.4 धर्मपाल जी की 'ब्यूटीफुल ट्री' और ऐतिहासिक आँकड़े	37
7. प्राचीन भारत के शिक्षा केंद्र और विश्वविद्यालय	**38**
गुरुकुल परंपरा और प्रमुख आश्रम	39
गुरु एवं आचार्य का महत्त्व	40
8. उपसंहार	**43**
9. निष्कर्ष	**44**
सुझावात्मक पठनीय सामग्री	45
बहुविकल्पीय प्रश्न	47
उत्तर दर्शिका	71

Whatever may be the discoveries of the scientific mind, none can dispute the eternal truths propounded by the Upanishads.

Source: Indian Antiquary-by Paul Deussen

On the tree of wisdom there is no fairer flower than the Upanishads, and no finer fruit than the Vedanta philosophy.

Source: History of Philosophy by Paul Deussen

Paul Deussen



German Indologist and professor of philosophy at the University of Kiel. During his younger days he was a student and devotee of the German Philosopher, Arthur Schopenhauer, and became the first editor of the journal, Schopenhauer Yearbook. He had a marked admiration for Hinduism and Vedas, and even Sanskritised his name to Deva-Sena. Thus, he is considered as one of the great scholars to propagate the universal wisdom of the Upanishads and Vedic literature in European countries.

I do not hesitate to pronounce the Gita a performance of great originality, of sublimity of conception, reasoning and diction almost unequalled; and a single exception, amongst all the known religions of mankind.

Source: Indian horizons, Indize Council for Cultural Relations

******

The writers of the Indian philosophies will survive, when the British dominion in India shall long have ceased to exist, and when the sources which it yielded of wealth and power are lost to remembrances.

Source: Universal message of the Bhagavad Gita by Swami Ranganathananda

Lord Warren Hastings



First Governor General of British India, he was deeply inspired by Indian literature. He wrote the preface to the first English translation of the Bhagavad Gita by Charles Wilkins (1785); extensively supported Sir William Jones in the foundation of the Asiatic Society in Calcutta.

प्रस्तावना



वेद हिंदू धर्म के सबसे प्राचीन और पूजनीय ग्रंथ हैं, जो भारतीय आध्यात्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक परंपराओं की आधारशिला हैं। प्राचीन ज्ञान में निहित ये पवित्र ग्रंथ जीवन को सार्थक और सामंजस्यपूर्ण बनाने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, जहाँ भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पहलुओं का समावेश होता है। वेदों में निहित गहन ज्ञान केवल धार्मिक विश्वासों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ब्रह्मांड विज्ञान, नैतिकता, अनुष्ठानों, भाषा विज्ञान, संगीत और शासन जैसे विषयों को भी समाहित करता है।

इस पुस्तक का उद्देश्य वेदों का व्यापक परिचय प्रदान करना, उनके महत्व को उजागर करना और आधुनिक युग में उनकी प्रासंगिकता को समझाना है। वेदों पर बहुत कुछ लिखा गया है, लेकिन आधुनिक शोध प्रायः उनके भाषायी और ऐतिहासिक पहलुओं पर केंद्रित रहता है, जिससे उनके आध्यात्मिक और दार्शनिक गहराई की उपेक्षा हो जाती है। यह ग्रंथ इस अंतर को पाटने का प्रयास करता है, जिससे वेदों को पारंपरिक और विद्वत्तापूर्ण दोनों दृष्टिकोणों से समझा जा सके और उनका संपूर्ण रूप से मूल्यांकन किया जा सके। यह पुस्तक वेदों की उत्पत्ति, उनके चार वर्गों – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद – तथा मानव ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उनके योगदान की पड़ताल करती है। साथ ही, इसमें वेदांगों की सहायक शाखाओं की भी चर्चा की गई है, जो वेदों के सही संरक्षण, व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए विकसित की गई थीं। ध्वनिविज्ञान, व्याकरण, अनुष्ठान, ज्योतिष और अन्य विषयों की महत्ता को समझकर, यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार वेदों की परंपरा को सदियों से सूक्ष्मता और सटीकता के साथ संरक्षित रखा गया है। अपने विद्वत्तापूर्ण और धार्मिक महत्व से परे, वेदों में निहित ज्ञान कालातीत है और आधुनिक युग में भी प्रासंगिक बना हुआ है। वे समस्त जीवन की परस्पर जुड़ाव की भावना, सत्य (सत्य), ब्रह्मांडीय व्यवस्था (ऋत) और धर्म (धार्मिक कर्तव्य) के पालन पर बल देते हैं। उनके शिक्षण संतुलित जीवन जीने की वकालत करते हैं – एक ऐसा जीवन जो सांसारिक सफलता और आध्यात्मिक ज्ञान दोनों को समाहित करता है। आज के

जटिल विश्व में, वेदों में प्राप्त अंतर्दृष्टियाँ एक प्रकाशस्तंभ के समान कार्य करती हैं, जो व्यक्ति को ईमानदारी, जागरूकता और उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने में सहायता करती हैं।

यह ग्रंथ विद्वानों, विद्यार्थियों, आध्यात्मिक साधकों और उन सभी के लिए है जो वेदों की गहराई में उतरना चाहते हैं। चाहे कोई इन ग्रंथों को ऐतिहासिक, भाषायी या दार्शनिक दृष्टि से देखे, उनके अध्ययन से बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक वेदों के प्रति एक गहरी प्रशंसा उत्पन्न करेगी और उनके विशाल और गहन शिक्षाओं के प्रति और अधिक अन्वेषण के लिए प्रेरित करेगी।

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

गुरुकुल और वैदिक परंपरा



1. परिचय

"वेद" शब्द संस्कृत धातु "विद" से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है "जानना।" यह पाँच भाषाई धातुओं से उत्पन्न हो सकता है, जिनमें से प्रत्येक क्रिया के रूप में "अस्तित्व में होना," "जानना," "भेद करना," "प्राप्त करना" और "प्रकाशित करना" का संकेत देता है। वेद एक व्यापक ज्ञान का समूह है जिसमें आध्यात्मिक सिद्धांत, नियम और अभ्यास शामिल हैं, जो एक संतुष्ट और आनंदमय जीवन जीने के उद्देश्य से होते हैं। यह उपदेश प्राचीन ऋषियों को उनकी गहरी साधना के माध्यम से प्राप्त हुआ था। हिन्दू धर्म में, वेदों को सबसे पवित्र ग्रंथ माना जाता है और इनके पास धर्मशास्त्रों में सर्वोच्च अधिकार है।

वेद न केवल हिन्दू धर्म के लिए मौलिक हैं, बल्कि इन्हें भारतीय संस्कृति के विकास के लिए भी महत्वपूर्ण माना गया है। भारतीय दृष्टिकोण से, वेद देवताओं की कविता हैं, शाश्वत और अपरिवर्तनीय। वेदों की सटीक तिथि का निर्धारण एक विवादास्पद विषय रहा है, जिसमें कई आधुनिक विद्वान इसे सामान्य युग से कई सहस्राब्दियों पूर्व का मानते हैं।

वेद अन्य प्रकार के ज्ञान से अलग हैं। सामान्यतः ज्ञान को व्यक्तियों से जोड़ा जाता है, लेकिन वेदों का संकलन, जिसे अपौरुषेय (अर्थात् "मानव रहित उत्पत्ति") कहा जाता है, दिव्य रूप से प्रकट हुआ माना जाता है। वेदों के मंत्रों का लेखन ऋषियों द्वारा नहीं किया गया था, बल्कि इन्हें उन्होंने अपनी गहरी ध्यान की स्थिति में "खोजा" था। अतः ऋषि इन्हें रचनाकारों की बजाय "दृष्टा" के रूप में देखे जाते हैं।

वेदों को मौखिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित किया गया है, जिसने इनका पीढ़ी दर पीढ़ी प्रक्षिप्तन सुनिश्चित किया है। इस परंपरा को श्रुति कहा जाता है, जिसका अर्थ है "जो सुना गया है।" वेदों के उपदेश सीधे गुरु से शिष्य को एक स्थापित प्रणाली के माध्यम से दिए गए हैं। यह पद्धति सहस्राब्दियों से कायम रही है, जिसका श्रेय वेदांगों में

से एक शिखा को जाता है। इस प्रणाली ने वेदों के शुद्ध संरक्षण में सहायता की है, जबकि शास्त्रीय पांडुलिपियाँ समय के साथ क्षय हो सकती थीं। इस अद्वितीय संरक्षण पद्धति के कारण, वेदों को यूनेस्को द्वारा सांस्कृतिक धरोहर के रूप में पहचाना गया है, जिसे संरक्षण की आवश्यकता है।

ऋषियों ने वेदों की रचनाओं में अस्तित्व के अंतिम लक्ष्य के रूप में आत्म-ज्ञान पर बल दिया। उन्होंने सिखाया कि सीमाओं को पार करके व्यक्ति शाश्वत सत्य को समझने के द्वारा आनंद का अनुभव कर सकता है। वेदों के उपदेश यह सुझाव देते हैं कि जीवन की शुरुआत बाहरी दुनिया से जुड़कर, सकारात्मक योगदान देकर और आराम से जीने से करनी चाहिए, जो कर्मकांड (वेदों का वह खंड जो अनुष्ठानों और कर्मों से संबंधित है) का मुख्य उद्देश्य है। इस खंड में बाहरी दुनिया के साथ मानसिक शुद्धता बनाए रखने पर बल दिया गया है, विशेष रूप से यज्ञ (बलि अनुष्ठान) के अभ्यास के माध्यम से, जो वैदिक जीवन का केंद्रीय अंग था। जैसे-जैसे जीवन में प्रगति होती है, ध्यान और ध्यान की आवश्यकता बढ़ती है। इसका समाधान उपासना-कांड में किया गया है, जो एक केंद्रित मानसिक स्थिति विकसित करने की तकनीकों को प्रदान करता है। उपासना का अर्थ है "पास बैठना," यह एक मानसिक अनुशासन है जहाँ एक व्यक्ति ध्यान के वस्तु को स्वयं के साथ जोड़ता है। व्यवस्थित ध्यान के द्वारा व्यक्ति मन को शांत कर सकता है, एकाग्रता को तेज कर सकता है और मानसिक स्पष्टता प्राप्त कर सकता है। ये अभ्यास आधुनिक युग में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, जहां ये व्यक्तियों को पेशेवर और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में मदद करते हैं। एक अनुशासित मस्तिष्क जीवन के बाद के चरणों में आवश्यक है।

ज्ञान-कांड, वेदों का एक अन्य खंड है, जो गहरी आत्म-पूछताछ और मानव मस्तिष्क की संभावनाओं की जांच करता है। यह खंड व्यक्तियों को स्वयं के वास्तविक स्वभाव का पता लगाने के लिए प्रेरित करता है, जो आत्म-ज्ञान की ओर ले जाता है। वेदों के महत्व के बावजूद, इन पर अंग्रेजी में सीमित शोध किया गया है, विशेष रूप से भारत में। आधुनिक अंग्रेजी-भाषा के वेद संबंधी शोध में अक्सर पश्चिमी व्याख्याओं को प्राथमिकता दी जाती है, जो पारंपरिक और सांस्कृतिक संदर्भों को पूरी तरह से समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये अध्ययन सामान्यतः बौद्धिक और भाषाई पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि वेदों के जीवन्त अभ्यासों और सांस्कृतिक महत्व की अनदेखी करते हैं। इसके अतिरिक्त, पश्चिमी शोध में अक्सर आर्य आक्रमण सिद्धांत को शामिल किया जाता है, जो वेदों के अध्ययन के लिए दृष्टिकोण को प्रभावित कर सकता है। वेदों के अध्ययन में

इन कारकों के प्रति जागरूक रहना महत्वपूर्ण है ताकि उनके प्रामाणिक संदर्भ को संरक्षित किया जा सके।

2. चार वेद

भारतीय परंपरा में वेदों को ब्रह्मांडीय ज्ञान का मुख्य स्रोत मानते हुए इन्हें ईश्वर का निःश्वास माना गया है। "**यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्**" के अनुसार, वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मांडीय चेतना से हुई है। वेद सार्वभौमिक उत्कृष्टता के प्रतीक हैं और इन्हें देश, काल, या परिस्थिति के आधार पर सीमित करना असंभव है। हालांकि, उनका प्रणयन और अनुशीलन विशेष रूप से भारत के भौगोलिक क्षेत्र में हुआ। इसी कारण भारत को "ज्ञान के अन्वेषण में सदैव निमग्न रहने वाला देश" कहा गया है, जैसा कि विष्णु पुराण में उल्लेख है: "***वर्ष तद् भारखें नाम भारती तत्र सन्ततिः***।"

प्रारंभ में वेदों को तीन के रूप में माना जाता था और इन्हें संयुक्त रूप से त्रयी विद्या कहा जाता था। इन प्रारंभिक ग्रंथों को उनके विषय के आधार पर अलग किया गया था, जिसमें ऋग्वेद मुख्य रूप से स्तुति गीतों का संग्रह था और यजुर्वेद में यज्ञ के सूत्र थे। समय के साथ एक समूह का जन्म हुआ जिसे सामवेद कहा जाता है, जो यज्ञों के दौरान या सोम पौधों के रस को निकालते समय स्तुति गीत गाता था। बाद में, अथर्ववेद को चौथा वेद मान्यता प्राप्त हुई, जिसमें वेदों से संबंधित प्राचीन मंत्रों के साथ-साथ अन्य मंत्र भी थे जो स्पष्ट रूप से बाद के काल के थे, उनके संरचना, भाषा और विषय के आधार पर।



यद्यपि वेद सहस्राब्दियों से अस्तित्व में हैं, इनका वर्तमान रूप में संगठन कृष्ण-द्वैपायन व्यास द्वारा किया गया था। व्यास ने वेदों को चार खंडों में विभाजित किया: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। उन्होंने इस ज्ञान को संरक्षित करने के लिए इन विभाजन को अपने चार प्रमुख शिष्यों को सौंपा। इन शिष्यों को भविष्य की पीढ़ियों में इन वेदों का प्रचार करने का कार्य सौंपा गया। पैल ने ऋग्वेद, जैमिनि ने सामवेद, सुमंतु ने अथर्ववेद और वैशम्पायन ने यजुर्वेद का कार्य संभाला।

2.1 ऋग्वेद

ऋग्वेद को चारों वेदों में सबसे पुराना और सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है, जो भारतीय धार्मिक साहित्य की नींव है। यह वेद का सबसे बड़ा भाग है और संस्कृत कविता के पहले उदाहरणों का संग्रह है। प्राचीन भारतीय समाज में धार्मिक और दार्शनिक विकास के लिए मुख्य स्रोत होने के नाते, ऋग्वेद भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति और साहित्य को समझने के लिए आवश्यक है। यजमान (यज्ञ करने वाला पुजारी) ऋग्वेद के मंत्रों का उपयोग देवताओं की स्तुति करने के लिए करता है।

ऋग्वेद के स्तोत्र हमेशा यज्ञ से जुड़े देवता को समर्पित नहीं होते; बल्कि ये प्राचीन ऋषियों के आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों का विस्तृत संकलन होते हैं। इसका एक प्रमुख उदाहरण प्रसिद्ध गायत्री मंत्र है, जो ऋग्वेद में पाया जाता है, जो देवी सावित्री को समर्पित है। ऋग्वेद में ब्रह्मांडविज्ञान, सृष्टि के उत्पत्ति पर विचार, हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋग. 10.121) और पुरुष सूक्त (ऋग. 10.90) जैसे कई विषयों पर विस्तार से विचार किया गया है। ऋग्वेद **"विविधता में एकता"** के विचार को प्रोत्साहित करता है, जिसे **"एकं सत विप्रा बहुधा वदन्ति"** (ऋग. 1.164.46) में व्यक्त किया गया है, जिसका अर्थ है "सच एक है, लेकिन ज्ञानी लोग इसे विभिन्न रूपों में व्यक्त करते हैं।" यह दार्शनिक दृष्टिकोण बाद की वेदांत साहित्य में गहरी छाप छोड़ता है।

2.2 यजुर्वेद

यजुर्वेद मुख्य रूप से उन अनुष्ठानों और बलियों (यज्ञ) पर ध्यान केंद्रित करता है जो वैदिक पूजा का केंद्रीय अंग हैं। यह यज शब्द से उत्पन्न होता है, जिसका अर्थ है "बलि अर्पित करना," यजुर्वेद में उन मंत्रों का संग्रह है जो अनुष्ठानों के दौरान प्रयोग किए जाते हैं। जबकि ऋग्वेद मुख्य रूप से स्तुति गीतों से बना है, यजुर्वेद मुख्य रूप से गद्य सूत्रों का

संग्रह है, जिनमें से कुछ ऋग्वेद से लिए गए हैं। यजुस (यज्ञ मंत्रों) का उपयोग पुजारी द्वारा किया जाता है।

यजुर्वेद आद्वार्य पुजारी के लिए एक मार्गदर्शिका के रूप में कार्य करता है, जो यज्ञ जैसे अनुष्ठानों के प्रदर्शन के लिए निर्देश प्रदान करता है, जैसे यज्ञ वेदी की तैयारी और पवित्र अग्नि में आहुति देना, जबकि उपयुक्त मंत्रों का उच्चारण किया जाता है। यद्यपि इसका मुख्य ध्यान बलियों पर है, यजुर्वेद अन्य विषयों पर भी प्रकाश डालता है, जैसे योगिक अभ्यास, मानव शारीरिक रचना, खगोलशास्त्र और गणित।

यजुर्वेद की दो मुख्य शाखाएँ हैं: कृष्ण (काली) और शुक्ल (सफेद) रूप। कृष्ण यजुर्वेद पुराना है और इसे बाद में दो मुख्य स्कूलों में विभाजित किया गया: एक वैशम्पायन द्वारा सिखाया गया और दूसरा याज्ञवल्क्य द्वारा। याज्ञवल्क्य ने शुक्ल यजुर्वेद को व्यवस्थित किया, जिसमें कुछ नए सामग्री और अभ्यास प्रस्तुत किए गए।

2.3 सामवेद

सामवेद नाम संस्कृत धातु "सम" से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है शांत करना या शांति देना। यह ऋग्वेद के मंत्रों को संगीत में सेट करने का संकेत देता है, और सामवेद के मंत्रों को "साम" के रूप में जाना जाता है। सामवेद इसलिए संगीत से जुड़ा हुआ है, और इसके मंत्रों को विशेष रूप से अनुष्ठानों के दौरान गाया जाता है, जब बलियों के बाद देवताओं को शांत किया जाता है।

सामवेद तीन शाखाओं में बाँटा गया है: कौथुम, रणायन, और जैमिनीय। प्राचीन ग्रंथों जैसे पतंजलि महाभाष्य और भगवद गीता में उल्लेख किया गया है कि सामवेद में कभी 1,000 शाखाएँ थीं, जो प्रत्येक गीत गाने के विभिन्न स्कूलों का प्रतिनिधित्व करती थीं। आज, केवल 1,549 साम मंत्र बची हैं, जिन्हें दो भागों में बाँटा गया है: पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। इनमें से अधिकांश मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। सामवेद ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, और इसके गीत शास्त्रीय परंपराओं में सात संगीत रागों के समान हैं।

2.4 अथर्ववेद

अथर्ववेद का नाम "अथर्वन" से लिया गया है, जो स्वास्थ्य, चिकित्सा और ज्ञान से संबंधित एक प्रमुख व्यक्ति था। अन्य वेदों से अलग, अथर्ववेद बाद में पहचाना गया, और इसमें अधिक व्यावहारिक और रोजमर्रा के ज्ञान, विशेष रूप से चिकित्सा, जादू, और घरेलू अनुष्ठानों से संबंधित ज्ञान है। इसे पहले तीन वेदों का पूरक माना जाता है।

अथर्ववेद में कई मंत्र हैं जो स्वास्थ्य और कल्याण को प्राप्त करने के लिए उपयोग किए जाते हैं, और इसका प्रमुख (पुजारी) अनुष्ठानों के सही तरीके से संपादन की सुनिश्चितता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ब्राह्मण यज्ञों की देखरेख करने और उनकी प्रभावशीलता बनाए रखने के लिए आवश्यक समायोजन करने का जिम्मेदार होता है। अथर्ववेद में ऋग्वेद के श्लोक भी शामिल हैं, और इसके कई मंत्रों की संरचना ऋग्वेद की तरह होती है। अथर्ववेद को चार मुख्य भागों, या कांडों में विभाजित किया गया है, जिनमें 20 अध्याय होते हैं। इसमें काव्यात्मक और गद्यात्मक मंत्रों का मिश्रण है, जिसमें कुल 736 सूक्त और 6,077 मंत्र शामिल हैं। इसके नौ शाखाओं में से केवल दो शाखाएँ—पिप्पलाद और सौणक—अभी तक अस्तित्व में हैं, जिनमें सौणक शाखा सबसे पूर्ण मानी जाती है। अथर्ववेद की अधिकांश सामग्री पूर्ववर्ती ऋग्वेद से ली गई है, विशेष रूप से 20वें कांड में।

3. वेदों में संदेश

वेद सनातन धर्म का आधार हैं और भारतीय जीवन के सभी पहलुओं के लिए अंतिम मार्गदर्शक माने जाते हैं, जो ज्ञान का विशाल भंडार प्रस्तुत करते हैं। वेदों की सामग्री विभिन्न विषयों पर विस्तृत है, जिनमें मुख्य रूप से देवताओं (देवताओं) को संतुष्ट करने के लिए अनुष्ठानों का पालन करना शामिल है। हालांकि, वे अन्य विविध विषयों में भी प्रवेश करते हैं, जैसे ब्रह्मांडीय अटकलें, मानव और प्रकृति के बीच जटिल संबंध, खगोलीय घटनाओं के अवलोकन से प्राप्त खगोलशास्त्रीय ज्ञान, और यहां तक कि व्यक्तिगत मामलों जैसे विवाह, स्वास्थ्य, और कल्याण। इसके अलावा, वेद जीवन के उद्देश्य के बारे में गहरे प्रश्नों को भी संबोधित करते हैं और इन अस्तित्वगत विषयों का अध्ययन करने के विभिन्न तरीकों का अन्वेषण करते हैं।

वैदिक ग्रंथों का एक प्रमुख पहलू उनकी दुनिया को समझने का दृष्टिकोण है। वेद सभी जीवों को समृद्धि और शांति के लिए अपनी प्रार्थनाओं में समाहित करते हैं, जो अस्तित्व के समग्र दृष्टिकोण को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, अथर्ववेद में शांति-सूक्त न केवल मनुष्यों के लिए बल्कि पशुओं, दोनों दो-पैर वाले और चार-पैर वाले प्राणियों के लिए भी शांति और समृद्धि की प्रार्थना करता है। ये प्रार्थनाएँ सभी क्षेत्रों—पृथ्वी, अंतरिक्ष, और उनके बीच के अंतरिक्ष तक फैली होती हैं—जो वैदिक लोगों के विश्वदृष्टिकोण की समावेशी दृष्टि को व्यक्त करती हैं। उनके आह्वान की व्यापकता और समावेशिता सभी जीवन के आपसी संबंधों के प्रति गहरे सम्मान को दर्शाती है।

वेद एकता और साझा उद्देश्य के महत्व पर जोर देते हैं। सफलता पाने के लिए, हृदय और मस्तिष्क की सामंजस्य से एक सामूहिक समझ का जन्म होना चाहिए। इस अवधारणा को अथर्ववेद के मंत्रों में उदाहरणित किया गया है। एक ऐसा मंत्र "हम सभी एकमत हो जाएं और एक सामान्य मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करें," सामूहिक ध्यान और सामंजस्य का समर्थन करता है। एक अन्य मंत्र प्रशासन में एकता की बात करता है, "राजा के मंत्रिमंडल के सभी सदस्य एक ही आवाज़ और सोच रखते हों ताकि राजा विशिष्ट विद्वानों की सलाह से लाभान्वित हो सके" (अथर्ववेद 7.12)। यह समुदाय के कल्याण के लिए सहमति और सहयोग के मूल्य को उजागर करता है।

अथर्ववेद अन्य वेदों से कुछ विशिष्ट लक्षणों के कारण अलग है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में पाए जाने वाले अधिक सारगर्भित और दार्शनिक सामग्री के विपरीत, अथर्ववेद व्यावहारिक, रोज़मर्रा के मुद्दों पर अधिक जोर देता है। यह भौतिक मामलों पर विस्तृत रूप से चर्चा करता है, जैसे बीमारियों का इलाज करना, जीवन को बढ़ाना, इच्छाओं की पूर्ति, भवन निर्माण, वाणिज्य, राज्य, शिल्प, तप और देवताओं को संतुष्ट करने के लिए अनुष्ठान। यह वेद न केवल आध्यात्मिक बल्कि जीवन के भौतिक पहलुओं को भी संबोधित करता है, जो संसार के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के लिए एक व्यापक मार्गदर्शिका प्रदान करता है।

अथर्ववेद का एक अद्वितीय पहलू यह है कि यह भौतिक क्षेत्र के बाहर की दुनिया का अन्वेषण करता है। यह भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक दुनियाओं के आपसी संबंध को स्वीकार करता है। कुछ विद्वान अनुमान करते हैं कि यह वेद, अपनी उन्नत साहित्यिक शैली और व्यापक विषयों के साथ, वैदिक संहिताओं में बाद में जोड़ा गया हो सकता है। स्वास्थ्य, व्यापार और राज्य, शिल्प जैसे विषयों पर इसके विचार और इसकी अत्यधिक विकसित भाषाई शैली, इसे अन्य तीन वेदों से अलग करता है।

अथर्ववेद को विभिन्न वैचारिक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, जो इसके व्यापक दायरे को दर्शाती हैं। इनमें से कुछ श्रेणियाँ, जैसे उपचार, सुरक्षा, और सामाजिक भलाई, दैनिक जीवन में सीधे लागू होती हैं, जबकि अन्य उच्च दार्शनिक अवधारणाओं पर चर्चा करती हैं जो बाद के ग्रंथों जैसे उपनिषदों में पाए गए विचारों की भविष्यवाणी करती हैं। इस प्रकार, अथर्ववेद व्यावहारिक ज्ञान और गहरे दार्शनिक दृष्टिकोण का एक अद्वितीय संयोजन प्रस्तुत करता है, जो वैदिक परंपरा का अविभाज्य हिस्सा बनाता है।

4. वेदांग

(संस्कृत: वेदांग) छह सहायक विधाएँ हैं जिन्हें वेदों को संरक्षित, समझने और प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विकसित किया गया था, जो हिंदू धर्म के सबसे पुराने पवित्र ग्रंथ हैं। "वेदांग" शब्द का अर्थ है "वेदों के अंग," यह दर्शाता है कि इन विधाओं को वेदों के लिए आवश्यक माना जाता है, जैसे शरीर के लिए अंग होते हैं। ये छह विधाएँ सुनिश्चित करती हैं कि वैदिक ग्रंथों को सही तरीके से संप्रेषित, व्याख्यायित और धार्मिक प्रथाओं में लागू किया जाए। वेद, जो मूल रूप से एक विशेष प्रकार की संस्कृत में रचित थे, समय के साथ लोगों के लिए समझने में कठिन हो गए थे क्योंकि भाषा और समाज में बदलाव आए थे। इसलिए, वेदांगों का उदय हुआ ताकि वैदिक ज्ञान की सही उच्चारण, व्याख्या और आवेदन में सहायता मिल सके।

4.1 वेदांगों के छह अंग

4.1.1 शिक्षा (ध्वनिविज्ञान)

- **उद्देश्य:** शिक्षा वैदिक ग्रंथों के उच्चारण और ध्वनिविज्ञान के विज्ञान पर ध्यान केंद्रित करती है, ताकि वेदों का सही उच्चारण सुनिश्चित किया जा सके।
- **महत्व:** वेद मुख्य रूप से मौखिक रूप से संप्रेषित किए जाते थे, और शब्दों का सही उच्चारण उनके शक्ति और अर्थ को संरक्षित करने के लिए महत्वपूर्ण था। गलत उच्चारण से मंत्रों का अर्थ या प्रभाव बदल सकता था।
- **मुख्य पहलू:**
  - » **उच्चारण:** वैदिक ग्रंथों में अक्सर विशेष उच्चारण होते हैं, जिन्हें संरक्षित किया जाना चाहिए।
  - » **सही उच्चारण:** प्रत्येक स्वर और व्यंजन के उच्चारण की सटीकता सुनिश्चित करता है।
  - » **स्वर और लय:** वैदिक मंत्रों के सही समझ और प्रभाव के लिए स्वर और लय भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4.1.2. छंद

- **उद्देश्य:** छंद वैदिक मंत्रों की मीट्रिकल संरचना पर ध्यान केंद्रित करता है, जो निश्चित लयात्मक पैटर्न में रचित होते हैं।

- **महत्व:** वैदिक ग्रंथ मीटर में रचित होते हैं, और इन मीटर्स का सही उच्चारण अनिवार्य है।
- **मुख्य पहलू:**
  - » **मीटर के प्रकार:** विभिन्न वैदिक ग्रंथों में विभिन्न मीटर होते हैं, जिनमें प्रत्येक में विशिष्ट मात्रा में वर्ण और एक विशेष पैटर्न होता है।

4.1.3. व्याकरण (व्याकरण)

- **उद्देश्य:** व्याकरण वैदिक भाषा के व्याकरण के नियमों का अध्ययन है, जो सामान्य संस्कृत से थोड़ा अलग होता है।
- **महत्व:** वैदिक संस्कृत की जटिल संरचना को समझना आवश्यक है, ताकि वैदिक ग्रंथों की सही व्याख्या की जा सके।
- **मुख्य पहलू:**
  - » **वाक्य संरचना:** यह मंत्रों के गहरे अर्थ को समझने में मदद करता है क्योंकि कुछ शब्द व्याकरणिक नियमों के आधार पर अपने अर्थ बदल सकते हैं।

4.1.4 निरुक्त (व्युत्पत्ति)

- **उद्देश्य:** निरुक्त शब्दों के अर्थ, उत्पत्ति और मूल का अध्ययन करता है।
- **महत्व:** कई शब्दों के अर्थ अस्पष्ट होते हैं, और निरुक्त उनके मूल को खोजकर इन शब्दों को समझने की कुंजी प्रदान करता है।
- **मुख्य पहलू:**
  - » **शब्दों की उत्पत्ति:** शब्दों के मूल और व्युत्पत्ति का पता लगाना उनके अर्थ को स्पष्ट करता है।

4.1.5. कल्प (अनुष्ठान और विधियाँ)

- **उद्देश्य:** कल्प वेदों में वर्णित अनुष्ठानों, समारोहों और धार्मिक प्रथाओं का अध्ययन करता है।
- **महत्व:** वेद केवल दार्शनिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि इनमें विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों और समारोहों के लिए विस्तृत निर्देश भी हैं।

- **मुख्य पहलू:**
  - » **अनुष्ठान नियम:** इसमें बताए गए हैं कि अनुष्ठान कैसे किए जाएं ताकि उनका प्रभावकारी रूप से पालन किया जा सके।

4.1.6. ज्योतिष (ज्योतिषशास्त्र)

- **उद्देश्य:** ज्योतिष आकाशीय पिंडों और उनके पृथ्वी पर घटनाओं पर प्रभाव का अध्ययन करता है।
- **महत्व:** वैदिक परंपरा में, अनुष्ठानों और समारोहों के समय का चयन महत्वपूर्ण माना जाता था।
- **मुख्य पहलू:**
  - » **खगोल गणना:** यह समय और तिथियों पर आकाशीय पिंडों की स्थिति की गणना करता है।

4.2 वेदांगों का महत्व

- **वेदों का संरक्षण:** वेदांगों का मुख्य उद्देश्य वेदों के पाठ की प्रामाणिकता को संरक्षित करना है। वेद मौखिक रूप से प्रचारित किए गए थे, और समय के साथ, यदि उचित संरक्षण तकनीकों का पालन नहीं किया गया होता, तो उनकी यथार्थता खो सकती थी। वेदांगों को वेदों के उच्चारण, संरचना और अर्थ को सुरक्षित रखने के लिए विकसित किया गया था, जिससे उनके भीतर निहित ज्ञान अपरिवर्तित बना रहे।
- **सही पाठन और व्याख्या:** वैदिक भाषा के ध्वनिविज्ञान, व्याकरण और अर्थ को समझना वेदों के सही पाठन के लिए आवश्यक है। गलत पाठन से मंत्रों का अर्थ बदल सकता है या उनका उद्देश्य नकारा जा सकता है। वेदांग यह सुनिश्चित करते हैं कि पवित्र ग्रंथों का पाठ और समझ सही तरीके से हो।
- **धार्मिक और अनुष्ठानिक महत्व:** कई वैदिक ग्रंथ अनुष्ठानिक प्रथाओं से जुड़े होते हैं। इन अनुष्ठानों को सही तरीके से और उचित समय पर करने के लिए व्याकरण, खगोलशास्त्र और उचित प्रक्रिया (जैसा कि वेदांगों में वर्णित है) का ज्ञान आवश्यक है। वेदों को दिव्य शक्ति का स्रोत माना गया था, और यदि उनका गलत व्याख्या या दुरुपयोग किया जाता, तो अनुष्ठान अप्रभावी हो सकते थे।

- **पवित्र परंपराओं का संरक्षण:** वेदांग पवित्र वैदिक परंपराओं, जैसे अनुष्ठान, ज्योतिषशास्त्र और भाषा के सही उपयोग, का संरक्षण करने में मदद करते हैं, जो वैदिक दृष्टिकोण में गहरे रूप से आपस में जुड़े होते हैं। इन विद्यानों ने वैदिक प्रथाओं को समझने और दैनिक जीवन में उन्हें लागू करने के लिए एक संरचित दृष्टिकोण प्रदान किया।

5. वैदिक जीवन

वैदिक जीवन दर्शन और आध्यात्मिक विचारों से गहरे रूप से जुड़ा हुआ था जो वेदों में निहित हैं, जो न केवल धार्मिक ग्रंथ हैं, बल्कि प्रारंभिक इंडो-आर्यन सभ्यता के जीवन, समाज, प्रकृति और ब्रह्मांड पर विचारों का अभिलेख भी हैं। जबकि वैदिक जीवन के कई पहलू मंत्रों और अनुष्ठानों की रहस्यमय और प्रतीकात्मक भाषा में लिपटे हुए हैं, कुछ विशिष्ट विशेषताएँ वैदिक ग्रंथों से निकाली जा सकती हैं। ये विशेषताएँ भौतिक प्रयास, आध्यात्मिक विकास, पर्यावरणीय स्थिरता और व्यापक विश्वदृष्टि को समाहित करती हैं।

5.1 जीवन को उत्साही और जीवंत बनाना

- वैदिक लोगों के बारे में एक सामान्य मिथक है कि वे तपस्वी थे, भौतिक सुखों का त्याग करते हुए कठोर जीवन जीते थे। हालांकि, यह दृष्टिकोण वैदिक साहित्य में पाए गए साक्ष्यों से पूरी तरह मेल नहीं खाता। इसके बजाय, वेदों के कर्मकांड (अनुष्ठानिक भाग) में जो मंत्र, प्रार्थनाएँ और स्तुतियाँ हैं, वे दर्शाती हैं कि वैदिक लोग एक जीवंत, पूर्ण और ऊर्जावान जीवन जीने की आकांक्षा रखते थे। वे न केवल आध्यात्मिक विकास, बल्कि भौतिक समृद्धि, स्वास्थ्य और आराम की भी कामना करते थे।
- **समृद्धि के लिए प्रार्थनाएँ:** वैदिक स्तुतियाँ समृद्धि, संपत्ति और आरामदायक जीवन की मांग करती हैं। वे दैनिक जीवन में सफलता चाहते थे, चाहे वह कृषि, व्यापार या पारिवारिक मामलों में हो, साथ ही स्वास्थ्य और दीर्घायु में भी।
- **जीवन की शक्ति की चाहत:** जीवन को उत्साह और उर्जा के साथ जीने पर जोर दिया गया था, क्योंकि लोग आध्यात्मिक प्रथाओं और भौतिक उपलब्धियों दोनों को महत्व देते थे।

- इस प्रकार, वैदिक दृष्टिकोण भौतिक संसार का त्याग करने का नहीं, बल्कि उसे पूरी तरह से अपनाने का था, जबकि आध्यात्मिक अखंडता बनाए रखी जाती थी।

5.2 संतुलित जीवन के लिए प्राथमिकताएँ

वैदिक दर्शन में भौतिक और आध्यात्मिक प्रयासों के बीच संतुलन पर जोर दिया गया। यह संतुलन विशेष रूप से वैदिक जीवन के सिद्धांत में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो कर्मकांड (अनुष्ठानिक क्रियाएँ) और ज्ञानकांड (ज्ञान और बुद्धि की प्राप्ति) दोनों को शामिल करता है। वैदिक लोग समझते थे कि संपत्ति, समृद्धि और सामाजिक भलाई जीवन के लिए आवश्यक हैं, लेकिन यह आध्यात्मिक विकास की कीमत पर नहीं होनी चाहिए।

- **भौतिक समृद्धि:** धन की प्राप्ति को एक संतुलित जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता था, क्योंकि इससे व्यक्तियों और परिवारों को आराम से जीने का अवसर मिलता था और वे अनुष्ठानों और दान के माध्यम से बड़े समुदाय में योगदान कर सकते थे।
- **आध्यात्मिक प्रयास:** साथ ही, वैदिक ग्रंथों में सत्य (सत्य), धर्म (धर्म) और ज्ञान (ज्ञान) जैसे गुणों के विकास का महत्व बताया गया था। आध्यात्मिक लक्ष्य ध्यान, अध्ययन और अनुष्ठानों (यज्ञ) के माध्यम से प्राप्त किए जाते थे, जिसका उद्देश्य मोक्ष (मुक्ति) और ब्रह्मांडीय नियमों के साथ संतुलन था।
- वैदिक जीवन में यह संतुलित दृष्टिकोण व्यक्तियों को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास को बढ़ावा देने वाले समग्र जीवन की ओर प्रेरित करता था।

5.3 स्थिर जीवन पर जोर

वैदिक समाज स्वाभाविक रूप से व्यावहारिक और पर्यावरण के प्रति जागरूक था। वैदिक लोग प्राकृतिक दुनिया के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के महत्व को समझते थे और सभी जीवित प्राणियों के आपसी संबंध को पहचानते थे। ऋग्वेद और अन्य वैदिक ग्रंथों में कई स्तुतियाँ प्रकृति के प्रति सम्मान व्यक्त करती हैं, जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि और आकाश, साथ ही वनस्पति और जीव-जंतु।

- **प्रकृति के साथ सामंजस्य:** वैदिक स्तुतियाँ अक्सर प्रकृति की प्रचुरता का उल्लेख करती हैं और मनुष्यों को इसके साथ सामंजस्यपूर्ण तरीके से रहने के

लिए प्रेरित करती हैं। उदाहरण के लिए, नदियाँ और पहाड़ पवित्र माने जाते हैं और मानव अस्तित्व के अभिन्न हिस्से के रूप में वर्णित हैं।

- **परस्पर निर्भरता:** वैदिक दृष्टिकोण में परस्पर निर्भरता की एक मजबूत भावना थी, जिसमें मनुष्य, जानवर, पौधे और आकाशीय निकाय सभी ब्रह्मांड के संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।
- **स्थिरता:** स्थिर जीवन का विचार यज्ञ (यज्ञ) के सिद्धांत से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है, जो पर्यावरण और समुदाय को पुनः देने के विचार को बढ़ावा देता है। यहां पर संतुलन और पारस्परिकता पर ध्यान केंद्रित किया गया था — देना और प्राप्त करना इस प्रकार से कि सभी का कल्याण बना रहे।

5.4 अग्नि की प्राथमिकता

अग्नि, अग्नि देवता, वैदिक जीवन में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। उन्हें न केवल आग का देवता माना गया, बल्कि वह अन्य देवताओं को अर्पित सभी बलियों का माध्यम भी हैं। यज्ञ (बलि) का अनुष्ठान देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करने और ब्रह्मांडीय आदेश बनाए रखने के लिए किया जाता था। अग्नि वैदिक देवताओं के प्रमुख देवता हैं। यह शारीरिक और आध्यात्मिक जीवन में अग्नि के महत्व को दर्शाता है।

- **यज्ञ को एक पवित्र कृत्य के रूप में देखा गया:** यज्ञ देवताओं का सम्मान करने, उनके आशीर्वाद प्राप्त करने और जीवन की समृद्धि के लिए कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए किया जाता था। यह अनुष्ठान केवल भौतिक वस्तुओं के अर्पण से परे था; यह ब्रह्मांडीय व्यवस्था (ऋत) बनाए रखने और मनुष्य और दिव्य के बीच संबंधों को बनाए रखने का एक तरीका था।
- **जीवनदायी अग्नि :** अग्नि को समृद्धि और स्वास्थ्य देने वाला भी माना जाता था। ऋग्वेद के पहले मंत्र में अग्नि का स्वागत किया गया है, जिसे "पुजारी" और "धन देने वाला" कहा गया है, जो वैदिक लोगों के जीवन में अनुष्ठान और बलि के महत्व को दर्शाता है।

5.5 ऋत, सत्य और धर्म द्वारा मार्गदर्शित जीवन

वैदिक दृष्टिकोण में ब्रह्मांडीय व्यवस्था और आदेश के अनुसार जीवन जीने पर जोर दिया गया था। यह ऋत, सत्य और धर्म के सिद्धांतों में व्यक्त हुआ, जो व्यक्तिगत आचरण और

सामाजिक व्यवस्था के मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में कार्य करते थे।

- **ऋत (ब्रह्मांडीय आदेश):** ऋत ब्रह्मांड में संतुलन और आदेश का मौलिक सिद्धांत है। यह प्राकृतिक कानून है जो सभी अस्तित्व को नियंत्रित करता है और यह सुनिश्चित करता है कि ब्रह्मांड सामंजस्यपूर्ण रूप से काम करता है। ऋत को अक्सर लय या प्रकृति के नियमों से तुलना की जाती है – यह आकाशीय शरीरों की गति से लेकर मनुष्यों के कार्यों तक को समाहित करता है। ऋग्वेद के अनुसार, देवता स्वयं ऋत का पालन करते हैं और ब्रह्मांड का संतुलन बनाए रखते हैं।
- **सत्य (सत्य):** सत्य वैदिक जीवन का एक मौलिक नैतिक सिद्धांत है। वैदिक दृष्टिकोण में सत्य ब्रह्मांड का आधार है, और मनुष्यों को अपनी वाणी और कार्यों में सत्य के अनुसार जीवन जीने का प्रयास करना चाहिए।
- **धर्म (धर्म या कर्तव्य):** धर्म से तात्पर्य उन नैतिक कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से है जो व्यक्तियों के समाज में होते हैं, जो ब्रह्मांडीय आदेश के अनुरूप होते हैं। धर्म व्यक्तिगत आचरण से लेकर सामाजिक नियमों और कानूनों तक को नियंत्रित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्ति समाज के स्थिरता और समृद्धि में योगदान करता है और ऋत के साथ सामंजस्य बनाए रखता है।
- ऋत, सत्य और धर्म का पालन करके, वैदिक लोग मानते थे कि वे न केवल व्यक्तिगत और सामाजिक समृद्धि को सुनिश्चित कर सकते हैं, बल्कि ब्रह्मांड की समग्र भलाई भी सुनिश्चित कर सकते हैं। ये वैदिक सिद्धांत अच्छे जीवन की धारणा के केंद्र में थे और दैनिक जीवन के हर पहलू में समाहित थे, व्यक्तिगत क्रियाओं से लेकर सामाजिक अनुष्ठानों तक।

6. प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली

'शिक्षा' शब्द 'शिक्ष' धातु से उत्पन्न है, जिसका अर्थ है सीखना। शिक्षा केवल ज्ञानेन्द्रियों और बुद्धि तक सीमित नहीं है; यह आत्मज्ञान और तात्त्विक अनुभूति से परिपूर्ण होती है। आत्मज्ञान ही व्यक्ति को संयमित जीवन अपनाने और जीवन के उदात्त मूल्यों को समझने की प्रेरणा देता है। शिक्षा वह बीज है, जो व्यक्ति में बोधत्व का अंकुरण करता है और उसके 'स्व' को विकसित करता है। वेदों में 'मेधा' को बुद्धि का दिव्य रूप माना गया है

"मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वती ब्रह्मजूतामृर्षिष्ठताम्।"

यह 'मेधा' व्यक्ति को विवेकशील और प्रज्ञावान बनाती है। प्रज्ञा ही मनुष्य को भ्रांतियों से मुक्त कर मौलिक सोच और सह-अस्तित्व की भावना विकसित करने में सक्षम बनाती है।

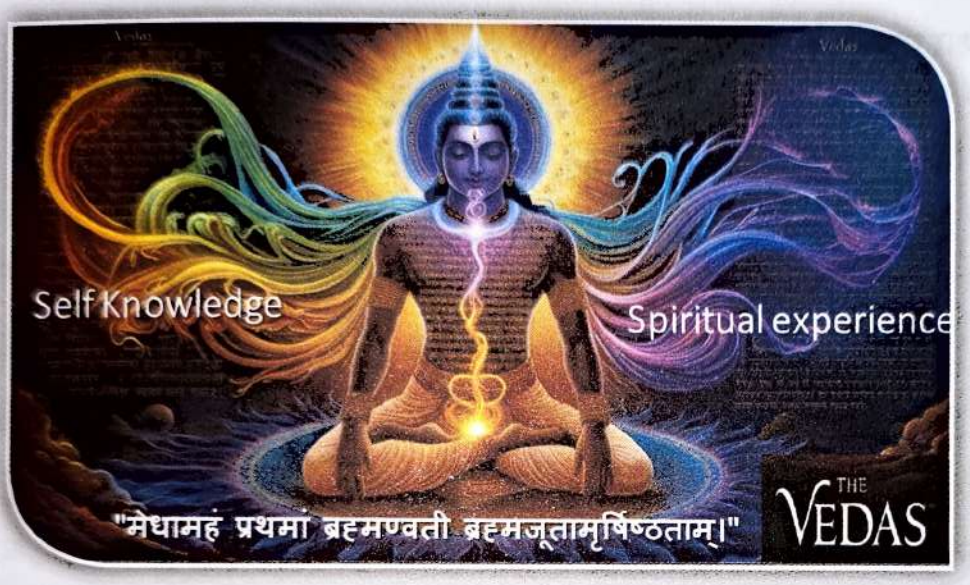

विद्या और अविद्या का संतुलन

ईशावास्य उपनिषद् में विद्या और अविद्या का महत्व बताया गया है:

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।"

अर्थात्, जो विद्या और अविद्या दोनों का ज्ञान रखता है, वह सांसारिक ज्ञान (अविद्या) के माध्यम से भौतिक जीवन का आनंद लेते हुए दिव्यता (विद्या) के द्वारा अमरत्व प्राप्त करता है।

महानता की ओर यात्रा

महर्षि अरविंद के अनुसार, शिक्षा का अंतिम उद्देश्य व्यक्ति को मानव से महामानव बनने की ओर अग्रसर करना है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को दिव्य गुणों को अपनाने और समाज में सच्चरित्रता का प्रसार करने के लिए प्रेरित करती है। ऋग्वेद भी इस विचार का समर्थन करता है–

"हे प्राणी, पहले ईश्वर के निर्देशों को समझ, फिर ज्ञान को आत्मसात् कर दिव्य गुणों को प्राप्त कर।"

इस प्रकार, भारतीय अवधारणा में शिक्षा केवल जीविकोपार्जन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों को प्राप्त करने योग्य

बनाती है। शिक्षा का उद्देश्य आत्मज्ञान और सामाजिक कल्याण के संतुलन को साधना है।

शिक्षा पद्धति के मुख्य तत्व

1. **गुरु-शिष्य परंपरा**: प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य का संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण था। गुरु न केवल ज्ञान का स्रोत था बल्कि चरित्र, अनुशासन, और जीवन मूल्यों का भी मार्गदर्शक था। शिष्य गुरुकुल में रहते हुए गुरु की सेवा और शिक्षण दोनों में संलग्न रहता था।
2. **व्यावहारिक शिक्षा**: पाठ्यक्रम केवल सैद्धांतिक नहीं था, बल्कि व्यावहारिक ज्ञान पर भी जोर दिया जाता था। कृषि, शिल्प, धनुर्विद्या, औषधि विज्ञान, योग, संगीत, और नाटक जैसी विधाओं का भी अध्ययन कराया जाता था।
3. **चरित्र निर्माण**: शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्या अर्जित करना नहीं, बल्कि उच्च नैतिक मूल्यों और चारित्रिक गुणों का विकास करना था। शिष्य को सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम, और परोपकार जैसे गुणों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।
4. **समावेशी दृष्टिकोण**: शिक्षा में सभी जाति और वर्गों के लोगों को समान रूप से भाग लेने का अवसर दिया जाता था। योग्य शिष्य के चयन में उसके नैतिक और बौद्धिक गुणों को प्राथमिकता दी जाती थी।
5. **प्राकृतिक परिवेश**: गुरुकुल प्रायः शांत और प्राकृतिक वातावरण में स्थित होते थे, जो विद्यार्थियों को एकाग्रता और मानसिक शांति प्रदान करता था।

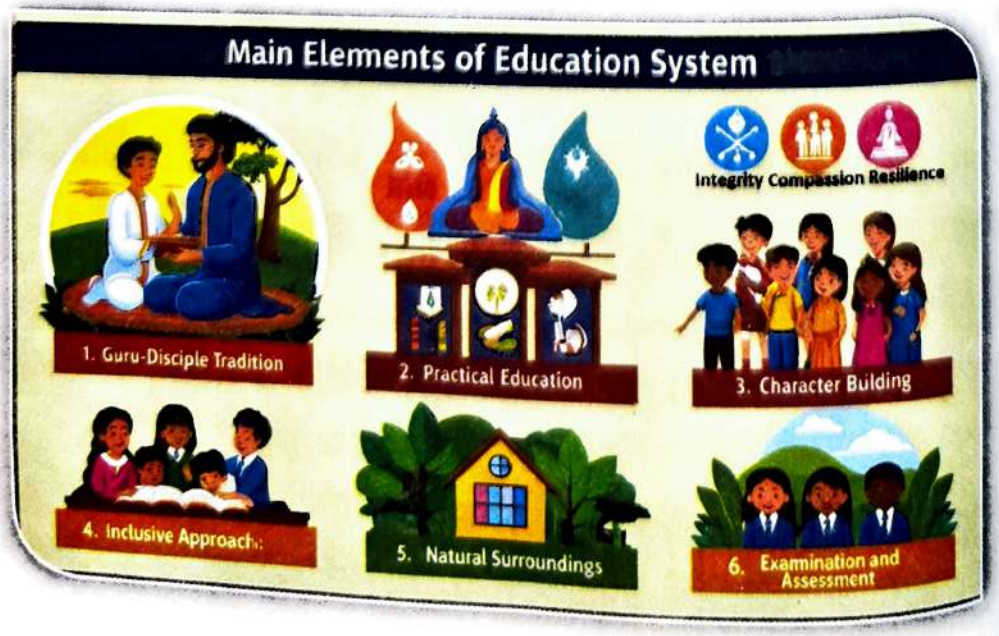

6. **परीक्षा और मूल्यांकन**: शिक्षा के अंत में विद्यार्थी की योग्यता और ज्ञान का मूल्यांकन व्यावहारिक प्रदर्शन और गुरु के अनुभव के आधार पर किया जाता था।

भारतीय शिक्षा पद्धति का अंतिम उद्देश्य मानव को "महामानव" बनाना था। इसका अर्थ था कि वह न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में सच्चरित्रता, ज्ञान, और आत्म-ज्ञान को प्राप्त करे, बल्कि समाज और राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का भी निर्वहन करे। यही कारण है कि प्राचीन भारत में शिक्षा को एक पवित्र साधना माना गया, जिसका लक्ष्य केवल जीविकोपार्जन न होकर जीवन के सभी आयामों में समृद्धि प्राप्त करना था।

प्राचीन शिक्षा का प्रभाव

इस शिक्षा पद्धति ने भारत को सहस्राब्दियों तक विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठित किया। प्राचीन भारतीय विद्वानों और वैज्ञानिकों की उपलब्धियां जैसे पाणिनि का व्याकरण, चरक और सुश्रुत के चिकित्सा ग्रंथ, आर्यभट्ट का गणित और खगोलशास्त्र, विश्व के लिए आज भी प्रासंगिक और प्रेरणादायक हैं।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति केवल ज्ञान की प्राप्ति तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसका उद्देश्य संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना था। यह शिक्षा व्यक्ति को आत्मज्ञान, लोकहित, और सच्चरित्रता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्रेरित करती थी। आज की शिक्षा प्रणाली में भी इन मूल्यों को समाहित कर एक सशक्त और नैतिक समाज की रचना संभव है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों के समग्र विकास और उच्चतम मानवीय गुणों के विकास को प्राथमिकता दी जाती थी। इस शिक्षा का उद्देश्य केवल भौतिक प्रगति नहीं था, बल्कि इसमें आध्यात्मिक उन्नति को भी समान रूप से महत्व दिया गया था। छात्रों को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक स्तर पर निखारने के लिए गुरुकुलों और शिक्षा पद्धति को विशेष रूप से डिज़ाइन किया गया था।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली ने देश को सांस्कृतिक और भौतिक रूप से समृद्ध बनाया। इसके प्रभाव से भारत ने दर्शन, विज्ञान, कला, गणित और तकनीकी क्षेत्रों में दुनिया का मार्गदर्शन किया।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति केवल ज्ञान के अर्जन तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह जीवन जीने की कला और मानवता के उच्चतम मूल्यों को आत्मसात करने का

माध्यम थी। आज भी इस शिक्षा प्रणाली की अनेक विशेषताएँ आधुनिक शिक्षा के लिए प्रेरणा स्रोत बन सकती हैं। यह जानकारी प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के व्यापक और समग्र दृष्टिकोण को समझाने का एक अच्छा उदाहरण है। इसमें न केवल गुरुकुल शिक्षा की संरचना, बल्कि उसमें पढ़ाए जाने वाले विषयों, अनुशासन के नियमों, और विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास पर भी प्रकाश डाला गया है।

शिक्षा पद्धति के उद्देश्य

प्राचीन भारत में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को उसकी पूर्ण क्षमता तक विकसित करना था। इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:

1. **लौकिक उद्देश्य**: भौतिक और सामाजिक विकास के लिए शिक्षा प्रदान करना।
2. **पारलौकिक उद्देश्य**: आत्मा की उन्नति और जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की प्राप्ति।

गुरुकुल प्रणाली

गुरुकुलों में छात्र अपने गुरु के सानिध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा में शारीरिक अनुशासन, नैतिकता और ब्रह्मचर्य पर विशेष जोर दिया जाता था। प्रवेश के लिए छात्रों को नैतिक और बौद्धिक स्तर पर तैयार रहना होता था।

- **उपनयन और प्रारंभिक शिक्षा:** उपनयन संस्कार को शिक्षा जीवन का आरंभिक चरण माना गया, जिसमें गुरु और शिष्य के बीच का भावनात्मक व आध्यात्मिक संबंध स्थापित होता था। इसमें आत्मीयता के साथ-साथ अनुशासन और श्रद्धा पर जोर दिया गया।
- **शिक्षा का समय और विधि:** गुरुकुलों में औपचारिक शिक्षा का आरंभ श्रावणी पूर्णिमा से किया जाता था, जो चंद्रमा के प्रभाव और सकारात्मक ऊर्जा से प्रेरित था। छात्रों की धारणा शक्ति को उत्तेजित करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया।

गुरुकुल के नियम और अनुशासन

1. आन्तरिक अनुशासन

- अन्तःकरण चतुष्टय: मन, बुद्धि, अहंकार, और चित्त को संयमित करना।

- पञ्चकोषीय विधा: शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक, और आध्यात्मिक विकास।

2. ब्रह्मचर्य: संयम और साधना के माध्यम से आत्म-शुद्धि और ज्ञान प्राप्ति।

गुरुकुलों में पाठ्यक्रम

गुरुकुलों में छात्रों को वेद, उपनिषद, विज्ञान, गणित, दर्शन, नक्षत्र विद्या, औषधि-विज्ञान, कला और शिल्पकला की शिक्षा दी जाती थी।

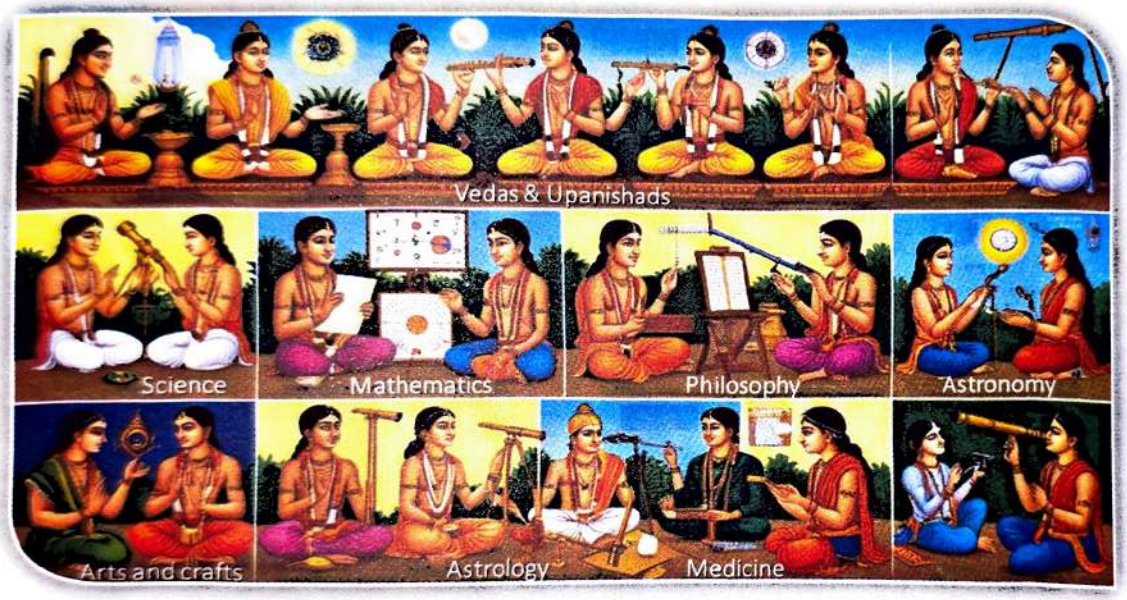

शिक्षा के सत्र और समय

शिक्षा का प्रारंभ श्रावणी पूर्णिमा से होता था। यह दिन चंद्रमा की पूर्ण कला और सकारात्मक ऊर्जा का प्रतीक माना जाता था।

आचार्य और परिषद् की भूमिका

गुरुकुल स्वतंत्र शिक्षण संस्थाएं थीं, जहाँ शिक्षकों (आचार्यों) का प्रमुख स्थान था। शिक्षण पद्धति का निर्धारण आचार्य स्वयं करते थे। इसके अलावा, "परिषद्" नामक संस्था के माध्यम से छात्रों, अभिभावकों और विद्वानों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाता था।

शिक्षा के सामाजिक और वैज्ञानिक आधार

- शिक्षा में लोक भावना और विश्व बंधुत्व का समावेश था।
- शिक्षण प्रक्रिया वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित थी। जैसे, छात्रों को पूर्वाभिमुख बिठाने से उनकी तर्क और रचनात्मक क्षमता को बढ़ावा मिलता था।

- गुरु पूर्णिमा के दिन से शिक्षा प्रारंभ करने का वैज्ञानिक आधार चंद्रमा और श्रवण नक्षत्र की स्थिति से जुड़ा था।

आंतरिक अनुशासन

- **अंत:करण चतुष्टय:** मन, बुद्धि, अहंकार, और चित्त के संयम द्वारा आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण।
- **पंचकोषीय विधा:** अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनंदमय कोष के संतुलन से छात्रों का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास।
- **ब्रह्मचर्य और एकाग्रता:** संयम और ध्यान की मदद से चित्त की स्थिरता व ज्ञानार्जन को बढ़ावा देना।
- **संस्कार सिद्धांत:** नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का पोषण।
- **बाह्य अनुशासन:** शारीरिक कार्य, गुरुपूजन, भिक्षाटन, प्रातःकालीन कर्म, और यज्ञ जैसे कार्य छात्रों को व्यावहारिक जीवन का अनुभव कराते थे।
- **पाठ्यक्रम:** चारों वेद, वेदांग, उपनिषद, न्याय, मीमांसा, पुराण, गणित, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, कला, संगीत, स्थापत्य, कृषि, पशु पालन, और अन्य तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया गया।
- **विशेष विभाग:** प्रत्येक विषय के अध्ययन और प्रशिक्षण के लिए विशेष विभागों का प्रावधान किया गया था। उदाहरण के लिए:
  * **धन्वंतरि स्थान:** चिकित्सा विज्ञान
  * **विश्वकर्मा स्थान:** स्थापत्य और शिल्पकला
  * **इंद्र स्थान:** राजनीति और अर्थनीति
  * **विवस्वत स्थान:** खगोल विज्ञान

यह विवरण दिखाता है कि प्राचीन शिक्षा प्रणाली कितनी समग्र और व्यवस्थित थी। इसमें व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का विकास सुनिश्चित किया गया था, जिससे विद्यार्थी न केवल ज्ञान प्राप्त करते थे बल्कि व्यावहारिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी संपन्न होते थे।

Dhanvantari place

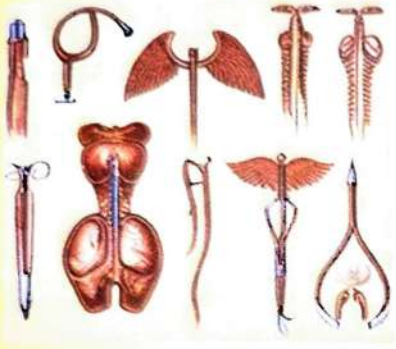



Vishwakarma Place



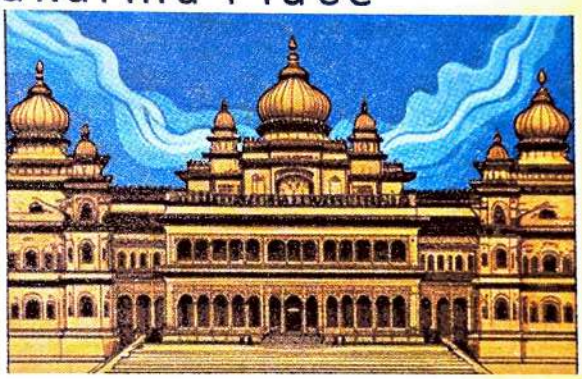

Indra place

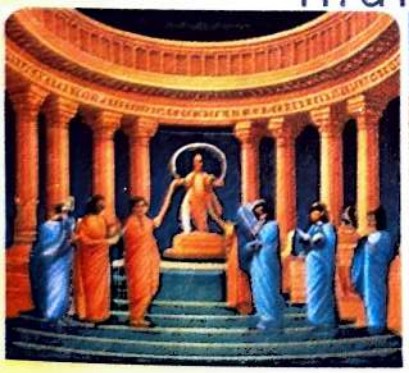



The place of the Sun

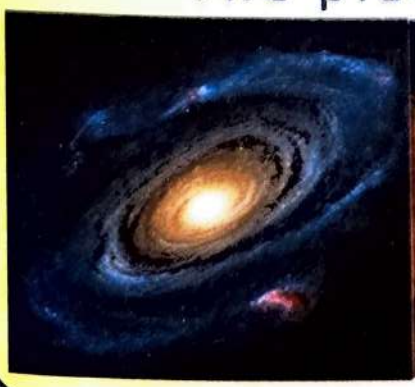



6.1 चौंसठ कलाएँ

भारतीय प्राचीन संस्कृति और शिक्षा में चौदह विद्याओं और चौसठ कलाओं का उल्लेख विशेष स्थान रखता है। शुक्राचार्य के नीतिसार में इनका विवरण मिलता है। आचार्यों के अनुसार कला वह है, जिसे एक मूक व्यक्ति भी कर सके। ये कलाएँ मानव जीवन के हर पहलू को परिपूर्ण बनाती थीं।

चौंसठ कलाओं का विवरण

क्र	कला का नाम	क्र	कला का नाम	क्र	कला का नाम	क्र	कला का नाम
1	नृत्य	17	नमक निर्माण	33	रस्सी बनाना	49	पेड़ पर चढ़ना
2	वाद्यकला	18	शस्त्र संचालन	34	वस्त्र निर्माण	50	सेवा कार्य
3	वस्त्र-अलंकरण	19	मल्लयुद्ध	35	रत्न शास्त्र	51	टोकरी बनाना
4	आभासी कला	20	निपीड़न कला	36	धातु शुद्धता	52	काँच निर्माण
5	शय्या सज्जा	21	अस्त्र संचालन	37	नकली आभूषण	53	सींचाई
6	द्यूतकला	22	युद्ध संचालन	38	आभूषण कला	54	जल निकासी
7	सुरत कला	23	देव पूजा	39	चमड़ा उद्योग	55	शस्त्र निर्माण
8	मद्य निर्माण	24	सारथ्य	40	चमड़ा उपयोग	56	पशु साज
9	शल्य चिकित्सा	25	शिल्प कला	41	दुग्ध उत्पादन	57	शिशु पालन
10	पाककला	26	चित्रकला	42	सिलाई	58	खिलौने बनाना
11	कृषि	27	निर्माण कार्य	43	तैराकी	59	पान संरक्षण
12	धातु विज्ञान	28	घड़ी निर्माण	44	बर्तन माँजना	60	दण्ड प्रक्रिया
13	मिठास निर्माण	29	वाद्य निर्माण	45	कपड़े धोना	61	लिपि लेखन
14	मिश्रणकला	30	रंगाई	46	हजामत बनाना	62	तेज़ कार्य
15	धातु पृथक्करण	31	भाप उपयोग	47	तेल निकालना	63	दीर्घकालीन कार्य
16	रसायन शास्त्र	32	यात्रा साधन	48	हल चलाना	64	पानी की देखरेख

6.2 प्राचीन भारतीय शिक्षा में समावेशिता

भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। यह शिक्षा केवल ब्राह्मणों तक सीमित नहीं थी, बल्कि समाज के सभी वर्गों को इसकी प्राप्ति का

अधिकार था। अनेक ऐतिहासिक और साहित्यिक साक्ष्य इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा व्यापक, समावेशी और सभी वर्णों के लिए सुलभ थी। वाजसनेयी संहिता में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि वैदिक शिक्षा के अधिकारी चारों वर्ण– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। इसमें कहा गया है:

"यथेमां वाचङ्कल्याणीमा ववानि जनेभ्यः।
ब्रह्म-राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।" (यजुर्वेद 2/26)

यह उद्धरण दर्शाता है कि शिक्षा का अधिकार सभी वर्गों के लिए समान रूप से निर्धारित था। इसके अलावा, ऐतिहासिक संदर्भ में महिदास ऐतरेय और ऋषि रेक्वा जैसे विद्वान, जो शूद्र वर्ण से संबंधित थे, वैदिक साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

जातिगत विभाजन के परे विद्वता के उदाहरण

प्राचीन भारतीय इतिहास में कई ऐसे व्यक्तित्व सामने आते हैं, जिन्होंने जातिगत सीमाओं को तोड़ते हुए विद्वता प्राप्त की।

- **वेदव्यास**: महाभारत के रचयिता वेदव्यास की माता एक मत्स्य समुदाय की महिला थीं।
- **ब्रह्मवादिनी घोषा और काक्षीवान**: ये वैदिक ऋषि और उनकी पुत्री घोषा शूद्र वर्ण से संबंधित थे, परंतु उन्होंने वेदों में योगदान दिया।
- **जीवक**: चिकित्सा शास्त्र के विख्यात विद्वान जीवक, एक दासी के पुत्र थे, लेकिन उनकी ख्याति पूरे भारत में थी।

शूद्रों के लिए उपनयन और यज्ञ के अधिकार

संस्कार गणपति जैसे ग्रंथों में शूद्रों के लिए उपनयन संस्कार का विधान मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में शूद्र को यज्ञकर्ता के रूप में वर्णित किया गया है। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा और धर्म से जुड़े अधिकार केवल किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं थे।

6.3 शिक्षा में स्त्रियों की भागीदारी

प्राचीन भारत में स्त्रियों और पुरुषों के गुरुकुल भले ही अलग होते थे, लेकिन स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में समान रूप से भागीदार थीं। वे ब्रह्मवादिनी और ऋषिका बनने के साथ-साथ विद्या के उच्चतम स्तर को प्राप्त करती थीं।

उदाहरण:

- गार्गी वाचक्नवी का शास्त्रार्थ, ऋषिका घोषा, सूर्या, वाक, मैत्रेयी का याज्ञवल्क्य से संवाद।
- ये विद्वान स्त्रियाँ न केवल धार्मिक, बल्कि वैज्ञानिक और दार्शनिक विषयों में भी पारंगत थीं।



मध्यकालीन भारत में शिक्षा का स्वरूप

मध्यकाल में भारतीय शिक्षा प्रणाली के स्वरूप में परिवर्तन आया। यद्यपि विद्वता की परंपरा जारी रही, परंतु सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण शिक्षा पर जातिगत प्रतिबंध कठोर होते गए। इसके बावजूद इस काल में भी लोकविद्या और परंपरागत ज्ञान का आदान-प्रदान जारी रहा। उदाहरणस्वरूप:

- **भोज प्रबंध का प्रसंग**: राजा भोज के काल में एक बुनकर ने अपनी विद्वता और काव्य कौशल से स्वयं को सिद्ध किया। बुनकर ने अपनी प्रतिभा से यह दिखाया कि शिक्षा केवल विशेष वर्ग तक सीमित नहीं है।
- **लकड़हारे का उदाहरण**: एक बार राजा भोज के व्याकरण की त्रुटि पर लकड़हारे ने निर्भीकता से व्याकरण संबंधी शुद्धता पर टिप्पणी की, जो यह दर्शाता है कि सामान्य वर्गों के लोगों में भी विद्वता का स्तर उच्च था।

उपनिवेशवाद और शिक्षा के स्तर में गिरावट

अंग्रेजों के भारत आने के बाद परंपरागत शिक्षा प्रणाली को नष्ट कर दिया गया। मैकॉले

की शिक्षा नीति ने केवल अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी संस्कृति को प्राथमिकता दी। इससे शिक्षा के समावेशी स्वरूप को गहरी क्षति पहुँची।

प्राचीन भारत में शिक्षा समावेशी और सार्वभौमिक थी। हालांकि समय के साथ इसमें भेदभाव बढ़ा, परंतु इसके मूल स्वरूप में समाज के हर वर्ग को ज्ञान प्राप्ति का समान अवसर था। आधुनिक भारत को प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के मूल्यों से प्रेरणा लेते हुए एक ऐसी समावेशी प्रणाली विकसित करनी चाहिए, जो हर व्यक्ति को सशक्त बनाए। शिक्षा केवल विशेष वर्ग का अधिकार न बनकर पूरे समाज का आधार बने।

6.4 धर्मपाल जी की 'ब्यूटीफुल ट्री' और ऐतिहासिक आँकड़े

गाँधीवादी विचारक धर्मपाल जी ने अपनी पुस्तक ***"ब्यूटीफुल ट्री"*** में अँग्रेजी शासन से पूर्व भारत में शिक्षा के समावेशी स्वरूप को प्रमाणित किया है। थॉमस मुनरो द्वारा मद्रास प्रांत में कराए गए सर्वेक्षण के अनुसार:

- गाँव-गाँव में पाठशालाएँ थीं।
- उन पाठशालाओं में 30% शिक्षक दलित समुदाय से थे।
- 60% से अधिक छात्र एवं छात्राएँ पिछड़े वर्ग और शूद्र जातियों से आते थे।

इसी प्रकार अन्य ब्रिटिश अधिकारियों—**जी.एल. फ्रेंडरगाष्ट (1820), विलियम एडम (1838), डॉ. जी. डब्ल्यू. लिटनर (1882)** द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों ने बंगाल, बिहार, बंबई प्रेसिडेंसी और पंजाब में समान स्थिति दर्शाई।

महिलाओं की शिक्षा में योगदान

महिलाओं की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया गया था।

- **रूपमंजरी (हती विद्यालंकर)**: बंगाल के नशीपुर के ब्राह्मण जशोमत राय की धर्मपत्नी थीं। उन्होंने 1805 में बनारस (भदैनी) में महिलाओं के लिए एक विद्यालय (चतुष्पाठी) की स्थापना की।
- **सावित्रीबाई फुले**: सावित्रीबाई फुले ने अपने पति ज्योतिराव फुले और सगुनबाई के सहयोग से 1848 में पुणे के भिडेवाडा में महिलाओं के लिए विद्यालय की स्थापना की। उन्होंने मिशनरी संस्थानों से शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त कर अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत प्रशिक्षित पहली महिला शिक्षिका बनने का गौरव प्राप्त किया।

अँग्रेजों से पहले शिक्षा का व्यापक प्रसार

अँग्रेजी शासन से पहले भारत में शिक्षा की व्यापकता का अनुमान "हाउस ऑफ कॉमन्स" में लॉर्ड मैकाले के बयान से लगाया जा सकता है। उन्होंने स्वीकार किया–

- "इंग्लैंड के 200 विद्यालयों की तुलना में भारत में 2,57,000 पाठशालाएँ थीं, अर्थात् प्रत्येक गाँव में एक स्कूल था।"

भारतीय शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य केवल औपचारिक पाठशाला शिक्षा तक सीमित नहीं था। इसका व्यापक दृष्टिकोण समाज के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित और नैतिक बनाने पर केंद्रित था। इस दिशा में विविध माध्यम अपनाए गए, जो समाज की आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार प्रभावी साबित हुए।

गुरुकुल स्नातक और अनौपचारिक शिक्षण

गुरुकुल प्रणाली से स्नातक हुए विद्यार्थी समाज में उन लोगों को शिक्षित करते थे, जो औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाते थे। यह शिक्षा प्रणाली ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर क्रियाशील थी। अनौपचारिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य केवल साक्षरता तक सीमित न रहकर, जीवन कौशल और नैतिक मूल्यों को भी विकसित करना था।

तीर्थाटन, पर्व, और मेले: लोक शिक्षण के साधन

धार्मिक आयोजनों, तीर्थाटन, पर्व, और मेलों के माध्यम से ज्ञान और नैतिक शिक्षा का प्रसार किया जाता था। कथा-प्रवचन और विद्वानों की गोष्ठियाँ न केवल मनोरंजन का साधन थीं, बल्कि ये समाज को शिक्षित करने के प्रभावी मंच भी थीं। ऐसे आयोजनों में विभिन्न विषयों पर चर्चाएँ होती थीं, जो सभी वर्गों और आयु समूहों के लिए उपयोगी होती थीं।

7. प्राचीन भारत के शिक्षा केंद्र और विश्वविद्यालय

भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा का एक समृद्ध और स्थायी परंपरा रही है। यहाँ के गुरुकुल और आश्रम ज्ञान के महत्वपूर्ण केंद्र थे, जहाँ न केवल शिक्षा, बल्कि संस्कृति और नैतिकता का भी प्रसार हुआ। भारतीय शिक्षा परंपरा में ब्राह्मणों के साथ-साथ अन्य वर्गों और महिलाओं के लिए भी शिक्षा उपलब्ध थी, जो समय के साथ विकसित होती रही।

7.1 गुरुकुल परंपरा और प्रमुख आश्रम

प्राचीन भारत में कई प्रसिद्ध गुरुकुल और आश्रम थे, जहाँ शिक्षा का आयोजन होता था। इन आश्रमों में उच्च कोटि के आचार्य शिक्षा देते थे और उनके शिष्यों की संख्या भी बड़ी होती थी। उदाहरण के लिए:

- **वशिष्ठ मुनि का आश्रम**: सरयू नदी के तट पर स्थित, यह आश्रम एक प्रमुख विद्या केंद्र था।
- **विश्वामित्र का आश्रम**: कौशिकी नदी के तट पर स्थित, यह आश्रम भी शिक्षा का एक बड़ा केंद्र था।
- **महर्षि वाल्मीकि का आश्रम**: तमसा और गंगा नदियों के पास स्थित, यहाँ भी शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ।
- **महर्षि अगस्त्य का आश्रम**: दण्डकारण्य क्षेत्र में स्थित, यहाँ भी ज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ था।

इन आश्रमों में विद्यार्थियों को न केवल वेद, उपनिषद, और शास्त्रों की शिक्षा मिलती थी, बल्कि आचार्य का पारिवारिक संबंध भी शिष्यों के साथ गहरे होते थे। यह संबंध एक परिवार की तरह था, जहाँ गुरु के मार्गदर्शन में शिष्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से परिपूर्ण होते थे।

प्राचीन विश्वविद्यालय और उनका योगदान

गुरुकुलों और आश्रमों के कुछ केंद्र कालांतर में विश्वविद्यालयों के रूप में स्थापित हुए। इनमें से प्रमुख विश्वविद्यालय थे:

- **तक्षशिला विश्वविद्यालय**: यह विश्वविद्यालय गांधार प्रांत में स्थित था और महाभारत काल से प्रसिद्ध था। यहाँ पर चाणक्य, पाणिनि, और चरक जैसे महान आचार्य रहे। यहाँ पर 10,500 विद्यार्थी और लगभग 2,000 आचार्य थे।
- **नालंदा विश्वविद्यालय**: यह विश्वविद्यालय बिहार के नालंदा में स्थित था और पूरे विश्व में प्रसिद्ध था। यहाँ पर बौद्ध और हिन्दू दर्शन, चिकित्सा, गणित और अन्य विषयों पर शिक्षा दी जाती थी।
- **विक्रमशिला विश्वविद्यालय**: यह मगध क्षेत्र में स्थित था और एक महत्वपूर्ण बौद्ध शिक्षा केंद्र के रूप में प्रसिद्ध था।

- **शारदा विश्वविद्यालय**: यह विश्वविद्यालय मध्य एशिया का सबसे बड़ा ज्ञान केंद्र था, जहाँ 14 विषयों पर शिक्षा दी जाती थी। यहाँ से देवनागरी से भिन्न शारदा लिपि का भी विकास हुआ था।

दक्षिण भारत के शिक्षा केंद्र

दक्षिण भारत में भी कई प्रमुख शिक्षा केंद्र थे, जहाँ पर विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इनमें प्रमुख थे:

- **धारा, कांची, एन्नरियम** जैसे केंद्र
- **नागार्जुनकोंडा, मणिखेत** और **वेलग्राम** जैसे शिक्षा स्थल

इन केंद्रों से निकलने वाले विद्वान समूचे भारत में प्रसिद्ध थे और उन्होंने भारतीय संस्कृति और शिक्षा के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली का इतिहास समृद्ध और विविधतापूर्ण रहा है। इन शिक्षा केंद्रों ने न केवल विद्वानों का निर्माण किया, बल्कि समाज के हर वर्ग और जाति को शिक्षा के माध्यम से जोड़ने का कार्य किया। अँग्रेजी शासन से पूर्व भारत में शिक्षा का जो ढाँचा था, वह समावेशी और व्यापक था। आज हमें इन प्राचीन शिक्षा केंद्रों से प्रेरणा लेते हुए एक समावेशी और सशक्त शिक्षा प्रणाली को पुनः विकसित करने की आवश्यकता है, जो सभी वर्गों और समुदायों के लिए समान रूप से उपलब्ध हो।

7.2 गुरु एवं आचार्य का महत्त्व

प्राचीन काल से भारत का अस्तित्व एक विशाल गुरुकुल के रूप में ही विकसित हुआ है। यह वह गुरुकुल था जहाँ गुरु और शिष्य दोनों मिलकर ज्ञान की साधना में तत्पर रहते थे। भारत को समझने के लिए गुरु-तत्त्व को समझना अनिवार्य है, और यदि गुरु-तत्त्व को समझना है तो भारत को समझना पड़ेगा। प्राचीन शिक्षा पद्धति में शिक्षा केंद्रों की भव्यता, आलीशान भवनों और संसाधनों से अधिक महत्वपूर्ण आचार्य की गुणवत्ता और छात्रों के प्रति उनके समर्पण व निष्ठा थे। वास्तव में, शिक्षा केंद्रों से अधिक महत्वपूर्ण शिक्षक ही होते थे, जो मानवता के वास्तविक स्वरूप को आकार देने का कार्य करते थे।

इसी कारण भारत में गुरु को अत्यधिक सम्मान और श्रद्धा प्राप्त थी, जो अन्य किसी भी देश में इतनी गहरी नहीं पाई जाती। संसार के अन्य हिस्सों में योग्य विशेषज्ञ और शिक्षण में दक्ष पेशेवर शिक्षक मिल सकते हैं, लेकिन जो आचार्य केवल अपने आचरण से छात्रों के हृदय में ज्ञान के उज्जवल गुणों को प्रज्वलित कर दें, वे केवल भारतवर्ष में ही

पाए जाते हैं (आचार्यः कस्मात् आचारं ग्राहयति आचिनोत्यर्थान् आचिनोति बुद्धिमिति वा-निरुक्त-1.2.2)।

गुरु के इस दिव्य स्वभाव के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए भारतीय मानस ने उन्हें त्रिदेवों से भी उच्च स्थान, अर्थात् परमब्रह्म के समान माना और उन्हें यही अभ्यर्थना दी–

"गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः,
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।"

गुरु का कार्य केवल शिक्षण तक सीमित नहीं होता था, बल्कि वह अपने शिष्यों को जीवन के प्रत्येक पहलु में मार्गदर्शन प्रदान करते थे। उनके नेतृत्व में छात्र न केवल शास्त्रों में, बल्कि जीवन के मूल्यों और नैतिकताओं में भी प्रगति करते थे। गुरु के बिना जीवन की सच्ची दिशा और उद्देश्य प्राप्त करना असंभव सा लगता है।

गुरु की शिक्षा, उनके आचार, उनके व्यक्तित्व और उनके जीवन के आदर्श, शिष्य के जीवन को समृद्ध और संस्कारित करने में सहायक होते थे। यही कारण था कि भारत में गुरु का स्थान सर्वोच्च था, और उनकी शिक्षा को परम ब्रह्म के समान माना जाता था।

पीढ़ी के सृजन में निरंतर प्रयत्नशील रहना एक सतत प्रक्रिया है। यह एक ऐसा दायित्व है, जिसमें व्यक्तिगत अभिलाषाएँ और आकांक्षाएँ अक्सर गौण हो जाती हैं। भारतीय मनीषियों की यह मान्यता रही है कि जब तक व्यक्ति के अंदर अध्यापन करने की गहरी उत्कंठा और समर्पण नहीं होता, तब तक उसे केवल जीविकोपार्जन के लिए अध्यापक नहीं बनना चाहिए। कालिदास ने इस विचार को 'मालविकाग्निमित्रम्' नामक नाटक में स्पष्ट किया है, जहाँ उन्होंने कहा है कि **"केवल जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति"** (1.15)। वास्तविकता यही है कि एक सच्चा अध्यापक अंतःकरण से समृद्ध होता है, और उसे बाह्य प्रलोभन प्रभावित नहीं करते।

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और वैश्विक परिवेश का निर्माण शिक्षक के इसी दायित्वपूर्ण बोध पर निर्भर करता है। यही कारण है कि वेदों में यह कहा गया है, **"वयं राष्टे जागृयाम पुरोहिताः"** (यजुर्वेद-9/23)।

वास्तव में, सांसारिक क्रियाकलापों के सभी पद भौतिक आकांक्षाओं की प्राप्ति के भाव से प्रभावित होते हैं, जबकि गुरु या आचार्य का यशस्वी पद केवल त्याग और बलिदान के आग्रही को ही प्राप्त हो सकता है। माता-पिता अपने अंशदान से दैहिक संतान को जन्म देते हैं और उसका पालन-पोषण करते हैं, लेकिन गुरु शिष्य को अपने आत्मदान से अमरत्व प्रदान करता है। यही कारण है कि भारत में गुरु को माता-पिता से भी अधिक श्रेष्ठ माना गया है (गुरुर्गरीयान् पितृतो मातृश्च-सुभाषितम्)।

इसलिए प्राचीन काल में शिष्यों को अक्सर "अमृतस्य पुत्र" कहकर संबोधित किया जाता था, क्योंकि गुरु के मार्गदर्शन में शिष्य का जीवन सद्गति की ओर अग्रसर होता था और वह अमरत्व को प्राप्त करता था।

आर्ष शिक्षा के कारण महर्षि दयानन्द का रूपान्तरण एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनका व्यक्तित्व और विचारधारा आर्ष चिन्तन की परंपरा से प्रभावित थे, जो सद्गति और धार्मिकता की ओर ले जाती है। इसी प्रकार, विश्वनाथ दत्त के पुत्र नरेंद्र ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आकर खुद को न केवल धर्म और समाज के लिए समर्पित किया, बल्कि वे विश्व में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार गुरु के मार्गदर्शन से छात्र अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं के बजाय गुरु के लिए ईश्वर से अमरत्व की कामना करते हैं।

ऋग्वेद के दशवें मंडल के 71वें सूक्त में ऋषि वृहस्पतिराङ्गिरस ने आचार्य के कर्तव्यों का निर्धारण करते हुए बताया कि उन्हें ऐसी विधा अपनानी चाहिए जिससे छात्र अपनी क्षमताओं के अनुरूप ज्ञान ग्रहण कर सकें। वे कहते हैं कि आचार्य को न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान, बल्कि क्रियात्मक ज्ञान भी देना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो उनका ज्ञान बिना दूध देने वाली गाय जैसा हो जाएगा। इसलिए, उन्हें अपनी शिक्षण पद्धति में विभिन्न शैलियों को समाहित करना चाहिए, जैसे कि विचारात्मक, वर्णनात्मक, संवादात्मक, कथात्मक, क्रियात्मक, प्रयोगात्मक और रचनात्मक।

वेदों में आचार्य से संयमी होने, वाणी के स्वामी, गुणों के जानकार, चरित्र निर्माता, ज्ञाननिधि, मननशील और दूरदर्शी होने की भी अपेक्षाएँ की गई हैं। उन्हें छात्रों की प्रवृत्तियों, मानसिक झुकाव, स्वभाव, क्षमताओं और पृष्ठभूमि का सूक्ष्मता से अध्ययन करना चाहिए और तभी उन्हें विषयों में प्रवेश करने योग्य बनाना चाहिए। इसके साथ ही, आचार्य में निष्काम प्रतिबद्धता और शिष्यों में अपने ज्ञान का सही तरीके से प्रक्षिप्त करने की क्षमता भी होनी चाहिए।

तैत्तिरीयोपनिषद में आचार्य-शिष्य संबंध को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया गया है। इसमें आचार्य को पूर्वरूप और शिष्य को उसका अनुसर्ता कहा गया है। विद्या दोनों के संबंध को जोड़ने वाली सन्धि है, और प्रवचन इस संबंध का संयोजक है।

इसके अतिरिक्त, छात्रों से यह अपेक्षाएँ भी की गई हैं कि वे अपने सेवा और शुश्रूषा के माध्यम से गुरु के भीतर विद्यमान ज्ञान को प्राप्त करें, जैसे खनित्र से भूमि खोदकर जल निकाला जाता है (यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति। तथा गुरुगतां विद्

शुश्रूषुरधिगच्छति। मनुस्मृति-2/222)। इस प्रकार, गुरु-शिष्य संबंध में शिष्य को गुरु के ज्ञान से शुद्ध होकर उसे आत्मसात करना चाहिए।

8. उपसंहार

प्राचीन युग की तुलना में आधुनिक काल में शिक्षा के प्रचार और प्रसार में तकनीकी दृष्टि से अत्यधिक प्रगति हुई है। शिक्षकों, छात्रों और शिक्षा केन्द्रों की संख्या में भी उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। हालांकि, इस वृद्धि के साथ-साथ शिक्षा के अर्थ में भी बदलाव आया है। आज की शिक्षा का फोकस मुख्य रूप से बाहरी कार्यकुशलता और बौद्धिक विकास पर केंद्रित हो गया है, जबकि आंतरिक बोध की कमी के कारण यह प्रक्रिया एक यांत्रिक, संवेदनहीन और विचारहीन मानवता का निर्माण कर रही है। स्वकेंद्रित विकास की मानसिकता मानवता के आदर्शों को समाप्त कर रही है।

हम आधुनिकता के पश्चिमी प्रभाव में इतने डूब गए हैं कि मातृभाषा के बजाय विदेशी भाषाओं में शिक्षा देने और पश्चिमी मापदंडों के अनुसार अपने शिक्षा संस्थानों को रूपांतरित करने की होड़ में लगे हुए हैं। इसके बावजूद, हमें महर्षि दयानन्द सरस्वती की चेतावनी को याद रखना चाहिए कि जिस देश में मूल वृक्ष न हों, वहां एरंड के झाड़ को भी वृक्ष मान लिया जाता है। यह दर्शाता है कि हमें अपनी भारतीय शिक्षा पद्धतियों और उनके द्वारा स्थापित मानवीय मूल्यों का पुनः मूल्यांकन करना आवश्यक है।

इस संदर्भ में, यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हम आधुनिक शिक्षा केन्द्रों में ऐसे आचार्यों की नियुक्ति करें जो न केवल विषय ज्ञान में प्रवीण हों, बल्कि छात्रों के भीतर बुद्धिमत्ता, भावनात्मकता, सहनशीलता और आध्यात्मिकता के उदात्त गुणों को भी विकसित कर सकें। भारतीय शिक्षा का मूल उद्देश्य सिर्फ विषयगत दक्षता नहीं, बल्कि मानव निर्माण भी था। भारतीय दृष्टिकोण में, शिक्षा का असली मूल्य केवल डिग्री या शैक्षिक दक्षता में नहीं, बल्कि उन गुणों में था, जैसे पराई स्त्री को मां के समान समझना, दूसरों के धन को मिट्टी के समान देखना, और सभी में आत्मवत् भाव का आकलन करना (मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः - हितोपदेश, मित्रलाभ 14)।

इन भारतीय शिक्षा अवधारणाओं को पुनः स्थापित करने का दायित्व हम सभी पर है। इसके लिए भारतीय ज्ञान परंपरा के ज्ञानी आचार्यों के सहयोग से एक उद्देश्यपूर्ण शिक्षा नीति और पाठ्यक्रम का पुनः निर्धारण आवश्यक है, ताकि हम अपने राष्ट्र को आत्मनिर्भरता की ओर ले जा सकें। तभी हम वेद के इस मंत्र के संकल्प को पूर्ण कर सकेंगे:

अग्ने॒ नर्य सुपथा॑ रा॒ये अ॒स्मान् विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि विद्वान्।
यु॒यो॒ध्यस्मज्जु॒हुरा॑णमेवो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ उक्तिं विधेम ॥ (ऋ. 1/189/01)

9. निष्कर्ष

वेद, जो हिंदू दर्शन और आध्यात्मिकता की आधारशिला हैं, ऐसा शाश्वत ज्ञान प्रदान करते हैं जो केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक पहलू में विस्तृत है। इन पवित्र ग्रंथों में आत्म-साक्षात्कार, नैतिक जीवन और ब्रह्मांडीय व्यवस्था से संबंधित गहन शिक्षाएँ समाहित हैं, जो सत्य (सत्य), धर्म (धार्मिक कर्तव्य) और ऋत (सार्वभौमिक संतुलन) की खोज पर बल देती हैं। वेदों को मौखिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित किया गया है, जिससे वे सहस्राब्दियों तक अपनी प्रामाणिकता और प्रासंगिकता बनाए रख सके हैं। अपने आध्यात्मिक महत्व से परे, वेद विज्ञान, भाषा विज्ञान, संगीत और शासन से संबंधित बहुमूल्य अंतर्दृष्टियाँ प्रदान करते हैं, जो उनके सभ्यता पर बहुआयामी प्रभाव को दर्शाती हैं। वे एक संतुलित जीवन की वकालत करते हैं—जहाँ भौतिक समृद्धि और आंतरिक शांति का समन्वय हो। तेजी से बदलते युग में, वेद एक प्रकाशस्तंभ के रूप में कार्य करते हैं, जो व्यक्तियों को ज्ञान, एकता और स्थिरता की ओर प्रेरित करते हैं। वेदों का अध्ययन और समझ न केवल हमें एक प्राचीन विरासत से जोड़ता है, बल्कि हमें आधुनिक जीवन के लिए भी मूल्यवान शिक्षाएँ प्रदान करता है। उनकी शिक्षाएँ एक ऐसे जीवन की प्रेरणा देती हैं जो जागरूक और उद्देश्यपूर्ण हो, जो व्यक्तिगत विकास और सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देता हो। संक्षेप में, वेद एक अनंत ज्ञान-स्रोत के रूप में कार्य करते हैं, जो मानवता को आत्मज्ञान और समरसता की ओर मार्गदर्शित करते हैं।

सुझावात्मक पठनीय सामग्री

1. Radhakrishnan, S. (1953). *The Principal Upanishads*. London: George Allen & Unwin.
2. Macdonell, A. A. (1897). *A Vedic Reader for Students*. Oxford: Clarendon Press.
3. Mishra, R. G. (1973). *The Vedic Literature: Its Origin, Development and Interpretation*. Delhi: Bharatiya Vidya Prakashan.
4. Bose, M. L. (1988). *Educational System of the Ancient Hindus*. Delhi: Northern Book Centre.
5. Mahadevan, B. Bhat, V.R. Nagendra Pawan R.N. (2022), "Introduction to Indian Knowledge System", PHI learning private ltd.
6. Gonda, J. (1975). *Vedic Literature: Saṁhitās and Brāhmaṇas*. Wiesbaden: Otto Harrassowitz.
7. Keith, A. B. (1925). *The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads* (2 Vols.). Cambridge: Harvard University Press.
8. Max Müller, F. (1891). *The Sacred Books of the East* (Vols. I, XV, XXVI, XXVIII, XXXII, XLVI). Oxford: Clarendon Press.
9. Pande, G. C. (1994). *Foundations of Indian Culture*. New Delhi: Motilal Banarsidass.
10. Roth, R. (1852). *Zur Literatur und Geschichte des Veda*. Stuttgart: J. G. Cotta'schen Buchhandlung.
11. Sāyaṇa (14th century). *Ṛgveda Bhāṣya*. Multiple critical editions and translations.
12. Altekar, A. S. (1944). *Education in Ancient India*. Banaras: Nand Kishore & Bros.
13. Radhakrishnan, S. (1929). *Indian Philosophy* (Vols. I & II). London: George Allen & Unwin.
14. OP Pandey (2023), "Bharat Vaibhav", National Book Trust, India.

15. Sharma, R. N. (2006). *History of Education in India*. Delhi: Atlantic Publishers.
16. Bharatiya Vidya Bhavan. (1956). *The Cultural Heritage of India* (Vol. I: The Early Phases). Kolkata: Bhavan's Book University.
17. Kane, P. V. (1930–1962). *History of Dharmaśāstra* (Vols. I–V). Bhandarkar Oriental Research Institute.
18. Basham, A. L. (1954). *The Wonder That Was India*. London: Sidgwick & Jackson.
19. Brockington, J. L. (1998). *The Sacred Thread: Hinduism in Its Continuity and Diversity*. Edinburgh: Edinburgh University Press.
20. Frawley, D. (1994). *The Rig Veda and the History of India*. Delhi: Voice of India.
21. Renou, L. (1955). *Vedic India*. Delhi: Indological Book House (Reprint).
22. Pandey, R. S. (1969). *Meaning and Concept of Ancient Indian Education*. Banaras Hindu University.
23. Ghosh, S. C. (2000). *The History of Education in Ancient India, 3000 B.C. to A.D. 1192*. New Delhi: Munshiram Manoharlal.
24. Mookerji, R. K. (1947). *Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist*. London: Macmillan.
25. Swami Dayananda Saraswati. (1875). *Satyārtha Prakāśa (The Light of Truth)*. Arya Samaj Publications.
26. Patanjali. (c. 2nd century BCE). *Mahābhāṣya*. Translations and commentaries by various scholars.

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. "वेद" शब्द संस्कृत के किस धातु से निकला है ?
   क) विद, जिसका अर्थ है "बोलना"
   ख) विद, जिसका अर्थ है "जानना"
   ग) वद, जिसका अर्थ है "अलग करना"
   घ) वेद, जिसका अर्थ है "ज्ञात करना"

2. वेदों के संदर्भ में "अपौरुषेय" शब्द का क्या अर्थ है?
   क) मानव निर्मित उत्पत्ति
   ख) गैर-मानवीय उत्पत्ति
   ग) ऋषियों द्वारा खोजा गया
   घ) सर्वोच्च अधिकार

3. वेदों के ग्रंथों को संरक्षित करने की विधि क्या कहलाती है?
   क) पांडुलिपि संप्रेषण
   ख) श्रुति
   ग) शिक्षा
   घ) मौखिक परंपरा

4. वेदों को यूनेस्को द्वारा किस रूप में पहचाना गया है?
   क) पवित्र ग्रंथ
   ख) सांस्कृतिक धरोहर
   ग) ऐतिहासिक कलाकृतियाँ
   घ) सार्वभौमिक ज्ञान

5. वेदों का कौन सा खंड जीवन को समृद्ध बनाने के लिए कर्मों और क्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करता है?
   क) ज्ञान-कांडा
   ख) कर्म-कांडा
   ग) उपासना-कांडा
   घ) भक्ति-कांडा

6. वेदों में "उपासना" का अभ्यास किससे संबंधित है?
   क) यज्ञ संबंधी अनुष्ठान
   ख) पवित्र ग्रंथों का अध्ययन
   ग) ध्यान और मानसिक अनुशासन
   घ) देवताओं की पूजा

7. वेदों का कौन सा खंड आत्म-गवेषणा और आत्मा की असली प्रकृति के अन्वेषण को प्रोत्साहित करता है?
   क) कर्म-कांडा
   ख) ज्ञान-कांडा
   ग) उपासना-कांडा
   घ) अर्थ-कांडा

8. वेदों के संदर्भ में "शिक्षा" शब्द का क्या अर्थ है?
   क) अनुष्ठान अभ्यास
   ख) ग्रंथों को संरक्षित करने के लिए ध्वन्यात्मक प्रणाली
   ग) ध्यान की तकनीक
   घ) आत्मा की प्रकृति का अध्ययन

9. वेदों के अनुसार मानव अस्तित्व का अंतिम लक्ष्य क्या है?
   क) भौतिक संपत्ति
   ख) आत्म-ज्ञान और शाश्वत सत्य की समझ
   ग) देवताओं का ज्ञान
   घ) सामाजिक सामंजस्य

10. वेदों को दिव्य रूप से प्रकट माना जाता है और यह मानव द्वारा नहीं लिखे गए हैं। वेदों में ऋषियों (ऋषियों) की भूमिका क्या है?
    क) ग्रंथों के लेखक
    ख) दिव्य मंत्रों के दर्शक
    ग) अनुष्ठानों के पहले साधक
    घ) वेद ज्ञान के व्याख्याकार

11. पारंपरिक वर्गीकरण के अनुसार कृष्ण-द्वैपायन व्यास के द्वारा कितने वेदों की गणना की गई है?
    क) तीन
    ख) चार
    ग) पांच
    घ) छह

12. कौन सा वेद सबसे पुराना और महत्वपूर्ण माना जाता है?
    क) यजुर्वेद
    ख) सामवेद
    ग) अथर्ववेद
    घ) ऋग्वेद

13. यजुर्वेद मुख्य रूप से वैदिक पूजा के किस पहलू पर केंद्रित है?
    क) ब्रह्मांडविज्ञान के लिए स्तोत्र
    ख) अनुष्ठान और बलिदान
    ग) दार्शनिक शिक्षाएँ
    घ) संगीत और गायन

14. यजुर्वेद के अनुसार बलिदान के शारीरिक पहलू को करने वाला पुजारी कौन होता है?
    क) होत्र
    ख) ब्राह्मण
    ग) अध्वर्यु
    घ) पुरोहित

15. सामवेद का वैदिक अनुष्ठानों में क्या भूमिका होती है?
    क) अनुष्ठानों के निर्देश प्रदान करता है
    ख) बलिदान के लिए स्तोत्रों को संकलित करता है
    ग) ऋग्वेदीय मंत्रों को संगीत के साथ गाने पर ध्यान केंद्रित करता है
    घ) ब्रह्मांडविज्ञान और सृष्टि पर चर्चा करता है

16. निम्नलिखित में से कौन सा वेद स्वास्थ्य, उपचार और घरेलू अनुष्ठानों से संबंधित मंत्रों को सम्मिलित करता है?
    क) ऋग्वेद
    ख) यजुर्वेद
    ग) सामवेद
    घ) अथर्ववेद

17. अथर्ववेद को किस अन्य वेद का अनुपूरक माना जाता है?
    क) ऋग्वेद
    ख) यजुर्वेद
    ग) सामवेद
    घ) उपरोक्त सभी

18. किस वेद में प्रसिद्ध गायत्री मंत्र है?
    क) ऋग्वेद
    ख) यजुर्वेद
    ग) सामवेद
    घ) अथर्ववेद

19. अथर्ववेद के मुख्य दो शाखाएँ कौन सी हैं?
    क) वैशंपायन और याज्ञवल्क्य
    B) कौथुम और जैमिनीय
    ग) पिप्पलाद और सौनक
    घ) कृष्ण और शुक्ल

20. सामवेद का वैदिक अनुष्ठानों के विकास में किसका योगदान है?
    क) वैदिक दर्शन
    ख) भारतीय शास्त्रीय संगीत
    ग) चिकित्सा पद्धतियाँ
    घ) खगोलशास्त्र ज्ञान

21. वेदों का मुख्य उद्देश्य क्या है?
    क) दार्शनिक संवाद
    ख) देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनुष्ठान
    ग) कविता और साहित्य
    घ) खगोलशास्त्र पर्यवेक्षण

22. अथर्ववेद में शांति-स्तोत्र का महत्व क्या है?
    क) यह देवताओं की समृद्धि के लिए प्रार्थना करता है
    ख) यह राजा के मंत्रिमंडल की एकता पर ध्यान केंद्रित करता है
    ग) यह सभी जीवों के लिए शांति और समृद्धि की प्रार्थना करता है
    घ) यह निर्माण प्रक्रिया को निर्दिष्ट करता है

23. कौन सा वेद व्यावहारिक, रोज़मर्रा की चिंताओं जैसे स्वास्थ्य, व्यापार और राज्यcraft पर बल देता है?
    क) ऋग्वेद
    ख) यजुर्वेद
    ग) सामवेद
    घ) अथर्ववेद

24. वेदों में एकता और सामूहिक उद्देश्य की धारणा किस वैदिक ग्रंथ में प्रकट होती है?
    क) ऋग्वेद
    ख) यजुर्वेद
    ग) सामवेद
    घ) अथर्ववेद

25. अथर्ववेद ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से कैसे भिन्न है?
   क) यह केवल दार्शनिक अवधारणाओं पर ध्यान केंद्रित करता है
   ख) यह जीवन के व्यावहारिक, भौतिक पहलुओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है
   ग) यह पूरी तरह से अमूर्त और काव्यात्मक है
   घ) यह केवल अनुष्ठानिक प्रथाओं से संबंधित है

26. कौन सा वेद व्यावहारिक ज्ञान और गहरी दार्शनिक समझ का एक मिश्रण माना जाता है?
   क) ऋग्वेद
   ख) यजुर्वेद
   ग) सामवेद
   घ) अथर्ववेद

27. वेदों में व्यक्त किया गया वैदिक दृष्टिकोण निम्नलिखित में से किसे अपनाता है?
   क) एक देवता की पूजा
   ख) सभी जीवों के बीच आपसी संबंध
   ग) भौतिक प्रयासों का अस्वीकार
   घ) केवल दार्शनिक अन्वेषण का अनुसरण

28. वेदों में सामूहिक ध्यान और एकता के महत्व पर जोर दिया गया है। कौन सा अथर्ववेद मंत्र इस विचार को प्रदर्शित करता है?
   क) "हम सभी एकजुट होकर एक सामान्य मुद्दे पर विचार करें।"
   ख) "राजा के मंत्रिमंडल के सभी सदस्य एक जैसी आवाज और सोच रखें।"
   ग) "हम देवताओं की पूजा करें बलिदान और ध्यान द्वारा।"
   घ) "सभी जीवों को समान रूप से व्यवहार करें।"

29. वेदाङ्गों की वेदों से क्या भूमिका थी?
   क) वे वेदों से पहले के ग्रंथ थे
   ख) वे वेदों पर दार्शनिक टिप्पणियाँ थीं
   ग) वे वेदों को संरक्षित करने और समझने के लिए सहायक शाखाएँ थीं
   घ) वे वेदों से संबंधित नहीं थे

30. वेदों में निम्नलिखित में से कौन सा विषय नहीं है?
   क) ब्रह्मांडीय कल्पनाएँ
   ख) मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंध
   ग) दैनिक जीवन और व्यावहारिक चिंताएँ
   घ) केवल दार्शनिक विचार

31. वेदाङ्गों में से "शिक्षा" का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   क) वैदिक शब्दों के अर्थ का अध्ययन
   ख) आकाशीय शरीरों और उनके प्रभाव का अध्ययन
   ग) वैदिक ग्रंथों का सही उच्चारण सुनिश्चित करना
   घ) वैदिक संस्कृत के व्याकरणीय नियमों को परिभाषित करना

32. वेदाङ्गों में से कौन सा वैदिक स्तोत्रों की मीट्रिकल संरचना से संबंधित है?
   क) शिक्षा
   ख) छंद
   ग) व्याकरण
   घ) ज्योतिष

33. वैदिक व्याकरण और वाक्य संरचना का अध्ययन किस वेदाङ्ग में किया जाता है?
   क) निरुक्त
   ख) कल्प
   ग) व्याकरण
   घ) छंद

34. निरुक्त वैदिक ग्रंथों के संदर्भ में किस पर ध्यान केंद्रित करता है?
   क) आकाशीय गति और उनके प्रभाव
   ख) शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ
   ग) सही अनुष्ठान प्रक्रियाएँ
   घ) स्तोत्रों के मीट्रिक पैटर्न

35. वेदाङ्गों में से कौन सा अनुष्ठानों, संस्कारों और धार्मिक प्रथाओं से संबंधित है?
   क) व्याकरण
   ख) शिक्षा
   ग) कल्प
   घ) ज्योतिष

36. ज्योतिष वेदाङ्ग का संबंध किससे है?
   क) वैदिक ग्रंथों के उच्चारण से
   ख) वैदिक भाषा की संरचना से
   ग) आकाशीय शरीरों का अध्ययन और उनका पृथ्वी पर घटनाओं पर प्रभाव
   घ) वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति से

37. वेदाङ्गों का विकास क्यों किया गया था?
   क) उपनिषदों की व्याख्या करने के लिए
   ख) वैदिक ग्रंथों के उच्चारण, संरचना और अर्थ को संरक्षित करने के लिए
   ग) वैदिक पौराणिक कथाओं को समझाने के लिए
   घ) भगवद गीता के दर्शन को परिभाषित करने के लिए

38. वैदिक ग्रंथों के संदर्भ में शिक्षा का एक महत्वपूर्ण पहलू क्या है?
   क) शब्दों की व्युत्पत्ति को समझना
   ख) सही उच्चारण और ध्वन्यात्मकता सुनिश्चित करना
   ग) आकाशीय शरीरों का अध्ययन
   घ) अनुष्ठानों के लिए सही समय का निर्धारण

39. व्याकरण वेदों को समझने में क्यों महत्वपूर्ण है?
   क) यह आकाशीय शरीरों के प्रभाव को समझने में मदद करता है
   ख) यह जटिल वैदिक व्याकरण और वाक्य संरचनाओं को डिकोड करता है
   ग) यह अनुष्ठानों के सही तरीके को निर्धारित करता है
   घ) यह वेदों के दार्शनिक अवधारणाओं को समझाता है

40. वेदाङ्गों का वेदों के धार्मिक और अनुष्ठानिक महत्व में क्या योगदान है?
   क) यह वैदिक स्तोत्रों के सही उच्चारण में मदद करता है
   ख) यह वेदों में दार्शनिक अवधारणाओं को समझाता है
   ग) यह वेदों में ब्रह्मांडीय सिद्धांतों की व्याख्या करता है
   घ) यह वैदिक स्तोत्रों के आधुनिक संदर्भ में अर्थ को सिखाता है

41. वैदिक दृष्टिकोण से भौतिक समृद्धि के बारे में क्या था?
   क) वैदिक लोग केवल आध्यात्मिक साधनाओं के लिए भौतिक सुख-सुविधाओं का त्याग करते थे।
   ख) भौतिक सम्पत्ति को संतुष्ट जीवन के लिए अनावश्यक माना जाता था।
   ग) भौतिक समृद्धि को जीवन की रक्षा और समाजिक योगदान के लिए महत्वपूर्ण माना जाता था, साथ ही आध्यात्मिक विकास के साथ।
   घ) भौतिक सम्पत्ति का अनुसरण आध्यात्मिक या ब्रह्मांडीय संतुलन की परवाह किए बिना किया जाता था।

42. वैदिक दृष्टिकोण में कौन सा सिद्धांत ब्रह्मांडीय क्रम और संतुलन को दर्शाता है?
   क) सत्य
   ख) ऋत
   ग) धर्म
   घ) यज्ञ

43. वैदिक जीवन में अग्नि (अग्नि देवता) की क्या भूमिका थी?
   क) अग्नि को केवल अग्नि का देवता माना जाता था, और किसी अन्य भूमिका में नहीं।
   ख) अग्नि यज्ञों के दौरान अन्य देवताओं को आहुति और आशीर्वाद देने के लिए एक मध्यस्थ था।
   ग) अग्नि धन और समृद्धि का देवता था, लेकिन यज्ञों में केंद्रीय नहीं था।
   घ) अग्नि ब्रह्मांडीय आदेश बनाए रखने के लिए जिम्मेदार था, लेकिन बलिदानों से कोई संबंध नहीं था।

44. वैदिक दृष्टिकोण में "धर्म" का क्या अर्थ है?
   क) धर्म का मतलब है धन और भौतिक सफलता का पीछा करना।
   ख) धर्म का मतलब है व्यक्तिगत आचरण और जिम्मेदारियाँ जो ब्रह्मांडीय क्रम के साथ मेल खाती हैं।
   ग) धर्म शाश्वत सत्य का सिद्धांत है, जिसे हर किसी को पालन करना चाहिए।
   घ) धर्म वह विधियाँ हैं जो देवताओं को संतुष्ट करने के लिए की जाती हैं।

45. वैदिक जीवन में भौतिक और आध्यात्मिक साधनाओं के बीच संतुलन कैसे बनाए रखा जाता था?
   क) भौतिक समृद्धि को आध्यात्मिक लक्ष्यों के पक्ष में नजरअंदाज किया जाता था।
   ख) आध्यात्मिक साधनाएँ केवल ध्यान और त्याग पर केंद्रित थीं।
   ग) भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक साधनाओं दोनों को समग्र जीवन के लिए आवश्यक माना जाता था।
   घ) आध्यात्मिक साधनाएँ केवल कर्मकांडी विधियों और आहुति पर केंद्रित थीं।

46. वैदिक गान अक्सर निम्नलिखित में से किसके साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने पर जोर देते थे?
   क) आकाश में स्थित तारों और उनके स्थानों के साथ
   ख) प्राकृतिक संसार, जिसमें नदियाँ, पहाड़, और अग्नि और जल जैसे तत्व शामिल हैं
   ग) शासकों द्वारा निर्धारित सामाजिक नियम और कर्तव्यों के साथ
   घ) धन और भौतिक सफलता की दैनिक खोज के साथ

47. वैदिक जीवन के सिद्धांत के बारे में कौन सा कथन सही है?
   क) केवल भौतिक सुख-सुविधाओं पर ध्यान केंद्रित किया जाता था, आध्यात्मिकता की कोई चिंता नहीं होती थी।
   ख) प्रकृति और उसके तत्वों को पवित्र नहीं माना जाता था।
   ग) जीवन को जीवंतता से जीने की इच्छा थी, जिसमें भौतिक और आध्यात्मिक साधनाएँ दोनों शामिल थीं।
   घ) आध्यात्मिक उन्नति केवल एकांतवास और तपस्या के माध्यम से प्राप्त की जा सकती थी।

48. वैदिक जीवन में यज्ञ का क्या महत्व था?
   क) यज्ञ केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने का एक साधन था।
   ख) यज्ञ एक अनुष्ठानिक क्रिया थी, जो ब्रह्मांडीय क्रम बनाए रखने और देवताओं को सम्मानित करने के लिए की जाती थी।
   ग) यज्ञ को भौतिक धन प्राप्त करने के लिए किया जाता था, लेकिन आध्यात्मिकता से कोई संबंध नहीं था।
   घ) यज्ञ केवल दार्शनिक उपदेशों और ध्यान के लिए किया जाता था।

49. वैदिक लोग प्राकृतिक संसार के साथ अपने रिश्ते को कैसे देखते थे?
   क) वे मानते थे कि मनुष्यों को समृद्धि के लिए प्रकृति पर नियंत्रण करना चाहिए।
   ख) वे प्रकृति को एक विरोधी के रूप में देखते थे जिसे नियंत्रित किया जाना चाहिए।
   ग) वे प्राकृतिक संसार को पवित्र मानते थे और इसके साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने का विश्वास रखते थे।
   घ) वे भौतिक साधनाओं के पक्ष में पर्यावरण को नजरअंदाज कर देते थे।

50. वैदिक जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के बारे में कौन सा कथन सही है?
   क) वैदिक लोग आध्यात्मिक अभ्यास की कीमत पर धन और सफलता को प्राथमिकता देते थे।
   ख) आध्यात्मिक और भौतिक साधनाएँ एक दूसरे के विपरीत मानी जाती थीं।
   ग) भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक विकास दोनों ही एक पूर्ण जीवन के महत्वपूर्ण पहलू थे।
   घ) आध्यात्मिक साधनाएँ केवल यज्ञों के बलिदान के पक्ष में नजरअंदाज की जाती थीं।

51. वेदों को भारतीय परंपरा में किस रूप में माना गया है?
   क) धर्म का स्रोत
   ख) ब्रह्मांडीय ज्ञान का स्रोत
   ग) केवल भौतिक ज्ञान का स्रोत
   घ) धार्मिक ग्रंथ

52. "सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म" का अर्थ क्या है?

क) सत्य ही ब्रह्म है

ख) ज्ञान और ब्रह्म दोनों एक हैं

ग) सत्य, ज्ञान और अनंत ब्रह्म हैं

घ) ज्ञान ही जीवन का उद्देश्य है

53. 'विद्या' और 'अविद्या' के बारे में ईशावास्य उपनिषद में क्या कहा गया है?

क) विद्या और अविद्या दोनों का ज्ञान व्यक्ति को जीवन में सफलता देता है

ख) अविद्या मृत्यु और विद्या अमरत्व प्रदान करती है

ग) विद्या का ज्ञान ही मोक्ष की ओर ले जाता है

घ) दोनों का कोई महत्व नहीं है

54. "मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है" यह विचार किसका है?

क) स्वामी विवेकानंद

ख) महर्षि अरविंद

ग) पाणिनि

घ) आर्यभट्ट

55. भारतीय शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य क्या था?

क) केवल भौतिक विकास

ख) आत्मज्ञान और सामाजिक कल्याण

ग) केवल धन अर्जन

घ) केवल सैद्धांतिक शिक्षा

56. गुरुकुलों में शिक्षा का आरंभ किस दिन से किया जाता था?

क) आषाढ़ पूर्णिमा

ख) श्रावणी पूर्णिमा

ग) दशहरा

घ) मकर संक्रांति

57. 'मेधा' को वेदों में किस रूप में माना गया है?

क) आत्मा का रूप

ख) बुद्धि का दिव्य रूप

ग) ज्ञान का स्रोत

घ) शरीर का रूप

58. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में किसका विशेष महत्व था?

क) केवल बौद्धिक विकास

ख) शारीरिक और मानसिक विकास

ग) केवल आध्यात्मिक उन्नति

घ) सामाजिक और राजनीतिक शिक्षा

59. 'गुरु-शिष्य परंपरा' में किसे महत्वपूर्ण माना जाता था?

क) गुरु

ख) शिष्य

ग) दोनों को बराबरी का दर्जा

घ) कोई नहीं

60. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में 'वेदांग' किसे कहा जाता है?

क) वेदों के अंग

ख) उपनिषदों के अंग

ग) शिक्षा की पद्धतियाँ

घ) जीवन के उच्च उद्देश्य

61. भारतीय परंपरा में वेदों को किस रूप में माना गया है?

क) एकमात्र धार्मिक ग्रंथ

ख) ब्रह्मांडीय ज्ञान का मुख्य स्रोत

ग) मात्र भौतिक ज्ञान का स्रोत

घ) इतिहास का प्रमाण

62. "यस्य निःश्वसितं वेदा" वाक्य का अर्थ क्या है?
   क) वेदों की उत्पत्ति आकाश से हुई है
   ख) वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मांडीय चेतना से हुई है
   ग) वेद ईश्वर के निर्देश से उत्पन्न हुए हैं
   घ) वेद केवल मानवता के लिए हैं

63. 'अयम् आत्मा ब्रह्म' का क्या अर्थ है?
   क) आत्मा और ब्रह्म दोनों अलग-अलग हैं
   ख) आत्मा ब्रह्म के समान है
   ग) ब्रह्म केवल ज्ञान का रूप है
   घ) आत्मा का कोई महत्व नहीं है

64. स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा के बारे में क्या कहा था?
   क) शिक्षा का उद्देश्य केवल भौतिक उन्नति है
   ख) शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना है
   ग) शिक्षा समाज के लिए उपयोगी नहीं है
   घ) शिक्षा केवल धार्मिक उन्नति के लिए है

65. 'मेधा' का क्या अर्थ है?
   क) शारीरिक शक्ति
   ख) बुद्धि का दिव्य रूप
   ग) भौतिक उन्नति
   घ) सामाजिक मूल्य

66. 'विद्या' और 'अविद्या' के बारे में किस ग्रंथ में बताया गया है?
   क) भागवद गीता
   ख) ईशावास्य उपनिषद
   ग) रामायण
   घ) महाभारत

67. शिक्षा का मुख्य उद्देश्य क्या था?
   क) भौतिक उन्नति
   ख) आत्मज्ञान और समाजिक कल्याण का संतुलन
   ग) केवल बौद्धिक विकास
   घ) व्यक्तिगत उन्नति

68. प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षण की मुख्य भाषा क्या थी?
   क) पाली
   ख) संस्कृत
   ग) प्राकृत
   घ) हिंदी

69. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में 'गुरु-शिष्य परंपरा' का क्या महत्व था?
   क) शिक्षा केवल ज्ञान तक सीमित थी
   ख) गुरु और शिष्य के रिश्ते में अनुशासन और श्रद्धा का महत्व था
   ग) केवल शिष्य को ज्ञान प्राप्त करना था
   घ) गुरु का कोई खास स्थान नहीं था

70. प्राचीन भारतीय शिक्षा में 'विद्या' और 'अविद्या' के बीच क्या संबंध था?
   क) विद्या और अविद्या दोनों समान थे
   ख) अविद्या मृत्यु का कारण और विद्या अमरत्व का कारण थी
   ग) विद्या और अविद्या को एक साथ त्यागने की आवश्यकता थी
   घ) केवल अविद्या को नष्ट करना था

71. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में किन-किन विषयों का अध्ययन कराया जाता था?
   क) केवल गणित और विज्ञान
   ख) कृषि, शिल्प, योग, चिकित्सा, संगीत
   ग) केवल वेद और उपनिषद
   घ) केवल धार्मिक ग्रंथ

72. शिक्षा के अंत में विद्यार्थी का मूल्यांकन किस आधार पर किया जाता था?
   क) केवल लिखित परीक्षा
   ख) व्यावहारिक प्रदर्शन और गुरु के अनुभव पर
   ग) केवल शारीरिक परीक्षण
   घ) शिष्य का वंशावली

73. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का उद्देश्य क्या था?
   क) केवल भौतिक और सामाजिक विकास
   ख) केवल आध्यात्मिक उन्नति
   ग) केवल व्यावसायिक शिक्षा
   घ) मानवता के उच्चतम गुणों का विकास करना

74. प्राचीन भारतीय शिक्षा में कौन सा गुण विशेष रूप से विकसित किया जाता था?
   क) केवल बौद्धिक
   ख) शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक
   ग) केवल शारीरिक
   घ) केवल सांस्कृतिक

75. गुरुकुलों में छात्रों को किन-किन अनुशासन का पालन करना पड़ता था?
   क) केवल शारीरिक
   ख) केवल मानसिक
   ग) आंतरिक और बाह्य अनुशासन
   घ) कोई अनुशासन नहीं

76. भारतीय शिक्षा पद्धति में 'सामाजिक और वैज्ञानिक आधार' क्या था?
   क) शिक्षा केवल आध्यात्मिक थी
   ख) शिक्षा लोक भावना और विश्व बंधुत्व पर आधारित थी
   ग) शिक्षा केवल ज्ञान की प्राप्ति तक सीमित थी
   घ) शिक्षा केवल संस्कृत साहित्य तक सीमित थी

77. प्राचीन भारतीय शिक्षा में किसका विशेष ध्यान रखा जाता था?
   क) भौतिक उन्नति
   ख) केवल व्यक्तित्व का विकास
   ग) समाज और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारियाँ
   घ) केवल व्यक्तिगत सफलता

78. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में गुरु का क्या स्थान था?
   क) शिक्षक और मार्गदर्शक
   ख) केवल अधिकारी
   ग) केवल ज्ञान देने वाला
   घ) कोई विशेष स्थान नहीं था

79. प्राचीन भारतीय शिक्षा में किस प्रकार की शिक्षा पर जोर दिया जाता था?
   क) केवल तात्त्विक
   ख) केवल व्यावहारिक
   ग) समग्र शिक्षा
   घ) केवल सैद्धांतिक

80. 'गुरुकुल' प्रणाली में शिक्षा प्राप्त करने के लिए क्या आवश्यक था?
   क) केवल बौद्धिक क्षमता
   ख) नैतिक और बौद्धिक स्तर पर तैयार रहना
   ग) केवल शारीरिक विकास
   घ) केवल सामाजिक स्थिति

81. 'गुरुकुल' शिक्षा पद्धति में छात्रों की रुचि के आधार पर क्या किया जाता था?
   क) छात्रों को एक ही विषय पढ़ाया जाता था
   ख) छात्रों के लिए पाठ्यक्रम तय किया जाता था
   ग) केवल शास्त्र पढ़ाए जाते थे
   घ) छात्रों को केवल भाषाएँ सिखाई जाती थीं

82. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का उद्देश्य क्या था?
क) केवल बौद्धिक विकास
ख) व्यक्ति को नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से सशक्त बनाना
ग) केवल कर्मकांडी शिक्षा देना
घ) केवल धार्मिक शिक्षा देना

83. प्राचीन भारत में शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसे प्राथमिकता दी जाती थी?
क) केवल पुरुषों को
ख) सभी वर्णों को
ग) केवल ब्राह्मणों को
घ) केवल राजा और सामंतों को

84. शतपथ ब्राह्मण में किसके लिए यज्ञकर्ता का अधिकार बताया गया है?
क) केवल ब्राह्मणों
ख) केवल शूद्रों
ग) सभी वर्णों को
घ) केवल क्षत्रिय

85. प्राचीन भारतीय शिक्षा में महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार की भागीदारी करती थीं?
क) केवल धार्मिक शिक्षा
ख) शास्त्र, विज्ञान और दार्शनिक विषयों में
ग) केवल कला और संगीत में
घ) केवल घरेलू कार्यों में

86. गार्गी वाचक्नवी का शास्त्रार्थ किससे संबंधित था?
क) गणित
ख) दर्शनशास्त्र
ग) चिकित्सा
घ) साहित्य

87. किस वेद को आयुर्वेद (भारतीय चिकित्सा पद्धति) का स्रोत माना जाता है?
क) सामवेद
ख) अथर्ववेद
ग) ऋग्वेद
घ) यजुर्वेद

88. प्राचीन भारत में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य क्या था?
क) केवल शारीरिक शिक्षा देना
ख) बौद्धिक और नैतिक विकास
ग) केवल सामाजिक कामकाजी कौशल सिखाना
घ) केवल धार्मिक शिक्षा देना

89. प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में कौन से लोग शिक्षा प्राप्त कर सकते थे?
क) केवल ब्राह्मण
ख) केवल क्षत्रिय
ग) सभी वर्णों के लोग
घ) केवल शूद्र

90. प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में अध्ययन की विधि क्या थी?
क) मुद्रित पुस्तकें
ख) दृश्य माध्यम (Visual Aids)
ग) मौखिक परंपरा और कंठस्थ याद करना
घ) ऑनलाइन कक्षाएं

91. "श्रुति" शब्द का तात्पर्य किससे है?
क) कालिदास की कविताएँ
ख) ऋषियों द्वारा सुनी गई या प्रकट की गई दिव्य वाणियाँ
ग) मनु स्मृति के नियम
घ) बुद्ध के उपदेश

92. प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा प्राप्ति के अधिकार का आधार क्या था?
   क) केवल जाति
   ख) केवल लिंग
   ग) सभी वर्गों और लिंगों के लिए समान अधिकार
   घ) केवल राज्य के नागरिकों के लिए

93. गार्गी वाचक्नवी का शास्त्रार्थ किसके साथ हुआ था?
   क) याज्ञवल्क्य
   ख) शंकराचार्य
   ग) महर्षि वेदव्यास
   घ) पं. नेहरू

94. वाजसनेयी संहिता में किस बात का उल्लेख किया गया है?
   क) शिक्षा केवल ब्राह्मणों को मिलती थी
   ख) शिक्षा चारों वर्णों को मिलती थी
   ग) केवल महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी
   घ) केवल क्षत्रिय शिक्षा प्राप्त कर सकते थे

95. 'ब्यूटीफुल ट्री' पुस्तक किसने लिखी थी?
   क) महात्मा गांधी
   ख) धर्मपाल जी
   ग) रवींद्रनाथ ठाकुर
   घ) पं नेहरू

96. प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य क्या था?
   क) केवल बौद्धिक ज्ञान पर ध्यान दिया जाता था
   ख) व्यक्ति को नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से सशक्त बनाना
   ग) केवल धार्मिक शिक्षा देना
   घ) केवल सामाजिक कार्य सिखाना

97. किस प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय में विश्वभर से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे?
   क) गुरुकुल
   ख) उज्जैन
   ग) नालंदा
   घ) काशी

98. गुरुकुलों में शिक्षा किस आधार पर दी जाती थी?
   क) केवल पुस्तक आधारित
   ख) केवल शारीरिक शिक्षा
   ग) गुरु और शिष्य के बीच गहन संबंध
   घ) तकनीकी शिक्षा

99. गुरु के मार्गदर्शन में शिष्य का किस प्रकार का विकास होता था?
   क) केवल शारीरिक विकास
   ख) केवल मानसिक विकास
   ग) शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास
   घ) केवल बौद्धिक विकास

100. भारत में शिक्षा का समृद्ध इतिहास किस बात को प्रमाणित करता है?
   क) शिक्षा केवल उच्च वर्ग के लिए थी
   ख) शिक्षा जातिगत और लैंगिक भेदभाव से मुक्त थी
   ग) शिक्षा केवल महिलाओं के लिए थी
   घ) शिक्षा का केंद्र केवल गाँव था

101. भारत की पारंपरिक शिक्षा प्रणाली से क्या प्रेरणा ली जानी चाहिए?
   क) समावेशी शिक्षा प्रणाली
   ख) केवल गणित शिक्षा
   ग) सिर्फ विदेशी भाषा शिक्षण
   घ) केवल तकनीकी शिक्षा

102. प्राचीन भारत के प्रमुख शिक्षा केंद्रों में से एक था:
   क) तक्षशिला विश्वविद्यालय
   ख) नई दिल्ली विश्वविद्यालय
   ग) एमआईटी विश्वविद्यालय
   घ) ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय

103. नालंदा विश्वविद्यालय किस राज्य में स्थित था?
   क) उत्तर प्रदेश
   ख) बिहार
   ग) महाराष्ट्र
   घ) तमिलनाडु

104. "वशिष्ठ मुनि का आश्रम" कहाँ स्थित था?
   क) यमुनानगर
   ख) सरयू नदी के तट पर
   ग) गंगा नदी के तट पर
   घ) हिमालय पर्वत में

105. गुरु के कार्य में क्या मुख्य बात थी?
   क) केवल शास्त्रों का शिक्षण
   ख) जीवन के हर पहलु में मार्गदर्शन
   ग) केवल आध्यात्मिक शिक्षा
   घ) विद्यार्थियों का मानसिक विकास

106. भारत में गुरु को किसके समान माना जाता था?
   क) देवता
   ख) राजा
   ग) परमब्रह्म
   घ) यज्ञकर्ता

107. "गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः" इस मंत्र का क्या अर्थ है?
   क) गुरु के माध्यम से भगवान का ज्ञान प्राप्त होता है
   ख) गुरु केवल शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं
   ग) गुरु का कोई विशेष स्थान नहीं होता
   घ) गुरु को केवल शिक्षक माना जाता है

108. सच्चे अध्यापक की पहचान क्या होती है?
   क) उनका विद्वान होना
   ख) उनका समर्पण और निष्ठा
   ग) उनका शिक्षण स्थान का प्रसिद्ध होना
   घ) उनका उच्चतम डिग्री प्राप्त करना

109. गुरु-शिष्य संबंध में शिष्य को किस प्रकार की शुश्रूषा करनी चाहिए?
   क) गुरु की सेवा के बिना
   ख) गुरु की सेवा करने से ज्ञान प्राप्त होता है
   ग) केवल गुरु को सुनना
   घ) गुरु से कुछ नहीं सीखना

110. वेदों में आचार्य से क्या अपेक्षाएँ की गई हैं?
   क) केवल शास्त्रों का ज्ञान
   ख) संयम, वाणी का स्वामी और गुणों के जानकार होना
   ग) केवल मानसिक क्षमता का होना
   घ) शरीर की शक्ति का होना

111. तैत्तिरीयोपनिषद में आचार्य-शिष्य संबंध को किस रूप में चित्रित किया गया है?
   क) एक धार्मिक संबंध
   ख) एक पिता-पुत्र संबंध
   ग) एक सहयोगात्मक संबंध
   घ) पूर्वरूप और अनुसर्ता के रूप में

112. आचार्य को किस प्रकार की विधाएँ अपनानी चाहिए, ताकि छात्र अपनी क्षमताओं के अनुसार ज्ञान प्राप्त कर सकें?

क) केवल सैद्धान्तिक विधियाँ

ख) क्रियात्मक और विचारात्मक विधियाँ

ग) केवल बातचीत के माध्यम से

घ) केवल प्राचीन विधियाँ

113. आचार्य के कार्य में कौन सा गुण महत्वपूर्ण है?

क) केवल शास्त्रों का ज्ञान

ख) छात्रों की प्रवृत्तियों और क्षमताओं का अध्ययन

ग) केवल धार्मिक शिक्षा देना

घ) अपनी इच्छाओं का पालन करना

114. वेदों में आचार्य के लिए किस प्रकार का जीवन आदर्श प्रस्तुत किया गया है?

क) संघर्षपूर्ण और अकेला

ख) संयमित, मननशील और दूरदर्शी

ग) शारीरिक रूप से शक्तिशाली

घ) शास्त्रों के मात्र ज्ञाता

115. गुरु-शिष्य संबंध को किस प्रकार से जीवन के महत्वपूर्ण उद्देश्य से जोड़ा जाता है?

क) गुरु केवल शिक्षक होते हैं

ख) गुरु-शिष्य संबंध आत्मसात करने का माध्यम होता है

ग) शिष्य को केवल शिक्षा दी जाती है

घ) गुरु से केवल ज्ञान लिया जाता है

उत्तर दर्शिका

प्रश्न	उत्तर	प्रश्न	उत्तर	प्रश्न	उत्तर
1	(ख)	26	(घ)	51	(ख)
2	(ख)	27	(ख)	52	(ग)
3	(ख)	28	(क)	53	(ख)
4	(ख)	29	(ग)	54	(क)
5	(ख)	30	(घ)	55	(ख)
6	(ग)	31	(ग)	56	(ख)
7	(ख)	32	(ख)	57	(ख)
8	(ख)	33	(ग)	58	(ख)
9	(ख)	34	(ख)	59	(क)
10	(ख)	35	(ग)	60	(क)
11	(ख)	36	(ग)	61	(ख)
12	(घ)	37	(ख)	62	(ख)
13	(ख)	38	(ख)	63	(ख)
14	(ग)	39	(ख)	64	(ख)
15	(ग)	40	(क)	65	(ख)
16	(घ)	41	(ग)	66	(ख)
17	(घ)	42	(ख)	67	(ख)
18	(क)	43	(ख)	68	(ख)
19	(ग)	44	(ख)	69	(ख)
20	(ख)	45	(ग)	70	(ख)
21	(ख)	46	(ख)	71	(ख)
22	(ग)	47	(ग)	72	(ख)
23	(घ)	48	(ख)	73	(घ)
24	(घ)	49	(ग)	74	(ख)
25	(ख)	50	(ग)	75	(ग)

प्रश्न	उत्तर	प्रश्न	उत्तर	प्रश्न	उत्तर
76	(ख)	90	(ग)	104	(ख)
77	(ग)	91	(ख)	105	(ख)
78	(क)	92	(ग)	106	(ग)
79	(ग)	93	(क)	107	(क)
80	(ख)	94	(ख)	108	(ख)
81	(ख)	95	(ख)	109	(ख)
82	(ख)	96	(ख)	110	(ख)
83	(ख)	97	(ग)	111	(घ)
84	(ग)	98	(ग)	112	(ख)
85	(ख)	99	(ग)	113	(ख)
86	(ख)	100	(ख)	114	(ख)
87	(ख)	101	(क)	115	(ख)
88	(ख)	102	(क)		
89	(ग)	103	(ख)		

पुस्तक के विषय में

यह पुस्तक प्राचीन वैदिक ग्रंथों में निहित आध्यात्मिक और दार्शनिक ज्ञान की एक विचारपूर्ण खोज है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद-इन चारों वेदों से प्रेरणा लेकर यह पुस्तक उनके शिक्षाप्रद सार को ऐसे रूप में प्रस्तुत करती है, जो आज के पाठकों के लिए सहज और ग्राह्य हो।

केवल अनुवाद या शास्त्रीय विश्लेषण तक सीमित न रहते हुए, पुस्तक वेदों को एक जीवंत परंपरा के रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें ब्रह्मांड, प्रकृति की लय, मानव मन तथा सत्य की शाश्वत खोज जैसे विषयों पर वैदिक दृष्टिकोण को सरल भाषा में समझाया गया है। यह पुस्तक आधुनिक जीवन को वैदिक ज्ञान से जोड़ते हुए पाठकों को आत्मचिंतन और आंतरिक संतुलन की ओर प्रेरित करती है। यह प्रस्तुत उन आध्यात्मिक साधकों, भारतीय दर्शन के विद्यार्थियों और उन सभी के लिए उपयुक्त है जो भारत की गहन आध्यात्मिक परंपरा की जड़ों को समझने के इच्छुक हैं। श्रद्धा और स्पष्टता के साथ लिखी गई यह पुस्तक एक ऐसे कालातीत ज्ञान का द्वार खोलती है, जो आज भी मानवता को प्रेरणा और उन्नयन प्रदान करता है।



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-72-7

Bharat Boudhiks

खंड-20

भारत संवाहा

समय के साथ संस्कार

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान



भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं
(नेट और यूपीएससी) के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक



सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणि ।
विद्यारम्भं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥

देवी सरस्वती को प्रणाम,
जो वर देने वाली और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ।
हे देवी, जब मैं अपने अध्ययन की शुरुआत करूं,
कृपया मुझे हमेशा सही समझ की शक्ति दें ।

Salutations to Devi Saraswati,
the giver of boons and fulfiller of wishes.
O Devi, When I begin my studies,
please bestow on me the capacity of right understanding always

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati
Uchcha Shiksha Sansthan

H-107A, Sector-12, Noida, Gautam Buddha Nagar, (Uttar Pradesh), PIN – 201301
Telephone : 0120-4338616, Mobile: 9999694251

E-mail : vbheducation@gmail.com, contact@vbuss.org
Twitter/Facebook/Instagram : @VBUSSOrg

http://vbuss.org

Drafting Committee / Team

- **Dr. Meenakshi Sharma**
  ACBR, University of Delhi
- **Dr. Mansi Yuvendar Chaudhary**
  Rajdhani College, University of Delhi
- **Dr. Shobhita Singal**
  MLNC, University of Delhi
- **Dr. Deepak Kumar**
  DRC, University of Delhi
- **Ms. Prakshi Soni**
  University of Delhi
- **Mr. Jitender Kumar**
  University of Delhi
- **Ms. Kajal Sharma**
  University of Delhi
- **Ms. Geeta Chaudhary**
  University of Delhi
- **Mr. Pradeep K. Pandey**
  University of Delhi

भारत संवाहा
समय के साथ संस्कार

भारतीय ज्ञान प्रणाली आधारित प्रतियोगी परीक्षाओं (नेट और यूपीएससी)
के लिए एक संक्षिप्त पुस्तक

विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान
सा विद्या या विमुक्तये

किताबवाले
नयी दिल्ली-110002

अस्वीकरण

यह पुस्तक प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं से संबंधित विभिन्न शास्त्रीय ग्रंथों, साहित्यिक स्रोतों और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध जानकारियों के अध्ययन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित एक विद्वतापूर्ण कृति है। यद्यपि इसकी संरचना, विषयवस्तु या प्रवाह में कुछ तत्व पूर्ववर्ती कृतियों अथवा पारंपरिक साहित्य से मेल खा सकते हैं, किन्तु ये समानताएँ केवल संयोगवश हैं और विषय की प्रामाणिकता बनाए रखने के उद्देश्य से रखी गई हैं। हमने यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया है कि प्रस्तुत सामग्री तथ्यपरक, जानकारीपूर्ण और मूल स्रोतों के प्रति पूर्ण सम्मानभाव से युक्त हो। इस कृति में व्यक्तिगत अनुसंधान, सृजनात्मकता और शैक्षणिक परिश्रम के परिणामस्वरूप नवीन विश्लेषण, अद्यतन व्याख्याएँ, नए विषय, चित्रण और संदर्भ विस्तार सम्मिलित किए गए हैं। मौजूदा स्रोतों से प्राप्त सभी प्रेरणाएँ और संदर्भ पूर्ण सद्भावना एवं शैक्षणिक/ज्ञान-वितरण के उद्देश्य से प्रयोग किए गए हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य किसी भी प्रकार के कॉपीराइट या बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है। यदि अनजाने में किसी सामग्री से ऐसे किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ हो, तो सूचित किए जाने पर सम्पादक आवश्यक संशोधन या यथोचित स्वीकृति देने को तत्पर है।

© विद्या भारती उच्च शिक्षा न्यास, दिल्ली प्रांत

शीर्षक : भारत संवाहा: समय के साथ संस्कार

सम्पादक : प्रो. राज किशोर शर्मा, जितेन्द्र कुमार

संस्करण : 2025

ISBN : 978-93-49531-02-4

मूल्य : 230/-

प्रकाशक:
किताबवाले
नई दिल्ली-110002

सहयोग:
विद्या भारती
उच्च शिक्षा संस्थान, नोएडा

मुद्रक:
जी.के. फाईन आर्ट प्रेस
चटपड़ गंज, नई दिल्ली

शुभकामना संदेश



प्रिय मित्रों,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है, साथ ही एक गहरा उत्तरदायित्व भी, कि मैं आपके समक्ष **'भारत बौद्धिक्स'** परियोजना को प्रस्तुत कर रहा हूँ। **भारत बौद्धिक्स विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान** द्वारा प्रारंभ किया गया एक राष्ट्रीय शैक्षिक अभियान है, जिसका मुख्य उद्देश्य हमारे युवाओं को गुणात्मक, सर्वांगीण और समग्र विकास की शिक्षा के साथ-साथ उनके मन और मस्तिष्क में भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना को पुनर्जीवित करना है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, विज्ञान, दर्शन, शासन, आरोग्य और कला जैसे अनेक क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान परंपराएँ हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन करती रही हैं। आज जब पूरी दुनिया एक संतुलित, नैतिक और समावेशी विकास मॉडल की खोज में है, ऐसे समय में हमारे प्राचीन ग्रंथ और विचार केवल इतिहास की धरोहर नहीं रह गए हैं, बल्कि वे प्रेरणा और नवाचार के जीवंत स्रोत बनकर सामने आ रहे हैं। भारत बौद्धिक्स का प्रयास है कि इस अमूल्य विरासत को आज के विद्यार्थियों के लिए सुलभ, समसामयिक और सार्थक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

हमारे विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई **21 पुस्तकों की एक विशेष श्रृंखला**, इस परियोजना का मूल आकर्षण है। जिसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

1. **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी**: इस खंड में वैदिक गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, धातु विज्ञान, मंदिर वास्तुकला और पारंपरिक पर्यावरण ज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से भारत की वैज्ञानिक परंपराओं को उजागर किया गया है।
2. **कला एवं मानविकी**: यह खंड नाट्यशास्त्र, शास्त्रीय भाषाओं, संगीत, साहित्यिक परंपराओं और प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और सौंदर्यबोध को प्रतिबिंबित करता है।

3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति:** इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

	प्रस्तावना	9
	विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
		13
1.	परिचय	15
2.	संस्कृति की परिभाषा और आधुनिक प्रयोग	16
3.	सभ्यता और संस्कृति में अंतर	17
4.	संस्कृति के दो स्तर	18
5.	संस्कार और आध्यात्मिकता का संबंध	19
6.	भारतीय विश्व-दृष्टि	19
7.	ब्रह्म और उसकी सर्वव्यापकता	21
8.	मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ	24
9.	आतिथ्य और उदारता	27
10.	परिवार और समुदाय	32
11.	भारत की शौर्य संस्कृति एवं शौर्य परंपरा	34
12.	प्राचीन भारत में राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणा	37
13.	भारतीय राष्ट्रीयता का प्राचीन भारत में उल्लेख	42
14.	सारांश	43
	अनुशंसित पठन सामग्री	44
	बहु विकल्पीय प्रश्न	75
	उत्तर-दर्शिका	

At this supremely dangerous moment in human history, the only way of salvation is the ancient Indian way. Here we have the attitude and spirit that can make it possible for the human race to grow together into a single family.

Source: Relevance of environment: a critique on international relation theories by Narottam Gaan

* * * *

So now we turn to India. Her spiritual gift, that makes a man human, is still alive in Indian souls. Go on giving the world Indian examples of it. Nothing else can do so much to help mankind to save itself from self-destruction.

Source: Modern Essays: Studying Language through Literature by Prasad, R.C.



Arnold Joseph Toynbee

Very eminent British economic historian, philosopher and prolific writer. His lectures on various subjects influenced contemporary British society. His creative and research works were widely read and appreciated. Having a reputation for being a celebrated writer, his extensive research was published in twelve volumes from 1934 to 1961, titled as 'Study of History' and sold widely across the world. He was highly Inspired by the ancient wisdom of India.

प्रस्तावना

यह पुस्तिका भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता की गहरी समझ प्रदान करती है। वेदों, उपनिषदों और अन्य शास्त्रों की शाश्वत शिक्षाओं से प्रेरित, यह पुस्तिका उन सिद्धांतों का अन्वेषण करती है जिन्होंने भारत में हजारों वर्षों से व्यक्तियों और समुदायों के जीवन को आकार दिया है। भारतीय संस्कृति केवल रीति-रिवाजों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक समग्र प्रणाली है जो व्यक्तियों को व्यक्तिगत विकास, आध्यात्मिक उन्नति और मोक्ष (मुक्ति) की प्राप्ति की ओर मार्गदर्शन करती है।

भारतीय परंपरा में संस्कृति का विचार गहरे अर्थों में है, जो सभी प्राणियों के आपसी संबंध और उच्च आदर्शों के साथ अपने कर्मों को जोड़ने की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इस पुस्तिका में जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे आश्रमों के चरण, धर्म, और वीरता की भूमिका का विस्तार से विवेचन किया गया है, जो भारतीय आध्यात्मिकता की गहरी संरचना से जुड़े हुए हैं। ये सिद्धांत न केवल व्यक्तिगत कल्याण के लिए हैं, बल्कि समाज की सामूहिक भलाई के लिए भी आवश्यक हैं।

भारतीय दर्शन में मोक्ष केवल एक आध्यात्मिक लक्ष्य नहीं, बल्कि जीवन के चरणों और जिम्मेदारियों के साथ जुड़ी एक वास्तविक यात्रा है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और संन्यास के प्रत्येक चरण का समाज और व्यक्तिगत परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान है। धर्म की रक्षा में वीरता और साहस का महत्वपूर्ण स्थान है, जो यह दर्शाता है कि प्राचीन भारत में राष्ट्रीय एकता केवल भौगोलिक सीमाओं पर नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक आदर्शों पर आधारित थी।

इस पुस्तिका के माध्यम से पाठक यह समझेंगे कि भारतीय संस्कृति भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पहलुओं को संतुलित करने का प्रयास करती है, जो व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य पैदा करती है। यह एक शाश्वत मार्गदर्शन प्रदान करती है जो जीवन के हर पहलू को उच्च आदर्शों से जोड़ने की प्रेरणा देती है। आज के इस आधुनिक समय में, जहां कई चुनौतियाँ हैं, यह प्राचीन सिद्धांत व्यक्तिगत और सामाजिक भलाई के लिए मार्गदर्शन का कार्य करते हैं।

The Indian way of life provides the vision of the natural, real way of life. We western veil ourselves with unnatural masks. On the face of India are the tender expressions which carry the mark of the Creators hand.

Source: Hinduism: Path of the Ancient Wisdom-by Hiro G. Badlani

* * * *

The apparent multiplication of gods is bewildering at the first glance, but you soon discover that they are the same GOD. There is always one uttermost God who defies personification. This makes Hinduism the most tolerant religion in the world, because its one transcendent God includes all possible gods. In fact Hinduism is so elastic and so subtle that the most profound methodist, and crudest idolater, are equally at home with it.

Source: Hinduism, religion and way of life by Satyavrata Ramdas Patel

Bernard Shaw



Great Irish dramatist, a socialist spokesman, critic and leading figure in the twentieth-century theatre; Shaw received the Nobel Prize in Literature. His major literary works include: Man and Superman, Pygmalion and Saint Joan. He is considered second only to Shakespeare among British dramatists, and the word Shavian represents his ideology.

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

भारतीय संवाहा : समय के साथ संस्कार

प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता, जो दुनिया की सबसे पुरानी और सबसे प्रभावशाली संस्कृतियों में से एक है, सहस्राब्दियों तक फली-फूली, जिसने गहन दार्शनिक, आध्यात्मिक और कलात्मक परंपराओं को जन्म दिया। भारत धर्म (धार्मिकता), कर्म (कार्रवाई और उसके परिणाम) और मोक्ष (मुक्ति) जैसी प्रमुख सांस्कृतिक अवधारणाओं के विकास का केंद्र बन गया। हिंदू धर्म की नींव रखने वाले वैदिक ग्रंथों की रचना 1500 और 500 ईसा पूर्व के बीच हुई थी, जिसने भारतीय विचार और अनुष्ठान प्रथाओं को आकार दिया। महाभारत और रामायण जैसे महान महाकाव्यों ने नैतिक दुविधाओं और मानव स्वभाव की जटिलताओं को दर्शाया। समय के साथ, भारतीय सभ्यता ने अंक प्रणाली और शून्य की अवधारणा के आविष्कार सहित गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा और वास्तुकला में प्रगति में योगदान दिया। मूर्तिकला, नृत्य और संगीत में देखी जाने वाली कलात्मक अभिव्यक्ति भी मंदिरों, महलों और अन्य संरचनाओं के साथ उन्नत इंजीनियरिंग का प्रदर्शन करते हुए फली-फूली। प्राचीन भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत आध्यात्मिकता, दर्शन और कला को प्रभावित करते हुए वैश्विक स्तर पर गूंजती रहती है।

1. परिचय

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का संबंध न केवल बाहरी आचार-व्यवहार से है, बल्कि यह एक गहरी मानसिक और आत्मिक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के आंतरिक विकास, मानसिक शुद्धता और समाज के सामूहिक उत्थान से जुड़ी हुई है। भारतीय संस्कृति में जीवन को समग्रता में देखा जाता है, जिसमें व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी पहलुओं का संतुलन बनाए रखने पर बल दिया गया है।

संस्कृति शब्द का अर्थ

संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है "सम्यक् कृति", अर्थात वह क्रिया या कार्य जो समग्रता में

ठीक तरीके से की गई हो। संस्कृत शब्द 'कृति' का मतलब है कार्य, और 'सम्यक्' का अर्थ है सही, उपयुक्त या सम्पूर्ण। संस्कृति के इस अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृति केवल बाहरी आचार-व्यवहार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य मानव जीवन में पवित्रता और नैतिकता लाना है, ताकि वह अपनी आंतरिक विकृतियों (जैसे अहंकार, स्वार्थ, क्रोध, लोभ, आदि) को दूर कर सके। भारतीय संस्कृति के अनुसार, जब व्यक्ति अपने मानसिक और भावनात्मक विकारों से मुक्त हो जाता है, तो वह एक संस्कारी व्यक्ति बनता है और उसकी सांस्कृतिक चेतना का विकास होता है।

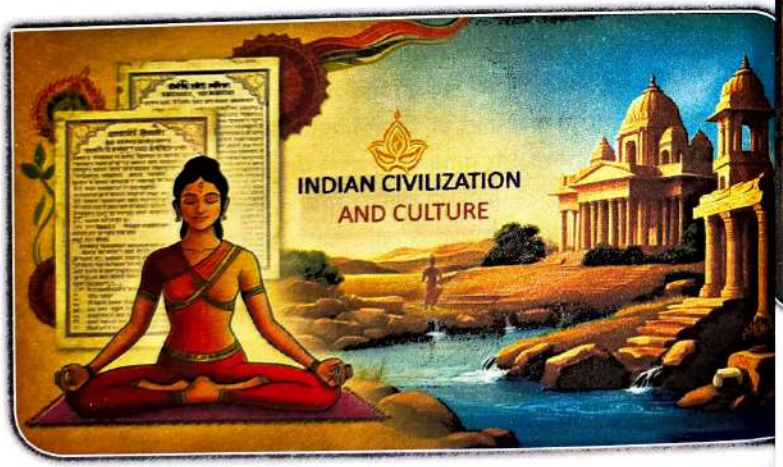

भारतीय संस्कृति और सभ्यता

"संस्कृति" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वेदों में हुआ है। यजुर्वेद के 7/14 श्लोक में इसे **"सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा"** के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो यह बताता है कि संस्कृति केवल एक सामाजिक या व्यक्तिगत विशेषता नहीं, बल्कि समस्त विश्व के लिए एक उच्च आदर्श है। यह वह स्थिति है जिसमें श्रेष्ठ कर्मों और सुकृत कर्मों का समुच्चय होता है, जो समाज और व्यक्ति के जीवन को उन्नत करता है। वेदों में संस्कृति को एक सार्वभौमिक सत्य और आदर्श के रूप में देखा गया है, जो केवल एक विशेष समय, स्थान या समुदाय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सभी मानवता के लिए है।

इस दृष्टि से संस्कृति एक ऐसा आदर्श है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—धर्म, कर्म, ज्ञान, और शिष्टाचार—में श्रेष्ठता की ओर प्रेरित करता है। इसे केवल एक विशेष देश, काल, या समूह के संदर्भ में नहीं देखा जा सकता। भारतीय ज्ञान परंपरा में संस्कृति को एक सार्वभौमिक और अपरिवर्तनीय सिद्धांत के रूप में समझा गया है, जिसमें किसी भी व्यक्ति या समाज को श्रेष्ठ कर्म और सृजनशीलता की ओर उन्मुख करने की शक्ति है।

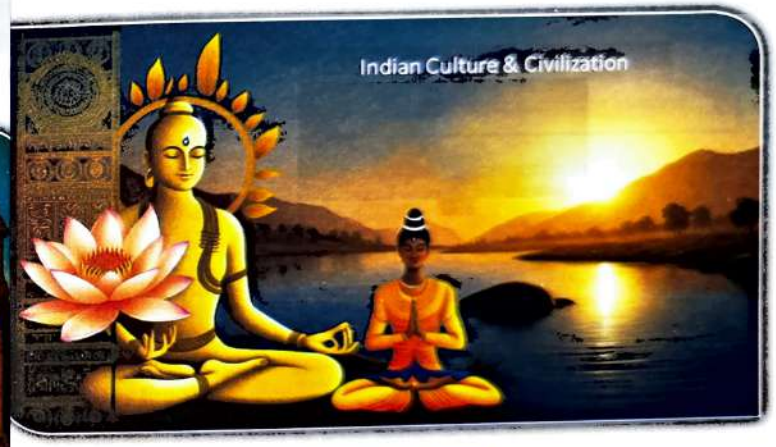

भारतीय संस्कृति और सभ्यता

2. संस्कृति की परिभाषा और आधुनिक प्रयोग

आधुनिक समय में "संस्कृति" शब्द का प्रयोग अधिकतर "कल्चर" (संस्कृति) के पर्याय के रूप में किया जाता है, जो कि मुख्यतः भिन्न-भिन्न देशों और समाजों के अलग-अलग आदतों, परंपराओं और जीवनशैली को दर्शाता है। इसमें समाज के रहन-सहन, भाषा, शिष्टाचार, शिल्प, कौशल, और पुरुषार्थ के विभिन्न रूपों का समुच्चय शामिल किया जाता है। यह समझ आधुनिक दृष्टिकोण में संस्कृति के विभिन्न रूपों की पहचान और वर्गीकरण की प्रक्रिया को व्यक्त करता है, जैसे भारतीय संस्कृति, ब्रिटिश संस्कृति, फ्रांसीसी संस्कृति, या अमेरिकी संस्कृति आदि।

लेकिन यह प्रयोग भारतीय परंपरा और वेदों में वर्णित संस्कृति के अर्थ से भिन्न है। भारतीय परंपरा में संस्कृति का अर्थ केवल श्रेष्ठ कर्मों और जीवन के सभी क्षेत्रों में आदर्श कार्यों से जुड़ा हुआ है। संस्कृति का उद्देश्य समाज और व्यक्ति को उच्चतम आदर्शों की ओर मार्गदर्शन करना है, जबकि जो कर्म इन आदर्शों के अनुरूप नहीं होते, वे विकृति माने जाते हैं। यजुर्वेद में संस्कृति को "विश्ववारा" कहा गया है, जिसका अर्थ है, समस्त विश्व के लिए वरण योग्य आदर्श। यह संस्कृति का अर्थ उन सिद्धांतों से अलग है, जिन्हें हम आजकल "कल्चर" या "सभ्यता" के रूप में समझते हैं।

3. सभ्यता और संस्कृति में अंतर

वस्तुतः, आजकल जिसे हम "कल्चर" (संस्कृति) कहते हैं, उसे अक्सर "सिविलाइजेशन" (सभ्यता) के रूप में भी लिया जाता है। आधुनिक समाज में संस्कृति और सभ्यता को एक ही मान लिया जाता है, और किसी समाज के सभी प्रमुख क्रियाओं, जैसे धर्म, शासन, शिष्टाचार, और कला को सभ्यता और संस्कृति के रूप में देखा जाता है।

लेकिन भारतीय दृष्टिकोण में सभ्यता और संस्कृति के बीच एक अंतर है। हमारे शास्त्रों में "सभ्य" व्यक्ति वह माना जाता है, जो धर्मनिष्ठ और विद्वानों की सभा में बैठने योग्य हो, अर्थात् जो समाज में श्रेष्ठ आचार और व्यवहार का पालन करता हो। इसे हम "समा" (सामाजिक समन्वय और आदर्श) के रूप में भी समझ सकते हैं, जहाँ समाज के सभी सदस्य ज्ञान और प्रज्ञा में समृद्ध होकर सामूहिक रूप से उच्चतम आदर्शों की ओर बढ़ते हैं।

संस्कृति	सभ्यता
इसमें धर्म, कला, दर्शन, साहित्य, संगीत, नृत्य आदि शामिल हैं।	प्राकृतिक घटना पर प्रौद्योगिकी का समावेश है
इसमें माप का कोई मानक नहीं है	इसमें माप का एक सटीक मानक है
आगे बढ़ने को लेकर निश्चित नहीं	हमेशा आगे बढ़ रहा है
यह आंतरिक और अंत है	यह बाह्य एवं साधन है
सभी समाजों में संस्कृति होती है	केवल कुछ ही समाजों में सभ्यता है
यह पहले आता है	यह बाद में आता है
यह किसी सभ्यता के विकास की पूर्व शर्त है	सांस्कृतिक उन्नति के एक चरण का प्रतिनिधित्व करता है

4. संस्कृति के दो स्तर

भारतीय संस्कृति में दो प्रमुख स्तर होते हैं: एक आध्यात्मिक (आत्मिक) और दूसरा लौकिक (भौतिक)।

1. **आध्यात्मिक स्तर (अतिमानस):-** आध्यात्मिक या अतिमानस स्तर पर व्यक्ति का अहंकार और द्वैत का भाव समाप्त हो जाता है। यहाँ वह स्थिति होती है जब व्यक्ति अपने अस्तित्व को केवल व्यक्तिगत रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे समग्रता में, एक परम चेतना के रूप में महसूस करता है। इस स्थिति में वह अपने आस-पास के सभी जीव-जंतुओं, पदार्थों और घटनाओं को एक अद्वितीय चेतना के रूप में देखता है।

   इस अनुभव को "ऋतंभरा प्रज्ञा" कहा जाता है, जो भारतीय दर्शन में एक विशेष प्रकार की जागरूकता या उच्चतम ज्ञान की स्थिति को व्यक्त करता है। इस स्थिति में व्यक्ति यह समझता है कि यह समग्र ब्रह्माण्ड और इसके सभी रूप-वस्तु, मन, भावनाएँ—सब एक ही परम चैतन्य (परमात्मा या ब्रह्म) से उत्पन्न होते हैं।

   इस दृष्टिकोण से, हर चीज़ की मूल प्रकृति एक ही है, और यह सब ब्रह्म के अनंत विस्तार का हिस्सा है। छांदोग्य उपनिषद् के एक श्लोक में कहा गया है: "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यानी "संपूर्ण संसार ब्रह्म है"। यहाँ तक कि व्यक्ति के विचार और मानसिक भावनाएँ भी उसी परम चेतना के विभिन्न रूप हैं।

2. **लौकिक स्तर (भौतिक और सामाजिक):** लौकिक स्तर पर, जहां हम भौतिक संसार को देखते हैं, द्वैत (अर्थात् भेद) का अनुभव होता है। यहाँ पर व्यक्ति अपने आस-पास की दुनिया को विभिन्न रूपों में और भिन्न-भिन्न व्यक्तित्वों के रूप में देखता है। इस स्थिति में, प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग पहचान, अपनी सीमाएँ और व्यक्तित्व का अनुभव करता है। इस द्वैत का अनुभव व्यक्ति को अपनी अलगाव की भावना से प्रेरित करता है, जिसके परिणामस्वरूप वह अहंकार, स्वार्थ, और अन्य मानसिक विकारों से प्रभावित होता है।



भारतीय संस्कृति के दो स्तर हैं– आध्यात्मिकता और भौतिकता।

इस भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण के कारण, व्यक्ति का मानसिक दृष्टिकोण संकीर्ण हो जाता है, और वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं, स्वार्थ और भौतिक लाभ के लिए समाज और दूसरों से अलग हो सकता है। यही कारण है कि लौकिक स्तर पर व्यक्ति का मानसिक संतुलन बनाए रखना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

5. संस्कार और आध्यात्मिकता का संबंध

भारतीय संस्कृति में इस द्वैत के अनुभव को नकारा नहीं गया है, बल्कि इसे स्वीकार करते हुए संस्कारों के माध्यम से आध्यात्मिकता से जोड़ने का प्रयास किया गया है। हालांकि व्यक्ति लौकिक द्वैत में रहते हुए अपनी अलग पहचान और विशेषताएँ महसूस करता है, फिर भी वह अपने जीवन को एक उच्चतर उद्देश्य के प्रति समर्पित करें।

संस्कार व्यक्ति को उसके मानसिक और आत्मिक स्तर पर उन्नति करने में मदद करते हैं। ये संस्कार व्यक्ति को अपने जीवन में आदर्श, नैतिकता और दिव्यता की ओर मार्गदर्शन करते हैं। भारतीय मनीषियों ने यह माना कि जब व्यक्ति अपने जीवन को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखता है, तो वह भौतिक संसार में रहते हुए भी शाश्वत सत्य और दिव्य चेतना से जुड़ा रह सकता है। संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति न केवल अपने

मानसिक विकारों को दूर करता है, बल्कि वह एक संतुलित और समर्पित जीवन जीने की कला भी सीखता है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास, समाज के उत्थान और आध्यात्मिक उन्नति को एक साथ जोड़ा गया है।

6. भारतीय विश्व-दृष्टि

भारतीय विश्व-दृष्टि एक अत्यंत गहरी और व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जो समग्र ब्रह्माण्ड और जीवन को एकात्मता में देखती है। भारतीय विचारधारा के अनुसार, समस्त सृष्टि में एक परम सत्ता या ब्रह्म का वास है, जो सब सभी का मूल है और सभी वस्तुएं उसी से उत्पन्न होती हैं, उसी में जीती हैं और उसी में समाहित हो जाती हैं। यह दृष्टि न केवल ब्रह्मांड की संरचना और सृष्टि के क्रम को समझाती है, बल्कि जीवन के उद्देश्य और मानवता के कर्मों को भी एक उच्चतम आध्यात्मिक और नैतिक संदर्भ में देखती है।

तैत्तिरीय उपनिषद में उल्लेख

तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म का महत्व इस प्रकार वर्णन किया गया है–

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।"

इसका अर्थ है कि जिस परम सत्ता से समस्त जीवों की उत्पत्ति होती है, जो उन्हें जीवन प्रदान करता है और जिसमें वे पुनः समाहित होते हैं, उसे जानना ही सर्वोत्तम ज्ञान है। यह ब्रह्म ही सृष्टि का मूल कारण, पालनकर्ता और लयकर्ता है। ब्रह्म का यह दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि समस्त कण, रूप और चेतना उसी के ही विविध रूप हैं। वह सत्य है, वह सर्वव्यापी है और वह ही सारे नियमों, तत्त्वों और व्यवस्थाओं का स्रोत है।

7. ब्रह्म और उसकी सर्वव्यापकता

भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण में, ब्रह्म को निराकार, निर्गुण, और सर्वव्यापी माना गया है। वह न केवल सृष्टि का कारण है, बल्कि वह उस सृष्टि का पालन और अंत भी करता है। वह सत्य है, और उसका कोई रूप, समय या स्थान से बंधा हुआ अस्तित्व नहीं है। ऋग्वेद के अनुसार, जो कुछ अस्तित्व में आ चुका है और जो आने वाला है, वह सभी परम पुरुष

के विभिन्न रूप हैं। ऋग्वेद में ब्रह्म के इस रूप को "सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद" के रूप में व्यक्त किया गया है, जो यह दर्शाता है कि वह अनंत रूपों में प्रकट होता है।

वेदों के अन्य श्लोकों में भी यही बात कही गई है कि ब्रह्म का कोई रूप विशेष नहीं है, बल्कि वह समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋग्वेद 1/164/46) इस श्लोक में यही संदेश दिया गया है कि ब्रह्म एक ही है, लेकिन उसे विभिन्न नामों और रूपों से पुकारा जाता है। यही वह तत्त्व है जो सबकी उत्पत्ति, पालन और लय का कारण है।

विराट् पुरुष और उसकी प्रकृति

ऋग्वेद में ब्रह्म के विराट् पुरुष रूप का वर्णन है, जिसमें सृष्टि का समग्र आकार उसके शरीर से जुड़ा हुआ है। विराट् पुरुष से ही समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई, और समस्त प्राकृतिक शक्तियाँ उसी के विभिन्न रूप हैं। इस विराट् पुरुष से ही देवसत्ताएँ उत्पन्न होती हैं, और उसी से धर्म का प्रथम रूप प्रकट हुआ। इस प्रकार, ब्रह्म और उसका विराट् रूप न केवल समग्र सृष्टि के लिए आधारभूत हैं, बल्कि वे सृष्टि के समस्त धार्मिक, भौतिक और मानसिक रूपों के भी केंद्र हैं।

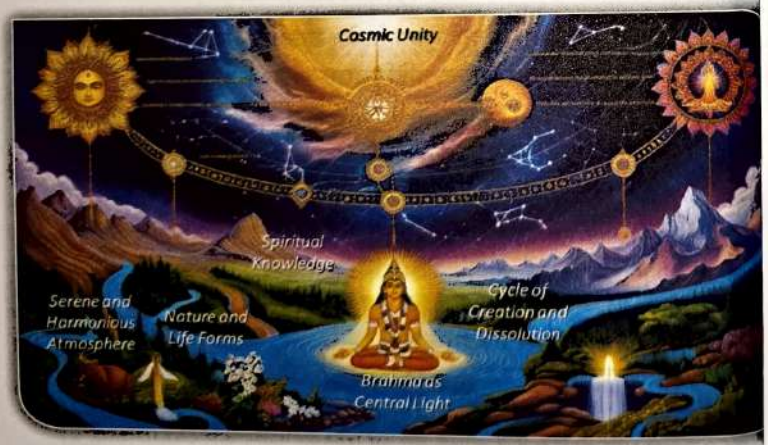

ब्रह्म: ब्रह्मांडीय वास्तविकता जो ब्रह्मांड के सभी पहलुओं को बांधती है - निराकार और गैर-द्वैत

निराकार और निरभेद ब्रह्म

भारत के धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण में ब्रह्म को निराकार और निरभेद रूप में समझा गया है। इसका अर्थ यह है कि ब्रह्म को न किसी एक रूप में संकुचित किया जा सकता है, न किसी एक धर्म, क्षेत्र या व्यक्ति विशेष में सीमित किया जा सकता है। भारतीय दृष्टि में, ब्रह्म सर्वव्यापी है और किसी विशेष रूप, विचारधारा, धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर उसकी परिभाषा नहीं की जा सकती।

"यस्य नाम महद्यशः" (यजुर्वेद 32/3) इस श्लोक में यह कहा गया है कि ब्रह्म का नाम सर्वव्यापी है, और उसके यश का प्रकाश सभी दिशाओं में व्याप्त है। यह उसकी अनंतता और सर्वव्यापकता का प्रतीक है।

धर्म और अधर्म

भारतीय विश्वदृष्टि के अनुसार, किसी विशेष देवता या व्यक्ति विशेष को उपास्य मानकर उसे ही सत्य मानना और उस पर आधारित धर्म या आदर्शों की स्थापना करना सनातन धर्म के सिद्धांतों के विरुद्ध है। सनातन धर्म का दृष्टिकोण यह है कि ब्रह्म सर्वव्यापी है और उसका कोई रूप विशेष नहीं हो सकता। इसलिए, किसी एक धर्म, विचारधारा, या व्यक्ति के माध्यम से ब्रह्म का प्रकाश फैलाना या किसी विशेष रूप में उसे स्वीकार करना एक प्रकार की मूढ़ता है। इस दृष्टिकोण से, किसी एक धर्म या विचारधारा को श्रेष्ठ मानकर उसे सभी पर लादने का प्रयास, भेदभाव और अधर्म है। यह भारतीय दृष्टिकोण में तमस (अंधकार) और पापाचार (पाप का कर्म) माना जाता है। यही कारण है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में किसी भी रूप में एकता का उल्लंघन और भेदभाव की प्रवृत्तियों को नकारा जाता है।

8. मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ

भारतीय संस्कृति और दार्शनिक दृष्टिकोण में, जीवन के उद्देश्य और लक्ष्य को चार प्रमुख पुरुषार्थों में बाँटा गया है: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन पुरुषार्थों को जीवन के चार स्तंभ माना जाता है, जिनके माध्यम से मानव जीवन का मार्गदर्शन किया जाता है। इनमें से तीन पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ और काम) लौकिक, सामाजिक और भौतिक जीवन से जुड़े होते हैं, जबकि चौथा पुरुषार्थ (मोक्ष) एक अलौकिक और व्यक्तिगत उद्देश्य है, जो आत्मिक उन्नति और परम सत्य की प्राप्ति से संबंधित है।

1. **धर्म:** धर्म का अर्थ केवल धार्मिक आस्थाओं से नहीं, बल्कि जीवन के नैतिक और वैचारिक आचरण से है। यह वह मार्ग है, जो व्यक्ति को सही कार्य, सत्य, न्याय और अच्छे आचरण की ओर निर्देशित करता है। धर्म न केवल व्यक्ति के निजी जीवन की दिशा निर्धारित करता है, बल्कि समाज में भी शांति की व्यवस्था बनाए रखता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन करते हुए समाज के प्रति अपने धर्म का निर्वाह करना चाहिए। मनुस्मृति में इसे सबसे महत्वपूर्ण पुरुषार्थ माना गया है। धर्म ही समाज को स्थिरता और समृद्धि प्रदान करता है।

2. **अर्थ:** अर्थ का तात्पर्य है जीवन की भौतिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति। यह वह पुरुषार्थ है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन के लिए आवश्यक संसाधन जुटाता है, जैसे धन, संपत्ति, और सुख-सुविधाएं। अर्थ का उद्देश्य केवल भोग नहीं होता, बल्कि यह एक साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने धर्म का पालन कर सकता है और समाज के कल्याण में योगदान दे सकता है। मनुष्य को स्वयं और परिवार के कल्याण हेतु अर्थ की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए परन्तु यह प्रयास किसी भी प्रकार के अधर्म और भ्रष्टाचार से रहित होना चाहिए।

3. **काम:** काम का अर्थ है भोग, सुख और इच्छाओं की संतुष्टि। यह पुरुषार्थ व्यक्तिगत इच्छाओं और भावनाओं की पूर्ति के लिए है। इसका उद्देश्य है शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक संतुष्टि प्राप्त करना। काम के अंतर्गत जीवन के आनंद, प्रेम, परिवार, रिश्ते और अन्य व्यक्तिगत सुख आते हैं। हालांकि, काम की साधना भी एक संतुलित और संयमित तरीके से की जानी चाहिए, ताकि यह धर्म और अर्थ के अनुरूप रहे, और किसी प्रकार की अति या अधर्म की ओर न बढ़े।

4. **मोक्ष:-** मोक्ष को "परम पुरुषार्थ" के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह आत्मा के शाश्वत और अद्वितीय उद्देश्य को पूरा करता है। मोक्ष का अर्थ है आत्म-साक्षात्कार और संसार के भ्रम से मुक्ति। यह जीवन के भौतिक और मानसिक बंधनों से परे, आत्मा की शुद्धता और परम सत्य की प्राप्ति है। मोक्ष जीवन के अंतिम लक्ष्य के रूप में माना जाता है, और यह मुख्य रूप से एक व्यक्ति का आत्मिक और अलौकिक प्रयास है। मोक्ष के माध्यम से व्यक्ति जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है और ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाता है।

मनुस्मृति और अन्य भारतीय ग्रंथों में मोक्ष को सामान्य जीवन का लक्ष्य नहीं माना गया है, बल्कि इसे एक विशेष आध्यात्मिक धर्म और उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि मोक्ष को एक सामान्य धर्म या सर्वसामान्य लक्ष्य के रूप में नहीं देखा जाता। मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मोक्ष एक विशिष्ट और परम धर्म है, जो केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए उपयुक्त है, जिनकी मानसिकता गृहस्थ जीवन और सांसारिक इच्छाओं से मुक्त हो चुकी हो।



चार पुरुषार्थ: धर्म, अर्थ, कर्म और मोक्ष

मोक्ष का मार्ग और उपासना

मनुस्मृति में यह भी स्पष्ट किया गया है कि मोक्ष के लिए व्यक्ति को पहले अपने सभी "ऋणों" (देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण) से मुक्त होना चाहिए। इसके बाद, वह केवल मोक्ष की साधना के लिए अपने जीवन को समर्पित कर सकता है। "ऋण चुकाए बिना जो मोक्षार्थी होता है, वह अधोलोक में जाता है" (मनु. 6/35) इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि मोक्ष की साधना केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए संभव है, जो पहले अपने धर्म, समाज और परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन कर चुके होते हैं।

अंततः, मोक्ष केवल एक आध्यात्मिक साधना और उच्चतम उद्देश्य है, जो संसार

के भौतिक सुखों और भोगों से परे है। यह पुरुषार्थ शुद्ध आत्मज्ञान, निरंतर साधना और परमात्मा के साथ एकता की प्राप्ति के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

9. आतिथ्य और उदारता

भारतीय संस्कृति में दो सबसे गहरे रूप से समाहित मूल्य हैं—आतिथ्य और उदारता। 'अतिथि देवो भव' ("अतिथि भगवान के समान है") और 'दान' (देने की क्रिया) जैसे वाक्यांशों के माध्यम से पहचाने जाने वाले ये सिद्धांत केवल शिष्टाचार या दान तक सीमित नहीं हैं। ये नैतिक अनिवार्यताएँ, आध्यात्मिक अभ्यास और सामाजिक दायित्व हैं जो हजारों वर्षों से भारत की सांस्कृतिक चेतना में समाहित हैं।

अतिथि देवो भव: आतिथ्य की पवित्रता

संस्कृत वाक्यांश 'अतिथि देवो भव' प्राचीन 'तैत्तिरीय उपनिषद' से उत्पन्न हुआ है, जहाँ छात्रों को यह सलाह दी जाती है कि वे अतिथियों को उसी श्रद्धा के साथ सम्मानित करें जैसे वे देवताओं को सम्मानित करते हैं। शब्द 'अतिथि' का शाब्दिक अर्थ है "जो निश्चित तिथि के बिना आता है," जो अतिथि के आगमन की अप्रत्याशितता और उन्हें स्नेह और सम्मान के साथ स्वागत करने के महत्व को दर्शाता है।

यह मूल्य भारतीय घरेलू जीवन में गहरे रूप से बुना गया है–

- **स्वागत:** किसी भी आगंतुक को—चाहे वह अपेक्षित हो या नहीं—पानी, नाश्ता या मिठाई देना एक सांस्कृतिक मान्यता है। यह भावना भारतीय समाज में आदर का प्रतीक है।
- **अतिथि की प्राथमिकता:** मेज़बान अक्सर यह सुनिश्चित करने के लिए अपनी ओर से प्रयास करते हैं कि अतिथि को भोजन, विश्राम और आराम मिले, कभी-कभी वे अपना बिस्तर भी दे देते हैं या अपना भोजन अतिथि के बाद करते हैं।
- **कोई भेदभाव नहीं:** भारत में पारंपरिक आतिथ्य धर्म, धर्म, जाति या सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव नहीं करता। यह उच्च आध्यात्मिक दृष्टिकोण को दर्शाता है कि सभी प्राणी दिव्य हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में, यह सिद्धांत और भी जीवित है। एक यात्री को एक अजनबी के घर आमंत्रित किया जा सकता है, उसे भोजन और पानी दिया जा सकता है, और परिवार के

सदस्य के रूप में सम्मानित किया जा सकता है—भले ही कोई पूर्व परिचय न हो। यह भारत की सार्वभौमिक रिश्तेदारी की प्रतिबद्धता का प्रतिबिंब है। यह सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर्यटन और सेवा क्षेत्रों में भी विस्तारित होता है। भारत सरकार ने 'अतिथि देवो भव' को अपनी पर्यटन अभियानों में एक प्रमुख नारा के रूप में अपनाया, जिसका उद्देश्य भारत की गर्म आतिथ्य परंपरा में गर्व उत्पन्न करना और नैतिक पर्यटन प्रथाओं को बढ़ावा देना है।

दान: देने की नैतिक और आध्यात्मिक क्रिया

भारतीय उदारता केवल एक सामाजिक दायित्व नहीं है—यह एक पवित्र क्रिया है जो आत्मा को शुद्ध करती है, अहंकार को कम करती है, और सामाजिक समानता बनाती है। वेदों में निहित और विभिन्न धर्मों में प्रचलित, दान भारतीय धर्म के छह सिद्धियों (षड्गुण्य) में से एक है।

दान के कई प्रकार हैं, प्रत्येक के विभिन्न उद्देश्य और परिणाम हैं:

- **विद्या दान:** ज्ञान का दान, जिसे देने के सर्वोत्तम रूपों में से एक माना जाता है।
- **अन्न दान:** भोजन का दान, जो मंदिरों, घरों और धार्मिक त्योहारों में व्यापक रूप से प्रचलित है।
- **वस्त्र दान:** गरीबों और जरूरतमंदों को वस्त्र देना।
- **भूमि दान:** भूमि का दान, जो ऐतिहासिक रूप से धार्मिक और सामाजिक कल्याण के लिए राजाओं और जमींदारों द्वारा किया जाता था।
- **आरोग्य दान:** स्वास्थ्य का दान, जैसे उपचार, दवाइयाँ या अस्पतालों के लिए धन देना।

भारतीय मंदिरों में, विशेष रूप से प्रमुख त्योहारों के दौरान, 'अन्नदान' (भोजन दान) बड़े पैमाने पर किया जाता है। अमृतसर के स्वर्ण मंदिर, तिरुमाला मंदिर और इस्कॉन केंद्र जैसे संस्थान प्रतिदिन हजारों मुफ्त भोजन परोसते हैं, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या पृष्ठभूमि से हो। जैन धर्म और बौद्ध धर्म में, दान मुक्ति (मोक्ष या निर्वाण) के प्राथमिक मार्गों में से एक है। उदाहरण के लिए, जैन भिक्षु केवल भिक्षाटन पर जीवित रहते हैं और केवल उन्हीं से भोजन स्वीकार करते हैं जो इसे पवित्रता और भक्ति के साथ प्रस्तुत करते हैं, जिससे देने वाले की साझा आध्यात्मिक यात्रा में भूमिका मजबूत होती है।

धार्मिक और सामाजिक परंपराओं में आतिथ्य

आतिथ्य और उदारता भारत की प्रत्येक धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा में अभिन्न हैं:

- **हिंदू धर्म:** अतिथि सेवा और दान को पुण्य के कार्य के रूप में महत्व देता है। दीपावली और नवरात्रि जैसे त्योहारों के दौरान, लोग न केवल दूसरों को अपने घर आमंत्रित करते हैं, बल्कि मंदिरों, अनाथालयों और गरीबों को भी दान करते हैं।
- **ईसाई धर्म:** भारत भर में ईसाई समुदाय क्रिसमस और ईस्टर उत्सवों के हिस्से के रूप में खाद्य अभियान, दान और सामुदायिक भोजन में संलग्न होते हैं।
- **सिख धर्म:** लंगर के माध्यम से उदारता को संस्थागत करता है, जो दुनिया भर के गुरुद्वारों में किसी को भी मुफ्त में भोजन प्रदान करता है—दान की क्रिया का एक जीवंत उदाहरण।
- **बौद्ध धर्म:** दान पारमिता (देने की सिद्धि) को छह सिद्धियों में से एक के रूप में बढ़ावा देता है जो प्रबोधन की ओर ले जाती है।

ये प्रथाएँ दर्शाती हैं कि आतिथ्य और उदारता केवल व्यक्तियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि भारत में संस्थानों, अनुष्ठानों और सामुदायिक जीवन में समाहित हैं।

दान और आतिथ्य का सामाजिक प्रभाव

आतिथ्य और उदारता के मूल्य सीधे सामाजिक एकजुटता और सद्भाव में योगदान करते हैं। ये करुणा और विनम्रता को बढ़ावा देकर सामाजिक पदानुक्रमों को कम करते हैं। संकट के समय—चाहे वह प्राकृतिक आपदाएँ हों, आर्थिक कठिनाइयाँ हों, या महामारियाँ—भारतीय समाज ने अक्सर सामूहिक दान, सामुदायिक रसोई और स्वयंसेवी-प्रेरित समर्थन प्रणालियों के माध्यम से प्रतिक्रिया दी है।

इसके अतिरिक्त, ये मूल्य सामाजिक समानता के रूप में कार्य करते हैं। जब भोजन सभी को परोसा जाता है, तब अतिथियों को दिव्य के रूप में सम्मानित किया जाता है, और जब संपत्ति बिना किसी प्रत्याशा के साझा की जाती है, तो सामाजिक विभाजन मिटने लगते हैं। यही कारण था कि महात्मा गांधी ने सेवा और सरलता के माध्यम से 'सर्वोदय' (सभी का कल्याण) के महत्व पर बल दिया। आज की दुनिया में, जहाँ व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद अक्सर हावी होते हैं, ये भारतीय मूल्य एक प्रतिकथन प्रस्तुत करते हैं—जो सहानुभूति, समावेशन और साझा करने पर बल देते हैं।

आधुनिक भारतीय संदर्भ में आतिथ्य और उदारता

आधुनिक भारत में इन मूल्यों का रचनात्मक विकास देखा गया है–

- **शहरी सामाजिक आंदोलन:** रॉबिन हुड आर्मी, दान उत्सव (Joy of Giving Week), और सामुदायिक फ्रिज कार्यक्रम जैसे पहल दान के नए युग के रूपों को दर्शाते हैं।
- **डिजिटल परोपकारिता (क्राउडफंडिंग प्लेटफ़ॉर्म):** अब व्यक्तियों को शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और राहत कार्यों के लिए प्रायोजित करने की अनुमति देते हैं, जिससे दान तक पहुँच का विस्तार होता है।
- **कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी (CSR):** कई भारतीय व्यवसाय अब CSR कार्यक्रमों के माध्यम से दान को संस्थागत रूप देते हैं—स्कूलों, अस्पतालों और ग्रामीण विकास के लिए धन प्रदान करते हैं।
- **आतिथ्य उद्योग:** भारतीय होटल और पर्यटन क्षेत्र 'अतिथि देवो भव' के प्रसंग में कर्मचारियों को प्रशिक्षित करके पारंपरिक आतिथ्य को सक्रिय रूप से बढ़ावा देते हैं, जिससे अतिथि अनुभव और सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व दोनों में सुधार होता है।

हालाँकि भारतीय समाज के कई हिस्सों में भौतिक संपत्ति में वृद्धि हुई है, वहीं दान और नैतिक आतिथ्य के प्रति जागरूकता भी बढ़ी है। ये मूल्य समकालीन ढाँचों में अनुकूलित हो रहे हैं, जो पीढ़ियों के बीच उनकी प्रासंगिकता को सिद्ध करते हैं।

10. परिवार और समुदाय

संयुक्त परिवार: भारतीय समाज की नींव

संयुक्त परिवार प्रणाली पारंपरिक भारतीय जीवन की एक विशेषता है। यह केवल एक आवासीय व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत से अधिक सामूहिकता में विश्वास को दर्शाती है। ऐसे घरों में तीन या तीन से अधिक पीढ़ियाँ एक साथ रहती हैं, जिम्मेदारियाँ, आय और दैनिक जीवन साझा करती हैं। यह प्रणाली एकता की भावना पर आधारित है। परिवार के वरिष्ठ पुरुष—अक्सर दादा—परिवार के प्रमुख के रूप में कार्य करते हैं, महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं और छोटे सदस्यों का मार्गदर्शन करते हैं। महिलाएँ देखभालकर्ता, सांस्कृतिक संवाहक और घर की प्रबंधक के रूप में समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका

निभाती हैं। बच्चे रिश्तेदारों से घिरे रहते हैं, जो शिक्षक, रक्षक और साथी के रूप में कार्य करते हैं, जिससे जड़ता और स्थिरता की भावना विकसित होती है।

इस प्रणाली के लाभ केवल भावनात्मक नहीं हैं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक भी हैं। जैसे भोजन, आवास और धन साझा करना, व्यक्तिगत बोझ को कम करता है। जीवन के महत्वपूर्ण अवसरों—जैसे विवाह, अंतिम संस्कार या त्योहारों—के दौरान, संयुक्त परिवार एक समर्थन प्रणाली के रूप में कार्य करता है, यह सुनिश्चित करता है कि अनुष्ठान पूर्ण भागीदारी और श्रद्धा के साथ किए जाएं। हालाँकि आधुनिक शहरीकरण ने न्यूक्लियर परिवारों की ओर धीरे-धीरे बदलाव किया है। कई मामलों में, परिवार अब दूरियों के बावजूद भी निकट संबंध बनाए रखते हैं, नियमित रूप से एक-दूसरे से मिलते हैं और प्रौद्योगिकी के माध्यम से जुड़े रहते हैं।

आपसी निर्भरता: एक सांस्कृतिक आदर्श

भारतीय विचारधारा में, आपसी निर्भरता एक गुण है, कमजोरी नहीं। यह विश्वास आध्यात्मिक सिद्धांतों से उत्पन्न होता है जैसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्'—'संपूर्ण पृथ्वी एक परिवार है'—और यह दैनिक जीवन में व्यक्त होता है। यह विचार कि किसी का जीवन दूसरों से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है, बचपन से सिखाया जाता है।

बच्चे जल्दी ही घरेलू कामों में योगदान देना, छोटे भाई-बहनों की देखभाल करना और बड़ों का सम्मान करना सीखते हैं। वयस्क होने पर, ये मूल्य वृद्ध माता-पिता की देखभाल, जरूरतमंद भाई-बहनों का समर्थन और विस्तारित रिश्तेदारों के साथ जीवनभर के संबंध बनाए रखने में विस्तारित होते हैं।

आपसी समर्थन की यह सांस्कृतिक प्रवृत्ति अनुष्ठानों और प्रथाओं में परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए, रक्षाबंधन जैसे त्योहारों के दौरान भाई-बहनों के पवित्र रिश्ते का सम्मान किया जाता है; विवाहों के दौरान, मातृ और पितृ पक्ष दोनों सक्रिय भूमिकाएँ निभाते हैं। सामाजिक संरचना दूसरों में भावनात्मक निवेश को प्रोत्साहित करती है, यह पहचानते हुए कि एक-दूसरे का समर्थन करने से व्यक्ति मजबूत बनते हैं। यह प्रवृत्ति शहरी क्षेत्रों में भी देखी जाती है, जहाँ जीवन तेज़-तर्रार और खंडित हो सकता है, फिर भी भारतीय अक्सर पड़ोसियों और सहकर्मियों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाते हैं, जो गाँव जैसे समुदाय की भावना को प्रतिध्वनित करता है। चाहे वह पड़ोसी से सामान उधार लेना, स्कूल पिक-अप में मदद करना, या स्थानीय आयोजनों में भाग लेना हो, इन सबसे साझा जिम्मेदारी की भावना बनी रहती है।

विवाह: एक पारिवारिक मामला

भारतीय संस्कृति में, विवाह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं है, बल्कि दो परिवारों का मिलन है, जो अक्सर विभिन्न सांस्कृतिक या क्षेत्रीय पृष्ठभूमियों से होते हैं। विवाह के प्रति यह सामूहिक दृष्टिकोण इसके संस्थान को देखने और अभ्यास करने के तरीके पर गहरा प्रभाव डालता है। व्यवस्थित विवाह, विशेष रूप से अर्ध-शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य हैं। परिवार विवाह संयोजन प्रक्रिया में सहायक के रूप में कार्य करते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि संगतता केवल जोड़े तक सीमित नहीं है, बल्कि साझा मूल्यों, भाषा, रीति-रिवाजों और जीवनशैली को भी शामिल करती है। यहाँ तक कि प्रेम विवाहों में भी, परिवार की स्वीकृति महत्वपूर्ण रहती है, जो रिश्तेदारों के केंद्रीय स्थान को रेखांकित करती है।

विवाह समारोह स्वयं विस्तृत और बहु-दिनों तक चलने वाले होते हैं, जिनमें विभिन्न अनुष्ठान होते हैं जो आपसी सम्मान, जिम्मेदारी और मिलन का प्रतीक होते हैं। प्रमुख परिवार सदस्य सक्रिय भूमिकाएँ निभाते हैं: माता-पिता कन्यादान (दुल्हन को देना) करते हैं, चाचा-चाची अनुष्ठान करते हैं, और भाई-बहन विभिन्न परंपराओं में भाग लेते हैं। अतिथि केवल दर्शक नहीं होते, बल्कि सहभागी होते हैं, जो व्यापक समुदाय के आपसी बंधनों को मजबूत करते हैं। इन रीति-रिवाजों के माध्यम से, विवाह एक सामाजिक संस्थान के रूप में कार्य करता है जो सामुदायिक संबंधों को मजबूत करता है और कर्तव्य (कर्तव्य), निष्ठा (निष्ठा) और सामंजस्य (सामंजस्य) के मूल्यों को सुदृढ़ करता है।

हर रोज़ की ज़िन्दगी में समुदाय की भूमिका

भारतीय गांवों में, समुदाय एक विस्तारित परिवार की तरह काम करता है। प्रत्येक परिवार एक-दूसरे से आर्थिक, धार्मिक और भावनात्मक संबंधों के माध्यम से जुड़ा होता है। इस नजदीकी का अहसास ग्राम पंचायत जैसी स्थानीय शासन व्यवस्थाओं के माध्यम से बनाए रखा जाता है, जहाँ गाँव के बुजुर्ग और प्रतिनिधि विवादों का समाधान करते हैं और सामूहिक निर्णय लेते हैं। समुदायिक त्योहार, सामूहिक प्रार्थनाएँ (सत्संग), और सहकारी खेती कुछ उदाहरण हैं कि लोग नियमित रूप से एकत्र होते हैं। यह न केवल एकता को बढ़ावा देता है, बल्कि यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी पीछे न रहे—चाहे वह किसी आपदा के बाद घर को पुनर्निर्माण करना हो या एक गरीब परिवार के लिए शादी आयोजित करना।

शहरी इलाकों में, आवासीय परिसर इस सामूहिकता के अहसास को अक्सर दर्शाती हैं। पड़ोसी त्योहार मनाते हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करते हैं, और सुरक्षा या सफाई जैसे मुद्दों पर सहयोग करते हैं। COVID-19 महामारी जैसे चुनौतीपूर्ण समय में भी, समुदायों ने भोजन वितरण, ऑक्सीजन सहायता और चिकित्सा सहायता का आयोजन किया, यह दर्शाता है कि आपसी सहयोग के सांस्कृतिक मूल्य आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार बदलते हैं। धार्मिक केंद्र भी समुदाय के केंद्र के रूप में कार्य करते हैं। ये केवल पूजा स्थल नहीं होते, बल्कि शिक्षा, दान और सामाजिक संवाद के केंद्र होते हैं।

बुजुर्ग और पूर्वज (परिवार के स्तम्भ)

परिवार के स्तंभ बुजुर्गों का सम्मान भारतीय परिवार जीवन का एक ऐसा मूल्य है जो हर पहलु में समाहित है। घर में दादी-नानी का होना अक्सर एक आशीर्वाद माना जाता है। उन्हें न केवल बच्चों के देखभाल करने वाले के रूप में देखा जाता है, बल्कि वे पारंपरिक ज्ञान, परंपरा और परिवार के इतिहास के वाहक भी होते हैं। सरल रोज़मर्रा की आदतें—जैसे बुजुर्गों के चरण-स्पर्श करना, उन्हें सबसे पहले भोजन देना, या परीक्षा से पहले उनका आशीर्वाद लेना रोज़ की ज़िन्दगी का हिस्सा होती हैं। ये प्रथाएँ विनम्रता, आभार और जीवन के अनुभव के प्रति श्रद्धा सिखाती हैं। यह सम्मान उन लोगों तक भी पहुँचता है जो अब जीवित नहीं हैं। पूर्वजों को श्रद्धांजलि देने के लिए श्राद्ध और पितृपक्ष जैसी वार्षिक अनुष्ठान किए जाते हैं, जिनमें भोजन अर्पित किया जाता है और प्रार्थनाएँ की जाती हैं। यह विश्वास है कि किसी का जीवन उन लोगों के कर्मों और आशीर्वादों से जुड़ा होता है जो उनसे पहले आए थे। आधुनिक दबावों के बावजूद बुजुर्गों की देखभाल पर निरंतर जोर इस स्थायी मूल्य का प्रमाण है। आज भी, भारतीय परिवारों में माता-पिता को वृद्धाश्रम भेजना एक भावनात्मक संघर्ष के रूप में देखा जाता है, और देखभाल एक सामूहिक पारिवारिक जिम्मेदारी बनी रहती है।

परिवार में महिलाओं की भूमिका

महिलाएँ सदैव से भारतीय परिवार में एक मुख्य भूमिका निभाती रही हैं—बेटियों, पत्नियों, माताओं और परंपरा की संरक्षिकाओं के रूप में। वे अक्सर घर का भावनात्मक आधार होती हैं, जो नैतिक और सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखती हैं। संयुक्त परिवारों में, महिलाएँ पारंपरिक रूप से घर के रोज़मर्रा के कामों का प्रबंधन करती हैं, विवादों का

समाधान करती हैं, और बच्चों को मूल्यों और रिवाजों के बारे में सिखाती हैं। त्योहारों, अनुष्ठानों और पारिवारिक कार्यक्रमों का आयोजन अक्सर उनके नेतृत्व में होता है। इन कार्यों के माध्यम से महिलाएँ परिवार की भावनात्मक भलाई की अदृश्य वास्तुकार के रूप में कार्य करती हैं।

आधुनिक भारत में, महिलाओं की भूमिका तेजी से बढ़ रही है। अधिक महिलाएँ पेशेवर, उद्यमी और सार्वजनिक जीवन में नेता बन रही हैं। फिर भी, कई महिलाएँ इन भूमिकाओं को घर की जिम्मेदारियों के साथ संतुलित करती हैं। यह द्वैत—परंपरा को पोषित करना और आधुनिकता को अपनाना—भारतीय परिवार को फिर से आकार दे रहा है। शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता ने महिलाओं को विवाह, पालन-पोषण और देखभाल के बारे में सूचित निर्णय लेने का अधिकार दिया है।

आधुनिक समय में पारिवारिक मूल्य

भारतीय परिवार की संरचना विकसित हो रही है, लेकिन इसका स्वरूप आज भी बहुत ज्यादा नहीं बदला है। शहरीकरण, वैश्विक प्रवास और प्रौद्योगिकी परिवर्तन ने परिवारों के रहने और संवाद करने के तरीकों को बदला है, लेकिन पारिवारिक संबंधों के महत्व में कोई कमी नहीं आई है। प्रौद्योगिकी ने इन संबंधों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वीडियो कॉल, समूह वार्तालाप और ऑनलाइन उत्सवों के माध्यम से वे परिवार जो भौतिक रूप से दूर हैं, मानसिक रूप से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। कहानियाँ अब भी सुनाई जाती हैं, आशीर्वाद अब भी लिया जाता है, और परंपराएँ अब भी मनाई जाती हैं—चाहे वह स्क्रीन के माध्यम से हो।

भारतीय प्रवासी समुदाय इन मूल्यों को विदेशों में संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अमेरिका, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में सामुदायिक केंद्र, मंदिर और सांस्कृतिक संगठन परंपराओं को बनाए रखने के केंद्र के रूप में कार्य करते हैं। दूसरी पीढ़ी के भारतीय लोग क्षेत्रीय भाषाएँ सीखने, पारंपरिक त्योहार मनाने और अपनी धरोहर को समझने के प्रयासों में बढ़-चढ़कर शामिल हो रहे हैं। इसके अलावा, आधुनिक भारतीय पारिवारिक मूल्यों की प्रगतिशील तरीकों से फिर से व्याख्या कर रहे हैं—रूढ़ियों को चुनौती दे रहे हैं, रिश्तों में समानता को बढ़ावा दे रहे हैं, और पारिवारिक संरचनाओं में समावेशिता का समर्थन कर रहे हैं। ये परिवर्तन यह संकेत देते हैं कि भारतीय संस्कृति स्थिर नहीं है बल्कि अनुकूलित हो रही है, अपने मूल्यों को बनाए रखते हुए समय के साथ विकसित हो रही है।

11. भारत की शौर्य संस्कृति एवं शौर्य परंपरा

भारत की संस्कृति का आधार विशेष रूप से धर्म, वीरता, और शौर्य पर आधारित है। भारतीय दर्शन में शौर्य को एक महत्वपूर्ण मूल्य माना गया है, जो न केवल व्यक्तिगत बल या युद्ध की वीरता को दर्शाता है, बल्कि यह धर्म, संस्कृति और समाज की रक्षा के लिए उठाए गए साहसिक कदमों का प्रतीक भी है। भारतीय शौर्य संस्कृति का एक प्रमुख पहलू यह है कि यह केवल शारीरिक शक्ति की नहीं, बल्कि आत्मिक और मानसिक बल की भी उपासना करती है।

भारतीय संस्कृति में शौर्य और वीरता का स्थान अत्यधिक महत्व रखता है। शौर्य केवल युद्धक्षेत्र में सफलता या शारीरिक बल से जुड़ा हुआ नहीं है, बल्कि यह धर्म की रक्षा, सत्य की स्थापना, और समाज की सुरक्षा के लिए अपने कर्तव्यों का पालन करने का नाम है। अथर्ववेद में इस शौर्य की कामना की गई है, जहाँ देवताओं से यह प्रार्थना की जाती है कि वे सूर्य के तेज और अग्नि की प्रभा के समान चमकते हुए जीवन के सर्वोत्तम ऐश्वर्य का भोग करें और शत्रुओं का संहार करें।

भारतीय संस्कृति में धर्म, स्वधर्म और यज्ञ की रक्षा को शौर्य की ऊंची श्रेणी माना गया है। इसीलिए शौर्य केवल युद्ध के दौरान बलवान होना नहीं, बल्कि जीवन के उच्चतम आदर्शों का पालन करते हुए अपने समाज और संस्कृति की रक्षा करना भी है। भारतीय संस्कृति में जो वीरता सर्वोच्च मानी जाती है, वह धर्म और यज्ञ की रक्षा से जुड़ी हुई है। भारतीय मान्यता के अनुसार, धर्म की रक्षा के लिए दुष्टों का संहार और सज्जनों की रक्षा आवश्यक है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में अवतारों को महिमामंडित किया गया है, जैसे कि नरसिंह, परशुराम, राम और कृष्ण, जिनकी महिमा धर्म की स्थापना, यज्ञ की रक्षा और दुष्टों का संहार करने के कारण है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा भी है -

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे" (गीता 8/4)

जिसका अर्थ है कि धर्म की स्थापना के लिए वह समय-समय पर अवतार लेते हैं और धर्म की रक्षा के लिए दुष्टों का संहार करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि धर्म की रक्षा के लिए युद्ध में की गई हिंसा को एक प्रकार से अहिंसा ही माना जाता है, क्योंकि यह कर्तव्य और धर्म की साधना का हिस्सा होता है।

ब्रह्मचर्य और शौर्य

भारत में शौर्य का सिद्धांत जीवन के विभिन्न आश्रमों में व्याप्त है। भारतीय जीवन के आश्रमों में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास का अपना विशेष स्थान है। इन आश्रमों में वीरता और शौर्य को व्यक्तिगत विकास और समाज की सेवा से जोड़ा गया है।

- **ब्रह्मचर्य आश्रम:** इस आश्रम में विद्यार्थी के रूप में जीवन के पहले चरण में शौर्य का शुद्ध रूप दिखाई देता है, जो ज्ञान की प्राप्ति के लिए कठिन साधना करता है। उपनयन संस्कार के माध्यम से जीवन की दिशा निर्धारित की जाती है, और यहाँ शौर्य का अर्थ शारीरिक बल के साथ-साथ मानसिक और बौद्धिक दृढ़ता से भी है।
- **गृहस्थ आश्रम:** इस आश्रम में व्यक्ति को सांसारिक जीवन की जिम्मेदारियों को निभाने के साथ-साथ शौर्य का परिचय देना होता है। यह अवस्था परिवार की रक्षा, समाज के कल्याण और धर्म के पालन में वीरता का परिचय देती है।
- **वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम:** इस अवस्था में व्यक्ति अपनी सांसारिक जिम्मेदारियों से मुक्त होकर आत्मा की उन्नति की ओर बढ़ता है, लेकिन वह शास्त्रों और धर्म की रक्षा में जुटा रहता है। संन्यास के समय भी शौर्य को महत्त्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि यह अवस्था आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होने के लिए साहसिक और मानसिक शुद्धता की आवश्यकता दर्शाती है।

देवी-देवताओं का शौर्य और शस्त्रधारण

भारतीय शास्त्रों में देवी-देवताओं को शस्त्रधारी के रूप में दर्शाया गया है। देवता जैसे गदा, चक्र, परशु, खड्ग, धनुष-बाण, वज्र आदि शस्त्रों से सुसज्जित होते हैं, जो शौर्य और रक्षा के प्रतीक माने जाते हैं। देवी-देवताओं के हाथों में अनेक प्रकार के शस्त्र होते हैं, जो उनके सामर्थ्य और बल को दर्शाते हैं। देवियाँ भी चतुर्भुजा, षड्भुजा, अष्टभुजा आदि रूपों में शस्त्रों से सुसज्जित रहती हैं, जिससे यह संदेश मिलता है कि महिलाओं को भी अपने संरक्षण के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से सशक्त होना चाहिए।

शौर्य और अहिंसा का संतुलन

बुद्धोत्तर काल में जब अहिंसा की अवधारणा का प्रभाव बढ़ा, तो देवी-देवताओं को निःशस्त्र रूप में चित्रित किया जाने लगा। इसके परिणामस्वरूप समाज में शस्त्रधारण की

परंपरा शिथिल होती गई। लेकिन भारतीय परंपरा में शौर्य और अहिंसा का संतुलन हमेशा बनाए रखा गया है। युद्ध की हिंसा को धर्म और न्याय की रक्षा के रूप में देखा गया, जबकि अहिंसा को जीवन में शांति और प्रेम के रूप में स्वीकार किया गया।

12. प्राचीन भारत में राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणा

प्राचीन भारत में राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणा आज की तरह नहीं थी, बल्कि यह एक अद्वितीय और व्यापक दृष्टिकोण से जुड़ी हुई थी। भारतीय समाज और राजनीति की नींव धर्म, संस्कृति, और सामाजिक संगठन पर आधारित थी, और राष्ट्र की धारणा मुख्यतः इन तत्वों से जुड़ी हुई थी। यहाँ राष्ट्र का मतलब सिर्फ भौगोलिक सीमाओं और राजनीतिक पहचान से नहीं था, बल्कि यह एक सांस्कृतिक और धार्मिक एकता के रूप में प्रकट होता था। प्राचीन भारत में यह अवधारणाएँ उन्नत वैदिक सभ्यता और बाद के सम्राटों के शासनकाल में प्रमुख रूप से विकसित हुई। यह भारतीय समाज के गहरे धार्मिक, सांस्कृतिक और आस्थाओं से जुड़ी हुई थीं, और राष्ट्र की संकल्पना को व्यापक रूप से आदर्श और चिरस्थायी रूप से देखा गया था।

1. **प्राचीन भारत में राष्ट्र की अवधारणा:** प्राचीन भारतीय समाज में राष्ट्र का विचार किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र से ज्यादा सांस्कृतिक और धार्मिक एकता पर आधारित था। यह शब्द "जन" या "जनता" से जुड़ा था, जो किसी समुदाय के सदस्यों का समूह होता था।



जनपद और राष्ट्र: प्राचीन भारत की समुदाय और राष्ट्र की दृष्टि

Source: https://www.mapsofindia.com/history/mahajanapadas.html

"जनपद" और "राष्ट्र": प्राचीन भारत में राजनैतिक व्यवस्था और समाज की संरचना **"जनपद"** के आधार पर आधारित थी। भारत में राष्ट्र की विचारधारा मुख्य रूप से "जनपद" (राज्य या क्षेत्र) और "विहित धर्म" (सामाजिक और धार्मिक कर्तव्य) के रूप में प्रकट होती थी। जनपद, जिसे हम आधुनिक रूप में राज्य या क्षेत्र कह सकते हैं, का मतलब था एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र जिसमें एक विशिष्ट समुदाय रहता था। यह क्षेत्र उन समुदायों के धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वासों के आधार पर एकजुट होते थे।

- **महाजनपद काल (600-300 ई.पू.)** में भारत में 16 प्रमुख जनपद थे। ये जनपद प्रशासन, संस्कृति और धर्म के बुनियादी ढांचे पर आधारित थे। इन जनपदों में एक साझा संस्कृति, भाषा और धर्म था। विभिन्न जनपदों के बीच सीमा विवाद और राजनीतिक संघर्ष होते थे, लेकिन इनका मुख्य उद्देश्य धर्म की स्थापना और रक्षा था।

  उदाहरण के लिए, **मगध**, **कोशल**, **अंग** और **वृज** जैसे महाजनपद, न केवल भौगोलिक सीमाओं में बँधे थे, बल्कि वे विशेष धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान रखते थे।

धर्म और राष्ट्र - प्राचीन भारत में राष्ट्र की धारणा धार्मिक आस्थाओं से जुड़ी थी। भारतीय संस्कृति में धर्म को न केवल व्यक्तिगत आस्था के रूप में, बल्कि समग्र सामाजिक और राजनीतिक जीवन का आधार माना गया था। "धर्म" का अर्थ था कर्तव्य, समाज में न्याय, और सत्य का पालन करना।

- **वेदों** और **उपनिषदों** में यह स्पष्ट रूप से देखा जाता है कि धर्म का पालन राष्ट्र की एकता और शक्ति का मुख्य स्रोत था। उदाहरण के लिए, **ऋग्वेद** में राष्ट्र की शक्ति को "धर्म" और "यज्ञ" के साथ जोड़ा गया है।
- **महाभारत** और **रामायण** जैसे ग्रंथों में राष्ट्र की एकता को धर्म के माध्यम से बनाए रखने की बात की गई है। जैसे कि राम का वनवास केवल **धर्म** की स्थापना के लिए था, उसी प्रकार महाभारत में पांडवों ने कौरवों से धर्म की रक्षा के लिए संघर्ष किया।

राजधर्म - राजा और राज्य का धर्म एक महत्वपूर्ण अवधारणा थी। यह विचार "धर्मराज" से जुड़ा था, जिसका मतलब था कि राज्य का शासक अपने राज्य और प्रजा के कर्तव्यों को धर्म के अनुसार निभाए। "धर्मराज" यथा **धर्म के अनुसार राज्य संचालन** का आदर्श था।

- **मनुस्मृति** में यह वर्णन किया गया है कि राजा को अपने राज्य को न्यायपूर्ण तरीके से चलाना चाहिए और वह **धर्म** और **न्याय** के पालन के लिए जिम्मेदार था। इसका मतलब था कि प्रजा की भलाई और धर्म की रक्षा सर्वोपरि थी, और राजा को इस कर्तव्य से कोई भी समझौता नहीं करना चाहिए।

2. **राष्ट्रीयता का आदर्श:** प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता की अवधारणा एक गहरी सांस्कृतिक और धार्मिक समझ पर आधारित थी। राष्ट्रीयता केवल भौतिक या राजनैतिक सीमाओं तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह एक गहरी मानसिकता और आस्थाओं से जुड़ी थी।

- **धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता:** राष्ट्रीयता के साथ जुड़ा एक और महत्वपूर्ण पहलू था "सांस्कृतिक एकता", जो विविधता के बावजूद भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों को जोड़ता था। प्राचीन भारत में, संस्कृति और धार्मिक परंपराएँ इतनी गहरी और व्यापक थीं कि वे सभी भौगोलिक क्षेत्रों में समान रूप से फैली हुई थीं।

  उदाहरण के लिए, **हिंदू धर्म**, **बौद्ध धर्म**, और **जैन धर्म** जैसी आस्थाएँ पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैली हुई थीं। इन धर्मों के द्वारा स्थापित सामाजिक आदर्श और मूल्य (जैसे अहिंसा, सत्य, और धर्म का पालन) भारतीय राष्ट्रीयता की पहचान के रूप में प्रकट हुए।

- **सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श:** प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना अक्सर साझा धार्मिक और सांस्कृतिक आदर्शों पर आधारित थी। प्रत्येक राज्य और जनपद की पहचान उसके **धार्मिक आस्थाओं**, **सांस्कृतिक परंपराओं**, और **समाज के भले के लिए की गई योजनाओं** के आधार पर थी। इस प्रकार की सांस्कृतिक और धार्मिक एकता भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में एक आधार बनती थी।

3. **भारतीय एकता और विविधता:** प्राचीन भारत में एकता और विविधता का अद्भुत संतुलन था। जबकि अलग-अलग राज्य और जनपद थे, फिर भी एक राष्ट्र के रूप में भारतीय समाज एक साझा सांस्कृतिक धारा से जुड़ा हुआ था। भारतीय धर्म, संस्कृति और परंपराएँ बहुत विविध थीं, लेकिन उनमें एक मूलभूत एकता थी। उदाहरण के लिए, सभी भारतीय धर्मों में भगवान, धर्म, और कर्म का विचार

समान था, जो कि राष्ट्र की समग्रता और एकता को बनाए रखने में सहायक था।

भारतीय राष्ट्रवाद का आधार "धर्म", "संस्कृति", और "एकता" था, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समाज का धर्म (कर्तव्य) प्रमुख था। भारतीय समाज में एकता की भावना को बनाए रखने के लिए धर्म, न्याय और संस्कृति का पालन किया जाता था, और इसे राष्ट्रीयता की भावना के रूप में देखा जाता था।

13. भारतीय राष्ट्रीयता का प्राचीन भारत में उल्लेख

वेदों और उपनिषदों में सामूहिकता का विचार - वेदों और उपनिषदों में अक्सर समग्रता, एकता, और राष्ट्र के तत्वों की चर्चा की गई है। वेदों में यह संकेत मिलता है कि समूचा समाज एकता में बसा है और धर्म, सत्य और न्याय का पालन करने से ही राष्ट्र को शक्ति मिलती है।

ऋग्वेद में एकता का महत्व - ऋग्वेद में विभिन्न प्रकार की एकता और सामूहिकता की बातें की गई हैं। उदाहरण के लिए, **ऋग्वेद 10.191.3** में कहा गया है–

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।"

यह श्लोक राष्ट्र की मानसिक एकता की बात करता है, जिसमें समाज के सभी लोग एकजुट होकर एक लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। यह श्लोक सामूहिकता और आपसी सहयोग की आवश्यकता को दर्शाता है। यह विचार प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता के आधारों को स्थापित करता है, जो समाज के सभी सदस्यों की भलाई और एकता पर आधारित था।

उपनिषदों में भारतीय एकता - उपनिषदों में भी "आत्मा" की सार्वभौमिकता और "ब्रह्म" की अवधारणा को भारतीय राष्ट्रीयता के एकता के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है। **तैत्तिरीय उपनिषद 3.1.1** में कहा गया है–

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति।"

इस श्लोक का अर्थ है कि जो सत्ता इस सृष्टि के हर तत्व में व्याप्त है, वही ब्रह्म है। यह एकता की विचारधारा को स्थापित करता है, जो भारतीय समाज में सर्वव्यापी सत्य की अवधारणा से जुड़ी है।

महाकाव्य और ऐतिहासिक संदर्भ



गीता उपदेश

Source: https://www.timesnowhindi.com/spirituality/vrat-festivals/article

महाभारत: महाभारत में राष्ट्र की अवधारणा स्पष्ट रूप से प्रस्तुत की गई है। यहाँ युद्ध केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक कारणों से नहीं हुआ, बल्कि **धर्म की रक्षा** के लिए हुआ। पांडवों और कौरवों के बीच युद्ध को धर्मयुद्ध माना गया, जो राष्ट्र की रक्षा के रूप में देखा गया। यह भारतीय राष्ट्रीयता की ओर एक संकेत था कि राष्ट्रीय एकता और धर्म की रक्षा के लिए संघर्ष करना आवश्यक है।



पांडवों और कौरवों के बीच युद्ध

Source: https://www.dollsofindia.com/product/hindu-posters/gita-updesh

महाभारत में कहा गया–

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।" (गीता 4.8)

यह श्लोक राष्ट्र की रक्षा के लिए संघर्ष करने की आवश्यकता को रेखांकित करता है, जो भारतीय राष्ट्रीयता की भावना को प्रकट करता है।





महाभारत का युद्ध

Source: https://bharatdiscovery.org/india
https://www.dollsofindia.com/product/hindu-posters/lord-krishna-and-arjuna-in-kurukshetra-war

रामायण: रामायण में भी राष्ट्र के लिए संघर्ष करने की अवधारणा स्पष्ट रूप से दिखती है। भगवान राम का युद्ध राक्षसों से धर्म की रक्षा के लिए था, जो अंततः राष्ट्र के शांति और कल्याण के लिए था। राम के संघर्ष और उनके आदर्शों ने भारतीय समाज में धार्मिक और राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रकट किया।



रामायण: धर्म के लिए लड़ी गई लड़ाई

Source: https://ar.pinterest.com/pin

राजधर्म और सामूहिकता - राजधर्म की अवधारणा प्राचीन भारत में बहुत महत्वपूर्ण थी, और यह राष्ट्रीयता के विचार से जुड़ी हुई थी। **मनुस्मृति** में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राजा का मुख्य कर्तव्य अपने राज्य में धर्म की स्थापना करना है। यह बात सिर्फ व्यक्तिगत जीवन के लिए नहीं थी, बल्कि पूरे राज्य (राष्ट्र) की संरचना और उसकी स्थिरता के लिए थी।

मनुस्मृति में लिखा है–

"धर्मार्थो उच्यते श्रेयः, कामार्थो धर्म एव च।"

इसका अर्थ है कि धर्म, अर्थ और काम ये तीन पुरुषार्थ होते हुए भी, धर्म को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। राजा और प्रजा का कर्तव्य था कि वे राष्ट्र के धर्म का पालन करें, जिससे समृद्धि और शांति की स्थापना हो सके।

विवेचनाएँ और राजनीतिक विचार - प्राचीन भारत में राष्ट्र और राष्ट्रीयता पर कई राजनीतिक विचार भी दिए गए। **चाणक्य** (कौटिल्य) के **अर्थशास्त्र** में राज्य और उसके कर्तव्यों पर गहन चर्चा की गई है। उन्होंने राज्य के प्रमुख को **"धर्मराज"** (धर्म का पालन करने वाला राजा) माना है, और एक राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिए धर्म का पालन करना अनिवार्य है। उनका यह विचार भारतीय समाज में राष्ट्रीयता के एक आदर्श रूप को स्थापित करता है, जहाँ राष्ट्र की एकता और समृद्धि धर्म और न्याय पर निर्भर करते थे।

प्राचीन भारतीय साम्राज्य और एकता - प्राचीन भारत में कई साम्राज्यों ने पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को एकता की दिशा में स्थापित किया। समस्त भारतीय उपमहाद्वीप को एकत्र करने वाले **मौर्य साम्राज्य** और **गुप्त साम्राज्य** ने भी एक सांस्कृतिक और राजनीतिक एकता को स्थापित किया। इन साम्राज्यों के अधीन, भारतीय राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ, जो सांस्कृतिक और धार्मिक समानताओं पर आधारित थी।

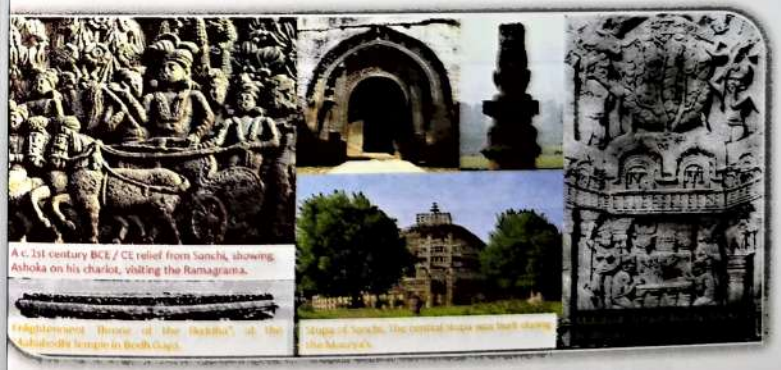

प्राचीन भारत के ऐतिहासिक स्मारक

मौर्य साम्राज्य - सम्राट **अशोक** का धर्म परिवर्तन और उसके बाद किए गए कार्यों ने पूरे उपमहाद्वीप में बौद्ध धर्म की एकता स्थापित की और भारत में राष्ट्रवाद की एक नई दिशा का संकेत दिया। उनके शिलालेखों में "धर्म" और "समानता" की बात की गई थी, जिससे राष्ट्रीय एकता का एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आधार प्राप्त हुआ।



मौर्य साम्राज्य - राजा अशोक

14. सारांश

भारतीय दृष्टिकोण सभी प्राणियों के बीच गहरे संबंध को उजागर करता है, यह मानते हुए कि ब्रह्मा, जो सर्वोत्तम वास्तविकता है, ब्रह्मांड को एकजुट करता है। इस दृष्टिकोण में संस्कृति को एक सार्वभौमिक और अपरिवर्तनीय आदर्श के रूप में देखा जाता है, जो न केवल व्यक्तिगत विकास की ओर मार्गदर्शन करता है बल्कि अधिक सामूहिक सद्भाव की ओर भी, जहां भौतिक और आध्यात्मिक पहलु जीवन में संतुलन में रहते हैं। यह संबंध संस्कारों में परिलक्षित होता है, जो वे संस्कार होते हैं जो भौतिक और आध्यात्मिक दुनियाओं के बीच अंतर को पाटते हैं और व्यक्तियों को मोक्ष की ओर मार्गदर्शन करते हैं।

संक्षेप में, भारतीय संस्कृति एक समग्र दृष्टिकोण है जो भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को मिलाकर, धर्म, अर्थ, कर्म और मोक्ष के सिद्धांतों के माध्यम से व्यक्तियों और समाज दोनों के विकास का लक्ष्य रखता है। यह व्यक्तिगत विकास और मानवता की भलाई के लिए एक शाश्वत मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है, लोगों को उच्च आदर्शों के अनुसार जीवन जीने, स्वार्थ से उबरने और समग्र भलाई के लिए काम करने की प्रेरणा देता है। संस्कृति का यह दृष्टिकोण न केवल व्यक्तिगत सफलता बल्कि एक ऐसे समाज को बढ़ावा देता है जो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टिकोण से समृद्ध हो।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. *The Bhagavad Gita* (Translated by Eknath Easwaran) - 2007, Nilgiri Press.
2. *The Upanishads* (Translated by Eknath Easwaran) - 2009, Nilgiri Press.
3. B. Mahadevan, V.R. Bhat, Nagendra Pawan R.N. (2022), "*Introduction to Indian Knowledge System*", PHI learning private ltd.
4. *India: A History* by John Keay - 2000, Harper Collins.
5. *The Argumentative Indian* by Amartya Sen - 2005, Farrar, Straus and Giroux.
6. OP Pandey (2023), "*Bharat Vaibhav*", National Book Trust, India.
7. *The Hindu Way of Life* by S. Radhakrishnan - 1947, HarperCollins India.
8. *The Mahabharata* (Translation by C. Rajagopalachari or Eknath Easwaran) - 1951 (Rajagopalachari) | 2004 (Easwaran), Bharatiya Vidya Bhavan (Rajagopalachari) | Nilgiri Press (Easwaran).
9. *The Ramayana* (Translation by R. K. Narayan or C. Rajagopalachari) - 1972 (Narayan) | 1957 (Rajagopalachari), Penguin Books (Narayan) | Bharatiya Vidya Bhavan (Rajagopalachari).
10. *The Sacred and the Profane* by Mircea Eliade - 1959, Harcourt Brace Jovanovich.
11. *India's National Identity: A Cultural Approach* by Sudhir Kakar - 2004, Oxford University Press.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. संस्कृति शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?
   क) अशुद्धता
   ख) सम्यक् कृति
   ग) विकृति
   घ) अपूर्णता

2. संस्कृति का मुख्य उद्देश्य क्या है?
   क) बाहरी आचार-व्यवहार
   ख) मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक शुद्धिकरण
   ग) केवल शारीरिक स्वास्थ्य
   घ) आंतरिक विकृतियों को बढ़ावा देना

3. संस्कृति के शाब्दिक अर्थ में 'सम्यक्' का क्या अर्थ है?
   क) सही
   ख) गलत
   ग) अप्रत्याशित
   घ) अव्यक्त

4. भारतीय संस्कृति में जीवन को किस दृष्टिकोण से देखा जाता है?
   क) केवल शारीरिक दृष्टिकोण
   ख) समग्रता में
   ग) केवल मानसिक दृष्टिकोण
   घ) केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण

5. यजुर्वेद के 7/14 श्लोक में संस्कृति को किस रूप में प्रस्तुत किया गया है?
   क) समाजिक विशिष्टता
   ख) प्रथम संस्कृतिविश्वर्या
   ग) आंतरिक शुद्धता
   घ) बाहरी आचार-व्यवहार

6. भारतीय संस्कृति के अनुसार, एक संस्कारित व्यक्ति कौन होता है?
   क) जो बाहरी आचार-व्यवहार में उत्कृष्ट हो
   ख) जो अपने मानसिक और भावनात्मक विकारों से मुक्त हो
   ग) जो केवल शारीरिक रूप से स्वस्थ हो
   घ) जो समाजिक दृष्टिकोण से आदर्श हो

7. संस्कृति के बारे में वेदों में किस विचार को प्रस्तुत किया गया है?
   क) संस्कृति केवल एक समाजिक विशेषता है
   ख) संस्कृति एक सार्वभौमिक सत्य और आदर्श है
   ग) संस्कृति केवल बाहरी आचार-व्यवहार का संग्रह है
   घ) संस्कृति एक व्यक्तिगत विशेषता है

8. संस्कृति को भारतीय परंपरा में किस रूप में समझा गया है?
   क) केवल भौतिक विकास
   ख) एक सार्वभौमिक और अपरिवर्तनीय सिद्धांत
   ग) केवल मानसिक विकास
   घ) केवल धार्मिक सिद्धांत

9. "कल्चर" शब्द का आधुनिक प्रयोग किस संदर्भ में होता है?
   क) केवल भारतीय संस्कृति के संदर्भ में
   ख) विभिन्न देशों और समाजों की आदतों, परंपराओं और जीवनशैली को दर्शाता है
   ग) केवल आध्यात्मिक विकास के संदर्भ में
   घ) केवल शारीरिक स्वास्थ्य के संदर्भ में

10. संस्कृति का उद्देश्य क्या है?
    क) बाहरी आचार-व्यवहार में सुधार
    ख) समाज और व्यक्ति को उच्चतम आदर्शों की ओर मार्गदर्शन करना
    ग) केवल आंतरिक विकास
    घ) केवल शारीरिक विकास

11. यजुर्वेद में संस्कृति को क्या कहा गया है?
    क) विश्ववारा
    ख) समाजवारा
    ग) भारतवारा
    घ) आदर्शवारा

12. संस्कृति के अनुसार, किसे विकृति माना जाता है?
    क) श्रेष्ठ कर्म
    ख) उच्चतम आदर्श
    ग) जो कर्म आदर्शों के अनुरूप नहीं होते
    घ) बाहरी आचार-व्यवहार

13. भारतीय संस्कृति में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन पर किसे महत्व दिया जाता है?
    क) केवल शारीरिक स्वास्थ्य
    ख) केवल मानसिक विकास
    ग) समग्र विकास
    घ) केवल आध्यात्मिक उन्नति

14. संस्कृति का उद्देश्य व्यक्ति को किस ओर मार्गदर्शन करना है?
    क) स्वार्थ
    ख) अहंकार
    ग) श्रेष्ठ कर्म और सृजनशीलता
    घ) केवल बाहरी आचार-व्यवहार

15. संस्कृति की प्रक्रिया में क्या शामिल है?
    क) केवल बाहरी आदतें
    ख) मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक शुद्धिकरण
    ग) केवल शारीरिक व्यायाम
    घ) केवल शिक्षा

16. भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के आंतरिक विकास से क्या जुड़ा है?
    क) समाज के सामूहिक उत्थान
    ख) केवल भौतिक संपत्ति
    ग) बाहरी आचार-व्यवहार
    घ) केवल शिक्षा

17. संस्कृति के आधुनिक प्रयोग में क्या शामिल है?
    क) केवल धार्मिक गतिविधियाँ
    ख) भिन्न-भिन्न देशों और समाजों के आदतें और परंपराएँ
    ग) केवल भारतीय परंपरा
    घ) केवल शारीरिक गतिविधियाँ

18. संस्कृति के शाब्दिक अर्थ में 'कृति' का क्या अर्थ है?
    क) कार्य
    ख) विचार
    ग) विकृति
    घ) पूजा

19. भारतीय संस्कृति में पवित्रता और नैतिकता का उद्देश्य क्या है?
    क) केवल धार्मिक पालन
    ख) समाज और व्यक्ति के जीवन में श्रेष्ठता लाना
    ग) केवल बाहरी आचार-व्यवहार
    घ) केवल मानसिक विकास

20. भारतीय संस्कृति के अनुसार, जब व्यक्ति मानसिक और भावनात्मक विकारों से मुक्त हो जाता है, तो वह क्या बनता है?
   क) संस्कारित व्यक्ति
   ख) सामान्य व्यक्ति
   ग) समाजिक नेता
   घ) बाहरी आचार-व्यवहार में निपुण

21. संस्कृति और सभ्यता के बीच क्या अंतर है?
   क) दोनों एक ही हैं
   ख) सभ्यता केवल बाहरी आचार-व्यवहार है, जबकि संस्कृति आंतरिक शुद्धिकरण है
   ग) सभ्यता और संस्कृति के बीच कोई अंतर नहीं है
   घ) संस्कृति केवल भौतिक पहलू है, सभ्यता मानसिक

22. भारतीय दृष्टिकोण में सभ्य व्यक्ति किसे माना जाता है?
   क) जो समाज में श्रेष्ठ आचार और व्यवहार का पालन करता हो
   ख) जो केवल बाहरी शिष्टाचार जानता हो
   ग) जो शारीरिक रूप से मजबूत हो
   घ) जो केवल भौतिक संपत्ति का संचय करता हो

23. संस्कृति में किसे शामिल किया जाता है?
   क) कला, धर्म, संगीत, और साहित्य
   ख) केवल शासन व्यवस्था
   ग) केवल शारीरिक स्वास्थ्य
   घ) केवल सामाजिक समन्वय

24. सभ्यता में क्या शामिल है?
   क) धर्म, कला, साहित्य
   ख) प्राकृतिक घटना पर प्रौद्योगिकी का समावेश
   ग) केवल सामाजिक आदर्श
   घ) केवल मानसिक शुद्धता

25. संस्कृति में माप का क्या मानक होता है?
   क) एक सटीक मानक
   ख) कोई माप मानक नहीं होता
   ग) केवल बाहरी रूप में माप
   घ) माप केवल शारीरिक दृष्टिकोण से किया जाता है

26. सभ्यता में माप का क्या मानक होता है?
   क) एक सटीक मानक
   ख) कोई मानक नहीं होता
   ग) सामाजिक आदर्श
   घ) व्यक्तिगत अनुभव

27. सभ्यता और संस्कृति के संबंध में कौन सा कथन सही है?
   क) संस्कृति हमेशा पहले आती है, और सभ्यता बाद में आती है
   ख) सभ्यता पहले आती है, और संस्कृति बाद में आती है
   ग) संस्कृति और सभ्यता एक ही समय में उत्पन्न होती हैं
   घ) संस्कृति और सभ्यता के बीच कोई संबंध नहीं है

28. भारतीय संस्कृति में संस्कृति के दो मुख्य स्तर क्या हैं?
   क) भौतिक और सामाजिक
   ख) आध्यात्मिक और लौकिक
   ग) मानसिक और शारीरिक
   घ) सामाजिक और सांस्कृतिक

29. आध्यात्मिक स्तर पर व्यक्ति का अहंकार और द्वैत का भाव कैसे होता है?
   क) बढ़ जाता है
   ख) स्थिर रहता है
   ग) समाप्त हो जाता है
   घ) सिर्फ मानसिक शांति प्राप्त होती है

30. "ऋतंभरा प्रज्ञा" क्या है?
    क) एक मानसिक विकार
    ख) उच्चतम ज्ञान की स्थिति
    ग) शारीरिक शुद्धता का अनुभव
    घ) एक प्रकार की प्राकृतिक घटना

31. लौकिक स्तर पर व्यक्ति किस प्रकार का अनुभव करता है?
    क) अद्वितीय चेतना का अनुभव
    ख) द्वैत (भेद या पृथकत्व) का अनुभव
    ग) केवल मानसिक शांति का अनुभव
    घ) आत्म-साक्षात्कार का अनुभव

32. लौकिक स्तर पर मानसिक संतुलन बनाए रखने की चुनौती क्या है?
    क) केवल शारीरिक स्वास्थ्य
    ख) अहंकार, स्वार्थ, और मानसिक विकार
    ग) बाहरी आचार-व्यवहार
    घ) केवल आध्यात्मिकता

33. भारतीय संस्कृति में संस्कारों का उद्देश्य क्या है?
    क) मानसिक विकारों को बढ़ावा देना
    ख) व्यक्ति को उच्चतर उद्देश्य के प्रति समर्पित करना
    ग) केवल भौतिक लाभ की ओर उन्मुख करना
    घ) व्यक्ति को बाहरी शिष्टाचार सिखाना

34. संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति क्या प्राप्त करता है?
    क) बाहरी शारीरिक सौंदर्य
    ख) मानसिक विकारों से मुक्ति
    ग) केवल भौतिक उन्नति
    घ) केवल मानसिक शांति

35. भारतीय मनीषियों के अनुसार, जब व्यक्ति अपने जीवन को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखता है, तो वह किससे जुड़ा रहता है?
    क) शारीरिक संसार
    ख) समाज के आदर्शों से
    ग) शाश्वत सत्य और दिव्य चेतना से
    घ) भौतिक संसाधनों से

36. भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास, समाज के उत्थान और आध्यात्मिक उन्नति को किस रूप में जोड़ा गया है?
    क) केवल भौतिक उन्नति
    ख) केवल सामाजिक विकास
    ग) समग्र विकास
    घ) केवल मानसिक शांति

37. भारतीय विश्व-दृष्टि के अनुसार, समस्त सृष्टि में क्या वास करता है?
    क) मनुष्य
    ख) ब्रह्म
    ग) आकाश
    घ) पृथ्वी

38. भारतीय विश्व-दृष्टि के अनुसार, सृष्टि के सभी रूप क्या होते हैं?
    क) पृथक और भिन्न
    ख) ब्रह्म के अनंत विस्तार के हिस्से
    ग) केवल आकाशीय रूप
    घ) केवल भौतिक रूप

39. "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का क्या अर्थ है?
    क) सम्पूर्ण संसार शाश्वत है
    ख) सम्पूर्ण संसार ब्रह्म है
    ग) सम्पूर्ण संसार भौतिक है
    घ) केवल आकाश ब्रह्म है

40. भारतीय दृष्टिकोण में जीवन का उद्देश्य क्या है?
    क) केवल भौतिक उन्नति
    ख) मानसिक शांति प्राप्त करना
    ग) आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति
    घ) केवल सामाजिक स्थिति प्राप्त करना

41. तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म के बारे में क्या कहा गया है?
    क) ब्रह्म केवल एक रूप में होता है
    ख) ब्रह्म समस्त जीवों का कारण, पालनकर्ता और लयकर्ता है
    ग) ब्रह्म का कोई अस्तित्व नहीं है
    घ) ब्रह्म केवल मानसिक शक्ति है

42. "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते..." इस श्लोक का अर्थ क्या है?
    क) ब्रह्म का कोई रूप नहीं होता
    ख) ब्रह्म समस्त जीवों का कारण और पालनकर्ता है
    ग) ब्रह्म केवल भौतिक रूप में है
    घ) ब्रह्म केवल ऋग्वेद के श्लोकों में व्यक्त है

43. भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण में ब्रह्म के बारे में क्या समझा जाता है?
    क) ब्रह्म केवल एक रूप में होता है
    ख) ब्रह्म निराकार, निर्गुण और सर्वव्यापी है
    ग) ब्रह्म केवल एक तत्व है
    घ) ब्रह्म केवल शारीरिक रूप में होता है

44. ऋग्वेद में ब्रह्म के बारे में क्या कहा गया है?
    क) ब्रह्म केवल एक रूप में है
    ख) ब्रह्म का कोई रूप विशेष नहीं है, वह समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है
    ग) ब्रह्म केवल देवताओं का रूप है
    घ) ब्रह्म केवल मनुष्य का रूप है

45. "सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद" का क्या अर्थ है?
    क) ब्रह्म का निराकार रूप
    ख) ब्रह्म के अनंत रूपों का वर्णन
    ग) ब्रह्म का मानव रूप
    घ) ब्रह्म का धार्मिक रूप

46. "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" का संदेश क्या है?
    क) ब्रह्म एक ही है, लेकिन उसे विभिन्न नामों और रूपों से पुकारा जाता है
    ख) ब्रह्म विभिन्न रूपों में विभाजित है
    ग) ब्रह्म केवल एक रूप में है
    घ) ब्रह्म किसी एक रूप में नहीं है

47. विराट् पुरुष के रूप में ब्रह्म का वर्णन किस ग्रंथ में किया गया है?
    क) महाभारत
    ख) गीता
    ग) ऋग्वेद
    घ) उपनिषद्

48. विराट् पुरुष से किसका उत्पत्ति होती है?
    क) केवल देवता
    ख) केवल प्राकृतिक शक्तियाँ
    ग) समस्त सृष्टि
    घ) केवल मनुष्य

49. "यस्य नाम महद्यशः" इस श्लोक का अर्थ क्या है?
    क) ब्रह्म का नाम सर्वव्यापी है
    ख) ब्रह्म का कोई रूप नहीं होता
    ग) ब्रह्म का यश सभी दिशाओं में व्याप्त नहीं होता
    घ) ब्रह्म का अस्तित्व केवल पृथ्वी पर है

50. धर्म और अधर्म के संबंध में भारतीय दृष्टिकोण क्या है?
   क) धर्म को किसी एक व्यक्ति या विचारधारा से सीमित किया जा सकता है
   ख) किसी एक धर्म या विचारधारा को श्रेष्ठ मानकर उसे सभी पर लादना अधर्म है
   ग) केवल एक धर्म को मानना सही है
   घ) अधर्म का कोई अस्तित्व नहीं होता

51. भारतीय संस्कृति में जीवन के उद्देश्य और लक्ष्य को कितने प्रमुख पुरुषार्थों में बांटा गया है?
   क) 2
   ख) 4
   ग) 6
   घ) 3

52. धर्म का तात्पर्य क्या है?
   क) केवल धार्मिक आस्थाओं से
   ख) जीवन के नैतिक और वैचारिक आचरण से
   ग) केवल पूजा-पाठ से
   घ) शारीरिक आचरण से

53. अर्थ का उद्देश्य क्या है?
   क) भौतिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति
   ख) केवल भौतिक सुख का आनंद लेना
   ग) केवल सामाजिक कर्तव्यों का पालन करना
   घ) आत्मिक उन्नति प्राप्त करना

54. काम का उद्देश्य क्या है?
   क) भोग, सुख और इच्छाओं की संतुष्टि
   ख) केवल मानसिक शांति प्राप्त करना
   ग) शारीरिक रूप से बलशाली बनना
   घ) केवल समाज में सम्मान प्राप्त करना

55. मोक्ष को किस रूप में देखा जाता है?
   क) एक सामान्य धर्म
   ख) एक विशिष्ट और परम धर्म
   ग) केवल मानसिक शांति
   घ) केवल सांसारिक सुख

56. मोक्ष का अर्थ क्या है?
   क) भौतिक सुख की प्राप्ति
   ख) आत्म-साक्षात्कार और संसार के भ्रम से मुक्ति
   ग) केवल सामाजिक स्थिति प्राप्त करना
   घ) शारीरिक ताकत बढ़ाना

57. मनुस्मृति में मोक्ष के बारे में क्या कहा गया है?
   क) मोक्ष सामान्य जीवन का लक्ष्य है
   ख) मोक्ष केवल एक विशेष आध्यात्मिक धर्म है
   ग) मोक्ष सभी के लिए उपयुक्त है
   घ) मोक्ष भौतिक लक्ष्यों के समान है

58. भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार, धर्म का पालन क्यों किया जाता है?
   क) केवल भौतिक सुख के लिए
   ख) समाज में शांति की व्यवस्था बनाए रखने के लिए
   ग) केवल धार्मिक आस्थाओं के लिए
   घ) बाहरी आचार-व्यवहार को सुधारने के लिए

59. अर्थ और धर्म के बीच क्या संबंध है?
   क) अर्थ का उद्देश्य केवल भोग है
   ख) अर्थ, धर्म का पालन करने का साधन है
   ग) धर्म और अर्थ का कोई संबंध नहीं है
   घ) धर्म केवल अर्थ के लिए किया जाता है

60. भारतीय संस्कृति में काम का उद्देश्य क्या है?
    क) व्यक्तिगत सुख की संतुष्टि
    ख) शारीरिक शक्ति बढ़ाना
    ग) मानसिक संतुलन प्राप्त करना
    घ) केवल भौतिक संपत्ति जुटाना

61. मनुस्मृति के अनुसार, जीवन में प्राथमिक और अनिवार्य पुरुषार्थ कौन-कौन माने गए हैं?
    क) धर्म, अर्थ, और मोक्ष
    ख) धर्म, अर्थ, और काम
    ग) काम, मोक्ष, और ब्रह्म
    घ) धर्म, मोक्ष, और शिक्षा

62. मनुस्मृति में मोक्ष प्राप्ति के लिए कौन-सी शर्त दी गई है?
    क) व्यक्ति को अपने "ऋणों" से मुक्त होना चाहिए
    ख) व्यक्ति को केवल सांसारिक सुखों का त्याग करना चाहिए
    ग) व्यक्ति को केवल अपने परिवार का पालन करना चाहिए
    घ) व्यक्ति को केवल शारीरिक रूप से बलवान होना चाहिए

63. मनुस्मृति के अनुसार, धर्म और अर्थ का संतुलन किस प्रकार होना चाहिए?
    क) अर्थ को केवल व्यक्तिगत सुख के लिए साधना चाहिए
    ख) धर्म और अर्थ का संतुलन आवश्यक है
    ग) धर्म को अर्थ से ऊपर माना जाना चाहिए
    घ) धर्म को अर्थ से नीचे माना जाना चाहिए

64. मोक्ष की साधना के लिए व्यक्ति को किसे करना चाहिए, मनुस्मृति के अनुसार?
    क) धर्म, समाज और परिवार के प्रति कर्तव्यों का पालन करना
    ख) केवल भौतिक सुखों का त्याग करना
    ग) ज्ञान की प्राप्ति के लिए कठिन साधना करना
    घ) केवल योगाभ्यास करना

65. भारतीय संस्कृति में शौर्य को क्या माना जाता है?
    क) केवल शारीरिक बल
    ख) मानसिक और आत्मिक बल के साथ-साथ शारीरिक बल
    ग) केवल मानसिक बल
    घ) केवल शारीरिक शक्ति

66. अथर्ववेद में शौर्य की कामना किससे की जाती है?
    क) सूर्य के तेज और अग्नि की प्रभा के समान चमकते हुए जीवन
    ख) केवल शारीरिक बल से
    ग) ज्ञान की प्राप्ति से
    घ) केवल धार्मिक क्रियाओं से

67. भारतीय संस्कृति में शौर्य को किससे जोड़ा गया है?
    क) केवल युद्ध के दौरान बलवान होना
    ख) धर्म, स्वधर्म, और यज्ञ की रक्षा
    ग) केवल परिवार की रक्षा
    घ) केवल सांसारिक सुखों का त्याग

68. भारतीय संस्कृति में अवतारों को क्यों महिमामंडित किया गया है?
    क) केवल युद्ध में सफलता के कारण
    ख) धर्म की स्थापना, यज्ञ की रक्षा और दुष्टों का संहार करने के कारण
    ग) केवल शारीरिक बल के कारण
    घ) केवल ज्ञान की प्राप्ति के कारण

69. गीता के श्लोक "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" में क्या संदेश दिया गया है?
    क) युद्ध के दौरान अहिंसा का पालन करना चाहिए
    ख) धर्म की स्थापना के लिए समय-समय पर अवतार लिया जाता है
    ग) केवल साधुओं की रक्षा करना आवश्यक है
    घ) दुष्कृतियों का नाश करना ही अंतिम लक्ष्य है

70. ब्रह्मचर्य आश्रम में शौर्य का क्या रूप होता है?
   क) शारीरिक बल के साथ-साथ मानसिक और बौद्धिक दृढ़ता
   ख) केवल शारीरिक बल
   ग) केवल मानसिक बल
   घ) केवल शांति और अहिंसा का पालन

71. गृहस्थ आश्रम में शौर्य का परिचय किस प्रकार होता है?
   क) परिवार की रक्षा, समाज के कल्याण और धर्म के पालन में वीरता
   परिचय
   ख) केवल शारीरिक बल का परिचय
   ग) केवल मानसिक बल का परिचय
   घ) केवल सांसारिक सुखों का त्याग

72. वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में शौर्य का क्या महत्व है?
   क) यह आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होने के लिए साहसिक और मानसि
   शुद्धता की आवश्यकता दर्शाता है
   ख) केवल भौतिक सुखों का त्याग किया जाता है
   ग) केवल शारीरिक बल का प्रदर्शन किया जाता है
   घ) केवल समाज की सेवा की जाती है

73. भारतीय शास्त्रों में देवी-देवताओं के शस्त्रधारी रूप का क्या संदेश है?
   क) केवल शारीरिक शक्ति का प्रतीक
   ख) शस्त्रधारण से शौर्य और रक्षा का प्रतीक
   ग) मानसिक शक्ति की आवश्यकता का प्रतीक
   घ) केवल युद्ध के लिए शस्त्रधारण

74. भारतीय संस्कृति में शस्त्रधारण की परंपरा का शिथिल होना किस कारण से था?
   क) युद्ध की हिंसा को बढ़ावा देने के कारण
   ख) अहिंसा की अवधारणा का प्रभाव बढ़ने के कारण
   ग) शारीरिक बल के महत्व को बढ़ाने के कारण
   घ) केवल रक्षा के उद्देश्य से शस्त्रधारण के कारण

75. शौर्य और अहिंसा का संतुलन भारतीय परंपरा में किस प्रकार रखा गया है?
   क) युद्ध की हिंसा को धर्म और न्याय की रक्षा के रूप में देखा गया
   ख) शारीरिक बल को अहिंसा से ऊपर रखा गया
   ग) अहिंसा को शौर्य से ऊपर माना गया
   घ) केवल अहिंसा को महत्वपूर्ण माना गया

76. प्राचीन भारत में राष्ट्र की अवधारणा किस पर आधारित थी?
   क) भौगोलिक सीमाओं और राजनीतिक पहचान
   ख) केवल सांस्कृतिक और धार्मिक एकता
   ग) व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधारित
   घ) केवल राजनीतिक सत्ता पर आधारित

77. प्राचीन भारत में राष्ट्र का अर्थ क्या था?
   क) केवल भौगोलिक सीमाओं के भीतर स्थित राज्य
   ख) सांस्कृतिक और धार्मिक एकता से जुड़ा हुआ एक व्यापक दृष्टिकोण
   ग) केवल राजनीतिक सत्ता से जुड़ा
   घ) केवल सांस्कृतिक धरोहर

78. भारतीय समाज और राजनीति की नींव किस पर आधारित थी?
   क) केवल राजनीतिक शक्ति पर
   ख) धर्म, संस्कृति और सामाजिक संगठन पर
   ग) केवल आर्थिक सिद्धांतों पर
   घ) केवल भौतिक सुखों पर

79. भारतीय समाज में राष्ट्र की संकल्पना को कैसे देखा जाता था?
   क) एक आदर्श और चिरस्थायी रूप से
   ख) केवल भौतिक संदर्भ में
   ग) केवल राजनीतिक दृष्टिकोण से
   घ) केवल धार्मिक रूप से

80. भारतीय राष्ट्र का दृष्टिकोण क्या था?
क) केवल राजनीतिक रूप से एकीकृत
ख) केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित
ग) धर्म, संस्कृति और समाज के आदर्शों से एकीकृत
घ) केवल सैन्य शक्ति पर आधारित

81. प्राचीन भारत में राष्ट्र की अवधारणा किस पर आधारित थी?
क) केवल भौगोलिक क्षेत्र
ख) केवल सैन्य शक्ति
ग) सांस्कृतिक और धार्मिक एकता
घ) केवल आर्थिक समृद्धि

82. "जनपद" शब्द का क्या अर्थ था?
क) एक धर्म
ख) एक शासक
ग) एक भौगोलिक क्षेत्र
घ) एक युद्धक्षेत्र

83. महाजनपद काल में कितने प्रमुख जनपद थे?
क) 10
ख) 16
ग) 20
घ) 5

84. महाजनपदों में एकता किस आधार पर स्थापित थी?
क) भौगोलिक सीमाओं पर
ख) सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों पर
ग) सैन्य शक्ति पर
घ) राजनीतिक गठबंधन पर

85. "विहित धर्म" का क्या अर्थ था?
क) व्यक्तिगत आस्था
ख) धार्मिक कर्तव्य
ग) सामाजिक व्यवस्था
घ) राजनीतिक कर्तव्य

86. भारतीय संस्कृति में धर्म को किस रूप में देखा जाता था?
क) केवल व्यक्तिगत आस्था
ख) केवल धार्मिक कर्तव्य
ग) समग्र सामाजिक और राजनीतिक जीवन का आधार
घ) केवल संस्कृति की रक्षा

87. ऋग्वेद में राष्ट्र की शक्ति किससे जोड़ी गई थी?
क) यज्ञ और धर्म
ख) युद्ध और बल
ग) धन और समृद्धि
घ) केवल शिक्षा

88. महाभारत में युद्ध क्यों हुआ था?
क) व्यक्तिगत कारणों से
ख) धर्म की स्थापना और रक्षा के लिए
ग) भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए
घ) केवल परिवार की रक्षा के लिए

89. गीता में राष्ट्र की रक्षा के लिए संघर्ष का उल्लेख कहां किया गया है?
क) महाकाव्य रामायण में
ख) महाभारत के युद्ध में
ग) ऋग्वेद में
घ) उपनिषदों में

90. रामायण में भगवान राम का युद्ध किस उद्देश्य से था?
   क) परिवार की रक्षा
   ख) धर्म की रक्षा
   ग) भौतिक सुखों के लिए
   घ) शक्ति प्रदर्शन के लिए

91. "धर्मराज" का क्या अर्थ था?
   क) न्यायपूर्ण राज्य संचालन
   ख) केवल एक धार्मिक व्यक्ति
   ग) समाज में अव्यवस्था
   घ) केवल युद्ध की अवधारणा

92. मनुस्मृति में राजा के कर्तव्यों के बारे में क्या कहा गया है?
   क) केवल युद्ध की योजना बनाना
   ख) प्रजा की भलाई और धर्म की रक्षा करना
   ग) केवल भौतिक सुखों को बढ़ावा देना
   घ) केवल धर्म के प्रति आस्था रखना

93. "धर्म, अर्थ, और काम" को किस प्रकार से समझा गया था?
   क) शारीरिक बल के रूप में
   ख) केवल आंतरिक शांति के रूप में
   ग) जीवन के तीन मुख्य पुरुषार्थ के रूप में
   घ) केवल भौतिक सुखों के रूप में

94. भारतीय राष्ट्रीयता का आदर्श किस आधार पर था?
   क) भौतिक समृद्धि
   ख) राजनीतिक सत्ता
   ग) सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्शों पर
   घ) केवल सैन्य शक्ति

95. प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता के विचार में किस तत्व को प्रमुख माना गया था?
   क) भौगोलिक सीमाएं
   ख) सैन्य शक्ति
   ग) धर्म और संस्कृति
   घ) व्यापारिक सफलता

96. भारतीय उपमहाद्वीप में धर्मों का प्रसार किस प्रकार था?
   क) केवल शारीरिक बल के माध्यम से
   ख) धर्म के द्वारा स्थापित सामाजिक आदर्शों और मूल्यों के माध्यम से
   ग) केवल राजनीतिक गठबंधनों के माध्यम से
   घ) केवल युद्धों के माध्यम से

97. भारतीय एकता और विविधता का संतुलन किस प्रकार था?
   क) भौतिक संसाधनों पर आधारित
   ख) सांस्कृतिक और धार्मिक एकता के आधार पर
   ग) सैन्य शक्ति के आधार पर
   घ) केवल आर्थिक समृद्धि पर आधारित

98. भारतीय समाज में एकता की भावना को बनाए रखने के लिए क्या किया जाता था?
   क) केवल आर्थिक नीति
   ख) धर्म, न्याय और संस्कृति का पालन
   ग) केवल भौतिक विकास
   घ) केवल युद्ध की नीति

99. वेदों और उपनिषदों में राष्ट्रीयता का क्या संकेत मिलता है?
   क) केवल भौगोलिक एकता
   ख) सामूहिकता और एकता की भावना
   ग) केवल राजनीतिक सत्ता
   घ) केवल सांस्कृतिक विविधता

100. ऋग्वेद के श्लोक 10.191.3 में क्या संदेश दिया गया है?
   क) व्यक्तिगत आस्था का महत्व
   ख) राष्ट्र की मानसिक एकता और सामूहिकता
   ग) केवल भौतिक बल का महत्व
   घ) केवल युद्ध की आवश्यकता

101. उपनिषदों में भारतीय एकता का प्रतीक क्या था?
   क) केवल आंतरिक शांति
   ख) आत्मा की सार्वभौमिकता और ब्रह्म की अवधारणा
   ग) सैन्य शक्ति
   घ) केवल धार्मिक संघर्ष

102. महाभारत में धर्मयुद्ध का क्या अर्थ था?
   क) व्यक्तिगत युद्ध
   ख) राष्ट्र की रक्षा के लिए युद्ध
   ग) केवल भौतिक समृद्धि के लिए युद्ध
   घ) धार्मिक विद्वेष के कारण युद्ध

103. रामायण में भगवान राम का उद्देश्य क्या था?
   क) अपनी पहचान स्थापित करना
   ख) धर्म की रक्षा और शांति के लिए युद्ध
   ग) भौतिक सुखों की प्राप्ति
   घ) केवल परिवार की रक्षा

104. "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" का संदेश क्या था?
   क) धार्मिक संघर्ष
   ख) राष्ट्र की रक्षा के लिए संघर्ष
   ग) भौतिक सुखों की रक्षा
   घ) व्यक्तिगत लाभ

105. प्राचीन भारत में राजा का कर्तव्य क्या था?
   क) केवल युद्ध करना
   ख) धर्म की स्थापना और प्रजा की भलाई
   ग) केवल आर्थिक व्यवस्था का संचालन
   घ) केवल सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा

106. चाणक्य ने राष्ट्र के कर्तव्यों पर क्या कहा था?
   क) केवल सैन्य शक्ति का उपयोग करें
   ख) धर्म और न्याय का पालन करें
   ग) भौतिक सुखों को बढ़ावा दें
   घ) केवल राजनीति पर ध्यान दें

107. मौर्य साम्राज्य में सम्राट अशोक ने किस धर्म का पालन किया?
   क) हिन्दू धर्म
   ख) बौद्ध धर्म
   ग) जैन धर्म
   घ) इस्लाम धर्म

108. गुप्त साम्राज्य ने भारतीय एकता को किस आधार पर स्थापित किया?
   क) सैन्य शक्ति
   ख) सांस्कृतिक और धार्मिक समानताओं
   ग) भौगोलिक विस्तार
   घ) राजनीतिक गठबंधन

109. मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेखों में किसका उल्लेख था?
   क) केवल भौतिक समृद्धि
   ख) धर्म और समानता
   ग) युद्ध और बल
   घ) राजनीतिक शक्ति

110. प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना किससे जुड़ी थी?
   क) केवल भौगोलिक सीमाओं से
   ख) सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक आदर्शों से
   ग) केवल सैन्य शक्ति से
   घ) केवल आर्थिक समृद्धि से

111. प्राचीन भारतीय साम्राज्य ने राष्ट्रीय एकता को किस रूप में स्थापित किया?
   क) भौगोलिक विस्तार
   ख) सांस्कृतिक और धार्मिक आधार
   ग) सैन्य विजय
   घ) केवल आर्थिक समृद्धि

112. प्राचीन भारत में राष्ट्रीयता का आधार क्या था?
   क) भौगोलिक क्षेत्र
   ख) केवल युद्ध
   ग) धर्म, संस्कृति और एकता
   घ) केवल राजनीतिक सत्ता

113. निम्नलिखित में से कौन-से धर्म पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में फैले और भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा में योगदान दिया?
   क) ईसाई धर्म
   ख) इस्लाम धर्म
   ग) हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म
   घ) ज़रथुस्त्र धर्म

114. प्राचीन काल में धर्म की अवधारणा ने भारतीय राष्ट्रवाद में किस प्रकार योगदान दिया?
   क) राष्ट्र की भावना से धर्म का कोई संबंध नहीं था
   ख) धर्म को समाज में एकता और न्याय बनाए रखने का केंद्रीय सिद्धांत माना गया
   ग) धर्म केवल धार्मिक नेताओं के लिए ही प्रासंगिक था
   घ) धर्म का प्रयोग केवल राजनीतिक सत्ता बनाए रखने के लिए किया गया

115. भारतीय उपमहाद्वीप में राष्ट्रवाद के संदर्भ में भारतीय धर्मों की कौन-सी विशेषता एकता का कारण बनी?
   क) कर्म और धर्म की अवधारणा
   ख) आर्थिक समृद्धि पर ध्यान
   ग) राजनीतिक नियंत्रण का समर्थन
   घ) एक ही शासक में विश्वास

116. प्राचीन भारत में एकता और विविधता के बीच संबंध को निम्न में से कौन-सा विकल्प सबसे सही रूप में दर्शाता है?
   क) देश छोटे-छोटे पृथक क्षेत्रों में बंटा था जिनमें कोई सांस्कृतिक समानता नहीं थी
   ख) विविध संस्कृतियों और धर्मों के बीच गहरी एकता की भावना थी
   ग) विविधता के कारण लगातार राजनीतिक अस्थिरता बनी रहती थी
   घ) एकता केवल राजनीतिक नियंत्रण पर आधारित थी

117. प्राचीन भारत में राष्ट्र की एकता बनाए रखने के लिए कौन-सी बात आवश्यक मानी जाती थी?
   क) सैन्य गठबंधन
   ख) सांस्कृतिक और धार्मिक समरसता
   ग) आर्थिक समृद्धि
   घ) राजनीतिक केंद्रीकरण

118. प्राचीन भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा निम्न में से किस बात पर बल देती थी?
   क) व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रताओं पर
   ख) धर्म और संस्कृति की रक्षा पर
   ग) क्षेत्रीय विजय पर
   घ) व्यापार मार्गों के विस्तार पर

119. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित "राजधर्म" को निम्न में से कौन-सा विकल्प सबसे सही रूप में परिभाषित करता है?
   क) कर संग्रह की एक विधि
   ख) शासक का नैतिक कर्तव्य कि वह प्रजा के लिए न्याय और कल्याण सुनिश्चित करे
   ग) एक सैन्य आचार संहिता
   घ) राजाओं के लिए किया जाने वाला धार्मिक अनुष्ठान

120. "अतिथि देवो भवः" यह वाक्य किस प्राचीन ग्रंथ से लिया गया है?
   क) मनुस्मृति
   ख) भगवद्गीता
   ग) तैत्तिरीय उपनिषद्
   घ) ऋग्वेद

121. आधुनिक भारतीय समाज में रॉबिन हुड आर्मी की क्या भूमिका है?
   क) भारतीय व्यंजनों का विदेशों में प्रचार करना
   ख) राजनीतिक प्रदर्शनों का आयोजन करना
   ग) ज़रूरतमंदों को अतिरिक्त भोजन वितरित करना
   घ) अंतरराष्ट्रीय खेल आयोजनों की मेज़बानी करना

122. शतपथ ब्राह्मण और तैत्रिय ब्राह्मण का उल्लेख किस वेद में है?
   क) ऋग्वेद
   ख) यजुर्वेद
   ग) सामवेद
   घ) अथर्ववेद

123. ब्रह्मचर्य आश्रम की शुरुआत को चिह्नित करने वाला संस्कार कौन-सा है?
   क) श्राद्ध
   ख) अन्त्येष्टि
   ग) उपनयन
   घ) विवाह

124. यजुर्वेद में 'संस्कृति' को किस शब्द से संबोधित किया गया है?
   क) ऋतम्
   ख) विश्ववारा
   ग) साम
   घ) श्रद्धा

125. भारतीय सांस्कृतिक चिंतन में "साम" की अवधारणा का क्या तात्पर्य है?
   क) समाज में आक्रामक प्रतिस्पर्धा
   ख) अन्य संस्कृतियों पर सांस्कृतिक श्रेष्ठता
   ग) सामूहिक बुद्धि पर आधारित सामाजिक समरसता
   घ) व्यक्तिगत पहचान का दमन

126. "ऋतंभरा प्रज्ञा" का तात्पर्य है:
   क) वैदिक अग्निहोत्र यज्ञ का एक प्रकार
   ख) तपस्या और कष्टों द्वारा प्राप्त ज्ञान
   ग) परम ज्ञान और सार्वभौमिक चेतना की स्थिति
   घ) वेदों का कोई पवित्र ग्रंथ

127. "एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" का अर्थ है:
   क) सत्य एक है, परन्तु ज्ञानी उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं
   ख) सत्य अनेक होते हैं
   ग) सभी देवता समान हैं
   घ) उपासना की सभी विधियाँ एक जैसी होती हैं

128. ब्रह्मांडीय पुरुष से निम्न में से क्या उत्पन्न हुआ?
   क) सूर्य और चंद्रमा
   ख) पंचमहाभूत (पाँच तत्व)
   ग) समस्त सृष्टि और प्राकृतिक शक्तियाँ
   घ) कर्म का सिद्धांत

129. ब्रह्म के संबंध में "निराकार" शब्द का क्या तात्पर्य है?

क) ब्रह्म एक सजीव और भौतिक रूप वाला प्राणी है

ख) ब्रह्म निराकार है और किसी एक रूप में सीमित नहीं किया जा सकता

ग) ब्रह्म का भौतिक संसार में एक विशेष रूप है

घ) ब्रह्म एक पूजनीय मूर्ति के रूप में विद्यमान है

130. ब्रह्म के एक रूप पर आधारित एकरूप उपासना के निषेध का संबंध किससे है?

क) किसी विशेष धार्मिक मत से

ख) अनेक देवी-देवताओं की उपासना से

ग) सनातन धर्म की समावेशी प्रकृति से

घ) पृथक संप्रदायों की रचना से

131. निम्नलिखित में से कौन-सा पुरुषार्थ सामाजिक एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों से सबसे अधिक संबंधित है?

क) मोक्ष

ख) धर्म

ग) अर्थ

घ) काम

132. "दान" (अर्पण) से गहराई से जुड़ी हुई आध्यात्मिक विशेषता कौन-सी है?

क) कर्म

ख) ज्ञान

ग) सेवा (निःस्वार्थ सेवा)

घ) तपस्या

133. "आरोग्य दान" मुख्यतः किससे संबंधित है?

क) वस्त्र दान करना

ख) शिक्षा हेतु सहायता

ग) स्वास्थ्य उपचार एवं औषधियों की सहायता

घ) मंदिरों का निर्माण

134. अशोक किस राजवंश से संबंधित थे?

क) मौर्य

ख) गुप्त

ग) चोल

घ) पाल

135. भारतीय संस्कृति में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा का क्या अर्थ है?

क) बुज़ुर्गों का सम्मान

ख) नारी सशक्तिकरण

ग) समस्त विश्व एक परिवार है

घ) संस्कृतियों के बीच विवाह

136. किस वेद में पराक्रम (वीरता) के लिए प्रार्थना की गई है?

क) ऋग्वेद

ख) सामवेद

ग) यजुर्वेद

घ) अथर्ववेद

137. वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में वीरता की मुख्य विशेषता क्या मानी जाती है?

क) शारीरिक आक्रामकता

ख) भौतिक संपत्ति की प्राप्ति

ग) त्याग और पवित्र ज्ञान की रक्षा

घ) राजनीति में भागीदारी

138. शिव का त्रिशूल किसका प्रतीक है?

क) क्रोध और विनाश

ख) ब्रह्मांडीय नृत्य

ग) बुराई के नाश की शक्ति

घ) एक धार्मिक उत्सव

139. भारतीय मूल्यों के अनुसार, वीर कौन हो सकता है?

क) केवल राजा और सैनिक

ख) केवल आध्यात्मिक गुरु

ग) कोई भी व्यक्ति जो धर्म और न्याय के प्रति समर्पित हो

घ) केवल शक्तिशाली व्यक्ति

140. भारत में मगध और कोशल जैसे प्रमुख जनपद (राज्य) किस काल में विद्यमान थे?

क) गुप्त काल

ख) मौर्य काल

ग) महाजनपद काल

घ) वैदिक काल

141. भारतीय वीरता-संस्कृति का सर्वोत्तम चित्रण किस महाकाव्य में मिलता है?

क) पंचतंत्र

ख) अर्थशास्त्र

ग) रामायण

घ) हितोपदेश

142. भारतीय मंदिरों में "अन्नदानम्" का उद्देश्य क्या होता है?

क) पर्यटन को बढ़ावा देना

ख) सबको भोजन कराकर समानता को प्रोत्साहन देना

ग) आर्थिक लाभ कमाना

घ) पाक-कला (खाना बनाना) सिखाना

143. सिख धर्म में दान देने की संस्थागत प्रथा को क्या कहा जाता है?

क) सेवा

ख) खालसा

ग) लंगर

घ) ज़कात

144. "मातृ देवो भव, पितृ देवो भव" इस कथन में किस बात पर बल दिया गया है?

क) सरकार की पूजा करो

ख) माता-पिता को बच्चों की बात माननी चाहिए

ग) माता-पिता का सम्मान करो और उन्हें देवता के समान मानो

घ) पारिवारिक संबंधों की उपेक्षा करो

145. गांधीजी द्वारा प्रचारित "सर्वोदय" शब्द का क्या अर्थ है?

क) सभी के लिए धन

ख) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

ग) सभी का कल्याण

घ) स्वयं की सेवा

146. राष्ट्रवाद के संदर्भ में "राजधर्म" का क्या अर्थ है?

क) कर प्रणाली के नियम

ख) धार्मिक अनुष्ठानों के कर्तव्य

ग) धर्म की रक्षा हेतु राजा का कर्तव्य

घ) व्यक्तिगत नैतिक आचरण

147. प्राचीन काल के किस विचारक ने 'अर्थशास्त्र' की रचना की थी?

क) वाल्मीकि

ख) व्यास

ग) कौटिल्य (चाणक्य)

घ) पतंजलि

148. किस सम्राट के बौद्ध धर्म में परिवर्तन ने भारत में आध्यात्मिक एकता को बढ़ावा दिया?

क) चंद्रगुप्त मौर्य

ख) हर्षवर्धन

ग) अशोक

घ) समुद्रगुप्त

149. भगवद्गीता के श्लोक (४/८) में "सम्भवामि युगे युगे" का क्या संकेत है?

क) प्रत्येक युग में धर्म का रूप बदलता है

ख) धर्म की पुनः स्थापना के लिए भगवान युग-युग में अवतार लेते हैं

ग) न्याय कभी-कभी ही होता है

घ) समय अपरिवर्तनीय होता है

150. 'कम्युनिटी फ्रिज़' कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य क्या है?

क) भारतीय व्यंजन का प्रचार करना

ख) भोजन की बर्बादी को कम करना और ज़रूरतमंदों की सहायता करना

ग) ग्रामीण क्षेत्रों में रेफ्रिजरेशन सुविधा उपलब्ध कराना

घ) वैक्सीन और दवाइयाँ संग्रहित करना

उत्तर-दर्शिका

1. (ख)	2. (ख)	3. (क)	4. (ख)
5. (ख)	6. (ख)	7. (ख)	8. (ख)
9. (ख)	10. (ख)	11. (क)	12. (ग)
13. (ग)	14. (ग)	15. (ख)	16. (क)
17. (ख)	18. (क)	19. (ख)	20. (क)
21. (ख)	22. (क)	23. (क)	24. (ख)
25. (ख)	26. (क)	27. (क)	28. (ख)
29. (ग)	30. (ख)	31. (ख)	32. (ख)
33. (ख)	34. (ख)	35. (ग)	36. (ग)
37. (ख)	38. (ख)	39. (ख)	40. (ग)
41. (ख)	42. (ख)	43. (ख)	44. (ख)
45. (ख)	46. (क)	47. (ग)	48. (ग)
49. (क)	50. (ख)	51. (ख)	52. (ख)
53. (क)	54. (क)	55. (ख)	56. (ख)
57. (ख)	58. (ख)	59. (ख)	60. (क)
61. (ख)	62. (क)	63. (ख)	64. (क)
65. (ख)	66. (क)	67. (ख)	68. (ख)
69. (ख)	70. (क)	71. (क)	72. (क)
73. (ख)	74. (ख)	75. (क)	76. (ख)

77. (ख)	78. (ख)	79. (क)	80. (ग)
81. (ग)	82. (ग)	83. (ख)	84. (ख)
85. (ख)	86. (ग)	87. (क)	88. (ख)
89. (ख)	90. (ख)	91. (क)	92. (ख)
93. (ग)	94. (ग)	95. (ग)	96. (ख)
97. (ख)	98. (ख)	99. (ख)	100. (ख)
101. (ख)	102. (ख)	103. (ख)	104. (ख)
105. (ख)	106. (ख)	107. (ख)	108. (ख)
109. (ख)	110. (ख)	111. (ख)	112. (ग)
113. (ग)	114. (ख)	115. (क)	116. (ख)
117. (ख)	118. (ख)	119. (ख)	120. (ख)
121. (ग)	122. (ग)	123. (ग)	124. (ख)
125. (ग)	126. (ग)	127. (क)	128. (ग)
129. (ख)	130. (ग)	131. (ग)	132. (ग)
133. (ग)	134. (क)	135. (घ)	136. (घ)
137. (ग)	138. (ख)	139. (ग)	140. (ग)
141. (क)	142. (ख)	143. (ग)	144. (ग)
145. (घ)	146. (ख)	147. (क)	148. (ग)
149. (ख)	150. (ख)		

पुस्तक के विषय में

यह पुस्तक भारतीय संस्कृति की एक गहन यात्रा है – एक ऐसी प्राचीन सभ्यता जिसकी जड़ें वेदों में समाई हुई हैं और जिसकी शाखाएं आज भी जीवंत हैं। यह पुस्तक भारत की सांस्कृतिक यात्रा को उसके वैदिक आरंभ से लेकर आधुनिक युग तक विस्तृत रूप से प्रस्तुत करता है। पुस्तक का मूल केंद्र, प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण है, जहाँ जीवन को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के संतुलित सिद्धांतों पर आधारित माना गया है। इसमें उपनिषदों, रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों, तथा ऋषियों की शिक्षाओं से निकली उस जीवन-दृष्टि को उजागर किया गया है, जो आत्मबोध, संतुलन और सार्वभौमिक एकता की ओर ले जाती है।

यह पुस्तक उन सांस्कृतिक आयामों को रेखांकित करती है जो भारत की आत्मा से उपजे हैं और आज भी इसके जीवन में रचे-बसे हैं। इतिहास की गहराई और संस्कृति की समृद्धि से युक्त, यह पुस्तक उन पाठकों के लिए आदर्श है जो भारतीय संस्कृति को केवल परंपराओं के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत, शाश्वत और जीवनदर्शी परंपरा के रूप में समझना चाहते हैं। यह विश्व की एक महानतम प्राचीन सभ्यता की आध्यात्मिकता, ज्ञान और कला की समृद्ध परंपरा के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि है।



विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
Vidya Bharati Uchcha Shiksha Sansthan
H-107a, Sector-12, Noida,
Gautam Buddha Nagar, U.P. 201301
Contact Us : 0120-4338616, 9999694251

किताबवाले
7/31, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
वेबसाईट : www.kitabwale.com
ईमेल : kitabwale@gmail.com

ISBN 978-93-49531-02-4

Bharat Boudhik

खंड-21

वास्तु शास्त्र

स्थान और संतुलन का पवित्र विज्ञान



3. **समाजशास्त्र एवं अर्थनीति**: इसमें राजधर्म, अर्थशास्त्र, कृषि, ग्रामीण उद्योग, और शासन-प्रणाली जैसे विषयों को शामिल किया गया है, जो संतुलित और नैतिक समाज निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इन पुस्तकों के माध्यम से युवाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु हम **23 जनवरी 2026**, नेताजी **सुभाष चंद्र बोस जी की जयंती** के अवसर पर, एक **राष्ट्रीय परीक्षा** का आयोजन कर रहे हैं। यह परीक्षा पूरे देश के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए खुली होगी। इस परीक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का मूल्यांकन करना नहीं है, बल्कि जिज्ञासा जगाना, आत्मचिंतन को प्रेरित करना, और भारतीय सभ्यता के गौरव के प्रति गर्व की भावना को जागृत करना है।

परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को **राष्ट्रीय भारत बौद्धिक्स कॉन्क्लेव** में आमंत्रित किया जाएगा। यह एक ऐसा मंच होगा जहाँ वे अपने विचार साझा करेंगे, मार्गदर्शकों से संवाद करेंगे और **भारतीय कला एवं समाज** भारतीय ज्ञान प्रणाली के जीवंत अनुभव से जुड़ सकेंगे। **भारत बौद्धिक्स** मात्र एक शैक्षिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि यह एक **यात्रा है: ज्ञान से बोध की ओर**। यह हमें हमारे मूल से जुड़ने, अपने भविष्य की पुनर्कल्पना करने और भारत की आत्मा को पुनः समझने का अवसर देता है।

मैं देशभर के सभी छात्रों, शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों से हार्दिक आग्रह करता हूँ कि वे इस पुनराविष्कार और परिवर्तन की यात्रा में हमारे सहभागी बनें। आइए, हम मिलकर एक ऐसी पीढ़ी के निर्माण में सहायक बनें, जो बौद्धिक रूप से जागरूक, संस्कृति के प्रति संवेदनशील और वैश्विक दृष्टिकोण से उत्तरदायी हो।

सादर, सस्नेह

प्रो. कैलाश सी. शर्मा

अध्यक्ष, विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान
अध्यक्ष, हरियाणा राज्य उच्च शिक्षा परिषद
पूर्व कुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

विषय सूची

प्रस्तावना	9
विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान	11
1. भूमिका	13
2. वास्तु-कला: भारतीय निर्माण परंपरा की गौरवशाली धरोहर	14
3. वास्तुशास्त्र के प्रामाणिक ग्रंथ	15
4. वास्तुकला का विकास: भारतीय ज्ञान परंपरा में एक दिव्य शास्त्र	15
5. वास्तुशास्त्र का वैदिक मूल	15
6. शास्त्रीय ग्रंथों में विस्तार	16
7. ऐतिहासिक विकास और क्षेत्रीय भिन्नताएँ	16
8. वास्तुशास्त्र की प्रमुख परंपराएँ	17
9. वास्तुशास्त्र के अनुसार दिशाएँ और स्थान निर्धारण	18
10. विभिन्न आकारों का वास्तुशास्त्रीय महत्व	18
11. दस दिशाओं का सिद्धान्त	19
12. दस दिशाओं का सिद्धांत और भवन नियोजन में उनका महत्व	19
13. वास्तुशास्त्र के अनुरूप स्थापत्य कला के उत्कृष्ट साक्ष्य	21
14. वास्तुशास्त्र में रंगों का महत्व	28
15. मूर्ति कला: भारतीय सांस्कृतिक विरासत की एक दिव्य धरोहर	30
16. मूर्ति कला का विकास और शास्त्रीय आधार	32
17. भारतीय मूर्तिकला: प्रमुख शैलियाँ	32

18. मूर्ति कला का सांस्कृतिक महत्व 34
19. मूर्ति के प्रकार 35
20. मूर्ति लक्षण और त्रिमूर्ति सिद्धांत 37
21. मूर्ति दोष और उनका प्रभाव 37
22. सारांश 38
अनुशंसित पठन सामग्री 39
बहु विकल्पीय प्रश्न 44
उत्तर-दर्शिका 64

प्रस्तावना

भारत की स्थापत्य और मूर्तिकला विरासत उसके आध्यात्मिक और सांस्कृतिक सार का गहन प्रतिबिंब है। यह पुस्तक वास्तुशास्त्र और मूर्ति कला की समृद्ध परंपराओं का गहन अध्ययन करती है, तथा भारतीय सभ्यता में उनके उद्गम, विकास और स्थायी महत्व की पड़ताल करती है। प्राचीन धर्मग्रंथों, क्षेत्रीय प्रथाओं और दार्शनिक आधारों का अध्ययन करके, हमारा उद्देश्य उन सिद्धांतों को उजागर करना है जिन्होंने सहस्राब्दियों से भारतीय निर्माण और कलात्मक प्रयासों का मार्गदर्शन किया है।

हमारा अन्वेषण वास्तुशास्त्र के वैदिक मूल, शास्त्रीय ग्रंथों में इसके विस्तार और भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी अभिव्यक्ति को समाहित करता है। इसी प्रकार, हम मूर्ति निर्माण की पवित्र कला का गहन अध्ययन करते हैं, इसके शास्त्रीय आधारों और शैलीगत विकास का पता लगाते हैं। इस यात्रा के माध्यम से, हम पाठकों को इन कालातीत परंपराओं और समकालीन समय में उनकी प्रासंगिकता की व्यापक समझ प्रदान करना चाहते हैं।

यह कृति प्राचीन ग्रंथों, पुरातात्विक खोजों और समकालीन व्याख्याओं पर आधारित व्यापक शोध का परिणाम है। हमारी आशा है कि यह पुस्तक भारत की स्थापत्य कला और मूर्तिकला की गहन विरासत में रुचि रखने वालों के लिए एक सूचनाप्रद मार्गदर्शिका और प्रेरणा का काम करेगी।

The Indian way of life provides the vision of the natural, real way of life. We western veil ourselves with unnatural masks. On the face of India are the tender expressions which carry the mark of the Creator's hand.

The apparent multiplication of gods is bewildering at first glance, but you soon discover that they are the same GOD. There is always one utmost God who defies personification. This makes Hinduism the most tolerant religion in the world, because it's one transcendent God that includes all possible gods. Hinduism is so elastic and so subtle that the most profound methodist and crudest idolater are equally at home with it.



Bernard Shaw
(1856-1950)

A great Irish dramatist, a socialist spokesman, critic, and leading figure in the twentieth-century theatre, Shaw received the Nobel Prize in Literature. His major literary works include: Man and Superman, Pygmalion, and Saint Joan. He is considered second only to Shakespeare among British dramatists, and the word Shavian represents his ideology.

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान

विद्या भारती उच्च शिक्षा संस्थान (VBUSS) भारतीय परंपराओं में निहित एक समग्र, मूल्य-आधारित ढांचे के अंतर्गत शैक्षणिक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण और राष्ट्र-निर्माण पर बल देते हुए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। **"सा विद्या या विमुक्तये"** - अर्थात् "वह ज्ञान जो मुक्त करता है" - इस प्रेरणादायक ध्येय वाक्य से संचालित होकर, VBUSS ऐसी पीढ़ी के निर्माण का संकल्प करता है जो न केवल शैक्षणिक दृष्टि से दक्ष हो, अपितु सामाजिक रूप से उत्तरदायी एवं आध्यात्मिक रूप से जागरूक भी हो।

संस्थान उच्च शिक्षा के मूल तत्वों के रूप में समालोचनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक जीवन और गहन सांस्कृतिक समझ को प्रमुखता प्रदान करता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में विस्तृत शैक्षणिक तंत्र के माध्यम से VBUSS ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। यह संस्था अनेक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, डिग्री संस्थानों तथा व्यावसायिक केन्द्रों का संचालन कर, देश में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता तथा उपलब्धता को सुदृढ़ करने का कार्य कर रही है।

उपलब्धियों की दृष्टि से भी VBUSS ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति की है। संस्थान ने सम्पूर्ण भारत में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का एक सुदृढ़ तंत्र स्थापित किया है, जो विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों में शैक्षणिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। कठोर पाठ्यक्रमों और अनुसंधान पहलों के माध्यम से निरंतर शैक्षणिक उत्कृष्टता को सुनिश्चित करते हुए, इसने शिक्षा क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु मान्यता प्राप्त की है।

विद्या भारती ने वंचित समुदायों को शिक्षा उपलब्ध कराकर सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है, जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहुँच का अंतर कम हुआ है।

अपने सतत प्रयासों द्वारा VBUSS भारत के भविष्य को कुशल, ज्ञानसम्पन्न एवं नैतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। आधुनिक शैक्षणिक विषयों का प्राचीन भारतीय ज्ञान से समन्वय कर, VBUSS राष्ट्र के प्रति समर्पित, जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

VBUSS प्राचीन भारतीय ज्ञान को पुनः जागृत कर समकालीन शिक्षा प्रणाली में एकीकृत करने के राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत पुस्तक इस महान अभियान में एक विनम्र योगदान है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख विचारों, दार्शनिक अवधारणाओं एवं विभिन्न शास्त्रों को एक सुलभ एवं विचारोत्तेजक स्वरूप में संकलित करता है।

वास्तु शास्त्र : स्थान और संतुलन का पवित्र स्थान

भूमिका

भारत की प्राचीन सभ्यता केवल एक भौगोलिक पहचान नहीं थी, बल्कि एक दिव्य *ज्ञान-परंपरा* का केन्द्र थी, जहाँ जीवन के प्रत्येक पक्ष को *धर्म, विज्ञान और कला* के अद्वितीय समन्वय से सँवारा गया था। चाहे वह नगर नियोजन हो या मंदिर निर्माण, आवासीय भवन हों या प्रतिमाओं की स्थापना - हर प्रक्रिया में एक सूक्ष्म विज्ञान, आध्यात्मिक दृष्टि और सांस्कृतिक चेतना अंतर्निहित थी।

वास्तुशास्त्र केवल दिशाओं और भवन निर्माण की विद्या नहीं, बल्कि *ज्योतिष, खगोलशास्त्र, ऊर्जा प्रवाह (प्राणवायु), पंचतत्त्व*, और *मानव जीवन के संतुलन* की अत्यंत सूक्ष्म समझ पर आधारित है। इसमें केवल भवन नहीं, बल्कि एक जीवंत ऊर्जा केंद्र का निर्माण होता है, जो व्यक्ति के *शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास* में सहायक होता है।

मूर्तिकला भी केवल पत्थर तराशने की क्रिया नहीं थी, अपितु एक *दैवीय विज्ञान* थी, जिसमें *शिल्पशास्त्र, मूर्ति-शास्त्र, अगम-निगम, और नाट्यशास्त्र* की सम्मिलित प्रेरणा से *देवताओं के विग्रह* निर्मित होते थे। मूर्तियों में भाव, अनुपात, और प्राण-प्रतिष्ठा की प्रक्रिया इस बात को सिद्ध करती है कि हमारे शिल्पी केवल कलाकार नहीं, ऋषि तुल्य वैज्ञानिक हुआ करते थे।

मंदिर निर्माण की भारतीय प्रणाली में न केवल वास्तुकला और वास्तु को एकीकृत किया गया था, बल्कि ज्योतिष, ध्वनि विज्ञान (नाद), यंत्र विज्ञान, दिशा ज्ञान और पृथ्वी की ऊर्जा का संतुलन - सभी शास्त्रीय विज्ञान का हिस्सा थे। हर मंदिर, चाहे वह कोणार्क हो या महरौली का योगमाया मंदिर, केवल पूजा का स्थल नहीं था, वह एक *संपूर्ण ऊर्जा केंद्र, समाज का सांस्कृतिक ध्रुव*, और *आध्यात्मिक उत्थान* का स्रोत था।

आज जबकि आधुनिकता के नाम पर हम इन *गहन और वैज्ञानिक परंपराओं* को भूलते जा रहे हैं, यह आवश्यक है कि *हम पुनः भारतीय शास्त्रों का अध्ययन करें, उनके मूल सिद्धांतों को समझें*, और यह जानें कि कैसे हमारे पूर्वजों ने बिना आधुनिक उपकरणों के भी ऐसे दिव्य मंदिर, नगर, मूर्तियाँ और भवन रचे जो आज भी विश्व को चकित कर रहे हैं।

वास्तु-कला: भारतीय निर्माण परंपरा की गौरवशाली धरोहर

भारत की प्राचीन वास्तुकला और भवन निर्माण की समृद्ध परंपरा, जिसे **'वास्तुशास्त्र'** के नाम से जाना जाता है, हमारी सांस्कृतिक विरासत का एक अहम हिस्सा रही है। यह न केवल चौंसठ पारंपरिक कलाओं में से एक मानी जाती है, बल्कि जीवन को संतुलित और समृद्ध बनाने की एक वैज्ञानिक प्रणाली भी है। प्राचीन भारत में वास्तु पर गहन अध्ययन हुआ, और अनेक ग्रंथों की रचना की गई, जिनमें दिशा, रूप, माप और ऊर्जा संतुलन जैसे सिद्धांतों को विस्तार से समझाया गया।

हालाँकि उपनिवेशकाल में यूरोपीय दृष्टिकोण के प्रभाव से इस विद्या को कई बार अंधविश्वास या अवैज्ञानिक मान्यताओं से जोड़कर कमतर आँका गया, फिर भी भारतीय जनमानस में इसकी जड़ें बनी रहीं। समय के साथ यह कला पुनः जागरूकता का विषय बन रही है, और आधुनिक समाज भी इसकी वैज्ञानिकता और सांस्कृतिक महत्त्व को समझने की ओर अग्रसर है।



वास्तुशास्त्र के प्रामाणिक ग्रंथ

वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों और उसके विविध पहलुओं पर आधारित अनेक प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध हैं, जो इस विद्या की गहराई और व्यापकता को दर्शाते हैं। **स्कन्दपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण, गरुड़पुराण, नारदपुराण** और **मत्स्यपुराण** जैसे पुराणों में वास्तु संबंधी नियमों का विस्तार से वर्णन मिलता है - चाहे वह भवन निर्माण हो, नगर नियोजन हो या मंदिर स्थापत्य की प्रक्रिया।

इन पुराणों के अतिरिक्त, **वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, कौटिल्य का अर्थशास्त्र** और **वराहमिहिर की बृहत्संहिता** जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में भी वास्तु से संबंधित गूढ़ ज्ञान समाहित है। ये सभी ग्रंथ यह स्पष्ट करते हैं कि वास्तुशास्त्र केवल निर्माण की तकनीक भर नहीं, बल्कि जीवन को संतुलन, ऊर्जा और सौंदर्य से भरने वाली एक सुसंगठित विज्ञान प्रणाली है।

वास्तुकला का विकास: भारतीय ज्ञान परंपरा में एक दिव्य शास्त्र

'वास्तु' शब्द संस्कृत की 'वास' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है - **निवास करना या रहने का स्थान।** इस शब्द का प्रयोग केवल भवनों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका आशय उन सभी स्थानों से है जहाँ जीव-चाहे वे नश्वर हों या अमर-निवास करते हैं। प्राचीन ग्रंथ मयमतम् में वास्तु की परिभाषा दी गई है, जिसमें वास्तु को चार प्रकारों में विभाजित किया गया है:

1. भूमिवास्तु - भूमि या स्थल का स्वरूप
2. गृहवास्तु - भवन, मंदिर या अन्य निर्माण
3. यानवास्तु - वाहन जैसे रथ, नाव आदि
4. आसनवास्तु - बैठने या विश्राम के स्थान

इनमें *भूमिवास्तु* को सबसे मूलभूत और महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि वही अन्य सभी प्रकारों की आधारभूमि है (*संदर्भ: मयमतम्, अध्याय 2–1*).

वास्तुशास्त्र का वैदिक मूल

वास्तुशास्त्र की जड़ें वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। *ऋग्वेद* में **"वासय रथं पृथिव्याः"** (ऋग्वेद 10.62.11) जैसे मंत्र भूमि पर समुचित रूप से रथ रखने की बात

करते हैं, जिससे दिशा और स्थान व्यवस्था की अवधारणा प्रकट होती है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ वेदियों के निर्माण, स्थान चयन और दिशा-संरेखण के लिए स्पष्ट नियम मिलते हैं। ये सभी संकेत वास्तु के प्रारंभिक वैज्ञानिक आधार को दर्शाते हैं।

शास्त्रीय ग्रंथों में विस्तार

कालांतर में वास्तु का व्यवस्थित स्वरूप विभिन्न ग्रंथों में विकसित हुआ। इनमें प्रमुख हैं:

- ***अग्निपुराण*** (अध्याय 42–45): भवन निर्माण, मापन, दिक्काल विन्यास
- ***मत्स्यपुराण*** (अध्याय 253–255): मंदिर और मूर्ति स्थापत्य
- ***वायुपुराण, नारदपुराण, स्कन्दपुराण, गरुड़पुराण***: नगर नियोजन, मंदिर स्थापत्य
- ***बृहत्संहिता* (वराहमिहिर, छठी सदी)**: वास्तु, ग्रहों की दिशा, भूखंड नियोजन
- ***मयमतम्*** और ***मानसार*** (दक्षिण भारत के शिल्पग्रंथ): द्रविड़ मंदिरों की वास्तु और आभ्यंतर योजना

इन सभी ग्रंथों में भवन निर्माण को केवल भौतिक संरचना नहीं, बल्कि एक दैविक प्रक्रिया माना गया है, जिसमें ऊर्जा प्रवाह, ब्रह्मस्थान, पंचमहाभूतों का संतुलन और दिशाओं का नियमन शामिल है।

ऐतिहासिक विकास और क्षेत्रीय भिन्नताएँ

गुप्त काल (चौथी–छठी सदी ई.) को भारतीय वास्तुकला का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस युग में नागर, द्रविड़ और वेसर शैली के मन्दिरों की रचना वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार हुई। जैसे:

- *दशावतार मंदिर, देवगढ़ (उत्तर प्रदेश)*
- *लक्ष्मण मंदिर, सिरपुर (छत्तीसगढ़)*
- *कैलाशनाथ मंदिर, कांचीपुरम (तमिलनाडु)*

तेरहवीं सदी तक यह परंपरा पूरे भारतवर्ष में विस्तृत रूप से प्रचलित थी। किंतु मध्यकालीन भारत में, विशेषतः मुग़ल शासन के प्रभाव के कारण उत्तर भारत में पारंपरिक वास्तुकला को अवरोध झेलना पड़ा। इस काल में फारसी स्थापत्य शैली (गुंबद, मीनारें, मेहराबें आदि) प्रमुखता से उभरी।

हालाँकि, दक्षिण भारत में चोल, पल्लव, पांड्य और विजयनगर शासकों ने वास्तुशास्त्र को संरक्षण और प्रोत्साहन दिया। इसके परिणामस्वरूप, दक्षिण भारत के मन्दिर वास्तुशास्त्र की सिद्धियों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। जैसे:

- *बृहदेश्वर मंदिर (तंजावुर)*
- *विरुपाक्ष मंदिर (हम्पी)*
- *मीनाक्षी मंदिर (मदुरै)*

वास्तुशास्त्र की प्रमुख परंपराएँ

भारतीय वास्तुशास्त्र की परंपरा दो प्रमुख धाराओं में विभाजित की जा सकती है - **उत्तर भारतीय (नागर शैली आधारित)** और **दक्षिण भारतीय (द्रविड़ शैली आधारित)**। इन दोनों परंपराओं ने स्थापत्य कला की अद्वितीय पहचान बनाई और भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को समृद्ध किया।

1. उत्तर भारतीय वास्तु परंपरा

उत्तर भारत की वास्तु परंपरा में *समरांगण सूत्रधार* (राजा भोज द्वारा रचित), *विश्वकर्मा प्रकाश*, और *वास्तु रत्नावली* जैसे शिल्पग्रंथों का विशेष महत्व है। इन ग्रंथों में भवन निर्माण, मंदिर स्थापत्य, नगर नियोजन, मूर्ति स्थापना, एवं दिक्पालन व्यवस्था से संबंधित विस्तृत सिद्धांत वर्णित हैं। *समरांगण सूत्रधार* में लगभग 100 अध्याय केवल वास्तु एवं स्थापत्य विषय पर केंद्रित हैं, जिनमें से कई यंत्रों व मापदंडों का भी उल्लेख मिलता है।

2. दक्षिण भारतीय वास्तु परंपरा

दक्षिण भारत की वास्तुशास्त्रीय परंपरा मुख्यतः *मयमतम्*, *मानसार*, और *तंत्रसमुच्चय* जैसे ग्रंथों पर आधारित है। इस परंपरा में मंदिर निर्माण की द्रविड़ शैली विशेष प्रसिद्ध रही है, जो अपने ऊँचे और अलंकृत *गोपुरम* (प्रवेशद्वार टॉवर), विस्तृत *प्राकार* (घेरने वाली दीवारें), और गूढ़ *वास्तु-मंडल* की रचनात्मकता के लिए जानी जाती है। यहाँ के मंदिर जैसे *बृहदेश्वर मंदिर (तंजावुर)* और *मीनाक्षी मंदिर (मदुरै)*, इस परंपरा की उत्कृष्टता के जीवंत उदाहरण हैं।

भारतीय वास्तु परंपराओं का महत्व केवल धार्मिक या सांस्कृतिक सीमाओं में नहीं सिमटा है, बल्कि इसमें गहन **वैज्ञानिक सोच** भी समाहित है। भवनों की दिशा, ब्रह्मस्थान, वायुविन्यास, प्रकाश और ऊर्जा संतुलन जैसी अवधारणाएं दर्शाती हैं कि

वास्तुशास्त्र केवल स्थापत्य कला नहीं, बल्कि जीवनशैली, दर्शन और पर्यावरणीय संतुलन का भी विज्ञान है।

इन शास्त्रीय शिक्षाओं ने प्राचीन भारत में नगरों की योजनाबद्ध संरचना, स्थायित्वयुक्त भवनों और ऊर्जा-संगत मंदिरों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तुशास्त्र न केवल एक तकनीकी ज्ञान प्रणाली है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति के आत्मिक, दार्शनिक और व्यावहारिक पक्षों का भी प्रतिनिधित्व करता है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार दिशाएँ और स्थान निर्धारण

भारतीय वास्तुशास्त्र के अनुसार, भवन निर्माण में भूमि की दिशा, आकार, स्थिति और ऊर्जा प्रवाह का अत्यंत महत्व होता है। यह शास्त्र इस सिद्धांत पर आधारित है कि यदि दिशाओं और स्थानों का समुचित निर्धारण किया जाए, तो उसमें निवास करने वालों के जीवन में सुख, समृद्धि, शांति और मानसिक संतुलन बना रहता है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार, **वर्गाकार** और **आयताकार** भूखंड या भवन अत्यंत शुभ माने जाते हैं। इन आकारों को संतुलित और स्थिर ऊर्जा के प्रतीक के रूप में देखा जाता है, जो जीवन में स्थायित्व और समृद्धि का आधार बनते हैं। इसके विपरीत, अनियमित या विषम आकार की भूमि या इमारतें-जैसे त्रिकोणीय, अर्द्धवृत्ताकार या टेढ़े-मेढ़े सीमाओं वाली-प्राकृतिक ऊर्जा प्रवाह में बाधा डाल सकती हैं, जिससे असंतुलन और मानसिक/आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

विभिन्न आकारों का वास्तुशास्त्रीय महत्व

1. वर्गाकार एवं आयताकार भूखंड/भवन

यह आकार वास्तुशास्त्र में अत्यंत शुभ माने जाते हैं। वर्ग और आयत में स्थिरता, समरसता और स्पष्ट दिशानुमा व्यवस्था होती है, जो ऊर्जा के सन्तुलित प्रवाह को सुनिश्चित करती है। इससे निवासियों के जीवन में संतुलन, समृद्धि और मानसिक शांति का विकास होता है।

2. गोलाकार संरचनाएँ

गोलाकार आकृतियाँ नियमित आवास के लिए तो उपयुक्त नहीं मानी जातीं, लेकिन कुएँ, स्तूप, सभागार, जलाशय, किले, और भाण्डों जैसे उपयोगी संरचनाओं के लिए यह आकार विशेष रूप से शुभ माना गया है। गोलाकार संरचनाएँ ऊर्जा को सम-प्रवाह में

बनाए रखने में सहायक होती हैं, और सामूहिक स्थानों में ध्वनि तथा प्रकाश के संतुलन में भी यह प्रभावी मानी जाती हैं।

दस दिशाओं का सिद्धान्त

वास्तुशास्त्र में **दस दिशाओं** का सिद्धांत बहुत प्रसिद्ध है। ये दिशाएँ इस प्रकार हैं:

क्र.	दिशा	विवरण	क्रमांक	दिशा	विवरण
1	उत्तर	उत्तर दिशा	6	नैऋत्य	दक्षिण-पश्चिम दिशा
2	ईशान	उत्तर-पूर्व दिशा	7	पश्चिम	पश्चिम दिशा
3	पूर्व	पूर्व दिशा	8	वायव्य	उत्तर-पश्चिम दिशा
4	आग्नेय	दक्षिण-पूर्व दिशा	9	ऊर्ध्व	ऊपर की दिशा
5	दक्षिण	दक्षिण दिशा	10	अधो	नीचे की दिशा

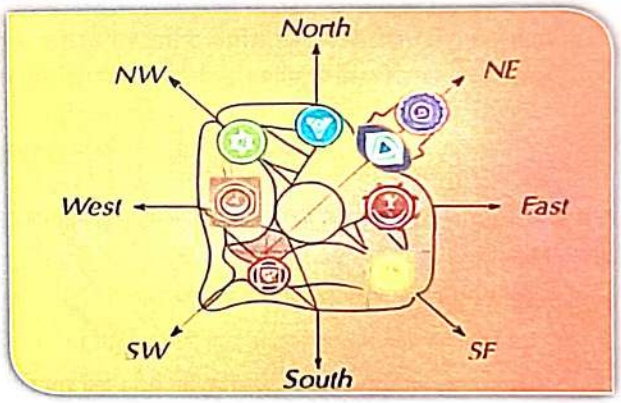

वास्तु शास्त्र के अनुसार महत्वपूर्ण दिशाएँ

दस दिशाओं का सिद्धांत और भवन नियोजन में उनका महत्व

भारतीय वास्तुशास्त्र में **दस दिशाओं**-पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान (पूर्वोत्तर), आग्नेय (दक्षिण-पूर्व), नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम), वायव्य (उत्तर-पश्चिम), ऊर्ध्व (ऊपर), और अधो (नीचे)-का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। भवन निर्माण में इन दिशाओं का

समुचित प्रयोग भवन के ऊर्जा संतुलन, सुख-समृद्धि और स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

ईशान दिशा को विशेष रूप से पवित्र और शुभ माना गया है। यह दिशा ब्रह्मस्थान से जुड़ी है और यहां से आने वाली सूर्य की प्रातःकालीन किरणों को अमृततुल्य माना गया है। इसके विपरीत, **नैऋत्य** और **दक्षिण** दिशाएँ भारी तत्वों से संबंधित मानी जाती हैं, जहाँ स्थायित्व और सुरक्षा की भावना प्रबल होती है।

- **भूमि की ढलान का महत्व**

वास्तुशास्त्र के अनुसार, भूमि की ढलान **ईशान दिशा** की ओर होनी चाहिए। ऐसा ढलान सूर्य की ऊर्जा को प्रभावी रूप से आकर्षित करता है और घर में सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह सुनिश्चित करता है।

- ईशान दिशा की **न्यूनतम ऊँचाई** सूर्योदय की किरणों को घर में आमंत्रित करती है, जो स्वास्थ्य और मानसिक शांति के लिए लाभकारी होती हैं।
- वहीं, **नैऋत्य दिशा** की अपेक्षाकृत **अधिक ऊँचाई** सूर्य की तीव्र और दोपहर बाद की हानिकारक किरणों को सीमित कर देती है, जिससे गर्मी और मानसिक असंतुलन से बचाव होता है।

- **दिशाओं के अनुसार भवन में स्थान नियोजन**

वास्तुशास्त्र के अनुसार विभिन्न दिशाओं में कक्षों और कार्यस्थलों का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए:

1. **ईशान (पूर्वोत्तर)** - पूजा कक्ष के लिए सर्वोत्तम स्थान।
2. **पूर्व दिशा** - स्नानागार (बाथरूम) के लिए उपयुक्त दिशा।
3. **आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)** - रसोईघर (किचन) का स्थान यहाँ शुभ होता है।
4. **उत्तर दिशा** - भंडारगृह (स्टोर रूम) या तिजोरी के लिए अनुकूल।
5. **दक्षिण और नैऋत्य के मध्य** - शौचालय का निर्माण इसी क्षेत्र में करना उचित है।
6. **नैऋत्य और पश्चिम के मध्य** - अध्ययन कक्ष (स्टडी रूम) के लिए उत्तम स्थान।

7. **वायव्य और उत्तर के मध्य** - शयनकक्ष या दाम्पत्य सुख हेतु उपयुक्त क्षेत्र।
8. **उत्तर और ईशान के मध्य** - औषधियाँ और स्वास्थ्य से संबंधित वस्तुएँ रखने हेतु श्रेष्ठ स्थान।
9. **नैऋत्य दिशा** - सूतिकागृह (प्रसव कक्ष) के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है, क्योंकि यह स्थायित्व और सुरक्षा की भावना प्रदान करती है।

वास्तुशास्त्र में दिशाओं का सही उपयोग और स्थान निर्धारण भवन के सकारात्मक ऊर्जा प्रवाह को सुनिश्चित करते हैं। यह शास्त्र न केवल वास्तुकला के सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है, बल्कि यह जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन और समृद्धि के लिए मार्गदर्शन भी प्रदान करता है।

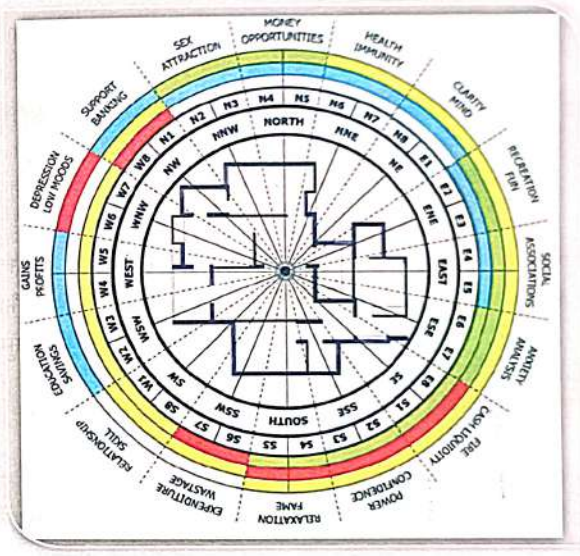

दिशा और इमारत में वास्तुकला का स्थान

वास्तुशास्त्र के अनुरूप स्थापत्य कला के उत्कृष्ट साक्ष्य

भारतीय स्थापत्य कला की समृद्ध परंपरा वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों और शास्त्रों पर आधारित है, जो न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व रखते हैं, बल्कि इनका वास्तु, कला,

और विज्ञान के क्षेत्रों में भी गहरा प्रभाव है। प्राचीन और मध्यकालीन भारत में निर्मित कई मंदिर, स्तूप, किले, और दुर्ग वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों का पालन करते हुए बनाए गए थे, जो आज भी उनकी वास्तुकला की श्रेष्ठता को प्रमाणित करते हैं।

कुछ प्रमुख उदाहरण जो वास्तुशास्त्र के अनुरूप स्थापत्य कला के उत्कृष्ट साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं, वे निम्नलिखित हैं–

1. **केदारनाथ मंदिर** (उत्तराखंड) – यह मंदिर हिमालय की ऊँचाई पर स्थित है और इसकी वास्तुकला धार्मिक ऊर्जा और स्थिरता का प्रतीक है। इस मंदिर का निर्माण विशेष रूप से शास्त्रीय वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुरूप किया गया है। हिमालय की गोद में स्थित यह मंदिर 8वीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य द्वारा पुनर्निर्मित किया गया था। यह मंदिर बिना सीमेंट के पत्थरों की इंटरलॉकिंग प्रणाली से बना है, जो इसे भूकंप जैसी आपदाओं से सुरक्षित बनाती है।

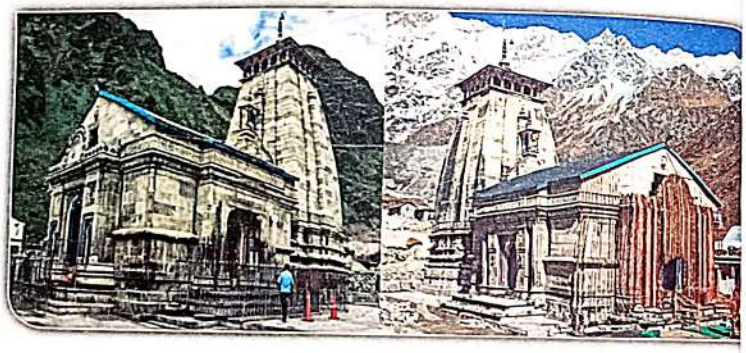

2. **पुरी का जगन्नाथ मंदिर** (ओडिशा) – यह मंदिर भारतीय स्थापत्य कला का अद्वितीय उदाहरण है, जिसमें शास्त्रों के अनुसार मंदिर की संरचना और डिज़ाइन की गई है। इसका शिखर और मंदिर परिसर वास्तुशास्त्र के अनुरूप हैं। 11वीं शताब्दी में पूर्वी गंगा वंश के राजा अनंतवर्मन चोडगंग द्वारा निर्मित, यह मंदिर अपनी अनोखी विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध है। यहां की ध्वजा सदैव हवा की दिशा के विपरीत लहराती है, और मंदिर के गुंबद की छाया जमीन पर दिखाई नहीं देती।

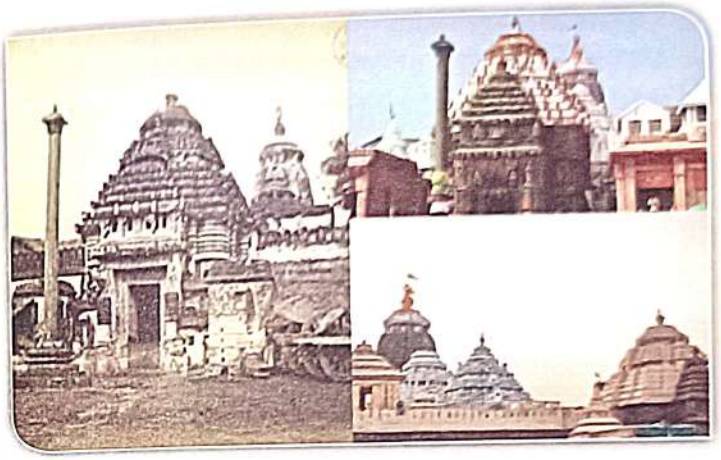

3. **कोणार्क का सूर्य मंदिर** (ओडिशा) – सूर्य के आदर में बना यह भव्य मंदिर चक्राकार आकार में है और इसकी संरचना सूर्य की गति और ऊर्जा के अनुरूप की गई है। 13वीं शताब्दी में गंगा वंश के राजा नरसिंहदेव प्रथम द्वारा निर्मित, यह मंदिर सूर्य भगवान को समर्पित है। मंदिर को एक विशाल रथ के आकार में बनाया गया है, जिसमें 12 पहिए और 7 घोड़े हैं। इन पहियों की संरचना सूर्य की गति और समय को दर्शाती है।



4. **ओडिशा का पापनाशिनी शिव मंदिर** – इस मंदिर की वास्तुकला शिव के प्रति श्रद्धा और ऊर्जा के संतुलन को ध्यान में रखकर बनाई गई है।



5. **लेपाक्षी मंदिर** (आंध्र प्रदेश) – यह मंदिर वास्तुशास्त्र और वास्तुकला का अद्भुत उदाहरण है, जिसमें सभी दिशाओं और ऊर्जा संतुलन का पालन किया गया है। 16वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य के विरुपन्ना और वीरन्ना द्वारा निर्मित, यह मंदिर 'झूलता हुआ स्तंभ' के लिए प्रसिद्ध है, जो ज़मीन को नहीं छूता। मंदिर की छत पर बना फ्रेस्को चित्र 24 ×14 फीट में फैला हुआ है, जो प्राकृतिक रंगों से बना दुनिया का सबसे बड़ा चित्रण माना जाता है।



6. **चेन्नाकेशव मंदिर / अम्रतेश्वरा मंदिर / होयसलेश्वर मंदिर** (कर्नाटक) – ये मंदिर होयसला शैली में बने हैं, जिनमें वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों का पालन किया गया है, जो इस क्षेत्र की स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। 12वीं शताब्दी में होयसला वंश के राजा विष्णुवर्धन द्वारा निर्मित, यह मंदिर तारे के आकार वाले आधार की बारीक नक्काशी के लिए प्रसिद्ध है। इन मंदिरों में एक भी स्तंभ या प्रतिमा ऐसी नहीं है जो दूसरी से मेल खाती हो।

7. **मदुरै का मीनाक्षी मंदिर** (तमिलनाडु) – यह मंदिर वास्तुशास्त्र और शिल्पकला का अद्वितीय मिश्रण है, जिसमें स्थापत्य, कला और पवित्रता का संगम होता है। 17वीं शताब्दी में नायक वंश के तिरुमलाई नायक द्वारा पुनर्निर्मित, यह मंदिर स्थापत्य कला, पवित्रता और ध्वनि विज्ञान का अद्भुत उदाहरण है। इसके 1,000 स्तंभों वाले हाल में किसी भी जगह से ध्वनि समान रूप से गूंजती है।

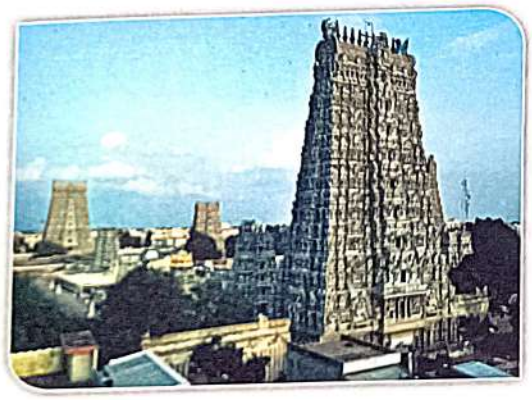

8. **तमिलनाडु का रामेश्वरम मंदिर** प्राचीन वास्तु शास्त्र में निहित ब्रह्मांडीय सामंजस्य और पवित्र ज्यामिति का उदाहरण है। दिशाओं के साथ इसका संरेखण और मंडल-आधारित संरचना आध्यात्मिक ऊर्जा का संचार करती है, जबकि इसके गोपुरम, लंबे गलियारे और गर्भगृह आत्मा की अंतर्यात्रा के प्रतीक हैं। एक द्वीप पर स्थित, यह मंदिर पंचतत्वों का समन्वय करता है, और समुद्र इसकी आध्यात्मिक प्रतिध्वनि को और बढ़ाता है। यह वास्तु-निर्देशित डिज़ाइन ब्रह्मांड के भारतीय दृष्टिकोण को एक पवित्र स्थान के रूप में दर्शाता है जहाँ दिव्य और सांसारिक सामंजस्यपूर्ण संतुलन में विद्यमान हैं।

9. **सारनाथ का बौद्ध स्तूप** (उत्तर प्रदेश) – यह स्तूप वास्तुशास्त्र के अनुरूप परिपूर्ण है, जिसमें ध्यान और साधना के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान किया गया है। 5वीं-6वीं शताब्दी में गुप्त वंश के शासनकाल में निर्मित, यह स्तूप वह स्थान है जहाँ भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था। इसकी ध्वनि संरचना इतनी अद्भुत है कि आप इसके केंद्र में फुसफुसा कर बोलें, तो वह समान रूप से चारों ओर गूंजता है।



10. **ग्वालियर का ककनमठ मंदिर** (मध्य प्रदेश) – यह मंदिर प्राचीन भारतीय वास्तुकला और स्थापत्य कला का उदाहरण है, जो वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुरूप निर्मित है। 11वीं शताब्दी (1015-1035 ई.) में कच्छपघात शासक कीर्तिराज द्वारा निर्मित, यह मंदिर बिना किसी गारे या सीमेंट के पत्थरों को सटीकता से जोड़कर बनाया गया है। इसके ऊपरी हिस्से बिना किसी बाहरी सहारे के आज भी खड़े हैं।



11. **माउंट आबू का जैन मंदिर** (राजस्थान) – यह मंदिर जैन धर्म के स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण है, जिसमें वास्तुशास्त्र की पूरी सावधानी बरती गई है। 11वीं से 16वीं शताब्दी के बीच निर्मित, ये मंदिर सोलंकी शैली में बने हैं और संगमरमर की अद्वितीय नक्काशी के लिए प्रसिद्ध हैं। दीवारों पर की गई जटिल जालीदार नक्काशी और परिसर का स्वभाविक रूप से शीतल वातावरण इसे अद्वितीय बनती है।

12. **मोढ़ेरा सूर्य मंदिर** (गुजरात) – यह सूर्य मंदिर वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर बनाया गया है और सूर्य की ऊर्जा के साथ इसका संबंध बहुत गहरा है। 11वीं शताब्दी (1026-27 ई.) में सोलंकी वंश के राजा भीमदेव प्रथम द्वारा निर्मित, यह मंदिर सूर्य देवता को समर्पित है। मंदिर की संरचना ऐसी है कि विषुव (Equinox) के दिन सूर्य की पहली किरण सीधे गर्भगृह में प्रवेश करती है।

13. **ऐलोरा का कैलाश मंदिर** (महाराष्ट्र) – यह भव्य और अद्वितीय मंदिर पूरी तरह से शास्त्रीय वास्तुकला का उदाहरण है, जिसमें शिल्पकला और वास्तुशास्त्र की विशेषताएँ स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं। 8वीं शताब्दी में राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण प्रथम द्वारा निर्मित, यह मंदिर एक ही विशाल चट्टान को ऊपर से नीचे की ओर काटकर बनाया गया है। इसमें से 3 करोड़ किलोग्राम पत्थर निकाले गए - वह भी बिना आधुनिक मशीनों के।

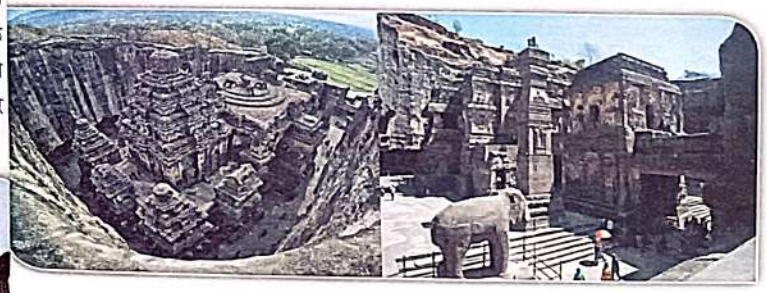

14. **चित्तौड़ और कुम्भलगढ़ का दुर्ग** (राजस्थान) – इन किलों का निर्माण भी वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुरूप किया गया था, और ये किले अब भी अपने महान स्थापत्य और रणनीतिक महत्त्व के लिए प्रसिद्ध हैं। चित्तौड़ किला 7वीं

शताब्दी में मौर्य वंश द्वारा निर्मित, जबकि कुम्भलगढ़ किला 15वीं शताब्दी में राणा कुम्भा द्वारा बनवाया गया था। कुम्भलगढ़ किले की दीवार 36 किलोमीटर लंबी है, जो चीन की दीवार के बाद दूसरी सबसे लंबी दीवार मानी जाती है।

15. **कलावतिन दुर्ग, ठाकुरवाड़ी (मुम्बई)** – ये किले वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुरूप बनाए गए थे, जो स्थापत्य कला में विशेष स्थान रखते हैं। 17वीं शताब्दी में मराठा शासकों द्वारा निर्मित, यह किला अपनी दुर्गमता और खतरनाक सीढ़ियों के लिए प्रसिद्ध है। यह किला बिना किसी गारे के चट्टानों को काटकर बनाया गया है और इसके आस-पास हमेशा कुहासा और बादल छाए रहते हैं, जिससे यह 'आकाश में तैरता किला' प्रतीत होता है।

इन सभी स्थानों और संरचनाओं में वास्तुशास्त्र का गहरा प्रभाव है, और इनका निर्माण शास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर किया गया था। ये आज भी भारतीय स्थापत्य कला की महानता और अद्वितीयता का प्रतीक हैं।

वास्तुशास्त्र में रंगों का महत्व

रंग केवल हमारे परिवेश को सुंदर बनाने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि ये हमारे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। भारतीय वास्तुशास्त्र में रंगों को विशेष स्थान दिया गया है क्योंकि प्रत्येक रंग एक निश्चित दिशा, ग्रह, तत्व और इंद्रिय से जुड़ा हुआ होता है। यह संयोजन हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं-जैसे स्वास्थ्य, ऊर्जा, मनोवृत्ति और संबंधों-पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभाव डालता है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान के अनुसार, सूर्य के वर्णक्रम के सात प्रमुख रंग – लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, जामुनी और बैंगनी – न केवल हमारे पर्यावरण का हिस्सा हैं, बल्कि ये हमारे मन और शरीर पर गहरा असर डालते हैं। वास्तुशास्त्र में रंगों का चयन स्थान और उसकी उपयोगिता के आधार पर किया जाता है, जिससे ऊर्जा का प्रवाह संतुलित बना रहे और वातावरण सकारात्मक बना रहे।

1. छतों के लिए रंग

छत के लिए सफेद रंग को शुभ माना जाता है। यह न केवल प्रकाश और गर्मी को परावर्तित करता है, बल्कि कमरे में प्रकाश व्यवस्था बेहतर बनाता है और हवा के संचार को बढ़ाता है। सफेद रंग से कमरे की ऊँचाई का आभास भी होता है, जिससे मानसिक विस्तार और सकारात्मकता का अनुभव होता है।

2. शयनकक्ष (बेडरूम)

शयनकक्ष विश्राम और मानसिक शांति का स्थान होता है, इसलिए यहाँ पर हल्के, शांत और नर्म रंगों का प्रयोग उपयुक्त माना गया है। नारंगी, गुलाबी, क्रीम, हल्का नीला और हल्का हरा जैसे रंग तनाव को कम करते हैं और नींद की गुणवत्ता को बेहतर बनाते हैं।

3. बैठक कक्ष (लिविंग रूम)

बैठक कक्ष वह स्थान होता है जहाँ परिवार और मित्र साथ बैठते हैं। ऐसे में हल्के गुलाबी, क्रीम या हल्के हरे जैसे रंग सौहार्द्र और पारिवारिक सामंजस्य को बढ़ाते हैं। ये रंग बातचीत को प्रोत्साहित करते हैं और वातावरण को स्वागतयोग्य बनाते हैं।

4. कार्य कक्ष (स्टडी/ऑफिस रूम)

कार्य क्षेत्र के लिए ऐसे रंगों का चुनाव किया जाना चाहिए जो ध्यान केंद्रित करने में सहायक हों। बहुत गहरे या तीव्र रंग – जैसे लाल, नारंगी, गहरा नीला या काला – मानसिक उत्तेजना और थकान बढ़ा सकते हैं। इसके बजाय, हल्के नीले, हरे या हल्के भूरे जैसे रंगों से मानसिक स्पष्टता और उत्पादकता में वृद्धि होती है।

5. रसोईघर

रसोई केवल खाना पकाने की जगह नहीं होती, यह ऊर्जा और पोषण का केंद्र होती है। यहाँ पीला, नारंगी, हरा और भूरा जैसे रंग उपयुक्त माने गए हैं। पीला रंग ऊर्जा और ताजगी का प्रतीक है; नारंगी रंग पाचन में सहायक होता है; हरा रंग हरी सब्जियों और स्वास्थ्य को दर्शाता है; और भूरा रंग स्थिरता एवं धरती से जुड़ेपन का प्रतीक माना जाता है।

6. दिशा के अनुसार रंग चयन

वास्तुशास्त्र में दिशाओं के अनुसार भी रंगों का चयन किया जाता है:

- पूर्व दिशा: हल्का पीला, हल्का हरा या सफेद रंग उपयुक्त माने जाते हैं, जो प्रातःकालीन ऊर्जा और ताजगी का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- दक्षिण दिशा: गहरे और ऊर्जावान रंग – जैसे लाल, नारंगी, गहरा नीला – शक्ति और स्थिरता के प्रतीक होते हैं।
- उत्तर दिशा: यहाँ नीला और हरा रंग सौभाग्य और समृद्धि को आकर्षित करता है।

- पश्चिम दिशा: हल्का गुलाबी, क्रीम या हल्का नारंगी रंग इस दिशा के लिए उत्तम माने जाते हैं, जो सामंजस्य और संतुलन बनाए रखते हैं।

वास्तुशास्त्र में रंगों का प्रयोग केवल सजावट तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हमारे जीवन के भीतर ऊर्जा, मानसिकता और स्वास्थ्य को संतुलित करने का माध्यम भी है। यदि सही दिशा और उद्देश्य के अनुसार रंगों का चयन किया जाए, तो यह जीवन में सौंदर्य के साथ-साथ सकारात्मकता और संतुलन भी लाता है।

मूर्ति कला: भारतीय सांस्कृतिक विरासत की एक दिव्य धरोहर

भारतीय मूर्तिकला केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह हमारे सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन का गहरा हिस्सा रही है। भारत में मूर्ति को सजीव प्रतीक के रूप में देखा जाता है-एक ऐसा माध्यम जो दिव्यता और भक्ति को मूर्त रूप देता है। यह परंपरा प्राचीन वैदिक काल से चली आ रही है, जहाँ देवताओं की मूर्तियाँ केवल पूजा का साधन नहीं, बल्कि वेदान्त दर्शन का मूर्त रूप मानी जाती थीं।

वैदिक साहित्य में मूर्तियों की उपस्थिति

वैदिक युग के ग्रंथों में मूर्ति की संकल्पना को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में मूर्तियों को दिव्य सत्ता का प्रतीक माना गया है। यही नहीं, चारों वेदों को भी मूर्त रूप में देखा गया है-ऋग्वेद को "मूर्तिस्वरूप", यजुर्वेद को "गतिस्वरूप", सामवेद को "महिमास्वरूप", और अथर्ववेद को "ब्रह्मस्वरूप" कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में मूर्तियों को केवल प्रतीक नहीं, बल्कि ब्रह्म की अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया था।

ब्राह्मण ग्रंथों में मूर्तिकला का विशद वर्णन

ब्राह्मण ग्रंथों में मूर्तिकला का विस्तार से वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए:

- *ऐतरेय ब्राह्मण* और *शतपथ ब्राह्मण* में देव प्रतिमाओं के निर्माण और पूजा विधियों का उल्लेख मिलता है। ये ग्रंथ धार्मिक अनुष्ठानों में मूर्तियों की भूमिका को स्पष्ट करते हैं।
- *ताण्ड्य ब्राह्मण* में देव मूर्तियों की क्रियाओं-जैसे हँसना, रोना, या नृत्य करना-का वर्णन है, जिन्हें शुभ या अशुभ संकेतों के रूप में समझा जाता था। यह विश्वास था कि देव मूर्तियाँ चेतन शक्ति से संपन्न होती हैं।

- *पारस्करगृह्यसूत्र* में मूर्तियों की उपस्थिति में किए जाने वाले विशेष अनुष्ठानों और ब्राह्मणों के लिए आवश्यक आचरण विधियों का उल्लेख मिलता है।
- *आपस्तम्ब गृह्यसूत्र* में 'ईशान', 'जयन्त' आदि मूर्तियों का उल्लेख किया गया है, जो इस बात को दर्शाता है कि विशेष देवताओं की मूर्तियाँ विशिष्ट सामाजिक और धार्मिक भूमिका निभाती थीं।

भारतीय मूर्तिकला केवल पत्थर, धातु या लकड़ी की आकृति नहीं है-यह एक सजीव परंपरा है, जो भारत के आध्यात्मिक जीवन, सांस्कृतिक चेतना और धार्मिक विश्वासों की साक्षी रही है। वैदिक और ब्राह्मण ग्रंथों से लेकर आधुनिक मंदिरों तक, मूर्तियाँ भारतीय समाज में श्रद्धा, सौंदर्य और दर्शन का संगम रही हैं। इनका अध्ययन हमें यह समझने में सहायता करता है कि भारतीय कला और धर्म किस गहराई से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

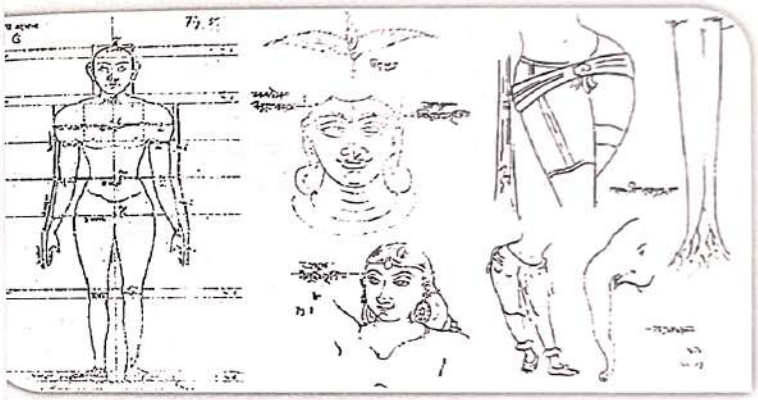

सही मूर्ति डिजाइन का वर्णन प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय ग्रंथों में किया गया है। इनमें अनुपात, मुद्रा और भावों सहित अन्य विवरण दिए गए हैं, जो अक्सर प्रकृति से प्रेरित होते हैं।

(Source: Abanindranth Tagore, Some notes on Indian Artistic Anatomy, pages 1–21, Stella Kramrisch (1958), Traditions of the Indian Craftsman, The Journal of American Folklore, Vol. 71, No. 281, pages 224–230, John Cort (2011), Jains in the World, Oxford University Press, ISBN 978-0-19-979664-9, pages 20–21, 56–58)

A Hindu prayer before cutting a tree for a murti
Oh, Tree! you have been selected for the worship of a deity,
Salutations to you!
I worship you per rules, kindly accept it.
May all who live in this tree, find residence elsewhere,
May they forgive us now, we bow to them.
- Brihat Samhita 59.10 - 59.11

मूर्ति कला का विकास और शास्त्रीय आधार

वैदिक साहित्य के पश्चात मूर्ति कला का विस्तार **पुराणों, महाभारत, स्मृतियों, तंत्र, बौद्ध** और **जैन साहित्य** में देखने को मिलता है। इन ग्रंथों में न केवल मूर्तियों के धार्मिक महत्व का उल्लेख हुआ है, बल्कि उनके निर्माण से संबंधित शास्त्रों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। मूर्ति निर्माण की परंपरा समय के साथ इतनी विकसित हुई कि विशिष्ट शिल्पशास्त्रों की रचना की गई, जिनमें इस कला के सभी तकनीकी, आध्यात्मिक और सौंदर्य पक्षों को समाहित किया गया।

विशेष रूप से *विश्वकर्मा शिल्पशास्त्र* और *मयमतम्* जैसे ग्रंथ मूर्तिकला की वैज्ञानिक और आध्यात्मिक पद्धतियों का गहन विवेचन करते हैं।

- *विश्वकर्मा शास्त्र* और *कश्यप शिल्प* में मूर्तियों के निर्माण की विधियाँ, प्रयुक्त सामग्री, माप-प्रमाण और प्रतिष्ठा की प्रक्रिया का विशद विवरण मिलता है।
- *समरांगण सूत्रधार* और *भुवनदेवस्वर* जैसे ग्रंथों में मूर्ति निर्माण की विभिन्न विधाओं और तांत्रिक प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है।
- *मयमतम्* और *कश्यप शिल्पशास्त्र* मूर्तियों के अनुपात, मुद्रा (भाव-भंगिमा), आयाम, और उनके आध्यात्मिक प्रभावों की दृष्टि से अत्यंत गहन शास्त्रीय जानकारी प्रदान करते हैं।

भारतीय मूर्तिकला: प्रमुख शैलियाँ

भारतीय मूर्तिकला का इतिहास अत्यंत समृद्ध, विविधतापूर्ण और तकनीकी रूप से परिपक्व रहा है, जो विभिन्न कालों और कला शैलियों में विकसित होता गया। इस विकास की शुरुआत हड़प्पा सभ्यता (2500–1750 ई.पू.) से होती है, जहाँ से प्राप्त कांस्य नर्तकी, पुजारी की मूर्ति और टेराकोटा की मातृदेवी जैसी मूर्तियाँ उस युग की

उत्कृष्ट तकनीकी दक्षता और सौंदर्यबोध को दर्शाती हैं। मौर्यकाल (325–185 ई.पू.) में शिल्पकला में शासकीय संरक्षण के साथ उच्च कोटि की पॉलिशयुक्त स्तंभों और सिंह, बैल जैसे प्रतीकों की मूर्तियाँ उभरीं, जिनमें सारनाथ का सिंह-स्तंभ शीर्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके बाद शुंग व कुषाण काल (185 ई.पू.–300 ई.) में साँची, भरहुत जैसे स्तूपों पर जातक कथाओं को चित्रित करने वाली मूर्तियाँ तथा मथुरा और गांधार जैसी शैलियों का विकास हुआ। गांधार शैली ग्रीक-रोमन प्रभाव लिए हुए यथार्थवादी शिल्प की प्रतीक है, जबकि मथुरा शैली पूर्णतः भारतीय परंपरा में रची-बसी है, जिसमें बुद्ध, जैन तीर्थंकरों और हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ गढ़ी गईं। दक्षिण भारत में विकसित अमरावती शैली में संगमरमर जैसे सफेद पत्थरों का प्रयोग करते हुए बुद्ध के जीवन प्रसंगों को अत्यंत भावनात्मक और सूक्ष्म तरीके से प्रस्तुत किया गया। इन तीन प्रमुख शैलियों-गांधार, मथुरा और अमरावती-की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि जहाँ गांधार शैली में ग्रीक प्रभाव और यथार्थवादी शरीर रचना पर ज़ोर था, वहीं मथुरा शैली में भारतीय अध्यात्म और प्रतीकात्मकता अधिक थी, और अमरावती शैली भावनात्मकता व गतिशीलता के लिए प्रसिद्ध थी। इन सभी शैलियों की विशेषताएँ भारतीय मूर्तिकला की सांस्कृतिक, धार्मिक और कलात्मक समृद्धि को दर्शाती हैं, जो न केवल भारत की प्राचीन कलाज्ञान की श्रेष्ठता को प्रमाणित करती हैं, बल्कि वैश्विक कलासंपदा में भारत की अद्वितीय भूमिका को भी रेखांकित करती हैं।

तालिका: गांधार, मथुरा और अमरावती मूर्तिकला शैलियों की तुलनात्मक विशेषताएँ

विशेषता	गांधार शैली	मथुरा शैली	अमरावती शैली
प्रभाव	ग्रीक-रोमन (हेलनिस्टिक प्रभाव), यवन शिल्पकला से प्रेरित	पूर्णतः भारतीय परंपरा, वैदिक व ब्राह्मणीय संस्कृति से प्रभावित	भारतीय, विशेषतः बौद्ध धार्मिक परंपरा व स्थानीय लोक शैलियाँ
प्रमुख सामग्री	स्लेट (Slate), ग्रे पत्थर	लाल बलुआ पत्थर (Red Sandstone)	सफेद संगमरमर, चूना पत्थर (Limestone)
मूर्तियों की विशेषता	यथार्थवादी रूपांकन, वस्त्रों व मांसपेशियों की बारीकी	आदर्शीकृत भारतीय रूप, सौम्यता और आध्यात्मिकता से युक्त	अत्यंत भावनात्मक, गतिशील मुद्राएँ, सूक्ष्म व जटिल नक्काशी
प्रमुख क्षेत्र	गांधार क्षेत्र (आधुनिक पाकिस्तान व अफगानिस्तान का भाग)	उत्तर भारत, विशेषकर मथुरा और उसके आसपास का क्षेत्र	आंध्र प्रदेश (विशेषतः अमरावती व नागार्जुनकोंडा)
प्रमुख मूर्तियाँ	ध्यानमग्न बुद्ध, गंधर्व, अप्सरा, बुद्ध के जीवन प्रसंगों की मूर्तियाँ	खड़े हुए बुद्ध, जैन तीर्थंकर, यक्ष-यक्षिणी, विष्णु, शिव, देवी	बुद्धचरित दृश्य, तोरणद्वारों पर जातक कथाएँ, स्तूप सजावट

विशेषता	गांधार शैली	मथुरा शैली	अमरावती शैली
मुख्य संरक्षक	कुषाण शासक कनिष्क और यूनानी-अफगानी प्रभावशाली व्यापारी	कुषाण सम्राट (विशेषतः कनिष्क), स्थानीय ब्राह्मण व व्यापारी	सातवाहन व इक्ष्वाकु शास्त्र बौद्ध भिक्षु समुदाय
धार्मिक प्रवृत्ति	मुख्यतः बौद्ध धर्म	बौद्ध, जैन और हिंदू धर्मों का समन्वय	प्रमुखतः थेरवादी बौद्ध पंथ
वस्त्रों का प्रदर्शन	पारदर्शी वस्त्र, ग्रीक शैली की ड्रेपरी	पारंपरिक भारतीय पोशाक, ढीली-फैली हुई धोती या उत्तरीय	पतली पारदर्शी पोशाक, नग्न मूर्तियों में सौंदर्य की प्रस्तुति
मुखाकृति/ भाव	गंभीर, शांति से भरी हुई दृष्टि	सौम्य मुस्कान, आध्यात्मिक प्रभा	अत्यंत भावात्मक, जीवन्त मुद्राएँ
कालखंड	पहली से पाँचवीं सदी ईस्वी	पहली सदी ईसा पूर्व से तीसरी सदी ईस्वी	दूसरी सदी ईसा पूर्व से तीसरी सदी ईस्वी
प्रमुख स्थल	तक्षशिला, जलालाबाद, पेशावर, स्वात घाटी	मथुरा, सांची, भरहुत	अमरावती, नागार्जुनकोंडा, जगरयापेट

इन मूर्तियों के निर्माण में शास्त्रीय आधार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैसे *सामराङ्गण सूत्रधार*, *मानसार*, *मयमतम्*, *शिल्परत्न*, *बृहत्संहिता* आदि ग्रंथों में प्रतिम निर्माण की निश्चित विधियाँ, आयाम (proportions), āsana (आसन), bhāva (भाव) मुद्रा, प्रतीक चिह्न (आयुध, वाहन), और प्रतिष्ठा (स्थापना) विधियाँ स्पष्ट रूप से वर्णित हैं। *पंचरात्र* और *वैखानस* जैसी आगम परंपराएँ मूर्ति की भक्ति-आधारित उपयोगिता को स्पष्ट करती हैं, जहाँ योग-मूर्ति (ध्यान के लिए), भोग-मूर्ति (नित्य सेवा हेतु), और उत्सव-मूर्ति (जुलूस आदि में उपयोग) का अंतर बताया गया है।

भारतीय मूर्तिकला केवल शिल्प कौशल या सौंदर्यबोध का प्रतीक नहीं, बल्कि गहरे आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दर्शन की जीवंत अभिव्यक्ति है। भारतीय ज्ञान परंपरा में मूर्तियाँ भाव, भक्ति और ब्रह्म की अनुभूति का माध्यम हैं, जिनका शास्त्रों, इतिहास और परंपराओं में विशद वर्णन मिलता है।

मूर्ति कला का सांस्कृतिक महत्व

मूर्ति कला केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह भारतीय जीवन-दर्शन की एक जीवंत अभिव्यक्ति बन गई। मूर्तियाँ केवल देवताओं के रूपों का निरूपण नहीं करतीं, बल्कि उनके साथ जुड़े तत्वदर्शन, गुण और लीलाओं का भी प्रतीक बनती

हैं। इस प्रकार मूर्तियाँ भारतीय समाज में शिक्षा, साधना और सौंदर्य के समन्वित माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित होती गईं।

मूर्ति निर्माण में शास्त्रों का पालन अत्यंत आवश्यक माना जाता था, क्योंकि यह न केवल कलात्मक या तकनीकी प्रक्रिया थी, बल्कि एक पवित्र अनुष्ठान भी। यह विश्वास प्रचलित था कि शास्त्र सम्मत रूप से निर्मित मूर्ति में ही देवत्व का आवाहन और निवास संभव होता है। मूर्तिकला भारतीय संस्कृति का एक अमूल्य अंग रही है, जो न केवल भक्ति और धर्म की अभिव्यक्ति रही, बल्कि समाज के सांस्कृतिक और कलात्मक विकास में भी इसकी विशेष भूमिका रही है। मूर्तियाँ निःसंदेह हमारी आध्यात्मिक चेतना, सांस्कृतिक परंपराओं और शिल्पकला की गहराई को प्रतिबिंबित करती हैं।

मूर्ति के प्रकार

भारतीय मूर्तिकला में मूर्तियाँ उनके रूप, प्रयोजन और प्रतिष्ठा के आधार पर विभिन्न प्रकारों में विभाजित की जाती हैं। शास्त्रों में इन्हें मुख्यतः पाँच श्रेणियों में बाँटा गया है- **चल**, **व्यक्त**, **स्थिति**, **प्रयोजन** और **भाव**। प्रत्येक श्रेणी में मूर्तियों को **उत्तम**, **मध्यम**, और **अधम** वर्ग में भी विभाजित किया जाता है।

1. चल (गति के आधार पर)

इस वर्ग में वे मूर्तियाँ आती हैं जिन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। इसमें कई उपवर्ग हैं:

- **चल:** ये मूर्तियाँ किसी भी स्थान पर स्थापित की जा सकती हैं और सरलता से स्थानांतरित की जा सकती हैं।
- **अचल:** ये स्थायी रूप से किसी एक पवित्र स्थल पर प्रतिष्ठित की जाती हैं और इन्हें नहीं हटाया जाता।
- **चलाचल:** ऐसी मूर्तियाँ जो विशेष अवसरों (जैसे यात्रा, उत्सव) पर स्थानांतरित की जाती हैं।
- **बलिबेर:** वे मूर्तियाँ जो नित्य पूजा और हवन आदि में प्रयुक्त होती हैं।
- **कौतुकबेर:** अवसर विशेष या उत्सवों में पूजी जाने वाली मूर्तियाँ।
- **ध्रुवबेर:** स्थायी रूप से मंदिर आदि में प्रतिष्ठित की जाने वाली प्रधान मूर्तियाँ।

2. व्यक्त (रूप के आधार पर)

इस वर्ग की मूर्तियाँ पूर्ण मानव रूप में होती हैं:

- **व्यक्त मूर्ति:** देवताओं के स्पष्ट, मानव-सदृश स्वरूप में बनी मूर्तियाँ।
- **अव्यक्त मूर्ति:** प्रतीकात्मक रूप में पूजी जाने वाली मूर्तियाँ, जैसे **शिवलिंग** या **शालिग्राम**, जिनमें मानवीय आकार नहीं होता, परन्तु वे दैवीय शक्ति प्रतीक होते हैं।

3. स्थिति (मुद्रा या आसन के आधार पर)

यह वर्ग मूर्तियों की मुद्रा पर आधारित होता है:

- **आसन:** मूर्ति पद्मासन या सुखासन में बैठी हुई होती है।
- **स्थानक:** खड़ी हुई मुद्रा, जिसमें मूर्ति सीधे खड़ी होती है। इसमें तीन प्रक हैं - **समभंग** (सीधा खड़ा), **द्विभंग** (हल्का झुका), और **त्रिभंग** (तीन स्था से मुड़ा हुआ)।
- **शयन:** सोयी हुई अवस्था में मूर्तियाँ, जैसे **शेषशायी विष्णु**।
- **यानक:** वाहन पर स्थित मूर्तियाँ, जैसे रथ पर आरूढ़ देवता की मूर्ति।

4. प्रयोजन (उद्देश्य के आधार पर)

इन मूर्तियों का निर्माण विशेष साधना या कामनाओं की पूर्ति हेतु किया जाता है:

- **योगमूर्ति:** ध्यान या साधना में सहायक मूर्तियाँ।
- **भोगमूर्ति:** सुख, ऐश्वर्य, और समृद्धि की प्राप्ति के लिए पूजी जाने वाल मूर्तियाँ।
- **अभिचारिक मूर्ति:** विशेष तांत्रिक या कर्मकांड प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त मूर्तियाँ।

5. भाव (भावनात्मक अभिव्यक्ति के आधार पर)

इन मूर्तियों में विभिन्न भावनाओं को व्यक्त किया जाता है:

- **शृंगार:** सौंदर्य और प्रेमभाव दर्शाने वाली मूर्तियाँ।
- **हास्य:** आनंद और हास्याभिव्यक्ति वाली मूर्तियाँ।
- **करुण:** दुःख या करुणा को प्रकट करने वाली मूर्तियाँ।
- **रौद्र:** उग्रता और क्रोध को दर्शाने वाली मूर्तियाँ।
- **वीर:** पराक्रम और वीरता को प्रकट करने वाली मूर्तियाँ।
- **भयानक:** भय, आतंक और विनाश की स्थिति दर्शाने वाली मूर्तियाँ।
- **वीभत्स:** विकृति और घृणा का स्वरूप लिए मूर्तियाँ।

- **अद्भुत:** विस्मय या चमत्कार का भाव लिए मूर्तियाँ।
- **शांत:** संतुलन, स्थिरता और शांति का प्रदर्शन करती मूर्तियाँ।

इन विविध प्रकार की मूर्तियाँ न केवल धार्मिक श्रद्धा और भक्ति का माध्यम हैं, बल्कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक, कलात्मक और मनोवैज्ञानिक गहराई का भी परिचय देती हैं।

मूर्ति लक्षण और त्रिमूर्ति सिद्धांत

भारतीय दर्शन में *त्रिमूर्ति*-**ब्रह्मा**, **विष्णु**, और **महेश**-की संकल्पना महत्वपूर्ण मानी जाती है। ये तीनों देवता एक ही तत्त्व के विभिन्न कार्यों (सृजन, पालन, और संहार) के प्रतीक हैं। मूर्तिशास्त्र में प्रत्येक देवता की पहचान उनके **आयुध** (हथियार), **वाहन** और **चिह्नों** से की जाती है:

- **विष्णु:** शंख, चक्र, गदा, पद्म; वाहन – गरुड़
- **ब्रह्मा:** पुस्तक, कमण्डल, जपमाला, यज्ञपात्र; वाहन – हंस
- **शिव:** त्रिशूल, डमरू, सर्प, खट्वांग; वाहन – नंदी

मूर्ति दोष और उनका प्रभाव

शास्त्रों के अनुसार यदि मूर्ति का निर्माण सही पद्धति से नहीं हुआ हो, तो वह पूजा योग्य नहीं मानी जाती। *समरांगण सूत्रधार* जैसे ग्रंथों में इन दोषों का विशद उल्लेख मिलता है। कुछ प्रमुख दोष और उनके संभावित दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं:

1. **अश्लिष्टसंधि (ग़लत जोड़)**
   - **दोष:** मूर्ति के जोड़ सही न होना।
   - **फल:** मृत्यु संबंधी दोष उत्पन्न हो सकता है।
2. **वक्र (टेढ़ी या विकृत आकृति)**
   - **दोष:** मूर्ति का आकार असामान्य या टेढ़ा हो।
   - **फल:** कलह और पारिवारिक असंतोष बढ़ता है।
3. **अस्थिता (स्थिरता का अभाव)**
   - **दोष:** मूर्ति हिलने-डुलने वाली या अस्थिर हो।
   - **फल:** धनहानि और आर्थिक संकट।

4. **विकटाकारा (भयानक रूप)**
   - **दोष:** अत्यधिक डरावनी या विकृत आकृति।
   - **फल:** मानसिक भय और अशांति का कारण बनता है।
5. **अधोमुखी (नीचे की ओर मुख)**
   - **दोष:** मूर्ति का मुख नीचे की ओर झुका हो।
   - **फल:** सिर से संबंधित रोगों का भय।

मूर्ति निर्माण केवल कलात्मक कर्म नहीं, बल्कि एक शास्त्रसम्मत आध्यात्मि प्रक्रिया है। इसकी शुद्धता न केवल मूर्ति की सुंदरता सुनिश्चित करती है, बल्कि आराध को भी प्रभावशाली और फलदायक बनाती है। इसलिए मूर्तिकला के शास्त्रीय नियम का पालन आवश्यक है ताकि पूजा विधि विधिवत् संपन्न हो और समाज में शांति, सु और समृद्धि बनी रहे।

सारांश

भारत की प्राचीन वास्तु परंपरा केवल भवन निर्माण की तकनीक नहीं, बल्कि एक समग्र जीवनदृष्टि का परिचायक है, जिसमें पर्यावरण, ज्योतिष, दैविक ऊर्जा, मानव स्वास्थ्य और आध्यात्मिक उन्नयन का सूक्ष्म समन्वय है। चाहे वह मंदिर निर्माण हो, मूर्ति निर्माण हो, अथवा देवप्रतिष्ठा की विधियाँ-सभी में एक अद्भुत वैज्ञानिक गहराई, सांस्कृतिक चेतना और आध्यात्मिक उद्देश्य निहित है।

सामराङ्गण सूत्रधार, **मयमतम्**, **मानसार**, **शिल्परत्न**, **बृहत्संहिता** जैसे शास्त्रों में वर्णित नियम न केवल कलात्मक सौंदर्य की पराकाष्ठा हैं, बल्कि ऊर्जा संतुलन, स्थलचयन, दिशा विज्ञान, और मानसिक भाव-प्रवाह (भाव और रस सिद्धांत) के भी उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मूर्ति निर्माण की प्रक्रिया केवल एक कलात्मक अभ्यास नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक अनुष्ठान है, जिसमें आकार, मुद्रा, आयाम और भावना सभी तत्व दिव्यता के माध्यम बनते हैं।

वैदिक और आगमिक परंपराओं ने जो ज्ञान सहेजा, वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है, विशेषकर जब हम आधुनिकता की दौड़ में संतुलन, शांति और पर्यावरणीय सामंजस्य खोते जा रहे हैं। यह आवश्यक है कि हम इस प्राचीन विरासत को पुनः समझें, उसका संवैधानिक अध्ययन करें और आधुनिक जीवन में उसे सार्थक रूप से पुनर्स्थापित करें।

अनुशंसित पठन सामग्री

1. **मयमतम्** – T. Ganapati Sastri (Ed.), *Mayamata (Chapters on Architecture)*, The Adyar Library, Madras, 1933.
2. **मानसार** – P. K. Acharya, *Manasara on Architecture*, 7 Volumes, Oxford University Press, 1927–1946.
3. **बृहत्संहिता** – Varāhamihira, *Bṛhat-Saṃhitā*, Trans. by N. Chidambaram Iyer, Chaukhambha Orientalia, Varanasi, 1981.
4. **Agni Purana**, *Chapters 45–42* – Ed. Motilal Banarsidass, Delhi.
5. **M. A. Dhaky**, *Indian Temple Architecture*, Abhinav Publications, New Delhi, 1977.
6. **Michael W. Meister (Ed.)**, *Encyclopaedia of Indian Temple Architecture*, American Institute of Indian Studies, New Delhi.
7. **D. N. Shukla**, *Vastu-Shastra: Hindu Science of Architecture*, Munshiram Manoharlal Publishers, Delhi, 1993.
8. **Adam Hardy**, *The Temple Architecture of India*, Wiley, 2007.
9. **George Michell**, *The Hindu Temple: An Introduction to Its Meaning and Forms*, University of Chicago Press, 1988.
10. **समरांगण सूत्रधार** – Raja Bhoja, Ed. by Dr. T. Ganapati Sastri, Baroda Oriental Series.
11. **विश्वकर्मा प्रकाश** – Ed. by D. N. Shukla, *Vastu-Shastra*, Munshiram Manoharlal, Delhi.
12. **मयमतम्** – Trans. by Bruno Dagens, *Mayamata: An Indian Treatise on Housing Architecture and Iconography*, Sitaram Bhartiya Institute, 1985.
13. **मानसार** – P. K. Acharya, *Manasara Series*, Oxford University Press.
14. **Adam Hardy**, *The Temple Architecture of India*, Wiley, 2007.
15. **George Michell**, *The Hindu Temple*, University of Chicago Press, 1988.
16. **D. N. Shukla**, *Hindu Science of Architecture*, Munshiram Manoharlal, 1993.

17. *Bhaskar.com*. (2013). "Boulder saved Kedarnath temple from flood[s]". https://www.bhaskar.com/amp/news/UJJ-OMC-boulder-save[d]-kedarnath-temple-from-floods-4476533-PHO.html

18. *India TV News*. (2022). "Kedarnath Temple Architecture & Locatio[n] Facts". https://www.indiatvnews.com/news/india/kedarnath-temple-architecture-location-facts-2022-06-03-777365

19. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Jagannath Temple, Puri". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Jagannath_Temple%2C_Puri

20. *Odisha Tourism Department*. (n.d.). "Jagannath Temple". Retrieved from https://odishatourism.gov.in/content/tourism/en/discover/attractions/temples/jagannath-temple.html

21. *Drishti IAS*. (n.d.). "**कोणार्क सूर्य मंदिर**". Retrieved from https://www.drishtiias.com/hindi/paper1/konark-temple

22. *Archaeological Survey of India (ASI)*. (n.d.). "Konark Sun Temple". Retrieved from https://asi.nic.in/konark-sun-temple/

23. *Live History India*. (2022). "**मोढेरा सूर्य मंदिर**". Retrieved from https://hindi.livehistoryindia.com/story/history-daily/modhera-surya-mandir/

24. *Gujarat Tourism Department*. (n.d.). "Modhera Sun Temple". Retrieved from https://www.gujarattourism.com/saurashtra/mehsana/modhera-sun-temple.html

25. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Lepakshi". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Lepakshi

26. *Trawell.in*. (n.d.). "The Mystery of Hanging Pillar of Lepakshi". Retrieved from https://www.trawell.in/blog/the-mystery-of-hanging-pillar-of-lepakshi

27. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Chennakeshava Temple, Belur". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Chennakeshava_Temple,_Belur

28. *Karnataka Tourism Department*. (n.d.). "Belur Temple". Retrieved from https://www.karnatakatourism.org/tour-item/belur-temple/

29. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Meenakshi Temple". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Meenakshi_Temple

30. *Tamil Nadu Tourism Department*. (n.d.). "Meenakshi Temple". Retrieved from https://www.tamilnadutourism.tn.gov.in/destinations/meenakshi-temple

31. *India.com*. (2019). "64 Theerthams in Ramanathaswamy Temple". Retrieved from https://www.india.com/travel/articles/64-theertham-ramanathaswamy-temple-ramanathapuram-3857278/

32. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Ramanathaswamy Temple". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Ramanathaswamy_Temple

33. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Dhamek Stupa". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Dhamek_Stupa

34. *Archaeological Survey of India*. (n.d.). "Sarnath". Retrieved from https://asi.nic.in/sarnath/

35. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Kakanmath". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Kakanmath

36. *CulturalIndia.net*. (n.d.). "Kakanmath Temple, Madhya Pradesh". Retrieved from https://www.culturalindia.net/indian-temples/madhya-pradesh/kakanmath-temple.html

37. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Dilwara Temples". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Dilwara_Temples

38. *Rajasthan Tourism Department*. (n.d.). "Dilwara Temples, Mount Abu". Retrieved from https://www.tourism.rajasthan.gov.in/mount-abu/dilwara-temples.html

39. *Wikipedia contributors*. (n.d.). "Kailasa Temple, Ellora". *Wikipedia, The Free Encyclopedia*. Retrieved June 2025, from https://en.wikipedia.org/wiki/Kailasa_temple

40. *Bharat Discovery*. (n.d.). "**कैलाश मंदिर, एलोरा**". Retrieved from https://bharatdiscovery.org/india/कैलाश_मंदिर_एलोरा

41. *Navbharat Times*. (2024). "**राजसमंद पर्यटन – शिशोदा गाँव और कुम्भलगढ़ की बातें**". Retrieved from https://navbharattimes.indiatimes.com/travel/destinations/shishoda-village-you-can-see-world-class-school-and-can-see-rajsamand-places-too/articleshow/121428345.cms

42. *UNESCO World Heritage Centre*. (n.d.). "Hill Forts of Rajasthan". Retrieved from https://whc.unesco.org/en/list/247

43. *Thrillophilia.com*. (n.d.). "Kalavantin Durg Trek". Retrieved from https://www.thrillophilia.com/attractions/kalavantin-durg

44. *Tripoto.com*. (n.d.). "Kalavantin Durg – Most Dangerous Trek in India". Retrieved from https://www.tripoto.com/maharashtra/trip/kalavantin-durg-603616

45. Acharya, P. K. (Ed.). (1969). *Manasara series* (Vols. 1–6). Oriental Books Reprint Corp. (Original work ca. 5th–7th century CE)

46. *Nāṭyaśāstra* (M. Ghosh, Trans.). Asiatic Society of Bengal. (Original work ca. 200 BCE–200 CE).

47. Bhoja, K. (1924). *Samarāṅgaṇa Sūtradhāra* (T. Ganapati Sastri, Ed.). Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

48. Maṇḍana, Ś. (1994). *Śilpa Ratna* (R. N. Sharma, Ed. & Trans.). Nag Publishers. **ISBN**: 8170812287.

49. Varāhamihira. (1865). *Bṛhat Saṁhitā* (H. Kern, Ed. & Trans.). Bibliotheca Indica Series, Calcutta.

50. Dagens, B. (Trans.). (1994). *Mayamata: An Indian treatise on housing architecture and iconography*. Sitaram Bhartia Institute. **ISBN**: 9788185179033.

51. Janaki, S. S. (Ed.). (1998). *Āgama-kośa: Encyclopedia of Āgama literature* (Vol. 1). IGNCA & Motilal Banarsidass. **ISBN**: 8120815404.

52. Dutt, M. N. (Trans.). (2007). *Agni Purāṇa*. Parimal Publications. **ISBN**:9788171103165.

53. Wilson, H. H. (Trans.). (1993). *The Viṣṇu Purāṇa*. Motilal Banarsidass. **ISBN**: 9788120800627.

54. Coomaraswamy, A. K. (1957). *The dance of Śiva: Essays on Indian art and culture*. Noonday Press. **ISBN**: 9780486203896 (Dover reprint edition available).

55. Kramrisch, S. (1946/2007). *The Hindu temple* (Vols. 1–2). Motilal Banarsidass. **ISBN**: 9788120807510.

56. Rao, T. A. G. (1985). *Elements of Hindu iconography* (Vols. I-II). Motilal Banarsidass. (Original work published 1914). **ISBN**: 9788120808777.

57. Vatsyayan, K. (2001). *Indian classical dance and theatre: Tradition in transition*. Sangeet Natak Akademi & Publications Division. **ISBN**: 8123006420.

58. Acharya, P. K. (1994). *An Encyclopaedia of Hindu Architecture: Manasara Series*. New Delhi: Munshiram Manoharlal.

59. Agrawala, V. S. (1965). *Indian Art (A History of Indian Art from Earliest Times to the Present Day)*. Varanasi: Prithvi Prakashan.

60. Coomaraswamy, A. K. (1956). *The Origin of the Buddha Image*. New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers.

61. Craven, R. C. (1976). *Indian Art: A Concise History*. London: Thames and Hudson. ISBN: 9780500201231

62. Dagens, B. (1994). *Mayamata: An Indian Treatise on Housing Architecture and Iconography*. New Delhi: Sitaram Bhartia Institute. ISBN: 9788184701782

63. Kramrisch, S. (1946). *The Hindu Temple (Vols. I & II)*. Delhi: Motilal Banarsidass. (Reprint 2007). ISBN: 9788120802223

64. Rowland, B. (1977). *The Art and Architecture of India: Buddhist, Hindu, Jain*. Penguin Books. ISBN: 9780140560702

65. Sharma, R. N. (1994). *Śilpa Ratna*. New Delhi: Nag Publishers.

66. Sastri, T. G. (1924). *Samarāṅgaṇa Sūtradhāra* (Ed.). Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.

67. Ghosh, M. (1950). *Nāṭyaśāstra of Bharata* (Trans.). Calcutta: Asiatic Society of Bengal.

68. Wilson, H. H. (1993). *The Viṣṇu Purāṇa* (Trans.). Delhi: Motilal Banarsidass.

69. Dutt, M. N. (2007). *Agni Purāṇa* (Trans.). Delhi: Parimal Publications.

70. Janaki, S. S. (Ed.). (1998). *Āgama-kośa: Encyclopedia of Āgama Literature* (Vol. 1). Delhi: IGNCA & Motilal Banarsidass. ISBN: 9788120814790

71. Kern, H. (1865). *Bṛhat Saṁhitā* (Ed. & Trans.). Bibliotheca Indica Series, Calcutta.

72. Rao, T. A. G. (1914/1985). *Elements of Hindu Iconography (Vols. I–II)*. Delhi: Motilal Banarsidass. ISBN: 9788120808775

73. Vatsyayan, K. (2001). *Indian Classical Dance and Theatre: Tradition in Transition*. New Delhi: Sangeet Natak Akademi & Publications Division.

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. वास्तु शब्द किससे व्युत्पन्न है?
   क) वास्तु
   ख) वस्त्र
   ग) वास – निवास करना
   घ) वास्तु – सत्य

2. ब्रह्मस्थान की संकल्पना में कौन-सा तत्व केंद्रीय है?
   क) अग्नि
   ख) जल
   ग) वायु
   घ) ऊर्जा संतुलन

3. वास्तु का सबसे मौलिक प्रकार कौन-सा माना गया है?
   क) गृहवास्तु
   ख) आसनवास्तु
   ग) भूमिवास्तु
   घ) यानवास्तु

4. किस पुराण में वास्तु से संबंधित नियमों का विस्तृत वर्णन है?
   क) गरुड़पुराण
   ख) विष्णुपुराण
   ग) भागवतपुराण
   घ) पद्मपुराण

5. वास्तुशास्त्र में किस प्रकार की भूमि रहने के लिए सबसे शुभ मानी जाती है?
   क) त्रिकोणीय
   ख) आयताकार
   ग) वृत्ताकार
   घ) अर्द्धवृत्ताकार

6. "वास्तु" शब्द का संस्कृत मूल अर्थ क्या है?
   क) सृजन
   ख) व्यवस्था
   ग) निवास करना
   घ) अस्तित्व

7. वास्तुशास्त्र में कौन-सी दिशा सबसे पवित्र मानी जाती है?
   क) पश्चिम
   ख) उत्तर
   ग) ईशान (उत्तर-पूर्व)
   घ) नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)

8. रसोई घर की स्थापना के लिए कौन-सी दिशा उपयुक्त मानी जाती है?
   क) उत्तर
   ख) पूर्व
   ग) आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)
   घ) दक्षिण

9. वास्तु के अनुसार छतों के लिए किस प्रकार का रंग उपयुक्त होता है?
   क) नीला
   ख) नारंगी
   ग) सफेद
   घ) काला

10. ग्रीक-रोमन तत्वों का प्रभाव किस मूर्तिकला शैली पर प्रमुखता से देखा जाता है?
    क) अमरावती
    ख) गांधार
    ग) मथुरा
    घ) चालुक्य

11. वास्तु के अनुसार भूमि की आदर्श ढलान दिशा क्या मानी जाती है?
    क) नैऋत्य
    ख) पूर्व
    ग) पश्चिम
    घ) ईशान

12. शौचालय की स्थिति निर्धारण में किस दिशा पर बल दिया गया है?
    क) उत्तर
    ख) ईशान
    ग) दक्षिण और नैऋत्य के बीच
    घ) पूर्व

13. कौन-सा वैदिक ग्रंथ स्थल चयन और यज्ञ वेदी के निर्माण के प्रारंभिक नियम देता है?
    क) अथर्ववेद
    ख) शतपथ ब्राह्मण
    ग) यजुर्वेद
    घ) सामवेद

14. ईशान शब्द का तात्पर्य क्या है?
    क) उत्तर-पूर्व दिशा
    ख) दक्षिण-पूर्व दिशा
    ग) केंद्र बिंदु
    घ) दिव्य अर्पण

15. केदारनाथ मंदिर निर्माण में किस निर्माण सामग्री का उपयोग हुआ था?
    क) चूना
    ख) गारा
    ग) इंटरलॉकिंग पत्थर
    घ) सीमेंट

16. किस मंदिर का गुंबद छाया नहीं डालता?
    क) कोणार्क सूर्य मंदिर
    ख) जगन्नाथ मंदिर
    ग) कैलाश मंदिर
    घ) मीनाक्षी मंदिर

17. 'हैंगिंग पिलर' किस मंदिर में स्थित है?
    क) चेनकेशव मंदिर
    ख) लेपाक्षी मंदिर
    ग) कैलाश मंदिर
    घ) जगन्नाथ मंदिर

18. द्रविड़ मंदिरों की विशेषता क्या है?
    क) विमान
    ख) लिंगम
    ग) गोपुरम
    घ) मंडप

19. वास्तु का उल्लेख किस पुराण में है?
    क) गरुड़ पुराण
    ख) अग्नि पुराण
    ग) मत्स्य पुराण
    घ) स्कंद पुराण

20. ईशान दिशा किस प्रकार की ऊर्जा देती है?
   क) नकारात्मक
   ख) तटस्थ
   ग) पोषक
   घ) विषैली

21. शयनकक्ष की दिशा में सामंजस्य हेतु कौन-सी दिशा उत्तम है?
   क) ईशान
   ख) नैऋत्य
   ग) आग्नेय
   घ) वायव्य और उत्तर के बीच

22. वास्तु के अनुसार छत को सफेद रंग क्यों दिया जाता है?
   क) सौंदर्य हेतु
   ख) प्रकाश परावर्तन व वायु संचार
   ग) धार्मिक महत्व
   घ) धन का प्रतीक

23. "समरांगण सूत्रधार" के लेखक कौन हैं?
   क) राजा भोज
   ख) विश्वकर्मा
   ग) कनिष्क
   घ) तिरुमलाई नायक

24. भोगमूर्ति मूर्तियों का उपयोग किसमें होता है?
   क) ध्यान
   ख) शोभायात्रा
   ग) धार्मिक अर्पण
   घ) केवल प्रतीकात्मक

25. गांधार मूर्तिकला की प्रमुख विशेषता क्या है?
   क) शैलीबद्ध रूप
   ख) यथार्थ मांसपेशियाँ
   ग) धार्मिक प्रतीक
   घ) प्रतीकवाद

26. स्नानघर के लिए कौन-सी दिशा उपयुक्त है?
   क) पश्चिम
   ख) उत्तर
   ग) दक्षिण
   घ) पूर्व

27. मूर्तियों में 'अधोमुखी दोष' का क्या प्रभाव होता है?
   क) सिर से जुड़ी बीमारियाँ
   ख) मानसिक असंतुलन
   ग) प्रजनन समस्याएँ
   घ) धन हानि

28. विकटाकार दोष क्या है?
   क) सीधा मुख
   ख) भयावह स्वरूप
   ग) अंगविहीन
   घ) छोटे हाथ

29. आसन मूर्तियाँ क्या दर्शाती हैं?
   क) शयन
   ख) खड़ी
   ग) सवारी पर
   घ) बैठी हुई

30. समभंग मुद्रा का अर्थ क्या है?
   क) सीधी मुद्रा
   ख) थोड़ी झुकी
   ग) लेटी हुई
   घ) घुटनों पर

31. वास्तु के अनुसार रसोईघर के लिए कौन-सा रंग उपयुक्त है?
   क) नीला
   ख) पीला
   ग) काला
   घ) बैंगनी

32. अमरावती शैली किसके लिए जानी जाती है?
   क) कठोर भाव
   ख) स्थिर आकृतियाँ
   ग) भावनात्मक गति
   घ) अमूर्त प्रतीक

33. चल मूर्ति का उदाहरण क्या है?
   क) पत्थर की मूर्ति
   ख) कांस्य घंटी
   ग) उत्सव की चल मूर्ति
   घ) बलुआ पत्थर स्तंभ

34. "नाट्यशास्त्र" मुख्यतः किस विषय से संबंधित है?
   क) वास्तु
   ख) प्रदर्शन कला
   ग) मंदिर वास्तुकला
   घ) चित्रकला

35. अग्नि और रसोईघर किस दिशा से संबंधित हैं?
   क) आग्नेय
   ख) नैऋत्य
   ग) उत्तर
   घ) ऊपर

36. बलिबेरा मूर्तियों का उपयोग किसमें होता है?
   क) मंदिर स्थापना
   ख) ध्यान
   ग) अध्ययन
   घ) दैनिक पूजा

37. कौन-सा मंदिर विषुव दिन सूर्य की किरणों के अनुरूप बना है?
   क) मोढेरा सूर्य मंदिर
   ख) जगन्नाथ मंदिर
   ग) मीनाक्षी मंदिर
   घ) कुम्भलगढ़

38. विष्णु का प्रतीक शस्त्र कौन-सा है?
   क) तलवार
   ख) गदा
   ग) चक्र
   घ) धनुष

39. हंस किस देवता का वाहन है?
   क) शिव
   ख) विष्णु
   ग) इन्द्र
   घ) ब्रह्मा

40. गांधार शैली की मूर्तियाँ किस सामग्री से बनी होती हैं?
   क) बलुआ पत्थर
   ख) सफेद संगमरमर
   ग) ग्रेनाइट
   घ) स्लेट पत्थर

41. दक्षिण भारतीय वास्तु परंपरा में प्रमुख ग्रंथ कौन-सा है?
   क) विश्वकर्मा प्रकाश
   ख) मायमतम्
   ग) वास्तु रत्नावली
   घ) शतपथ ब्राह्मण

42. एलोरा का कैलाश मंदिर किस शैली में बना है?
   क) शैलकृत एकाश्म
   ख) इंडो-इस्लामिक
   ग) मौर्य
   घ) नव-द्रविड़

43. स्वास्थ्य-संबंधी वस्तुओं को संग्रहित करने की उपयुक्त दिशा कौन-सी है?
   क) वायव्य
   ख) दक्षिण
   ग) पश्चिम
   घ) उत्तर और ईशान के बीच

44. किस मंदिर का आकार पहियों वाले रथ जैसा है?
   क) मीनाक्षी मंदिर
   ख) सूर्य मंदिर, कोणार्क
   ग) मोढेरा मंदिर
   घ) रामेश्वरम मंदिर

45. त्रिमूर्ति सिद्धांत किससे जुड़ा है?
   क) मूर्ति के प्रकार
   ख) रंग सिद्धांत
   ग) सृष्टि, पालन, संहार
   घ) दिशाएँ

46. "शान्त" मूर्ति किस भावना को दर्शाती है?
   a) शांति और शीतलता
   b) आनंद
   c) क्रोध
   d) घृणा

47. अमरावती शैली की विशेषता क्या है?
   a) प्रतीकात्मक विशेषताएँ
   b) भावनात्मक गहराई
   c) ज्यामितीय सटीकता
   d) फ़ारसी प्रभाव

48. कौन-सी मूर्ति स्थायी रूप से स्थापित होती है और कभी नहीं हटाई जाती?
   a) कौतुकबेर
   b) चलाचल
   c) ध्रुवबेर
   d) योगमूर्ति

49. पूर्व दिशा की दीवार के लिए उपयुक्त रंग कौन-सा है?
   a) गहरा लाल
   b) काला
   c) नेवी नीला
   d) हल्का पीला

50. किस ग्रंथ में वास्तु पर 100 से अधिक अध्याय हैं?
   a) समरांगण सूत्रधार
   b) मानसार
   c) शिल्परत्न
   d) मयमत

51. भगवान शिव का वाहन क्या है?
   a) हंस
   b) बैल
   c) गरुड़
   d) मोर

52. वास्तु के अनुसार बैठक कक्ष के लिए कौन-सा रंग उपयुक्त है?
   a) नारंगी
   b) नीला
   c) पीला
   d) क्रीम

53. भंडारण कक्ष या तिजोरी के लिए सबसे उपयुक्त दिशा कौन-सी है?
   a) उत्तर
   b) पश्चिम
   c) दक्षिण
   d) आग्नेय

54. मूर्ति वर्गीकरण में "भाव" का अर्थ क्या है?
   a) आकार
   b) भावना
   c) सामग्री
   d) आकृति

55. मूर्ति दोष के अनुसार मानसिक अशांति का कारण क्या है?
   a) दरारें
   b) छोटा सिर
   c) असमान आधार
   d) विकटाकार चेहरा

56. वास्तु में गोल संरचनाएँ अधिकतर किसके लिए उपयुक्त मानी जाती हैं?
   a) आवास
   b) शयनकक्ष
   c) सभा भवन
   d) शौचालय

57. मथुरा शैली का प्रमुख योगदान क्या है?
   a) यथार्थ शरीर रचना
   b) शैलीबद्ध स्त्री मूर्तियाँ
   c) आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता
   d) रेखीय अमूर्तता

58. वास्तु में "आग्नेय" का अर्थ क्या है?
   a) पश्चिम
   b) आग्नेय
   c) दक्षिण
   d) उत्तर

59. पूजा कक्ष की स्थापना के लिए कौन-सी दिशा उपयुक्त है?
   a) दक्षिण
   b) पश्चिम
   c) ईशान
   d) वायव्य

60. मीनाक्षी मंदिर के स्तंभों वाले मंडप की एक विशेषता क्या है?
   a) स्वर्णमंडित मूर्तियाँ
   b) बिना छाया वाले गुंबद
   c) किसी भी स्थान से प्रतिध्वनि
   d) तैरती हुई सीढ़ियाँ

61. ध्यानावस्थित मूर्तियों के लिए उपयुक्त आसन कौन-सा है?
   a) खड़े
   b) लेटे
   c) बैठे
   d) सवार

62. "स्थानक" मुद्रा क्या है?
   a) लेटी हुई
   b) खड़ी हुई
   c) बैठी हुई
   d) उड़ती हुई

63. "त्रिभंग" मुद्रा क्या दर्शाती है?
   a) एक मोड़
   b) दो मोड़
   c) तीन मोड़
   d) लेटी मुद्रा

64. काकनमठ मंदिर किस सामग्री से बना है?
   a) बिना गारे के इंटरलॉकिंग पत्थर
   b) लकड़ी के लट्ठे
   c) ईंट और सीमेंट
   d) धातु क्लैम्प वाले बलुआ पत्थर

65. गांधार शैली पर किस क्षेत्र का प्रभाव है?
   a) फारस
   b) उत्तर भारत
   c) यूनानी-रोमानी
   d) नेपाल

66. वास्तु के अनुसार अध्ययन कक्ष में किस रंग से बचना चाहिए?
   a) नीला
   b) हरा
   c) हल्का भूरा
   d) काला

67. अमरावती शैली के संरक्षक कौन थे?
   a) मौर्य
   b) सातवाहन
   c) कुषाण
   d) चालुक्य

68. "आश्लिष्ट संधि" का अर्थ क्या है?
   a) अनुचित जोड़
   b) टूटा हाथ
   c) गायब आँखें
   d) नीचे झुका चेहरा

69. वास्तु में गोल कुएँ की संरचना का क्या महत्व है?
   a) नकारात्मक ऊर्जा का केंद्र
   b) खतरनाक वायु प्रवाह
   c) सकारात्मक ऊर्जा प्रवाह
   d) मंदिरों के लिए अनुपयुक्त

70. "वास्तु मण्डल" शब्द किससे संबंधित है?
   a) मूर्ति प्रकार
   b) भूखंड की ऊर्जा रूपरेखा
   c) रंग योजना
   d) मूर्ति की मुद्रा

71. वह मुद्रा जिसमें देवता लेटे होते हैं, क्या कहलाती है?
   a) शयन
   b) आसन
   c) स्थानक
   d) भोग

72. मातृत्व कक्ष के लिए उपयुक्त दिशा कौन-सी है?
   a) ईशान
   b) नैऋत्य
   c) आग्नेय
   d) उत्तर

73. उत्तर दिशा के लिए उपयुक्त रंग कौन-सा है?
   a) इंडिगो
   b) लाल
   c) हरा
   d) काला

74. किस वेद में रथ के स्थान की चर्चा की गई है?
   a) ऋग्वेद
   b) यजुर्वेद
   c) अथर्ववेद
   d) सामवेद

75. शयनकक्ष के लिए उपयुक्त रंग कौन-सा है?
   a) नारंगी
   b) लाल
   c) पीला
   d) गुलाबी

76. किस ग्रंथ में भूमि-वास्तु सहित चार प्रकार के वास्तु की चर्चा है?
   a) विश्वकर्मा शिल्पशास्त्र
   b) मयमत
   c) अग्नि पुराण
   d) नारद पुराण

77. "व्यक्त मूर्ति" क्या है?
   a) प्रतीकात्मक रूप
   b) पशु मूर्ति
   c) अर्ध देवता
   d) मानवाकार मूर्ति

78. "अव्यक्त मूर्ति" का तात्पर्य क्या है?
   a) प्रतीकात्मक अमानवीय रूप
   b) पूर्ण मानवीय मूर्ति
   c) पशु प्रतिमा
   d) वास्तु आरेख

79. सवार देवता की मुद्रा क्या कहलाती है?
   a) यानक
   b) स्थानक
   c) भोगमूर्ति
   d) त्रिभंग

80. सारनाथ में पाए जाने वाले सिंह स्तंभ का आधार क्या है?
   a) अशोक स्तंभ
   b) कैलास मंदिर
   c) चेनकेशव मंदिर
   d) होयसलेश्वर मंदिर

81. वास्तु को किस प्रकार की ज्ञान प्रणाली माना गया है?
   a) वैज्ञानिक और आध्यात्मिक
   b) राजनीतिक
   c) आर्थिक
   d) शैक्षिक

82. मंदिर की योजना में ब्रह्मस्थान क्या दर्शाता है?
   a) प्रवेश द्वार
   b) गर्भगृह
   c) केंद्रीय ऊर्जा केंद्र
   d) बाहरी दीवार

83. पंचतत्व सिद्धांत को संस्कृत में क्या कहते हैं?
   a) पंचतत्त्व
   b) त्रिदोष
   c) सप्त रस
   d) नव रस

84. "प्राणप्रतिष्ठा" का अर्थ क्या है?
   a) संरचनात्मक परीक्षण
   b) प्राण ऊर्जा स्थापना
   c) चित्रकारी
   d) दिशा सुधार

85. कौन-सा ग्रंथ मूर्तियों की तुलना वेदों से करता है?
   a) विष्णु पुराण
   b) तैत्तिरीय ब्राह्मण
   c) अग्नि पुराण
   d) नारद पुराण

86. "मानसार" ग्रंथ के प्रमुख लेखक कौन हैं?
   a) कनिष्क
   b) विश्वकर्मा
   c) आचार्य प्रसन्ना कुमार
   d) राजा भोज

87. लेपाक्षी मंदिर में किस प्रकार की चित्रकारी मिलती है?
   a) लकड़ी पर
   b) बलुआ पत्थर पर
   c) आधुनिक रंग से
   d) प्राकृतिक रंगों की भित्तिचित्र

88. योगमूर्ति का क्या उपयोग है?
   a) विवाह अनुष्ठान
   b) ध्यान
   c) केवल सजावट
   d) शोभायात्रा

89. "करुणा" मूर्तियों में कौन-सी भावना व्यक्त होती है?
   a) वीरता
   b) करुणा
   c) आनंद
   d) घृणा

90. शिव के त्रिशूल का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है?
   a) मन-शरीर-आत्मा
   b) धन
   c) विनाश पर नियंत्रण
   d) अग्नि

91. रंग सिद्धांत में कौन-सी दिशा शक्ति और स्थिरता से जुड़ी है?
   a) पूर्व
   b) उत्तर
   c) पश्चिम
   d) दक्षिण

92. कुम्भलगढ़ किले की दीवार की लंबाई कितनी है?
   a) 36 किमी
   b) 20 किमी
   c) 50 किमी
   d) 10 किमी

93. मीनाक्षी मंदिर की वास्तुकला में क्या विशेष है?
   a) केवल गोपुरम
   b) वायु संचार प्रणाली
   c) ध्वनि अनुनाद
   d) उपरोक्त कोई नहीं

94. "नाद" विज्ञान किससे जुड़ा है?
   a) वास्तुकला
   b) ध्वनि
   c) जल
   d) वास्तु दोष

95. किस मंदिर में ध्वज सदैव वायु की दिशा के विपरीत फहराता है?
   a) मीनाक्षी मंदिर
   b) जगन्नाथ मंदिर
   c) मोढेरा मंदिर
   d) कैलास मंदिर

96. मथुरा मूर्तियों की प्रमुख सामग्री क्या है?
   a) ग्रे स्लेट
   b) ग्रेनाइट
   c) सफेद संगमरमर
   d) लाल बलुआ पत्थर

97. मूर्ति भावना वर्गीकरण में "भयानक" का अर्थ क्या है?
   a) शांति
   b) आनंद
   c) आतंक
   d) प्रेम

98. हड़प्पा की मूर्ति कला की प्रारंभिक अवधि क्या है?
   a) 300 ई.पू.
   b) 1000 ई.पू.
   c) 2500 ई.पू.
   d) 1200 ई.

99. कौन-सा मंदिर एक ही चट्टान से ऊपर से नीचे की ओर तराशा गया है?
   a) कैलास मंदिर b) मीनाक्षी मंदिर
   c) सूर्य मंदिर d) विरुपाक्ष मंदिर

100. किस मूर्तिकला में कोई भी स्तंभ या मूर्ति समान नहीं है?
   a) कैलास मंदिर b) होयसलेश्वर मंदिर
   c) कोणार्क मंदिर d) रामनाथस्वामी मंदिर

उत्तर-दर्शिका

प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प	प्रश्न क्रमांक	सही विकल्प
1	ग	26	घ	51	ख	76	ख
2	घ	27	क	52	घ	77	घ
3	ग	28	ख	53	क	78	क
4	क	29	घ	54	ख	79	क
5	ख	30	क	55	घ	80	क
6	ग	31	ख	56	ग	81	क
7	ग	32	ग	57	ग	82	ग
8	ग	33	ग	58	ख	83	क
9	ग	34	ख	59	ग	84	ख
10	ख	35	क	60	ग	85	ख
11	घ	36	घ	61	ग	86	ग
12	ग	37	क	62	ख	87	घ
13	ख	38	ग	63	ग	88	ख
14	क	39	घ	64	क	89	ख
15	ग	40	घ	65	ग	90	ग
16	ख	41	ख	66	घ	91	घ
17	ख	42	क	67	ख	92	क
18	ग	43	घ	68	क	93	क
19	ख	44	ख	69	ग	94	ख
20	ग	45	ग	70	ख	95	ख
21	घ	46	क	71	क	96	घ
22	ख	47	ख	72	ख	97	ग
23	क	48	ग	73	ग	98	ग
24	ग	49	घ	74	क	99	क
25	ख	50	क	75	घ	100	ख